जिन-सूत्र, भाग दो

अनुक्रम

1. सत्य के द्वार की कुंजीः सम्यक-श्रवण..3
2. यात्रा का प्रारंभ अपने ही घर से..21
3. ज्ञान है परमयोग...42
4. किनारा भीतर है...61
5. जीवन ही है गुरु..79
6. करना है संसार, होना है धर्म..103
7. ध्यान का दीप जला लो...121
8. प्रेम है द्वार...139
9. प्रेम का आखिरी विस्तारः अहिंसा..158 10..दुख की स्वीकृतिः महासुख की नींव
.... 178
11...समता ही सामायिक
.... 198
12..ज्ञान ही क्रांति
.... 217
13...गुरु है मन का मीत
.... 236
14...जीवन तैयारी है, मृत्यु परीक्षा है
.... 257
15..त्वरा से जीना ध्यान है
.... 276
16...गुरु है द्वार
.... 301
17..ध्यान है आत्मरमण
.... 318
18..मुक्ति द्वंद्वातीत है
.... 340
19..ध्यानाग्नि से कर्म भस्मीभूत
.... 363
20..गोशालकः एक अस्वीकृत तीर्थंकर
.... 389
21..छह पथिक और छह लेश्याएं
.... 412
22...पिया का गांव
.... 435

23...षट पर्दों की ओट में
....457
24..आज लहरों में निमंत्रण
....481
25...चौदह गुणस्थान
....507
26..प्रेम के कोई गुणस्थान नहीं
....527
27...पंडितमरण सुमरण है
....547
28..रसमयता और एकाग्रता
....570
29...त्रिगुप्ति और मुक्ति
....593
30..एक दीप से कोटि दीप हों
....616
31..याद घर बुलाने लगी
....637

जिन-सूत्र, भाग दो
पहला प्रवचन

सत्य के द्वार की कुंजीः सम्यक-श्रवण

सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोच्चा जाणइ पावणं।
उभयं पि जाणए सोच्चा, जं छेयं तं समायरे।। 81।।
णाणाऽऽणत्तीए पुणो, दंसणतवनियमसंयमे ठिच्चा।
विहरइ विसुज्झमाणी, जावज्जीवं पि निवकंपो।। 82।।
जह जह सुयभोगाहइ, अइसयरसपसरसंजुयमपुव्वं।
तह तह पल्हाइ मुणी, नवनवसेवेगसद्धाओ।। 83।।
सूई जहा ससुत्ता, न नस्सइ कयवरम्मि पडिआ वि।
जीवो वि तह ससुत्तो, न नस्सइ गओ वि संसारे।। 84।।

फिर हम महावीर के तीर्थ की चर्चा करें। ऐसे सत्पुरुषों को फिर-फिर सोचना जरूरी है। सोच-सोचकर सोचना जरूरी है। बार-बार उनका स्वाद हमारे प्राणों में उतरे। हमें भी वैसी प्यास जगे। जिस प्यास ने उन्हें परमात्मा बनाया, वही प्यास हमें भी परमात्मा बनाये। क्योंकि अंततः प्यास ही ले जाती है।
जब प्यास इतनी सघन होती है कि सारा प्राण प्यास में रूपांतरित हो जाता है, तो परमात्मा दूर नहीं। परमात्मा पाने के लिए कुछ और चाहिए नहीं। ऐसी परम प्यास चाहिए कि उसमें सब कुछ डूब जाए, तल्लीन हो जाए।
तो फिर महावीर की चर्चा करें। और महावीर की फिर चर्चा करने में यह बात सबसे पहले समझ लेनी जरूरी है कि महावीर ने श्रवण पर बड़ा जोर दिया है। महावीर कहते हैं, सोया है आदमी, तो कैसे जागेगा? कोई पुकारे उसे, कोई हिलाये-डुलाये, कोई जगाये। कोई उसे खबर दे कि जागरण का भी कोई लोक है। सोया आदमी अपने से कैसे जागेगा। सोया तो जागने का भी सपना देखने लगता है। सोया तो सपने में भी सोचने लगता है, जाग गये! भेद कैसे करेगा सोया हुआ आदमी कि जो मैं देख रहा हूं वह स्वप्न है या सत्य? कोई जागा उसे जगाये। कोई जागा उसे हिलाये। इसलिए महावीर कहते हैं, सुनकर ही सत्य की यात्रा शुरू होती है। महावीर ने कहा है, मेरे चार तीर्थ हैं। श्रावक का, श्राविका का; साधु का, साध्वी का। लेकिन पहले उन्होंने कहा, श्रावक का, श्राविका का। श्रावक का अर्थ है, जो सुनकर पहुंच जाए। साधु का अर्थ है, जो सुनकर न पहुंच सके, सुनना जिसे काफी न पड़े जिसे कुछ और करना पड़े। साधुओं ने हालत उल्टी बना दी है। साधु कहते हैं कि साधु श्रावक से ऊपर है। ऊपर होता तो महावीर उसकी गणना पहले करते। तो उसे प्रथम रखते। महावीर कहते हैं, ऐसे हैं कुछ धन्यभागी, जो केवल सुनकर पहुंच जाते हैं। जिन्हें कुछ और करना नहीं पड़ता। करना तो उन्हें पड़ता है जो सुनकर समझ नहीं पाते। तो करनेवाला सुनने से दोयम है, नंबर दो है।
इसे समझना।
बुद्ध कहते थे, ऐसे घोड़े हैं कि जिनको मारो तो ही चलते हैं। ऐसे भी घोड़े हैं कि कोड़े की फटकार देखकर चलते हैं, मारने की जरूरत नहीं पड़ती। ऐसे भी घोड़े हैं कि कोड़े की छाया देखकर चलते हैं। फटकारने की भी जरूरत नहीं पड़ती।
श्रावक को सुनना काफी है। उतना ही जगा देता है। तुमने किसी को पुकारा, कोई जग जाता है। पर किसी को हिलाना पड़ता है। किसी के मुंह पर पानी फेंकना पड़ता है। तब भी वह करवट लेकर सो जाता है। श्रावक है वह, जिसने सुनी पुकार और जाग गया। साधु है वह, जो करवट लेकर सो गया। जिसको हिलाओ, शोरगुल मचाओ, आंखों पर पानी फेंको। श्रवण--सम्यक-श्रवण--सुधी व्यक्ति के लिए पर्याप्त है। इशारा बहुत है बुद्धिमान को।
पहला सूत्र है आज का--
सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोच्चा जाणइ पावगं।
उभयं पि जाणए सोच्चा, जं छेयं तं समायरे।।

3

"सुनकर ही कल्याण का--आत्महित का मार्ग जाना जा सकता है।" सुनकर ही। "सुनकर ही पाप का मार्ग भी जाना जा सकता है। अतः सुनकर ही हित और अहित दोनों का मार्ग जानकर जो श्रेयस हो उसका आचरण करे।"
जाओ उनके पास, जो जाग गये हैं। बैठो उनके पास, जो जाग गये हैं। डूबो उनकी हवा में, जो जाग गये हैं। उनकी तरंगें तुम्हें जगायें। सत्संग का इतना ही अर्थ है। सुनो उन्हें, जिन्होंने पाया है। उनके शब्दों में भी शून्य होगा। उनकी आवाज में भी मंत्र होगा। उनके इशारे में भी तुम्हारे जीवन की नाव निर्मित हो जाएगी। सुनकर ही। और उपाय भी तो नहीं है।
गुरजिएफ कहता था--इस सदी का एक बहुत बड़ा तीर्थंकर--कहता था, हमारी हालत ऐसे है जैसे रेगिस्तान में, जंगल में, निर्जन में कुछ यात्री रात पड़ाव डालें। खतरा है। बीहड़ है। जंगली पशु हमला कर सकते हैं। डाकू-लुटेरे छिपे हों। अनजान जगह है। अपना कोई नहीं, पहचान नहीं। ऐसा ही तो संसार है। तो क्या करे यात्रीदल? एक को जागता हुआ छोड़ देता है कि कम से कम एक जागता रहे, बाकी सो जाएं। फिर पारी-पारी से और लोग जागते रहते हैं। जो जागा है, वह खुद के सोने के पहले किसी और को उठा देता है। कम से कम एक दीया तो जलता रहे अंधेरे में। कम से कम कोई एक तो जागकर देखता रहे। खतरा आये तो हमें सोया हुआ न पाये।
सदगुरु का इतना ही अर्थ है कि तुम जब सोये हो तब कोई तुम्हारे पास में बैठा हुआ, जागा हुआ है। तुम तो सोये हो, तो सपने में डूब जाओगे। तुम तो न-मालूम कितने वासनाओं, कल्पनाओं के लोक में भटक जाओगे। तुम तो न-मालूम कितने मन के खेलों में डूब जाओगे। लेकिन जो जागा है, वह यथार्थ को देखता रहेगा। उसे सुनो। जब जागा हुआ कुछ कहे, तो सुनो, समझो।
जागे हुए के साथ तर्क का सवाल नहीं है, क्योंकि उसकी भाषा बड़ी और है। उससे तर्क करके तुम कुछ भी न पाओगे। उससे तर्क करके केवल तुम बंद रह जाओगे। जागे के साथ तर्क नहीं हो सकता। जागे के साथ तो केवल श्रवण हो सकता है। उससे विवाद नहीं हो सकता, केवल सुनना हो सकता है। वह जो कहे, उसे पीओ।
वह जो कहे, तुम्हारे सोचने का सवाल उतना नहीं है जितना पीने का सवाल है।
क्योंकि वह जो कह रहा है, उसे पीकर ही तुम समझ सकोगे कि सही है या गलत है। और तो कोई उपाय नहीं।
लेकिन अगर ठीक से सुना गया, तो सत्य की महिमा है कि ठीक से सुननेवाले
को सत्य तत्क्षण हृदय में चोट करने लगता है। कहा गया अगर असत्य है, तो ठीक से सुनते समय ही साफ हो जाता है कि असत्य है। तय नहीं करना पड़ता, विचार भी नहीं करना पड़ता। असत्य के कोई पैर ही नहीं हैं। पैर तो सत्य के हैं। असत्य तो तुम्हारे हृदय तक जा ही नहीं सकता। असत्य तो लंगड़ा है। असत्य तो बाहर ही गिर जाएगा। तुम अगर शांत बैठे सुनने को तैयार हो, तो घबड़ाओ मत कि कहीं ऐसा न हो कि असत्य भीतर प्रवेश कर जाए। असत्य तो तभी प्रवेश करता है जब तुम शांत, मौन श्रवण नहीं करते। तुम्हारी नींद के द्वार से ही असत्य प्रवेश करता है। तुम्हारी मूर्च्छा से ही प्रवेश करता है।
अगर तुम सजग होकर सुनने बैठे हो, तो असत्य गिर जाएगा बाहर। तुम्हारी आंख का सामना न कर सकेगा असत्य। वह शांत सुननेवाले के प्राण पर्याप्त हैं असत्य को गिरा देने को। जो सत्य है, वही चला आयेगा चुंबक की तरह खिंचता हुआ। जो सत्य है वही तुम्हारे प्राणों में तीर की तरह प्रवेश कर जाएगा। जो असत्य है, बाहर रह जाएगा। तुम सत्य हो, तुम सत्य को ही खींच लोगे।
लेकिन अगर तुमने ठीक से न सुना, अगर तुमने विचार किया, तुमने सोचा, तुमने कहा यह ठीक है या नहीं, मेरी अतीत मान्यताओं से मेल खाता, नहीं खाता, तो संभव है कि असत्य तुम्हारे भीतर प्रवेश कर जाए। असत्य बहुत तार्किक है। जीवंत तो जरा-भी नहीं, लेकिन बड़ा तर्कयुक्त है।
सत्य के पास कोई तर्क नहीं, कोई प्रमाण नहीं। सत्य अस्तित्ववान है, वही उसका प्रमाण है। इसलिए शास्त्र कहते हैं सत्य स्वयं प्रमाण है। असत्य स्वयं अप्रमाण है। सुन लो ठीक से। उस सुनने में ही चुनाव हो जाएगा। "सोच्चा जाणइ कल्लाणं।" सुनकर ही कल्याण का पता चल जाता है कि क्या है कल्याण। "सोच्चा जाणइ पावगं।" सुनकर ही पता चल जाता है कि पाप क्या है, गलत क्या है, अकल्याण क्या है? और महावीर की बड़ी खूबी है; वे कहते हैं मेरे पास

कोई आदेश नहीं है। मैं तुमसे नहीं कहता कि तुम ऐसा करो। महावीर कहते हैं, तुम सिर्फ सुन लो।
"अतः सुनकर हित और अहित दोनों का मार्ग जानकर जो श्रेयस्कर हो उसका आचरण करना।"
महावीर यह भी नहीं कहते कि पाप को छोड़ो। कहने की जरूरत नहीं। ठीक से सुननेवाले को पाप पकड़ता ही नहीं। महावीर यह भी नहीं कहते कि सत्य का अनुसरण करो। यह बात ही व्यर्थ होगी। जिसने ठीक से सुना है वह सत्य के अनुसरण में लग जाता है। अनुसंधान में लग जाता है। इसका यह अर्थ हुआ--सम्यक-श्रवण कुंजी है सत्य के द्वार की। जिसके हाथ में सम्यक-श्रवण है, वह पहुंच जाएगा। उसे कोई रोक न सकेगा।
इसे हम थोड़े वैज्ञानिक अर्थों में समझें।
आदमी के पास आंख है देखने को, कान हैं सुनने को। आंख से जब तुम देखते हो, तो एक ही दिशा में देख सकते हो। आंख बहु-आयामी नहीं है। "मल्टी- डायमेंशनल" नहीं है। एक तरफ देखो, तो सब दिशाएं बंद हो जाती हैं। आंख एकांगी है। आंख एकांत है। इसलिए महावीर का जोर कान पर ज्यादा है, आंख की बजाय। कान बहु-आयामी है। आंख बंद करके सुनो, तो चारों तरफ की आवाजें सुनायी पड़ती हैं। आंख समग्र को नहीं ले पाती। कान समग्र को भीतर ले लेता है। यह पहली बात ख्याल में लेने की!
आंख से जब भी तुम देखते हो, तो एक दिशा में, एक रेखा में। उतनी रेखा को छोड़कर शेष सब बंद हो जाता है। आंख है जैसे टार्च। एक दिशा में प्रकाश की धारा पड़ती है। लेकिन शेष सब अंधकार में हो जाता है।
महावीर कहते हैं, यह एकांगी होगा; यह एकांत होगा। तुम एक पहलू को जान लोगे, लेकिन शेष पहलुओं से अनजान रह जाओगे। यह ऐसा ही होगा जैसे उन पांच अंधों की कथा है, जो हाथी को देखने गये थे। सबने हाथी के अंग छुए, लेकिन सभी का दर्शन--अंधे थे, सभी की प्रतीति एकांगी थी। जिसने पैर छुआ उसने सोचा कि हाथी खंभे की भांति है। जिसने कान छुए उसने सोचा कि हाथी पंखे की भांति है। अलग-अलग। वे सभी सत्य थे, लेकिन सभी अधूरे सत्य थे।
और महावीर कहते हैं, अधूरा सत्य असत्य से भी बदतर है। क्योंकि असत्य
को तो पहचानने में कठिनाई नहीं, वह तो निष्प्राण है, वह तो लाश की तरह है। उसको तो तुम समझ ही जाओगे कि यह मुर्दा है। आधा सत्य खतरनाक है। क्योंकि आधे सत्य में थोड़ी-सी प्राणों की झलक है। श्वास अभी चलती है, मरीज अभी मरा नहीं। लगता है जिंदा है। अभी शरीर थोड़ा गरम है, ठंडा नहीं हो गया है। खून अभी बहता है। लगता है जिंदा है। आधा सत्य असत्य से बदतर है। इसलिए महावीर का सारा संघर्ष आधे सत्यों के खिलाफ है, असत्य के खिलाफ नहीं। उन्होंने कहा असत्य तो सुनकर ही समझ में आ जाता है कि असत्य है। लेकिन आधे सत्य बड़े भरमाते हैं।
महावीर ने एक नये जीवन-दर्शन को जन्म दिया। उसे कहा, स्यातवाद। उसे कहा, अनेकांतवाद। उसे कहा कि मैं सारे एकांगी सत्यों को इकट्ठा कर लेना चाहता हूं। ये पांचों अंधों ने जो कहा है हाथी के संबंध में, यह सभी सच है। और सत्य इन सभी का इकट्ठा जोड़ है, समन्वय है।
कान की खूबी है कि कान आंख से ज्यादा समग्र है। जब तुम सुनते हो तो चारों दिशाओं से सुनते हो। कान ऐसे हैं जैसे दीया जले। सब तरफ प्रकाश पड़े। आंख ऐसे हैं जैसे टार्च। एक दिशा में। एकांगी। महावीर कहते हैं कि दर्शनशास्त्र एकांगी है। श्रवणशास्त्र बहु-अंगी है। इसलिए महावीर ने एक बड़ी क्रांतिकारी प्रज्ञा दी। उन्होंने कहा कि सुनो। अगर ध्यान में जाना है, तो सुनकर जल्दी जा सकोगे, बजाय देखकर। इसलिए समस्त ध्यानियों ने आंख बंद कर लेनी चाही है। समस्त ध्यान की प्रक्रियाएं कहती हैं आंख बंद कर लो। यह भी थोड़ा समझने जैसा है कि परमात्मा ने आंख को ऐसा बनाया है कि चाहो
तो खोल लो, चाहो तो बंद कर लो। कान को ऐसा नहीं बनाया। कान खुला है। बंद करने का उपाय नहीं। आंख तुम्हारे हाथ में है। कान अब भी परमात्मा के हाथ में है। तुम्हारे वश में नहीं कि तुम उसे खोलो, बंद करो। सदा खुला है। तुम्हारी गहरी से गहरी नींद में भी कान खुला है। आंख तो बंद है। जब तुम मूर्च्छा में खोये हो, तब भी कान खुला है। आंख तो बंद है। नींद में पड़े

आदमी के पास जागा आदमी खड़ा रहे, तो देख न पायेगा। नींद में पड़ा आदमी देखेगा कैसे, आंख तो बंद है। लेकिन अगर वह आदमी उसका नाम ले, आवाज दे, तो सुन तो पायेगा।
हम सोये हैं। श्रवण से रास्ता मिलेगा। आंख तो हमारी बंद ही है। और खुली भी हो तो ज्यादा से ज्यादा अधूरा सत्य देख सकती है। पूरा सत्य आंख के वश में नहीं है। तुम्हारे हाथ में मैं एक छोटा-सा कंकड़ दे दूं और तुमसे कहूं इसे पूरा एक-साथ देख लो, तो तुम न देख पाओगे। आंख इतनी कमजोर है! एक हिस्सा देखेगी, दूसरा हिस्सा दबा रह जाएगा। एक छोटा-सा कंकड़ भी तुम पूरा नहीं देख सकते, तो पूरे परमात्मा को, पूरे सत्य को कैसे देख सकोगे? इसलिए जिन्होंने देखने पर जोर दिया है, उन्होंने अधूरे दर्शनशास्त्र जगत को दिये हैं। महावीर का दर्शनशास्त्र परिपूर्ण है, समग्र है। जोर बड़ा भिन्न है। सुनो! सत्य को देखना नहीं, सत्य को सुनना है। सत्य कोई वस्तु थोड़े ही है कि तुम उसे देख लोगे। सत्य तो किसी व्यक्ति का अनुभव है। वह कहेगा तो तुम सुन लोगे। महावीर खड़े रहें तुम्हारे समक्ष, तुम कुछ भी न देख पाओगे। बहुतों ने महावीर को देखा था और कुछ भी न देखा। गांव-गांव खदेड़े गये। पत्थर मारे गये। गांव-गांव निकाले गये। महावीर को देखने में क्या अड़चन आती थी?
इस महिमावान पुरुष को ऐसा तिरस्कार क्यों झेलना पड़ा? लोग अंधे हैं। दिखायी उन्हें पड़ता ही नहीं। सुन सकते हैं। इसलिए सुनने की कला को सीख लेना धर्म के जगत में पहला कदम है।
क्या है सुनने की कला? कैसे सुनोगे? जब सुनो, तो सोचना मत। क्योंकि तुमने अगर सोचा सुनते समय, तो तुम वह न सुन पाओगे जो कहा गया। कुछ और सुन लोगे। सुनते समय पूर्व-धारणाओं को लेकर मत चलना। नहीं तो पूर्व-धारणाएं पर्दे का काम करेंगी। रंग घोल देंगी जो कहा गया है उसमें। तुमने कभी ख्याल किया, रात तुम अलार्म लगाकर सो गये हो, चार बजे उठना है ट्रेन पकड़ने। और जब अलार्म बजता है, तो तुम एक सपना देखते हो कि मंदिर की घंटियां बज रही हैं। अलार्म खतम! तुमने एक सपना बना लिया।
अब घड़ी एलार्म बजाती रहे, क्या करेगी घड़ी? तुमने एक तरकीब निकाल ली। तुमने कुछ और सुन लिया! सुबह तुम हैरान होओगे कि हुआ क्या? अलार्म भरा था, अलार्म बजा भी, मैं चूक क्यों गया? तुम्हारे पास अपनी एक धारणा थी, एक सपना था। तो अगर तुमने सुना कोई पक्षपात के साथ, तो तुम कुछ का कुछ सुन लोगे। मैंने सुना है, एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन अपने मित्र के साथ ज्यादा देर तक गपशप में लगा रहा। रात बहुत बीत गयी। चौंककर उठा, उसने कहा बहुत देर हो गयी, अब घर जाऊं। मित्र ने कहा, आज भाभी तो बहुत इत्र-पान करेंगी। मुल्ला ने कहा तूने मुझे समझा क्या है? अगर घर जाते ही पहला शब्द पत्नी से प्रीतम न निकलवा लूं, तो मेरा नाम बदल देना। या तेरी जिंदगी भर गुलामी कर दूंगा। मित्र भलीभांति मुल्ला की पत्नी को जानता है, उसने कहा कोई फिक्र नहीं, दो मील चलना पड़ेगा--इस अंधेरी रात में--लेकिन मैं आता हूं, शर्त रही! नसरुद्दीन घर गया। उसने जाकर द्वार पर दस्तक दी और जोर से बोला, "प्रीतम आ गये हैं।" पत्नी चिल्लायी अंदर से, "प्रीतम जाएं भाड़ में।" उसने मित्र से कहा, "देखा, कहलवा लिया न! पहला शब्द प्रीतम निकलवा लिया न!"
अगर कोई धारणा है, अगर पहले से कोई पक्षपात है, तो तुम कुछ का कुछ सुन लोगे। तुम सत्य को अपने हिसाब से ढाल लोगे। तुम उसे असत्य कर लोगे। ऐसे ही तो लोग चूके महावीर को, बुद्ध को, कृष्ण को, जरथुस्त्र को, जीसस को। कुछ का कुछ सुन लिया। कहा था कुछ, सुन लिया कुछ। सुननेवाले के पास अपना मन था, अपना मजबूत मन था, उसने मन के माध्यम से सुना। मन को हटाकर सुनो, तो महावीर का श्रवण समझ में आयेगा। मन को किनारे रख दो, जहां तुम जूते उतार आये हो वहीं मन को उतार आना। एक बार जूते भी मंदिर में ले आओ तो इतना अपवित्र नहीं, मन को मंदिर में मत लाना। नहीं तो मंदिर में कभी आ ही न सकोगे। "सुनकर ही कल्याण का, आत्महित का मार्ग जाना जा सकता है। सुनकर ही पाप
का मार्ग जाना जा सकता है।"
श्रवण की कला आते ही तुम दूध और पानी को अलग-अलग करने में कुशल हो जाते हो। विवेक का जन्म होता है। तुम हंस हो जाते हो। इसीलिए तो हमने ज्ञानियों

को परमहंस कहा है। परमहंस का अर्थ है, गलत को और सही को वे तत्क्षण अलग कर लेंगे। उनकी आंख, उनकी दृष्टि, उनकी भावदशा बड़ी साफ है, निर्मल है। जो जैसा है उसे वे वैसा ही देख लेते हैं। जैसे को तैसा देख लेते हैं। उसमें कुछ जोड़ते नहीं। फिर कोई भ्रांति खड़ी नहीं होती।
बतानेवाले वहीं पर बताते हैं मंजिल
हजार बार जहां से गुजर चुका हूं मैं
तुम भी गुजरे हो। मंदिर के आसपास ही परिक्रमा चल रही है। क्योंकि परमात्मा सब जगह मौजूद है। कहीं भी जाओ, उसी के पास परिक्रमा चल रही है। कुछ भी देखो, तुमने उसी को देखा है। कुछ भी सुनो, तुमने उसी को सुना है। कोयल पुकारी हो, कि झरने की आवाज हो, कि जलप्रपात हो, कि हवाएं गुजरी हों वृक्षों से, वही गुजरा है। लेकिन, तुम उसे पहचान नहीं पाते।
बतानेवाले वहीं पर बताते हैं मंजिल
हजार बार जहां से गुजर चुका हूं मैं
मंजिल तो तुम्हारे भीतर है; गुजर चुके, यह कहना भी ठीक नहीं। जहां तुम सदा से हो, मंजिल वहीं है। कसौटी तुम्हारे पास नहीं। सोने का ढेर लगा है चारों तरफ, तुम्हारे पास सोने को कसने का पत्थर नहीं। हीरे-जवाहरात बरस रहे हैं चारों तरफ, तुम्हारे पास जौहरी की आंख नहीं।
और महावीर कहते हैं, श्रवण पहला सूत्र है। सुनो। ऐसा कभी भी नहीं हुआ
है पृथ्वी पर कि जागे पुरुष न रहे हों। ऐसा होता ही नहीं। उनकी शृंखला अनवरत है। अनुस्यूत हैं वे। अस्तित्व में प्रतिपल कोई न कोई जागा हुआ पुरुष मौजूद है। अगर तुम सुनने को तैयार हो, तो परमात्मा तुम्हें पुकार ही रहा है। कभी महावीर से, कभी कृष्ण से, कभी मुहम्मद से। वह तुम्हें हजार ढंगों से पुकारता है। वह हजार भाषाओं में पुकारता है। वह हजार तरह से तुम्हारे हाथ हिलाता है। लेकिन तुम हो कि तुम सुनते नहीं।
मेहर सदियों से चमकता ही रहा अफ्लाक पर
रात ही तारी रही इंसान के इद्राक पर
अक्ल के मैदान में जुल्मत का डेरा ही रहा
दिल में तारीकी दिमागों में अंधेरा ही रहा
और मेहर सदियों से चमकता ही रहा अफ्लाक पर, रात ही तारी रही इंसान के इद्राक पर। सूरज चमकता ही रहा है, सदियों से, सदा से। सूरज इस अस्तित्व का अनिवार्य अंग है। लेकिन आदमी अंधेरे में ही जीता है। आदमी अपने भीतर बंद है। ऐसा समझो कि सूरज निकला हो और तुम घर के भीतर द्वार-दरवाजे बंद किये बैठे हो। फिर सूरज करे भी तो क्या? द्वार-दरवाजे खोलो, थोड़े ग्रहणशील बनो। कान का यही अर्थ है। कान प्रतीक है ग्रहणशीलता का।
इसे भी समझ लेना।
आंख आक्रामक है, कान ग्राहक है। और महावीर की अहिंसा इतनी गहरी है कि
वह आंख का उपयोग न करेंगे। क्योंकि आंख में आक्रमण है। जब मैं तुम्हें देखता हूं, तो मेरी आंख तुम तक गयी। जब मैं तुम्हें सुनता हूं, तब मैंने तुम्हें अपने भीतर लिया। जब मैं तुम्हें देखता हूं, तो देखने में एक आक्रमण है। इसलिए कोई आदमी तुम्हें घूरकर देखे, तो अच्छा नहीं लगता। कोई तुम्हें गौर से सुने, तो बहुत अच्छा लगता है, ख्याल किया? गौर से सुननेवाले को तुम बड़ा प्यार करते हो। लोग तलाश में रहते हैं, कोई मिल जाए सुननेवाला।
पश्चिम में, जहां कि सुननेवाले कम होते चले गये हैं, मनोविश्लेषक है।
वह "प्रोफेशनल" सुननेवाला है। व्यवसायी। उसे पैसे चुकाओ, वह घंटे भर बड़े गौर से सुनता है। पता नहीं सुनता है कि नहीं सुनता, लेकिन जतलाता है कि सुनता है।
लोग बड़े प्रसन्न लौटते हैं मनोवैज्ञानिक के पास से। वह कुछ भी नहीं करता। वह कहता है सिर्फ तुम बोलो, हम सुनेंगे।
सुननेवाला इतना भला लगता है, इतना ग्राहक! तुम्हें स्वीकार करता है। लेकिन अगर कोई तुम्हें गौर से देखे, तो अड़चन आती है। मनस्विद कहते हैं तीन सेकेंड तक बर्दाश्त किया जा सकता है। वह सीमा है। उसके आगे आदमी लुच्चा हो जाता है। लुच्चे का मतलब, गौर से देखनेवाला। और कुछ मतलब नहीं। जो मतलब

आलोचक का होता है, वही लुच्चे का होता है। दोनों एक ही शब्द से बने हैं-- लोचन, आंख। लुच्चे का अर्थ है, जो तुम्हें घूरकर देखे। आलोचक का भी यही अर्थ होता है कि जो चीजों को घूर-घूरकर देखे, कहां-कहां भूल है।
लेकिन तुम गौर से सुननेवाले को बड़ा आदर देते हो। घूर के देखनेवाले को बड़ा अनादर। हां, किसी से तुम्हारा प्रेम हो, तो तुम क्षमा कर देते हो। वह तुम्हें गौर से देखे, चलेगा। लेकिन जिससे तुम्हारा कोई संबंध नहीं, तो तीन सेकेंड से ज्यादा आंख नहीं टिकनी चाहिए किसी पर। वहां से शिष्टाचार समाप्त हो जाता है। वहां से बात अशिष्ट हो जाती है। तो हम रास्ते पर आंखें बचाकर चलते हैं। देखते भी हैं, नहीं भी देखते हैं। दुबारा लौटकर नहीं देखते। देखने का मन भी हो, तो भी आंखें यहां-वहां कर लेते हैं।
तुमने कभी ख्याल किया, लोग एक-दूसरे की आंखों में आंखें डालकर बात नहीं करते, क्योंकि वह बेहूदगी है। लोग इधर-उधर देखते हैं। बात एक-दूसरे से करते हैं, देखते कहीं-कहीं हैं। कोई आदमी ठीक तुम्हारी आंखों में देखकर बात करे, तुम बेचैनी अनुभव करोगे, तुम्हें पसीना आने लगेगा। तुम थोड़े घबड़ाओगे कि मामला क्या है? कोई जासूस है? सरकारी आदमी है? मामला क्या है, ऐसा गौर से क्यों देखता है? या पागल है? प्रयोजन होगा कुछ। कुछ तलाश कर रहा है, कुछ खोज रहा है।
कान ग्राहक है। आंख सक्रिय है। कान निष्क्रिय-स्वीकार है। कान ऐसे है जैसे कोई द्वार को खोलकर अतिथि की प्रतीक्षा करे। सत्य निमंत्रित करना है। सत्य को बुलाना है। सत्य को कहना है, द्वार खुले हैं, आओ। आंखें बिछा रखी हैं, आओ। मैं तैयार हूं, आओ। तुम मुझे सोया हुआ न पाओगे, आओ। दरवाजे बंद न होंगे, तुम्हें दस्तक देने की भी तकलीफ न होगी, आओ।
आंख खोजने जाती है। कान प्रतीक्षा करता है। इसे ऐसा समझो। आंख पुरुष है। कान स्त्री है। पुरुष सक्रिय है, आक्रामक है। स्त्री ग्राहक है। पुरुष जन्म नहीं दे सकता बच्चे को, स्त्री देती है। उसके पास गर्भ है। वह अपने भीतर लेने को राजी है। सत्य भी तुम्हारे गर्भ में प्रवेश पाये, तो ही जन्म हो सकेगा। सत्य को तुम्हें जन्माना होगा। यह कहीं रखा नहीं है कि गये और उठा लिया और आ गये। या बाजार में बिकता है, खरीद लिया, या दाम चुका दिये। यह तो तुम्हें जन्म देना होगा और प्रसव की पीड़ा से गुजरना होगा। तुम्हें स्त्री-जैसा होना होगा। समस्त धर्म के खोजियों ने इस बात पर बहुत जोर दिया है कि सत्य को पाना हो, तो स्त्रैण ग्राहकता चाहिए। स्वीकार का भाव चाहिए। श्रद्धा स्वीकार है, तर्क खोज है। विज्ञान खोजता है। धर्म प्रतीक्षा करता है। विज्ञान जाता है कोने-कांतर, उघाड़ता है, जबर्दस्ती भी करता है। विज्ञान एक तरह का बलात्कार है। अगर प्रकृति राजी नहीं है अपने पर्दे उठाने को, अगर प्रकृति राजी नहीं है घूंघट हटाने को, तो विज्ञान दुर्योधन-जैसा है। वह द्रौपदी को नग्न करने की चेष्टा करता है। उसमें बलात चेष्टा है। आक्रमण है।
धर्म प्रतीक्षा है। धर्म भी उघाड़ लेता है संसार को। धर्म भी सत्य को उघाड़ लेता है, लेकिन प्रेमी की तरह। तुम्हारी प्रेयसी तुम्हारे सामने वस्त्र गिरा देती है। वस्त्र खींचने नहीं पड़ते। प्रेयसी खुद ही उघड़ने को राजी होती है। आतुर होती है। सत्य स्वयं उघड़ने को आतुर है, लेकिन प्रेम से उघड़ेगा। आक्रमण से नहीं। परमात्मा खुद घूंघट उठाने के लिए तैयार है, तैयार नहीं बड़ा प्रतीक्षारत है, लेकिन जबर्दस्ती से न होगा। आंख में थोड़ी जबर्दस्ती है। कान में कोई भी जबर्दस्ती नहीं। कान कहीं जा नहीं सकता। ध्वनि कान तक तैरकर आती है।
कान रिक्त है, आंख भरी हुई है। आंख में पर्त दर पर्त विचारों की हैं, पर्त दर पर्त बादलों की हैं। आंख में बड़े पर्दे हैं। कान बिल्कुल खाली है। कान के पास कुछ भी नहीं है, सिर्फ एक तंतु-जाल है। चोट होती है, कान सजग हो जाता है, स्वीकार कर लेता है।
महावीर कहते हैं, जो सुनेगा--ठीक से सुनेगा, सम्यक-श्रवण, "राइट लिसनिंग"; कृष्णमूर्ति जिसको कहते हैं "राइट लिसनिंग", ठीक से जो सुनेगा-- सत्य अपने-आप असत्य से अलग हो जाता है। दूध दूध, पानी पानी हो जाता है। ठीक से सुनने से तुम परमहंस हो जाते हो।

मेहर सदियों से चमकता ही रहा अफ्लाक पर
रात ही तारी रही इंसान के इद्राक पर
और आदमी के बोध पर अंधेरा छाया रहा, और सूरज था कि चमकता ही रहा।
अक्ल के मैदान में जुल्मत का डेरा ही रहा
दिल में तारीकी दिमागों में अंधेरा ही रहा
फिर कभी-कभी किसी महावीर के पास थोड़ी-सी झलक मिलती है।
कुछ नहीं तो कम से कम ख्वाबे-सहर देखा तो है
जिस तरफ देखा न था अब तक उधर देखा तो है
किसी महावीर के पास, किसी महावीर की वाणी को सुनकर--जिस तरफ कभी देखा
ही न था... भूल ही गये थे, सोचा ही न था कि वह भी कोई आयाम है... उस तरफ देखा तो है। माना कि अभी यह सपना है। पहली दफे जब महावीर की वाणी किसी के हृदय में उतरती है, नाचती, घूंघर बजाती, संगीत की तरह मधुर, मधु की तरह मीठी, जब पोर-पोर हृदय में प्रवेश करती है, तो एक नये स्वप्न का प्रादुर्भाव होता है। सत्य के स्वप्न का प्रादुर्भाव। पहली बार याद आनी शुरू होती है जिसको हम भूले बैठे हैं और जो हमारा है। और जो हमारा स्वभाव है और जिसकी तरफ हमने पीठ कर ली है। और जिसकी तरफ हमने आंख उठानी बंद कर दी है और जिस तरफ हमने पहुंचना ही छोड़ दिया है। हम भूल ही गये हैं कि घर भी लौटना है। बढ़ते ही चले जाते हैं संसार में।
लेकिन यह स्वप्न!
कुछ नहीं तो कम से कम ख्बाबे-सहर देखा तो है
यह सुबह का सपना ही सही अभी, किसी की वाणी से पहली दफा तरंगें उठी हैं,
और सुबह का भाव, सुबह का बोध जगा है।
जिस तरफ देखा न था अब तक उधर देखा तो है
लेकिन यह तभी संभव होगा, जब तुम्हारा हृदय शून्य और शांत हो, मौन हो। मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक नदी के किनारे से गुजर रहा था। सांझ घिरने लगी। सूरज ढल चुका है। और एक आदमी डूब रहा है; और वह आदमी चिल्लाया, सहायता करो, सहायता करो, मैं डूब रहा हूं! मुल्ला किनारे पर खड़ा है, वह बोला हद्द हो गयी; अरे, डूबने में किसी से क्या सहायता की जरूरत, डूब जाओ! इसमें सहायता की क्या जरूरत है!
तुम कुछ का कुछ सुन ले सकते हो। इससे सावधान रहना। लेकिन जब तक तुमने
मन को बिल्कुल हटाकर न रखा हो, तुम कुछ का कुछ सुनोगे ही।
इसलिए ध्यान श्रवण के लिए मार्ग बनाता है। ध्यान का अर्थ है, मन की सफाई। ध्यान का अर्थ है, अ-मन की तरफ यात्रा। ध्यान का अर्थ है, थोड़ी घड़ियों को मन की धूल से चित्त के दर्पण को बिल्कुल साफ कर लेना। महावीर के पास लोग आते, तो महावीर कहते--कुछ देर ध्यान, फिर सुनना।
इसलिए मैं इतना जोर देता हूं ध्यान पर। तुम मुझे सीधा-सीधा न सुन सकोगे। कई बुद्धिमान आ जाते हैं, वह कहते हैं ध्यान वगैरह से हमें कुछ मतलब नहीं, हमें तो आपको सुनने में मजा आता है। मर्जी आपकी! लेकिन यह मजा कहीं ले जानेवाला नहीं। यह बुद्धि की खुजलाहट है। खुजलाने से थोड़ा अच्छा लगता है, मीठा-मीठा लगता है। जल्दी ही लहूलुहान हो जाएंगे। नहीं, इससे कुछ सुनने से सार न होगा। क्योंकि सच तो यह है, सुन तुम पाओगे ही न बिना ध्यान के। ध्यान तुम्हें तैयार करेगा कि तुम सुन सको।
फिर महावीर कहते हैं, "उभयं पि जाणए सोच्चा।" दोनों देख लिये। क्या है सत्य, क्या असत्य। देख लिया क्या है मंगलदायी, क्या अमंगलदायी। "जं छेयं तं समायरे।" यह उनकी बड़ी अनूठी बात है। वह जरा भी किसी पर अपने को आरोपित नहीं करना चाहते। वह कहते हैं, फिर तुम्हारी अपनी इच्छा। फिर तुम्हें जो श्रेयस्कर लगे। वह यह नहीं कहते कि तुम सत्य का अनुसरण करना। यह तो बात ही गलत हो जाएगी। सत्य को जानकर कभी ऐसा हुआ है कि किसी ने अनुसरण न किया हो? वह यह नहीं कहते कि असत्य का त्याग करना। ऐसा कभी हुआ ही नहीं कि असत्य को जानकर और त्याग न हो गया हो। कंकड़-पत्थर पहचान लिए कंकड़-पत्थर हैं फिर कौन तिजोड़ी में रखता है? हां, जब तक हीरों का भ्रम था तब तक तिजोड़ी में संभाले बैठे थे। जिस दिन पहचान आ जाती है कूड़ा-कर्कट, कूड़ा-कर्कट है, उसे घर के बाहर हम फेंक आते हैं। त्याग थोड़े ही करना पड़ता है, उद्घोषणा थोड़े ही करनी

पड़ती है कि देखो, आज हम बड़ा त्याग कर रहे हैं, सारा कूड़ा-कर्कट कचरे-घर में डाल रहे हैं। जब कूड़ा-कर्कट हो गया, तो त्याग कैसा!
इसलिए ध्यान रखना, महावीर त्याग करने को नहीं कहते। वह तो कहते हैं सिर्फ जागकर देख लो; जो ठीक है, वही तुम्हारा मार्ग हो जाएगा, जो गलत है, उस पर कभी कोई गया ही नहीं। जानकर कभी कोई ने दीवाल से निकलने की कोशिश की है? द्वार दिख गया, फिर लोग द्वार से निकलते हैं, कौन सिर तोड़ता है दीवाल से! "फिर जो श्रेयस्कर हो उसका आचरण करना।" फिर तुम्हें जो श्रेयस्कर लगे, इतने बलपूर्वक महावीर कहते हैं कि फिर जो श्रेयस्कर हो, क्योंकि वह जानते हैं कि सत्य श्रेयस्कर है। पहचान भर की कमी है। ज्ञान भर की कमी है। अक्सर लोग मेरे पास आते हैं, वह कहते हैं हमें पता है कि ठीक क्या है, लेकिन क्या करें गलत हो जाता है। पता संदिग्ध है। कहते हैं हमें मालूम है कि क्रोध बुरा है, लेकिन हो जाता है। कहते हैं, बहुत बार कसम भी खायी, व्रत भी लिया, फिर भी हो जाता है। तो इसका अर्थ इतना ही है कि अभी जाना नहीं कि क्रोध बुरा है। अभी क्रोध की आग अनुभव नहीं बनी। अभी क्रोध का जहर खुद के कंठ को जलाया नहीं। किसी और ने कहा होगा, सुना होगा, शास्त्र में पढ़ा होगा, लेकिन अभी तुम्हारे जीवन का अनुभव नहीं बना। शास्त्र से उधार लिया होगा। सभी शास्त्र कहते हैं क्रोध बुरा है। सुनते-सुनते तुम भी मानने लगे हो कि क्रोध बुरा है। लेकिन, तुम्हारे प्राणों ने अभी इसकी गवाही नहीं दी। और जब तक तुम गवाही न बनो, तब तक जीवन में कोई क्रांति नहीं होती। उधार ज्ञान से क्रांति नहीं होती।
ज्ञान तुम्हारा होना चाहिए। दूसरे जाग गये इससे कुछ न होगा, जाग तुम्हारी होनी चाहिए। सुन लो उन्हें, उनकी पुकार से जागो, लेकिन जैसे ही आंख खुलेगी तत्क्षण तुम देख लोगे कि सपना सपना है, सत्य सत्य है। फिर कोई सपने को थोड़े ही चुनता है!
"जो श्रेयस्कर हो उसका आचरण करना चाहिए।" महावीर ने कहा है, मैं कोई आदेश नहीं देता, मैं जो कहता हूं वह सिर्फ उपदेश है, आदेश नहीं। क्योंकि मैं कौन हूं, जो तुमसे कहूं ऐसा करो। ऐसा करना कहते ही हिंसा हो जाएगी। मैं तुम्हें दबाने लगा। मैं तुम्हें ढालने लगा। महावीर कहते हैं, तुम परम स्वातंष्य हो। तुम्हारी स्वतंत्रता से ही तुम्हारा अनुशासन निकले। और तुम्हारे अनुभव से ही तुम्हारा आचरण बने। तो ही सार्थक है। अन्यथा जन्मों-जन्मों तक धोखा चलता रहता है। जैसे ही समझ की जरा-सी झलक आती है-- कोई दम में हयाते-नौ का फिर परचम उठाता हूं
बईमां-ए-हमीयत जान की बाजी लगाता हूं
मैं जाऊंगा, मैं जाऊंगा, मैं जाता हूं, मैं जाता हूं
मुझे जाना है इक दिन तेरी ब.ज्मे-नाज से आखिर
जैसे ही समझ आनी शुरू होती है, यात्रा बदली। मैं जाऊंगा, मैं जाऊंगा, मैं जाता हूं, मैं जाता हूं; मुझे जाना ही है इक दिन तेरी बज्मे-ना.ज से आखिर। एक दिन जाना ही है, तो रुकने का अर्थ क्या? मौत आनी ही है, तो जीवन को पकड़ने का सार क्या? जिस जीवन में मौत घटनी ही है, वह जीवन मौत की ही तैयारी है। जिस जीवन में मौत आती ही है, वह जीवन मरा हुआ है, वह वास्तविक जीवन नहीं। जो मुझसे छीन ही लिया जाना है, उसे रोकने की चेष्टा करने से सार क्या है? जो मुझसे छिन ही जाएगा, उस साम्राज्य को बनाने का पागलपन बस पागलपन ही है। मैं जाऊंगा, मैं जाऊंगा, मैं जाता हूं, मैं जाता हूं; मुझे जाना है एक दिन तेरी बज्मे-ना.ज से आखिर। जैसे ही बोध जगना शुरू होता है, जीवन में क्रांति आनी शुरू होती है।
संन्यास बोध की छाया है। संन्यास समझ की प्रगाढ़ता है। संन्यास सम्यक-बोध, केवल सम्यक-बोध है। शुद्ध, सार बोध है। चेष्टा नहीं है। अगर तुमने चेष्टा से कुछ साधा, तो तुम जबर्दस्ती करोगे। तुमने चेष्टा से कुछ साधा, तो तुम खंड-खंड हो जाओगे। तुमने चेष्टा से कुछ साधा, तो तुम दो टुकड़ों में टूट जाओगे। एक टुकड़ा जिस पर तुम जबर्दस्ती कर रहे हो और एक टुकड़ा जो जबर्दस्ती कर रहा है। तुम्हारे भीतर बड़ी आत्म-हिंसा शुरू हो जाएगी। दूसरा सूत्र--

"और फिर ज्ञान के आदेश द्वारा सम्यक दर्शन-मूलक तप, नियम, संयम में स्थित होकर कर्म-मल से विशुद्ध जीवनपर्यंत निष्कंप (स्थिर चित्त) होकर विहार करता है।"
और जिसने जान लिया सत्य क्या है, उसके जीवन में एक नयी ही ऊर्जा का आविर्भाव होता है। निष्कंप हो जाता है चित्त। चित्त कंपता तभी तक है, जब तक हमें सत्य और असत्य का बोध नहीं। तब तक डांवांडोल होता है, यह करूं या वह करूं? यहां जाऊं, या वहां जाऊं? मंदिर कि वेश्यालय? ऐसा डोलता है। धन कि ध्यान? ऐसा डोलता है। शरीर कि आत्मा? ऐसा डोलता है। जब तक तुम्हारे भीतर सत्य और असत्य की ठीक-ठीक प्रतीति नहीं है तब तक तुम्हें असत्य में सत्य की भ्रांति होती रहती है। सत्य में असत्य की भ्रांति होती रहती है। मन डांवांडोल रहता है। इस डांवांडोल चित्त के कारण ही तो बेचैनी है, अशांति है। महावीर कहते हैं--
णाणाऽऽणत्तीए पुणो, दंसणतवनियमसंयमे ठिच्चा।
विहरइ विसुज्झमाणी, जावज्जीवं पि निवकंपो।।
जिसने सत्य की प्रतीति की, वह निष्कंप हो जाता है। जिसको कृष्ण ने गीता में स्थितप्रज्ञ कहा है। ठहर जाती है उसकी प्रज्ञा। ऐसी ठहर जाती है, जैसे बंद घर में दिया जलता हो, जहां हवा का कोई झोंका न आता हो। निष्कंप हो जाती है वह लौ। ऐसी भीतर चेतना की लौ निष्कंप हो जाती है। कुछ चुनने को न रहा--चुनाव हो गया, सत्य को जानते ही चुनाव हो गया। सत्य को जानते ही निर्णय हो गया। जीवन की दिशा उपलब्ध हो गयी; अर्थ, अभिप्राय आ गया। अब कुछ चुनाव नहीं करना है। अब व्यक्ति सत्य की तरफ ऐसे ही बहने लगता है जैसे नदियां सागर की तरफ बह रही हैं।
हम साधारणतः नदी के विपरीत तैरने का प्रयास कर रहे हैं। हमारी कोशिश असंभव को संभव बनाने की है। हम स्वभाव के प्रतिकूल चेष्टा में रत हैं। हम इस जीवन को, जो केवल क्षणभंगुर है, शाश्वत बनाने की आयोजना कर रहे हैं। हम मिट्टी-पत्थर को हीरे-जवाहरातों की तरह छाती से लगाने की कोशिश कर रहे हैं। हम हड्डी-मांस-मज्जा की देह को अपना शाश्वत घर समझने की, समझाने की कोशिश कर रहे हैं। हमारी चेष्टा है कि किसी तरह दो और दो चार न हों, पांच हो जाएं। हो नहीं सकता। संसार में असफलता मिलती है, क्योंकि सांसारिक मन की चेष्टा असंभव को पूरा करने की चेष्टा है।
जिस व्यक्ति को सत्य और असत्य दिखायी पड़ने शुरू हो गये, शुद्ध निर्मल प्रतीति होनी शुरू हुई, उसके जीवन में तप, नियम, संयम अपने-आप उतर आते हैं। इन्हें लाना नहीं पड़ता। इन्हें खींच-खींचकर आयोजना नहीं करनी पड़ती। एक बात सूत्र की तरह याद रखना, जिसे खींच-खींचकर लाना पड़ता हो, वह आएगा नहीं। इस जगत में जबर्दस्ती कुछ घटता ही नहीं। सत्य सहज है। इसलिए जब तक साधना सहज न हो, तब तक तुम व्यर्थ ही कष्ट अपने को दे रहे हो।
न मालूम कितने लोग अकारण खुद को पीड़ा देने में लगे रहते हैं। कोई उपवास कर रहा है, कोई धूप में खड़ा है, कोई रात सोता नहीं, कोई दिन-रात खड़ा रहता है--वर्षों से खड़ा है, कोई कांटों पर लेटा है, ये सारे के सारे लोग रुग्ण लोग हैं। यह तप नहीं है। यह तो एक तरह की आत्महिंसा है। ये लोग "मेसोचिस्ट" हैं। इन्हें स्वयं को दुख देने में रस आ रहा है। कुछ लोग होते हैं, जिनको स्वयं के घाव में अंगुलियां डालकर दुख और पीड़ा पैदा करने में रस आता है। ये बीमार-चित्त लोग हैं। ये तपस्वी नहीं हैं। यह तप क्रोध से भरा है। यह तप हिंसा से डूबा हुआ है। ऐसे तप से कोई कभी सत्य को उपलब्ध नहीं हुआ। तप से कोई सत्य को उपलब्ध होता ही नहीं; सत्य की उपलब्धि से तप उपलब्ध होता है।
तप, संयम, नियम तुम्हारी सहजता से आने चाहिए। तुम्हारे अनुभव से आने चाहिए। तो मैं तुमसे कहूंगा, अगर क्रोध हो तो कसम मत खाना कि क्रोध न करेंगे। अगर क्रोध होता हो, तो क्रोध को ध्यानपूर्वक समझने की कोशिश करना क्या है। क्रोध को बोधपूर्वक करना। क्रोध में उतरना। उस आग को जलाने दो, क्योंकि बिना जले तुम चेतोगे नहीं। उस आग को बुझाओ मत, पानी मत फेंको--व्रत और नियम, कसमें, इनका पानी फेंककर अंगारों को बुझाओ मत--आग को जलने दो, आग को प्रज्वलित होने दो, आग को पूरी तरह जलने दो, ताकि तुम्हें दग्ध कर जाए,

ताकि तुम्हें अनुभव हो जाए कि क्रोध कैसी अग्नि है! वही अनुभव तुम्हें क्रोध की तरफ जाने से रोक लेगा। फिर जीवन में एक नियम आता है। वह नियम कसम से आया नियम नहीं है। वह नियम बोध से आया नियम है।
"और संयम में स्थित होकर विशुद्ध साधक जीवनपर्यंत निष्कंप, स्थिर-चित्त होकर विहार करता है।"
महावीर और बुद्ध के कारण भारत के वे भूमिखंड जहां वे जीए, "विहार" कहलाने लगा। लेकिन विहार शब्द को समझना। विहार का मतलब है--विहार बड़े सुख की, महासुख की दशा है--जब चित्त बिल्कुल स्थिर हो जाता है, जब कोई चीज डांवांडोल नहीं करती, कोई विकल्प मन में नहीं रह जाते और चित्त निर्विकल्प होता है; जब तुम्हारी दिशा सत्य की तरफ सीधी और साफ हो जाती है, जब तुम रोज-रोज रास्ते नहीं बदलते, जब तुम्हारा प्रवाह संयत हो जाता है, तब तुम्हारे जीवन में एक महासुख का आविर्भाव होता है, वैसे महासुखी का जहां- जहां विचरण होता है, वह भूमिखंड भी सुख से भर जाता है; वह भूमिखंड भी, हवा के कण भी, वृक्ष-पहाड़-पर्वत भी, नदी-नाले भी उसकी आंतरिक-आभा को झलकाने लगते हैं।
कथाएं हैं बड़ी प्यारी कि महावीर जहां से निकल जाते, कुम्हलाये वृक्ष हरे हो जाते। महावीर जहां से निकल जाते, असमय में वृक्षों में फूल लग जाते। ऐसा हुआ होगा, ऐसा मैं नहीं कहता हूं। ऐसा होना चिहए, ऐसा जरूर कहता हूं। जिन्होंने ये कहानियां गढ़ी हैं, उन्होंने बड़े गहरे काव्य को अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने जीवन के सत्य को बड़ी गहरी भाषा दी है। मानता नहीं कि वृक्षों ने ऐसा किया होगा--आदमी नहीं करते, वृक्षों की तो बात क्या; आदमी नहीं खिलते, तो वृक्षों की तो बात क्या है--लेकिन ऐसा होना चाहिए। लेकिन अगर वृक्षों में फूल न खिले हों तो जिन्होंने कहानी लिखी उनका कोई दोष नहीं, वृक्षों की भूल रही होगी। वे चूक गये। इसमें कवि क्या करे! कवि ने तो बात ठीक-ठीक कह दी, ऐसा होना चाहिए था। नहीं हुआ, वृक्ष नासमझ रहे होंगे। अगर असमय फूल न खिले, तो चूक फूलों की है; उसमें महावीर क्या करें? महावीर ने स्थिति तो पैदा कर दी थी। वृक्षों में थोड़ी भी समझ होती तो फूल खिलने चाहिए थे। वातावरण मौजूद था--और मौसम क्या चाहिए, महावीर मौजूद थे! अब किसकी और प्रतीक्षा थी? और किस वसंत की अब अभीप्सा है? वसंत मौजूद था। इससे बड़ा वसंत कभी पृथ्वी पर आया है? खिले हों तो ठीक, न खिले हों, फूलों की गलती; महावीर का कोई कसूर नहीं है।
तुममें से भी बहुत महावीर के पास से गुजरे होंगे, क्योंकि नया तो यहां कोई भी नहीं है। सभी बड़े पुराने यात्री हैं। जराजीर्ण! सदियों-सदियों चले हैं। तुममें से भी कुछ जरूर महावीर के पास गुजरे होंगे। नहीं महावीर, तो मुहम्मद के पास गुजरे होंगे। नहीं मुहम्मद, तो कृष्ण के पास गुजरे होंगे। ऐसा तो असंभव है इस विराऽऽऽट और अनंत की यात्रा में तुम्हें कभी कोई महावीर-जैसा पुरुष न मिला हो। अगर तुम्हारे फूल न खिले, तो कसूर तुम्हारा है। मौसम तो आया था, द्वार पर खड़ा था, वसंत ने तो दस्तक दी थी, तुम सोये पड़े रहे। तालमेल बैठ जाए, फूल खिल जाते हैं।
मेरे पास कुछ लोग आते हैं, वे कहते हैं हमें भरोसा नहीं आता कि दूसरे लोग आपके पास आकर इतने आनंदित क्यों हैं! जिसका तालमेल बैठ जाता है, उसके फूल खिल जाते हैं। जिसका तालमेल नहीं बैठता, वह तर्क की उधेड़बुन में ही लगा रह जाता है। वह सोच-विचार में लगा रहता है, क्या ठीक, क्या गलत? उसका तर्क वसंत से मेल नहीं खाने देता। ऋतु आ जाती है, वृक्ष उदास ही खड़ा रहता है, वह सोचता ही रहता है यह वसंत है या नहीं? और आए वसंत को जाने में देर कितनी लगती है! वसंत आ गया। वसंत आ, गया! इतनी देर। चूके तर्क में, संदेह में कि जो था, नहीं हो जाता है।
"जैसे-जैसे मुनि अतिशय रस के अतिरेक से युक्त होकर अपूर्वश्रुत का अवगाहन करता है, वैसे-वैसे नितनूतन वैराग्ययुक्त श्रद्धा से आह्लादित होता है।"
वेद कहते हैं--"रसो वै सः।" वह परमात्मा रसरूप है। महावीर की भाषा में परमात्मा के लिए कोई जगह नहीं, लेकिन रस से थोड़े ही बच सकोगे? परमात्मा छोड़ दो, रस को थोड़े ही छोड़ सकोगे? वेद कहते हैं परमात्मा रसरूप है, महावीर

कहते हैं रसरूप हो जाना परमात्मरूप हो जाना है। यह सिर्फ भाषा का ही फर्क है।
"जैसे-जैसे मुनि अतिशय रस के अतिरेक से।" नारद भी अब और क्या करेंगे!
यह भाषा का ही थोड़ा-सा भेद है। महावीर कहते हैं, जैसे-जैसे मुनि अतिशय रस के अतिरेक से, ऐसे रस की वर्षा होती है। स्थिरचित्त होते ही द्वार खुल जाता है। बाढ़ आ जाती है। कूल-किनारे तोड़कर बहती है चेतना की धारा। "अतिशय रस के अतिरेक से।" अतिरेक हो जाता है। अतिशयोक्ति हो जाती है। तुम्हारा पात्र संभाल नहीं पाता। बहने लगता है। देना ही पड़ता है, बांटना ही पड़ता है। किसी को साझेदार बनाना ही पड़ता है। जब तक नहीं मिला तब तक अकेले रह जाओ, मिलते ही ढूंढ़ना पड़ेगा किसी को, किसी सुपात्र को जो लेने को तैयार हो। महावीर बारह वर्ष तक मौन खड़े रहे, जंगलों में, पर्वतों में, पहाड़ों में। जब अतिशय रस का अतिरेक हुआ, भागे आए। भाग गये थे जिस बस्ती से, उसी में वापिस लौट आए; ढूंढ़ने लगे लोगों को, पुकारने लगे, बांटने लगे। अब घटा था अब इसे रखना कैसे संभव है! जैसे एक घड़ी आती है, नौ महीने के बाद, मां का गर्भ परिपक्व हो जाता है। फिर तो बच्चा पैदा होगा। फिर तो उसे नहीं गर्भ में रखा जा सकता। अब तक संभाला, अब तो नहीं संभाला जा सकता। उसे बांटना होगा। शास्त्रों ने बहुत कुछ बात बहुत तरह से महावीर, बुद्ध और ऐसे पुरुषों
का संसार का त्याग करके पहाड़ों और वनों में चले जाना, इसकी कथा कही है। लेकिन वह कथा अधूरी है। दूसरा हिस्सा, जो ज्यादा महत्वपूर्ण है, उन्होंने छोड़ ही दिया। दूसरा हिस्सा जो ज्यादा महत्वपूर्ण है, वह है उनका वापिस लौट आना लोक-मानस के बीच। एक दिन जरूर वे जंगल चले गये थे। तब उनके पास कुछ भी न था। जब गये थे तब खाली थे। खाली थे, इसीलिए गये थे, ताकि भर सकें। इस भीड़-भाड़ में, इस उपद्रव में, इस विषाद में, इस कलह में शायद परमात्मा से मिलना न हो सके। तो गये थे एकांत में, गये थे मौन में, शांति में, ताकि चित्त थिर हो जाए, पात्रता निर्मित हो जाए। लेकिन भरते ही भागे वापिस।
वह दूसरा हिस्सा ज्यादा महत्वपूर्ण है, क्योंकि दूसरे हिस्से में ही
वह असली में महावीर हुए हैं। पहले हिस्से में वर्द्धमान की तरह गये थे। जब लौटे तो महावीर की तरह लौटे। जब बुद्ध गये थे तो गौतम सिद्धार्थ की तरह गये थे। जब आए तो बुद्ध की तरह आए। यह कोई और ही आया। यह कुछ नया ही आया। "जैसे-जैसे मुनि अतिशय रस के अतिरेक से युक्त अपूर्वश्रुत का अवगाहन करता है... ।" और जिसे कभी नहीं सुना उसे सुनता है। सत्य ऐसा है जिसे कभी नहीं सुना, जिसे कभी नहीं देखा। ऐसा अनजान, ऐसा अपरिचित, ऐसा अज्ञेय है। "उस अपूर्वश्रुत का अवगाहन करता है... ।" जब चित्त थिर होता है, तो शांति भी बोलने लगती है। तो मौन भी मुखर हो जाता है। जब भीतर सब शून्य होता है, तो बाहर से शून्य भी तरंगित होकर भीतर प्रवेश करने लगता है। जब तुम ध्यान की आखिरी अवस्था में आते हो, तो अस्तित्व तुमसे बोलता है। परमात्मा तुमसे बोलता है। ध्यान की परम अवस्था में परमात्मा की तरफ से, अस्तित्व की तरफ से तुम्हारी तरफ संदेश आने शुरू हो जाते हैं।
इसको ख्याल में लेना।
प्रार्थना में भक्त भगवान को पातियां भेजता है। ध्यान में, भगवान भक्त को। प्रार्थना में भक्त भगवान से बोलता है, कहता है कुछ; ध्यान में भगवान साधक से बोलता है, कहता है कुछ। महावीर का मार्ग ध्यान का मार्ग है। "जह जह सुयभोगाहइ।" और जैसे-जैसे उस परम सुख में डूबना होता है, जैसे- जैसे उस अतिशय रस में उतरना होता है... "अइसयरसपसरसंजुयमपुव्वं।" और जैसे- जैसे अपूर्वश्रुत का अवगाहन होता है। जैसे-जैसे सुनायी पड़ता है शून्य का स्वर, जिसको झेन फकीर कहते हैं "साउंडलेस साउंड"--शून्य का स्वर, एक हाथ की ताली, कोई बोलता नहीं है, कोई बोलनेवाला नहीं है, अस्तित्व ही संदेश देता है। जब परमात्मा चारों तरफ से तरंगायित होने लगता है--अपूर्वश्रुत का अवगाहन--"वैसे-वैसे नितनूतन वैराग्ययुक्त श्रद्धा से आह्लादित होता है"। इसे लक्षण समझना साधु का। इसे लक्षण समझना संन्यासी का। अगर आह्लाद न हो, तो समझ लेना कि कहीं भूल हो गयी। अगर नाचता न मिले संन्यासी, तो समझ लेना कहीं भूल हो गयी। अब जाओ जैन-आश्रमों में, जैन-मंदिरों में, जैन-पूजागृहों में, जैन-मुनियों को देखो, इस सूत्र का कहीं भी तुम्हें कोई

लक्षण मिलेगा? रूखे-सूखे, मरुस्थल-जैसे, जहां कभी कोई हरियाली नहीं। कहीं कुछ भूल-चूक हो गयी। रूखे-सूखेपन को उन्होंने साधना समझ लिया है। उनसे तो संसारी भी कभी ज्यादा आनंदित दिखायी पड़ता है। यह तो इलाज बीमारी से महंगा पड़ गया। यह तो औषधि रोग से भी भयंकर सिद्ध हुई।
संसारी भी कभी हंसता मिलता है, तुमने जैन-मुनियों को हंसते देखा? न हंस सकेंगे। हंसना उन्हें कठिन हो जाएगा। हंसना उन्हें सांसारिक मालूम पड़ेगा। तुमने उन्हें आह्लादित देखा? तुमने उन्हें देखा किसी गहन संगीत से भरे हुए? तुमने उन्हें बांसुरी बजाते, वीणा बजाते देखा? तुमने उन्हें नाचते देखा? नहीं, असंभव है। कहीं कुछ भूल हो गयी। और भूल वहां हो गयी-- प्रथम चरण पर--उन्होंने प्रतिज्ञा लेकर संन्यास लिया। सत्य को जानकर नहीं, शास्त्र को मानकर संन्यास लिया। अनुभव से नहीं, विश्वास से संन्यास लिया। व्रत, अनुशासन थोपा। अपने ऊपर बलात्कार किया। उसी में सूख गये, खराब हो गये।
"जैसे-जैसे मुनि अतिशय रस के अतिरेक से युक्त होता है, अपूर्वश्रुत का अवगाहन करता है, वैसे-वैसे नितनूतन वैराग्ययुक्त श्रद्धा से आह्लादित होता है।"
न, अब यहां एक बात ख्याल ले लेने जैसी है। तुमने रागयुक्त लोगों को तो प्रसन्न देखा। इससे तुम यह भूल मत कर लेना कि वैराग्ययुक्त लोग तो कैसे प्रसन्न हो सकते हैं! वैराग्य की अपनी प्रसन्नता है। और राग की प्रसन्नता से बड़ी ऊंची और बड़ी गहरी। राग की भी कोई प्रसन्नता हो सकती है! सिर्फ मन को समझा लेना है। वैराग्य का भी आनंद है। तुमने क्या किया? राग से भरा हुआ आदमी थोड़ा प्रफुल्लित दिखायी पड़ता है, तो तुमने उससे विपरीत वैराग्य की प्रतिमा बना ली। क्योंकि रागी हंसता है, रागी गीत गाता है, तो वैरागी हंस नहीं सकता, गीत नहीं गा सकता। तुम्हारा वैरागी राग का ही शीर्षासन है। उल्टा खड़ा कर दिया वैरागी को। लेकिन वास्तविक वैराग्य परम राग है। वास्तविक वैराग्य का तो कैसे रागी मुकाबला करेंगे! उस नृत्य को तो कैसे रागी पहुंच सकते हैं! उस आह्लाद को तो, कमल के उन फूलों को तो तभी कोई छू सकता है जब चित्त सब भांति निर्मल हुआ हो। वैसी मुस्कुराहट तो केवल परम शांत चित्त से ही उठ सकती है।
हो गयी तश्ना-लबो आज रहीने-कौसर
मेरे लब पे लबे-लालीने निगार आ ही गया
तृष्णा स्वर्ग की अमृत-नदी से कृतज्ञ हो गयी, प्रिय के ओंठ मेरे ओंठों
पर आ गये--
हो गयी तश्ना-लबो आज रहीने-कौसर
मेरे लब पे लबे-लालीने निगार आ ही गया
वह तो ऐसा है जैसे परमात्मा ने आलिंगन किया। परम वैराग्य का आह्लाद
तो ऐसे है जैसे परमात्मा के ओंठ तुम्हारे ओंठ पर आ गये। रागी तो असंभव चेष्टा में लगा है। रागी तो ऐसी चेष्टा में लगा है, जैसे कोई रेत से तेल निचोड़ रहा हो। रागी तो ऐसी चेष्टा में लगा है कि नीम के पौधों को सींच रहा हो और आम की आशा कर रहा हो।
आग को किसने गुलिस्तां न बनाना चाहा
जल बुझे कितने खलील आग गुलिस्तां न बनी
रागी तो आग को फुलवाड़ी बनाने में लगा है। अंगारों को फूल बनाने में लगा है।
आग को किसने गुलिस्तां न बनाना चाहा
जल बुझे कितने खलील आग गुलिस्तां न बनी
कभी आग फुलवाड़ी बनी है? कभी अंगारे फूल बने? साधारण आदमियों से लेकर सिकंदरों तक चेष्टा करते हैं और हार जाते हैं। पराजय संसार का निचोड़ है। इसीलिए तो हमने महावीर को जिन कहा। जिन अर्थात जिसने जीत लिया। जिन अर्थात जिसने पा लिया। जिन अर्थात जो वस्तुतः सफल हुआ। सफल ही नहीं सुफल भी हुआ। जिसके जीवन में फल लगे।
"जैसे-जैसे अश्रुतपूर्व का अवगाहन करता है, वैसे-वैसे नितनूतन... ।" और वैराग्य भी नितनूतन फूल खिलाता है। तुम यह मत सोचना कि वैराग्य एक बंधी-

बंधायी रूढ़ि है। तुम यह मत सोचना कि विरागी बस उसी-उसी ढांचे में बंधा हुआ रोज जीता है। वस्तुतः रागी जीता है ढांचे में, वैरागी तो प्रतिपल नये, और नये में प्रवेश करता है। विरागी का न तो कोई अतीत है--वह अतीत को नहीं ढोता--और न उसकी कोई अतीत को पुनरुक्त करने की आकांक्षा है। इसलिए कुछ भी पुनरुक्त नहीं होता। वैरागी की सुबह हर रोज नयी है। वैरागी की सांझ हर सांझ नयी है। वैरागी का हर चांद नया है, हर सूरज नया है। वह धूल को संभालता ही नहीं, इसलिए प्रतिपल ताजा है, निर्मल है।
है कुफ्रोशर तबियत में मेरी टूटे हुए साजों का मातम
मुतरिबे-फर्दा हूं "सागर" माजी के अजादारों में नहीं
है कुफ्रोशर तबियत में मेरी टूटे हुए साजों का मातम--जो टूट चुके साज, अतीत जो बीत चुका, उसे तो मैं पाप समझता हूं। उसकी बात ही उठानी व्यर्थ है।
जो जा चुका, जा चुका।
है कुफ्रोशर तबियत में मेरी टूटे हुए साजों का मातम
मुतरिबे-फर्दा हूं सागर--मैं भविष्य का गायक हूं।
माजी के अजादारों में नहीं--मैं अतीत के लिए रोनेवालों में नहीं।
विरागी, वीतरागी, स्वयं में थिर हुआ संन्यासी कोई धूल लेकर नहीं चलता। वह कोई संग्रह लेकर नहीं चलता। जो बीत गया, बीत गया। जो बीत रहा है, बीत रहा है। वह सदा नया है। सुबह की ओस की भांति ताजा। सदा स्वच्छ है।
क्योंकि मन का संग्रह ही अस्वच्छ करता है, अपवित्र करता है, बासा करता है। तुमने कभी ख्याल किया, जो तुम अनुभव कर चुके बार-बार, वे बासे हो जाते हैं। छोटे बच्चे को देखा, तितलियों के पीछे भागते! तुम नहीं भाग सकोगे। क्योंकि तुम कहते हो तितलियां हैं, देख लीं बहुत। छोटे बच्चे को देखा, छोटी-छोटी चीजों से चमत्कृत होते हैं! छोटी-छोटी चीजें उसे आश्चर्य से भर जाती हैं। घास का फूल, और छोटे बच्चे को ऐसा आंदोलित कर देता है, ऐसा रस-विभोर कर देता है कि वह खड़ा है और देख रहा है, आंखों पर उसे भरोसा नहीं आता कि ऐसा चमत्कार हो सकता है! छोटे बच्चे को देखा, सागर के किनारे कंकड़-पत्थर-सीपी बीन लेता है, ऐसे जैसे कि हीरे-जवाहरात हों, कोहिनूर हों! क्या मामला है? इस छोटे बच्चे के पास ताजा मन है। इसके पास कुछ अतीत का संस्मरण नहीं है। इसलिए ये यह नहीं कह सकता कि यह पुराना है। इसके पास तौलने का कोई उपाय ही नहीं है कि कह सके पुराना है।
वैराग्य नया जन्म है। फिर से छोटे बच्चे की भांति हो जाना है। जीसस ने कहा है, जो छोटे बच्चों की भांति होंगे, वे ही केवल मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश कर सकेंगे। हिंदू कहते हैं द्विज होना होगा, दुबारा जन्म लेना होगा। एक जन्म तो मां-बाप से मिलता है। वह जन्म शरीर का है। एक जन्म तुम्हें स्वयं ही अपने को देना होगा। वह आत्मसृजन है। वही आत्मसाधना है। तब फिर व्यक्ति सदा ताजा रहता है। रोज-रोज आह्लाद से भरा हुआ।
ऐसी कथा है, रामकृष्ण को छोटी-छोटी चीजों में रस था। कभी-कभी उनके भक्त भी उनको रोकते थे कि परमहंसदेव, अच्छा नहीं मालूम होता, लोग क्या कहेंगे? उनकी पत्नी भी उन्हें समझाती कि ऐसा आप न करें। ब्रह्मज्ञान की चर्चा चल रही हो, बीच में उठकर वे चौके में पहुंच जाते--क्या बना है आज? अब यह बात जमती नहीं। दूसरों तक को संकोच होता। शिष्यों को लगता कि लोग क्या कहेंगे? फिर आकर ब्रह्म-चर्चा शुरू कर देते। लेकिन बड़ी सरलता की खबर मिलती है। जैसे उपनिषदों के वचन "अन्नं ब्रह्म" पर टीका कर रहे हों--जीवन से। ब्रह्म की चर्चा और अन्न की चर्चा में कुछ भेद नहीं। बीच में उठकर पूछ आए तो हर्ज क्या! छोटे बच्चे-जैसी सरलता। छोटा बच्चा बार-बार पहुंच जाता है चौके के पास, पकड़ लेता है मां का आंचल, क्या बन रहा है?
सरल-चित्त हो जाता है विरागी। ऐसा सरल कि रीति-नियम, व्यवस्था, अनुशासन, सब व्यर्थ हो जाते हैं। आंतरिक सहजता से जीता है।
न अहदे-माजी की यह रवायत
न आज और कल की यह हिकायत
हयात है हर कदम पे "सागर"
नयी हकीकत नया फसाना

जीवन उसके लिए प्रतिपल नया है। नयी हकीकत नया फसाना। वीतरागी तो गायक
है जीवन के नये स्वर का, संगीतज्ञ है जीवन की वीणा का, नर्तक है जीवन के महानृत्य का। और प्रतिपल उमंग है, और प्रतिपल नया है।
"तह तह पल्हाइ मुणी।" बड़ा प्यारा वचन है। महावीर कहते हैं--"जह जह सुयभोगाहइ"--जैसे-जैसे वह महासुख भरने लगता है, रस बरसता है, "तह तह पल्हाइ मुणी"--और पल्लवित होता मुनि, आह्लादित होता; उमंग उठती है, उल्लास उठता है, भीतर नृत्य-गान उठता है। जैसे आषाढ़ में जब बादल घिर जाते हैं और मोर नाचते हैं, ऐसे ही आंतरिक-जीवन में जब प्रकाश के बादल चारों ओर घिरने लगते हैं--आषाढ़ के प्रथम दिवस आते हैं--तो मन का मोर नाचता है। जह जह सुयभोगाहइ, तह तह पल्हाइ मुणी, नवनवसेवेगसद्धाओ। और प्रतिपल नये-नये पल्लव खिलते, नये-नये फूल, नयी-नयी श्रद्धा। नितनूतन!
लोग समझते हैं श्रद्धा कोई बंधा-बंधाया ढांचा है। लोग सोचते हैं कि श्रद्धा कोई हिंदू, जैन, बौद्ध, ईसाई हो जाना है। श्रद्धा में इतने नूतन फूल लगते हैं कि वह जैन ढांचे में समा न सकेगी। न बौद्ध ढांचे में समा सकेगी। न हिंदू, न मुसलमान के ढांचे में समा सकेगी। श्रद्धा को कौन समा पाया? यह बड़ा आकाश भी श्रद्धा के आकाश से छोटा है। श्रद्धा को कौन कब बांध पाया? कौन लकीरों में बांध पाया? श्रद्धा की कौन कब परिभाषा कर पाया?
और महावीर को समझते समय यह ख्याल रखना, और धर्मों ने कहा है, परमात्मा
पर श्रद्धा करो, श्रद्धा के बिना तुम परमात्मा पर न पहुंच सकोगे; महावीर ने कहा, परमात्मा की तो फिकिर छोड़ो--हो, न हो--श्रद्धा करो, क्योंकि श्रद्धा ही परमात्मा है। औरों ने कहा है परमात्मा पर श्रद्धा करो, महावीर ने कहा श्रद्धा पर श्रद्धा करो। नवनवसेवेगसद्धाओ।
मेरी मस्ती में अब होश ही का तौर है साकी
तेरे सागर में ये सहबा नहीं कुछ और है साकी
मेरी मस्ती में अब होश का ही तौर है साकी--अब मेरी मस्ती में भी होश का
ही रंग-ढंग है। अब यह बेहोशी भी बेहोशी नहीं है, अब इसमें होश का ही दीया जलता है। अब यह मस्ती कोई पागलपन नहीं है, यह मस्ती ही परम बुद्धिमत्ता, प्रज्ञा, प्रतिभा है।
मेरी मस्ती में अब होश का ही तौर है साकी
तेरे सागर में ये सहबा नहीं कुछ और है साकी
और तेरे सागर में शराब नहीं, अंगूरी शराब नहीं।
कुछ और है साकी... ।
जब तुम्हारा ध्यान नयी-नयी सीढ़ियां और सोपान पार करता है, तो तुम एक दिन पाते हो कि परमात्मा ने अपनी सुराही से उंडेला कुछ तुममें।
तेरे सागर में ये सहबा नहीं कुछ और है साकी
और यह शराब कुछ ऐसी है, यह मस्ती कुछ ऐसी है कि जगाती है, सुलाती नहीं।
उठाती है, गिराती नहीं। संभालती है, डगमगाती नहीं। होश लाती है, बेहोशी काटती है। "तह तह पल्हाइ मुणी"। और जैसे-जैसे यह अंगूरी शराब, यह अमृत भीतर उतरना शुरू होता है, मुनि पल्लवित होता, प्रफुल्लित होता, आह्लादित होता। "नवनवसेवेगसद्धाओ"।
"जैसे धागा पिरोयी सुई गिर जाने पर भी खोती नहीं... ।" बड़ा प्यारा सूत्र है... "जैसे धागा पिरोयी सुई गिर जाने पर भी खोती नहीं, वैसे ही ससूत्र जीव संसार में नष्ट नहीं होता।"
सूई जहा ससुत्ता, न नस्सइ कयवरम्मि पडिआ वि।
जीवो वि तह ससुत्तो, न नस्सइ गओ वि संसारे।।
सुई गिर जाए बिना धागा पिरोयी, तो खोजना बड़ा मुश्किल हो जाता है। ऐसे
ही हमारा जीवन धागा पिरोया नहीं अभी। ध्यान का धागा अनुस्यूत नहीं किया अभी। अभी हमारा जीवन एक बिखरी राशि है। जैसे फूल किसी ने लगा दिये ढेर में। अभी हमारा जीवन एक माला नहीं बना कि फूलों को कोई पिरो दे एक धागे में। जब जीवन माला बनता है, तो ही जीवन में अर्थवत्ता आती है। ढेर की तरह हम क्षण-क्षण जीते हैं, लेकिन हमारे सारे क्षणों को जोड़नेवाला कोई अनुस्यूत धागा नहीं है। हमने अनंत जन्म जीए हैं, लेकिन सब ढेर की तरह लगा

है, उसके भीतर कोई शृंखला नहीं है। शृंखला न होने से हमारी सरिता सागर तक नहीं पहुंच पाती।
तुम ही हो वह जिसकी खातिर
निशिदिन घूम रही यह तकली
तुम ही यदि न मिले तो है सब
व्यर्थ कताई असली-नकली
अब तो और न देर लगाओ,
चाहे किसी रूप में आओ,
एक सूत भर की दूरी है
बस दामन में और कफन में
ध्यान का सूत्र, और जीवन महाजीवन बन जाता है। और मृत्यु समाधि बन जाती है। ध्यान का सूत्र, और पदार्थ में परमात्मा झलकने लगता है। ध्यान का सूत्र, और जीवन का क्षुद्र से क्षुद्र अंग भी विराट से विराट की आभा से परिप्लावित हो जाता है। ध्यान से जीया गया जीवन ही जीवन है। शेष भटकाव है। शेष ऐसी यात्रा है कि तुम्हें पता नहीं क्यों जा रहे, कहां जा रहे, किसलिए जा रहे? कौन हो, यह भी पता नहीं।
"जैसे धागा पिरोयी सुई गिर जाने पर भी खोती नहीं, वैसे ही ससूत्र जीव संसार में नष्ट नहीं होता है।" यहां स्मरण दिला दूं, जैन-शास्त्रकार जब इस सूत्र का अनुवाद करते हैं, तो वह ससूत्र का अर्थ करते हैं-- शास्त्रज्ञानयुक्त जीव, जो कि बिल्कुल ही गलत है। मौलिक रूप से गलत है। महावीर के मूल वचन में कहीं भी शास्त्र का उल्लेख नहीं है। "सूई जहा ससुत्ता"--सुई जहां धागे के साथ है--ससुत्ता--सूत्र के साथ है, "न नस्सइ कयवरम्मि पडिआ वि", गिर भी जाए तो खोती नहीं। "जीवो वि तह ससुत्तो"--और जो जीव भी सूत्र के साथ जुड़ा है, "न नस्सइ गओ वि संसारे"--वह संसार में कभी नष्ट नहीं होता। मौत आए, हजार बार आए, ससूत्र जीव को जीवन ही लाती है। मृत्यु भी उसे मारती नहीं। ससूत्र जीव को जहर भी अमृत हो जाता है। इसमें शास्त्रयुक्तज्ञान का कहीं कोई उल्लेख नहीं है।
लेकिन जैन-मुनि इसका अनुवाद करते हैं--"जैसे धागा पिरोयी सुई गिर जाने पर भी खोती नहीं, वैसे ही शास्त्रज्ञानयुक्त जीव संसार में नष्ट नहीं होता है।" अब उन्होंने कुछ अपने हिसाब से डाल लिया! शास्त्रज्ञान की तरफ इशारा नहीं है, अन्यथा महावीर खुद ही कह देते; मुनियों के लिए न छोड़ते। ससूत्रता। एक क्रमबद्धता, एक शृंखला बने जीवन, ऐसा बिखरा-बिखरा न हो। तुम अपने जीवन को देखो, एक पैर बायें जा रहा है, दूसरा पैर दायें जा रहा है। आधा मन मंदिर जा रहा है, आधा वेश्यालय में बैठा है। दुकान पर बैठे हैं, राम-राम जप रहे हैं; जब राम-राम जप रहे हैं, दुकान भीतर चल रही है। ऐसे सूत्रहीन नहीं काम चलेगा। जीवन में एक दिशा हो, एक गंतव्य हो, एक खोज, एक अन्वेषण हो। और जीवन में एक शृंखला हो, अन्यथा शक्ति कम है, खोजना बहुत है; समय कम है, खोजना बहुत है; ऐसे तुम भटकते रहे कभी बायें, कभी दायें; कभी यहां, कभी वहां, तो सब खो जाएगा।
यह अवसर खो मत देना। यह अवसर मुश्किल से मिलता है। महावीर ने बार-बार कहा है, मनुष्य होना मुश्किल से घटता है। इसे ऐसे मत गंवा देना। एक सूत्रबद्धता लाओ जीवन में। एक दिशा-बोध।
जैसे-जैसे दिशा आएगी, वैसे-वैसे तुम पाओगे कठिनाइयों में भी आशीर्वाद बरसने लगे। दुख में भी सुख की झलक मिलने लगी। तूफान में भी सकून, शांति आने लगी।
लुत्फ आने लगा जफाओं में
वो कहीं मेहरबां न हो जाएं
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग दो
दूसरा प्रवचन

यात्रा का प्रारंभ अपने ही घर से

पहला प्रश्नः हम संन्यास लेते हैं और साधना करते हैं, हम संन्यास नहीं लेते और साधना करते हैं--दोनों हालत में आपके मार्ग का अनुसरण करते हैं। कृपया बताएं कि संन्यास से जीवन में विशेष फर्क क्या आता है?

संन्यास लिये बिना फर्क को जानने का कोई उपाय नहीं। संन्यास स्वाद है। संन्यास है स्वाद मेरे निकट आने का। संन्यास साहस है समर्पण का। साधना तुम करते हो; लेकिन संन्यासी अकेला नहीं है, तुम अकेले हो। तुम
भी साधना करते हो, संन्यासी भी साधना करता है। संन्यासी मेरे साथ है, तुम मेरे साथ नहीं।
मैं तो दोनों के साथ हूं! लेकिन तुम साधना करते हो अपने हिसाब से। सुनते हो मुझे, पर चुनते तुम्हीं हो। संन्यासी चुनता भी नहीं। वह एक बार मुझे चुन लेता है। उसने छोड़ दिया चुनाव। उसने कहा, बहुत हो गया!
मैं तो दोनों के साथ हूं, लेकिन संन्यासी मेरे साथ हो जाता है। और इससे बड़ा क्रांतिकारी फर्क पड़ता है। पर वैसा फर्क जानोगे तो ही जानोगे। एक बड़ी प्रसिद्ध ईसाई महिला हुई--थैरेसा। गरीब भिखारिन थी। और एक दिन उसने अपने गांव में घोषणा की कि मैं जीसस के लिए एक बड़ा चर्च, एक बड़ा मंदिर बनाना चाहती हूं। लोग हंसे। लोगों ने पूछा, तेरे पास संपत्ति कितनी है! तो उसने दो पैसे निकालकर अपनी जेब से बताए कि मेरे पास दो पैसे हैं। लोग और भी हंसे। उन्होंने कहा तू पागल हो गयी है। दो पैसों में कहीं चर्च बना है? उसने कहा वह तो मुझे भी मालूम है। लेकिन मैं अकेली नहीं हूं; परमात्मा भी मेरे साथ है। दो पैसे और थैरेसा तो ना-कुछ है; लेकिन दो पैसे धन परमात्मा बहुत कुछ है। और क्या चाहिए!
जिस जगह उसने खड़े होकर यह बात कही थी, आज दुनिया का सबसे सुंदर चर्च है। बना--किसी गहरे समर्पण से बना; संपत्ति से नहीं बना। यह बात कि थैरेसा अकेली नहीं है। दो पैसे हैं थैरेसा के पास, लेकिन परमात्मा भी है।
तुम जब साधना कर रहे हो मेरी बात सुनकर, तो तुम चुनाव कर रहे हो--जो तुम्हें लगता है ठीक--वह तुम करते हो; जो तुम्हें ठीक नहीं लगता वह तुम नहीं करते हो। तो तुम्हारा ख्याल है कि तुम मेरी मानकर चल रहे हो, तुम अपनी ही मानकर चल रहे हो।
संन्यासी का अर्थ हैः उसने कहा, अब हम अपनी न मानेंगे, आपकी मानेंगे।
अब हम चुनना छोड़ते हैं। अब हम राजी हैं जहां ले चलो। संन्यासी का अर्थ हैः प्रेम का अंधापन। संन्यासी ने कहा कि अब तुम्हारी आंख काफी है, हमारी आंख की कोई जरूरत नहीं। पर यह तुम न जान सकोगे। जैसे कोई आदमी पूछे कि प्रेमी और गैर-प्रेमी में फर्क क्या है? जिसने स्वाद लिया है उसमें, और जिसने स्वाद नहीं लिया है, फर्क क्या है? स्वाद के बिना जानने का कोई उपाय नहीं है। इसे ख्याल में ले लेना।
मैं तो साथ हूं, लेकिन तुम जिस दिन मेरे साथ हो जाओगे उस दिन जीवन में
एक क्रांति घटनी शुरू होगी, जिसकी तुम अभी कल्पना भी नहीं कर सकते। तब तुमने एक सहारा लिया। तब तुमने कोई हाथ पकड़े। तब तुम्हारे जीवन में एक भरोसा आया।
मैं एक बड़े वैज्ञानिक की जीवन-कथा पढ़ता था। वनस्पतिशास्त्री हुआ बड़ा। वह एक पहाड़ की कंदरा में खिलनेवाले फूलों का अध्ययन करना चाहता था, लेकिन उन फूलों तक पहुंचने का कोई उपाय न था। वह बड़ी गहरी खाई-खड्ड में थे। वैसे फूल कहीं और खिलते भी न थे। कोई उपाय न देखकर उसने अपने छोटे बेटे को रस्सी में बांधा, कमर से रस्सी बांधी और उसे उस खड्ड में लटकाया। और उससे कहा कि तू कुछ फूल उखाड़ लाना। छोटा बेटा लटका। वह बड़ी खुशी से लटका। उसने तो खेल समझा। और जब बाप लटका रहा हो, तो बेटे को क्या फिकिर! वह तो बड़ा आनंदित हुआ। उसने तो नीचे जाकर फूल भी इकट्ठे कर लिये; लेकिन बाप के हाथ-पैर कंप रहे थे। भेजा तो है बेटे को, लेकिन यह खतरनाक काम है। लौटेगा

जिंदा? उसने ऊपर से चिल्लाकर पूछा, कोई तकलीफ तो नहीं है? कोई घबड़ाहट तो तुझे नहीं हो रही है? उसने कहा घबड़ाहट कैसी! जब रस्सी मेरे बाप के हाथ में है, तो घबड़ाहट कैसी?
बाप घबड़ा रहा है, डर रहा है; क्योंकि यात्रा तो जोखिम की है। अब इस बेटे के भीतर जो भरोसा है, वह अगर न हो, तो खतरा हो सकता है। घबड़ाहट ही खतरा पैदा कर देती है।
अब यह बड़े मजे की बात है, बड़ा दुष्ट-चक्र है--घबड़ाहट के कारण तुम संन्यास नहीं लेते। डर--संसार का, समाज का, प्रतिष्ठा का। डर के कारण तुम अकेले-अकेले चलते हो। अकेले के कारण तुम और भी डर की स्थिति पैदा कर रहे हो।
और कुछ जीवन की सूक्ष्मतम घटनाएं हैं, हृदय के कुछ राज और रहस्य, जो भरोसे से ही खुलते हैं, श्रद्धा से खुलते हैं।
तो तुम साधना कर रहे हो--वह बुद्धि से है। जिसने संन्यास लिया, वह हृदय में उतरा; उसने बुद्धि को एक तरफ रखा। उसने कहा अब सुनेंगे हृदय की, अब गुनेंगे प्रेम की। निश्चित ही प्रेम अंधा है; लेकिन प्रेम के अंधेपन में ऐसी आंखें हैं कि सदियों तक बुद्धिमानी में जीओ तो भी उन्हें तुम पा न सकोगे। प्रेमी पागल है।
इसलिए जिन्होंने संन्यास नहीं लिया है, वे सोचते हैं कि संन्यासी पागल है। ठीक ही सोचते हैं। लेकिन यह पागलपन कुछ ऐसा है कि हजार बुद्धिमत्ताएं इस पर निछावर की जा सकती हैं। साधना तो तुम भी कर रहे हो, लेकिन संन्यासी ने कुछ गहन में प्रतिज्ञा जगायी है।
बैठे हैं तेरे दर पे कुछ करके उठेंगे
या वस्ल ही हो जाएगा या मरके उठेंगे
उसने जीवन को दांव पर लगाने की हिम्मत की है। संन्यासी जुआरी है। तुम होशियार हो। तुम दुकानदार हो।
मुझे सुनकर तुमने जो पाया है, वह कुछ भी नहीं है--उसके मुकाबले जो तुम मेरे पास आकर पाओगे। जो तुमने बुद्धि से सुनकर पाया है, वह तो भोजन की मेज से गिर गये टुकड़े हैं। भिखमंगा ही तुमने रहना तय किया है--बात और! संन्यासी मेरा अतिथि है। तुम बाहर-बाहर रहोगे। नहीं कि मैंने निमंत्रण नहीं भेजा था; तुमने निमंत्रण स्वीकार न किया। तुमने हजार बहाने उठाए। तुमने कहा आते हैं, अभी और काम हैं।
जीसस ने एक कहानी कही है कि एक सम्राट की बेटी का विवाह था और उसने एक हजार देश के प्रतिष्ठिततम लोगों को निमंत्रण भेजे। लेकिन किसी ने कहा कि अभी तो फसल कटने का समय है और मैं न आ सकूंगा, क्षमा चाहता हूं। और किसी ने कहा कि अदालत में मुकदमा है और मैं क्षमा चाहता हूं। और किसी ने कुछ और, और किसी ने कुछ और... । जब उसके संदेशवाहक वापिस लौटे हैं तो उन्होंने कहा कि बहुत-से मेहमानों ने बहुत-से बहाने बताए, वे न आ सकेंगे।
तो सम्राट ने कहा, फिर तुम रास्तों पर जाओ और जो भी आने को राजी हो, उसे बुला लाओ। अब निमंत्रण की फिकिर छोड़ो, क्योंकि मेरा राजमहल खाली न रहे। मेरी बेटी का विवाह है। राजमहल में भीड़ हो। जो भी राह पर मिले! अब तुम मेरे निमंत्रण की फिकिर मत करना। जो आने को राजी हो, उसको बुला लाना।
आए मेहमान। भिखमंगे भी आए। गरीब भी आए। अशिक्षित भी आए। जिनको निमंत्रण न भेजा गया था, वे भी आए। और जीसस ने कहा है, यह कहानी घटी हो या न घटी हो, क्योंकि सम्राटों के निमंत्रण में लोग कभी इनकार नहीं करते, लेकिन परमात्मा के निमंत्रण के साथ रोज ही ऐसा होता है।
निमंत्रण तो मैंने तुम्हें भेज दिया है। तुम मेरी शिकायत न कर सकोगे। मैंने तो बुलावा दे दिया है। अब तुमने कोई बहाना निकाल लिया, तुम्हारी मर्जी! यह महल तो खाली न रहेगा। मेहमान तो आएंगे। तुम न आए तो कुछ फर्क न पड़ेगा। तुम्हारी जगह कोई और होगा।
मुझे सुनकर तुमने जो पाया, वह तो भोजन के टेबिल से गिर गये टुकड़े हैं।
उनसे ही तृप्ति मत मान लेना। मेरे पास आकर तुम जो पाओगे... ।
मेरे पास आने का और क्या उपाय है? कंधे से कंधा लगाकर खड़े हो जाओ तो मेरे पास थोड़े ही आ जाओगे। हृदय से हृदय लगाकर खड़े हो जाओ, तो! संन्यासी ने

वही किया है। उसने हिम्मत की है। उसने मेरे साथ होने के लिए जगहंसाई मोल ली है। लोग हंसेंगे। लोग कहेंगे, पागल हुए! लोग कहेंगे, बुद्धि खो दी! कुछ तो सोचो! सम्मोहित हो गये? किस जाल में पड़ गये हो? तुम जैसा बुद्धिमान आदमी और किसी की बातों में आ गया! पर उसने मेरे साथ रहना चुना है, संसार के साथ रहना नहीं चुना। उस चुनाव में ही क्रांति घटती है।
छलकती है जो तेरे जाम से उस मय का क्या कहना
तेरे शादाब ओंठों की मगर कुछ और है साकी
तुम्हें अगर पैमाने से छलकती शराब से ही तृप्ति होती हो, तुम्हारी मर्जी!
छलकती है जो तेरे जाम से उस मय का क्या कहना
खूब है वह शराब भी।
तेरे शादाब ओंठों की मगर कुछ और है साकी
लेकिन अगर ओंठों पर ओंठ रखकर ही पीना हो शराब को, तो संन्यास लिये बिना कोई उपाय नहीं है। और यह तो तुम पास आओगे तो ही जानोगे। यह बात समझाने-समझने की नहीं। यह बात कुछ करने की है।
मेरे किये जो हो सकता है, वह मैं कर रहा हूं। लेकिन तुम भी हाथ बढ़ाओ। मैंने तुम्हारे द्वार पर दस्तक दी है, कम से कम दरवाजा खोलो!
नहीं तो ऐसा न हो कि तुम समझदारी में बैठे ही रह जाओ। यह मधुशाला सदा न खुली रहेगी। कोई मधुशाला सदा नहीं खुली रहती है। द्वार-दरवाजे बंद होने का समय आ जाएगा।
उस महफिले-कैफो-मस्ती में,
उस अंजुमने-इर्फानी में
सब जाम-बकफ बैठे ही रहे,
हम पी भी गये, छलका भी गये
तुम बुद्धिमानों की सभा जैसी सभा मत बना लेना अपनी।
उस अंजुमने-इर्फानी में
--बड़े बुद्धिमानों की सभा थी।
उस महफिले-कैफो-मस्ती में
--मस्ती और आनंद और उल्लास के क्षण में बुद्धिमानों की बड़ी सभा थी।
सब जाम-बकफ बैठे ही रहे
--बुद्धिमान थे, कैसे पीएं! तो अपने जाम सामने रखकर बैठे ही रहे। गैर-बुद्धिमान जो थे--
हम पी भी गये, छलका भी गये!
पी लो और छलका लो! कब तब जाम लिये बैठे रहोगे? किसकी राह देखते हो? कोई कहे? किसकी प्रतीक्षा कर रहे हो? समय बीता जाता है। पल-पल, घड़ी-घड़ी मधुशाला के द्वार बंद होने का समय आया जाता है। फिर मत रोना! अभी अपनी करोगे, फिर मत चीखना-चिल्लाना! क्योंकि बंद दरवाजों के सामने चीखने- चिल्लाने से फिर कुछ भी नहीं होता।
और मैं कहता हूं, ऐसा बहुत-से लोग कर रहे हैं। महावीर को गये पच्चीस सौ साल हो गये, कितने लोग अभी भी उस दरवाजे के सामने चीख रहे, चिल्ला रहे हैं! उन्हीं को जैन कहते हैं। बुद्ध को गये पच्चीस सौ साल हो गये, कितने लोग उस दरवाजे के सामने प्याले लिये खड़े हैं कि खोलो द्वार, हम प्यासे हैं; भरो हमारे प्याले! लेकिन मधुशाला जा चुकी! उन्हीं को तो बौद्ध कहते हैं। ऐसे ईसाई हैं, हिंदू हैं, मुसलमान हैं।
मैं तुम्हें आगाह किये देता। मेरे जाने के बाद तुम संन्यास लोगे। लेकिन तब किसी मतलब का न होगा; फिर थोथा होगा।
महावीर के साथ संन्यासी होने में तो साहस था; महावीर के बाद जैन-मुनि होने में कोई साहस नहीं। जैन-मुनि प्रतिष्ठा है अब। अब तो उसका आदर है।
महावीर के साथ तो अनादर था। जैन-मुनि होना उस समय तो केवल कुछ थोड़े-से हिम्मतवर लोगों की बात थी। इसीलिए तो महावीर को महावीर कहा। उनके साथ जो खड़े हुए, उनके लिए भी हिम्मत की बात थी। सब तरह से प्रतिष्ठा, पद, मान, सम्मान खोना पड़ा।

जीसस के साथ जो चले, उनके लिए तो सूली मिली। अब तो जीसस के पीछे जो चलते हैं, वे सिंहासनों पर विराजमान हैं। पीछे तो बड़ा आसान हो जाता है। मैं एक कहानी पढ़ रहा था। न्यूयार्क के बड़े चर्च में, सबसे बड़े चर्च में, जो कि दुनिया का सबसे ज्यादा संपत्तिशाली चर्च है, प्रधान पुरोहित अपने प्रवचन की तैयारी कर रहा है कि उसके एक शागिर्द ने दौड़कर उससे कहा कि सुनो, क्या कर रहे हो? कौन आया है, पीछे तो देखो! देखा तो खुद जीसस! वेदी के सामने खड़े हैं! प्रधान पुरोहित भी घबड़ाया। ऐसा कभी हुआ न था। जीसस को गये दो हजार साल हो गये। यह कौन सज्जन आ गये हैं! बिल्कुल जीसस-जैसे मालूम पड़ते हैं! बड़ा मुश्किल है, कहें इनसे कुछ कि न कहें! शागिर्द ने पूछा कि क्या करूं, कुछ आज्ञा? तो बड़े पुरोहित ने कहा एक काम कर, कि वह जो दान की पेटी है, उस पर बैठ जा। यह आदमी पता नहीं किस तरह का है, कौन है! लगता जीसस-जैसा है, लेकिन पेटी न ले भागे! दान की पेटी पर बैठ जा और व्यस्त दिखने की कोशिश कर। इसकी तरफ ध्यान मत दे।
अगर जीसस चर्च में आज आ जाएं तो पुरोहित को अपनी प्रतिष्ठा, सम्मान,
धन बचाने की फिकर होगी कि यह आदमी कहां भीतर आ गया!
कृष्ण की तुम बड़ी पूजा करते हो; लेकिन कभी सोचा कि कृष्ण तुम्हारे द्वार पर आ जाएं मोर-मुकुट बांधे, बांसुरी बजाने लगें, तो तुम पुलिस में खबर करोगे! तुम घबड़ा जाओगे!
मरे हुए पैगंबरों की पूजा बड़ी आसान है, क्योंकि उसमें कुछ भी तो लगता नहीं। कुछ भी लगता नहीं। कुछ दांव नहीं। कुछ जोखिम नहीं। लाभ ही लाभ है। जीवित पैगंबर के साथ खड़े होने में हानि ही हानि है, लाभ कहां?
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, अगर हम संन्यास लें तो लाभ क्या होगा? मैं उनसे कहता हूं, कहीं और! तुम कहीं और लेना, यहां तो हानि होगी। यहां तो जो तुम्हारे पास है वह भी खो जाएगा। यहां तो शून्यता मिलेगी, रिक्तता मिलेगी। यहां तो जो है वह खो जाएगा। तुम भी खो जाओगे। मिटना हो तो यहां आना। लाभ की बात, तो कहीं और! कहीं, जहां जीवन खो चुका है। कहीं, जहां केवल लकीरें रह गयी हैं। पिटी हुई लकीरें रह गयी हैं--मुर्दा लकीरें, मुर्दा शास्त्र। वहां कोई जोखिम नहीं है, लाभ ही लाभ है।
लोग तुम्हें गीता पढ़ते देख लें तो लाभ ही लाभ है। लोग सोचते हैं, आदमी भला होगा; भरोसे-योग्य मालूम होता है; धार्मिक है। दुकान पर भी बैठे हो अगर गीता लेकर तो ग्राहक तुमसे ज्यादा मोल-भाव नहीं करेगा।
इसीलिए तो लोग चंदन-तिलक लगाकर बैठते हैं। राम-राम बोलते रहते हैं दुकान पर!
धार्मिक आदमी को दूसरों को लूटने में सुविधा हो जाती है, आसानी हो जाती है। लाभ ही लाभ है! मेरी किताब लेकर तुम बैठोगे तो हानि ही हानि है। किसी ने देख लिया कि अरे, तो तुम भी उलझ गये! तो तुम पर भी भरोसा गया! संन्यास, अभी मेरे साथ संन्यास, दुस्साहस है! लेकिन धन्यभागी हैं वे
जो दुस्साहस कर लेते हैं! क्योंकि जो खोने को राजी नहीं, वह पा न सकेगा। जो सब खोने को राजी है, वही सब पाने का मालिक होता है। जो मिटने को राजी है, परमात्मा उसी को भर देता है, पूरा कर देता है। तुम खाली तो होओ, तुम जगह तो बनाओ--प्रभु आएगा।

दूसरा प्रश्नः कल आपने कहा कि आंख आक्रामक होती है। लेकिन आपकी आंखों में तो मुझे प्रेम का सागर दिखायी देता है और जी करता है कि उन्हें निहारता ही रहूं। कृपया बताएं कि क्या कान की तरह आंख को भी ग्राहक बनाया जा सकता है?

मेरी आंखों में तुम्हें प्रेम का सागर दिखायी पड़ सकता है। क्योंकि मैं तुम्हें नहीं देख रहा हूं, तुम्हारे भीतर जो छिपा है उसे देख रहा हूं। मैं तुम्हें देख ही नहीं रहा हूं। मैं तुम्हारी संभावना को देख रहा हूं। मैं बीज को नहीं देख रहा हूं--मैं उन फूलों को देख रहा हूं जो कभी खिलेंगे, खिल सकते हैं। मैं तुम्हारे आर-पार देख रहा हूं। लेकिन यह देखना तभी संभव है जब कोई स्वयं को देख लिया हो; उसके पहले संभव नहीं है। स्वयं को जानने

के बाद तो सभी चीजें अनाक्रामक हो जाती हैं। स्वयं को जानने के बाद तो हिंसा बच ही नहीं सकती। स्वयं को जाननेवाला तो सब भांति हिंसा से शून्य हो जाता है। लेकिन यह तो स्वयं को जानने के बाद घटेगा। अभी तो तुम्हें चुनाव करना होगा। अभी तो तुम्हें अपने व्यक्तित्व में वे बातें चुननी होंगी जो कम से कम आक्रामक हैं। और एक-एक कदम यात्रा करनी होगी, एक-एक सीढ़ी चढ़नी होगी। आंखें भी अनाक्रामक हो जाती हैं। सारा व्यक्तित्व ही अनाक्रामक हो जाता है। जिस दिन परमात्मा ही दिखायी पड़ने लगता है, आक्रमण करोगे किस पर? यहां तुम इतने बैठे हो, मुझे एक ही दिखायी पड़ रहा है। रूप होंगे अनेक। बहुत शैलियों में परमात्मा आया है। रंग-ढंग अलग हैं। आकृति अलग है। लेकिन है वही। जैसे सोने को किसी ने बहुत-बहुत आभूषणों में ढाला हो। जैसे कुम्हार ने एक ही मिट्टी से बहुत-बहुत ढंग के बर्तन बनाए हों। उस अरूप को देखने की क्षमता लेकिन तभी आती है जब तुमने उसे अपने भीतर पा लिया हो। इसे स्मरण रखो।
तुम वही देख सकते हो दूसरे में, जो तुमने स्वयं में पहले देख लिया हो। तुम दूसरे में वही देखते रहोगे जो तुम स्वयं में देखते हो। अगर तुम क्रोधी हो, तो दूसरे में तुम्हें क्रोध दिखायी पड़ता रहेगा। अगर तुम दुष्ट हो, तो दूसरे में तुम्हें दुष्टता दिखायी पड़ती रहेगी। अगर तुम हिंसक हो, तो सारा संसार तुम्हें हिंसक मालूम पड़ता रहेगा। अगर तुम चोर हो, तो तुम हर एक से डरे रहोगे, क्योंकि तुम्हें हर जगह चोर ही दिखायी पड़ेगा। जगत प्रतिबिंब है तुम्हारा, दर्पण है--तुम्हारी ही छवि बनती है।
जैसे ही तुमने स्वयं को जाना--स्वयं की वास्तविकता में, उसकी परिपूर्णता में--वैसे ही रूप खो जाते हैं, अरूप का सागर चारों तरफ फैल जाता है। फिर कुछ भी आक्रमण नहीं, क्योंकि आक्रमण करे कौन? करे किस पर? कौन मारे? किसे मारे? फिर तो ऐसा है जैसे अपने ही दोनों हाथ। एक हाथ से दूसरे हाथ को मारने का अर्थ क्या है? तब दूसरा भी स्वयं है। तब तुम दूसरे में भी अपने को फैला हुआ पाते हो। तभी प्रेम घटता है, जब दूसरा मिट जाता है। लेकिन दूसरा तभी मिटेगा जब तुम मिट जाओ। इसलिए सारी यात्रा अपने घर से शुरू होती है। सारी पूजा, सारी प्रार्थना, सारी साधना अपने अंतर्तम से शुरू होती है। एक बार भीतर के सौंदर्य की झलक मिल गयी कि तुम जहां आंख खोलोगे वहीं, वहीं तुम उसे विराजमान पाओगे। तुम चकित होओगे, तुम चमत्कृत होओगे कि इतने दिन तक चूकते कैसे रहे! इन्हीं रास्तों से गुजरे, यही वृक्ष थे, यही लोग थे, यही पशु-पक्षी थे, यही कोयल रोज गीत गाती रही, यही आंखें थीं, कल भी इनमें झांका था, लेकिन परमात्मा से चूकते क्यों रहे? जिसकी पहचान अपने भीतर न थी, जिसकी प्रत्यभिज्ञा भीतर न हुई थी, उसे तुम बाहर पहचानते कैसे? बाहर पहचानने की सारी संभावना अंतर्तम में घटती है। पहले वहां। सबसे पहले वहां।
हुस्न ही हुस्न है जिस सिम्त भी उठती है नजर
कितना पुरकैफ ये मंजर, ये समां है साकी
हुस्न ही हुस्न है जिस सिम्त भी उठती है नजर--फिर तो जहां आंख उठती है, सौंदर्य ही सौंदर्य है! इस अस्तित्व में असुंदर तो कुछ हो नहीं सकता। कहीं देखने में भूल हो गयी होगी। इस अस्तित्व में असुंदर के होने का उपाय नहीं है। अस्तित्व सौंदर्य से भरा है, सौंदर्य का सागर है।
कितना पुरकैफ ये मंजर
कितना आनंद से भरा हुआ है सब...
ये समां है साकी।
लेकिन, यह आनंद पहले भीतर स्वाद लेना पड़े। यह आनंद पहले भीतर उठे। यह भीतर से तुम्हारे प्राणों में जगे और तुम्हारी आंखों और कानों और तुम्हारे हाथों में छा जाए। फिर तुम जो छुओगे वही परमात्मा है। अभी तो तुम जो छुओगे वही मिट्टी हो जाता है। सोना छुओ, मिट्टी हो जाता है। क्योंकि अभी सिवाय वासना के कुछ भी भीतर नहीं है। वासना सोने को छुए, मिट्टी हो जाता है। प्रार्थना मिट्टी को छुए, सोना हो जाती है।
तुम्हारे पास आंख चाहिए, दृष्टि चाहिए। तुम्हारे पास भीतर सघन प्रतीति चाहिए। निश्चित ही तब फिर कुछ आक्रमण नहीं रह जाता। इसीलिए तो

कृष्ण गीता में अर्जुन को कह सके, कि तू फिकर मत कर! तू सिर्फ एक उसको याद रख। तू सिर्फ उस एक को अपने भीतर विराजमान देख। तू केवल उस एक को पहचान ले जिसका तू उपकरण मात्र है। जो तुझसे अभिव्यक्त हुआ है, बस तू उसको पहचान ले। उसकी शरणागति हो जा। फिर कोई चिंता नहीं। फिर तू युद्ध कर न कर, कुछ भेद नहीं पड़ता। न कोई कभी मारा गया है, न कभी कोई मारा जा सकता है।
अगर कोई मुझसे पूछे, तो कृष्ण ने गीता में जो कहा है, वह महावीर का परिशिष्ट है। अगर महावीर प्रारंभ हैं, तो गीता अंत है। बड़ा मुश्किल होगा यह समझना; क्योंकि जैनों को तो गीता से बड़ा विरोध रहा है; क्योंकि उन्हें तो लगा यह आदमी कृष्ण, हिंसा की तरफ उत्तेजित कर रहा है लोगों को, हिंसा की तरफ भेज रहा है। जैनों को तो ऐसा लगा कि अर्जुन तो भाग जाना चाहता था, जैन-मुनि होना चाहता था, छोड़ देना चाहता था, यह सब हिंसा है--और कृष्ण ने इसको भरमाया, भटकाया! तो जैनों ने क्षमा नहीं किया कृष्ण को, सातवें नर्क में डाला है। और सब पापी तो छूट जाएंगे; लेकिन कृष्ण अंततः जब यह सृष्टि पूरी समाप्त होगी तब छूटेंगे।
बात तर्कपूर्ण है; क्योंकि और पापियों ने पाप किये हों, लेकिन पाप को दर्शन-शास्त्र तो नहीं बनाया। और पापियों ने हिंसा की हो, लेकिन अपराध का भाव तो उनके भीतर था ही कि हम गलत कर रहे हैं। कृष्ण ने तो गलत को सही है, ऐसा सिद्ध किया। गलत को दर्शन दिया। गलत को शास्त्र बनाया। तो साधारण पापियों को तो ठीक है कि आज नहीं कल उनका दंड पूरा हो जाएगा। इस आदमी को कितना दंड दें? इसने तो अपराध का भाव ही हटा दिया। अपराध का भाव हो तो आदमी रूपांतरित होता है। हिंसा हो गयी, दुखी होता है; पश्चात्ताप करता है; व्रत-नियम लेता है; अपने कर्मों को धोने-पोंछने की, निर्जरा की चिंता करता है; शुभ कर्म करता है कि अशुभ हो गया है, अब इसको किसी तरह तराजू को बराबर करो, संतुलन करो; जीवन में हिसाब की व्यवस्था बिठाता है; आज गलती हो गयी कल न हो, इसका निर्णय लेता है।
कृष्ण ने तो समझा दिया की गलती है ही नहीं, हो ही नहीं सकती। "न हन्यते हन्यमाने शरीरे।" मारने से भी कहीं शरीर मरता है? न आग में जलाने से जलता, न शस्त्रों से छेदने से छिदता। "नैनं छिंदंति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः।"
तो यह तो हिंसा के लिए है। इससे बड़ा और प्रबल समर्थन क्या होगा? ऐसा जैनों ने समझा। चूक गये! क्योंकि वे महावीर को भी नहीं समझे, तो कृष्ण को कैसे समझेंगे? महावीर को समझा होता, तो कृष्ण महावीर का ही अंतिम चरण हैं; महावीर ने जो कहा, उसकी ही निष्पत्ति हैं, उसका ही परम रूप हैं।
महावीर ने कहा, मत मारो, क्योंकि दूसरे में भी तुम्हारे जैसी ही चेतना विराजमान है। यह पहला कदम हुआ शिक्षा काः मत मारो, क्योंकि दूसरे में भी तुम्हारे जैसी ही चेतना विराजमान है। जब तुम इसमें निष्णात हो गये, तब दूसरा कदम उठता है, आखिरी शिक्षा आती है, चरम शिक्षा आती है, कि अब अगर तुम मारना चाहो, तो मारो, लेकिन तुम मारनेवाले मत बनना। अगर परमात्मा की मर्जी हो तो तुम निमित्त हो जाओ। क्योंकि कोई मरता कहां!
अहिंसा पहले कदम पर सिखाती हैः मत मारो। क्योंकि तुममें मारने की बड़ी आकांक्षा हैः दूसरे को विनष्ट करने की बड़ी आकांक्षा है। अभी तुम्हें यह तो दिखायी पड़ना संभव न हो सकेगा कि दूसरे में परमात्मा है। पहले मारने से रुको, ताकि परमात्मा दिखायी पड़ जाए। फिर दिखायी पड़ गया परमात्मा, फिर कृष्ण कहते हैं, अब क्या फिकिर! अब अगर परमात्मा की मर्जी हो तो मारो! क्योंकि अब तुम जानते हो कि मारने से भी कोई मरता नहीं। यह अहिंसा का आखिरी कदम हुआ।
लेकिन, पहले स्वयं के भीतर प्रतीति सघन होनी चाहिए। जिसने स्वयं को जाना उसने सबको जान लिया। जो उस एक को जानने से चूक गया, वह सब जानने से चूक गया।
पूछा है, "कल आपने कहा आंख आक्रामक होती है... ।"
आंख क्या आक्रामक होगी? तुम आक्रामक हो, इसलिए आंख भी आक्रामक हो जाती है। यह तो पहला पाठ तुम्हें दिया कि आंख की बजाय तुम कान की तरफ झुको। इसको तुम शाब्दिक अर्थों में मत लेना। इसका कुल इतना ही प्रतीक-अर्थ है कि तुम

सक्रियता से निष्क्रियता की तरफ झुको; करने की बजाय न करने की तरफ झुको; बाहर दौड़ने की बजाय भीतर उतरो; पुरुष न होकर स्त्री बनो; ग्राहक बनो, आक्रामक नहीं। तुम इससे यह मतलब मत समझ लेना कि आंखें फोड़ लो, कि आंखें बंद कर लो, कि अब तो कान से ही जीएंगे।
यह तो केवल प्रतीक था। कान के लिए जो मैंने समझाया, वह तो केवल प्रतीक था। अगर तुम्हारी समझ में आ जाए तो फिर तुम्हारी आंख भी कान-जैसी ही हो जाएगी; तुम्हारे हाथ भी कान-जैसे हो जाएंगे। यह तो इंद्रियां हैं। तुम्हारे हाथ में मैं तलवार दे दूं; तलवार थोड़े ही कुछ करती है, तुम पर निर्भर है। तुम चाहो तो किसी स्त्री के साथ बलात्कार कर सकते हो इस तलवार के कारण; और तुम चाहो तो कोई किसी स्त्री के साथ बलात्कार करने जा रहा हो, तो तुम उस तलवार के कारण बलात्कार को रोक सकते हो। तलवार क्या करेगी! मैंने तुम्हें माचिस दे दी; तुम चाहो तो दीया जला लो, अंधेरे में रोशनी हो जाए। तुम्हारे रास्ते पर ही नहीं, दूसरों के रास्ते पर दीया जला दो; उनके रास्ते पर भी रोशनी हो जाए। और तुम चाहो तो घर में आग लगा दो किसी के। माचिस में थोड़े ही कुछ है! माचिस ने थोड़े ही कहा है कि किसी के घर में आग लगाओ, कि दीया जलाओ! तुम पर निर्भर है।
आंख भी अनाक्रामक हो सकती है--तुम अगर अनाक्रामक हो। और कान भी आक्रामक हो सकता है।
मैंने सुना, मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी उस पर बड़ी नाराज हो रही थी। और चिल्ला रही थी कि बहुत हो गया; अब मेरे बर्दाश्त के बाहर है। अब मैं और बर्दाश्त नहीं कर सकती। मुल्ला ने कहा हद्द हो गयी! मैं कुछ बोला ही नहीं हूं। मैं सिर्फ चुप बैठा हूं! उसने कहा वह मुझे मालूम है। लेकिन तुम इस ढंग से चुप बैठे हो कि अब बर्दाश्त के बाहर है!
चुप बैठना भी बर्दाश्त के बाहर हो सकता है। ढंग पर निर्भर है। तुम्हारी खामोशी में भी हिंसा हो सकती है। तुम इसलिए चुप बैठ सकते हो कि तुम इतनी गहन हिंसा से भरे हो कि अब तुम कुछ कहना भी नहीं चाहते। लेकिन तुम्हारी चुप्पी में भी गाली हो सकती है। गाली के लिए बोलना ही थोड़े ही जरूरी है, बिना बोले गाली हो सकती है। तुम्हारे उठने-बैठने के ढंग में गाली हो सकती है। तुम जिस ढंग से दूसरे को सुनते हो, उसमें गाली हो सकती है।
तुमने देखा कभी? कोई आदमी घर आया। तुम सुनना नहीं चाहते। तुम उसके सामने बैठकर ही जम्हाई लेते हो। तुम उससे कुछ कहते नहीं। कहते तो तुम हो, बड़ी कृपा हुई, आए! कितने दिनों से आंखें तरस गयी थीं! कहते तो तुम यही हो। कहते तो तुम हो, अतिथि तो देवता है! और जम्हाई ले रहे हो। बार-बार घड़ी देख रहे हो। अब और क्या कहना है? कुछ सिर पर हथौड़ा मारोगे तभी उसकी समझ में आएगा? कोई बोल रहा है, तुम बार-बार घड़ी देख रहे हो। तुम क्या कह रहे हो? शायद तुम्हें भी पता न हो। तुम बिना कहे कुछ कह रहे हो। तुम्हारे बोलने में, तुम्हारे सुनने में, तुम्हारे उठने-बैठने में, न बोलने में, चुप रहने में--सब तरफ से हिंसा हो सकती है।
मैंने सुना है, अमरीका का एक बड़ा धार्मिक उपदेशक है, डाक्टर फोसदिक। उसके संबंध में एक मित्र किसी को कह रहा था कि हम दोनों साथ-साथ मछली मारने गये। अब कुछ मामला ऐसा है... मछली मारनेवाले या कार चलानेवाले, कुछ काम ऐसे हैं कि वह गाली देना सीख ही जाते हैं। कार चलानेवाला गाली न दे, बड़ा मुश्किल! क्रोध आ ही जाता है। इतने लोग, कोई उसके सामने से निकल जाता है; कोई गलत, नियम तोड़ देता है; कोई उसको पीछे छोड़ देता है; कोई उसके आगे है, वह हार्न बजाए जा रहा है और वह हटता ही नहीं है!
मेरे एक मित्र हैं। वे कहते हैं कि मैंने इसीलिए खुद कार चलानी छोड़ दी, क्योंकि उसमें गाली देना बिल्कुल जरूरी है। उससे बचा ही नहीं जा सकता। मछली मारने का काम भी ऐसा ही है। घंटों बैठे हैं और मछली पकड़ में नहीं आती, क्या करो! या कभी-कभी मछली फंस भी जाती है और तुम खींच ही रहे थे कि छूट गयी। कभी तो ऐसा हो जाता है, हाथ में भी आ गयी और छलांग लगा गयी। तो मछुए भी गाली देने लगते हैं।

यह फोसदिक अपने मित्र के साथ मछली मारने गया। और उस मित्र ने लौटकर अपनी पत्नी से कहा कि आज एक बड़ी हैरानी की बात देखी। जब फोसदिक ने एक बड़ी मछली पकड़ी घंटों की मेहनत के बाद, तो वह बड़ा खुश था; लेकिन जैसे ही उसने हाथ में उठायी वह छलांग लगा गयी और नाव के बाहर कूद गयी। तो मित्र ने कहा, मैं सोचता था कि अब तो इसके मुंह से कुछ अपशब्द निकलेगा, कोई गाली! लेकिन फोसदिक बिल्कुल चुप रहा, कुछ भी नहीं बोला। मित्र ने अपनी पत्नी को कहा कि इतनी अपवित्र शांति मैंने कभी नहीं देखी। अपवित्र शांति! धर्मगुरु है, गाली दे नहीं सकता, अपशब्द बोल नहीं सकता। लेकिन शांति भी अपवित्र हो सकती है। चुप रहने में भी तीर हो सकते हैं, कांटे हो सकते हैं, जहर हो सकता है। तुम सभी जानते हो। चुप रहकर भी तुम चोट पहुंचा सकते हो। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि बोलकर इतनी गहरी चोट पहुंचायी ही नहीं जा सकती, जितनी चुप रहकर पहुंचायी जा सकती है।
तो जरूरी नहीं है कि तुम्हारा कान मैंने कह दिया कि अनाक्रामक है, तो हो। तुम पर निर्भर है। यह तो प्रतीक था।
सुनने और देखने में भेद है। कान सुनता है, ग्रहण करता है। आंख जाती है, छूती है, खोजती है। बस इतना प्रतीक था। तुम कान-जैसे बनना। तुम्हारी आंख भी कान-जैसी बन जाए। वह भी ग्राहक हो। वह इस परम सौंदर्य को, जो चारों तरफ फैला है, इसे पीए। इसे उघाड़े न, बलात्कार न करे! व्यभिचार न करे, चोट न करे! बस इतनी बात थी।
यह हो सकता है। लेकिन यह होगा तुम्हारे रूपांतरण से।

तीसरा प्रश्नः "रसो वै सः" के संदर्भ में बताएं कि क्या स्वाद को भी परमात्म-अनुभूति का साधन बनाया जा सकता है?

बनाए जाने का सवाल ही नहीं है। सभी अनुभव उसी के साधन हैं। स्वाद भी।
मैं तुम्हें अस्वाद नहीं सिखाता। मैं तुम्हें परम स्वाद सिखाता हूं। आंख भी उसी को देखे। कान भी उसी को सुनें। हाथ उसी को छुएं। रस उसी का ही तुम्हारी जिह्वा में उतरे, तुम्हारे कंठ के पार जाए। तुम उसे ही खाओ और तुम उसे ही पीओ, और तुम उसे ही बिछाओ और तुम उसे ही ओढ़ो। वही हो जाए तुम्हारा सब कुछ। तुम उसी में स्नान करो, तुम उसी में श्वास लो! तुम उसी में चलो, उसी में बैठो; उसी में बोलो, उसी में सुनो! तुम्हारा सारा जीवन उसी से भर जाए। क्योंकि परमात्मा कोई खंड नहीं है कि तुम गये मंदिर, घंटा-भर परमात्मा को दे दिया और तेईस घंटे अपने लिए बचा लिये। यह तो धोखा है। ऐसे कहीं कुछ जीवन में क्रांति नहीं होती। यह तो तुमने हिसाब कर लिया कि चलो एक घंटे परमात्मा को दे दें, दूसरी दुनिया भी सम्हाल ली। यह दुनिया तो तेईस घंटे सम्हाल ही रहे हैं। कुछ वह एक घंटा महंगा नहीं है। और उस एक घंटे भी तुम परमात्मा के मंदिर में हो कैसे सकते हो? जो आदमी तेईस घंटे परमात्मा के विपरीत जी रहा हो, वह एक घंटे परमात्मा में जीएगा कैसे?
ऐसा समझो कि गंगा बस काशी में आकर पवित्र हो जाती हो--पहले अपवित्र, बाद में फिर अपवित्र--ऐसा कैसे होगा? गंगा तो सतत धारा है। अगर पहले पवित्र थी, तो ही काशी में पवित्र हो सकेगी। और काशी में पवित्र है, तो आगे भी पवित्र ही रहेगी। शृंखला है, सातत्य है, सिलसिला है।
तो ऐसा थोड़े ही है कि तुम मंदिर के द्वार पर आए, बाहर तो पवित्र नहीं थे; भीतर गये, घंटा बजाया--पवित्र हो गये, प्रार्थना कर ली! फिर बाहर आए, फिर चोगा बदल लिया, फिर पवित्र हो गए, फिर अपवित्र हो गये, फिर बैठ गये अपनी दुकान पर, फिर वही करने लगे जो कल तक करते थे। उस मंदिर में जाने ने तुम्हारे जीवन में कोई रूपांतरण न किया।
नहीं, धर्म तो चौबीस घंटे की बात है। तब तो बड़ी कठिनाई है। चौबीस घंटे अगर धर्म में जीना हो, तो तुम कहोगे बड़ा मुश्किल है! इसलिए मैं कहता हूं कि सोना भी उसी में। जब बिस्तर बिछाओ, तो उसी को देखना। जागना भी उसी में; जब आंख खोलो, तो उसी को देखना। यही तो अर्थ था प्राचीन परंपराओं का कि लोग प्रभु का स्मरण करते सोते, राम-राम जपते हुए सोते। यह कोई जपने की बात नहीं है कि तुमने राम-राम शब्द दोहरा दिया और सो गये। भाव दशा की। कि राम का नाम

ही जपते उठते। भाव दशा की! आंख खोलते तो उसी को देखते; आंख बंद करते तो उसी को देखते। उसी में है नींद, उसी में है जागृति। भोजन करते, तो भी उसी के नाम-स्मरण से करते; थोड़ा भोग पहले उसे लगा देते। पहले भोग, फिर भोजन; तो भोजन भी पवित्र हो गया। तो फिर भोजन भी प्रार्थना हो गयी।
इसे तुम ऐसा समझो कि भूख लगे तुम्हें, तो भी जानना उसी को भूख लगी तुम्हारे भीतर। सच भी यही है, वही भूखा होता है। वही जीता है। वही जन्मता है। वही विदा होता है। वही शरीर में आया, वही शरीर से जाएगा। उसकी ही भूख, उसकी ही प्यास। तो उठना-बैठना ही फिर पर्याप्त आराधना हो जाती है। आराधना ऐसी अनुस्यूत हो जाए जैसे श्वास। याद भी अलग से न करनी पड़े, तो ही तुम परम मुक्ति के स्वाद को चख सकोगे।
वह रसरूप है। इसलिए जहां भी रस मिले, उसी को समर्पण कर देना। भोजन में
रस आए, प्रसन्न होना कि प्रभु प्रसन्न हुआ, उसे रस मिला। तुम केवल साधन हो। तुम्हारे माध्यम से उसने आज फिर भोजन किया। तुम माध्यम हो। तुम्हारे माध्यम से आज उसने फिर बगीचे के फूलों की सुगंध ली। वही तो तुम्हारे भीतर चैतन्य होकर बैठा है। तुम तो मिट्टी के दीये हो; ज्योति तो उसकी है। सब अनुभव उसके हैं।
ऐसा जो व्यक्ति भाव में निमज्जित होने लगे और सब भांति अपने को परमात्मा में गूंथ ले--इसी को महावीर ने कहा, सुई गिर जाए, बिना धागा- पिरोयी, तो खो जाती है। धागा-पिरोयी सुई गिर भी जाए तो नहीं खोती। ऐसा निमज्जित हुआ व्यक्ति अगर भटक भी जाए तो नहीं भटकता। क्योंकि ऐसे व्यक्ति के भटकने का उपाय ही न रहा। यह भटकाव भी उसी का है! अगर ऐसे व्यक्ति की नाव मझधार में भी डूब जाए तो उसे चिंता नहीं होती। मझधार भी उसी की है! ऐसे व्यक्ति को कोई चिंता होती ही नहीं। सभी कुछ उसी का है! इस समर्पण-भाव से तुम्हें सब जगह उसी का रस आने लगेगा।
ऋग्वेद में वचन हैः "केवलाघो भवति केवलादि।" अकेले मत खाना, बांटकर खाना। अकेले खाने में पाप है। खाने में पाप नहीं। अन्न तो ब्रह्म है। लेकिन अकेले खाने में पाप है। छीनकर खाने में पाप है। चुराकर खाने में पाप है। बांटकर खाना। साझेदार बनाकर खाना। फिर पाप खो गया।
जितना तुम बांट सको, जो भी तुम्हारे पास है, उसे तुम अहर्निश बांटो।
गा सकते हो, तो गाओ--गीत बांटो। नाच सकते हो, तो नाचो--नाच बांटो। जो भी तुम्हारे पास है, उसे बांटो। बस पुण्य हो जाएगा। बांटने में पुण्य है। रोक लेने में पाप है।
यह बड़ा महत्वपूर्ण सूत्र है। नदी ठहर जाए तो पाप है। नदी ठहरकर डबरा
बन जाए तो पाप है। बहती रहे, सागर की तरफ उंडलती रहे, सागर में जाकर उतरती रहे--फिर पाप नहीं।
तुम्हारे जीवन में बहाव रहे! भोजन करो, लेकिन... तुमने ख्याल किया, पशुओं को देखा, पशु जब भी भोजन करते हैं तो उठाकर भोजन अकेले में भाग जाते हैं। बांट नहीं सकते, भयभीत हैं। दूसरा दुश्मन है! आदमी अकेला प्राणी है संसार में, जो दूसरे को निमंत्रण देकर भोजन करता है। बुला लाता है।
मेरे एक प्रोफेसर थे। बहुत प्यारे आदमी थे! दुर्गुण एक था--शराबी थे। मैं उनके घर एक बार मेहमान हुआ। था उनका विद्यार्थी मैं, लेकिन उनका बड़ा सम्मान मेरे प्रति था। वे बड़े बेचैन हुए कि वे शराब कैसे पीएंगे; अब ये कुछ दिन मैं उनके घर रहूंगा। मैंने उन्हें कुछ बेचैन देखा। मैंने पूछा कि मामला क्या है? आप कुछ बेचैन मालूम होते हैं। उन्होंने कहा कि तुमसे छुपाना क्या! मुझे शराब पीने की आदत है। तो मैंने कहा, आप पी सकते हैं। इसमें परेशान होने की क्या बात है? उन्होंने कहा कि परेशान होने की बात है कि मैं अकेला नहीं पी सकता। दो-चार-दस को बुलाता हूं, तब पी सकता हूं। वह हुल्लड़ मचेगी, तुम्हें अच्छा न लगेगा।
मैंने कहा, फिर शराब पाप न रही, फिर पुण्य हो गयी। मैं भी बैठूंगा और मजा लूंगा। पी तो नहीं सकता, क्योंकि मैंने कोई और शराब पी ली है और अब कोई शराब उसके ऊपर नहीं हो सकती। लेकिन बैठूंगा। यह तो पुण्य हो गया, यह तो प्रार्थना हो गयी कि आप लोगों को बुलाकर पीते हैं। यह तो मुझे अत्यंत खुशी की बात मालूम पड़ी कि आप अकेले नहीं पी सकते। तो शराब में भी सौंदर्य आ गया।

पाप भी पुण्य हो सकता है। पुण्य भी पाप हो सकता है। जीवन बड़ा जटिल है। जीवन गणित जैसा नहीं है। अगर तुमने गणित की तरह पकड़ा तो तुम चूक जाओगे। तो कभी-कभी तुम पुण्य भी कर सकते हो और वह पाप हो। और कभी-कभी तुम पाप भी कर सकते हो और पुण्य हो जाए।
मैंने उनसे कहा, पुण्य हो गया। आप बुलाकर पीते हैं, अकेले नहीं पी सकते, छिपकर नहीं पी सकते--बस, ठीक है। फैलते हैं--शुभ है। आज यह शराब पीकर फैल रहे हैं, कल और बड़ी शराब पीकर भी फैलेंगे। फैलना तो जारी है। सागर की तरफ चल तो रहे हैं।
यह ऋग्वेद का सूत्रः "केवलाघो भवति केवलादि"--वही पापमय है भोजन, जो अकेले कर लिया जाए, बांटा न जाए। जो भी हो तुम्हारे पास--भोजन की ही बात नहीं है--जो भी रसपूर्ण हो, जो भी आनंदपूर्ण हो, उसे छिपाकर मत बैठना। प्रकाश तुम्हारे भीतर जगे तो उसे ढांक मत लेना।
जीसस ने कहा है अपने शिष्यों को कि जब तुम्हारे भीतर परमात्मा का स्वर गूंजे, तो चढ़ जाना छप्पर पर, जितने जोर से चिल्ला सको, चिल्लाना; ताकि जो गहरी नींद में सोए हैं, वे भी सुन लें, वे भी वंचित न रह जाएं।
तो जो तुम्हारे पास हो, उसे बांटना, फैलाना!
संस्कृत का शब्द "ब्रह्म" बड़ा प्रीतिकर है! इसका अर्थ होता हैः जो फैलता ही चला जाता है; जो विस्तीर्ण ही होता चला जाता है। आधुनिक विज्ञान ने ब्रह्म शब्द को बड़ा नया अर्थ दे दिया है। आइंस्टीन के पहले तक ऐसा समझा जाता था कि संसार कितना ही बड़ा हो, फिर भी इसकी सीमा तो होगी ही। हम न पा सकते हों सीमा, हमारी सामर्थ्य न हो, हमारे साधन सीमित हों, पर फिर भी कहीं इसकी सीमा तो होगी ही। यह बात ख्याल में थी। और यह भी बात ख्याल में थी कि यह संसार जैसा है, बस वैसा ही है। अब इसमें नया क्या हो सकता है! नया आएगा कहां से? संसार के बाहर तो कुछ और है नहीं। तो जो है, है। इसी में रूपांतरण होता रहता है, रूप बदलते रहते हैं। नदी का जल सागर में गिर जाता है। सागर का जल बादलों में उठ जाता है। बादलों का जल नदी में गिर जाता है। लेकिन जल तो घूमता रहता है--वही का वही है।
फिर आइंस्टीन की खोजों ने एक बड़ा अनूठा आयाम खोला। वह आयाम यह था कि संसार जैसा है वैसा ही नहीं है, विस्तीर्ण हो रहा है। "एक्सपैंडिंग यूनिवर्स।" फैलता जा रहा है! बड़ी तीव्र गति से फैल रहा है! जैसे कोई छोटा बच्चा अपने गुब्बारे में हवा भर रहा हो और गुब्बारा बड़ा होता जा रहा हो! तब ब्रह्म शब्द के नये अर्थ उभरकर आए।
ब्रह्म शब्द का अर्थ होता हैः "दि एक्सपैंडिंग वन।" वह जो फैलता ही जा रहा है। ब्रह्म का अर्थ हैः विस्तीर्ण होता जा रहा है। जो ठहरा नहीं है। जो कहीं ठहरता नहीं। जो किसी सीमा को सीमा नहीं बनाता, जो हमेशा सीमा के ऊपर से बह जाता है।
अगर तुम्हें परमात्मा को जानना हो, तो छोटे पैमाने पर ही सही, लेकिन तुम भी सीमा मत बनाना। फैलना, फैलते जाना! सुगंध हो तुम्हारे पास, बांटना हवाओं को! प्रकाश हो, बांट देना रास्तों पर! बोध हो, दे देना दूसरों को! जो कुछ भी तुम्हारे पास हो... !
और ऐसा तो कौन है मनुष्य जिसके पास कुछ भी न हो! ऐसा तो मनुष्य है ही नहीं कोई कि जिसके पास कुछ भी न हो। परमात्मा तो सभी के भीतर है, इसलिए कुछ न कुछ तो होगा। खोजना। तुम अकारण नहीं हो सकते। तुम्हारे द्वारा उसने कोई गीत गाना ही चाहा है। तुम्हारे द्वारा उसने कोई नाच नाचना ही चाहा है। तुम्हारे द्वारा उसने कोई फूल खिलाना ही चाहा है। व्यर्थ तुम नहीं हो सकते। तुम्हारी कोई नियति है। तुम्हारे भीतर छिपा हुआ कोई राज है। खोलो, खोजो! मेरे लिए धर्म उसी रहस्य को खोजने की कुंजी है। तुम तुम बनो! तुम्हारी नियति खुले, बिखरे, फैले। तुम्हारे जीवन में बाढ़ आए।
इसी को तो महावीर ने कहा कि मुनि जैसे-जैसे उस अश्रुतपूर्व को सुनता, जानता; जैसे-जैसे अतिशय रस के अतिरेक से भरता, वैसे-वैसे प्रफुल्लित होता; वैसे-वैसे उत्साहित होता; वैसे-वैसे फूल खिलने लगते हैं, कमल खिलने लगते हैं, पंखुड़ियां खुलने लगती हैं, कलियां फूल बनतीं। फैलो! कली मत रह जाना।
वही दुर्भाग्य है।

मेरे लिए अधार्मिक आदमी वही है, जो कली रह गया। धार्मिक वही है, जो फूल
बन गया। फूलो! फैलो! कोई सीमा मत बांधो। बाढ़ बनो। और तुम जितना फैलोगे, तुम पाओगे उतनी ज्यादा फैलने की क्षमता आने लगी। तुम जितना बांटोगे, उतना पाओगे मिलने लगा। और कुछ भी पाप नहीं है, रोक लेना पाप है।
अर्थशास्त्री कहते हैं कि रुपया जितना चले उतना समाज संपन्न होता है। इसीलिए तो रुपये को "करेंसी" कहते हैं। "करेंसी" का मतलब, जो चलता रहे, भ्रमण करता रहे। अब समझ लो कि दस आदमी हैं गांव में और दसों के पास दस रुपये हैं, वे दसों अपने रुपयों को रखकर बैठ गये हैं, तो गांव में केवल दस रुपये हैं। फिर दसों अपने रुपयों को चलाते हैं। एक-दूसरे से सामान खरीदते हैं। एक का रुपया दूसरे के पास जाता है, दूसरे का तीसरे के पास जाता है--दस रुपये के सौ हो जाते हैं, हजार हो जाते हैं। क्योंकि रुपया आता है, जाता है। पकड़े रहो, तो एक ही रहता है। आता रहे, जाता रहे, तो अनेक हो जाते हैं। तुम गड़ाकर रख दो जमीन में, तो "करेंसी" "करेंसी" न रही, मर गयी। इसीलिए तो कंजूस आदमी से अभागा आदमी दुनिया में दूसरा नहीं है। "करेंसी" मार डालता है। चलने नहीं देता। चलन को रोक देता है। नदी को बहने नहीं देता, डबरा बना लेता है। फिर डबरा सड़ता है। फिर डबरे में घास-पात गिरते हैं, बदबू आती है। कृपण आदमी में बदबू आती है।
इसीलिए तो दानी की इतनी महिमा रही है। दान को धर्म का आधार कहा है; लोभ
को पाप का। कारण, लोभ रोक लेता है; दान बांट देता है। दान से चीजें फैलती हैं। और जो बात बाहर की संपदा के संबंध में सही है, मैं तुमसे कहना चाहता हूं, भीतर की संपदा के संबंध में और भी ज्यादा सही है। जब बाहर तक की संपदा रोक लेने से मर जाती है--मरी-मरायी संपदा भी रोक लेने से मर जाती है--जब बाहर की संपदा चलाने से मरी-मरायी संपदा भी जीवित मालूम होने लगती है, तो भीतर की थोड़ी सोचो! वहां का धन तो जीवंत धन है। उसे रोका कि गया! उसे चलने दो। चलन में रहने दो। "करेंसी" बनाओ।
एक ही पाप है मेरी दृष्टि में। और वह पाप है, जो तुम्हें मिला है भीतर,
उस पर तुम सांप की तरह कुंडली मारकर बैठ गये हो, तो पाप है। उसे बांटो! परमात्मा बांटने के नियम को मानता है, फैलने के नियम को मानता है। तुम भी फैलो!
नहीं, स्वाद में कोई पाप नहीं; लेकिन स्वाद अकेले मत लेना। बांटना। भोजन में कोई पाप नहीं है। उसी की भूख है! लेकिन जो तुम्हारे पास हो उसे बांटकर खाना। इतना भर स्मरण रहे कि किसी भी चीज की मालकियत मत बनाना। आए हाथ में, चली जाने देना। जैसी आयी, वैसी जाने देना, बहने देना। जहां तुम मालिक बने, वहीं पाप शुरू हुआ। जब तक तुम मालिक नहीं हो, केवल संपदा को यहां से वहां जाने देने के माध्यम हो, उपकरण हो, निमित्त मात्र हो--वहां तक परमात्मा तुम्हारे भीतर खूब खिलेगा, खूब फैलेगा। तो एक ही सूत्र याद रखने जैसा हैः कृपण मत होना।

चौथा प्रश्नः पिछले दिन आपका प्रवचन सुनते हुए आपकी आवाज से हृदय और कर्ण-तंतुओं पर एक अजीब तरह का कंपन हुआ और तब से साधारण ध्वनियां भी अजीब कंपन और आनंद की लहर पैदा कर रही हैं। कृपया बताएं कि क्या बुद्धपुरुषों के स्वर में कुछ है, जो विशेष प्रभाव पैदा करता है? साथ ही आपकी उपस्थिति में एक विशेष आनंददायक गंध मिलती है; और वह कभी आश्रम में और कभी ध्यान के समय भी मिलती है। इस संदर्भ में भी बताएं कि क्या काल या समय-विशेष की विशेष गंध भी होती है?

सुनोगे यदि, तो कुछ निश्चित कंपेगा हृदय में। जगह दोगे मुझे भीतर आने
की थोड़ी; राह में न अड़कर खड़े हो जाओगे; द्वार-दरवाजा बंद न करोगे, खोलोगे; तो हवाएं आएंगी, सूरज की रोशनी आएगी, भीतर कुछ होगा। अगर तुमने मुझे जगह दी, तो जो मेरे भीतर हुआ है, उसके कंपन तुम तक पहुंचेंगे।
यही तो सत्संग का अर्थ है। यही तो सारा प्रयोजन है कि मैं यहां हूं और तुम यहां हो। यही तो प्रयोजन है कि किसी भांति मेरे हृदय और तुम्हारे हृदय

की लयबद्धता बंध जाए। किसी भांति, जिस लय से, जिस तरंग से मैं जी रहा हूं, उस तरंग का तुम्हें भी थोड़ा-सा स्वाद आ जाए, अनुभव आ जाए।
उपाय क्या है?
थोड़ी दूर मेरे साथ चलो। थोड़ी दूर मेरे साथ धड़को। थोड़ी दूर मेरे साथ श्वास लो। जब तुम मुझे गौर से सुनोगे, तो तुम पाओगे, तुम वहां सुननेवाले नहीं रहे, मैं यहां बोलनेवाला नहीं रहा, दोनों की सीमा-रेखाएं कहीं घुल-मिल गयीं। कभी-कभी तुम पाओगे, तुम यहां बोलनेवाले होकर बैठ गये, मैं वहां सुननेवाला होकर बैठ गया।
कभी-कभी तुम चौंककर पाओगे, कौन-कौन है?
जब सुरति बंधेगी, जब मेरा तुम्हारा धागा मिलेगा, तो अचानक "मैं" और "तू" की आवाजें बंद हो जाएंगी। सुनने के किसी गहन क्षण में कभी-कभी क्षणभर को "तारी" लग जाएगी। वह क्षणभर की "तारी" समाधि के अनुभव-जैसी है। क्षणभर का है--आएगा, जाएगा--लेकिन स्वाद दे जाएगा। बूंद एक गिर जाएगी अमृत की। फिर तुम तड़पोगे। फिर तुम वही न हो सकोगे जो तुम थे कल तक। तुम किसी को समझा भी न सकोगे कि क्या हो गया है। बताने का भी कोई उपाय न पाओगे। बेबूझ होगी घटना। लेकिन इतनी गहन होगी कि उसे तुम इनकार भी न कर सकोगे।
इधर मैं बोल रहा हूं, तो तुम्हें कुछ समझाने को नहीं। इस ख्याल में पड़ना ही मत। यहां मैं बोल रहा हूं तुम्हें कुछ समझाने को नहीं। यहां मैं बोल रहा हूं कि बोलने के माध्यम से मेरा और तुम्हारा तालमेल किसी क्षण बैठ जाए। कब बैठ जाए, कोई जानता नहीं। कब किसका बैठ जाए, कोई जानता नहीं। कब किसकी घड़ी आ जाए, कोई जानता नहीं। मगर सुनते-सुनते... इसीलिए तो रोज बोले चला जाता हूं। अगर कुछ समझाना होता, तो बात खतम हो जाती। यह बात खतम होनेवाली नहीं है, क्योंकि समझाने से इसका कोई संबंध नहीं है। यह बात चलती रहेगी। क्योंकि इसका प्रयोजन कुछ और ही है।
इसका प्रयोजन रासायनिक है, बौद्धिक नहीं है। "अल्केमिकल" है। इसका प्रयोजन है कि सुनते-सुनते, सुनते-सुनते, कभी-कभी एक क्षण को तुम अपने को भूल जाओगे। सुनने में लवलीन हो जाओगे, तल्लीन हो जाओगे, तन्मय हो जाओगे; एक क्षण को तुम भूल जाओगे, वह जो अहंकार तुम चौबीस घंटे पकड़े रखते हो, एक क्षण को तुम्हारे हाथ से छूट जाएगा। किसी पंक्ति के काव्य में डूबकर, क्षणभर को तुम छुटकारा पा जाओगे अपनी सहज अहंकार की व्यवस्था से। उसी क्षण में मिलन हो जाएगा। उसी क्षण में तीर की तरह मैं तुम्हारे हृदय में चुभ जाऊंगा। एक बूंद तुम पर बरस जाएगी।
मेघ तो दूर हैं, लेकिन एक बूंद बरस जाए, तो फिर चातक प्रतीक्षा कर सकता
है जन्मों-जन्मों तक। फिर कोई अड़चन नहीं है। फिर चातक जानता है कि होता है सत्य; होता है प्रेम; होती है प्रार्थना; होते हैं ऐसे क्षण जिनको परमात्मा के कहने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं--कि है परमात्मा! कि कहीं ऐसी घड़ी आती है जीवन में, जब हजार-हजार सूरज प्रगट हो जाते हैं। हजार-हजार नीलकमल तुम्हारे प्राणों में खिल जाते हैं।
बोलता हूं; इस बोलने का प्रयोजन ऐसे ही है जैसे कोई संगीतज्ञ वीणा को बजाए। तो कुछ समझाने को नहीं बजाता। तुम मुझे एक वीणावादक की तरह याद रखना। यह बोलना मेरी वीणा है। यह जो मैं तुमसे कह रहा हूं, कह कम रहा हूं, गा ज्यादा रहा हूं। इसका प्रयोजन तुम्हारी समझ में आ जाए, तो बस काफी है। वह प्रयोजन इतना ही है, इस वाद्य को सुनते-सुनते... जैसे वीणा को सुनते- सुनते कभी-कभी "तारी" लग जाती है। डोलने लगता है आदमी। कुछ भीतर कंपने लगता है। कोई पत्थर जैसी चीज भीतर पिघलने लगती है, बहने लगती है। एक क्षण को एक झरोखा खुलता, एक वातायन खुलता, आकाश दिखायी पड़ जाता है। जैसे बिजली कौंध गयी। अंधेरा खो गया--एक क्षण को सही--लेकिन फिर तुम जानते हो कि प्रकाश है, और तुम यह भी जानते हो कि राह है। एक क्षण को दिखी थी बिजली की कौंध में, लेकिन दिख गयी। अब तुम्हें कोई यह नहीं कह सकता कि राह नहीं है, और तुम्हें कोई यह नहीं कह सकता कि प्रकाश सब कल्पना है, कि प्रकाश सब सपना है। अब तुम्हें कोई भी झुठला न सकेगा। यह है प्रयोजन।
तो ऐसा हो सकता है, सुनते-सुनते एक कंपन हो गया हो। हो जाए कंपन, तो एकदम खो भी न जाएगा, क्योंकि इतना गहरा घटता है! फिर तुम चले भी जाओगे उठकर

यहां से, तो कंपन जारी रहेगा। और तब उन कंपती हुई नयी तरंगों के आधार से जब तुम वृक्षों को देखोगे, तो उनकी हरियाली और ही होगी! उन्हीं फूलों को जिन्हें कल भी देखा था, फिर देखोगे, तुम पाओगे उन फूलों की कोमलता और ही है! कोई दिव्य आभा उन्हें घेरे है। हरियाली के चारों तरफ कोई आभामंडल वृक्षों को घेरे है। उन्हीं लोगों को देखोगे, अपनी पत्नी को घर जाकर देखोगे और पाओगे, वह तुम्हारी पत्नी ही नहीं, उसमें परमात्मा भी है। अपने पति को घर जाकर देखोगे, तो पति होना गौण हो जाएगा, उसका परमात्मा होना प्रमुख हो जाएगा। अपने बेटे को देखोगे, तो बेटा ही नहीं रह जाएगा।
इस नये अनुभव के आधार पर तुम्हारे जीवन की सारी संरचना में क्रांति होने लगेगी। क्योंकि जो तरंग तुम्हारे भीतर मुझे सुनकर पैदा हुई, वह तरंग तुम्हारी है। इसलिए मेरे सुनने से तुम उसको बांध मत लेना। वह तरंग तो तुम्हारी है। मेरा बोलना तो निमित्त-मात्र था। मेरे बोलने की संगति में तुम अपने ही भीतर के किसी छिपे हुए तल से परिचित हुए हो। लेकिन परिचित तुम अपने ही भीतर के तल से हुए हो। मेरे प्रकाश में जो तुमने देखा है, वह तुम्हारा ही है; वह मेरा नहीं है। रोशनी मेरी होगी, लेकिन जो खजाना तुमने खोज लिया है वह तुम्हारा ही है।
इसलिए तुम यह मत सोचना कि वह, यहां मुझे सुनना तुमने बंद किया कि खो जाएगा। जो इस तरह हो कि मेरे सुनने से पैदा हो और बाहर जाते ही खो जाए, तो समझना कि तुमने सुना ही नहीं। वह बौद्धिक था। वह सिर की खुजलाहट थी। सुन लिया, अच्छा लगा, मनोरंजन हुआ, लेकिन तुम कहीं हिले नहीं। तुम्हारी नींव का कोई पत्थर न सरका। तुम्हारे भीतर कोई नये का उदघाटन न हुआ, कोई नये का आविष्कार न हुआ। तो थोड़ी-सी शब्दों की, सूचनाओं की, तथ्यों की संपदा बढ़ जाएगी, उधारी थोड़ी और तुम्हारी बढ़ जाएगी। तुम और उधार हो गये, तुम्हारा नगद होना और भी ढंक गया। इससे कुछ लाभ न होगा। तुम ज्ञानी बन जाओगे, पंडित बन जाओगे, लेकिन इससे धर्म का जन्म न होगा।
अगर सच में तुमने सुना, ऐसी गहनता से सुना कि तुम्हारा पूरा व्यक्तित्व जैसे कान हो गया--आंख भी कान, हाथ भी कान, हृदय भी कान--जैसे तुम सिर्फ एक द्वार हो गये, और तुमने मुझे आने दिया--तुम्हारे ऊपर निर्भर है कि कितना मुझे आने दोगे--अगर तुम मुझे पूरा आने दो तो तरंगें नहीं, अंधड़ उठ जाएंगे। अगर तुम मुझे पूरा आने दो तो तूफान उठ जाएंगे। अगर तुम मुझे पूरा आ जाने दो, हिम्मत करके तुम पूरे द्वार-दरवाजे खोल दो और कहो कि आओ, राजी हूं--इसी को तो मैं संन्यास कहता हूं, इसी को तो मैं दीक्षा कहता हूं--तो तुम फिर दुबारा वही न हो सकोगे। एक नये जीवन का प्रारंभ हुआ। फिर तो मुझे बोलने की भी जरूरत न होगी। अगर तुम राजी हो और खुले हो, तो मेरी चुप्पी भी तुम्हें कंपाएगी। क्योंकि असली में मेरा सवाल ही नहीं है।
मेरी खामोशी-ए-दिल पर न जाओ
कि इसमें रूह की आवाज भी है
बोलता हूं, या चुप हूं, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। बोलूं तो रूह की आवाज है, न बोलूं तो रूह की आवाज है।
तुम जब सुनने में तत्पर हो जाओगे, जब तुम सुनने में कुशल हो जाओगे, तो तुम मेरी चुप्पी को भी सुन सकोगे, मेरे मौन को भी सुन सकोगे।
मेरी खामोशी-ए-दिल पर न जाओ
कि इसमें रूह की आवाज भी है

आज तुम शब्द न दो, न दो
कल भी मैं कहूंगा
तुम पर्वत हो अभ्रभेदी शिलाखंडों के गरिष्ठपुंज
चांपे इस निर्झर को रहो, रहो
तुम्हारे रंध्र-रंध्र से
तुम्हीं को रस देता हुआ
फूटकर--मैं बहूंगा
तुम्हीं ने धमनी में बांधा है लहू का वेग
यह मैं अनुक्षण जानता हूं

गीत जहां सब कुछ है, तुम धृति-पारमिता जीवन के सहज छंद--
तुम्हें पहचानता हूं
मांगो तुम चाहो जोः मांगोगे, दूंगा तुम दोगे जो--मैं सहूंगा
आज नहीं
कल सही,
कल नहीं
युग-युग बाद हीः
मेरा तो नहीं है यह
चाहे वह मेरी असमर्थता से बंधा हो मेरा यह भाव-यंत्र?
एक मचिया है सूखी घास-फूस की
उसमें छिपेगा नहीं औघड़ तुम्हारा दान साध्य नहीं मुझसे, किसी से चाहे सधा हो आज नहीं कल सही,
चाहूं भी तो कब तक छाती में दबाए
यह आग--मैं रहूंगा?
आज तुम शब्द न दो, न दो
कल भी--मैं कहूंगा।
कवि के ये शब्द बड़े गहन हैं।
परमात्मा जब उतरता है, छिपाना मुश्किल। परमात्मा जब उतरता है, तो उसे प्रगट होने देने से रोकना मुश्किल। परमात्मा जब उतरता है, तो प्रगट होगा ही।
एक मचिया है, सूखी घास-फूस की
मेरा यह भाव-यंत्र
चाहे वह मेरी असमर्थता से बंधा हो
मेरा तो नहीं है यह
उसमें छिपेगा नहीं औघड़ तुम्हारा दान साध्य नहीं मुझसे, किसी से चाहे सधा हो आज नहीं
कल सही,
चाहूं भी तो कब तक छाती में दबाए
यह आग--मैं रहूंगा
आज तुम शब्द न दो, न दो
कल भी--मैं कहूंगा।
जिसके जीवन में परमात्मा उतरा है, उसे खोजना ही पड़ेगा संवाद का कोई उपाय। उसे शब्द खोजने ही पड़ेंगे, क्योंकि उसे बांटना पड़ेगा। उसे साझीदार बनाने ही होंगे।
यहां मैं बोले चला जा रहा हूं, सिर्फ इसीलिए कि तुम साझीदार बनो। निमंत्रण है मेरा कि जो मुझे हुआ है, चाहो तो तुम्हें भी हो सकता है। आग यहां लगी है, एक चिनगारी भी तुम ले लो तो तुम्हारे भी सूर्य प्रज्वलित हो जाएं। दीया यहां जला है, तुम जरा मेरे पास आ जाओ, या मुझे पास आ जाने दो, तो तुम्हारा दीया भी जल जाए। जलते ही मेरा न रह जाएगा। जलते ही तुम पाओगे तुम्हारा ही था, सदा से तुम्हारा था।
और पूछा है कि आपकी उपस्थिति में एक विशेष आनंददायक गंध मिलती है और कभी आश्रम में, कभी ध्यान के समय में भी मिलती है। वह गंध भी तुम्हारी ही है। कस्तूरी कुंडल बसै। इसमें मेरी चेष्टा इतनी ही है कि तुम्हें तुम्हारी तरफ उन्मुख कर दूं, कि तुम्हें धक्का दे दूं तुम्हारी तरफ। कहां भागे फिरते हो? कहां ढूंढ़ते हो कस्तूरी? तुम्हारी ही नाभि में छिपी है। हां, कभी-कभी मुझे सुनते-सुनते तुम्हें गंध आ जाएगी। तुम सोचोगे, मेरी है। तुम्हारी है! तुम शांत हो गये सुनते-सुनते, थिर हो गये सुनते-सुनते, सुनते- सुनते तन्मयता जगी, उस तन्मयता में तुम्हारी ही गंध ने तुम्हें छू लिया और

भर दिया। इसीलिए तो कभी ध्यान में भी उठेगी। अगर मेरी होती तो तुम्हारे ध्यान में कैसे उठती!
मेरा कुछ लेना-देना नहीं। मैं तो दर्पण हूं, तुम अपने को ही देख लो। दर्पण से ज्यादा नहीं। पर उतना ही प्रयोजन है। मैं यहां नहीं हूं। दर्पण कुछ होता थोड़े ही है, दर्पण तो एक खालीपन है। तुम हटे कि दर्पण खाली। तुम आए कि दर्पण भरा लगता है।
सुना है मैंने, मुल्ला नसरुद्दीन एक राह से गुजरता था। एक दर्पण पड़ा मिल गया। उठाकर देखा। कभी दर्पण इसके पहले उसने देखा न था। सोचा, अरे! तस्वीर तो मेरे पिताजी की मालूम पड़ती है। मगर जवानी की होगी। हद्द हो गयी! मैंने कभी सोचा भी न था कि मेरे पिताजी और तस्वीर उतरवाएंगे! ऐसे रंगीन तबीयत के तो आदमी न थे! मगर मिल गयी तो अच्छा हुआ। झाड़-पोंछकर खीसे में रखकर घर चला आया। कहीं बच्चे, पत्नी फोड़-फाड़ न दें, खो-खवा न दें, ऊपर चढ़ गया, छप्पर में छिपाकर रख आया। लेकिन पत्नी से कभी कोई पति कुछ छिपा पाया है! पत्नी ने देखा, कुछ छिपा रहा है। रात जब मुल्ला सो गया तो वह उठी, दीया जलाया, छप्पर के पास गयी, निकाला, देखा; तो उसने कहा अरे! तो इस औरत के पीछे दीवाना है! आज पता चला!
दर्पण हूं मैं। तुम जो लेकर आओगे वही तुम्हें दिखायी पड़ जाएगा। दर्पण
से ज्यादा नहीं। इसलिए किन्हीं-किन्हीं क्षणों में जब तुम अपनी ऊंचाई पर होओगे, तो तुम्हें अपनी ऊंचाई भी मुझमें दिखायी पड़ जाएगी। और किन्हीं- किन्हीं क्षणों में जब तुम अपनी नीचाई पर होओगे, तो तुम्हारी नीचाई भी मुझमें दिखायी पड़ जाएगी। तो जो जैसा आता है वैसा, वैसा ही मुझमें देखकर लौट जाता है।
किन्हीं गहन क्षणों में जब तुम अपनी आखिरी ऊंचाई पर छलांग लेते हो, क्षणभर को उड़ते हो आकाश में, तब तुम्हें ऐसा लगेगा कि ये ऊंचाइयां मेरी तो नहीं हो सकतीं; तो तुम सोचोगे कि शायद किसी और की, किसी और ने दिखा दीं। लेकिन स्मरण रखना, तुम्हारी ही ऊंचाइयां हैं, तुम्हारी ही नीचाइयां हैं; मुझ पर मत थोपना। क्योंकि उस थोपने में भ्रांति हो जाती है। उस थोपने में बड़ी भूल हो जाती है।
हां, मेरी निकटता में तुम्हें कुछ दिखायी पड़ सकता है। तो न तो इस दर्पण की पूजा करना। क्योंकि तुम सोचोगे, यह गंध इसी दर्पण से उठी; यह स्वाद इसी दर्पण से आया। इस दर्पण की पूजा में मत पड़ना। और न नाराज होकर इस दर्पण को तोड़-फोड़ देना। इन दोनों से बचना।

आखिरी सवालः आपने कहा कि संन्यास सत्य का बोध है। फिर क्या संन्यास
के लिए गैरिक वस्त्र और माला भी अनिवार्य हैं? और क्या कोई व्यक्ति बिना दीक्षा लिए आपके बताए मार्ग पर नहीं चल सकता है? कृपाकर मार्गदर्शन करें।

मार्गदर्शन के बिना भी चलो न! मार्गदर्शन की क्या जरूरत है? जब दीक्षा के बिना चल सकते हो... । दीक्षा और क्या है? अत्यंत समीपता से लिया गया मार्गदर्शन है। बहुत पास से, बहुत करीब से, बहुत पास से सुना गया मार्गदर्शन है। श्रद्धा से सुना गया मार्गदर्शन है। दीक्षा और क्या है? मुझसे पूछते हो, मार्गदर्शन दें। तुम लेने को तैयार हो? वही लेने की तैयारी तो संन्यास की घोषणा है कि मैं तैयार हूं, आप दें। मेरी झोली फैली है, आप भरें। फिर मैं अगर कंकड़-पत्थर से भी भर दूं, तो भी अगर तुमने श्रद्धा से स्वीकार किया हो तो वे कंकड़-पत्थर तुम्हारे लिए हीरे-मोती हो जाएंगे। लेकिन अगर तुमने अश्रद्धा से झोली फैलायी हो और हीरे-मोतियों से भी भर दूं, तो कंकड़-पत्थर हो जाएंगे। क्योंकि तुम्हारी श्रद्धा बड़ी शक्ति है। तुम्हारी श्रद्धा बड़ा रूपांतर करनेवाली ऊर्जा है।
सब कुछ तुम पर निर्भर है, अंततः तुम पर निर्भर है। अगर पात्र गलत हो, अगर पात्र दूषित हो, अगर पात्र गंदा हो, तो उसमें फिर शुद्ध जल न भरा जा सकेगा। मैं तो शुद्ध ही ढालूंगा, लेकिन वह तुम तक पहुंच न पाएगा। सब कुछ तुम पर निर्भर है। अगर मार्गदर्शन चाहिए, तो करीब आओ।

संन्यास तो सिर्फ करीब आने की तुम्हारी तरफ से घोषणा है। गैरिक वस्त्र, माला तो केवल प्रतीक हैं। लेकिन तुम... और जीवन के अंगों में तुम प्रतीकों को सत्कारते हो या नहीं सत्कारते हो? तुम्हारा किसी से प्रेम हो गया, तो तुम कुछ भेंट ले जाते हो कि नहीं ले जाते हो? फूल ले गये तुम, गुलाब का एक फूल ले गये--अपनी प्रेयसी को देने या प्रेमी को देने। वह प्रेयसी तुमसे पूछे, यह गुलाब के फूल में क्या धरा है? किसलिए ले आए गुलाब के फूल, क्या प्रेम काफी नहीं है? तो तुम भी चौंकोगे। तुम उसे आलिंगन करना चाहो; वह कहे दूर रहो, आलिंगन में क्या धरा है? क्या प्रेम बिना आलिंगन के नहीं हो सकता? तुम उसका हाथ हाथ में लेना चाहो और वह झिड़क दे और कहे, दूर रहो! इस हाथ में हाथ लेने से पसीना ही पैदा होगा, प्रेम कैसे पैदा होगा? प्रेम करो, यह फिजूल की बातें क्यों करते हो? तुम्हें पता है कैसे प्रेम करोगे फिर? फिर प्रेम का कोई उपाय न रह जाएगा।
प्रेम जैसी अपूर्व घटना भी माध्यम चाहती है। नाव चाहती है, जिस पर सवार हो सके। प्रेम तो बड़ा सूक्ष्म है। कहीं स्थूल में जड़ें देनी होंगी; नहीं तो प्रेम टिक न पाएगा।
आकाश में खिले सुंदरतम फूल भी गहरी भूमि में गड़े होते हैं। वे अगर यह
तय कर लें कि आकाश में ही रहेंगे, तो खो जाएंगे। कमल जल के ऊपर उठा हुआ भी, सरोवर की कीचड़ में दबा होता है। अगर कमल कहे, क्या सार है कीचड़ में पड़े होने से? कीचड़ कीचड़ है, मैं कमल हूं। तो टूट जाएगा संबंध। कमल कुम्हलाएगा और मर जाएगा।
तुमने कभी ख्याल किया, किसी ने प्रेम से तुम्हें एक रूमाल भेंट दे दिया; उस रूमाल का मूल्य फिर नहीं रह जाता, अमूल्य हो जाता है! ऐसे बाजार में चार आने में मिलता है। लेकिन तुमसे कोई कहे कि चार आने में दे दो, तो तुम कहोगे, पागल हो गये हो? प्राण चले जाएं, इसे न दे सकूंगा। वह कहेगा, तुम पागल या मैं पागल? चार आने में जितने चाहो बाजार में मिलते हैं। दर्जन से लो तो और भी सस्ते मिलते हैं। क्या पागल हो रहे हो? लेकिन तुम कहते हो, मेरी प्रेयसी की याददाश्त है। या मेरे मित्र की याददाश्त है। किसी ने बहुत भाव से दिया है।
छोटे-छोटे प्रतीक हैं। छोटे-छोटे प्रतीकों पर बसा बड़ा आकाश है। प्रतीक को मत देखो, पीछे छिपे आकाश को देखो।
तुम गये, किसी के चरणों में सिर रखा। क्या सार है? श्रद्धा क्या बिना चरणों में सिर रखे नहीं हो सकती? ठीक! किसी पर तुम्हें क्रोध आ जाता है, तुम क्या करते हो? उठाकर जूता उसके सिर पर मार देते हो। तुम क्या कर रहे हो? श्रद्धा के विपरीत। उसका सिर अपने चरणों में रख रहे हो। क्रोध बिना इसके नहीं हो सकता? क्रोध में जूता उठाने की क्या जरूरत है? जूते और क्रोध का क्या लेना-देना? गाली देने की क्या जरूरत है क्रोध में? क्योंकि प्रेम में स्तुति करने को तुम राजी नहीं। प्रेम में प्रार्थना करने को तुम राजी नहीं। तो फिर क्रोध में गाली भी छोड़ दो!
नहीं, आदमी जहां है, वहां आदमी पृथ्वी और आकाश का मिलन है; शरीर और आत्मा का मिलन है; स्थूल और सूक्ष्म का मिलन है। आदमी जहां है, वहां दो जगतों में एकसाथ खड़ा है। जड़ें जमीन में हैं, फूल आकाश में हैं। दोनों जुड़े हैं।
ये गैरिक वस्त्र तो केवल प्रतीक हैं। लेकिन जिन्होंने भाव से लिये हैं, उनके जीवन में क्रांति हो जाएगी। मैंने तो निश्चित भाव से दिये हैं। लेनेवाले पर निर्भर है। यह माला तो बस प्रतीक है। इस माला में कुछ भी धरा नहीं।
परसों एक मित्र पूछते थे--संन्यास उन्होंने लिया, भाववाले व्यक्ति हैं। सरलचित्त हैं--पूछने लगे, इस माला का वैज्ञानिक कारण क्या है? वैज्ञानिक कारण माला का हो ही कैसे सकता है? वैज्ञानिक कारण--और माला का! कोई भी कारण वैज्ञानिक नहीं हो सकता माला का--कारण धार्मिक है। कारण आत्मिक है, वैज्ञानिक नहीं है। तो मैंने उनसे कहा, वैज्ञानिक पूछना हो तो "लक्ष्मी" से पूछ लेना। वैज्ञानिक कारण? प्रेम का कहीं कोई वैज्ञानिक कारण होता?

मुल्ला नसरुद्दीन की लड़की के प्रेम में एक युवक पड़ गया। वह आया, उसने मुल्ला को कहा कि आपकी लड़की से मुझे प्रेम हो गया है, मुझे विवाह की आज्ञा दें। मुल्ला ने कहा, पहले सिद्ध करो, प्रेम का कारण क्या है? उस युवक ने कहा, कारण कुछ भी नहीं है, महानुभाव! प्रेम हो गया है। प्रेम में कहीं कारण होता? और जहां कारण हो, वहां प्रेम हो सकता है? कारण हो तो प्रेम हो ही नहीं सकता। कारण हो तो व्यवसाय होता है, धंधा होता है, सौदा होता है। अकारण होता है प्रेम।
तुम्हारा मुझसे प्रेम हो गया है। मेरा तुमसे प्रेम हो गया है। अब कुछ प्रतीक देना जरूरी है। यह माला तो ऐसे समझो जैसे भांवर पड़ गयी। फंसे! यह तो एक तरह का विवाह हुआ। इसका कोई कारण नहीं है। यह प्रेम हो गया। इसका कोई बुद्धियुक्त हिसाब नहीं है। यह कुछ हृदय की बात हो गयी।
तुमने मेरे हाथ में हाथ डाल दिया; मैंने तुम्हारा हाथ अपने हाथ में ले लिया। इसकी याददाश्त के लिए तुम्हें यह माला दे दी कि अब तुम इसे याद रखना। अब तुम अकेले नहीं हो, मैं भी हूं। अब तुम जो करो, मुझे भी याद रखकर करना। अब तुम जो भी बनो, मैं भी जुड़ा हूं। अगर शराबघर जाओ, जाना--लेकिन मुझको भी घसीटोगे। यह माला लटकी रहेगी। यह कहती रहेगी, अकेले नहीं जा रहे हो। यह तुम्हें रोकेगी। यह कई बार तुम्हारे पैर को आगे बढ़ने से रोक लेगी। यह कई बार तुम्हें उस जगह ले जाएगी जहां तुम कभी न गये थे, और उस जगह से रोक देगी जहां तुम बहुत बार गये थे। क्रोधित होने को हो रहे होओगे कि यह माला दिखायी पड़ जाएगी। आग-बबूला होने को जा ही रहे थे, कि हाथ उठाकर मारने को ही थे कि यह गैरिक वस्त्र दिखायी पड़ जाएंगे, कोई भीतर लौट जाएगा। कहेगा, यह तुम क्या कर रहे हो?
अब तुम ही नहीं हो, अब मैं भी तुम्हारे साथ प्रतिबद्ध हुआ। यह एक "कमिटमेंट" है, एक प्रतिबद्धता है। यह मेरा भरोसा है तुम पर। यह मैं कहता हूं कि ठीक है, अब तुम नरक जाओगे तो मुझको भी जाना पड़ेगा। तुम्हारी मर्जी! प्रेम में घसिटन तो होती है। अगर तुम नर्क ही जाना चाहोगे तो ठीक है, मैं भी आऊंगा; लेकिन अब अकेला न छोडूंगा।
ये सिर्फ प्रतीक हैं। इन प्रतीकों का कोई वैज्ञानिक कारण नहीं है। इनकी कोई वैज्ञानिक व्याख्या नहीं हो सकती--जरूरत भी नहीं है।
ये इंकिलाब का मुज्दा है, इंकिलाब नहीं
ये आफताब का परतौ है, आफताब नहीं
यह केवल शुभ समाचार है क्रांति का, यह क्रांति नहीं है। तुमने वस्त्र पहन लिये गैरिक तो कोई क्रांति हो गयी, ऐसा नहीं है--सिर्फ शुभ समाचार है। ये इंकिलाब का मुज्दा है इंकिलाब नहीं
तुमने गैरिक वस्त्र पहन लिये, तो कोई सूरज उग गया, ऐसा नहीं है। यह तो केवल प्रतिबिंब है।
ये आफताब का परतौ है...
ये तो केवल झलक है।
... आफताब नहीं।
और, सूरज से जुड़ा है गैरिक रंग। यह सूरज का रंग है। यह सूरज की पहली किरण का रंग है। यह सूर्योदय की खबर है। यह एक शुभ समाचार है। यह तो शुरुआत है मेरे साथ जुड़ने की। इसे अंत मत समझ लेना।
भड़कती जा रही है दम-ब-दम इक आग-सी दिल में
ये कैसे जाम हैं साकी, ये कैसा दौर है साकी
यह तो तुम राजी हुए, तो शुरुआत हुई। बहुत पीने-पिलाने को है। यह तो तुम निमंत्रण स्वीकार कर लिये।
भड़कती जा रही है दम-ब-दम इक आग-सी दिल में
ये गैरिक वस्त्र तो उस भीतर दिल की आग के बाहर प्रतीक हैं।
ये कैसे जाम हैं साकी, ये कैसा दौर है साकी
यह तो सूचना है सारे जगत को। यह तो खबर है औरों को कि वे जान लें कि अब तुम वही नहीं हो जो कल तक थे। यह तो खबर है औरों को कि अब वे तुमसे अपेक्षा न करें--वैसी अपेक्षाएं जैसी उन्होंने कल तक की थीं। यह तो खबर है औरों को कि अब वे गाली दें, तुम उत्तर न दोगे। यह तो उनको खबर है कि तुम बदल गये, कि

तुम मर गये और नये हो गये, कि तुम्हें सूली लग गयी और तुम्हारा नया पुनर्जन्म हुआ।
बागवानों को बताओ, गुलो-नसरीं से कहो
इक खराबे-गुलो-नसरीने-बहार आ ही गया
जाओ! मालियों को बताओ! खबर कर दो बागवानों को!
बागवानों को बताओ, गुलो-नसरीं से कहो
और फूलों से कह दो।
इक खराबे-गुलो-नसरीने-बहार आ ही गया
जहां कोई आशा न थी वसंत आने की, वहां भी वसंत आ ही गया। यह तो सिर्फ वसंत के आने की खबर है।
जिनके भीतर हिम्मत हो वसंत को झेलने की, इस आग में जलने की और निखरने की, शुद्ध सोना बनने की--मैं राजी हूं।
प्रतीकों पर मत जाओ। यह तो बहाने हैं। इनसे धोखा मत खाओ। यह तो केवल शुरुआत है--अ, ब, स। जैसे छोटे बच्चों को हम पढ़ाते हैं, "ग" गणेश का--पहले पढ़ाते थे, अब पढ़ाते हैं "ग" गधे का। क्योंकि गणेश तो एक "सेकुलर" राज्य में, धर्म-निरपेक्ष राज्य में ठीक नहीं है। गधा प्रतीक है। "ग" गधे का। हालांकि "ग" न गधे का है और न गणेश का। मगर बच्चे को पढ़ाने के लिए कुछ तस्वीर देनी पड़ती है--"ग" गधे का, "ग" गणेश का, कुछ तो; क्योंकि बच्चा "ग" नहीं जानता, गधे को जानता है। गधे के साथ "ग" सीख लेता है। फिर गधा तो भूल जाता है "ग" रह जाता है। फिर ऐसा थोड़े ही है कि जब भी तुम पढ़ोगे, तो कभी "ग" आएगा तो फिर कहोगे "ग" गधे का। तो तुम पढ़ ही न पाओगे। फिर तो गधे और गणेश सब गये। फिर तो "ग" रह जाता है--शुद्ध।
यह तो सिर्फ शुरुआत है--अ, ब, स। "संन्यास" गैरिक वस्त्र का। "संन्यास" माला का। लेकिन यह तो शुरुआत है। धीरे-धीरे जैसे तुम रगोगे-पगोगे, रस-भीगोगे, डूबोगे, संन्यास ही रह जाएगा; गैरिक वस्त्र और माला महत्वपूर्ण न रह जाएंगे। तुम कृतज्ञ रहोगे उनके लिए, क्योंकि उन्होंने यात्रा करवायी।
पहला कदम उनसे उठा। तुम्हारा धन्यवाद उनके प्रति रहेगा। लेकिन तुम उनसे बंधे न रह जाओगे।
ये बंधन तुम्हारी मुक्ति की तरफ पहले कदम हैं।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग दो
तीसरा प्रवचन

ज्ञान है परमयोग

जेण तच्चं विवुज्झेज्ज, जेण चित्तं णिरुज्झदि।
जेण अत्ता विसुज्झेज्ज, तं णाणं जिणसासणे।। 85।।
जेण रागा विरज्जेज्ज, जेण सेए सु रज्जदि।
जेण मित्ती पभावेज्ज, तं णाणं जिणसासणे।। 86।।
जे पस्सदि अप्पाणं, अबद्धपुट्ठं अणन्नमविसेसं।
अपदेससुत्तमज्झं, पस्सदि जिणसासणं सव्वं।। 87।।
जो अप्पाणं जाणदि, असुइ-सरीरादु तच्चदो भिन्नं।
जाणग-रूव-सरूवं, सो सत्थं जाणदे सव्वं।। 88।।
एदम्हि रदो णिच्चं, संतुट्ठो होहि णिच्चमेदम्हि।
एदेण होहि तित्तो, होहिदि तुह उत्तमं सोक्खं।। 89।।

एक यहूदी लोककथा है।
एक फकीर किसी बंजारे की सेवा से बहुत प्रसन्न हो गया। और उस बंजारे को उसने एक गधा भेंट किया। बंजारा बड़ा प्रसन्न था गधे के साथ, अब उसे पैदलयात्रा न करनी पड़ती। सामान भी अपने कंधे पर न ढोना पड़ता। और गधा बड़ा स्वामिभक्त था।
लेकिन एक यात्रा पर गधा अचानक बीमार पड़ा और मर गया। दुख में उसने उसकी कब्र बनायी, और उस कब्र के पास बैठकर रो रहा था कि एक राहगीर गुजरा।
उस राहगीर ने सोचा कि जरूर किसी महान आत्मा की मृत्यु हो गयी। तो वह
भी झुका कब्र के पास। इसके पहले कि बंजारा कुछ कहे, उसने कुछ रुपये कब्र पर चढ़ाये। बंजारे को हंसी भी आयी। लेकिन तब उस भले आदमी की श्रद्धा को तोड़ना भी ठीक मालूम न पड़ा। और फिर उसे यह भी समझ में आया कि यह तो बड़ा उपयोगी व्यवसाय हो गया।
फिर वह उसी कब्र के पास बैठकर रोता, यही उसका धंधा हो गया। लोग आते, गांव-गांव खबर फैल गयी कि किसी महान आत्मा की मृत्यु हो गयी; और गधे की कब्र किसी पहुंचे हुए फकीर की समाधि बन गयी। ऐसे वर्ष बीते, वह बंजारा बहुत धनी हो गया।
फिर एक दिन जिस सूफी साधु ने उसे यह गधा भेंट किया था वह भी यात्रा पर
था और उस गांव के करीब से गुजरा। उसे भी लोगों ने कहा, एक महान आत्मा की कब्र है यहां, दर्शन किये बिना मत चले जाना। वह गया। देखा वहां उसने इस बंजारे को बैठा, तो उसने कहा, अरे! किसकी कब्र है यह? और तू यहां बैठा क्यों रो रहा है? उस बंजारे ने कहा, अब आप से क्या छिपाना, जो गधा आपने दिया था, उसी की कब्र है। जीते जी भी उसने बड़ा साथ दिया, मरकर और भी ज्यादा साथ दे रहा है। सुनते ही फकीर खिलखिलाकर हंसने लगा। उस बंजारे ने पूछा, आप हंसे क्यों? फकीर ने कहा, तुझे पता है, जिस गांव में मैं रहता हूं वहां भी एक पहुंचे हुए महात्मा की कब्र है। उसी से तो मेरा काम चलता है। वह किस महात्मा की कब्र है, तुझे मालूम? उसने कहा मुझे कैसे मालूम, आप बतायें। उसने कहा, वह इसी गधे की मां की कब्र है।
धर्म के नाम पर अंधविश्वासों का बड़ा विस्तार है। धर्म के नाम पर थोथे, व्यर्थ के क्रियाकांडों, यज्ञों, हवनों का बड़ा विस्तार है। फिर जो चल पड़ी बात, उसे हटाना मुश्किल हो जाता है। जो बात लोगों के मन में बैठ गयी, उसे मिटाना मुश्किल हो जाता है। और इसे बिना मिटाये वास्तविक धर्म का कोई जन्म नहीं हो सकता। अंधविश्वास न हटे, तो धर्म का दीया जलेगा ही नहीं। अंधविश्वास उसे जलने ही न देगा।
महावीर के सामने यह बड़े से बड़ा सवाल था। दो विकल्प थे। दोनों खतरनाक थे। सभी बुद्धिमान व्यक्तियों के सामने यही सवाल है। और दो ही विकल्प हैं। एक विकल्प है नास्तिकता का, जो अंधविश्वास को इनकार कर देता है। और अंधविश्वास के साथ-साथ धर्म को भी इनकार कर देता है। क्योंकि नास्तिकता देखती है इस धर्म के ही कारण तो अंधविश्वास खड़े होते हैं। तो वह कूड़े-

कर्कट को तो फेंक ही देती है, साथ में उस सोने को भी फेंक देती है। क्योंकि इसी सोने की वजह से तो कूड़ा-कर्कट इकट्ठा होता है। न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी; वैसा नास्तिक का तर्क है।
नास्तिक बहुत थे भारत में जब महावीर पैदा हुए। चार्वाक की बड़ी गहन परंपरा थी। चार्वाक शब्द ही आता है चारुवाक से। इसका अर्थ होता है, जो वचन सभी को प्रीतिकर लगते हैं। चारु वाक। जो धारणा सभी को प्रीतिकर लगती है। ईश्वर नहीं है, बहुत गहरे में सभी को प्रीतिकर लगता है। क्योंकि ईश्वर नहीं है तो तुम अनुभव करते हो कि तुम स्वतंत्र हो। फिर तुम्हारे ऊपर कोई भी नहीं है। ईश्वर नहीं है, तो फिर न कुछ पाप है, न पुण्य है। फिर जो मर्जी हो करो। चार्वाकों का दूसरा नाम है लोकायत। लोकायत का अर्थ भी होता है, जो लोक को प्रिय है। जो अधिकतम लोगों को प्रिय है।
तो चाहे तुम्हें ऊपर से अधिकतम लोग धार्मिक मालूम पड़ते हों, लेकिन भीतर से जांचने जाओगे तो अधिकतम को तुम नास्तिक पाओगे। भला मंदिर-मस्जिद में मिलें वे तुम्हें, पूजा-प्रार्थना करते मिलें, लेकिन अंतर्तम में वे नास्तिक हैं। वे जानते हैं कि ईश्वर इत्यादि है नहीं। क्योंकि ईश्वर के होने का अर्थ होता है, एक महान उत्तरदायित्व। फिर एक-एक कदम सम्हालकर रखना होगा। फिर पाप और पुण्य का विचार करना होगा। फिर तुम जो कर रहे हो, उसका निर्णय होने को है। रत्ती-रत्ती का हिसाब चुकाना होगा। ईश्वर की मौजूदगी घबड़ाती है। कोई भी तो नहीं चाहता कि सिर पर कोई और हो। ईश्वर के हटते ही मनुष्य अपना खुद मुख्तार हो जाता है। सब कुछ अपने हाथ में आ जाता है। चार्वाकों ने कहा है--ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत। अगर ऋण लेकर भी घी पीना पड़े, कोई फिकिर नहीं। ले लो ऋण। देना-लेना किसको है! बचता कौन है! लौटकर आता कौन है! मरने के बाद कोई हिसाब नहीं है। न कर्म का, न पाप का, न पुण्य का; न शुभ का, न अशुभ का। कर लो जो करना है। एक ही ख्याल रखो, भोग लो, छीन-झपट से सही, चोरी-चपाटी से सही, लेकिन एक ही मूल्य है नास्तिक के सामने--किसी भी तरह भोग लो। चूस लो जीवन में जो मिला है। फिर आना नहीं होगा। बचोगे भी नहीं। मिट्टी, मिट्टी में गिरेगी और मिट जायेगी। तो नास्तिक अंधविश्वास से तो बच जाते हैं, लेकिन साथ ही धर्म से भी बच जाते हैं।
फिर दूसरा सामान्य विकल्प है तथाकथित धार्मिक आदमी का। वह धर्म को तो पकड़ता है, लेकिन धर्म के साथ इतना कूड़ा-कर्कट ले आता है कि उस कूड़े-कर्कट के कारण धर्म के हीरे को खोजना ही मुश्किल हो जाता है।
महावीर जब जन्मे, दोनों विकल्प थे। एक तरफ आस्तिक था। धर्म का जाल था
और उस धर्म में फंसे हुए लोग थे, जो केवल पुरोहित-पंडित के हाथ में फंस गये थे। परमात्मा तक पहुंचने का कोई उनके पास उपाय न था। पंडित ही बीच में उन्हें लूटे ले रहा था। और दूसरी तरफ नास्तिक थे, जिन्होंने पंडित को इनकार किया, साथ ही परमात्मा को भी फेंक दिया था।
महावीर के सामने सवाल था धर्म बच जाए और अंधविश्वास हट जाए। तो उन्होंने एक ऐसे धर्म को जन्म दिया, जिसमें नास्तिकता भी है और आस्तिकता भी। यह उनका अदभुत समन्वय था। इसलिए उन्होंने कहा, ईश्वर तो नहीं है। क्योंकि ईश्वर के साथ अंधविश्वास आने शुरू हो जाते हैं। ईश्वर किसी की पकड़ में आता नहीं। न समझ में आता। ईश्वर इतने दूर का तारा है कि हमारी आंखें उसे देख भी नहीं पातीं। तो स्वभावतः इतने दूर की चीज को समझने के लिए बीच में दलाल खड़े करने होते हैं। यात्रा इतनी लंबी है कि बीच के पड़ाव बनाने पड़ते हैं। वे ही पड़ाव मंदिर और मस्जिद, गुरुद्वारा बन जाते हैं। वे ही पड़ाव पंडित-पुरोहित बन जाते हैं।
तो पुरोहित कहने लगता है, तुम्हें दिखायी नहीं पड़ता, लेकिन मेरा सीधा संबंध है। पुरोहित कहने लगता है, तुम फिकिर मत करो, तुम्हारे लिए मैं प्रार्थना कर दूंगा। तुम चिंता छोड़ो। यह तुमसे न हो सकेगा। तुम बड़े असहाय, बड़े कमजोर, बड़े सीमित हो। तो एक व्यवसाय खड़ा होता है मनुष्य और परमात्मा के बीच में। परमात्मा तो नहीं मिलता, परमात्मा के नाम पर धोखाधड़ी हाथ में आती है।
तो महावीर ने परमात्मा को तो इनकार कर दिया। इसलिए नहीं कि परमात्मा नहीं है। बल्कि इसलिए कि परमात्मा के कारण ही आस्तिक आस्तिक नहीं हो पा

रहा है। महावीर परम आस्तिक थे इसलिए परमात्मा को इनकार कर दिया। क्योंकि देखा, यह औषधि तो बीमारी से भी महंगी पड़ रही है। इस औषधि को लाते ही चिकित्सक बीच में खड़ा हो जाता है। बीच में दुकानदार खड़ा हो जाता है। परमात्मा को इनकार कर दिया। लेकिन परमात्मा को इस तरह इनकार नहीं किया जैसा चार्वाक, लोकायत और नास्तिक करते हैं।
परमात्मा को बाहर तो इनकार कर दिया और भीतर स्थापित कर दिया। कहा, मनुष्य के भीतर है परमात्मा। जो भीतर है, उसके लिए पंडित और पुरोहित की जरूरत नहीं। वह इतने पास है, जगह कहां कि तुम अपने बीच और परमात्मा के बीच में पुरोहित को खड़ा कर लो। इतनी भी जगह नहीं। इतना भी स्थान नहीं। तुम ही परमात्मा हो। इसलिए कहीं दूर का संदेश नहीं है, संदेशवाहक की जरूरत नहीं है। कहीं चिट्ठी-पाती लिखनी नहीं है, इसलिए डाकिये की कोई जरूरत नहीं है। आंख बंद करो, जागो, वह मौजूद है।
इसलिए महावीर ने आत्मा को परमात्मा के पद पर उठाया। यह बड़ी अनूठी दृष्टि थी। इस तरह नास्तिक के पास जो खूबी की बात थी--अंधविश्वास नहीं--वह भी महावीर ने पूरी कर ली और आस्तिक के पास जो खूबी की बात थी--धर्मभाव, श्रद्धा--वह भी पूरी कर ली। ऐसा अदभुत समन्वय न इसके पहले कभी हुआ था, न इसके बाद हुआ।
कुफ्रो-इलहास से नफरत है मुझे
और म.जहब से भी बे.जार हूं मैं
नास्तिकता और अधर्म से भी नफरत है, और मजहब से भी बेजार हूं मैं। और धर्म के नाम पर जो चल रहा है, वह भी मन को बहुत पीड़ा देता है।
कुफ्रो-इलहास से नफरत है मुझे
और म.जहब से भी बे.जार हूं मैं
हूरो-गिल्मां का यहां जिक्र नहीं
नौए-इंसा का परस्तार हूं मैं
और यहां स्वर्ग के सुखों की कोई बात नहीं, मैं तो सिर्फ आदमी का उपासक हूं। महावीर ने आदमी को, "अत्ता" को, आत्मा को सर्वश्रेष्ठ स्थान पर रखा। महावीर ने मनुष्य को जैसी महिमा दी, किसी ने कभी न दी थी।
इस बात को ख्याल में लेकर चलें तो आज के सूत्र साफ हो सकेंगे। क्योंकि
आज के सूत्र मनुष्य की स्तुति में कहे गये सूत्र हैं। आज के सूत्र मनुष्य की महिमा के गीत हैं। इस महिमा की तुम्हें जरा-सी भी झलक मिलनी शुरू हो जाए तो तुम क्षुद्र से अपने-आप मुक्त होने लगोगे। तुम्हें जरा-सी भी याद आ जाए कि तुम कौन हो, जैसे किसी भिखमंगे को याद आ जाए कि अरे! मैं कहां भटक रहा हूं, मैं तो राजपुत्र हूं! जैसे किसी भिखमंगे को याद आ जाए भूला-बिसरा धन, कि जहां बैठकर भीख मांग रहा है, वहीं उसकी तिजोड़ी गड़ी है। याद आते ही--अभी तिजोड़ी खोदी भी नहीं है--लेकिन याद आते ही भिखमंगा भिखमंगा नहीं रहा, उसके हाथ का भिक्षापात्र गिर जाएगा।
मैंने सुना है, एक सम्राट अपने बेटे से नाराज हो गया तो उसे निकाल दिया, राज्य के बाहर। राजा का बेटा था, कुछ और करना जानता भी न था। मजदूरी कर न सकता था। कभी सीखी नहीं कोई बात। कोई कला-कौशल न आता था। तो जब कभी राजा हट जाए राज्य से, तो भिखारी होने के सिवाय कोई उपाय नहीं रह जाता। तो यह कुछ आश्चर्यजनक नहीं कि महावीर और बुद्ध दोनों राजपुत्र थे और दोनों ने जब राज्य छोड़ा, तो दोनों भीख मांगने लगे। यह कुछ आश्चर्य की बात नहीं। राजपुत्र और कुछ जानता नहीं। या तो वह सम्राट हो सकता है, और या भिखारी हो सकता है। एक अति से दूसरी अति पर ही जा सकता है। बीच में कोई जगह नहीं। वह राजपुत्र भीख मांगने लगा किसी दूर की राजधानी में।
वर्षों बीत गये। भूल ही गया यह बात धीरे-धीरे। रोज-रोज भीख मांगो तो कहां, कैसे याद रहे कि तुम सम्राट के बेटे हो! कितनी दूर तक इसे याद रखोगे! रोज-रोज भीख मांगना, भीख का मिलना मुश्किल है। कपड़े उसके जराजीर्ण हो गये, पैर लहूलुहान हो गये, शरीर काला हो गया, अपना ही चेहरा दर्पण में देखे तो पहचान न आये, भूल ही गया, फुर्सत कहां रही? याद करने की सुविधा कहां रही? भीख मांगने से समय कहां कि याद करे, बैठे सोचे कि राजमहल... और फिर वह याद पीड़ादायी भी हो गयी। और उस याद से तो घाव को ही छेड़ना है। सार भी क्या है?

उससे कुछ सुख तो मिलता नहीं, दुख ही मिलता है। कांटे चुभाने से बार-बार प्रयोजन क्या है! तो धीरे-धीरे हम उन बातों को भूल जाते हैं, जिनसे दुख मिलता है। वह भूल गया।
उसका पिता बूढ़ा हुआ। एक ही बेटा था। पछताने लगा बाप। अब मौत करीब आती
है, अब कौन मालिक होगा इस साम्राज्य का? बुरा-भला जैसा था, उसने अपने वजीर भेजे कि उसे खोज लाओ। जिस दिन वजीर उस गांव में पहुंचे जहां वह भिखमंगा भीख मांग रहा था, एक छोटे-से होटल के सामने जहां जुआरी ताश खेल रहे थे वह भीख मांग रहा था, एक टूटे-से ठीकरे में।
राजमहल से आया रथ रुका। वजीर नीचे उतरा। सूरज की किरणों में चमकता हुआ स्वर्ण-रथ! यह वर्षों का भिखमंगापन जैसे एक क्षण में खो गया। वजीर उतरा और उसके पैरों पर गिर गया, और कहा कि आप चलें, पिता ने याद किया है। अभी उस भिक्षापात्र में जो कुछ थोड़े-से पैसे पड़े थे--एक-एक पैसे को मांग रहा था, उसने भिक्षापात्र उसी समय नीचे गिरा दिया। उसकी आवाज बदल गयी। उसने कहा कि जाओ, मेरे लिए ठीक वस्त्रों का इंतजाम करो। जाओ, मेरे लिए ठीक स्नानगृह का इंतजाम करो। अभी मांगता था भीख, तो आवाज में बड़ी दयनीयता थी। उस आवाज और इस आवाज में कोई हिसाब ही न था लगाना। कोई पहचान ही न सकता यह उसी भिखारी की आवाज है। और जब वह बैठ गया रथ पर, तो उसकी आंखों की चमक... एक क्षण में सारा भिखमंगापन खो गया।
तो तुम्हें याद भी आ जाए तुम्हारी महिमा, तुम्हारे स्वरूप की थोड़ी-सी झलक भी, स्वप्न ही सही--अंधेरी से अंधेरी रात में भी तुम्हें सुबह का स्वप्न भी आ जाए--तो रात टूटने लगी। इसलिए महावीर ने ये सूत्र कहे हैं-- "जिससे तत्व का ज्ञान होता है, चित्त का निरोध होता है, तथा आत्मा विशुद्ध होती है, उसी को जिन-शासन ने ज्ञान कहा है।"
जेण तच्चं विवुज्झेज्ज, जेण चित्तं णिरुज्झदि।
जेण अत्ता विसुज्झेज्ज, तं णाणं जिणसासणे।।
जिससे आत्मा विशुद्ध हो, जिससे चित्त का निरोध हो, जिससे सत्य का बोध हो, उसे ही जिन्होंने जाना उन्होंने ज्ञान कहा है। शास्त्र से मिल जाए जो ज्ञान, काम का नहीं। आत्मा में डुबकी लगाकर मिले, तो ही काम का है। शास्त्र से मिला ज्ञान तो बड़ा ऊपर-ऊपर है। उससे तुम बदलते नहीं, बदलते हुए मालूम भी नहीं पड़ते। उससे तुम्हें बदलने का धोखा भर पैदा हो जाता है--एक प्रवंचना। जिस सत्य की प्रतीति तुम्हें नहीं हुई, उस सत्य को तुम अगर पूरा भी करते रहो, तो भी तुम्हारी आत्मा से उसका कोई तालमेल नहीं होता।
मैंने सुना है, एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन को लोगों ने देखा बीच बाजार में सिर के पीछे तकिया लगाये, दोनों हाथों से संभाले चला जा रहा है। धीरे- धीरे लोग इकट्ठे हो गये। भीड़ जमा हो गयी। फिर किसी ने कहा कि मुल्ला, माजरा क्या है? यह कर क्या रहे हो? इस तरह किसी को चलते नहीं देखा--तकिया सिर से लगाये, दोनों हाथों से पकड़े, कर क्या रहे हो? मुल्ला ने कहा, करूं क्या, भाई! डाक्टर ने कहा हृदय का दौरा पड़ा है, तकिये से सिर मत उठाना। तो तकिये से सिर तो उठा ही नहीं सकता हूं!
जिन्होंने शास्त्र से सूचनाएं ली हैं, उनकी सूचनाएं ऐसी ही हैं। वे तकिया बांध लेंगे सिर से, लेकिन करेंगे तो वही जो कर सकते हैं। करेंगे तो वही जो उनके अनुभव में सही मालूम पड़ रहा है। दूसरे के अनुभव से हम ज्यादा से ज्यादा धोखा खा सकते, धोखा दे सकते, लेकिन दूसरे का अनुभव हमारा जीवंत सत्य नहीं बनता है।
तो महावीर शास्त्रज्ञान को ज्ञान नहीं कहते। जिससे तत्व का बोध होता है, जिससे सत्य की प्रतीति होती है। किससे होती है सत्य की प्रतीति? सत्य कहीं लिखा थोड़े ही है। तुम्हारे होने का नाम सत्य है। तुम्हारे अस्तित्व का नाम सत्य है। सत्य कहीं बाहर पड़ा थोड़े ही है कि उसे खोजना है, उघाड़ना है। तुम लिये फिर रहे हो। अपने प्राणों में लिये फिर रहे हो। और जब तक तुम्हारी आंखें बाहर भटकती रहेंगी, तुम वंचित रहोगे। आंख को घर लौटाना है। आंख बंद करनी है, भीतर उतरना है सीढ़ी दर सीढ़ी, एक-एक सोपान। तुम्हारे ही गहन में, तुम्हारी ही गहराई में सत्य पड़ा है। डुबकी लगानी है। यह हीरा

कहीं खोजने नहीं जाना है, यह तो तुम्हारे ही अंतर्तम-सागर में पड़ा है। उस डुबकी लगाने का नाम ही है चित्त का निरोध।
चित्त का अर्थ है, जो बाहर ले जाए। चित्त का अर्थ है, बहिर्गमन। चित्त
का अर्थ है ऐसे विचार, जो बाहर की तरफ तरंगायित करें। बैठे हैं, सोचने लगे धन का--मिल जाए खूब धन... विचार शुरू हो गये। बैठे हैं, सोचने लगे हो जाएं किसी बड़े पद पर... यात्रा शुरू हो गयी। कितनी बार नहीं तुमने अपने मन में सोचा कि राष्ट्रपति हो गये! कितनी बार नहीं तुमने अपने मन में सोचा कि कुबेर हो गये! कितनी बार तुमने अपने मन में ऐसी योजनाएं नहीं बनायीं! फिर चौंककर खुद हंसे हो अपने मन में कि यह भी क्या कर रहा हूं! क्या सार है? लेकिन फिर भी चित्त बार-बार इन्हीं योजनाओं में घूमता है।
चित्त का अर्थ है, वस्तुओं से चेतना का संबंध। और जब तक चित्त है तब तक संबंध बनते चले जाते हैं। तुम राह पर चल रहे हो, पास से एक कार गुजर गयी, तुम्हारे ही पीछे महावीर भी चल रहे हैं, वह कार उनके पास से भी गुजरी। लेकिन तुम्हारा चित्त पैदा कर जाएगी कार, महावीर में कुछ पैदा न होगा। कार दोनों के पास से गुजरी। तुम्हारे पास से गुजरी इतना ही नहीं, गुजरते ही चित्त पैदा हुआ, तुम जुड़े, तुम कार से लगे। कार तो चली गयी, तुम्हारा चित्त पीछा करने लगा। तुमने सोचा, ऐसी कार मेरी हो! कैसे खरीद लूं? क्या उपाय करूं? महावीर के पास से भी वही कार गुजरी, चित्त पैदा नहीं हुआ। कार गुजर गयी, महावीर गुजर गये, दोनों के बीच कोई संबंध न बना। चित्त का अर्थ है, वस्तुओं से संबंध बन जाना। तुम प्रतिपल वस्तुओं से संबंध बना रहे हो। तुम बहुचित्तवान हो।
महावीर पहले मनीषी हैं, जिन्होंने इस शब्द का उपयोग किया, "बहुचित्तवान।" फिर यह शब्द खो गया। उसके पहले भी कभी न था। उसके पहले भी किसी ने ऐसा न कहा था कि आदमी में बहुत चित्त हैं। उसके पहले ऐसी ही धारणा थी कि आदमी में एक चित्त है।
महावीर ने कहा, एक से काम न चलेगा, आदमी भीड़ है। आदमी के मन में जितनी वस्तुओं से संबंध बनाने का राग है, उतने ही चित्त हैं। कार से संबंध बना, एक चित्त पैदा हुआ। मकान से संबंध बना, दूसरा चित्त पैदा हुआ। धन से संबंध बना, तीसरा चित्त पैदा हुआ।
अनंत चित्त हम पैदा कर रहे हैं। चित्त प्रतिपल उठ रहे हैं, तरंगों की भांति, जैसे सागर में लहरें उठ रही हैं। जैसे सागर में लहरें उठती हैं हवा के थपेड़ों से, ऐसे ही वस्तुओं से उठती हुई तरंगें हमारे मन में चित्त को पैदा कर जाती हैं।
महावीर ने कहा, मनुष्य बहुचित्तवान है। फिर ढाई हजार साल तक इस शब्द
का किसी ने कुछ चिंतन नहीं किया। अभी पश्चिम में मनोवैज्ञानिक फिर इस शब्द को खोज लिये हैं। उनको महावीर का कुछ भी पता नहीं है। महावीर बहुत ही अपरिचित हैं पश्चिम को। पश्चिम ने थोड़े शब्द पतंजलि के सुने हैं। बुद्ध के काफी शब्द सुने हैं। उपनिषद और वेद भी पहुंच गये हैं। लेकिन महावीर पश्चिम के सामने बिल्कुल अपरिचित हैं। महावीर का तो उन्हें पता ही नहीं है कि उनके पहले भी एक मनीषी ने इस शब्द का उपयोग किया है। पश्चिम के मनोवैज्ञानिक एक शब्द का उपयोग करते हैं जो ठीक महावीर के बहुचित्तवान का रूपांतर है। वे कहते हैं, मनुष्य "पोलिसाइकिक" है। बहुचित्तवान। जिन्होंने भी मन को बहुत गहरे में खोजा है, उन्हें यह सत्य मिल ही जाएगा कि तुम हजारों चित्त पैदा कर रहे हो। चित्त यानी तरंगें। तरंगें ही तरंगें। उन तरंगों के कारण तुम बाहर भागे जाते हो। उन तरंगों के कारण तुम घर नहीं लौट पाते। रात तुमने कभी देखा, अगर बहुत चित्त उठ रहे हों, बहुत तरंगें उठ रही हों, तो नींद तक संभव नहीं होती। अगर तुमने लाटरी का टिकिट खरीदा है, तो उस रात नींद नहीं आती। चित्त में तरंगें उठने लगीं। अभी लाटरी मिली नहीं है।
मैंने सुना है, एक अदालत में मुकदमा था। दो आदमियों ने एक-दूसरे का सिर खोल दिया था। और मजिस्ट्रेट ने पूछा कि हुआ क्या? किस बात से तुम लड़े? और तुम दोनों पुराने दोस्त हो! उन्होंने कहा, वह भी ठीक है। हम दोनों पुराने दोस्त हैं, लेकिन बात ही ऐसी आ गयी। कुछ शरमाने लगे दोनों बात

बताने में। मजिस्ट्रेट ने कहा, तुम कहो, शरमाओ मत। तो उस पहले आदमी ने कहा कि जरा मामला ऐसा है, शरमाने जैसा ही है, अब हो गया! मैंने इससे कहा कि मैं एक खेत खरीद रहा हूं। और यह बोला कि खरीद तो मैं भी रहा हूं, एक भैंस। मैंने कहा, देख, भैंस मत खरीद, अपनी दोस्ती टिकेगी नहीं। कहीं खेत में घुस जाए, कुछ से कुछ हो जाए। अगर खरीदता ही है तो सोच-समझकर खरीदना। तो यह क्या बोला! यह बोला कि जाओ भी भई, भैंस तो भैंस है। अब उसके पीछे कोई चौबीस घंटे थोड़े ही लगा रहूंगा। कभी तुम्हारे खेत में घुस भी गयी तो घुस भी सकती है। तो मैंने इससे कहा कि मत खरीद भैंस, खेत तो मैंने खरीदने का पक्का ही कर लिया है। तो इसने मुझसे कहा, तू ही मत खरीद खेत, भैंस का तो मैंने बयाना भी दे दिया है। बस बात बढ़ गयी।
तो मैंने कहा अगर खरीदना ही है तो खरीद ले, लेकिन ध्यान रख, मेरे खेत में न घुसे, और मैंने ऐसा रेत पर खेत खींचकर बताया कि यह रहा मेरा खेत। इसमें कभी तेरी भैंस न घुसे, इसका ख्याल रखना। इसने क्या किया, इसने एक लकड़ी से ऐसा इशारा करके रेत में निशान बना दिया और कहा, यह घुस गयी भैंस, कर ले क्या करता है! उसी में, उसी में सिरफुटौअल हो गयी।
अभी किसी ने खेत खरीदा नहीं है! अभी भैंस खरीदी नहीं गयी है! इस अवस्था
का नाम चित्त है। तुम जरा ख्याल करना, कितना चित्त तुम्हारे भीतर है! जो जा चुका, उसको तुम संगृहीत किये बैठे हो, अब वह कहीं भी नहीं है। और जो नहीं हुआ, उसकी योजना बना रहे हो। वह भी अभी कहीं नहीं है। इन दो के बीच तुम दबे हो, तुम्हारी आत्मा दबी है--पिस रही है। दो पाटन के बीच में साबित बचा न कोय।
एक तुम्हारा अतीत है, जो जा चुका। किसी ने कभी गाली दी थी बीस साल पहले, वह अभी भी ताजी है तुम्हारे भीतर। शायद वह आदमी भी जा चुका हो। वह गाली तो निश्चित ही जा चुकी है। शायद वह आदमी क्षमा भी मांग चुका हो। मुल्ला नसरुद्दीन और उसके मित्र में कुछ झंझट हो गयी थी। वर्षों बीत गये उस बात को, लेकिन जब भी मिलना होता है तो मुल्ला उसे याद दिलाता है कि ख्याल रखना! आखिर एक दिन उसने कहा कि देखो मुल्ला, कितनी बार तुमसे क्षमा मांग चुका, और कितनी बार तुम क्षमा कर चुके, और कितनी बार तुम मुझसे कह चुके कि ठीक है, भुला दी बात, क्षमा कर दी, फिर तुम याद क्यों दिलाते हो? मुल्ला ने कहा, मैंने भुला दी, वह ठीक है, लेकिन तुम मत भूल जाना, इसीलिए याद दिलाता हूं।
लेकिन जब दूसरे को याद दिलानी पड़े, तो खुद भी याद रखनी ही पड़ती है। भूलोगे कैसे? अतीत है, उसे हम सम्हाले हैं। अब कहीं भी नहीं है, सिर्फ स्मृति में पड़े रह गये दाग, सिर्फ स्मृति पर खिंची रह गयी कुछ रेखाएं। अस्तित्व में उन रेखाओं की अब कोई भी जगह नहीं है। अस्तित्व अतीत का कोई हिसाब ही नहीं रखता। अस्तित्व का कोई इतिहास नहीं है। अस्तित्व सदा ताजा और नया है। वह अतीत को ढोता ही नहीं। कल जो बीत गया, उसका उसे कुछ पता ही नहीं।
पूछो फूलों से, पूछो वृक्षों से, पूछो बादलों से, पूछो छोटे-छोटे बच्चों से, जो अभी अस्तित्व के बहुत करीब हैं। अभी नाराज था बच्चा और कहता था कभी तुमसे बोलेंगे न, और क्षणभर बाद तुम्हारी गोदी में बैठा है। भूल ही गया! याद ही न रही! बच्चा अभी निर्मल है। अभी चित्त बहुत सघन नहीं। तो या तो तुम्हारे चित्त में अतीत है, जा चुका, नहीं कहीं है अब, बस तुम्हीं ढो रहे हो, और या भविष्य है, जो अभी हुआ ही नहीं। कहीं भी नहीं है, बस तुम ही योजना बना रहे हो। इन दो पाटन के बीच, इन दो के दबाव के बीच चित्त पैदा होता है।
चित्त-निरोध का अर्थ है, इन दोनों पाटों को हटा देना। अतीत को जाने दो;
जो गया, गया। और जो आया नहीं, नहीं आया। तुम बस वर्तमान में रह जाओ। वर्तमान में चित्त नहीं होता। इस क्षण कहां है चित्त? जरा-सी तरंग उठी भविष्य की, आया। जरा-सी याद आयी अतीत की, आया। तो स्मृति में और कल्पना में है चित्त। ठीक वर्तमान के क्षण में चित्त नहीं है। ठीक वर्तमान के क्षण में चित्त का निरोध है। महावीर कहते हैं, जहां चित्त-निरोध होता है, वहीं

आत्मा विशुद्ध होती है। जब चित्त नहीं रहा, तो आत्मा में कोई अशुद्धि न रही। चित्त आत्मा का मैल है। चित्त आत्मा की अशुद्धि है।
"जेण तच्चं विवुज्झेज्ज"--जिसने तत्व को जाना। या जो तत्व को जानना चाहता है। "जेण चित्तं णिरुज्झदि"--उसे चित्त का निरोध करना पड़ा। उसे चित्त को त्याग देना पड़ा। सत्य को चाहते हो, तो चित्त को दांव पर लगा दो। शास्त्र पढ़ने से यह न होगा। शास्त्र पढ़ने से तो उल्टा चित्त और बढ़ेगा। शास्त्र भी तुम्हारे भीतर तरंगें लेने लगेगा। संसार तो तरंगें लेगा ही, शास्त्र भी तरंगें लेने लगेगा। "जेण अत्ता विसुज्झेज्ज"--और जिसने आत्मा की विशुद्धि जान ली चित्त के निरोध से, "तं णाणं जिणसासणे"--इसी को जिनों ने ज्ञान कहा है।
यह ज्ञान की बड़ी अदभुत व्याख्या हुई। इस ज्ञान का, जिसे तुम ज्ञान कहते हो, उससे कुछ संबंध न रहा। जो विद्यापीठ में मिल जाता है, वह ज्ञान नहीं। जो आत्मपीठ में मिलता है वही ज्ञान। जो बाहर मिल जाता है, सूचना मात्र है। जो भीतर जगता है, वही ज्ञान है। जो दूसरे से मिल जाता है, उधार है, उच्छिष्ट है। जो तुम्हारी आत्मा में ही निखरता है, वही ज्ञान है। महावीर ने सब भांति भीतर जाने का, अंतर्यात्रा का निर्देश किया है।
और जब तक यह न हो, तब तक तुम अंधविश्वास के बाहर न हो सकोगे।
इक न इक दर पर जबीने-शौक घिसती ही रही
आदमीयत जुल्म की चक्की में पिसती ही रही
तुमने बहुत दरवाजे खोजे।
इक न इक दर पर जबीने-शौक घिसती ही रही।
और तुम अपना माथा न मालूम कितने दरवाजों पर घिस चुके हो। तुमने अपने प्रेम को न मालूम कितने चित्तों में उलझाया है। कभी मंदिर, कभी मस्जिद, कब अपने घर आओगे?
इक न इक दर पर जबीने-शौक घिसती ही रही
आदमीयत जुल्म की चक्की में पिसती ही रही
आदमी पिसता ही रहेगा, तुम पिसने की ही तैयारी कर रहे हो।
अहले-बातिन इल्म से सीनों को गरमाते रहे
जिहल के तारीक साये हाथ फैलाते रहे
--और तथाकथित ब्रह्मज्ञानी बातों से लोगों के हृदय को गरमाते रहे। अहले-बातिन इल्म से सीनों को गरमाते रहे
--लेकिन वह गर्मी ज्यादा देर टिकने वाली नहीं। वह तुम्हारे ईंधन से नहीं आती।
अहले-बातिन इल्म से सीनों को गरमाते रहे
बातें तो बहुत चलती रहीं ब्रह्मज्ञान की। वेदों की कोई कमी है? शास्त्रों की कोई कमी है? कितने लोग वेद को दोहराते रहे तोतों की भांति! और थोड़ी-बहुत गर्मी भी आ जाती है दोहराने से, लेकिन टिकती नहीं। जब तक तुम्हारे भीतर की आग न जले, जब तक तुम्हारी आत्मा प्रज्वलित न हो, तब तक यह उधार गर्मी काम आने वाली नहीं।
अहले-बातिन इल्म से सीनों को गरमाते रहे
जिहल के तारीक साये हाथ फैलाते रहे
और अंधेरा बढ़ता ही गया, अज्ञान बढ़ता ही गया। वेद भी बढ़ते गये, शास्त्र
भी बढ़ते गये और अज्ञान भी बढ़ता गया। चमत्कार है! आदमी ने जितना जाना, उतना आदमी अज्ञानी हो गया। चमत्कार है! आज से ज्यादा गहन अज्ञान कभी भी न था। और आज से ज्यादा ज्ञान कब रहा? रोज नया ज्ञान पैदा हो रहा है, रोज नये शास्त्र रचे जा रहे, रोज नयी सूचनायें अवतरित हो रही हैं, लेकिन आदमी का अंधेरा मिटता नहीं। जरूर कहीं भूल हो रही है।
जिसे हम ज्ञान समझते हैं वह ज्ञान नहीं है। सूचना मात्र है। अगर सूचना की तरह ही उसे लो, तो खतरा नहीं है। ज्ञान की तरह लिया, तो खतरा हो जाएगा। मैं तुमसे बोल रहा हूं, जो मैं तुमसे कह रहा हूं वह मेरे लिए ज्ञान है। कहते ही तुम्हारे लिए सूचना हो गया। जो मैं कह रहा हूं, वह मैंने जाना, लेकिन जो मैं कह रहा हूं, वह तुमने सुना। इसको ही तुम सब कुछ मत समझ लेना। इससे इशारे लेना जरूर, इससे उत्साह लेना जरूर, इससे प्रेरणा लेना जरूर,

इससे प्यास लेना जरूर, लेकिन इसी को सब कुछ मत समझ लेना। ये इशारे ऐसे ही हैं जैसे मील के पत्थरों पर निशान बना होता है तीर का--और आगे।
मील के पत्थर को छाती से लगाकर मत बैठ जाना। मील का पत्थर तो यात्रा
पर बढ़ाने को है, सूचना मात्र है। मंजिल नहीं है। कितना ही प्यारा मील का पत्थर मिल जाए, तो भी उसे सीने से लगाकर मत बैठ जाना, उससे मिली गर्मी काम न आयेगी। उससे मिली गर्मी धोखा हो जायेगी।
"जिससे जीव राग-विमुख होता है, श्रेय में अनुरक्त होता है, और जिससे मैत्री-भाव बढ़ता है, उसी को जिन-शासन ने ज्ञान कहा है।"
जेण रागा विरज्जेज्ज, जेण सेए सु रज्जदि।
जेण मित्ती पभावेज्ज, तं णाणं जिणसासणे।।
एक-एक शब्द बहुत ध्यानपूर्वक भीतर लेना।
"जिससे जीव राग-विमुख होता है... ।"
ज्ञान की कसौटी दे रहे हैं महावीर। इसको कसते रहना। अगर तुमने बहुत जान लिया और वह जाना हुआ तुम्हें राग से विमुख नहीं करता, तो महावीर कहते हैं, वह जाना हुआ थोथा है, धोखा है, उधार है, बासा है। उसे छोड़ दो। इससे तो जानना बेहतर कि तुम नहीं जानते हो। कम से कम सचाई तो होगी। कसौटी क्या है ज्ञान की? जिससे राग-विमुखता पैदा हो।
राग को समझें।
राग का अर्थ होता है, किसी भी वस्तु, किसी भी व्यक्ति के साथ ममत्व का भाव बांधना; कहना मेरा। मेरा मकान, तो राग हो गया। मकान में रहने में कुछ अड़चन नहीं है, "मेरे" में मत रहना। मकान में खूब रहना, कुछ हर्जा नहीं है। लेकिन मकान को मकान रहने देना, तुम तुम रहना, दोनों के बीच में "मेरे" का सेतु मत बनाना।
चित्त का अर्थ है, जो तुम्हारा नहीं है उसे अपना बनाने की अभीप्सा, आकांक्षा। और राग का अर्थ है, जो तुम्हें मिल गया है, उसे अपना मान लेने की स्थिति। कहा, मेरा मकान, मेरी पत्नी, मेरा पति, मेरा भाई, मेरी बहन। जहां मेरा आया, मम जहां आया, ममत्व आया, वहीं राग निर्मित हुआ।
राग बंधन है। जो जानते हैं वे तो यह भी न कहेंगे कि मेरा शरीर। वे तो कहेंगे, शरीर पृथ्वी का है। जल, वायु, आकाश का है, मेरा क्या? मैं नहीं था, तब भी था। मैं जब नहीं रहूंगा, तब भी होगा। मेरा क्या है?
वक्त की समी-ए-मुसलसल कारगर होती गयी
जिंदगी लह.जा-ब-लह.जा मुख्तसर होती गयी
सांस के पर्दों में बजता ही रहा साजे-हयात
मौत के कदमों की आहट तेजतर होती गयी
यह शरीर बना रहेगा, यह श्वास भी चलती रहेगी, तुम जीवन के भ्रम से भी भरे रहोगे और मौत रोज करीब आयी चली जाती है।
सांस के पर्दों में बजता ही रहा साजे-हयात
जिंदगी का संगीत बजता ही रहा सांसों में। और मौत?
मौत के कदमों की आहट तेजतर होती गयी
तुम्हारी श्वास भी तुम्हारी नहीं। तुम्हारी देह भी तुम्हारी नहीं। जैसे-जैसे गहरे जाओगे, वैसे-वैसे पाओगे मेरा कुछ भी नहीं, मेरे अतिरिक्त मेरा कुछ भी नहीं। मन भी मेरा नहीं है। वह भी बाहर की तरंगों से आता है। देह भी मेरी नहीं, वह भी बाहर से बनती है और बाहर ही खो जाएगी। आखिर में बच रहता है साक्षीभाव, बस वही मेरा है।
राग में बहोगे, तो शरीर मेरा है; शरीर से जो जुड़े हैं, जिनसे रक्त का संबंध है, वे मेरे हैं; जिनसे प्रेम का, वासना का संबंध है, वे मेरे हैं; जिनसे काम-धंधे का संबंध है, वे भी मेरे हैं--मेरा नौकर, मेरा मालिक; जिनसे किसी और तरह के संबंध हैं--मेरा डाक्टर, मेरा इंजीनियर; जैसे-जैसे तुम इस "मेरे" को बढ़ाते चले जाते हो, यह बड़ा होता चला जाता है। यह सारा संसार तुम्हें "मेरा" मालूम पड़ सकता है। जितना तुम्हारा "मेरे" का फैलाव होगा, उतने ही गहन अंधकार में तुम उतरते जाओगे। दीया उतना ही अंधेरे में खो जाएगा। ऐसा समझो, बादल है "मेरे" का; सूरज है "साक्षीभाव" का। जितना मेरा और मेरे के बादल तुम्हारे चारों तरफ होंगे, सूरज उतना ही ओट में हो जाएगा।

हटाओ बादलों को। ज्ञान की कसौटी महावीर कहते हैं यही है--"जेण रागा विरज्जेज्ज।" जिससे राग गिरने लगे। जिससे मेरे की भ्रांति टूटने लगे।
अब यह बड़ा विरोधाभासी वक्तव्य है, लेकिन परम मूल्य का है। जैसे-जैसे मेरे का भाव गिरेगा वैसे ही वैसे तुम्हें मैं का अनुभव होगा कि मैं कौन हूं। तुम्हें अभी इसका कुछ भी पता नहीं। तुम्हें बिल्कुल पता है कि मेरे कौन हैं। मैं कौन हूं, इसका कोई भी पता नहीं।
तुमसे अगर कोई पूछे आप कौन हैं, तो तुम बताते हो मैं फलां का बेटा हूं।
यह भी कोई बात हुई! वह पूछता है, आप कौन हैं, आप पिता की बता रहे हैं। वह पूछता है, आप कौन हैं, आप कहते हैं, मैं डाक्टर हूं! डाक्टरी आपका धंधा होगी, आप डाक्टर नहीं हो सकते। वह पूछता है, आप कौन हैं, आप कहते हैं, मैं ब्राह्मण हूं, हिंदू हूं, मुसलमान हूं, ईसाई हूं, जैन हूं। यह आपकी पैदाइश का संयोग होगा, आप नहीं। कुछ अपनी कहो! मुश्किल हो जाएगी। क्योंकि हमें तो कुछ पता ही नहीं।
हम तो जब भी "मैं" की कोई परिभाषा करते हैं, तो मेरे से करते हैं। मेरे
का हमें पता है। मैं का हमें कोई पता नहीं। और जिसे मैं का ही पता नहीं, उसके मेरे का क्या भरोसा! जिसे अपना ही पता नहीं, उसे और क्या पता होगा! यह अपना ही पता नहीं जो कि प्राथमिक होना चाहिए, तो बाकी तो सब द्वितीय है। पहली ही बुनियाद भ्रांत हो गयी, तो सारा भवन भ्रांत हो जाता है। महावीर कहते हैं, मेरे को छोड़ते-छोड़ते जब मैं ही बचता है--शुद्ध मैं--उसको ही महावीर ने आत्मा कहा है। शुद्धतम मैं। जहां मेरे की कोई रेखा भी नहीं रही। मेरे की कोई कालिख न रही। कोई बादल न रहा आकाश में। नीला, खाली, कोरा, आकाश! सूरज तब बड़ा प्रगट होकर, प्रखर होकर स्पष्ट होता है।
"और जिससे श्रेय में अनुरक्त होता है।"
जेण सेए सु रज्जदि।
दुनिया में दो हैं यात्राएं--प्रेय और श्रेय। साधारणतः जो अज्ञान में डूबा है, वह प्रेय में अनुरक्त होता है। वह कहता है, जो प्रिय है, वही मैं करूंगा। जिसको ज्ञान की पहली किरण उतरने लगी, वह कहता है, जो श्रेय है वही करूंगा। क्या फर्क है? प्रेय तो होता है मन का विषय और श्रेय है चैतन्य का विषय। जो ठीक है, वही करूंगा। जो सत्य है, वही करूंगा। जो शुभ है, वही करूंगा। श्रेयस ही मेरा जीवन होगा। यही साधुता का लक्षण है।
साधु का अर्थ नहीं कि भाग जाओ घर से। साधु का अर्थ है, श्रेय को साधो। प्रेय से श्रेय को ऊपर रखो।
कल एक युवक मेरे पास आया। उसने कहा, ध्यान करने आया हूं। लेकिन ध्यान मुझे प्रीतिकर नहीं मालूम पड़ता। होता ही नहीं मन करने का। अच्छा नहीं लगता करना। तो अब सवाल है, अगर मन को सुनना है तो फिर ध्यान न हो सकेगा। मन कहता है यह क्या कर रहे हो? इतनी देर ताश के पत्ते ही खेल लेते, तो थोड़ा रस आता। इतनी देर सिनेमा में ही बैठ गये होते, तो थोड़ा रस आता। इतनी देर मित्रों से गपशप ही कर ली होती। यह भी क्या! क्या कर रहे हो यहां, समय क्यों खो रहे हो? जीवन भागा जा रहा है। भोग लो। मन हमेशा प्रेय की तरफ उत्सुक करता है। वह कहता है, जो प्रीतिकर है, वह करो। लेकिन मन के लिए जो प्रीतिकर है, वही नर्क सिद्ध होता है आत्मा के लिए। और मन के लिए जो प्रीतिकर है, वही आत्मा के लिए जहर सिद्ध होता है। प्रेय को मान-मानकर ही तो हम भटके हैं इतने जन्मों तक।
तो महावीर कहते हैं ज्ञान की किरण आयी, इसका प्रमाण होगा कि श्रेय ऊपर आने लगा। अब तुम यह नहीं कहते कि मन क्या कहता है वह करेंगे। अब तुम कहते हो, जो करना चाहिए वही करेंगे। प्रारंभ में तो बड़ा संघर्ष होगा। मन की पुरानी आदतें हैं। जल्दी पीछा न छोड़ेगा। मन के पुराने संस्कार हैं, वह बार-बार तुम्हें पुरानी ही धारणाओं में खींच लेगा। लेकिन संघर्ष करना होगा। मन से ऊपर उठना होगा। और धन्यभागी हैं वे जो मन से थोड़ा ऊपर उठ जाते हैं। क्योंकि मन के ऊपर उठते ही जीवन का परम धन है। मन के ऊपर उठते ही सौभाग्य है। मन के ऊपर उठते ही परम आशीष की वर्षा हो जाती है। मन के साथ अभिशाप है। मन के शुरुआत में तो सभी चीजें प्रीतिकर मालूम होती हैं, अंत में सभी कड़वी हो जाती हैं।

महावीर ने कहा है, जो प्रारंभ में मीठा हो, जरूरी नहीं कि अंत में भी मीठा हो। और जो प्रारंभ में कड़वा हो, जरूरी नहीं कि अंत में भी कड़वा हो। बहुत-सी औषधियां कड़वी होती हैं लेकिन स्वास्थ्य लाती हैं। और बहुत-सी मिठाइयां मीठी होती हैं और सिर्फ रुग्ण करती हैं। इसलिए चुनाव श्रेय का करना। विवेक से करना, बोध से करना। मन की मानकर मत करना। मन उलझाता है। "जेण रागा विरज्जेज्ज, जेण सेए सु रज्जदि।" जिससे श्रेय सधे, वही ज्ञान है। "जेण मित्ती पभावेज्ज।" और जिससे मैत्री बढ़े, प्रेम बढ़े, वही ज्ञान है। निश्चित ही पंडित का ज्ञान प्रेम को बढ़ाता नहीं। मुल्ला-मौलवी का ज्ञान प्रेम को बढ़ाता नहीं। घटाता है। हिंदू मुसलमान से घृणा करता है, मुसलमान हिंदू से घृणा करता है। जैन हिंदुओं से, हिंदू जैनों से। यह ज्ञान नहीं हो सकता। यह शास्त्र होगा। शास्त्र लड़वाता है। ज्ञान जुड़वाता है। ज्ञान है परम योग। शास्त्र में संघर्ष है। तुम्हारी मान्यताएं, तुम्हारे विश्वास, तुम्हें दूसरों से खंड-खंड कर देते हैं।
तुमने कभी देखा, तुम किसी आदमी के पास बैठे हो। बिल्कुल सटकर बैठे हो,
और तुमने पूछा, आपका धर्म? और उसने कहा, मुसलमान। तुम जरा सरक गये। अभी तुम बिल्कुल पास बैठे थे। तुम जैन हो, या हिंदू हो, तुम जरा सरक गये। और अगर उसने कहा कि हिंदू हूं, जैन हूं, तो तुम और जरा पास आ गये। आदमी वही है। अभी तुम पास बैठे ही थे, लेकिन अगर उसने कहा मुसलमान, अगर कहा हिंदू, अगर कहा ईसाई, बस एक दीवाल खड़ी हो गयी। सत्य की दीवाल!
बस तुम अलग हो गये। तुमने पक्का कर लिया कि यह आदमी गलत है। ईसाई कैसे ठीक हो सकता है, मुसलमान कैसे ठीक हो सकता है। मैं जैन हूं, बस जैन ही ठीक है।
तुम्हारा विश्वास तो तुम्हें तोड़ रहा है दूसरे से। यह विश्वास फिर ज्ञान नहीं हो सकता। यह तुम्हारी धारणा जोड़ नहीं रही। और महावीर कहते हैं ज्ञान की यह कसौटी है कि वह जोड़ेगा। उससे प्रभाव बढ़ेगा प्रेम का। उससे मैत्री सघन होगी। उससे तुम बेशर्त मैत्री में उतर जाओगे। तुम्हारी कोई शर्त न रहेगी कि तुम कौन हो। यहां हिंदू हैं मेरे पास संन्यासी, मुसलमान हैं मेरे पास संन्यासी, ईसाई हैं, यहूदी हैं, पारसी हैं, जैन हैं, बौद्ध हैं, सिक्ख हैं; दुनिया का ऐसा कोई धर्म नहीं है जिस धर्म से मेरे पास संन्यासी न हों। शायद ऐसा कहीं भी आज घट नहीं रहा है। यह अभूतपूर्व है। लेकिन यह घटना चाहिए सभी जगह। क्योंकि ज्ञान की किरण उतरे और इतना भी न कर पाये, कि अंधविश्वासों की और विश्वासों की दीवाल न गिरा पाये, तो ऐसे ज्ञान का क्या करोगे? दो कौड़ी का है। दीया पैदा हो जाए और अंधेरा न हटे, तो ऐसे दीये को क्या करोगे? वह बुझा है। उसे फेंको। उसे व्यर्थ मत ढोओ। "मैत्रीभाव बढ़े, उसी को जिन-शासन ने ज्ञान कहा है।"
"जो आत्मा को अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, अविशेष तथा आदि, मध्य, और अंतहीन देखता है, निर्विकल्प देखता है, वही समग्र जिन-शासन को देखता है।"
जिसने आत्मा को देख लिया, उसने महावीर के पूरे शास्त्र को देख लिया।
यह बात थोड़ी सुनो।
"जे पस्सदि अप्पाणं।" जिसने अपने को देख लिया।
जे पस्सदि अप्पाणं, अबद्धपुट्ठं अणन्नमविसेसं।
अपदेससुत्तमज्झं, पस्सदि जिणसासणं सव्वं।।
उसने सारा जिन-शास्त्र देख लिया, जिसने स्वयं को देख लिया। ऐसी सीधी- साफ, ऐसी दो-टूक बात किसने कही है! महावीर बहुत स्पष्ट हैं। तुम जैन-शास्त्रों में बैठकर सिर मत पचाते रहना। उतरो अपने में। महावीर कहते हैं, एक ही शास्त्र है पढ़ने योग्य, वह स्वयं की चेतना है। एक ही जगत है प्रवेश योग्य, एक ही मंदिर है जाने योग्य, वह स्वयं की आत्मा है।
"जो आत्मा को अबद्धस्पृष्ट, देह-कर्मातीत जानता है।" देह और कर्म, इन
दो के जो अपने को पार देख लेता है, वही आत्मा को जानता है। "अनन्य।" और जो जानता है कि बस मेरा शुद्ध होना ही, शुद्धतम साक्षीमात्र ही स्वरूप है, स्वभाव है। "आदि, मध्य, अंतहीन।" न तो मेरा कोई प्रारंभ है, न कोई अंत है, न कोई मध्य है। मैं शाश्वत हूं। "अविशेष।" ऐसी बात को जो बिल्कुल जीवन का सामान्य स्वभाव अनुभव करता है, कोई विशेष बात नहीं है यह, यह स्वाभाविक है,

यह आत्मा का गुणधर्म है, ऐसा जो देख लेता है, "निर्विकल्प देखता है।" उसकी आंखों में फिर विकल्प के बादल नहीं होते। विचार के बादल नहीं होते। "वही समग्ररूप से जिन-शासन को देखता है।" हम तो उलझे हैं बहुत छोटी बातों में। हमने तो बड़े छोटे-छोटे पड़ाव बना लिये, उन्हीं को हम मंजिल समझ रहे हैं। मुझे जाना है इक दिन तेरी ब.ज्मे-ना.ज से आखिर
अभी फिर दर्द टपकेगा मेरी आवाज से आखिर
अभी फिर आग उठेगी शिकस्ता साज से आखिर
मुझे जाना है इक दिन तेरी ब.ज्मे-ना.ज से आखिर
जहां से जाना है, वहां बहुत मत पकड़ो।
मुझे जाना है इक दिन तेरी ब.ज्मे-नाज से आखिर
यह महफिल सदा नहीं चलेगी। सपने जैसी है। यहां से उठना ही होगा। यहां
से सभी को उठना पड़ा है। एक न एक दिन, आज नहीं कल, कल नहीं परसों, विदा होना पड़ा है। यहां बहुत राग की जड़ें मत फैलाओ। यहां ऐसे रहो जैसे कोई अतिथिशाला में ठहरता है। विश्रामगृह में रुकता है। यहां बहुत मोह के संबंध मत बनाओ। अन्यथा जाना कठिन हो जाएगा। और अगर न जा सके, तो वापस-वापस फेंक दिये जाओगे। मोह के बंधन ही तुम्हें खींच लाएंगे।
मैंने सुना है... पढ़ता था मैं एक ईसाई फकीर का जीवन। वह पहाड़ों में किसी गुफा की तलाश कर रहा था, एकांत-साधना के लिए। एक गुफा के पास पहुंचा तो देखकर चकित हो गया। वहां उसने एक फकीर को देखा, जिसने अपने को गुफा के भीतर लोहे की जंजीरों से बांध रखा था। उसने पूछा, मैंने बहुत तरह के साधक देखे, तुम यह क्या किये हो? यह तुमने खुद जंजीरें बांधीं, कि कोई तुम्हें बांध गया! उसने कहा, मैंने ही बांधी हैं। किसलिए बांधीं? तो उसने कहा, इस डर से कि कहीं किसी कमजोर क्षण में संसार में वापस न लौट जाऊं। ये जंजीरें मुझे जाने नहीं देतीं। ठोंक दी हैं दीवाल से, इनके खोलने का कोई उपाय नहीं।
मगर यह भी कोई संसार से मुक्ति हुई? अगर लोहे की जंजीरों के कारण किसी गुफा में पड़े रहे, तो यह कोई संसार से मुक्ति हुई? यह नये तरह का बंधन हुआ। यह मोक्ष न हुआ। बोध से मुक्ति होती है। बोध का अर्थ है, जहां से जाना है, वहां से जा ही चुके। जहां से जाना है, वहां घर क्या बसाना। जहां से जाना ही होगा, वहां जड़ें क्या फैलाना। थोड़ी देर का विश्राम है, ठीक है कर लेंगे। लेकिन जाने के वक्त लौटकर न देखेंगे।
अभी फिर दर्द टपकेगा मेरी आवाज से आखिर
अभी हंस रहे हो, अभी रोओगे। तो जब रोना ही है, तो हंसी में बहुत अर्थ नहीं रह गया।
अभी फिर आग उट्ठेगी शिकस्ता साज से आखिर
अभी मेरा साज टूट जाएगा, अभी वीणा टूटी पड़ी होगी, अभी चिता जलेगी।
मुझे जाना है इक दिन तेरी ब.ज्मे-ना.ज से आखिर
यह तेरी महफिल बड़ी प्यारी है, लेकिन जाना है। जाना पड़ेगा। तो यहां ऐसे रहना जैसे कमल रहता है जल में। रहना, लेकिन जल को छूने मत देना। जल में ही रहना और जल से अलिप्त रहना।
"जो आत्मा को इस अपवित्र शरीर से तत्वतः भिन्न तथा ज्ञायक-स्वरूप जानता है, वही समस्त शास्त्रों को जानता है।"
जो अप्पाणं जाणदि, असुइ-सरीरादु तच्चदो भिन्नं।
जाणग-रूव-सरूवं, सो सत्थं जाणदे सव्वं।।
"आत्मा को इस शरीर से तत्वतः भिन्न और ज्ञायक-स्वरूप जानता है।"
यह गहनतम सूत्र है ध्यान का। जिसे भी हम देखने में समर्थ हो जाते हैं,
वह हम से भिन्न है। तुम अपने शरीर को देखने में समर्थ हो, शरीर तुमसे भिन्न है। तुम अपने विचार को देखने में समर्थ हो, विचार तुमसे भिन्न है। तुम सिर्फ अपने साक्षीभाव को देखने में समर्थ नहीं हो, इसलिए साक्षीभाव से तुम अभिन्न हो। उससे तुम अलग नहीं हो सकते। काटते-काटते, हटाते-हटाते जो भिन्न है उसे जानते-जानते आदमी उस अंतिम पड़ाव पर पहुंचता है, जहां केवल वही शेष रह जाता है। जिसको अपने से अलग नहीं किया जा सकता, वह तुम्हारा शुद्ध ज्ञायक-स्वरूप है। उस शुद्ध में ही जीने का नाम धर्म है। और उस

शुद्ध में ही ठहर जाने का नाम मोक्ष है। उस शुद्ध को जिन्होंने जान लिया, वे ही मुक्त हैं। और महावीर कहते हैं, जिसने उस ज्ञायक-स्वरूप को जान लिया, वही समस्त शास्त्रों को जानता है। उसने सब जान लिये कुरान, बाइबिल, वेद, गीता। फिर कहीं कुछ और जानने की जरूरत न रही।
इसे थोड़ा समझो।
सभी रहस्यवादियों ने--महावीर, कृष्ण, बुद्ध, सभी रहस्यवादियों ने--एक बात पर जोर दिया है कि शास्त्र को जानकर तुम स्वयं को न जान सकोगे, लेकिन अगर स्वयं को जान लो तो सभी शास्त्रों को जान सकोगे। शास्त्र की तरफ से जो स्वयं को जानने चला, उसने प्रारंभ से ही गलत यात्रा शुरू कर दी। वह शब्दों में भटक जाएगा, शब्दों के बड़े जंगल हैं। शब्दों का बड़ा बीहड़ जंगल है। उससे लौटना मुश्किल हो जाएगा। सिद्धांतों की बड़ी भीड़ है। तुम उसमें भटक जाओगे। बड़ा तर्कजाल है। उससे छूटना मुश्किल हो जाएगा। फिर, शास्त्र से तुम जो भी जानोगे, वह बुद्धि से जानोगे। अनुभव से नहीं, हृदय से नहीं। बुद्धि तुम्हारी भरती जाएगी, और हृदय खाली का खाली रह जाएगा। तुम्हारे जीवन का संतुलन डांवांडोल हो जाएगा। फिर तुम चाहे आस्तिक बन जाओ, चाहे नास्तिक, कुछ फर्क नहीं पड़ता
पश्चिम में एक बहुत बड़ा नास्तिक हुआ--वोल्तेयर। उसने जिंदगीभर ईश्वर, आत्मा, धर्म, इनका खंडन किया। फिर वह बीमार पड़ा, हृदय का दौरा प.ड़ा। तब वह घबड़ा गया। तब एकदम उसने अपनी पत्नी को कहा, अपने मित्रों को कहा कि जल्दी ही किसी धर्मगुरु का बुलाओ। पर उन्होंने कहा, धर्मगुरु! क्या तुम भूल गये अपने सिद्धांत? उसने कहा छोड़ो सिद्धांत, इधर मैं मर रहा हूं, तुम्हें सिद्धांत की पड़ी है। अभी तक तो जिंदा था, तो कभी मैंने सोचा न था। लेकिन कौन जाने, यह धर्मगुरु ठीक ही हों! मरते वक्त मुझे आगे का इंतजाम कर लेने दो। धर्मगुरु बुलाया गया। संयोग की बात वह ठीक हो गया।
जब वह फिर स्वस्थ हो गया, तो उसने फिर अपने पुराने राग शुरू कर दिये। फिर नास्तिकता! फिर ईश्वर, फिर आत्मा का खंडन! मित्रों ने कहा यह तुम क्या कर रहे हो? उसने कहा वह सिर्फ मौत के भय के कारण, वह कोई असली बात न थी। वह तो सिर्फ भावावेश था। फिर वह अपनी बुद्धि में प्रवेश कर गया--बहुत बड़ा बुद्धिमान आदमी था। बहुत तर्कशील आदमी था। तो उसने उसके लिए भी तर्क खोज लिया कि वह तो भय के कारण जरा कंप गया था। उसको तुम कुछ गौर मत दो।
लेकिन फिर दस-पंद्रह साल बाद वह दौरा पड़ा। तब वह फिर घबड़ाया। उसने कहा, बुलाओ धर्मगुरु को। लेकिन मित्रों ने कहा, अब तुम्हारे भय के कारण हम धोखे में न पड़ेंगे। कहते हैं मित्र घेरा बांधकर खड़े हो गये। उन्होंने कहा, न तो हम धर्मगुरु को भीतर आने देंगे, न तुमको बाहर जाने देंगे। अब धोखा न चलेगा। रोने लगा वोल्तेयर। छाती पीटने लगा कि यह तुम क्या कर रहे हो, मैं मरा जा रहा हूं। इधर मौत खड़ी है, तुम्हें सिद्धांतों की पड़ी है। छोड़ो मैंने क्या कहा था। मैं क्या कहता हूं उसे सुनो। लेकिन मित्रों ने कहा कि अब नहीं। फिर वह ठीक नहीं हुआ, मर गया। लेकिन उसकी अवस्था को हम थोड़ा सोचें।
बुद्धि कहीं भी ले जाती नहीं। जब सब ठीक चल रहा है, तब तो शायद तुम्हें परमात्मा की याद भी नहीं आती। तब धर्म की तुम्हें याद भी नहीं आती। मंदिर के पास से तुम ऐसे गुजर जाते हो जैसे मंदिर है ही नहीं। जब चीजें गड़बड़ हो जाती हैं, हाथ-पैर डांवांडोल होने लगते हैं, मौत करीब आने लगती है, तब तुम्हें धर्म की याद आती है।
लेकिन यह याद बड़ी मूल्यवान नहीं है। अगर तुम फिर ठीक हो गये, तो फिर तुम उसी अकड़ से चलने लगोगे।
बुद्धि से आदमी नास्तिक हो, तो किसी मतलब का नहीं। बुद्धि से अगर आस्तिक हो, तो किसी मतलब का नहीं। क्योंकि बुद्धि तो सिर्फ यंत्र है, तुम्हारी आत्मा नहीं। जब तक आत्मा न डूब जाए, तन्मय न हो जाए; जब तक आत्मा का पोर-पोर न भीग जाए, तब तक कुछ सार नहीं। बुद्धि में सिद्धांतों का होना ऐसे ही है, जैसे किसी को भूख लगी हो, वह पाकशास्त्र पढ़ रहा है। खूब सुंदर भोजन, स्वादिष्ट भोजनों का वर्णन है। कैसे बनाना, यह भी लिखा है। एक से एक व्यंजन, सब ब्यौरे से लिखे हैं। भूख लगी आदमी को, वह पाकशास्त्र पढ़ रहा है।

इससे क्या भूख मिटेगी? इससे शायद भूख थोड़ी बढ़ जाए, यह हो सकता है, लेकिन मिट तो नहीं सकती। और जिसने पाकशास्त्र को ही भोजन समझ लिया, उस अभागे आदमी को हम क्या कहें, वह पागल है। वेद तो पाकशास्त्र है।
भीतर आत्मा के रसायन में पगना होगा, रंगना होगा। भोजन पकाना होगा अपनी ही आत्मा में। उस गहनतम प्रयोगशाला में उतरना होगा। महावीर कहते हैं, तुमने अगर स्वयं को जाना, तो तुम गवाही हो जाओगे सभी शास्त्रों के। तुम कह सकोगे कि हां, वे सभी ठीक हैं। और यह भी ख्याल रख लेना, जिस व्यक्ति ने स्वयं को जाना, वह कहेगा सभी ठीक हैं। वह यह न कहेगा, कुरान ठीक है, बाइबिल गलत है। वह यह न कहेगा, वेद सही हैं और बुद्ध गलत हैं। उसको तो दिखायी पड़ गया अनुभव। अब शब्दों के भेद होंगे, रूप-रेखा अलग होगी, रंग-ढंग अलग होंगे, लेकिन भीतर का प्राण तो उसे समझ में आ गया। उसे मूलसूत्र तो पकड़ में आ गया। अब सभी ठीक हैं। इसलिए महावीर ने एक सिद्धांत को जन्म दिया, जिसको अनेकांतवाद कहते हैं।
अनेकांतवाद का अर्थ होता है, सभी दृष्टियां ठीक हैं। कोई दृष्टि गलत नहीं। महावीर ने दर्शन का बड़ा अनूठा अर्थ किया है। दर्शन का अर्थ है, ऐसी दृष्टि जहां सभी दृष्टियां ठीक हैं। दर्शन का अर्थ है, सभी दृष्टियों को ठीक मानकर सभी दृष्टियों के ऊपर उठ जाना। कोई दृष्टि में बंधा न रह जाए व्यक्ति। तो धर्म का अर्थ तो हुआ, जब व्यक्ति किसी धर्म में बंधा न रह जाए। धार्मिक व्यक्ति हिंदू नहीं हो सकता, मुसलमान नहीं हो सकता, जैन नहीं हो सकता। धार्मिक होना काफी है। काफी से ज्यादा है। यह विशेषण बिल्कुल व्यर्थ है।
"अतः हे भव्य"----अंतिम सूत्र... "तू इस ज्ञान में सदा लीन रह, इसी में सदा संतुष्ट रह, इसी में तृप्त हो, इसी से तुझे उत्तम सुख प्राप्त होगा।" "एदम्हि रदो णिच्चं। हे भव्य, तू इस ज्ञान में डूब।"
"संतुट्ठो होहि णिच्चमेदम्हि। इसी में संतुष्ट हो।"
"एदेण होहि तित्तो। इसी में तृप्त हो।"
"होहिदि तुह उत्तमं सोक्खं। और उत्तम सुख तुझे निश्चित मिलेगा। तू उत्तम सुख हो जाएगा।"
तू महासुख स्वयं हो जाएगा।
जिसे हम संसार समझ रहे हैं और जहां हम सुख खोज रहे हैं, वहां मिलता किसी को कभी सुख? वहां सिर्फ आभास है, मृगमरीचिका है, खिलौने हैं। वही व्यक्ति प्रौढ़ है, जिसे यह दिखायी पड़ गया कि संसार में सिर्फ खिलौने हैं। छोटा बच्चा खेल रहा है। गुड्डा-गुड्डी का विवाह रचाता है। और उसी तरह उत्तेजित होता है जैसे कि तुम असली विवाह में उत्तेजित होते हो। उसको तो तुम कहते हो बच्चा है, खिलवाड़ में लगा है। लेकिन तुम जो विवाह रचाते हो, वह खिलवाड़ से कहीं ज्यादा है? वह भी खिलवाड़ है। थोड़े बड़े पैमाने पर है। छोटे बच्चे बारात निकालते हैं अपने गुड्डे की, तुम राम की बारात निकालते हो। रामलीला करते हो। उसमें सम्मिलित होते हो। लेकिन सब खेल है। खेल से कब जागोगे?
मताए-सोजो-साजे-जिंदगी पैमाना-ओ-बरबत
मैं खुद को इन खिलौनों से भी अब बहला नहीं सकता
कब वह वक्त आएगा, जब तुम कहोगे--जीवन के सुख-दुख, शराब और संगीत... । मताए-सोजो-साजे-जिंदगी पैमाना-ओ-बरबत
मैं खुद को इन खिलौनों से भी अब बहला नहीं सकता
कब वह वक्त आएगा जब तुम कहोगे कि अब इन खिलौनों से भी बहलाने का वक्त
जा चुका। अब मैं इन खिलौनों से भी अपने को बहला नहीं सकता। उसी दिन तुम प्रौढ़ बनोगे। उसी दिन तुम्हारे भीतर बोध का जन्म हुआ। उसी दिन वस्तुतः तुम जन्मे। उसके पहले तक तो एक सपना था।
रुखसत ऐ हमसफरो! सहरे-निगार आ ही गया
खुल्द भी जिस पे हो कुर्बां वो दियार आ ही गया
महावीर कहते हैं, जो इन खिलौनों से जग गया, बात हो गयी। इधर खिलौनों से छूटे कि वहां सत्य हाथ में आया नहीं। इधर सपना टूटा कि वहां आंख खुली नहीं। आंख का खुलना और सपने का टूटना युगपत है। एकसाथ है। ऐसा थोड़े ही है

कि पहले अज्ञान मिटेगा, फिर ज्ञान होगा। अज्ञान मिटा कि ज्ञान हुआ, ज्ञान हुआ कि अज्ञान मिटा। एक साथ! एक पल में! रुखसत ऐ हमसफरो! अलविदा। कहने लगता है वैसा व्यक्ति अपने साथियों से कि अब विदाई आ गयी, अब तुम चलो जिस रास्ते पर तुम चल रहे हो, लेकिन मैं तो विदा हुआ--
रुखसत ऐ हमसफरो! सहरे-निगार आ ही गया
मेरी मंजिल आ गयी।
खुल्द भी जिस पे हो कुर्बां वो दियार आ ही गया
और स्वर्ग भी जिस पर कुर्बान हो जाएं, वह खुशी का नगर, वह अंतःपुर आ गया।
हमने इस देश में आत्मा को एक और नाम दिया है। वह नाम है पुरुष। पुरुष उसी धातु से बनता है, जिससे पुर। पुरुष का अर्थ होता है, भीतर के नगर में रहनेवाला।
रुखसत ऐ हमसफरो! सहरे-निगार आ ही गया
खुल्द भी जिस पे हो कुर्बां वो दियार आ ही गया
इधर खिलौने हाथ से छूटे नहीं, इधर तुम खाली हुए संसार के उपद्रव से, वहां तुम भरे नहीं परमात्मा की परम शांति से।
"हे भव्य, तू इस ज्ञान में सदा लीन रह।"
किस ज्ञान में? शास्त्र के नहीं, शब्द के नहीं। स्वयं के, ध्यान के, अपने अनुभव के अंतर-संगीत में डूब।
"इसी में सदा संतुष्ट रह। इसी में तृप्त हो। इसी से तुझे उत्तम सुख प्राप्त होगा।"
महावीर कहते हैं, उत्तम सुख। जो सुख कभी न छिने, वह उत्तम। जो आए तो आए, फिर जाए न, वह उत्तम। जो आए तो सदा के लिए आ जाए, जो आए तो शाश्वत आ जाए, जो मिले तो फिर जिससे बिछड़ना न हो, वह उत्तम। जिस सुख में बिछड़ना हो, वह केवल दुख का ही एक चेहरा है। जिस हंसी में आंसू छिपे हों, वह रोने का ही एक ढंग है। जहां से हट जाना पड़े, वहां रहना केवल हटने की तैयारी है। जिस योग में वियोग संभव हो, वह योग ही नहीं। वह केवल योग का धोखा है। वह शराब है, नशा है। बोध नहीं, जागरण नहीं। डूबो, अपने में।
देखना ही है जो इंसान में भगवान तुम्हें
आदमी को ही आदमी की न.जर से देखो
चल रहे हैं जो उन्हें चल के डगर से देखो
तैरनेवाले को तट से न, लहर से देखो
डूबना पड़े। यह जो डूब गये, उनकी बातें हैं। जो खो गये परम सागर में, उनके वचन हैं।
चल रहे हैं जो उन्हें चल के डगर से देखो
ऐसे किनारे बैठकर मत देखते रहना। तुम्हें पता न चलेगा उनका आनंद। दौड़नेवाले का आनंद बैठनेवाले को कैसे पता चलेगा! कभी तुम दौड़े हो सुबह के सूरज में, सुबह की ताजी हवाओं में, जब मलय-बहार सब तरफ घेर लेती है, सुबह की नयी सुगंध? तुम दौड़े हो हवाओं में, तुमने किया है संघर्ष? नहीं तो तुम्हें पता नहीं चलेगा, वह जो पुलक, वह जो ताजगी उस क्षण घेर लेती है दा.ैडनेवाले को। तुम बैठे किनारे से देखते रहोगे, दौड़नेवाला भी दिखायी पड़ता है, हवा के झप.ेडे भी दिखायी पड़ते हैं क्योंकि उसके वस्त्र उड़े जा रहे हैं, उसके बाल उड़े जा रहे हैं, और यह भी दिखायी पड़ता है कि बड़ा ताजा और बड़ा प्रसन्न है, लेकिन भीतर उसके जो घट रहा है, वह तो तुम कैसे जानोगे, कैसे देखोगे?
चल रहे हैं जो उन्हें चल के डगर से देखो
तैरनेवाले को तट से न, लहर से देखो
तैरनेवाले का कुछ मजा है। वह तैरनेवाला ही जानता है। वह तुम्हें बताना भी चाहे तो नहीं बता सकता। "गूंगे केरी सरकरा।" उसने स्वाद तो लिया है, लेकिन कैसे कहे? कहने को कुछ उपाय नहीं है। गूंगा ज्यादा से ज्यादा तुम्हारा हाथ पकड़कर खींच सकता है कि आओ, तुम भी रस ले लो, तुम भी चखो इस स्वाद को। तैरनेवाले से तुम पूछो कि क्या है मजा? यह पानी के थपेड़ों में उलझना तेरा, यह पानी के साथ नाच, यह नृत्य लहरों में, क्या है मजा? तो वह कहेगा, आओ, खींचेगा तुम्हारा हाथ। वही महावीर कर रहे हैं। वही सदा

सत्पुरुषों ने किया है। खींचते हैं तुम्हारा हाथ कि आओ। तुम कहते हो, पहले समझाओ। तुम कहते हो, पहले हमें पक्का भरोसा आ जाए कि कुछ सार है, तो उतरेंगे। यहीं अड़चन है।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन तैरना सीखने नदी पर गया था। पैर फिसल गया, काई जमी थी घाट पर, गिर पड़ा। भागा वहां से। जो सिखाने उसे ले गया था उसने कहा, कहां जा रहे हो? नसरुद्दीन ने कहा, हो गया। अब जब तक तैरना सीख न लूं, नदी के पास भी न फटकूंगा। यह तो खतरनाक मामला है, अभी पैर फिसल गया, अगर पानी में चले गये होते तो गये। अब आनेवाला नहीं हूं। अब तैरकर, सीखकर ही आऊंगा। लेकिन उस आदमी ने कहा, तुम तैरना सीखोगे कहां? कोई गद्दे-तकियों पर तो आदमी तैरना सीखता नहीं। कितने ही हाथ-पैर तड़फाओ गद्दे-तकियों पर, उससे तैरना न आएगा। सुविधापूर्ण है वैसा तैरना, खतरा बिल्कुल नहीं है-- अपने गद्दे-तकियों पर हाथ-पैर फेंक रहे हैं, कौन क्या करेगा? डूबने का कोई डर नहीं है। लेकिन डूबने का जहां डर न हो, वहां तैरना आता ही नहीं। जितनी बड़ी जोखम, उतनी ही बड़ी आत्मा का जन्म होता है। वह डूबने से ही तैरने की कला आती है। डूबने की संभावना से ही तैरने का सत्य पकड़ में आता है।
अन्यथा तुम ऊपर-ऊपर रह जाओगे। दौड़नेवाले को किनारे से बैठकर देख लोगे, तैरनेवाले को किनारे से बैठकर देख लोगे। महावीर को ऐसे ही तो देखा तुमने। ऐसे ही तो तुम मुझ को भी देख रहे हो।
चमन को देख तो फिर फूल-पात को न देख...
चमन को देख तो फिर फूल-पात को न देख
यानी पहचान खिलाड़ी को बस बिसात न देख
मेरी डोली की गरीबी पे ओ हंसनेवाले!
मेरी दुल्हन को देख, लौटती बारात न देख
लेकिन दुल्हन बड़ी भीतर है। डोली ही दिखायी पड़ती है, बारात दिखायी पड़ती है। दुल्हन तो डोली में छिपी है। डोली कभी बहुत सजी-संवरी हो, अमीर की हो, तो भी जरूरी नहीं कि दुल्हन भीतर हो ही। डोली गरीब की भी हो, रंग-रोगन सब उड़ गया हो, तो भी दुल्हन हो सकती है।
चमन को देख तो फिर फूल-पात को न देख
तुमने अगर मेरे शब्द-शब्द चुने, तो तुमने फूल-पात चुना। तो तुमने चमन
को न देखा। तो यह बहार जो आयी थी तुम्हारे पास, ऐसे ही गुजर गयी। तुमने खंड-खंड चुने, तुमने समग्र को न देखा।
चमन को देख तो फिर फूल-पात को न देख!
वसंत को जिसने देख लिया, फिर एक-एक कली और एक-एक फूल को थोड़े ही गिनता फिरता है। आ गया वसंत। वसंत को पूरा जिसने देख लिया, सब फूल समा गये उसमें। ध्यान रहे, खंडों का जोड़ नहीं है पूर्ण। खंडों के जोड़ से बहुत ज्यादा है पूर्ण। वसंत सभी फूलों और कलियों का जोड़ नहीं है, वसंत कलियों और फूलों के जोड़ से ज्यादा है। वसंत बहुत विराट है। कलियों और फूलों में तो थोड़ी-थोड़ी झलक पड़ी है, थोड़ी प्रतिछवि आयी है। कलियों और फूलों में तो थोड़ा-सा प्रतिबिंब बना है, थोड़ी लहर गूंजी है।
चमन को देख तो फिर फूल-पात को न देख
यानी पहचान खिलाड़ी को बस बिसात न देख
महावीर हैं, बुद्ध हैं, बड़ी उनकी बिसात है। शतरंज के मोहरे बिछाकर बैठे हैं। तुम मोहरों को ही मत देखते रहना, खिलाड़ी को देख। उनके शब्द तो मोहरे हैं शतरंज के। उनके सिद्धांत भी मोहरे हैं। उसी में मत उलझ जाना। यानी पहचान खिलाड़ी को बस बिसात न देख
मेरी डोली की गरीबी पे ओ हंसनेवाले!
मेरी दुल्हन को देख, लौटती बारात न देख
बहुत कम लोग हैं जिन्होंने महावीर की दुल्हन देखी। लौटती बारात देखी।
तो जैन-शास्त्रों में बड़ा उल्लेख है कि महावीर ने कितना त्याग किया--कितने घोड़े, कितने हाथी, कितने हीरे, कितने जवाहरात! बड़ी लंबी संख्याएं हैं। बड़े शून्यों पर शून्य रखे हैं। त्याग तो दिखा उन्हें, इसलिए बड़ा वर्णन किया है। लेकिन यह लौटती बारात है। इसको तो महावीर छोड़कर चले गये। इसमें तो उन्हें कुछ भी न दिखा।

जिसको महावीर ने छोड़ दिया, उसको जैनियों ने बड़े विस्तार से लिखा है। इनको जरूर कुछ दिखता होगा, अन्यथा कौन कागज खराब करता है। यह लौटती बारात है। यह देख रहे हैं कि कौन-कौन आए थे। प्रधानमंत्री थे बारात में, राष्ट्रपति थे, गर्वनर थे, यह लौटती बारात देख रहे हैं, यह दूल्हे को भूल ही गये हैं! दुल्हन की तो बात ही दूर, दुल्हन तो दूर छिपी है घूंघट में, डोली में। महावीर के त्याग को तो देखा, महावीर के भोग को देखा? महावीर की दुल्हन देखी? महावीर ने जो छोड़ा, वह तो तुमने गिन लिया! महावीर ने जो पाया, उसको गिना? वह तो बिल्कुल चूक गया।
तो महावीर की बड़ी अधूरी तस्वीर लोगों के हाथ में है--और अधूरी ही नहीं, गलत तस्वीर हाथ में है। लोग कहते हैं, महावीर महात्यागी। मैं तुमसे कहता हूं, इतने बड़े महाभोगी कभी-कभी होते हैं। उन्होंने परमसत्य को भोगा।
परमसत्ता को भोगा।
जो अप्पाणं जाणदि, असुइ-सरीरादु तच्चदो भिन्नं।
जाणग-रूव-सरूवं, सो सत्थं जाणदे सव्वं।।
एदम्हि रदो णिच्चं, संतुट्ठो होहि णिच्चमेदम्हि।
एदेण होहि तित्तो, होहिदि तुह उत्तमं सोक्खं।।
किसने उनके उत्तम सुख को देखा? किसने देखा उनके स्वर्ग को? लेकिन वह देखा भी नहीं जा सकता बाहर से। बाहर से तो लौटती बारात दिखायी पड़ती है।
शतरंज के मोहरे दिखायी पड़ते हैं। खिलाड़ी तो भीतर छिपा है। दुल्हन तो डोली में है।
चल रहे हैं जो उन्हें चल के डगर से देखो
तैरनेवाले को तट से न, लहर से देखो।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग दो
चौथा प्रवचन

किनारा भीतर है

पहला प्रश्नः आप एक ही बात कहते हैं अनेक-अनेक ढंगों से। पर जब आपको सुनता हूं तो उस समय यही लगता है कि पहली बार सुन रहा हूं। और इतना आनंद मिलता है कि वापिस घर लौटकर जाने का जी नहीं करता। क्या करूं, मैं क्या करूं कि आपको सुनता ही रहूं!

एक ही बात है कहने को। क्योंकि एक ही सत्य है जानने को। सच पूछो तो एक बात भी कहने को नहीं है। जानने को है कुछ, कहने को नहीं। जागने को है कुछ, सुनने को नहीं।
कुछ है, जो कहा नहीं जा सकता। उसी को कहना है। ढंग बदल जाते हैं। और अच्छा है कि तुम्हें याद रहे कि मैं एक ही बात कह रहा हूं। ढंगों में बहुत मत उलझ जाना। बहुत लोग उलझ गये हैं। कोई हिंदू में, कोई मुसलमान में, कोई जैन में, वे सब ढंग हैं। कहने के भेद हैं। अभिव्यंजनाएं हैं अलग-अलग। अभिव्यक्तियां हैं अलग-अलग। जो कहा गया है, वह एक है। और जो कहा गया है, वह कुछ ऐसा है कि कहा नहीं जा सकता है। इसीलिए बहुत ढंगों से कहना पड़ता है कि शायद एक ढंग चूक जाए, तो दूसरे ढंग से पकड़ में आ जाए। दूसरा चूके, तो तीसरे से पकड़ में आ जाए। इसलिए मैं रोज नये-नये इशारे करता हूं। अंगुलियां अलग-अलग हों भला। जिस तरफ इशारा है, वह निश्चित ही एक है।
अगर तुम कल चूक गये, तो आज मत चूक जाना। यह निरंतर एक ही तरफ सतत इशारा ऐसे ही है जैसे जलधार गिरती है पहाड़ से सख्त चट्टानों पर। जल तो बहुत कोमल है, चट्टान बड़ी सख्त है पर धार गिरती ही रहती है, गिरती ही रहती है, गिरती ही रहती है, एक दिन चट्टान टूट जाती है, रेत होकर बह जाती है। कोमल जीत जाता है सख्त पर। निर्बल जीत जाता बलशाली पर। पहाड़ से गिरते हुए झरने को देखकर तुम्हें कभी याद आया या नहीं--निर्बल के बल राम। नहीं आया, तो फिर तुमने पहाड़ से गिरता झरना नहीं देखा। झरना जीत जाता है, जिसका कोई भी बल नहीं। चट्टान हार जाती है, जिसका सब बल है।
आदमी का मन तो है चट्टान की भांति। बड़ा सख्त। सदियों पुराना। बड़ा प्राचीन। सनातन। सदा से चला आया। और चैतन्य की धार है जल, जलधार की भांति।
अभी-अभी। अभी-अभी फूटी। अभी बूंद-बूंद टपकी। लेकिन जीत जाएगी चैतन्य की धार।
तो रोज-रोज तुमसे एक ही बात कहता हूं, वही जलधार है, वही जलधार है। पहले दिन न टूटेगी चट्टान, दूसरे दिन टूटेगी। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, चट्टान को टूटना ही पड़ेगा। चट्टान पुरानी है, पर निष्प्राण है। जलधार नयी है, पर सप्राण है। ढंग बदल लेता हूं, शब्द बदल लेता हूं। और इसीलिए मैंने सभी शास्त्रों के शब्द ले लिये हैं। क्योंकि जब मुझे यह दिखायी पड़ गया कि एक ही है, तो सभी शास्त्र मेरे हो गये। अब मुझे कोई फर्क नहीं है महावीर और मुहम्मद में, कृष्ण में और क्राइस्ट में। ढंग का फर्क है। दोनों ढंग प्यारे हैं।
जिस ढंग से तुम्हें समझ में आ जाए वही ढंग प्यारा है। ढंग पर मत जाना।
वह जो ढंग के भीतर छिपा है, उस पर ही ध्यान रखना। और वह एक तुम्हें सुनायी पड़ने लगे तो फिर सुनने की भी जरूरत न रह जाएगी। वह एक तुम्हें दिखायी पड़ने लगे, तो फिर दिखाने का कोई प्रयोजन न रह जाएगा। आंखवालों को तो कोई राह नहीं दिखाता। अंधों को दिखानी पड़ती है। स्वस्थ को तो कोई औषधि नहीं पिलाता, रोगी को पिलानी पड़ती है। जागो! उस एक को जिसे मैं दिखाने की कोशिश कर रहा हूं, देखने की कोशिश करो! तो जो मैं कह रहा हूं उसका बहुत मूल्य नहीं है। एक बार समझ में आ जाए, अंगुली व्यर्थ हो जाती है, फिर तो चांद पर नजर टिक जाती है। शास्त्र व्यर्थ हो जाते हैं, सत्य पर आंखें बंध जाती हैं। उसी दिन से फिर सुनने-सुनाने की कोई बात न रही, पढ़ने पढ़ाने की कोई बात न रही।
कबीर ने कहा है--

"लिखा लिखी की है नहीं, देखा देखी बात।"
पर बिना इशारों के आंख तुम्हारी उस तरफ जाएगी न। तो ख्याल रखना, कहीं मेरी अभिव्यंजना ही बाधा न बन जाए। कहीं ऐसा न हो कि तुम सुनने में ही रस लेने लगो। कहीं ऐसा न हो कि सुनने का संगीत ही तुम्हें पकड़ ले। कहीं ऐसा न हो कि सुनना ही तुम्हारी बेहोशी हो जाए। कहीं यह मनोरंजन न बन जाए। जागरण बने तो ठीक, मनोरंजन बने तो चूक गये। तो तुम मेरे पास भी आये और दूर ही रह गये। मेरे शब्दों को मत पकड़ना। उनका उपयोग कर लेना। और उपयोग होते ही उन्हें ऐसे ही फेंक देना जैसे खाली चली हुई कारतूस को फेंक देते हैं। फिर उसे रखने का कोई अर्थ नहीं। चली कारतूस को कौन ढोता है? और जो ढोयेगा, वह किसी दिन मुसीबत में पड़ेगा। वह काम नहीं आयेगी। जिस दिन तुम्हें जरा-सी झलक मिली, उसी दिन शब्द चली हुई कारतूस हो गये।
पूछा है, "एक ही बात आप कहते हैं अनेक-अनेक ढंगों से। पर जब भी आपको सुनता हूं तो उस समय यही लगता है कि पहली बार सुन रहा हूं।"
ऐसा इसलिए लगता है कि जो मैं तुम्हें दिखा रहा हूं, वह तुम्हें अब तक दिखायी नहीं पड़ा। जिस दिन दिखायी पड़ जाएगा, उस दिन फिर ऐसा न लगेगा। फिर मेरे शब्द कितने ही नये हों, महावीर के बहाने कहूं कि मुहम्मद के बहाने कहूं, तुम जल्दी ही पहचान लोगे कि बात वही है। अभी तुम्हें दिखायी नहीं पड़ा है। तुमने सुना है बहुत बार, ऐसी तुम्हारे अंतस-चेतन में झांई भी पड़ी है कि शायद बात वही है, लेकिन शायद! अभी यह प्रगाढ़ होकर तुम्हारा जीवंत अनुभव नहीं बना है।
इसलिए जब भी तुम मुझे सुनोगे, लगेगा नया। नया कुछ भी नहीं है। सत्य नया कैसे हो सकता है! सत्य न नया है, न पुराना है। सत्य तो बस है। नये- पुराने का कोई संबंध सत्य पर नहीं लगता, क्योंकि सत्य समय के बाहर है। नये और पुराने तो समय के भीतर होते हैं। सत्य कुछ ऐसा थोड़े ही है कि कल था और कल नहीं होगा। या आज हुआ है। सत्य तो बस है। आज-कल सत्य के भीतर हो रहे हैं। सत्य आज-कल के भीतर नहीं हो रहा है। जिस क्षण तुम्हें यह बात प्रगाढ़ होने लगेगी, टूटेगी तुम्हारी चट्टान और जलधार को जगह मिलेगी, फिर तुम्हें याद भी न आयेगी क्या पुराना और क्या नया! फिर तो जो है, वस्तुतः वही तुम्हें घेर लेगा। वही तुम्हारे बाहर है, वही तुम्हारे भीतर है।
और जिस दिन यह घटना घट जाएगी, उसी दिन फिर कहीं भी जाओ, मुझसे दूर न जा सकोगे। घर लौटो, तो भी मुझमें ही लौटोगे। यहां आओ, तो मेरे पास आओगे। न आओ, तो मेरे पास आओगे। फिर एक संबंध बनेगा, जो समय और स्थान के बाहर है। फिर एक सेतु जुड़ जाएगा, जो देहातीत है। लेकिन जब तक नहीं सुना है, तब तक बार-बार आना होगा। आने की तकलीफ उठानी होगी। अगर न उठानी हो तकलीफ तो जल्दी करो, चट्टान को टूटने दो। सुनो! सुनो ही मत, गुनो! हाथ ही मत देखो मेरा, उस तरफ देखो जिस तरफ हाथ इशारा कर रहा है। उस अदृश्य को पकड़ने की कोशिश करो। फिर तुम जहां भी होओगे, जैसे भी होओगे, कोई भेद मेरे और तुम्हारे बीच संबंध का न पड़ेगा। फिर मैं शरीर में रहूं, तुम शरीर में रहो, या न रहो, यह जोड़ कुछ ऐसा है कि टूटता नहीं।
अभी तो लौटने में तकलीफ होगी। क्योंकि लौटकर जब तुम जाते हो, अकेले जाते हो, मुझे अपने साथ नहीं ले जाते। मैं चलने को राजी हूं। तुम अपने घर में मेरे लिए जगह ही नहीं बनाते। सुन लोगे मुझे, समझ लोगे मुझे, तो मैं साथ ही आ रहा हूं। मुझसे दूरी गयी, दुई गयी। फिर तुम मुझसे भरे हुए लौटोगे। जब तक ऐसा नहीं, तब तक तो बड़ी तकलीफ होगी।
अभी बज्मे-तरब से क्या उठूं मैं
अभी तो आंख भी पुरनम नहीं है
अभी इस खुशी की महफिल से तो मत उठाओ मुझे, अभी तो आंख भी गीली नहीं हुई।
अभी बज्मे-तरब से क्या उठूं मैं
अभी तो आंख भी पुरनम नहीं है
तो तुम्हें लगेगा जैसे बे-समय, असमय तुम्हें उठा दिया गया है। ऐसा लगेगा जैसे अभी जाना न था और जाना पड़ा। और अगर ऐसे तुम गये, तो घर और भी उदास हो जाएगा। जितना पहले था, उससे भी ज्यादा। मैं तुम्हारे घर को उदास

नहीं करना चाहता। मैं तुम्हारे घर को मंदिर बनाना चाहता हूं। मैं चाहता हूं कि तुम जब घर जाओ, तो तुम्हारे घर का अभिनवरूप प्रगट हो। मैं तुम्हें घर से, संसार से, गृहस्थी से तोड़ नहीं लेना चाहता। वही मेरे संन्यास का अभिनवपन है कि मैं तुम्हें संसार से तोड़ नहीं लेना चाहता। मैं तुम्हें संसार से इस भांति जोड़ देना चाहता हूं कि संसार का जोड़ ही परमात्मा से जोड़ बन जाए। संसार तुम्हारे और परमात्मा के बीच बाधा न रहे, साधक हो जाए।
अगर तुम मुझे ले जा सको--थोड़ा-सा ही सही, थोड़ा-सा वातावरण मेरा, थोड़ी-
सी रोशनी मेरी, थोड़ी-सी श्वासें मेरी--तो घर तुम जाओगे, वही घर नहीं जिसे तुम छोड़कर आये थे। पत्नी-बच्चे तब तुम्हें पत्नी-बच्चे ही न रह जाएंगे, उनमें भी तुम परमात्मा की झलक देख पाओगे। देख ली जिसने परमात्मा की जरा-सी झलक, फिर वह सभी जगह उसे देख पाता है। पत्थर में देख पाता है, तो पत्नी में न देख पायेगा! पत्थर में देख पाता है, तो पति में न देख पायेगा! अब कैसे मजे की घटना है कि लोग जीवंत व्यक्तियों को छोड़कर भागते हैं और पत्थरों में भगवान को देखते हैं। तुम्हें यहां न दिखा, तुम्हें पत्थर में कैसे दिखायी पड़ेगा! और जिसको पत्थर में दिख सकता है, वह भागेगा क्यों? क्योंकि उसे सब जगह दिखायी पड़ेगा।
दृष्टि अगर वस्तुतः जन्मी हो, तो तुम मुझे छा.ेडकर जाओगे ही नहीं। मैं तुम्हारा आकाश हो जाऊंगा। मैं तुम्हें घेरे हुए चलूंगा। और तभी तुम मुझसे जुड़े। तभी तुम मेरे संन्यासी हुए। अन्यथा संबंध बुद्धि का रहेगा। और तब बार-बार अड़चन होगी। जब-जब तुम्हें जाना पड़ेगा--और जाना तो पड़ेगा ही। जिम्मेवारियां हैं। जाना तो प.ड़ेगा ही, दायित्व हैं। जाना तो पड़ेगा ही, तुमने बहुत से भरोसे दिये हैं, आश्वासन दिये हैं। जाना तो पड़ेगा ही, क्योंकि परमात्मा ने तुम्हें कुछ करने के लिए काम दिया है। वह काम तो पूरा करना होगा। भगोड़ापन मैं नहीं सिखाता हूं। भगोड़े मेरे लिए संन्यासी नहीं हैं। भगोड़े में कुछ कमी है। भगोड़ा संसार में परमात्मा को न देख पाया, अंधा है। भगोड़ा वहां से भाग गया, जहां जीवन-रूपांतरण होता, जहां क्रांति घट सकती थी, जहां चुनौती थी।
नहीं, मैं तो तुम्हें वापिस भेजूंगा। तुम्हारी आंख गीली हुई हो या न हुई हो, तुम्हें जाना तो होगा। जब जाना ही है, तो मुझे पीकर जाओ। आंख गीली क्या, हृदय को गीला करके जाओ। और तुम्हारे हाथ में है। अगर तुम प्यासे लौटते हो, तो कोई और जिम्मेवार नहीं है। तुम मुझे दोष न दे सकोगे। नदी बह ही रही थी, तुम झुके नहीं। तुमने अंजुलि न बनायी। तुमने नदी से पानी न भरा। तुम शायद प्रतीक्षा करते थे कि नदी अब तुम्हारे कंठ तक भी आये। नदी तुम्हारे पास से बह रही थी, लेकिन झुकने की तुमने हिम्मत न दिखायी। केवल हिम्मतवर झुक सकते हैं। समर्पण केवल वे ही कर सकते हैं, जिनके पास महासंकल्प है। जो बड़े बलशाली हैं, वे ही केवल झुकने की हिम्मत दिखा पाते हैं। कमजोर तो डरा रहता है कि झुकने से कहीं कमजोरी का पता न चल जाए। अड़ा रहता है, अकड़ा रहता है।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जितना भीतर आदमी हीनभाव से भरा होता है उतना ही अकड़कर खड़ा रहता है कि किसी को पता न चल जाए। झुका, पैरों में झुका, समर्पण किया, कहीं ऐसा न हो कि लोग कहने लगें, अरे, कहां गया तुम्हारा बल! तो हीनग्रंथि से भरा हुआ आदमी हमेशा अपने को श्रेष्ठ मानने की अकड़ रखता है। यह कमजोर का लक्षण है। बलशाली तो झुक जाता है। क्योंकि झुकने से भी उसका बल मिटता नहीं। झुकने से बल बढ़ता है। क्योंकि झुकने से वह और भी ताजा हो जाता है, नया हो जाता है, छोटे बच्चे की भांति हो जाता है। देखा तुमने, तूफान आता है, आंधी आती है, बड़े वृक्ष गिर जाते हैं, छोटे-छोटे घास के पौधे झुक जाते हैं। तूफान चला जाता है, घास के पौधे फिर खड़े हो जाते हैं। तूफान वृक्षों को गिरा देता है, घास को नहीं उखाड़ पाता। घास के पास कुछ बल है, जिसका वृक्षों को पता नहीं। झुकने का बल है। तूफान घास के पौधों को सिर्फ ताजा कर जाता है, हल्का कर जाता है, धूल-धवांस झाड़ जाता है। फिर वापिस खड़े हैं! बड़े वृक्ष गिर गये तो फिर लौट नहीं सकते, खड़े नहीं हो सकते।
बड़े वृक्ष गिरते क्यों हैं? तूफान तो नहीं गिराता। क्योंकि तूफान गिराता होता तो छोटे तो कभी के बह गये होते। नहीं, बड़े वृक्ष तूफान के

खिलाफ अकड़कर खड़े रहते हैं, इसलिए गिर जाते हैं। छोटे वृक्ष तूफान के साथ हो लेते हैं, हवा पूरब जाती है तो पूरब झुक जाते हैं, हवा पश्चिम जाती है तो पश्चिम झुक जाते हैं। छोटे वृक्ष कहते हैं, हम तुम्हारे साथ हैं। बड़े वृक्ष कहते हैं, हम तुम्हारे विरोध में हैं। उसी विरोध में गिर जाते हैं। तुम अगर मेरे साथ हो, तो मैं तुम्हें ताजा कर जाऊंगा। तुम अगर पूरी तरह मेरे साथ हो, तो मेरी आंधी तुम पर से गुजर जाएगी, तुम्हें और हरा कर जाएगी, और नया कर जाएगी। और तुम जहां भी जाओगे, मैं तुम्हारे हृदय में धड़कने लगूंगा। लेकिन अगर तुम मेरे साथ नहीं हो, अकड़े खड़े हो--अकड़ बहुत तरह की होती हैं, किसी ने शास्त्र पढ़ लिया तो अकड़ा खड़ा है। वह कहता है, यह सब हमें मालूम है; किसी ने थोड़े उपवास कर लिये तो अकड़ा खड़ा है। वह कहता है, हम कोई साधारणजन थोड़े ही हैं, इतने उपवास किये, तपस्वी हैं; किसी ने कुछ दान दे दिया तो अकड़ा खड़ा है--इस अकड़ को अपने भीतर देखो। अगर यह अकड़ भीतर रही, तो तुम गीले न हो पाओगे। तो तुम सूखे के सूखे लौट जाओगे। हो सकता है, डर है कि तुम और भी टूटकर लौट जाओ। तो तुम मेरे पास आकर नये तो न हो पाओ, और जराजीर्ण हो जाओ।
तो जब मेरे पास हो, झुको। भरो अंजुलि, पीओ। कोई तुम्हें रोक नहीं रहा है। तुम्हीं न रोको, तो कोई और बाधा नहीं है।
पूछा है कि मैं क्या करूं कि आपको सुनता ही रहूं! एक ही उपाय है, मेरे जैसे हो जाओ। और तो कोई उपाय नहीं है। क्योंकि अंततः तो तुम स्वयं को ही सुनोगे। अंततः तो स्वयं को ही सुनना है। अंततः तो तुम्हारे प्राणों में तुम्हारी ही वीणा का नाद गूंजेगा। तुम मेरी वीणा को सुनकर अपनी वीणा को पहचान लो। तुम मेरी वीणा के तारों को डोलते, कंपते देखकर अपनी वीणा के तारों को भी तरंगित होने दो। तुम मेरे पास वस्तुतः सजग होकर अपनी सोयी हुई संपदा को खोज लो, जगा लो, तो तुम मुझे सुनते रहोगे। क्योंकि फिर तुम जो बोलोगे, वह ठीक वही होगा जो मैं बोल रहा हूं। तुम जो करोगे, वह ठीक वही होगा जो मैं कर रहा हूं। और दूसरा कोई उपाय नहीं है।
अगर तुमने मुझे दूर रखा, अलग रखा, भेद रखा, तो तुम्हें बार-बार लौट-लौटकर मुझे सुनना पड़ेगा। यह तो बंधन हो जाएगा। यह बंधन मैं नहीं चाहता कि तुम बनाओ। मैं चाहता हूं तुम परिपूर्ण मुक्त हो जाओ। पर एक ही उपाय है। जैसा, जो मुझे हुआ, वही तुम्हें हो जाए--हो सकता है। अगर एक बीज फूटकर वृक्ष बन गया, सभी बीज बन सकते हैं। जरा ठीक से भूमि खोजनी है। और हिम्मत खोजनी है भूमि में बिखर जाने की, ताकि अंकुरण संभव हो जाए।
परमात्मा को छिपाये बैठे हो, दबाये बैठे हो। खोलो उसे, फैलने दो उसे। यहां कोई ऐसा है ही नहीं जो परमात्मा को लिये पैदा न हुआ हो। परमात्मा हमारा प्रथम रूप है, और अंतिम भी। परमात्मा हमारा बीज है, और हमारा फूल भी।

दूसरा प्रश्नः घर से चला था तब मन में अनेकों प्रश्न चक्कर काट रहे थे। अब तक आपके तीन प्रवचन सुन चुका हूं। और कल डोली की दुल्हन की बात सुनकर अचानक सारे प्रश्न गायब हो गये। और अब प्रश्न यह है कि ऐसा क्यों और कैसे हुआ? कृपया समझायें।

थोड़ी देर ठहरो, यह भी गायब हो जाएगा। प्रश्न उठ आते हैं जल्दी में। ठहरनेवाले के अपने-आप गायब हो जाते हैं। प्रश्नों के कोई उत्तर थोड़े ही हैं। किसी प्रश्न का कोई उत्तर नहीं है। तुम्हारी समझ बढ़ जाती है, प्रश्न गायब हो जाते हैं। समझ का विकास है, प्रश्नों के उत्तर नहीं।
इसे थोड़ा ख्याल में लेना।
छोटा बच्चा है। खिलौनों से खेलता है। फिर बड़ा हो गया। जब छोटा था, खिलौने छीनते तो झंझट पैदा होती। बिना खिलौनों के सो भी न सकता था। बिना खिलौनों के भोजन भी न कर सकता था। खिलौने ही सब कुछ थे--संगी-साथी, सारा संसार। फिर एक दिन अचानक उन खिलौनों को कोने में छोड़कर बच्चा भूल ही जाता है। याद ही नहीं रहती। क्या हो गया? बच्चा बड़ा हो गया। खिलौनों से खेलने का समय जा चुका। बुद्धि प्रौढ़ हो गयी थोड़ी। थोड़ी समझ ऊपर उठ गयी।

जिस समझ से प्रश्न उठते हैं, अगर उसी समझ में तुम रुके रहे, तो कोई हल नहीं। उस समझ के थोड़े ऊपर उठे कि प्रश्न गये। वस्तुतः सत्संग का यही अर्थ है कि तुम्हारी समझ तुम्हारे प्रश्नों से ऊपर चली जाए। प्रश्न नीचे रह जाएं, बस गये। तुम्हारी समझ जब प्रश्नों से नीचे होती है, तो प्रश्न होते हैं। तुम्हारी समझ जब प्रश्नों से ऊपर उठ जाती है, पंख खोल देती है आकाश में, प्रश्न जमीन पर पड़े रह जाते हैं। फिर कोई चिंता नहीं रह जाती।
इसे ख्याल रखो। असली सवाल प्रश्नों का नहीं है, असली सवाल तुम्हारी चित्त दशा का है। एक खास चित्त दशा में खास तरह के प्रश्न उठते हैं। उसी चित्त दशा को बनाये रखे अगर तुम प्रश्नों को हल करना चाहो, हल नहीं हो सकते। अकसर लोग यही कर रहे हैं। यह असंभव है। चित्त का तो कुछ रूपांतरण नहीं करते। चित्त तो वही का वही रहता है। प्रश्न पूछते हैं, एक उत्तर मिलता है। तुम्हारा चित्त वही का वही, उस उत्तर में से दस प्रश्न खड़े हो जाते हैं। फिर दस उत्तर ले आओ, हजार प्रश्न खड़े हो जाएंगे।
एक स्कूल में ऐसा हुआ। एक छोटा बच्चा भाग-भागकर सिनेमा पहुंच जाता था। शिक्षक परेशान था। कुछ भी पूछो वह किंकर्तव्यविमूढ़ खड़ा हो जाता था। एक दिन उसने यह सोचकर कि चलो कुछ ऐसा पूछें जिसका यह उत्तर दे सके, तो अंग्रेजी के शब्द पूछे कि इनका अर्थ क्या है? वह खड़ा रह गया हक्का-बक्का! वह उनके भी उत्तर न दे सका। शिक्षक ने उसकी सहायता के लिए उसके पड़ोसी विद्यार्थी से पूछा--"ड्रीम" का क्या अर्थ है? उसने कहा, स्वप्न! दूसरे से पूछा--"गर्ल" का क्या अर्थ है? उसने कहा, लड़की। अब तो बात साफ थी। उसने इस लड़के से पूछा--"ड्रीमगर्ल" का क्या अर्थ है? उस लड़के ने कहा, "हेमामालिनी।" एक तल है। उस तल में से बाहर निकलना बड़ा मुश्किल होता है। सारे उत्तर, सारे प्रश्न आखिर तुम्हारी ही बुद्धि के हिस्से बन जाएंगे। उनसे तुम पार न जा सकोगे। इसलिए वास्तविक सहायता उत्तर देने से नहीं होती, वास्तविक सहायता तुम्हारी बुद्धि को नये आयाम, नये स्तर, नये सोपान देने से होती है। जैसे ही तुम एक बुद्धि स्तर से थोड़े ऊपर गये, तो अचानक तुम पाते हो बात खतम हो गयी। प्रश्न सार्थक ही मालूम नहीं पड़ता, उत्तर की कौन तलाश करता है! प्रश्न ही गिर जाता है।
सत्पुरुषों के पास प्रश्नों के उत्तर नहीं मिलते, प्रश्न गिर जाते हैं। समस्याओं का समाधान नहीं होता, समस्याएं विसर्जित हो जाती हैं। थोड़ा रुको। जिन्होंने पूछा है, सरल-हृदय व्यक्ति होंगे। जिन्होंने पूछा है, निष्ठावान व्यक्ति होंगे। तीन दिन ही उन्होंने मुझे सुना है। और कल डोली की दुल्हन की बात सुनकर उनके सारे प्रश्न गायब हो गये। बड़े सरल-हृदय होंगे। उन्हें अपने पंखों का पता नहीं होगा। उड़ सकते हैं आकाश में। जैसे ही जरा-सी ऊंचाई आयी, प्रश्न गये। इस नये प्रश्न को भी मत पूछो। प्रश्न नासमझों के लिए छोड़ दो। समझदार को पूछने को कुछ भी नहीं है। समझदार को तो समझने को है, पूछने को कुछ भी नहीं है। थोड़ा जागो।
दुल्हन की बात सुनकर जैसे उनके भीतर एक नया द्वार खुल गया। खुलना ही चाहिए, अगर मेरी बात ठीक से सुन रहे हो। ये बातें सिर्फ बातें नहीं हैं। ये बातें बहुत कुछ लेकर तुम्हारे पास आ रही हैं। ये बातें बहुत ही गहन संदेश लेकर तुम्हारे पास आ रही हैं। ये बातें प्रतीक हैं। इन प्रतीकों को अगर तुमने अपने हृदय में उतरने दिया, तो न-मालूम कितने बंधनों को खोल जाएंगी, न-मालूम कितनी गांठों को सुलझा जाएंगी।
सरल हो चित्त, सुनने की निर्दोषता हो, बंधे हुए पूर्वाग्रह न हों, तो प्रश्न बच नहीं सकते मेरे पास। बच सकते हैं केवल दो तरह के लोगों के। एक तो उनके जो सुनते ही नहीं। जो बैठे हैं जड़, पत्थर की भांति। या उनके, जो मानकर ही बैठे हैं कि उन्हें पता है, इसलिए सुनने की कोई जरूरत नहीं।
तो या तो सुस्त, अंधेरे में सोये हुए लोगों के प्रश्न नहीं मिटते, या
उन लोगों के जिनको पांडित्य का पागलपन सवार हो गया है। जिनको ख्याल है उन्हें पता है।
प्रश्न दो तरह से उठते हैं। एक तो प्रश्न उठता है जिज्ञासा से। और एक प्रश्न उठता है जानकारी से। जिज्ञासु का प्रश्न तो अगर वह रुका रहे थोड़ी देर तो अपने-आप गिर जाएगा। लेकिन जानकारी से जो प्रश्न उठता है, वह

गिरनेवाला नहीं है। वह जानकारी गिरेगी तभी गिरेगा। तुमने ख्याल किया? कुछ प्रश्न तो तुम्हारे जीवन से आते हैं। वे तो सच्चे प्रश्न हैं। कुछ प्रश्न तुम्हारे शास्त्रीय बोध से आते हैं। वे बिल्कुल झूठे प्रश्न हैं। जब तक तुम्हारा शास्त्र न गिरेगा तब तक वे प्रश्न न गिर पायेंगे। पर जिन मित्र ने यह पूछा है, उनको मैं कहूंगा, उन्हें पूछने की कोई जरूरत नहीं। धीरज रखें। वे उन लोगों में से नहीं हैं, जो अपने को बचाने आये हों। उन लोगों में से हैं, जो मिटाने आये हैं।
जिगर और दिल को बचाना भी है
न.जर आप ही से मिलाना भी है
मुहब्बत का हर भेद पाना भी है
मगर अपना दामन बचाना भी है
उन लोगों में से वे नहीं हैं। उनका दामन मेरे हाथ में आ गया। और वे छुड़ाने वालों में से नहीं हैं। उनको मैं कहूंगा, धीरज रखें। जैसे और प्रश्न गिर गये, यह प्रश्न भी गिर जाएगा। जैसे-जैसे तुम अपने भीतर ऊपर उठने लगोगे, जैसे-जैसे तुम्हारे भीतर जो होना है होने लगेगा, वैसे-वैसे तुम्हारे प्रश्न खोते चले जाएंगे। एक चित्त की दशा है, जिसे निष्प्रश्न कहें, वही ध्यान की दशा है। नहीं कि ध्यानी के सब प्रश्न हल हो जाते हैं, बल्कि ध्यानी के सब प्रश्न गिर जाते हैं। हल करने की आकांक्षा नहीं रह जाती। प्रश्न व्यर्थ हो जाते हैं।
चीज एक है जो अभी खो के अभी खोनी है
बात एक है जो अभी हो के अभी होनी है
जिंदगी नींद है वह जागकर आने वाली
जो अभी सो के अभी सोयी अभी सोनी है
चीज एक है जो अभी खो के अभी खोनी है
अहंकार है नहीं तुम्हारे पास, मगर लगता है--है।
चीज एक है जो अभी खो के अभी खोनी है
खोयी हुई ही है। अहंकार है नहीं किसी के पास, सिर्फ भ्रांति है। जैसे तुमने जेब में घर से पैसे डाले थे और रास्ते में कट गये, लेकिन बाजार में तुम उसी अकड़ से चले जा रहे हो जैसे पैसे जेब में हों। उसी गर्मी से! जेब कट गयी है। लेकिन तुम्हारी अकड़ अभी जिंदा है। क्योंकि तुम्हें ख्याल है कि जेब में पैसे हैं। वह तो तुम जब हाथ डालोगे जेब में तब पाओगे।
चीज एक है जो अभी खो के अभी खोनी है
खो चुके हो--वस्तुतः खो चुके हो ऐसा कहना भी ठीक नहीं, कभी थी ही नहीं। जेब कटी ही हुई है। प्रथम से ही कटी है। मगर तुमने जेब में हाथ नहीं डाला है। मैं तुमसे कहता हूं, तुमसे मैं वही छीन लेना चाहता हूं जो तुम्हारे पास नहीं है। और तुम्हें मैं वही देना चाहता हूं जो तुम्हारे पास है।
चीज एक है जो अभी खो के अभी खोनी है
बात एक है जो अभी हो के अभी होनी है
और एक बात ऐसी है जो हो ही चुकी है, जो सदा से हुई हुई है--तुम्हारी आत्मा--उसका तुम्हें पता नहीं है। जो तुम्हारे पास नहीं है, तुम्हें ख्याल है कि है। और जो तुम्हारे पास है, तुम्हें ख्याल ही नहीं है कि है। बस इतना ही रूपांतरण है। इतनी ही क्रांति है कि तुम्हें दिख जाए कि क्या मेरे पास नहीं है, और क्या मेरे पास है। जरा-सी क्रांति है।
लेकिन उस जरा-सी क्रांति से सारा जीवन रूपांतरित हो जाता है। धागे को सुई में डालना कोई बहुत बड़ी क्रांति थोड़े ही है, लेकिन महावीर कहते हैं, धागा चला जाए सुई में तो फिर गिरकर भी सुई खोती नहीं। जैसे ही तुम्हें यह समझ में आना शुरू हो गया--क्या तुम्हारे पास नहीं है, वैसे ही तुम्हें दूसरी तरफ से यह भी स्पष्ट होने लगेगा, क्या तुम्हारे पास है। भिखमंगापन खोना है। और तुम्हारे सम्राट होने की याद तुम्हें दिलानी है। दुल्हन की बात सुनकर तुम्हें अपने भीतर के सम्राट की थोड़ी-सी झलक आ गयी है।
शरीर डोला है। आत्मा दुल्हन है। संसार डोला है। परमात्मा दुल्हन है।
और तुम नाहक बराती बने हो, तुम दूल्हा बन सकते हो। तुम नाहक ही बरात में धक्के-मुक्के खा रहे हो।

कब तक दूसरों की बरात में सम्मिलित होते रहोगे? कभी महावीर की बरात में सम्मिलित हुए, कभी बुद्ध की बरात में सम्मिलित हुए, कभी कृष्ण की बरात में सम्मिलित हुए, तुम्हें समझ नहीं आयी? चढ़ो अब घोड़े पर बैठो! बहुत दिन हो गये अब, बराती, बराती, बराती, अब दूल्हा बनो! तुम्हारी दुल्हन तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है।
चीज एक है जो अभी खो के अभी खोनी है
बात एक है जो अभी होकर अभी होनी है
बस... उत्तर नहीं दूंगा, इन मित्र को उत्तर नहीं दूंगा। इनसे उत्तर से ज्यादा आशा है। यह तो सुनें, पीयें, यहां पास मेरी हवा को छुएं, डूबें, मिट जाएंगे सब प्रश्न। यह प्रश्न भी मिट जाएगा। यह भी कोई प्रश्न है कि प्रश्न क्यों गिर गये! जब प्रश्न ही गिर गये, जब सांप ही चला गया, तो यह केंचुली भी चली जाएगी।

तीसरा प्रश्नः आपका प्रवचन सुनते-सुनते आंखें बंद होने लगती हैं, कान बहरे होने लगते हैं और चेष्टा करने पर भी स्थिति नहीं सम्हलती। जी चाहता है कि जब परमात्मा सामने है, तो उन्हें निहारता रहूं और उनके अमृतवचन का रसपान करता रहूं। लेकिन ऐसा हो नहीं पाता। कृपया बतायें कि मैं होशपूर्वक आपको किस प्रकार सुनूं?

होशपूर्वक का प्रश्न ही कहां है! बेहोशी से सुनो। होश की बात ही क्यों लाते हो! मस्त होकर सुनो। सम्हालने की जरूरत कहां है? शराबी की तरह डगमगाते हुए सुनो। जिसने पूछा है, उसे होश की बात काम में नहीं आएगी। उसे तो बेहोशी की ही बात काम आएगी। वही तो घट रहा है--अपने-आप। तुम नाहक बुद्धि से एक बिबूचन पैदा कर रहे हो।
सुनते-सुनते आंख बंद होने लगती है, इसका अर्थ साफ है कि सुनायी पड़ रहा
है और आंखें बंद हो रही हैं, क्योंकि जो मैं कह रहा हूं, वह भीतर ही देखा जा सकता है। अगर तुम मुझे देखना चाहते हो तो आंख बंद करके ही देख पाओगे। आंख खुली रखी, तो डोला दिखायी पड़ेगा, दुल्हन दिखायी नहीं पड़ेगी। सुन रहे हो, इसीलिए आंख बंद हो रही है। अब तुम कहीं चेष्टा करके आंख मत खोलना। जबर्दस्ती आंख खोलना चाहो तो खोल सकते हो, लेकिन तुम चूक जाओगे। अमृत हाथ में आते-आते वंचित हो जाओगे। सुन रहे हो, इसीलिए कान बहरे होने लगते हैं। क्योंकि जो मैं तुम्हें कह रहा हूं, वह शब्द ही नहीं है, उस शब्द में छिपा शून्य भी है। कान बहरे होने लगते हैं, उसका अर्थ है कि कान कह रहे हैं, शब्द को रहने दो बाहर, सिर्फ शून्य को जाने दो। कान बड़ी होशियारी से, बड़ी सावधानी से काम कर रहे हैं। आंख भी बड़ी होशियारी, सावधानी से काम कर रही है। अब तुम अपनी बुद्धि को बीच में मत लाओ। बंद होने दो आंख, बंद होने दो कान। यही तो मेरा इशारा है कि भीतर जाओ। तुम कहीं मुझे पकड़कर मत बैठ जाना। कहीं तुम यह मत सोचना कि यह तो आंख बंद होने लगी, कान बंद होने लगे, यह तो सहारा बाहर से छूटने लगा। नहीं, यही तो तुम किनारे के करीब आ रहे हो। भीतर जा रहे हो, वहीं किनारा है।
और होश से क्या सुनोगे? ये बातें कुछ होश से सुनने की थोड़े ही हैं। ये बातें तो मदमस्त होकर सुनने की हैं। ये तो मतवाला होकर सुनने की हैं-- मुझे पीने दे, पीने दे कि तेरे जामे-लाली में
अभी कुछ और है, कुछ और है, कुछ और है साकी
अभी तो पीओ। अभी तो प्याली में कुछ भी न बचे, ऐसा पीओ। डरो मत। यह होश
की बात बुद्धिमानी की बात है। तुम घबड़ा रहे हो कि यह क्या हो रहा है? आंख बंद हो रही है? कान बहरे हो रहे? तुम घबड़ा रहे हो कि यह क्या हो रहा है? तुम पागल तो नहीं हो रहे। पागल हुए बिना कोई कभी परमात्मा तक पहुंचा? पागल होने की हिम्मत चाहिए ही।
दिल धड़क उठता है खुद अपनी ही आहट पर
अब कदम मिं.जले-जाना से बहुत दूर नहीं
लाख छुपाते हो मगर छुप के भी मस्तूर नहीं
तुम अजब चीज हो, न.जदीक नहीं दूर नहीं

परमात्मा कुछ दूर थोड़े ही है। और ऐसा भी मत मान लेना कि न.जदीक है। न न.जदीक है, न दूर है। क्योंकि परमात्मा तुममें है। न.जदीक होने में भी तो था.ेडी दूरी रह जाती है। न.जदीक से न.जदीक होने में भी तो फासला रहेगा। परमात्मा तुम हो। तुम्हारा होना परमात्मा है।
आंख बंद होती है, तो इसका अर्थ हुआ कि भीतर की यात्रा शुरू हुई। पर्दे उठते हैं। संसार को देखना हो, तो आंख खोलकर देखना पड़ता है। स्वयं को देखना हो, तो आंख बंद करके देखना पड़ता है। वास्तविक दर्शन तो आंख बंद करके ही उपलब्ध होते हैं। महावीर की प्रतिमाएं देखीं? अगर महावीर की ठीक प्रतिमा देखनी हो तो श्वेतांबर मंदिर में मत देखना, वहां कुछ भूल हो गयी है। दिगंबर मंदिर में देखना। वहां महावीर की आंख बंद है। श्वेतांबर मंदिर में महावीर की आंख खुली है। वहां कुछ भूल हो गयी है। हो सकता है जिसने महावीर की आंख खोल रखी है श्वेतांबर मंदिर में, वह तुम जैसा आदमी रहा हो। मुझे सुनकर तुम्हारी आंख बंद हो रही है, तुम खोलने की कोशिश कर रहे हो। लेकिन महावीर के सत्य को समझना हो तो आंख बंद ही होनी चाहिए। क्योंकि महावीर जिस परमात्मा की तरफ जा रहे हैं, वह भीतर है।
आंख बंद हो जाती है तो बाहर की तरफ सारी यात्रा समाप्त हुई। सारी ऊर्जा भीतर लौटी। गंगा चली गंगोत्री की तरफ। मूलस्रोत की तरफ यात्रा हुई। खुली आंख--हो सकता है श्वेतांबरों को महावीर की आंख बड़ी प्यारी लगी हो, प्यारी रही होगी वह आंख--श्वेतांबरों की बात भी मेरी समझ में आती है। वह आंख इतनी प्यारी रही होगी कि उन्होंने चाहा होगा कि देखते ही रहें। बंद आंख में तो तुम क्या देखोगे? तो उन्होंने महावीर की आंख को खुला रखा है। वह आंख देखने योग्य रही होगी, यह सच है! वह आंख बड़ी प्यारी थी, यह सच है! उस आंख की उपासना और पूजा का भाव उठा होगा, यह सच है! लेकिन यह आदमी की कमजोरी है। महावीर की आंख तो बंद ही रही होगी जब उन्होंने स्वयं को जाना है। और जब स्वयं को जाना तभी तो वे महावीर हुए। उसके पहले तो वह महावीर नहीं।
बंद होगी तुम्हारी आंख भी। कान भी बंद हो जाएंगे। इंद्रियां सब बंद
हो जाएंगी। क्योंकि इंद्रियों का अर्थ ही होता है, ऊर्जा के बाहर जाने के द्वार। जब सारी इंद्रियां बंद हो जाती हैं, सारी ऊर्जा भीतर लौटती है। महावीर ने इसको प्रतिक्रमण कहा है, ऊर्जा का भीतर लौटना। जब आंख खोलकर तुम देखते हो, तो आक्रमण। जब आंख बंद करके भीतर जाते हो, तो प्रतिक्रमण। आक्रमण का अर्थ है, दूसरे पर हमला। प्रतिक्रमण का अर्थ है, अपने घर लौट आना। जैसे सांझ पक्षी लौटने लगे अपने घोंसलों को, ऐसा जब तुम्हारे प्राण लौटने लगे भीतर के अंतर्तम में, तब आंख, कान सब बंद हो जाएंगे।
तो मुझे सुनते अगर आंख बंद हो रही हो तो हो जाने देना। तुम बीच में बुद्धिमानी मत लगाना। तुम अपना गणित बीच में मत लाना। बाधा मत डालना। कान बंद होते हों, हो जाने देना। इशारा तुम्हारी बुद्धि नहीं समझ पा रही है, तुम्हारे आंख और कान समझ गये। तुम्हारे अस्तित्व ने बात पकड़ ली। तुम इसमें बाधा और व्यवधान खड़ा मत करना।
नहीं, होश की बात ही मत उठाओ। बेहोशी ही ठीक है। प्रश्न है "आनंद विजय" का। बेहोशी ही ठीक होगी। और शराब मांगो, होश मत मांगो। और मस्ती मांगो, समझदारी मत मांगो।
ऐ मुतरबे-बेबाक कोई और भी नग्मा
ऐ साकी-ए-फैयाज शराब और जियादा
हे मुक्तकंठ गायक! एक गीत और। और हे दानशील मधुबाला! थोड़ी शराब और।
ऐ मुतरबे-बेबाक कोई और भी नग्मा
ऐ साकी-ए-फैयाज शराब और जियादा
दुनिया में दो मार्ग हैं, दो द्वार हैं। एक है ध्यान का मार्ग। एक है प्रेम का मार्ग। ध्यान के मार्ग पर होश अनिवार्य चरण है। प्रेम के मार्ग पर बेहोशी अनिवार्य चरण है। "आनंद विजय" के लिए मार्ग प्रेम का है। प्रेम से ही ध्यान घटेगा। बेहोशी से, डूबने से, मस्ती से। ध्यानी के लिए प्रेम भी घटता है तो होश से घटता है। इसको ख्याल रखना। और अपने लिए साफ-साफ कर लेना कि तुम्हारे लिए क्या उचित है। अगर तुम्हारे हृदय में प्रेम के भाव सहजता से उठते हैं, तो तुम फिकिर छोड़ो होश की। तुम तो मांगो--

ऐ मुतरबे-बेबाक कोई और भी नग्मा
गाओ कुछ और भी गीत कि मैं और डूब जाऊं। सुनाओ कुछ और कि मैं और डूब जाऊं।
ऐ साकी-ए-फैयाज...
ऐ दानशील साकी! ... शराब और जियादा। ढालो!
प्रेम के मार्ग पर, भक्ति के मार्ग पर नृत्य है, गान है, डूबना है। तन्मयता है, तल्लीनता है। ध्यान के मार्ग पर सजगता है, जागरूकता है। अपना मार्ग ठीक-ठीक चुन लेना, और घबड़ाना मत कि एक मार्ग पर चले तो दूसरे से तुम वंचित रह जाओगे। अंत में दोनों मिल जाते हैं। पहाड़ के शिखर पर सभी मार्ग मिल जाते हैं। जो ध्यान से चलता है, अतंतः प्रेम को भी उपलब्ध हो जाता है। जो प्रेम से चलता है, वह अतंतः ध्यान को भी उपलब्ध हो जाता है। लेकिन दोनों के रास्ते बड़े अलग-अलग हैं।

चौथा प्रश्नः मैं क्या प्रश्न करूं और आप क्या जवाब दें! प्रश्न भी आप हैं और उत्तर भी। प्रेम में प्रश्न हो, या उत्तर हो, या चुप्पी?

पूछे बिना रहा न गया!
पूछने की पूछ ऐसी ही है। एक तरह की खुजलाहट है। खाज हुई है कभी? बस वैसी खुजलाहट है। नहीं भी खुजलाना चाहते, फिर भी अनजाने हाथ उठ जाते हैं, खुजलाहट शुरू हो जाती है।
अब जिसने प्रश्न पूछा है, उसने प्रश्न की पहली पंक्ति में यही सोचकर पूछा है कि नहीं पूछना है।
"मैं क्या प्रश्न करूं, और आप क्या जवाब दें!" अभी बुद्धिमानी कायम है। "प्रश्न भी आप हैं और उत्तर भी।" फिर चूक हो गयी। खुजला ली खाज। "प्रेम में प्रश्न हो या उत्तर हो या चुप्पी?" प्रश्न आखिर उठ ही आया!
हम जैसे हैं, उससे भिन्न हम थोड़ी-बहुत देर चेष्टा कर सकते हैं--क्षण-दो क्षण--फिर जल्दी ही चूक हो जाती है।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मुल्ला की बड़ी प्रशंसा कर रही है। ऐसे दिन सौभाग्य के कम ही आते हैं कि पत्नी और पति की प्रशंसा करे! लेकिन मुल्ला बहुत डरा हुआ था, क्योंकि ऐसे सौभाग्य का मतलब होता है, कुछ न कुछ उपद्रव! कुछ खर्चा करवा दे! या जरूर कुछ मतलब होगा पीछे। आखिर मतलब साफ हो गया। पत्नी ने कहा, अब बहुत हो गया, अब तुम खोजो, लड़की के लिए लड़का खोजना ही पड़ेगा। अब इस साल खाली नहीं जाना चाहिए। मुल्ला ने कहा कि क्या करूं, खोजता हूं, लेकिन गधों के अतिरिक्त कोई मिलता ही नहीं! तो पत्नी के मुंह से सच्ची बात निकल गयी। उसने कहा, अगर ऐसे ही मेरे पिता भी सोचते रहते तो मैं अनब्याही ही रह जाती!
ज्यादा देर नहीं चला सकते। जल्दी ही असलियत बाहर आ जाती है। पूछना तो चाहते ही थे। बुद्धिमानी थोड़ी देर सम्हाली। दो लाइन चली। तीसरी लाइन में लंगड़ा गयी। पूछ ही बैठे।
इसे थोड़ा समझना। मन की इस बात को समझना। कैसा लंगड़ाता हुआ मन है! अगर
सच में ही पूछने को न था तो यह प्रश्न लिखने की कोई जरूरत ही न थी। और अगर पूछने को कुछ था, तो यह बुद्धिमानी दिखाने की कोई जरूरत नहीं। ऐसा द्वंद्व क्यों पालते हो? ऐसे दोहरे क्यों होते हो? ऐसे दोहरे में खतरा है। ऐसे में तुम टूट-टूट जाओगे, खंड-खंड हो जाओगे। रहोगे कुछ, दिखाओगे कुछ। बोलोगे कुछ, भीतर होगा कुछ। यही तो मनुष्य का बड़े से बड़ा विषाद है। पूछना हो तो पूछो। न पूछना हो तो मत पूछो। यह बीच में दोनों के डांवांडोल होना खतरनाक है। लेकिन, जब पूछा है, प्रेम में प्रश्न हो, उत्तर हो या चुप्पी? प्रेम में न तो प्रश्न है, न उत्तर है, न चुप्पी है। प्रेम चुप भी नहीं है और बोलता भी नहीं। प्रेम बड़ा विरोधाभास है। प्रेम बोलता भी नहीं, क्योंकि जो बोलना है वह बोलने में आता नहीं। और प्रेम चुप भी नहीं है, क्योंकि बोलने को बहुत कुछ है, जो बोलने में आता नहीं। तो प्रेम लबालब भरा है। बह जाना चाहता है। कूल-किनारे तोड़ देना चाहता है।

दो प्रेमियों को पास-पास बैठे देखा? नहीं बोलते, इसलिए नहीं कि बोलने
को कुछ नहीं है। नहीं बोलते इसलिए कि बोलने को इतना कुछ है, कैसे बोलें? और बोलने को कुछ ऐसा है कि बोलते से ही गंदा हो जाता है। शब्द उसे कुरूप कर देते हैं। उसे मौन में ही संवादित किया जा सकता है। उसे चुप रहकर ही कहा जा सकता है। लेकिन चुप्पी मुखर है। मौन भाषा है।
शब्द तो शोर है तमाशा है
भाव के सिंधु में बताशा है
मर्म की बात ओंठ से न कहो
मौन ही भावना की भाषा है
लेकिन भाषा ही है मौन भी। मौन भी बोलता है। बड़ी प्रगाढ़ता से बोलता है। तुमने अगर कभी मौन को सुना नहीं, तो तुमने कुछ भी नहीं सुना। तुम जीवन के संगीत से अपरिचित ही रह गये। तुमने रात के सन्नाटे को सुना है? कैसा बोलता हुआ होता है! वृक्षों में हवा भी नहीं होती, हवा के झोंके भी नहीं होते, एक पत्ता भी नहीं हिलता... अभी इस क्षण कोई हवा का झोंका नहीं है, पत्ता भी नहीं हिल रहा है, लेकिन वृक्ष मौन हैं, चुप हैं? फूल खिले हैं, बोल रहे हैं। शब्द नहीं हैं, शोर नहीं है, अभिव्यक्ति तो है ही।
चीन में कहावत है कि जब संगीतज्ञ संपूर्ण रूप से कुशल हो जाता है, तो वीणा तोड़ देता है। क्योंकि फिर वीणा के कारण संगीत में बाधा पड़ने लगती है।
फिर तो वीणा के स्वर भी शोरगुल मालूम होने लगते हैं। कहावत है कि जब तीरंदाज अपनी तीरंदाजी में संपूर्ण कुशल हो जाता है, तो धनुषबाण तोड़ देता है। क्योंकि फिर उससे निशाना नहीं लगता, निशाने में बाधा पड़ने लगती है। जीवन के चरम शिखर विरोधाभास के शिखर हैं।
शब्द तो शोर है, तमाशा है
भाव के सिंधु में बताशा है
मर्म की बात ओंठ से न कहो
मौन ही भावना की भाषा है
रोओ, आंसू कह देंगे। नाचो, भावभंगिमा कह देगी। गुनगुनाओ... कल सांझ ऐसा हुआ। वाणी, एक संन्यासिनी, जर्मनी से आयी है। उससे मैंने पूछा, कुछ कहने को है? और मुझे लगा बहुत कुछ कहने को है उसके पास, हृदय भरा है। उतने दूर से आयी है। दो-चार दिन के लिए ही आ पायी है। ज्यादा देर रुक भी न सकेगी। दो-चार महीने में भागी चली आती है। दो-चार दिन के लिए समय मिलता, कभी एक दिन के लिए भी समय मिलता--तो जर्मनी से पूना आना एक दिन के लिए! लेकिन उतने दिन के लिए भी आती है। एक बार तो सिर्फ पांच घंटे ही रुकी। तो कहने को आती है। कुछ निवेदन करने को है।
पूछा, कुछ कहना है? कहा, नहीं, कुछ भी नहीं कहना है। लेकिन उसके चेहरे पर, उसकी आंखों में, उसके हृदय में बहुत कुछ भरा है। तो मैंने उससे कहा कि खैर न कह तू, चुप रह। उसने आंख बंद कर लीं, और वह ऐसे शब्दहीन-शब्द उच्चार करने लगी जैसे छोटा बच्चा दो-चार महीने का सिसक-सिसककर रोने लगे, और भाषा तो जानता नहीं दो-चार महीने का बच्चा, तो कुछ भी अनर्गल, अर्थहीन बोलने लगे। ऐसा छोटे बच्चे की तरह वह सिसकने लगी, रोने लगी। टूटे-फूटे शब्द जिनका कोई अर्थ नहीं है, वह उसके बाहर आने लगे। उस घड़ी वह छोटी बच्ची हो गयी। उस घड़ी उसने अपने हृदय को ऐसा उंडेल दिया जैसा भाषा में कभी भी नहीं उंडेला जा सकता। क्योंकि भाषा तो बड़ी बुद्धिमानी की है!
भाव के सिंधु में बताशा है
शब्द तो शोर है तमाशा है
उसकी भाषा बताशे की तरह घुल गयी भाव के सिंधु में। कुछ उबलने लगा। कुछ गुनगुनाहट फूटने लगी। उसे भी पता नहीं, क्या हो रहा है! उसके भी बस के बाहर है। उसके भी नियंत्रण के बाहर है। जैसे कुछ बहुत शुद्ध भाषा--जैसा आदमी पहली दफा बोला होगा पृथ्वी पर। या छोटे बच्चे बोलते हैं पहली दफा--कुछ भी-- अबाऽ बाऽऽ बाऽऽ बाऽऽ बाऽऽ बाऽ... इस तरह के शब्द बोलने लगी। सब टूटे हुए। लेकिन उसने कह दिया जो कहना था। मैंने सुन लिया जो सुनना था। भाव से जुड़ गयी। एक सेतु उसने बना लिया।
अल्ला री कामयाबी-ए-आवारगाने-इश्क

खुद गुम हुए तो क्या उसे पाये हुए तो हैं
उस क्षण वह खो गयी। लेकिन उस खोने में ही प्रगट हुई। प्रेमी अपने को
खो देता है, परमात्मा को पा लेता है।
अल्ला री कामयाबी-ए-आवारगाने-इश्क
यह भी कैसी सफलता है, आवारा इश्क की। प्रेम तो सदा आवारा है। प्रेम का कोई घर थोड़े ही है। क्योंकि सारा अस्तित्व उसका घर है। प्रेम तो बंजारा है।
अल्ला री कामयाबी-ए-आवारगाने-इश्क
हे परमात्मा, यह भी कैसी सफलता है प्रेम की!
खुद गुम हुए तो क्या, उसे पाये हुए तो हैं
खुद तो खो जाता है प्रेमी, उसे पा लेता है। शब्द तो खो जाते हैं, मन तो
खो जाता है, अहंकार तो खो जाता है।
भाव के सिंधु में बताशा है
शब्द तो शोर है तमाशा है
मर्म की बात ओंठ से न कहो
मौन ही भावना की भाषा है
ज्ञान तो बस बुद्धि का खिलवाड़ है
ध्यान जब तक ढोंग का दरबार है
मंदिरों से व्यर्थ ही मारो न सिर
आदमी का धर्म केवल प्यार है
जो प्यार को समझ ले, सब समझ लिया। पूछा है, प्रेम में प्रश्न हो, उत्तर हो, या चुप्पी? प्रेम में प्रेम ही हो, बस इतना काफी है। न उतर, न प्रश्न, न चुप्पी। प्रेम में बस प्रेम हो, इतना काफी है। खामोशी सीखो।
खामोश ऐ दिल भरी महफिल में चिल्लाना नहीं अच्छा
अदब पहला करीना है मुहब्बत के करीनों में
प्रेम को चिल्लाकर मत कहो। क्योंकि चिल्लाने में प्रेम नष्ट हो जाता है। प्रेम बड़ा कोमल तंतु है। चुप्पी तक में नष्ट हो जाता है, बोलने की तो बात छोड़ो! प्रेम एक विरोधाभास है। "पैराडाक्स।" वहां बोलना और न बोलना दोनों का मिलन होता है। वहां सीमित की और असीम की मुलाकात होती है। वहां संसार और परमात्मा एक-दूसरे को छूते हैं। वहां मैं और तू घुलते हैं और पिघलते हैं। नहीं, प्रेम के पास कोई प्रश्न नहीं है। और प्रेम के पास कोई उत्तर भी नहीं है। प्रेम काफी है।
इसे ऐसा समझने की कोशिश करो।
जब तुम प्रसन्न होते हो, तब तुम कभी नहीं पूछते कि प्रसन्न मैं क्यों हूं। लेकिन जब तुम दुखी होते हो तब तुम जरूर पूछते हो कि दुखी मैं क्यों हूं? जब तुम स्वस्थ होते हो, तब तुम जाते हो चिकित्सक के द्वार पर कि बताओ मैं स्वस्थ क्यों हूं? लेकिन जब तुम बीमार होते हो तो जरूर जाते हो। जाना ही पड़ता है पूछने कि मैं बीमार क्यों हूं? बीमारी का तो कारण खोजना पड़ता है। स्वास्थ्य का कारण किसी ने कभी खोजा? कोई बता पाया कि आदमी स्वस्थ क्यों होता है? अभी तक तो कोई नहीं बता पाया है--न आयुर्वेद, न एलोपैथी, न यूनानी, कोई नहीं बता पाया कि आदमी स्वस्थ क्यों होता है? स्वस्थ तो आदमी होता है। हां, जो स्वस्थ नहीं है, वहां कोई कारण होगा। झरना तो बहता है। नहीं बहता, तो कोई पत्थर पड़ा होगा। बीज तो फूटता है। वृक्ष बनता है। न फूट पाये, न वृक्ष बन पाये, तो कोई अड़चन होगी--जमीन पथरीली होगी, कि पानी न मिला होगा। बच्चा तो बड़ा होता है, बढ़ता है, जवान होता है। न बढ़ पाये, तो कुछ गड़बड़ है।
आनंद स्वाभाविक है। आनंद के लिए कोई प्रश्न नहीं है। दुख अस्वाभाविक है। दुख का अर्थ ही है, जो नहीं होना चाहिए था। सुख का अर्थ है, जो होना ही चाहिए। सुख का अर्थ है, जिसे हम बिना कारण स्वीकार करते हैं। और दुख का अर्थ है, जिसे हम कारण के सहित भी स्वीकार नहीं कर पाते। कोई कारण भी बता दे तो क्या सार है! तुम गये डाक्टर के पास, उसने कहा कि कैंसर हो गया है। कारण भी बता दे कि इसलिए कैंसर हो गया है, तो भी क्या सार है! कारण को भी क्या करोगे?

सुख तो अकारण भी स्वीकार होता है। दुख कारण सहित भी स्वीकार नहीं होता। फिर कारण की खोज हमें करनी पड़ती है दुख के लिए, क्योंकि कारण का पता न चले तो दुख को मिटाएं कैसे? जिसे मिटाना हो, उसका कारण खोजना पड़ता है। जिसे मिटाना ही न हो, उसके कारण की खोज की कोई जरूरत ही नहीं है। उसे हम जीते हैं।
प्रेम परम स्वास्थ्य है। प्रेम परमात्मा की झलक है तुम्हारे दर्पण में। कोई पूछता नहीं कि प्रेम क्यों है? प्रेम बस होता है। स्वीकार है। सहज स्वीकार है। न कोई उत्तर है, न कोई प्रश्न है। न कुछ बोलना है, न कुछ बोला जा सकता है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रेम कोई रिक्तता है। प्रेम बड़ा भराव है। परम भराव है। पात्र पूरा भर जाता है। पात्र खाली हो तो आवाज होती है। अधूरा भरा हो, तो आवाज होगी। पात्र पूरा भर जाए, तो आवाज खो जाती है। ऐसे ही जब कोई प्रेम से भर जाता है--कोई प्राण का पात्र--सब खो जाता है।
प्रेम हो, इसकी ही चिंता करो। तुम ऐसे भर जाओ कि कहने को कुछ न रहे। पूछने को कुछ न रहे। तुम ऐसे शांत हो जाओ कि कोई प्रश्नचिह्न तुम्हारे भीतर न बचे। क्योंकि प्रश्नचिह्न एक तरह की बीमारी है। कांटे की तरह चुभता है प्रश्न। जिसके हृदय पर प्रश्नचिह्नों की कतार लगी है, "क्यू" लगा है, वह आदमी नर्क में जीता है। उसका जीवन एक दुख-स्वप्न है।
प्रश्नों को हटाते जाओ, गिराते जाओ। और बहुत से लोग तो व्यर्थ के प्रश्न इकट्ठे किये हुए हैं... संसार को किसने बनाया? क्या लेना-देना है! इसलिए महावीर ने नहीं पूछा यह प्रश्न कि संसार को किसने बनाया। उन्होंने कहा, सदा से है, यह बनाने की बकवास बंद करो। क्योंकि तुम पूछो, किसने बनाया, इससे कुछ हल न होगा। बता दें कि "अ" ने बनाया, तो तुम पूछोगे "अ" को किसने बनाया? तो "ब" ने बनाया। तुम पूछोगे, "ब" को किसने बनाया? यह कुछ हल न होगा।
तो महावीर कहते हैं, अनादि है, अनंत है। किसी ने नहीं बनाया, इस झंझट में पड़ो मत। उनका कुल मतलब इतना है कि झंझट में पड़ो मत। है। इससे राजी हो जाओ। इसके रहस्य को जानो, इसके रहस्य को जीओ। इसको प्रश्न मत बनाओ। इसको जीओ। इसमें डूबो, इसमें उतरो। जीवन एक समस्या न हो, एक रहस्य हो। एक प्रश्न न बने, प्रार्थना बने। जीवन को कोई एक दर्शनशास्त्र नहीं बनाना है, जीवन को प्रेम का मंदिर बनाना है।
इसलिए महावीर ने कहा मत पूछो यह। आत्मा कहां से आयी? महावीर कहते हैं, सदा से है। तुम व्यर्थ के प्रश्न मत पूछो। सारे सत्पुरुषों ने व्यर्थ के प्रश्नों को काटना चाहा है। अगर उन्होंने उत्तर भी दिये हैं, तो इसीलिए दिये हैं ताकि तुम व्यर्थ के प्रश्नों से छूटो। अगर वे चुप रहे, तो इसीलिए चुप रहे कि तुम व्यर्थ के प्रश्नों से छूटो।
बुद्ध तो उत्तर ही न देते थे, कोई पूछता था प्रश्न तो चुप रह जाते थे।
वे कहते कि तुम भी चुप हो जाओ। ऐसे चुप होकर मैंने पाया, चुप होकर तुम भी पा लोगे।
मन जब बिल्कुल शांत होता है, कोई प्रश्न नहीं उठाता, तो सब द्वार खुल जाते हैं। प्रश्न ही तालों की तरह लगे हैं तुम्हारे जीवन के द्वारों पर!

पांचवां प्रश्नः आपको सुनते-सुनते कई बार आप रंगीन दिखायी पड़ने लगते हैं, और फिर भी एक खालीपन की भांति। आपकी कुर्सी के पीछे की दीवाल भी रंगीन दिखायी पड़ती है, और एक अजीब आनंद से भर जाता हूं। यह सब क्या है?

जीवन में कुछ भी हम सहजता से स्वीकार नहीं करते।
बड़ा चित्रकार हुआ पिकासो। एक चित्र बना रहा था। किसी ने पूछा, यह क्या है? पिकासो ने अपने सिर से हाथ मार लिया। और कहा कि कोई नहीं पूछता जाकर फूलों से और कोई नहीं पूछता पक्षियों से, मेरे पीछे क्यों पड़े हो? कोई नहीं पूछता इंद्रधनुषों से कि क्या है? क्यों?
पिकासो की बात में अर्थ है। पिकासो यह कह रहा है, यह मेरे आनंद का उद्भव है। क्या है, क्यों है, मुझे कुछ पता नहीं।

पश्चिम का एक बहुत बड़ा विचारक कवि हुआ, कूलरिज। कूलरिज से किसी ने पूछा--एक प्रोफेसर ने--कि तुम्हारी कविता को मैं पढ़ाता हूं यूनिवर्सिटी में, अर्थ मेरी पकड़ में नहीं आते, अर्थ क्या है? कूलरिज ने कहा तुम जरा देर से आये। जब मैंने इसे लिखा था, तो दो आदमियों को पता थे इसके अर्थ। अब केवल एक को पता है। तो उसने कहा कि निश्चित वह एक तुम हो। तुमने ही यह कविता लिखी, तुम तो मुझे बता दो। कूलरिज ने कहा, वह एक मैं नहीं हूं। जब मैंने लिखी तो मुझे और परमात्मा को पता था। अब केवल परमात्मा को पता है। अब मुझे भी पता नहीं। मैं खुद ही सोचता हूं कि इसका अर्थ क्या है? कई बार खुद ही मैं चकित हो जाता हूं। तुम भले आ गये। कई दफा मैं सोचता था जाकर यूनिवर्सिटी के प्रोफेसरों से पूछ आऊं, वे तो अर्थ लोगों को समझाते हैं। अगर तुम्हें मुझे सुनते-सुनते मेरे चारों तरफ एक आभा का अनुभव हो, तो क्या जरूरी है कि प्रश्न बनाओ ही? तो क्या जरूरी है कि तुम उसका उत्तर खोजो ही? क्या इतना काफी नहीं है कि तुम उस आभा को पीओ और उसमें डूबो और तल्लीन हो जाओ? अगर तुम्हें मेरे आसपास रंगों का एक इंद्रधनुष दिखायी पड़े, तो क्यों जल्दी से उसे तुम प्रश्न बना लेते हो? प्रश्न का अर्थ है, संदेह। निष्प्रश्न का अर्थ है, श्रद्धा।
अगर तुम्हारे मन में श्रद्धा हो, तो तुम जो देखोगे उसे तुम स्वीकार कर लोगे कि ठीक है, ऐसा है, इंद्रधनुष बना। और तुम आह्लादित होओगे। और तुम्हारे आह्लाद की कोई सीमा न होगी। और तुम प्रफुल्लित होओगे। और तुम किसी दूर की दूसरी दुनिया में उड़ने लगोगे। एक नये आकाश में तुम्हारे पंख खुल जायेंगे। लेकिन तत्क्षण प्रश्न खड़ा हो जाता है। प्रश्न यह है कि पता नहीं यह मामला क्या है? कुछ धोखा है, कुछ जादू है, या मेरा मन सम्मोहित हो गया, या मेरी कल्पना है, या मैं कोई सपना देख रहा हूं? लेकिन तुमने कभी ख्याल किया कि जब तुम यह प्रश्न बनाओगे, वह इंद्रधनुष तुम्हारे लिए रुका न रहेगा। जब तुम प्रश्न बना रहे हो, इंद्रधनुष खो जाएगा। वह जो घड़ीभर के लिए झरोखा खुला था और अतींद्रिय दर्शन की संभावना बनी थी, वह तुम चूक गये। तुम सोच-विचार में खड़े रह गये।
प्रश्नों से थोड़ा अपने को बचाओ। फुर्सत के समय कर लेना, जब कुछ भी न घट रहा हो जीवन में तब खूब प्रश्न कर लेना। जब कुछ घटता हो, तब प्रश्न को बीच में मत लाओ। क्योंकि उसके कारण दीवाल खड़ी हो जाती है। वही दीवाल तुम्हारी आंख पर पर्दा बन जाएगी। जो है, है। जो जैसा है, वैसा है। तथ्यों के आगे-पीछे मत जाओ, तथ्यों में प्रवेश करो।
ये रूपहली छांव, ये आकाश पर तारों का जाल
जैसे सूफी का तसव्वुर, जैसे आशिक का ख्याल
आह लेकिन कौन जाने, कौन समझे जी का हाल
ऐ गमे-दिल क्या करूं, ऐ वहशते-दिल क्या करूं
ये रूपहली छांव, ये आकाश पर तारों का जाल। जैसे सूफी का तसव्वुर... जैसे कोई सूफी ध्यान की मस्ती में डूबा हो।... जैसे आशिक का ख्याल। जैसे कोई प्रेमी अपनी प्रेयसी की भावना में डूबा हो। ऐसा ही है। ये रूपहली छांव, ये आकाश पर तारों का जाल। यह सब रहस्यमय है। यह सब परम रहस्य है। तुम प्रश्न मत उठाओ। तुम धीरे-धीरे रहस्य को चखो। स्वाद लो। तुम्हें हैरानी होगी। अगर मैं यहां बैठा-बैठा क्षणभर को तुम्हारे लिए खो जाता हूं और एक रंगों का जाल यहां प्रगट होता है, तो तुम प्रश्न मत उठाओ, यह मौका प्रश्न का नहीं है। यह मौका तो इन रंगों में उतर जाने का है। पूछ लेना पीछे, कल। कह दो मन को कि बाद में सोच लेंगे। अभी तो स्वाद ले लें। और उसी स्वाद में उत्तर मिलेगा। कल पूछने की जरूरत न रह जाएगी।
और एक बार अगर तुम्हें उन रंगों में उतरने का पाठ पकड़ जाए, तुम एक सीढ़ी
भी इस गहराई में उतर जाओ, तो जरूरत नहीं है कि फिर तुम मेरे पास ही उन रंगों को देखो। अगर तुम किसी वृक्ष को भी इतनी ही शांति और प्रेम से देखोगे, जैसा तुमने मुझे देखा, तो उस वृक्ष के पास भी ऐसे ही रंगों का सागर लहराने लगेगा। लहरा रहा है। तुम्हारे पास आंख नहीं। अस्तित्व पर कोई घूंघट नहीं, सिर्फ तुम अंधे हो। तुम्हें एक छोटे-से फूल के पास भी ऐसे ही आभाओं के आयाम खुलते हुए नजर आएंगे। एक बार तुम्हें यह समझ में आ जाए कि शांत, प्रेम से

भरकर किसी की तरफ देखना सत्य को देखने के लिए अनिवार्य है, तब तुम वह देख पाओगे, जैसा है। अभी तुमने बहुत कम देखा है। अभी तुमने ऐसे देखा है जैसे बहुत से पर्दे डाल दिये गये हों, और पर्दों के पीछे दीया छिपा हो, ऐसी फूट-फूटकर छोटी-सी किरणें तुम्हारे पास आ पाती हों। एक-एक पर्दा हटता जाता है, किरणों का जाल बढ़ता जाता है।
जब तुम्हें मेरी तरफ देखते-देखते कभी अचानक एक आभा का विस्फोट मालूम होता हो, रंगीन तरंगें चारों तरफ फैल जाती हों, तो इसका अर्थ इतना हुआ कि उस क्षण में तुम्हारी आंख पर पर्दा बहुत कम है। अभी तुम प्रश्न उठाकर नये पर्दे मत बनाओ। अभी तुम प्रश्नों को कह दो, हटो जी! फुर्सत के समय जब कुछ भी न हो रहा होगा, तब तुमसे सिर माथा-पच्ची कर लेंगे। अभी तो जाने दो। अभी तो बुलावा आया। अभी तो इस इंद्रधनुष में प्रवेश कर जाने दो। अभी तो डूबने दो। अभी तो डुबकी लेने दो। व्यर्थ के क्षणों में प्रश्न कर लेंगे। अभी सार्थक क्षण को प्रश्नों में मत खोओ। क्योंकि तुम्हारे प्रश्न के खड़े होते ही तुम पाओगे, रंग खोने लगे। प्रश्न ने फिर संदेह खड़ा कर दिया। प्रश्न का मतलब ही संदेह होता है। प्रश्न उठता ही संदेह से है।
प्रश्न श्रद्धा से नहीं उठता। श्रद्धा तो चुपचाप स्वीकार कर लेगी। श्रद्धा तो इतनी विराट है कि कुछ भी घटे तो भी श्रद्धा चौंकती नहीं। अनहोना घटे, तो भी स्वीकार कर लेती है। श्रद्धा की कोई सीमा नहीं। संदेह बड़ा छोटा है, बड़ा क्षुद्र है, बड़ा ओछा है। जरा यहां-वहां कुछ घटा, जो संदेह की सीमा के बाहर है कि संदेह बेचैन हो जाता है। परेशान हो जाता है। नहीं, ये मौके नहीं हैं संदेह को उठाने के। और अगर तुमने इन मौकों पर न उठाया, तो तुम्हारा स्वाद ही उत्तर बनेगा।
जान तुझ पर निसार करता हूं
मैं नहीं जानता हुआ क्या है
ऐसी श्रद्धा की अवस्था है। जब इंद्रधनुष मेरे पास उठे, जान निछावर करो।
जान तुझ पर निसार करता हूं
मैं नहीं जानता हुआ क्या है
जानने की जरूरत भी नहीं है। जो हो रहा है, उसे होने दो। जान-जानकर कौन
कब सत्य को जान पाया। जाननेवाले बहुत पीछे पिछड़ गये। जाननेवाले किताबों में खो गये। जाननेवाले प्रश्नों में डूब गये और मर गये। नहीं, जान-जानकर कोई भी नहीं जान पाया। खोओ अपने को, मिटाओ, मिटो, पिघलो। सत्संग का यही अर्थ है।
जैसे सुबह सूरज की मौजूदगी में बर्फ पिघलने लगती है, ऐसे किसी की मौजूदगी में तुम पिघलने लगो--सत्संग। यहां मैं मौजूद हूं, अगर तुम जरा भी करीब आने को तैयार हो, तो तुम पिघलोगे। उस पिघलने से ही नयी-नयी घटनाएं घटेंगी। नये-नये ऊर्मियां, नये आवेश उठेंगे। रंग नये, गंध नयी, स्वाद नये। तुम पाओगे जैसे तुम फैलने लगे, बड़े होने लगे, विस्तीर्ण होने लगे।
जिन लोगों ने रासायनिक-द्रव्यों पर बड़ी खोज की है--एल.एसड़ी., मारिजुआना, और दूसरे द्रव्यों पर--उन सबका यह कहना है कि उन द्रव्यों के प्रभाव में भी मनुष्य की आंख पर से पर्दे हट जाते हैं। अल्डुअस हक्सले अमरीका का बहुत बड़ा मनीषी, विचारक हुआ। उसने जब पहली दफा एल.एसड़ी. लिया, तो वह चकित हो गया। उसके सामने एक साधारण-सी कुर्सी रखी थी। साधारण-सी कुर्सी। लेकिन जैसे-जैसे उस पर एल.एसड़ी. का प्रभाव गहन होने लगा कुर्सी से रंग फूटने लगे। अदभुत रंग! अनजाने, अपरिचित रंग! ऐसे रंग, जो कभी नहीं देखे थे। और साधारण नहीं, जिनके भीतर से बड़ी आभा फूट रही--"लूमिनस।" ज्योतिर्मय। साधारण रंग नहीं, रंगों के भीतर से आभा की किरणें फूटती हुई। वह बहुत हैरान हुआ। उसने आंखें मीड़ीं, अपने को झकझोरा, ठंडे पानी के छींटे मारे, मगर कुछ भी नहीं, कुर्सी रंगीन होती चली जाती है! कुर्सी साधारण। उसने आसपास देखा, हर चीज रंगीन है। किताबें, टेबल, द्वार-दरवाजे। उसकी पत्नी चलती हुई भीतर आयी, उसने संस्मरणों में लिखा है, उसके पैरों की आवाज... ऐसा संगीत मैंने कभी सुना नहीं। पत्नी को देखा, ऐसा विभामय रूप कभी

देखा नहीं। अब खुद की पत्नी में रूप देखना बहुत कठिन है! दूसरे की पत्नी में बहुत सरल है। खुद की पत्नी में रूप देखना बहुत कठिन है।
मुल्ला नसरुद्दीन मिलिट्री में भर्ती किया जा रहा था। जबर्दस्ती। वह बचने के उपाय कर रहा था। सब परीक्षाएं हो गयीं। लेकिन सब तरह से स्वस्थ आदमी था, बचे भी कैसे? आखिर उसने कहा कि मेरी आंखें खराब हैं। तो डाक्टर ने पूछा, तुम्हारे पास कोई प्रमाण है तुम्हारी आंखें खराब होने का? उसने खीसे से एक तस्वीर निकाली, कहा, यह देखो मेरी पत्नी की तस्वीर है, इससे साफ जाहिर है कि मेरी आंखें खराब हैं। इस स्त्री से कौन शादी करेगा!
अल्डुअस हक्सले को अपनी पत्नी में विभामय रूप दिखायी पड़ा। नशे के उतर जाने के बाद सब खो गया। अल्डुअस हक्सले तो इतना प्रभावित हुआ एल.एसड़ी. से कि उसने अपनी पूरी जिंदगी फिर यही कोशिश की कि वेद में जिस "सोमरस" की चर्चा है, वह एल.एसड़ी. ही है। उसने तो फिर यह भी सिद्ध करने की कोशिश की कि अब भविष्य में महावीर, बुद्ध, कबीर, मीरा, क्राइस्ट, इनको जो हुआ, उसके लिए इतने तीस-तीस साल, बीस-बीस साल साधना करने की कोई जरूरत नहीं। यह तो बैलगाड़ी जैसे रास्ते थे--बड़े लंबे। अब तो जेट का युग है। एल.एसड़ी. भविष्य की साधना है।
वह इतना प्रभावित हो गया था कि जिंदगी इतनी रंगीन, इतनी प्रज्वल, इतनी संगीतपूर्ण, इतनी विभामयी! तो जरूर एल.एसड़ी. कुछ कर रहा है। एल.एसड़ी. कुछ भी नहीं करता। और एल.एसड़ी. से कुछ होनेवाला भी नहीं है। एल.एसड़ी. तो एक झटके से तुम्हारी आंखों के पर्दे को गिरा देता है। लेकिन फिर पर्दा आ जाएगा। क्योंकि पर्दे के होने का कारण नहीं मिटता एल.एसड़ी. से।
यह तो ऐसे ही है जैसे किसी ने जबर्दस्ती किसी सोते आदमी की आंखें उघाड़ दीं। खोल दीं खींचकर पलकें। एक क्षण को आंखें खुल गयीं, उसने कुछ देखा, कि फिर आंखें बंद हो गयीं। सोया आदमी सोया आदमी है। और अगर एल.एसड़ी. बार-बार लिया तो रोज-रोज रंग कम होते जाएंगे। जैसे औषधि का असर खो जाता है, ऐसे ही नशे का असर खो जाएगा। फिर ज्यादा मात्रा चाहिए। उसी मात्रा में अर्थ न होगा। एक दिन ऐसा आयेगा, एल.एसड़ी. से कुछ भी न होगा। अगर किसी आदमी की आंख तुमने रोज आधी रात में जबर्दस्ती खोली, तो पहले दिन हो सकता है वह थोड़ा-सा चौंककर देखे, दूसरे दिन और कम देखेगा, तीसरे दिन और कम। महीने भर के बाद तुम खोल दो आंख, आंख खुली रहेगी, वह कुछ भी न देखेगा। अभ्यास हो गया। दुनिया में आदमी के ऊपर नशे का प्रभाव इसीलिए रहा है कि नशे से कुछ न कुछ रहस्य की झलक मिलती है। नशे का प्रभाव अकारण नहीं है।
और समस्त दुनिया के धर्मगुरुओं ने नशे से बचने का आग्रह किया है, वह
भी बात ठीक है। क्योंकि नशा धोखा देता है। सत्य मिलता नहीं, सत्य की झूठी झलक दे देता है।
यहां अगर मुझे सुनते-सुनते मेरे पास बैठे-बैठे प्रार्थना और ध्यानपूर्ण हृदय से कभी तुम्हारी आंखों का पर्दा सरक जाए, तो उस समय प्रश्न खड़े मत करना। उस क्षण तो पर्दे को पूरा ही गिर जाने देना। छलांग लेकर उतर जाना। तुम भी बन जाना एक हिस्से उस इंद्रधनुष के। तुम भी उस विभा में खो जाना। शायद लौटकर तुम फिर कभी वही न हो सको, जो तुम थे। शायद तुम नये होकर ही लौटो। शायद फिर तुम्हें अपने आसपास भी वैसे ही रंगों का फैलाव, वैसे ही रंगों की बाढ़ अनुभव होने लगे।
परमात्मा जीवन के समस्त रंगों को देख लेने का नाम है। जीवन के समस्त रूप को देख लेने का नाम है। जीवन का जो परम आह्लादमय चमत्कारिक रूप है, उसको पूरा का पूरा जी लेने का नाम है। परमात्मा कोई गंभीर, उदास चेहरों की खोज नहीं; नाचते, गाते लोगों की खोज है।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग दो
पांचवां प्रवचन

जीवन ही है गुरु

सुवहुं पि सुयमहीयं किं काहिइ चरणविप्पहीणस्स।
अंधस्स जह पलित्ता, दीवसयसहस्सकोडी वि।। 90।।
थोवम्मि सिक्खिदे जिणइ, बहुसुदं जो चरित्तसंपुण्णो।
जो पुण चरित्तहीणो, किं तस्स सुदेण बहुएण।। 91।।
णिच्छयणयस्स एवं, अप्पा अप्पमि अप्पणे सुरदो।
सो होदि हु सुचरित्तो, जोई सो लहइ णिव्वाणं।। 92।।
जं जाणिऊण जोई, परिहारं कुणइ पुण्णपावाणं।
तं चारित्तं भणियं, अवियप्पं कम्मरहिएहिं।। 93।।
अब्भंतरसोधीए, बाहिरसोधी वि होदि णियमेण।
अब्भंतर-दोसेण हु, कुणदि णरो बाहिरे दोसे।। 94।।
जह व णिरुद्धं असुहं, सुहेण सुहमवि तहेव सुद्धेण।
तम्हा एण कमेण य, जोई झाएउ णियआदं।। 95।।

पहला सूत्र--
"चारित्रहीन पुरुष का विपुल शास्त्र-अध्ययन भी व्यर्थ ही है, जैसे कि
अंधे के आगे लाखों-करोड़ों दीपक जलाना व्यर्थ है।"
सुवहुं पि सुयमहीयं किं काहिइ चरणविप्पहीणस्स।
अंधस्स जह पलित्ता, दीवसयसहस्सकोडी वि।।
महावीर ने चरित्र और चारित्र में बड़ा भेद किया है। एक चरित्र है, जो
हम ऊपर से आरोपित करते हैं। एक चरित्र है, जो भीतर से आविर्भूत होता है। एक चरित्र है, जिसका हम अभ्यास करते हैं। और एक चरित्र है, जो सहज खिलता है। सहज खिलनेवाले को ही उन्होंने चारित्र कहा है। वही धार्मिक है। जो आरोपित है, अभ्यासजन्य है, चेष्टा से बांधा गया है, वह चरित्र नैतिक है।
महावीर की भाषा में, वास्तविक चरित्र को उन्होंने निश्चय-चरित्र कहा है। अवास्तविक चरित्र को व्यवहार-चरित्र कहा है। एक तो चेहरा है दूसरों को दिखाने के लिए। और एक स्वयं का मौलिक चेहरा है। एक तो व्यवहार है। सच बोलते हो, ईमानदारी से जीते हो, लेकिन वह भी व्यवहार है। सारी दुनिया के दुकानदार कहते हैं, "आनेस्टी इ.ज दि बेस्ट पालिसी।" ईमानदारी श्रेष्ठतम नीति है। लेकिन "पालिसी" होशियारी है उसमें। नीति, धर्म नहीं। ईमानदार इसलिए होना उचित है कि ईमानदारी में लाभ है। ईमानदारी स्वयं बहुमूल्य नहीं है, लाभ के कारण बहुमूल्य है।
अगर ईमानदारी लाभ के कारण बहुमूल्य है, और किसी दिन बेईमानी से लाभ मिलता हो, तो ऐसा आदमी बेईमानी करेगा। क्योंकि उसका मूल्य तो लाभ का था। ईमानदारी से मिलता था तो ईमानदारी ठीक थी, बेईमानी से मिलता है तो बेईमानी ठीक है। ऐसे आदमी के बेईमान होने में जरा-भी अड़चन न होगी। ऐसे आदमी की ईमानदारी उपकरण है, साधन है, साध्य नहीं। ऐसे आदमी के चरित्र का कोई भरोसा नहीं।
अगर एक आदमी इसलिए शुभ कार्य करता है कि इससे स्वर्ग मिलेगा, तो ऐसे आदमी के चरित्र का कोई भरोसा नहीं। क्योंकि कल अगर इसे पता चल जाए कि बेईमान भी रिश्वत देकर और स्वर्ग पहुंच रहे हैं, कल इसे पता चल जाए कि ईमानदार नर्क में पड़े हैं और सड़ रहे हैं, तो यह ईमानदारी छोड़ देगा। यह बेईमानी पर उतर जाएगा। स्वाभाविक है। क्योंकि साध्य तो ईमानदारी नहीं थी।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे को समझा रहा था, दुकान पर। सभी बातें समझा रहा था धीरे-धीरे, बेटा बड़ा हो गया, दुकान संभाले। एक दिन उसने कहा कि सुन, देख, यहां व्यवसाय की नैतिकता का प्रश्न है। यह जो आदमी अभी-अभी गया, दस रुपये का नोट इसे देना था, लेकिन भूल से यह दस-दस के दो नोट दे गया है, एक-दूसरे में जुड़े थे। अब यह सवाल उठता है व्यावसायिक नीति का कि मैं अपने साझीदार को यह दस रुपये का दूसरा नोट बताऊं कि न बताऊं? वह यह

नहीं कह रहा है कि नीति का सवाल उठता है कि मैं इस आदमी को बुलाऊं जो बीस रुपये दे गया है। यह तो बात खतम हुई। इससे तो कुछ लेना-देना नहीं। अब मैं अपने "पार्टनर" को बताऊं या न बताऊं?
व्यवसायी की बुद्धि तो नीति में से भी व्यवसाय ही खोजेगी। और जो इस ग्राहक को बुलाने को, देने को राजी नहीं है, वह साझीदार को भी बताने को राजी नहीं हो सकता।
नैतिक व्यक्ति बेशर्त नैतिक नहीं होता। धार्मिक व्यक्ति बेशर्त नैतिक होता है। उसकी कोई शर्त नहीं है। नीति कोई साधन नहीं है, जिससे कहीं पहुंचना है। नीति ही उसका साध्य है। शुभाचरण उसका आनंद है।
इसे ख्याल में लेना, क्योंकि यह सारे सूत्र इसी संबंध में हैं। कोई व्यक्ति नर्क के डर से नैतिक आचरण कर रहा है। कोई व्यक्ति चौराहे पर खड़े पुलिसवाले के डर से नैतिक आचरण कर रहा है। कोई व्यक्ति अदालत के भय से नैतिक आचरण कर रहा है। भय से नीति का कैसे जन्म होगा! भय से थोथे आचरण का जन्म हो सकता है। भय के कारण तुम ऊपर-ऊपर अपने को संभालकर रख सकते हो। लेकिन भीतर की अग्नि का क्या होगा? और इसलिए अकसर तुम पाओगे, जिनको हम साधारणतः नैतिक पुरुष कहते हैं, वे सभी पाखंडी होंगे।
पाखंड का इतना ही अर्थ है, ऊपर नैतिक होंगे, भीतर अनीति के सागर में लहरें उठ रही होंगी। जो उन्होंने बाहर से रोक लिया है अपने को, न करने से, वही उनके भीतर चित्त में घाव की तरह गहरा होता जाएगा। जिससे उन्होंने अपने को किसी तरह वंचित कर दिया है, वह उनके मन में बार-बार सपने उठायेगा। आकर्षित करेगा। अगर उपवास घटा हो, तो तुम्हें भोजन की याद न आयेगी। कभी- कभी घटता है उपवास। कभी तुम संगीत सुनने में ऐसे लीन हो गये कि याद ही न रही शरीर की। संगीत से ऐसे भर गये कि भीतर जगह ही न रही भोजन की। संगीत में ऐसे डूब गये कि शरीर और शरीर की भूख का विस्मरण हो गया। तो उपवास सहज घटित हुआ। ध्यान में डूब गये और शरीर भूल गया, तो उपवास सहज घटित हुआ। लेकिन अगर तुमने चेष्टा से उपवास किया--पर्युषण आया, व्रत के दिन आये, तुमने उपवास किया--तो तुम दिन-रात भोजन के संबंध में ही विचार करोगे। यह उपवास अंतर्तम से नहीं आया। यह उपवास नहीं है, अनशन है। उपवास शब्द का ही अर्थ होता है, आत्मा के निकट आ जाना, आत्मा के पास आ जाना। आत्मा के वास में आ जाना। पास... और पास... और पास... । आत्मा के इतने पास हो गये कि शरीर बहुत दूर पड़ गया, हजारों मील दूर पड़ गया, उसकी भूख-प्यास की भी याद नहीं आती।
महावीर ने ऐसे उपवास किये थे। तुम भी उपवास कर लेते हो। लेकिन तुम्हारे उपवास में भोजन का इतना चिंतन चलता है कि करीब-करीब भोजन पर ही ध्यान अटक जाता है। भोजन करते हुए तुम भोजन के संबंध में इस भांति कभी नहीं सोचते, जैसा उपवास करके सोचते हो। भोजन कर लिया दो बार, तो भूल गये। लेकिन जिस दिन उपवास थोप लिया अपने ऊपर, चौबीस घंटे भोजन की ही याद आती- जाती है। यह तो उपवास न हुआ। यह तो उपवास के प्रतिकूल हो गया, विपरीत हो गया।
एक ब्रह्मचर्य है, जो कामवासना की व्यर्थता के बोध से जन्मता है। उसे बांध-बांधकर लाना नहीं पड़ता। तुम्हारी समझ ही, तुम्हारे जीवन का अनुभव ही तुम्हें उस जगह ले आता है कि ऊर्जा का तुम व्यर्थ उपयोग बंद कर देते हो। बंद करने की चेष्टा नहीं करते, बंद हो जाता है। तुम्हारी समझ ने तुम्हें शरीर की व्यर्थता समझा दी। तुम्हारी समझ ने तुम्हें शरीर के क्षणभंगुर-रस का बोध करा दिया। तुम्हारी समझ ने, जागरूकता ने, तुम्हारे अनुभव ने तुम्हारे भीतर एक नयी दिशा खोज ली। उसी दिशा में ऊर्जा बहने लगी। ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन हुआ। तुम ऊर्ध्वरेतस बने। तब तो एक ब्रह्मचर्य है, जिसमें फूल-जैसी सरलता होगी, सहजता होगी, कोमलता होगी।
और एक ब्रह्मचर्य है, जो तुमने वासना की अदम्य पुकार से घबड़ाकर, वासना
के अदम्य प्रभाव से घबड़ाकर अपने ऊपर आरोपित कर लिया। जबर्दस्ती थोप लिया। प्राण तो भागे जाते थे वासना की तरफ, तुमने लगाम खींच ली। लेकिन इससे तुम शांति को उपलब्ध न होओगे। इससे तुम्हारा चित्त और भी कामुक हो जाएगा। इससे तुम्हारे चित्त में कामवासना ही कामवासना भर जाएगी। इससे तुम मवाद ही मवाद से भर जाओगे। इससे तुम्हारा उठना, बैठना, सोना, जागना, ध्यान, पूजा,

प्रार्थना, सभी पर कामवासना की छाप पड़ जाएगी। यह तो रोग हो गया। स्वास्थ्य न हुआ।
महावीर जिस ब्रह्मचर्य की बात करते हैं, वह जीवन के अनुभव से आये। जीवन के कडुवे-मीठे अनुभव तुम्हें कहीं पहुंचा दें; हाथ जल जाए, फिर कौन डालता है आग में हाथ!
मनोवैज्ञानिक कहते हैं, अगर छोटा बच्चा आग की तरफ जा रहा हो, तो बजाय उसे जबर्दस्ती रोकने के, उसे आग के पास धीरे-धीरे ले जाओ। उसे अनुभव होने दो कि जैसे-जैसे आग के पास जाता है, वैसे-वैसे शरीर झुलसता है। और इसमें भी कोई हर्ज नहीं है अगर वह एक बार जलती हुई आग में अंगुली भी डाल ले और थोड़ा जल जाए और फफोला उठ आये, कोई हर्ज नहीं। लेकिन यह जीवनभर के लिए सिखावन हो जाएगी। तुम रोको मत उसे। रोकने से तो आकर्षण बढ़ेगा। जहां-जहां हम मन को जाने से रोकते हैं, मन वहीं-वहीं उतावला होता है जाने को।
मन का नियम समझो। नियंत्रण निमंत्रण बन जाता है। निषेध पुकार बन जाती है। रोको जाने से कहीं मन को और सब तरफ भूलकर मन वहीं-वहीं जाने लगता है। कभी देखा है, दांत टूट जाता है तो जीभ वहीं-वहीं जाती है। रोको उसे। फिर तुम भूले कि फिर जीभ वहीं गयी। कहां चौबीस घंटे याद रखोगे! तुम जानते हो दांत टूट गया, अब वहां कुछ जीभ को ले जाने जैसा भी नहीं है। लेकिन खाली जगह में जीभ जाती है। तुम रोकते हो तो और-और जाती है।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि एक बहुत गहरा नियम है--विपरीत परिणाम का नियम। तुम जो नहीं करना चाहते, वही होता है। नये सिक्खड़ को देखा है साइकिल सीखते हुए? साठ फीट चा--ैडे रास्ते पर, रास्ते के किनारे लगे मील के पत्थर से उसकी साइकिल जाकर टकरा जाती है। साठ फीट चौड़ा रास्ता था, कोई रास्ते पर न था। सुनसान पड़ा था। लेकिन इसको हुआ क्या? यह लाल मील के पत्थर की तरफ क्यों आकर्षित हो गया? जैसे ही नया सिक्खड़ पत्थर देखता है, वह घबड़ाता है। वह घबड़ाता है कि कहीं इस पत्थर से टकरा न जाऊं! साठ फीट चौड़ा रास्ता भूल जाता है। इस पत्थर से टकरा न जाऊं, नजर पत्थर पर अटक जाती है। और जैसे वह पत्थर से बचने लगता है, वैसे रास्ता तो बिल्कुल ही भूल जाता है, पत्थर और वह, बस दो ही रह जाते हैं। फिर एक अदम्य आकर्षण घबड़ाहट में पैदा हुआ। उसे पत्थर की तरफ खींचने लगता है। कोई पत्थर खींच रहा है, ऐसा नहीं। खुद के ही निषेध से खिंचा जा रहा है।
बड़ी प्रसिद्ध कथा है कि एक युवा एक साधु के पीछे पड़ा था। उसके पैर दबाता, सेवा करता, कहता कि कुछ चमत्कारी शक्ति दे दो। साधु उससे घबड़ा गया था, उसने कहा, अच्छा भई! यह मंत्र है। छोटा-सा मंत्र है, इसे पांच बार पढ़ना है। बस पांच बार पढ़ने से तुझे सिद्धि उपलब्ध हो जाएगी। तू जो भी करेगा, करना चाहेगा, हो सकेगा। लेकिन एक बात ख्याल रखना कि जब मंत्र को पढ़े तो बंदर की याद न आये। उस आदमी ने कहा, फिकिर छोड़ो, बंदर की कभी याद आयी ही नहीं जिंदगी में, अब क्यों आयेगी। लेकिन बस वहीं झंझट हो गयी!
वह मंदिर से नीचे भी नहीं उतर पाया कि बंदर ही बंदर! उसने बहुत झिड़का। उसने बार-बार मंत्र को याद करने की कोशिश की, लेकिन जैसे ही मंत्र आये कि उसके पहले बंदर मौजूद हो जाए। रातभर उसने चेष्टा की कि पांच बार तो बिना बंदर के एक दफा कह लूं, लेकिन न कह पाया। आधी पागल हालत में सुबह आया। उसने उस गुरु को कहा कि तुम भी हद्द के आदमी हो! एक तो वर्षों की सेवा के बाद मंत्र दिया, यह बंदर क्यों साथ दे दिया! अगर बंदर ही शर्त थी, तो चुप रहते। मुझे बंदर कभी याद आते ही न थे, जिंदगी बीत गयी। और आज रात, मंत्र को पांच बार कहना तो मुश्किल, एक बार कहना मुश्किल है। गुरु ने कहा, मैं भी क्या कर सकता हूं! शर्त वही है। वह पूरी हो तो ही मंत्र सार्थक होता है।
तुम पक्का मान लो, वह मंत्र कभी सार्थक हुआ न होगा। जितनी चेष्टा होगी, उतना ही बंदर प्रगाढ़ होता जाएगा।
मन का एक नियम है। तुम जिस चीज को दबाओगे, उभरेगी। दबाने से कभी कोई मुक्त नहीं होता। मुक्ति दमन से नहीं आती। मुक्ति बोध से आती है। समझ से आती है। और एक बार समझ आ जाए, तो जीवनभर के लिए एक दीया जल जाता है भीतर। मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन की एक रात अपनी पत्नी से कुछ कहा- सुनी हो गयी। पत्नी बहुत चिल्लाने लगी, चीखने लगी। मुल्ला थरथर कांपने

लगा। आखिर पत्नी ने कहा, कायर कहीं के, क्यों थरथर कांप रहे हो? तुम आदमी हो कि चूहे! मुल्ला ने कहा, देवी! आदमी ही होना चाहिए, क्योंकि अगर मैं चूहा होता, तो तू थरथर कांपती। इस उपद्रव और झगड़े में मोहल्ले-पड़ोस के लोग भी आ गये। संयोग की बात एक चोर घर में घुसा था। वह पकड़ा गया।
अदालत में मुकदमा चला। उस चोर से मजिस्ट्रेट ने पूछा, तुम्हें कुछ कहना है? उसने कहा सिर्फ इतना ही कहना है हुजूर, कि मैं कभी शादी न करूंगा। और इतनी मेरी प्रार्थना है, और कोई भी सजा दे दो, शादी करने भर की आज्ञा मत देना। बस, बहुत देख लिया। रात जो मुझे दर्शन हुआ है! मैं भी आदमी हूं, चूहा नहीं हूं। और जो इस गरीब मुल्ला पर गुजरते देखा है, वह अब अपने पर गुजरते नहीं देखना चाहता।
जीवन को खुली आंख से देखते चलें। जो चारों तरफ गुजर रहा है, वही शास्त्र है। जो सब पर गुजर रहा है, वही शास्त्र है। तुम पर गुजर रहा है, उसे भी गौर से देखो। कोई भी जीवन का अनुभव बिना सार निचोड़े मत जाने दो। तो ही धीरे-धीरे परिपक्वता आती है। तो ही धीरे-धीरे ऐसी घड़ी आती है, जहां तुम्हारे भीतर से चरित्र का आविर्भाव होता है। लेकिन उस चरित्र की न तो कोई मांग होती, न कोई आकांक्षा होती, न उस चरित्र का कोई लक्ष्य होता। वह चरित्र स्वयं में सुंदर। स्वांतः सुखाय। भीतर ही भीतर उसका रस है।
वैसा व्यक्ति यह भी नहीं कहता कि मैं चरित्रवान हूं, इसलिए मुझे सम्मान मिले। वैसा व्यक्ति यह भी नहीं कहता--यह भी शिकायत नहीं करता--कि दूसरे चरित्रहीन सम्मानित हो रहे हैं, यह क्या अन्याय हो रहा है! वैसा व्यक्ति यह भी नहीं कहता कि चरित्रहीन सफल हो रहे हैं और चरित्रवान असफल हो रहे हैं, हे प्रभु, यह कैसा अन्याय है! नहीं, उसकी कोई शिकायत नहीं। वह जानता है कि चरित्रहीन कितना ही सफल हो जाए, उसकी सब सफलता अंततः जोड़ में असफलता बन जाती है। वह जानता है कि चरित्रवान सफल हो कि असफल, उसके आनंद में कोई फर्क नहीं पड़ता। उसकी विफलता भी सफलता है। सफलता तो सफलता है ही। वह सड़क पर भिखारी की तरह भी खड़ा हो, तो उसके भीतर सम्राट का भाव होता है। चरित्रहीन, सम्राट की तरह सिंहासन पर भी बैठा हो, तो भी अपराधी के भाव से भरा होता है।
असली निर्णय भीतर है। चरित्र का एक सहज सुख है। एक शीतलता है। लेकिन,
उस चरित्र का जो अपने से आता है।
महावीर कहते हैं, "चरित्रविहीन पुरुष का विपुल शास्त्र-अध्ययन भी व्यर्थ ही है; जैसे कि अंधे के आगे लाखों-करोड़ों दीपक जलाना व्यर्थ है।" अंधे के सामने एक दीपक जलाओ, कि करोड़ दीपक जलाओ, कोई अंतर नहीं पड़ता।
सुना है मैंने, एक अंधा अपने मित्र के घर से विदा हो रहा था। तो मित्र
ने कहा, रात में अंधेरा ज्यादा है, अमावस की रात है। रास्ते पर कोई दुर्घटना हो जाए, तुम यह हाथ में कंदील लिये जाओ। उस अंधे ने कहा, तुम पागल हुए हो! मुझे क्या फर्क पड़ता है, कंदील हाथ में हो, या न हो! अंधेरा अंधेरा है। मैं अंधा हूं, क्या तुम भूल गये? कंदील क्या करेगी!
लेकिन उस मित्र ने तर्क किया कि माना कि तुम अंधे हो और कंदील तुम्हारे लिए कुछ न कर सकेगी, लेकिन इतना तो करेगी कि दूसरा कोई तुमसे न टकरा सकेगा। रोशनी हाथ में रहेगी, तो दूसरा तुमसे न टकरा सकेगा। यह तर्क अंधे को भी जंचा, वह कंदील लेकर गया। कोई दस-पांच कदम ही गया था कि कोई उससे आ टकराया। उसने कहा, क्या मामला है? क्या तुम भी अंधे हो? हाथ में कंदील है मेरे, दिखायी नहीं पड़ती? उस दूसरे आदमी ने कहा कि महानुभाव, आपकी कंदील बुझी हुई है।
अंधे को पता कैसे चले कि कंदील बुझ गयी। अंधे को कंदील का जलना ही पता नहीं चलता, तो बुझना कैसे पता चलेगा? और कहते हैं, उसे अंधे ने लौटकर अपने मित्र को कहा कि मैं वर्षों से चल रहा हूं, कभी मुझसे कोई भी न टकराया था। क्योंकि मैं खुद ही संभलकर चलता हूं, लकड़ी चोट करके चलता हूं, खबर करके चलता हूं कि भई, मैं अंधा हूं। तुम्हारी कंदील ने मुझे आश्वासन दे दिया कि आज तो कोई खबर रखने की जरूरत नहीं। आज तो लापरवाह चल सकता हूं। कंदील तो हाथ में है, कोई टकरायेगा नहीं। यह पहली दफे मेरी जिंदगी में कोई मुझसे टकराया है, तुम्हारी कंदील के कारण टकराया है। कंदील ने भरोसा दे दिया,

आत्मविश्वास दे दिया। अन्यथा अंधा अपने अंधेपन के हिसाब से व्यवस्था करके चलता है। लकड़ी टटोलकर, आवाज करके। आज उसने अपनी सहज सावधानी को भी छोड़ दिया।
अगर तुम्हें पता हो कि तुम अज्ञानी हो, तो तुम टटोलकर चलोगे, आवाज करके चलोगे, लकड़ी बजाकर चलोगे; अकड़कर न चलोगे। लेकिन, अगर तुम्हारा अज्ञान शास्त्र-अध्ययन में ढंक गया, तो तुम्हें लगता है, तुम्हारे हाथ में कंदील आ गयी। तुम अकड़कर चलोगे। अज्ञानी के पास जब उधार ज्ञान हो जाता है, तो ज्ञान तो नहीं आता, सिर्फ अकड़ आती है। ज्ञान तो नहीं जलता, सिर्फ अहंकार प्रगाढ़ होता है।
इस अहंकार से चरित्र तो कैसे पैदा होगा! अहंकार तो सबसे बड़ी बाधा है चरित्र में। क्योंकि चरित्र की अगर कोई बुनियाद है, तो निर-अहंकारिता है। अपने को बदलने को वही तैयार होता है, जो अपने दोष देखने को तैयार है। अहंकार तो अपने दोष देखने को तैयार ही नहीं होता। इसलिए बदलने का तो कोई सवाल ही नहीं है।
अज्ञानी व्यक्ति, जिसके ऊपर पांडित्य का कोई बोझ नहीं है, अपने अज्ञान को देखता है और सदा तत्पर होता है बदलने को। अज्ञानी सीखने को राजी होता है, पंडित सीखने को राजी नहीं होता। उसे तो पहले से ही ख्याल है कि मैं जानता हूं।
इसीलिए सदियां बीत गयीं, शास्त्र बढ़ते चले गये; आदमी का ज्ञान भी खूब बढ़ा; मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे भी खूब बने, लेकिन चरित्र के मंदिर का जन्म न हुआ।
मस्जिदों में मौलवी खुत्बे सुनाते ही रहे
मंदिरों में बिरहमन अशलोक गाते ही रहे
आदमी मिन्नतकशे-अरबाबे-इर्फां ही रहा
दर्दे-इंसानी मगर महरूमे-दर्मा ही रहा
चलते रहे। मौलवी कुरान समझाते रहे। मंदिरों में उपदेश देते रहे ब्राह्मण।
मस्जिदों में मौलवी खुत्बे सुनाते ही रहे
मंदिरों में बिरहमन अशलोक गाते ही रहे
आदमी मिन्नतकशे-अरबाबे-इर्फां ही रहा
लेकिन आदमी सदा देवताओं के सामने हाथ जोड़े भिखारी ही बना रहा। वह देवताओं की कृपा का आकांक्षी ही रहा। आदमी कभी अपने पैर पर खड़ा न हो पाया। आदमी कभी स्वावलंबी न बन पाया। आदमी देवताओं के सामने भिखमंगा बना रहा, आदमी खुद देवता न बन पाया।
दर्दे-इंसानी मगर महरूमे-दर्मा ही रहा
और आदमी की जो बुनियादी बीमारी है, वह उपचार से वंचित रही। आदमी का अहंकार उसकी बुनियादी बीमारी है।
दर्दे-इंसानी मगर महरूमे-दर्मा ही रहा
वह जो मूल पीड़ा है, अकड़ की, वह अपनी जगह खड़ी रही। खड़ी ही न रही, बल्कि बहुत बढ़ गयी। मंदिरों, मस्जिदों ने सहारा दिया। आदमी गहन अहंकार से भर गया। इस अहंकार के कारण सीखना ही असंभव! इस अहंकार के कारण झुकना असंभव। इस अहंकार के कारण विनम्र होना असंभव।
"चरित्रहीन पुरुष का विपुल शास्त्र-अध्ययन व्यर्थ है।"
महावीर कह रहे हैं, शब्दों से नहीं, अध्ययन से नहीं, स्वाध्याय से-- स्वयं के अध्ययन से यात्रा शुरू होगी।
"चारिष्यसंपन्न का अल्पतम ज्ञान भी बहुत है।"
थोड़ा भी जानो, लेकिन जानो। अपने अनुभव से जानो। थोड़ा भी जानो, लेकिन तुम्हारे ही जीवन का निचोड़ हो। रत्तीभर काफी है, लेकिन तुमने प्राणों को डालकर उसे सीखा हो। उधार न हो। ऊपर-ऊपर न हो। सुना-सुनाया न हो। तुम्हारे भीतर प्राणों ने गुनगुनाया हो। तुमने अपनी आंख से जाना हो। तुमने अपने हाथ से छुआ हो। तो अल्पतम ज्ञान भी बहुत है।
"... और चरित्रविहीन का बहुत श्रुतज्ञान--बहुत कुछ सुना हुआ, बहुत स्मृति से इकट्ठा किया हुआ, वैसा ज्ञान--भी निष्फल है।"

हम जानते बहुत हैं बिना जाने। गुरजिएफ के पास जब पहली दफा आस्पेंस्की आया--उसका प्रमुख शिष्य--तो गुरजिएफ ने कहा, तू एक काम कर। एक कागज पर दो खंड कर ले। एक तरफ लिख, जो तू जानता है। और एक तरफ लिख, जो तू नहीं जानता है। और ईमानदारी बरत। क्योंकि अगर मेरे पास कुछ सीखना है, तो ईमानदारी से शुरुआत करनी होगी। फिर मेरा कुछ खोता नहीं, अगर तू बेईमान भी रहे। जो तू लिख देगा कि तू जानता है, उस संबंध में मैं फिर कभी तुझसे बात न करूंगा। बात खतम हो गयी, तू जानता है। और जो तू लिख देगा कि नहीं जानता है, उस संबंध में मैं तेरी पूरी सहायता करूंगा जानने के लिए। अब तू सोच ले। यह कागज ले, भीतर के कमरे में जाकर लिख ले।
आस्पेंस्की प्रसिद्ध आदमी था। बड़ा गणितज्ञ था। जब गुरजिएफ के पास आया
तो गुरजिएफ को तो कोई भी नहीं जानता था, आस्पेंस्की का नाम अंतर्राष्ट्रीय ख्याति का नाम था। उसने एक बड़ी अदभुत किताब "टर्सियम आर्गनम" लिखी थी। ऐसी किताबें सदियों में एकाध बार लिखी जाती हैं। कहते हैं, दुनिया में केवल तीन किताबें हैं उस मूल्य की, पूरे मनुष्य जाति के इतिहास में। पहली किताब अरिस्टाटल ने लिखी थी। उसका नाम है--"आर्गनम।" पहला सिद्धांत। दूसरी किताब बेकन ने लिखी, उसका नाम है--"नोवम आर्गनम।" नया सिद्धांत। और तीसरी किताब आस्पेंस्की ने लिखी। उसका नाम है--"टर्सियम आर्गनम।" तीसरा सिद्धांत। कहते हैं, इन तीन किताबों का कोई मुकाबला नहीं है।
और आस्पेंस्की ने जब ऐसी बहुमूल्य किताब लिखी थी, तो स्वभावतः अकड़ थी। अकड़ तो उसकी किताब के पहले पन्ने से ही पता चलती है। पहले पन्ने पर ही वह लिखता है कि अरस्तू ने पहला सिद्धांत लिखा, बेकन ने दूसरा लिखा, मैं तीसरा लिखता हूं, लेकिन तीसरा पहले से भी पहले मौजूद था। यह मेरा तीसरा सिद्धांत पहले से भी पहले है! और किताब तो मूल्यवान है, इसमें कोई भी शक नहीं है।
गुरजिएफ को कोई भी नहीं जानता था। गुरजिएफ को लोगों ने जाना आस्पेंस्की के कारण। क्योंकि आस्पेंस्की उसका शिष्य हो गया। तो जरूर इस फकीर में कुछ होगा। और गुरजिएफ ने कहा, तू लिख ले। क्योंकि मैंने तेरी किताब देखी है। तू बड़े खतरे में है। तुझे पता नहीं है और तुझे ख्याल है कि तुझे पता है। यह साफ हो जाए पहले ही दिन, फिर बात चल पड़ेगी।
आस्पेंस्की आदमी निश्चित ईमानदार रहा होगा। सब दांव पर लगा दिया उसने। घंटेभर वह बैठा रहा उस कमरे में। सर्द रात थी, पसीना-पसीना हो गया। हाथ में लिए कलम, कागज सामने रखे, चेष्टा करता है, लेकिन कुछ भी याद नहीं आता जो जानता हो, जो वस्तुतः जानता हो, जिसको स्वयं जाना हो। जिसका साक्षात्कार हुआ हो। न ईश्वर को जानता है, न आत्मा को जानता है। कुछ भी तो नहीं जानता। अभी ध्यान भी तो नहीं जाना। अभी प्रेम भी तो नहीं जाना। परमात्मा तो बहुत दूर है, अभी प्रेम भी नहीं जाना। रोता है, पसीने से तरबतर है।
घंटेभर बाद वापिस आता है। गुरजिएफ के चरणों में गिर पड़ता है। खाली कागज हाथ में दे देता है। कहता है, मैं कुछ भी नहीं जानता। मैं शिष्य होने को तैयार हूं। और वह आखिरी क्षण है, उसके बाद उसने कभी गुरजिएफ के सामने किसी भी बात को जानने का दावा नहीं किया।
गुरजिएफ ने खूब भरा उसे। खूब उंडेला उसमें। इतना खाली पात्र मिल जाए,
तो गुरु भी नाच उठता है! और इतना खाली हूं, ऐसा मानने को तैयार हो जाए; खाली तो सभी हैं। मानने में अड़चन है। खाली हैं तो और ढक्कन को बंद किये बैठे हैं, कि कोई ढक्कन न खोल ले, कोई भीतर देख न ले!
तुमने कभी विचार किया कि क्या तुम जानते हो? तुमने कभी ईमानदारी से उत्तर दिये? तुम्हारा छोटा बच्चा तुमसे पूछता है, ईश्वर है? तुम कहते हो हां है। वह कहता है, दिखाओ। तो तुम कहते हो, बड़े हो जाओ, तब तुम्हें दिखायी पड़ेगा। तुम्हें दिखायी पड़ा बड़े होकर? क्यों झूठ बोल रहे हो! कम से कम ईश्वर के संबंध में तो झूठ मत बोलो। क्या तुम बच्चे को दे रहे हो? तुम सोचते हो, ईश्वर दे रहे हो। तुम एक बड़े से बड़ा झूठ दे रहे हो। इसमें ईश्वर तो मिलेगा ही नहीं तुम भी खो जाओगे।

सभी बच्चे बड़े होकर अपने मां-बाप का तिरस्कार करने लगते हैं। क्योंकि
एक न एक दिन यह पता चल जाता है कि धोखा दिया गया। छोटे बच्चे तो बड़ी श्रद्धा से भरे होते हैं। तुम जो भी कहते हो, मान लेते हैं। अश्रद्धा जानते ही नहीं अभी। लेकिन कब तक ऐसा रहेगा! जल्दी ही सोच-विचार उठेगा, संदेह जगेंगे, प्रश्न उठेंगे और तब वे देखेंगे, कि तुम भी उसी नाव में सवार हो जिस पर वे सवार हैं। न तुम्हें परमात्मा का पता है, न तुम्हें आत्मा का पता है, तुम बकवास कर रहे हो। जिस दिन यह दिखायी पड़ता है, उसी दिन श्रद्धा गिर जाती है। और जिस बच्चे की श्रद्धा मां-बाप से गिर जाती हो, उसकी श्रद्धा सभी जगह गिर जाती है।
जो इतने करीब थे, जो इतने अपने थे, वे भी धोखा दे गये! वे भी झूठ बोलते रहे! वे भी दावे करते रहे, जिनका उन्हें कुछ भी पता न था! तो अब दूसरों का क्या भरोसा? अगर इस संसार में तुम्हें इतने अश्रद्धालु दिखायी पड़ते हैं, उसका बुनियादी कारण यही है, बच्चों की श्रद्धा के साथ खिलवाड़ किया गया है। उतना ही कहना, जितना तुम जानते हो। कुछ हर्ज नहीं है कह देने में कि मुझे पता नहीं है, खोज रहा हूं, मिल जाएगा तो तुम्हें बता दूंगा। अगर तुम्हें मिल जाए, तो मुझे खबर करना। मुझे पता नहीं है। यह भी पता नहीं कि मैं कौन हूं।
यहझूठी अकड़ कि मुझे पता है, सबसे महंगा सौदा है। इसके कारण ही चरित्र
का जन्म नहीं हो पाता। क्योंकि झूठ से तो चरित्र का जन्म नहीं हो सकता। अब यह थोड़ा सोचना।
इसे तुम धर्म की शिक्षा कहते हो। सारे धर्म यह चेष्टा करते हैं--ईसाई, हिंदू, जैन, मुसलमान--सब यह चेष्टा करते हैं कि धर्म की शिक्षा रहे। क्या शिक्षा तुम दोगे? शिक्षक को पता है? शिक्षक को भी पता नहीं है। ऐसे तुम झूठ को पैर लगा रहे हो। ऐसे तुम झूठ को चलायमान कर रहे हो। सब धर्म शिक्षा खतरनाक है। क्योंकि ज्ञान से भर देगी। और चरित्र से सदा के लिए वंचित कर जाएगी।
वास्तविक धर्म की शिक्षा तो एक ही हो सकती है कि तुम्हें जीवन से निचोड़ने की कला सिखायी जाए। तुम्हें कहा जाए कि जीवन के अनुभवों से सीखना। अगर क्रोध करते हो, तो खूब जागकर क्रोध करना। ताकि क्रोध में क्या होता है, यह तुम्हें पता चल जाए। फिर तुम्हारी मर्जी! फिर जो श्रेयस्कर हो, करना। अगर तुम्हें लगे, क्रोध ही उचित है, वही तुम्हारा आनंद है, तो वही करना। लेकिन ऐसा तो कभी हुआ नहीं कि क्रोध में किसी ने आनंद पाया हो। कामवासना में तुम्हारा आनंद है, तो ठीक है, उसी तरफ जाना। लेकिन ऐसा कभी हुआ नहीं कि किसी ने आनंद पाया हो। आनंद तो मनुष्य के भीतर है--न क्रोध में है, न काम में है, न लोभ में है।
रत्न तो लाख मिले, एक हृदय-धन न मिला
दर्द हर वक्त मिला, चैन किसी क्षण न मिला
खोजते-खोजते ढल धूप गयी जीवन की
दूसरी बार मगर लौटकर बचपन न मिला
और धर्म का अर्थ है, दूसरी बार बचपन का मिल जाना। द्विज हो जाना। धर्म ऐसे रत्न की तलाश है जो तुम्हारे भीतर छिपा पड़ा है, जो तुम्हारी अंदर की पर्तों में दबा पड़ा है।
यह धर्म किसी से मिल नहीं सकता। यह धर्म किसी के हाथ से हस्तांतरित नहीं हो सकता। यह धर्म तो तुम्हें अपने भीतर उतरकर ही खोजना होगा।
जीवन के हर अनुभव को सीढ़ी बनाना। और जीवन के किसी अनुभव से घबड़ाना मत।
यहां कुछ भी बुरा नहीं है। अगर सीख लो, तो सभी शुभ है। और न सीखो, तो सभी अशुभ है। यहां कांटे भी शिक्षा के लिए हैं। यहां अपमान में भी राज है। यहां दुख और दर्द में भी प्रार्थना के बीज ही छिपे हैं।
सूफी फकीर हसन परमात्मा से प्रार्थना किया करता था कि हे परमात्मा!
और कुछ भी करना, लेकिन थोड़ा दर्द बनाये रखना, थोड़ा दुख देते रहना। एक दिन किसी ने सुन लिया। यह कैसी प्रार्थना कर रहा है! पूछा कि हसन, प्रार्थनाएं हमने बहुत सुनीं, लोग करते हैं प्रार्थना सुख की, सुख के लिए, यह कैसी

प्रार्थना! तुम्हारा दिमाग ठीक है? या मैंने गलत सुना? मुझे लगा कि तुम कह रहे हो, हे परमात्मा! रोज मुझे थोड़ा दुख जरूर देते रहना।
हसन ने कहा, गलत नहीं सुना। लेकिन दुख में जब मैं होता हूं, तब प्रार्थना सुगम होती है। इसलिए दुख की प्रार्थना करता हूं, क्योंकि दुख की छाया में ही मैं प्रार्थना कर पाता हूं। अभी मैं इतना योग्य नहीं कि सुख में प्रार्थना कर सकूं। सुख में भूल जाता हूं। दुख में याद बनी रहती है। तो थोड़ा दुख देते रहता। ऐसा न हो कि सुख ज्यादा दे दो, और मैं तुम्हें ही भूल जाऊं। क्योंकि तुम्हें ही भूल गया, तो सुख का क्या करूंगा? तुम याद रहे, थोड़ा दुख भी रहा तो ठीक है। तुम्हारी याद के साथ दुख झेलना बेहतर। तुम्हारी याद के बिना सुख में उतरना खतरनाक।
स्वर्ग भी नर्क हो जाता है, अगर परमात्मा का स्मरण न रहे। नर्क भी स्वर्ग हो सकता है, अगर उसकी याद बनी रहे। वस्तुतः तो उसी की याद में स्वर्ग है। स्मरण में, बोध में, ध्यान में।
चरित्र रुक गया है, अवरुद्ध हो गया है। झूठे ज्ञान के कचरे ने, कंकड़-पत्थरों ने झरने को अवरुद्ध कर दिया है। तो पहली बात जो धार्मिक व्यक्ति को करने की है, वह यह है--तथाकथित ज्ञान को हटा दो। इस कूड़े-कर्कट को अलग करो। इसको अलग करते ही तुम बड़े निर्भार हो जाओगे। बोझ उतर जाएगा। न हिंदू रहोगे, न मुसलमान, न जैन, न ईसाई। क्योंकि यह सब तो उधार ज्ञान के कारण तुम बने हो। तब तुम सिर्फ शुद्ध खालिस आदमी रह जाओगे। शुद्ध, सहज आदमी। और तुम्हारी आंखें निर्मल बच्चे की भांति हो जाएंगी। क्योंकि ज्ञान ने ही तुम्हें बूढ़ा किया है। अगर ज्ञान तुम हटा दो, तो दूसरा बचपन आने लगा। रत्न तो लाख मिले, एक हृदय-धन न मिला
मिलेगा भी कैसे! हृदय-धन तो भीतर है। बाहर जो भी मिल जाएगा, वह और कुछ
भी हो, हृदय-धन तो नहीं हो सकता। और जो हृदय-धन नहीं है, वह धन कैसा! वह आज नहीं कल छिनेगा।
दर्द हर वक्त मिला, चैन किसी क्षण न मिला
चैन तो भीतर मिलता है। चैन तो उसे मिलता है, जो अपनी ही छाया में आ गया। जो अपने भीतर इतना उतर गया कि संसार की तरंगें वहां तक पहुंच नहीं पातीं। चैन तो बस उसे मिलता है।
दर्द हर वक्त मिला, चैन किसी क्षण न मिला
खोजते-खोजते ढल धूप गयी जीवन की
दूसरी बार मगर लौट के बचपन न मिला
और जब तक दूसरी बार बचपन न मिले, समझना कि जीवन व्यर्थ गया। दूसरी बार बचपन मिल जाए, कि जीवन सार्थक हुआ। उस दूसरे बचपन को ही तो संतत्व कहते हैं। पहला बचपन मूल्यवान है, लेकिन खोयेगा। क्योंकि पहला बचपन अबोध है। उसे खोना ही पड़ेगा। उसे बचाने का कोई उपाय नहीं है। वह खोने को ही है। बच्चा सरल है, साधु है, लेकिन उसकी साधुता इतनी सरल है कि संघर्ष में टिक न सकेगी। उसकी साधुता इतनी स्वाभाविक है कि जीवन के उपद्रव में दब जाएगी। उसकी साधुता जानेवाली है। कोई उपाय नहीं बचाने का।
एक और बचपन आता है, जब तुम अपने हाथ से बचपन लाते हो। हटा देते हो सब कूड़ा-कर्कट जानकारी का। फिर अनजान हो जाते हो, जैसे छोटा बच्चा। तुम्हारी आंखें विचारों से भरी नहीं हैं। निर्मल हो जाती हैं। तुम्हारी खोपड़ी में कोई बोझ नहीं। तुम फिर से आंख खोलकर जगत को देखते हो, जैसा तुमने पहली बार आंख खोलकर गर्भ के बाद देखा था। जन्मे थे और आंख खोली थी। उतनी ही निष्कपटता से फिर से तुम जगत को देखते हो। इसी को तो हम संतत्व कहते हैं। कहो "केवल ज्ञान।"
यह दूसरा बचपन बड़ा बहुमूल्य है। यह कभी खोयेगा नहीं। क्योंकि इसे तुमने अर्जित किया है। पहला बचपन मिला था, दूसरा तुमने कमाया है। जो कमाया है, वह कभी खोयेगा नहीं। जो मिला था, वह वापिस लिया जा सकता है। पहला बचपन मुफ्त था। दूसरा बचपन अर्जित है। पहला बचपन अबोध था। दूसरा बचपन बड़ा बोधपूर्ण है, बुद्धत्वपूर्ण है। पहला बचपन कठिनाइयों को नहीं जानता था। कठिनाइयों में गया, भटक गया। दूसरा बचपन सारी कठिनाइयों को पार करके आया है, जानकर आया है। देख लिये जीवन के सब अनुभव। फांक ली धूल सभी रास्तों की।

और सभी घाटों का पानी पी लिया। सब पाप-पुण्य पहचान लिये। बुरे-भले अनुभव, मीठे-कडुवे अनुभव, सबसे गुजरकर आया है। जीवन की परीक्षा पर कसकर उतरा है। कसौटी से गुजरा है। यह जो दूसरा बचपन है, इसे फिर कोई छीन नहीं सकता। यह फिर तुम्हारी निधि है। यही है हृदय-धन।
"चरित्र-संपन्न का अल्पतम ज्ञान भी बहुत है।"
यह अल्पतम ज्ञान आता ही चरित्र से है। जीवन को जीने से आता है। जीवन
के साथ जूझने से आता है। जीवन की चुनौती स्वीकार करने से आता है। जीवन जो अड़ंगे देता है, उनको पार करने से आता है।
यह ज्ञान चरित्र का ही निचोड़ है, सार है। जैसे हजारों फूलों को निचोड़कर इत्र बनता है, ऐसे हजारों अनुभवों को निचोड़कर ज्ञान बनता है। एक बार क्रोध किया, दो बार क्रोध किया, हजार बार क्रोध किया, लाख बार क्रोध किया, इन सारे क्रोधों से तुमने जब अनुभव को निचोड़ा, और पाया कि सब व्यर्थ था, कुछ भी करने-जैसा न था, नाहक ही परेशान हुए!
ख्याल रखना, इसमें जल्दी नहीं की जा सकती। सब चीजें समय पर पकती हैं।
और फूल अपने-आप खिलते हैं, उन्हें जबर्दस्ती नहीं खोलना होता, प्रतीक्षा जरूरी है।
अगर तुमने सुन लिया कि क्रोध बुरा है और पहले से ही मान लिया कि क्रोध बुरा है, और फिर तुम सोचने लगे कि अब अनुभव से निचोड़ लें, तुम न निचोड़ पाओगे। क्योंकि तुम्हारी धारणा तो पहले से ही तैयार है।
कोई धारणा नहीं चाहिए। क्रोध को निर्धारणा से देखो। जैसे तुम्हें किसी ने कभी कुछ नहीं कहा क्रोध के संबंध में--अच्छा है, बुरा है; पाप है, पुण्य है। कामवासना को निर्धारणा से देखो। जैसे कोई तुम्हें सिखानेवाला नहीं आया। तुम पृथ्वी पर पहली दफा आये हो, और तुम्हें किसी ने कोई शिक्षा नहीं दी; तुम कामवासना को ऐसी खुली नजर से देखो, तो जल्दी ही निचोड़ आ जाएगा हाथ में। वही-वही हम दोहराये चले जाते हैं। लेकिन, अड़चन क्या है? अड़चन यह है, कि अनुभव के पहले हमारी धारणा निर्मित हो जाती है।
अभी बच्चे को पता भी नहीं है कि झूठ बोलना क्या है, और हम उसे सिखाने लगते हैं--सच बोलना, झूठ मत बोलना। हमारी बात सुनकर ही उसे पहली दफा पता चलता है कि झूठ भी कुछ है।
मैंने सुना है, गांव में एक नया मौलवी आया। वह उत्सुक था जानने को कि उसके प्रवचन गांव के लोगों को कैसे लग रहे हैं। उसने मुल्ला नसरुद्दीन से पूछा--वह रोज-रोज सुनने आता है, सामने ही बैठता है--पूछा उससे कि कैसा लग रहा है मेरा बोलना तुम्हें, जो मैं समझा रहा हूं? नसरुद्दीन ने कहा कि धन्यभाग कि आप आये! आप जब तक न आये थे, हमें पता ही न था कि पाप क्या है। धर्मगुरु से पता चलता है कि पाप क्या है। यह पाप सिर्फ शब्द है, कोरा शब्द है। धर्मगुरु से पता चलता है, पुण्य क्या है। यह पुण्य भी कोरा शब्द है। जीवन ही तुम्हारा गुरु है। और जीवन से ही सीखे बिना कोई और दूसरा उपाय नहीं। कोई सस्ता उपाय नहीं। कोई करीब का मार्ग नहीं। जीवन के दुर्धर्ष संघर्ष से ही गुजरे बिना कोई कभी पहुंचता नहीं।
परमात्मा जीवन की यात्रा का अंतिम पड़ाव है। सस्ते में किसी ने कभी परमात्मा पाया नहीं। जिसने पाने की कोशिश की, नकली सिक्के हाथ लगे। झूठे सिक्के हाथ लगे। जिसने सस्ते में पाने की कोशिश की, उसे परमात्मा के नाम पर केवल सिद्धांत हाथ लगे, सत्य हाथ न लगा।
"चरित्रसंपन्न का अल्पतम ज्ञान भी बहुत है।" क्योंकि उसका अल्पतम ज्ञान उसके ही जीवन का निचोड़ है। सारा संसार भी कहे कि तुम गलत हो, तो भी उसे अंतर नहीं पड़ता।
विवेकानंद ने रामकृष्ण को पूछा, ईश्वर है? आपके पास कोई प्रमाण है? रामकृष्ण हंसने लगे। उन्होंने कहा, मैं प्रमाण हूं। मेरे पास कोई प्रमाण नहीं, मेरा अनुभव प्रमाण है। सारी दुनिया कहे कि नहीं है, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। मैंने जाना है।
तुम्हें तो कोई जरा-सा संदिग्ध कर दे, तो तुम डांवांडोल हो जाते हो, नास्तिक से लोग बात करने में डरते हैं। क्योंकि कहीं वह तुम्हारे संदेह को जगा न दे। कहीं श्रद्धा को डगमगा न दे। ऐसी श्रद्धा दो कौड़ी की है, जिसे

कोई डगमगा दे। यह उधार है। यह श्रद्धा उधार है, इसलिए डरती है कि बाहर से आयी श्रद्धा है, बाहर से संदेह भी आ सकता है और उसे तोड़ सकता है। शास्त्रों में लिखा है--हिंदू-शास्त्रों में लिखा है, जैन-मंदिर में
मत जाना चाहे पागल हाथी के पैर के नीचे दबकर भी मर जाने की नौबत क्यों न आ जाए। पागल हाथी पीछे लगा हो, और जैन-मंदिर आ जाए, तो उसमें शरण मत लेना, पागल हाथी के पैर के नीचे दबकर मर जाना बेहतर है। ऐसा ही जैन-शास्त्रों में भी लिखा है कि हिंदू मंदिर में शरण मत लेना। जैन हो कि हिंदू, मुसलमान हो कि ईसाई, पागलपन एक-जैसा है।
क्यों, इतनी क्या घबड़ाहट है?
कहीं जैन-सिद्धांत कान में न पड़ जाएं--मंदिर में कहीं कोई प्रवचन चलता हो। हिंदू-शास्त्र कान में न पड़ जाएं--कहीं तुम्हारा संदेह जग न जाए, कहीं श्रद्धा डगमगा न जाए। इन घबड़ाये हुए लोगों ने लोगों को जगाया नहीं, सुलाया। हिम्मत न दी, और कमजोर बनाया। बल न दिया, और नपुंसकता दी।
नहीं, अगर तुम्हारे अनुभव से कुछ आया है, अगर तुमने देखा है गौरीशंकर
के शिखर को, सूरज की किरणों में जगमगाते, फिर सारी दुनिया कहे कि नहीं है, तो भी कोई फर्क न पड़ेगा। तुम कहोगे तुम्हारी मर्जी, मानो न मानो, मैंने देखा है। मैंने खुद जाना है।
महावीर कहते हैं, थोड़ा-सा ज्ञान हो, लेकिन अपने जानने से आया हो, तो चरित्रविहीन के बहुत सुने हुए, इकट्ठे किये हुए ज्ञान से बेहतर है। चरित्रहीन का ज्ञान बड़ा धोखा है। उधार है।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन को उसके धर्मगुरु ने बहुत समझाया और कहा कि तू शराब छोड़ दे। एक दिन उसने कसम भी ले ली। फिर जब लौटने लगा सांझ अपने घर की तरफ और शराबघर आया, तो हाथ-पैर कंपने लगे उसके। खींचने लगा शराबघर उसे। इतनी प्रगाढ़ता से, जैसा पहले भी कभी न खींचा था। क्योंकि पहले तो सिर्फ शराबघर था, आज भीतर एक कसम भी ले ली थी, वह भी दूसरे के कहने से ले ली थी। मन बड़ा आतुर होने लगा। मन हजार बहाने खोजने लगा। कि छोड़ो भी, कौन देख रहा है! किसको पता है स्वर्ग-नर्क का! और क्या जरूरत किसी की बातों में पड़ने की! किस प्रभाव में आकर तुमने हां भर दी? लेकिन, गांव के लोग हैं, देख लेंगे, धर्मगुरु तक खबर पहुंच जाएगी। फिर प्रतिष्ठा भी दांव पर है। फिर उसे यह भी लगने लगा कि यह भी बड़ी मेरी कमजोरी है कि मैं इतनी-सी बात पर विजय नहीं पा सकता! तो अहंकार ने बल पकड़ा। किसी तरह उसने पचास कदम अपने को घसीट लिया घर की तरफ। पचास कदम के बाद, उसने जोर से अपनी पीठ थपथपायी, उसने कहा कि नसरुद्दीन, गजब कर दिया! अब आ, तुझे दिल खोलकर पिलाता हूं। इस खुशी में कि तू शराबघर के सामने से निकल आया, पचास कदम। वाह रे तेरा संकल्प! चल, अब इस खुशी में तुझे पिलाता हूं। और उसने खूब पिलायी। दुगुनी पिलायी।
अगर हमने उधार लिया है चरित्र, तो ऐसा ही होगा। हम कोई न कोई बहाना खोज लेंगे। कोई न कोई रास्ता निकाल ही लेंगे। इसी से पाखंड पैदा होता है।
एक चेहरा हम ऊपर बना लेते हैं, एक चेहरा हमारा भीतर होता है। जो भीतर
का चेहरा है, वही परमात्मा के सामने है। जो बाहर का चेहरा है, वह संसार के सामने भला हो। तुम दूसरों को धोखा दे लेना, तुम अस्तित्व को धोखा न दे पाओगे। अस्तित्व के सामने तो नग्न ही खड़ा होना होगा।
थोवम्मि सिक्खिदे जिणइ, बहुसुदं जो चरित्तसंपुण्णो।
जो चरित्रसंपन्न है, थोड़ा-सा भी जानता है तो पर्याप्त है। एक कण भी अपना, तो बहुत। अपना होना चाहिए। प्रामाणिक रूप से अपना होना चाहिए।
जो पुण चरित्तहीणो, किं तस्स सुदेण बहुएण।।
और बहुत सुना हुआ, बहुत पढ़ा हुआ--बहुश्रुत--किस काम का जो अपने चरित्र
से निचुड़कर हाथ में न आया हो।
"निश्चयनय के अनुसार आत्मा का आत्मा में आत्मा के लिए तन्मय होना ही सम्यक-चारिष्य है।"
यह सूत्र बहुमूल्य है। यह सूत्र इन सारे सूत्रों में कोहिनूर है। आत्मा में आत्मा का आत्मा के लिए ही तन्मय होना चरित्र है। यह महावीर की परिभाषा है। अपने में पूरी तरह डूब जाना चरित्र है। उस डुबकी को लगाकर जो बाहर आता है, वह बाहर भी ताजा होता है--लेकिन वह ताजगी गौण है, असली बात तो

भीतर डुबकी लगाना है। जो भीतर डुबकी लगाकर आता है, उसके बाहर के जीवन में भी सब रूपांतरित हो जाता है। वह वही नहीं हो सकता जो कल तक था। और यह रूपांतरण चेष्टित नहीं होता। यह रूपांतरण आरोपित नहीं होता। यह रूपांतरण अभ्यासजन्य नहीं होता। यह रूपांतरण सहज होता है, बोध से होता है।
जैसे अंधे को आंख मिल गयी। तो अब दरवाजे से निकल जाता है। अब दीवाल से नहीं टकराता। ऐसा थोड़े ही है कि रोकता है अपने को दीवाल से न टकराऊं। रोकने की भी कोई जरूरत नहीं, आंख मिल गयी। या अंधेरे में दीया जल गया। अभी तुम टटोल-टटोलकर जा रहे थे। दीया जलते ही टटोलना बंद कर देते हो। बंद करने के लिए कोई कसम था.ेडे ही खानी पड़ती है कि अब कभी भी टटोलूंगा नहीं। अब कसम खाता हूं कि टटोलने का त्याग करता हूं। कुछ कसम नहीं खानी पड़ती! दीये के जलते ही टटोलना समाप्त हो गया। अंधेरा गया, टटोलेगा कोई किसलिए।
आंख मिल गयी, तो हम यह भी नहीं सोचते कि दरवाजा कहां है। आंख मिलते ही दरवाजा दिखायी पड़ने लगता है। हम चुपचाप निकल जाते हैं। तुमने ख्याल किया, तुम सोचते हो कि यह दरवाजा है, इससे निकलूं? यह दीवाल है, इससे न निकलूं? इतने विचार की भी कहां जरूरत पड़ती है? जिसके पास आंख है, निर्विचार में दरवाजे से निकल जाता है।
"निश्चयनय के अनुसार, आत्मा का आत्मा में आत्मा के लिए तन्मय होना...
।"
"आत्मा का आत्मा में आत्मा के लिए तन्मय होना।" न कुछ और पाने को है, न कहीं जाने को है। आत्मा ही गंतव्य है। आत्मा ही साधन, आत्मा ही साध्य।
आत्मा ही यात्री, आत्मा ही मंजिल, आत्मा ही यात्रापथ है। स्वयं के स्वभाव में डूब जाना ही सब कुछ है, धर्म है।
णिच्छयणयस्स एवं, अप्पा अप्पमि अप्पणे सुरदो।
सो होदि हु सुचरित्तो, जोई सो लहइ णिव्वाणं।।
"... और ऐसे चरित्रशील योगी को ही निर्वाण की उपलब्धि होती है।"
तो सार की बात सिर्फ एक है, सूत्र की बात सिर्फ एक है कि बाहर न जाओ, भीतर आओ। बाहर दौड़ती ऊर्जा के द्वार-दरवाजे बंद कर दो, ताकि ऊर्जा भीतर गिरने लगे। ताकि तुम अपने में डूब सको। बाहर तो जाओ ही न, बाहर के विचारों में भी मत जाओ। क्योंकि वे भी बाहर ही ले जाते हैं। तो निर्विचार के क्षण में, जब कोई विचार नहीं, कोई क्रिया नहीं--निर्विचार, निष्क्रिय--जब तुम थिर बैठे हो, न तो कोई क्रिया कर रहे हो और न कोई विचार कर रहे हो, सिर्फ होश मात्र शेष है, उस होश में जो घटता है, वही चारिष्य है।
तो चरित्र का कोई संबंध नहीं है कि किसी से झूठ बोलो, कि सच बोलो; कि ईमानदारी रखो, कि बेईमानी करो। ख्याल करो, जो चरित्र ईमानदारी, बेईमानी, झूठ, सच, इन पर निर्भर है, वह चरित्र तो सामाजिक है, आत्मिक नहीं। अगर तुम जंगल में चले जाओ, तो फिर तुम कैसे सच बोलोगे? किससे बोलोगे? अगर तुम जंगल में चले जाओ, तो तुम कैसे ईमानदार बनोगे? बोलो। बेईमानी ही करने का उपाय नहीं, तो ईमानदार कैसे बनोगे। तो यह तो इसका अर्थ यह हुआ कि चरित्रवान केवल समाज में ही चरित्रवान हो सकता है। समाज के बाहर होते ही चरित्रशून्य हो जाएगा। चरित्रहीन भी नहीं कह सकते हम उसको, क्योंकि चरित्रहीन होने के लिए भी समाज जरूरी है।
चरित्रवान के लिए भी समाज जरूरी, चरित्रहीन के लिए भी समाज जरूरी; जो समाज को छोड़कर गया, वह चरित्रशून्य हो जाएगा। लेकिन महावीर चरित्र की दूसरी ही व्याख्या करते हैं। महावीर की व्याख्या के हिसाब से हिमालय की गुफा में बैठा हुआ योगी भी चरित्रवान होगा, अगर वह अपनी आत्मा में रम रहा है। अगर आत्मा से इधर-उधर हट गया है, स्वप्न जग गये, विचार उठ गये, तो चरित्रहीन हो गया।
चरित्रहीनता और चरित्रवान का संबंध महावीर आंतरिकता से बना रहे हैं। क्योंकि जो चरित्र समाज से बंधा हो, उसको क्या चरित्र कहना! जो बाहर पर निर्भर है, उस पर अपनी क्या मालकियत! महावीर कहते हैं, अपने पूरे मालिक हो जाना है।
इसलिए चरित्र की उन्होंने एक बड़ी अनूठी व्याख्या की। तुम अकेले भी चरित्रवान हो सकते हो। तुम अपने कमरे में बैठे हो, कोई भी नहीं है, तो भी

तुम चरित्रवान हो सकते हो, चरित्रहीन हो सकते हो। चरित्रवान, अगर तुम शांत हो, निर्मल हो; कोई तरंग नहीं उठती, मन की झील पर कोई लहर नहीं है; सब मौन, निस्तब्ध, तो तुम चरित्रवान हो।
इसलिए महावीर ने ध्यान को एक नया शब्द दियाः सामायिक। यह शब्द बड़ा प्यारा है। ध्यान से भी ज्यादा प्यारा है। महावीर ने आत्मा को कहा है, समय। वह उनका आत्मा का नाम है। और समय में डूब जाना, सामायिक। वह ध्यान का उनका नाम है। शुद्ध समय में डूब जाना, सामायिक। "अप्पा अप्पमि अप्पणे सुरदो।" आत्मा का आत्मा में आत्मा के लिए तन्मय हो जाना। बस तुम ही बचो। कुछ और न बचे। शुद्धतम तुम, तुम ही बचो। कोई विजातीय तत्व न रह जाए। तुम्हारा स्वभाव ही स्वभाव शेष रहे। बस वहीं से चारिष्य शुरू होता है।
फिर ऐसा व्यक्ति बाहर तो चरित्रवान होता ही है, क्योंकि जिसने स्वयं
का आनंद ले लिया, वह अब ऐसा कुछ भी न कर सकेगा जिससे स्वयं से दूरी बढ़े। जब भी तुम झूठ बोलते हो, स्वयं से दूरी बढ़ जाती है।
इसे समझो।
अभी तो पश्चिम में उन्होंने अदालतों में यंत्र लगा रखे हैं। "लाई-डिटेक्टर्स।" झूठ को पकड़नेवाले यंत्र। आदमी अब झूठ भी नहीं बोल सकता। मशीन पर आदमी को खड़ाकर देते हैं, और जैसे ही वह झूठ बोलता है, मशीन घंटी बजाने लगती है। तरकीब क्या है, मशीन काम कैसे करती है? मशीन का काम बड़ा सीधा-सरल है। जब तुम सच बोलते हो, तब तुम एकस्वर होते हो। किसी ने पूछा, कितना बजा है घड़ी में? तुमने कहा, नौ बजे हैं। तो तुम्हारे भीतर एकस्वरता होती है। कहीं कोई खंड नहीं होता। कहीं कोई विपरीतता नहीं होती। तुम्हारा हृदय एक धुन में रहता है, एक लय में रहता है।
फिर किसी ने तुमसे पूछा, तुमने चोरी की? तो तुम जानते तो हो कि तुमने चोरी की है, इसलिए हृदय में तो तुम कहते हो, की, और बाहर कहते हो, नहीं की। द्वंद्व पैदा हुआ। तो हृदय की धड़कन चूक जाती है। एक धड़कन भी चूक जाती है हृदय की, वह नीचे मशीन पकड़ लेती है। बस उसका काम इतना ही है कि वह पकड़ ले कि तुम्हारा हृदय लयबद्ध चलता रहा, कि उसकी लय छूटी-टूटी। जैसे ही लय छूटी- टूटी, घंटी बजती है। तत्क्षण तुम पकड़े गये। तुम झूठ बोल ही नहीं सकते, बिना लय को तोड़े। क्योंकि तुम्हें तो पता है सत्य का कि चोरी तुमने की है। इसको तुम कैसे झुठलाओगे?
तुम दूसरों से कह दो मैंने नहीं की है चोरी, और तुम कितने ही जोर से कहो कि मैंने चोरी नहीं की है, तुम्हारा हृदय तो कहे ही चला जाएगा भीतर कि की है, की है। जितना हृदय कहेगा की है, उतने ही जोर से तुम कहोगे नहीं की है। तुम्हारे ऊपर का जोर इतना ही बतायेगा कि भीतर तुमने की है। और हृदय में खंड हो जाएंगे। हृदय दो आवाजों से भर जाएगा। उन्हीं दो आवाजों को यंत्र पकड़ लेता है। हृदय की धड़कन की लयबद्धता टूट जाती है। तुम्हारा तार डगमगा जाता है।
झूठ तुम शांत रहकर नहीं बोल सकते। अशांत हो जाओगे। झूठ बोलते ही बेचैनी पैदा होगी। चैन से झूठ नहीं बोल सकते। और जो आदमी निरंतर झूठ बोल रहा है, उसकी बेचैनी का तो तुम हिसाब लगाओ! उसको कितनी याद रखनी पड़ती है, किससे क्या बोला, किससे क्या नहीं बोला। आज क्या बोला, कल क्या बोला। हजार झूठों का हिसाब रखना पड़ता है। झूठ बोलनेवाले के पास अच्छी स्मृति होनी चाहिए। अगर स्मृति ठीक न हो, तो बड़ी गड़बड़ हो जाती है।
एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक जीवनभर अविवाहित रहा। भुलक्कड़ था। किसी ने उससे पूछा कि तुमने विवाह क्यों न किया? उसने कहा मैं एक लड़की के प्रेम में था। और मैंने उससे विवाह का निवेदन भी किया था और उसने स्वीकार भी कर लिया था। तो मित्र ने पूछा कि फिर क्या हुआ? फिर हुआ क्यों नहीं विवाह? उसने कहा, गड़बड़ हो गयी। तीसरे दिन मैंने दोबारा उससे निवेदन कर दी। स्वीकार भी कर लिया था, निवेदन भी कर दिया था और तीसरे दिन मैंने उससे दुबारा निवेदन कर दिया, मैं भूल ही गया। उसी से वह नाराज हो गयी।
स्मृति अच्छी चाहिए। झूठ जितना बोलता है आदमी, उतनी ही अच्छी स्मृति चाहिए।

सत्य बोलनेवाले को स्मृति की कोई भी जरूरत नहीं है। सत्य बोलनेवाला
तो वही बोलता है, जो है। सीधा-साफ होता है। सत्य बोलनेवाले के भीतर खंड-खंड, टुकड़े-टुकड़े नहीं होते। कोई विभाजन नहीं होता। अखंड होता है।
तो जिसने एक दफा भीतर डुबकी लगायी, उस अखंड का आनंद ले लिया, वह झूठ न बोल सकेगा। क्योंकि जब भी वह झूठ बोलेगा, तभी पायेगा कि बहुत दूर फेंक दिया गया भीतर की शांति से। बेचैनी आ गयी। बेईमानी न कर पायेगा। क्योंकि जब भी बेईमानी करेगा, तभी पायेगा कि अपने से बहुत फासला हो गया। किसी को चोट न पहुंचा पायेगा। क्योंकि जब भी किसी को चोट पहुंचायेगा, तभी पायेगा अपने घर का रास्ता भूल गया।
किसी स्वर्ग के लिए नहीं बोलता है सच। और न किसी पुण्य के लिए बोलता है। न किसी भय से, न किसी प्रलोभन से। लेकिन जो भीतर आनंद घटा है, उस आनंद के कारण अब गलत होना मुश्किल हो जाता है।
"जिसे जानकर योगी पाप और पुण्य दोनों का परिहार कर देता है, उसे ही कर्मरहित निर्विकल्प चारिष्य कहा गया है।"
महावीर कहते हैं कि न केवल परमयोग की अवस्था में पाप का परिहार हो जाता है, पुण्य का भी परिहार हो जाता है। बुरा तो करता ही नहीं वैसा व्यक्ति, अच्छा भी नहीं करता।
यह जरा गहन बात है। यह जरा ऊंची बात है। पहले तल पर तो बुराई छूटती है। दूसरे को चोट देना बंद हो जाती है। दूसरे को कोई नुकसान नहीं पहुंचाता। किसी तरह का पाप नहीं करता। लेकिन धीरे-धीरे जब और भी भीतर रमता है, तो उसे यह समझ में भी आना शुरू होता है कि कोई किसी को सुख नहीं दे सकता। किसने कब किसको सुख दिया! हम सभी एक-दूसरे को सुख देने की कोशिश करते हैं, दे पाते हैं केवल दुख। बाप कहता है, बेटे को सुख दे रहा है। बेटा कहता है, बाप को सुख दे रहा है। पति कहता है, पत्नी को सुख दे रहा है। पत्नी कहती है, पति के सुख के लिए चेष्टा कर रही है। सब एक-दूसरे को सुख देने की चेष्टा में लगे हैं लेकिन जीवन में सिवाय दुख के कुछ भी नहीं है। मामला क्या है? जहां इतने लोग सुख दे रहे हैं, सुख ही सुख भर जाना था। सुख कहीं दिखायी नहीं पड़ता।
महावीर कहते हैं, सुख कोई दे नहीं सकता। सुख आंतरिक दशा है। इसलिए वह कहते हैं, एक ऐसी घड़ी आती है जब और भीतर की गहराइयों का पता चलता है, तो आदमी दुख देने की तो बात दूर, दूसरे को सुख देने की चेष्टा भी नहीं करता।
हां, कोई ले ले सुख, उसकी मर्जी। कोई ले ले दुख, उसकी मर्जी।
आत्मस्थित हुआ व्यक्ति अपने स्वभाव में जीता है। फिर तुम्हारी मर्जी। महावीर से बहुत लोगों ने दुख भी ले लिया। महावीर ने दिया नहीं।
किसी को इसीलिए दुख हो गया कि वह नग्न खड़े थे। कोई इसीलिए दुखी हो गया।
तुम्हारा क्या लेना-देना था? महावीर नग्न खड़े थे, तुम्हें क्या अड़चन थी? तुम्हें तकलीफ थी, आंख बंद करके गुजर जाते। यह तुम्हारा प्रश्न था। महावीर को इससे क्या लेना-देना था? लेकिन कोई इसी से दुखी हो गया।
कोई दुखी हो जाता है, कोई सुखी हो जाता है, यह उसकी मर्जी। यह उसकी समस्या है। महावीर कहते हैं, जो अपने में डूबा वह अपने में डूबकर रह जाता है। तब वह न तो सुख देता है, न दुख देता है। न वह पाप करता है, न वह पुण्य करता है। अगर ठीक से समझो, तो वह कुछ करता ही नहीं। वह सिर्फ होता है। वह शुद्ध अस्तित्व होता है। करने की बात ही धीरे-धीरे समाप्त हो जाती है। "जिसे जानकर योगी पाप-पुण्य दोनों का परिहार कर देता है, उसे ही निर्विकल्प चारिष्य कहा है।" यह चरित्र की आखिरी कोटि हुई। इससे ऊपर फिर चरित्र नहीं जा सकता। पाप से तो छूटे, पुण्य से भी छूटे। पाप ऐसे है, महावीर ने कहा, जैसे लोहे की जंजीरें, और पुण्य ऐसे है जैसे सोने की जंजीरें! पाप दुख लाता है। पुण्य सुख लाता है। लेकिन सुख में ही तो छिपा हुआ दुख आ जाता है। पाप अपमानित करवा देता है। पुण्य सम्मानित करवा देता है। लेकिन सम्मान में ही तो अहंकार आ जाता है। इसलिए दोनों से ही छूट जाना है।
जंजीर कितनी ही सोने की बनी हो, हीरे-जवाहरात जड़ी हो, तो भी जंजीर है।
और कारागृह कितना ही सजा हो, तो भी कारागृह है। दोनों से मुक्त हो जाना है।

न अच्छा, न बुरा। इन दोनों के जो पार हो गया, वही शुद्ध स्वभाव को उपलब्ध होता है। इसको महावीर निर्वाण कहते हैं। इसको निर्विकल्प चारिष्य कहा है। इसे हम दूसरों से बातें सुनकर नहीं पा सकते। दूसरों से सुनेंगे तो हमारे मन में और ही तरह की बात उठती है।
मेरे पास एक वृद्ध सज्जन आये। उनके युवा बेटे ने संन्यास ले लिया है।
वे बहुत नाराज थे। उनकी उम्र होगी कोई पचहत्तर वर्ष। वे कहने लगे, आपने यह क्या किया? मेरे युवा बेटे को संन्यास दे दिया। यह तो बुढ़ापे की बात है। यह तो आखिरी बात है संन्यास।
संन्यास आखिरी बात है! उसे टाले जाना है अंतिम क्षण के लिए। जब हाथ-पैर में कोई शक्ति न होगी, और श्वासें लड़खड़ा जाएंगी, तब संन्यास लेंगे? जब पैर उठते न बनेंगे। जब तक पैर उठते थे तब तक वेश्यागृह गये और जब पैर न उठेंगे, तब दूसरों के कंधों पर सवार होकर मंदिर जाएंगे। ऊर्जा पर ही तो सवार होना होता है। जब तक ऊर्जा रहती है, तब तक आदमी संसार की बातों में पड़ा रहता है। कहते हैं धर्म की बात ठीक है, वह बूढ़े सज्जन कहने लगे धर्म की बात बिल्कुल ठीक है, मैं यह नहीं कहता कि संन्यास गलत है, लेकिन समय अभी नहीं है।
मैंने कहा ठीक है, आपके बेटे को मैं समझा-बुझाकर वापिस संसार में भेज दूंगा; आपका क्या इरादा है? यह वे सोचकर न आये थे। वे तो बेटे को छुड़ाने आये थे। लेकिन मैंने कहा, बेटा छूटे तो एक ही शर्त पर छूट सकता है। कि आपकी तो उम्र पचहत्तर साल हो गयी, आप कब बूढ़े होंगे अब? उन्होंने कहा, वह तो ठीक है, लेकिन अभी बहुत जिम्मेवारियां हैं।
बेटे को भी ऐसी ही जिम्मेवारियां होंगी पचहत्तर साल के हो जाने पर। जिम्मेवारियां कम नहीं होतीं, बढ़ती जाती हैं। क्योंकि जिंदगी रोज और नयी- नयी जिम्मेवारियों को इकट्ठा करती चली जाती है।
तो फिर मैंने कहा, बेटे को ले लेने दो, कम से कम वह इतना तो कहता है कि मेरे ऊपर कोई जिम्मेवारियां नहीं हैं। न अभी उसने शादी की है, न अभी घर बसाया है। अभी तुम कहते हो कि संन्यास मत लो, बुढ़ापे में लेना। तुम बूढ़े हो गये हो, तुम कहते हो कि जिम्मेवारियां हैं।
आदमी सुन-सुनकर जिन बातों को ठीक मान लेता है, उन्हें कभी हृदय से थोड़े ही ठीक मानता है। ठीक मान लेता है, क्योंकि कौन जद्दोजहद करे, कौन तर्क करे, कौन विवाद करे! ठीक है संन्यास, मगर अभी नहीं। जो ठीक है, तो अभी। और जो ठीक नहीं है, तो कभी नहीं। ऐसा साफ होना चाहिये व्यक्ति को। अगर कोई चीज सत्य है, तो फिर एक क्षण भी उसे टालना उचित नहीं। कौन जाने वह क्षण आये, न आये। कल आये, न आये। बुढ़ापे के पहले ही आदमी मर जा सकता है। या बुढ़ापे में इतना अपंग हो जाए कि फिर कुछ भी न कर पाये--बैठ भी न सके, उठ भी न सके, खाट से लग जाए।

तो जो सत्य है, तो अभी। अगर सत्य नहीं है, तो साफ समझो कि कभी नहीं।
बुढ़ापे में भी क्यों? चार दिन बुढ़ापे के बचे हैं, उनको भी ठीक से भोग लेना।
उनका भी कुछ उपयोग कर लेना--थोड़ा धन और इकट्ठा कर लेना।
लेकिन आदमी बड़ा होशियार है। वह तर्क से कुछ बातों को ठीक मान लेता है।
क्योंकि कौन विवाद करे! या पंरपरा से ठीक मान लेता है। सभी ठीक मानते हैं, इसलिए ठीक होंगी।
एक बहुत बड़े मनस्विद मायर्स ने अपने संस्मरणों में लिखा है... मायर्स खोज कर रहा था कि लोगों की क्या धारणा है, मरने के बाद क्या होता है, इस संबंध में। तो वह जो भी मिलता उससे ही पूछता कि तुम्हारी मरने के बाद क्या स्थिति होगी, इस संबंध में क्या धारणा है? एक महिला से उसने पूछा, उसकी जवान बेटी अभी-अभी मर गयी थी, तो उसने पूछा कि तुम्हारी बेटी मर गयी, तुम्हारा क्या ख्याल है, तुम्हारी बेटी का क्या हुआ होगा? तो उस महिला ने बड़े क्रोध से देखा और कहा, क्या हुआ होगा? वह स्वर्ग के सुख भोग रही है। लेकिन मैं आपसे प्रार्थना करती हूं कि इस तरह की दुखदायी बातें मुझसे न करें। अब इसे थोड़ा सोचो, मायर्स ने लिखा है कि एक तरफ वह कहती है, स्वर्ग के

सुख भोग रही है, और दूसरी तरफ कहती है कि आप इस तरह की दुखदायी बातें न करें।
एक ही वचन में दो विरोधाभास! अगर वस्तुतः लड़की स्वर्ग के सुख भोग रही है, तो दुखदायी बात नहीं है। और अगर दुखदायी बात है, तो स्वर्ग के सुख की बात केवल कल्पना है। केवल सुनी-सुनायी है।
एक दो और सागरे-सरशार
फिर तो होना ही है मुझे होशियार
छेड़ना ही है साजे-जीस्त मुझे
आग बरसायेंगे लबे-गुफ्तार
कुछ तबियत तो हम रवां कर लें
आज की रात और बाकी है
फिर कहां ये हसीं सुहानी रात
ये फरागत ये कैफ के लम्हात
कुछ तो आसूदगी-ए-जौके-निहां
कुछ तो तस्कीने-शोरिसे-ज.ज्बात
आज की रात जाविदां कर लें
आज की रात और आज की रात
लोग कहते हैं कि आज नहीं कल जिंदगी तो हाथ से चली जाएगी। ऐसा कहते भी हैं, और फिर भी कहते हैं--
एक दो और सागरे-सरशार
एक दो और भरे प्याले ले आओ।
फिर तो होना ही है मुझे होशियार
फिर तो जागना है। फिर तो ध्यान करना है। फिर तो समाधि को उपलब्ध होना है।
एक दो और सागरे-सरशार।
ले आओ, एक-दो लबालब प्याले और।
फिर तो होना ही है मुझे होशियार
अगर होशियार ही होना है, तो एक-दो प्याले और क्यों? क्योंकि अगर होशियार ही होना है तो दो प्याले और होशियारी को खराब करेंगे। ध्यान को नष्ट करेंगे।
लेकिन लोग कहते हैं, होना ही है होशियार--मजबूरी है। होश तो आयेगा ही, थोड़ा और पी लें।
छेड़ना ही है साजे-जीस्त मुझे
आग बरसायेंगे लबे-गुफ्तार
कुछ तबियत तो हम रवां कर लें
--फिर जीवन का संगीत छिड़नेवाला है; उसके पहले, उसके पहले हम थोड़ी बेहोशी का भी मजा ले लें, थोड़ी मस्ती पैदा कर लें।
कुछ तबियत तो हम रवां कर लें
आज की रात और बाकी है
--और यह रात तो जाएगी। थोड़ा और भोग लें।
फिर कहां ये हसीं सुहानी रात
ये फरागत ये कैफ के लम्हात
--फिर यह मादक क्षण कहां मिलेंगे!
कुछ तो आसूदगी-ए-जौके निहां
--कुछ तो तृप्त कर लें छिपी हुई वासनाओं को, दबी हुई वासनाओं को।
कुछ तो तस्कीने-शोरिसे जज्बात
--कुछ तो अशांत मनोभावनाओं की शांति कर लें, तृप्ति खोज लें। कुछ तो उन्हें संतोष दे लें।
आज की रात जाविदां कर लें
और आज की रात को सुख से ऐसा भर लें कि अमर हो जाए।
आज की रात और आज की रात।
ऐसे ही आदमी सोचता चलता है। धर्म को टालता कल पर। अधर्म को करता आज की रात। धर्म को करता स्थगित, अधर्म को कभी स्थगित नहीं करता। अगर तुमसे मैं

कहूं ध्यान करो, तुम कहते हो, करेंगे, जरूर करेंगे, समय आने पर। यह समय कभी भी न आयेगा। अगर मैं कहूं प्रार्थना कर लो, तो तुम कहते हो, फुर्सत कहां! क्रोध करने को फुर्सत मिल जाती है। रोष करने को फुर्सत मिल जाती है। लोभ करने को फुर्सत मिल जाती है। और जब तुम क्रोध करते हो तब तुम कभी नहीं कहते कि कल कर लेंगे। तुम आज करते हो।
गुरजिएफ ने लिखा है कि उसका पिता मर रहा था। उसने अपने बेटे को अपने पास बुलाया--गुरजिएफ को। वह नौ साल का था और उससे कहा, मेरे पास देने को कुछ भी नहीं है। लेकिन एक बात मेरे बाप ने मुझे दी थी, उसने मुझे बड़ा सहारा दिया, वही मैं तुझे दे जाता हूं। ख्याल रखना, तेरी उम्र अभी ज्यादा भी नहीं है, लेकिन याद रखना, कभी तेरे काम पड़ जाएगी। और उसने कहा एक बात, अगर कभी क्रोध का मौका आ जाए, तो जिसने तुझे गाली दी हो, अपमान किया हो, उससे कहना चौबीस घंटे बाद आकर जवाब दूंगा। चौबीस घंटे बाद!
और गुरजिएफ ने लिखा है कि जिंदगी में फिर क्रोध का मौका ही न आया। क्योंकि जब भी किसी ने क्रोध किया, मरते हुए बाप की बात याद रही। मैंने कहा, चौबीस घंटे बाद। चौबीस घंटे बाद किसी ने कभी क्रोध किया है? चौबीस मिनट बाद मुश्किल है; चौबीस पल बाद मुश्किल है! क्रोध तो उसी वक्त होता है। उसी वक्त जलती है आग। यह तो ऐसा हुआ कि चौबीस घंटे बाद, तुम इतना सोचोगे- विचारोगे चौबीस घंटे कि तुम्हें साफ ही हो जाएगा कि या तो उस आदमी ने जो बात कही थी वह ठीक ही थी, या उस आदमी ने जो बात कही थी वह बिल्कुल गैर-ठीक थी। अगर गैर-ठीक थी, तो क्रोध क्या करना! अगर ठीक थी, तो क्रोध क्या करना! चौबीस घंटे का फासला अगर हो जाए, तो क्रोध संभव नहीं।
लेकिन वैसा फासला हम ध्यान के लिए करते हैं, क्रोध के लिए नहीं। इसलिए ध्यान कभी संभव नहीं हो पाता। लोग टाले चले जाते हैं।
"आभ्यंतर-शुद्धि होने पर बाह्य-शुद्धि भी नियमतः होती है। आभ्यंतर-दोष से ही मनुष्य बाह्य-दोष करता है।"
स्मरण रखना इस सूत्र कोः अब्भंतरसोधीए, बाहिरसोधी वि होदि णियमेण। नियम से हो जाती है बाहर की शुद्धि, अगर भीतर शुद्धि हो जाए। अब्भंतर-दोसेण हु, कुणदि णरो बाहिरे दोसे। और भीतर के दोष ही बाहर आते हैं।
इसलिए बाहर के दोषों को बदलने की चिंता मत करो। भीतर जड़ें खोजो। बाहर
की बदलाहट तो ऐसे है जैसे कोई पत्ते काटता रहे वृक्ष के और जड़ों को पानी देता रहे। तो पत्ते नये आते रहेंगे। पत्ते काटने से वृक्ष नहीं मरते। पत्ते काटने से वृक्ष और सघन हो जाते हैं। पत्ते काटने से एक पत्ते की जगह तीन पत्ते आ जाते हैं।
अगर वृक्ष को मिटाना ही हो, तो जड़ काटो। जड़ भीतर छिपी है। अंधेरे में दबी है। और ऐसा ही मनुष्य के जीवन में है। ऊपर क्रोध आता है, लोभ आता है, काम आता है, तुम इनके साथ लड़ने में लग जाते हो। ये पत्ते हैं। जड़, जड़ कहां है? जड़, महावीर कहते हैं, बेहोशी है। जड़ मूर्च्छा है। जड़ नींद है। जड़ काटो। होश से भरो। जागो।
अगर जागरण आ जाए तो क्रोध, माया, लोभ, मोह ऐसे ही खो जाते हैं जैसे जड़ें काट देने पर पत्ते खो जाते हैं अपने-आप। पत्तों को तुम्हें तोड़ना भी न पड़ेगा, खुद ही कुम्हला जाएंगे, खुद ही समाप्त हो जाएंगे।
"आभ्यंतर-शुद्धि होने पर बाह्य-शुद्धि भी नियमतः होती है। आभ्यंतर-दोष से ही मनुष्य बाह्य-दोष करता है।"
जैसे ही भीतर की क्रांति घटती है, भीतर दीया जलता है, तुम अचानक हैरान
हो जाते हो कि बाहर सब बदल गया। सब वही है, और फिर भी वही नहीं है। रक्से-तरब किधर गया, नग्मा-तरा.ज क्या हुए
गम्जा-ओ-नाज क्या हुए, अस्वा-ओ-फन को क्या हुआ
रक्से-तरब किधर गया--वे सुख के जो नृत्य बाहर चल रहे थे, कहां गये? नग्मा-तराज क्या हुए--वे जो गायक बड़े मधुर मालूम होते थे, उनका क्या हुआ!
गम्जा-ओ-नाज क्या हुए, अस्वा-ओ-फन को क्या हुआ।
कटाक्ष, हाव-भाव, सब खो गये।

उन सब में अर्थ था, क्योंकि भीतर तुम सोये थे। ऐसा समझो, तुम्हारी नींद संसार से जोड़े हुए है। नींद है सेतु तुममें और संसार में। जागरण सेतु है तुममें और परमात्मा में। या तुममें और तुम्हारी स्वयं की सत्ता में। अगर सोये हुए हो, तो संसार चलता रहेगा। संसार सोये हुए आदमी का सपना है। अगर जागे हो, संसार समाप्त हुआ। नहीं कि वृक्ष खो जाएंगे। नहीं कि मकान खो जाएंगे। नहीं कि तुम्हारी पत्नी और बच्चे खो जाएंगे। लेकिन कुछ खो जाएगा। मकान होगा, तुम्हारा न होगा। पत्नी होगी, तुम्हारी न होगी। "मेरा" "तेरा" खो जाएगा। लोभ खो जाएगा। कोई अगर गाली देगा, तो गाली तो बाहर से आयेगी अब भी, लेकिन तुम अचानक पाओगे कि समस्या उसी आदमी की है।
मैंने सुना है, एक झेन फकीर रास्ते से गुजर रहा था और एक आदमी उसे लकड़ी मारकर भागा। उसके संगी-साथी ने कहा, कुछ करो, तुम खड़े हो! वह फकीर बोला, मैं क्या करूं? समस्या उसकी है, मेरी नहीं। उसके भीतर जरूर कुछ आग जल रही होगी। उस आग के प्रभाव में ही वह क्रोध से भर गया है। अगर मैं उसे आज न मिलता--अच्छा हुआ मैं मिल गया--नहीं तो वह किसी और पर उबल पड़ता। वह तो अच्छा हुआ कि मुझ पर उबला, किसी और पर उबलता तो दूसरा भी उस पर टूट पड़ता। वह मुश्किल में पड़ जाता। वैसे ही मुश्किल में है! इतना क्रोध उसके भीतर जल रहा है, अब और उसे दंड देने की जरूरत है क्या? दंड उसने काफी पा ही लिया। लेकिन समस्या उसकी है, समस्या मेरी नहीं है।
कोई तुम्हें गाली देता है, समस्या गाली देनेवाले की है। तुम्हारा क्या है! तुम इस सारी दुनिया को कैसे बदलोगे? यह दुनिया कुछ ऐसी है!
बड़ी प्रसिद्ध कथा है कि शिव और पार्वती एक पूर्णिमा की रात विहार पर निकले। स्वभावतः शिव नंदी पर बैठे हैं, पार्वती साथ-साथ चल रही हैं। राह से दो आदमी आये और उन्होंने कहा, यह देखो, मुस्तंड खुद तो चढ़ा बैठा है बैल पर और स्त्री को नीचे चला रहा है। यह कैसा शिष्टाचार! तो शिव ने कहा, देख, मैं नीचे आ जाता हूं, तू ऊपर बैठ जा। वे नीचे चलने लगे, पार्वती नंदी पर बैठ गयीं। फिर कुछ लोग मिले, उन्होंने कहा, देखो, यह औरत पति को नीचे चलवा रही है, खुद चढ़कर बैठी है। यह कैसा पति, और यह कैसी पत्नी, और यह कैसा प्रेम! तो शिव ने कहा, अब क्या करें? चलो हम दोनों ही बैठ जाएं। तो वे दोनों ही नंदी पर सवार हो गये। कुछ लोग मिले, उन्होंने कहा इन मूर्खों को देखो, नंदी को मार डालेंगे। दोनों के दोनों चढ़े हैं। यह कोई ढंग हुआ! आखिर पशुओं पर भी कुछ दया होनी चाहिए। तो शिव ने कहा, अब तो एक ही उपाय है। वे दोनों उतर गये और उन्होंने कहा, अब नंदी को हम अपने कंधों पर उठा लें। नंदी को बांधकर डंडों में कंधों पर रखकर चले। बड़ा मुश्किल था!
फिर कुछ लोग मिल गये। और उन्होंने कहा, ये पागल देखो! एक पुल पर से गुजर रहे थे जब ये लोग मिले। उन्होंने कहा, ये पागल देखो, अच्छा भला नंदी, उस पर बैठकर यात्रा कर सकते थे, तो उसको कंधे पर लादकर चले रहे हैं। तो शिव और पार्वती दोनों खड़े हो गये, और उन्होंने कहा अब हम क्या करें? अब तो कुछ करने को बचा नहीं। जो-जो कहा लोगों ने, हमने किया। तो वे वहीं खड़े थे, नंदी भी घबड़ा गया लटका-लटका। उसने जोर से लातें फड़फड़ायीं, वह पुल के नीचे! नदी में गिर गया।
कहानी का अर्थ है, लोग क्या कहते हैं, इस पर बहुत ध्यान देने की जरूरत नहीं। लोग तो कुछ न कुछ कहेंगे। लोग बिना कहे नहीं रह सकते। असली सवाल अपने भीतर है। लोग जो कहते हैं, वह उनकी दृष्टि है। लोग जो कहते हैं, वह उनकी समस्या है। उसे तुम अपनी समस्या मत बनाना। और तुम लोगों का अनुकरण करके मत चलने लगना। अन्यथा तुम कहीं के न रह जाओगे। अन्यथा तुम्हारी वही गति होगी जो नंदी की हुई। तुम कहीं से गिरोगे।
ध्यानी व्यक्ति धीरे-धीरे अपने हृदय की सुनकर चलता है। वह अपने भीतर
से अपना राग नहीं छूटने देता। वह भीतर के धागे को पकड़े रखता है। कौन क्या कहता है, कौन क्या करता है, यह बिल्कुल गौण है। इसका कोई भी मूल्य नहीं है। "आभ्यंतर-शुद्धि होने पर बाह्य-शुद्धि नियमतः होती है।"
वह अपने भीतर को निखारता है, जगाता है, शुद्ध करता है। वह अपने भीतर मंदिर बनाता है। वह अपने भीतर की प्रतिमा को साफ करता है। बस वहां जब शुद्धि हो जाती है, उसके बाहर भी शुद्धि की झलक आने लगती है। वहां जब धूप-

83

दीप जलने लगते हैं, बाहर भी रोशनी और गंध आने लगती है। मगर, उसका सारा उपक्रम और सारा काम भीतर है।
धर्म का कोई संबंध बाहर से नहीं। धर्म का सारा संबंध भीतर से है। धर्म तुम्हारे और तुम्हारे ही बीच की बात है। धर्म का कुछ लेना-देना किसी और से नहीं है। धर्म नितांत वैयक्तिक है। "अप्पा अप्पणे सुरदो।" आत्मा का आत्मा में आत्मा के लिए तन्मय हो जाना।
"इसीलिए कहा गया है कि जैसे शुभ चरित्र के द्वारा अशुभ प्रवृत्ति का निरोध किया जाता है, वैसे ही शुद्ध उपयोग के द्वारा शुभ प्रवृत्ति का निरोध किया जाता है। अतएव इसी क्रम से योगी आत्मा का ध्यान करे।"
महावीर कहते हैं, पहले शुभ चरित्र पैदा होता है। जैसे तुम भीतर प्रवेश करते हो, शांत होते हो, तुम्हारे चरित्र में एक शुभता आती है, शुभ चरित्र पैदा होता है। शुभ चरित्र से अशुभ चरित्र अपने-आप कट जाता है। जैसे प्रकाश से अंधेरा कट जाता है। शुभ चरित्र के द्वारा अशुभ का निरोध हो जाता है। और फिर, शुभ के भी ऊपर शुद्ध चरित्र है। क्योंकि शुभ में भी अशुभ से थोड़ा जोड़ है। संबंध तो अशुभ से बना ही है, उसी के विपरीत है शुभ।
एक आदमी लोभी है, वह दान करता है। तो लोभ अशुभ है, दान शुभ है। लेकिन दान जुड़ा है लोभ से ही। न लोभ किया होता, तो दान कैसे करता। पहले धन इकट्ठा किया, फिर दान कर रहा है। तो यह जो शुभ है, यह अशुभ का ही संगी-साथी है। अच्छा है, लेकिन है तो अशुभ का ही संगी-साथी। एक आदमी ने क्रोध किया, फिर आकर पश्चात्ताप किया। क्षमा मांगी। क्रोध किया, वह अशुभ था; क्षमा मांगी, वह शुभ हुआ; लेकिन क्षमा भी तो क्रोध करने के कारण ही हुई। तो क्षमा भी क्रोध से ही जुड़ी है। क्षमा भी क्रोध का ही अनुसंग है। इसलिए शुद्ध तो नहीं है। अशुद्धि उसके लिए जरूरी है। शुभ कर्म अशुभ कर्म से जुड़े हैं।
तो पहले तो शुभ के द्वारा अशुभ को काटे। दान से लोभ को काटे। क्षमा से क्रोध को काटे। प्रेम से कामवासना को काटे। क्रूरता को करुणा से काटे। लेकिन ये सब हैं शुभ। और अशुभ के साथ इनका संबंध है। ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक उजला पहलू है, एक अंधेरा पहलू है। लेकिन दोनों जुड़े हैं। महावीर कहते हैं, परम स्थिति तो तब पैदा होगी, जब शुद्ध आत्मा पैदा होगी। न जहां शुभ है, और न अशुभ है। न जहां काम है, न जहां क्रोध है; न जहां ब्रह्मचर्य है, न जहां करुणा है। क्योंकि ब्रह्मचर्य भी जुड़ा तो कामवासना से ही है। उलटा सही। कामवासना नीचे की तरफ जा रही है, ब्रह्मचर्य ऊपर की तरफ जा रहा है, लेकिन ऊर्जा तो वही है। बात तो वही है।
परम अवस्था में न तो कामवासना है, न ब्रह्मचर्य है। परम अवस्था में न
तो क्रोध है, न करुणा है। परम अवस्था में न तो हिंसा है, न अहिंसा है। इसको महावीर शुद्ध अवस्था कहते हैं।
जह व णिरुद्धं असुहं, सुहेण सुहमिव तहेव सुद्धेण।
तम्हा एण कमेण य, जोई झाएउ णिय आदं।।
जैसे शुभ के द्वारा अशुभ का निरोध हो जाता है, वैसे ही शुद्ध के द्वारा शुभ का भी निरोध हो जाता है। और जब शुभ और अशुभ दोनों का निरोध हो जाता है, तो जो शेष रह जाता है, वही निर्वाण है। यह आत्यंतिक कल्पना है। इससे ऊपर मनुष्य का स्वप्न कभी नहीं गया। इससे ऊपर जाने का कोई उपाय भी नहीं। यह आखिरी उत्तुंग ऊंचाई है। यह गौरीशंकर है चैतन्य का। इससे ज्यादा पवित्रता की और कोई कल्पना न कभी की गयी, न की जा सकती है। यहां शुभ भी अशुभ है। यहां पाप भी... पाप तो पाप है ही, यहां पुण्य भी पाप जैसा है। यहां संसार पूरे द्वंद्व के साथ पीछे छूट गया। यह निर्द्वंद्व, अद्वैत चित्त की अवस्था है।
महावीर कहते हैं, योगी ऐसे ही क्रम से, क्रम से ध्यान की इस परम अवस्था
को उपलब्ध हो, यही समाधि है, यही निर्वाण है।
इस परम उदात्त कल्पना से तुम भयभीत और चिंतित मत हो जाना। कहीं ऐसा न
हो जाए कि यह इतनी ऊंचाई, तुम सोचो अपने से न मिल सकेगी। कहीं इससे तुम्हारे मन में हताशा न पैदा हो जाए। क्योंकि कभी-कभी ऐसा होता है, अगर बहुत उत्तुंग शिखर हो, तुम देखकर ही डर जाओ, और तुम सोचो, हम कैसे जा

सकेंगे? चले गये होंगे महावीर, कोई बुद्ध, कोई कृष्ण। अद्वितीय पुरुष हैं, अवतारी पुरुष हैं। हम साधारणजन।
लेकिन ध्यान रखना, वे भी तुम्हारे जैसे ही साधारणजन थे। इसीलिए महावीर ने अवतार की धारणा को इनकार कर दिया। महावीर ने कहा अवतार की धारणा में खतरा है। अवतार का मतलब होता है, कोई विशिष्ट व्यक्ति; ईश्वर है, वह ईश्वर की तरह उतरा है। तो ठीक है, अगर उसने इतनी ऊंचाई पा ली तो कौन से गुण-गौरव की बात है। ऐसी ऊंचाई को लेकर ही उतरा था। साधारणजन, महावीर ने कहा-- नहीं है कोई अवतार। कोई भी नहीं है।
तीर्थंकर की धारणा अवतार से बिल्कुल उल्टी है। तीर्थंकर का अर्थ है, नीचे से जो ऊपर चढ़ा है। अवतार का अर्थ है, ऊपर से जो नीचे अवतरित हुआ है। हिंदुओं की धारणा अवतार की है। कृष्ण हैं, राम हैं, वे अवतारी पुरुष हैं। महावीर अवतारी पुरुष नहीं हैं। वे तीर्थंकर हैं। वे क्रमशः नीचे से ऊपर गये हैं। वे तुम जहां खड़े हो वहीं खड़े थे, वहीं से ऊपर गये हैं। इसलिए महावीर के साथ यात्रा ज्यादा सुगम है। क्योंकि महावीर तुम जैसे हैं। अगर तुम अशुद्ध हो, तो वे भी अशुद्ध थे। अगर तुम मनुष्य हो कमजोर, सीमाओं में बंधे, तो वे भी मनुष्य थे। और अगर वे कर सके, तो बड़ी आशा पैदा होती है, तुम भी कर सकते हो। और जो पाप तुम्हें ऊपर बहुत ज्यादा बोझिल मालूम पड़ते हैं, वे कुछ भी नहीं हैं--सिर्फ नींद में देखे गये सपने हैं।
उड़ने के लिए ही जो है बनी वह गंध सदा उड़ती ही है,
चढ़ने के लिए ही जो है बनी वह धूप सदा चढ़ती ही है
अफसोस न कर सलवट है पड़ी गर तेरे उजले कुर्ते में,
कपड़ा तो है कपड़ा ही आखिर कपड़ों में शिकन पड़ती ही है
यह सारी शिकन कपड़े पर है। शरीर पर है, मन पर है--यह सारी शिकन कपड़े पर है।
अफसोस न कर सलवट है पड़ी गर तेरे उजले कुर्ते में,
कपड़ा तो है कपड़ा ही आखिर कपड़े में शिकन पड़ती ही है
लेकिन भीतर तुम्हारे अंतर्तम में जो जी रहा है, वहां कोई शिकन कभी नहीं पहुंचती। तुम्हारे अंतर्तम में एक बिंदु है, एक केंद्र है, जिसको महावीर आत्मा कहते हैं।
उस आत्मा तक कोई पाप कभी नहीं पहुंचता। वहां तुम अभी भी गौरीशंकर पर
ही विहार कर रहे हो। वहां तुम अभी भी परमात्मा में ही बसे हो। बाहर की परिधि गंदली हो गयी है; लंबी यात्रा है जन्मों-जन्मों की, कपड़े धूल से भर गये हैं। कपड़े उतार डालो। अपने को पहचानो, तुम कपड़े नहीं हो। तुम देह नहीं, मन नहीं। तुम साक्षी हो; चैतन्य हो। तुम परम बोध की अवस्था हो। वहां तुम वैसे ही शुद्ध हो जैसे महावीर, जैसे बुद्ध, जैसे कृष्ण। वहां परमात्मा विराजमान है।
इसलिए इस ऊंचाई की बात से हताश मत हो जाना। यह ऊंचाई की बात तो केवल तथ्य की सूचना है। इस ऊंचाई की बात से तो तुम उत्साह से भरना कि अहो! ऐसी संभावना मेरे भीतर भी है। जो महावीर के लिए हो सका, वह सब के लिए हो सकता है।
महावीर ने मनुष्य को बड़ा आश्वासन दिया है। दो कारणों से। एक, महावीर
ने घोषणा की कि मनुष्य के ऊपर और कोई भी नहीं। कोई परमात्मा नहीं। मनुष्य ही अपनी शुद्ध अवस्था में परमात्मा हो जाता है। महावीर ने कहा, आत्मा के तीन रूप हैं। बहिआर्त्मा--जब चेतना बाहर जा रही है। अंतरात्मा--जब चेतना भीतर आ रही है। और परमात्मा--जब चेतना कहीं भी नहीं जा रही; न बाहर, न भीतर। बहिआर्त्मा--जब चेतना पाप कर रही है। अंतरात्मा--जब चेतना पुण्य कर रही है। परमात्मा--जब चेतना न पाप कर रही है, न पुण्य कर रही है। बहिआर्त्मा-- जब अशुभ से संबंध जुड़ा। अंतरात्मा--जब शुभ से संबंध जुड़ा। परमात्मा--जब सब संबंध छूट गये। असंग का जन्म हुआ। निर्विकल्प का जन्म हुआ। वही निर्वाण है।
उसे पाये बिना चैन मत पाना। उसे पाये बिना रुकना मत। आज कितना ही कठिन मालूम पड़े, लेकिन तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है। उसे पाया जा सकता है। उसे पाया गया है। और जो एक मनुष्य के जीवन में घटा, वह सभी मनुष्यों के

जीवन में घट सकता है। वह सभी की नियति है। लेकिन तुम्हारे ऊपर है। तुम अगर दावा करो, तो ही पा सकोगे। तुम अगर भिखारी की तरह बैठे रहो, तो खो दोगे। दूसरी बात। पहले तो महावीर ने कहा आदमी के ऊपर कोई भी नहीं, परमात्मा
भी नहीं। इसलिए मनुष्य को उन्होंने आत्यंतिक गरिमा दी। और दूसरी बात उन्होंने कहा, किसी से मांगने को यहां कुछ भी नहीं। परमात्मा ही नहीं है, मांगोगे किससे? मुफ्त यहां कुछ भी न मिलेगा। श्रम करना होगा। इसलिए महावीर की संस्कृति श्रमण-संस्कृति कहलायी। श्रम करना होगा। पूजा से न मिलेगा, श्रम से मिलेगा। भिखारी की तरह मांगकर न मिलेगा, अर्जित करना होगा। यह पहाड़ चढ़ने से ही चढ़ा जा सकेगा। यह किसी दूसरे के कंधों पर यात्रा होनेवाली नहीं है। लोग तीर्थयात्रा को जाते हैं, डोली में बैठ जाते हैं। यह ऐसा तीर्थ नहीं है जहां डोली में बैठकर यात्रा हो सकेगी। अपने ही पैरों से चलना होगा। इसलिए महावीर ने कहा, जब ऊर्जा जगती हो, जब जीवन में प्रफुल्लता हो, शक्ति हो, तब कल पर मत टालना। यह मत कहना कि कल बुढ़ापे में। महावीर पहले मनुष्य हैं, जिन्होंने पृथ्वी पर धर्म को युवा के साथ जोड़ा और कहा, यौवन और धर्म का गहन मेल है। क्योंकि ऊर्जा चाहिए यात्रा के लिए, संघर्ष के लिए, तपश्चर्या के लिए, संयम के लिए, विवेक के लिए, बोध के लिए--ऊर्जा चाहिए। ऊर्जा के अश्व पर ही सवार होकर तो हम पहुंच सकेंगे। इसलिए कल पर मत टालना।
महावीर ने मनुष्य को परम स्वतंत्रता भी दी और परम दायित्व भी। परम स्वतंत्रता, कि कोई परमात्मा ऊपर नहीं है। और परम दायित्व, कि तुम्हारी जिंदगी तुम्हारे हाथ में है। जो भी परिणाम होगा, तुम ही जिम्मेवार होओगे। कोई और जिम्मेवार नहीं है। महावीर की इस स्वाधीनता को, और महावीर के इस दायित्व को जिसने समझ लिया, वही जिन है। जैन-घर में पैदा होने से कोई जिन नहीं होता। जिन तो एक भावदशा है। परम उत्तरदायित्व और परम स्वातंष्य की इकट्ठी भावदशा का नाम जिनत्व है।
तो जहां भी कोई इस अवस्था को उपलब्ध हो जाएगा, उसका संग-साथ महावीर से जुड़ गया। जैन-घर में पैदा होने के कारण ही मत सोचना कि तुम जैन हो गये।
इतना सस्ता काम नहीं है। श्रम। श्रम से अर्जित।
मिल सकता है हृदय-धन। हृदय-धन तुम्हारे पास है ही। सिर्फ भीतर आंख खोलनी है।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग दो
छठवां प्रवचन

करना है संसार, होना है धर्म

पहला प्रश्नः यहां आते ही बुद्धि हृदय में और शब्द मौन में रूपांतरित
हो गये। आपको सुनते समय मेरा हृदय कभी-कभी आंसू बनकर बहने लगता है। संदेह है कि यहां से घर लौटने पर भी यह अवस्था बनी रहेगी अथवा नहीं। कृपापूर्वक समझाएं कि किस तरह यह अवस्था स्थिर हो?

पहली बात, आंसुओं से ज्यादा पवित्र मनुष्य के पास और कुछ भी नहीं है। आंसुओं से बड़ी कोई प्रार्थना नहीं है। आंसुओं का केवल एक रूप ही लोगों ने जाना है। वह रूप है--दुख-रूप। आंसुओं का एक और रूप है--आंनद-रूप। उसे बहुत कम लोग जान पाये। बहुत कम लोग जान पाते हैं।
किसी को तुम रोते देखते हो, तो सोचते हो दुखी होगा। किसी को तुम रोते देखते हो, तो सोचते हो कुछ पीड़ा होगी। कुछ चुभन होगी, जलन होगी। जरूरी नहीं। आंसू तो तभी बहते हैं जब कोई भी भावदशा इतनी ज्यादा हो जाती है कि तुम संभाल नहीं पाते। कोई भी भावदशा। दुख बहुत हो जाए तो आंसुओं से बहता है। सुख बहुत हो जाए तो भी आंसुओं से बहता है। पीड़ा बहुत हो, तो आंसुओं से बहकर हल्का हो जाता है मन। आनंद बहुत हो, तो आंसुओं से बह जाता है।
तो पहली तो बात, आंसुओं के साथ दुख का अनिवार्य संबंध मत जोड़ना। गहरे में हमारे मन में यह बात बनी ही हुई है कि आंसू दुख के कारण आते हैं। तो हम आंसुओं को छिपाते भी हैं। आंसू आते हों तो रोकते भी हैं। आंसू आ न जाएं, इसका हम बहुत उपाय करते हैं। इस उपाय को छोड़ो। यही उपाय घर जाकर रोकने का कारण बन जाएगा।
यहां मेरे पास हो, यहां एक और तरह की हवा है। यहां सब स्वीकार है। यहां तुम रोओगे, तो कोई तुम्हें दुखी न मानेगा। तुम रोओगे, तो शायद दूसरे तुम से ईर्ष्या करें। सोचें कि तुम धन्यभागी हो कि रो पाते हो, पीड़ित हों अपने मन में कि हम नहीं रो पाते। तुम्हारे आंसू यहां संपदा की तरह स्वीकार किये जाएंगे। घर लौटकर नहीं। दूसरी ही हवा होगी। दूसरा संयोग होगा आंसुओं के साथ।
तो अगर चाहते हो कि यह परम आंसू सदा बहते रहें, तो भीतर कुछ स्मरण करने
का है। और वह स्मरण यह है कि आंसुओं का दुख से कुछ लेना-देना नहीं है। अन्यथा तुम खुद ही रोक लोगे, कोई और नहीं रोकेगा। कौन रोकता है! कोई किसी को रोक नहीं सकता! लेकिन तुम्हीं रोक लोगे। तुम्हीं सकुचा जाओगे। तुम्हीं सोचोगे, कोई क्या कहेगा! घर में बच्चे होंगे तुम्हारे, पत्नी होगी, पिता- मां होंगे, क्या कहेंगे! दुकान पर बैठे रोने लगोगे, ग्राहक क्या कहेंगे! दफ्तर में बैठे रोने लगोगे, दफ्तर के लोग क्या कहेंगे! रास्ते पर रोने लगोगे, राह चलते लोग क्या कहेंगे!
आंसुओं के साथ दुख जुड़ा है। क्योंकि हमने एक ही तरह के आंसू अब तक जाने हैं, वे दुख के आंसू हैं। कोई मरा, तो हम रोये। कोई जीवन में विषाद आया, तो हम रोये। हम कभी आनंद से रोये नहीं। हम कभी उत्फुल्लता से रोये नहीं। हमारे आंसू कभी नृत्य नहीं बने। इसलिए एक गलत संयोग आंसुओं से जुड़ गया है। अब तो ऐसे भी लोग हैं पृथ्वी पर, जो दुख में भी न रोयेंगे--दुख में रोनेवाले लोग भी विदा हो रहे हैं। आनंद में रोनेवाले लोग तो बहुत समय पहले विदा हो गये। अब तो दुख में रोनेवाले लोग भी विदा हो रहे हैं। अब तो उस आदमी को हम कहते हैं बलशाली, जो दुख में भी रोता नहीं।
पत्नी मर गयी है और वह नहीं रोता। हम कहते हैं, यह है विवेकशील। हम कहते हैं, यह है संयमी। नियंत्रण इसे कहते हैं! यह है आदमी बुद्धिमान। अब तो हम कहते हैं कि जो रोये, वह नामर्द! अब तो हम रोनेवाले को कहते हैं, क्या स्त्रियों की तरह रो रहे हो! मर्द बनो! हिम्मत जुटाओ! रोने से क्या होगा! ऐसा तो होता ही है। आदमी मरता ही है। रोओ मत, आंसू मत गुमाओ। अब तो लोग दुख में भी रोना बंद कर रहे हैं।

जिस दिन लोग दुख में भी रोना बंद कर देंगे, उस दिन आदमी पाषाण हो जाएगा। पत्थर हो जाएगा। उस दिन आदमी के भीतर फिर कोई भी रोमांच न उठेगा। फिर आदमी के भीतर कोई लहर न आयेगी। फिर कोई गीत न जन्मेगा। फिर आदमी बिल्कुल पत्थर होगा। ऐसे बहुत लोग हैं जो पत्थर हो गये हैं। वे दुख में भी नहीं रो सकते।
श्रेष्ठतम आदमी तो आनंद में भी रोता है। निकृष्टतम आदमी दुख में भी नहीं रोता। दुख में भी जो न रोये वह बिल्कुल पत्थर हो गया। सुख में भी जो रोये, वह बह गया, बिल्कुल तरल हो गया। और एक बार तुम सुख का रोना सीख लो, एक बार तुम्हें रोने का आनंद अनुभव में आ जाए, रोने की पवित्रता, रोने की प्रार्थना की तुम्हें झलक मिल जाए, तो तुम्हारे हाथ में एक महान कुंजी आ गयी।
फिर तुम जहां भी मौका होगा--कभी किसी खिले फूल को देखकर भी आंखें आंसुओं से भर जाएंगी। इतना अपूर्व सौंदर्य है इस जगत में! कभी आकाश के तारों को देखकर भी आंखें डबडबा आएंगी। इतना रहस्यपूर्ण है यह जगत! तब तुम पाओगे कि तुम्हारे भीतर एक सिहरन जन्मी। एक नये तरह का आवेग, एक नया आवेश, एक नयी प्रफुल्लता।
मैं भी कहता हूं कि दुख में रोने की कोई जरूरत नहीं। क्योंकि मैं कहता हूं, रोने को तो सुख बनाया जा सकता है। मेरे कहने में, औरों के कहने में फर्क है। वे कहते हैं, दुख में भी मत रोना, क्योंकि रोने से कमजोरी प्रगट होती है। मैं तुमसे कहता हूं, रोने को तो आनंद बनाया जा सकता है। दुख में मत रोना, जब रोना ही है तो आनंद में रोना। और जो आदमी आनंद में रोना सीख लेता है, उसके जीवन में दुख के आंसू विदा हो जाते हैं। तुमने आंसुओं को राह दे दी। अब दुख में रोने की कोई जरूरत ही न रही। अब तो आंसू उस ऊंचाई पर उड़ने लगे, अब जमीन पर सरकने की कोई जरूरत न रही। जिसको पंख लग गये, वह जमीन पर थोड़े ही घसिटता है। दूसरे हैं कि तुम्हारी जमीन पर घसीटने की क्षमता भी छीन लेना चाहते हैं। मैं हूं कि तुम्हें आकाश में उड़ने की क्षमता देना चाहता हूं।
तुम आनंद में रोओ। आंसुओं से आनंद को जोड़ो। यह तो कीमिया है जीवन की।
तब दुख भी आनंदरूप हो जाएगा। तब पीड़ा भी प्रेमरूप हो जाएगी। तब उदासी में भी तुम पाओगे, उसका ही सरगम बजता है। विषाद में भी उसी की गुनगुनाहट तुम्हारे हृदय में गूंजेगी। मृत्यु के क्षण में भी तुम पाओगे, जीवन शाश्वत है। मृत्यु के क्षण में भी तुम जीवन के आह्लाद से ही नाचोगे। लेकिन एक बार आंसुओं को आनंद की कला सीख लेने दो। एक बार आंसुओं को आनंद से जुड़ जाने दो।
जानता हूं, भय उठता होगा मन में कि यहां तो आंसू इतना हलका कर जाते हैं, इतना हृदय भर जाता है, घर जाकर क्या होगा? तुम तो तुम ही रहोगे। मैं तुम्हें रुला रहा हूं, ऐसा मत सोचना। तुम ही रो रहे हो। क्योंकि यहां और भी हैं, जो नहीं रो रहे। अगर मैं रुला रहा होता, तो और भी रोते। अगर मेरे हाथ में होता रुलाना, तो और भी रोते। तुम रो रहे हो, तो तुम ही रो रहे हो, मैं नहीं रुला रहा। मेरे बहाने तुम थोड़ा अपने को दमन से, नियंत्रण से ढीला कर लिये हो। मैं सिर्फ बहाना हूं, निमित्त हूं।
अगर यह तुम्हारी समझ में आ जाए कि तुम ही रो रहे हो, मैं सिर्फ निमित्त हूं, तब तुम्हें हर जगह निमित्त मिल जाएंगे। फूल को देखकर रो लेना। बच्चे को नाचते, खुशी से भरा हुआ देखकर रो लेना। पक्षी का गीत सुनकर रो लेना। झरने की आवाज सुनकर रो लेना। वृक्षों के हरे पत्ते, आकाश में घिरे मेघ और रो लेना। कितना है चारों तरफ रहस्य! किसी को भी निमित्त बना लेना।
एक बार तुम्हें यह समझ में आ जाए कि रोने की क्षमता तुम्हारी है, तो फिर कोई भी निमित्त काम कर देगा। ऐसे ही समझो कि आये, अपना कोट टांगना है, तो खूंटी पर टांगते हैं; कोई भी खूंटी काम दे देगी। खूंटी नहीं मिलेगी तो तीली पर टांग देंगे, खीली पर टांग देंगे। वह भी नहीं मिलेगी तो दरवाजे के कोने पर टांग देंगे।
कोट तुम्हारा है, तुम मुझ पर टांग रहे हो। अगर कोट मेरा हो, तो निश्चित तुम जब घर जाओगे तो कोट यहीं रह जाएगा।

आंसुओं के संबंध में ही नहीं, जीवन के समस्त अनुभवों के संबंध में यह याद रखना कि जो घटता है, तुम्हारे अंतर्तम में घटता है। बाहर हो सकता है निमित्त मिल गया हो। जब तुम्हें तारों में सौंदर्य दिखायी पड़ता है, तब भी सौंदर्य तुम्हारे भीतर ही घटता है। तारे तो केवल निमित्त हैं। उन्हीं तारों के नीचे दूसरे भी तो जा रहे हैं अंधे, जिनको कुछ भी नहीं दिखायी पड़ता। तुम अगर उन्हें दिखाओ भी, तो वे तुम्हारी तरफ चकित होकर देखेंगे कि हो क्या गया है तुम्हें! तारे हैं, इतना आश्चर्य में होने की क्या बात है! एक मंदिर की घंटियां बज रही थीं। एक संगीतज्ञ बैठा था मंदिर के बाहर,
एक वृक्ष के तले। घंटियों का मधुर कलरव उसे आंदोलित करने लगा। उसने अपने पास बैठे मित्र से कहा, सुनते हो, कैसा अपूर्व कलरव है। उस आदमी ने कहा, इस मंदिर के पुजारी के घंटनाद के कारण कुछ भी तो सुनायी नहीं पड़ता! ये घंटियां इतने जोर से बज रही हैं कि तुम क्या कह रहे हो, यह भी सुनायी नहीं पड़ता। जरा घंटियां बंद हो जाने दो, फिर कहना।
वह संगीतज्ञ कह रहा है, सुनते हो घंटियों का कलरव नाद! ऐसे अपूर्व स्वर, ऐसे पवित्र स्वर सुने हैं कभी! शायद संगीतज्ञ बहुत धीरे-धीरे फुसफुसाया होगा कि कहीं घंटियों के नाद में कोई व्याघात न पड़ जाए। लेकिन मित्र कह रहा है कि जरा घंटियों की बकवास बंद हो जाने दो, फिर कहना। मुझे कुछ सुनायी नहीं पड़ता। ये घंटियां कुछ सुनने दें तब न!
मेरे पास तुम हो। तो मैं सिर्फ निमित्त हूं। मेरे निमित्त तुम्हारे भीतर का दृश्य तुम्हें दिख जाए, बस काम हो गया। जो दिखे उसे अपने भीतर ही जानना। तो तुम घर ले जा सकोगे। अगर तुमने समझा मेरे कारण दिखा है, तो तुम मुझसे बंध जाओगे। फिर तुम घर न ले जा सकोगे। फिर घर तो तुम बहुत उदास जाओगे। और घर तो तुम वंचित अनुभव करोगे कि वे आंसू अब नहीं बहते, जो हलका कर जाते थे। वह रहस्य अब नहीं उठता भीतर। वैसा संगीत अब नहीं छूता। तो तुम तो घर जाकर, आने के पहले जितना घर दुखी था, उससे ज्यादा दुखी घर में पहुंच जाओगे। उससे भी ज्यादा विषाद में उतर जाओगे। क्योंकि यह अनुभव तुम्हें और भी दुखी करेगा।
नहीं, वैसा देखना ही गलत है। जो घटता है, तुम्हारे भीतर घटता है। निमित्त बाहर हो सकते हैं। जो घटता है, तुममें घटता है। तुम उसके मालिक हो। इसलिए तुम अगर ले जाना चाहो, तो दुनिया में कोई रोकनेवाला नहीं। हां, लेकिन डर भी मेरी समझ में आता है। डर भी तुम्हारे भीतर है। तुम जानते हो कि घर इस सरलता से तुम रो न सकोगे।
एक मित्र ने कहा, यहां तो हम नाचते हैं, बड़ा आनंद आ रहा है, घर कैसे नाचेंगे? कौन रोकता है? थोड़ी प्रतिष्ठा दांव पर लगानी होगी, और तो कुछ दांव पर नहीं लगाना है। कौन रोकता है? कौन किसको रोक सकता है? हां, लेकिन घर नाचोगे, तो पत्नी समझेगी कि दिमाग खराब हुआ। बच्चे भी छिप-छिपकर देखेंगे कि पिताजी को क्या हो गया! पास-पड़ोस के लोग भी पूछने लगेंगे कि कुछ गड़बड़ हो गयी। प्रतिष्ठा दांव पर लगेगी। अब तुम्हारे ऊपर है, प्रतिष्ठा चुन लेना, या नाच चुन लेना। अगर प्रतिष्ठा में ज्यादा रस होगा, प्रतिष्ठा चुन लोगे, नाच में ज्यादा रस होगा, नाच चुन लोगे।
इस जगत में हर चीज कीमत पर मिलती है। जहां तुम्हें लगता है कि कीमत नहीं चुका रहे, वहां भी कीमत चुकानी पड़ती है। जेब से न भी देनी पड़ती हो, चाहे ऊपर से दिखायी भी न पड़ती हो, लेकिन हर जगह कीमत चुकानी पड़ती है। अगर नाच चाहिए, तो प्रतिष्ठा छोड़नी पड़ती है। अगर प्रतिष्ठा चाहिए, तो नाच छोड़ना पड़ता है।
अगर तुम चाहते हो कि आंसू तुम्हारे जीवन में बहते ही रहें झरने की तरह, और आंसुओं का अर्ध्य परमात्मा के चरणों पर चढ़ता ही रहे; अगर तुम चाहते हो आंसू ही तुम्हारे फूल होंगे प्रभु के चरणों में, तो फिर तुम्हें कोई न रोक सकेगा। लेकिन दांव पर लगाना होगा। मीरा ने कहा है, "लोक-लाज खोयी।" नाची होगी, तो लोक-लाज तो खोयी होगी! अब तो मीरा बड़ी प्रतिष्ठित है। अब तो मीरा का भजन गाओ, तो कोई लोक-लाज न खोनी पड़ेगी। मीरा ने खोयी थी। अब तो मीरा का भजन भी प्रतिष्ठित हो गया। कभी तुम्हारे आंसू भी प्रतिष्ठित हो जाएंगे। लेकिन अभी, अभी तो प्रतिष्ठा खोनी पड़ेगी।

मीरा के पति ने अगर उसके लिए जहर भेजा था, तो वह इसीलिए भेजा था। कुछ मीरा से विरोध न था, विरोध था मीरा के कारण उसकी तक प्रतिष्ठा धूल में मिली जाती थी। शाही घर की महिला, सड़कों पर नाचने लगी आवारा, तो राणा के मन को चोट पहुंचती होगी। लोग आकर कहते होंगे कि तुम्हारी पत्नी राह पर नाच रही है, भीड़ लगाकर लोग खड़े होकर देखते हैं, वस्त्र तक उतर जाते हैं, हाथ से गिर जाता है साड़ी का पल्ला, ऐसा तो कभी न हुआ था! घूंघट के जो कभी बाहर न निकली थी, सड़कों पर नचा रहे हो! कुछ करो! प्रतिष्ठा दांव पर लगी होगी। मीरा को मार डालना चाहा होगा। हट ही जाए यह! यह कलंक मालूम पड़ा होगा। लेकिन मीरा नाचती रही। जहर भी पी गयी और नाचती रही।
जहर दिया या नहीं दिया, यह बात बड़ी नहीं। लेकिन बात इतनी ख्याल रखना, जहर पी गयी और नाचती रही। जहर स्वीकार कर लिया, नाच को त्यागना स्वीकार न किया। तो घर जाकर अगर रोना चाहोगे, तो कई तरह का जहर पीना पड़ेगा। उतनी हिम्मत हो, तो जहां तुम हो वहां तुम्हारा नाच, वहां तुम्हारे आंसू, वहां तुम्हारे गीत कौन छीन सकता है! लेकिन लोग छीन लेते हैं, क्योंकि हम लोगों से कुछ चाहते हैं--इज्जत, प्रतिष्ठा। स्वभावतः इज्जत और प्रतिष्ठा वे अपने ही मापदंड से देते हैं। अगर तुम उनका मापदंड पूरा करो, तो इज्जत और प्रतिष्ठा देते हैं। इसी आधार पर तो उन सबने तुम्हारी गर्दन को जकड़ लिया है। हाथों में जंजीरें डाल दी हैं।
प्रतिष्ठा चाहते हो, तो सौदा साफ है। तुम्हें समाज के अनुसार चलना होगा। लोग जैसा कहते हैं वैसा ही मानना होगा। इस बदले में वे तुम्हें आदर देंगे। अगर तुमने उनके नियम तोड़े, स्वभावतः तुम्हें अनादर मिलेगा।
वही है जहर--अनादर का, अप्रतिष्ठा का, अपमान का। उसे तुम पीने को राजी हो, तो तुम्हारी आंखें सदा ही मेघों की भांति बरसती रहेंगी। और तुम्हारे आंसू कहीं भी गिरें, परमात्मा के चरणों में पहुंच जाएंगे।
भय तुम्हें उठ रहा है, तुम्हारे ही भीतर। यहां तो एक वातावरण है। यहां
तो और भी पागल हैं, तुम अकेले थोड़े ही। यहां तो तुमसे बड़े पागल हैं। यहां तो हालत ऐसी उलटी है कि जिसको न भी आंसू आते हों, वह भी लाने की कोशिश कर सकता है। क्योंकि यहां आंसू आने से प्रतिष्ठा मिल सकती है। यहां तो जिसको नाच न भी आता हो, वह भी नाच सकता है। जिसके भीतर उमंग न भी उठती हो, वह भी दिखला सकता है कि बड़ी उमंग उठ रही है। क्योंकि यहां तो उमंग उठने से प्रतिष्ठा मिलती है। यहां तो पागलपन और प्रतिष्ठा में विरोध नहीं है। यहां तो पागलपन प्रतिष्ठा का कारण बन सकता है।
घर जाकर हालत उलटी होगी। पागलपन और प्रतिष्ठा, दोनों के बीच चुनाव करना होगा। इतना ही मैं तुमसे कह सकता हूं कि अगर तुम्हें रस आया हो आंसुओं में, तो फिर फिक्र मत करना। दो-चार दिन की बात है। लोग दो-चार दिन हंस लेते हैं। हंस लेने, देना। तुम भी उनकी हंसी में सम्मिलित हो जाना। तुम भी अपने पर हंस लेना। दो-चार दिन लोग कहते हैं पागल, फिर कौन बैठा रहता है तुम्हारे लिए! सोचने की लोगों को फुर्सत कहां है! किसको समय रखा है! कौन चिंता करता है! फिर लोग स्वीकार कर लेते हैं कि हो गये पागल, बात खतम हो गयी। दो-चार दिन में सब व्यवस्था बैठ जाती है। पत्नी भी मान लेती है कि अब ठीक है, तुम्हारे साथ ही जीना है। बच्चे भी मान लेते हैं कि ठीक है। दो-चार दिन की ही हिम्मत, जीवनभर के लिए स्वतंत्रता का मार्ग खोल देती है। लेकिन हर स्थान पर कीमत तो चुकानी ही पड़ेगी।
पूर्ण होकर रुदन भी युग-गान बनता है,
मधुरतम गान बनता है।
जब हृदय का एक आंसू
सब समर्पण-भाव लेकर
नैन-सीपी में उतर कर
अर्चना का अर्ध्य बनता,
एक क्षण पाषाण भी भगवान बनता है पूर्ण होकर रुदन भी युग-गान बनता है, मधुरतम गान बनता है।

तुम्हारी आंख से जिस क्षण आंसू बहे, अगर समर्पण का हो, गीत का हो, अर्चना का हो, प्रभु के चरणों में चढ़ाने के लिए हो, तो उस आंसू के क्षण में ही, अगर तुम पत्थर की प्रतिमा के सामने भी बैठे हो--एक क्षण पाषाण भी भगवान बनता है। तो उस आंसू के बीच, उतर आने से आंख में, सामने रखा हुआ पाषाण भी भगवान बनता है। तुम्हारे आंसू में बड़ा बल है। अगर तुमने बिना रोये पाषाण की मूर्ति को देखा, तो पाषाण की मूर्ति ही रहेगी। तब तुमने तर्क से देखा, बुद्धि से देखा, विचार से देखा। रो कर देखा, आंख को गीली करके देखा, तब तुमने हृदय से देखा; आर्द्रता से देखा, भावना से देखा। उस आंसू-भरी आंख को पत्थर भी पत्थर नहीं मालूम होता। उसमें प्राणों की प्रतिष्ठा हो जाती है। आंसू से रहित आंख पथरीली है। आंसू से रहित आंख पाषाण है। पाषाण से पाषाण ही दिख सकता है। आंख में जब आंसू होते हैं, तभी आंख जीवंत होती है। जब गीली होती है, तभी रसभरी होती है। जब गीली होती है, तभी आंख में काव्य होता है, कविता होती है। जब गीली होती है, तभी आंख के तारों पर कोई संगीत छिड़ता है। उस गीली आंख से संसार को देखो, संसार न दिखायी पड़ेगा। पाषाण भगवान बनता है। संसार भगवान बनता है। तुम्हारी आंख की ही बात है। सारी बात आंख की है। आंसू-भरी आंख, आत्मा-भरी आंख है। लेकिन ये आंसू आनंद के हों, अहोभाव के हों। ये शिकायत में न गिरें, धन्यवाद के हों; आभार के हों। उसकी अनुकंपा के लिए, गहन कृतज्ञता के हों।
और बात तुम्हारे ही हाथ में है। इसे जितनी बार दुहराया जाए उतना ही कम है। इस संबंध में अतिशयोक्ति नहीं हो सकती। इस संबंध में पुनरुक्ति नहीं हो सकती, कि तुम अपने मालिक हो। तुम जैसे हो अभी, ऐसा होना तुमने चुना है। फिर दुखी होना व्यर्थ है। तुमने दुख को ही चुना है। तुमने गलत को ही चुना है। अगर तुम्हारी संवेदना मर गयी है, अगर तुम्हारी भावना मर गयी है, अगर तुम्हारी खोपड़ी में सिर्फ कुछ क्षुद्र विचार ही रह गये हैं और जीवन कहीं भी किसी और तरंग से आंदोलित नहीं होता है, तो ऐसा होना ही तुमने चुना है। किसी को दोष मत देना।
मेरे पास अगर तुम आ गये हो, तो इतनी-सी बात भी सीख लो तो बहुत है कि जैसे तुम हो, यह तुम्हारा निर्णय है। अन्यथा होना है, बस तुम्हारे निर्णय को ही बदलने की बात है। कुछ और नहीं बदलना। यह मत सोचना कि सारी दुनिया को बदलेंगे। जो लोग दुनिया को बदलने निकलते हैं, वे वे ही लोग हैं जो स्वयं को बदलने से बचना चाहते हैं। चालबाजी है। खुद बदलने में घबड़ाते हैं। खुद को बदलने में कठिनाई मालूम होती है, तो दुनिया को बदलने के सपने देखते हैं। राजनेता हैं, समाजनेता हैं, इसी तरह के धोखेबाज, आत्म-प्रवंचक हैं। एक ही बदलाहट संभव है और वह तुम्हारी बदलाहट है। और तुम्हारे अतिरिक्त वहां कोई भी मालिक नहीं है। तुम्हीं मालिक हो। इसी को महावीर कहते हैं व्यक्ति की परम स्वतंत्रता और परम दायित्व।
शुभ हैं, तुम्हारे आंसू। संभालना। आंखों ने गीला होना जाना है, अब सूखे मरुस्थल मत बनाना आंखों में। अब मरूद्यान उठा है, जगा है, तो संभालना।
चांद निकला तो अंधेरा भी मुस्कुराने लगा
हंसा जो फूल तो कांटों पे नशा छाने लगा
वह प्यार का ही था जादू तो यह मिट्टी का सितार
न कोई शब्द हुआ और गुनगुनाने लगा
अगर आंसू उतरे हैं--कांटों पे नशा छाने लगा। अगर इस नशे में तुम्हें आनंद आ रहा हो, रस निमग्नता आ रही हो, तुम डूब रहे हो, तो इस रस को बचाना, और चाहे कुछ भी छोड़ना पड़े। क्योंकि अंततः यही रस तुम्हें परमात्मा से जोड़ेगा। इस रस के बिना और कोई सेतु नहीं है मनुष्य और परमात्मा के बीच। यही रस, यही आंसू सेतु बनेंगे। यही आंसू धागा बनेंगे। तुम्हारी सुई धागा पिरोयी हो जाएगी। हृदयपूर्वक रोना। सब लोक-लाज छोड़कर रोना। सब भय, शंकाएं छोड़कर रोना। जब रोओ तो बस आंख ही हो जाना। और आंख से आंसू ही नहीं बहें, तुम्हीं बहना।
चांद निकला तो अंधेरा भी मुस्कुराने लगा

और एक बार तुम्हारे भीतर चांद निकल आए, एक बार तुम्हारे भीतर अहोभाव
की पहली झलक, प्रतीति आ जाए।
चांद निकला तो अंधेरा भी मुस्कुराने लगा
तब तुम पाओगे कि दुख भी सुख में रूपांतरित हो जाता है, अंधेरा प्रकाश
बन जाता है। मृत्यु जीवन बन जाती है। शत्रु मित्र हो जाते हैं।
हंसा जो फूल तो कांटों पे नशा छाने लगा
और एक बार तुम्हारे भीतर का फूल हंसने लगे, तो तुम्हारे भीतर के कांटों तक पर नशा छाने लगेगा।
यह बड़ी गहरी कीमिया की बात है। जो व्यक्ति आंसुओं से भर जाता है-- आह्लाद के, आनंद के, उसके भीतर जो कल्प-कांटे थे, वे भी नरम होने लगते हैं। उसका क्रोध नरम हो जाएगा। रोनेवाला आदमी क्रोध करने में धीरे-धीरे असमर्थ हो जाएगा। कांटों पर नशा छाने लगा। उसकी घृणा समाप्त होने लगेगी। जिसने रोना जान लिया, वह किसी को घृणा न कर सकेगा। जिसने रोना जान लिया, उसके संदेह गिरने लगेंगे। उसकी गीली आंखें उसे श्रद्धा की तरफ ले जाने लगेंगी। कांटों पे नशा छाने लगा।
एक सूत्र भी तुम्हारे हाथ में आ जाए जीवन को बदलने का, तो सारा जीवन रूपांतरित होने लगता है।
हंसा जो फूल तो कांटों पे नशा छाने लगा
वह प्यार का ही था जादू तो यह मिट्टी का सितार
न कोई शब्द हुआ और गुनगुनाने लगा
मेरे पास तुम हो, इस घड़ी को प्रेम की घड़ी अगर बनाया, अगर मेरे प्यार को अपने भीतर प्रविष्ट होने दिया, और अगर अपने प्यार को मेरी तरफ बहने दिया, तो सितार छिड़ जाएगा, तो राग बजने लगेगा। शब्द भी न होगा--न कोई शब्द हुआ और गुनगुनाने लगा--और हृदय गुनगुनाने लगेगा। मौन संगीत, नीरव संगीत, शून्य संगीत बजने लगेगा। पर हो रहा है सब तुम्हारे भीतर।
मेरे पास आकर अपने भीतर की थोड़ी-सी झलक ले लो, फिर उसे सम्हाले हुए घर जाना। फिर उसे सम्हाले हुए अपनी दुनिया में वापस लौटना और तुम पाओगे वहां भी थोड़ा भी सम्हालने से सम्हला रहता है। स्वभावतः यहां से ज्यादा वहां सम्हालना होगा। लेकिन बात सम्हालने की ही है। यह मत सोचना कि मैं कुछ कर रहा हूं। तुम कुछ होने दे रहे हो। और तुम अगर होने दोगे, तो तुम जहां हो वहीं होता रहेगा। फिर प्रेम का संबंध कोई स्थान का संबंध नहीं। तुम मेरे से दस फीट दूर बैठे हो, कि हजार फीट, कि हजार मील, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। प्रेम कोई फासला जानता नहीं। और घृणा निकटता नहीं जानती। जिस आदमी को तुमसे घृणा है, वह तुम्हारे पास भी बैठा रहे, शरीर से शरीर भी लगा हो, तो भी कहां पास! और जिससे तुम्हें प्रेम है, वह सात समंदर पार हो, तो भी कहां दूर! प्रेम दूरी नहीं जानता, घृणा निकटता नहीं जानती।
तो अगर तुमने मेरे और तुम्हारे बीच प्रेम की धारा को जरा बहने दिया,
तो फिर तुम कहीं भी रहो, आंख बंद करते ही तुम मेरी मौजूदगी में हो जाओगे। आंख बंद करते ही आंखें फिर पुरनम होने लगेंगी। फिर गीली होने लगेंगी। आंख बंद करते ही फिर वीणा बजने लगेगी।
हजारों लोग सारी दुनिया के कोने-कोने से आ रहे हैं। उनकी तकलीफ तुम समझते हो! तुम तो पास हो बहुत--कोई बड़ौदा में है, कोई बंबई में है, कोई बहुत दूर हुआ दिल्ली में है--लेकिन दूर, बड़ी दूर से लोग आ रहे हैं, उनके साथ क्या घट रहा है? दो महीने, तीन महीने रहने के बाद उन्हें वापस लौट जाना पड़ता है, लेकिन वे वापस कभी नहीं लौटते। संबंध बन गया, फिर वे जहां होते हैं वहीं से जरा आंख बंद करने, स्वयं को थिर करने, शांत करने की बात है कि जैसे रेडियो पर तुम कोई भी स्टेशन पकड़ लेते हो--जरा-सा सुई को घुमाने की बात है, ठीक जगह लाने की बात है; सुई ठीक जगह आ जाती, तत्क्षण दूरी समाप्त हो जाती है। तो लंदन हो, कि टोकियो हो, कि वाशिंगटन हो, कोई फर्क नहीं पड़ता। ऐसे ही हृदय का भी वाद्य है। अगर तुमने ठीक मेरे पास बैठकर इतना भी पहला पाठ सीख लिया कि कैसे तुम्हारे हृदय की सुई मेरी तरफ उन्मुख हो जाए, तुम कैसे मेरी तरफ उन्मुख हो जाओ, बस फिर तुम जहां भी आंख बंद कर लोगे, थोड़ा अपने को सम्हालकर शांत कर लोगे, थोड़ी तरंगें मन की बैठ जाने दोगे, थोड़ी मेरी याद करोगे,

अचानक पाओगे, दूरी गयी। दूरी समाप्त हुई। तुम ऐसे ही मुझे पा लोगे जैसे तुम मुझे यहां पाये हुए हो। लेकिन सारी बात तुम पर निर्भर है। मालिक तुम हो।

दूसरा प्रश्नः आपके पास संन्यास लेने के लिए आया हूं, लेकिन कल ही घर
से पत्र आया है कि अगर मैं गैरिक-वस्त्र पहनूंगा तो मेरे माता-पिता रस्सी ले लेंगे। मेरे माता-पिता ग्रामीण हैं और हिंदी भी नहीं जानते, उन्हें समझाना कठिन है। कृपया बतायें कि मैं क्या करूं?

माता-पिता गांधीवादी मालूम होते हैं, रस्सी ले लेंगे, फांसी लगा लेंगे!
निश्चित ही गांधीवादी लोगों से बड़ी झंझट है। हिंसक कहता है, तुम्हें मार डालेंगे। गांधीवादी कहता है, हम मर जाएंगे। मगर दोनों की आकांक्षा एक ही है कि तुम्हें हम स्वतंत्र न होने देंगे, जैसा हम चाहेंगे वैसा करवा कर रहेंगे। तो जो कहता है, हम तुम्हें मार डालेंगे, उससे तो बचने का उपाय भी है। लेकिन जो कहता है, हम मर जाएंगे, उससे कैसे बचें! बड़ी कठिनाई है। लेकिन कुछ बातें ख्याल में लेनी चाहिए।
पहली बात, तुम पृथ्वी पर पहली दफे नहीं हो। और तुम्हारे माता-पिता पहले माता-पिता नहीं हैं। अब तक किसी माता-पिता ने, पूरे मनुष्य-जाति के इतिहास में, किसी के संन्यास लेने पर रस्सी नहीं ली। कहते सभी थे। कहा सभी ने। बुद्ध के पिता ने भी। मगर रस्सी किसी ने नहीं ली। कोई मां-बाप आज तक मरा नहीं इस कारण कि बेटे ने संन्यास ले लिया। थोड़ा सोचो तो, बेटे के मरने पर नहीं मरते मां-बाप, संन्यास लेने पर मर जाएंगे! गांधीवादी धमकी है, घबराने की कोई जरूरत नहीं। दो कौड़ी की है। इसका कोई भी मूल्य नहीं है। कोई कभी किसके लिए मरता है!

एक युवक एक सूफी फकीर के पास जाता था। रस में डूबने लगा। मस्ती भरने लगी। भाव उठने लगा कि हो जाए वह भी फकीर। पर उसने कहा, मैं हो नहीं सकता हूं, मेरी पत्नी मर जाएगी! मेरे बेटों का क्या होगा? मेरे मां-बाप वृद्ध हैं, वे जी न सकेंगे, एक दिन। कई लोगों की हत्या मेरे सिर पड़ जाएगी, आप क्या कहते हैं!
उस फकीर ने कहा, एक काम करो। आठ-दस दिन यह मैं तुम्हें श्वास की साधना देता हूं, उसे कर लो। उसने कहा, इससे क्या होगा? उसने कहा कि फिर दसवें दिन तुम सुबह ही सांस साधकर पड़ जाना। मर गये। फिर मैं आऊंगा, फिर सारा दृश्य अपन समझ लेंगे कि तुम्हारे मरने से कौन-कौन मरता है। उसने कहा, यह बात तो ठीक है!
दसवें दिन... दस दिन उसने अभ्यास किया सांस को साधने का, फिर दसवें दिन सांस को रोककर पड़ रहा। रात से ही उसने कह दिया था कि हृदय में बड़ी धड़कन हो रही है, घबड़ाहट हो रही है, ऐसा-वैसा, तो घर के लोग तैयार ही थे, कि मरता है, क्या होता है! सुबह वह मर ही गया। छाती पीटना, रोना-चिल्लाना शुरू हो गया। वह फकीर आया। बंधा हुआ सब शड्यंत्र था। उस फकीर ने आकर कहा, क्यों रोते- चिल्लाते हो? उन्होंने कहा, यह बेटा मर गया, आप तो महापुरुष हैं, चमत्कार करें। आप तो कुछ भी कर सकते हैं। आपके आशीष से क्या नहीं हो सकता! उसने कहा मैं करूंगा, लेकिन इसकी जगह मरने को कौन तैयार है? क्योंकि यमदूत खड़े हैं, वे कहते हैं हम किसी को तो ले ही जाएंगे। बिना... खाली हाथ नहीं जा सकते। कोई और जाने को राजी हो तो चलो हम किसी और को ले जाएंगे। इतना मैं उन्हें समझा-बुझा सकता हूं। पिता ने कहा कि मेरा मरना तो मुश्किल है, और भी बेटे हैं। उनकी भी मुझे फिक्र करनी है, कोई यह ही तो एक बेटा नहीं है। मां ने कहा कि मैं मर जाऊंगी तो मेरे पति का क्या होगा? बुढ़ापे में मैं ही तो इनकी सेवा कर रही हूं। ऐसा एक-एक इनकार करता चला गया। पत्नी जो खूब छाती पीट-पीटकर रो रही थी और कहती थी मैं मर जाऊंगी, जब यह सवाल उठा, तो उसने कहा अब छोड़ो भी, यह तो मर ही गये, हमको छोड़ो। अब यह तो मर गये, हम किसी तरह चला लेंगे।

तो फकीर ने कहा, बेटा! अब उठ, अब क्या कर रहा है? अब पड़ा-पड़ा क्या सोच रहा है? वह आदमी उठा और उसने कहा कि ठीक, अब यह तो मर ही गये उसने कहा, और ये लोग तो चला ही लेंगे, मैं आया। आपके पीछे आता हूं।
किसी ने कभी रस्सी ली नहीं। इससे कुछ घबड़ाने की जरूरत नहीं है। इससे कुछ परेशान होने की जरूरत नहीं है। और इस तरह की धमकियों से दब जाना बहुत खतरनाक है। इस तरह की धमकियों से एक बार दब गये कि सदा के लिए दब गये। तो अगर तुम गांधीवादी हो--तुम भी, क्योंकि उन्हीं मां-बाप के बेटे हो--तो रास्ता यह है कि तुम कह दो, हम भी रस्सी ले लेंगे अगर गेरुवा न पहनने दिया। और क्या करोगे! होने दो रस्साकसी! अब और तो मैं सलाह क्या दे सकता हूं! लिख दो पत्र कि फौरन तार से सूचना भेजें संन्यास लेने की आज्ञा, नहीं तो रस्सी ले लूंगा।
अगर तुम संन्यास लेना ही चाहते हो, तो फिर तुम्हें कोई नहीं रोक सकता। तुम न लेना चाहते होओ, तो यह तरकीब काफी है तुम्हें रोकने को। लेकिन ध्यान रखना, मां-बाप ने नहीं रोका तुम्हें, तुम खुद रुके। यह भी तुम ख्याल रखना। अगर तुम रुकते हो, तो तुम खुद रुके। तुम बेईमान हो, यह तो मां-बाप का बहाना ले लिया। यह तो तुमने एक तरकीब खोज ली कि क्या करें, मां-बाप मरने को तैयार हैं। इसलिए रुक रहे हैं। लेकिन कल मां-बाप मरेंगे ही। मरने से कौन कब बचा है! जो होना ही है, वह होगा ही। और अगर तुम्हारे संन्यास से ही मरते हों तो कम से कम एक तो उनके खाते में बात लिखी रहेगी कि धार्मिक व्यक्ति हैं, संन्यास के कारण मरे।
ऐसा कभी हुआ नहीं है। होता नहीं है। मौत की धमकियां देनेवाले मौत का
भी उपयोग करते हैं जीवन के उपयोग के लिए ही। जो तुम्हारे संन्यास से घबड़ा रहे हैं, वे अपनी मौत से न घबड़ायेंगे। थोड़ा सोचो तो! तुम कर क्या रहे हो? सिर्फ गैरिक-वस्त्र पहन रहे हो। घर में रहोगे, घर का काम करोगे, शायद पहले से ज्यादा बेहतर करोगे। शायद मां-बाप की सेवा भी पहले से ज्यादा बेहतर करोगे। दो-चार-आठ दिन में वे समझ जाएंगे कि संन्यास ने तुम्हें बिगाड़ा नहीं, बनाया। और मेरा संन्यास वैसा तो संन्यास नहीं है कि तुम घर छोड़कर भाग जाओ; मां-बाप बूढ़े हैं उन्हें छोड़कर भाग जाओ, पत्नी को छोड़कर भाग जाओ; बच्चों को छोड़कर भाग जाओ, मैं कोई भगोड़ापन तो तुम्हें सिखा नहीं रहा हूं। उन्हें शायद नासमझी होगी। उनको शायद अंदाज भी न होगा। संन्यास का मतलब वे समझते होंगे पुराना संन्यास। तो तुम जब घर पहुंचोगे, समझा लेना। और मैं मानता हूं गैर पढ़े-लिखे आदमियों को समझा लेना सदा आसान है। क्योंकि ज्यादा हार्दिक होते हैं। इसीलिए तो उन्होंने धमकी दी बेचारों ने। नहीं तो तर्क देते कि संन्यास में कोई लाभ नहीं है, और सब पक्ष-विपक्ष लिखते। सीधी बात कह दी कि मर जाएंगे। भावुक लोग होंगे। सीधे-साधे लोग होंगे। सरल लोग होंगे। डर गये होंगे कि बेटा कहीं छूट न जाए। लेकिन जब तुम घर लौट जाओगे गैरिक-वस्त्रों में, उनके चरण छुओगे और उनकी सेवा में रत हो जाओगे-- जैसे तुम कभी भी न थे--क्योंकि मैं कहता हूं, जो संन्यास तुम्हें अपनों से तोड़ दे वह संन्यास नहीं है! संन्यास तो वही है जो तुम्हें दूसरों से भी जोड़ दे, अपनों से तो जोड़े ही! संन्यास है योग, जोड़। तोड़नेवाली बात ही गलत है। तो दो-चार दिन में उनको भी समझ में आ जाएगा। गैर पढ़े-लिखे हैं, जल्दी समझ आ जाएगा। पढ़े-लिखे होते, तो महीनों लग जाते। क्योंकि तर्क उठाते, विवाद करते, विचार करते। सीधे-साधे ग्रामीण लोग हैं, जल्दी समझ में आ जाएगा। तुम पर निर्भर करेगा। तुम्हारे व्यवहार पर निर्भर करेगा। संन्यस्त होकर अगर तुम और भी प्यारे हो गये--जैसे तुम कभी भी न थे--तो फिर कोई अड़चन नहीं। वे क्यों मरना चाहेंगे! फिर तो तुम संन्यास छोड़ोगे तो वे कहेंगे, रस्सी ले लेंगे, अब संन्यास मत छोड़ना।
इतने लोगों ने संन्यास लिया है, सभी के साथ कुछ न कुछ ऐसे ही सवाल उठते हैं। लेकिन कमजोरी सदा भीतर होती है।
कल एक मित्र पूछते थे कि अब आप गेरुवे पर ही ज्यादा जोर दे रहे हैं, पहले आप साधु... सफेद वस्त्रों में भी संन्यास दे देते थे। तो मैंने उनको कहा, मेरे गांव में, जहां मैं पैदा हुआ--पता नहीं, दूसरे गांवों में भी ऐसा होता होगा--जहां मैं पैदा हुआ, वहां जब मैं छोटा था, तो बच्चों में एक

पारिभाषिक शब्द था। छोटे बच्चे भी--और छोटे बच्चे, हमसे भी ज्यादा छोटे-- खेलने में सम्मिलित होना चाहते थे, और मां-बाप कहते हैं कि जाओ, अपने छोटे भाई को भी ले जाओ, और छोटी बहन को भी ले जाओ, इनको भी खेलने दो। और वे सब खेल खराब कर देते हैं, क्योंकि वे छोटी उम्र के--न दौड़ सकते हैं, न भाग सकते हैं! तो मेरे गांव में उनके लिए एक पारिभाषिक शब्द था, उन्हें हम खेल में सम्मिलित कर लेते थे, उनको कहते हैं--"दूध की दोहनिया।" बस इतना, खेलनेवाले समझ लेते हैं कि यह इसको दौड़ने दो, भागने दो, मगर यह कोई खेल का हिस्सा नहीं है। "दूध की दोहनिया।" अभी दूध-पीता है। खेलने दो, कूदने दो, वह प्रसन्न होता है बहुत। वह समझता है लोग उसके पीछे दौड़ रहे हैं--कोई-कोई थोड़ा दौड़ भी देता है--लेकिन न उसको कोई पकड़ता है, न उसको कोई परेशान करता है। वह ऐसे ही उछल-कूद करता रहता है। दूध की दोहनिया है।
तो मैंने उनसे कहा कि सफेद वस्त्रों में संन्यास देता था, वह सब "दूध
की दोहनिया" हैं। संन्यास भी लेना चाहते हैं, हिम्मत भी नहीं है गैरिक-वस्त्रों की, तो चलो! खेलने दो, दौड़ने दो। कभी तो समझ बढ़ेगी, तब गैरिक में आ जाएंगे। चलो लेना तो चाहते हैं, आधे-आधे हैं। अब उनको मैं धीरे-धीरे कह रहा हूं कि अब बहुत हो गया, "दूध की दोहनिया" सदा थोड़े ही बने रहोगे! अब बढ़ो, अब थोड़ी उम्र पाओ। तो माला, चलो आधा सही। माला से थोड़े राजी हो गये, फिर धीरे- धीरे गैरिक वस्त्रों से भी राजी हो जाएंगे।
मुल्ला नसरुद्दीन को एक रेलवे क्रासिंग पर नौकरी मिल गयी। पहले ही दिन आधा दरवाजा तो उसने खोल दिया क्रासिंग का और आधा बंद रखा। एक कारवाला आदमी रुका, उसने कहा कि जिंदगी हो गयी मुझे यहां से गुजरते, मगर या तो दरवाजा बंद होता है, या खुला होता है; यह आधा क्या मामला है! नसरुद्दीन ने कहा, मुझे पूरा भरोसा नहीं है कि ट्रेन आयेगी; इसलिए आधा खोल रखा है। जिनको पूरा भरोसा नहीं है अपने पर, उनको मैंने कहा चलो, सफेद वस्त्रों में रहो, "दूध की दोहनिया!" आधा तो खोला, देखेंगे। आधा आगे देख लेंगे। लेकिन कमजोरियां भीतर हैं। अब लोग छोटी-छोटी अजीब-अजीब कमजोरियां लाते हैं। यह तो ठीक है कि तुम्हारे पिता ने तुम्हें अच्छा बहाना दिया कि रस्सी ले लेंगे। एक सज्जन आये, वे कहने लगे कि और तो सब ठीक है, गैरिक-वस्त्र भी ले सकते हैं, लेकिन सर्दी में क्या होगा! कोट वगैरह सब महंगे बनाकर रखे हैं, उनका क्या होगा! तुम सोच ही नहीं सकते आदमी कैसे बहाने खोजता है। तो सर्दी में तो पहन सकते हैं ऊनी वस्त्र दूसरे रंगों के? जैसे कुछ वस्त्रों के पहनने से कुछ होना-जाना है! तुम बात ही चूक गये, तुम इशारा ही न समझे। यह तो बात समर्पण की थी। सर्दी और गर्मी का यहां कोई उपाय न था। समर्पण यानी बारहमासी। इसमें कोई एक ऋतु में यह पहन लेंगे, दूसरी ऋतु में वैसा पहन लेंगे।
लोग संन्यास ले जाते हैं, माला मैं उनके गले में डालता नहीं कि वे जल्दी से उसे अंदर छिपा लेते हैं। वह है ही इसीलिए कि लोग तुम्हें पागल समझें। कि लोग हंसें, कि लोग मौका दें कि अच्छा, तो तुम भी गये! उसे तुम जल्दी से अंदर छिपा रहे हो! तो माला रही, न रही, बराबर हो गया। छोटी-छोटी बातें लोग खोजते हैं। लेकिन उन सब बातों के पीछे उनका खुद का ही भय है। छिपा हुआ है। अपने भय को पहचान लो, फिर तुम्हें कोई रोकनेवाला नहीं है। और किसी के कारण रुकना भी मत। अगर रुकते हो, तो अपने भय के कारण रुकना, अन्यथा तुम दूसरे पर नाराज रहोगे। तुम समझोगे कि पिता ने, मां ने रोक दिया। यह गलत बात होगी। यह उनका भाव, उन्होंने प्रगट कर दिया कि वे रस्सी ले लेंगे, अगर उनको लेनी होगी तो ले लेंगे। अब जो इतनी-सी बात पर रस्सी लेते हैं, वे ज्यादा दिन बिना रस्सी लिए रह भी नहीं सकते। कोई और बहाने लेंगे। तुम उन्हें अच्छी रस्सी का इंतजाम कर देना, और क्या करोगे!
लेकिन कोई कभी रस्सी लेता नहीं। दो दिन बाद सब ठीक हो जाता है। घबड़ा गये होंगे, पुरानी धारणा है। और पुरानी धारणा खतरनाक थी। लाखों लोग अपने घरों को छा.ेडकर चले गये। इसके कारण धर्म को जितना नुकसान पहुंचा, और किसी बात से नहीं पहुंचा। धर्म शब्द ही घबड़ानेवाला हो गया। धर्म में कोई उत्सुक हुआ, तो घर के लोग चिंतित हुए कि अब कुछ उपद्रव होगा। लाखों लोगों ने घर छोड़ दिया। उनके घरों पर क्या गुजरी, उनके पत्नी-बच्चे भूखे मरे, उनके

बाप, मां, बुढ़ापे में कैसे जीये, किसी ने कोई इतिहास न लिखा! लिखा जाना चाहिए। गहन दुख उससे पैदा हुआ होगा। लेकिन सदियों से ऐसा चला है। उसके कारण एक भय समा गया। लोग भीतर-भीतर डरने लगे। तो ऊपर-ऊपर पूजा भी करते हैं संन्यासी की, भीतर-भीतर डरते हैं। दूसरे का बेटा संन्यासी हो जाए, तो लोग सम्मान करने आते हैं। खुद का होने लगे, तो रस्सी लेते हैं। यह कैसी दुविधा है! महावीर भी किसी के बेटे थे और बुद्ध भी किसी के बेटे थे। जो पिता तुम्हारे संन्यास लेने से डर रहा है, वह पिता भी बुद्ध के चरणों में सिर झुका आयेगा और कभी न सोचेगा कि बुद्ध के पिता पर क्या गुजरी! यही गुजरी। इससे बहुत भयंकर गुजरी।
मैं तो संन्यास को ऐसा रूप दे रहा हूं कि उससे किसी को पीड़ा न हो। क्योंकि जिस संन्यास से पीड़ा हो वह भी क्या लेने योग्य है! जिससे कहीं दुख पैदा हो, उससे तुम्हें सुख पैदा न हो सकेगा। जिसके कारण तुम दूसरों को दुख दो, उसके कारण तुम्हें सुख पैदा कैसे हो सकता है?
तो मैं तो कहूंगाः तुम संन्यस्त बनो, घर जाओ, जैसी तुमने सेवा कभी न की
थी वैसी मां-बाप की सेवा करो, क्योंकि फिर संन्यासी का दायित्व भी तुम्हारे ऊपर है। दो-चार दिन वे नाराज होंगे, चीखेंगे-चिल्लायेंगे, लेकिन तुम अपने व्यवहार से सिद्ध कर दो कि वे बिल्कुल गलत चीख-चिल्ला रहे हैं। बस, तुम्हारा व्यवहार ही पर्याप्त प्रमाण होगा। और यह मत सोचो कि वे पढ़े- लिखे नहीं हैं, हिंदी भी नहीं समझते हैं। न समझें, प्रेम तो समझेंगे! इतना गैर पढ़ा-लिखा कौन है, जो प्रेम न समझे? ढाई आखर प्रेम के काफी हैं। तुम उनके पैर दबाओगे, यह तो समझेंगे! और वे कुछ भी कहें, तुम शांति से सुनोगे, यह तो समझेंगे! और एक बात भर तुम्हारे व्यवहार से जाहिर हो जानी चाहिए कि तुमने जो संन्यास लिया है, वह संसार-विरोधी नहीं है। घर-विरोधी नहीं है। हम घर को मंदिर के खिलाफ नहीं लड़ा रहे हैं। हमारी चेष्टा है कि घर मंदिर हो जाए। तो कितनी देर लगेगी उनको समझाने में? जल्दी ही वे समझ जाएंगे। और अगर तुम्हारे व्यवहार ने उन्हें प्रमाण दिया, तो दुबारा जब तुम आओगे, वे भी संन्यास लेने आ जाएंगे। रस्सी मैं उनको दूंगा। उनको क्यों... । माला यानी रस्सी! फांसी है। तो उनको समझाना कि अगर रस्सी ही लेनी है, तो माला ले लो। जब मरने की ही तैयारी हो गयी, तो फिर संन्यास में ही मर जाओ। संन्यास की मृत्यु महाजीवन का द्वार है।
मगर ध्यान रखना, अपने हृदय पर। तुम अगर स्वयं भयभीत हो और मां-बाप का सिर्फ बहाना खोज रहे हो, तो फिर अभी संन्यास मत लेना। फिर अभी आओ, ध्यान करो, जाओ। धीरे-धीरे रस को गहन होने दो। सदा अपने ही हृदय के ठीक से निरीक्षण और निदान के बाद कुछ करना। दूसरे के कारण आंदोलित और परेशान होने की कोई भी जरूरत नहीं है।
रजकण को बिना चूमे कंचन है मिला किसको?
रजकण को बिना चूमे कंचन है मिला किसको?
कांटों में बिना घूमे मधुवन है मिला किसको?
तू देख के कुछ मुश्किल क्यों हार गया हिम्मत,
देहरी को बिना लांघे आंगन है मिला किसको?
थोड़ी कठिनाइयां स्वाभाविक हैं। वे चुनौतियां हैं। वे न होतीं, तो बुरा होता। वे हैं, तो अच्छा है। उन्हीं चुनौतियों से पार होकर तो जीवन उठता है। राह पर जो पत्थर पड़े हैं, वे ही तो सीढ़ियां बन जाते हैं।
पत्थरों से घबड़ाओ मत, सीढ़ियां बनाओ। अच्छा है कि मां-बाप ने एक चुनौती दी। अब इस चुनौती को समझो। इस चुनौती के योग्य अपने को बनाओ। इस चुनौती को स्वीकार करो। एक मौका मिला। एक संघर्ष हुआ। इस संघर्ष से कैसे ऊपर जाओ, इसका मार्ग खोजो। इसका कैसे अतिक्रमण हो, इसकी विधि खोजो। इससे घबड़ाकर बैठ मत जाओ। इससे घबड़ाकर डर मत जाओ। अन्यथा तुम सदा के लिए मुर्दा रह जाओगे। जीवन चुनौतियों को स्वीकार करने से आगे बढ़ता है। धन्यभागी हैं वे जिन्हें बहुत चुनौतियां मिलीं। क्योंकि उन्हीं के जीवन में निखार आया। रजकण को बिना चूमे कंचन है मिला किसको?
कांटों में बिना घूमे मधुवन है मिला किसको?
तू देख के कुछ मुश्किल क्यों हार गया हिम्मत,

देहरी को बिना लांघे आंगन है मिला किसको?

तीसरा प्रश्नः मा योग लक्ष्मी ने कहा है कि ओशो ने कुछ पुतलियां, कठपुतलियां बनायी हैं खेल के लिए। तो क्या हम लोग ओशो के हाथ की कठपुतली भर हैं?

हो तो नहीं; हो जाओ तो तुम्हारा बड़ा सौभाग्य!
कठपुतली होना कुछ आसान बात नहीं। कठपुतली होना इस संसार में सबसे कठिन बात है। वही तो कृष्ण का पूरा उपदेश है अर्जुन को, कठपुतली हो जा। अगर गीता को एक शब्द में रखना हो, तो इतना ही कहा जा सकता है--कठपुतली
हो जा। तू सिर्फ निमित्त मात्र हो जा। उपकरण मात्र। करने दे उसे जो कर रहा है। खींचने दे उसे धागे, तू नाच। उसकी मर्जी जैसा नचाये! आंगन टेढ़ा हो, तो ठीक। ठीक हो, तो ठीक, न ठीक हो तो ठीक। जैसी उसकी मर्जी। तू बीच में बाधा मत डाल। शरणागति का और अर्थ क्या है? समर्पण का और अर्थ क्या है? समर्पण का इतना ही अर्थ है कि अब मैं अपनी मर्जी छोड़ता।
लक्ष्मी ने ठीक ही कहा है। लेकिन होना आसान नहीं है। आमतौर से लोग सोचते हैं, कठपुतली होने में क्या रखा है, बिल्कुल आसान बात है। सबसे कठिन बात अहंकार का समर्पण है! अपने को हटाकर रख देना! अपने हृदय के मंदिर में किसी और को विराजमान कर लेना! अपने अतिरिक्त! सिंहासन से स्वयं उतर जाना और किसी और को बैठ जाने देना सिंहासन पर! बहुत कठिन है, इसीलिए तो प्रेम कठिन है। क्योंकि प्रेम में हम किसी को अपने सिंहासन पर विराजमान करते हैं। फिर प्रार्थना तो और भी कठिन है। क्योंकि प्रेम में तो हम आधा-अधूरा विराजमान करते हैं, प्रार्थना में पूरा विराजमान करते हैं। प्रार्थना में हम पूरे मिट जाते हैं।
कठपुतली हो जाओ, फिर कुछ करने को नहीं बचता। आखिरी करना कर लिया। कठिन
से कठिन बात जीत ली। छू लिया गौरीशंकर का शिखर। ऐसे हो जाओ जैसे नहीं हो। जहां ले जाये प्रभु, चलो। अपनी मर्जी अलग हटा लो। जैसे कोई नदी में बहता हो। देखा है, जिंदा आदमी कभी-कभी डूब जाता है, मुर्दा कभी नहीं डूबता। मुर्दे को कभी डूबते देखा, मुर्दा कुछ जानता है, जो जिंदा को पता नहीं। कोई तरकीब। वह तरकीब यह है कि मुर्दा "नहीं" है। जिंदा डूब जाता है, मुर्दा ऊपर आ जाता है जल पर। क्योंकि मुर्दा अब है ही नहीं, डूबे कौन? डुबाओगे कैसे? जो है ही नहीं, उसे डुबाओगे कैसे?
वास्तविक धर्म का जन्म, जब तुम मुर्दे की भांति हो जाते हो। तुम कह देते हो परमात्मा को, अब मैं अपनी तरफ से नहीं चलता। डुबाये तू, तो हम डूबने को राजी। उबारे तू, तो हम उबरने को राजी। जो तू करवाये, उस पर हमारी कोई टिप्पणी नहीं, कोई टीका नहीं; कोई शिकायत नहीं। हम तेरे हाथ की कठपुतली हैं। जब तक नचाये, नाचेंगे; जब नाच बंद कर देगा, तो रुक जाएंगे। खुशी जिसने खोजी वह धन लेके लौटा
हंसी जिसने खोजी चमन लेके लौटा
मगर प्यार को खोजने जो चला वह
न तन लेके लौटा, न मन लेके लौटा
लौटा ही नहीं। डूब ही गया। सब खोकर लौटा। अपने को भी खोकर लौटा। समर्पण प्रेम की आखिरी ऊंचाई है। वह प्रेम का सार-निचोड़ है। समर्पण का अर्थ है, मैं नहीं, तू।
वह न लेन-देन, हानि-लाभ नहीं है
भिन्न है अभिन्न, गुणा-भाग नहीं है
क्या दिया है, क्या लिया है, यह तनिक न सोच
प्यार सिर्फ प्यार है, हिसाब नहीं है
लेकिन जिस मित्र ने पूछा है, उसे थोड़ी अड़चन हुई होगी। कठपुतली! कठपुतली तो हम निंदा के स्वर में उपयोग करते हैं। जब हम किसी आदमी की निंदा करते हैं, तो कहते हैं, बस कठपुतली है वह। किसी के हाथों की कठपुतली। उसका कोई अपना निजत्व थोड़े ही है। उसका कोई अपना बल थोड़े ही है। कठपुतली शब्द का तो हम उपयोग करते हैं, जब हम किसी को अत्यंत दीन, दुर्बल, नपुंसक

कहना चाहते हैं। बलशाली को थोड़े ही हम कठपुतली कहते हैं। फिर "निर्बल के बल राम" का क्या अर्थ है? निर्बल के बल राम! इसका तो अर्थ इतना ही हुआ कि जो निर्बल होने को राजी है, बस परमात्मा उसी का है। जो अपने को मिटाने को राजी है, वहीं तो जगह खाली होती है, परमात्मा का प्रवेश होता है। गुरु के पास उसी परम समर्पण के क, ख, ग का शिक्षण है।
गुरजिएफ का एक शिष्य था--बेनेट। उसने संस्मरण लिखा है कि गुरजिएफ ने मुझे कहा कि जाकर दरवाजे के पास बगीचे में एक गड्ढा खोद। और जब तक मैं न रोकूं, रुकना मत। खोदते ही जाना। दुपहर हो गयी। बेनेट खोदता रहा, खोदता रहा पसीने से लथपथ। सांझ हो गयी। गुरजिएफ का कोई पता नहीं। सोचने लगा भूल गया, या किसी काम में उलझ गया, अब मैं बंद करूं कि नहीं, अब तो हाथ-पैर लड़खड़ाने लगे। अब तो कुदाली उठे ही न। और तब गुरजिएफ आया। सूरज ढल रहा था और उसने कहा कि ठीक है, अब इस गड्ढे को पूर दे। स्वभावतः मन में सवाल उठेगा, यह क्या मूढ़तापूर्ण बात हुई! दिनभर गड्ढा खुदवाया, टूट गया शरीर पूरा, टूट-टूट भर गयी शरीर में और अब कहते हो, पूर दे।
लेकिन बेनेट ने गड्ढे को पूरना शुरू कर दिया। बड़ा थका-मांदा है। मिट्टी उठा-उठाकर भरना, जब सूरज बिल्कुल ढलता था, तब वह गड्ढे को पूर कर निपट पाया; गुरजिएफ आया और उसने कहा कि ऐसा कर, वह सामने जो वृक्ष है, उसको काटना है पूरे चांद की रात है, काटने में लग जा। दिनभर का थका हुआ, अब वृक्ष काटना है! न भोजन मिला, न विश्राम मिला! और बेनेट वृक्ष को काटने चला। वह वृक्ष पर चढ़ा काट रहा है, एक ऐसा क्षण आया कि हाथ से उसकी कुल्हाड़ी गिर गयी। इतना सुस्त हो गया है। और ऐसे एक वृक्ष की शाखा का सहारा लेकर नींद लग गयी। बस में ही न रहा।
गुरजिएफ आया, उसने नीचे से खड़े होकर बेनेट को सोये हुए देखा, खुद चढ़ा, हिलाया, बेनेट ने आंख खोली और बेनेट ने अपने संस्मरणों में लिखा है, ऐसी शुद्ध आंख मैंने कभी जानी ही न थी कि मेरे पास हो सकती है। ऐसी निर्मल आंख! आंख खुलते ही सारा जगत और मालूम पड़ा। जैसे मैं बिल्कुल नया-नया आया हूं, अभी-अभी अवतरित हुआ हूं। जैसे अभी मेरा जन्म हुआ। इतनी ताजगी, और ऐसा निर्भार चित्त!
पूछा बाद में उसने गुरजिएफ से कि ऐसा कैसे हुआ, तो उसने कहा, अगर तू एक बार भी इनकार करता, या तर्क उठाता, तो यह घड़ी न आती। जानता था, यह बिल्कुल स्वाभाविक था, दिनभर गड्ढा खोदने के बाद फिर मिट्टी भरने के लिए कहना बिल्कुल व्यर्थ बात है, कठोर बात है, सारहीन है। कोई भी पूछेगा, इसका मतलब क्या है? गड्ढा किसलिए खुदवाया? गुरजिएफ ने कहा इतना अगर तू पूछ लेता, तो यह घड़ी न आती। फिर तूने गड्ढा भी भर दिया। फिर तू बिल्कुल थका-मांदा था, फिर भी तूने इनकार न किया, मैंने कहा लकड़ी काट, तो तूने यह न कहा, यह अब न हो सकेगा, कल सुबह करूंगा। यह तेरा जो सहज समर्पण था, यह तुझे उस जगह ले गया; जहां तक तेरी सामर्थ्य थी तूने किया, और जहां तेरी समार्थ्य समाप्त हो गयी, वहीं तेरा अहंकार भी समाप्त हो गया। वहीं तुझे गहरी तंद्रा आ गयी। ऐसी तंद्रा समाधि की पहली झलक है। ऐसी तंद्रा में पहली दफा आदमी को पता चलता है कि समाधि जब पूरी होगी तो कैसी होगी। एक बूंद टपकती है अमृत की, सागर का फिर हम अनुमान लगा सकते हैं।
तो मैं तुमसे कहता हूंः हो तो नहीं कठपुतली, हो जाओ तो धन्यभागी हो! जिसने पूछा है, उसने तो बेचैनी से पूछा है। उसने तो पूछा है, इसका क्या मतलब? क्या हम कठपुतली हैं? हो सको, तो तुम्हारे जीवन में ऐसा द्वार खुल सकता है, जिसे तुम अहंकार के कारण कभी भी न खोल पाओगे। अहंकार के हटते ही खुलता है। अहंकार ताले की तरह पड़ा है। अहंकार गिरा कि ताला गिरा। द्वार खुलता है। तुमने जितना अपने को जाना है, उससे तुम बहुत बड़े हो। उससे तुम बहुत ज्यादा हो। तुम्हें अपना कुछ भी पता नहीं है कि तुम कौन हो। जिस छोटे से टुकड़े को तुमने समझ रखा है यह मैं हूं, वह तो कुछ भी नहीं है। वह तो एक लहर है। सागर का तो तुम्हें स्मरण ही नहीं रहा है। जब तुम इस लहर की पकड़ से छूट जाओगे, तो सागर में उतरोगे। समर्पण है सागर में उतरने का सूत्र।

आखिरी प्रश्नः सभी प्रश्न गिर गये। उत्तर की भूख नहीं, प्यास नहीं, चाह नहीं। तो फिर आगे क्या करें? सुख-प्राप्ति, महासुख-प्राप्ति की एक झलक मिल जाए तो आगे क्या होता है?

आगे के ख्याल से मन पैदा होता है। आगे के विचार से मन पैदा होता है। वर्तमान में जीने से मन समाप्त हो जाता है। आगे का विचार उठते ही मन फिर निर्मित होने लगता है। फिर चित्त तना। फिर चित्त की यात्रा शुरू हुई।
मत पूछो आगे क्या होता है! आगे की चिंता भी क्या! जो इस घड़ी हो रहा है, उसे भोगो। जो इस घड़ी मिल रहा है, उसे पीओ। जो इस घड़ी तुम्हारे पास खड़ा है, उसे मत चूको। जो नदी सामने बह रही है, झुको, डूबो, आगे क्या होता है! आगे का ख्याल आते ही, जो मौजूद है, उससे आंख बंद हो जाती है। और चिंतन, चिंता, विचार, कल्पना, स्वप्न, चल पड़े तुम फिर। फिर चले दूर सत्य से। फिर छूटे वर्तमान से। फिर टूटे सत्ता से। सत्ता से टूटने का उपाय है, आगे का विचार। अगर थोड़ा-सा सुख मिल रहा है, उसे भोगो। तुम इस क्षण अगर सुखी रहे, तो अगला क्षण इससे ज्यादा सुखी होगा, यह निश्चित है। क्योंकि तुम सुखी होने की कला को थोड़ा और ज्यादा सीख चुके होओगे। अगर इस क्षण तुम आनंदित हो, तो अगला क्षण ज्यादा आनंदित होगा, यह निश्चित है। क्योंकि अगला क्षण आयेगा कहां से? तुम्हारे भीतर से ही जन्मेगा। तुम्हारे आनंद में ही सराबोर जन्मेगा। अगला क्षण भी तुमसे ही निकलेगा। अगर यह फूल गुलाब के पौधे पर सुंदर है, तो अगला फूल और भी सुंदर होगा। पौधा तब तक और भी अनुभवी हो गया। और जी लिया थोड़ी देर। जीवन को और समझ गया। जीवन को और थोड़ा परिचित हो गया। तुम्हारा अगला क्षण तुमसे निकलेगा। तुम अगर अभी दुखी हो, अगला क्षण
और भी ज्यादा दुखी होगा। तुम अगर अभी परेशान हो, अगले क्षण में परेशानी और बढ़ जायेगी, क्योंकि एक क्षण की परेशानी तुम और जोड़ लोगे। तुम्हारी परेशानी का संग्रह बड़ा होता जाएगा। इस क्षण की चिंता करो, बस उतना काफी है। इस क्षण के पार मत जाओ। क्षण में जीओ। क्षण को जीओ। क्षण से दूसरा क्षण अपने-आप निकलता है, तुम्हें उसकी चिंता, उसका विचार, उसका आयोजन करने की कोई जरूरत नहीं है। और अगर तुमने आयोजन किया, तो तुम यहां चूक जाओगे। चूक से निकलेगा अगला क्षण, महाचूक होगी फिर। अगले क्षण तुम फिर और अगले क्षण के लिए सोचोगे, तुम ठहरोगे कहां? तुम घर कहां बनाओगे? आज तुम कल के लिए सोचोगे, कल जब आयेगा तो आज की भांति आयेगा, फिर तुम कल के लिए सोचोगे। कल कभी आया?
जिसे तुम आज कह रहे हो, यह भी तो कल कल था। इसके लिए तुम कल सोच रहे थे,
आज यह आ गया है, अब तुम फिर आगे के लिए सोच रहे हो। यह तो दृष्टि की बड़ी गहरी भ्रांति है। इससे जो सामने होता है, वह तो दिखता ही नहीं और जो नहीं होता है, उसका हम विचार करते रहते हैं।
पूछा है, सुख-प्राप्ति, महासुख-प्राप्ति की एक झलक मिल जाए तो आगे क्या होता है? स्वभावतः एक झलक के बाद दूसरी झलक! बड़ी झलक!! मगर तुम कृपा करो, उसका विचार मत करो, अन्यथा यही झलक चूक जाएगी। तुम महा झलक का हिसाब करते रहोगे, तुम महा झलक का सपना देखते रहोगे, और यहां बही जाती जिंदगी, हाथ से निकला जाता समय। यह झलक चूकी, तो आगे की झलक भी उपलब्ध होनेवाली नहीं। इस झलक को पी लो, आत्मसात कर लो, पचा जाओ। फिर और बड़ी झलक होगी।
तुम जितने योग्य होते जाते हो, उतना ही परमात्मा तुम्हें देता चला जाता है। तुम्हारी योग्यता से ज्यादा तुम्हें कभी नहीं दिया जा सकता। तुम्हारी योग्यता से ज्यादा दे दिया जाए, तो तुम झेल न सकोगे। तुम्हारे पात्र से ज्यादा सागर तुममें कैसे ढाला जा सकता है! तुम्हारे पात्र की सीमा ही तुम्हारी प्राप्ति की सीमा रहेगी। चाहे वर्षा कितनी ही हो, तुम्हारा कटोरा जितना है, उससे ज्यादा उसमें कभी न भर सकेगा। कटोरे को बड़ा होने दो। और उसके बड़े होने का एक ही ढंग है, इस क्षण को ऐसे गहन-भाव से जीओ, इस क्षण को ऐसे प्रीति-भाव से जीओ, इस क्षण को ऐसे नाचते-उत्सव से जीओ कि उस उत्सव में तुम फैल जाओ, तुम्हारा पात्र बड़ा हो जाए।
ख्याल किया तुमने, दुख में आदमी सिकुड़ता है। सुख में आदमी फैलता है। दुख में आदमी छोटा हो जाता है। आनंद में आदमी फूल जाता है। तुमने ख्याल

किया, जब तुम दुखी होते, तो तुम चाहते हो न कोई मिले, न कोई बात करे, तुम द्वार-दरवाजे बंद करके बिस्तर में पड़ जाना चाहते हो। जब तुम बहुत दुखी होते हो, तो तुम सोचते हो, अब तो मर ही जाएं। मर ही जाएं का मतलब, अब तो कब्र में छिप जाएं।
लेकिन जब तुम आनंदित होते हो, तो तुम द्वार-दरवाजे खोलकर बाहर आते हो सूरज की किरणों में, हवाओं के संसार में। जब तुम आनंदित होते हो, तो तुम किसी मित्र के पास जाते हो, किसी प्रियजन के पास बैठते हो, कोई गीत गुनगुनाते हो, कोई वीणा बजाते हो। जब तुम आनंदित होते हो, तो तुम बंटते हो। तब तुम चाहते हो कोई तुम्हें लूटे। तब तुम लुटने को तरसते हो। तब तुम चाहते हो कोई आये और साझीदार हो जाए। इतना तुम्हें मिल रहा है कि अकेले तुम क्या करोगे? तुम उसे किसी को बांटना चाहते हो। आनंदित क्षण में आदमी फैलता है--पात्र बड़ा होता है। दुख के क्षण में सिकुड़ता है।
तो अगर यह क्षण तुमने आनंद में न जीया, तो अगले क्षण तुम और भी सिकुड़ जाओगे। आनंद का अभ्यास जारी रखो। आनंद को भोगते रहो, ताकि तुम और आनंद को पाने के योग्य होते रहो। आनंद को जितना भोगोगे, उतना ही तुम पाओगे और ज्यादा आनंद पास आने लगा।
नृत्यकार नाचता रहता है, तो और बड़े नृत्य की संभावना जनमती रहती है। गीतकार गुनगुनाता रहता है, तो और गीत पैदा होते रहते हैं। जीवन तो जीने से बढ़ता है। बैठे-बैठे खोपड़ी में मत खोये रहो। आओ, फैलो। बड़ा जीवन है। बड़ा अवसर है। यहां एक-एक क्षण को बहुमूल्य बनाया जा सकता है। एक-एक क्षण हीरा हो सकता है।
लेकिन अधिक लोग सोये हैं। भविष्य की योजना कर रहे हैं। सोच रहे हैं,
कल क्या होगा? कल को भूलो, आज काफी है। आज पर्याप्त है। इतना मैं तुमसे जरूर कहता हूं, यह आश्वासन देता हूं कि अगर तुमने कल को भूला तो कल आयेगा, आज से भी सुंदर फूल लायेगा। आज से भी सुंदर गीत लायेगा। क्योंकि आज तुम्हारे हृदय का पात्र बड़ा हो, तो इसी पात्र में तो कल की वर्षा भरेगी। "सभी प्रश्न गिर गये। उत्तर की भूख नहीं, प्यास नहीं, चाह नहीं। तो फिर आगे क्या करें?" करने की भी कोई जरूरत है? होना काफी नहीं! यह करने का पागलपन क्यों है?
इन दो शब्दों को ठीक से समझ लो--करना और होना।
क्या करें? क्या होना काफी नहीं है! कमरे में तुम बैठे हो, उसी अखबार
को फिर पढ़ने लगते हो जिसको सुबह से तीन दफे पढ़ चुके। क्योंकि करें क्या? रेडियो खोल लेते हो, वही खबरें जो अखबार में पढ़ चुके रेडियो से सुनने लगते हो। करें क्या? कुछ न कुछ करने में तुम अपने को व्यस्त रखते हो। क्या थोड़ी देर के लिए "होना" उचित नहीं है? कुछ न करो। अखबार को हटा दो, रेडियो बंद कर दो, शांत बैठ जाओ, कुछ देर को बस हो रहो। यही तो ध्यान है।
होना ध्यान है। करना मन है।
मन तुम्हें बैठने नहीं देता। मन कहता है, क्या कर रहे बैठे-बैठे? कुछ करो, उठो। होटल ही चलो। सिनेमा देख आओ। कोई, खोज लो कोई शिकार, उसकी खोपड़ी खाओ। कुछ करो। खाली बैठे-बैठे क्या कर रहे हो? समय गंवा रहे हो। तो महावीर ने बारह साल खाली-खाली जंगल में खड़े समय गंवाया! कुछ भी किया नहीं। बारह साल में कोई भी एक ऐसी बात नहीं कि जिसको कोई अखबार छापने लायक समझे। न कोई "इलेक्शन" लड़े, कोई चुनाव लड़े। बोले ही नहीं। खड़े ही रहे। चुपचाप रहे। कृत्य जैसा कुछ भी बारह साल में नहीं घटा। महावीर के बारह साल ऐसे रिक्त हैं जैसे कि किसी और के जीवन में खोजने मुश्किल हैं। उसी रिक्तता में महावीर की महिमा है। बारह साल कुछ भी न किया। बैठे तो बैठे, खड़े तो खड़े; लेटे तो लेटे। ऐसे हो गये, जैसे व्यस्तता का जो रोग आदमी पर सवार होता है, वह बिल्कुल समाप्त हो गया।
थोड़ा सोचो इस बात को, थोड़ा इसका ध्यान करो, थोड़ा इसको भीतर रसने दो, उतरने दो, बैठने दो--बैठे हैं तो बैठे हैं; न कुछ करने को है, न कुछ सोचने को है। तब तुम हो। उस होने के क्षण में ही आत्मा से परिचय होता है। आत्मा यानी होना। शुद्ध होना। मात्र होना। और तभी गहन शांति की वर्षा होती है और परम आनंद के वाद्य बजते हैं। अमृत के बादल बरसते हैं। होने में। करना संसार

है, होना धर्म है। करना बाहर है, होना भीतर। जैसे ही तुमने कुछ किया कि गये बाहर।
मैं लोगों से कहता हूं, ध्यान कोई क्रिया नहीं है, ध्यान है अक्रिया। उनसे मैं कहता हूं, बस बैठ जाओ, कुछ न करो। वे कहते हैं, कुछ तो बता दें, आलंबन तो चाहिए। कुछ आधार--राम-राम जपें? माला फेरें? जिन लोगों ने माला फेरना और राम नाम जपना निकाला है, उन लोगों ने कारण से ही निकाला है। ये वे लोग हैं, जो बिना किये नहीं रह सकते। दुकान न करेंगे, तो माला जपेंगे। अखबार न पढ़ेंगे, तो गीता पढ़ेंगे। लेकिन पढ़ेंगे! थोड़ी देर को खाली न छूटेंगे कि कुछ भी न हो; मिट जाए सारा कृत्य का संसार, खो जाए दूर, सिर्फ होना रह जाए! श्वास चले, हृदय धड़के, बोध रहे, बस काफी है। वे पूछते हैं, कुछ आलंबन दे दो। आलंबन का मतलब है, कुछ करने के लिए, कुछ तो दे दो, माला ही सही! उसको ही, माला के गुरिये सरकाते रहेंगे। कुछ करने को तो रहेगा!
तुमने कभी ख्याल नहीं किया कि माला का गुरिया कोई आदमी सरकाता है, तुम सोचते हो बड़ा धार्मिक आदमी है। तुम्हारी धारणा है। अन्यथा बड़ा मूढ़तापूर्ण कृत्य कर रहा है। माला के गुरिये सरका रहा है! लेकिन उससे एक तरह की राहत मिलती है, वह जो करने का पागलपन है, व्यस्त रहता है। कुछ तो कर रहे हैं! चलो माला की गिनती ही कर रहे हैं!
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन को नींद नहीं आती थी। उसके डाक्टर
ने कहा तुम ऐसा करो, भेड़ों की गिनती करो। ऐसा कई डाक्टर लोगों को समझाते हैं--कुछ भी गिनती करने में लग जाओ, माला फेरने जैसा काम है, कुछ भी गिनती करो; एक से सौ तक जाओ, फिर सौ से उल्टे लौटो--निन्यानबे, अट्ठानबे, सतानबे... ऐसा कुछ भी करते रहो। थोड़ी देर में थक मरोगे, ऊब जाओगे कि यह भी क्या करना! इसी ऊब में नींद आ जाएगी। ऊब में नींद बड़ी आसानी से आती है। नींद के लिए ऊब बड़ी उपयोगी है।
मुल्ला ने कहा, यह ठीक! उसने गिनती की। एक बज गया रात का, दो बज गया, तीन
बज गया, लाखों करोड़ों पर पहुंच गयी संख्या और चली जा रही है संख्या, और वह इतना उत्तेजित हो गया कि नींद कहां! फिर उसने सोचा, यह तो पूरी रात ऐसे ही बीत जाएगी, और इतनी करोड़ों भेड़ें अब इनका करना क्या? तो उसने सबका ऊन काटना शुरू कर दिया। अब ऊन के ढेर पर ढेर लग गये। उसने कहा, अब करो क्या? कंबल बनवा डाले। फिर कोई पांच बजे के करीब जोर से चिल्लायाः बचाओ, बचाओ! तो पत्नी घबड़ाकर उठी, उसने कहा हुआ क्या? उसने कहा, मर जाएंगे; इतने कंबल खरीदेगा कौन?
व्यस्त आदमी विचारों में ही व्यस्त हो जाता है। स्वभावतः उसकी घबड़ाहट, इतने कंबल इकट्ठे हो गये होंगे! होते ही जा रहे, होते ही जा रहे, एक राशि आकाश छूने लगी होगी, तो घबड़ाया कि मर गये, दिवाला निकल जाएगा। बिकेंगे कहां? खरीदेगा कौन? इतने तो आदमी भी नहीं हैं। माला जो फेर रहा है, वह भी व्यस्त हो रहा है। राम-राम, राम-राम जप रहा है, वह भी व्यस्त हो रहा है।
ध्यान का अर्थ है, करने से होने पर रूपांतरण। करने को छोड़ना और होने में डूबना। "पूछते हो आगे क्या करें?" जरूरत नहीं कुछ करने की। प्रश्न सब गिर गये! पक्का भरोसा है! उत्तर की कोई भूख नहीं, चाह नहीं, पक्का भरोसा है! अगर कुछ बचे हों तो पूछ लेना, अन्यथा पीछे सतायेंगे वे। अन्यथा उठ-उठकर खड़े होंगे। जल्दी मत करो। खोज लो ठीक से। अगर सच में ही खतम हो गये, तो शुभ घड़ी आ गयी। सौभाग्य की घड़ी आ गयी। संबोधि का क्षण करीब आने लगा। अब करने की फिकर छोड़ो, अब तो जितनी देर होने में बीत जाए उतना ही शुभ है। अब तो जब मौका मिले, तब बैठे रहो।
ठीक है, जब जरूरत हो, दुकान चलानी है, बच्चे पालने हैं, उतना कर दो। लेकिन वह भी ऐसे करो कि भीतर तो न करना ही बना रहे। वह भी ऐसे करो जैसे जल में कमलवत। कर लिया, चल पड़े। कर आये, हो गया। मगर इसको बोझ मत बनाओ, चिंता मत बनाओ। जब मौका मिले, जहां मौका मिले--कार में बैठे हो, बस में बैठे हो, ट्रेन में बैठे हो--खाली रहो। भीतर कुछ भी न करो।
इस मंदिर को अब खाली होने दो। जन्मों-जन्मों तक भरा रखा, भरने से सिर्फ कूड़ा-कर्कट इकट्ठा हुआ। अब सिर्फ खाली रखो, उस खालीपन में ही

शुद्धता है। उस खालीपन को ही महावीर ने शुद्धि कहा है। न शुभ से भरो, न अशुभ से भरो, अब तो सब हटा दो। खाली करो। शुद्ध आकाश रह जाए। निर्मल आकाश रह जाए भीतर, जिसमें कृत्य की कोई रेखा भी न हो। कोरा कागज रह जाए। यही ध्यान है।
और इसी ध्यान से रोज-रोज अमृत घना होगा। इसी ध्यान से रोज-रोज समाधि सघन होगी। इसी ध्यान से रोज-रोज परमात्मा पास, और पास आता चला जाएगा। एक दिन तुम अचानक पाओगे, तुम तो नहीं रहे, परमात्मा ही शेष रहा।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग दो
सातवां प्रवचन

ध्यान का दीप जला लो

सीह—गय—वसह—मिय—पसु, मारूद—सुरूवहि—मंदरिदुं—मणी।
खिदि—उरगंवरसरिसा, परम—पय—विमग्गया साहू।। 96।।
बुद्धे परिनिव्वुडे चरे, गाम गए नगरे व संजए।
संतिमग्गं च बूहए, समयं गोयम! मा पमायए।। 97।।
ण हु जिणे अज्ज दिस्सई, बहुमए दिस्सई मग्गदेसिए।
संपइ नेयाउए पहे, समयं गोयम! मा पमायए।। 98।।
भावो हि पढमलिंगं, ण दव्वलिंगं च जाण परम तथं।
भावो कारणभूदो, गुणदोसाणं जिणा विंति।। 99।।
भावविसुद्धिणिमित्तं, बाहिरगंथस्स कीरए चाओ।
बाहिरचाओ विहलो, अब्भंतरगंथजुत्तस्स।। 100।।
देहादिसंगहिओ, माणकसाएहिं सयलपरिचत्तो।
अप्पा अप्पमि रओ, स भावलिंगी हवे साहू।। 101।।

आज के सूत्र अत्यंत मौलिक और क्रांतिकारी हैं। बड़ा साहस चाहिए ऐसे सूत्रों को अभिव्यक्ति देने के लिए। महावीर ही ऐसे सूत्र दे सकते हैं। पहला सूत्र हैः "सिंह-सा पराक्रमी, हाथी-सा स्वाभिमानी, वृषभ-सा भद्र, मृग-सा सरल, पशु-सा निरीह, वायु-सा निसंग, सूर्य-सा तेजस्वी, सागर-सा गंभीर, मेरु-सा निश्चल, चंद्रमा-सा शीतल, मणि-सा कांतिवान, पृथ्वी-सा सहिष्णु, सर्प-सा अनियत-आश्रयी तथा आकाश-सा निरालंब साधु ही परमपद मोक्ष की यात्रा पर है।"
एक-एक प्रतीक को ठीक से समझ लेना जरूरी है।
"सिंह-सा पराक्रमी... ।"
महावीर का मार्ग आत्यंतिक संकल्प का मार्ग है। महावीर का मार्ग समर्पण का नहीं, संकल्प का है। महावीर के मार्ग पर कोई सहारा नहीं खोजना है। सब सहारे छोड़ देने हैं। बेसहारा हो जाना है। सहारे में भय है। बेसहारा हो जाने में अभय है।
महावीर का मार्ग भक्ति के ठीक विपरीत है। दोनों मार्ग से लोग पहुंच जाते हैं। दोनों मार्ग सही हैं। लेकिन महावीर के मार्ग को ठीक से समझना हो, तो भक्ति के विपरीत रखकर ही समझ पाओगे। महावीर के मार्ग पर न भगवान की कोई जगह है, न भक्ति की कोई जगह है। न पूजा की, न अर्चना की, न प्रार्थना की। शरणागति का कोई स्थान नहीं है। महावीर ने कहा है, अशरण हो जाओ। कोई शरण मत गहो।
"सिंह-सा पराक्रमी... ।" सिंह अकेला विचरता है। सिंहों के नहीं लेहड़े, साधु चलें न जमात। सिंह की भीड़ नहीं होती। अकेला विचरता है। सिंह किसी संगठन का हिस्सा नहीं होता। सिंह किसी संप्रदाय में नहीं बंधता। सिंह मुक्त विचरता है। न कोई शास्त्र, न कोई संप्रदाय, न कोई परंपरा, तब कहीं सिंह-जैसा चित्त पैदा होता है। अपने ही पैरों पर, अपने ही बल, और अकेला। नितांत अकेला। महावीर बारह वर्षों तक सिंह की तरह विचरे। अकेले। न किसी से बोलते, न किसी को संगी-साथी बनाते, न किसी के संगी-साथी होते। वनों में, पहाड़ों में, महावीर की वह मौन गर्जना सिंहनाद थी।
"सिंह की तरह पराक्रमी... ।" सब कुछ लगा देना होगा। दांव पर अगर कुछ भी लगाने से बचा लिया, तो चूक जाओगे। थोड़ा-सा सोचा कि बचा लें, थोड़ा अधूरा दांव पर लगाया, तो चूक जाओगे। महावीर के मार्ग पर तो जुआरी का काम है, दुकानदार का नहीं। और दुर्भाग्य कि सब दुकानदार महावीर के मार्ग पर हैं। महावीर का धर्म ही दुकानदार का हो गया। महावीर का माननेवाला दुकानदारी के सिवाय और कुछ करता ही नहीं। यह भी अकारण नहीं घटता।
इसके पीछे भी बड़े मनोवैज्ञानिक कारण हैं। विपरीत का आकर्षण। दुकानदार सदा ही जुआरी से प्रभावित होता है। जो हिम्मत वह नहीं कर सकता, जुआरी कर लेता है। तो भला खुद जुआरी न बने, लेकिन जुआरी के प्रति मन में

प्रशंसा होती है। कमजोर हमेशा बहादुर से प्रभावित होता है। खुद बहादुर नहीं है, इसीलिए प्रभावित होता है। जो अपने में नहीं है, वह दूसरे में दिखायी पड़ता है। तो कमजोर हमेशा बहादुर की पूजा करता है। विपरीत का बड़ा आकर्षण है। स्वभावतः निर्धन आदमी धनी की तरफ आंखें उठाकर देखता है। और झोपड़ेवालों के मन में और सपनों में महलों के चित्र उभरते हैं। बुद्धिहीन बुद्धिमान की पूजा करता है। कुरूप सुंदर की पूजा करता है। पुरुष स्त्री में आकर्षित होता है, स्त्री पुरुष में आकर्षित होती है। यह सब विपरीत का आकर्षण है। जो मैं नहीं हूं, वह आकर्षक लगता है। जो मैं हूं, उसमें कोई आकर्षण नहीं रह जाता।
महावीर तो सिंह की तरह पराक्रमी थे। लेकिन कमजोर, काहिल, भय से भरे भीरु लोग पीछे हो लिये। उन्होंने महावीर के मार्ग को भ्रष्ट कर दिया। महावीर का मार्ग ही वैश्यों, वणिकों का हो गया। वह मूलतः क्षत्रिय का मार्ग है।
अहिंसक होने के लिए क्षत्रिय होना बुनियादी शर्त है। जो अभी हिंसक ही नहीं हुआ, वह अहिंसक कैसे हो सकेगा? जिसने अभी तलवार नहीं उठायी, तलवार रखेगा कैसे? रख तो वही सकोगे, जो उठाया हो। जिसने किसी के ऊपर आक्रमण ही नहीं किया, वह आक्रमण का त्याग कैसे करेगा? तो देखो जैनों के चौबीस तीर्थंकर ही क्षत्रिय-पुत्र हैं। और सब जैन वणिक हैं।
उनके चौबीस ही तीर्थंकर क्षत्रिय हैं, तो संयोग नहीं हो सकता। एकाध क्षत्रिय होता, संयोग मान लेते। चौबीस-के-चौबीस क्षत्रिय हैं, तो अहिंसक होने के लिए क्षत्रिय होना जैसे बुनियादी शर्त है। हम वही त्याग सकते हैं, जो हमारे पास हो। भिखमंगा अगर कहे कि मैंने त्याग दिया सब, तो क्या अर्थ है? था क्या, जो त्याग दिया? त्याग के पहले होना चाहिए।
क्षत्रिय घरों में पैदा हुए महावीर, ऋषभ, नेमि। हिंसा में उनका पोषण हुआ। हिंसा की कला ही सीखी। हिंसा के अतिरिक्त और कुछ जानते नहीं थे। उसी हिंसा के प्रगाढ़ अनुभव से अहिंसा का जन्म हुआ। हिंसा की आग में जले और पाया कि हिंसा करने योग्य नहीं। हिंसा में रहकर पाया कि हिंसा त्याज्य है। और तब एक अहिंसा का जन्म हुआ।
इसलिए मैं कहता हूं गांधी और महावीर की अहिंसा में फर्क है। गांधी की अहिंसा बनिये की अहिंसा है। महावीर की अहिंसा क्षत्रिय की अहिंसा है। और वहीं बुनियादी भेद है। महावीर की अहिंसा कमजोरी से पैदा नहीं हुई, गांधी की अहिंसा कमजोरी से पैदा हुई। कोई और उपाय न था गांधी को। अहिंसक होने में कमजोरी छिपा लेने की सुविधा मिल गई। गांधी की अहिंसा स्त्रैण है। स्त्रियां सदा से ही यही करती रही हैं। अगर पुरुष को गुस्सा आता है, तो पत्नी को पीट देता है। पत्नी को गुस्सा आता है, तो खुद को पीट लेती है। यह तो देखा? यही तो पूरा का पूरा सार-सूत्र है गांधीवाद का। खुद को ही मार लेती है। पुरुष को गुस्सा आता है तो किसी की हत्या कर देता है। स्त्री को गुस्सा आता है तो आत्महत्या करने का विचार करने लगती है। अपने को ही नष्ट कर देने का ख्याल आता है कमजोर को। दूसरे को नष्ट करना तो कठिन। अपने को नष्ट कर लेना आसान है। और अपने को नष्ट करना इस ढंग से किया जा सकता है कि उसमें भी साहस मालूम पड़े।
महावीर की अहिंसा तो सिंह के पराक्रम से पैदा हुई है। क्षत्रिय-पुत्र थे, राजकुमार थे। और कुछ सीखा ही न था, एक ही कुशलता थी। तो जब उन्होंने त्यागी हिंसा, तो कुछ भी छिपाने को नहीं त्याग था। हिंसा गिर गयी। जानकर गिर गयी। व्यर्थ हो गयी, इसलिए गिर गयी। हिंसा को ठीक से पहचाना और सिवाय जहर के कुछ भी न पाया।
महावीर की अहिंसा में हिंसा का अभाव है। गांधी की अहिंसा में हिंसा
का छिपाव है। ऊपर से देखने पर दोनों एक से मालूम पड़ते हैं। लेकिन दोनों में बड़े मौलिक भेद हैं।
"सिंह-सा पराक्रमी... ।" अब सिंह तो हिंसक है, ख्याल किया? सिंह तो क्षत्रिय है। लेकिन पराक्रम सीखना हो तो सिंह से ही सीखना पड़े। अगर पराक्रम सीखना हो, तो क्षत्रिय से ही सीखना पड़े। और महावीर कहते हैं,

अहिंसा तो और भी बड़ा पराक्रम है। हिंसा से भी बड़ा पराक्रम है अहिंसा। तुम अहिंसा को अपनी कायरता को छिपाने के लिए आड़ मत बना लेना।
अकसर लोग अहिंसक होते हैं और उनका भीतरी तर्क यह होता है कि न हम किसी
को मारेंगे, न कोई हमें मारेगा। वस्तुतः इरादा तो यह होता है, कोई हमें न मारे। तो वे कहते हैं, हम तो अहिंसक हैं। हम किसी को मारने में भरोसा नहीं करते। वे यह कह रहे हैं कि हम पर कृपा करना, मारना मत। हम तुम्हें नहीं मारते, तुम हमें मत मारना। हम तुम्हें जीने देते हैं, तुम हमें जीने दो। यह तो हिंसा से भी नीचे हुई बात। यह तो चालबाजी हुई। कूटनीति हुई, राजनीति हुई।
गांधी की अहिंसा राजनीति है। महावीर की अहिंसा धर्म का ज्वलंततम रूप है। महावीर यह नहीं कहते कि मुझे मत मारो। महावीर कहते हैं, मुझे मारना हो, तुम्हारी मौज। तुम्हारी नासमझी। लेकिन मैंने यह अनुभव किया है कि मारने में कुछ सार नहीं, इसलिए मैं नहीं मारता हूं। यह दुस्साहस है! अपने को असुरक्षा में छोड़ देने से बड़ा और कोई दुस्साहस नहीं।
"हाथी-सा स्वाभिमानी... ।" हाथी में एक स्वाभिमान है। इसीलिए तो हाथी सम्राटों के लिए प्रतीक बन गया। हाथी की सवारी श्रेष्ठतम सवारी बन गयी। लेकिन एक ख्याल रखना, हाथी में स्वाभिमान है, अहंकार नहीं। अपने बल पर भरोसा है, लेकिन अपने बल की कोई घोषणा नहीं। वहीं हाथी सिंह से भिन्न है। सिंह में अहंकार है।
बड़ी पुरानी प्रसिद्ध कथा है ईसप की कि एक सिंह जंगल में गया। उसने पूछा एक सियार से कि जंगल का राजा कौन? सियार ने कहा, आप हैं महानुभाव! आपके अतिरिक्त और कौन राजा है? आप महाराजा हैं, सम्राट हैं। लोमड़ी से पूछा। खरगोश से पूछा। चीते से पूछा। सबने कहा, आप ही सम्राट हैं; कैसी बात पूछते हैं?
फिर हाथी के पास आया। हाथी से पूछा कि इस जंगल का सम्राट कौन है? हाथी
ने अपनी सूंड में सिंह को फंसाया और कोई पचास फीट दूर फेंक दिया। सिंह नीचे गिरा, झाड़-झूड़कर धूल फिर वापिस आया और कहा कि अगर तुम्हें उत्तर मालूम नहीं, तो नाराज होने की क्या बात है!
लेकिन हाथी की कोई घोषणा नहीं है। सिंह की घोषणा है। हाथी चुपचाप है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जो लोग अपने अहंकार की घोषणा करते हैं, उनमें हीनभाव होता है। "इनफिरिआरिटी कांप्लेक्स" होती है। इसीलिए घोषणा करते हैं। जो व्यक्ति वस्तुतः अपने से तृप्त है, वह अपने अहंकार की घोषणा नहीं करता, घोषणा का प्रयोजन क्या है? किसके सामने सिद्ध करना है? सिद्ध तो तभी करना होता है जब भीतर लगता है कि हूं नहीं। तो प्रमाण जुटाने पड़ते हैं। सिद्ध करना पड़ता है। जब तुम्हें भीतर पता ही है तो तुम घोषणा नहीं करते। जिसका तुम्हें पता है, अनुभव है, उसकी तुम घोषणा नहीं करते।
कोई पुरुष अगर बीच बाजार में खड़ा होकर चिल्लाने लगे कि मैं पुरुष हूं
और प्रमाण दे सकता हूं, तो लोगों को संदेह हो जाएगा। इसके पुरुष होने में शंका है। पुरुष हो तो हो। घोषणा की कोई जरूरत नहीं है। किसे कहने जाना है? किसको समझाना है! कौन पूछ रहा है!
कहते हैं, लाओत्सू अपने एक मित्र के साथ एक पहाड़ से गुजर रहा था। सुबह हुई, सूरज ऊगा, पक्षियों के गीत गूंजने लगे--बड़ी सुहावनी सुबह थी, बड़ी प्यारी सुबह थी। मित्र ने कहा, बड़ी सुंदर सुबह है। लाओत्सू ने कहा, इनकार कौन कर रहा है? मित्र ने कहा, बड़ी सुहावनी सुबह है। लाओत्सू ने बड़े चौंककर देखा और कहा, इनकार कौन कर रहा है? कहने की जरूरत कहां है?
जो है, है। उसकी घोषणा की जरूरत नहीं। जो नहीं है, उसकी घोषणा करनी पड़ती है। शायद मित्र को संदेह रहा होगा! है या नहीं? उसी संदेह में पूछा है। शायद लाओत्सू भी हां भर दे, तो भरोसा आ जाए। हम दूसरों से पूछते फिरते हैं--मैं सुंदर हूं? मैं बुद्धिमान हूं? मैं त्यागी हूं? दूसरों से पूछते हो! तुम्हें खुद ही भरोसा नहीं। और हम दूसरों को समझाते हैं कि मैं त्यागी हूं। जब दूसरे को भरोसा आ जाता है, तो हमें भरोसा आता है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक मकान बेचना चाहता था। एक एजेंट को बुलाया। नदी
के किनारे एकांत में बना उसका मकान है। कभी-कभी गर्मी के दिनों में वहां

रुकता था। कहा, इसे बेच देना है। एजेंट ने विज्ञापन दिया पत्रों में। दूसरे दिन सुबह जब मुल्ला ने विज्ञापन पढ़ा, तो बड़ा चकित हो गया। सुंदर नदी का वर्णन था। उस दृश्य का जो मकान को घेरे हुए है। मकान की ऐसी महिमा का बखान था कि उसने कहा अरे, इसी मकान की तो मैं जीवनभर से तलाश कर रहा हूं! उसने फोन किया एजेंट को कि बेचना नहीं है। भूलकर नहीं बेचना है--एजेंट ने पूछा, इतनी जल्दी आप बदल गये? कल... कल ही तो आपने बेचने के लिए कहा था। बदलाहट का कारण क्या है? मुल्ला ने कहा, तुमने जो विज्ञापन दिया है, उसने मुझे भरोसा दिला दिया। इसी मकान की तो मैं जिंदगीभर से खोज कर रहा हूं। मुझे अब तक पता ही न था।
जब तक हम दूसरे से भरोसा न पा लें, तब तक हमें भरोसा नहीं आता। और ऐसा भरोसा दो कौड़ी का है, जो दूसरे के कारण मिलता है, हाथी को देखा? सिंह को देखा? सिंह में एक अकड़ है। प्रगट अकड़ है। चलता है तो, उठता है तो, बैठता है तो, घोषणा है। हाथी में कोई घोषणा नहीं है। इसीलिए तो कहते हैं, हाथी चलता जाता है, कुत्ते भौंकते रहते हैं। वह इनकार भी नहीं करता, कि तुम क्यों भौंक रहे हो? वह नाराज भी नहीं होता। वह जानता है, कुत्ते हैं, भौंकेंगे। चुपचाप अपनी मंथरगति से चलता है। महावीर कहते हैं, हाथी-सा स्वाभिमान। "वृषभ-सा भद्र... ।" बैल से ज्यादा भद्र कोई प्राणी नहीं। आस्कर वाइल्ड
ने कहीं लिखा है कि अगर बैलों को पता चल जाए कि उनकी शक्ति कितनी है, तो वे मनुष्य-जाति को उखाड़कर फेंक दें। लेकिन बैलों के बल पर ही मनुष्य-जाति फलती-फूलती रही है। इसीलिए तो हिंदू गाय की पूजा करते हैं। उसी से खेती है, उसी से दूध है, उसी से ईंधन है, उसी से खाद है। और वृषभ गाड़ियां खींचता, बोझढोता, कोल्हू चलाता। मनुष्य-जाति का पूरा का पूरा अब तक का इतिहास, सौ वर्ष पहले तक जब तक कि मशीनों का ईजाद न हुआ था और बैल की जगह यंत्रों ने न ली थी, मनुष्य ने जो भी सभ्यता खड़ी की थी, वह बैलों के कंधों पर है। अगर बैल को हटा लो, आदमी की सारी सभ्यता गिर जाती है। आज भी मनुष्य-जाति का बड़ा हिस्सा बैलों के सहारे ही जी रहा है।
"वृषभ-सा भद्र... ।" बैल की भद्रता बड़ी अदभुत है। उसने कोई बगावत नहीं
की कभी। उसने कोई क्रांति नहीं की। वह चुपचाप सेवा करता रहा है। उसका व्यवहार बड़ा सज्जनोचित है। महावीर कहते हैं, वृषभ-सा भद्र।
"मृग-सा सरल... ।" मृग की आंखों में कभी झांकना। वैसी सरल आंखें फिर और कहीं नहीं हैं। ऐसा भरोसा, ऐसी श्रद्धा जैसी मृग की आंखों में है, फिर और कहीं नहीं है। इसीलिए तो किसी अति सरल क्वांरी स्त्री की आंखों को हम मृगनयनी, मृगनयन, कहते हैं। जिसने कभी कुछ पाप नहीं जाना है। पाप की रेखा जिसकी आंख पर नहीं है। मृग जैसी कोरी, क्वांरी आंखें। भरोसा ही भरोसा। महावीर कहते हैं, मृग-सा सरल। ख्याल रखना, महावीर के प्रतीक सोचने जैसे हैं। पशुओं से प्रतीक ले रहे हैं महावीर। आदमी सरल भी होता है तो उसकी सरलता में जटिलता होती है। सरलता में भी पाखंड होता है। सरलता में भी दिखावा होता है, प्रदर्शन होता है। सरलता में भी दांव-पेंच होते हैं। तुम जिसको साधु कहते हो, उसको महावीर साधु नहीं कहेंगे। क्योंकि वह मृग-सा सरल नहीं है। उसकी सरलता बड़ी चेष्टित है, बड़ी अभ्यासजन्य है। साधी गयी है। महावीर कहते हैं, अनसाधी सरलता। मृग-सी सरलता का अर्थ है--अनसाधी। जिसका अभ्यास नहीं किया गया। स्वाभाविक। तुम अभ्यास कर सकते हो।
हम सबने बहुत-सी बातों के अभ्यास किये हैं।
राह पर कोई मिल जाता है तो मुस्कुराते हो, चाहे भीतर आंसू घुमड़ रहे हों, चाहे भीतर दुख के बादल घिरे हों। चाहे भीतर प्राणों को कौंधनेवाली पीड़ा चौंक रही हो। चाहे रोआं-रोआं रोना चाहता हो, लेकिन राह पर कोई मिल गया है, तो तुम मुस्कुराते हो। अभ्यास कर लिया। ओंठों का अभ्यास। मुस्कुराहट आती नहीं हृदय से। आयेगी कैसे? लेकिन ओंठों को फैला लेने का अभ्यास तुमने कर लिया है--वह कोई कठिन नहीं है। ओंठों को फैला लेने से भ्रांति पैदा होती है कि मुस्कुराये। यह कैसी मुस्कुराहट! जिसकी जड़ें हृदय तक न गयी हों, वह मुस्कुराहट झूठी है। आरोपित है। सरल मुस्कुराहट तो छोटे बच्चे में मिलेगी। जिसने अभी दांव-पेंच नहीं सीखे।

इसलिए महावीर कह रहे हैं कि दांव-पेंच भूलो तो सरल होओगे। और तुम्हारा जो साधु है, वह तुमसे भी ज्यादा दांव-पेंच में है। उसको सरल कहना असंभव है। और सरल ही साधु है। सीधा, छोटे बच्चे-जैसा। स्वभाव से जो जी रहा है, वही साधु है। अगर तुम अभ्यास करो, तो उपवास का अभ्यास हो सकता है। तुम अभ्यास करो, तो रात जागते रह सकते हो। तुम अभ्यास करो, तो धूप में खड़े रह सकते हो, कांटों पर सो सकते हो। लेकिन इसमें सरलता नहीं होगी। इस सब के पीछे अभ्यास होगा। तुम साधु नहीं बन रहे, तुम किसी सर्कस के योग्य बन रहे हो। साधु का लक्षण महावीर कहते हैं, मृग-सा सरल; सहज। इसी को कबीर ने कहा है--"साधो, सहज समाधि भली।"
एक तो समाधि है, जो चेष्टा कर-कर के लायी जाती है। और एक समाधि है जो सब चेष्टा छोड़ देने से आती है। हो रहो छोटे बच्चे की भांति। जो भीतर हो, वही बाहर हो। चाहे कुछ भी कीमत चुकानी पड़े। चाहे कोई भी मूल्य मांगा जाए, लेकिन जो भीतर हो, वही बाहर हो। भीतर और बाहर में भेद न हो, द्वंद्व न हो। बाहर भीतर की छाती पर न चढ़े। बाहर भीतर की ही खबर हो। बाहर भीतर का ही स्वर गूंजे। बाहर भीतर की ही तरंगें आयें। जो भीतर है, वही बाहर हो। तब तो कोई सरल होता है। लेकिन वैसी सरलता तथाकथित साधुओं में नहीं पायी जाती।
इधर मेरे अनुभव ये हैं--पश्चिम से लोग आते हैं, वे पूरब के लोगों से ज्यादा सरल हैं। होना नहीं चाहिए था ऐसा। क्योंकि पूरब के लोगों को ख्याल है, हम धार्मिक हैं। लेकिन पूरब का आदमी बड़ा जटिल है। पश्चिम से आदमी आता है तो वह सरल है। उसकी सरलता, पशुओं-जैसी सरल है। तुम्हारा साधु कहेगा, यह तो पशु-व्यवहार है। महावीर से पूछो, उसकी सरलता बच्चों-जैसी है। तुम पश्चिम के आदमी को सुविधा से लूट सकते हो। पूरब के आदमी को लूटना इतना आसान नहीं। इसके पहले कि तुम उसकी जेब काटो, उसका हाथ तुम्हारी जेब में पहुंच जाएगा।
पूरब का आदमी जो प्रश्न भी पूछता है, वे भी जटिल हैं। सरल नहीं हैं। उसके प्रश्नों में भी दांव-पेंच है, शास्त्र है, परंपरा है। सीधे हृदय के प्रश्न नहीं हैं।
पश्चिम से आदमी आता है, सीधे प्रश्न पूछता है--और पश्चिम भौतिकवादी है। और पूरब अध्यात्मवादी है--लेकिन इस अध्यात्मवाद ने सरल नहीं बनाया, इसने और जटिल बना दिया। जटिलता बड़े रूप ले लेती है। और ऐसे सूक्ष्म रूप ले लेती है कि तुम्हें पता भी न चले।
फिर ऐसा भी मेरा अनुभव है कि जब साधु मुझसे मिलने आते हैं, तो उनसे मैं सामान्य गृहस्थ को ज्यादा सरल पाता हूं। साधु तो बड़ा जटिल मालूम होता है। कभी-कभी साधु मुझसे मिलने आते हैं। तो पहले उनके श्रावक आते हैं, वे कहते हैं महाराज जी को बिठाइयेगा कहां? तुमको क्या फिकिर! आने दो उनको, मेरे और उनके बीच में निपटारा कर लेंगे। कहां बिठाना, कहां नहीं बिठाना! लेकिन वे कहते हैं कि नहीं, महाराज जी ने ही पुछवाया है; बैठेंगे कहां वह? अगर जैन-मुनि को हाथ जोड़कर नमस्कार भी करो, तो वह नमस्कार का उत्तर नहीं देता। क्योंकि वह हाथ जोड़ नहीं सकता किसी को। यह तो खूब साधुता हुई! यह तो खूब सरलता हुई! यह तो बड़ी जटिलता हो गयी। श्रावक को कैसे वह हाथ जोड़े? असंभव। एक महासम्मेलन हुआ, कोई तीन सौ साधु सारे देश से निमंत्रित थे। आयोजकों ने बड़ी मंच बनायी थी कि तीन सौ साधु साथ बैठ सकें। पर यह हो न सका। एक-एक को बैठकर ही प्रवचन देना पड़ा। क्योंकि कोई दूसरे के साथ बैठने को राजी न था। शंकराचार्य अपने सिंहासन पर ही बैठना चाहते थे। जब शंकराचार्य सिंहासन पर बैठें, तो दूसरे लोग हैं, वे भी नीचे नहीं बैठ सकते, उनको भी सिंहासन चाहिए। यह भी हो सकता है कि सबको साथ बिठा दो, लेकिन तब शंकराचार्य बैठने को राजी नहीं। क्योंकि उनको ऊपर ही होना चाहिए। वह किसी के नीचे बैठना तो दूर, किसी के साथ बैठने को भी राजी नहीं।
ये लोग, जो कहते हैं कि हम आत्मा हैं, शरीर नहीं! ये लोग, जो कहते हैं कि
हम आत्मा हैं, मन नहीं! ये नीचे नहीं बैठ सकते। ये साथ नहीं बैठ सकते। बड़ी जटिलता है!
महावीर के शब्द याद रखना--"मृग-सा सरल।"

"पशु-सा निरीह... ।" पशु में एक निरीहता है। एक हेल्पलेसनेस। असहाय अवस्था है पशु की। साधु ऐसा ही असहाय होगा इस विराट संसार के उपद्रव में। अपने किए कुछ होता नहीं मालूम पड़ता। जो करते हैं वही गलत हो जाता है। जीवन में इतनी-इतनी सूक्ष्म उलझाव की गलियां हैं कि भटक-भटक जाते हैं।
"पशु-सा निरीह... ।" महावीर ने पशु को बड़ा सम्मान दे दिया। ये सारे प्रतीक पशुओं से ले लिये। मैं भी तुमसे कहता हूं कि पशुओं से बहुत कुछ सीखने को है। और जो मनुष्य पशु जैसा सरल न हो सके, वह छोड़ दे ख्याल परमात्मा-जैसे सरल होने का। पशु-जैसी सरलता परमात्मा-जैसे सरल होने का पहला चरण है। पशु-जैसी सरलता, निरीहता, असहाय अवस्था बड़ी बहुमूल्य है। सभ्यता बड़ी खतरनाक है। सभ्यता ने मनुष्य को मारा। सभ्यता महारोग है। इससे तो पशु बेहतर। आमतौर से तो हम पशुओं का उपयोग तभी करते हैं, जब हमें आदमी की निंदा करनी होती है। महावीर उपयोग कर रहे हैं प्रशंसा के लिए।
थोड़ा फर्क समझना। अगर किसी आदमी की हमें निंदा करनी होती है, तो हम कहते हैं, क्या पशु-जैसा व्यवहार कर रहे हो, आदमी बनो! महावीर कह रहे हैं, क्या आदमी-जैसा व्यवहार कर रहे हो, पशु बनो। इसलिए मैं कहता हूं, ये सूत्र बड़े क्रांतिकारी हैं। और महावीर ठीक हैं, सौ प्रतिशत ठीक हैं। आदमी पशु से भी गया-बीता है। आदमी जैसा पशुता से भरा है, ऐसी पशुता से भरा कोई भी पशु नहीं है। सिंह भी शिकार करता है, हिंसा करता है, लेकिन भोजन के लिए। खिलवाड़ के लिए नहीं।
मैंने सुना है, एक कहानी है कि एक सिंह और एक खरगोश एक होटल में गये। खरगोश ने बैरा को आवाज दी और कहा कि नाश्ता ले आओ। बैरा ने पूछा कि और आपके साथी, यह क्या लेंगे? खरगोश ने कहा उनकी छोड़ो, अगर वह भूखे होते तो तुम सोचते हो मैं यहां बैठता! नाश्ता उन्होंने कर लिया होता; मगर वे भरे-पेट हैं।
सिंह भरा-पेट हो तो हमला नहीं करता। आदमी भरे-पेट हमला करता है। लोग जंगल में शिकार करने जाते हैं, उनसे पूछो, किसलिए? आखेट! खेल!! क्रीड़ा!!! मारने का खेल! सिंह की बात तो समझ में आ जाती है कि भूखा है, इसलिए हमला करता है। तुम भरे-पेट, किसलिए हमला करने जाते हो? तुम कहते हो, खेलने का मजा ले रहे हैं। कभी ख्याल किया, अगर शिकारी पर शेर हमला कर दे तो हम खेल नहीं कहते। और शिकारी बंदूकें लेकर सिंहों को छेदता रहे, तो हम खेल कहते हैं। और पतन की कोई सीमा होगी! शिकारी अपने घर में सिंहों के सिर लटका कर रखता है दिखाने को कि कितने सिंह उसने मार डाले हैं। खेल में! राजा-महाराजाओं के महलों में कभी-कभी मुझे जाने को मौका मिला--कभी कोई राजा-महाराजा निमंत्रित कर लिया, तो वे दिखाते हैं ले जाकर कि उनके पिता ने कितने सिंह मारे। मैं चकित होता हूं, सिंह तुम्हारे पिता को मार डालता तो कुछ बहुत आश्चर्य की बात न थी, लेकिन तुम्हारे पिता ने इतने सिंह किसलिए मारे? दिखावे के लिए। और मारे ऐसे साधनों से, जो सिंह के पास नहीं हैं। यह कोई खेल हुआ! बंदूक सिंह के हाथ में नहीं है, तलवार सिंह के हाथ में नहीं है; अगर मारना ही था, बहादुरी ही सिद्ध करनी थी, तो नंगे हाथ सिंह से लड़े होते। कम से कम उतनी सुविधा सिंह को भी तो दो! खेल का इतना तो नियम मानो, अगर यह खेल ही है--चलो खेल ही सही। तो एक आदमी नंगा खड़ा है, हाथ में लकड़ी भी नहीं, बचाव का कोई उपाय भी नहीं है, और तुम बंदूक लिए खड़े हो। और खेल खेल रहे हो! उसको भी तो इतनी ही सुविधा दो। फिर खेल हो! कम से कम खेल में दोनों के साथ पक्षपात तो नहीं होना चाहिए किसी के साथ। दोनों समतुल हों। और फिर बहादुरी बता रहे हो? बंदूकें लेकर, वृक्षों पर मचानें बांधकर, हजारों आदमियों का जत्था लेकर एक गरीब सिंह को घेर लिया और मार डाला।
एक महाराजा मुझे अपने महल में ले गये। मैंने उनसे कहा, तुम्हारे बाप पागल थे? क्या हुआ था? वह कहने लगे, पागल नहीं, बड़े शिकारी थे। मैंने कहा, मुझे तो लगता है पागल थे। इन गरीब सिंहों ने बिगाड़ा क्या था उनका? और उन्होंने किया क्या मारकर? यह प्रदर्शन लगा रखा है! और जो मारा जिस ढंग से, वह ढंग बिल्कुल गैर-जायज है। जाते, लड़ लेते, हाथ से खुली लड़ाई हो जाती, फिर एकाध सिंह को मार लाते, तो सोचते भी कि कोई बात हुई।

लेकिन, आदमी अन्याय करता है। और सोचता है अपने को कि आदमी! पशुओं के जगत में कोई अन्याय नहीं। अगर भूख लगती है, तो सिंह हमला करता है, क्योंकि वही प्रकृति ने उसे भोजन का उपाय दिया। लेकिन भूख न हो, तो हमला नहीं करता। तुम आदमी की जब निंदा करना चाहते हो, तो उससे कहते हो, पशु मत बनो। महावीर कह रहे हैं, पहले पशु तो बनो! परमात्मा बनना तो बहुत दूर है। तुम आदमी बन गये हो।
आदमी यानी झूठ। आदमी यानी पाखंड। सभ्यता यानी ऊपर से थोपा गया जबर्दस्ती का आरोपण। भीतर आग जल रही है, ऊपर फूल चिपकाये हुए हैं। भीतर जहर फैल रहा है, ऊपर अमृत की चर्चा हो रही है। भीतर कुछ है, बाहर कुछ। पशु कम से कम वही तो है--जो भीतर है, वही बाहर है। सिंह को तुम कितना ही छेदो, सिंह ही पाओगे। हर पर्त पर सिंह पाओगे। परिधि से लेकर केंद्र तक सिंह ही मिलेगा। आदमी को छेदो, हजार-हजार चीजें पाओगे। आदमी तुम कहीं न पाओगे। पर्त पर कुछ मिलेगा, थोड़े भीतर जाओ, कुछ और मिलेगा, और भीतर जाओ कुछ और मिलेगा। इसीलिए तो लोग अपने भीतर नहीं जाते। क्योंकि भीतर जाकर घबड़ाहट होती है कि यह मैं क्या हूं? लोग अपना दर्शन नहीं करना चाहते। लोग बातें करते हैं आत्मा की, आत्म-दर्शन की, कोई करना नहीं चाहता। क्योंकि अपना दर्शन करने का अर्थ होगा, यह सब जो विक्षिप्तता की अनेक-अनेक पर्ते हैं, यह सब उघड़ेंगी, इन्हें जानना पड़ेगा। इनसे गुजरकर ही तुम कहीं उस तक पहुंच पाओगे, जो तुम्हारा असली स्वरूप है। महावीर कहते हैं, "पशु-सा निरीह।" "वायु-सा निसंग... ।" हवा बहती रहती है। लेकिन निसंग। किसी से संग-साथ नहीं बांधती। फूलों के पास से गुजर जाती है, तो भी वहां ठिठककर रह नहीं जाती कि इतना सौरभ है, अब यहीं रुक जाएं! अब यहीं घर बना लें! शीतल नदियों से गुजरती है, वहां रुक नहीं जाती। सुंदर उपत्यकाओं में, लेकिन रुक नहीं जाती। असंग-भाव से बहती रहती है। अकेली ही रहती है, कोई संगी-साथी नहीं बनाती।
महावीर कहते हैं, निसंग-भाव साधु का आत्यंतिक लक्षण है। उसमें सब के प्रति मैत्री है, लेकिन मित्र वह किसी को भी बनाता नहीं। इसको ख्याल लेना। मैत्री-भाव को महावीर ने बहुत महिमा दी है। लेकिन कहा, मित्र मत बनाना। मित्र बनाने में अर्थ हुआ, रुक गये, नदी ठहर गयी, डबरा बन गयी। मैत्री रखना। सब के प्रति प्रेम-भाव रखना। लेकिन प्रेम को कहीं ठहराकर डबरा मत बनाना। हवा की तरह मुक्त रहना। कहीं बंधना मत। हवा को कौन बांध पाया? हवा कहां रुकती? यात्रा, अनंत यात्रा, और अकेली... ।
"सूर्य-सा तेजस्वी... ।" यह सिर्फ प्रतीक ही नहीं हैं। महावीर जैसे व्यक्ति जब किन्हीं शब्दों का उपयोग करते हैं, तो यूं ही नहीं करते। गहरे कारणों से करते हैं। जैसे ही व्यक्ति सरल होता है, निसंग होता है, भद्र होता है, निरीह होता है, अकेला होता है, वैसे ही उसके भीतर एक अगाध ज्योति जलने लगती है। क्योंकि कपट में बुझ जाती है ज्योति। कपट का धुआं तुम्हारी ज्योति को घेर लेता है। पाखंड में बुझ जाती है ज्योति। सरलता में धुआं बिखर जाता है, अलग हो जाता है, ज्योति जलने लगती है। सूर्य-सा तेजस्वी हो जाता है व्यक्ति। रक्ताभ! एक आभा उसे घेर लेती है।
"सागर-सा गंभीर... ।" विराट! जिसकी कोई सीमा नहीं, कोई कूल-किनारा नहीं। जिसकी थाह पानी मुश्किल। ऐसा गहरा, गंभीर।
"मेरु-सा निश्चल... ।" मेरु जैन-पुराणों का प्रतीक है। मेरु है वह पर्वत, जो विश्व का केंद्र है। और जिसके केंद्र पर सारी चीजें घूमती हैं। जैसे गाड़ी का चाक घूमता है कील पर। मेरु कील है सारे अस्तित्व की। और जैसा गाड़ी का चाक घूमता है, लेकिन कील थिर रहती है। चाक घूम ही इसीलिए सकता है कि कील थिर रहती है। अगर कील भी घूम जाए, गाड़ी गिर जाए। कील को नहीं घूमना चाहिए, तो ही चाक घूम सकता है। यह सारा संसार घूम रहा है, क्योंकि केंद्र में कोई चीज है जो थिर है। शाश्वत-रूप से थिर है। जैन-पुराण उसे मेरु कहते हैं। वह तो प्रतीक शब्द है।
लेकिन इसे वैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं कि कहीं कोई एक बिंदु तो होना ही चाहिए अस्तित्व में--अभी तक उसका कोई पता नहीं चला, कहां है। अभी तक हमें पूरे अस्तित्व का ही पता नहीं चला, तो केंद्र का कैसे पता चलेगा!

बड़ा विराट है अस्तित्व। अभी तो हम परिधि को भी नहीं छू पाये हैं, तो केंद्र को कैसे छू पायेंगे! लेकिन वैज्ञानिक इसको एक "हाइपोथीसिस", एक परिकल्पना की भांति स्वीकार करते हैं कि जरूर कोई एक कील तो होनी ही चाहिए, जिस पर सारा अस्तित्व घूम रहा है। चांद-तारे घूम रहे हैं, सूरज घूम रहा है, पृथ्वी घूम रही है, ग्रह-नक्षत्र घूम रहे हैं। यह इतना विराट चक्र घूम रहा है, तो कहीं कोई कील तो होनी ही चाहिए। अन्यथा बिना कील के तो चाक घूम नहीं सकता था। उस कील को जैन-शास्त्रों ने मेरु कहा है।
"मेरु-सा निश्चल... ।" और साधु वही है, जिसने अपने भीतर की कील को पा लिया। शरीर चलता है, साधु नहीं चलता। शरीर भोजन करता है, साधु नहीं करता। शरीर बोलता है, साधु अबोला है। शरीर जवान होता, बूढ़ा होता; साधु न जवान होता, न बूढ़ा होता। शरीर जन्मता है, मरता है; साधु का न कोई जन्म है, न कोई मृत्यु है। ऐसी प्रत्येक क्रिया के बीच, प्रत्येक गति के बीच, प्रत्येक भंवर के बीच, जिसने अपने भीतर के मेरु को पकड़ा हुआ है, वही साधु है। चलो राह पर, मगर एक बात ध्यान में रखकर चलना कि तुम न कभी चले हो, न चल सकते हो। चलता है चाक, तुम ठहरे हुए हो। कूटस्थ। सदा से ठहरे हुए हो। कभी हिले नहीं। तुम ही हिल जाओ, तो फिर शरीर चल न सकेगा। फिर तो डगमगा कर वहीं गिर जाएगा। विचार चलते हैं। विचार का वर्तुल घूमता रहता है--बवंडर की भांति। तुमने कभी धूल के बवंडर देखे? गर्मी के दिनों में जब उठते हैं--बड़ा बवंडर उठता है, बड़े धूल के बादल उठते हैं--आकाश तक उठ जाते हैं, छप्पर उड़ जाते मकानों के, टीन-टप्पर उड़ जाते हैं, कभी-कभी तो छोटे बच्चे तक उड़ गये हैं; लेकिन जब तूफान चला जाए, आंधी विदा हो जाए, धूल का बवंडर शांत हो जाए, तब तुम जरा जाकर देखना उस भूमि पर जहां बवंडर उठा था। तुम बड़े चकित होओगे, बीच में एक केंद्र है; उसका निशान छूट जाता है। चारों तरफ बवंडर के निशान छूट जाते हैं, लेकिन बीच में एक बिल्कुल शुद्ध जगह है, जहां कोई बवंडर न था। बवंडर की भी कील होती है। बिना कील के बवंडर भी नहीं हो सकता।
मनुष्य एक बवंडर है धूल का, मिट्टी का, लेकिन भीतर आत्मा की कील है। महावीर कहते हैं, "मेरु-सा निश्चल।" चलते समय याद रखना उसकी, जो कभी नहीं चला। भोजन करते वक्त याद रखना उसकी, जो कभी भोजन नहीं करता। भूख में याद रखना उसकी, जिसको कभी भूख नहीं लगती। दुख आये, याद रखना उसकी जिस पर कभी दुख नहीं पहुंचता--न दुख, न सुख; न प्रीति, न अप्रीति; न सफलता, न असफलता। सभी द्वंद्व चके पर हैं। कील बाहर है।
उस अतिक्रमण करनेवाली कील को पकड़ना। साधु की सारी चेष्टा यही है। ध्यान में, समाधि में यही तो चेष्टा है कि किसी तरह अपनी कील को पकड़ ले। कबीर का बड़ा प्रसिद्ध वचन है--"दो पाटन के बीच में साबित बचा न कोय।"
कबीर ने एक चक्की चलते देखी। कोई चक्की चला रही है औरत सुबह-सुबह, कबीर लौटते होंगे सुबह कहीं भ्रमण के बाद, देखा सब पिसा जा रहा है। लौटकर घर उन्होंने यह पद रचा। उनका बेटा कमाल बैठा सुन रहा था। उसने कहा कि रुको, ठीक कहते हो कि पाट के बीच कोई भी साबित नहीं बचा, लेकिन बीच में एक कील है, कभी उसका ख्याल किया? उसके सहारे जो गेहूं के दाने लग जाते हैं, वे नहीं पिसते।
चक्की चलायी तुमने कभी? अब चक्की खो गयी है, इसलिए शायद तुम्हें ख्याल
भी न हो, लेकिन बीच की कील के सहारे जो दाने लग जाते हैं, वे फिर पिस नहीं पाते। उनको फिर दुबारा डालना पड़ता है। जिसने कील का सहारा लिया, वह बच गया।
संसार दो पाटों की तरह पीस रहा है। लेकिन इसमें मेरु की कील भी है। शरीर और मन के दो पाट तुम्हें पीस रहे हैं, पर इसके बीच में आत्मा की कील भी है। उसे पकड़ो। उसे गहो। उसका साथ लो। उसके सहारे हो जाओ। फिर तुम्हें कोई भी पीस न पायेगा। जन्म आये, जन्म; मौत आये, मौत; दुख, सुख, जो आये, आये; तुम अछूते, पार, दूर बने रहोगे। तुम्हें कुछ भी छू न पायेगा।
"चंद्रमा-सा शीतल... ।" चंद्रमा में प्रकाश है, लेकिन सूरज के प्रकाश जैसा ताप नहीं। सूरज में प्रकाश तो है, बहुत है, लेकिन ताप भी है। जलाता भी है। सूरज के ज्यादा पास न जा सकोगे। झुलसा देगा। चंद्रमा में ताप नहीं है, सिर्फ प्रकाश है। चंद्रमा के प्रकाश में जैसे अमृत है। मनुष्य-जाति सदा

से चंद्रमा के पास जाने को आतुर रही है। छोटे बच्चे पैदा होते से ही चांद की तरफ हाथ बढ़ाने लगते हैं। "चंदामामा" को पकड़ने की चेष्टा शुरू हो जाती है। आदमी सदियों से चांद पर जाने की सोचता रहा, अब तो पहुंच भी गया। लेकिन यह असली चांद नहीं है। यह खोज किसी और चांद की है। तुम पहुंच गये बाहर के चांद पर, पहुंचना था भीतर के चांद पर।
महावीर कहते हैं, "चंद्रमा-सा शीतल।" साधु प्रकाशोज्ज्वल होता है, लेकिन उसका प्रकाश शीतल है। दग्ध नहीं करता। जलाता नहीं। मलहम की भांति है घावों पर। भरता है घाव को। प्राणों को तृप्त करता है। सूरज से तो तुम ऊब सकते हो कभी, चांद से कभी नहीं ऊब सकते। चांद आदमी को आंदोलित ही करता रहा है सदा-सदा। उसकी शीतलता बड़ी आकर्षक रही है। चांद की रात प्रेम की रात है। चांद की रात काव्य की रात है। चांद से सागर ही आंदोलित नहीं होता, मनुष्य के हृदय में भी बड़ी तरंगें उठती हैं, बड़े ज्वार आते हैं।
चांद-सा शीतल हो साधु। उसमें प्रकाश तो हो, देदीप्यमान हो, लेकिन प्रकाश किसी को झुलसाये न। उसके पास जाकर तुम्हारे घावों पर मलहम-पट्टी हो, चोट न लगे। तुम बड़े हैरान होओगे, जिनको साधारणतः तुम साधु कहते हो, वे सदा तुम्हारी निंदा कर रहे हैं। चोट करना ही उनका धंधा है। तुम्हारा अपमान करना ही उनका व्यवसाय है। तुम्हें गाली देना ही उनके प्रवचन हैं। तुम्हें चोर, पापी बताना ही उनका कुल उपदेश है। लेकिन इन घावों से तुम कोई जीवन-पथ पर थोड़े ही आ जाओगे। इनसे एक ही परिणाम होता है कि तुम आत्मनिंदा से भर जाते हो। तुम अपने ही प्रति विरोध से भर जाते हो। तुम्हारे भीतर "गिल्ट", अपराध भाव पैदा होता है।
और जिस आदमी के जीवन में अपराध-भाव पैदा हो गया, वह आदमी नर्क में जीने लगता है। क्योंकि वह जो करता है, वही गलत मालूम होता है। पत्नी को प्रेम करो, तो पाप। बेटे को प्रेम करो, तो पाप। सुंदर मकान बनाओ, तो पाप। एक बगिया बनाओ, तो पाप। अच्छे कपड़े पहनकर निकल जाओ, तो पाप। भोजन में स्वाद लो, तो पाप। तो आदमी को जीने दोगे, कि नहीं जीने दोगे। हर चीज पाप! यह चंद्रमा की शीतलता न हुई। यह तो बड़ी जलानेवाली आग हो गयी।
साधुओं के पास जाकर--जिन्हें तुम साधु कहते हो--तुम प्रसन्नचित्त नहीं लौट पाओगे। तुम अप्रसन्नचित्त, खिन्नमना होकर लौटोगे। जैसे तुम्हारे रोग ही खूब-खूब बढ़ा-बढ़ाकर दिखा देना उनका काम है।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अब तक धर्म के नाम पर लोगों ने बड़ा अत्याचार किया है, अनाचार किया है। लोगों को अपराधी बना दिया है। तुम जो करो उसी में भूल है। जब सभी करने में भूल है, तो स्वभावतः तुममें एक निंदा पैदा होती है कि यह क्या जीवन हुआ! तो मैं गर्हित हूं, कुत्सित हूं, नारकीय हूं! तुम्हारे जीवन में उदासी छा जाती है।
महावीर कहते हैं, "चंद्रमा-सा शीतल।" तुम्हारे पास घाव हैं, माना; तुम बीमार हो, माना; लेकिन बीमार की निंदा थोड़े ही करनी है। चिकित्सक के पास जाओ तो बीमार का इलाज करना है, निंदा थोड़ी करनी है। जो चिकित्सक निंदा करने लगे, तुम टी. बी. की बीमारी लेकर गये, वह टी. बी. को गालियां देने लगे और तुमको गालियां देने लगे कि तुमने टी. बी. पैदा क्यों की, छोड़ो इसको, त्याग करो इसका! छोड़ना तो तुम भी चाहते हो, लेकिन छोड़ो कैसे? यही तो पता नहीं है। तुमने जानकर थोड़े ही पकड़ा है। अनजाने पकड़ा है। अब किसी को बुखार चढ़ा है और तुम कहो कि छोड़ो बुखार! बुखारवाला क्या कहेगा? वह कहेगा, महानुभाव, छोड़ना तो मैं भी चाहता हूं, लेकिन बुखार छोड़े तब न! कोई मैं बुखार में थोड़े ही रहना चाहता हूं; लेकिन मुझे पता नहीं कि मैं क्या करूं, कुछ सहायता करें, औषधि लायें।
साधु औषधि है। उसके पास जाकर शीतलता मिले, उसके पास जाकर आश्वासन मिले, अपराध का भाव नहीं। उसके पास जाकर भरोसा मिले, हताशा नहीं। उसके पास जाकर तुम्हारे जीवन का सूर्योदय हो; तुम्हें लगे कि माना कि बहुत गलतियां हैं, कोई फिकिर नहीं, गलतियों से बड़ा मेरे भीतर छिपा हुआ खजाना है। गलतियां मैंने की हैं, कोई हर्जा नहीं, भूल-चूक सबसे होती है, लेकिन मेरे भीतर छिपा हुआ परमात्मा है। साधु के पास जाकर तुम्हारा भविष्य प्रगाढ़ हो, प्रखर हो, उज्ज्वल हो, साफ-साफ दिखायी पड़े; साधु के पास जाकर तुम्हें अपने

भविष्य का सपना मिले, आश्वासन मिले, बल मिले, हिम्मत मिले, आशा बंधे कि हो सकता है, मुझमें भी हो सकता है। कितना ही बुरा हूं तो भी, हो सकता है। कितने ही दूर चला गया हूं, तो भी वापस लौटने का उपाय है। साधु के पास जाकर पापी को अपने संतत्व का ख्याल आये। अभी तो जिनको तुम साधु कहते हो, उनके पास अगर संत भी जाए, तो उसको भी अपने पाप का ख्याल!
"चंद्रमा-सा शीतल; मणि-सा कांतिवान... ।" कांतिवान। कांति बड़ी मनमोहक आह्लादकारी वर्षा का नाम है। साधु के पास तुम्हारे ऊपर कुछ बरसने लगता है। बहुत आहिस्ता-आहिस्ता। पदचाप भी नहीं होती। कहीं कोई आवाज भी नहीं होती। साधु के प्राण तुम्हें घेरने लगते हैं। साधु की आभा तुम्हें भी घेरने लगती है। तुम्हारी आंखें ठगी रह जाती हैं। तुम एकटक साधु से बंधे रह जाते हो। जैसे किसी मणि को देखकर तुम सम्मोहित हो जाओ; फिर कहीं और देखने का मन न हो; मणि की तरफ ही आंखें लगी रहें; उसी तरफ दर्शन की सारी धारा मुड़ जाए।
"पृथ्वी-सा सहिष्णु... ।" कुछ भी घटे, साधु की सहिष्णुता नहीं टूटती।
कुछ भी हो जाए, साधु डगमगाता नहीं। तुम उसे सुख में, दुख में समान पाओगे।
तुम उसे सफलता, विफलता में समान पाओगे, सम्मान-अपमान में समान पाओगे।
"सर्प-सा अनियत-आश्रयी... ।" सर्प अपना घर नहीं बनाता। अनियत-आश्रयी।
जहां मिल गयी जगह, वहीं सो लेता है। जहां मिल गयी जगह, वहीं विश्राम कर लेता है। अपना घर नहीं बनाता। यह बड़ी बारीक बात है। इससे केवल इतना ही प्रयोजन नहीं है कि कोई घर में न रहे, इससे प्रयोजन यह है कि कोई सुरक्षा के घर न बनाये, कोई बैंक बैलेंस पर बहुत ज्यादा भरोसा न करे। वह सब छिन जाएगा। कोई मिट्टी के घरों में बहुत ज्यादा अपने प्राण न डाले, क्योंकि वे सब मिट जाएंगे। मुक्त रहे। घरों में हो, तो भी घरों का न हो। दुकानों पर हो, तो भी दुकानों का न हो। बाजार में खड़ा रहे, तो भी बाजार के बाहर रहे। याद बनी ही रहे कि यह जगह घर बनाने की नहीं। घर तो परमात्मा है। यहां तो हम परदेस में हैं। यहां तो यात्रा है। यहां तो अगर कभी थक जाते हैं, तो रुकना है, पड़ाव पर; लेकिन पड़ाव मंजिल नहीं है।
"आकाश-सा निरावलंब... ।" और कोई सहारा न खोजे। इतना निरावलंब हो जैसा आकाश है। कोई आधार नहीं आकाश का, कोई बुनियाद नहीं, कोई खंभे नहीं, जिन पर सधा हो। बस है। आकाश-जैसा हो जाए।
महावीर दिगंबर रहे, नग्न रहे। वह आकाश-जैसी चर्या थी। दिगंबर का अर्थ होता है, आकाश को ही जिसने अपना वस्त्र बना लिया। दिगंबर का मतलब सिर्फ नग्न नहीं होता। नग्नता तो बड़ी आसान है। कोई भी कपड़े छोड़ दे तो नग्न हो सकता है। लेकिन जो आकाश को अपना वस्त्र बना ले, वह है दिगंबर। वह नग्न तो होगा, लेकिन नग्नता में सिर्फ नग्नता नहीं है, कुछ और बड़ी घटना घटी है। पूरा आकाश ही उसने अपना घर बना लिया, अपने वस्त्र बना लिया। अब अलग से वस्त्रों की कोई जरूरत नहीं रही। अब उसने अपने को प्रगट कर दिया। जैसा है वैसा प्रगट कर दिया। नग्न, तो नग्न।
ऐसा साधु परमपद मोक्ष की यात्रा पर है।
सीह गय-वसह-मिय-पसु, मारूद-सुरूवहि-मंदरिदुं-मणी।
खिदि-उरगंवरसरिसा, परम-पय-विमग्गया साहू।।
परमपद की यात्रा पर ऐसा व्यक्ति चल पाता है। बड़ी कठिनाइयां हैं रास्ते में। और उन कठिनाइयों को जीतने के लिए तुम्हें बड़े गुण निर्मित करने होंगे।
जवानी की अंधेरी रात है जुल्मत का तूफां है
मेरी राहों से नूरे-माहो-अंजुम तक कुरेजां है
खुदा सोया है ऐ हरमन महशर बदामा है
मगर मैं अपनी मंजिल की तरफ बढ़ता ही जाता हूं
चांद-तारे खो गये हैं; परमात्मा का पता नहीं--कहां सो गया है; शैतान जागा हुआ है, राह पर बड़ा गहरा अंधेरा है--
खुदा सोया है ऐ हरमन महशर बदामा है
मगर मैं अपनी मंजिल की तरफ बढ़ता ही जाता हूं
गमो-हिर्मा युरुश है मसाइब की घटाएं हैं

जुनूं की फितनाखेजी हुस्न की खूनी अदाएं हैं
बड़ी पुरजोर आंधी है बड़ी काफिर बलाएं हैं
मगर मैं अपनी मंजिल की तरफ बढ़ता ही जाता हूं
बड़े आकर्षण हैं जगत के। जवानी का पागलपन है, हुस्न की बड़ी खींच है, सौंदर्य का बुलावा है।
बड़ी पुरजोर आंधी है बड़ी काफिर बलाएं हैं
मगर मैं अपनी मंजिल की तरफ बढ़ता ही जाता हूं
अफक पर जिंदगी के लश्करे-जुल्मत का डेरा है
हवादिस के कयामतखेज तूफानों ने घेरा है
जहां तक देख सकता हूं अंधेरा ही अंधेरा है
मगर मैं अपनी मंजिल की तरफ बढ़ता ही जाता हूं
तलातुमखेज दरिया आग के मैदान हाइल हैं
गरजती आंधियां बिखरे हुए तूफान हाइल हैं
तबाही के फरिश्ते जब्र के शैतान हाइल हैं
मगर मैं अपनी मंजिल की तरफ बढ़ता ही जाता हूं
संकल्प और दिशा का बोध हो तो अंधेरा तुम्हें तोड़ेगा नहीं। अंधेरा ही तुम्हें मौका देगा अपने स्वयं के प्रकाश को खोजने का। तो जवानी तुम्हें मिटायेगी नहीं, जवानी ही तुम्हारा संन्यास बनेगी। तो ऊर्जा तुम्हें भटकायेगी नहीं, ऊर्जा पर ही चढ़कर तुम परमऊर्जा के परमपद तक पहुंचोगे। जिस व्यक्ति को दिशा का बोध है, गंतव्य का थोड़ा ख्याल है, जिसने अपनी सुई में धागा पिरोया है, फिर अंधेरा कितना ही हो, वह अपनी मंजिल की तरफ बढ़ता ही जाता है। और कितनी ही बाधाएं हों, और कितने ही पत्थर राह पर पड़े हों, वह उनकी सीढ़ियां बना लेता है। वह हर स्थिति को चुनौती समझता है। और हर हार को नया शिक्षण समझता है। हर हार को जीत के लिए उपाय बना लेता है। और बढ़ता ही जाता है।
मगर मैं अपनी मंजिल की तरफ बढ़ता ही जाता हूं
यह जो महावीर ने गुण कहे, यह राह पर तुम्हें साथ देंगे। इन एक-एक गुण
को खूब ध्यानपूर्वक सोचना, विचारना, मनन करना, आत्मसात करना।
"प्रबुद्ध और उपशांत होकर संयतभाव से ग्राम और नगर में विचरण कर शांति को बढ़ा। शांति का मार्ग बढ़ा। हे गौतम, क्षणमात्र भी प्रमाद मत कर।" गौतम महावीर के प्रमुख शिष्य हैं। जैसे कृष्ण ने अर्जुन को संबोधित करके गीता कही है, ऐसे महावीर के सारे वचन गौतम को संबोधित करके हैं। गौतम के बहाने सभी के लिए कहे हैं।
बुद्धे परिनिव्वुडे चरे, गाम गए नगरे व संजए।
संतिमग्गं च बूहए, समयं गोयम! मा पमायए।।
"प्रबुद्ध और उपशांत होकर... ।" दो बातें ध्यान में रखनी जरूरी हैं। प्रबुद्धता और उपशांति। अगर तुम सिर्फ शांत हो जाओ और प्रबुद्ध न होओ, तो नींद में खो जाओगे। नींद में हम सभी शांत हो जाते हैं। लेकिन नींद कोई मंजिल नहीं है। अगर तुम प्रबुद्ध हो जाओ, बहुत जागे हुए हो जाओ, और शांत न हो सको, तो तुम पागल हो जाओगे। क्योंकि विश्राम तुम्हें मिल न सकेगा। जो आदमी सात दिन न सो पाये, वह विक्षिप्त होने लगेगा। कहते हैं, तीन सप्ताह जो आदमी न सोये, वह सुनिश्चित रूप से पागल हो जाएगा। विश्राम भी चाहिए।
तो महावीर का सूत्र हैः "प्रबुद्ध और उपशांत"; एक साथ। शांत भी बनो और जागे हुए भी बनो। यह दोनों साथ-साथ बढ़ें, अलग-अलग नहीं। अगर तुम प्रबुद्ध न हुए तो नींद में खो जाओगे। नींद अच्छी है, सुखद है, लेकिन सुख ही थोड़े गंतव्य है। परम आनंद न मिलेगा, मोक्ष न मिलेगा। मोक्ष तो जागे हुए के लिए है। लेकिन अगर तुम सिर्फ जागने ही लगो, और अनिद्रा को तुम समझ लो कि साधना है, और शांत होना खो जाए, तो तनाव से भर जाओगे। तनाव तुम्हें तोड़ देगा। दोनों का साथ-साथ जोड़ चाहिए। अनुपात दोनों का बराबर चाहिए। आधा-आधा। और सम्यक-रूप से साधना में जानेवाले व्यक्ति को निरंतर याद रखनी चाहिए कि इन दो में से किसी की भी मात्रा ज्यादा न हो पाये। अमृत भी बे-मात्रा हो, तो जहर हो जाता है। और जहर भी मात्रा में लिया जाए तो औषधि बन जाता है। तो एक तरफ शांति को बढ़ाओ और एक तरफ जागरण को।

"हे गौतम, शांति का मार्ग बढ़ा! हे गौतम, क्षणमात्र भी प्रमाद मत कर!" एक क्षण भी बेहोशी में मत गंवा।
जागो फिर एक बार।
प्यारे, जगाते हुए हारे सब तारे तुम्हें
अरुण-पंख तरुण-किरण
खड़ी खोल रही द्वार--
जागो फिर एक बार।
आंखें अलियों-सी
किस मधु की गलियों में फंसीं,
बंद कर पांखें
पी रहीं मधु मौन,
अथवा सोयीं कमल कोरकों में?
बंद हो रहा गुंजार--
जागो! जागो फिर एक बार।
प्यारे, जगाते हुए हारे सब तारे तुम्हें
जागो! जागो फिर एक बार।
महावीर के सभी वचन अंततः अप्रमाद पर पूरे होते हैं। वे कहते हैं--
जागो, फिर एक बार!
और इसके बाद का सूत्र तो बहुत सोचने जैसा है। सोचना।
"भविष्य में लोग कहेंगे, आज जिन दिखायी नहीं देते... ।"
भविष्य में लोग कहेंगे, महावीर खो गये।
"भविष्य में लोग कहेंगे, आज जिन दिखायी नहीं देते, और जो मार्गदर्शक हैं वे भी एकमत नहीं हैं। किंतु आज तुझे गौतम, न्यायपूर्ण मार्ग उपलब्ध है। गौतम, क्षणमात्र भी प्रमाद मत कर।"
महावीर कहते हैं, सदियों तक फिर लोग पूछेंगे, कहां पायें जिन-जैसा शास्ता? महावीर-जैसा सदगुरु? और अभी, मैं मौजूद हूं, महावीर कहते हैं गौतम से, तेरे सामने हूं गौतम, और अभी तू सो रहा है। फिर सदियों तक लोग रोयेंगे और पछतायेंगे। और तू सामने मौजूद है। मार्ग तेरी आंखों के सामने बिछा है। तू किस लिए बैठा है? उठ!
"भविष्य में लोग कहेंगे, आज जिन दिखायी नहीं देते... ।"
ण हु जिणे अज्ज दिस्सई, बहुमए दिस्सई मग्गदेसिए।
और महावीर कहते हैं कि और जो मार्गदर्शक होंगे, वे आपस में एकमत न होंगे। महावीर अपने ही मार्ग पर पड़ जानेवाली शाखाओं, विशाखाओं की बात कर रहे हैं। कह रहे हैं, अभी मार्ग बिल्कुल एकजुट है। पगडंडियां अलग-अलग टूटी नहीं। अभी मार्ग राजपथ-जैसा हैः तू चल! भविष्य में लोग पूछेंगे, जिन कहां हैं? कहां उनके दर्शन हों, जो मार्ग दिखायें? और जो मार्ग दिखानेवाले लोग होंगे रास्ते पर, कोई "तेरापंथी" होगा, कोई "दिगंबर" होगा, कोई "श्वेतांबर" होगा। पंथों में और छोटे पंथ होंगे और हजार मत होंगे। और बड़ा संघर्ष होगा। और अभी मार्ग सुस्पष्ट है, गौतम! तू क्यों बैठा है? उठ!
जागो फिर एक बार!
प्यारे, जगाते हुए हारे सब तारे तुम्हें।
महावीर, बुद्ध, कृष्ण, क्राइस्ट, कितने तारों ने तुम्हें जगाया है! प्यारे, जगाते हुए हारे सब तारे तुम्हें।
"न्यायपूर्ण मार्ग तुझे उपलब्ध है। गौतम, क्षणमात्र भी प्रमाद मत कर।"
फिर एक दिन तो लोग कहेंगे--
छुप गये वो साजे-हस्ती छेड़कर
अब तो बस आवाज ही आवाज है
एक दिन तो वीणा टूट जाएगी। इस जगत में कुछ भी सदा रहने को नहीं है। महावीर खो जाएंगे। बुद्ध खो जाएंगे।
छुप गये वो साजे-हस्ती छेड़कर
अब तो बस आवाज ही आवाज है

फिर आवाज गूंजती रहती है सदियों तक। लोग ऐसे बेसुध पड़े हैं कि जब संगीत बजता होता है, तब वे बैठे रहते हैं। जब वीणा खो जाती, सिर्फ प्रतिध्वनि रह जाती; जब शास्ता खो जाते और शास्त्र मात्र रह जाते, तब बड़ी माथापच्ची लोग करते हैं, बड़ा विवाद करते हैं। बड़ा चिंतन-मनन करते हैं। सारी महफिल जिसपे झूम उठी "म.जा.ज"
वो तो आवाजे-शिकस्ते-साज है
जब वीणा टूटती है, तब सोये हुए लोग चौंककर उठते हैं। म.जा.ज की ये पंक्तियां बड़ी प्यारी हैं--
सारी महफिल जिसपे झूम उठी "म.जा.ज"
वो तो आवाजे-शिकस्ते-साज है
वह तो वीणा के टूटने की आवाज है, पागलो! जिस पर सारी महफिल झूम उठी। जब महावीर मरते हैं, तब तुम जगते हो। जब महावीर जाते हैं, तब तुम चिल्लाते हो। और ऐसा सभी महावीरों के साथ हुआ। ऐसा ही आज भी होता है। आदमी में कोई बहुत फर्क नहीं पड़े। कपड़े बदल गये। मकानों के बनाने के ढंग बदल गये। रास्तों पर बैलगाड़ियों की जगह कारें हैं। आकाश में पक्षियों की जगह हवाई जहाज हैं। आदमी के पैर जमीन को नहीं छूते, चांद-तारों पर चलने लगे, पर आदमी में कोई फर्क नहीं पड़ा। वही होता रहेगा।
यही मैं तुमसे भी कहता हूंः भविष्य में लोग कहेंगे, आज जिन दिखायी नहीं देते; और जो मार्गदर्शक हैं, वे भी एकमत नहीं हैं; किंतु आज तुझे न्यायपूर्ण मार्ग उपलब्ध है। गौतम, क्षणमात्र भी प्रमाद न कर।
"वास्तव में भाव ही प्रथम या मुख्य लिंग है। द्रव्य लिंग परमार्थ नहीं है। क्योंकि भाव को ही जिनदेव गुण-दोषों का कारण कहते हैं।"
महावीर कहते हैं, भाव ही असली बात है। क्रिया तो उसकी छाया है। जो भाव में घट जाता है, वह क्रिया में आयेगा ही। उलटा जरूरी नहीं है कि सच हो। जो क्रिया में घटता है वह भाव में आये, यह जरूरी नहीं है। लेकिन जो भाव में आ गया, वह क्रिया में तो आयेगा ही, यह अनिवार्य है। इसलिए भाव मुख्य है, प्रथम है, आधारभूत है। लोग भाव की कम चिंता करते हैं, द्रव्य की ज्यादा चिंता करते हैं। समझो--
दान भाव में हो, तो चीजें तो तुम दे सकोगे लोगों को; लेकिन भाव में देने की क्षमता आ जाए, बांटने का सुख आ जाए, रस आ जाए बांटने में, तो चीजें तो गौण हैं, तुम दे दोगे। कोई प्रयोजन नहीं है दूसरी बात का। वह आ ही जाएगी। लेकिन यह हो सकता है कि तुम चीजें तो बांटते रहो और देने का भाव बिल्कुल न हो। तो चीजों के बांटने को ही तुम सब कुछ मत समझ लेना। वह गौण है। दोयम है।
जिसमें खुलूसे-फिक्र न हो, वह सुखन फिजूल
जिसमें न दिल हो शरीक उस लय में कुछ भी नहीं
तुम गीत तो गा सकते हो, लेकिन अगर दिल ही शरीक न हो, तो उस लय में कुछ भी नहीं।
जिसमें खुलूसे-फिक्र न हो, वह सुखन फिजूल
और जिसमें गहराई न हो चिंतन की, मनन की, ध्यान की, उस काव्य का कोई भी मूल्य नहीं। तुम काव्य तो रच सकते हो। वह तुकबंदी होगी; लेकिन जब तक प्राण न डालोगे, उसमें प्राण न होंगे। काव्य शब्दों से नहीं बनता, न मात्राओं से, न छंद के नियमों से, काव्य बनता है प्राणों को उंडेलने से। इसीलिए तो कभी- कभी जिन्होंने प्राण उंडेल दिये, और काव्य के जिन्हें किसी नियम का कोई पता न था, वे भी शाश्वत हो गये।
कबीर, कुछ भी जानते नहीं काव्य के नियम। लेकिन शाश्वत रहेगी उनकी वाणी। हृदय ही उंडेल दिया। मूल ही उंडेल दिया, तो गौण की क्या फिकिर? मात्राएं पूरी थीं या न थीं; छंद के नियम पूरे हुए या न हुए, प्राण ही डाल दिये। भाव ही प्रथम है। भाव को ही जिन ने, महावीर ने गुण-दोषों का कारण कहा है।
"भावों की विशुद्धि के लिए ही बाह्य परिग्रह का त्याग किया जाता है। जिसके भीतर परिग्रह की वासना है, उसका बाह्य त्याग निष्फल है।"

अगर बाहर का त्याग किया भी जाए तो भी यही ध्यान रखकर किया जाए कि वह भीतर के त्याग के लिए निमित्त बने।
भावविसुद्धिणिमित्तं, बाहिरगंथस्स कीरए चाओ।
बाहिरचाओ विहलो, अब्भंतरगंथजुत्तस्स।।
निमित्त बन जाए, बस। एक बहाना बने। लेकिन असली बात भीतर की रहे। तो लोग बाहर से तो छोड़ देते हैं, भीतर से छोड़ते नहीं। छोड़ने तक को पकड़ लेते हैं। त्याग तक की अकड़ आ जाती है कि मैंने लाखों छोड़े।
"जो देह आदि की ममता से रहित है, मान आदि कषायों से पूरी तरह मुक्त है, तथा जो अपनी आत्मा में लीन है, वही साधु भाव-लिंगी है।"
द्रव्य-लिंगी, भाव-लिंगी, ऐसे साधुओं के दो रूप महावीर ने किये। द्रव्य-लिंगी वही है, जिसने धन छोड़ा; लेकिन पकड़ना न छोड़ा। भाव-लिंगी वही है, जिसने धन भी छोड़ा, लेकिन धन छोड़ा क्योंकि पकड़ना ही छोड़ दिया। पकड़ ही छोड़ दी। नहीं तो मन बड़ा चालाक है। एक चीज छोड़ता है, दूसरी पकड़ लेता है, पकड़ कायम रहती है। धन छोड़ो, धर्म पकड़ लो। घर छोड़ो, संन्यास पकड़ लो। गृहस्थी छोड़ो, मंदिर पकड़ लो।
एक चीज छोड़ी, दूसरी पकड़ी, मुट्ठी तो बंधी ही रही। कंकड़-पत्थर छोड़े एक रंग के, दूसरे रंग के पकड़ लिया। धन छोड़ा, तो ज्ञान पकड़ लिया। महावीर कहते हैं, पकड़ छोड़ो। मुट्ठी खुली रखो। सत्य कुछ आकाश-जैसा है। मुट्ठी बांधो, बाहर हो जाता है। मुट्ठी खोलो, भीतर आ जाता है। खुली मुट्ठी पर पूरा आकाश रखा है। बंद मुट्ठी खाली है। कुछ भी नहीं।
कहावत तो है, लोग कहते हैं--बंद मुट्ठी लाख की। बंद मुट्ठी खाक की, लाख
की छोड़ो! खाक भी नहीं है। मगर बंद मुट्ठी लाख की लोग कारण से कहते हैं। वे यह कहते हैं, बंद रहे तो लोगों को भ्रम रहता है कि कुछ होगा। इसीलिए तो समझदार लोग बंद मुट्ठी रखे हुए हैं। खुद भी डरते हैं खोलने से, कहीं खुद को भी पता न चल जाए कि कुछ भी नहीं है। बंद रहती है, तो खुद को भी भरोसा रहता है कि है, बहुत कुछ है। जब तक नहीं देखा तब तक तो है ही! इसीलिए लोग आंख खोलकर नहीं देखते, नहीं तो सपने टूट जाएं! सपनों का संसार टूट जाए! देहादिसंगहिओ, माणकसाएहिं सयलपरिचत्तो।
अप्पा अप्पमि रओ, स भावलिंगी हवे साहू।।
भाव-लिंगी ही साधु है। द्रव्य-लिंगी साधु नहीं है; साधु-जैसा दिखायी पड़ता है। और द्रव्य-लिंग और भाव-लिंग में फर्क क्या है? इतना ही फर्क है, भाव-लिंगी ने अंतर को बदला, जागकर; द्रव्य-लिंगी ने बाहर को बदला, सोये- सोये।
इक दीया जला कि जल उठी सुबह
इक दीया बुझा कि रात हो गयी
एक शह लगी कि ढह गया किला
एक शह लगी कि मात हो गयी
इक हवा चली कि खिल उठा चमन
इक हवा चली कि सब उजड़ गया
एक पग उठा कि राह मिल गयी
एक पग उठा कि पथ बिछुड़ गया
फर्क बड़ा थोड़ा-सा है। एक पग का!
इक दीया जला कि जल उठी सुबह
अगर जागरण जग गया, तो सुबह हो गयी। बस एक दीया जल जाए जागरण का; महावीर
की भाषा में अप्रमाद का, होश का, विवेक का; एक दीया जल जाए, बस। तुम्हारे भीतर चैतन्य आ जाए बस, तुम उठते-बैठते जागे हुए उठने-बैठने लगो, तो सब बदल जाएगा। और वह एक दीया बुझ जाए, तो फिर तुम लाख उपाय करो, घर छोड़ हिमालय चले जाओ, वस्त्र छोड़ नग्न हो जाओ, धन छोड़ भिखमंगे होकर सड़क पर खड़े हो जाओ, कुछ भी फर्क न होगा। तुम तुम ही रहोगे। एक ही क्रांति है जीवन में, वह है भीतर की अंतर्ज्योति के जग जाने की क्रांति। और सब क्रांति के धोखे हैं।
इक दीया जला कि जल उठी सुबह
इक दीया बुझा कि रात हो गयी

बस एक ही दीये का फर्क है तुममें और महावीर में। इसलिए घबड़ाना मत। बस
एक दीये का फर्क है अंधेरे कमरे में और प्रकाशोज्ज्वल कमरे में। रात और सुबह में बस एक दीये का फर्क है।
एक शह लगी कि ढह गया किला
एक शह लगी कि मात हो गयी
इक हवा चली कि खिल उठा चमन
इक हवा चली कि सब उजड़ गया
एक पग उठा कि राह मिल गयी
एक पग उठा कि पथ बिछुड़ गया
उस एक दीये को जलाओ! उस एक दीये पर सारी शक्ति लगा दो! उस एक दीये पर सारा जीवन लगा दो! वह एक दीया जल गया, तो सब मिल गया। वह एक दीया न जला, तो तुम सारे संसार के साम्राज्य को पा लो, तुम भिखमंगे और खाली हाथ ही बिदा होओगे। तुम रिक्त मरोगे।
अगर भरकर जाना हो, खिलकर जाना हो, फूलकर जाना हो, तो उस एक दीये को जला लो। उसे मैं ध्यान का दीया कहता हूं, महावीर उसे अप्रमाद का दीया कहते हैं। बात एक ही है। बुद्ध उसे सम्यक-स्मृति कहते हैं। पतंजलि उसे समाधि कहते हैं। कृष्णमूर्ति उसे "अवेयरनेस" कहते हैं। होश कहो, सावधानी कहो। कबीर उसे सुरति कहते हैं, स्मृति कहते हैं। जो कहना हो कहो--नाम तुम रख लो-- इतना ही ध्यान रहे, दीये में ज्योति हो, फिर नाम कोई भी हो!
इक दीया जला कि जल उठी सुबह
इक दीया बुझा कि रात हो गयी।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग दो
आठवां प्रवचन

प्रेम है द्वार

पहला प्रश्नः महावीर ने आत्मा को समय क्यों कहा? कृपाकर बतायें कि समय और आत्मा में क्या संबंध है?

अलबर्ट आइंस्टीन ने अस्तित्व के संघटक तत्व दो माने हैं। टाइम और स्पेस। समय और क्षेत्र। और फिर बाद में जैसे-जैसे आइंस्टीन की खोज गहरी होती गयी, उसे यह भी प्रतीत होने लगा कि इन दो तत्वों को दो कहना ठीक नहीं है। इसलिए फिर उसने दोनों के लिए एक ही शब्द चुन लियाः स्पेसियोटाइम। समय-क्षेत्र।
क्षेत्र बाहर है, समय भीतर है।
जीवन को अगर हम ठीक से समझें, तो हमें होने के लिए दो चीजें चाहिए। कोई जगह चाहिए होने के लिए। हम कुछ जगह घेरेंगे। तुम यहां बैठे हो, तो तुमने थोड़ी जगह घेरी। वही है क्षेत्र, आकाश, स्पेस। लेकिन उतना काफी नहीं है। अगर उतना ही हो, तो तुम वस्तु हो जाओगे। फिर तुममें और टेबल और कुर्सी में कोई फर्क न रहेगा। टेबल और कुर्सी ने भी जगह घेरी है। जैसी तुमने जगह घेरी। तुम जिस फर्श पर बैठे हो, उसने भी जगह घेरी है। जैसी तुमने जगह घेरी है।
फिर तुममें और पत्थर में फर्क क्या है?
तुमने कुछ और भी भीतर घेरा है, वही समय है। पत्थर के लिए कोई समय नहीं है, कुर्सी के लिए कोई समय नहीं है। मनुष्य के लिए समय है। पशु-पक्षियों के लिए थोड़ा-सा बोध है समय का, बहुत ज्यादा बोध नहीं है। वृक्षों को और भी कम बोध है समय का। मनुष्य को बहुत बोध है समय का। तुम कहीं हो स्थान में, और कहीं हो समय में। इन दोनों रेखाओं का जहां कटने का बिंदु है, वहीं तुम्हारा अस्तित्व है।
तो हम पदार्थ को कह सकते हैं स्पेस। क्योंकि वह सिर्फ क्षेत्र घेरता है। और चेतना को कह सकते हैं समय। चेतना और पदार्थ से मिलकर जगत बना। वस्तुएं हैं, उन्हें अपने होने का कोई पता नहीं। और जैसे ही हमें अपने होने का पता चलता है, वैसे ही समय का भी पता चलता है। हमारा होना अंतर्तम में समय की घटना है।
तो एक तो हम इस तरह समझ सकते हैं आधुनिक भौतिकी के आधार पर कि आइंस्टीन ने जिस भांति अंतर-आकाश को समय कहा, वैसे ही महावीर ने भी आत्मा को समय कहा है। और जब मैं अलबर्ट आइंस्टीन का नाम लेता हूं महावीर के साथ, तो और भी कारण है। दोनों की चिंतनधारा एक-जैसी है। महावीर ने अध्यात्म में सापेक्षवाद, रिलेटीविटी को जन्म दिया और आइंस्टीन ने भौतिक विज्ञान में रिलेटीविटी को, सापेक्षवाद को जन्म दिया। दोनों का चिंतन-ढंग, दोनों के सोचने की पद्धति, दोनों का तर्क एक-जैसा है। अगर इस दुनिया में दो आदमियों का मेल खाता हो बहुत निकट से, तो महावीर और आइंस्टीन का खाता है। महावीर का फिर से अध्ययन होना चाहिए, आइंस्टीन के आधार पर। तो महावीर में बड़े-बड़े नये तरंगों का, नये उद्भावों का जन्म होगा। जो हमें महावीर में नहीं दिखायी पड़ा था, वह आइंस्टीन के सहारे दिखायी पड़ सकता है। महावीर और आइंस्टीन में जैसे धर्म और विज्ञान मिलते हैं। जैसे महावीर धर्म के जगत के आइंस्टीन हैं, और आइंस्टीन विज्ञान के जगत का महावीर है। एक।
दूसरी बात, समय शब्द टाइम शब्द से ज्यादा बहुमूल्य है। टाइम का तो सिर्फ इतना ही अर्थ होता है, जितना काल का होता है। टाइम का ठीक अनुवाद करना हो तो समय नहीं करना चाहिए, काल। काल का अर्थ होता है, जो बीत रहा है। काल का अर्थ होता है, जो जा रहा है। समय का अर्थ होता है, जो थिर है। समता से बना है, सम्यकत्व से बना है समय। संतुलन से बना है। संबोधि से बना है। जो मूल धातु संबोधि में है, सम्यकत्व में है, समता में है, समाधि में है, वही मूल धातु समय में है। इसलिए "टाइम" का ठीक-ठीक अनुवाद समय नहीं है। और समय का ठीक अनुवाद "टाइम" नहीं है।

समय बड़ा बहुमूल्य शब्द है। काल तो केवल इसकी एक भाव-भंगिमा है। काल से ज्यादा छिपा है समय में। अगर समय को जानना हो, तो सम्यकत्व को उपलब्ध होना पड़ेगा। इतने शांत हो जाना पड़ेगा कि जहां कोई विचार की तरंग न रह जाए। तब तुम्हें पहली दफे पता चलेगा, तुम किस धातु से बने हो। तब तुम्हें पता चलेगा तुम कौन हो। समता की आखिरी घड़ी में ही तुम्हें अपने समय का बोध होगा। इसलिए महावीर ने आत्मा को समय कहा। समता की अनुभूति।
कृष्ण ने कहा है, समत्व योग है। समत्व को ही योग कहा है। इतने सम हो जाओ तुम कि द्वंद्व के जगत के पार हो जाओ।
साधारणतः हम बंटे हैं। साधारणतः हमारा चुनाव है। कोई स्त्री है, कोई पुरुष है। आत्मा न स्त्री है, न पुरुष। इसलिए समय है। आत्मा का जो अनुभव है, वहां न तो तुम स्त्री रह जाओगे, न पुरुष। दोनों द्वंद्व गये। तुम दोनों द्वैत के पार हुए--अद्वैत हुए। जिस क्षण तुम्हें पता चलेगा तुम्हारे वास्तविक स्वरूप का, उस क्षण न तुम स्त्री होओगे, न पुरुष। उस क्षण तुम न जवान होओगे, न वृद्ध। उस समय तुम न गोरे होओगे, न काले। उस क्षण तुम न स्वस्थ होओगे, न अस्वस्थ। सब द्वंद्व गया, समता आयी। उस क्षण न तुम सुखी होओगे, न दुखी। उस क्षण न रात होगी, न दिन। उस क्षण न जन्म होगा, न मृत्यु। उस क्षण गये सारे द्वंद्व। उस क्षण बस निर्द्वंद्व-भाव शेष रहा। इसलिए महावीर ने आत्मा को समय कहा। समता, सम्यकत्व।
ऐसा गहरा सम्यकत्व कि जहां अतिक्रमण हो जाता है। विपरीत के चक्के से छूटना हो जाता है।
और इसीलिए महावीर ने ध्यान को सामायिक कहा। सामायिक है समय तक पहुंचने का उपाय। सामायिक है सम्यकत्व तक पहुंचने की विधि। धीरे-धीरे डूबो और शांत बनो। जैसे-जैसे शांत बनोगे, जैसे-जैसे तरंगें कम होंगी, वैसे- वैसे भीतर का स्वाद आना शुरू होगा।
महावीर ने बहुत सोचकर ही समय नाम दिया आत्मा को। उसका वैज्ञानिक अर्थ
भी है, उसका आध्यात्मिक अर्थ भी है। वैज्ञानिक अर्थ तो मैंने कहा, जो आइंस्टीन का अर्थ है, वही महावीर का है। और आध्यात्मिक अर्थ मैंने कहा, जो कृष्ण का अर्थ है--योग को सम्यकत्व कहने का, समत्व कहने का--वही महावीर का अर्थ है।

दूसरा प्रश्नः मेरी पत्नी मूर्तिपूजा करती है, लेकिन मैं उसे ध्यान करने को कहता हूं और कहता हूं कि मूर्तिपूजा व्यर्थ है। पत्नी उत्तर देती है कि मीरा भी तो मूर्तिपूजा करती थी। मेरे पास इसका जवाब नहीं है। कृपया बतायें कि यह बात कहां तक ठीक है, और यह कि पत्नी को कैसे समझाऊं?

मनुष्य को सदा एक पागलपन सवार रहता है। जो मैं मानता हूं, वह दूसरा भी माने। जो मैं मानता हूं, वही ठीक है। जो दूसरा मानता है, वह गलत है। यह अहंकार की ही घोषणा है।
महावीर ने कहा है, दूसरा भी ठीक है।
मैं ही ठीक हूं, ऐसी धारणा निर्बुद्धिपूर्ण है। फिर अगर तुम्हारी पत्नी को मूर्तिपूजा में आनंद मिल रहा है, तो तुम बाधा डालनेवाले कौन? तुम्हें प्रयोजन क्या? सिर्फ पति होने के कारण? तुम्हें अड़चन मालूम हो रही है कि पत्नी पर पूरा कब्जा नहीं है। मैं ध्यान करता हूं, पत्नी मूर्तिपूजा करती है! तुम्हें ध्यान में रस आ रहा है, ध्यान करो। पत्नी को मूर्तिपूजा में रस आ रहा है, मूर्तिपूजा करने दो।
रस असली बात है। रसो वै सः। उस परमात्मा का स्वभाव रस है। कैसे रस मिलता है, यह बात गौण है। आम खाने हैं या गुठलियां गिननी हैं?
लेकिन लोग गुठलियों का ढेर लगाये बैठे हैं। उसी को वे दर्शनशास्त्र कहते हैं। आम खाना तो भूल ही गये। तुम्हारी पत्नी तुमसे बेहतर है। कम से कम यह तो नहीं कहती कि तुम ध्यान छोड़ो। तुमसे ज्यादा समतावान है। पत्नियां अकसर ऐसी होतीं नहीं, तुम सौभाग्यशाली हो। पत्नियां इतनी आसानी से कब्जा नहीं छोड़तीं। मेरे पास जो मामले आते हैं, दस मामलों में नौ

पत्नियों के होते हैं कि वे पतियों पर जबर्दस्ती करती हैं। एक पति का होता है कि वह पत्नी पर जबर्दस्ती करता है।
इस दृष्टि को छोड़ो। स्वतंत्रता प्रेम का अनिवार्य लक्षण है। अगर तुम पत्नी को प्रेम करते हो, चाहते हो, उसका शुभ चाहते हो, मंगल चाहते हो, तो उसे स्वतंत्रता दो। हालांकि तुम्हारा मन यही कहेगा, मंगल चाहते हैं इसीलिए तो ध्यान करवा रहे हैं। तुम्हारा मन कहेगा, मंगल चाहते हैं इसीलिए तो मूर्तिपूजा से छुटकारा दिला रहे हैं, नहीं तो कौन फिजूल मेहनत करता! उसके ही हित में! लेकिन उसका हित वही निर्णय कर सकेगी, तुम न निर्णय कर सकोगे।
बड़ा कठिन है दूसरे के स्थान पर खड़े होकर दूसरे की स्थिति को देखना। वह सबसे बड़ी कला है। तुम स्त्री होकर देखो। तब तुम्हें समझ में आयेगा कि ध्यान और मूर्तिपूजा का फर्क क्या है? मूर्तिपूजा--पूजा का भाव ही स्त्रैण-ध्यान है। वह स्त्री का ढंग है ध्यान करने का। स्त्री ध्यान भी करे, तो वह प्रार्थना से भिन्न नहीं हो सकता। प्रेम उसका स्वभाव है। पुरुष के लिए प्रेम और बहुत-सी चीजों में एक घटना है। स्त्री के लिए प्रेम उसका सब-कुछ है। पुरुष चौबीस घंटे में कुछ क्षण प्रेमपूर्ण होता है, लेकिन प्रेम सब कुछ नहीं है। और भी बहुत कुछ है पुरुष को करने को। स्त्री के लिए प्रेम सब-कुछ है, उसका सर्वस्व है। ध्यान की बात तो स्त्री को जमेगी ही नहीं। वह ध्यान भी करेगी तो नाम ही ध्यान रहेगा, होगी प्रार्थना। ध्यान में भी आंसू बहेंगे। ध्यान में भी रस उमगेगा। ध्यान में भी मूर्ति प्रविष्ट हो जाएगी। ध्यान में भी परमात्मा रूप धर लेगा। स्त्री के पास रूप देने की कला है।
इसलिए तो गर्भ है उसके पास।
निराकार आत्मा उतरती है और स्त्री के गर्भ में रूप ले लेती है। मूर्ति का जन्म हो जाता है। पुरुष के पास वैसी क्षमता नहीं है। वह निराकार को आकार बनाने में कुशल नहीं है। वह निराकार को आकार देने में समर्थ नहीं है। स्त्री की बड़ी सामर्थ्य है। उसके पास कुछ है, जिससे निराकार आकार बन जाता है। सामान्य जीवन में भी आत्मा प्रविष्ट होती है और देह धरकर बाहर आती है। जब प्रविष्ट होती है आत्मा स्त्री के गर्भ में, तब अरूप होती है। निराकार होती है। स्त्री उसे रूप देती है। आकार देती है, रेखाएं देती है। देह देती है।
तो स्त्री के अस्तित्व में ही देह देने का ढंग छिपा हुआ है। अगर वह ध्यान भी करेगी, तो उसके गर्भ में भगवान रूप ले लेंगे। वह उसके देखने का ढंग है। पुरुष को समझ में नहीं आता कि क्या पत्थर की मूर्ति के सामने बैठकर पूजा कर रही हो! पत्थर की मूर्ति तुम्हें है। जिसकी आंखें प्रेम से गीली हैं, उसके लिए पत्थर की मूर्ति मुस्कुराती है, गाती है, गुनगुनाती है। बातचीत चलती है। ऐसा ही नहीं कि स्त्री ही बोलती है, परमात्मा भी उससे उसी ढंग से बोलता है। सच तो यह है कि अगर स्त्री ठीक प्रार्थना में हो तो कम ही बोलती है। रूठ-रूठ जाती है, परमात्मा मनाता है।
तुम उसे न समझ पाओगे। जरूरत भी तुम्हें समझने की नहीं है। तुम्हारा मार्ग ध्यान है। पुरुष का मार्ग ध्यान है। तुम अगर प्रार्थना भी करोगे, तो भी तुम्हारा आकर्षण ध्यान की तरफ लगा रहेगा। तुम प्रार्थना भी ध्यान के लिए ही करोगे। तुम चाहोगे कि किसी तरह विचार से छुटकारा हो जाए, किसी तरह यह सब तरंगें समाप्त हों--निस्तरंग हो जाऊं! स्त्री कहती है, कैसे यह सब तरंगें रसपूर्ण हो जाएं। निस्तरंग होने की कोई आकांक्षा नहीं है। तुम्हारी आकांक्षाएं अलग हैं। होनी ही चाहिए। पुरुष और स्त्री बड़े विपरीत हैं। इसीलिए तो उनमें आकर्षण है। विपरीत में आकर्षण होता है, खिंचाव होता है। इसीलिए तो पुरुष स्त्री पर आसक्त है, स्त्री पुरुष पर आसक्त है। अगर बिल्कुल एक जैसे होते तो आकर्षण टूट जाता। विपरीत खींचता है। लेकिन इस विपरीतता को समझना चाहिए।
स्त्री तोड़ने की कोशिश करती है पति को कि वह भी उसी के ढंग से चले, पति तोड़ने की कोशिश करता है स्त्री को कि वह भी उसके ढंग से चले। यहीं भ्रांति हो जाती है, यहीं गलती हो जाती है। यहीं महावीर को समझना बड़ा उपयोगी है।

महावीर ने जो दृष्टि दी है, वह है स्यातवाद। वे कहते हैं, दूसरा भी ठीक होगा। होना चाहिए। नहीं तो दूसरा टिका क्यों रहेगा उस पर? मूर्ति इतने दिन से मिटायी जाती रही है, फिर भी बनी है। कितनी मूर्तियां तोड़ी गयीं, फिर-फिर बन जाती हैं। जब तक स्त्री है, मूर्ति टूट नहीं सकती। कोई उपाय नहीं। स्त्री को ही तोड़ डालो, तो बात अलग। उस दिन मूर्ति टूट जाएगी। लेकिन स्त्री को तोड़कर तुम भी न बचोगे।
पुरुष के धर्म मूर्ति-विरोधी हैं। स्त्री का धर्म रूप का, रंग का, रस का, उत्साह का, उत्सव का। पुरुष का धर्म त्याग का, तपश्चर्या का, संकल्प का, संघर्ष का। स्त्री का धर्म समर्पण का, शरणागति का। स्त्री ने चाहा नहीं निराकार को कभी, स्त्री को तो समझ में भी नहीं आता कि निराकार को चाह कर करोगे क्या? जिससे छाती न लग सको, जिसे भर-आंख देख न सको, जिसके हाथ में हाथ न दे सको, जिसे सुन न सको, जिससे बोल न सको, ऐसे निराकार के होने में और न होने में क्या फर्क है? निर्गुण को क्या करोगे? खाओगे, पीओगे, ओढ़ोगे, बिछाओगे--क्या करोगे?
नहीं, स्त्री की तो प्रार्थना है कि तुम सगुण होकर आना। तुम रूप धरकर आना, ताकि तुम्हें देख तो सकूं। आंखें जन्मों-जन्मों की प्यासी हैं। तुम बोलना, ताकि तुम्हारा संगीतपूर्ण स्वर मेरे सोये प्राणों को जगा सके। तुम आना, मुझे सहलाना; तुम आना, मेरे साथ नाचना।
तुम स्त्री को बाधा मत दो। बाधा देना अधार्मिक है। अगर उसे रस मिल रहा है, ठीक। अगर तुम्हारी समझ में नहीं पड़ता, तो तुम्हें समझने की कोई जरूरत नहीं, तुम्हें जिसमें रस मिल रहा है, ठीक! रस ही असली बात है। रस है मापदंड। रस न मिल रहा हो, तो सोचने की जरूरत है। और मुझे लगता है, तुम्हारी स्त्री को तुमसे ज्यादा रस मिल रहा है। तुम्हें पूरा रस नहीं मिल रहा। तुम्हारा ध्यान ठीक नहीं उतर रहा। क्योंकि जब खुद का ध्यान ठीक उतरता है, कौन फिकिर करता है? तुम्हें अड़चन है। तुम दूसरे के सामने सिद्ध करना चाहते हो कि मेरा ध्यान बड़ा बहुमूल्य है। तुम तर्क और प्रमाण, विवाद खड़ा करना चाहते हो। इस तरह दूसरे को तुम राजी करके अपनी आंखों के सामने यह भाव बनाना चाहते हो कि नहीं, तुम्हारी बात ठीक होनी ही चाहिए। देखो पत्नी ने भी मान लिया।
लेकिन यह मनवाना खतरनाक है। उसे चलने दो उसकी राह पर। दूसरे की सहमति आवश्यक कहां है? तुम अपने ध्यान में डूबो, उसे अपनी प्रार्थना में डूबने दो। डूब-डूबकर तुम एक दिन पाओगे कि तुम एक-ही गहराई में पहुंच गये हो। वहां तुम्हारा मिलन होगा, वहां तुम अपनी पत्नी को फिर नये रूप में पाओगे। वहां तुम देखोगे, अरे! प्रार्थना भी वहीं ले आयी, पूजा भी वहीं ले आयी, ध्यान भी वहीं ले आया। सभी मार्ग वहीं ले आते हैं। अंतर यात्रा-पथों का है, मंजिल का नहीं है।
दूसरे को समझने की, दूसरे की स्थिति को समझने की करुणा दिखानी चाहिए। तर्क बड़ा कठोर है। प्रेम बड़ा करुणापूर्ण है। अगर तुम अपनी पत्नी को चाहते हो, तो तुम यही चाहोगे कि वह सुख को पाये, आनंद को पाये, महासुख की यात्रा पर जाए। प्रभु उसे मिलें। फिर जिस ढंग से उसने चाहा हो, वैसे मिलें। और परमात्मा उसी ढंग से मिल जाता है, जिस ढंग से तुम उसे खोजते हो। वह तुम्हारे ढंग से तुम्हारे पास आ जाता है। हजार रूप हैं उसके। अरूप भी वही है। संकल्प से भी मिल जाता है। समर्पण से भी मिल जाता है। सत्य बेशर्त है। उसकी कोई शर्त नहीं कि ऐसे आओगे, तो ही मिलूंगा। आओ, बस आओ। किस रास्ते से आते हो, पूरब कि पश्चिम, कि उत्तर कि दक्षिण, नहीं कोई भेद पड़ता। नाचते आते, गीत गाते आते, कि मौन आते, नहीं फर्क पड़ता।
मीरा वहीं पहुंच गयी, जहां महावीर पहुंचे। और अगर चुनना ही हो, तो मीरा का मार्ग ज्यादा रसपूर्ण है। वहां बहुत फूल खिले हैं। महावीर का मार्ग तो मरुस्थल जैसा है। सूखा। मरुस्थल का भी सौंदर्य है। मरुस्थल की भी विराटता है। मरुस्थल का भी विस्तार है। सन्नाटा है। मरुस्थल की शांति है। लेकिन फूलों से लदे वृक्षों के नीचे से गुजरने का भी अपना सौंदर्य और अपना आनंद है। मीरा नाचती हुई पहुंची। महावीर ठहरकर पहुंचे, मीरा नाचकर

पहुंची। महावीर रुककर पहुंचे, मीरा दौड़कर पहुंची। लेकिन जो घटा वह बिल्कुल एक है।
तुम्हें जो उचित लगता हो, चलो। न तो दूसरे को मौका दो कि तुम्हारे मार्ग पर बाधा दे और न तुम ऐसी कुछ कोशिश करो कि किसी के मार्ग पर बाधा पड़े। तुम्हें कैसे पता चला कि मूर्तिपूजा ठीक नहीं है? तुमने मूर्तिपूजा की? अगर की होती, तो पता चलता। की ही नहीं, तर्कजाल बिठाये बैठे हो। मूर्तिपूजा का तर्कजाल से कुछ लेना-देना नहीं है। मूर्तिपूजा तो रस का अनुबंध है। प्रेम का अनुबंध है। स्त्री तो सपनों में जीती है। मगर उसकी शक्ति इतनी है कि सपनों को साकार कर लेती है। जाने दो, उसे विदा दो खुशी के साथ कि तू अपने मार्ग पर जा।
"मेरी पत्नी मूर्तिपूजा करती है, लेकिन मैं उसे ध्यान करने को कहता हूं।" बंद करो ऐसा कहना! तुम कौन हो? पति होने से तुम उसकी आत्मा के मालिक नहीं हो। यह जो सात फेरे पड़े होंगे, इनसे एक सांसारिक रिश्ता बन गया है, लेकिन उसकी आत्मा को तुमने खरीद नहीं लिया। मुक्त करो उसे। उसे जाने दो अपने मार्ग पर। उसे चुनने दो अपनी विधि, अपना विधान। उसके हृदय को बहने दो।
"और कहता हूं कि मूर्तिपूजा व्यर्थ है।" भूलकर ऐसी बात मत कहना। किसी
को उसके रास्ते से व्यर्थ ही भटकाना मत। अगर व्यर्थ होगी, तो एक दिन उसे समझ में आयेगी बात, तब वह रूपांतरित होगी। कोई किसी दूसरे के समझाये कहीं समझा है? अपने अनुभव से ही लोग जागते हैं। अगर सार्थक होगी, तो पहुंच जाएगी। अगर व्यर्थ होगी, तो आज नहीं कल, भटककर लौट आयेगी। जब तुमसे पूछे कि समझाओ मुझे ध्यान, क्योंकि मूर्तिपूजा तो मेरी व्यर्थ हुई, तब निवेदन कर देना। लेकिन तब तक प्रतीक्षा करना, धैर्य रखना। जिस दिन पूछे तुमसे, जिस दिन तुम्हारा आनंद उसे छुए और उसे लगे कि तुम तो कुछ पा लिये और मैं कुछ चूक गयी हूं, उस दिन समझा देना।
गुरु बनने की चेष्टा मत करो। जिस दिन कोई शिष्य बनकर आ जाए, उस दिन अपना सत्य निवेदन कर देना। तब भी तुम यह मत कहना कि मूर्तिपूजा गलत है। तब तुम इतना ही कहना कि ध्यान सही है। इनमें फर्क है। क्योंकि तुम इतना ही कह सकते हो कि मैंने ध्यान किया और पाया कि सही है। मूर्तिपूजा मैंने कभी की नहीं, तो मैं कौन? मैं कैसे कहूं, गलत या सही? कुछ भी कह सकता नहीं। ध्यान मैंने किया है और पाया है कि सही है। अगर तेरी मूर्तिपूजा का रास्ता तुझे न पहुंचाता हो, तो यह मेरे ध्यान के सूत्र हैं, यह निवेदन है। लगे तुझे ठीक, चल पड़। न लगे ठीक, तेरी मर्जी। फिर भी थोपना मत। सत्य थोपे नहीं जाते। सत्याग्रह शब्द बिल्कुल गलत है। सत्य का कोई आग्रह होता ही नहीं। सत्य का सिर्फ निवेदन होता है। सत्य की तो आग्रह के साथ अगर तुमने गांठ बांध दी, तो आग्रह जीत जाएगा, सत्य मर जाएगा। सत्य की फांसी लग जाती है सत्याग्रह में। आग्रह? महावीर ने कहा है, निराग्रह। जो निराग्रह-भाव को उपलब्ध होता है, वही सत्य को उपलब्ध होता है। सब आग्रह छोड़ो। जगत बड़ा है, विराट है। तुमने सब रास्ते नहीं नाप लिये हैं और न सभी सागरों की गहराई ही छुई है। और तुम सभी घाटों से उतरे नहीं, और तुमने सभी नावों से यात्रा नहीं की है। तुम इतना ही कह सकते हो कि मेरी नाव ने पहुंचा दिया। दूसरी नावें पहुंचाती हैं, नहीं पहुंचाती हैं, मैं कैसे कहूं? जो चले हों उन नावों से, पूछो उनसे।
महावीर कहते हैं खुद, कि मैं एक तीर्थ बनाता हूं। तीर्थ का अर्थ होता है, घाट। नदी बड़ी है। बड़ी गंगा है। गंगोत्री से सागर तक फैली है। हजारों- लाखों घाट हैं। महावीर कहते हैं, मैं एक घाट बनाता हूं। एक तीर्थ बनाता हूं। इसीलिए तीर्थंकर शब्द। वह यह नहीं कहते कि दूसरे घाट गलत हैं। वह कहते हैं, इतना ही मैं कहता हूं कि मेरे घाट से मैं पहुंचा, तुम भी पहुंच सकते हो। अगर मेरा घाट तुम्हें आकर्षित करता हो, अगर मेरे घाट में तुम्हें कोई लुभावना निमंत्रण मिलता हो, आ जाओ, मेरी नाव तैयार है। महावीर तो एक माझी हैं। नाव लिए तैयार खड़े हैं, जिनको उतरना हो इस घाट से, इससे उतर जाएं। लेकिन महावीर कहते हैं, नदी बड़ी है, घाट और भी हैं। और औरों से भी लोग उतरे ही होंगे, अन्यथा घाट टूट गये होते, बंद हो गये होते, समाप्त हो गये

होते। अगर कोई कभी न उतरा होता, अगर उन घाटों से चलकर लोग डूबते ही रहे होते और दूसरा किनारा मिलता ही न होता, तो घाट समाप्त हो गये होते।
इतने धर्म हैं जगत में, क्योंकि सभी धर्मों में सत्य का कोई अंश है। सभी किसी न किसी तरह किसी न किसी को पहुंचाते रहे, अन्यथा उनके होने का अर्थ खो जाए। असत्य जी नहीं सकता। थोड़ी-बहुत देर शोरगुल मचा सकता है, मर जाएगा। सत्य ही जीता है। सत्य ही जीतता है। सत्यमेव जयते।
मूर्तिपूजा व्यर्थ है, ऐसा तो कहना ही मत। इससे तुम्हारा क्रोध तो मालूम पड़ता है, प्रेम नहीं मालूम पड़ता। इससे तुम्हारी हिंसा तो मालूम पड़ती है, तुम्हारी करुणा नहीं मालूम पड़ती। इससे ऐसा तो लगता है कि तुम पत्नी को दबाने को उत्सुक हो, अपने पीछे चलाने को उत्सुक हो, छाया बनाने को उत्सुक हो, उसको तुम आत्मा की स्वतंत्रता देने को तैयार नहीं। और प्रेम, कैसा प्रेम, जो इतनी भी स्वतंत्रता न दे! पूजा, प्रार्थना, ध्यान तो बड़ी आत्यंतिक बातें हैं। इससे पति-पत्नी का कुछ लेना-देना नहीं।
दुनिया जब अच्छी होगी, तो स्वतंत्रता और गहन होगी--पत्नी हो सकता है मस्जिद जाए, पति हो सकता है मंदिर जाए। बेटे हो सकता है कहीं भी न जाएं, ध्यान करें और कोई किसी को बाधा न दे। जिसको जहां ठीक लगे। किसी को कुरान से रस मिल जाता है, रसधार बहती है, बहे। रसधार ही असली बात है। कोई गीता में डूब जाता है, डूबे। डूबना ही असली बात है। कोई महावीर के साथ चल पड़ता है; कोई मीरा के साथ नाचता है, नाचे, चले। एक ही बात ध्यान में रहे, रूपांतरण हो रहा? तुम रससिक्त हो रहे? तुम्हारे प्राण मधु से भर रहे? तुम्हारे प्राण मधुमय हो रहे? तुम डूब रहे? तुम नाच रहे? तुम शांत, आनंदित हो रहे? बस। और ऐसा भी जब हो, तब भी दूसरे पर थोपना मत।
एक बात स्मरण रखना, स्वतंत्रता थोपी नहीं जा सकती। तो मोक्ष तो कैसे थोपा जा सकता है! अगर कोई व्यक्ति अपनी ही मर्जी से नर्क भी जाए, तो भी प्रसन्न होगा। और अगर जबर्दस्ती स्वर्ग में भी धका दिया जाए, तो भी अप्रसन्न होगा। जबर्दस्ती में अप्रसन्नता है। नर्क भी अपनी ही मर्जी से चुना हो, तो स्वतंत्रता है। स्वर्ग भी जबर्दस्ती मिल जाए--कि पुलिसवाले हथकड़ी डालकर तुम्हें स्वर्ग ले जाएं, तब तो तुम्हें स्वर्ग भी नर्क हो जाएगा। स्वर्ग वहीं है जहां स्वतंत्रता है। जहां परतंत्रता है, वहीं नर्क है। किसी के लिए नर्क खड़ा मत करना। पत्नी तुम पर निर्भर है, आर्थिक रूप से निर्भर है। पत्नी तो ऐसे है जैसे वृक्ष पर छायी हुई लता हो, वृक्ष पर निर्भर है। वृक्ष हट जाए तो लता जमीन पर गिर जाए। उसे तुम्हारे सहारे की जरूरत है। इस सहारे को शोषण मत बनाना। इस सहारे के आधार पर उसको चूसने मत लगना, उसकी आत्मा को नष्ट मत करने लगना।
"पत्नी उत्तर देती है कि मीरा भी तो मूर्तिपूजा करती थी।"
ठीक ही उत्तर देती है। और बेचारी कहे भी क्या? तुम ज्यादा तर्क-कुशल होओगे, तुम ज्यादा सिद्धांत की बकवास कर सकते होओगे, वह इतना ही निवेदन कर सकती है कि मुझे कुछ और तो पता नहीं, लेकिन क्या तुम कहते हो कि मीरा को परमात्मा नहीं मिला? और अगर मीरा को मूर्तिपूजा से मिल गया, तो मुझे क्यों न मिलेगा? वह एक छोटा-सा निवेदन कर रही है कि बख्शो मुझे, छोड़ो मुझे! निश्चित ही मीरा को भी परमात्मा मिला। मूर्तिपूजा से ही मिला। मूर्तिपूजा और न पूजा का थोड़े ही सवाल है, जहां तुम अपने हृदय को उंडेल देते हो, वहीं से मिल जाता है। तुम पत्थर पर उंडेल दो हृदय को, वही पत्थर परमात्मा हो जाता है।
परमात्मा कहीं कोई बैठा थोड़े ही है? तुम अपना जीवन-दान देकर उसे सृजन करते हो। परमात्मा मनुष्य का सृजन है। वह तुम्हारी सृष्टि है। ऐसा थोड़े ही है कि तुम गये और मिल गया। कि कहीं किसी पहाड़ की कंदरा में छिपा बैठा है, कि आसमान में चांद-तारों पर बैठा है, कि तुम्हें खोजना है जरा। खोजना नहीं है, निर्मित करना है। परमात्मा तो नृत्य-जैसा है। इसलिए मुझे प्रीतिकर लगता है हिंदुओं का यह ख्याल कि उन्होंने शिव को नटराज कहा।
परमात्मा नर्तक जैसा है। अगर तुम्हें नृत्य खोजना हो, तो तुम जंगल में खोजोगे? नृत्य खोजना हो तो नाचना सीखो। नृत्य कहीं रखा हुआ थोड़े ही मिलेगा। किसी तिजोरी में बंद थोड़े ही है। नृत्य तो तुम नाचोगे तो होगा। और

जब तक तुम नाचते रहोगे, तब तक रहेगा। नाच बंद हुआ कि नृत्य बंद हुआ। नृत्य गया। तुम ऐसा नहीं कह सकते कि आज नाच लिये, यह देखो हमारी मुट्ठी में नाच रखा है। नाचोगे, बस उतनी ही देर रहता है। जितनी देर नाचे, नृत्य। जितनी देर नहीं नाचे, नाच खो गया।
परमात्मा नृत्य जैसा है। नटराज! तुम जब ध्यान में हो, तब होता है। जब तुम ध्यान के बाहर हो गये, खो गया। जब तुम प्रार्थना में होते हो, तब होता है। जब तुम प्रार्थना के बाहर हो गये, खो गया। इसीलिए तो मैं कहता हूं, प्रार्थना हो या ध्यान, तुम्हारी सहज चर्या बने। चौबीस घंटे तुम्हारा वातावरण बने। तो ही परमात्मा को तुम पा सकोगे, नहीं तो न पा सकोगे। प्रतिपल उसे जन्म देना पड़ता है, तो ही परमात्मा तुम्हारे हाथ में होता है। परमात्मा सृजनात्मकता है। तुम सृजन करो, तो मिलता है। औरों ने कहा है, परमात्मा स्रष्टा है, मैं तुमसे कहता हूं कि तुम स्रष्टा हो। और तुम परमात्मा को जन्म दोगे, तो होगा। परमात्मा प्रथम नहीं है; तुम्हारे जीवन की श्रेष्ठतम ऊंचाई और गहराई में है; परमात्मा अंतिम है। परमात्मा कारण नहीं है जगत का, जगत की नियति है। जहां पहुंचना चाहिए सभी को। जैसा होना चाहिए सभी को। वह फूल है, आखिरी खिला हुआ फूल। उससे ऊपर फिर कुछ भी नहीं।
तो अगर कोई प्रार्थना से खुल रहा है, खिल रहा है, सुगंधित हो रहा है, खुश होओ। ठीक कहती है पत्नी, कि मीरा भी तो मूर्तिपूजा करती थी। मीरा के पति को भी ऐसी ही अड़चन थी, जैसी तुमको है। पुरुष को प्रार्थना जमती नहीं। पुरुष को थोड़ी गड़बड़ मालूम होती है, वह तर्क उसकी पकड़ में नहीं आता। आ नहीं सकता। उसको दो और दो चार होते हैं, यह तो समझ में आता है, गणित उसके लिए सीधी भाषा है, काव्य उसको समझ में नहीं आता। इसलिए स्त्री और पुरुष एक दूसरे को समझ नहीं पाते। तुम अभी तक अपनी पत्नी को समझ पाये? इतने वर्ष साथ रह लिये! कह सकते हो हिम्मत से कि समझ गये? मुश्किल है। न पत्नी तुम्हें समझ पाती है।
जब पति और पत्नी बात करते हैं, तो तुम समझो कि बात होती ही नहीं। एक कुछ कहता है, दूसरा कुछ सुनता है। एक-दूसरे के तर्क समानांतर चलते हैं, कहीं मिलते नहीं। क्योंकि दोनों के देखने के ढंग बड़े भिन्न हैं। पत्नी तार्किक है ही नहीं। वह एक-एक सीढ़ी कदम-कदम रखकर तर्क को नहीं फैलाती, सीधी छलांग लेती है। एक बात से दूसरी बात पर उछल जाती है। पति चौकन्ना खड़ा रह जाता है कि अभी यह तो कोई बात ही न थी! लेकिन पत्नी के चलने के ढंग बड़े अदृश्य हैं। अचेतन हैं। तुम क्या कहते हो, यह वह कम सुनती है; तुम क्या कहना चाहते हो, यह वह पहले सुन लेती है। तुम शब्दों से क्या कह रहे हो, इसकी वह बहुत फिकर नहीं करती, तुम्हारी आंखें क्या कह रही हैं, तुम्हारे हाथ क्या कह रहे, तुम्हारे पैर क्या कह रहे, उसे वह पहले सुन लेती है। वह तुम्हारे शब्दों के धोखे में नहीं आती।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन पर मुकदमा था। देखकर वह एकदम घबड़ा गया! जूरी बारह स्त्रियां बैठी हैं। उसने कहा, मैं अपना अपराध इसी वक्त स्वीकार करता हूं। मजिस्ट्रेट ने कहा, अभी तो अदालत शुरू भी नहीं हुई। उसने कहा, अब कोई जरूरत ही नहीं। एक स्त्री को धोखा नहीं दे पाता, बारह! यह संभव नहीं है। जो सजा हो आप मुझे दे दें, इस झंझट में मैं पड़ने को ही राजी नहीं।
स्त्री के देखने, पकड़ने के ढंग परोक्ष हैं। इसलिए तुम कभी-कभी हैरान
भी होते हो कि मैंने इतनी अच्छी बात कही, फिर भी पत्नी को प्रसन्नता न हुई? तुमने कही तो अच्छी बात, लेकिन बात के पीछे-पीछे तुम कुछ और भी कह रहे थे। बात के किनारे-किनारे कोई और बात भी दबी-दबी चल रही थी। तुम्हारी आंखें, तुम्हारा चेहरा उसे प्रगट कर रहे थे।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी उससे कह रही है कि तुम मुझे प्रेम करते हो? तुम मुझे ब.ुढापे में भी प्रेम करोगे? तुम मुझे सदा ही प्रेम करते रहोगे? मुल्ला अपना अखबार पढ़ रहा है। भन्ना रहा है भीतर कि वह पढ़ने नहीं दे रही। वह कहता है कि हां देवी, सदा-सदा प्रेम करूंगा। तुमसे ज्यादा सुंदर कोई स्त्री नहीं है। तुम परम सुंदरी हो। और तुम सदा सुंदर रहोगी। मैं सोच ही

नहीं सकता कि कभी तुम बूढ़ी हो सकती हो। और फिर बोला कि अब बकवास बंद करो, मुझे अपना अखबार पढ़ने दो।
मगर वह जो भीतर का भाव है, वह तो चेहरा कहे दे रहा है। तुम क्या कहते हो, यह स्त्री नहीं सुनती; तुम क्या हो, इसे सुनती है। इसलिए तुम सब उपाय करते हो, फिर भी तुम पाते हो कि कुछ बात पहुंची नहीं।
जब तक तुम ठीक-ठीक सच्चे न होओ, जब तक तुम जो कहो और तुम जो हो उसमें कोई भेद ही न हो, तब तक तुम स्त्री के साथ कोई संवाद नहीं कर सकते। असंभव है।
स्त्री द्वंद्व को कम जानती है। ज्यादा भोली-भाली है। सीधी-साफ है। पुरुष ज्यादा कुशल हो गया है। और उसकी कुशलता चल जाती है बाजार में, क्योंकि वहां दूसरे भी पुरुष हैं। तो वहां तर्क एक ही है। इसलिए बड़े से बड़ा योद्धा भी पत्नी के सामने कंपने लगता है। बड़े से बड़ा संघर्षशील व्यक्ति भी, जो बाहर विजय-पताका फहरा आता है, घर आते ही डरने लगता है कि चले घर! क्या हो जाता है? एक स्त्री को तुम नहीं हरा पाते! स्त्री कुछ और ढंग से बनी है। उसकी कीमिया अलग है।
तुम्हारी पत्नी ठीक ही कहती है कि मीरा भी तो पहुंच गयी। अगर एक पहुंच गया उस मार्ग से, तो हम भी पहुंच जाएंगे। तुम उस पर कृपा करो! तुम उसे कहो कि तू चल, अपनी राह से चल। अगर तुम ध्यान पर वस्तुतः चल रहे हो, तो तुम उसे प्रार्थना पर चलने दोगे। तुम्हारा ध्यान कम से कम इतना बल तो तुम्हें देगा। तुम्हारा ध्यान कम से कम इतनी समझ तो तुम्हें देगा, इतनी प्रज्ञा तो तुम्हें देगा।
पूछा है, मेरे पास इसका जवाब नहीं है। मेरे पास भी नहीं है। इसका जवाब
ही नहीं है, करोगे क्या? इसमें तुम्हारा कोई कसूर नहीं है। मीरा पहुंची है, अब जवाब हो भी कहां से? तो तुम ऐसी जगह जवाब खोजने में लगे हो, जहां जवाब नहीं है।
महावीर भी पहुंचे हैं, मीरा भी पहुंची है। कृष्ण भी पहुंचे, क्राइस्ट
भी पहुंचे। मुहम्मद भी पहुंचे, बुद्ध भी पहुंचे। अलग-अलग रास्तों से पहुंचे। सभी पहुंच जाते हैं। चलते भर रहो, चलना भर न रुके। भटको तो भी पहुंच जाओगे, लेकिन रुको भर मत, चलते रहो। आज भटकोगे, कल भटकोगे, कब तक भटकोगे? आखिर भटकन भी पहचान में आने लगेगी। रोज-रोज भटकोगे, समझ में आने लगेगा। गलत समझ में आ जाए, तो ठीक की तरफ पैर पड़ने लगते हैं। असार समझ में आ जाए, तो सार की तरफ यात्रा शुरू हो जाती है। और तो कोई रास्ता भी नहीं है। अनुभव ही रास्ता है।
"और यह समझाएं कि मैं पत्नी को कैसे समझाऊं?"
समझाओ ही नहीं। तुम समझो। लौटकर घर पत्नी से क्षमा मांग लेना कि अब तक
जो कहा-सुना, कि मूर्तिपूजा व्यर्थ है इत्यादि, वह मेरी भूल थी। तू अपनी राह पर जा। शायद तुम्हारा यह क्षमा मांग लेना ही रास्ता बनेगा कि वह भी तुम्हें समझ सके और तुम भी उसे समझ सको। जरूरी नहीं है कि तुम्हारी पत्नी को प्रार्थना में आनंद मिल ही रहा हो। जरूरी नहीं है कि मूर्तिपूजा में उसे रस आ ही रहा हो। लेकिन पति की बात तोड़ने में भी रस आता है। गुलामी तोड़ने में सभी को रस आता है। जबर्दस्ती तोड़ने में सभी को रस आता है। हो सकता है मूर्तिपूजा इसीलिए चल रही हो कि तुम विरोध में हो।
कभी-कभी कोई पति मेरे पास आ जाता है, वह कहता है मैं तो संन्यास ले रहा हूं, अब मेरी पत्नी! मैंने कहा, अब जरा मुश्किल है। पहले पत्नी आ जाए और संन्यास ले ले, तो संभावना है कि पति को आज नहीं कल ले आयेगी। लेकिन पति पहले आ जाए तो बहुत मुश्किल हो जाती है। फिर तो पत्नी आती ही नहीं। फिर तो वह इस तरफ कान ही नहीं देती। पति और पत्नी के बीच ऐसी दुश्मनी कि सारी दुनिया से पत्नी हारने को तैयार है, लेकिन पति से कभी नहीं। यह तो परमात्मा हैं, इनसे हारना! कभी नहीं।
पश्चिम में बड़ा विचारक हुआ, हेनरी थारो। किसी ने उससे पूछा कि तुमने विवाह क्यों न किया? उसने कहा कि एक होटल से भोजन करके निकल रहा था, धक्कम-धुक्का थी, भीड़-भाड़ थी। एक स्त्री के पैर पर मेरा जरा पैर पड़ गया, वह एकदम आगबबूला होकर चिल्लायी कि शैतान कहीं के! हरामजादे!! तो मैं एकदम घबड़ा गया

कि अब यह फजीहत होगी। उसने लौटकर मुझे देखा, अरे! उसने कहा कि क्षमा करना! मैं समझी कि मेरे पति हो। तो उसी दिन मैंने तय कर लिया, कभी नहीं। और सब बन जाऊंगा, पति कभी नहीं बनूंगा।
एक गहन संघर्ष है। इसे समझने की कोशिश करो। पुरुष पाशविक-दृष्टि से स्त्री से ज्यादा बलशाली है। उसके पास ज्यादा "मस्कुलर" शक्ति है। शरीर से थोड़ा बड़ा भी है, शक्तिशाली भी है। स्त्री को सब तरह से दबा लेता है। तो फिर स्त्री भी उसे दबाने के सूक्ष्म रास्ते निकालती है। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। कमजोर की भी तरकीबें होती हैं सताने की। उसकी फिर सूक्ष्म तरकीबें होती हैं। तुम उसे मार सकते हो, पीट सकते हो, ठीक। लेकिन वह कुछ ऐसे छोटे-छोटे उपद्रव कर सकती है, जिनकी इकट्ठी मात्रा तुम्हें पागल कर दे। छोटे-छोटे दिखायी पड़ते हैं, सीधे तुमसे संबंध भी नहीं, तुम तर्क भी नहीं कर सकते।
जैसे जिस दिन तुम्हारी पत्नी से झंझट हो गयी हो और तुम उसको अकड़ बताये, परेशान किये, उस दिन घर में बर्तन, प्याली ज्यादा टूटेंगे। क्या करोगे? तुम यह तो कह ही नहीं सकते कि यह मेरे कारण टूट रहे हैं। वह सीधा तुम पर हमला कर ही नहीं रही। वह तुम्हें नहीं मार रही है, प्यालियों को मार रही है। बर्तन जोर से बजेंगे। लेकिन अगर दिनभर यह चलता रहा है, तो तुम्हारे मस्तिष्क पर धीरे-धीरे चोट पड़ रही है। तुम जानते हो कि बर्तन किसके सिर पर टूट रहे हैं। क्यों टूट रहे हैं। दरवाजे जोर से लगेंगे। घर में एक तूफान-सा मालूम पड़ेगा। सीधे वह तुम पर हमला भी नहीं करेगी। उसका हमला बड़ा सूक्ष्म होगा, बड़ा अहिंसक होगा, लेकिन वह तुम्हें तोड़ लेगी। किसी को एक चांटा मार देना उतना नहीं तोड़ता, जितना दिनभर उसको सताये चले जाओ। तो स्त्रियां उस कला में पारंगत हो गयी हैं। क्योंकि पुरुष ने उनको ऊपर से तो दबा लिया, लेकिन अब वे क्या करें? सीधा उत्तर देने का उनके पास कोई उपाय नहीं। तो उन्होंने परोक्ष उत्तर देने शुरू कर दिये। वे बूंद-बूंद सताती हैं। लेकिन बूंद-बूंद की इकट्ठी मात्रा बड़ी हो जाती है, गागर भर जाती है। और फिर वे छोटी-छोटी चीज में प्रतिरोध करती हैं।
रोज... मैं अनेकों घरों में ठहरता था--यात्रा के दिनों में... तो बैठे हैं, मैं पति के साथ बैठा हूं कार में, वह हार्न बजा रहे हैं, पत्नी कहती है, आते हैं। मगर आ ही नहीं रही। अब उसे पता है कि ठीक वक्त पर कहीं जाना है। लेकिन यह मौका है, जब वह दिखा देगी कि मालिक कौन है। यह मौका वह नहीं छोड़ सकती। वह अभी सज ही रही है। अभी वह साड़ी ही चुन रही है। पति भन्नाये जा रहे हैं। लेकिन अब करोगे भी क्या? अब इस वक्त झगड़ा-झांसा खड़ा करना और देर करवा देगा। इस वक्त शांति से पी जाना ही ठीक है। यह परोक्ष आक्रमण है।
तो अगर हो सकता है, तुम्हारी पत्नी को प्रार्थना-पूजा से कोई रस भी न आ रहा हो, लेकिन चूंकि तुम जिद्द किये जा रहे हो कि ध्यान करो, तो एक बात तो पक्की है कि वह ध्यान न करेगी। और ध्यान न करने के लिए ही हो सकता है पूजा- प्रार्थना में उलझी हो। तुम हटा लो अपना विरोध। तुम उससे जाकर क्षमा मांग लेना कि अब तक जो कहा-सुना, सब भूल थी, गलत था, मुझे माफ कर दे; अब मेरा कोई आग्रह नहीं कि तू ध्यान कर, अब तो तू जो कर, वही ठीक है। प्रार्थना कर, पूजा कर, मीरा भी पहुंची, तू भी पहुंच सकती है। तब तुमने उसे छुट्टी दे दी। अब वह सोचेगी कि वस्तुतः उसे मिल रहा है रस, या सिर्फ तुम्हारा विरोध करने का रस था? अब पुराने रस का तो कोई कारण न रहा। अगर विरोध का ही रस था, तो वह तो खतम हो गया। विरोध ही खतम हो गया। तो रस मिल रहा होगा, तो ठीक। न मिल रहा होगा, तो वह ध्यान की तरफ अपने-आप आ जाएगी। लेकिन तुम लाने की चेष्टा छोड़ दो। कोई किसी को जबर्दस्ती परमात्मा की तरफ कभी नहीं ला पाया है।

तीसरा प्रश्नः सोचती हूं दुख से छूटने के लिए किसी का सहारा पकडूं, किसी के प्रेम के साये में बैठूं, लेकिन उसके न मिलने पर भी संतोष ही होता है कि कम से कम अपना दुख और किसी की उपेक्षा तो साथ में है। कृपया बतायें कि ऐसा क्यों होता है?

मनुष्य बहुत जटिल है। सुख की खोज करता है। सुख न मिले, तो दुख से राजी
हो जाता है। क्योंकि खोज की भी एक सीमा है। फिर खोजते ही चले जाना व्यर्थ श्रम मालूम होता है। तो दुख से राजी हो जाता है। राजी ही नहीं होता, एक तरह का दुख में रस लेने लगता है। यह बड़ी खतरनाक चित्त की दशा है।
अगर दुख में तुम रस लेने लगे, तब तो तुमने सुख के सब द्वार बंद कर दिये। दुखी रहते-रहते, बहुत दिन तक दुखी रहते-रहते दुख के साथ संग बन गया, संबंध बन गये। फिर तो अगर कोई आ भी जाए सुख देने, तो भी तुम द्वार बंद कर लोगे। तुम कहोगे, दुख से अब पुराना नाता बन गया। अब छोड़े नहीं बनता। अब संग-साथ छोड़ना संभव नहीं है। इसी तरह मनुष्य के भीतर दुखवाद पैदा होता है। जो लोग दुखवादी हैं, वे प्रथम सभी सुखवादी थे। सुख की खोज में गये थे, लेकिन सुख तक पहुंच न पाये। न पहुंचने से यह सिद्ध नहीं होता कि सुख नहीं है। इससे इतना ही सिद्ध होता है कि तुम्हारे पहुंचने में कहीं भूल-चूक रही। तुमने कुछ गलत दिशा में खोजा। तुमने ठीक से नहीं खोजा। या पूरी त्वरा और शक्ति से नहीं खोजा। तुमने पूरा अपने को दांव पर नहीं लगाया। इतना ही सिद्ध होता है। सुख तो है। लेकिन सुख मिलता है बड़ी गहन खोज से। लेकिन रास्ते में धीरे-धीरे कष्ट और कष्ट और कष्ट झेलते-झेलते तुम्हारा कष्ट के साथ संग-साथ बन गया। तुम्हारी दोस्ती कष्ट से हो गयी। अब तो तुम्हें ऐसा डर लगेगा कि कहीं कष्ट छूट न जाए! नहीं तो अकेले हो जाएंगे। इस तरह दुखवाद पैदा होता है।
स्त्रियों में यह दुखवाद पुरुष से ज्यादा जल्दी पैदा हो जाता है। फिर दुख में एक रस--रुग्ण रस! उसे तुम बहुत मूल्य मत देना। फिर वह दुख के गीत गाने लगती हैं।
विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात
वेदना में जन्म, करुणा में मिला आवास
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात...
लेकिन फिर दुख को ही गीत बना लिया जाता है। फिर आंसू गिनने में ही समय व्यतीत होने लगता है। फिर आदमी अपने घाव के साथ ही खेलने लगता है। फिर पीड़ा होती है तो अच्छा लगता है। कुछ तो हो रहा है। ऐसा तो नहीं कि खाली हैं। इसको ख्याल रखना, आदमी खाली होने के बजाय दुखी होना पसंद करता है। कम से कम दुख में कुछ भराव तो है। बिल्कुल खाली होना कठिन मालूम होता है। या तो सुख, या दुख; खाली होने को कोई भी राजी नहीं। और यहां जीवन का एक बड़ा परम सत्य स्मरण में रखने योग्य है--जो खाली होने को राजी है, वही सुख को उपलब्ध होता है।
तो जितने लोग सुख की खोज करते हैं, वे धीरे-धीरे दुख से राजी हो जाते हैं। फिर दुख को पकड़कर बैठ जाते हैं। दुख ही उनका शृंगार हो जाता है। फिर वे दुख के गीत गाते हैं। फिर दुख की कविताओं को जन्म देते हैं।
विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात
वेदना में जन्म, करुणा में मिला आवास
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात...
ऐसे लोग दुख का संग्रह करने लगते हैं; दुख की तलाश करने लगते हैं। कहां-कहां दुख मिलेगा वहां-वहां जाते हैं। ऊपर से कहते हैं हम सुख चाहते हैं, लेकिन दुख की खोज करते हैं। और जब सुख आये तो द्वार बंद कर लेते हैं, दुख आये तो द्वार पर खड़े मिलते हैं। ऐसा बहुतों के साथ हो गया है। इसीलिए तो संसार में इतना दुख है। यह दुख होना नहीं चाहिए। मैं कल एक पंक्ति पढ़ रहा था। किसी ने कहा है--
रोग पैदा कर कोई तू जिंदगी के वास्ते
सिर्फ सेहत के सहारे जिंदगी कटती नहीं
खूब बात कही है!
सिर्फ सेहत के सहारे जिंदगी कटती नहीं।
सिर्फ स्वस्थ रहने से कहीं जिंदगी कटी है!
रोग पैदा कर कोई तू जिंदगी के वास्ते
तो लोग रोग पैदा कर लेते हैं। उन्होंने अनेक-अनेक नाम रखे हैं। महत्वाकांक्षा, राजनीति रोगों के नाम हैं। धन, पद, प्रतिष्ठा रोगों के नाम

हैं। सेहत तो प्रेम की है। प्रेम के अतिरिक्त सब रोग है। प्रेम चूक जाता है, तो आदमी और रोग खोजने लगता है। क्या करें! कुछ तो करना होगा, व्यस्त तो रहना होगा। जिंदगी है, तो खाली तो न बैठे रहेंगे।
जिस महिला ने पूछा है उसे जागना चाहिए। उसने बड़ा खतरनाक चुनाव कर लिया हैः "सोचती हूं दुख से छूटने के लिए किसी का सहारा पकडूं।" सोचना क्या है? पकड़ो! साचते-सोचते तो दिन निकल जाएंगे। सोचते-सोचते तो जीवन निकल जाएगा। इसमें सोचना क्या है? इसमें इतने सोच-विचार की बात ही कहां है? क्रोध करते वक्त नहीं सोचते, प्रेम करते वक्त बड़ा सोच-विचार करते हो! "सोचती हूं दुख से छूटने के लिए किसी का सहारा पकडूं, किसी के प्रेम के साये में बैठूं।"
बैठो! क्योंकि प्रेम की सुगंध में ही परमात्मा की पहली खबर मिलती है।
और जिसका प्रेम का फूल अनखिला रह गया, उसकी प्रार्थना का फूल कैसे खिलेगा? नहीं कि मनुष्य के प्रेम पर अंत है, लेकिन शुरुआत है। मनुष्य के प्रेम
से हम पहला अ, ब, स... क, ख, ग सीखते हैं। मनुष्य पर प्रेम का अंत नहीं है। मनुष्य पर प्रेम की समाप्ति नहीं, क्योंकि प्रेम तो विराट के साथ ही तृप्त हो सकता है। मनुष्य के साथ कैसे तृप्त होगा! लेकिन प्रेम के पहले चरण उथले में ही उठते हैं। जैसे कोई तैरना सीखने जाता है तो पहले उथले में सीखता है। एकदम से सागर में नहीं उतर जाता। किनारे पर सीखता है। जहां कोई भय नहीं है वहां सीखता है। फिर किसी का सहारा लेकर सीखता है। फिर जब तैरना आ जाता है, तो किसी के सहारे की जरूरत नहीं रह जाती। फिर अकेला दूर गहरे में चला जाता है।
मनुष्य का प्रेम परमात्मा के लिए किनारा है। मनुष्य का सहारा तो सीखने भर के लिए है। फिर तो नाव छोड़ देनी है अनंत के सागर में। लेकिन जो किनारे पर ही नहीं आया, वह सागर में कैसे उतरेगा?
"किसी के प्रेम के साये मैं बैठूं।" सोचना नहीं है, बैठो! सोचना प्रेम
के बिल्कुल विपरीत है। सोचनेवाले सोचते ही रह जाते हैं। प्रेम करनेवाले और सोचनेवालों में बड़ा भेद है।
मैंने सुना है इमेनुअल कांट एक बड़ा विचारक हुआ, एक स्त्री ने उससे प्रेम निवेदन किया। दो-तीन वर्ष तो उसके प्रेम में रही, राह देखी कि वह निवेदन करे। क्योंकि स्त्रियां प्रतीक्षा करती हैं। निवेदन भी आक्रमण है। वह स्त्रैण-मन को ठीक नहीं लगता। वह राह देखती है कि प्रेमी निवेदन करे। लेकिन कांट कुछ बोला ही नहीं। तीन साल बीत गये। मजबूरी में उस स्त्री ने कहा कि क्या कहते हो, कुछ कहो। ऐसे जिंदगी बीत जाएगी। मैं तुम्हारी होना चाहती हूं सदा के लिए। कांट ने कहा, मुझे डर था कि कभी न कभी यह सवाल उठेगा। मैं इस पर सोचूंगा।
वह बड़ा दार्शनिक था। बड़ी अदभुत कथा है। और कथा ही होती तो भी ठीक था, सही है। वह सोचता रहा, सोचता रहा। कहते हैं तीन साल बाद उसने जाकर उस युवती के घर पर दस्तक दी। युवती के पिता ने द्वार खोला। उसने पूछा कि कैसे आये, बहुत दिन से दिखायी नहीं पड़े। उसने कहा कि मैं यह कहने आया हूं कि मैंने निर्णय कर लिया कि विवाह करूंगा। पिता ने कहा, तुम बड़ी देर से आये। उसका तो विवाह हो भी चुका, एक बच्चा भी पैदा हो गया। तुम इतनी देर कहां रहे? कांट ने कहा, मैं सोचता रहा। जेब से उसने अपनी किताब निकाल कर बतायी। विवाह के पक्ष में और विपक्ष में जितनी भी बातें हो सकती थीं, सब उसने लिख रखी थीं। हिसाब लगाया था, पक्ष में कितनी हैं, विपक्ष में कितनी हैं; फायदा क्या होगा, हानि क्या होगी? और तब उसने यही तय किया था कि फायदा थोड़ा ज्यादा है। बहुत रत्तीभर का फर्क है। कोई ज्यादा फर्क नहीं है। हानि भी बहुत है, लेकिन फायदा थोड़ा ज्यादा है। और फायदा यह है कि उससे अनुभव होगा। सोचते-सोचते तो जिंदगी बीत जाएगी। सोचना किसलिए है? मौत तुमसे न पूछेगी कि सोच लिया, चलना है कि नहीं? मौत आ जाएगी। जैसे मौत आती है वैसे ही प्रेम को भी आने दो। द्वार-दरवाजे खोलो, भय क्या है?
प्रेम से लोग बहुत डरते हैं। लोग कहते तो हैं कि प्रेम चाहिए लेकिन डरते बहुत हैं। क्योंकि प्रेम एक तरह की मृत्यु है। अहंकार को विसर्जित करना होता है।

जैसा मैं देख पाता हूं, इस महिला के मन में बड़ा अहंकार होगा। अहंकार प्रेम का दुश्मन है। अहंकार किसी के साथ झुकने नहीं देता। प्रेम में तो झुकना पड़ेगा। प्रेम में तो दूसरे के लिए जगह बनानी पड़ेगी। अहंकार को थोड़ी- सी जगह खाली करनी पड़ेगी। जैसे तुम अकेले एक कमरे में रहते आये थे, तो एक बात थी। फिर किसी प्रेमी को लिवा लाये, मित्र को लिवा लाये, पत्नी को लिवा लाये, पति को लिवा लाये उसी कमरे में, तो अब सब नया इंतजाम करना होगा। अब बहुत-से समझौते करने होंगे। दो जहां रहेंगे वहां बहुत-से समझौते होंगे। संघर्ष भी होगा। कभी अशांति के क्षण भी होंगे। कभी कलह भी होगी। कभी सौंदर्य के, सत्य के, संगीत के फूल भी खिलेंगे। कभी कांटे भी चुभेंगे। हर गुलाब की झाड़ी पर कांटे हैं। प्रेम तो गुलाब का फूल है। बहुत कांटे हैं उसके आसपास। कांटों से आदमी डरते हैं। फूल तो चाहते हैं, कांटों से डरते हैं।
लेकिन जिसको फूल चाहिए, उसे कांटों को भी स्वीकार करना होगा। कांटों में ही फूल का मजा है। कांटों में ही फूल का रस है। नहीं तो प्लास्टिक के फूल खरीद लाओ। इसीलिए तो वेश्याएं दुनिया में पैदा हुईं। वे प्रेम के डर के कारण पैदा हुईं। वेश्या का मतलब है, प्लास्टिक का फूल। कोई नाता-रिश्ता नहीं। कोई कांटे चुभने का कारण नहीं। जब किसी स्त्री को या किसी पुरुष को तुम अपने पास लेते हो, तो पास लेने में खतरा है। दो दुनियाएं पास आ रही हैं। संघर्ष होगा। लेकिन संघर्ष प्रीतिकर है। समझ बढ़ेगी। प्रौढ़ता आयेगी। पूछा है, "सोचती हूं दुख से छूटने के लिए किसी का सहारा पकडूं, किसी के प्रेम के साये में बैठूं।"
मैं यह तो नहीं कह सकता कि दुख से छूट जाओगी प्रेम का साया मिल जाए तो, इतना कह सकता हूं--दुख आंख खोलने में सहयोगी होगा। प्रेम भी दुख देगा, लेकिन प्रेम का दुख बड़ी मधुर पीड़ा जैसा है। बिना प्रेम के जो दुख है, वह तो बस कांटे ही कांटे हैं। प्रेम के दुख में कांटे तो हैं, लेकिन फूल भी हैं। और प्रेम तुम्हें तृप्त कर देगा, यह भी मैं नहीं कहता। प्रेम सच तो तुम्हें और भी अतृप्त करेगा, और बड़े प्रेमी की तलाश पर भेजेगा। क्योंकि कोई आदमी, या कोई स्त्री प्रेम को पूरा नहीं कर सकते। प्रेम की आखिरी तलाश तो परमात्मा के लिए है। उससे कम पर तृप्ति होनेवाली नहीं है। लेकिन, सहारा मिलेगा। उस बड़ी यात्रा पर जाने की हिम्मत आयेगी। जब आदमी के प्रेम में ऐसे फूल खिल जाते हैं--छोटे सही, जल्दी कुम्हला जानेवाले सही; सुबह खिलते हैं, सांझ मुर्झा जाते हैं, सही--लेकिन जब आदमी के प्रेम में इतने फूल खिल जाते हैं, तो आदमी और परमात्मा के प्रेम में कैसे फूल न खिलेंगे!
तुम्हें पहली भनक परमात्मा की प्रेम के द्वार से ही मिलेगी। तो मैं
यह तो नहीं कहता कि तुम्हारा दुख मिट जाएगा, इतना कह सकता हूं कि तुम्हारा दुख सृजनात्मक हो जाएगा। सुख की थोड़ी झलकें मिलेंगी। उन्हीं झलकों का सहारा पकड़कर, निचोड़ निकालकर तुम महासुख की यात्रा पर जा सकोगे।
फिर कहा है, "लेकिन उसके न मिलने पर भी संतोष ही होता है।" यह खतरनाक संतोष है। यह संतोष नहीं है, सांत्वना है। संतोष बड़ा बहुमूल्य शब्द है। उसका ऐसा उपयोग कभी मत करना। यह सांत्वना है। यह अपने को समझा लेना है। और आदमी बड़ा कुशल है अपने को समझा लेने में। अंगूर खट्टे हैं। जो नहीं मिलता, वह पाने योग्य ही नहीं। जिसको हम नहीं खोज पाते, हमारा अहंकार कहने लगता है हम खोजना ही कहां चाहते हैं! गरीब कहने लगता है धन में क्या रखा है। गरीब कहने लगता है, धन में क्या रखा है! अमीर कहे तो समझ में आता है। गरीब कहे तो कुछ समझ में आता नहीं। गरीब कहने लगता है, क्या रखा है इस संसार को जीत लेने में। सिकंदर, नेपोलियन कहें; महावीर, बुद्ध कहें; ठीक। अभी संसार को जीता नहीं, किससे कह रहे हो, क्या रखा है संसार को जीत लेने में? कहीं मन को समझा तो नहीं रहे। कहीं मन चाहता तो नहीं है कि जीत लें संसार को, लेकिन देखते हैं अपनी असामर्थ्य, जीतना तो कठिन है, तो अहंकार अपने को बचा लेता है। अहंकार कहता है, जीतना ही कौन चाहता है!
तुमने कभी ख्याल किया, तुमने अपने जीवन में कितनी पर्तें सांत्वना की बना ली हैं। उन सांत्वनाओं के कारण ही तो तुम आबद्ध हो गये हो, बंध गये हो, जकड़ गये हो। तोड़ो सांत्वनाएं! यह संतोष नहीं है।

तुमने कहावत सुनी है--"संतोषी सदा सुखी।" गलत है। "सुखी सदा संतोषी।" संतोष से कभी सुख नहीं आता, सुख से जरूर संतोष आता है। संतोष तो सिर्फ अपने को समझा लेने जैसा है। नहीं है हालत आगे बढ़ने की, क्या करें, तो तुम समझा लेते हो। तुम कहते हो, हम जाना नहीं चाहते, पाने योग्य कुछ है ही नहीं, हमें तो पहले से पता है वहां कुछ भी नहीं रखा है। लेकिन जरा गौर से अपने मन का निरीक्षण करना। और अगर यह संतोष हो, तब तो ठीक है। फिर तो प्रश्न पूछने की जरूरत ही नहीं। अगर यह संतोष होता तो प्रश्न उठता ही नहीं। संतोष से कभी प्रश्न उठा है? संतोष तो ऐसा परितृप्त है, ऐसा परितृप्त है, कि कहां प्रश्न की गुंजाइश! यह सांत्वना है। और स्त्रियां सांत्वना में बड़ी कुशल हैं। क्योंकि संघर्ष में बड़ी कमजोर हैं।
"लेकिन उसके न मिलने पर भी संतोष ही होता है।" यह संतोष मुर्दा है। इस लाश को हटाओ! अन्यथा तुम भी इस लाश के साथ मर जाओगे। मुर्दों की दोस्ती ठीक नहीं। मुर्दों के साथ ज्यादा देर रहना भी ठीक नहीं। क्योंकि जिनके साथ हम रहते हैं, वैसे ही हो जाते हैं।
"संतोष होता है कि कम से कम अपना दुख और किसी की उपेक्षा तो साथ में है।" यह भी कोई बात हुई! यह तो ऐसा हुआ कि सोये हैं जमीन पर और सोच रहे हैं कि कम से कम बिस्तर नहीं है यह भी तो संतोष है। बैठे हैं जमीन पर और सोच रहे हैं उस कुर्सी की बात, जो नहीं है कमरे में। इससे संतोष होता है कि कुर्सी नहीं है! इससे संतोष होता है, कि बिस्तर नहीं है! इससे संतोष होता है कि भोजन नहीं है! इससे संतोष होता है कि स्वास्थ्य नहीं है, कोई संगी-साथी नहीं है! अगर इससे संतोष हो रहा है, तो यह संतोष तो बीमारी है। इसे तोड़ो। असंतुष्ट बनो, अगर यह संतोष है तो। खोजो।
हां, मैं भी कहता हूं एक दिन प्रेमी के भी पार जाता है प्रेम, लेकिन पहले प्रेमी तो हो। प्रेमी से कुछ भी न मिलेगा। प्रेम की और बड़ी प्यास मिलेगी, और बड़ा असंतोष मिलेगा, परमात्मा को पाने की जलती हुई प्यास मिलेगी। प्रेमी की मौजूदगी से तुम्हें पता चलेगा कि नहीं, इस दिशा से कुछ मिलनेवाला नहीं। मगर प्रेमी की मौजूदगी के बिना यह पता नहीं चल सकता है। एक आदमी रास्ते पर खड़ा है भिखारी की तरह। और फिर महावीर भी रास्ते पर आकर खड़े हो गये भिखारी की तरह। समझ लो कि दोनों भिखारी साथ-साथ चल रहे हैं। क्या ये दोनों एक ही जैसे हैं? एक महावीर हैं जिन्होंने महल देखे, महलों का सुख देखा, सुख की व्यर्थता देखी, महलों की असारता देखी। राज्य देखा, साम्राज्य देखा, राख देखी सब। और एक दूसरा भिखारी चल रहा है। उसने कुछ भी नहीं देखा। उसके मन में अभी भी सपने हैं। अभी भी कोई उसे राजा बना दे तो वह तत्क्षण तैयार हो जाएगा। हालांकि वह भी कहता है, कुछ सार नहीं। महावीर भी कहते हैं, कुछ सार नहीं। दोनों एक ही तरह के शब्दों का उपयोग करते हैं। लेकिन क्या दोनों के अर्थ एक ही हो सकते हैं? दोनों के अर्थों में जमीन-आसमान का फर्क है।
महावीर कहते हैं जानकर। वह दूसरा आदमी कह रहा है मानकर। अगर धन पड़ा मिल जाए तो महावीर उसके पास से ऐसे ही गुजर जाएंगे जैसे मिट्टी पड़ी है। वह दूसरा आदमी न गुजर सकेगा। वह कहेगा छोड़ो बकवास, हो गयी ज्ञान की बहुत बातचीत! अब मिल ही गया, तो अब इसका उपभोग कर लें!
"कम से कम अपना दुख और किसी की उपेक्षा तो साथ में है।" यह भी खूब धन! इसको धन कहते हो? इस धन को, इस धन के भ्रम को तोड़ो।
बिना प्यार के चले न कोई आंधी हो या पानी हो
नयी उमर की चुनरी हो या कमरी फटी-पुरानी हो
तपे प्रेम के लिए धरित्री जले प्रेम के लिए दीया
कौन हृदय है नहीं प्रेम की जिसने की दरबानी हो
तट-तट रास रचाता चल
पनघट-पनघट गाता चल
प्यासी है हर गागर दृग की
गंगाजल ढलकाता चल
कोई नहीं पराया, सारी धरती एक बसेरा है
इसकी सीमा पश्चिम में तो मन का पूरब डेरा है

श्वेत बरन या श्याम बरन हो सुंदर या कि असुंदर हो
सभी मछलियां एक ताल की क्या मेरा क्या तेरा है
गलियां-गांव गुंजाता चल
पथ-पथ फूल बिछाता चल
हर दरवाजा राम-दुवारा सबको शीश झुकाता चल
हर दरवाजा राम-दुवारा सबको शीश झुकाता चल--अगर प्रेम किसी से किया तो राम-दुवारा खुला। जहां प्रेम ने दस्तक दी, वहीं राम-दुवारा खुला।
प्रेम से कभी बचना मत। प्रेम में उतरना। प्रेम से डरना मत। प्रेम बड़ी पीड़ा देगा, प्रेम जलायेगा, प्रेम अग्नि बन जाएगा, लेकिन अग्नि से ही गुजरकर कोई कुंदन बनता है, कोई शुद्ध स्वर्ण बनता है। प्रेम की अग्नि से घबड़ाना मत, भागना मत, अन्यथा अधकचरे, अधूरे, मिट्टी से भरे रह जाओगे।
तो मैं यह नहीं कहता कि प्रेम तुम्हें सुख ही सुख देगा। प्रेम कोई फूलों-बिछी सेज है, ऐसा मैं नहीं कहता। प्रेम बड़ी पीड़ा की डगर है। लेकिन उससे गुजरना जरूरी है। और उससे गुजरकर ही तुम प्रार्थना के योग्य बनोगे, प्रार्थना के लिए परिपक्व बनोगे। जैसे ही कोई व्यक्ति किसी के प्रेम में डूबा, स्वाद मिलना शुरू होता है। बहुत पर्दों के पार से परमात्मा की पहली झलक मिलनी शुरू होती है। इस पृथ्वी पर प्रेम से ज्यादा परमात्मा की झलक देनेवाली कोई अनुभूति नहीं है।
प्रेम इस जगत में उस जगत की किरण है। प्रेम इस अंधेरी रात में दूर परमात्मा का चमकता हुआ सितारा है। बहुत दूर है, लेकिन इस अंधेरे को पार करके एक किरण आ रही है। तुम उस किरण का सहारा पकड़ लो। ऐसा तो मैंने कभी नहीं देखा कि प्रेम से कोई तृप्त हुआ हो। इसलिए डर कुछ भी नहीं है। प्रेम तुम्हें और अतृप्त करेगा। नये शिखरों की चुनौती मिलेगी। नयी ऊंचाइयां खोजने के भाव मिलेंगे।
प्रेमियों में जो संघर्ष है, उसका कारण तुमने कभी सोचा? प्रेमियों में सदा संघर्ष बना रहता है, उसका कुल कारण इतना है कि हर प्रेमी यह कोशिश कर रहा है कि दूसरा परमात्मा की तरह हो। यही संघर्ष है। जहां भी दूसरा परमात्मा से थोड़ा नीचे पड़ता है, कलह शुरू हो जाती है। पति भी यही चेष्टा कर रहा है कि पत्नी परमात्मरूप हो, दिव्य हो। जैसे ही उससे नीचे पड़ती है, अड़चन होती है। पत्नी भी यही सोच रही है कि पति परमात्मा जैसा हो। दोनों की खोज सही है। और इसीलिए संघर्ष है। धीरे-धीरे यह अनुभव में आता है कि आदमी की सीमा है। तब नाराजगी चली जाती है। तब यह ख्याल उठता है कि हम खोज ही गलत जगह रहे हैं। हमें थोड़े और ऊंचाई पर आंख उठानी होगी। आदमी के पार देखना होगा। या आदमी के गहरे में देखना होगा।
तुमने यह भी कभी ख्याल किया कि जैसे ही तुम किसी के प्रेम में पड़ते हो, तुम वही नहीं रह जाते जो तुम अब तक थे। तुम्हारे भीतर कुछ नया उठने लगता है, कोई पंख खोलने लगता है। कोई आकाश की तरफ उड़ने के लिए तत्पर हो जाता है। तुमने कभी ख्याल किया कि प्रेम के साथ, जो भी श्रेष्ठ भावनाएं हैं अचानक तुममें जगने लगती हैं। घृणा के साथ जो-जो अशुभ है, तुम्हारे भीतर घना होने लगता है। घृणा उठी कि हिंसा उठी। घृणा उठी कि क्रोध उठा। घृणा उठी कि तुम मरने-मारने को, मिटाने को तत्पर हुए। प्रेम उठा कि सृजन उठा। प्रेम उठा कि तुम बनाने को, संवारने को, शृंगार करने को राजी हुए। इधर प्रेम उठा कि शुभ भावनाओं का जन्म उसके साथ-साथ होने लगता है। प्रेम जितना ऊंचा उड़ता है, उतनी ही शुभता भी तुम्हारे भीतर ऊंची उठती है। जितने तुम प्रेम में जाते हो, उतने ही तुम दिव्य होने लगते हो।
नया-नया प्रेम तुम्हारे चेहरे पर एक ऐसी गरिमा दे जाता है, जो तुमने पहले कभी न जानी थी। एक आभामंडल, एक ऊर्जा, एक नया प्रकाश तुम्हारे चेहरे को घेर लेता है। तुम्हारी चाल बदल जाती है। तुम्हारी चाल में मीरा का थोड़ा नाच आ जाता है। माना कि वह परम प्रेमी की खोज पर थी, इसलिए पूरा नाच तो नहीं हो सकता, लेकिन थोड़ी घूंघर तो बजती है। रुक-रुककर बजती है। थोड़ी घूंघर तो बजती है। पायल की वैसी धुन नहीं होती कि आकाश को गुंजा दे, लेकिन आंगन को तो गुंजाती है। छोटा-सा कोने में दीया तो जलता है। महासूरज नहीं निकलता, जैसा कबीर कहते हैं कि हजार-हजार सूरज पैदा हो रहे हैं, लेकिन एक छोटा-सा

दीया तो जलता है। दीया भी तो सूरज का ही प्रतिनिधि है। छोटा प्रतिनिधि सही। बहुत क्षुद्र सही। लेकिन सूरज की किरण में जो है, वही तो दीये की किरण में भी है। स्वभाव तो एक है।
नहीं कोई सागर नहीं उमड़ने लगता, लेकिन बूंद तो बरसती है। बूंद में वही है, जो सागर में है। जिसने बूंद को पहचाना, वह कभी सागर को भी खोज ही लेगा। जिसने बूंद को चखा, वह कितने दूर, कितने दिन तक सागर से वंचित रहेगा? जैसे- जैसे प्रेम की झलक मिलनी शुरू होती है, तुम्हारी प्रेम की आशा बढ़नी शुरू होती है।
अभाव से राजी मत होना। अनुपस्थिति से राजी मत होना। अभाव नर्क है। भावात्मक बनो। विधायक बनो। प्रेम नहीं है, इससे राजी मत हो जाना। तोड़ो चट्टानें हृदय की! बहने दो झरना प्रेम का! सांसारिक, तो सांसारिक सही। शरीर का, तो शरीर का सही। शुरू तो करो। कोई पहले कदम पर ही तो स्वर्ग नहीं पहुंच जाता है। लेकिन पहला कदम तो उठाओ। लाओत्सू ने कहा है, एक-एक कदम चलकर हजारों मील की यात्रा पूरी हो जाती है। एक कदम तो उठाओ।
प्रेम से थोड़े से लोग राजी हो जाते हैं। बहुत लोग प्रेम के अभाव में राजी हो जाते हैं। जो प्रेम के अभाव में राजी हो गये, वे तो अंधेरी रात में भटक गये। जो प्रेम से राजी हो गये, वे दीये को ही लेकर बैठे रह गये, जबकि सूरज उनका हो सकता था।
है कताअ एक जलवे पर
शौक अभी तंगदस्त है शायद
जो एक ही जलवे से राजी हो गया और सोचा कि काफी है, उसकी प्यास, उसका प्रेम, उसकी अभीप्सा तंगदस्त है। बड़ी कृपण है। कंजूस है। झोली भी फैलायी तो पूरी न खोलकर फैलायी।
है कताअ एक जलवे पर
एक जलवे को काफी मान लिया! प्रेम की एक छोटी-सी ज्योति को काफी मान लिया!
शौक अभी तंगदस्त है शायद।
लेकिन मेरे देखे सबसे अभागे वे हैं जिन्होंने प्रेम के अभाव में संतोष कर लिया। उसके बाद उनका नंबर है, जिन्होंने प्रेम से संतोष कर लिया। सौभाग्यशाली तो वे हैं, जिन्होंने अभाव को तो टिकने न दिया, प्रेम को भी न टिकने दिया। प्रार्थना तक पहुंचे, परमात्मा तक पहुंचे।
रोज नया असंतोष जगाओ। धर्म संतोष नहीं है, परम असंतोष है। परम के लिए असंतोष है। क्षुद्र से राजी मत हो जाओ। जब तक विराट ही न मिल जाए, तब तक ठहरना मत। तब तक पड़ाव बहुत जगह बनाने होंगे--मील के कई पत्थर मिलेंगे--रुक जाना, रात ठहर जाना, लेकिन सुबह चल पड़ने की तैयारी रखना। घर मत बनाना कहीं। विश्राम कर लेना, विराम कर लेना, लेकिन ध्यान रखना, विश्राम सुबह चलने की तैयारी है।
प्रेम के मैं पक्ष में हूं। क्योंकि मेरे देखे प्रेम ही सेतु है दृश्य और अदृश्य के बीच, शरीर और अशरीरी के बीच, पदार्थ और परमात्मा के बीच।
गीत आकाश को धरती का सुनाना है मुझे
हर अंधेरे को उजाले में बुलाना है मुझे
फूल की गंध से तलवार को सर करना है
और गा-गा के पहाड़ों को जगाना है मुझे
जब तुम्हारे हृदय में प्रेम नहीं, तुम पहाड़ हो। चट्टान... और चट्टान...
और चट्टान... । झरने को रोके बैठे हो। जैसे ही तुम्हारे भीतर प्रेम उमगा, किरण उतरी, टूटी चट्टानें, निर्झर बहा।
गीत आकाश को धरती का सुनाना है मुझे
ये वृक्ष क्या करते हैं जब खिल जाते हैं? ये गीत धरती का आकाश को सुना देते हैं। ये धरती की खबर आकाश को दे देते हैं कि धरती ही मत समझ लेना, फूल भी हैं। आकाश को भी मात कर देनेवाले फूल हैं धरती में छिपे। मिट्टी में सुगंध भी है, रंग भी है। इंद्रधनुषी रंग भी है।

फूल धरती की भेंट है आकाश को। जब कोई मनुष्य खिलता है तो सीमा असीम से बातें करती है। क्षुद्र विराट से बातें करता है। तब बूंद सागर से बात करती है, संवाद करती है। धरती का गीत, सीमा का गीत, बूंद का गीत!
गीत आकाश को धरती का सुनाना है मुझे
हर अंधेरे को उजाले में बुलाना है मुझे
और जब तक तुम प्रेम को दाबे पड़े हो, तब तक तुम अंधेरे में पड़े हो। जागो! जलाओ दीया प्रेम का। मेरे मन में प्रेम का परिपूर्ण स्वीकार है। जिन्होंने प्रेम की निंदा की, उन्होंने तुम्हें विषाक्त कर दिया है। जिन्होंने प्रेम की निंदा की, उन्होंने तुम्हें प्रेम से भयभीत कर दिया है। उस भय के कारण तुम अकेले पड़े रह गये हो। तुम भटकते हो, लेकिन परमात्मा से कोई साथ नहीं बन पाता। तुम्हारे पास हाथ नहीं, जो परमात्मा का हाथ पकड़ लें। प्रेम वही हाथ तुम्हें देगा।
हर अंधेरे को उजाले में बुलाना है मुझे
फूल की गंध से तलवार को सर करना है
जीवन कठिन है, तलवार-जैसा है।
फूल की गंध से तलवार को सर करना है
और जीतना है प्रेम से। यही तो चुनौती है। यही तो अभियान है मनुष्य का। यही तो मनुष्य की उत्क्रांति है। विकास! या जो भी कहो। यही तो मनुष्य के रूपांतरण की कीमिया है।
फूल की गंध से तलवार को सर करना है
जीतना है प्रेम से इस संसार को। जीतना है प्रेम से इस देह को। जीतना
है प्रेम से इन इंद्रियों को। जीतना है प्रेम से इस मन को। जीतना है प्रेम से पर को, स्व को।
फूल की गंध से तलवार को सर करना है
और गा-गा के पहाड़ों को जगाना है मुझे
और गीत गाकर ही जगाना है। झकझोर कर नहीं। कोई बिजली के धक्के देकर नहीं; गीत गा-गा के! जैसे मां सुबह किसी को उठाती है। एक गीत गाती है। या रात अपने बेटे को सुलाती है, एक लोरी गाती है। जो मैं तुमसे बोले चला जाता हूं, वह कुछ और नहीं है। तुम्हारे भीतर के पहाड़ को जगाना है।
गीत गा-गा के पहाड़ों को जगाना है मुझे
और सारे जागरण का सूत्र है--प्रेम।
डरो मत। प्रेम मिटाता है। निश्चय ही मिटाता है। लेकिन प्रेम जन्माता
भी है। प्रेम सूली है, सच। प्रेम सिंहासन भी है। और जो सूली चढ़ता है, वही सिंहासन पर पहुंचता है।
रात इधर ढलती है तो दिन उधर निकलता है
कोई यहां रुकता है तो कोई वहां चलता है
दीप और पतंगे में फर्क सिर्फ इतना है
एक जल के बुझता है एक बुझ के जलता है
प्रेम जलाता है। लेकिन जगाता भी है। प्रेम मिटाता है। लेकिन जन्माता
भी है। प्रेम मृत्यु है और महाजीवन की शुरुआत भी। व्यर्थ की निंदा छोड़ो। चलो प्रेम की डगर पर। और प्रश्न पूछा है किसी स्त्री ने। इसलिए तो और भी जरूरी है यह समझ लेना कि प्रेम से बचना मत। पुरुष तो प्रेम से बचकर भी कभी पहुंच सकता है। ध्यानी तो प्रेम को छोड़कर भी पहुंच सकता है। कठिन होगी डगर, बड़ी कठिन होगी--सरल हो सकती थी, गीत, रस भरी हो सकती थी--रूखी-सूखी होगी डगर, धूल धवांस भरी होगी, कंकड़, पत्थर, कंटकाकीर्ण होगा मार्ग, लेकिन पहुंच सकता है। लहूलुहान पहुंचेगा, लेकिन पहुंच सकता है। लेकिन स्त्री तो बिना प्रेम के पहुंच ही नहीं सकती। वह खो ही जाएगी इस डगर में।
दुनिया में दो ही धर्म वस्तुतः होने चाहिए। दो ही धर्म वस्तुतः हैं।
एक स्त्री का धर्म, एक पुरुष का धर्म। और दुनिया के सारे धर्म दो हिस्सों में बांटे जा सकते हैं। पुरुष का धर्म कहता है, छोड़ो प्रेम। स्त्री का धर्म कहता है, बनाओ प्रेम को पूजा। लेकिन प्रेम होगा, तो ही तो पूजा बनेगी! जिसने पूछा है, उसे मैं कहूंगा, घबड़ाओ मत। जीवन अनुभव के लिए है। इसे बंद कोठरी मत बनाओ। गुफा में मत छिपो। खुलो, आने दो हवाएं, आने दो नयी सूरज

की किरणें। जीओ। खतरनाक है जीना। लेकिन खतरा जीवन का लक्षण है। सुरक्षा में मौत है, सुरक्षा में कब्र है। उतरो। तूफान आयेंगे प्रेम के, झेलना। उन्हीं तूफानों में तुम्हारे भीतर कुछ सोया हुआ जगेगा, कोई चट्टान टूटेगी, निर्झर बहेगा। और घबड़ाना मत--
रात इधर ढलती है तो दिन उधर निकलता है
कोई यहां रुकता है तो कोई वहां चलता है
एक द्वार बंद हुआ नहीं कि दूसरा खुल ही जाता है।
दीप और पतंगे में फर्क सिर्फ इतना है
एक जल के बुझता है एक बुझ के जलता है
पतंगे बन सको तो पतंगे बनो। दीया बन सको तो दीया बनो। लेकिन दीया भी जलता है और पतंगा भी जलता है। दीया जलकर बुझता है, पतंगा बुझकर जलता है। कोई भी बनो। दीये बनो या पतंगे बनो। पतंगों की प्रशंसा में तो बहुत गीत लिखे गये हैं कि पतंगा जलता है, दीवाना है। दीये की प्रशंसा की किसी ने फिकिर नहीं की कि दीया भी पतंगे के लिए ही जल रहा है, कि आओ, कि प्रतीक्षा कर रहा है। जहां पतंगे और दीये का मिलना होता है, जहां दोनों अलग-अलग मिट जाते हैं और एकरूप हो जाते हैं, वहीं प्रेम का जन्म है।
परमात्मा से जब जुड़ोगे जुड़ोगे, अभी किसी छोटे परमात्मा से जुड़ो। सूरज
जब पाओगे, पाओगे; अभी किरण पास आती है उसे तो पकड़ो। लेकिन जीवन विधायक हो, प्रेम का स्वीकार, सम्मान करने से भरा हो, तो मनुष्य ज्यादा देर तक मंदिर से दूर नहीं रह सकता।
प्रेम द्वार है।

आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग दो
नौवां प्रवचन

प्रेम का आखिरी विस्तारः अहिंसा

सव्वेसिमासमाणं, हिदयं गब्भो व सव्वसत्थाणं।
सव्वेसिं वदगुणाणं, पिंडो सारो अहिंसा हु।। 102।।
न सो परिग्गहो वुत्तो, नायपुत्तेण ताइणा।
मुच्छा परिग्गहो वुत्तो, इइ वुत्तं महेसिणा।। 103।।
मरदु व जियदु व जीवो, अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा।
पयदस्स णत्थि बंधो, हिंसामेत्तेण समिदीसु ।। 104।।
आहच्च हिंसा समितस्स जा तू, सा दव्वतो होति ण भावतो उ।
भावेण हिंसा तु असंजतस्सा, जो वा वि सत्ते ण सदा वधेति।।
संपत्ति तस्सेव जदा भविज्जा, सा दव्वहिंसा खलु भावतो य।
अज्झत्थसुद्धस्स जदा ण होज्जा, वधेण जोगो दुहतो वऽहिंसा ।। 105।।
जयणा उ धम्मजणणी, जयणा धम्मस्स पालणी चेव।
तवुड्ढीकरी जयणा, एगंत सुहावहा जयणा।। 106।।
जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सए।
जयं भुंजंतो भासंतो, पावं कम्मं न बंधइ।। 107।।

आज का पहला सूत्र--"अहिंसा सब आश्रमों का हृदय, सब शास्त्रों का रहस्य
और सब व्रतों और गुणों का पिंडभूत सार है।"
सव्वेसिमासमाणं, हिदयं गब्भो व सव्वसत्थाणं।
सव्वेसिं वदगुणाणं, पिंडो सारो अहिंसा हु।।
महावीर की सारी देशना इस सूत्र में संचित है। अहिंसा का अर्थ समझ लें
तो सारा जिन-शास्त्र समझ में आ गया। मनुष्य ऊर्जा है, शुद्ध शक्ति है। इस शक्ति के दो आयाम हो सकते हैं। या तो शक्ति विध्वंसक हो जाए--मिटाने लगे, तोड़ने लगे। या शक्ति सृजनात्मक हो जाए--बनाये, बसाये, निर्माण करे। शक्ति तो हमारे पास है। कैसा हम उपयोग करेंगे शक्ति का, हमारे बोध पर, हमारे ध्यान पर, हमारी समझ पर निर्भर है। हाथ में तलवार दे दी है प्रकृति ने। हम मारेंगे या बचायेंगे हम पर निर्भर है। हाथ में रोशनी दे दी है प्रकृति ने। हम अंधेरे को तोड़ेंगे या घरों को जलायेंगे हम पर निर्भर है।
शक्ति सृजनात्मक हो जाए, तो अमृत हो जाती है। शक्ति विध्वंसात्मक हो जाए तो जहर हो जाती है। भाषाकोश में तो लिखा है कि जहर और अमृत अलग-अलग चीजें हैं। जीवन के कोश का ऐसा सत्य नहीं। जीवन के कोश में तो लिखा है कि अमृत का ही विकृत रूप जहर है। और जहर का ही सुकृत रूप अमृत है।
हिंदुओं की पुरानी कथा है सागर-मंथन की। उसमें एक ही मंथन से जहर भी निकला, उसी मंथन से अमृत भी निकला। एक ही स्रोत से जहर भी आया, उसी स्रोत से अमृत भी आया। स्रोत एक है।
अमृत की कहीं और खोज मत करना। जो तुम्हारे जीवन में आज जहर की तरह है, वहीं से अमृत भी निकलेगा, थोड़ा मंथन चाहिए। ऐसा समझो कि अमृत जहर का ही नवनीत है।
एडोल्फ हिटलर के जीवन में ऐसा उल्लेख है कि वह चित्रकार होना चाहता था। कुछ बनाना चाहता था सुंदर, लेकिन चित्रशाला में उसे प्रवेश न मिला। वह असफल हो गया प्रवेश की परीक्षा में। और उसी दिन से उसके जीवन में जो अमृत हो सकता था वह जहर होने लगा। बनाने की आकांक्षा मिटाने की आकांक्षा में बदल गयी। एडोल्फ हिटलर ने बड़ा विध्वंस किया। अगर महावीर को अहिंसा का शास्त्र पता है, तो एडोल्फ हिटलर को हिंसा का शास्त्र पता है। इससे ज्यादा वीभत्स और विकराल दृश्य किसी मनुष्य ने कभी उपस्थित न किया था। मगर होना चाहता था चित्रकार।
और भी विचारणीय बात है कि इतने विध्वंस, हिंसा और विनाश के बीच भी उसकी मूल आकांक्षा समाप्त नहीं हो गयी। जब उसे फुर्सत मिलती तो वह कागज पर छोटे-मोटे चित्र बनाता। जीवन के अंतिम क्षण तक कहीं कोई ऊर्जा सृजनात्मक होने की खोज करती रही। जो गीत गाना चाहता था, उससे गालियां निकलीं।

ध्यान रखना, वे ही शब्द, वही ध्वनि गाली बन जाती है; वे ही शब्द, वही ध्वनियां गीत बन जाती हैं। मनुष्य सृजनात्मक ऊर्जा है। अगर सृजन न हो पाये, तो जीवन में विस्फोट होता है घृणा का, हिंसा का, विद्वेष का।
महावीर के धर्म का सार है, सृजनात्मक होने की कला। ऐसा जैन-मुनि तुमसे
न कहेंगे। क्योंकि उन्हें खुद भी ठीक-ठीक पता नहीं कि अहिंसा का सारसूत्र क्या है। वे तो समझते हैं अहिंसा का सारसूत्र है पानी छानकर पी लेना, कि रात्रि भोजन न करना, कि मांसाहार न करना। ये तो बड़ी गौण बातें हैं--परिधि की बातें हैं। इन्हें साधने से अहिंसा नहीं सधती, अहिंसा सध जाए तो ये जरूर सधती हैं। इन्हें साध लेने से अहिंसा नहीं सधती। हिंसा इतनी आसान नहीं है कि पानी छानकर पी लिया और मिट गयी। पानी छानकर पीने में सृजनात्मकता क्या है? मांसाहार न किया तो हिंसा मिट गयी, काश, इतना आसान होता!
हिंसा तुम्हारे भीतर है। मांसाहार करने से नहीं आती। तुम मांसाहार करना रोक सकते हो। हिंसा नये द्वार-दरवाजे खोल लेगी। हिंसा तुम्हारे भीतर है। जब तक तुम सृजनात्मक न हो जाओ, जब तक तुम गीत न गुनगुनाने लगो, गाली आयेगी और आयेगी। जब तक तुम शिखर पर न चढ़ने लगो जीवन के, तुम अतल खाइयों में गिरोगे और गिरोगे। ऊर्जा को कुछ करने को चाहिए। या तो मूर्तियां बनाओ, अन्यथा मूर्तियां तोड़ोगे। बीच में नहीं रुक सकते। बीच में कोई रुकने की जगह नहीं है।
तो कभी-कभी ऐसा आश्चर्यजनक इतिहास घटता है--हिंदू मूर्ति बनाते रहे, बौद्ध-जैन मूर्ति बनाते रहे, मुसलमान मूर्ति तोड़ते रहे। अब थोड़ा सोचने- जैसा है। तुम्हें अगर मूर्ति से कोई प्रयोजन ही न था, तो तोड़ने की भी झंझट क्यों उठायी? लेना-देना ही न था कुछ तुम्हें! मूर्ति व्यर्थ थी, तो तोड़ने तक की झंझट क्यों उठायी? व्यर्थ के लिए कोई इतनी झंझट उठाता है! लेकिन नहीं, बनाना रुक जाए तो तोड़ने की आकांक्षा शुरू हो जाती है। ये वे ही लोग थे जो मूर्तिपूजक हो सकते थे। इनकी संभावना थी वही। लेकिन मूर्तिपूजा तो बंद कर दी गयी, तो जो पूजा बन सकती थी, वही मूर्ति का विध्वंस बन गयी। तो फिर तुम मूर्तियां तोड़ो। कुछ तो करना ही होगा। मूर्ति से संबंध तो छोड़ ही नहीं सकते। अगर मित्र का नहीं तो शत्रु का सही, संबंध तो बनाना ही होगा। ख्याल किया, शत्रु से भी हमारे संबंध होते हैं। और कभी-कभी तो मित्र
से भी ज्यादा निकट होते हैं। मित्र के बिना तो तुम जी भी लो, शत्रु के बिना तुम बड़े अकेले अपने को पाओगे। अगर तुम्हारा शत्रु मर जाए, तो उसी दिन कुछ तुम्हारे भीतर भी मर जाएगा। जो उसके कारण ही जिंदा था, वह तो मर जाएगा।
तुम्हें नया शत्रु खोजना पड़ेगा ऊर्जा थिर नहीं रह सकती। ऊर्जा गतिमान है। सागर की तरह। सरिताओं की तरह। हवाओं की तरह।
अगर ठीक दिशा न मिली, तो तुम्हारी जीवन-ऊर्जा गलत दिशाओं में भटकेगी भूत-प्रेतों की भांति। अंधेरी खोहों में चीखेगी, चिल्लायेगी, पुकारेगी।
अगर मुस्कुराहट न बन सकी, तो तुम रोओगे, दुख के आंसुओं से भरोगे। अगर फूल न खिल सके, तो तुम कांटे बनोगे।
महावीर ने सूत्र को अहिंसा में पकड़ा है। अहिंसा का अर्थ है, जहां-जहां विध्वंस हो, वहां-वहां से अपने को ऊपर उठा लेना। विध्वंस की वृत्ति से मुक्त हो जाना अहिंसा है। तोड़ने के भाव को छोड़ देना अहिंसा है। ऐसी कोई भी दिशा तुम्हारे जीवन में न हो जहां तोड़ने में रस रह जाए। जोड़ने में रस आ जाए, तोड़ने में रस खो जाए; मिटाने में तुम रत्तीभर भी ऊर्जा नष्ट न करो, बनाने में, सृजन में। अगर तुम मिटाओ भी, तो सृजन के लिए ही। अगर पुराने भवन को गिराओ भी, तो नया भवन बनाने के लिए ही। जो विध्वंसक है, वह अगर सृजन भी करता है तो मिटाने के लिए ही। वह बम बनाता है, तलवार पर धार रखता है। सृजन तो वह भी करता है--बम बनाना सृजनात्मक है--लेकिन बनाता इसीलिए है कि मिटा सके।
इसको ख्याल में लेना, विध्वंसक बनाता भी है तो ध्वंस के लिए। और सृजनात्मक ऊर्जा मिटाती भी है, तो बनाने के लिए। यह तुम्हें ख्याल में आ जाए, तो महावीर की दृष्टि का सारसूत्र पकड़ में आ सकता है। महावीर कहते हैं, जब भी तुम क्रोध से भरते हो, जब भी तुम दूसरे को नष्ट करने के लिए आतुर हो

उठते हो, दूसरा नष्ट होगा या नहीं यह तो तुम छोड़ दो, क्योंकि इस जगत में विनाश कहां, कौन कब नष्ट हुआ, कौन किसको नष्ट कर पाया है; यहां जो है, सदा रहनेवाला है; आत्मा को तो मारा नहीं जा सकता, आत्मा तो अमर है, शाश्वत है, लेकिन तुम मारने की आकांक्षा से भरे कि तुमने अपने जीवन की दिशा खोनी शुरू कर दी। तुम भटके, तुम खोये, तुमने गलत राह पकड़ी।
जीवन को इस ढंग से देखना कि तुम्हारे भीतर जो भी तुम सत्व लेकर पैदा हुए हो, वह धीरे-धीरे गहरे सृजन में निर्मित होता जाए। मैं तुमसे कहूंगा, पानी छानकर पी लेना काफी नहीं है। गीत गुनगुनाओ, मूर्ति बनाओ, चित्र सजाओ, जगत को सुंदर बनाओ, आसपास जीवन की झलक को फैलाओ, जीवन को प्रज्वलित करो। जो तुम्हारे पास आये, थोड़ा और जीवंत होकर लौटे। मारो मत। और यह बात बड़ी सूक्ष्म है। तुम एक जैन-मुनि के पास जाओ, तुम थोड़े और मुर्दा होकर लौटोगे। वह कोई तलवार से मारता नहीं। उसके हाथ में कोई अस्त्र-शस्त्र नहीं है। लेकिन तुम्हारी निंदा से मार देगा। जैन-मुनि तुम्हारी तरफ देखता है तो ऐसे जैसे कि तुम पापी हो, गर्हित हो, कीड़े-मकोड़े हो, आदमी नहीं। तुम्हारी तरफ देखता है ऐसे कि तुम गलत हो। उसकी नजर में हिंसा है।
अगर तुम महावीर के पास गये होते, तो तुम्हें पता चलता। उनकी आंख तुम
पर पड़ती और तुम्हारे भीतर उल्लास उठता। उनके पास तुम जाते और तुम पाते कि तुम ताजे हो रहे हो, नये हो रहे हो, पुनरुज्जीवन हो रहा है। उनके पास से तुम जीवन का संदेश लेकर लौटते। तुम नाचते लौटते। जाते वक्त भला तुम लंगड़ाते गये हो, लौटते वक्त तुम नाचते लौटते। "पंगु चढ़ें पहाड़।" उनके पास से तुम जीवन की महिमा का वरदान लेकर लौटते, आशीष लेकर लौटते। जिस मंदिर में तुम्हारी निंदा हो रही हो, वहां हिंसा हो रही है। सब निंदा हिंसात्मक है। तुम्हारे पापों में अंगुलियां डालकर तुम्हारे घावों को कुरेदने से कोई अहिंसा नहीं होती। तुम्हारे पाप के भीतर पड़े हुए तुम्हारे पुण्य को जगाने से, तुम्हारे अंधेरे में छिपे तुम्हारे प्रकाश को उघाड़ने से अहिंसा होती है। तुम्हें तुम्हारे परमात्मा की याद दिलाने से अहिंसा होती है। जहां तुम्हारे भीतर का परमात्मा स्वीकार किया जाता हो, जहां तुम्हारे भीतर के परमात्मा को आह्वान मिलता हो, जहां तुम्हारी क्षुद्रता को भूलने की सुविधा हो और तुम्हारे विराट का दर्शन होता हो, वहां अहिंसा है। जीवन सृजनात्मकता, अहोभाव, धन्यभाग!
और जैसे-जैसे तुम जीवन की महिमा से भरोगे, तुम पाओगे, पाप की वृत्ति क्षीण होने लगी। क्योंकि वही ऊर्जा है, वही जहर बन रही थी, अब उसे मार्ग मिला, अब उसे स्वतंत्रता मिली, अब उसे प्रगट होने की सुविधा मिली। अगर तुम जीवन की ऊर्जा को ऊपर न ले जा सको तो नीचे जाएगी, मजबूरी है। महावीर का जोर ऊपर ले जाने पर है। ऊपर ले जाते ही नीचे की यात्रा अपने-आप बंद हो जाती है। थोड़ा सोचो, तुम बाजार गये हो। कुछ पैसे तुम्हारे पास हैं। उस पैसे से कंकड़-पत्थर भी मिलते हैं और हीरे-जवाहरात भी मिलते हैं। कौन होगा जो कंकड़-पत्थर खरीदेगा! हीरे-जवाहरात तुम खरीद लाओगे।
जो तुम्हारे पास ऊर्जा है, वह तुम्हारी संपत्ति है। उसी से कंकड़-पत्थर मिलते हैं, उसी से हीरे-जवाहरात मिलते हैं। वही संभोग बनती है ऊर्जा, वही समाधि बनती है। वही ऊर्जा हिंसा बनती है, वही ऊर्जा अहिंसा बनती है। वही ऊर्जा घृणा बनती है। वही प्रेम बनती है। एक बार तुम्हें पता चल जाए कि इस ऊर्जा से तो प्रेम खरीदा जा सकता है, समाधि खरीदी जा सकती है; इस ऊर्जा से तो सत्य के स्वर्ग बसाये जा सकते हैं, तो तुम नर्कों में जाने की यात्रा बंद कर दोगे। नर्कों में तुम जाते हो मजबूरी से, क्योंकि तुम्हें राह नहीं मिलती स्वर्ग की। खोज तो सभी स्वर्ग रहे हैं। राह नहीं मिलती। स्वर्ग को खोजने में ही लोग नर्क जाते हैं। कोई नर्क को थोड़े ही खोज रहा है! कौन दुख को खोज रहा है! कौन जहर को खोज रहा है! कौन मृत्यु को खोज रहा है! लेकिन राह नहीं मिलती।
महावीर ने उस राह को दिया है। इसीलिए तो वह कह सके कि आनेवाले दिनों में लोग पूछेंगे कि अब वे जिन कहां हैं? अब वे महावीर कहां हैं? तब तुम पछताओगे, गौतम! अभी सुगमता से धार तुम्हारे पास से बही जाती है। डूब लो, नहा लो। फिर पछताने से कुछ भी न होगा। फिर रोने से कुछ भी न होगा। अभी धार

पास से बही जाती है। क्षणभर भी प्रमाद मत करो, गौतम! आलस्य मत करो, कल पर मत टालो। मत कहो कल करेंगे, क्योंकि कल का क्या पता! धार रहे, न रहे।
जो आज हो सकता है, आज कर लो। पाप को कल पर टालो, पुण्य को आज कर लो। कहो, क्रोध कल करेंगे, ध्यान आज करेंगे। कहो, संसार कल कर लेंगे, संन्यास आज करेंगे। कहो कि झूठ बोलना है, कल बोल लेंगे झूठ, जल्दी क्या है? सच आज बोलेंगे। और जिसने आज सच बोला, वह कल झूठ कैसे बोल पायेगा। और जो आज झूठ बोला, वह कल सच कैसे बोल पायेगा, क्योंकि आज से ही तो कल पैदा होता है।
तुम जो आज हो, वही तो तुम्हारे कल का निर्माण है। आज ही तो तुम ईंट रख रहे हो कल के भवन की। आज ही बनाओगे घर, कल उसमें रहोगे।
महावीर कह सके कि पास से बहती धार है, गौतम! तू क्यों बैठा है, उठ; क्योंकि उनके पास पूरी दृष्टि थी। और जो उन्होंने कहा, जानकर कहा है। वे शास्ता हैं। वे शास्त्र हैं। जीवंत शास्त्र। उन्होंने जो कहा है, वह शुद्ध विज्ञान है। उसमें एक कड़ी भी गलत नहीं है। कहते हैं, "अहिंसा सब आश्रमों का हृदय है। सब शास्त्रों का रहस्य तथा सब व्रतों का और गुणों का पिंडभूत सार है।"
अहिंसा को अगर हम धर्म की भाषा से उतारकर आदमी की सरल भाषा में रखें,
तो अहिंसा का अर्थ, प्रेम। अगर हम जैन-शास्त्रों से अहिंसा शब्द को छुड़ा लें, मुक्त कर लें, पारिभाषिक-जाल से अलग कर लें, तो अहिंसा का अर्थ होता है, प्रेम। प्रेम सृजनात्मक है। घृणा विध्वंसक है।
क्या करेगा प्यार वह भगवान को
क्या करेगा प्यार वह ईमान को
जन्म लेकर गोद में इंसान की
प्यार कर पाया न जो इंसान को
प्रेम का पाठ जहां से सीखने मिल जाए, उसे चूकना मत। जहां से प्रेम का पाठ मिल जाए, उसे तो हीरे की तरह गांठ में गठिया लेना। ऐसे प्रेम के पाठों को इकट्ठा कर-करके एक दिन तुम पाओगे, अहिंसा का शास्त्र बन गया। प्रेम के अनुभव इकट्ठे होते चले जाएं, तो ऐसा समझो जैसे बहुत फूलों को निचोड़कर इत्र बन जाता है, ऐसे बहुत जीवन में प्रेम के अनुभवों का सार-निचोड़ अहिंसा बन जाता है। अब यहां कुछ लोग हैं जो फूलों का तो त्याग करते हैं और इत्र की आकांक्षा करते हैं। पागल हैं वे। फूल को त्यागकर इत्र आयेगा कहां से? इसलिए मैं कहता हूं कि महावीर के पीछे चलनेवालों ने महावीर को बिल्कुल भुला दिया है। उनके पास लकीरें रह गयीं पिटी-पिटायी, उनको वे दोहराये चले जाते हैं। लेकिन उन लकीरों का सार खो गया है। शब्द रह गये हैं--कोरे, खाली, चली हुई कारतूसों जैसे, जिन्हें अब व्यर्थ ढो रहे हैं। अहिंसा का प्राण अगर प्रतिष्ठित करना हो, तो प्रेम शब्द में वह प्राण है। अहिंसा प्रेम के विपरीत नहीं है। अहिंसा राग के विपरीत है। प्रेम स्वयं राग के विपरीत है। तुमने राग को ही प्रेम जाना है। इससे भूल हो रही है। प्रेम तो राग को जानता ही नहीं। प्रेम की तो राग से कोई पहचान ही नहीं है। जिससे तुम्हें प्रेम होता है, न तो तुम उसे अपने से बांधते हो, न तुम उससे बंधते हो। प्रेम तो मुक्त है, हवा के झोंके जैसा--आया, गया। प्रेम बंधता नहीं कहीं। बादलों जैसा है। कोई जड़ें नहीं हैं प्रेम की। स्वतंत्रता है प्रेम। मुक्ति है प्रेम। प्रेम बहता है, रुकता नहीं। रुका, डबरा बना, राग हुआ। जहां प्रेम रुका, वहीं राग हो जाता है।
महावीर ने एक बड़ी अनूठी बात कही है। महावीर ने कहा है, जो बहता रहे, चलता रहे, वह धर्म। और जो रुक जाए, ठहर जाए, वह अधर्म। चकित होओगे यह परिभाषा जानकर। महावीर कहते हैं, जो सतत गतिमान है, वही धर्म है। जो ठहर गया, रुक गया, जड़ हो गया, वही अधर्म। तुमने ख्याल किया, प्रेम जब रुक जाता है, ठहर जाता है, किसी एक से अटक जाता है, फिर वहां से आगे नहीं बढ़ पाता, वहीं राग। अगर प्रेम फैलता रहे, किसी पर रुके न; प्रेमपात्र के ऊपर से फैलता रहे और दूसरों पर बिखरता रहे; फैलता जाए... फैलता जाए... एक घड़ी ऐसी आये कि इस जगत में तुम्हारे प्रेमपात्र के अतिरिक्त और कोई न रह जाए, तो अहिंसा। प्रेम का आखिरी विस्तार, प्रेम का परम विस्तार, प्रेम का चरम

विस्तार अहिंसा है। इस जगत में फिर एक भी कण ऐसा न रह जाए, जो तुम्हारा प्रेमपात्र नहीं। तब तुम अहिंसक हुए।
निश्चित ही तब तुम पानी छानकर पी लोगे। तुम मांसाहार न करोगे। यह घटेगा। क्योंकि तुम्हारे मन में अब किसी भी वस्तु, किसी भी व्यक्ति, किसी भी पशु-पक्षी, वस्तु तक के प्रति विध्वंस का कोई भाव नहीं, प्रेम की ही वर्षा हो रही है, तो तुम सावधानी से बरतोगे। तुम जहां तक बन सकेगा, बचाओगे। जहां तक बन सकेगा, सम्हालोगे। अहिंसा तो है प्रेम का परम विस्तार। लेकिन तर्क, पंडित, बुद्धिमानों की बुद्धिहीनता ऐसे-ऐसे नतीजों पर पहुंच जाती है जिनकी महावीर ने कल्पना भी न की होगी।
अब जैनों के बीच पंथ है एक--तेरापंथ। आचार्य तुलसी का पंथ। वहां अहिंसा की व्याख्या ठीक अहिंसा के विपरीत चली गयी है। तर्क के बड़े मजे हैं। चीजें इतनी खींची जा सकती हैं कि अपने से विपरीत हो जाएं। तेरापंथ कहता है कि अगर राह से तुम चल रहे हो और कोई आदमी मरता हो किनारे, प्यास के मारे चिल्लाता हो--पानी, पानी, तो भी पानी मत पिलाना। क्यों? क्योंकि उस आदमी को अपने कर्मों का फल भोगना पड़ रहा है। उसने कुछ पाप किये होंगे, जिसके कारण वह मर रहा है। तुम्हारी यह अहिंसा है कि तुम उसके इस कर्मफल के भोगने में बाधा न दो। क्योंकि बाधा डालने से अड़चन होगी उसे। तुम चुपचाप अपने रास्ते पर चलो।
यह अहिंसा तो प्रेम के बिल्कुल विपरीत हो गयी! और तर्कयुक्त मालूम पड़ती है। तर्क खोज लिया। तर्क यह खोज लिया कि वह आदमी अगर मर रहा है प्यासा, तो किसी पाप के कारण मर रहा है। उसको उसका कर्मफल भोग लेने दो। तुम बाधा मत दो।
कोई आदमी कुएं में गिर गया है, तो तुम उसे निकालो मत। क्योंकि वह गिरा
है अपने कर्मों के कारण। फिर कुएं में गिरे आदमी को तुम निकाल लो और कल वह जाकर किसी की हत्या कर दे, तो फिर तुम पर भी हत्या का भाग लगेगा। न तुम निकालते, न वह हत्या कर सकता। न रहता बांस, न बजती बांसुरी। अब बांसुरी बजी, तो बांस में तुम्हारा हाथ है। तुमने निकाला इस आदमी को, यह गया और कल इसने जाकर हत्या कर दी किसी की, तो इस कल होनेवाली हत्या में तुमने सहभागी, साझेदारी की। अनजाने सही, जानकर नहीं, सोचकर नहीं, लेकिन परिणाम तो बुरा हुआ! इसलिए तुम परिणाम से बाहर रहने के लिए चुपचाप अपनी राह पर, अलग-थलग। यह तो प्रेम से ठीक विपरीत बात हो गयी।
प्रेम तो कहेगा कि ठीक है, अगर कल यह आदमी हत्या करेगा, तो भी मैं इसे बचाता हूं; अगर इसके बचाने के कारण नर्क भी जाऊंगा, तो भी बचाता हूं। प्रेम तो कहेगा, मैं भोग लूंगा नर्क, लेकिन यह जो सामने मर रहा है आदमी, इसको तो बचाऊंगा। प्रेम सोचता थोड़े ही है।
प्रेम सृजनात्मक है। जहां भी देखता है विध्वंस हो रहा है, रोकता है। जहां भी देखता है कोई चीज मर रही, वहां सहज-भाव से, बिना किसी चिंतना के, हिसाब-किताब के, गणित के, सहज-भाव से दा.ैडा चला जाता है। अब किसी के घर में आग लग गयी है और बच्चा भीतर छूट गया है, तेरापंथी सोचेगा--अपने कर्मों का फल भोग रहा है। ऐसे अहिंसकों से तो दुनिया खाली रहे, तो अच्छा! ऐसी अहिंसा से तो वे हिंसक बेहतर हैं, जो रात खाना खा लेते हों, मांसाहार कर लेते हों, पानी बिना छना पी लेते हों, कम से कम घर में आग लगेगी, किसी को बचाने की जरूरत होगी, तो दौड़ तो पड़ेंगे। कोई नदी में डूबता होगा, तो दौड़ तो पड़ेंगे। कोई राह के किनारे प्यासा मरता होगा, तो दो घूंट पानी तो पिला सकेंगे।
यह मैं इसलिए उदाहरण ले रहा हूं कि तुम्हें ख्याल आ सके कि तर्क कितनी खतरनाक बात है। तर्क बिल्कुल साफ-साफ भी दिखायी पड़ता हो, तो भी खतरनाक हो सकता है।
अहिंसा तर्क नहीं है। अहिंसा गणित नहीं है। अहिंसा शुद्ध प्रेम का भाव है। अहिंसा का अर्थ है, सारे जगत में परमात्मा है; इस सारे जगत में मेरा ही स्वभाव व्याप्त है; मैं ही हूं दूसरा भी; दूसरा भी मेरे जैसा है; जो मैं अपने लिए ठीक समझता हूं, वही मैं दूसरे के लिए ठीक समझूं। अगर मैं प्यासा मर रहा हूं, तो मैं चाहूंगा कि कोई पानी पिला दे; यही मैं दूसरे के लिए ठीक समझूं। अगर मैं कुएं में गिर गया हूं और चिल्ला रहा हूं और चाहता

हूं कि कोई मुझे निकाल ले, कोई हाथ बढ़े, कोई हिम्मत करे, तो जो मैं अपने लिए चाहता हूं, वही मैं दूसरे के लिए भी चाहूं। अगर मेरे पैर में कांटा गड़ा है, तो जो मैं चाहता हूं कोई खींच ले, वही मैं दूसरे के लिए भी करूं।
जीसस का प्रसिद्ध वचन है, जो तुम अपने लिए चाहते हो, वही दूसरे के लिए चाहो। जो तुम अपने लिए नहीं चाहते, वही दूसरे के लिए मत चाहो। तेरापंथियों से तो जीसस कहीं ज्यादा महावीर के करीब हैं। ऊपरी आवरण
एक बात है, भीतरी आत्मा बड़ी और! और व्यक्ति अगर सृजनात्मक हो जाए, तो व्यक्ति ही तो ईंट है समाज की। व्यक्ति अगर बदले, तो समूह बदलता है। चूंकि व्यक्ति हिंसा से भरा है, इसलिए समूह युद्धों से भरा है।
मनुष्य-जाति का पूरा इतिहास युद्धों का इतिहास है। लोग लड़ते ही रहे। लोगों ने लड़ने में इतनी शक्ति व्यय की है कि हम कल्पना भी नहीं कर सकते। अगर इतनी शक्ति सृजनात्मक हुई होती, तो मनुष्य अब कहां होता! शायद स्वर्ग कहीं और होने की जरूरत न थी, हमने उसे यहां बना लिया होता। हम कभी के स्वर्ग में पहुंच गये होते। मनुष्य-जाति की करीब-करीब नब्बे प्रतिशत शक्ति युद्ध में व्यय हुई है। अभी भी वही हालत है। अभी भी रक्षा-विभाग, सभी राष्ट्रों का, देश की सारी संपत्ति पी जाता है। सत्तर प्रतिशत, पचहत्तर प्रतिशत, अस्सी प्रतिशत तक युद्ध के मैदान की तैयारी में लग जाता है। राजनेता कहे चले जाते हैं शांति की बात, उड़ाते हैं शांति के कबूतर, बनाते हैं एटम और हाइड्रोजन बम। इधर कबूतर उड़ाते रहते हैं, उधर बम की फैक्ट्रियां चलाते रहते हैं। इधर शांति की बातें करते रहते हैं, उधर युद्ध की तैयारी करते रहते हैं। शांति की बातें सब बकवास मालूम होती हैं। अगर शांति की बात में सचाई है, तो शांति की तैयारी तो करो। शांति की तैयारी करोगे तो महावीर की बात सुननी पड़ेगी। लेकिन शांति की बात करने में कोई अड़चन नहीं है। शांति की बात युद्ध को, युद्ध की प्रवृत्ति को ढांकने के लिए बड़ा सुगम उपाय हो जाती है। बमों के ढेर पर खड़े हैं, कबूतर उड़ा रहे हैं। जंग तो खुद ही एक मसला है
जंग क्या खाक मसलों का हल देगी
युद्ध तो खुद ही एक समस्या है। उससे हम हल खोज रहे हैं, समाधान खोज रहे हैं।
इसलिए ऐ शरीफ इंसानो
जंग टलती रहे तो बेहतर है
आप और हम सभी के आंगन में
शमा जलती रहे तो बेहतर है
कौन-सी शमा? महावीर की शमा। अहिंसा की शमा। प्रेम की शमा।
आप और हम सभी के आंगन में
शमा जलती रहे तो बेहतर है
बरतरी के सुबूत की खातिर
खूं बहाना ही क्या जरूरी है
घर की तारीकियां मिटाने को
घर जलाना ही क्या जरूरी है
घर में अंधेरा है, माना। लेकिन घर के अंधेरे को मिटाने के लिए क्या पूरे घर को जलाना जरूरी है! और--
बरतरी के सुबूत की खातिर...
बड़प्पन, अहंकार, मैं बड़ा हूं, यह बताने के लिए...
खूं बहाना ही क्या जरूरी है
क्या कोई और उपाय नहीं?
जंग के और भी तो मैदां हैं
सिर्फ मैदाने-कुस्तखूं ही नहीं
और भी तो मैदान हैं युद्ध के।
हासिले-जिंदगी खिरद भी है
हासिले-जिंदगी जुनूं ही नहीं
जीवन का लक्ष्य पागल हो जाना थोड़े ही है। जीवन का लक्ष्य तो प्रज्ञा
को उपलब्ध होना है। अगर संघर्ष ही करना है, तो करो प्रज्ञा के लिए। अगर

युद्ध ही लड़ना है, तो लड़ो अंधेरे से, तो लड़ो क्रोध से, तो लड़ो हिंसा से।
शत्रु भीतर है। कुरुक्षेत्र बाहर मत बनाओ। भीतर ही बनाओ।
गीता शुरू होती है तो कहती है, कुरुक्षेत्र धर्मक्षेत्र है। बड़ा गहरा इंगित है। कुरुक्षेत्र बाहर नहीं। धर्म का क्षेत्र। धर्म का क्षेत्र तो भीतर है।
आओ इस पीरावक्त दुनिया में
फिक्र की रोशनी को आम करें
अमन को जिससे तकवियत पहुंचे
ऐसी जंगों का एहतमाम करें
आओ इस पीरावक्त दुनिया में
इस भाग्यहीन दुनिया में, इस अंधेरे से भरी दुनिया में
फिक्र की रोशनी को आम करें
ध्यान-चिंतन की, मनन की, स्वाध्याय की रोशनी जलायें।
अमन को जिससे तकवियत पहुंचे
और शांति से जिनको सहारा मिले, शक्ति मिले, बल मिले।
ऐसी जंगों का एहतमाम करें
और ऐसे युद्धों का इंतजाम करें। ऐसे युद्धों का प्रबंध करें। जिनसे शांति बढ़े।
उसी युद्ध की तरफ महावीर का इशारा है। उसी युद्ध को जीतकर वे महावीर बने। वह युद्ध भीतर है। वह दूसरे से नहीं, वह अपनी ही अधोगामी वृत्तियों से है। वह अपने को ही नीचे खींचनेवाली वासनाओं से है। वह अपने को ही अंधेरे में ले जानेवाली आदतों से है। वह अपनी ही बेहोशी और मूर्च्छा से है। आदमी तो इतना लड़ता रहा है, और बड़े अच्छे बहाने खोज-खोजकर लड़ता रहा है। बहानों पर मत जाओ! आदमी लड़ने के लिए बड़ी गहरी आतुरता रखता है। राजनीति में तो लड़ता ही है, धर्म तक के लिए लड़ता है। इस्लाम खतरे में है। जैसे कि धर्म कभी खतरे में हो सकता है! हिंदू-धर्म खतरे में है। ये सब आवाजें आदमी के भीतर हिंसा को भड़कानेवाली आवाजें हैं। मंदिर-मस्जिद लड़ते हैं। यहां तक हालत पहुंच गयी है... कल रात मैं किसी कवि की पंक्तियां पढ़ता था--
बुग्.ज की आग, नफरत के शोले
मयकशों तक पहुंचने न पायें
फस्ल यह मंदिरों मस्जिदों की
मयकदों की जमीनों में क्यों हो
बुग्.ज की आग
द्वेष की आग...
नफरत के शोले
मयकशों तक पहुंचने न पायें
इन्हें रोकना, शराबियों तक इन्हें मत आने देना। इन्हें सज्जनों तक रहने देना। इन्हें संतों-साधुओं तक रहने देना।
बुग्.ज की आग, नफरत के शोले
मयकशों तक पहुंचने न पायें
पियक्कड़ों तक न पहुंच पायें ये द्वेष और हिंसा की आग और शोले।
फस्ल यह मंदिरों मस्जिदों की
यह मंदिरों-मस्जिदों में ठीक है फस्ल।
मयकदों की जमीनों में क्यों हो?
मधुशाला की जमीन में नहीं होनी चाहिए। मधुशाला तक डरती है कि कहीं मंदिरों की आग यहां न आ जाए। मंदिरों का इससे बड़ा कोई पतन हो सकता है! शराबी डरते हैं, कहीं साधु-संतों के उपद्रव यहां न आ जाएं। अब इससे बड़ा पतन साधु-संतों का कोई और हो सकता है!
मंदिर-मस्जिदों ने इतना लड़वाया आदमी को, ऐसे अच्छे बहाने लेकर लड़वाया, ऐसे सुंदर आदर्श लेकर लड़वाया कि उन आदर्शों की आड़ में यह दिखायी ही न पड़ा कि यह सिर्फ लड़ने की वृत्ति है। यह विध्वंस की आकांक्षा है, और कुछ भी नहीं।

"अहिंसा सब आश्रमों का हृदय, सब शास्त्रों का रहस्य और सब व्रतों और गुणों का पिंडभूत सार है।"
लेकिन इस अहिंसा का अर्थ है, प्रेम। इस अहिंसा का अर्थ है, रागमुक्त प्रेम। इस अहिंसा का अर्थ है, वीतराग प्रेम।
इस अहिंसा का अर्थ है प्रेम फैलता चला जाए। प्रेम कोई सीमा न माने। जहां प्रेम ने सीमा मानी, वहीं राग। जब तुमने कहाः मेरा बेटा, मेरा भाई, वहीं राग। भाईचारा इतना फैले कि "मेरे-तेरे" की कोई जगह न रह जाए। भाईचारे का सागर हो। सभी भाई हों, ताकि किसी को भाई कहने का कोई कारण न रह जाए। सभी अपने हों, ताकि किसी को अपना कहने की कोई जरूरत न रह जाए।
अब देखना, यहां कैसी आसान तरकीब आदमी निकाल लेता है। महावीर कहते हैं, "मेरे" को छोड़ो। लेकिन उनका प्रयोजन है, ताकि सभी मेरे हो जाएं। जैन-मुनि कहते हैं, "मेरे" को छोड़ो। उनका प्रयोजन है, ताकि जो मेरे हैं, वे भी न रह जाएं। ये दोनों एक-ही तरह के शब्दों का उपयोग करते हैं, लेकिन दोनों में बड़ा बुनियादी विरोध है।
महावीर कहते हैं, किसी घर के मत बनो, ताकि सारा अस्तित्व तुम्हारा घर
हो जाए। महावीर कहते हैं, गृहस्थ से संन्यस्त हो जाओ। प्रयोजन इतना है कि घर में बंधे न रह जाओ। सारा संसार तुम्हारा घर हो जाए। जैन-साधु जब कहता है, छोड़ो घर, छोड़ो "मेरा", तब वह तुमसे वह छोटा-सा जो घर था, वह भी छीने ले रहा है। महावीर कहते हैं, वह छोटा-सा घर इतना फैले, इतना फैले कि विराट विश्व हो जाए। वह उस छोटे-से घर को छीनने के लिए आतुर नहीं हैं। इस पूरे विश्व को तुम्हारा घर बना देना चाहते हैं। कहीं तुम छोटे-से घर में अटके न रह जाओ, इसलिए छोड़ने को कहते हैं।
महावीर का त्याग महाभोग की तरफ कदम है। वह पीड़ित हैं यह देखकर, परेशान हैं, यह देखकर कि तुम जो विराट सागर हो सकते थे, कैसा डबरा हो गये हो। वह कहते हैं, छोड़ो यह डबरा, तुम सागर होने को हो। इतने छोटे में क्यों बंधकर रह गये हो? बड़ी तुम्हारी संभावना है। विराट तुम्हारी नियति है। प्रभुता तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है। लेकिन जब महावीर के पीछे चलनेवाले लोग कहते हैं, छोड़ो घर, तो वे सारे संसार को घर बनाने के लिए नहीं कह रहे हैं; वे कह रहे हैं, यह जो घर है, यह भी तुम्हारा न रह जाए, बेघर हो जाओ। इन्हीं शब्दों की भ्रांतियों के कारण अक्सर तो तीर्थंकरों, अवतारों और पैगंबरों ने जो कहा है, उसके ठीक उल्टे अर्थ लोगों की पकड़ में आ गये। सीधे अर्थ पकड़ना तो बहुत कठिन। क्योंकि सीधे अर्थ पकड़ने का तो अर्थ होगा-- आत्मक्रांति। एक-एक भीतर के कोने-कांतर को बदलना होगा। अंधेरा जरा-भी न बचने देना होगा।
गलत अर्थों को पकड़ना बहुत आसान है। प्रेम को इतना विराट बनाना तो बहुत कठिन है, हां प्रेम को बिल्कुल खाली कर लेना बहुत आसान है। वैसे ही खाली हो, वैसे ही प्रेम कुछ है नहीं, तो यह बात समझ में आ जाती है, यह भी छोड़ दो। है भी क्या? लेकिन अगर प्रेम को बड़ा करना है, तब तो बड़ा श्रम होगा, बड़ी साधना होगी। यह आगे के सूत्र साफ करेंगे।
दूसरा सूत्र--
"महावीर ने परिग्रह को परिग्रह नहीं कहा है। उन महर्षि ने मूर्च्छा
को परिग्रह कहा है।"
महावीर ने यह नहीं कहा कि वस्तुओं के होने में परिग्रह है। घर के होने में परिग्रह नहीं है, न धन के होने में परिग्रह है। न पत्नी के होने में परिग्रह है।
"उन महर्षि ने मूर्च्छा को परिग्रह कहा।"
इन वस्तुओं को अपना मान लेने में। इन वस्तुओं के साथ जकड़ जाने में। इन वस्तुओं के साथ आसक्त हो जाने में। इन वस्तुओं और अपने बीच एक तरह का गहरा संबंध बना लेने में, कि उस संबंध को छोड़ना मुश्किल हो जाए। उस मूर्च्छा में परिग्रह है।
यह सूत्र बड़ा अनूठा है। धर्म-शास्त्रों में--सारे जगत के धर्म-शास्त्रों में--इसके मुकाबले सूत्र खोजना कठिन है।
न सो परिग्गहो वुत्तो, नायपुत्तेण ताइणा।

मुच्छा परिग्गहो वृत्तो, इइ वुत्तं महेसिणा।।
उन महर्षि ने कहा हैः वस्तुओं को छोड़ने से परिग्रह नहीं छूटता, मूर्च्छा छूटने से परिग्रह छूट जाता है। मूर्च्छा; घर नहीं छोड़ना, धन नहीं छोड़ना, पत्नी-बेटे नहीं छोड़ना, मूर्च्छा छोड़नी है। सोया-सोयापन छोड़ना है।
तुम ऐसे जी रहे हो जैसे नींद में हो। सपना नहीं छोड़ना है, नींद छोड़नी है। इस बात को ख्याल में लो।
अगर नींद न छूटी, तो एक सपना छूट जाए, दूसरा शुरू हो जाएगा। सपनों की फसलें नींद में उगती ही रहेंगी। तो महावीर कहते हैं, सपने छोड़ने से क्या होगा? सपने तो बहुत बार अपने-आप भी छूटे हैं। कितनी बार तुम जन्मे! कितनी पत्नियों को अपना नहीं कहा! कितने बेटों को अपना नहीं कहा! कितने मित्र बनाये, कितने शत्रु बनाये! कितने घर बसाये! मौत आयी, सब उजाड़ गयी। तो मौत तो सभी को संन्यस्त कर जाती है, जबर्दस्ती कर जाती है। लाख चीखो-चिल्लाओ, मौत तो छीन ही लेती है सब, जो तुम छोड़ना नहीं चाहते। छोड़ना ही पड़ता है। कितनी बार मौत तुम्हारा सपना नहीं तोड़ गयी!
पर इससे क्या फर्क होता। फिर नया जन्म, फिर तुम नया सपना देखते हो। नींद जारी रहती है। मौत सपना तोड़ सकती है, नींद नहीं तोड़ सकती है। इसे फिर से कहूं, मौत सपना तोड़ सकती है, क्योंकि मौत का बल इससे ज्यादा नहीं है। मौत नींद नहीं तोड़ सकती। नींद तो सिर्फ ध्यान ही तोड़ सकता है। नींद तो सिर्फ जागरूक होने की अथक अभीप्सा तोड़ सकती है। नींद तो तुम तोड़ना चाहो तो तोड़ सकते हो, कोई और नहीं तोड़ सकता है। अगर तुम सोना चाहते हो, तो कोई उपाय नहीं है। महावीर कहते हैं, सपना छोड़ने की फिक्र छोड़ो, एक सपना छूट भी जाएगा तो क्या फर्क होगा! जहां से सपने आते हैं, वहां से और सपने आ जाएंगे। मुल्ला नसरुद्दीन ने एक नौकरी के लिए दरख्वास्त दी। पानी के जहाज पर कोई जगह खाली थी। जहाज के कप्तान ने उसका इंटरव्यू लिया और पूछा कि अगर तूफान आ जाए और जहाज डगमगाने लगे, तो तुम क्या करोगे? मुल्ला ने कहा, लंगर डालेंगे! कप्तान ने कहा कि और बड़ा तूफान आ जाए, फिर क्या करोगे? उसने कहा एक लंगर और। कप्तान ने कहा और बड़ा तूफान आ जाए, फिर क्या करोगे? उसने कहा, एक लंगर और। कप्तान ने कहा, ठहरो, ये लंगर तुम ला कहां से रहे हो? मुल्ला ने कहा, ये तूफान आप कहां से ला रहे हैं? वहीं से हम लंगर ला रहे हैं। तुम लाये जाओ तूफान, हम लाये जाएंगे लंगर।
अगर कल्पना का ही जाल है, तो ठीक। न तूफान है कहीं, न लंगर दिखायी पड़ता है। एक सपना जहां से आ रहा है, अगर उसका मूल स्रोत न तोड़ा गया, तो दूसरा सपना चला आयेगा। यह सपना कहां से आया? इस पत्नी को तुमने क्यों कहा मेरी? इस पति को तुमने क्यों कहा मेरा? इस बेटे को तुमने कैसे माना मेरा? इस मकान को तुमने कैसे कहा मेरा? इस धन को, इस देह को, तुमने कैसे दावा किया कि मेरी? यह सपना जहां से आया है, उस स्रोत का तुम्हें पता है? अगर उस स्रोत को न तोड़ा, इस देह को छोड़ दो, इस पत्नी को छोड़ दो, इस मकान को छोड़ दो, इस दुकान को छोड़ दो, फिर किसी दूसरी दुकान पर वह कहेगा--मेरा। घर छोड़ दो, जंगल में चले जाओ, गुफा में बैठ जाओ, तो गुफा को कहेगा--मेरी। क्या फर्क पड़ेगा? हिमालय में जाकर किसी साधु की गुफा में अड्डा जमाओ, पता चलेगा! धक्का मार बाहर कर देगा--पता है, यह गुफा मेरी है!
एक भिखमंगा एक गांव की एक सड़क पर नियमित रूप से भीख मांगता था। तगड़ा भिखमंगा था। कोई दूसरा भिखमंगा वहां घुस भी नहीं सकता था। भिखमंगों की भी अपनी-अपनी सीमा होती है। उसकी सीमा-रेखा में कोई दूसरा भिखमंगा नहीं आ सकता था। उनका भी साम्राज्य होता है--भिखमंगों का भी! लेकिन एक दिन किसी ने देखा कि वह भिखमंगा किसी दूसरी सड़क पर भीख मांग रहा है। तो उसने पूछा, अरे! वह पुरानी जगह छा.ेड़ दी? क्योंकि वह पुराना मोहल्ला तो धनपतियों का मोहल्ला था और वहां ज्यादा भीख मिलने की संभावना थी। उसने कहा, छोड़ नहीं दी, मेरी लड़की का विवाह हो गया, उसको दहेज में दे दी, उसके पति को।
तुम्हें पता नहीं है कि तुम्हारा मोहल्ला भिखमंगे ने किसी को दहेज में दे दिया है। भिखमंगे का भी साम्राज्य है! नंगा भी आदमी खड़ा हो, लंगोटी भी उसके पास न हो, तो भी जहां से सपने आते थे वह जगह तो अभी नहीं तोड़ी। तो वह

जहां खड़ा है, जितनी छोटी-सी जमीन को घेर रहा है, उस पर ही "मेरे" का कब्जा हो जाएगा। मूल को तोड़ना पड़ेगा। शाखाएं-प्रशाखाएं काटने से कुछ भी न होगा। महावीर कहते हैं, वह मूल है मूर्च्छा। बाकी सब सपना है। "मेरा-तेरा" "अपना-पराया", बाकी सब सपना है। मूल है मूर्च्छा। मूल है कि मुझे होश नहीं। मूल है कि विवेक जागा नहीं। मूल है कि ध्यान जला नहीं, मशाल बोध की मेरे पास नहीं। इस अंधेरे में सब उठता है; सब सांप-बिच्छू, सब कीड़े-पतंगे, मकड़ी के जाले। इस अंधेरे में भूत-प्रेत सब पलते हैं। रोशनी आते ही सब विदा होने लगते हैं।
महावीर कहते हैंः "न सो परिग्गहो वुत्तो--परिग्रह में परिग्रह नहीं-- नायपुत्तेण ताइणा। मुच्छा परिग्गहो वुत्तो--मूर्च्छा में है परिग्रह।" हिंसा में हिंसा नहीं, मूर्च्छा में है हिंसा। क्रोध में क्रोध नहीं, मूर्च्छा में है क्रोध। राग में राग नहीं, मूर्च्छा में है राग। तो महावीर ने मूल स्रोत को पकड़ा।
सभी पापों की जड़ मूर्च्छा है। अलग-अलग पापों से लड़ने में समय मत गंवाना। उससे कुछ सार न होगा। ऐसे ही तो तुमने जनम-जनम गंवाये। छोटी-छोटी चीजों से लड़ रहे हो--पत्तों को काटते हो। वृक्ष को कोई चोट नहीं पहुंचती पत्ते काटने से। वस्तुतः हालत उलटी होती है। एक पत्ता काटते हो, तीन निकल आते हैं। वृक्ष समझता है, कलम की गयी। तुम काटते हो, वृक्ष बढ़ता है। वृक्ष घना होता है, जैसे-जैसे तुम काटते हो। जड़ को काटना पड़े। जड़ के कटते ही वृक्ष निष्प्राण हो जाता है। उसका संबंध टूट गया भूमि से। मूर्च्छा तोड़नी है। एक ही चीज तोड़नी है--मूर्च्छा तोड़नी है। एक ही धर्म है--मूर्च्छा के बाहर आना। और एक ही अधर्म है--मूर्च्छा में जीना। मूर्च्छा में तो मन सपने ही सपने देखता रहता है। कभी-कभी विपरीत सपने देखता है--एक से ऊब जाता है। बाजार में रहते-रहते ऊब गये, पहाड़ भाग गये।
तुमने ख्याल किया, पहाड़ में जो रहते हैं, वे बंबई आने को उत्सुक! बंबई
जो रहते हैं, वे पहाड़ जाने को उत्सुक! मन के बड़े अजब खेल हैं! मन एक सपने से ऊब जाता है, तो सोचता है शायद विपरीत में कुछ मजा होगा। गरीब अमीर होने को उत्सुक है। अमीर सोचता है, गरीब बड़े मजे में है, रात चैन की नींद सोता है। भूख लगती है गरीब को, मुझे भूख भी नहीं लगती। नींद भी नहीं लगती। क्या सार हुआ इस धन को पा लेने से!
ऐसा आदमी अमीर ही नहीं है, जिसे गरीब के जीवन में सुख दिखायी न पड़ने लगा हो। इसे मैं अमीर की परिभाषा मानता हूं, जिस दिन कोई आदमी सच में अमीर होता है, उसी दिन गरीब की आकांक्षा शुरू हो जाती हैः वह सोचता है, इससे तो गरीब बेहतर। भिखमंगे को देखता है, भरी दुपहरी में, भरे बाजार में, वृक्ष के नीचे घुर्रा रहा है, सो रहा है। न तकिया है, न बिस्तर है, न घर-द्वार है, लेकिन ऐसी गहरी नींद! ईर्ष्या से भर जाता है। वह रात अपने बहुमूल्य बिस्तर पर करवटें बदलता है। कोई नींद का पता नहीं। रूखी-सूखी मांगी रोटी को खाते भिखमंगे को देखता है, लेकिन जिस स्वाद से भिखमंगा खा रहा है, जिस भाव से; और भूख भर जाने पर जिस तृप्ति से उठता है, ऐसी तृप्ति अमीर भूल गया है। सब है उसके पास!
यह बड़े आश्चर्य की बात है, जब तक भोजन नहीं होता, तब तक भूख होती है; जिस दिन भोजन के सब साधन हो जाते हैं, उस दिन भूख नहीं रहती। दुनिया बड़ी बेढंगी है। यहां हिसाब बड़ा उलटा है। जब तक सोने का इंतजाम नहीं रहता, तब तक नींद आती है। जब सोने का सब इंतजाम कर चुके होते हैं, तब तक नींद खो जाती है। गरीब सोचता है, महलों में सुख होगा; महलों में जो बैठे हैं, सोचते हैं गरीब बड़े मजे में हैं। शहरों में रहनेवाले लोग कविताएं लिखते हैं गांवों की प्रशंसा की। गांव में रहनेवाले लोग सिर ठोंकते हैं कि कब सौभाग्य होगा कि शहर पहुंच जाएं। विपरीत। जिसको हम भोग रहे हैं, उससे तो हम थक जाते हैं। ऊब जाते हैं।
रात हंस-हंस के ये कहती है कि मयखाने में चल
फिर किसी शहनाजे-लाला-रुख के काशाने में चल
ये नहीं मुमकिन तो फिर ऐ दोस्त, वीराने में चल
ऐ गमे दिल क्या करूं, ऐ वहशते दिल क्या करूं

रात हंस-हंस के कहती है मयखाने में चल
फिर किसी शहनाजे-लाला-रुख के काशाने में चल
फिर किसी लाल फूल-ऐसे मुखड़ेवाली के घर चल।
ये नहीं मुमकिन...
तो मन कहता है अगर यह न हो सके...
तो फिर ऐ दोस्त वीराने में चल
तो फिर वह ठीक दूसरा विपरीत रास्ता बताता है, फिर जंगल भाग चलो।
जो-जो लोग मयखानों से ऊब गये हैं, लाल मुखड़ेवाली स्त्रियों से ऊब गये हैं, वे जंगल भागते हैं। लेकिन जंगल भागने से कुछ हल नहीं है। जंगल में जो बैठे हैं, उनसे तो पूछो! उनका दिल कहता है--
रात हंस-हंस के कहती है मयखाने में चल
फिर किसी शहनाजे-लाला-रुख के काशाने में चल
तुम जरा साधुओं के भीतर तो उतरो। तुम पाओगे वे उन्हीं सब चीजों के लिए तड़फ रहे हैं, जिनके कारण तुम तड़फ रहे हो। तुम मरे जा रहे हो जिन चीजों के कारण, घबड़ाये जा रहे हो, सोचते हो कब साधु हो जाएं; कब सौभाग्य का क्षण आयेगा सब छोड़कर चले जाएं, जो छोड़कर चले गये हैं, जरा उनसे तो पूछो! वे तड़फ रहे हैं ईर्ष्या से। वे तुम्हें देख रहे हैं, वे सोच रहे हैं कि पता नहीं तुम मजा तो नहीं लूट रहे हो! हम कहीं चूक तो नहीं गये--जिंदगी हाथ से गुजरी जाती है, आत्मा का कुछ पता नहीं चल रहा है, भगवान के कोई दर्शन नहीं हो रहे हैं, माला फेरते-फेरते थक गये हैं, कहीं कोई साक्षात्कार नहीं हो रहा है, कहीं ऐसा तो नहीं है कि बस यही जिंदगी सब कुछ है! यह मयखाने और लाल मुखड़ेवाली स्त्रियोंवाली जिंदगी ही सब कुछ है! कहीं ऐसा तो नहीं कि हम नाहक बैठे हैं! खाली कोरी-माला फेर रहे हैं, मूर्ख बन गये हैं! यह शक उठता है।
मुझसे बड़े-बड़े बुजुर्ग साधुओं ने यह कहा है, कि शक होता है कि पता नहीं हमने कुछ गलती तो नहीं कर ली!
हालांकि इस सबके कारण दूसरे दिन प्रवचन में वह और जोर से लोगों को समझाते हैं कि संसार व्यर्थ है! कि छोड़ो, कहां उलझे हो कीचड़ में!
ख्याल रखना, जो साधु जितने जोर से तुम्हें छोड़ने को समझा रहा हो, उतनी
ही खबर दे रहा है कि वह बेचैन है। वह बेचैन है इस बात से, जब तक वह दूसरों को भी राजी न कर ले तब तक उसे चैन नहीं है। वह सोचता है, दूसरे शायद मजा लूट रहे हों। और एक अर्थ में बात ठीक भी लगती है, क्योंकि दूसरों की संख्या बहुत है। संख्या का बल मालूम होता है। अगर धर्म सच ही होता, तो सभी लोग कभी के धार्मिक हो गये होते! तो अगर मंदिर में बैठे पुजारी को मधुशाला में बैठे पियक्कड़ से ईर्ष्या पैदा हो जाती हो, कुछ आश्चर्य नहीं। क्योंकि मंदिर तो लोगों को लाख समझाओ और लोग नहीं आते। और मधुशाला जाने से लाख रोको, तो भी जाते हैं। कुछ होना ही चाहिए! कुछ प्रबल आकर्षण होना ही चाहिए! लाख समझाओ कि राख है, मिट्टी है सोना, फिर भी सोने को पकड़ते हैं। इतने समझानेवाले हुए हैं, फिर भी कोई संसार से भागता नहीं है! आसानी से भागता नहीं। और अकसर जो संसार से भागते हैं, बहुत बुद्धिमान नहीं मालूम होते हैं। इससे और शक पैदा होता है।
तुम अकसर साधु-संन्यासियों को निर्बुद्धि पाओगे। सौ में अगर एक भी तुम्हें बुद्धिमान मिल जाए, तो अपवाद है। तुम उन्हें निर्बुद्धि पाओगे। ये जिंदगी से हारे-थके लोग हैं। ये जिंदगी में जीत न सके। ये पराजित लोग हैं। जिंदगी में प्रतियोगिता न कर सके। इनके पास न इतनी बुद्धि थी, न सोच-समझ था, न इतना साहस था, इसलिए भगोड़े हैं। लेकिन भगोड़े होने से कुछ मन की नींद तो नहीं टूटती! मूर्च्छा तो नहीं जाती!
महावीर कहते हैं, भागने से कुछ न होगा, जागो। भागो नहीं, जागो। सारा जोर जागने पर है।
"जीव मरे या जीए, आ-यतन-आचारी को हिंसा का दोष अवश्य लगता है। किंतु जो समितियों में प्रयत्नशील है, उससे बाह्य हिंसा हो जाने पर भी उसे कर्मबंध नहीं होता।"

महावीर कहते हैं, जो जागकर नहीं जी रहा है, यतन से नहीं जी रहा है... यतन
से जीने का अर्थ समझ लेना--उसी को कबीर ने जतन कहा है। जतन को रतन कहा है। जतन से जीना! यत्न से जीना! क्या अर्थ है? होश से जीना! चलना काफी नहीं है, भीतर दीया जलता रहे, फिर चलना। बोलना काफी नहीं है, जतन से बोलना। होश से बोलना।
तुम्हें कभी ऐसा मौका आता है या नहीं, जब तुम ऐसी बात कह देते हो जो नहीं कहना चाहते थे? यह कैसा बोलना हुआ! तुम कहना नहीं चाहते थे और कह गये। तय करके आये थे कि यह बात कहेंगे नहीं, और निकल गयी। तुम कहते हो, मेरे बावजूद निकल गयी। कहना नहीं चाहता था, फिर भी निकल गयी। अकसर तो यह होता है, जो तुम नहीं कहना चाहते हो, वह निकल ही जाता है। वह कोई रास्ता खोज लेता है।
एक मुल्ला नसरुद्दीन का मित्र बीमार था। मरने के करीब था। मित्र जाकर उसको समझाते थे कि कोई फिकिर नहीं, मौत आ नहीं रही, तुम रोज-रोज ठीक हो रहे हो। आखिरी रात भी आ गयी, डाक्टरों ने कहा, अब बचेगा नहीं। मुल्ला उसे देखने गया था। मित्रों ने उसे समझाया कि देखो भूल से भी उसके मरने की बात मत कहना। वह वैसे ही मर रहा है, अब उसे और दुखी क्यों करना! घड़ी-दो घड़ी सुख से, शांति से रह ले। जाना तो है ही। उसको दुख क्यों देना! सदमा मत पहुंचाना। मुल्ला ने कहा, क्या तुमने मुझे नासमझ समझा है? मुझे पता है।
मुल्ला गया उसने बड़ी इधर-उधर की हांकी, मित्र को खूब प्रसन्न किया, इतना कि वह मरनेवाला आदमी हंसने लगा। उसके गप-सड़ाका, उलटी-सीधी कहानियां, वह बिल्कुल उठकर बैठ गया मरनेवाला, तभी मुल्ला, जोर-जोर से सिर हिलाने लगा, उसने पूछा क्या हुआ? उसने कहा, पूछो मत! यह तुम किस चीज के लिए सिर हिला रहे हो? उसने कहा कि तुमसे मैं बात जरूर कर रहा हूं, लेकिन एक प्रश्न मेरे मन में उठ रहा है कि यह तुम्हारे घर की जो सीढ़ियां हैं, मर जाओगे तो अर्थी निकाली कैसे जाएगी? यह सीढ़ियां इरछी-तिरछी हैं। तो मैं बार-बार उसी को इनकार कर रहा हूं कि मुझे क्या मतलब! यह जब मरेगा, जब मरेगा! और जिनको उतारना होगा, वे समझें! मगर यह प्रश्न मेरे मन में बार-बार आ रहा है कि इन सीढ़ियों से अर्थी निकालना बड़ा मुश्किल है। छिपाना चाहता था जो... सत्य के प्रगट होने के रास्ते हैं! झूठ को बचाओ, छिपाओ, तो भी खुल जाता है। सच को बचाओ, छिपाओ, तो भी प्रगट हो जाता है।
तुम अपने बावजूद बहुत-सी बातें कह जाते हो। पीछे पछताते हो। निश्चित
ही तुम्हारे बोलने में होश का दीया नहीं है। बोलो होश से, जाग्रत हुए। इसको महावीर कहते हैं, यत्न। बोधपूर्वक जीने का नाम, यत्न।
आंसू से कहो बरसे, मगर रोये नहीं
शबनम से कहो बिखरे, मगर खोये नहीं
पीने का मजा तो है तभी ऐ साकी
मयखाना सभी झूमे मगर सोये नहीं
मस्ती से कुछ हर्जा नहीं है, नींद भर न आये।
मयखाना सभी झूमे, मगर सोये नहीं
उठो, बैठो, चलो, जागे रहो! गीत गाओ, कि हंसो, कि रोओ, जागे रहो! जागरण को धीरे-धीरे तुम्हारे जीवन की शैली बना लो; इसको महावीर यत्न कहते हैं। "जीव मरे या जीए।"
हिंसा से इसका कोई संबंध नहीं है। आमतौर से लोग सोचते हैं, दूसरे को
मत मारो, क्योंकि मर जाएगा तो पाप लगेगा। महावीर कहते हैं, जीव मरे या जीए, इससे कुछ हिंसा का संबंध नहीं है। तुम्हारे मन में जो मारने की वृत्ति उठी, जो तुमने मारने की वृत्ति उठने दी, वह तुम्हारे सोये होने का सबूत है। जो जागा हुआ है, वह तो जानता है यहां सभी अमृतधर्मा हैं।
"जो समितियों में प्रयत्नशील है, उससे बाह्य हिंसा हो जाने पर भी उसे कर्मबंध नहीं होता।"
महावीर बड़ी अनूठी बात कह रहे हैं। वह कह रहे हैं, जो होशपूर्वक जी रहा है, उससे कभी बाह्य हिंसा हो भी जाए... तुम चल रहे थे, एक चींटी दबकर मर गयी। लेकिन तुमने चलने में होश रखा था। तुमने अपनी तरफ से पूरा होश रखा था... तो महावीर कहते हैं, फिर कोई हर्जा नहीं।

कुछ हिंसा तो होती है जीवन के होने में ही। श्वास लोगे। प्रत्येक सांस में लाखों जीवाणु मर जाते हैं। सांस तो लेनी ही होगी। जीवाणु तो मरेंगे ही। पानी पीयोगे, भोजन करोगे, हाथ भी हिलाओ-डुलाओ, तो पूरा वायुमंडल सूक्ष्म-जीवाणुओं से भरा है, वे मरते हैं। चलोगे, तो जीवाणु मरेंगे। हिंसा तो होगी। लेकिन तुम सावधानीपूर्वक बरतना।
कहते हैं महावीर एक ही करवट सोते थे पूरी रात। रात करवट भी न बदलते। नींद में भी सावधानी रखते। न्यूनतम। एक करवट तो सोना ही पड़ेगा। इससे कम तो और किया नहीं जा सकता। हां, दो करवट बदलने से रोका जा सकता है। एक ही करवट, एक ही बाजू पर सोये रहेंगे, करवट न बदलेंगे रात में, क्योंकि दूसरी तरफ कुछ कीटाणुओं के मर जाने की फिर संभावना है शरीर के हिलने से।
महावीर उतना ही करेंगे जितना जीवन के लिए एकदम अनिवार्य है। महावीर
ने एकदम जीवन को वहां लाकर ठहरा दिया जहां जरा भी अतिशय नहीं है। ठीक परिमार्जित।
राम को लोग मर्यादा पुरुषोत्तम कहते हैं। कहना महावीर को चाहिए। ऐसी मर्यादा में कोई आदमी नहीं जीया। उस मर्यादा का महावीर का नाम है--समिति। समिति का अर्थ होता है, सीमा बनाकर जीना। इतना पर्याप्त है, इससे फिर रत्तीभर ज्यादा नहीं।
"इसका कारण है कि समिति का पालन करते हुए साधु से जो आकस्मिक हिंसा हो जाती है वह केवल द्रव्य-हिंसा है, भाव-हिंसा नहीं। भाव-हिंसा तो उनसे होती है जो असंयमी होते हैं। ये जिन जीवों को कभी मारते नहीं उनकी हिंसा का भी दोष उन्हें लगता है।"
असंयमी को, अ-यतन में डूबे हुए मूर्च्छित व्यक्ति को, जिनको वह नहीं मारता उनकी भी हिंसा का पाप लग जाता है। क्योंकि बहुत बार वह सोच लेता है। तुमने कई बार सोचा होगा--फलां आदमी को मार ही डालें। मारा नहीं है! कितनी बार तुमने नहीं सोच लिया कि आदमी मर ही जाए! तुमने मारने का भी नहीं सोचा; लेकिन मर ही जाए! दुश्मन की तो बात छोड़ दो। कभी मां भी अपने बेटे से गुस्से में कह देती है कि तुम पैदा न ही हुए होते तो अच्छा था। जिसने पैदा किया है, जिसने जन्म दिया है, वह भी क्रोध में सोचने लगती है कि यह तो न होता तो अच्छा था। कोई मारता नहीं इतना, लेकिन योजना तो मन में चलती है। उस योजना में ही हिंसा है। विध्वंस है।
तो संयमी, मर्यादा में जीनेवाला, समिति में जीनेवाला, यत्नपूर्वक जीनेवाला--अगर कभी उससे संयोगवशात, अनिवार्य कारणों से कुछ हिंसा हो भी जाती है, तो उसे कोई पापबंध नहीं। उसने करनी नहीं चाही थी। उसके भीतर कोई भाव न था करने का। हुई तो वह जीवन की अनिवार्यता के कारण हुई। जीवन की अनिवार्यता के लिए वह जिम्मेवार नहीं है। अपनी तरफ से उसने सब भांति अपने को रोक लिया है। और जो व्यक्ति विवेक से नहीं जी रहा है, होश से नहीं जी रहा है, वह हिंसा न भी करे--पानी छानकर पीये, मांसाहार न करे, रात भोजन न करे, सब तरह से अपने को सम्हालकर बैठा रहे, लेकिन भीतर अगर हिंसा चलती जा रही है, भीतर अगर हिंसा के विचार उठ रहे हैं, तरंगें उठ रही हैं, तो पाप हो गया। मारने से हिंसा नहीं लगती, मारने के भाव से हिंसा लगती है।
इसे तुम समझोगे तो गीता के कृष्ण और महावीर ठीक एक जगह खड़े हो जाते हैं। दोनों की प्रक्रिया बिल्कुल अलग है, दोनों के साधन बिल्कुल अलग हैं, लेकिन लक्ष्य बिल्कुल साफ है। कृष्ण अर्जुन से कहते हैं तू परमात्मा के ऊपर सब छोड़ दे। तू कर्ता न रह जा। तू भाव भी मत कर कि मैं मार रहा हूं, कि मैं नहीं मार रहा हूं; परमात्मा पर छोड़ दे। फिर जो होता है, होने दे। अगर तेरे भीतर भाव न रहा कि मैं मारता हूं, फिर कोई हिंसा नहीं। महावीर कहते हैं जाग जा। क्योंकि महावीर की धारणा में परमात्मा के लिए कोई जगह नहीं है। जो परमात्मा का स्थान है गीता में, वह महावीर की धारणा में ध्यान का स्थान है।
परमात्मा का ध्यान नहीं करना है; महावीर कहते हैं, ध्यान ही परमात्मा है। जाग जा। फिर जागकर जो होता है, वह अनिवार्य है। लेकिन तेरे भीतर भाव न रहे कि मैं हिंसा कर रहा हूं, कि मैं हिंसा करना चाहता हूं। अभिप्राय से दोष है। कृत्य का कोई दोष नहीं है।

कभी-कभी तो ऐसा होता है, तुम किसी का नुकसान करने गये थे... एक आदमी राह
से चला जा रहा है, उसको वर्षों से सिरदर्द है; तुमने एक पत्थर उठाकर उसको मार दिया, पत्थर उसके सिर पर ऐसी जगह लगा कि सिरदर्द चला गया। तुम चाहते थे सिर तोड़ देना, फल इतना हुआ कि सिरदर्द चला गया। तुमने अच्छा किया या बुरा किया? हुआ तो अच्छा, किया था बुरा। पाप तो लगेगा। क्योंकि पाप अभिप्राय से लगता है, तुम्हारे भाव से लगता है। इसको महावीर कहते हैं--भाव-हिंसा और द्रव्य-हिंसा... तुम किसी को मारना नहीं चाहते थे। एक डाक्टर किसी का आपरेशन कर रहा है। सब तरह से बचाने को आतुर है, प्राणपण लगा दिये हैं, लेकिन आदमी मर जाता है। तो उसे हम मारे जाने का दोष नहीं देंगे। आदमी तो मरा, उसके आपरेशन में ही मरा, लेकिन फिर भी उसकी कोई भावदशा न थी। द्रव्य-हिंसा तो हुई, आदमी मरा, लेकिन कोई अभिप्राय न था। इसलिए पाप का कोई कारण नहीं है।
"किसी प्राणी का घात हो जाने पर जैसे संयत या असंयत व्यक्ति को द्रव्य तथा भाव दोनों प्रकार की हिंसा का दोष लगता है, वैसे ही चित्तशुद्धि से युक्त, समितिपरायण साधु द्वारा मनःपूर्वक किसी का घात न होने के कारण उसके द्रव्य तथा भाव, दोनों प्रकारों की अहिंसा होती है।"
"यत्नाचार धर्म की जननी है। यत्नाचारिता ही धर्म की पालनहार है। यत्नाचारिता धर्म को बढ़ाती है। यत्नाचारिता एकांत सुखावह है।"
जयणा उ धम्मजणणी, जयणा धम्मस्स पालणी चेव।
यत्नपूर्वक जीना धर्म की जन्मदात्री है। यत्नपूर्वक जीना धर्म की पालनकर्ता है, धारणकर्ता है। यत्नाचारिता धर्म को ब.ढ़ाती है। यत्नपूर्वक--राह चलते, उठते-बैठते सब तरफ होश रखना, तुम्हारे कारण किसी को दुख न पहुंचे। फिर भी किसी को दुख पहुंचे, वह उसका अपना भीतरी कारण होगा, तुम्हारा कुछ लेना-देना नहीं।
दुख तो महावीर के कारण तक लोगों को पहुंच जाता है। वह तो नग्न खड़े हैं। किसी को दुख हो जाता है कि यह आदमी नंगा क्यों खड़ा है? यह जिम्मेवारी उस आदमी की है। महावीर उसके लिए नग्न नहीं खड़े हैं। यह उसकी ही भावदशा है। एक मित्र ने प्रश्न किया है कि वह यहां संन्यास लेने आये थे। लेकिन उनका भरोसा, विश्वास "स्वामी नारायण संप्रदाय" में है। तो उन्होंने पूछा है कि "स्वामी नारायण संप्रदाय" में संन्यास लूं या यहां? क्योंकि वहां तो ब्रह्मचर्य पर बड़ा जोर है, सख्ती है। और यहां ऐसा लगता है कि आपका ब्रह्मचर्य पर कोई जोर नहीं है। और आपके संन्यासी शिथिल मालूम होते हैं। उनको दुविधा पैदा हुई है। पूछा है कि बड़े द्वंद्व में पड़ गया हूं। द्वंद्व में पड़ने की कोई जरूरत नहीं। तुम संन्यास लेना भी चाहो, तो मैं न दूंगा। इसलिए द्वंद्व छोड़ो। तुम रुग्ण हो। दूसरे संन्यासी क्या कर रहे हैं, इससे तुम्हारा प्रयोजन ही नहीं है। कौन शिथिल है, कौन शिथिल नहीं है, तुमसे किसी ने पूछा नहीं है। तुम अपने लिए ही निर्णय लो। जिनने पूछा है, इस व्यक्ति ने निश्चित "स्वामी नारायण संप्रदाय" के प्रभाव में कामवासना का दमन किया होगा। दबाया होगा जबर्दस्ती। जो व्यक्ति कामवासना को दबा लेता है, उसे सब तरफ कामवासना दिखायी पड़ने लगती है। जिस व्यक्ति ने कामवासना को दबाया नहीं, समझा है, उसे फिर कहीं कामवासना नहीं दिखायी पड़ती। जिसे तुमने दबाया, वही तुम्हारी आंख से उभर-उभरकर तुम्हें सब जगह दिखायी पड़ेगी। दमन मुक्ति नहीं है। दमन बड़ा गहरा बंधन है।
अब सोचो, अगर यह "स्वामी नारायण संप्रदाय" को माननेवाले सज्जन महावीर
को मिल जाएं, तो यह तो घबड़ा ही जाएंगे कि यह आदमी नग्न ख.ड़ा है! यह तो बड़ी अनैतिक बात है, बड़ी अश्लील बात है। अशोभन है। अशिष्ट है। ऐसा ही हुआ था। महावीर को गांवों से खदेड़ा गया, मारा गया। क्योंकि उनका नग्न होना दूसरों को पीड़ादायी हो गया। महावीर किसी को पीड़ा नहीं देना चाहते। वह वस्तुतः नग्न इसलिए हुए कि वे नैसर्गिक होना चाहते हैं। स्वाभाविक होना चाहते हैं। नग्न आदमी पैदा हुआ है, नग्न ही विदा होगा, तो बीच में वस्त्र ढांकने का क्या प्रयोजन! इसलिए महावीर नग्न हुए। महावीर की नग्नता तो वैसी निर्दोष है, जैसे छोटे बालक की। लेकिन देखनेवालों को जो वही दिखायी पड़ा तो उनकी आंखों में भरा था। उन्होंने तो देखा कि यह बात कुछ गड़बड़ है। यह आदमी

तो समाज को तुड़वा देगा। शिथिल करवा देगा। जिस व्यक्ति के आधार पर समाज सदा के लिए सुदृढ़ स्तंभ रख सकता था, वह अनैतिक मालूम पड़ा लोगों को। उसे हटाया लोगों ने अपने गांवों से।
ख्याल रखो, जो तुम्हारे भीतर है, वही दिखायी पड़ता है। यह भी हो सकता है तुम किसी को दुख न देना चाहो, लेकिन फिर भी किसी को दुख पहुंच जाए। पर यह उसकी बात है। यह वह जाने। यह उसकी समस्या है। तुम अपने भीतर किसी को दुख देने का भाव न रखना। तुम अपने भीतर किसी के विध्वंस की आकांक्षा न करना। तुम किसी के विनाश का बीज अपने भीतर मत बोना। तुम निखालिस, तुम पवित्र रहना। तुम प्रेमपूर्ण रहना। और तुम यत्नपूर्वक जीना। और एक-एक कदम रखना होगा। पहले तो भाव में बदलाहट करनी होगी। तभी बाहर बदलाहट होगी।
जमीं सख्त है, आसमां दूर है
बसर हो सके तो बसर कीजिए
कफस तोड़ना बाद की बात है
अभी ख्वाहिसे-बालो-पर कीजिए
पिंजड़े में बंद हैं हम। अभी पिंजड़े को तोड़ना तो बहुत मुश्किल है। अभी
तो पहले पंख पैदा हो जाएं, इसकी आकांक्षा कीजिए।
जमीं सख्त है, आसमां दूर है
बसर हो सके तो बसर कीजिए
कफस तोड़ना बाद की बात है
अभी ख्वाहिसे-बालो-पर कीजिए
अभी तो मेरे पंख पैदा हो जाएं, इसकी आकांक्षा, इस दिशा में प्रयास। अभी तो पैर मजबूत हो जाएं, इस दिशा में प्रयत्न। फिर यात्रा है। मंजिल दूर की है। बल चाहिए। भाव चाहिए। अदम्य आशा चाहिए।
महावीर कहते हैं, "यत्नाचारिता धर्म को बढ़ाती है। यत्नाचारिता एकांत सुखावह है।" जितना यत्न होगा, उतना सुख होगा। क्योंकि जितना हम दूसरे को दुख देना चाहते हैं, उतना ही अपने दुख के बीज बोते हैं। जो हम काटते हैं वह हमारा ही बोया हुआ है। जो हम बोते हैं, वह हमीं काटेंगे। जो गड्ढे हम दूसरों के लिए खोदते हैं, उनमें हम ही गिरेंगे। इसलिए किसी के लिए दुख के बीज मत बोना। अगर तुम दुखी हो, तो इसका इतना ही अर्थ है कि अब तक तुमने दुख के बीज दूसरों के लिए बोये। यह जगत एक प्रतिबिंब है। तुम जैसे होते हो वैसी ही तस्वीर तुम्हें दिखायी पड़ती है। यह जगत एक प्रतिध्वनि है। तुम गीत गुनगुनाओ, तो गीत लौट आता है। तुम गाली दो, तो गाली ही तुम पर हजार गुना होकर बरस जाती है।
आदमी ने वक्त को ललकारा है
आदमी ने मौत को भी मारा है
जीते हैं आदमी ने सारे लोक
आदमी खुद से मगर हारा है
वहीं एक हार है। अपने पर बस नहीं हमारा। अपने पर समिति, संयम नहीं हमारा। अपने हम मालिक नहीं। महावीर ने इस पर इतना जोर दिया, स्वयं की मालकियत पर, कि उनका पूरा धर्म जिन-धर्म कहलाया। जिन का अर्थ होता है, जीता जिसने। जैन-घर में पैदा होने से मत समझ लेना कि जैन हो गये। जब तक जिन न हो जाओ, तब तक जैन कैसे होओगे? जब तक जीत न लो अपने को... और जीत कैसे आयेगी, उसका परम सूत्र है--
जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सए।
जयं भुंजंतो भासंतो, पावं कम्मं न बंधइ।।
विवेक से। "विवेकपूर्वक चलने से, विवेकपूर्वक रहने से, विवेकपूर्वक बैठने से, विवेकपूर्वक सोने से, विवेकपूर्वक खाने और विवेकपूर्वक बोलने से साधु को पापकर्म का बंध नहीं होता।" जो करो उसे विवेकपूर्वक करना। जो करो, एक शर्त जरूर पूरी करना कि वह विवेकपूर्वक हो, होशपूर्वक हो। निद्रा, मूर्च्छा में न हो। बेहोशी में न हो। क्या परिणाम होता है इसका? यह जीवन के शास्त्र की बड़ी गहरी बात है। जीवन-शास्त्र का बड़ा प्रगट लेकिन फिर भी बहुत गुप्त रहस्य है। जो तुम विवेक से कर सको, वही पुण्य है। और जो विवेक के कारण न कर सको, वही पाप है।

जैसे मैं कहता हूं, क्रोध करते हो तो मैं नहीं कहता क्रोध मत करो; मैं कहता हूं विवेकपूर्वक करो। क्रोध आये, जाग जाओ। झकझोर दो अपने को। जैसे सुबह नींद से उठते हो, अंगड़ाई लेते हो, ऐसे भीतर चैतन्य की अंगड़ाई लो। झकझोर दो अपने को। जागो! जानो कि क्रोध हो रहा है। करो जानकर। और तुम चकित हो जाओगे, तुम क्रोध न कर पाओगे। अगर प्रेम फैल रहा हो और तुम जाग जाओ, तो तुम हैरान होओगे, जागने के कारण प्रेम करोड़ गुना होकर फैलेगा। क्रोध तत्क्षण जलकर गिर जाएगा। प्रेम फैलेगा। अगर तुम किसी को मिटाने चले थे, तो जागने के कारण पैर वहीं ठिठक जाएंगे। और अगर किसी को उठाने चले थे, तो जागने के कारण तुम दौड़ पड़ोगे। जो जागने से हो सके, वही पुण्य है। और जो जागने से न हो सके, वही पाप है। पाप और पुण्य की इससे ज्यादा गहरी कोई परिभाषा कभी नहीं की गयी है।
महावीर कहते हैं, पाप वही है, जो सोये-सोये होता है, जागकर नहीं होता। पुण्य वही है, जो सोये-सोये कभी नहीं होता, केवल जागकर ही होता है। इसलिए एक ही बात पकड़ लेने जैसी है, और वह है जागरण। ध्यानपूर्वक जीना। जो जाग गया, उसका संबंध परम सत्य से जुड़ जाता है।
ऐ शौके-नजारा क्या कहिए,
नजरों में कोई सूरत ही नहीं
ऐ जौके-तसव्वुर क्या कीजे,
हम सूरते-जानां भूल गये
अब गुल से नजर मिलती ही नहीं
अब दिल की कली खिलती ही नहीं
जैसे ही कोई जागता है, गुल से नजर मिलने लगती है। दिल की कली खिलने लगती है। सोये-सोये हमारी हालत ऐसी है--
ऐ शौके-नजारा क्या कहिए,
नजरों में कोई सूरत ही नहीं
सोये आदमी की दृष्टि में सत्य का दर्शन कैसे! परमात्मा का दर्शन कैसे! प्रिय दिखायी कैसे पड़े नींद-भरी आंखों में! वहां तो सिर्फ सपने दिखायी पड़ सकते हैं। सत्य दिखायी नहीं पड़ सकता।
ऐ शौके-नजारा क्या कहिए,
नजरों में कोई सूरत ही नहीं
ऐ जौके-तसव्वुर क्या कीजे,
हम सूरते-जानां भूल गये
अब याद भी करें उस परम की, प्रभु की, तो कैसे करें, हम तो उसकी सूरत भी भूल चुके!
हम सूरते-जानां भूल गये
उस प्रीतम की सूरत भी याद नहीं, याद क्या करें? स्मरण कैसे करें?
अब गुल से नजर मिलती ही नहीं
अब दिल की कली खिलती ही नहीं
जैसे ही कोई विवेक को उपलब्ध हुआ, मिलने लगती है गुल से नजर, खिलने लगती है दिल की कली।
यह विवेक का बल एकमात्र बल है, जो तुम्हें तीर्थ तक पहुंचा देगा। यह विवेक के पंख ही तुम्हें खुले आकाश में उड़ा सकेंगे। यह विवेक के पैर ही तुम्हें उस परम यात्रा तक पहुंचा सकेंगे। अगर महावीर के सारे शास्त्र को दो शब्दों में रखा जा सके, तो वे होंगे, "विवेक" और "अहिंसा"। अहिंसा है गंतव्य। विवेक है उस तरफ गति। अहिंसा है साध्य, विवेक है साधन। अहिंसा है मंजिल, विवेक है मार्ग।
मन पंछी इस तरह उड़ा कुछ,
तुम मेरे आकाश बन गये।
पंखों की बिसात ही कितनी,
भरी उ.ड़ानें फिर भी इतनी,
छोर नापते थके न पल छिन,
ये कैसे अभ्यास बन गये
तुम मेरे आकाश बन गये।

दिवस, मास या वर्ष गिनूं क्या,
सारा जीवन एक तपस्या
सांसों के जितने शिशु जन्मे,
सभी तुम्हारे दास बन गये
तुम मेरे आकाश बन गये।
विवेक तुम्हारा आकाश बन जाए, वही-वही एकमात्र तुम्हारा लक्ष्य बन जाए, तो तुम्हारा पूरा जीवन तपस्या हो गयी।
दिवस मास या वर्ष गिनूं क्या,
सारा जीवन एक तपस्या
महावीर तुम्हें एक खंड को सुंदर बनाने को नहीं कहते। वे यह नहीं कहते
कि एक घड़ी को धार्मिक बना लो और तेईस घड़ी जीए जाओ संसार में। वह कहते हैं, कुछ ऐसा करो, कुछ ऐसे जीओ कि चौबीस घंटा एक ही धागे में पिरो जाए।
तो अगर पूजा करो, तो चौबीस घंटे तो नहीं कर सकते। कम से कम भोजन के लिए छुट्टी लेनी पड़ेगी। मंदिर में बैठो, तो चौबीस घंटे तो नहीं बैठ सकते। रात सोना तो पड़ेगा। स्नान करने के लिए तो उठना पड़ेगा। माला फेरो तो चौबीस घंटे तो नहीं फेर सकते। जीवन पंगु हो जाएगा। लेकिन महावीर कहते हैं, विवेक कुछ ऐसी बात है कि चौबीस घंटे साध सकते हो, कोई बाधा न पड़ेगी। स्नान करो, तो भी-- जागे। बैठो, उठो, भोजन करो, बात करो, सुनो--जागे। दुकान जाओ, मंदिर जाओ, बजार जाओ, घर आओ--जागे। भीड़ में, अकेले में--जागे। और महावीर कहते हैं, अगर तुम्हारा सारा कृत्य जागरण से जुड़ जाए, तो तुम एक दिन अचानक पाओगे कि रात तुम सोते हो और जागे। इसको कृष्ण ने कहा है, "या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।" जब सब सो जाते हैं, तब भी संयमी जागता है, इससे तुम ऐसा मतलब मत लेना कि संयमी बैठा रहता है बिस्तर पर। पागल हो जाएगा! शरीर को तो नींद जरूरी है। लेकिन भीतर का दीया जलता रहता है। रात के गहनतम अंधेरे में भी, शरीर जब सो जाता है, तब भी आत्मा जागी रहती है "तस्यां जागर्ति संयमी।" लेकिन इस जागरण को पहले जागी अवस्था में साधो। धीरे-धीरे यह तुम्हारी नींद में भी उतर जाएगा। यह चौबीस घंटे पर फैल जाएगा। और जो धर्म चौबीस घंटे पर फैल जाए, वही तुम्हें मुक्त कर पायेगा। अन्यथा, घंटेभर धर्म को साधोगे, तेईस घंटे अधर्म को साधोगे, मुक्ति होगी कैसे? घंटेभर में जो बनाओगे, तेईस घंटे में तेईस गुना मिटा दोगे। फिर दूसरे दिन घंटे भर में बनाओगे, फिर तेईस घंटे में मिटा दोगे।
और कुछ राज ऐसा है कि अगर धागे को पिंडली में लपेटना हो, तो घंटों लगते हैं, और धागे को पिंडली से अलग निकालना हो तो क्षणभर में खुल जाता है। मकान बनाने में वर्षों लगते हैं, गिराना हो तो दिनभर में गिर जाता है। मिटाना ब.ड़ा जल्दी हो जाता है। और मिटाने के लिए तेईस घंटे हैं। और बनाना बड़ा मुश्किल है और बनाने के लिए घंटाभर है। तुम जीत न पाओगे। इससे कभी जीत संभव नहीं है।
जीत का यही सूत्र है--
"जयं चरे जयं चिट्ठे"--जागकर चलो, जागकर रहो। "जयमासे जयं सए"--जागकर बैठो, जागकर सोओ। "जयं भुंजंतो भासंतो"--जागकर बोलो। "पावं कम्मं न बंधइ"-- फिर कोई पाप तुम्हारे लिए नहीं है। फिर पाप का कोई बंधन नहीं है।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग दो
दसवां प्रवचन

दुख की स्वीकृतिः महासुख की नींव

पहला प्रश्नः प्रवचन में आप एक हाथ से हम पर करारी चोट करते हैं और दूसरे हाथ से फूल और सुगंध बांटते हैं। बांटते क्या हैं, लुटाते हैं! क्या आपको इन दोनों से एक-साथ गुजरने में कठिनाई नहीं होती?

दोनों में विरोध नहीं है, दोनों में सहयोग है। दोनों एक-दूसरे के विपरीत नहीं हैं, एक-दूसरे के परिपूरक हैं। कुम्हार को देखा है? एक हाथ से सम्हालता है और दूसरे हाथ से थपकी देता है। एक हाथ से मिट्टी को सम्हालता है, गिर न जाए, भीतर से सम्हालता है, बाहर से चोट देता है। भीतर से न सम्हाले तो मिट्टी की देह निर्मित न हो पायेगी, गिर जाएगी। बाहर से चोट न दे, तो भी न सम्हल पायेगी, तो भी घड़ा बन न पायेगा।
जो कुम्हार कर रहा है, वही मैं भी कर रहा हूं। वह मिट्टी के साथ कर रहा है, मैं आत्मा के साथ कर रहा हूं। सहारे की भी जरूरत है, चोट अकेली काफी नहीं। अकेला सहारा भी काफी नहीं, चोट की भी जरूरत है। सहारे देनेवाले तुम्हें बहुत मिल जाएंगे, लेकिन वे चोट नहीं करते। कुछ चोट करनेवाले भी हैं, लेकिन वे सहारा नहीं देते। दोनों ही हालत में तुम्हारी आत्मा का पात्र निर्मित न हो पायेगा।
मेहर बाबा सहारा देते हैं, चोट नहीं करते। कृष्णमूर्ति चोट करते हैं, सहारा नहीं देते। ये अधूरे उपाय हैं।
मैं दोनों को एक-साथ सम्हाल रहा हूं। मुझे अड़चन नहीं है सम्हालने में, क्योंकि मेरे लिए दोनों परिपूरक हैं। अड़चन तुम्हें होगी। वह मैं जानता हूं। तुम चाहते हो या तो चोट ही करो, या सम्हालो ही, ताकि तुम्हारे सामने मेरी स्थिति साफ-साफ हो जाए। मैं दोनों करता हूं तो तुम्हारे सामने मेरी स्थिति साफ नहीं होती। तुम मुझे छोड़कर भी नहीं भाग सकते, क्योंकि सहारा भी देता हूं। तुम मेरे साथ पूरे खड़े भी नहीं हो पाते, क्योंकि चोट भी करता हूं। तुम्हारे मन में मेरे प्रति स्थिति स्पष्ट नहीं हो पाती, रहस्य बना रहता है।
अगर मैं सहारा ही दूं तो तुम मेरे साथ हो जाओ। लेकिन वह साथ होना किस काम का! तुम मुर्दे की तरह साथ हो जाओगे। तुम्हें मैंने चुनौती न दी। तुम अनगढ़ पत्थर रह जाओगे, मूर्ति न बनोगे। क्योंकि मूर्ति बनाने के लिए तो छेनी उठानी ही पड़ेगी। तुम्हें काटना ही होगा। और अगर मैं सिर्फ चोट ही करूं, तो तुम्हें भागने में सुविधा हो जाए। चोट खाने को कौन बैठा रहता है? तुम या तो भाग जाओ या तुम सुनो ही न, या सुनते हुए भी तुम बहरे बने रहो। लेकिन संबंध टूट जाए।
मैंने तुम्हें दुविधा में डाला। न तुम छोड़कर भाग सकते हो, क्योंकि एक हाथ से मैं तुम्हें बुला भी रहा हूं; और तुम मेरे पास आने में भी डरते हो, क्योंकि मैं चोट भी कर रहा हूं। लेकिन यही एकमात्र उपाय है तुम्हें निर्मित करने का। बस, तुम कुम्हार को जाकर देख आना--घड़ा बनाते कुम्हार को-- तुम्हें मेरी बात समझ में आ जाएगी। कुम्हार के लिए विरोध नहीं है। शायद घड़े को अड़चन भी होती हो कि क्या कर रहे हो, उल्टी बातें एक-साथ कर रहे हो? सहारा देते हो तो सहारा दो, चोट करते हो तो चोट करो, यह तुम क्या कर रहे हो? बड़ी विसंगति है, बड़ा विरोध है।
मेरी बातें तुम्हें विसंगतिपूर्ण मालूम पड़ेंगी। आज कुछ कहता हूं, कल कुछ कहता हूं। क्योंकि जब सहारा देना होता है, तब तुम्हें पुचकार लेता हूं; जब चोट करनी होती है, तब फिर निर्ममता से चोट भी करता हूं। तुम तय नहीं कर पाते कि जिसके पास आये हो वह मित्र है, या शत्रु है? जिसके साथ चल पड़े हो, वह पहुंचायेगा या भटकायेगा? तुम साफ नहीं कर पाते। तुम्हारी दुविधा साफ है। मुझे कोई दुविधा नहीं है। मैं जो कर रहा हूं बिल्कुल स्पष्ट है, संगतिपूर्ण है।

और अगर तुम्हें मेरी बात समझ में आ जाए, तो तुम्हारे लिए भी संगति का दर्शन हो जाएगा। उस दर्शन से बड़ा लाभ होगा। फिर तुम चोट में भी छिपे सहारे को देखोगे। सहारे में भी छिपी चोट को देखोगे। अकेली करुणा से न होगा। करुणा को कठोर होना होगा, तो ही काम हो सकेगा। तुम्हें बनाना भी है, बहुत कुछ तुम में मिटाना भी है। तुम एक जीर्ण-जर्जर भवन की तरह हो। एक खंडहर! पहले तुम्हें मिटाना भी है, फिर नये भवन की नींव भी रखनी है। तुम जैसे हो ऐसे ही परमात्मा के योग्य नहीं हो। तुम परमात्मा के योग्य हो सकते हो। लेकिन उसके पहले बड़ी अग्नियों से गुजरना होगा। संभावना है तुम्हारी परमात्मा, सत्य नहीं। तुम बीज हो अभी। टूटोगे, तोड़े जाओगे, मिट्टी में गिरोगे, बिखरोगे, तो ही किसी दिन फूल खिल पायेगा।
पुष्ट बीज,
सुष्ट खेत,
साथी संगी समेत,
सुसमय बोइये,
सींचिए सुसाध से,
रात दिन
बात बिन
खेत को रखाइये।
काल थक जाए जब,
धान पक जाए जब,
होकर इकट्ठे फिर,
काटिये कटाइये।
पुष्ट बीज--पहले तो बीज को पुष्ट होना पड़ता, पकना पड़ता। कच्चे बीज को बोने से कुछ सार न होगा। धूप में, सूर्य-आतप में, तप में बीज को पकना होता है। पका बीज ही अंकुरित होता है। कच्चा बीज तो अंकुरित नहीं होता। चोट न खायी, पकोगे नहीं; कच्चे रह जाओगे। जिनके जीवन में चोटें नहीं पड़तीं, वे सदा कच्चे रह जाते हैं। धन्यभागी हैं वे जिन्हें जीवन बहुत चोट देता है। अभागे हैं वे जिन्हें जीवन सिर्फ सहारा देता है, चोट नहीं देता। वे नपुंसक रह जाते हैं। इसीलिए तो बहुत सुविधा में, संपन्नता में पले हुए लोगों में प्रतिभा नहीं होती। प्रतिभा के लिए थोड़ी चोट चाहिए। जीवन का तप, जीवन का ताप चाहिए। तूफान और आग चाहिए।
मैंने सुना है, एक किसान ने बड़े दिन तक परमात्मा से पूजा की, प्रार्थना की। परमात्मा ने दर्शन दिये, तो उसके सामने कहा कि बस, मुझे एक ही बात तुमसे कहनी है। तुम्हें किसानी नहीं आती। बेवक्त बादल भेज देते हो। जब बादल की जरूरत होती है, हम तड़फते हैं, चीखते-चिल्लाते हैं, तब बादलों का कोई पता नहीं! कभी ऐसी वर्षा कर देते हो कि बाढ़ आ जाती है, कभी ऐसा खाली छोड़ देते हो कि पानी को तरस जाते हैं। फसल खड़ी होती है--तूफान, आंधी, ओले! तुम्हें कुछ पता है? खेती तुमने कभी की नहीं। तो कम से कम खेती के संबंध में तुम मेरी सलाह मानो। परमात्मा हंसा उस भोले किसान पर। उसने कहा, ठीक! तो तू क्या चाहता है? एक साल तेरी मर्जी से होगा। किसान ने कहा, तब ठीक है।
एक साल किसान ने मर्जी से जो चाहा, जिस दिन चाहा, वैसा हुआ। जब उसने पानी मांगा, पानी गिरा। जब उसने धूप मांगी, तब धूप आयी। गेहूं की बालें इतनी बड़ी कभी भी न हुई थीं। आदमी ढंक जाए, खो जाए, इतनी बड़ी गेहूं की बालें हुईं। उसने कहा, अब देख! सोचा मन में, अब दिखाऊंगा परमात्मा को। बालें तो बहुत बड़ी हुईं, लेकिन जब फसल काटी, तो बालों के भीतर गेहूं बिल्कुल न थे, पोच थे। बहुत परेशान हुआ। परमात्मा से कहा, यह क्या हुआ? क्योंकि मैंने इतनी सुविधा दी। जब पानी की जरूरत थी, तब पानी; जब धूप की जरूरत थी, तब धूप। आंधी, तूफान, ओले इत्यादि तो मैंने काट ही दिये। कोई तकलीफ तो दी ही नहीं। लेकिन बीज आये ही नहीं! हुआ क्या है?
परमात्मा ने कहा, पागल! सिर्फ सुविधा से कहीं कोई चीज बनी है, निर्मित हुई है? सुविधा के साथ साधना भी चाहिए। तूने सुविधा तो दे दी, लेकिन साधना का कोई अवसर न दिया। तूने सम्हाला तो, लेकिन चोटें-चपेटें न दीं। आंधी भी

चाहिए, ओले भी चाहिए, तूफान भी चाहिए; सहारा भी चाहिए। इन दोनों के बीच में गेहूं पैदा होता, पकता। बल पैदा होता है चुनौती से।
पुष्ट बीज
तो पहली तो बात है कि बीज पुष्ट हो।
सुष्ट खेत
फिर खेत तैयार हो। ऐसे हर कहीं बीज फेंक देने से कहीं फसल नहीं काटी जाती। पत्थर, कूड़ा-कर्कट, घास-पात अलग करना होगा। खाद खेत में डालनी होगी। श्रम करना होगा।
पुष्ट बीज
सुष्ट खेत
साथी-संगी समेत
अकेले भी न हो पायेगा। जीवन में कुछ भी तो अकेले नहीं हो पाता। जीवन
है ही संग-साथ में। हम समाज में पैदा होते, समाज में जीते, समाज में विदा होते। हमारा होना सामाजिक है। संबंधों में है। जैसे मछली सागर में जन्मती है, ऐसे हम संबंधों के सागर में जन्मते हैं। बिना मां के, बिना पिता के कौन पैदा होगा? कैसे पैदा होगा? बिना भाई-बहन के, बिना मित्र-शत्रु के कौन बढ़ेगा, कैसे बढ़ेगा?
पुष्ट बीज
सुष्ट खेत
साथी संगी समेत
इसलिए मेरा बहुत जोर है कि तुम ध्यान भी साधो और प्रेम भी साधो। ध्यान
का अर्थ है, तुम अकेला होना साधो। और प्रेम का अर्थ है, तुम संबंधों में भी माधुर्य को निर्मित करो। ऐसा न हो कि तुम अकेले-अकेले रह जाओ। तो तुम सूख जाओगे। कुछ बड़ा बहुमूल्य तुम्हारे भीतर मर जाएगा। जंगल में भाग गये संन्यासी का कुछ बहुमूल्य मर जाता है। भीड़ में ही रहनेवाले आदमी का भी कुछ बहुमूल्य मर जाता है। दोनों अधूरे हैं। भीड़ में रहनेवाले आदमी को अपने घर का पता खो जाता है। वह अपने मन-मंदिर तक लौट ही नहीं पाता। भीड़ में ही भटक जाता है। याद ही नहीं रहती कि मैं कौन हूं? अकेला जो चला गया, उसे अपनी तो याद आने लगती है, लेकिन दूसरे का स्मरण भूल जाता है। और दूसरे के स्मरण के बिना अहंकार खूब मजबूत हो जाता है। एकांत में रहनेवाले व्यक्ति का अहंकार खूब बलशाली हो जाता है। भीड़ में रहनेवाले आदमी की आत्मा खो जाती है। दोनों के बीच में। अकेले रहना है, भीड़ में रहना है। और भीड़ में रहना है और अकेले रहना है। घूमो, चलो बाजार में, लेकिन भीतर हिमालय का एकांत बना रहे। संबंधों से भागो मत। क्योंकि संबंधों के थपेड़े जरूरी हैं। क्रोध, संघर्ष, चोट, चुनौती जरूरी हैं। भीतर ध्यान को साधो, बाहर प्रेम के धागे को पकड़े रहो।
पुष्ट बीज
सुष्ट खेत
साथी-संगी समेत
सुसमय बोइये
ठीक समय पर बोना पड़ेगा। चाहे ठीक समय आधी रात आये। चाहे ठीक समय भर-दोपहरी में आये। ठीक समय जो भी मांगे, देना होगा। ठीक समय की प्रतीक्षा करनी होगी, सजग प्रहरी की तरह, आंखें खोले। झपकी न लेनी होगी। क्योंकि ठीक समय पर पड़े बीज ही ठीक समय पर फूलेंगे, फलेंगे। जरा-सा समय चूक गये, तो जो जरा-सा समय चूक गया, वह सदा के लिए बाधा बन जाता है। फिर उसे पूरा करने का कोई उपाय नहीं।
पुष्ट बीज,
सुष्ट खेत,
साथी संगी समेत,
सुसमय बोइये,
सींचिए सुसाध से,
रात दिन
बात बिन

खेत को रखाइये।
काल थक जाए जब,
धान पक जाए जब,
होकर इकट्ठे फिर,
काटिये कटाइये।
जीवन ऐसा ही है। सभी कुछ सुविधा से मिलता होता, तो सभी को मिल गया होता। सुविधा काफी नहीं है। साधना भी जरूरी है। और अगर अकेली साधना से ही मिलता होता, तो भी बहुत अड़चन न थी। साधना के भीतर सुविधा भी आवश्यक है। साधना, सुविधा में विरोध दिखायी पड़ता है। लेकिन उन्हीं को, जिन्होंने जीवन के गणित को समझा नहीं।
दिनभर तुम श्रम करते हो, रात सो जाते हो, विरोध का ख्याल नहीं किया? तुम यह नहीं कहते कि कल भी मुझे काम करना है, रात सो जाऊंगा, शिथिलता आ जाएगी। जागा रहूं रातभर। क्योंकि कल भी तो जागना है। तो जागने का अभ्यास जारी रखूं। अगर तुम रातभर जागे, तो कल सोओगे फिर। जाग न सकोगे। जीवन का गणित यही है कि विपरीत से मिलकर बना है जीवन। दिनभर जागे हो, रातभर सो जाओ। रातभर ठीक से सोये, तो सुबह कल फिर ठीक से जाग सकोगे। अगर श्रम किया है, तो विश्राम कर लो। श्रम ही श्रम करते रहे, तो भी पागल हो जाओगे। विश्राम ही विश्राम करते रहे, तो जीवन की सारी संपदा खो जाएगी। श्रम और विश्राम का संतुलन है जीवन। दोनों को एक-साथ साधना है।
कुछ लोग सुविधा को साधते हैं, इनको ही हम सांसारिक कहते हैं। कुछ लोग साधना को साधते हैं, इन्हीं को हम संन्यासी कहते रहे हैं।
मेरे संन्यासी को मेरा आदेश बड़ा भिन्न है। मैं कहता हूं, सुविधा में साधना को साधना। साधना और सुविधा को तोड़ना मत, जोड़ना। जब साधना से थक जाओ, सुविधा में डूब जाना। जब सुविधा से थक जाओ, तैयार हो जाओ, विश्राम पा लो, फिर साधना में लग जाना।
जीवन विपरीत को विपरीत की तरह नहीं देखता। वहां विपरीत परिपूरक है।

दूसरा प्रश्नः भीतर समता का, आनंद का दीया अधिक समय स्थिर रहने पर भी कभी टिमटिमाने लगता है। क्या यह मेरे निर्माण की भूमिका है, अथवा मेरी किसी शिथिलता का परिणाम? यह ठीकपन या सम्यकत्व का आनंद सदा अकंपित रहे, इसके लिए अपने अनुभव से मेरा मार्ग प्रकाशित करने की कृपा करें।

एक क्षण से ज्यादा का विचार ही मत करो। उसी के कारण दीया टिमटिमाने लगता है। एक क्षण से ज्यादा तुम्हारे हाथ में नहीं है। सदा अकंपित रहे, यह आकांक्षा ही क्यों करते हो? सदा स्थिर रहे, यह वासना ही क्यों करते हो? कल की बात ही क्यों उठाते हो? आज काफी है। अभी, यही क्षण काफी है। एक क्षण से ज्यादा तो एक बार तुम्हें मिलता नहीं। एक-साथ दो क्षण तो कभी मिलते नहीं। एक क्षण भी अगर समता का दीया ठहरा रहता है, फिकिर छोड़ो। इसी क्षण को जी
लो पूरा, भरपूर। निचोड़ लो पूरा सार, रस! यह जो क्षण का अंगूर है, बना लो इसकी सुरा। यही क्षण काफी है। जैसे ही तुमने सोचा, यह जो आनंद अभी मिल रहा है, सदा रहेगा? तुम्हीं ने हवा के कंप पैदा कर दिये। दीया नहीं कंप रहा है; तुम्हारे मन ने ही दीये को कंपा दिया। आनंद नहीं कंप रहा है, तुम भविष्य को बीच में ले आये। तुमने कल की चिंता बीच में डाल दी। कल है कहां? और कल जब आयेगा तब आज की तरह आयेगा। तुम आज को सम्हाल लो।
जिसने आज को सम्हालना जान लिया, उसने शाश्वत को सम्हाल लिया। लेकिन हमारी अड़चन क्या है? जो हमारे सामने होता है, अगर कभी आनंद आता है, तो हम घबड़ाते हैं कि छूट तो न जाएगा? अभी आया है इसे भोगते नहीं, चिंता करते हैं कि कहीं छूट तो नहीं जाएगा? तो आनंद छूट ही गया। यह मौका चूक ही गया। तुमने सोचा कि छूट तो नहीं जाएगा, कि गया। छूट ही गया। तुम टूट गये, अभी। दीया कंप गया।
आनंद आये, तो भोगो। कल को क्यों उठाते हो? कल से लेना-देना क्या है? जहां से आज आया है, वहीं से कल भी आता रहेगा। फिर कल जब आयेगा, तब देख लेंगे। अभी तो यह अवसर मिला है, इसे भोग लें। अभी तो यह क्षण मिला है, इसे

नाच लें। अभी तो यह गीत की कड़ी उतरी है, गुनगुना लें। अभी तो पैर थिरकें, मृदंग बजे। इस क्षण तो जो मिला है, इसमें से रत्तीभर भी न चूके, इसकी चिंता लो। क्योंकि क्षण भागा जा रहा है। हाथ से फिसलता जाता है। निकलता जाता है। तुमने अगर जरा-ही इधर-उधर देखा कि चूके। दायें-बायें देखा कि गये! इतनी देर कहां है? तुमने पूछा कि यह क्षण चला तो नहीं जाएगा--यह जा चुका! यह गया! तुम्हारे हाथ में नहीं है अब। इतना भी अवकाश कहां है कि तुम सोचो?
भोगो! सोचने से काम न चलेगा। और जैसे ही तुम इस क्षण को भोग लोगे, इस क्षण ने बुनियाद रखी आनेवाले क्षण की। इस क्षण को तुमने भोगा, रस की धार बही, तुम और रस की धार को भोगने के योग्य बने। अगला क्षण और भी वासंती, और भी मधुमय होकर आयेगा। अगला क्षण और गहरा नृत्य लायेगा। अगला क्षण और भी बरसायेगा अमृत तुम पर। लेकिन यह तुम्हारी चिंता का कारण नहीं है, यह सहज ही होता है। यह नियम की बात कह रहा हूं, तुमसे सोचने को नहीं कह रहा हूं। यह तो एक शाश्वत नियम है कि जो तुमने इस क्षण में भोगा, उसको तुम्हारी अगले क्षण में भोगने की क्षमता बढ़ जाती है। अभी तुमने क्रोध किया, तो अगले क्षण तुम्हारी क्रोध की क्षमता बढ़ जाएगी।
तुमने कभी ख्याल किया? सुबह से उठकर अगर क्रोध हो जाए, तो लोग कहते हैं दिनभर क्रोध हो जाता है। इसलिए पुराने दिनों में लोग सुबह राम का नाम लेकर उठते थे। उस गणित में थोड़ा मनोविज्ञान है। क्योंकि जो हम सुबह-सुबह करते हैं, वह हमने नींव रख दी दिनभर के लिए। अगर सुबह-सुबह राम का स्मरण किया, तो इस स्मरण में स्नान हो जाएगा। उस स्मरण के साथ यात्रा शुरू हुई, तो अगला क्षण उसी से तो आने को है। उसी की तो शृंखला बनेगी। जो राम का नाम लेते हुए उठा, अगर किसी ने उसे गाली दी, तो एकदम से गाली उसके भीतर से न उठेगी--राम का नाम आड़े पड़ेगा। जो गाली देते ही उठा, उसको तो कोई गाली न भी दे, तो भी गाली सुनायी पड़ जाएगी। वह गाली से भरा है। वह तलाश ही कर रहा है, कहीं कोई मिल जाए कारण, तो वह टूट पड़े, बरस पड़े। वह बहाना ही खोज रहा है।
इसको ही अगर तुम ठीक से समझो, तो कर्म का, संस्कार का पूरा सिद्धांत है। तुमने जो कल किया था, वह तुम्हारे आज को प्रभावित करेगा। अब कल तो गया, अब कल को तो बदलने का कोई उपाय नहीं, इतनी कृपा करो कि आज को बदल लो, क्योंकि आज फिर कल सतायेगा। जो तुमने पिछले जन्म में किया था, वह तुम अभी भोग रहे हो। और अभी तुम अगले जन्म का विचार कर रहे हो, और यह जन्म भी हाथ से जा रहा है। यह खाली-खाली गया हुआ जन्म, फिर अंधेरे से भरे हुए रास्ते पर तुम्हें भटका देगा।
पूछते हो कि समता का दीया सदा कैसे जलता रहे? बस, क्षणभर तुम उसे भोगो।
जब समता घनी हो, गुनगुनाओ, नाचो, डूबो उसमें। जब समता घनी हो, पीओ, फिर देर न करो। इतना भी बीच में विचार मत लाओ कि यह रुकेगी?
झेन कहानी हैः
एक मंदिर के द्वार पर दो भिक्षुओं में विवाद हो रहा है कि मंदिर के ऊपर लगी पताका को कौन हिला रहा है? पताका हिल रही है। एक भिक्षु कहता है, हवा हिला रही है। दूसरा भिक्षु कहता है, पताका स्वयं हिल रही है। गुरु मंदिर के बाहर आता है, वह कहता हैः नासमझो, न हवा हिला रही, न पताका हिल रही, तुम्हारा मन! तुम्हारा मन हिल रहा है। इसलिए तुम्हें हिलती पताका दिखायी पड़ रही है, हिलती पताका में तुम्हें रस आ गया है। तुम चिंता-विचार में पड़ गये हो। मन को ठहरा लो, फिर हवा भी चलती रहे, तो भी पताका न हिलेगी। पताका हिलती भी रहे, तो भी न हिलेगी। मन थिर हुआ, तो सब थिर हुआ।
ठीक कहा उसने।
मैं एक अमरीकी लेखक का जीवन पढ़ रहा था। उसने लिखा है कि मैं कैलिफोर्निया की सुंदर सुरम्य घाटी में पैदा हुआ। एक मछुवे के घर पैदा हुआ। सुंदर झीलों में, नदियों में, वादियों में मछलियां पकड़ते बचपन बीता। उसने लिखा है कि जब मैं मछलियां पकड़ने के लिए बंसी बांधे हुए किसी सुरम्य झील के पास बैठा होता था, ऊपर से हवाई जहाज गुजरते थे, तो मेरे मन में एक ही कामना उठती थी कि कब ऐसा समय आयेगा कि मैं भी पायलट बनूं! आकाश में उडूं! कैसा आनंद न होगा उस आकाश में! मैं कहां यहां बैठा मछलियां मारने में समय गंवा रहा हूं।

संयोग की बात, वह आदमी बाद में पायलट बना। तब उसने देखा कि मैं बड़ा हैरान हुआ! अब मैं पायलट होकर उसी घाटी के ऊपर से हवाई जहाज लेकर उड़ता हूं, नीचे झांककर देखता हूं, मेरे मन में ख्याल उठता है, हे भगवान! कब रिटायर होऊंगा कि फिर उन्हीं सुरम्य घाटियों में बैठूं, मछली मारूं, विश्राम करूं! तब वह चौंका कि यह मैं कर क्या रहा हूं, क्योंकि मैं जब घाटी में था तब मुझे घाटी का सौंदर्य न दिखायी पड़ा। तब मुझे हवाई जहाज में बैठे हुए पायलट की महिमा मालूम पड़ी। अब मैं पायलट हूं, तो विश्राम की आकांक्षा कर रहा हूं। और फिर सोच रहा हूं उन्हीं घाटियों की जिनमें मैंने कभी सुख न पाया था। अब नीचे फैली हरी घाटी बड़ी सुंदर मालूम पड़ती है! ताल-तलैये, सरोवर स्फटिक-मणि जैसे चमकते हैं। उनके किनारे बैठने की फिर आकांक्षा है।
और पक्का मानना, उनके किनारे पहुंचते ही फिर आकांक्षा कहीं और चली जाएगी। मन बड़ा अदभुत है। तुम जहां होते हो, वहां तुम्हें नहीं होने देता। मन की सारी पकड़ यही है कि तुम जहां हो वहां नहीं होने देता। तुम्हें कहीं और ले जाता है। और ध्यान का कुल इतना ही अर्थ है कि जहां हो, वहीं हो रहो। मन को यह खेल न खेलने दो। मन को कह दो कि मैं जहां हूं, वही रहूंगा।
अभी मन सधा है, समता बनी है, पीओ इसे! अगर पीना सीख गये, शाश्वत हो जाएगी। अगर सोचने लगे कि कहीं हिल तो न जाएगा, कहीं खो तो न जाएगा, कहीं यह क्षणभर का सपना तो न हो जाएगा, कल कहीं चिंता फिर तो न पकड़ेगी, कहीं फिर विषाद तो न आयेगा--आ ही गया, कल की कहां जरूरत रही! आ ही गया, तुम चिंता में पड़ ही गये। तुम्हारी इस चिंता के कारण ही कंप जाती है लौ।
पूछते हो, भीतर समता का आनंद का दीया अधिक समय स्थिर रहने पर भी कभी- कभी टिमटिमाने लगता है। स्थिरता की बात ही भूल जाओ। स्थिरता मन की ही आकांक्षा है। स्थिर करने की चेष्टा क्यों करते हो? पत्थर होना चाहते हो? जलधार रहो। बहते-बहते अपने को पकड़ो, पहचानो। घबड़ाओ मत रूपांतरण से, परिवर्तन से। अगर कभी लौ कंप भी जाए, तो कंपने का भी आनंद लो। नहीं तो यह नये आध्यात्मिक लोभ हुए। यह नयी आध्यात्मिक वासना जगी कि अब कंप न जाए लौ! कहीं ऐसा तो न होगा कि कंप जाएगी! कभी कंप भी जाए, उसे भी स्वीकार करो। तो समता पैदा हुई।
अब इसे तुम समझना, यह थोड़ा जटिल हुआ।
अगर समता कंप जाए, तो भी तुम्हारे भीतर कोई परेशानी न हो, तुम कहो ठीक है; यह भी ठीक है, कभी-कभी कंपती है, इसको भी स्वीकार कर लो, तो समता वास्तविक समता पैदा हुई। जब विषमता को भी स्वीकार करने की कला आ जाए, तो समता पैदा हुई। लोग कहते हैं, सुख खो तो न जाएगा! नहीं, जब दुख में भी तुम दुख न देखोगे; जब दुख भी आयेगा तब भी तुम कहोगे, यह भी ठीक है, इसे भी स्वीकार करते हैं, यह भी परमात्मा का प्रसाद है, तब फिर सुख कभी न हटेगा। मेरी बात समझे? सुख कभी-कभी हटेगा, दुख आयेगा, वह दुख परीक्षा है। वह दुख चुनौती है। वह दुख तुम्हें एक अवसर है कि तुम महासुख को पाने की नींव रख लो। उस दुख के क्षण में तुम घबड़ाना मत कि अरे! वह सुख मिला था, गया; यह फिर दुख आ गया! जो सुख दुख के आने से गिर जाए, वह सुख धोखा था। वह पकड़ने योग्य ही न था। जो सुख दुख के आने पर भी बदले न; दुख आ जाए, फिर भी तुम कहो, ठीक, यह भी स्वीकार; तुम्हारी स्वीकृति में रंचमात्र कोई बाधा न पड़े, तुम इसे भी धन्यभाव से, कृतज्ञभाव से स्वीकार कर लो; तुम परमात्मा को सुखों के लिए तो धन्यवाद दो ही, वह तुम्हें जो दुख देता है उनके लिए भी धन्यवाद दे सको, फिर कौन हिला सकेगा? फिर तुम पार हुए। जब दुख भी तुम्हें दुखी न कर सकेगा, तभी सुख थिर होगा। तभी सुख शाश्वत होगा। अशांति के क्षणों को भी शांति से अंगीकार कर लो।
शांति अशांति के आने से नहीं मिटती, अशांति को अस्वीकार करने से मिटती है। अशांति के आने से अगर शांति मिटती होती, तो शांति का बल ही क्या है फिर! अशांति के आने से नहीं मिटती, तुम अशांति को अस्वीकार करते हो, धकाते हो; नहीं, नहीं चाहिए; चिल्लाते हो कि यह क्या हुआ, फिर अशांति आ गयी! इस चिल्लाने, चीख-पुकार करने से शांति मिटती है!
अब जब दुबारा तुम्हारे दीये की लौ कंपे, तो कंपने का भी आनंद लेना। क्या बुरा है! बिजली का बल्ब नहीं कंपता, लेकिन दीये का मजा ही और है! दीये

की लौ कंपती है। बिजली का बल्ब बिल्कुल नहीं कंपता। लेकिन दीया जिंदा है, बिजली का बल्ब मुर्दा है। दीया जीवंत-धारा है। ठहरता भी, कंपता भी। लौ में प्राण हैं। बिजली का बल्ब बिल्कुल यांत्रिक है। उसमें प्राण नहीं हैं। घबड़ाना मत! कभी-कभी कंपेगी ही! ठीक है, स्वीकार है। तुम्हारा स्वीकार-भाव सदा बना रहे, तो धीरे-धीरे तुम पाओगे, जब तुम कंपन को भी स्वीकार करने लगे तो कंपन कम होने लगा। एक दिन तुम पाओगे, जिस दिन स्वीकार पूरा हो गया, उस दिन कंपन समाप्त हो गया। उस दिन दीये की लौ सतत, शाश्वत होकर जलने लगती है। लेकिन ख्याल रखना, शाश्वत और स्थिर में फर्क है। नित्य और स्थिर में फर्क है। स्थिर में तो आकांक्षा है मन की, कि स्थिर हो जाए। शाश्वत घटना है, मन की आकांक्षा नहीं है। स्थिर की तो चिंता पैदा होती है, शाश्वत की कोई चिंता नहीं। वस्तुतः ऐसा समझो कि स्थिर के लिए सोच-सोचकर तुम लहर को कंपा जाते हो। जब तुम क्षण को जीते हो, तब परिणाम में नित्यता उपलब्ध होती है। धीरे-धीरे-धीरे लौ थिर हो जाएगी। समता ऐसी सध जाएगी कि तुम्हें पता ही न चलेगा कि समता भी है। जब तक पता चले समता का, तब तक जानना अभी विषमता के बीज मौजूद हैं। जब तक सुख का पता चले, तब तक जानना कि दुख अभी संभव है। जब तक शांति का पता चले, तो समझना कि अभी शांति अशांति के विपरीत संघर्ष कर रही है।
महावीर से पूछो--तुम अगर उनसे पूछोगे कि क्या आप शांत हैं, तो वह कंधा बिचका देंगे। वे कहेंगे, शांत! बहुत दिन से अशांत ही नहीं हुए, तो शांति का पता कैसे चले? स्वास्थ्य का पता चलता है बीमारी में, बीमारी के कारण। अगर कोई आदमी सदा ही स्वस्थ रहे, तो उसे स्वास्थ्य का पता चलना बंद हो जाता है। पता चलने के लिए विपरीत चाहिए। पता चलता ही विपरीत के कारण है। तो जिस दिन समता पूरी होगी, उस दिन तो समता का पता ही नहीं चलेगा।
लेकिन स्थिरता की और थिर होने की मांग मत करो। थिर होना परिणाम है। तुम सिर्फ जीओ। सार बात इतनी कि जब समता हो, समता को भोगो; जब लहर आ जाए, ज्योति कंपने लगे, तब कंपने को भोगो। दोनों में कहीं भी तुम्हारा विरोध और कहीं भी तुम्हारी आसक्ति न हो। समता से आसक्ति मत बनाओ। यह मत कहो कि अब मिल गयी समता, अब कभी न छोड़ेंगे। यह तो फिर नया बंधन हुआ वासना का। समता अपने-आप बढ़ती जाएगी। तुम समता के मालिक मत बनो। तुम उसे तिजोड़ी में बंद करने की चेष्टा मत करो।
कुछ चीजें हैं, जो तिजोड़ी में बंद नहीं की जा सकती हैं। तुमने बंद की, बंद करते ही मर जाती हैं। सुबह की ताजी हवा को तिजोड़ी में बंद कर सकोगे? सुबह सूरज की किरणों को तिजोड़ी में बंद कर सकोगे? फूलों को, फूलों की गंध को तिजोड़ी में बंद कर सकोगे? जैसे ही तिजोड़ी बंद की, हवा गंदी होनी शुरू हो गयी। जैसे ही तिजोड़ी बंद की, सूरज की किरणें बाहर ही छूट गयीं। जैसे ही तिजोड़ी बंद की, फूल कुम्हलाने लगे, मरने लगे, सड़ने लगे। कुछ चीजें हैं जो खुले आकाश की हैं।
समता, सम्यकत्व, शांति, आनंद, ध्यान, प्रार्थना, प्रेम, भूलकर इन्हें तिजोड़ी में बंद मत करना। ये आकाश, खुले आकाश के फूल हैं। इन्हें मुक्त रखना। इन्हें मुट्ठी में भी मत बांधना, अन्यथा टूट जाएंगे, बिखर जाएंगे, अति कोमल हैं, अति सूक्ष्म हैं, नाजुक हैं। इन पर झपट्टा मत मार देना। अन्यथा झपट्टे में ही नष्ट हो जाएंगे। इनके लिए तो बड़ी शांत, मौन, स्वीकार की भावदशा चाहिए। तुम जब कुछ भी नहीं करते तब ही यह घटते हैं। जैसे ही तुमने कुछ किया कि गड़बड़ शुरू हुई।
अगर क्षणभर को भी कभी समता का सूत्र बंध जाता है, तो भोग लो उसे। बस! पूरी तरह भोग लो। उस क्षण को शाश्वत हो जाने दो। उस क्षण में ऐसे डूबो कि समय ही मिट जाए। उस क्षण में समय की याद न रहे--न बीता, न आगा। न जा चुका याद रहे, न आनेवाला याद रहे। भूलो सब। खुल गया द्वार प्रभु का। वहीं कपाट खुलते हैं मंदिर के।
धीरे-धीरे तुम पाओगे, जैसे-जैसे साफ होने लगेगी बात, आंखों का धुंधलका हटेगा, तुम पाओगे द्वार के कपाट सदा ही खुले रहते हैं। तुम्हारे ही विचार के कारण द्वार बंद होता मालूम पड़ता है।

तीसरा प्रश्नः प्रति प्रातः आपको देखने व सुनने आता हूं, परंतु दोनों
रस एक-साथ नहीं ले पाता। सुनता हूं तो आंखें बंद हो जाती हैं और देखता हूं तो सुनना कम हो जाता है। कृपया बतायें कि दोनों लाभ एक-साथ कैसे ले सकूं?

प्रेम में अकसर ऐसा होगा। स्वाभाविक है। इसे समस्या मत बनाओ। दोनों
को एक-साथ साधना अभी आसान न होगा। धीरे-धीरे हो जाएगा।
अभी तो ऐसा करो, कभी आंख खोलकर देखने का सुख ले लिया, कभी आंख बंद करके सुनने का सुख ले लिया। अभी दोनों हाथ लड्डू की आकांक्षा मत करो। उसमें दोनों चूक जाएंगे।
धीरे-धीरे, जैसे-जैसे रस बढ़ेगा, वैसे-वैसे तुम पाओगे, आंख बंद है, तुम सुन भी रहे हो, बंद आंख से देख भी रहे हो। कोई देखने के लिए खुली आंख ही थोड़े ही जरूरी है? अगर खुली आंख से ही देखना संभव होता तो जो भी यहां खुली आंख करके बैठे हैं वे सभी देख लेते। लेकिन यह सभी के लिए प्रश्न तो नहीं है, प्रश्न किसी एक का है। किसी को ऐसा हो रहा है। कान का खुला होना ही थोड़े ही सुनने के लिए काफी है।
जीसस बार-बार कहते हैं अपने शिष्यों से, आंख हो तो देख लो। कान हों तो सुन लो। फिर पीछे मुझसे मत कहना। उनके सभी की आंखें थीं, सभी के कान थे, यह बात क्या? बार-बार जीसस कहते हैं, कान हो तो सुन लो, आंख हो तो देख लो। वे ही कान, वे ही आंख तुम्हारे भीतर जन्म ले रहे हैं। जन्म की इस घड़ी को लोभ की घड़ी मत बनाओ। कभी आंख बंद कर ली और सुनने का रस ले लिया। क्योंकि सुन भी तुम मुझ ही को रहे हो। उससे भी तुम मुझसे ही जुड़ रहे हो। वह भी एक द्वार से मेरे पास आना है। फिर कभी आंख खोल ली, देखने का रस ले लिया। छोड़ दिया सुनने को। तब भी तुम मुझसे ही जुड़े हो। और शुरू-शुरू में अलग-अलग ही करना होगा। क्योंकि एक-एक इंद्रिय जब पहली दफा पूरी तरह से आंदोलित होती है, तो सारी ऊर्जा वहीं चली जाती है।
तुमने देखा? अंधे आदमियों के कान बड़े प्रबल हो जाते हैं, बड़े कुशल हो जाते हैं। अंधा आदमी जिस कुशलता से सुनता है, आंखवाले कभी सुनते ही नहीं। इसलिए गैर-आंखवालों का सुर-बोध गहन हो जाता है। अंधे संगीतज्ञ हो जाते हैं। अंधे की वाणी मधुर हो जाती है। क्योंकि अंधे की सारी ऊर्जा आंख से हटकर कान पर बहने लगती है। जैसे-जैसे उसका स्वर-बोध गहरा होता है, वह छोटी-छोटी चीजों को भी स्वर से पहचानता है। वह लोगों के पैरों की आवाज से भी लोगों को पहचानने लगता है--कौन आ रहा है। आंखवाले नहीं पहचान सकते। आंखवालों ने कभी इतने गौर से सुना ही नहीं। आंखवालों को पता ही नहीं कि पैर भी लोग अलग-अलग ढंग से रखते हैं। चलते भी लोग अलग-अलग ढंग से हैं। जैसे अंगूठों के निशान अलग-अलग हैं, ऐसे ही हर चीज अलग-अलग है। अंधा तुम्हारी आवाज सुनकर ही पहचान लेता है कौन हो। वर्षों बाद भी मिलने जाओ उससे, आवाज पहचानते ही पहचान लेता है। क्योंकि उसकी पहचान ही आवाज से है। चेहरे का उसे कुछ पता नहीं।
तो जब तुम सुनते हो पूरी तरह से, तो स्वभावतः आंख बंद हो जाएगी। क्योंकि सारी ऊर्जा कान ले रहा है। आंख को देने को है नहीं। अगर तुमने सुनने और देखने की एक-साथ कोशिश की, तो आधी-आधी बंट जाएगी। तो न तो तुम ठीक से सुन पाओगे, न ठीक से देख पाओगे। जब तुम देखोगे, सारी ऊर्जा आंख पर आ जाएगी। शुरू में ऐसा होगा।
यह ऐसा ही है, कभी तुमने अगर साइकिल चलानी सीखी हो, या मोटर कार चलानी सीखी हो--साइकिल चलानेवाले सीखनेवाले को जो अड़चन आती है, वह यही। पैर पर ध्यान रखे, तो हैंडिल भूल जाता। सड़क पर देखे, तो पैडिल भूल जाता। बड़ी दुविधा खड़ी होती है। कार चलानेवाले को भी वही अड़चन होती है। एक्सीलेटर को सम्हाले, सड़क को देखे, ब्रेक को देखे, गियर को बदले, तो एक चीज की तरफ तो लग जाता है; लेकिन जैसे ही दूसरे की तरफ जाता है, पहली चीज चूक जाती है। लेकिन धीरे-धीरे, जैसे-जैसे कुशलता आने लगती है, आत्मविश्वास बढ़ता है, अपने पर श्रद्धा बढ़ती है कि ठीक है, मैं चला लेता हूं, फिर कोई याद रखने की जरूरत नहीं रह जाती। फिर वह रेडियो भी सुनता रहता है, गीत भी गुनगुनाता रहता है,

कार भी चलाता रहता है; बात भी करता रहता है। एक दफा तुम्हारी कुशलता के बढ़ जाने की बात है।
तो शुरू में तो तुम ऐसा ही करो। जब सुनने का मन हो, सुन लिये। जब देखने
का मन हो, देख लिये। अभी दोनों को साथ साधने की कोशिश मत करना। धीरे-धीरे अपने आप सध जाएगा। धीरे-धीरे तुम पाओगे कि सुनते-सुनते आंख बंद है, लेकिन मैं दिखायी भी पड़ने लगा। मुझे देखने के लिए आंख का खुला होना जरूरी नहीं है। फिर तुम पाओगे कि आंख खुली है, तुम मुझे देख भी रहे हो, और सुनायी पड़ने लगा। और यहां ही नहीं, तुम अपने घर लौट जाओगे, अगर मेरे चित्र पर भी तुम आंख खोलकर बैठ गये, तो तुम्हें मेरी आवाज सुनायी पड़ने लगेगी। लेकिन यह घटित होगा। थोड़ी प्रतीक्षा करो, और जल्दी मत करो। अभी तो जिस तरह डूबना हो जाए, डूबो! अभी तो डूबना सीख लो।
फिर मेरे लब पे कसीदे हैं लबो-रुखसार के
फिर किसी चेहरे पे ताबानी सी ताबानी है आज
अर्जिशे-लब में शराबो-शेर का तूफान है
जुंबिशे-मिजगां में अफसूने-गजलख्वानी है आज
वो नफस की जमजमा-संजी नजर की गुफ्तगू
सीना-ए-मासूम में इकतर्फा तुगयानी है आज
वो इशारे हैं बहक जाना ही ऐने-होश है
होश में रहना यकीनन सख्त नादानी है आज
अभी होश की बात ही मत करो। अभी तो बेहोश हो लो।
वो इशारे हैं बहक जाना ही ऐने-होश है
अभी तो बहक लो मेरे साथ। अभी तो यही होश है कि तुम मेरे साथ बहको। कि मेरे साथ पागल हो लो।
होश में रहना यकीनन सख्त नादानी है आज
आज तो होश की बातें मत करो। आज तुम गणित मत बिठाओ कि सुन भी लूं, देख भी लूं, बुद्धि को भी समझ में आ जाए, हृदय में भी रस उतर जाए। अभी तुम गणित मत बिठाओ, अभी तर्क मत बिठाओ। अभी तो बहक लो। जहां से बहकना आ जाए, वहीं से सही। अभी तो तुम मेरे साथ मस्त हो लो। यह घड़ी अगर मस्ती में बीत जाए, तो धीरे-धीरे जैसे-जैसे तुम मस्ती की गहराइयों से परिचित होने लगोगे, वैसे- वैसे तुम पाओगे कि सभी इंद्रियों को एक-साथ जोड़ा जा सकता है। तब न केवल आंख, न केवल कान, बल्कि और इंद्रियां भी सक्रिय होंगी।
किसी-किसी को वैसा अनुभव होता है। कोई मेरे पास होता है, तो उसे एक खास तरह की गंध आने लगती है। उसका अर्थ है, वह केवल मुझे सुन ही नहीं रहा, देख ही नहीं रहा, मुझे सूंघ भी रहा है। और कुछ थोड़े-से लोग हैं, बहुत थोड़े-से लोग--कोई दो-चार लोगों ने मुझे कभी कहा है कि सुनते-सुनते उनके कंठ में एक तरह का स्वाद भी आने लगता है। तो चौथी इंद्रिय भी सम्मिलित हो गयी, स्वाद भी। जैसे कोई बूंद अमृत की भीतर टपक गयी हो। उनसे भी कम कुछ लोग हैं--एकाध ही कभी किसी ने मुझे कहा है कि सुनते-सुनते सारे शरीर में एक अनूठे स्पर्श का बोध होता है। एक तरंग! जैसे मैंने उनके सारे शरीर को आलिंगन में ले लिया हो। तो पांचों इंद्रियां सम्मिलित हो गयीं। अभी तो एक-एक को साधो। दो को एक-साथ साधना मत। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे सभी इंद्रियां एक-साथ सजग होकर मेरे पास हो जाएंगी।
जिस दिन सभी इंद्रियां सजग होकर मेरी निकटता में आ जाएंगी, उस दिन सत्संग शुरू हुआ। उसके पहले सत्संग तो है, लेकिन सीमित है। किसी का आंख का सत्संग है, किसी के कान का सत्संग है, लेकिन सीमित है। तुम्हारे पूरे व्यक्तित्व का सत्संग नहीं हो रहा है।
पर जल्दी की भी नहीं जा सकती। यह तो धीरे-धीरे... कला है, जो धीरे-धीरे आती है। आते ही आते आती है। ऐसा नहीं कि तुम उसे ले आओगे।

चौथा प्रश्नः समर्पण और अंधानुकरण में क्या अंतर है?

अंतर है भी और नहीं भी। दोनों बातें समझ लें।

अंधानुकरण का अर्थ है, अपने स्वानुभव के बिना किसी बात को माने चले जाना। जैसे तुम जैन-घर में पैदा हुए, या हिंदू-घर में पैदा हुए, या मुसलमान-घर में पैदा हुए, और तुम अपने को मुसलमान माने चले जाते हो, यह अंधानुकरण है। न तो मुहम्मद से तुम्हारा कोई संबंध बना, न कोई सत्संग हुआ। न मुहम्मद की आभा से तुम्हारा कोई मिलन हुआ। जैन-घर में पैदा हो गये हो। महावीर से कोई मेल-जोल नहीं है। महावीर से कुछ लेन-देन नहीं हुआ। महावीर से कोई साक्षात्कार नहीं हुआ। महावीर की वाणी के फूल तुम्हारे हृदय में खिले नहीं। महावीर की वीणा का संगीत तुम तक पहुंचा नहीं। संयोगवशात तुम जैन-घर में पैदा हुए हो। इसलिए बचपन से जैन-धर्म की बात सुनी, जैन-शास्त्र सुना, जैन-मंदिर गये, महावीर का नाम सुना बार-बार, सुनते-सुनते स्मृति में बैठ गया। तुम कहते हो, मैं जैन हूं। यह अंधानुकरण है। जो लोग महावीर के समय में महावीर की आभा से आंदोलित होकर महावीर के चुंबक से खींचे गये थे; जिन्होंने महावीर को भर-आंख देखा था; जिन्होंने महावीर को पूरे कानों से सुना था; जिन्होंने महावीर को अपने हृदय में पीया था, और उस पीने में जाना था कि ठीक है, यही मार्ग ठीक है, और उस मार्ग पर चल पड़े थे, तब समर्पण था, अंधानुकरण नहीं।
समर्पण तो जीवित सदगुरु के पास ही हो सकता है। इसलिए दुनिया में सौ में से निन्यानबे लोग तो अंधानुकरण में हैं। महावीर जब गांव से गुजरे थे, तो उनमें से कोई कृष्ण को मानता था, इसलिए सुनने नहीं गया। कोई राम का भक्त था, इसलिए कैसे महावीर के पास जाता! वे अंधानुकरण में थे। लेकिन उन्हीं राम और कृष्ण-भक्तों में से कुछ हिम्मतवर थे, जो महावीर को सुनने गये थे। उन्होंने अपने अंधानुकरण को एक तरफ रखा। उन्होंने कहा, परंपरा परंपरा है, परंपरा मेरी आत्मा नहीं। किसी घर में पैदा हुआ हूं, यूं ठीक है; लेकिन जो धर्म मैंने नहीं चुना, वह मेरे प्राणों को कैसे स्पंदित करेगा? धर्म चुनाव है--सजगता से, गहन सोच-विचार से, चिंतन-मनन से, ध्यान-निदिध्यासन से, अपने जीवन को दांव पर लगाना है। धर्म उधार नहीं मिलता।
तो जो धर्म तुम्हें घर के कारण, परिवार के कारण, समाज के कारण मिल गया हो, वह अंधानुकरण है।
नानक के गीत को सुनकर जो उनके पास पहुंच गये थे, वे सिक्ख हैं। बाकी सब नाम के सिक्ख हैं। सिक्ख शब्द का अर्थ होता है, शिष्य। वह शिष्य का ही विकृत रूप है। जो नानक के पास गये थे, जिन्होंने नानक का गीत सुना, और जिनको नानक की झलक मिली। जिन्होंने उनके पास उस अमृत लोक का पहला सपना देखा, जिनका सत्संग हुआ, जिनके हृदय का सेतु नानक से जुड़ गया, जो क्षणभर को नानक की आंख से देख लिये, नानक के पैरों से नाच लिये, नानक के कंठ से गुनगुना लिये--क्षणभर को सही--जिनकी धुन नानक से मिल गयी, उन्होंने समर्पण किया। यह उनका स्वयं का अनुभव था। इस स्वयं के अनुभव पर उन्होंने अपना सिर झुका दिया।
अब सिक्ख हैं, उनका नानक से क्या लेना-देना! सिक्ख घर में पैदा हुए, तो सिक्ख हैं। हिंदू घर में पैदा होते तो हिंदू होते। मुसलमान घर में पैदा होते तो मुसलमान होते। किसी हिंदू बच्चे को मुसलमान के घर में रख दो, वह मुसलमान हो जाएगा। बचपन से मुसलमान के बच्चे को जैन के घर में रख दो, वह अहिंसक हो जाएगा। शाकाहारी हो जाएगा। लेकिन यह होना कोई होना है! जो तुमने स्वयं नहीं चुना।
तो जो तुम्हारे पास उधार है, वह अंधानुकरण है। जो निज का है, वही समर्पण है। जो तुमने किया, जो अतीत से नहीं मिला, जो तुमने स्वयं साहस करके--दुस्साहस कहना चाहिए, क्योंकि अतीत से जो मिलता है वह तो हजारों साल चिंतन किया गया है, उस पर शास्त्र लिखे गये हैं, टीकायें लिखी गयी हैं; पंडित हैं, पुजारी हैं, मंदिर हैं, बड़ी लंबी परंपरा है, परंपरा की प्रतिष्ठा है; लेकिन जब तुम किसी नये सदगुरु के, जीवित सदगुरु के पास आते हो तो न तो कोई परंपरा है पीछे, न वेद-कुरान-बाइबिल का कोई सहारा है। कोई संदर्भ नहीं है। जीवित सदगुरु सीधा तुम्हारे सामने खड़ा है। हां, तुम्हीं अगर हिम्मतवर हो, तो समर्पण कर सकोगे। और तो कोई भी कारण नहीं है समर्पण करने का।

महावीर के पास जाकर जो झुक गये, महावीर के सारे बड़े शिष्य, ग्यारह शिष्य, सभी के सभी ब्राह्मण थे। साधारण ब्राह्मण न थे, महापंडित थे। वेद में पारंगत थे। उनके खुद के सैकड़ों शिष्य थे जब वे महावीर के पास आये। लेकिन परंपरा को हटाकर रख दिया। सत्य को चुना। अतीत को पोंछकर रख दिया, वर्तमान को चुना। मृत को इनकार कर दिया, जीवंत को चुना। जीवंत के साथ खतरा था, पता नहीं महावीर ठीक हों, न हों। और पता नहीं तुम्हें जो प्रतीति हो रही है वह ठीक हो, न हो। हो सकता है तुम सम्मोहित हो गये हो। हो सकता है इस महावीर के वचनों ने तुम्हें घेर लिया। तुम किसी जाल में उलझ गये। खतरा है। संदेह के साथ कदम उठाने पड़ेंगे।
लेकिन साहसी उठाता है कदम। पुराने रास्तों की बड़ी प्रतिष्ठा है-- प्राचीन हैं, हजारों लोग चले हैं, तीर्थ हैं, मंदिर हैं, तुम जाकर पता लगा सकते हो कि इन रास्तों से लोग पहुंचे या नहीं पहुंचे? तो लोकोक्तियां हैं कि इस रास्ते पर हजारों लोग सिद्ध हो गये हैं। अब महावीर अचानक आकर खड़े हुए, या मुहम्मद, अभी तो कोई इनके पास सिद्ध हुआ नहीं; अभी तो कोई पहुंचा नहीं, अभी तो परंपरा बनने में हजारों साल लगेंगे, हजारों साल के बाद कमजोर लोग इनका अनुसरण करेंगे। हिम्मतवर लोग जीवंत सदगुरु का साथ पकड़ लेते हैं। वह साथ पकड़ लेना ही समर्पण है। जो तुमने किया, वह समर्पण, जो तुमसे तरकीबों से करवा लिया गया है, वह अंधविश्वास। अगर तुममें थोड़ा भी बल और हिम्मत है, अगर तुम थोड़े भी आत्मवान हो, तो तुम इनकार कर दोगे उन सारे संस्कारों को जो दूसरों ने तुम पर डाले। तुम कहोगे, तुम कौन हो?
रूस में सभी नास्तिक हैं, क्योंकि सरकार नास्तिकता पिला रही है। हिंदुस्तान में सभी आस्तिक हैं, क्योंकि समाज आस्तिकता पिला रहा है। न इस आस्तिकता का कोई मूल्य है, न उस नास्तिकता का कोई मूल्य है। दोनों दो कौड़ी की हैं। और दोनों एक-जैसी हैं। मेरे देखे कोई फर्क नहीं है। तुमको आस्तिकता पिलायी जा रही है दूध के साथ, तुम आस्तिकता पीये जा रहे हो। उनको नास्तिकता पिलायी जा रही है, वे नास्तिकता पीये जा रहे हैं। रूस में जो हिम्मतवर है, वह हटाकर रख देगा सरकार जो पिला रही है। वह सोचेगा अपनी तरफ से। तुममें जो हिम्मतवर है, वह भी हटाकर रख देगा जो समाज पिला रहा है। वह सोचेगा अपनी तरफ से। वह कहेगा, भटक जाऊं तो भी एक सुख तो रहेगा कि अपनी ही अभीप्सा के कारण भटका। गिरूं खड्ड में, तो कम से कम एक तो बात रहेगी मेरे साथ कि अपने ही चुनाव से चला था, गिरा तो किसी की जिम्मेवारी नहीं।
ध्यान रखना, दूसरे के द्वारा जबर्दस्ती तुम स्वर्ग भी पहुंचा दिये गये, तो तुम स्वर्ग न पहुंचोगे। स्वयं चलकर ही तुम पहुंचोगे, तो ही स्वर्ग संभव है। यह कुछ ऐसी संपदा नहीं कि कोई दे दे। यह कोई हस्तांतरण नहीं हो सकती। तो तुमने जो भी मान रखा हो परंपरा से, दूसरों के द्वारा समझा-बुझाकर तुम्हें राजी कर लिया गया हो, वह सभी अंधानुकरण है। जो तुम चुनो, वही समर्पण है। यह तो भेद है दोनों का।
और एक अर्थ में भेद नहीं भी है। उस दूसरे अर्थ को भी समझ लेना जरूरी है। लोग बड़े शब्दों के उपयोग में चालाक हैं। अगर तुम करो तो समर्पण है; अगर दूसरा करे तो अंधविश्वास! अगर तुम आकर मेरे पास संन्यास ले लो, तो तुम कहोगे, समर्पण। तुम्हारे पास-पड़ोसवाले, तुम्हारे मित्र कहेंगे, गिरा अंधविश्वास में! इसे तुमने कभी ख्याल किया? राम के भक्त कहते हैं, विभीषण परम भक्त है राम का; रावण के मित्रों से भी तो पूछो! दगाबाज है! धोखेबाज! गद्दार! अगर हिंदू मुसलमान हो जाए, गद्दार! अगर मुसलमान हिंदू हो जाए, तो हिंदू कहते हैं, समझदार! अकल आ गयी। बड़ा बुद्धिमान है।
एक जैन-मुनि थे, गणेशवर्णी। उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी, जैनियों में। क्योंकि वे जन्म से हिंदू थे और जैन हुए। तो जैन कहते, बड़ा प्रतिभाशाली है। ऐसा संत सदियों में होता है। हिंदुओं से पूछो? गद्दार! धोखेबाज! यह सदा से होता आया है। तुम अपने लिए तो अच्छे शब्दों का उपयोग कर लेते हो, दूसरे के लिए गलत शब्दों का उपयोग करते हो। जब तुम करोगे, तो समर्पण।
दूसरा करेगा तो अंधविश्वास।
इसलिए ख्याल रखना, जो तुम अपने लिए मौका देते हो, वह दूसरे को भी देना।
तुम्हें कोई हक नहीं है किसी दूसरे के बाबत निर्णय करने का कि वह

अंधविश्वासी है, या समर्पित हुआ व्यक्तित्व है। तुम इसकी चिंता छोड़ो। तुम कर भी नहीं सकते निर्णय। तुम दूसरे के हृदय में उतरोगे कैसे? जानोगे कैसे? तुम तो अपनी ही सोच लो। इतना ही देखो अपने भीतर कि अब तक तुम अंधविश्वास से जी रहे हो, या समर्पण से जी रहे हो। बस, वहीं निर्णय कर लो, दूसरों की फिकिर छोड़ दो। अन्यथा तुम्हारे सभी निर्णय गलत होंगे। जीसस ने कहा है, निर्णय करो ही मत; दूसरे के संबंध में न्यायाधीश बनो ही मत।
तो जिन मित्र ने पूछा है, अगर अपने लिए पूछते हों, तो ठीक। दूसरों की चिंता छोड़ दें। अपने भीतर ही देख लेना है कि अब तक जो मैं पकड़े हुए हूं, उसको पकड़ने के लिए मैंने कोई जीवन दांव पर लगाया है? कोई ध्यान किया है? कोई प्रेम किया है? या सिर्फ संस्कृति ने, समाज ने, सभ्यता ने जो दिया है, उसे पकड़े हुए हूं! दूसरों ने दिया है। उनको भी किन्हीं औरों ने दिया था, उनको भी किन्हीं औरों ने दिया था। सुनी हुई बात है। अपना दर्शन कुछ भी नहीं। ऐसे कचरे को हटाओ। वह अंधविश्वास है। दूसरे को अंधविश्वासी कहने मत जाना।
इसमें एक बात और भी ख्याल में ले लेने की है। दूसरा जितना समर्पित होगा, उतना तुम्हें अंधा मालूम होगा। क्योंकि प्रेम में एक तरह का अंधापन है। इसलिए तो हम कहते हैं प्रेमी को, अंधा! क्योंकि जो प्रेमी नहीं है, वह समझ ही नहीं पाता कि यह आदमी कर क्या रहा है? मजनू से लोग पूछते थे, तू पागल है? इस लैला में कुछ भी रखा नहीं! मजनू कहता, मेरी आंख से देखो। लैला देखनी है तो मेरी आंख से देखो। लैला को और कोई देखने का ढंग हो भी नहीं सकता। एक ही ढंग है, वह मजनू की आंख है।
अगर किसी के प्रेम को देखना है, तो प्रेमी की आंख से देखो। अगर तुम मीरा को जैन की आंख से देखोगे, तो गड़बड़ हो गयी। मीरा को देखना है, तो मीरा की आंख से देखो। मीरा के भाव को समझना है, तो भक्त के भाव से समझो। जो भक्त नहीं हैं, उनसे पूछना मत; वे तो कहेंगे कि यह अंधापन है।
कहते हैं, अलबर्ट आइंस्टीन की पत्नी ने विवाह के बाद अपनी कुछ कविताएं अलबर्ट आइंस्टीन को दिखायीं। वह कुछ कविता करती थी। अब आइंस्टीन तो गणितज्ञ, भौतिकशास्त्री! तथ्य पर उसका जोर! तथ्य और काव्य का क्या मिलना! जमीन-आसमान का फर्क! उसने पहली ही कविता देखी, वह सिर हिलाने लगा। उसकी पत्नी ने पूछा कि क्या मामला है? उसने कहा, यह हो ही नहीं सकता, यह कभी हो ही नहीं सकता, बिल्कुल गलत है। बात क्या है?
कविता में पत्नी ने लिखा है--प्रेम की कविता है, प्रेमी के लिए लिखी है--कि मेरे प्रेमी का जो चेहरा है वह चांद-जैसा सुंदर है। आइंस्टीन ने कहा, हो ही नहीं सकता! चांद-जैसा! हो ही नहीं सकता। क्योंकि चांद बहुत बड़ा है। कहां आदमी का सिर, और कहां चांद! फिर चांद सुंदर भी नहीं है। बड़े खाई-खड्ड हैं। इससे कोई तुलना बैठती ही नहीं।
अब यह दो अलग भाषाएं हैं। आइंस्टीन गणित की भाषा बोल रहा है। कहां सिर, कहां चांद! कोई हिसाब भी तो हो! अंधेर कर रहे हो यह प्रतीक बनाकर। पत्नी भी चौंकी होगी। कोई भी कवि चौंकता। क्योंकि कवि सदियों से यही करते रहे हैं। चांद से ज्यादा सुंदर उन्होंने कुछ पाया ही नहीं अपनी प्रेयसी के चेहरे का निरूपण करने के लिए।
इतना ही नहीं कि उन्होंने चांद से प्रेयसी के चेहरे का निरूपण किया है, कोई तो अंधे और भी आगे निकल गये, उन्होंने चांद का निरूपण अपनी प्रेयसी के चेहरे से किया है। वे कहते हैं, चांद मेरी प्रेयसी के चेहरे-जैसा सुंदर।
मगर क्या तुम कहोगे वह गलत कहते हैं! वह देखने का ढंग और! वह शैली और!
वह भाषा और! वह आयाम और! वे भी ठीक कहते हैं। कुछ है मेल चांद में और प्रेयसी के चेहरे में। वह मेल वजन का नहीं है, न आयतन का है, न क्षेत्र का है, न खाई-खड्डों का है, कुछ और है। कुछ एक सम्मोहन है। जो चांद की तरफ देखकर आंखें ठगी रह जाती हैं। बस वैसी ही आंखें ठगी प्रेयसी के चेहरे पर भी रह जाती हैं। चांद में कुछ है जो तुम्हारे हृदय को आंदोलित कर देता है। बेसुध कर देता है। वैसा ही कुछ प्रेमी के चेहरे में भी है, जो तुम्हें बेसुध कर देता है। उस अनजान की तुलना है। चांद से कुछ सुरा बहती है।

इसीलिए तो चांद का दूसरा नाम है, सोम। सोमरस बहता है चांद से। इसलिए तो चांद के दिन को हम सोमवार कहते हैं। सोमरस बहता है चांद से। कुछ है, जो चांदनी रात में होता है, फिर कभी नहीं होता। जो पूरे चांद की रात में होता है, फिर कभी नहीं होता। कुछ पागल कर देनेवाला, कुछ मतवाला कर देनेवाला। तुम जानकर चकित होओगे कि पूर्णिमा की रात को दुनिया में जितने लोग पागल होते हैं और किसी रात को पागल नहीं होते। इसलिए तो पागलों के लिए एक पुराना शब्द है--चांदमारा। अंग्रेजी में भी पागल के लिए शब्द है--लूनाटिक। वह भी चांद से बनता है--लूनार, चांद--और लूनाटिक--वह भी चांदमारा। चांद में कुछ है! सागर को आंदोलित कर देता है चांद। उठते हैं ज्वार। बड़ी लहरें आकाश छूने को! ठीक वैसा ही कुछ मनुष्य के हृदय-सागर में भी होता है। पूर्णिमा की रात को कुछ घटता है। पूरे चांद के साथ कुछ तुम्हारे भीतर काव्य, संगीत, नृत्य का जन्म होता है। वैसा ही प्रेयसी को देखकर होता है। लेकिन यह गणित का संबंध नहीं है। आइंस्टीन ठीक कहता है, और उसकी पत्नी भी ठीक कहती है। दोनों ठीक कहते हैं। लेकिन दोनों के ठीक, दो अलग-अलग भाषाओं के ठीक हैं। दो अलग-अलग आयाम, दो अलग-अलग व्यवस्थाओं के ठीक हैं। इसे ख्याल रखना।
जो आदमी प्रेम में पड़कर समर्पित हो जाता है, शेष सबको अंधा मालूम होगा ही। क्योंकि वे गणित से चलनेवाले लोग, तर्क से चलनेवाले लोग; यह क्या पागलपन है! अब तुम जाओगे गैरिक-वस्त्रों में घर लौटकर, माला पहने हुए, लोग तुम्हें पागल कहेंगे। तुम चांदमारे। मेरे नाम का अर्थ चांद ही है! लूनाटिक--अब तुम पड़े मुश्किल में! अब तुम समझा न पाओगे। तुम समझाने बैठोगे तो तुम हारोगे, यह भी पक्का समझना। क्योंकि तर्क से कैसे समझाओगे? वह कहेंगे, पागल हो गये हो। अगर तुमने समझाने की कोशिश की, तो उससे सिर्फ इतना ही सिद्ध होगा कि तुम गलत हो। कुछ सिद्ध न हो सकेगा। तुम समझाना मत। तुम खुद ही स्वीकार कर लेना कि ठीक पहचाना, पागल हो गये हैं। इसके पहले कि वे हंसें, तुम खिलखिलाकर हंसना। तुम पाओगे कि वे गंभीर हो गये। इसके पहले कि वे कुछ कहें, कि तुम गुनगुनाना गीत, कि नाचना। वे अपने घर चले जाएंगे सोचकर कि ये महा... समझाने-बुझाने की बात ही न रही!
एक समझ की दुनिया है, जहां सीढ़ी-सीढ़ी तर्क चलता है। एक प्रेम की दुनिया है, जहां छलांगें चलती हैं, कुलांचें चलती हैं। दोनों की चाल इतनी अलग है कि दोनों कभी साथ नहीं चल पाते।
तर्क पदार्थ तक पहुंच पाता, प्रेम परमात्मा तक। परमात्मा का कोई प्रमाण नहीं है। परमात्मा का एक ही प्रमाण है, वे लोग जो उसके प्रेम में पागल हो गये। और कोई प्रमाण नहीं है। परमात्मा को जानना है तो परमात्मा के प्रेम में पागल हो गये लोगों से पूछना पड़े। कोई तर्क नहीं है। कोई सिद्धांत नहीं है। कोई उपाय नहीं सिद्ध करने का। लेकिन, जब किसी व्यक्ति में वैसे प्रेम का जन्म होता है, तो जिनको हम आंखें कहते हैं वे तो बंद हो जाती हैं, लेकिन कोई और आंख खुलती है--उसी को तो तीसरी आंख कहते हैं--कोई और आंख खुल जाती है। वह किसी और ढंग से देखने लगता है।
तो स्वभावतः जिनको नहीं घटा है प्रेम, उन्हें प्रेमी पागल मालूम पड़े, अंधा मालूम पड़े; मगर अगर तुममें थोड़ी भी करुणा हो, तो भूलकर ऐसे शब्दों का प्रयोग मत करना।
इतना ही कहनाः मुझे अभी घटा नहीं, मैं कुछ कह सकता नहीं। जिसको घटा है,
वह जाने। और धन्यभाग समझना कि कुछ लोग हैं, जिनको परमात्मा अभी भी घटता है। क्योंकि उन्हीं में आशा है उन लोगों के लिए भी, जो अभी तर्क के जाल में और व्यामोह में भटक रहे हैं।
भक्त से पूछो, वह कहेगा--
मरा हूं हजार मरण
पायी तब चरण-शरण
तुम कहोगे, अंधा है। वह कहता है, हजारों बार मरकर यह चरण मिले हैं। बड़ी मुश्किल से मिले हैं।
मरा हूं हजार मरण
पायी तब चरण-शरण

बड़ी कीमत से पायी है उसने। जन्मों-जन्मों जिस हीरे को खोजा, अब पाया है। तुम कहोगे, पत्थर लिये बैठा है। हीरे को देखने के लिए जौहरी की आंख चाहिए।
मैंने सुना है, एक आदमी अपने गधे के गले में एक हीरा लटकाये चला जा रहा था। एक जौहरी ने देखा, चकित हो गया! लाखों का हीरा होगा और यह गधे के गले में लटकाये हुए है! उसने पूछा, क्या लेगा इस पत्थर का? उस आदमी ने कहा, एक रुपया दे दें। उस जौहरी ने कहा, चार आने में देना है? पत्थर है, करेगा क्या? उसने कहा अब चार आने तो रहने दो बच्चे खेल लेंगे! उस जौहरी ने सोचा कि आयेगा, चार आने भी कौन देनेवाला है इसको! जौहरी जरा दो-चार कदम आगे चला गया, तभी तक दूसरा जौहरी आया। उसने एक हजार रुपये में वह खरीद लिया पत्थर। लौटकर जौहरी आया भागा हुआ, कहा क्या हुआ, बेच दिया? कितने में बेच दिया? उसने कहा, हजार रुपये में। पहले जौहरी ने कहा, पागल हुए हो! अरे, वह लाखों का हीरा था! उस गधे के मालिक ने कहा कि मैं पागल होऊं या न होऊं, मुझे तो पता नहीं कि वह हीरा था, इसलिए हजार में बेच दिया; तुझे तो पता था कि हीरा है, एक रुपये में लेने को तू राजी न हुआ!
हीरा अपने-आप में थोड़े ही हीरा है! पड़ा रहता है हजारों वर्ष तक, जब तक
कि किसी जौहरी की नजर में नहीं आता। जौहरी की नजर में आते ही हीरा हो जाता है। उसके पहले तो पत्थर ही था। और तुम्हारे पास जौहरी की नजर न हो, तो तुम्हारे लिए भी पत्थर है।
मरा हूं हजार मरण
पायी तब चरण-शरण
भक्त तो कहता है--
जो तुम्हें जाद-ए-मंजिल का पता देता है
अपनी पेशानी पे वो नक्शे-कदम लेके चलो
अपने माथे पर रख लो वे चरण, जिससे तुम्हें मार्ग मिला, जिससे तुम्हें राह मिली।
जो तुम्हें जाद-ए-मंजिल का पता देता है
जिसने तुम्हें खबर दी मंजिल की।
अपनी पेशानी पे वह नक्शे-कदम लेके चलो
लेकिन दूसरों को तो पागल ही लगेगा। दूसरे की तो समझ के बाहर होगा कि
यह क्या हो रहा है?
दूसरे की चिंता मत करें। अगर समर्पण घटा हो, तो वह इतना बहुमूल्य है
कि सारी दुनिया भी कहती हो कि तुम अंधे हो, तो समर्पित व्यक्ति कहेगा, अंधा होने को राजी हूं, लेकिन समर्पण छोड़ने को नहीं। अगर न घटा हो समर्पण अब तक जीवन में, तो जरा खोजबीन करना कि क्या पाया है समर्पण-हीन जीवन में? क्या पाया है? कचरा ही कचरा, राख ही राख पाओगे। अंगारा भी न मिलेगा जलता हुआ एक। शास्त्रों की राख मिलेगी, सत्य का अंगारा न मिलेगा। परंपरा की धूल मिलेगी, परमात्मा का दर्पण न मिलेगा। तो अपने भीतर ही खोजना कि अब तक अंधविश्वास से जीये हैं, तो अब एक बार समर्पण की आंख से भी जीकर देख लें, यह नयी शैली भी अपना कर देख लें।
समर्पित व्यक्ति को तो धीरे-धीरे पता चलता है कि जो चरण उसने पकड़े थे,
वह पराये चरण न थे; और जिसका हाथ अपने हाथ में लिया था, वह पराया हाथ न था। और जिसके साथ चल पड़े थे, वह अपनी ही नियति थी, अपना ही भविष्य था।
निराकार! जब तुम्हें दिया आकार, स्वयं साकार हो गया
युग-युग से मैं बना रहा था मूर्ति तुम्हारी अकल, अलेखी
आज हुई पूरी तो मैंने शकल खड़ी अपनी ही देखी।
लेकिन इससे भी बढ़कर अपराध कर गयी पूजन-बेला,
तुम्हें सजाने चला फूल जो, मेरा ही शृंगार हो गया।
तुम जिसे पकड़ रहे हो, वह तुम्हारे ही होने की संभावना है। अगर मेरे पास तुम्हें कुछ रस मिला है, तो रस मुझसे नहीं मिला है, वह तुम्हारे भीतर ही झरा है। अगर मेरे पास तुम्हें कुछ दिखायी पड़ा है, तो वह तुम्हारा ही भविष्य है, वह तुम्हारा ही आनेवाला कल है, वह तुम्हारी ही संभावना है;

तुम्हारी नियति, तुम्हारा भाग्य! अगर तुम मेरे सामने झुके हो, तो वह तुम अपने ही भविष्य के सामने झुके हो, जैसे बीज अपने ही फूल के सामने झुक जाए। निराकार! जब तुम्हें दिया आकार स्वयं साकार हो गया
तुमने अगर किसी को महिमा दी, तुम महिमावान हो गये। तुमने अगर किसी को प्रभु कहकर पुकारा, उसी क्षण तुम्हारा प्रभु जन्मा। तुम अगर किसी चरण में झुके, तो तुम्हारे चरण किसी के लिए झुकने योग्य होने लगे।
निराकार! जब तुम्हें दिया आकार स्वयं साकार हो गया
युग-युग से मैं बना रहा था मूर्ति तुम्हारी अकल, अलेखी
आज हुई पूरी तो मैंने शकल खड़ी अपनी ही देखी।
जिस दिन तुम मेरे बिल्कुल करीब आ जाओगे और मुझे ठीक से जान लोगे, उस दिन तुम पाओगे, अरे! पकड़ने दूसरे को चला था, यह तो अपने को ही पा लिया। लेकिन इससे भी बढ़कर अपराध कर गयी पूजन-बेला
तुम्हें सजाने चला फूल जो, मेरा ही शृंगार हो गया।
तुमने जो भी श्रद्धा से, समर्पण से कहीं चढ़ाया है, वह तुम्हीं पर चढ़ गया है। तुम जहां भी श्रद्धा और समर्पण से आंख उठाये हो, वह तुम्हारे ही भविष्य का गृह है। वह तुम्हारे ही भविष्य, तुम्हारी ही संभावनाओं का सूत्र है। वह तुम्हारी नियति है।

आखिरी प्रश्नः आपने सिद्ध होकर क्या पाया? और क्या आप निश्चयपूर्वक
कह सकते हैं कि परमात्मा है?

सिद्ध होकर कुछ पाया नहीं जाता। सब खो जाता है। कुछ बचता ही नहीं। वही पाना है। शून्य मिलता है सिद्ध होकर। लेकिन वही शून्य पूर्ण का आवास है। पाने की भाषा में तो पूछो ही मत, क्योंकि वह लोभ की भाषा है। क्या पाया? कुछ भी नहीं पाया।
बुद्ध से किसी ने यही सवाल पूछा था। तो बुद्ध ने कहा, पाया! पाया कुछ
भी नहीं। खोया जरूर। पूछनेवाला चकित हुआ, उसने पूछा, खोया! पाया कुछ भी नहीं? बुद्ध ने कहा, पाया तो वही जो पहले से ही मिला हुआ था। पता न था, पहचान हुई। इसलिए उसको पाया, ऐसा कहना तो ठीक नहीं। जो जेब में ही पड़ा था, भूल गये थे, हाथ डाला, मिल गया। पाया क्या! था अपना, सदा से, पता न था, पता हुआ। बोध हुआ। उसी बोध से तो शब्द बुद्ध बना। बुद्ध ने कहा, परमात्मा को पाना नहीं है, सिर्फ बोध करना है। है तो है ही। मौजूद ही है। वही तुम्हें भरे है। वही तुम्हें घेरे है--बाहर-भीतर, सब दिशाओं में, चहुं-ओर--चहुं दिशाओं में। पाना नहीं है। पाने में तो ऐसा लगता है जैसे कि कहीं जाना है; जो है नहीं, उसे पाना है। नहीं, सिर्फ जागना है। जानना है, प्रत्यभिज्ञा करनी है।
और बुद्ध ने कहा, खोया बहुत। वह सब खोया, जो मेरे पास नहीं था और सोचता
था कि है। इसे थोड़ा समझना, बड़ा विरोधाभास है। जो सोचता था कि नहीं है, वह था। और जो सोचता था कि है, वह नहीं है। अहंकार खोता है, आत्मा मिलती है। अहंकार कभी भी नहीं है, और आत्मा सदा है।
मुझसे पूछते हो, आपने सिद्ध होकर क्या पाया? पाया कुछ भी नहीं, खोया। पाने को यहां कुछ है ही नहीं। पाने की दौड़ ही संसार है। जब तक तुम पाने के पीछे पड़े हो, तब तक तुम संसार में रहोगे। इसलिए सांसारिक आदमी अगर धार्मिक भी होने लगता है, तो भी पूछता है, मिलेगा क्या?
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं ध्यान तो करें, लेकिन मिलेगा क्या? स्वांतः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा। तुम पूछो तुलसीदास को कि क्या मिलता है? राम की कथा कहे चले जा रहे हो, पाया क्या? स्वांतः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा। वह कहेंगे, मौज है, मजा है, पाने का कोई सवाल ही नहीं। यह आनंद-भाव है। यह आनंद में खिले फूल हैं। पाने के लिए नहीं। यह कोई वासना नहीं है। कोई लोभ नहीं है। कोई पाने की दौड़ नहीं, कोई चाह नहीं है।
मिला कुछ भी नहीं, खोया बहुत। खोया सब। पूरा का पूरा खोया। लेकिन उस
खो जाने में ही उसका आविर्भाव होता है, जो दबा था। इस कूड़े-कर्कट में जो

दबा था हीरा, वह प्रगट हुआ। अपने से पूछो! मुझसे पूछते हो, सिद्ध होकर क्या पाया? मैं तुमसे पूछता हूं, संसारी होकर क्या पाया? सब्जा-ओ-बर्गो-लाला-ओ-सर्वो-समन को क्या हुआ
सारा चमन उदास है, हाय चमन को क्या हुआ
मैं तुमसे पूछता हूं, इतने उदास हो, तुम्हें हुआ क्या? इतने दुखी, इतने कातर, इतने हारे-थके, इतने निराश!
सारा चमन उदास है, हाय चमन को क्या हुआ
मैं तुमसे पूछूं, इतने बीमार, इतने रोते, इतने परेशान, इतने पीड़ित, फिर
भी तुम दौड़े चले जाते हो उन्हीं रास्तों पर, जिनसे पीड़ा ही मिली है; फिर भी दौड़े चले जाते हो उन्हीं पटरियों पर जिन पर नर्क ही मिला! फिर भी दौड़े चले जाते उसी क्रोध, उसी माया, उसी लोभ, उसी मोह में, जिनसे सिवाय... सिवाय कांटों के और कुछ भी न छिदा! तुम मुझसे पूछते हो कि आपको क्या मिला? तुम्हारा दुख खो गया, वह मेरे पास नहीं है। तुम्हारे कांटे खो गये हैं, वे मेरे पास नहीं। तुमसे मैं अगर ठीक से कहूं, तो तुम्हारे पास जो है, वह मेरे पास नहीं है। इतना तो पक्का! वह खोया। कोई चाह नहीं, कुछ पाने की यात्रा नहीं, कोई दौड़ नहीं। अपने घर आ गये।
नग्मा-ओ-मय का ये तूफाने-तरब क्या कहिये
घर मेरा बन गया खैयाम का घर आज की रात
नग्मा-ओ-मय का ये तूफाने-तरब क्या कहिए!
तुम्हें दिखायी नहीं पड़ता, यह जो शराब का तूफान तुम्हारे सामने है? नग्मा-ओ-मय का ये तूफाने-तरब क्या कहिए
घर मेरा बन गया खैयाम का घर आज की रात
शराब बरसी। मधुशाला मिली। लेकिन यह मिलन कुछ ऐसा नहीं कि अपना न था, पहचान हुई। सदा से अपना ही था। खजाना अपना था, चाभी अपने हाथ में थी, ताला खोलना भूल गये थे। याद आ गयी, स्मरण हुआ, सुरति आयी। संसार खोया, परमात्मा मिला, ऐसा कहना गलत होगा। परमात्मा मिला ही हुआ था। संसार की उधेड़-बुन में भूल गये थे घर की याद। बाजार में खो गये थे।
ऐसा हुआ दूसरे महायुद्ध में। एक आदमी चोट खाकर गिरा युद्ध के स्थल पर, उसकी स्मृति खो गयी। जब युद्धस्थल से उसे उठाकर लाया गया, तो बड़ी कठिनाई खड़ी हो गयी। युद्धस्थल में उसका तगमा, उसका नंबर भी कहीं गिर गया। और उसकी स्मृति भी खो गयी। अब वह कौन है, यह भी न बता सके। उसका नाम-धाम भी उसे पता न रहा। वह युद्ध के भी किसी काम का न रहा। लेकिन उसे भेजें कहां? उसके घर का भी कोई पता नहीं। फिर किसी ने सलाह दी--मनोवैज्ञानिक ने--कि इंग्लैंड कोई बहुत बड़ा देश नहीं है, इसको ट्रेन में बिठाकर सारे इंग्लैंड में घुमाया जाए। संभव है अपने गांव के स्टेशन पर पहुंचे तो याद आ जाए। बात काम कर गयी। उसे ले जाया गया स्टेशन-स्टेशन। जो लोग ले गये थे वे भी थक गये। क्योंकि हर स्टेशन पर ले जाकर उसको उतारकर खड़ा कर देते, वह खड़ा देखता रह जाता।
लेकिन एक छोटे गांव के स्टेशन पर उतारना न पड़ा। जैसे ही उसे गांव की तख्ती दिखाई पड़ी, अरे! उसने कहा, मेरा गांव! वह नीचे उतरकर भागने लगा। लोगों ने उसे रोकना भी चाहा, उसने कहा, रोको मत! अब मुझे जाने दो। मेरा गांव आ गया। जो मनोवैज्ञानिक उसे लेकर घूम रहे थे, वह उसके पीछे गये। वह सीधा भागता हुआ, गांव की गलियों को पार करता हुआ, अपने घर के द्वार पर पहुंच गया। उसने कहा, यह रहा मेरा घर। वह मेरी मां बैठी है।
क्या हुआ? पड़ी थी याददाश्त गहन में। वह नामपट स्टेशन का चोट कर गया। इसीलिए तो जाननेवालों ने कहा है, परमात्मा को पाना थोड़े ही है, सिर्फ स्मरण करना है। सुमिरण कीजै। सुरति जगाइये। स्मृति भरिये। पड़ा है गहन में तुम्हारे, पुकारिये, चिल्लाइये, आवाज लगाइये। किसी क्षण मेल खा जाएगा, किसी क्षण स्मरण पकड़ जाएगा, किसी क्षण तुम्हारी पुकार के कुंदे में उलझा हुआ ऊपर आ जाएगा। भागने लगोगे--यह रहा घर, यह आ गया घर; खोया संसार, पाया उसे जो मिला ही हुआ था।
नग्मा-ओ-मय का ये तूफाने-तरब क्या कहिये
घर मेरा बन गया खैयाम का घर आज की रात।

पानेवाले को कुछ नहीं मिलता। खोनेवाले को सब कुछ मिलता है। पानेवाले भटकते हैं, रोते हैं, झींखते हैं; खोनेवाला भर जाता है, पूरा हो जाता है। तुझे ढूंढ़ता हूं तेरी जुस्तजू है
मजा है कि खुद गुम हुआ चाहता हूं
तुम अगर ढूंढ़ ही रहे हो, खोज ही रहे हो, तो न पा सकोगे।
मजा है कि खुद गुम हुआ चाहता हूं
परमात्मा की खोज अपने को खोने की खोज है। परमात्मा को पाने का उपाय स्वयं को डुबाना और मिटाना है। तुम जब तक हो, परमात्मा न हो सकोगे। तुम्हीं तो बैठे परमात्मा की छाती पर पत्थर होकर। हटो, जगह खाली करो! तुम पत्थर की तरह हटे कि परमात्मा का झरना फूटा।
अब तुम पूछते हो, "आप निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि परमात्मा है?" निश्चयपूर्वक तो नहीं कह सकता। उसका कारण है। क्योंकि निश्चयपूर्वक
हम उन्हीं बातों को कहते हैं, जिनका कुछ अनिश्चय होता है। सरलतापूर्वक कह सकता हूं कि परमात्मा है, निश्चयपूर्वक नहीं! क्योंकि अनिश्चय मुझे जरा भी नहीं है, तो निश्चय किसके खिलाफ खड़ा करूं? जब हम कहते हैं, दृढ़ता से, तो उसका मतलब यह होता है कि भीतर कुछ कमजोरी पड़ी है। जब हम कहते हैं निश्चय से, तो उसका मतलब यह होता है कि भीतर कुछ अनिश्चय है।
सरलता से कहता हूं। ध्यान रखना मेरा वचन, सरलता से कहता हूं--परमात्मा है। परमात्मा ही है। उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग दो
ग्यारहवां प्रवचन

समता ही सामायिक

इंदियत्थे विवज्जित्ता, सज्झायं चेव पंचहा।
तम्मुत्ती तप्पुरक्कारे, उवउत्ते इरियं रिए।। 108।।
समभावो सामइयं, तणकंचण—सत्तुमित्तविसओ त्ति।
निरभिस्संगं चित्तं, उचियपवित्तिप्पहाणं च।। 109।।
वयणोच्चारणकिरियं, परिचत्ता वीयरायभावेण।
जो झायदि अप्पाणं, परम समाही हवे तस्स।। 110।।
झाणणिलीणो साहू, परिचागं कुणइ सव्वदोसाणं।
तम्हा दु झाणमेव हि, सव्वऽदिचारस्स पडिक्कमणं।। 111।।
णियभावं ण वि मुच्चइ, परभावं णेव गेण्हए केइं।
जाणदि पस्सदि सव्वं, सोऽहं इदि चिंतए णाणी।। 112।।

पहला सूत्र--
इंदियत्थे विवज्जित्ता, सज्झायं चेव पंचहा।
तम्मुत्ती तप्पुरक्कारे, उवउत्ते इरियं रिए।।
साधारणतः मनुष्य इंद्रियों के विषय-भोग के चिंतन में लीन रहता है।
पांच इंद्रियां हैं। इसलिए महावीर कहते हैं, पांच ही मनुष्य के चिंतन के विषय हैं।
"इंद्रियों के विषय तथा पांच प्रकार के चिंतन-कार्य को छोड़कर केवल गमन-क्रियाओं में तन्मय हो, उसी को प्रमुख महत्व देकर उपयोगपूर्वक, जागृतिपूर्वक चलना चाहिए।"
जो हम कर रहे हैं, वह हम शायद ही मनःपूर्वक करते हैं। जो हम करते हैं, यंत्रवत करते हैं। मन और हजार काम करता है। जैसे राह पर चल रहे हैं--शरीर तो राह पर होता है, मन न मालूम कहीं और। हो सकता है घर पर हो, दुकान पर हो, मंदिर में हो, लेकिन एक बात सुनिश्चित है कि वहां नहीं होगा जहां तुम हो। जिस दिन मन वहां हो जाए जहां तुम हो, उसी दिन आत्मबोध का प्रारंभ होता है। मन का और शरीर का एक-साथ, एक-ही स्थान, एक-ही काल में हो जाना ध्यान है। मन और शरीर अलग-अलग चलते रहते हैं। और जब तक उन दोनों का मिलन न हो, तब तक तुम्हें उसका पता न चल सकेगा जो दोनों के पार है।
महावीर चलने पर जोर देते हैं। क्योंकि महावीर का जो संन्यासी है, वह परिव्राजक था। वह चलता रहता है एक गांव से दूसरे गांव। महावीर ने कहा है कि संन्यासी रुके न। यह प्रतीक था। यह प्रतीक लोगों ने बड़ी जड़ता से पकड़ लिया। यह प्रतीक था ऐसा जैसे कि नदी चलती रहती है, ऐसा संन्यासी चलता रहे। कहीं ठहरे न, कहीं मन को न लगाये, कहीं डबरा न बनाये, बहाव तोड़े न, बहाव बना रहे।
यह बात बड़ी गहरी थी, इसे बड़े ऊपरी अर्थों में पकड़ लिया गया। जैन-मुनि
अब भी चलता है, एक गांव से दूसरे गांव बदल लेता है। लेकिन भीतर का बहाव कहां है! भीतर तो सब जड़ है, सब ठहरा हुआ है। भीतर गति कहां है? और महावीर ने कहा है, गति धर्म है; अगति अधर्म है।
महावीर से ज्यादा क्रांतिकारी विचारक धर्म के जगत में दूसरा नहीं हुआ। किसी दूसरे व्यक्ति ने नहीं कहा है, कि अगति अधर्म है और गति धर्म। चलते ही रहना है। कहीं ठहरना नहीं। कहीं रुकना नहीं। रुकने का अर्थ है, राग बना। रुकने का अर्थ है, आसक्ति बनी। रुकने का अर्थ है, वस्तु महत्वपूर्ण हो गयी, बहुत महत्वपूर्ण हो गयी, उसने तुम्हारे लिए कारागृह बना लिया। अब तुम मुक्त न रहे, बंध गये। इसका यह अर्थ न था कि कहीं साधु ठहरे न। इसका अर्थ था, साधु का चित्त कहीं ठहरे न। तो जैन-मुनि अब भी चलता है, लेकिन चित्त तो कभी का बंध गया है, हजार तरह के बंधनों में।
इसलिए महावीर अपने मुनियों को कहते हैं चलते समय, उपयोगपूर्वक चलना। चलना अकेला काफी नहीं है। गति अकेली काफी नहीं है। क्योंकि अगर गति अकेली हो और विवेक न हो पीछे, तो गति विक्षिप्त करेगी। देखें, पूरब में डबरे बन

गये हैं चेतना के। परंपरा, रूढ़ि, अतीत बहुत बोझिल होकर बैठ गया है पत्थर की तरह छाती पर। तो पूरब में डबरे बन गये हैं। कोई गति नहीं मालूम होती। सागर की तरफ बहाव नहीं मालूम होता।
लेकिन एक अर्थ में लोग पश्चिम की बजाय ज्यादा शांत हैं। गरीब हैं, दीन हैं, हीन हैं, दुखी हैं, फिर भी शांत हैं। सुविधा नहीं है, सुख नहीं है, शायद भोजन-वस्त्र-छप्पर भी नहीं है, तो भी पश्चिम के मुकाबले ज्यादा शांत हैं-- कम बेचैन हैं।
पश्चिम में गति पर जोर है। प्रगति पर जोर है। दौड़ो, प्रतिस्पर्द्धा करो, जीवन भागा जाता है। रुको मत। भागते ही रहो। इसलिए स्पीड, गति को रोज-रोज नया विकास मिलता चला जाता है। परिणाम यह हुआ कि पश्चिम पागल होने के करीब है। धन भी है, सुविधा भी है--गति हो तो सुविधा बढ़ती है, धन बढ़ता है, समृद्धि बढ़ती है, विज्ञान बढ़ता है; सब दिशाओं में संपन्नता बढ़ती है, बढ़ी-- लेकिन आदमी भीतर से दौड़-दौड़कर थक गया, टूट गया। दौड़-दौड़कर यह याद ही न रही कि मैं कौन हूं। दौड़-दौड़कर यह भी भूल गया कि कहां जा रहा हूं। दौड़ना ही याद रहा, मंजिल का पता दौड़ में खो गया। आपाधापी में आत्मा का स्मरण ही न रहा। दौड़ बहुत है। लेकिन क्या महावीर ऐसी ही दौड़ को कहते हैं? पश्चिम तो विक्षिप्त हुआ जा रहा है। पूरब मुर्दा हुआ जा रहा है, पश्चिम पागल हुआ जा रहा है। महावीर कहते हैं, डबरे मत बनना। लेकिन विक्षिप्त तूफान भी मत बनना। चलना, विवेकपूर्वक। गति धन विवेक। गति धन उपयोग। गति धन चैतन्य। तो तुम डबरे की तरह सड़ भी न पाओगे और दौड़नेवाले की तरह पागल भी न हो जाओगे। न तो तुम लाश बनोगे, न तुम बवंडर बनोगे। इन दोनों के बीच तुम्हारे जीवन की महिमा का अवतरण होगा। उस संतुलन को साध लेना ही संयम है।
कहते हैं महावीर, इंद्रियों के पांच विषय हैं, इसलिए मन में पांच तरह
के चिंतन चलते हैं। तुम्हें खोजना चाहिए कि तुम किस इंद्रिय पर अत्यधिक चिंतन करते हो। कुछ हैं, जो भोजन का ही चिंतन करते हैं; कुछ हैं, जो रूप का चिंतन करते हैं; कुछ हैं, जिन्हें वाणी में, संगीत में, ध्वनि में रस है, वे उसी का चिंतन करते हैं। कुछ हैं, जो स्पर्श का चिंतन करते हैं, आलिंगन का, चुंबन का, इसका चिंतन करते हैं।
लेकिन अगर तुम गौर करोगे, तो तुम पकड़ लोगे कि तुम किस इंद्रिय का बहुत अधिक चिंतन कर रहे हो। चलते, बैठते, उठते, सोते उसी इंद्रिय पर बार-बार लौट आते हो। भोजन का दीवाना भोजन के ही संबंध में सोचता रहता है।
नीरो के संबंध में कहा जाता है कि वह इतना भोजन के लिए पागल था कि भोजन करते-करते ही रात सो जाता था। और उठते से ही भोजन की मांग शुरू हो जाती। इतना ज्यादा भोजन कोई कर नहीं सकता। क्योंकि भोजन की एक सीमा है, एक जरूरत है। तो उसने चिकित्सक रख छोड़े थे। वह भोजन करे, चिकित्सक उसे जल्दी से वमन करवा दें, ताकि वह फिर भोजन कर सके। पेट भरा हो तो कैसे भोजन करोगे? तो वमन! ऐसा पागल कोई आदमी नहीं हुआ, जैसा नीरो पागल था। लेकिन थोड़ा-बहुत नीरो तुम अपने में छिपा हुआ पाओगे। जब पेट भर गया हो, तब भी तुम भोजन किये चले जाओ, तब थोड़ा-बहुत अंश में नीरो तुम्हारे भीतर है। नीरो अतिशयोक्ति है। तुम भी लेकिन उसी दिशा में गतिमान हो।
पेट भर गया हो, फिर भी बैठकर तुम भोजन का चिंतन करो--अतीत भोजनों का, या भविष्य में होनेवाली संभावनाओं का--तो भी तुम पागल हो। क्योंकि भोजन पेट का काम है। चिंतन-धारा में भोजन की इतनी छाया पड़े तो कहीं कुछ रुग्ण हो गया। कहीं कुछ चूक हो गयी। कहीं तुम्हारे भीतर से जीवन का सहज संयम उखड़ गया। तुम्हारी चूल ढीली पड़ गयी। तुम्हारा चाक डगमगाने लगा। जरूरत जितनी है उससे ज्यादा चिंतन घातक है। फिर चिंतन से घाव बनता है।
फिर मजा है कि शरीर की जरूरत तो पूरी हो जाती है, चिंतन से जो घाव बनता
है वह जरूरत कभी पूरी नहीं होती। भोजन की तो पूर्ति है, स्वाद की कहां पूर्ति है! भोजन तो एक मात्रा में शरीर को भर देगा, जरूरत पूरी कर देगा, स्वाद की कोई मात्रा कभी भी मन को तृप्त नहीं कर पाती।
मधु पीते-पीते थके नयन
फिर भी प्यासे अरमान!
कुछ है प्यास जो मिटती नहीं। न पीने से, न खाने से, न भोगने से... ।

मधु पीते-पीते थके नयन
फिर भी प्यासे अरमान!
जीवन में मधु, मधु में गायन, गायन में स्वर, स्वर में कंपन, कंपन में सांस, सांस में रस,
रस में विष, विष मध्य जलन,
जलन में आग, आग में ताप,
ताप में प्यार, प्यार में पीर,
पीर में प्राण, प्राण में प्यास,
प्यास में तृप्ति, तृप्ति का नीर,
और यह तृप्ति, तृप्ति ही क्षणिक,
विश्व की मीठी-मीठी मधुर थकान!
फिर भी प्यासे अरमान!
एक कदम दूसरे कदम पर ले जाता है। दूसरा तीसरे पर ले जाता है। वर्तुल बड़ा होता चला जाता है।
लेकिन मौलिक प्यास अपनी जगह बनी रहती है। क्योंकि उस मौलिक प्यास का संबंध जीवन की आवश्यकता से नहीं रहा, उस मौलिक प्यास का संबंध मन की अनंत भूख से जुड़ गया, अनंत आकांक्षा से जुड़ गया। मन के क्षितिज से जुड़ते ही कोई भी प्यास तृप्ति की सीमा के बाहर हो जाती है। दुष्पूर हो जाती है, उसे भरा नहीं जा सकता।
महावीर कहते हैं अपने संन्यासी को कि तू इंद्रियों के सारे विषय, उनका चिंतन, उनका मनन छोड़कर--चलता हो, तो बस चलना। इतना ही ध्यान रहे, उपयोगपूर्वक। उपयोग महावीर का अपना पारिभाषिक शब्द है। उपयोग का अर्थ है, होशपूर्वक, योगपूर्वक। उपयोग का अर्थ है, योगपूर्वक चलना। भीतर का दीया डगमगाये न। भीतर एक सहज स्मरण बना रहे कि मैं चल रहा हूं, मैं चल रहा हूं। यह तो उदाहरण के लिए महावीर ने कहा। ऐसा ही स्मरण सभी क्रियाओं के साथ धीरे-धीरे जोड़ देना। हर क्रिया के साथ भीतर का दीया जुड़ जाए। भोजन करते वक्त, भोजन कर रहा हूं ऐसा होश बना रहे, तो तुम ज्यादा भोजन न कर सकोगे। तुम चकित हो जाओगे। ज्यादा भोजन तभी कर लेते हो जब तुम्हें होश नहीं रहता। अगर मित्र आ गये हैं घर पर, तो तुम ज्यादा भोजन कर लेते हो। क्योंकि मित्रों के साथ मस्ती में, बातचीत में बेहोशी बढ़ जाती है। रेडियो चलाकर बैठ जाते हो, ज्यादा भोजन कर लेते हो! क्योंकि भोजन की स्मृति नहीं रह जाती, मन रेडियो में जाता है, शरीर यंत्रवत भोजन को भीतर डालता चला जाता है। जहां भी तुम होश को ले आओगे, वहीं पाओगे, आवश्यकता पूरी हुई कि क्रिया रुक जाती है। आवश्यकता से रंचमात्र ज्यादा नहीं जाती। न केवल यह आध्यात्मिक अर्थों में महत्वपूर्ण है, यह शारीरिक स्वास्थ्य के लिए भी महत्वपूर्ण है।
मेरे पास बहुत लोग आते हैं, वे कहते हैं, भोजन हम ज्यादा कर जाते हैं, क्या करें? तो मैं उनसे कहता हूं, होशपूर्वक भोजन करो। और कोई डाइटिंग काम देनेवाली नहीं है। एक दिन, दो दिन डाइटिंग कर लोगे जबर्दस्ती, फिर क्या होगा? दोहरा टूट पड़ोगे फिर से भोजन पर। जब तक कि मन की मौलिक व्यवस्था नहीं बदलती, तब तक तुम दो-चार दिन उपवास भी कर लो तो क्या फर्क पड़ता है! फिर दो-चार दिन के बाद उसी पुरानी आदत में सम्मिलित हो जाओगे। मूल आधार बदलना चाहिए। मूल आधार का अर्थ है, जब तुम भोजन करो, तो होशपूर्वक करो, तो तुमने मूल बदला। जड़ बदली।
होशपूर्वक करने के कई परिणाम होंगे। एक परिणाम होगा, ज्यादा भोजन न
कर सकोगे। क्योंकि होश खबर दे देगा कि अब शरीर भर गया। शरीर तो खबर दे ही रहा है, तुम बेहोश हो, इसलिए खबर नहीं मिलती। शरीर की तरफ से तो इंगित आते ही रहे हैं। शरीर तो यंत्रवत खबर भेज देता है कि अब बस, रुको। मगर वहां रुकनेवाला बेहोश है। उसे खबर नहीं मिलती। शरीर तो टेलीग्राम दिये जाता है, लेकिन जिसे मिलना चाहिए वह सोया है। उसे कुछ पता नहीं चलता। फिर धीरे- धीरे इस बेहोशी की मात्रा इतनी बढ़ जाती है कि शरीर की सूचनाओं का खटका भी मालूम नहीं होता।

होशपूर्वक भोजन करो। भोजन करते वक्त सिर्फ भोजन करो। उस समय न बाजार
की सोचो, न व्यवसाय की सोचो, न राजनीति की सोचो--न धर्म की सोचो। उस समय कुछ सोचो ही मत। उस क्षण तुम्हारा सारा उपयोग, उस क्षण तुम्हारा सारा बोध भोजन करने की सहज-क्रिया में संलग्न हो। तो पहली बात, जैसे ही शरीर खबर देगा रुकने का क्षण आ गया, वह तुम्हें सुनायी पड़ेगा। दूसरी बात, अगर तुम होशपूर्वक भोजन करोगे, तो ज्यादा चबाओगे। बेहोशी में आदमी सिर्फ किसी तरह धकाये जाता है अंदर। जब तुम ठीक से चबाते नहीं, तो अतृप्ति बनी रहती है। रस उत्पन्न नहीं होता। शरीर में भोजन तो भर जाता है, लेकिन प्राण नहीं भरते। शरीर में भोजन तो पड़ जाता है, लेकिन यह भोजन पचेगा नहीं। यह मांस-मज्जा न बनेगा। इसलिए शरीर की जरूरत भी पड़ी रह गयी। भोजन भी जरूरत से ज्यादा भर दिया और शरीर की जरूरत भी पूरी न हुई। तो तुम दो अर्थों में चूके।
अगर होशपूर्वक भोजन करोगे... इसलिए समस्त धर्मशास्त्र कहते हैं, भोजन करते समय बोलो मत, बात मत करो, क्योंकि बात तुम्हें हटायेगी, चुकायेगी। भोजन करते समय सिर्फ भोजन करो। भोजन करते वक्त भोजन को ही ब्रह्म समझो। इसलिए उपनिषद कहते हैं--"अन्नं ब्रह्म।" और ब्रह्म के साथ कम से कम इतना तो सम्मान करो कि होशपूर्वक उसे अपने भीतर जाने दो।
इसलिए सारे धर्म कहते हैं, भोजन के पहले प्रार्थना करो, प्रभु को स्मरण करो। स्नान करो, ध्यान करो, फिर भोजन में जाओ, ताकि तुम जागे हुए रहो। जागे रहे तो जरूरत से ज्यादा खा न सकोगे। जागे रहे, तो जो खाओगे वह तृप्त करेगा। जागे रहे, तो जो खाओगे वह चबाया जाएगा, पचेगा, रक्त-मांस-मज्जा बनेगा, शरीर की जरूरत पूरी होगी। और भोजन शरीर की जरूरत है, मन की जरूरत नहीं।
जागे हुए भोजन करोगे तो तुम एक क्रांति घटते देखोगे कि धीरे-धीरे स्वाद से आकांक्षा उखड़ने लगी। स्वाद की जगह स्वास्थ्य पर आकांक्षा जमने लगी। स्वाद से ज्यादा मूल्यवान भोजन के प्राणदायी तत्व हो गये। तब तुम वही खाओगे, जो शरीर की निसर्गता में आवश्यक है, शरीर के स्वभाव की मांग है। तब तुम कृत्रिम से बचोगे, निसर्ग की तरफ मुड़ोगे।
महावीर कहते हैं, इस उपयोग की क्रिया को हर क्रिया से जोड़ देना है। स्नान करो, तो उपयोगपूर्वक। सुनो, तो उपयोगपूर्वक। जैसे मुझे तुम सुन रहे अभी। एक ही सम्यक ढंग है सुनने का। असम्यक ढंग तो बहुत हैं। सम्यक ढंग एक ही है, और वह है कि जब तुम सुन रहे हो, तो सिर्फ सुनो, सोचो मत। जब तुम सुन रहे, तो सिर्फ कान ही हो जाओ। तुम्हारा सारा शरीर ग्राहक हो जाए। सोच लेना पीछे। दो क्रियाएं एक साथ न करो। अभी एक क्रिया में ही होश नहीं सधता, तो दो में कैसे सधेगा? एक में साध लो, तो फिर दो में भी सध सकता है, फिर तीन में भी सध सकता है, फिर और भी जटिल आधार उपयोग के लिये दिये जा सकते हैं। छोटी-छोटी क्रियाओं से शुरू करो! चलना बड़ी छोटी क्रिया है। राह पर चल रहे हैं, कुछ करने जैसा कर भी कहां रहे हैं! उस समय इतना ही होश रहे कि चल रहा हूं। जब मैं यह कह रहा हूं कि इतना होश रहे चल रहा हूं--जयं चरे--तो इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम भीतर दोहराओ कि मैं चल रहा हूं, मैं चल रहा हूं। अगर तुमने ऐसा दोहराया, शब्द निर्मित किये, तो तुम चूक गये। तुम शब्द में लग गये, फिर चूक गये। जब मैं कह रहा हूं जागकर चलो, तो इसका केवल इतना ही अर्थ है, मन में कोई चिंतन न चले। निर्मल दर्पण हो मन का, सिर्फ चलने की छाया पड़े; सिर्फ चलने का भान रहे--बेभान न चलो।
कभी रास्ते के किनारे खड़े होकर देखना, लोग कितने बेभान चल रहे हैं! चले जा रहे हैं, जैसे नींद में हों--अलसाये, तंद्रिल! आंखों में कोई नशा, भीतर कोई मूर्च्छा, बेहोशी! अनेकों को तुम पाओगे कि वे बात करते चल रहे हैं, चाहे साथ कोई भी न हो। उनके ओंठ फड़क रहे हैं, वे कुछ कह रहे हैं। बहुतों को तुम पाओगे, वे हाथ से कुछ इशारे भी कर रहे हैं; किसी अनजाने साथी को सिर हिलाकर हां भी भर रहे हैं; सिर हिलाकर ना भी कर रहे हैं। चल नहीं रहे हैं और बहुत-कुछ कर रहे हैं। तुम अपने को बार-बार पकड़ो। यह चोर पकड़ में आ जाए, यह मूर्च्छा का चोर तुम्हारी पकड़ में आ जाए और इसकी जगह तुम उपयोग के पहरेदार को अपने जीवन में जगा लो, तो सब हो जाएगा। यह शुरुआत है।

"गमन-क्रिया में तन्मय हो, उसी को प्रमुख महत्व देकर उपयोगपूर्वक चले।"
हम जब चलते हैं, तब हम कुछ और करते हैं। जब हम कुछ और करेंगे, तब शायद
हम चलने के संबंध में सोचेंगे। हमारा मन बड़ा अस्त-व्यस्त है।
कभी साहिल पे रह कर शौक तूफानों से टकराएं
कभी तूफां में रह के फिक्र है साहिल नहीं मिलता
किनारे पर होते हैं तो तूफानों में टकराने की आकांक्षा पैदा होती है। तूफानों में उलझ जाते हैं, तो साहिल पर पहुंचने की, किनारे पर पहुंचने की अभीप्सा होती है।
कभी साहिल पे रह कर शौक तूफानों से टकराएं
कभी तूफां में रह के फिक्र है साहिल नहीं मिलता
ऐसे तुम जहां नहीं हो, वहां होते हो; जहां हो, वहां नहीं होते। पकड़ो अभी! यहीं हो? पूरे-पूरे यहीं हो? इस क्षण में तन्मय हो? या मन कहीं और भी जा रहा है? मैं जो कह रहा हूं अगर तुम उस पर सोचने भी लगे, तो चूके। क्योंकि सोचने का अर्थ है, तुम या तो अतीत में गये--पहले तुमने कुछ सुना होगा, पढ़ा होगा, सोचा होगा, सार-संपदा है तुम्हारे विचारों की, उसका तुम मेल-ताल बिठाने लगे... जो मैं कहता हूं, ठीक कहता हूं? जो मैं कहता हूं तुमसे मेल खाता है? तुम्हारी स्वीकृति है या नहीं? या तुम आगे निकल गये। मैं कह रहा हूं जागकर चलो, तुम सोचने लगे--अच्छा, कल सुबह से जागकर चलेंगे। तो भी चूक गये। तो भी भूल हो गयी। तुमने तय कर लिया मन में कि ठीक है, अब यह बात समझ में आ गयी, अब जागकर ही काम करेंगे, तो भी चूक हो गयी, तो भी तुमने जागकर ही नहीं सुना तो जागकर तुम चलोगे क्या!
तो जैसे-जैसे तुम पाओ कि मन छिटक-छिटककर भागता है, पारे की तरह है-- पकड़ो कि छिटक-छिटक जाता है, इधर से पकड़ो तो दूसरी राह खोज लेता है। मगर अगर तुम समझपूर्वक मन का पीछा करते रहो, तो एक दिन ऐसी घड़ी आती है कि मन ठहर जाता है, रुक जाता है क्षण में। स्थिर। गीता उस स्थिति को परम स्थिति मानती है। ऐसे रुकते-रुकते एक घड़ी आती है जबकि जरा भी कंपन नहीं होता, तो स्थितिप्रज्ञ, तो रुक गयी प्रज्ञा। महावीर उसको ही उपयोग कहते हैं। "तिनके और सोने में, शत्रु और मित्र में समभाव रखना ही सामायिक है।"
जब तुम्हें उपयोग की कला आ जाए, तो बाहर की छोटी-छोटी चीजों की बजाय फिर उस उपयोग की कला का भीतर प्रयोग शुरू करना।
"तिनके और सोने में"--तब सोना और मिट्टी, दोनों के बीच डावांडोल मत होना। तब यह मत कहना कि सोना मूल्यवान, मिट्टी ना कुछ। तब कंपना मत सोने और मिट्टी में। तब वहां भी कंपन छोड़ना। तब इतना ही कहना, यह सोना, यह मिट्टी। और आत्यंतिक अर्थों में तो मिट्टी हो कि सोना, सब बराबर है। क्योंकि हम तो विदा हो जाएंगे और सब यहीं पड़ा रह जाएगा। जो पड़ा ही रह जाएगा, हम नहीं थे तब भी था, हम नहीं होंगे तब भी होगा, उसके साथ क्या राग-रस बनाना! जो छूटेगा, उसके साथ संबंध बनाना दुख के बीज बोना है। क्योंकि जब छूटेगा, तो पीड़ा होगी। तिनके और सोने में, मिट्टी और सोने में, कूड़ा-कर्कट और सोने में समभाव।
"शत्रु और मित्र में", कौन अपना है, कौन पराया है? आये अकेले, गये अकेले। आये खाली हाथ, गये खाली हाथ। न कोई संगी-साथी लाये, न कोई संगी-साथी ले जाएंगे। दो दिन का मेला है। नदी-नाव संयोग है। किसी को बना लिया मित्र, किसी को बना लिया शत्रु। किसी को कहा अपना, किसी को कहा पराया। सब अजनबी थे। और सब अजनबी हैं। अपना ही पता नहीं, दूसरे का पता कैसे हो! खुद से तो पहचान नहीं हो पायी अब तक, औरों की पहचान की तो बात ही छोड़ दो। कुछ अजनबियों को कहते हैं अपने और कुछ अजनबियों को कहते हैं पराये, कुछ अजनबियों को कहते हैं इन्हें हम पहचानते हैं, कुछ अजनबियों को कहते हैं इन्हें हम पहचानते नहीं। लेकिन सभी अजनबी हैं। किसे पहचानते हो तुम!
फिर हम कैसे निर्णय करते हैं कौन मित्र, कौन शत्रु? जिसका हमारी वासनाओं में मेल खा जाए, वह मित्र। और जो हमारी वासनाओं में बाधा बन जाए, वही शत्रु। जो हमें धन की यात्रा में साथ दे, वह मित्र। जो धन में अवरोध खड़े करे, हमारी महत्वाकांक्षा में रोड़े अटकाये, वह शत्रु। जो हमें सहारा

दे वह मित्र, जो सहारा न दे वह शत्रु। लेकिन सहारा वासनाओं के लिए ही हम मांग रहे हैं। पहले तो वासनाएं ही व्यर्थ हैं। पहले तो वासनाओं की दौड़ ही व्यर्थ है।
तो महावीर कहते हैं, "तिनके और सोने में, शत्रु और मित्र में समभाव रखना ही सामायिक है।" यह ध्यान की बड़ी गहरी परिभाषा हुई। ध्यान की आत्यंतिक परिभाषा हुई। कहते हैं, समता सामायिक है। सम्यकत्व, संतुलन, संयम; दो अतियों के बीच डोलना न, बीच में खड़े हो जाना; न बायें, न दायें; मध्य में थिर हो जाना सामायिक है। प्रेम और घृणा कोई भी पकड़े न, जन्म और मृत्यु कोई भी जकड़े न। न तो हम कहें किसी को कि आओ, न हम कहें किसी को कि जाओ; न तो किसी के लिए स्वागत हो और न किसी के लिए अपमान हो, ऐसी अवस्था को महावीर कहते हैं, सामायिक।
बेकार बहाना, टालमटोल व्यर्थ सारी
आ गया समय जाने का--जाना ही होगा
तुम चाहे कितना चीखो-चिल्लाओ, रोओ,
पर मुझको डेरा आज उठाना ही होगा
कल खेला था अलियों-कलियों की गलियों में
अब आज मुझे मरघट में रास रचाने दो
कल मुस्काया था बैठ किसी की पलकों पर
अब आज चिता पर बैठ मुझे मुस्काने दो।
जिस जीवन में मौत छिपी है, जहां डेरा लग भी नहीं पाता कि उखाड़ने का समय
आ जाता है। ठोंक भी नहीं पाते खूंटे--एक तरफ ठोंकना पूरा हो पाता है, दूसरी तरफ से उखड़ना शुरू हो जाता है। यह बाजार भर भी नहीं पाता कि संध्या हो जाती है। यहां मिलन हो कहां पाता, और विरह की यात्रा शुरू हो जाती है।
बेकार बहाना, टालमटोल व्यर्थ सारी
आ गया समय जाने का--जाना ही होगा
तुम चाहे कितना चीखो-चिल्लाओ, रोओ,
पर मुझको डेरा आज उठाना ही होगा
एक पल भी यहां ठहराव कहां है! बनाओ, मिटाओ; जमाओ, उखाड़ो; खोलो, बंद करो।
इस छोटी-सी क्षणभंगुर व्यवस्था में हम मित्र भी बना लेते, शत्रु भी बना लेते। राग बना लेते, विराग बना लेते। धन सम्हालकर रख लेते, कूड़ा-कर्कट बाहर फेंक आते। और फिर एक दिन हम पड़े रह जाते, और जो सम्हाला था वह पड़ा रह जाता। महावीर कहते हैं, इसका बोध रहे, इसकी समझ रहे, तो तुम जकड़ोगे न, पकड़े न जाओगे, कारागृह न बनाओगे--तुम मुक्त रह सकोगे। होश मुक्ति है। चीजें जैसी हैं उनको वैसे ही देख लेना मुक्ति है।
सोना सोना है, मिट्टी मिट्टी है, लेकिन दोनों में से कोई भी तुम्हारा नहीं। मित्र, शत्रु, कौन तुम्हारा है? मित्र से मित्रता गिर जाने दो, शत्रु से शत्रुता गिर जाने दो। तुम तो इस सत्य को पहचानो कि तुम ही अगर अपने हो जाओ, तो बहुत काफी है। तुम ही अगर अपने मित्र हो जाओ, तो काफी है। तुम ही अपने शत्रु न रहो, तो काफी है।
महावीर ने कहा, आत्मा ही अपना मित्र, आत्मा ही अपना शत्रु है। अगर विकासमान हो तो मित्र, अगर ह्नासमान हो जाए तो शत्रु। अगर आकाश की तरफ ले चले, पंख बन जाए तो मित्र, अगर पाताल की तरफ गिराने लगे, अंधेरी गलियों में भटकाने लगे, नरकों में डुबाने लगे, तो शत्रु। बाहर मत खोजो शत्रु और मित्र। वहां भीतर ही आत्मा से मैत्री बना लो, बस वही मैत्री काम आनेवाली है। क्योंकि बस आत्मा ही साथ जानेवाली है। वही साथ है सदा से, वही साथ होगी सदा। आत्मा की परिभाषा ही यही है, जो सदा से साथ है, जो स्वभाव है।
इसलिए क्षण से बहुत व्यथित मत हो जाओ, शाश्वत पर ध्यान रखो। शाश्वत पर जिसका ध्यान है, उसकी सामायिक सध ही जाएगी। अपने से सध जाएगी। क्योंकि उसके जीवन में जिन बातों से तनाव पैदा होता था, वे बातें अर्थहीन हो जाएंगी। तुम्हें कोई बता दे कि आज सांझ तुम्हें मरना है, मौत आ गयी; फिर कोई गाली दे जाए, तो शायद तुम गाली का उत्तर भी न देना चाहोगे। तुम कहोगे, अब क्या गाली का उत्तर देना, हम ही चले! शायद तुम कहोगे, क्षमा ही मांग लें। कहोगे कि भूल-चूक क्षमा करना। कुछ गलती हो गयी होगी, इसलिए गाली दे रहे हो;

अब मेरे जाने का वक्त आ गया, आज सांझ तो मुझे जाना है, अब क्या झगड़ा रोपना! अब क्या अदालतें खड़ी करनी! लेकिन तुम्हें पता नहीं कि मौत सांझ आ रही है, तुम ऐसे जीते हो जैसे सदा यहां रहना है। तो इंच-इंच जमीन के लिए लड़ जाते हो। रत्ती-रत्ती, कौड़ी-कौड़ी धन के लिए लड़ जाते हो। छोटे-मोटे पद के लिए लड़ जाते हो। हजार तरह के उपद्रव अपने हाथ से खड़े कर लेते हो। इस बात को बिना सोचे-समझे कि मेले में खड़े हो। इस बात को बिना सोचे-समझे कि यह कोई घर नहीं, धर्मशाला है। रात रुके, सुबह जाना है। महावीर कहते हैं, यह बोध पक्का हो जाए, तो सामायिक।
कृष्ण ने कहा हैः समत्व योग है--समत्वं योग उच्यते। समत्व एक योग है। महावीर कहते हैं, समता सामायिक है। वही बात कहते हैंः सामायिक का अर्थ होता है, ध्यान; आत्मा में डूब जाना, तन्मय हो जाना।
ख्याल करें--
जब तक तुम बाहर उलझे हो, स्वयं में डूब न सकोगे। बाहर बनाया मित्र, तो उलझे बाहर। बाहर बनाया शत्रु, तो उलझे बाहर। बाहर सोचा पद पाना है, तो उलझे। बाहर सोचा कि धन पाना है, तो उलझे। भीतर जानेवाले को बाहर की सभी बातें उलझा लेती हैं। और भीतर ही तुम हो। वहीं है पाने योग्य। वहीं है जाने योग्य। वहीं है परम सत्ता का निवास। वहीं है परमात्मा का आवास। तो भीतर जाने के लिए बाहर जितने कम से कम उलझाव हों, उतने अच्छे। जो आदमी किनारे को पकड़ ले, वह मझधार की तरफ बहेगा कैसे? जो आदमी किनारे को न छोड़े, वह नदी में बहेगा कैसे, तैरेगा कैसे? किनारा तो छोड़ना होगा। और जो इस किनारे को न छोड़े, वह उस किनारे की तरफ जाएगा कैसे? बाहर को तुम अगर बहुत पकड़े हो, तो भीतर जाने की चेष्टा व्यर्थ हो जाएगी।
अनेक लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, ध्यान करना है। करते भी हैं, कहते हैं, लेकिन होता नहीं। ध्यान तो करना चाहते हैं वे, लेकिन बाहर से संबंध शिथिल नहीं किये हैं। कहते हैं मझधार में उतरने का मजा लेना है, डुबकी लगानी है, मगर देखता हूं, किनारों की जंजीरों को पकड़े रुके हैं। मझधार में जाने की चेष्टा है, आकांक्षा है, किनारे को छोड़ने की हिम्मत और समझ नहीं। ध्यान कैसे होगा? ध्यान तो अंतर्यात्रा है। सामायिक है।
तो महावीर कहते हैं, बाहर से थोड़े हाथ शिथिल करो, खाली करो। बाहर से थोड़ी आंख बंद करो। अगर बाहर मित्र है, तो बाहर की याद आयेगी; अगर बाहर शत्रु है, तो बाहर की याद आयेगी। ख्याल रखना, मित्र ही नहीं बांधते, शत्रु भी बांध लेते हैं। अकसर तो ऐसा होता है कि मित्रों से भी ज्यादा शत्रुओं की याद आती है। अकसर तो ऐसा होता है कि जिससे तुम्हें प्रेम है, उसकी चाहे तुम विस्मृति भी कर दो, लेकिन जिससे तुम्हें घृणा है और क्रोध है, उसे तुम भूल ही नहीं पाते। फूल तो भूल भी जाएं, कांटों को कैसे भूलोगे? चुभते हैं। अपनों को तो तुम विस्मरण भी कर सकते हो, दुश्मनों को कैसे विस्मरण करोगे? और यह बाहर के मित्र और बाहर के शत्रु, बाहर का धन और पद खींचते हैं बाहर की तरफ। और भीतर तुम जाना चाहते हो।
लोग कहते हैं हम बड़े बेचैन हैं, शांति चाहिए। और यह सोचते ही नहीं कि बेचैनी का कारण जब तक न मिटाओगे, शांति कोई आकस्मिक थो.ड़े ही मिलती है! शांति कोई अनायास आकाश से थो.ड़े ही बरस पड़ती है! शांति उसे मिलती है जिसने अशांति के कारणों से अपने हाथ अलग कर लिये। वे कारण हैं बाहर के द्वंद्व में चुनाव करना।
कृष्णमूर्ति कहते हैं, "च्वाइसलेस अवेयरनेस।" वही महावीर की सामायिक है। चुनावरहित बोध। निर्विकल्प जागरूकता। न यह मेरा है, न वह मेरा है। न यह, न वह। फिर बाहर से हाथ छूटे, फिर तुम चले भीतर। फिर तुम सरके भीतर। फिर तो तुम रोकना भी चाहोगे कि अब कैसे रुकें, तो न रुक पाओगे। जैसे ढलान पर, चिकनी मिट्टी पर तुम फिसल चले। एक बार हाथ से जंजीरें भर छूट जाएं। लेकिन जंजीरों को तुमने समझा है आभूषण। तुम जंजीरों में लेते हो गौरव। तुम मानकर चलते हो कि जंजीरें ही जीवन का सब कुछ हैं, सार हैं। कितना बड़ा मकान है! कितना सोने का अंबार है! कितनी बड़ी कुर्सी पर तुम बैठे हो! तुमने कारागृह को महल समझ रखा है। तो तुम छोड़ोगे कैसे! पहले बाहर से थोड़े हाथ खाली करने होंगे।

"तिनके और सोने में, शत्रु और मित्र में समभाव रखना सामायिक है।"
समभावो सामइयं, तणकंचण-सत्तुमित्तविसओ त्ति।
निरभिस्संगं चित्तं, उचियपवित्तिप्पहाणं च।।
"राग-द्वेष एवं अभिष्वंग रहित उचित प्रवृत्ति प्रधान चित्त को सामायिक कहते हैं।"
"राग-द्वेष से रहित।" न कोई अपना, न कोई पराया, न किसी से मोह, न किसी से क्रोध।
"राग-द्वेष रहित, अभिष्वंग रहित उचित प्रवृत्ति प्रधान चित्त को सामायिक कहते हैं।" बाहर नहीं जा रहा जो चित्त, भीतर जा रहा जो चित्त, उसे सामायिक कहते हैं। ध्यान रखना, यहां महावीर के सूत्र का बड़ा महत्वपूर्ण शब्द है--प्रवृत्ति प्रधान चित्त। एक तो प्रवृत्ति है बाहर की तरफ-- सांसारिक, वह भी प्रवृत्ति है। महावीर कहते हैं, भीतर की तरफ आना भी प्रवृत्ति है। वह भी यात्रा है। वहां भी बल चाहिए। वहां भी विधायक बल चाहिए।
तो महावीर भीतर आने को निवृत्ति नहीं कहते; उसे भी प्रवृत्ति कहते हैं। बाहर जाना प्रवृत्ति है, भीतर आना प्रवृत्ति है। हां, जो भीतर पहुंच गया, वह निवृत्ति को उपलब्ध होता है। तो संन्यासी निवृत्त नहीं है, प्रवृत्त ही है। नयी प्रवृत्ति है उसकी, बाहर की तरफ नहीं है। तीर उसका बाहर की तरफ नहीं जा रहा है, भीतर की तरफ जा रहा है, लेकिन तीर अभी चढ़ा है, प्रत्यंचा अभी खिंची है। सिद्ध निवृत्त है। जो पहुंच गया, जो कहीं भी नहीं जा रहा है, जो अपने घर आ गया, जिसने अपने केंद्र को पा लिया, वह निवृत्त है। इसलिए साधारणतः हम संन्यासियों को निवृत्त कहते हैं, वह गलत है। संन्यासी निवृत्त नहीं है। संन्यासी ने नई प्रवृत्ति खोजी। ऊर्जा का नया प्रवाह खोजा। नयी यात्रा, नयी तीर्थयात्रा, पैरों के लिए नया लक्ष्य, नया साध्य, नये क्षितिज। धन की आकांक्षा नहीं है अब, पद की आकांक्षा नहीं है अब, अब तो स्वयं को पाने की आकांक्षा है, स्वयं को पाने की अभीप्सा है, लेकिन वह भी अभीप्सा है। इसलिए महावीर कहते हैं, जब तक सिद्ध न हो जाओ, तब तक रुकना मत, चलते ही जाना। जब ऐसी घड़ी आ जाए कि बाहर तो छूट ही जाए, भीतर भी छूट जाए--क्योंकि बाहर और भीतर साथ-साथ जुड़े हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जब बाहर पूरी तरह छूटेगा, तो भीतर भी पूरी तरह छूटेगा; और जब तक भीतर का कुछ बचा है तब तक बाहर का भी कुछ दबे-छिपे बचा रहेगा--जब दोनों ही छूट जाएं, सिक्का हाथ से गिर जाए।
महावीर ने आत्मा के तीन रूप कहे--बहिरात्माः संसार की तरफ प्रवृत्ति; अंतरात्मा अपनी तरफ प्रवृत्ति; और परमात्माः प्रवृत्तिशून्यता, निवृत्ति। केवल परमात्मा निवृत्त है। महावीर को उनके भक्तों ने भगवान कहा है। महावीर के दर्शनशास्त्र में स्रष्टा की तरह भगवान के लिए कोई जगह नहीं है। सृष्टि अनादि है, किसी ने कभी बनायी नहीं। सृष्टि का कोई मालिक, कोई परमात्मा, कोई नियंता नहीं है। फिर महावीर के भक्तों ने महावीर को भगवान कहा, और महावीर ने कभी इनकार भी नहीं किया किसी को कि मुझे भगवान मत कहो। भगवान को इनकार करके फिर उन्होंने कैसे स्वीकार कर लिया स्वयं को भगवान पुकारे जाना?
महावीर के विचार-जगत में भगवान का दूसरा ही अर्थ है। उसका कोई संबंध सृष्टि के बनाने से नहीं है। नियंत्रण से नहीं है। भगवान का अर्थ है, निवृत्ति की परम दशा। जिसकी सब प्रवृत्ति जाती रही। धन तो छोड़ा ही, ध्यान भी छोड़ा। पद तो छोड़े ही, बाहर की दौड़ तो छोड़ी ही, भीतर की दौड़ भी गयी--दौड़ ही गयी। जो सब भांति परम अवस्था में लीन हो गया--सिद्धावस्था; अब कहीं जाने को न रहा, कुछ पाने को न रहा, जो पाना था पा लिया, जहां जाना था पहुंच गये, जो अपने स्वभाव में लीन हो गया, स्वभाव की इस परम दशा को महावीर ने कहा, भगवान, भगवत्ता। और यही निवृत्ति की दशा है।
साधारणतः हम बाहर का चिंतन करते हैं। भीतर का चिंतन तो हमने किया नहीं इसलिए हमें यह तो समझ के ही बाहर मालूम होगा कि ऐसी भी कोई घड़ी आती है, जहां भीतर का चिंतन भी छूट जाता है। हमसे तो बाहर का चिंतन भी नहीं छूटा। हमसे तो अभी मिट्टी-पत्थर नहीं छूटे, हमसे ध्यान कैसे छूटेगा? हमसे धन

नहीं छूटता, ध्यान कैसे छूटेगा? ध्यान तो हमें पता ही नहीं, अभी मिला ही नहीं, छूटने की तो बात ही दूर है! लेकिन ध्यान की परिपूर्णता तभी है, जब ध्यान भी व्यर्थ हो जाता है।
ध्यान तभी तक अर्थपूर्ण है, जब तक प्रवृत्ति शेष है। ध्यान औषधि है। अंग्रेजी का शब्द ध्यान के लिए है--मेडिटेशन। वह शब्द बड़ा अर्थपूर्ण है। उसकी मूल धातु वही है जो अंग्रेजी के दूसरे शब्द मेडिसिन की है। ध्यान औषधि है। बीमार जब तक है, तब तक औषधि की जरूरत है। जब स्वस्थ हो गये, तो औषधि छूट जाती है। अगर स्वस्थ होने के बाद भी औषधि जारी रही, तो औषधि खुद ही रोग हो गयी, उपाधि हो गयी। छूटनी ही चाहिए। ध्यान तो छुड़ाने को है, कि बाहर की दौड़ छूट जाए। इसलिए भीतर की यात्रा है। जब बाहर की दौड़ बिल्कुल छूट गयी, तो भीतर की यात्रा किसलिए? बीमारी ही चली गयी, औषधि भी चली जाती है।
तो इसे ख्याल रखना। ध्यान की अंतिम अवस्था जिसको पतंजलि ने समाधि कहा है, उस अंतिम अवस्था में ध्यान का भी त्याग हो जाता है, परित्याग हो जाता है। और संन्यास की अंतिम अवस्था में संन्यास भी व्यर्थ हो जाता है। वीतरागता की अंतिम अवस्था में वीतरागता भी व्यर्थ हो जाती है। यह सब साधन है। साध्य के आते ही साधन छूट जाते हैं।
दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक तो वे हैं, जो कहते हैं अगर ध्यान छोड़ना ही है, तो करें क्यों? एक वे, जो कहते हैं अगर ध्यान किया, इतनी मुश्किल से साधा, सम्हाला, जन्मों की तपश्चर्या से, तो छोड़ेंगे नहीं। दोनों गलत हैं। ये ऐसे ही लोग हैं जो कहते हैं, हम सीढ़ी चढ़ेंगे तो छोड़ेंंगे नहीं। लेकिन सीढ़ी छोड़ने के लिए है। चढ़ते जाओ, छोड़ते जाओ। और अगर सीढ़ी पर रुक गये, तो छत पर न पहुंचोगे। सीढ़ी के आखिरी पैर पर भी रुक गये, तो भी छत पर पहुंचने से रुक गये। छोड़नी ही पड़ेगी सीढ़ी। सीढ़ी गुजर जाने को है। लेकिन दूसरे हैं तर्क से भरे लोग, वे कहते हैं, अगर छोड़ना ही है, तो कौन झंझट उठाये चढ़ने की! तो हम यहां नीचे ही भले हैं। अभी ही छोड़े हुए हैं। कृष्णमूर्ति निरंतर अपने शिष्यों को कहते रहे हैं, ध्यान व्यर्थ है। ठीक कहते हैं, सौ प्रतिशत ठीक कहते हैं। लेकिन शायद जिनसे कहते हैं, वे ठीक नहीं हैं। जिनसे कहते हैं, उनकी समझ के बाहर है यह बात। पहले तो उन्हें ध्यान करवाओ, पहले तो उन्हें ध्यान पकड़ाओ, पहले तो बाहर से छुड़ाओ, भीतर की यात्रा पर चलाओ, भीतर की प्रवृत्ति दो, फिर एक दिन जब भीतर की प्रवृत्ति सध जाए, रमने लगें, बाहर का स्मरण भूल जाए और भीतर का रस आने लगे, तब उनको कहना, चौंकाना कि अब इसे भी छोड़ो। क्योंकि यह भी अभी बाहर है। भीतर होकर भी बाहर है। तुम इससे भी ज्यादा भीतर हो। तुम सिर्फ साक्षीभाव हो। जिसको पता चल रहा है ध्यान का आनंद, वही हो तुम। ध्यान तुम नहीं हो।
कोई संभोग में सुख ले रहा है। उसकी भूल क्या है? वह साक्षी को भोक्ता समझ रहा है। फिर कोई समाधि में सुख लेने लगा। उसकी भूल क्या है? वही भूल है। भूल वही की वही है। वह अब फिर साक्षी को भोक्ता समझ रहा है। संभोग हो कि समाधि, तुम दोनों के पार हो। तुम कुछ ऐसे हो कि तुम सदा पार ही हो। कुछ भी घटे--धन मिले कि ध्यान मिले, पद मिले कि परमात्मा मिले, तुम सदा पार हो। तुम्हारा होना ट्रांसेंडेंटल है, भावातीत है, विचारातीत है। तुम साक्षी हो। तुम जो देखते हो, उसी से अन्य हो जाते हो। जो दृश्य में बन जाता है तुम्हारे लिए, तुम उसी के द्रष्टा हो जाते हो।
इसलिए कोई भी अनुभव तुम्हारा स्वभाव नहीं। सब अनुभव तुम्हारे लिए दृश्य हैं। आकाश में चमकती बिजली देखो, या आंख बंद करके ध्यान की गहराइयों में कौंधते हुए प्रकाश देखो, बराबर है। बाहर खिले फूल देखो, कि भीतर ध्यान की अंतिम गहराइयों में सहस्रार का खिलता कमल देखो, एक ही बात है। लेकिन, मैं यह नहीं कह रहा हूं कि उस सहस्रार को पाना मत। मैं कह रहा हूं, बाहर के फूल से तो भीतर का फूल बड़ा कीमती है। चलो बाहर का फूल इसी आशा में छोड़ो कि भीतर का फूल खिले। जिस दिन भीतर का फूल खिलेगा, उस दिन तुमसे आखिरी बात भी कही जा सकेगी कि अब इसे भी छोड़ो। अभी और भी एक है छिपा--उसके भी पार--वही तुम हो। जो सदा पार है, जिसका स्वभाव ही पार होना है, वही तुम हो।

तो महावीर कहते हैं प्रवृत्ति--ध्यान को भी, सामायिक को भी। निवृत्ति
तो तब होगी जब ध्यान का भी त्याग हो जाएगा। इसका अर्थ हुआ, संसारी तो प्रवृत्त है ही, संन्यासी भी प्रवृत्त है। दिशा अलग-अलग, लक्ष्य भिन्न-भिन्न, पर दोनों ऊर्जा के अश्व पर सवार हैं, दोनों कहीं जा रहे हैं, दोनों का कोई लक्ष्य है। तीर प्रत्यंचा पर चढ़ा है, अभी तरकस में नहीं पहुंचा। हम तो बाहर की ही सोच-सोचकर मरे जाते हैं। महावीर कहते हैं, एक दिन भीतर सोचना भी छोड़ देना। हम तो इंद्र्रियों के विषय-सुख सोच-सोचकर विदग्ध होते रहते हैं--
आज की रात और बाकी है
कल तो जाना ही है सफर पे मुझे
जिंदगी मुंतजिर है मुंह फाड़े
जिंदगी, खको-खून में लथड़ी है
आंख में शोला-हाय तुंद लिये
दो घड़ी खुद को शादमां कर लें
आज की रात और बाकी है
कल तो जाना ही है सफर पे मुझे
मरते-मरते तक आदमी सोचता है, कल तो जाना है।
दो घड़ी खुद को शादमां कर लें
थोड़ा और मजा ले लें, थोड़ा और सुख लूट लें, थोड़ी देर और सपनों में खो लें, थोड़ी देर और इस रस की भ्रांति में अपने को भरमा लें, थोड़ी देर और माया का राग-रंग चले।
आज की रात और बाकी है
कल तो जाना ही है सफर पे मुझे
दो घड़ी खुद को शादमां कर लें
आज की रात और बाकी है
एक पैमाना-ए-मये-सरजोश
लुत्फे-गुफ्तार, गर्मी-ए-आगोश बोसे--इस दर्जा आतशीं बोसे
फूंक डालें जो मेरी किश्ते-होश
रूह मखवस्ता है तपां कर लें
आज की रात और बाकी है
एक पैमाना-ए-मये सरजोश
एक और तेज शराब का प्याला पी लें।
लुत्फे-गुफ्तार गर्मी-ए-आगोश
और थोड़ी देर प्रिय से बातें कर लें, आलिंगन कर लें।
बोसे--इस दर्जा आतशीं बोसे
और गर्म चुंबन--आग्नेय चुंबन। और थोड़ी देर अपने को गरमा लें।
फूंक डालें जो मेरी किश्ते-होश
और जो मेरी चेतना की फसल को जला डालें, ऐसे गर्म चुंबन और थोड़ी देर सही!
रूह मखवस्ता है तपां कर लें
और आत्मा ठंडी पड़ी जाती है, थोड़ी गरमा लें।
आज की रात और बाकी है
कल तो जाना ही है सफर पे मुझे
मरते-मरते दम तक आदमी के मन में ऐसा ही चिंतन चलता है।
क्षणभंगुर जिंदगी को देखकर आदमी जागता नहीं, क्षणभंगुर जिंदगी को देखकर और जोर से पकड़ लेता है। वह कहता है, कल तो छूट जाएगा, तो आज भोग लें। कल तो छीन लिया जाएगा, तो आज भोग लें। उसे यह ख्याल नहीं आता कि जो छिन ही जाएगा, वह छिना ही हुआ है। वह छिन ही चुका है। वह कभी मिला ही नहीं। वह बस सपना है। जो टूट जाएगा, वह सपना है। थोड़ी देर और आंख बंद करके देख लो, क्या सार है! जिनके पास थोड़ी भी बुद्धिमत्ता है, वे कहेंगे जो सुबह टूट जाएगा, वह हमने अभी छोड़ा। जो कल छूट जाएगा, वह हमने आज छोड़ा। इसीलिए तो ज्ञानी जीते-जी मर जाता है। वह कहता है, जब कल मरना है, हम आज मर गये। अब जीने में

अर्थ न रहा। संन्यास का यही अर्थ है--जीते-जी मर जाना। जान लेना कि ठीक है, मौत तो होगी, तो हो गयी। अब हम ऐसे जीएंगे जैसे हम नहीं हैं। उठेंगे, बैठेंगे, चलेंगे, लेकिन वह जो होने का दंभ था, अब न रखेंगे। वह मौत तो मिटायेगी ही, हम ही क्यों न मिटा दें?
और ध्यान रखना, जो स्वयं उस दंभ को मिटा देता है, उसके सामने मौत हार जाती है। फिर मौत को मिटाने को कुछ बचता ही नहीं। इसलिए मौत संसारी को मारती है, संन्यासी को नहीं। संन्यासी अमर है। संसारी मरता है, हजार बार मरता है। संन्यासी एक बार मरता है। संसारी हजार बार मरता है, जबर्दस्ती मारा जाता है। संन्यासी स्वेच्छा से मरता है, एक बार स्वयं ही जीवन को उतारकर रख देता है कि हो गयी बात, ठीक है, जो कल छिनना है वह मैं स्वयं छोड़े देता हूं। संन्यास स्वेच्छा से स्वीकार की गयी मृत्यु है।
"जो वचन-उच्चारण की क्रिया का परित्याग करके वीतराग भाव से आत्मा का ध्यान करता है, उसको परम समाधि या सामायिक होती है।"
यह सूत्र बहुत महत्वपूर्ण है।
"जो वचन-उच्चारण की क्रिया का परित्याग करके।"
महावीर ने मौन पर बहुत जोर दिया है। ऐसा किसी ने इतना जोर नहीं दिया मौन पर। जोर सभी ने दिया है, मौन इतना महत्वपूर्ण है कि कोई भी उसे छोड़ तो नहीं सकता, लेकिन जैसा जोर महावीर ने दिया है, वैसा किसी ने नहीं दिया। महावीर ने मौन को साधना का केंद्र बनाया। इसलिए अपने संन्यासी को मुनि कहा। बुद्ध ने अपने संन्यासी को भिक्षु कहा। हिंदुओं ने अपने संन्यासी को स्वामी कहा। अलग-अलग जोर है। हिंदुओं ने स्वामी कहा, क्योंकि उन्होंने कहा कि जो आत्मा को जानने लगा, वही अपना मालिक है--स्वामी। बुद्ध ने भिक्षु कहा, उन्होंने कहा जिसने अहंकार को पूरा गिरा दिया, इतना गिरा दिया कि कहा कि मैं भिक्षु हूं, कैसा स्वामी! जिसने अस्मिता जरा-भी न रखी, अहंकार जरा- भी न रखा, भिक्षापात्र लेकर खड़ा हो गया। जिसने सम्राट होने की घोषणा न की। जिसने सब घोषणाएं वापिस ले लीं, जिसने कहा मैं कुछ भी नहीं हूं। यही अर्थ है भिक्षु का।
महावीर ने अपने संन्यासी को मुनि कहा। मुनि का अर्थ है, जो मौन हो गया। जिसने वचन-उच्चारण की क्रिया का परित्याग किया। क्यों महावीर ने इतना जोर दिया मौन पर, इसे ख्याल में लें। मनुष्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात बातचीत है, भाषा है, बोलने की क्षमता है। पशु हैं, पक्षी हैं, पौधे हैं, हैं तो, पर भाषा नहीं है। बोल नहीं सकते। इसलिए पशु-पक्षी-पौधे अकेले- अकेले हैं, उनका कोई समाज नहीं है। समाज के लिए भाषा जरूरी है। आदमी का समाज है। आदमी सामाजिक प्राणी है, क्योंकि आदमी बोल सकता है। बोले बिना जुड़ोगे कैसे किसी से? जब बोलते हो, तभी सेतु फैलते हैं और जोड़ होता है। तो भाषा का अर्थ हुआ, व्यक्ति-व्यक्ति के बीच जोड़नेवाले सेतु। भाषा मनुष्य को समाज बनाती है। समाज देती है। समुदाय देती है।
महावीर ने कहा, मौन हो जाओ। अर्थ हुआ, टूट जाओ, सारे सेतु तोड़ दो दूसरों से। बोलने के ही तो सेतु हैं, बोलने के द्वारा जुड़े हो, तोड़ दो बोलने के सेतु, अकेले हो जाओ। बोलना छोड़ते ही आदमी अकेला हो जाता है, चाहे बाजार में खड़ा हो। अगर बोलना जारी रहे, तो पहाड़ पर बैठा भी अकेला नहीं है।
वहां भी किसी से, कल्पना के मित्र से, शत्रु से बात करता रहेगा। वहां भी समाज बना रहेगा। कल्पना का ही सही, लेकिन समाज रहेगा। आदमी अकेला न होगा। बीच बाजार में आदमी मौन हो जाए, अचानक उसी क्षण मौन होते ही समाज खो गया। भीड़ के कारण समाज नहीं है, भाषा के कारण समाज है।
तो महावीर ने कहा, जंगल में भागने से क्या सार होगा! अपने में भाग जाओ, छोड़ दो दूसरे तक जाना--भाषा से ही हम दूसरे तक जाते हैं--तोड़ दो भाषा, अपने में लीन हो जाओ। महावीर बारह वर्ष मौन रहे। उन बारह वर्षों में उन्होंने क्या किया? उन्होंने सब भांति अपने को समाज से मुक्त किया। वे परम विद्रोही थे। समाज से सब भांति उन्होंने सब तरह के संबंध, सब धागे तोड़ डाले। उन्होंने सब तरह से अपने को समाज से अलग किया, क्योंकि उन्होंने पाया कि जितने तुम समाज से जुड़े हो, उतने ही अपने से टूट जाते हो।

स्वाभाविक गणित था। समाज से टूट जाओ, अपने से जुड़ जाओगे। फिर महावीर लौटे, समाज में लौटे, समझाने आये, बोले, लेकिन बारह वर्ष के मौन के बाद बोले। अब समाज से जुड़ने का कोई उपाय न था। अब उन्होंने सब भांति अपनी निपटता, एकांत को उपलब्ध कर लिया था। सब भांति कैवल्य को जान लिया था, स्वयं के अकेलेपन को पहचान लिया था। फिर आये। अब कोई डर न था, अब बोले। अब भाषा केवल उपयोग की बात रह गयी। एक साधनमात्र। तुम्हारे लिए भाषा केवल साधन नहीं है। भाषा तुम्हारी व्यस्तता है। बिना बोले तुम घबड़ाने लगते हो। अगर कोई बात करने को न मिले, तो बेचैन होने लगते हो।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अगर तीन सप्ताह किसी आदमी को एकांत में बंद
कर दिया जाए, तो पहले सप्ताह तो वह भीतर-भीतर बात करता है; दूसरे सप्ताह बोल-बोलकर बात करने लगता है--अकेले में; और तीसरे सप्ताह तो वह बिल्कुल ख्याल ही भूल जाता है कि अकेला है। वह अपनी प्रतिमाएं कल्पना की खड़ी कर लेता है, उनसे बातचीत में संलग्न हो जाता है।
कम्युनिस्ट मुल्कों में जिन कैदियों से उन्हें बात उगलवानी होती है, उनको वे सताते नहीं, उनको वे सिर्फ एकांत में डाल देते हैं, अंधेरी कोठरियों में डाल देते हैं। उनको पड़े रहने देते हैं अकेले में। टेप लगे रहते हैं उनके आसपास, वे कुछ भी बोलें तो वह टेप में संगृहीत हो जाता है। तीन-चार सप्ताह के बाद जो वह उगलवाना चाहते थे, वह खुद ही उगलने लगते हैं। एक सीमा है!
तुमने कभी ख्याल किया? कोई तुमसे गुप्त बात कह दे, कहे किसी को कहना मत, बस तुम मुश्किल में पड़े। उसका यह कहना कि किसी को कहना मत, कहने के लिए बड़ा उकसावा बन जाएगा। बड़ी उत्तेजना पैदा हो जाएगी। आदमी लेता है, देता है, भाषा में। भीतर छिपाकर रखना बहुत कठिन है।
मैंने सुना है, एक सूफी फकीर के पास एक युवक आया। और उस युवक ने कहा कि मैंने सुना है कि आपको जीवन का परम रहस्य मिल गया, आपके गुरु ने आपको कुंजी दे दी है, उस गुप्त-कुंजी को मुझे भी दे दें। उस सूफी फकीर ने कहा, ठीक! लेकिन तुम इसे गुप्त रख सकोगे? किसी को बताना मत! उसने कहा कसम खाता हूं आपकी--पैर छुए--कभी किसी को न बताऊंगा। वह सूफी बोला फिर ठीक, मैंने भी ऐसी ही कसम खायी है अपने गुरु के सामने। अब बोलो मैं क्या करूं? अगर तुम गुप्त रख सकते हो जीवनभर, तो मैं भी रख सकता हूं। और अगर तुम सच पूछते हो, तो मेरे गुरु ने भी मुझे बतायी नहीं, क्योंकि उसने भी अपने गुरु के सामने ऐसी ही कसम खायी थी। सिर्फ अफवाह है, परेशान मत होओ।
गुप्त बात गुप्त रखी नहीं जा सकती। आदमी बोझिल अनुभव करने लगता है।
जो बाहर से आया है वह बाहर लौटाना पड़ता है। जब तुम बोलते हो, तुमने ख्याल किया, तुम वही बोलते हो जो बाहर से तुम्हारे भीतर आ गया है। वह भारी होने लगता है। सुबह अखबार पढ़ लिया, फिर वही अखबार तुम दूसरों से बोलने लगे। जब तक तुम किसी को बता न दो तुमने अखबार में क्या पढ़ा है, तब तक तुम्हें चैन नहीं। यह विजातीय तत्व है जो बाहर से आ जाता है, इसे बाहर निकालना पड़ता है। यह तुम्हारी प्रकृति को विकृत करता है। बाहर निकलते ही से तुम हलके हो जाते हो। इसीलिए तो किसी से अपनी बातें कहकर आदमी हलकापन अनुभव करता है। रो लिया दुखड़ा, हो गये हलके।
पश्चिम में तो अब कोई किसी की सुनने को राजी नहीं। किसके पास फुर्सत है! तो व्यावसायिक सुननेवाले पैदा हो गये हैं, उन्हीं का नाम मनोवैज्ञानिक है। वे व्यावसायिक हैं, उनका कोई और काम नहीं है। उनका काम यह है कि वे ध्यानपूर्वक तुम्हारी बात सुनते हैं। सुनते भी हैं या नहीं, यह भी कुछ पक्का नहीं है, लेकिन ध्यानपूर्वक जतलाते हैं कि सुन रहे हैं। आदमी घंटाभर अपनी बकवास उन्हें सुनाकर हलका अनुभव करता है। और इसके लिए पैसे भी देता है। महंगा धंधा है। काफी पैसे देने पड़ते हैं। लोग वर्षों तक मनोचिकित्सा में रहते हैं। एक चिकित्सक को छोड़ फिर दूसरे को पकड़ लेते हैं। क्योंकि एक बार वह जो राहत मिलती है किसी को, ध्यानपूर्वक कोई तुम्हारी सुन ले, तो बड़ा आनंद आता है। तुम हलके हो जाते हो।
महावीर ने कहा, भाषा इस तरह अगर व्यस्तता का आधार बन गयी हो तो रोग है।
तो तुम चुप हो जाना।

"जो वचन-उच्चारण की क्रिया का परित्याग करके वीतराग भाव से आत्मा का ध्यान करता है, उसको परम समाधि या सामायिक होती है।"
यह बात ख्याल में रखने-जैसी है।
कम से कम दिन में दो-चार घंटे तो मौन में बिताओ। नियम ही बना लो कि चौबीस घंटे में कम से कम चार घंटे तुम अपने लिए दे दोगे। बाकी दे दो बीस घंटे संसार के लिए, चार घंटे अपने लिए बचा लो। चलो चार घंटे बहुत लगें, घंटे से शुरू करो। लेकिन एक घंटा अपने लिए बचा लो। उस एक घंटे में फिर तुम बिल्कुल चुप हो जाओ। पहले-पहले कठिन होगा। ओंठ बंद कर लेना तो आसान है, भीतर की तरंगें बंद करना मुश्किल होगा। लेकिन साक्षीभाव से उन तरंगों को देखते रहो... देखते रहो... देखते रहो। धीरे-धीरे तुम पाओगे, गति विचारों की कम हो गयी। धीरे-धीरे तुम पाओगे, कभी-कभी बीच-बीच में दो विचार के अंतराल आने लगा, खाली जगह आने लगी, उसी खाली जगह में से रस बहेगा। उसी खाली जगह में से तुम्हें आत्मा की झलक पहली दफे मिलेगी। यह झलक ऐसे ही होगी जैसे वर्षा में बादल घिरे हों और कभी-कभी सूरज की झलक मिल जाए क्षणभर को, किरणों की छटा छा जाए, फिर सूरज ढक जाए। लेकिन एक बार झलक आने लगे, एक दफे वहां भीतर की मुरली का स्वर तुम्हें सुनायी पड़ने लगे, तो जीवन में जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, वह घट गया।
साज-शृंगार?
छोड़ दौड़ो सब साज-सिंगार,
रास की मुरली रही पुकार।
गयी सहसा किस रस से भींग
वकुल वन में कोकिल की तान? चांदनी में उमड़ी सब ओर
कहां के मद की मधुर उफान? गिरा चाहती भूमि पर इंदु शिथिलवसना रजनी के संग;
सिहरते पग सकता न संभाल
कुसुम-कलियों पर स्वयं अनंग! ठगी-सी रूठी नयन के पास
लिये अंजन उंगली सुकुमार, अचानक लगे नाचने मर्म,
रास की मुरली उठी पुकार
साज-शृंगार?
छोड़ दौड़ो सब साज-सिंगार,
रास की मुरली रही पुकार। खोल बांहें आलिंगन हेतु
खड़ा संगम पर प्राणाधार;
तुम्हें कंकन-कुंकुम का मोह, और यह मुरली रही पुकार।
सनातन महानंद में आज
बांसुरी-कंकन एकाकार।
बहा जा रहा अचेतन विश्व,
रास की मुरली रही पुकार।
साज-शृंगार?
छोड़ दौड़ो सब साज-सिंगार,
रास की मुरली रही पुकार।
एक बार भी तुम्हें भीतर की किरणों का बोध हो जाए--सुन पड़ी मुरली, रास
का निमंत्रण मिल गया। उस परम प्यारे की सुध आ गयी। वह तुम्हारे भीतर ही बैठा है। वह तुम्हें सदा से ही पुकारता रहा है। लेकिन तुम इतने व्यस्त हो दूसरों के साथ भाषा में, बोलने में, झगड़ने में, मित्रता-शत्रुता बनाने में; तुम इतने व्यस्त हो बाहर कि तुम्हारे भीतर अंतर्तम से उठी मुरली की पुकार तुम्हें सुनायी नहीं पड़ती।

महावीर ने कहा, मौन हो जाओ; तो तुम्हें अपने संगीत का पहली दफा अनुभव हो। चुप हो जाओ, उस चुप्पी में ही, उस अनाहत का नाद शुरू होगा। वह ध्वनिहीन ध्वनि, वह स्वरहीन स्वर तुम्हारे भीतर से उठने लगेगा। तुम्हारी अतल गहराइयों से, तुम्हारी चेतना की परम गहराइयों से तुम्हारे पास तक पहुंचने लगेगा। लेकिन, मौन उसकी अनिवार्य शर्त है। और मौन का अर्थ है ओंठ से मौन, कंठ से मौन, भीतर विचार से मौन--धीरे-धीरे सब तलों पर, सब पर्तों पर मौन। तब तुम मुनि हुए। मुनि का कोई संबंध बाह्य-आचरण से नहीं है। मुनि का संबंध उस अंतसदशा से है, मौन की दशा से है। और जो मौन को उपलब्ध हुआ, वही बोलने का हकदार है। जो अभी मौन को ही नहीं जाना, वह तो बाहर के ही कचरे को भीतर लेता है और बाहर फेंक देता है। उसका बोलना तो वमन जैसा है। जो मौन को उपलब्ध हुआ, उसके पास कुछ देने को है। उसके पास कुछ भरा है, जो बहना चाहता है, बंटना चाहता है। उसके पास कुछ आनंद की संपदा है, जो वह तुम्हारी झोली में डाल दे सकता है।
महावीर बारह वर्ष मौन रहे। जीसस जब भी बोलते, तो बोलने के बाद कुछ दिनों के लिए पहाड़ पर चले जाते। वहां चुप हो जाते। जब भी कोई महत्वपूर्ण बात बोलते तब तत्क्षण वे पहाड़ चले जाते। अपने मित्र, संग-साथियों को भी छोड़ देते, कहते, अभी कोई मत आना। अभी मुझे जाने दो अकेले में। उस अकेले में जीसस क्या करते? मुहम्मद पर जब पहली दफा कुरान की आयत--पहली आयत उतरी, तो वे चालीस दिन से मौन थे। उसी मौन में पहली दफे कुरान उतरा।
जो भी मौन में उतरा है वही शास्त्र है। मौन में जो नहीं उतरा, वह शास्त्र नहीं। किताब होगी। जो मौन में कहा गया है, मौन से कहा गया है, वही उपदेश है। जो शब्द मौन में डूबे हुए नहीं आये, मौन में पगे हुए नहीं आये, वे सब शब्द रुग्ण हैं। स्वस्थ तो वे ही शब्द हैं जो मौन में पगे हुए आते हैं। और अगर तुम ध्यान से सुनोगे, तो तुम तत्क्षण पहचान लोगे कि यह शब्द मौन में पगा आया है, या नहीं आया है? तुम्हारा हृदय तत्क्षण गवाही दे सकेगा। क्योंकि जितना शून्य लेकर शब्द आता है, अगर तुम शांतिपूर्वक सुनो, तो शब्द चाहे तुम भूल भी जाओ, शून्य सदा के लिए तुम्हारा हो जाता है। शब्द चाहे तुम्हारे स्मृति में रहे या न रहे, शून्य तुम्हारे प्राणों पर फैल जाता है। तुम्हें नया कर जाता है, ताजा कर जाता है।
ध्यान में दर्शन है। मौन में दर्शन है। चुप्पी में साक्षात्कार है।
देख सकता हूं जो आंखों से वो काफी है "म.जा.ज"
अहले-इर्फां की नवाजिश मुझे मंजूर नहीं
ठीक कहा है म.जा.ज ने। दार्शनिकों की सेवा करने की मेरी इच्छा नहीं। दार्शनिकों का सत्संग करने की मेरी कोई इच्छा नहीं।
देख सकता हूं जो आंखों से वो काफी है "म.जा.ज"
जो मैं अपनी आंख से देख सकता हूं, वह पर्याप्त है। किसी और से क्या पूछना है!
किसी और से क्या पूछने जाना है! आंख तुम्हारे पास है, लेकिन तुम्हारी आंख इतने शब्दों से भरी है, इतने विचारों से ढंकी है, जैसे दर्पण पर धूल जम गयी हो, दर्पण का पता ही न चलता हो। झाड़ दो धूल, तुम्हारा दर्पण फिर झलकायेगा। झाड़ दो आंख से विचारों की धूल, झाड़ दो मन से विचारों की धूल, तुम प्रतिबिंब दोगे परमात्मा का। तुम्हारा दर्पण खोया नहीं है, सिर्फ ढंक गया है धूल में। और धूल कितना ही दर्पण को ढांक ले, नष्ट थोड़े ही कर पाती है! इसलिए जब तक पोंछा नहीं है तभी तक परेशानी है। पोंछते ही तुम चकित हो जाओगे। जन्मों-जन्मों के अंधकार को क्षण में पोंछा जा सकता है। और जन्मों- जन्मों की जमी धूल को क्षण में बुहारा जा सकता है। कुछ ऐसा नहीं है कि तुम्हें जनम-जनम तक सफाई करनी होगी। सफाई तो एक क्षण में भी हो सकती है। सिर्फ त्वरा चाहिए। प्रवृत्ति चाहिए अंतर्यात्रा की।
"ध्यान में लीन साधु सब दोषों का परित्याग करता है। इसलिए ध्यान ही समस्त अतिचारों का, दोषों का प्रतिक्रमण है।"
महावीर कहते हैं, और सब ठीक है, लेकिन वास्तविक क्रांति ध्यान में ही घटती है। समस्त अतिचारों का, सब दोषों का परित्याग ध्यान में ही होता है।
क्यों ध्यान में परित्याग होता है? महावीर नहीं कहते हैं, करुणा साधो।

महावीर नहीं कहते, दया साधो। महावीर नहीं कहते, दान साधो, त्याग साधो। महावीर कहते हैं, ध्यान साधो। क्यों? क्योंकि दान करोगे, तो पहले एक कर्ता का भाव था कि मेरे पास धन है, दान करोगे, दूसरे कर्ता का भाव पैदा हो जाएगा कि मेरे पास त्याग है, मैं दानी हूं। क्रोध किया था, तो एक अहंकार था, करुणा करोगे तो दूसरा अहंकार हो जाएगा। दूसरा अहंकार स्वर्णिम है। पहला अहंकार सस्ता था। लेकिन हैं तो दोनों ही अहंकार।
महावीर कहते हैं, ध्यान। ध्यान का अर्थ है कि तुम्हें पता चले, तुम कर्ता ही नहीं हो। न क्रोध के न करुणा के, न लोभ के न दान के। तुम अकर्ता हो, साक्षी हो।
"ध्यान में लीन साधु सब दोषों का परित्याग करता है।" परित्याग हो जाता है। "ध्यान ही समस्त अतिचारों का, दोषों का प्रतिक्रमण है।" झाणणिलीणो साहू, परिचागं कुणइ सव्वदोसाणं।
तम्हा दु झाणमेव हि, सव्वऽदिचारस्स पडिक्कमणं।।
ध्यान सारभूत है। जो निज को निज-भाव से देखता है।
"जो निज-भाव को नहीं छोड़ता और किसी भी पर-भाव को ग्रहण नहीं करता, तथा
जो सबका ज्ञाता-द्रष्टा है, वह परम-तत्व मैं ही हूं। आत्मध्यान में लीन साधु ऐसा चिंतन करता, ऐसा अनुभव करता है।"
"जो निज-भाव को नहीं छोड़ता।" ध्यान का अर्थ है निजता में आ जाना; अपने में आ जाना। बाहर से सब नाते छोड़ देना। बाहर से सब नाते तोड़ देना। इसके लिए जरूरी नहीं है कि तुम घर से भागो। क्योंकि यह बात तो आंतरिक है। घर से भागना भी बाहर से ही जुड़े रहना है। घर तो बाहर है, न पकड़ो, न भागो। धन तो बाहर है, न पकड़ो, न छोड़ो। सिर्फ एक बात स्मरण रखो कि यह मैं नहीं हूं। यह शरीर मैं नहीं। यह घर मैं नहीं। यह धन मैं नहीं। यह मन मैं नहीं। इतना भर स्मरण रखो। इतना ही याद रहे कि मैं सिर्फ साक्षी हूं, द्रष्टा हूं, देखनेवाला हूं।
णियभावं ण वि मुच्चइ, परभावं णेव गेण्हए केइं।
जाणदि पस्सदि सव्वं, सोऽहं इदि चिंतए णाणी।।
पर-भाव को छोड़कर निज-भाव को नहीं छोड़ता। सबका ज्ञाता-द्रष्टा हूं, वह परम तत्व मैं ही हूं, ऐसी चिंतन-धारा जिसमें सतत बहती रहती है, आत्मध्यान में लीन ज्ञानी ऐसी परम दशा को जब उपलब्ध होता है, तो घटता है--असंभव घटता है, आनंद घटता है, सच्चिदानंद घटता है। जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते वह भी घटता है। जिसका हमें कभी कोई स्वाद नहीं मिला, यद्यपि हम उसी के लिए तड़फ रहे हैं, उसी के लिए भाग रहे हैं, दौड़ रहे हैं; अनेक-अनेक दिशाओं में उसी को खोज रहे हैं जो भीतर विराजमान है; दसों दिशाओं में उसकी खोज कर रहे हैं जो ग्यारहवीं दिशा में बैठा है। खोजनेवाले में बैठा है और खोजनेवाला भटक रहा है। कस्तूरी कुंडल बसै। लेकिन मृग है कि पागल है, दीवाना है, गंध की खोज में भाग रहा है। उसे याद ही नहीं। आये भी कैसे याद! आदमी को याद नहीं आती, मृग को कैसे याद आये! कैसे पता चले कि मेरी ही नाभि में छिपा है नाफा कस्तूरी का! वहीं से आ रही है गंध और मुझे पागल किये दे रही है।
जिस आनंद को तुम खोज रहे हो, जिस मुरली की आवाज के लिए तुम दौड़ रहे हो,
वह तुम्हारे भीतर बज रही है। लेकिन तुम सपनों में खोये हो। बाहर की खोज सपना है। और इसलिए जैसे ही तुम्हारे बाहर के सपने टूटते हैं, तुम उदास हो जाते हो। एक सपने को दूसरे सपने से जल्दी से परिपूरक बना लेते हो। और जिस दिन सब सपने हाथ से छूटने लगते हैं उस दिन तुम आत्महत्या करने की सोचने लगते हो। सत्य को पाये बिना कोई जीवन नहीं है। सपनों में सिर्फ आभास है। गो हमसे भागती रही ये तेजगाम उम्र
ख्वाबों के आसरे पे कटी है तमाम उम्र
जुल्फों के ख्वाब, होंठों के ख्वाब और बदन के ख्वाब
मिराजे-फन के ख्वाब, कमाले-सुखन के ख्वाब
तहजीबे-जिंदगी के, फरोगे-वतन के ख्वाब
जिंदा के ख्वाब, कूचए-दारो-रसन के ख्वाब
ये ख्वाब ही तो अपनी जवानी के पास थे
ये ख्वाब ही तो अपनी अमल की असास थे

ये ख्वाब मर गये हैं तो बेरंग है हयात
यूं है कि जैसे दस्ते-तहे-संग है हयात
ये ख्वाब ही तो अपनी जवानी के पास थे
ये ख्वाब ही तो अपने अमल की असास थे
ये अपने सारे जीवन-आचरण की नींव थे--ख्वाब! सपने! कहीं पा लेने के।
ये ख्वाब मर गये हैं तो बेरंग है हयात
जब ये ख्वाब मरते हैं तो लगता है जीवन रंगहीन हो गया।
यूं है कि जैसे दस्ते-तहे-संग है हयात
जब ख्वाब मरते हैं, तो ऐसा लगता है जैसे दो चट्टानों के बीच में हाथ पिचल गया हो। ऐसी जिंदगी पिचल जाती है। बुढ़ापे में इसीलिए दुख है। बुढ़ापे का नहीं है, मरे हुए ख्वाबों का। पिचले हुए ख्वाबों का है। धूल में गिर गये इंद्रधनुषों का। पैरों में रुंध गये इंद्रधनुषों का दुख है।
जवान नशे में है। बू.ढ़े का नशा तो टूट जाता है, लेकिन होश नहीं आता। नशा टूटते ही घबड़ाता है बूढ़ा, परेशान होता है। लेकिन यह याद नहीं आती कि जिसके पीछे हम दौड़ते थे, कहीं ऐसा तो नहीं घर में ही छिपा हो। आंखें बाहर खुलती हैं, तो हम बाहर देखते हैं। कान बाहर खुलते हैं, तो हम बाहर सुनते हैं। हाथ बाहर फैल सकते हैं, तो हम बाहर खोजते हैं। भीतर न तो आंख खुलती है, न हाथ खुलते हैं, न कान खुलते हैं--कोई इंद्रिय भीतर नहीं जाती। इसलिए भीतर की हमें याद नहीं आती।
भीतर जाने की कला का नाम ध्यान है। बाहर जाने की कलाओं का नाम इंद्रियां हैं। इंद्रियां हैं बाहर जानेवाले द्वार, ध्यान है भीतर जानेवाला द्वार। इंद्रियों में ही भटके रहे, खो गये, तो तुम्हें जीवन का सत्व न मिल सकेगा। तो तुम रोते आये, रोते जाओगे। तो तुम खाली आये, खाली जाओगे।
ध्यान को जगाओ! क्योंकि ध्यान ही भीतर जा सकता है। आंख भीतर नहीं जा सकती, कान भीतर नहीं जा सकते, हाथ भीतर नहीं जा सकते। सिर्फ ध्यान भीतर जा सकता है। जिसने ध्यान को जगा लिया, उसने जीवन का सारभूत पा लिया। जिसने ध्यान को जगा लिया, उसके भीतर सतत एक धारा बहती रहती है। सब कामों-धामों, व्यस्तताओं के बीच भी एक स्मरण नहीं मिटता, एक दीया नहीं बुझता, वह दीया जगमगाता रहता है--मैं साक्षी हूं, मैं साक्षी हूं, मैं साक्षी हूं। ऐसा कुछ शब्द नहीं दोहराने होते--ख्याल रखना--ऐसा बोध, ऐसा भावः मैं साक्षी हूं। यही समता है, यही समाधि है, यही सामायिक है।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग दो
बारहवां प्रवचन

ज्ञान ही क्रांति

पहला प्रश्नः आपने कहा कि चित्त की दशा ही बाधा है। और मुझे मेरी चित्त की दशा ही खींचकर आपके पास ले आयी है। आपने यह भी कहा कि बुद्धि ही बाधा है, क्योंकि बुद्धिमान बहुत सोच-विचार करता है। और मैं देखता हूं कि आपके इर्द-गिर्द बुद्धिमान व्यक्ति ही भरे हैं।

निश्चय ही चित्त ही तुम्हारा यहां तक ले आया है। मेरे पास ले आया है। फिर भी चित्त बाधा है। पास तो आ जाओगे चित्त के कारण, मिलन न हो पायेगा। निकट तो आ जाओगे, एक न हो पाओगे। यहां तक तो ले आयेगा, शारीरिक रूप से तो करीब पहुंचा देगा, आत्मिक रूप से दूर ही दूर रखेगा।
अगर शरीर के ही मिलन की बात होती, तो चित्त बाधा नहीं है। चित्त तो शरीरों को करीब ले आता है, आत्माएं दूर रह जाती हैं। जब तक चित्त को हटाओगे न, उस अंतस्तल में मिलन न हो सकेगा। जो जोड़ता मालूम पड़ता है नीचे तल पर, वही ऊंचे तल पर तोड़ देता है।
इसे खूब ठीक से समझ लेना। जो साधन है पहले चरण पर, वही अंतिम चरण पर बाधा बन जाता है। नाव में बैठे हैं, नाव उस पार ले गयी, फिर नाव को पकड़े रहो तो उतर न पाओगे। नाव ले आयी दूसरे किनारे तक, लेकिन अब नाव को छोड़ना भी पड़ेगा। तुमने अगर यह कहा कि यह नाव ही तो इस किनारे तक लायी है, अब इसे कैसे छोड़ें! यह नाव न होती, तो इस किनारे तक हम कभी आये ही न होते! सच कहते हो, ठीक ही कहते हो; लेकिन अब इसी नाव में बैठे रहोगे तो पहुंचकर भी दूसरे किनारे पर वंचित रह गये। कहां पहुंच पाये! नाव पकड़नी भी पड़ती, छोड़नी भी पड़ती। साधन हाथ में भी लेने होते हैं, फिर गिरा भी देने होते हैं।
इसलिए प्रथम चरण पर जो साधक है, साधन है, अंतिम चरण पर वही बाधक हो जाता है। तुम्हारा मन ही तुम्हें यहां ले आया, इसमें दो मत नहीं हो सकते। मन ही न होता तो तुम आते कैसे! यह यात्रा ही कैसे करते! मेरा आकर्षण ही तुम्हें कैसे खींचता! मेरा बुलावा ही तुम कैसे सुनते! तुम मन की डोरी को पकड़कर ही यहां तक आये। मन की नाव पर ही चढ़कर यहां तक आये। लेकिन अब क्या मन की नाव पर ही बैठे रहोगे? अब उतरो, अब नाव छोड़ो। अब किनारा आ गया। धन्यवाद दे दो नाव को, कृतज्ञता ज्ञापन कर दो, अनुगृहीत होओ उसके--यहां तक ले आयी-- लेकिन क्या अब उसको सिर पर ढोओगे? क्या इसीलिए कि यहां तक नाव ले आयी, तो धन्यवाद देने के लिए सदा के लिए नाव में बैठे रहोगे? तो भूल हो जाएगी। तो पागलपन हो जाएगा।
प्रश्न सार्थक है। सभी के लिए सोचने जैसा है। सीढ़ियां छोड़नी पड़ती हैं। अंततः सभी साधन जब छूट जाते हैं, तभी सिद्धि उपलब्ध होती है। जब सभी मार्ग छूट जाते हैं तभी मंजिल मिलती है। यद्यपि मार्ग पर चलकर मिलती है, चलने से ही मिलती है, लेकिन फिर छोड़ना अनिवार्य है। चलते रहे, चलते रहे, मार्ग ही इतने जोर से पकड़ लिया कि मंजिल भी सामने आ गयी तो कहा, मार्ग कैसे छोड़ें अब! तो फिर तुमने मार्ग पकड़ा नहीं, मार्ग ने तुम्हें पकड़ लिया। फिर तुमने मार्ग का उपयोग न किया, मार्ग तुम्हारा मालिक हो गया। तो फिर तुम मार्ग पर ही अटके रह जाओगे। और हो सकता है मार्ग ने तुम्हें ठीक मंजिल के द्वार तक पहुंचा दिया हो, तब भी क्या फर्क पड़ता है! मंदिर से हजार मील दूर रहे कि मंदिर की सीढ़ियों के पास खड़े रहे, मंदिर के भीतर तुम नहीं हो। मंदिर में तुम्हार प्रवेश नहीं हुआ। तो हजार मील की दूरी, कि हजार फीट की दूरी, कि हजार इंच की दूरी, क्या फर्क पड़ता है! मंदिर के तुम बाहर ही हो। और मंदिर के भीतर आओ, तो ही कुछ होगा। मंदिर तक आने से कुछ भी नहीं होता। मंदिर के भीतर आओ, क्योंकि मंदिर के भीतर आते ही तुम खो जाओगे। मंदिर के द्वार तक तो तुम बने ही रहोगे; मंदिर के द्वार तक तो अहंकार बना ही रहेगा। मंदिर के द्वार के भीतर ही पहुंचकर तुम निराकार होते हो।

मेरे पास तक आ गये, मेरे भीतर आओ। क्योंकि जब तुम मेरे भीतर आओगे, तभी मैं तुम्हारे भीतर आ सकूंगा। और कोई उपाय नहीं। जब तुम मुझमें खोओगे, तो मैं तुममें खो सकूंगा। और कोई मार्ग नहीं।
"आपने कहा कि चित्त की दशा ही बाधा है। और मुझे मेरे चित्त की दशा ही खींचकर आपके पास ले आयी है।"
सौ प्रतिशत सही कहते हो। पर अब वहां रुको मत। इतना किया, थोड़ा और करो। आये थे इसीलिए कि मैं जो कहूंगा उसे समझोगे और करोगे। अब व्यर्थ लड़ो मत। अब मैं तुमसे कह रहा हूं कि अब इस चित्त को छोड़ो, इसका काम हो गया। यह जहां तक पहुंचा सकता था, पहुंचा दिया। इसका उपयोग हो चुका। अब यह चली कारतूस व्यर्थ मत ढोओ। अन्यथा यही बाधा बनेगी। चित्त ही लाता है। फिर चित्त ही अटका लेता है।
"आपने यह भी कहा कि बुद्धि ही बाधा है।"
निश्चित ही। बुद्धि बाधा है। क्योंकि बुद्धि तुम्हें ध्यान में नहीं जाने देती। बुद्धि विचार में ले जाती है।
विचार और ध्यान बड़ी विपरीत दिशाएं हैं। विचार का अर्थ है, तरंग। ध्यान का अर्थ है, निस्तरंग हो जाना। विचार का अर्थ है, सोचना। ध्यान का अर्थ है, मात्र शुद्ध होने में डूब जाना। जैसे झील सो गयी। कोई लहर नहीं, कोई कंपन नहीं। हवा का झोंका भी नहीं आता। दर्पण हो गयी। उसी दर्पण बनी झील में चांद झलक आता है। हवा चली, लहरें उठीं, झील कंपी, झील की चादर पर सिकुड़न पड़ीं, चांद टूट जाता है, बिखर जाता है। हजार-हजार टुकड़े हो जाते हैं। चांदी फैल जाती झील पर, पर चांद कहां खोजोगे।
विचार तरंगें हैं। उन्ही तरंगों में तो परमात्मा खो गया है। उन्हीं तरंगों के कारण तो परमात्मा प्रतिबिंबित नहीं हो पाता। उसकी छाया नहीं बन पाती तुममें। विचार से संसार चलता है, निर्विचार से धर्म। विचार साधन है संसार में। वहां अगर विचार न किया, लूटे-खसोटे जाओगे। वहां अगर विचार न किया, बड़े धोखे में पड़ोगे। वहां बिना विचार किये बड़ी मुश्किल आयेगी। इसीलिए तो संसार में ले जाने के लिए विद्यालय हैं, विश्वविद्यालय हैं--वे विचार करना सिखाते हैं। वे सिखाते हैं, कैसे ठीक-ठीक विचार करो। तर्क-सरणी से, गणितपूर्वक कैसे सावधान रहो। कैसे संदेह करो कि दूसरा धोखा न दे पाये। बाहर धोखे देनेवाले लोग खड़े हैं। सारा संसार संघर्ष में लीन है। वहां भोलेपन से नहीं चलता। वहां तिरछे होना पड़ता है। कहावत है--सीधी अंगुली से घी नहीं निकलता। अंगुली टेढ़ी करनी पड़ती है। वहां आदमी को संदेह में धीरे- धीरे अपने को निष्णात करना पड़ता है। भरोसा तो तभी करना बाहर, जब संदेह का कोई कारण ही न रह जाए। सब संदेह कर चुको, कोई कारण न रह जाए, तब।
वस्तुतः बाहर भरोसा कोई करता ही नहीं। भरोसे के भीतर भी संदेह खड़ा रहता है। मित्र में भी हम देखते ही रहते हैं संभावना शत्रु की। अपने में भी पराया खड़ा रहता है। चाहे थोड़ी देर को हमने इस संदेह को स्थगित कर दिया हो, नष्ट कभी नहीं होता। अपने से भी डर बना रहता है, क्योंकि कौन अपना है वहां? सभी संषर्घ में लीन हैं। सभी प्रतिस्पर्द्धा में पड़े हैं। सभी एक-दूसरे के साथ दांव-पेंच कर रहे हैं। वहां जरा चूके कि गिरे। वहां जरा चूके कि कोई तुम्हारी छाती पर चढ़ा। वहां जरा चूके कि किसी ने तुम्हें साधन बनाया और शोषण किया।
स्वभावतः बाहर की दुनिया में संदेह, विचार, इसका बहुत ज्यादा उपयोग है। भीतर की दुनिया में तुम हो, तुम्हारा परमात्मा है। अंततः तो बस परमात्मा है, तुम भी नहीं हो। वहां धोखा कौन देगा, धोखा कौन खायेगा? वह एक की दुनिया है। वहां दूसरा है ही नहीं। वहां दूसरे को छोड़कर ही पहुंचना होता है। वहां बुद्धि का क्या करोगे? बुद्धि का शास्त्र वहां काम का नहीं। वह बोझ बन जाएगा। जैसे बाहर संदेह काम देता है, वैसे भीतर श्रद्धा काम देती है। जैसे बाहर विचार काम देता है, वैसे भीतर निर्विचार काम देता है। उलटी यात्रा है।
बाहर की तरफ जाओ, अपने से दूर जाओ, तो विचार को पकड़ना पड़ेगा। अपनी तरफ आओ, विचार को छोड़ना पड़ेगा। ठीक अपने में आ जाओ, सब विचार छूट जाएगा। कहो उसे निर्विचार समाधि, निर्विकल्प समाधि, श्रद्धा या जो भी नाम तुम्हें

देने हों। लेकिन एक बात पक्की है, नाम कुछ भी हो, वहां विचार नहीं है, महावीर ने उस स्थिति को सामायिक कहा है। वहां बस शुद्ध आत्मा है। वहां कोई विपरीत नहीं है, जिससे घर्षण होकर विचार की तरंग उठ सके।
तो मैं कहता हूं कि बुद्धि भी बाधा है। भला यहां तक बुद्धि ही ले आयी हो--पढ़ा हो, सुना हो मेरे संबंध में तो ही आये होओगे--लेकिन अब जब आ ही गये, तो सुनो मैं क्या कह रहा हूं। मैं कह रहा हूं, अब बुद्धि को हटाकर रख दो। अब जरा निर्बुद्धि होकर मेरे पास हो लो। अब जरा तरंगों को क्षीण करो। अब जरा निस्तरंग हो लो। निस्तरंग होते ही मेरे और तुम्हारे बीच की सब दूरी समाप्त हो जाती है। निस्तरंग होते ही एक ही बचता है। न वहां मैं हूं, न तुम हो। वहां वही है। रसो वै सः। उसी का रस बरस रहा है। बस एक ही है। वही अमृत, वही अनाहत नाद, जिसको झेन फकीर कहते हैं--एक हाथ की ताली। वहां दूसरा हाथ भी नहीं है ताली बजाने को। जिसको हिंदू ओंकार का नाद कहते हैं--वहां कोई नाद करनेवाला नहीं है, नाद हो रहा है। वहां नाद शाश्वत है। वहां संगीत किसी तार को छेड़कर नहीं है, ताली बजाकर नहीं है, आहत नहीं है, अनाहत है। अकेले का नाद है। वहां गानेवाला, गीत और सुननेवाला, सभी एक हैं।
हटाओ बुद्धि को। थोड़ा प्रयोग करके देखो, थोड़ी हिम्मत करके देखो। विचार तो करके बहुत देखा, उससे जो मिल सकता था वह मिला। धन मिल सकता था, मिला। पर धन पाकर भी कहां धन मिला! उससे जो मिल सकता था मिला। शरीर मिला।
शरीरों के संबंध मिले। लेकिन शरीरों के संबंध कहां तृप्ति लाते हैं, जब तक आत्मा के संबंध न हों। उससे जो मिल सकता था, मिला। घर बना लिये, दुकानें सजा लीं, तिजोड़ी भर ली, लेकिन मौत सब छीनकर ले जाएगी।
मौत सिर्फ उसी को नहीं छीन पाती, जो ध्यान से मिलता है। विचार से मिला हुआ सब मौत छीन लेती है। क्योंकि विचार से जो मिलता है, बाहर है। मौत सब छीन लेती है जो बाहर है। मौत तो तुम्हें फिर से तुम्हारे केंद्र पर फेंक देती है। ध्यान में तुम स्वयं ही उस जगह पहुंच जाते हो, जहां मौत तुम्हें पहुंचाती है।
इसलिए ध्यानी की कोई मौत नहीं। ध्यानी कभी मरता नहीं। मर सकता नहीं। मरते तो तुम भी नहीं हो, लेकिन तड़फते व्यर्थ हो। इस ख्याल में तड़फते हो कि मरे! क्योंकि तुमने बाहर सब संबंध बनाये, मौत आकर सब पर्दे गिरा देती है। बाहर से सब संबंध तोड़ देती है। अचानक अकेला छोड़ देती है। और तुमने अकेले होने को कभी जाना नहीं। तुमने अकेले होने में कभी डुबकी न ली। तो तुम जानते ही नहीं कि अकेला होना भी क्या है। तुम घबड़ाते हो। तुम कहते हो, मर गये! तुम्हारा सारा तादात्म्य बाहर से--धन छिना, मकान छिना, पत्नी-पति छिने, बेटे-बेटियां छिनीं, मित्र-प्रियजन छिने; बाहर का सूरज, बाहर के चांद, बाहर के फूल, सब छिने, आंख बंद होने लगी, भीतर तुम डूबने लगे, तुम घबड़ाये, तुमने कहा हम मरे! क्योंकि तुमने इस बाहर के जोड़ का ही नाम समझा था, अपना होना।
काश! तुम एकाध बार पहले भी इस अंतर्यात्रा पर गये होते मौत के आने के पूर्व और तुमने जाना होता कि सब छिन जाए बाहर का, तो भी मैं हूं। वस्तुतः जब सब छिन जाता है बाहर का, तब मैं शुद्धतम होता हूं। क्योंकि तब कोई विजातीय नहीं होता। बाहर की कोई छाया नहीं पड़ती। दर्पण एकदम खाली होता है। निपट खाली होता है। शुद्ध होता है।
ऐसा तुमने जाना होता, तो मौत भी तुम्हारे लिए ध्यान बनकर आती। तो मौत
भी तुम्हारे लिए समाधि बनकर आती। तुम्हारे पहचान की भूल है। उसी पहचान के लिए तुमसे बार-बार कह रहा हूं--छोड़ो सोच-विचार।
बुद्धिमानी से कुछ भी नहीं मिलता, ऐसा मैं नहीं कहता हूं। बुद्धिमानी
से संसार मिलता है। सिकंदर होना हो, तो ठीक है, बुद्धिमानी पकड़ो। लेकिन जब तुम परमात्मा की यात्रा पर निकलते हो, तब बुद्धिमानी मत पकड़ना। वहां तो जिनको संसार में बुद्धू कहते हैं, वे पहले पहुंच जाएंगे उनसे, जिनको संसार में बुद्धिमान कहते हैं। वहां तो तर्कशून्य पहले पहुंच जाएंगे तार्किकों से। वहां तो मतवाले पहले पहुंच जाते हैं बुद्धिमानों से। वहां पागलों की गति है।

जीसस ने कहा है, जो छोटे बच्चों की भांति होंगे सरल, वे ही मेरे प्रभु
के राज्य में प्रवेश कर सकेंगे। निश्चित ही संसार के राज्य में छोटे बच्चों की कहां जगह है! कहां उपाय है! इसीलिए तो हम छोटे बच्चों को जल्दी उनके बचपन से छुटकारा दिलाने लगते हैं। कहते हैं, बड़े होओ, बड़ों-जैसा व्यवहार करो, अब तुम्हारी उम्र हो गयी, अब ये बच्चों जैसी बात मत करो। अब सरलता से काम न चलेगा। अब तिरछे बनो। अब जीवन का तर्क सीखो। अब लूट-खसोट में कुशल बनो। अब सीधे, सरल, प्रामाणिक होने से न चलेगा। यह बुद्धूपन काम न देगा। जीसस ने कहा है, जो इस संसार में प्रथम हैं, वे मेरे प्रभु के राज्य में अंतिम होंगे। और जो इस संसार में अंतिम हैं, वे मेरे प्रभु के राज्य में प्रथम हो जाएंगे।
गणित बिल्कुल उलटा हो जाता है। यहां जो आगे खड़े हैं, वे एकदम पंक्ति में आखिर में पड़ जाते हैं। क्योंकि यात्रा ही अलग है। यात्रा तर्क की नहीं, प्रेम की है। यात्रा संदेह की नहीं, श्रद्धा की है। जो सरलचित्त हैं, स्वभावतः श्रद्धा कर लेते हैं। उनकी श्रद्धा में एक नैसर्गिक सुगंध होती है। संदेहशील श्रद्धा करता भी है, तो भी संदेह की दुर्गंध कहीं न कहीं किसी कोने में छिपी होती है। संदेहशील के मंदिर में भी संसार की गंध आती रहती है। संदेहशील की प्रार्थना में भी वासना बनी रहती है। संदेहशील परमात्मा से हाथ भी जोड़ता है, तो भी तैयार रहता है कि जरा ही गड़बड़ हो तो हाथ अलग कर लें, खींच लें। पूरा नहीं होता प्रार्थना में। हो नहीं सकता। संदेह कभी पूरा नहीं होने देता। संदेह कहता है, पता नहीं, जो कर रहा हूं वह ठीक है या नहीं! श्रद्धा समग्ररूपेण तुम्हें डुबा लेती है। इसलिए कहता हूं बुद्धि भी बाधा है।
पूछा है, "और मैं देखता हूं कि आपके इर्द-गिर्द बुद्धिमान व्यक्ति ही भरे हैं।"
यह भी सच है। लेकिन, जब तक वे बुद्धि न छोड़ेंगे, तब तक मेरे इर्द-गिर्द भरे रहें, मुझसे न भरेंगे। उनकी बुद्धि ही बाधा हो जाएगी। उनकी बुद्धि यहां तक ले आयी होगी। सोचा-विचारा होगा, मेरी बात तर्कपूर्ण मालूम पड़ी होगा, मेरी बात में उन्हें गणित और तर्क का बल मालूम पड़ा होगा, मेरी बात में प्रमाण का दर्शन हुआ होगा, आ गये।
लेकिन तर्क!
निश्चित ही मैं तर्क की बात भी करता हूं, क्योंकि कुछ हैं जो उसी भांति आ सकते हैं। लेकिन तर्क वैसे ही है जैसे मछलीमार बंसी में आटा लगाता है। बस। आटा लटका देता है कांटे में, कोई मछलियों को भोजन नहीं करवा रहा है आटे से। आटा तो केवल प्रलोभन है, क्योंकि मछलियां आटे को ही देखकर पास आयेंगी। मैं तर्क की निश्चित बात करता हूं, पर आटा है। सोच-समझकर गले में लेना। क्योंकि जैसे ही गले में गया, तुम पाओगे यहां कुछ बात और है। तर्क तो ऊपर-ऊपर है। भीतर तो श्रद्धा है। तर्क से बुलाता हूं, क्योंकि यह युग तर्क का है। यहां श्रद्धा की कोई सुनने को राजी नहीं है। गणित से तुम्हें बुलाता हूं, क्योंकि गणित की भाषा ही तुम समझते हो। तुम्हारी भाषा में ही बुलाना होगा। जब मेरे पास आने लगोगे तो अपनी भाषा भी समझा लूंगा, लेकिन वह तो नंबर दो की बात है। पहले तो तुम्हें बुलाना तुम्हारी भाषा में होगा। तुम्हें बुलाना हो तो तुम्हारा नाम ही लेकर बुलाना होगा। फिर जब मेरे पास आओगे, तब तुम्हारा नाम बदल दूंगा। लेकिन पहले तो पास! एक बार पास आ जाओ, फिर धीरे-धीरे तुम्हें पिघला लूंगा।
तो जिन्होंने पूछा है, ठीक ही पूछा, ठीक ही कहा है कि आपके आसपास बुद्धिमान भरे दिखायी पड़ते हैं। यह सच है। वे मेरे तर्क को सुनकर मेरे पास आ गये। अब बड़ी दुविधा में पड़े हैं। जा भी नहीं सकते, क्योंकि मेरी बात तर्कपूर्ण मालूम पड़ती है। बिल्कुल डूब भी नहीं सकते, क्योंकि तर्क के पीछे छिपा हुआ अतर्क्य है। तर्क के पीछे छिपी हुई श्रद्धा का स्वर भी उन्हें सुनायी पड़ने लगा। आते भी नहीं हैं, जाते भी नहीं। अब अटके रह गये हैं। अब जाएं तो जाएं कहां! क्योंकि जिस तर्क ने उन्हें प्रभावित किया है, अब उस तर्क को छोड़ना बहुत मुश्किल है। और अब उन्हें यह भी दिखायी पड़ने लगा है कि तर्क तो केवल जाल था। तर्क के आगे छलांग है अतर्क्य की। तर्क के आगे

छलांग है श्रद्धा की। उनकी बुद्धि को समझाया, बुझाया, राजी कर लिया, अब उन्हें दिखायी पड़ता है--यह तो निर्बुद्धि में उतरने की बात है। अब वे ठिठके खड़े हैं--अब वे ठीक किनारे पर खड़े हैं खाई के। लेकिन किनारे पर खड़े रहें जन्मों तक, तो भी कुछ न होगा। कूदेंगे खाई में, मिटेंगे, तो ही कुछ होगा। मरेंगे तो ही कुछ होगा। डरेंगे, तो कुछ भी न होगा।
बुद्धि को धन्यवाद दो। बड़ी कृपा उसकी, यहां तक ले आयी। अब उसे विदा भी दो। अब उसे नमस्कार करो। कहो, अलविदा!

दूसरा प्रश्नः आचार्य रजनीश को सुनता था--निपट सीधा और साफ। अब भी सुनता हूं प्यारे भगवान को--आड़े होते हैं बुद्ध, महावीर, जीसस, शंकर, नारद, कबीर और फरीद। इन भगवानों के मूल उदघाटित करते हैं, स्वयं सीधे प्रकट होने की बजाय आड़ लेकर आने के पीछे रहस्य क्या है?

मेरी समझदारी बढ़ी।
पहले सोचा था, सीधे सीधी-सीधी बात कर लेने से हल हो जाएगा। लेकिन लोग बड़े तिरछे हैं। मैंने उनकी भाषा सीखी। कहता अब भी वही हूं, जो तब कहता था। लेकिन पहले अपनी भाषा बोलता था। तब मैंने देखा कि लोग चौंकते हैं, जागते नहीं। चौंकना भर जागने के लिए काफी नहीं है। चौंककर आदमी फिर करवट लेकर सो जाता है। चौंककर शायद नाराज भी हो जाता है। सोचता है किसने शोरगुल किया! मैंने देखा कि लोग मेरी बात सुन लेते हैं, लेकिन उस सुनने से उनके जीवन में कोई क्रांति घटित नहीं होती। क्योंकि मैं अपनी भाषा बोल रहा हूं, जो उनकी समझ में नहीं आती। उनको तो उनकी ही भाषा से समझाना होगा। तब मैं अपना गीत गुनगुनाये जा रहा था, बिना इसकी फिक्र किये कि सुननेवाले को समझ में भी आता है या नहीं?
जैसे-जैसे और-और अधिक लोगों के संपर्क में आया, वैसे-वैसे एक बात दिखायी पड़ गयी कि सीधे-सीधे वे मुझे न देख पायेंगे। सीधे देखने की आंख ही उनकी खो गयी है। उनकी आंखें तिरछी हो गयी हैं।
तो अब मैं महावीर की बात करता हूं, बुद्ध की बात करता हूं; कृष्ण की, क्राइस्ट की, नानक की, कबीर की, फरीद की। ये भाषाएं उन्हें याद हैं। इन भाषाओं में वे रगे-पगे हैं। इन भाषाओं को सुनते-सुनते वे इन शब्दों से परिचित हो गये हैं। उन शब्दों में डालता मैं वही हूं जो मुझे डालना है। नानक मेरा हाथ तो पकड़ नहीं सकते। जो मुझे कहना है वही कहूंगा। लेकिन सिक्ख को समझ में आ जाता है। महावीर कोई मुकदमा तो मुझ पर चला नहीं सकते। जो मुझे कहना है वही कहता हूं, लेकिन महावीर का आटा लगा देखकर जैन करीब आ जाते हैं। बस, इसलिए। इसलिए अब सीधे-सीधे बात बंद की है।
बात तो वही कर रहा हूं, वही कर सकता हूं, कोई दूसरा उपाय नहीं है। मैं वही कह सकता हूं, जो मैं हूं। अगर किसी दिन देखा कि अब लोगों को सीधे-सीधे बात फिर समझ में आने लगी, फिर आड़ें छोड़ दूंगा। फिर सीधी बात करने लगूंगा। तुम पर निर्भर है। तुमसे बोल रहा हूं, इसलिए तुम्हारा ध्यान रखना जरूरी है। अगर एकांत में बोलता होता, अकेले में बोलता होता, शून्य में बोलता होता, तो महावीर, बुद्ध, कृष्ण के नाम का कोई कारण ही न था। अब भी जब अपने अकेले में बैठा होता हूं, तो मुझे न बुद्ध की याद आती है, न महावीर की, न कृष्ण की, न क्राइस्ट की। तुम्हें देखता हूं, तब। तब इन नामों को खींच-खींचकर मुझे लाना पड़ता है। तुम्हें सहारा देने के कारण, देने के लिए। तुम आड़ में ही पहचान पाते हो, चलो यही सही। तुम अगर गुलाब को गुलाब कहने से नहीं समझते, चमेली कहने से समझते हो, चलो चमेली ही सही। गुलाब तो गुलाब है। चमेली कहो, चंपा कहो, जुही कहो, बेला कहो, नाम से क्या फर्क पड़ता है, गुलाब गुलाब है। मैं मैं हूं। मेरी शराब मेरी शराब है। महावीर की प्याली में ढालो कि बुद्ध की प्याली में ढालो, मेरे स्वाद में कोई फर्क पड़ता नहीं। तुम्हारी वजह से नाहक इन नामों को मुझे खींचना पड़ रहा है।
अगर मैं फरीद पर बोलता हूं, मुसलमान उत्सुक हो जाता है। राम के भक्त मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं आप कृष्ण पर तो बोले, राम पर क्यों नहीं बोलते? पत्र आते हैं मुझे।

लखनऊ से किन्हीं मित्रों का पत्र आया कि आप रैदास पर कब बोलेंगे? वे रैदास के भक्त होंगे। तो रैदास पर कब बोलेंगे। जैसे कि मैं जो बोल रहा हूं, वह रैदास पर नहीं है! तारणपंथी जैन आते हैं, वे कहते हैं, तारण पर कब बोलेंगे? जैसे मैं जो बोल रहा हूं, वह तारण पर नहीं है! मैं जो बोल रहा हूं, वही बोलूंगा। गीता रखो, कि कुरान, कि बाइबिल रखो, मैं वही कहूंगा जो मुझे कहना है। सिर्फ बीच-बीच में मुझे महावीर, बुद्ध और कृष्ण के नाम दोहराने पड़ते हैं, और कुछ खास अंतर नहीं है। तुम्हारी मर्जी। तुम ऐसा चाहते हो, चलो ऐसा सही। जो मुझे बेचना है, वही बेचूंगा।
बचपन की मुझे याद है। छोटा था, तब मेरे पिता के पिताजी दुकान चलाते, तो उनकी कुछ बातें याद रह गयीं। एक बात वह ग्राहकों से कहा करते थे कि तरबूजा चाहे छुरी पर गिरे, चाहे छुरी तरबूजे पर गिरे, हर हालत में तरबूजा कटेगा। वे ठीक कहते थे। क्या फर्क पड़ता है! छुरी को नीचे रखकर ऊपर से तरबूजा पटको, कि तरबूजे को नीचे रखकर ऊपर से छुरी पटको, हर हालत में तरबूजा कटेगा। छुरी कैसे कट सकती है? छुरी काटती है।
जैसी तुम्हारी मर्जी हो। लेकिन कटोगे तुम ही। तुम्हें अगर आड़ से कटने में सुख आता है, चलो यही सही। मुझे उसमें कुछ अड़चन नहीं है। क्योंकि महावीर ने वही कहा है, जो मैं कह रहा हूं। बुद्ध ने वही कहा है, जो मैं कह रहा हूं। सिर्फ सदियों का फर्क है, भाषा का फर्क है। अन्यथा कहने का उपाय नहीं। क्योंकि जैसे ही तुम शांत हुए, डूबे अपने में, उस जगह पहुंचे जो शाश्वत है, सनातन है।

तीसरा प्रश्नः जैन-कुटुंब में जन्म हुआ। तीन वर्षों से आपको पढ़ता हूं। संन्यास भी लिया है। फिर भी पारे की तरह बिखरा जा रहा हूं। जिन-सूत्र पर प्रवचन अच्छा लगता है। पर भोग में रस बहुत है। फिर परंपरा और संस्कार पांव पर बेड़ी की तरह पड़े हैं। बहुचित्त और विक्षिप्त होता जा रहा हूं, टूटता जा रहा हूं; कृपया मार्ग दर्शन दें।

क्यों टूट रहे हो, इसे थोड़ा ठीक से समझ लो, वहीं से मार्ग मिल जाएगा। टूटने के कारण प्रश्न में ही साफ हैं--
"जैन-कुटुंब में जन्म हुआ।" किसी न किसी कुटुंब में जन्म तो होगा ही।
और जब जन्म होगा किसी कुटुंब में, तो उस कुटुंब का सदियों पुराना ढांचा, संस्कार, आदतें, धारणाएं, विश्वास तुम पर थोपे जाएंगे। अब तक कोई मां-बाप इतने जागरूक नहीं हैं कि बच्चे को स्वतंत्र छोड़ें, कि उसे कहें कि तू बड़ा हो, होशपूर्ण हो, अपना चुनाव करना। जो धर्म तुझे प्रीतिकर लगे, वह चुन लेना। अगर मस्जिद में तुझे रस आये, मस्जिद जाना। गुरुद्वारा प्रीतिकर लगे, गुरुद्वारा जाना। मंदिर में तुझे ध्यान लगे, मंदिर चले जाना। अगर नास्तिकता से ही तुझे सत्य की अनुभूति होती हो, तो वही सही है। लेकिन तू चुनना। हम कुछ तेरे ऊपर थोपेंगे नहीं। अभी ऐसे मां-बाप पृथ्वी पर नहीं हैं। अभी पृथ्वी पर जागे हुए लोग इतने कम हैं कि मां-बाप ऐसे हों भी कैसे! तो हर मां-बाप अपने बच्चे पर वही थोप देता है, जो उस पर थोपा गया था उसके मां-बाप के द्वारा। ऐसे सदियों का कचरा मस्तिष्क पर हावी हो जाता है। वही बिखराव का कारण है। उसके कारण तुम कभी स्वतंत्र नहीं हो पाते। उसके कारण तुम सदा बंधे-बंधे हो--जंजीरों में बंधे हो। तड़फते हो उस पार जाने को, लेकिन नाव जंजीरों से इसी किनारे से बंधी है। और जंजीरें बड़ी बहुमूल्य मालूम होती हैं। क्योंकि बचपन से ही तुमने उन्हें जाना। तुम समझते हो कि शायद जंजीरें नाव का अनिवार्य हिस्सा हैं। या तुम शायद सोचते हो कि जंजीरें नाव का आभूषण हैं, सजावट हैं, शृंगार हैं। या कि तुम सोचते हो कि जंजीरों को अगर तोड़ दिया, तो कहीं ऐसा न हो कि दूसरा किनारा तो मिले ही न, और यह किनारा छूट जाए! तो बंधे हो, तड़फते हो, पताकाएं खोलते हो, पाल खोलते हो, पतवारें चलाते हो, और जंजीरें खोलते नहीं! जंजीरें तोड़ते नहीं। नाव वहीं की वहीं तड़फ-तड़फकर रह जाती है। इसी से घबड़ाहट पैदा होती है। जैन-कुटुंब में पैदा हुए हो तो पहला तो काम है--जैन धारणाओं से मुक्त
हो जाना। नहीं कि वे गलत हैं। बल्कि दूसरे के द्वारा दी गयी हैं, यही अड़चन

है। जिस दिन तुम जागोगे, जिस दिन तुम पाओगे, उन्हें ठीक ही पाओगे। लेकिन अभी उधार हैं। अभी स्व-अर्जित नहीं हैं। और सत्य उधार नहीं मिलता। अगर हिंदू-घर में पैदा हुए हो, तो पहला कृत्य हिंदू-संस्कार से मुक्त हो जाना है। अगर मुसलमान घर में पैदा हुए हो, तो पहला काम स्वतंत्रता का--इस्लाम से छुटकारा ले लेना। खाली करो अतीत से अपने को। अपनी खोज पर निकलो। हिम्मत करो। साहस करो। दुस्साहस चाहिए। कायर की तरह किनारों से मत बंधे रहो। "जैन-कुटुंब में जन्म हुआ।" वहीं पागलपन के बीज हैं। किसी कुटुंब में
तो होगा ही। जैन में हो, सिक्ख में हो, मुसलमान में हो, हिंदू में हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। जहां भी जन्म होगा, वहीं तुम पर संस्कार थोप दिये जाएंगे। पहला कृत्य धार्मिक-खोजी का उन संस्कारों के जालों को काटकर अपने को मुक्त कर लेना है। जैसे मां के पेट में बच्चा पैदा होता है, तो जुड़ा होता है मां से। जैसे ही गर्भ के बाहर आता है, डाक्टर का पहला काम है उस जोड़ को तोड़ देना। अगर नाभि बच्चे की मां से जुड़ी ही रहे, तो यह बच्चा फिर कभी बढ़ न पायेगा। माना कि अब तक इसी जोड़ के कारण जीआ, लेकिन अब यही जोड़ मौत का कारण बनेगा।
तो पहला काम डाक्टर करता है, काट देता है बच्चे के संबंध को मां से। सेतु तोड़ देता है। इसके बाद स्वतंत्रता की यात्रा शुरू होती है। फिर बच्चा मां पर निर्भर रहता है। मां उसका भोजन है, दूध है। धीरे-धीरे दूध भी छोड़ देता है; और भी संबंध टूटा। पहले मां के ही पीछे घूमता रहता है, उसका आंचल पकड़कर ही घूमता रहता है, फिर धीरे-धीरे पास-पड़ोस में खेलने जाने लगता है--और संबंध टूटा। फिर धीरे-धीरे संबंध बड़ा फैलाव लेने लगता है, शिथिल होने लगता है। जैसे-जैसे मां से संबंध टूटता है, वैसे-वैसे बच्चा प्रौढ़ होता है। फिर एक दिन किसी स्त्री के प्रेम में पड़ जाता है। उस दिन मां की तरफ बिल्कुल पीठ हो जाती है। इसलिए मां कभी भी बहू को माफ नहीं कर पाती। सास और बहू के बीच एक बुनियादी विरोध बना रहता है। वह कितना ही छिपाओ, कितना ही दबाओ, वह हटता नहीं। क्योंकि मां को जाने-अनजाने यह पता रहता है कि इसी स्त्री ने उसके बेटे को सदा के लिए तोड़ दिया।
ठीक ऐसा ही अंतस-जगत में भी घटता है। तुम जैन-कुल में पैदा हुए, जैन-धर्म तुम्हारी मां है। जब तुम जरा समझदार हो जाओ, तो अपने को मुक्त करना शुरू करना। इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम जैन-धर्म के विपरीत हो जाना। ऐसा समझो, तो मेरी बात गलत समझ गये। मैं तो तुमसे यह कह रहा हूं, कि जो मैं तुमसे कह रहा हूं, यही वस्तुतः जैन होने का उपाय है। तुम जैन-संस्कारों से मुक्त होना, यह जैन-संस्कार का विरोध नहीं है। यह जैन होने की वास्तविक व्यवस्था है। हटना, धीरे-धीरे-धीरे-धीरे। दुश्मनी का कारण नहीं है। सिर्फ तुम अपनी स्वतंत्रता खोजना। इससे जैन-धर्म गलत है, ऐसा नहीं है। तुम सिर्फ अपनी स्वतंत्रता की खोज कर रहे हो। और जो भी चीज बाधा बनती है, उसे तुम हटा रहे हो।
अगर तुम अपने बचपन में डाले गये संस्कारों से मुक्त हो जाओ, तुम अचानक पाओगे, तुम एकजुट हो गये। तुम्हारे खंड-खंड इकट्ठे हो गये। तुम्हारे भीतर एक संगीत का जन्म हुआ, क्योंकि स्वतंत्रता का जन्म हुआ। तुम अब बंधे हुए नहीं हो, परतंत्र नहीं हो। यह मुक्ति का पहला कदम है। जिसने यह कदम न उठाया, मोक्ष की, अंतिम मंजिल की बात ही छोड़ दे। सपना न देखे। व्यर्थ की है बात। यही कठिनाई हुई है, मेरे पास आकर तुम्हारे मन में मोक्ष का सपना पैदा हुआ। और तुम पहला कदम उठाने को राजी नहीं हो।
"जैन-कुटुंब में जन्म हुआ। तीन वर्षों से आपको पढ़ता हूं।" उसी से अड़चन
हो गयी। अब तुम लौट भी नहीं सकते। अब तुम फिर उसी जगह वापस नहीं पहुंच सकते, जहां तीन साल पहले थे। अब कोई उपाय नहीं, लौटने का कोई मार्ग नहीं, विधि नहीं। और तुम मेरे साथ भी पूरे नहीं हो पा रहे हो। जिसने पूछा है, मुझे पता है, जब वह यहां आते हैं तो माला पहन लेते हैं, गेरुआ पहन लेते हैं। घर जाकर गेरुवा-माला दोनों छिपाकर रख देते हैं। वह घर लोगों को यही बता रहे हैं कि जैन हैं, और यहां आकर बताते हैं कि संन्यासी हैं। दुविधा तो होगी। घर जाकर वह घोषणा नहीं कर पाते हैं कि मैं सन्यासी हूं, कि मैंने एक मार्ग चुना--स्वेच्छा से।

"संन्यास भी ले लिया है।" इस वचन से ही साफ होता है कि संन्यास कोई आनंद की तरह घटित नहीं हुआ, जैसे मजबूरी में ले लिया--संन्यास भी ले लिया है! जैसे कोई मजबूरी है। जैसे कि लेना नहीं था और ले लिया। या, यह क्या कर लिया! संन्यास से छूटो, या अपने संस्कारों से छूटो। पीछे लौट सकते हो, तो मुझे भूल जाओ। उससे कोई मुक्ति न होगी, लेकिन कम से कम बंधन में ही सुख रहेगा। कारागृह को ही तुम महल समझोगे, बस इतना ही। लेकिन कारागृह को महल समझनेवाला निश्चिंत सोता है। जिस दिन तुम्हें कारागृह का पता चलता है कि यह महल नहीं है, कारागृह है, उस दिन अड़चन शुरू होती है। वह अड़चन शुरू हो गयी है।
मैं जानता हूं, लौटना संभव नहीं है। एक दफा कैदी को पता चल जाए कि यह कारागृह है, इसको मैंने अब तक महल समझा था वह गलत था--अब कोई उपाय नहीं है इस बात को भुला देने का। अब वह लाख उपाय करे, लाख पोते दीवालें कारागृह की, फूल-पत्ती लगाये, सजाये, कुछ फर्क नहीं पड़ता, याद रहेगी कि यह कारागृह है। वस्तुतः जितना छिपायेगा, उतनी ही याद सघन होगी कि यह कारागृह है।
मुल्ला नसरुद्दीन अपनी पत्नी के साथ एक रास्ते से गुजर रहा है। एक सुंदर युवती निकली, चौंककर नसरुद्दीन ने उसे देखा। मुल्ला की पत्नी ने कहा कि देखो, कोई भी सुंदर स्त्री निकली कि तुम भूल ही जाते हो कि तुम विवाहित हो। नसरुद्दीन ने कहा, भाग्यवान! वस्तुतः जब किसी सुंदर स्त्री को देखता हूं, तभी मुझे बहुत-बहुत याद आती है कि अरे, विवाहित हूं! निश्चित मुल्ला ठीक कह रहा है। पत्नी साथ हो और सुंदर स्त्री रास्ते पर मिल जाए, तो बड़ी याद आती है कि अरे! विवाहित हूं! सालती है पीड़ा और भी।
कारागृह को अगर तुमने साज-संवार लिया, जानकर, भुलाने को, तो कैसे भूलोगे? जानकर कोई भुला सकता है? तुम अगर किसी को भुलाने का उपाय करो, तो भुलाने में ही तो याद आती है। जितना भुलाना चाहो, उतनी याद सघन होती है। तो लौट तो तुम न सकोगे, लेकिन मैं कहता हूं, तुम अगर चाहो तो लौट सकते हो। लौट जाओ। बन पड़े तो लौट जाओ, न बन पड़े, तो फिर पूरे मेरे हो जाओ। अब दोनों के बीच तुम डांवांडोल आधे-आधे रहोगे, तो टूटोगे। इसलिए बहुचित्त होता जा रहा हूं, विक्षिप्त होता जा रहा हूं, टूटता जा रहा हूं। होगा। निर्णय लेना होगा अब। मेरे साथ होना है, तो पूरे मेरे साथ हो जाओ।
इसका यह अर्थ नहीं कि तुम महावीर के दुश्मन हो गये। मेरे साथ पूरे होकर एक दिन तुम पाओगे कि महावीर मिले। लेकिन यह होना साधारण अर्थों में जैन होना न होगा। जिसको मैं जिन होना कहता हूं--जैन होना नहीं। जैन होना तो परंपरा से है, परिवार से है; जिन होना, आत्मजयी होना, यह घटेगा। मगर इसके लिए साहस करना होगा। तो ही हो सकता है।
"संन्यास भी ले लिया है।" कुछ आनंद, उल्लास, कुछ अहोभाव तुम्हारे संन्यास में नहीं है अभी। अभी तुम्हारा संन्यास बड़ा थोथा है। अभी तुमने लिया है, यह कहना ठीक नहीं है। मैंने दिया है, इतना ही कहना ठीक है। मैं नहीं नहीं कर सका, इसलिए दे दिया है। इसे तुम मेरी सज्जनता समझो। तुमने अभी लिया नहीं है। तुमने जागकर होशपूर्वक अभीप्सा नहीं की है। तुमने प्राणपण से चाहा नहीं है। तुमने अपना संकल्प अर्पित नहीं किया है। तुम समर्पित नहीं हो। तुमने लिया होता तो हल हो जाता, सारा मामला उसी क्षण। उसी लेने में हल हो जाता है। क्योंकि उसी लेने में तुम इकट्ठे हो जाते। उसी लेने में तुम्हारे सारे खंड एक संगीत में बंध जाते, तुम्हारे सारे स्वरों के बीच एक लयबद्धता आ जाती। क्योंकि इतना बड़ा संकल्प हो और तुम्हें जोड़ न जाए!
नहीं, उलटी हालत घटी है। संन्यास लेने ने तुम्हें और तोड़ दिया। तुमने आधे-आधे मन से लिया। यह तुम्हारा संकल्प तुम्हारी आत्मा से नहीं उठा। यह तुमने औरों को लेते देखकर ले लिया होगा। यह तुम भीड़ के साथ चल गये--भीड़-चाल चले। तुमने औरों को प्रसन्न होते देखकर लोभ के कारण ले लिया होगा कि शायद संन्यास लेने से प्रसन्नता मिलती है। आनंद मिलता है। इसलिए ले लिया होगा। शायद मेरे आशीर्वाद से तुम्हारा जीवन धन्य हो जाएगा, इसलिए ले लिया होगा। तुमने भिखमंगे की तरह ले लिया होगा। तुमने सम्राट की तरह नहीं लिया।
तुमने अपने स्वयं के सहज-स्फूर्त भाव से नहीं लिया। शायद किसी भावुक क्षण

में ले लिया होगा। यहां आये होओगे, सुना होगा, समझा होगा, भावुक हो गये होओगे, भाव-क्षण घिर गया होगा, उस क्षण में उतर गये, फिर पीछे पछता रहे हो कि यह क्या कर लिया! इसीलिए तो कहते हो, संन्यास भी लिया है। अभी लिया नहीं। ले लो, गंगा बहती है, तब तक पी लो।
"फिर भी पारे की तरह बिखरा जा रहा हूं।" निर्णय नहीं कर पा रहे हो कि
अब क्या करना है। पुराने जड़-संस्कारों से बंधे रहना, या इस नयी स्वतंत्रता के रोपे को आरोपित किया है, इसको पानी सींचना, सम्हालना। दो के बीच उलझे हो।
तुमने सुनी उस गधे की कहानी, जिसके दोनों तरफ दो घास के पूरे लगे थे और
वह बीच में खड़ा था। वह तय न कर पाया कि इस तरफ के घास के पूरे से भोजन करूं, या उस तरफ के। जरा इधर झुकता तो ख्याल आता, उस तरफ का ज्यादा हरा है। जरा उधर झुकता तो ख्याल आता, इधर का हरा है। वह बीच में ही खड़े-खड़े मर गये।
दोनों तरफ पूरे रखे थे। भोजन पास था, दूर न था, लेकिन निर्णय न हो सका। दुविधा पैदा होती है जब तुम निर्णय नहीं कर पाते। द्वैत पैदा होता है जब तुम निर्णय नहीं कर पाते। दुई पैदा होती है जब तुम निर्णय नहीं कर पाते। निर्णय होते से द्वैत गिर जाता है। निर्णय अद्वैत है।
तो तुम तय कर लो। इधर मैं हूं, उधर तुम्हारे जैन-संस्कार हैं। तुम तय
कर लो। अगर तुम्हें वहां रस हो, लौट जाओ। मैं तुम्हें रोकूंगा नहीं। आनंद तुम्हें चाहे न मिले, कम से कम संतोष तो मिलेगा। चलो वही सही। कम से कम सुविधा तो रहेगी, चलो वही सही। लेकिन अगर तुममें हिम्मत है और मेरे साथ आ सकते हो, तो आश्वासन है--आनंद भी मिल सकता है। अहोभाव भी हो सकता है। तुम धन्यभागी हो सकते हो। लेकिन निर्णय तो करना पड़े, कीमत तो चुकानी पड़े। यह निर्णय करना ही कीमत चुकानी है। नहीं तो सभी कोई आनंद को उपलब्ध हो जाएं। जो निर्णय करते हैं, वही हो पाते हैं।
"जिन-सूत्र पर प्रवचन अच्छा लगता है। पर भोग में भी रस बहुत है।" जिन-सूत्र पर प्रवचन क्यों अच्छा लगता है? प्रवचन के कारण? तो जिन-सूत्र से क्या लेना-देना! जिन-सूत्र के कारण? तो प्रवचन से क्या लेना! जिन-सूत्र के कारण अच्छा लगता है, तो उसका अर्थ हुआ कि तुम्हारे अहंकार को तृप्ति मिलती है कि अहो, धन्यभाग, जैन-कुल में पैदा हुआ! ऐसी मूढ़ता सभी को सिखायी गयी है। हिंदू-कुल में पैदा हुए, धन्यभाग! भारत-भूमि में पैदा हुए, धन्यभाग! जैसे और सब अभागे हैं दुनिया में। जैनों को तो सिखाया जाता है बचपन से कि तुम जैन-कुल में पैदा हुए, धन्यभागी हो। एक तो मनुष्य होना दुर्लभ, फिर जैन होना! बिल्कुल दुर्लभ!
जिन-सूत्र पर प्रवचन अच्छा लगता है उसका कुल कारण इतना ही है कि तुम्हारे अहंकार को तृप्ति मिलती है, जब मैं कहता हूं महावीर ठीक, तुम्हें लगता है--बिल्कुल ठीक; तो हम भी ठीक, तो मैं भी ठीक! जब मैं कहता हूं गीता ठीक, कृष्ण ठीक, हिंदू अकड़ जाता है, कहता है--बिल्कुल ठीक। नहीं कि उसे मैं समझ में आ रहा हूं, कि कृष्ण समझ में आ रहे हैं, कि गीता समझ में आ रही है, उसे सिर्फ अहंकार में खुजलाहट आ रही है, खुरदुरी आ रही है। फुरफुरी आ रही है। वह इसका अहंकार मजा ले रहा है, वह कह रहा है--बिल्कुल ठीक। फूल के कुप्पा हो जाता है।
इसीलिए रस आ रहा होगा। यह रस नहीं है। बड़ा रुग्ण रस है। यह स्वस्थ नहीं है, यह बीमार है। यदि तुम मुझे सुनते हो, तो जो मैं कह रहा हूं उसकी फिकिर करो। तुम खूंटियों की फिकिर कर रहे हो। मैं क्या खूंटी पर टांग रहा हूं, उसकी फिकिर करो। गुठलियां गिन रहे हो, आम चूसो। मगर मन बड़ा पागल है। अगर महावीर की मैंने प्रशंसा कर दी, जैन अकड़कर चलने लगता है। तो वह कहता है कि फिर ठीक; तो हम जो मानते थे, बिल्कुल ठीक। तुम्हारी मान्यता को ठीक नहीं कह रहा हूं। जब मैं महावीर को ठीक कहता हूं तो मैं जैनों को ठीक नहीं कह रहा हूं, ध्यान रखना। अगर जैन ठीक हैं, तो महावीर गलत हैं। अगर महावीर सही हैं, तो जैन गलत हैं। महावीर और जैनों का क्या लेना-देना! इन्हीं दुष्टों के कारण तो सब खराब हुआ। इन्हीं ने तो डुबाया। ये खुद तो डूबे, महावीर को भी ले डूबे। महावीर इनसे मुक्त होते, तो... तो ज्यादा साफ होता आकाश। इन्हीं की बदलियां तो घिर गयीं, उनका सूरज ढक गया।

इन्हीं के कारण तो महावीर को समझना मुश्किल हो गया है। हिंदुओं के कारण कृष्ण को समझना मुश्किल। ईसाइयों के कारण जीसस को समझना मुश्किल। मुसलमानों के कारण मुहम्मद की फजीहत! क्योंकि जिसने मुसलमान को देखा, अनजाने जो मुसलमान कर रहा है उसका दोषारोपण मुहम्मद पर भी चला जाता है। जाएगा ही। जिसने जैन को गौर से देखा, वह महावीर के चरणों में सिर नहीं झुका सकता। क्योंकि अगर यह महावीर का परिणाम है, तो महावीर में कुछ दोष रहा ही होगा।
लेकिन ख्याल रखना, अनुयायी अकसर गुरु से उलटे होते हैं। शायद जीवित गुरु के पास जो अनुयायी इकट्ठे होते हैं, वे तो गुरु की थोड़ी-बहुत मानते-- थोड़ी बहुत कहता हूं, पूरी मान लेते तो न-मालूम कितने महावीर एक-साथ पैदा हो जाते--थोड़ी-बहुत मान लेते हैं; पर थोड़ी-बहुत सही, उतनी थोड़ी भी उनको बचा लेती है। फिर उनके बच्चे पैदा होते हैं, फिर उनके बच्चे पैदा होते हैं, महावीर दूर पड़ते जाते हैं। फिर महावीर एक पिटी हुई लकीर रह जाते हैं। जिसे तुमने नहीं चुना है, वह कभी भी तुम्हारे लिए जीवंत धर्म नहीं हो सकता। जो तुमने मां-बाप से ले लिया है, परंपरा से ले लिया है, संस्कार से ले लिया है, वह मुर्दा लकीर है। उसमें कोई प्राण नहीं।
तुम थोड़ा सोचो, तुम मेरे पास आये हो, तो तुम्हारे जीवन में एक उल्लास होगा। तुमने मुझे चुना है, खोजा है, तुम मर्जी से आये हो अपनी, कोई तुम्हें लाया नहीं--वस्तुतः रोकनेवाले बहुत हैं, लानेवाला तुम्हें यहां कौन है! हजार मिले होंगे रास्ते में जिन्होंने कहा होगा--अरे, कहां जाते हो, रुको! फिर भी तुम उनको पार करके आये हो। बहुत चलते हैं, थोड़े से पहुंच पाते हैं। बीच में अनेक लोग हैं रोकनेवाले, जो उन्हें रोक लेते हैं। तो तुम्हारे आने में तुम्हारा बल है, तुम्हारा संकल्प है। लेकिन तुम्हारे बच्चों को तुम मेरी किताबें दे जाओगे, मेरे चित्र दे जाओगे, माला सम्हाल जाओगे कि सम्हालकर रखना, इस माला से हमने बहुत पाया। वह पाना तुम्हारे संकल्प से हुआ था, माला से नहीं। इन पुस्तकों से हमें बड़ी ज्योति मिली। वह ज्योति तुम्हारी खोज से मिली थी। ये बच्चे इन किताबों को रखकर पूजा करते रहेंगे, ये इन्हें खोलेंगे भी नहीं। और कभी खोलेंगे भी, तो इनका कभी भी हृदय का स्पर्श न हो सकेगा, क्योंकि जो स्वयं नहीं चुना है... ।
फर्क समझो।
एक युवक एक युवती के प्रेम में पड़ जाता है, यह एक बात है। फिर बाप जाता
है उस युवक का, पंडे-पुजारी से मिलता है, ज्योतिषियों से मिलता है, फिर किसी दूसरी लड़की से उसका विवाह तय करता है। पूछो उस युवक से क्या फर्क है? जिससे वह स्वयं प्रेम में पड़ गया है, वह जान देने को तैयार है। जिससे बाप उसका विवाह करवा देना चाहता है, वह समझता है यह फंदा हो रहा है, फांसी लग रही है। दोनों स्त्रियां हैं। यह भी जरूरी नहीं है कि बाप ने जो स्त्री चुनी है, वह प्रेयसी से कम सुंदर हो--ज्यादा भी हो सकती है। निश्चित ही बाप ज्यादा होशियार है। ज्यादा जीवन देखा है। वह ज्यादा सुंदर, स्वस्थ, कुलीन, सुशिक्षित, संपन्न परिवार चुनेगा। वह हजार बातें सोचेगा, जो बेटा अभी जान भी नहीं सकता, सोच भी नहीं सकता। बेटा तो अंधे की तरह किसी भी लड़की के प्रेम में पड़ सकता है। बाप हजार बातें सोचेगा, आगे की, पीछे की, सब हिसाब लगायेगा। बाप गणित से चलेगा, तर्क से चलेगा। बेटा प्रेम से चल रहा है। लेकिन बेटा जिसके प्रेम में पड़ गया है, उस पर जान देने को तैयार है। और जिससे उसका विवाह किया जा रहा है, वह जबर्दस्ती घसीटा जाएगा--जैसे बलि का पशु बूचड़खाने की तरफ घसीटा जाता है, ऐसा अनुभव करेगा। उसे लगेगा मौत हो रही है मेरी।
यही फर्क धर्मों का भी है। जो धर्म तुमने चुना, वह तो तुम्हारा प्रेम है। और जो धर्म तुम्हें मां-बाप से मिला, वह तुम्हारा विवाह है। विवाह कभी प्रेम नहीं हो पाता। और जिस दिन प्रेम विवाह हो जाता है, उस दिन प्रेम मर जाता है। या जिस दिन कभी विवाह प्रेम बन जाता है, उस दिन विवाह समाप्त हो जाता है। प्रेम बड़ी बात और है। क्या है फर्क? तुमने चुना, स्वतंत्रता से चुना। अपने भाव से चुना। अपने हृदय से चुना। कोई गणित न बिठाया, कोई चालाकी न की। कोई दुनियादारी न की। भोलेपन से चुना।

तो तुम्हारे बेटों को तुम अगर मुझे दे गये कि सम्हालकर रखना, वह सम्हालकर रखेंगे, वह पूजा भी करेंगे, लेकिन मैं उनके लिए बोझ हो जाऊंगा, जो गलती तुम्हारे मां-बाप ने की है, वह तुम मत करना। तुम्हारा मेरा नाता निजी है, वैयक्तिक है। इसे तुम थोप मत जाना। हां, अगर तुम्हें कुछ मिला हो, तुमने कुछ पाया हो तो अपनी संपदा उखेड़कर बता जाना अपने बच्चों को कि हमने पाया था, इस तरह खोजा था, तुम भी खोजना। शायद तुम्हें भी मिल सके। मिलता है, इतना आश्वासन दे जाना। तुम्हारे आनंद से उनको प्रमाण मिल जाए कि जगत में परमात्मा है। बस काफी है। फिर वे खोज लेंगे अपना परमात्मा। खुद ही खोजेंगे, तो ही मजा आयेगा। मुफ्त मिलेगा, तो बे-मजा हो जाता है। "जिन-सूत्र पर प्रवचन अच्छा लगता है।" तो कहीं भूल हो रही है अभी। जो मैं कह रहा हूं, उसे सुनो, बहानों पर ध्यान मत दो। बहानों पर ध्यान गलत दृष्टि के कारण जाता है। अकसर ऐसा होता है कि मैं वही कहता हूं महावीर के नाम पर, वही कहता हूं बुद्ध के नाम पर। ठीक वही बात कहता हूं। लेकिन जब बुद्ध के नाम पर कहता हूं, तब जैन बैठा रहता है, उसको कुछ रस नहीं आता। जब महावीर के नाम पर कहता हूं, तब वह सजग होकर सुनने लगता है, उसकी रीढ़ सीधी हो जाती है। तो तुम अपने अहंकार को पूज रहे हो। न तुम महावीर को पूज रहे, न बुद्ध को पूज रहे।
"जिन-सूत्र पर प्रवचन अच्छा लगता है, पर भोग में रस बहुत है।" दोनों का कारण जिन-सूत्र है। जिन-सूत्र पर प्रवचन अच्छा लगता है। क्योंकि बचपन से वही सुना है, पकड़ा है, पकड़ाया गया है। अबोध थे तब से तुम्हारा मन उसी से आरोपित किया गया है। और उसी के कारण भोग से भी छुटकारा नहीं होता, क्योंकि बचपन से ही दमन सिखाया गया है। जिन-सूत्र की जिन्होंने व्याख्या की है, उन्होंने ऐसी गलत व्याख्या की है कि जिन-सूत्र का पूरा अर्थ दमनात्मक हो गया है, रिप्रेसिव हो गया है। दबाओ। कुछ भी स्वीकार नहीं है। निषेध करो। कुछ भी विधेय नहीं है। काटो। पापी बना गये हैं वे सूत्र और उनकी व्याख्याएं तुम्हें। होना तो उलटा चाहिए था। महावीर की तो आकांक्षा वही थी, कि तुम्हारे भीतर के परमात्मा का तुम्हें स्मरण आये। लेकिन तुम्हारे साधु-संत तुम्हें सिर्फ तुम्हारे पापी की याद दिला-दिलाकर अपराध से भर गये हैं।
तो तुमने जीवन में जिन-जिन चीजों को पाप मानकर दबा रखा है, उन-उन में
रस बहुत आयेगा। भोग को दबाया, तो भोग में रस आयेगा। काम को दबाया, काम में रस आयेगा। लोभ को दबाया, तो लोभ नये-नये रूपों में प्रगट होगा। क्रोध को दबाया, तो नयी-नयी भाव-भंगिमाएं क्रोध धारण करेगा। जो दबाया, उससे छुटकारा कभी भी न होगा। दबाने से कोई मुक्ति नहीं आती। समझो, जागो। अगर भोग में रस है, तो भोग से भागो मत। जागो; भोग में ही खड़े-खड़े जागो। तुम्हारा जागरण ही तुम्हें भोग से छुटकारा दिलायेगा।
तो मैं नहीं कहता कि भागो। भागने से क्या होगा? भोग भीतर है, तुम जहां जाओगे वहीं तुम्हारे साथ चला जाएगा। यह कोई बाहर रखी चीज थोड़े ही है, कि पीठ कर ली और भाग खड़े हुए, तो दूर छूट गयी। यह तुम्हारे अंतस में है। इसे मिटाने का एक ही उपाय है--इसे जानना। ज्ञान क्रांति है। और ज्ञान एकमात्र क्रांति है। और तरह की क्रांति होती ही नहीं।
तो अगर भोग में रस है, तो घबड़ाओ मत, रस लो। जागकर लो। भोगो। इसका इतना
ही अर्थ है कि तुम भोग से अभी गुजरे नहीं। गुजरने के पहले तुमने निंदा कर ली। संसार को अभी जाना नहीं; जानने के पहले त्याज्य समझ लिया। नहीं, व्यर्थता को देखना पड़ेगा। तभी संसार छूटता है। गुजरना पड़ेगा, अनुभव से, अनुभव की पीड़ा से। अनुभव की अग्नि से जलना, तपना पड़ेगा।
"फिर परंपरा और संस्कार पांव पर बेड़ी की तरह पड़े हैं।" पड़े नहीं हैं, तुम उन्हें पकड़े हुए हो। बेड़ियां कोई बांधे नहीं है, तुम उन्हें सम्हाले हुए हो। कौन तुम्हें रोकता है। छोड़ो। तुम्हारे छोड़ते ही वे छूट जाएंगी। लेकिन भय है, घबड़ाहट है। यह बड़े मजे की बात है--बड़ी विडंबना की भी--कि जिससे कुछ भी नहीं मिलता उसको भी हम पकड़े रहते हैं, सम्हाले रहते हैं थाती की तरह, धरोहर की तरह। तुम कूड़ा-कर्कट भी बाहर नहीं फेंक पाते हो, उसको भी तिजोड़ी में सम्हाले जाते हो।

अगर तुम्हें दिखायी पड़ गया है कि यह बेड़ियां हैं, तो अड़चन क्या है, अब छोड़ो। तोड़ो, गिरा दो। एक क्षण में यह घट सकता है। लेकिन शायद तुम्हें दिखायी नहीं पड़ रहा है। यहां भी तुमने मेरी बातें सुन-सुनकर मान ली हैं। यह तुम्हारी समझ अभी बनी नहीं है। इसलिए तुम एक तरकीब निकाल रहे हो। तुम कहते हो बेड़ियां बांधे हुए हैं। बांधे हुए कौन है! संस्कार कहां बांधे हुए हैं! तुम कह दो कि बस क्षमा, अब बहुत हो गया; तुमसे कुछ भी न पाया, अब मुझे तुमसे मुक्त होकर कुछ खोज लेने दो। मंदिर हो आये बहुत बार, कुछ न मिला, अब क्यों रोज चले जाते हो! आदत न बनाओ मंदिर जाने की। धर्म आदत नहीं, स्वभाव है। आदत में स्वभाव दब जाता है। जिस मूर्ति के सामने सिर झुका-झुकाकर थक गये, माथा घिस डाला, मूर्ति भी खराब कर डाली, अब उसको कहो कि बहुत हो गया; हम भी थक गये, तुम भी थक गये होओगे, अब मुझे क्षमा करो!
लेकिन कहीं और अड़चन है। जिसको तुम बेड़ियां कह रहे हो, वह मेरा शब्द तुमने उपयोग कर लिया, तुम्हारा नहीं। तुम्हारे मन में तो भीतर कहीं है कि यह बेड़ी बड़ी मूल्यवान है, सोने की है, हीरे-जवाहरात जड़ी है, इसको छोड़ कैसे दें! इसमें तो बड़ा रहस्य है। तो नहीं छूट पायेगी। तो फिर कैसे छूटेगी! अगर तुम बीमारी को स्वास्थ्य समझे बैठे हो, तो तुम कैसे इलाज करोगे? अगर तुमने गलत को ठीक समझ रखा है, अंधेरे को प्रकाश समझ रखा है, कांटे को फूल समझ रखा है, तो फिर तुम कैसे मुक्त हो सकोगे!
देखो ठीक से, अगर बेड़ी है, तो तोड़ो। तोड़ने के लिए कुछ भी नहीं करना पड़ता, सिर्फ समझ में आ जाए कि बेड़ी है, छूट जाती है। तुम हाथ में कंकड़-पत्थर लिए जा रहे हो और कोई मिल जाए और कह दे कि कंकड़-पत्थर हैं, तो क्या तुम पूछोगे कि अब इन कंकड़-पत्थरों को कैसे छोडूं? यह पूछना तो तभी संभव है, जब तुम्हारे भीतर मन में तो तुम मानते हो कि हैं तो हीरे-जवाहरात, यह आदमी कह रहा है कंकड़-पत्थर; इस आदमी को भी इनकार करना मुश्किल है, इस आदमी के तर्क में बल है और भीतर का संस्कार भी कहता है--कंकड़-पत्थर! ये हीरे-मोती हैं, कंकड़-पत्थर नहीं हैं, अब करें क्या? तुम उस आदमी से पूछते हो, इन्हें छोड़ें कैसे? या तो ये हीरे-मोती हैं, छोड़ने की जरूरत नहीं। या फिर ये कंकड़-पत्थर हैं, छोड़ने की जरूरत क्या है? छूट ही जाने चाहिए। गिरा दो, हाथ अलग खोल दो। मुट्ठी खोलो। घबड़ाओ मत! जिससे कुछ भी नहीं मिला है, उसे छोड़ने से कुछ हानि न हो जाएगी। लेकिन लोग तो दुख छोड़ने तक में डरते हैं। दुख तक को पकड़ लेते हैं, कम से कम पुराना है, पहचाना हुआ है।
यहां कुछ भी मूल्यवान नहीं है, जो तुम पकड़े हुए हो। और जो मूल्यवान है, उसे पकड़ने की कोई जरूरत नहीं है, वह तुम्हारा स्वभाव है। जिस जैन-धर्म को तुमने पकड़ा है, वह तो केवल परंपरा है, लीक है। जिस जिन-धर्म की मैं बात कर रहा हूं, वह तुम्हारा स्वभाव है। सब लीकें, सब परंपराएं छोड़ दोगे, तब तुम पाओगे उसका आविर्भाव हुआ।
झूठ क्यों बोलें फरोगे-मसलहत के नाम पर
जिंदगी प्यारी सही लेकिन हमें मरना तो है
झूठ क्यों बोले फरोगे-मसहलत के नाम पर
हित-अहित के नाम पर झूठ क्यों बोलें?
जिंदगी प्यारी सही लेकिन हमें मरना तो है।
कितनी ही प्यारी हो जिंदगी, छूट ही जानी है, मरना है। इस जिंदगी के लिए, इस जिंदगी के हित और अहित के लिए, कल्याण-अकल्याण के लिए झूठ क्यों बोलें? जो छूट ही जाना है, वे समझदार के लिए छूट ही गया। जो जिंदगी मिट ही जानी है, वह मिटी ही पड़ी है। फिर वह यह नहीं कहता कि अब जिंदगी की रक्षा के लिए झूठ बोलना जरूरी है। जिंदगी की कोई रक्षा हो ही नहीं सकती, जिंदगी तो जाएगी ही, तो थोड़ी सुख-सुविधा में बीती कि थोड़ी असुविधा में बीती, क्या फर्क पड़ता है! सपना सुबह टूट ही जाएगा, सपने में भिखारी रहे कि राजा रहे, क्या फर्क पड़ता है! गरीब की तरह जीए कि अमीर की तरह जीए, क्या फर्क पड़ता है! प्रतिष्ठित की तरह जीए कि अप्रतिष्ठित की तरह जीए; लोगों ने आदर दिया कि अनादर दिया, क्या फर्क पड़ता है! जिंदगी छूट ही जानी है।
जिंदगी प्यारी सही, लेकिन हमें मरना तो है

एक बार यह समझ में आ जाए, तो फिर तुम जंजीरों को छोड़ने में कोई अड़चन न पाओगे।
डर क्या है? प्रतिष्ठा मिलती है जंजीरों से। जिसके पास जितनी बड़ी जंजीरें हैं, उतनी बड़ी प्रतिष्ठा है। लोग कहते हैं, देखो, कितनी बड़ी जंजीरें हैं इस आदमी के पास, कितने हीरे-मोती जड़ी, सोने की, खालिस सोने की बनी--चौबीस कैरेट सोने की बनी! जितने तुम जंजीरों में जकड़े हो, उतनी तुम्हें प्रशंसा मिलती है। क्योंकि समाज तुम्हें मुक्त नहीं देखना चाहता। समाज के लिए यही सुविधा है कि तुम जंजीरों में रहो। जैसे ही तुम जंजीरें तोड़ोगे, तुम्हारी प्रतिष्ठा खोने लगेगी। लोग तुम्हें सम्मान न देंगे।
एक जैन-साधु मुझे मिलने आये, कुछ वर्ष पहले। मैंने उनसे पूछा कि सच-सच कहो, मिला क्या है तुम्हें? पचास वर्ष से तुम जैन-मुनि हो, पाया क्या है? जब तेरह-चौदह वर्ष के थे, तब मां-बाप ने दीक्षा दे दी। मां-बाप भी मुनि हो गये थे, तो उन्होंने उन्हें भी मुनि बना लिया। वह कहने लगे, आपसे छिपा नहीं सकता, पाया कुछ भी नहीं। फिर मैंने कहा, जब पाया नहीं, तो पचास साल काफी नहीं हैं अनुभव के लिए कि यहां कुछ मिला नहीं, कहीं और खोजें, जिंदगी खोती जा रही है? उन्होंने कहा, बड़ा मुश्किल है। प्रतिष्ठा मिली, सम्मान मिला, अहंकार की पूजा हुई--हजारों लोग मेरे चरण छूते हैं--कुछ और नहीं मिला। भीतर बिल्कुल खाली हूं, लेकिन बाहर बड़ा सम्मान है। और अगर इसे मैं छोड़ दूं, तो जो मेरे पैर छूते हैं वे मुझे घर में बुहारी लगाने की नौकरी भी देने को राजी न होंगे। न मैं पढ़ा-लिखा हूं, न मेरी कोई और योग्यता है। बस मेरी योग्यता यही कि मैं उपवास कर सकता हूं। अब यह भी कोई योग्यता है, कि भूखे मर सकते हैं! मेरी योग्यता यही है कि मैं कष्ट सह सकता हूं। यह भी कोई योग्यता है! कष्ट सहना कोई योग्यता है! मुर्दे की तरह जी सकता हूं, यही योग्यता है।
ख्याल करना, तुम जिन जंजीरों को पकड़े हो, उनके साथ प्रतिष्ठा जुड़ी होगी। मंदिर आदमी जाता है, क्योंकि लोग समझते हैं धार्मिक है। न जाए, तो लोग समझते हैं अधार्मिक है। लोग दान भी कर लेते हैं, गीता भी रखकर पढ़ लेते हैं, कुरान भी रखकर पढ़ लेते हैं, ताकि लोगों को लगता रहे कि धार्मिक--बड़े सज्जन--साधु-चरित्र! लोग चरित्र को भी पकड़े रखते हैं। व्रत-नियम भी बांधे रखते हैं। मगर यह सब अहंकार की ही पूजा चल रही है। और आत्मा को पाना हो, तो इस पूजा से छुटकारा करना ही होगा। क्योंकि यही तो बाधा है।
"कृपया मार्ग-दर्शन दें।" तुम्हारे प्रश्न में ही तुम्हारा उत्तर छिपा है। हिम्मत करो। कायर न रहो। थोड़ा साहस करो। दांव पर लगाओ। यहां खोने को तो कुछ भी नहीं है, अगर सब खो भी गया और कुछ भी न मिला, तो भी कुछ नहीं खोता है।
लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, जिसने हिम्मत की है दांव पर लगाने की उसने जरूर पा लिया है। मगर मुफ्त कुछ भी नहीं मिलता है। हर चीज की कीमत चुकानी पड़ती है। तुम आत्मा को पाने चले हो, मुफ्त पाने चले हो। कीमत चुकाओ। यद्यपि जब आत्मा मिलेगी, परमात्मा का दर्शन होगा, तब तुम पाओगे जो कीमत चुकायी थी, वह तो कुछ भी न थी। जो मिला है, वह तो अमूल्य है। उसको किसी कीमत से चुकाना संभव नहीं। कुबेर के सारे खजाने भी उलीच देने से उसकी कीमत चुकनेवाली नहीं है। घबड़ाओ मत--
जिस्म की मौत कोई मौत नहीं होती है
जिस्म मिट जाने से इंसान नहीं मर जाते
धड़कनें रुकने से अरमान नहीं मर जाते
सांस थम जाने से ऐलान नहीं मर जाते
होंठ जम जाने से फरमान नहीं मर जाते
जिस्म की मौत कोई मौत नहीं होती है।
शरीर भी मर जाए, तो भी तुम नहीं मरते हो। मन भी मर जाए, तो भी तुम नहीं मरते हो। वस्तुतः जैसे ही तुम जानने लगते हो कि शरीर की मृत्यु मेरी मृत्यु नहीं, मन की मृत्यु मेरी मृत्यु नहीं, वैसे ही तुम्हें पहली दफा महाजीवन की झलक मिलनी शुरू होती है। पहली दफा अंधेरे में दीया जलता है।

तो व्यर्थ मूल्यों को मूल्य मत दो। प्रतिष्ठा, सम्मान, सत्कार, रिस्पेक्टेबिलिटी--झाड़ो, बुहारो, कूड़ा-कर्कट इकट्ठा करो, कचराघर में फेंक आओ। इसे घर में रखने की जरूरत नहीं है।

चौथा प्रश्नः आपके प्रवचन पढ़ने में रस आया, पुस्तकें यहां खींच लायीं; लेकिन अब शब्द समझ में नहीं पड़ते। आंखें आपको निहारती रहती हैं और मिंच जाने पर मस्तक नत हो रहता है। क्या यही रूपांतरण है मन से आत्मा की तरफ?

निश्चित ही। शब्द कब तक सुनते रहोगे? शून्य सुनना पड़ेगा। वाणी में कब
तक उलझे रहोगे? वाणी के पार चलना होगा। यह बात जो मैं तुमसे कह रहा हूं, कानों से सुनने की नहीं, हृदय से सुनने की है। और यह जो इशारे मैं तुम्हें कर रहा हूं, आंखों से देखने पर समझ में न आयेंगे, आंखें बंद होंगी तभी समझ में आयेंगे।
यह जो मैं तुमसे कह रहा हूं, इस कहने पर बहुत ज्यादा निर्भर मत रहना।
इस कहे हुए के किनारे-किनारे अनकहा हुआ भी भेज रहा हूं। हर दो शब्दों के बीच में जो खाली जगह है, वहीं तुम मुझे पकड़ना। जब मैं चुप रह जाता हूं, तब मुझे गौर से सुनना। शब्द छूट जाएं, हर्ज नहीं, शून्य न चूकने पाये। इसलिए कभी-कभी ऐसा होगा कि सुनते-सुनते एक तारी लग जाएगी। एक लय बंध जाएगी। एक अनूठे रस में सरोबोर होने लगोगे। उस क्षण ऐसा भी लगेगा कि अब कुछ सुनायी नहीं पड़ता, अब कुछ दिखायी नहीं पड़ता, लेकिन मस्तक झुकने लगेगा। वह झुकना बड़ा सांकेतिक है। वह समर्पण का सूचक है। उसे तोड़ना मत। उस तंद्रा को हिलाना मत। वैसी तंद्रा समाधि की पहली झलक है।
यह मत सोचना कि यह मैं क्या कर रहा हूं, सुनने आया था, सुनना तो चूका जा रहा है! देखने आया था, आंखें तो बंद हुई जा रही हैं! यहां जो देखने को है, वह आंख बंद करके ही देखने को है। और यहां जो सुनने को है, वह जब तुम झुकोगे तभी सुनायी पड़ेगा। तो मैंने जो कहा, अगर वह याद भी न रहे, फिकिर मत करना। क्योंकि यहां हम कोई परीक्षा देने नहीं बैठे हैं किसी विश्वविद्यालय की, कि मैंने जो कहा वह तुम्हें याद रहे। उसके नोट मत लेना। उसको मन में फिकिर मत करना। यहां तो कुछ और ही घट रहा है बोलने के बहाने। यहां तो बोलने के बहाने हृदय और हृदय का मेल बनाने की चेष्टा चल रही है। यह बोलना तो ऐसे ही है जैसे छोटे बच्चों को हम खिलौना दे देते हैं कि खेलो। बच्चे खिलौने के खेल में लग जाते हैं, तो शांत हो जाते हैं। उपद्रव नहीं करते। ऐसा ही मेरा बोलना है। यह तो खिलौने हैं, तुम्हारी बुद्धि को कि खेलो। जब तुम्हारी बुद्धि खेल-खिलौने में उलझी है, तब मैं तुम्हारे हृदय के पास हूं। बुद्धि का उपद्रव बंद है, वह अपने खिलौनों में उलझी है, तुम्हारा हृदय मेरे करीब सरककर आ सकता है। अगर ऐसा घटने लगे, घटने देना। परिपूर्ण भाव से घटने देना। क्योंकि वही लक्ष्य है।
अरबाबे-जुनूं पर फुरकत में
अब क्या कहिये क्या-क्या गुजरी
आये थे सवादे-उल्फत में
कुछ खो भी गये कुछ पा भी गये
प्रेम के यात्रियों पर प्रेम की यात्रा में क्या-क्या गुजरी? अरबाबे-जुनूं पर फुरकत में
अब क्या कहिये क्या-क्या गुजरी
आये थे सवादे-उलफत में
आये थे प्रेमनगर की सीमा में।
आये थे संवादे-उलफत में
कुछ खो भी गये कुछ पा भी गये
यहां कुछ खोयेगा, तो ही कुछ पाया जाएगा। यहां जितना खोयेगा, उतना ही पाया जाएगा। इधर तुम अगर बिल्कुल खो गये, तो सब कुछ पा गये। यहां से अगर बचे-बचे चले गये, तो खाली आए खाली चले गये। झुको। झुक जाओ। समग्र मन-प्राण से झुक जाओ। यही तो सदा से भक्तों की गहन प्रार्थना रही है--

दूर मत करना चरण से!
छोड़ कर संसार सारा,
है लिया इनका सहारा,
यदि न ठौर मिला यहां भी क्या मिला फिर मनुज-तन से! दूर मत करना चरण से!!
कलुष जीवन पुण्य होगा,
स्वप्न, सत अक्षुण्ण होगा,
छू सकूं प्रिय पग तुम्हारे प्यार के गीले नयन से!
दूर मत करना चरण से!!
यदि तुम्हारी छांह-चितवन--
में पले यह क्षुद्र जीवन
है अटल विश्वास जीवन छीन जाऊंगा मरण से!
दूर मत करना चरण से!
वह जब तुम झुक रहे हो, तब ऐसे गहरे भाव से झुकना कि प्रभु-चरणों में झुक रहे हैं, कि परमात्मा में झुक रहे हैं।
दूर मत करना चरण से!!
यदि तुम्हारी छांह-चितवन
में पले यह क्षुद्र जीवन
तुमझुके कि छाया में आये परमात्मा की। अकड़े खड़े रहो, तो अहंकार की धूप में जलते रहोगे। झुके कि आये छाया में। मिली छाया।
यदि तुम्हारी छांह-चितवन
में पले यह क्षुद्र जीवन
है अटल विश्वास जीवन छीन जाऊंगा मरण से!
दूर मत करना चरण से!!"
भाग्यशाली हो अगर झुकने की कला आ रही है। इस भाग्य को भोगो। इस भाग्य
को साथ-सहयोग करो। इस भाग्य में बाधा मत डाल देना। इस घटती हुई घटना में किसी तरह का अवरोध खड़ा मत कर देना। तुम्हारे झुकने में ही कुंजी है। वहीं से द्वार खुलता है मंदिर का।

आखिरी प्रश्नः जानने की चाह में मैंने रात को दिन रचते देखा। ऐसा क्यों हुआ?

जो भी जानने चलेगा, वह एक न एक दिन उस पड़ाव पर पहुंचता है, जहां विपरीत मिलते हुए दिखायी पड़ते हैं। जहां दिन और रात विपरीत नहीं होते। जहां दिन और रात एक ही प्रक्रिया के दो अंग होते हैं।
रात ही तो दिन को रचती है। रात के गर्भ में ही तो दिन पलता है। और फिर दिन के गर्भ में रात रची जाती है। दिन ही तो रोज रात को जन्म दे जाता है। रात ही तो रोज फिर दिन को पुनरुज्जीवित कर जाती है। जीवन में ही तो मौत पलती है। मौत से ही तो जीवन उमगता है। पतझड़ में ही तो वसंत के पहले चरण सुनायी पड़ते हैं। वसंत फिर पतझड़ के लिए तैयारी कर जाता है। पुराने गिरते पत्तों के पीछे झांकते नये पत्तों को देखो। नये झांकते पत्तों के पीछे फिर पुराने गिरते पत्तों की कथा लिख जानेवाली है।
यहां जीवन में द्वंद्व, द्वंद्व नहीं है, द्वंद्व परिपूरकता है। यहां कुछ विरोध नहीं है, अविरोध है। दो दिखायी पड़ते हैं, क्योंकि हमें अभी देखने की गहरी पकड़ नहीं आयी, सूझ नहीं आयी, परिप्रेक्ष्य नहीं है। अभी दृष्टि गहरी नहीं है। इसलिए दो दिखायी पड़ते हैं। जब दृष्टि गहरी होगी, तो तुम पाओगे एक ही बचा। यही तो अद्वैत का सार है। खोजने जो चले, उन्हें एक न एक दिन पता चला, जीवन और मृत्यु एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। सुख और दुख; सफलता, असफलता; शांति, अशांति; संसार, संन्यास; सभी एक ही पहलू के दो हिस्से हैं।
जिस दिन यह दिखायी पड़ता है--यह पड़ाव है, यह आखिरी पड़ाव है, इसके बाद मंजिल है--जिस दिन यह दिखायी पड़ता है कि द्वंद्व नहीं है और सभी द्वैत एक ही में जुड़े हैं, बस मंजिल करीब आ गयी। यह आखिरी पड़ाव है। इसके बाद जो बचता

है, उसे तो एक कहना भी ठीक नहीं; क्योंकि जहां दो ही नहीं बचे, वहां एक कैसे कहें! इस पड़ाव तक दो रहते हैं, इस पड़ाव पर दो एक हो जाते हैं, इसके बाद तो एक भी कहना उचित नहीं। इसलिए तो वेदांत परमात्मा को एक नहीं कहता, कहता है-- अद्वैत। दो नहीं। बस इतना ही कहा जा सकता है--दो नहीं। इसलिए तो महावीर कहते हैं, परमात्मा और आत्मा ऐसा नहीं, आत्मा ही परमात्मा। वे भी अद्वैत की ही बात बोल रहे हैं, अपने ढंग से, एक ही। मगर एक कहना ठीक नहीं, क्योंकि एक से दो का ख्याल उठता है, दो से तीन का ख्याल उठता है, तीन से चार का ख्याल उठता है। एक का कोई अर्थ ही नहीं होता अगर और संख्याएं न हों। और वह इतना एक है कि वहां और कोई संख्या नहीं।
ध्यान गहरा होगा, तो वह पड़ाव आयेगा जहां द्वंद्व मिट जाते हैं। तब दौड़ना, अब घर बहुत करीब आ गया; अब तुम ठीक सामने ही खड़े हो। अब दर्शनशास्त्र में मत उलझ जाना। अब यह प्रश्न मत पूछो मुझसे कि "जानने की चाह में मैंने रात को दिन रचते देखा, ऐसा क्यों हुआ?" अब यह "क्यों" उठाया तो तुम वापिस लौट पड़ोगे। "क्यों" उठाया कि फिर चिंतन-विचार शुरू हुआ। अब छोड़ो, अब भूलो। अब यह "क्यूं" और "क्या", अब यह दर्शन और विज्ञान छोड़ो। अब तो दौड़ प.ड़ो। यह आखिरी पड़ाव है, इससे बिल्कुल सामने मंजिल है। अब तो सीधे घुस जाओ उस अद्वैत में।
हर सुबह शाम की शरारत है
हर हंसी अश्रु की तिजारत है
मुझसे पूछो न अर्थ जीवन का--
जिंदगी मौत की इबारत है।
सब जुड़े हैं। सब इकट्ठे हैं।
कफन बढ़ा तो किसलिए नजर तू डबडबा गयी
सिंगार क्यों सहम गया, बहार क्यों लजा गयी
न जन्म कुछ, न मृत्यु कुछ, बस इतनी सिर्फ बात है--
किसी की आंख खुल गयी, किसी को नींद आ गयी
आंख खुलने और बंद होने का ही फर्क है। आंख बंद हो गयी, मर गये। आंख खुल गयी, जन्म गये। इतना ही फर्क है--आंख खुलने और बंद होने का। और जिस पर आंख खुलती और बंद होती है, वह तो न तो जन्मता और न मरता। तुम्हारी आंख की झलक बंद होती रहती है, खुलती रहती है--आंख झपकती रहती है। तुम बिना झपके भीतर मौजूद हो। सृष्टि है परमात्मा की आंख का खुल जाना। प्रलय है परमात्मा की आंख का झप जाना। लेकिन दोनों के पीछे जो छिपा है--शाश्वत चैतन्य, वह न तो कभी जन्मता, न कभी मिटता। न उसका कोई जन्म है, न कोई मृत्यु है। न कोई दुख है, न कोई सुख है। न कोई हार है, न कोई जीत है।
जब ऐसा तुम्हें लगे कि तुम उस जगह आ गये जहां रात दिन को जन्म देती दिखायी पड़ती है, तो अब भूलकर भी प्रश्न मत उठाना। प्रश्न भटका देंगे।
क्योंकि प्रश्न उत्तर में ले जाएंगे, उत्तर और प्रश्नों में ले जाएंगे।
फिर तुम वापस आ गये। इस घड़ी तो सब प्रश्न-उत्तरों की गठरी बांधकर फेंक देना, दौड़ पड़ना। निर्भार होकर, घुस जाना उस अनंत में।
बहुत से लोग ध्यान से लौट आये हैं। समाधि तक नहीं पहुंच पाते।
क्योंकि ध्यान के आखिरी पड़ाव पर फिर प्रश्न बड़े प्रबल होकर उठते हैं। वस्तुतः बहुत प्रबल होकर उठते हैं। क्योंकि मन अपनी आखिरी चेष्टा करता है, अंतिम चेष्टा करता है। जैसे सुबह होने के पहले रात खूब अंधेरी हो जाती है। या दीया बुझने के पहले ज्योति खूब लपककर जलती है। या मरने के पहले आदमी एकदम स्वस्थ मालूम होने लगता है--बीमार आदमी भी। आखिरी उफान आता है, आखिरी ज्वार आता है जीवन का। ऐसे ही मन भी मरने के पहले, खोने के पहले बड़ी प्रबलता से प्रश्न उठाता है। उस वक्त अगर तुम जरा चूके, तो मन तुम्हें खींच लेगा।
बच्चों का खेल देखा है? सीढ़ी और सांप--लूडो। तो बच्चे खेलते हैं। सीढ़ी
से तो चढ़ जाते हैं, सांप से नीचे उतर आते हैं। अगर सीढ़ी पर पहुंच जाते हैं, तो ऊपर चढ़ते हैं। अगर सांप का मुंह पकड़ जाता है, तो नीचे उतर आते हैं। पासे फेंकते हैं। निन्यानबे के आंकड़े पर भी सांप का मुंह है। अगर सौ पर पहुंच गये, तो जीत गये। लेकिन निन्यानबे तक भी सांप का मुंह है।

जीवन का खेल भी ऐसा ही खेल है। सीढ़ी और सांप! यहां आखिरी चरण निन्यानबे डिग्री पर भी, जब मन बिल्कुल मिटने के करीब होता है, सांप का मुंह खुलता है--आखिरी बार--अगर वहां सावधानी न बरती, सांप की पूंछ तुम्हें फिर वहां ले आती है जहां से फिर लंबी यात्रा है।
नहीं, इस जगह प्रश्न मत पूछो। इस जगह तो निष्प्रश्न होकर, लो छलांग।
ध्यान लगा है, समाधि करीब है। उतर जाओ।
और समाधि में सब समाधान है। इसीलिए तो उसे समाधि कहते हैं।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग दो
तेरहवां प्रवचन

गुरु है मन का मीत

जह कंटएण विद्धो, सव्वंगे वेयणद्दिओ होइ।
तह चेव उद्धियम्मि उ, निस्सल्लो निटवुओ होइ।।
एवमणुद्धियदोसो, माइल्लो तेणं दुक्खिओ होइ।
सो चेव चत्तदोसो, सुविसुद्धो निव्वुओ होइ।। 113।।
णाणेण ज्झाणसिज्झी, झाणादो सव्वकम्मणिज्जरणं।
णिज्जरणफलं मोक्खं, णाणब्भासं तदो कुज्जा।। 114।।
तेसिं तु तवो ण सुद्धो, निक्खंता जे महाकुला।
जं नेवन्ने वियाणंति, न सिलोगं पवेज्जइ।। 115।।
नाणमयवायसहिओ, सीलुज्जलिओ तवो मओ अग्गी।
संसारकरणबीयं, दहइ दवग्गी त रणरासिं।। 116।।

पहला सूत्र--
"जैसे कांटा चुभने पर सारे शरीर में वेदना या पीड़ा होती है और कांटे
के निकल जाने पर शरीर निशल्य अर्थात सर्वांग सुखी हो जाता है, वैसे ही अपने दोषों को प्रगट न करनेवाला मायावी दुखी या व्याकुल रहता है; और उनको गुरु के समक्ष प्रगट कर देने पर सुविशुद्ध होकर सुखी हो जाता है। मन में कोई शल्य नहीं रह जाता।"
यह सूत्र अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इस सूत्र को खोजते मनोविज्ञान को बहुत देर लगी। जो महावीर ने कहा पच्चीस सौ वर्ष पहले, वह फ्रायड को अभी-अभी इस सदी में जाकर ख्याल में आया। इस एक सूत्र पर सारा आधुनिक मनोविज्ञान खड़ा है। मनोचिकित्सक कहते हैं, जो भी मन में दबा पड़ा है अगर प्रगट हो जाए, तो उससे मुक्ति हो जाती है। मनोविश्लेषण की सारी प्रक्रिया अचेतन में पड़ी हुई भावनाओं, विचारों, वासनाओं को चेतन में लाने की प्रक्रिया है। कीमिया का सूत्र है--अचेतन से हम बंधे होते हैं, चेतन होते ही हम मुक्त
हो जाते हैं। जिसे हमने भीतर ठीक-ठीक जान लिया, उससे हमारा छुटकारा हो जाता है। और जिसे हमने अपने भीतर ठीक-ठीक न जाना, जिसका हमने साक्षात्कार न किया, वह अंधेरे में पड़ा हमारी गर्दन में फांसी की तरह लटका रहता है। महावीर इस दशा को शल्य की दशा कहते हैं।
उनका शब्द भी बड़ा महत्वपूर्ण है। जैसे कांटा चुभा हो, तो तुम भूल जाओ थोड़ी-बहुत देर को, काम में उलझ जाओ, लेकिन कांटे की चुभन बार-बार तुम्हें अपनी तरफ खींचती रहती है। हजार काम हों तो भी बीच-बीच में कांटे की चुभन याद आ जाती है। कांटा चुभा हो, चलो, बैठो, बात करो, लेकिन हर जगह अंतराल में से कांटे की चुभन याद आ जाती है। यह जो चुभन है, इसको महावीर कहते हैं शल्य की अवस्था। इस चुभन को निकाल दो, तो निशल्य-चित्त का जन्म होता है, स्वस्थ-चित्त का जन्म होता है। तुम्हारे भीतर ऐसा कुछ भी न रह जाए जो तुमने दबाया है। तुम्हारे भीतर ऐसा कुछ भी न रह जाए जो तुमने छिपाया है। तुम्हारे भीतर ऐसा कुछ भी न रह जाए जिसे देखने से तुम डरते हो, जिसे आंख के सामने करने में भय लगता है। पीठ के पीछे कुछ भी न रह जाए, सब आंख के सामने आ जाए, आंख के सामने आते ही कांटे विदा होने शुरू हो जाते हैं।
मनोविश्लेषक वर्षों मेहनत करते हैं। उनकी चिकित्सा का सारसूत्र इतना
ही है कि जिसे वे बीमार कहते हैं, वह महावीर का शल्य से भरा हुआ व्यक्ति है। उसे बीमार कहना शायद ठीक नहीं। उसे चिकित्सा की उतनी जरूरत नहीं है, जितनी आत्म-साक्षात्कार की जरूरत है। पर जाने-अनजाने मनोविश्लेषण यही करता है। मरीज को कह देते हैं कि तुम लेट जाओ। चिकित्सक पीछे बैठ जाता है, मरीज से कहता है, तुम्हें जो भी मन में उठे--प्रासंगिक, अप्रासंगिक--उसे उठने दो और बोले जाओ। तुम उसमें काट-छांट न करो। तुम किसी तरह के सेंसर न बनो। अनर्गल भी आता हो तो आने दो, क्योंकि अनर्गल का भी कोई भीतरी कारण है तभी आ रहा है। असंबद्ध आता है, उसे भी आने दो, क्योंकि असंबद्ध भी आना चाहता है तो उसके भीतर भी कारण है।

तुम कभी चकित होओगे, तुम कोई एक शब्द ले लो, बिल्कुल निष्पक्ष शब्दः गाय, घोड़ा, हाथी या कार या कुत्ता; और शांत बैठकर यह कोशिश करो कि अब कुत्ता शब्द के उठते ही तुम्हारे भीतर जो-जो शब्द उठते हैं उन्हें तुम लिखते जाओ। तुम चकित हो जाओगे। जिन शब्दों का कुत्ते से कोई संबंध नहीं है, जिन विचारों का कोई ज्ञात कारण नहीं मालूम होता कुत्ते से क्यों जुड़े होंगे, वे उठने शुरू हो जाते हैं। एक साधारण-सा शब्द कुत्ता तुम्हारे भीतर लहर पैदा करता है और उस लहर में बंधे हुए अचेतन से न-मालूम कितने वर्षों के या जन्मों के भाव और विचार चले आते हैं, किसी तरह बंधे।
कुत्ता शब्द कहते ही शायद तुम्हें याद आ जाए अपना कोई मित्र, जिसके पास कुत्ता था। मित्र की याद आते ही आ जाए उसका मकान। मकान की याद आते ही तुम चल पड़े। कुत्ते से यात्रा शुरू हुई थी, तुम कहां पूरी करोगे, कहना कठिन है।
इसको मनोवैज्ञानिक कहते हैं--"फ्री एसोसिएशन।" स्वतंत्र-साहचर्य का नियम। तुम्हारे भीतर सभी चीजें गुंथी पड़ी हैं। सभी तार उलझे हैं। एक तार खींचो, दूसरे तार खिंच आते हैं। लेकिन यही गुत्थी तो मनुष्य का रोग है। यही तो उसका शल्य है। इस गुत्थी को सुलझाना है। कहीं से भी शुरू करो। मनस्विद कहता है, तुम बोले जाओ। चिकित्सक सुनता रहता है। कुछ करता नहीं, कुछ बोलता नहीं, सिर्फ इतनी याद दिलाता रहता है कि हां, मैं यहां हूं। मैं सुन रहा हूं, ध्यानपूर्वक सुन रहा हूं। वह जितने ध्यानपूर्वक सुनता है, उतने ही तुम्हारे गहरे अचेतन से चीजों को निकलना आसान हो जाता है। इसीलिए तो हम किसी आदमी को खोजते हैं जो हमारी बात शांति से सुन ले। कितना दूभर हो गया है ऐसे आदमी का पाना, जो हमारी बात शांति से, ध्यानपूर्वक सुन ले। जब भी तुम्हें कोई ऐसा आदमी मिल जाता है जो घड़ीभर तुम्हारे दिल की बात सुन लेता है, तुम हलके हो जाते हो। कहां से आता है हलकापन? कोई बात पत्थर की तरह छाती पर पड़ी थी, किसी ने बांट ली। कुछ किसी ने बोझ तुम्हारा उतार लिया। किसी ने सहारा दे दिया, तुम्हारे सिर पर जो पत्थर था उसे नीचे रख दिया। बात करके आदमी हलका हो जाता है।
मनस्विद इस सदी में जाकर इस सूत्र को पकड़ पाये। महावीर ने आज से ढाई हजार साल पहले कहा है। कहा है कि जब तक तुम्हारे भीतर कुछ भी ऐसा पड़ा है जो तुम बताने में डरते हो, तब तक तुम बीमार रहोगे, तब तक कांटा छिदा रहेगा। तुम्हें नग्न होकर प्रगट हो जाना है।
कहते हैं महावीर, कम से कम अपने गुरु के पास तो इतना करो। शायद संसार में तो बहुत मुश्किल होगी। वहां इतने समझदार व्यक्ति पाने कठिन होंगे, जो तुम्हारी भूलों को, चूकों को क्षमा कर सकें। वहां ऐसे व्यक्ति पाने कठिन होंगे, जो तुम्हें तुम्हारी बातों को सुनकर, तुम्हारे संबंध में कुछ निर्णय न बनाने लगें। तुम कहो कि मैंने चोरी की है, तो जो तुम्हें चोर न समझने लगें, ऐसे व्यक्ति पाने कठिन होंगे। तुम कहो कि मैंने पाप किया है, तो तुम्हें पापी समझकर निंदित न मान लें। इसीलिए तो आदमी डरा है। तुम किसी से कह नहीं सकते कि मैं झूठ बोला। लोग कहेंगे, झूठ बोले! तो तुम्हारा भरोसा टूट जाएगा। तुम्हें जिंदगी में अड़चन होगी। तो झूठ को तुम छिपाते हो। पता भी चल जाए, तो तुम सिद्ध करने की कोशिश करते हो कि नहीं, मैं सच ही बोला। अगर पकड़ भी जाओ, तो तुम कहते हो भूल-चूक से हो गया होगा, मेरे बावजूद हो गया होगा, मैंने चाहा न था। पहले तो तुम छूटने की कोशिश करते हो कि किसी को पता न चल पाये।
संसार में ऐसी आंखें खोजनी कठिन हैं, जो तुमने क्या किया क्या नहीं किया, क्या सोचा क्या नहीं सोचा, इसके बावजूद भी तुम्हारा मूल्य कम न करें। जो तुम्हारे अस्तित्व को बेशर्त स्वीकार करते हों। गुरु का यही अर्थ है, एक ऐसे आदमी को खोज लेना जो उन रास्तों से गुजरा है, जिन पर तुम अभी हो। एक ऐसे आदमी को खोज लेना जिसने भूलें की हैं, पाप किये हैं, चूकें की हैं और उनके पार हो गया। एक ऐसे आदमी को खोज लेना जो समझेगा तुम्हारी पीड़ा, क्योंकि इसी पीड़ा से वह भी गुजरा है।
तो अगर तुम्हें कोई ऐसा गुरु मिल जाए जिसकी आंखों में तुम्हारी निंदा
न हो, तो ही गुरु मिला। जहां निंदा हो, वहां तो समझना कि संसार ही जारी है।

इसे ख्याल में लेना। अगर तुम जाओ किसी मुनि, किसी साधु, किसी संन्यासी
के पास और तुम कहो कि मैं बहुत बुरा आदमी हूं, और मेरे मन में चोरी के भाव उठते हैं, और कभी ऐसे सपने भी मैं देखता हूं कि पड़ोसी की पत्नी को ले भागा हूं, और कभी किसी की हत्या कर देने की भी वासना जग उठती है, कभी मैं क्रोध से भी भरता हूं, और जिससे तुम यह कह रहे हो अगर उसकी आंखों में निंदा झलक जाए, तो समझ लेना यह आदमी गुरु नहीं है। यह आदमी अभी पार नहीं हुआ। क्योंकि जो पार हो गया, उसकी आंखों में करुणा बेशर्त है। और अगर इस आदमी की आंखों में निंदा झलक जाए, तो फिर तुम कैसे इसके सामने अपने को खोल पाओगे?
और अगर यह आदमी किसी भी तरह से तुम्हारे संबंध में निर्णय बनाने लगे, तुम्हारे किये, सोचे हुए कारणों से, तो फिर यहां तुम अपने को खोल न पाओगे। यहां खुलना संभव न होगा। यहां भी तुम बंद ही रह जाओगे। उसकी आंख ही तुम्हें बंद कर देगी। उसके बैठने का ढंग ही तुम्हें बंद कर देगा। उसके देखने का ढंग ही तुम्हारे द्वार पर ताला जड़ देगा। तुम फिर खोल न पाओगे। इसे तुम गुरु की कसौटी समझो। गुरु खोजने के लिए यह एक बड़ा आसान उपाय
है कि तुम अपने पापों की बात कहना, अपनी भूलों की बात कहना, अगर गुरु सच में जाग्रतपुरुष है, तो उसकी करुणा तुम्हारी तरफ गहन होकर बहेगी। उसकी क्षमा बेशर्त है। वह यह नहीं कहता कि तुमने क्या किया है, वह कहता है, तुम जो हो, वह परम हो, धन्य हो!
इसे ऐसा समझो! तुम्हारी आत्मा तुम्हारे कृत्यों का जोड़ नहीं। तुम्हारी आत्मा तुम्हारे विचारों का जोड़ नहीं। तुम्हारी आत्मा तुमने जो किया है उससे बहुत बड़ी है। तुम्हारी आत्मा तुमने जो सोचा है उससे बहुत बड़ी है। तुम्हारी आत्मा के संबंध में कोई निर्णय तुम्हारे विचार और कृत्य से नहीं लिया जा सकता है। तुम्हारा विचार और तुम्हारा कृत्य तो बाहर की बातें हैं। तुम्हारी आत्मा तो भीतर है। तुम्हारी आत्मा का मूल्य निरपेक्ष है, सापेक्ष नहीं है। वह किसी चीज से आंका नहीं जा सकता। तुम तुम होने की वजह से मूल्यवान हो। तुम होने की वजह से मूल्यवान हो। तुम्हारा अस्तित्व बस काफी है। तुम परमात्मा हो। ऐसी जहां किसी की आंख तुम पर पड़े और तुम्हारे भीतर के परमात्मा को जगाने लगे, तो ही जानना कि गुरु मिला। जहां निंदा हो, जहां तुम्हारे पापों के प्रति क्रोध पैदा हो, जहां तुम्हारे पापों में रस पैदा हो, क्योंकि निंदा रस है; और जो तुम्हारे पाप में रस ले रहा है--निंदा करने का ही सही, बुरा कहने का ही सही, तुम्हें नीचा दिखाने का सही, वह अहंकार से भरा हुआ व्यक्ति है। वह यह मौका नहीं छोड़ेगा। तुमने पाप की बात कही, तो उसकी आंख कहेगी, अच्छा, तो फिर एक पापी आया! तुम्हारे पाप को देखकर वह अपने को पुण्यात्मा समझने लगेगा। तुम्हारे पाप के कारण वह अपने को बड़ा समझेगा, तुम्हें छोटा समझेगा।
जिस आंख से तुम्हें पता चले कि तुम छोटे किये जा रहे हो, वह गुरु की आंख नहीं। अगर इस एक सूत्र को तुम ठीक से समझ लो तो गुरु खोजने में बड़ी आसानी हो जाएगी। तुम भटक न सकोगे। जो तुम्हें सर्वांगरूप से स्वीकार कर ले। तुम जैसे हो। जो तुम्हें अन्यथा नहीं बनाना चाहता। जो यह भी नहीं कहता कि तुम अच्छे बनो, क्योंकि अच्छे बनने की चेष्टा में तो तुम्हें बुरा मान ही लिया। जो तुमसे यह भी नहीं कहता कि छोड़ो यह पाप, पुण्य की कसम लो, क्योंकि जिसने पुण्य की कसम लेने के लिए तुमसे कहा उसने तुम्हारे पापी होने को स्वीकार कर लिया। जो स्वीकार कर लिया गया, वह क्षमा नहीं होता। नहीं, जिसकी करुणा और जिसके प्रेम में तुम अपने को खोल सको, जैसे सुबह
का सूरज निकलता है और कलियां गहरी श्रद्धा से खुल जाती हैं किरणों की चोट पड़ते ही। पता नहीं, खिलकर क्या होगा? अनजान घटना है, कली कभी खिली नहीं है, सूरज ने द्वार पर दस्तक दी है, कली उस द्वार पर दस्तक देते मेहमान की बात सुनकर, पुकार सुनकर खुल जाती है। सूरज ने पुकारा है, कली खुल जाती है, पंखुड़ियां खोल देती है, गंध को मुक्त कर देती है। उसी खुलने में कली फूल बन जाती है। तुम जब तक अपने को छिपाये हो, तुम्हें एक भी व्यक्ति ऐसा न मिला जिसके सामने तुम अपने को पूरा खोल देते। यही महावीर की नग्नता का सूत्र है। दिगंबर होने का मौलिक अर्थ यही है। तुम्हें एक ऐसा व्यक्ति न मिला जिसके सामने तुम निपट नग्न हो जाते! तुम जैसे थे वैसे ही हो जाते! जिसकी

मौजूदगी तुम्हारे लिए किसी तरह की निंदा न थी, प्रशंसा न थी, अपमान न था। जिसकी मौजूदगी में तुम्हें अन्यथा करने की कोई चेष्टा न थी। तुम जैसे थे, भले थे। तुम्हें वैसा ही स्वीकार किया था।
अगर तुम्हें एक भी व्यक्ति ऐसा मिल जाए, तो उसी के पास तुम्हें पहली दफे अपनी आत्मा की खबर मिलेगी। क्योंकि उसी के पास तुम नग्न, सहज, सरल हो पाओगे। वह तुम पर कोई आग्रह नहीं रखता। वह यह कहता ही नहीं कि तुम्हें कोई आदर्श पूरे करने हैं। वह कहता है, तुम तो परमात्मा हो ही। अगर भूल-चूक भी हुई है, तो परमात्मा से हुई है। और जो हो गया, हो गया। जो जा चुका, जा चुका। बीती को बिसार दो। जो घटा था वह तो ऐसा ही था जैसे पानी पर खींची लकीरें--अब कहीं भी नहीं हैं। अब तुम व्यर्थ परेशान मत होओ।
गुरु का अगर सत्संग मिल जाए, तो कर्मों से ऐसे ही छुटकारा मिल जाता है जैसे सुबह जागकर सपनों से छुटकारा मिल जाता है। अगर गुरु की मौजूदगी हो और फिर भी कर्मों से छुटकारा न मिले, तो समझना कि तुमने अपने को खोला नहीं। तुमने अपने को प्रगट नहीं किया।
यह सूत्र अति क्रांतिकारी है। ईसाइयत ने जीसस के इसी सूत्र के आधार पर--मेरी अपनी दृष्टि तो यही है कि जीसस ने अपना उपदेश शुरू करने के पहले भारत में ही शिक्षा ली--इसीलिए यहूदी उन्हें कभी स्वीकार न कर पाये। क्योंकि वह कुछ लाते थे जो बड़ा परदेशी था। उससे यहूदी-विचार का कोई तालमेल नहीं बैठता था। ईसाइयों के पास भी जीसस के तीस वर्ष के जीवन की कोई कथा नहीं है। आखिरी तीन वर्षभर की कथा है। बाकी तीस वर्ष कहां बिताये, कैसे बिताये? किन गुरुओं के पास, किस सत्संग में, कहां जागा यह व्यक्ति, इसकी कोई कथा उनके पास नहीं है।
इतना तो तय है कि जीसस अपने देश में नहीं थे। देश से तो उन्हें जैसे ही
वह पैदा हुए हट जाना पड़ा था, भाग जाना पड़ा था। मां-बाप लेकर उन्हें भाग गये थे। फिर जीसस मिस्र में रहे, भारत में रहे, तिब्बत में रहे। संभावना तो यहां तक है कि वह जापान तक पहुंचे। क्योंकि जापान में भी एक जगह है, जहां अभी भी लोक-कथा प्रचलित है कि वहां जीसस का आगमन हुआ था। उन्होंने सारे पूरब में तलाश की।
निश्चित ही जब जीसस भारत आये होंगे, तो महावीर की वाणी उस समय तक प्रज्वलित वाणी थी। पांच सौ वर्ष पहले ही महावीर विदा हुए थे। बुद्ध की वाणी अभी जीती-जागती थी। अभी हवा में तरंग थी। फूल जा चुका था, लेकिन अभी हवा में गंध नहीं चली गयी थी। गंध अभी मौजूद थी। निश्चित ही जीसस ने जो सूत्र पकड़ा, जिसको ईसाई कनफेशन कहते हैं, वह महावीर के इसी सूत्र से कहीं जुड़ा होना चाहिए। सिर्फ ईसाइयत अकेला धर्म है जिसने कनफेशन को बहुत मूल्य दिया है। जाकर धर्मगुरु के सामने, जो भी तुमने पाप किया हो उसे प्रगट कर देना। सरल मन से कह देना, यह भूल हो गयी है। यह स्वीकार करते ही कि मुझसे भूल हो गयी है, भूल से मुक्ति होनी शुरू हो जाती है। स्वीकार में मुक्ति है। और जैसे ही तुम कह आते हो किसी को जो निंदा नहीं करेगा, जिसका तुम्हें भरोसा है कि जो तुम्हारे संबंध में बुरी धारणा न बनायेगा, जिसका तुम्हें भरोसा है कि तुम इंचभर नीचे न गिरोगे उसकी नजर में, वस्तुतः तुम ऊपर उठोगे क्योंकि पाप की स्वीकृति, भूल की स्वीकृति पुण्यात्मा का कृत्य है, तो तुम हलके होकर लौटोगे।
हिंदू गंगा में स्नान कर आते हैं। सोचते हैं, पाप का प्रक्षालन हो जाएगा। अगर भावपूर्वक किया हो, तो हो जाएगा। गंगा नहीं करती पाप का प्रक्षालन। गंगा क्या करेगी? तुम्हारा भाव करता है। अगर तुम यह भाव से गहरे भरे हो कि गंगा में स्नान कर आयेंगे तो जो-जो भूल-चूक की थी वह धुल जाएंगी, अगर तुम्हारा भाव यह प्रगाढ़ है, तो निश्चित ही गंगा में डुबकी लेते ही तुम दूसरे हो जाओगे। क्योंकि गंगा के सामने तुमने स्वीकार कर लिया--हो गयी थी भूलें, अब तू बहा दे मां, और क्षमा कर! तो संभव है कि तुम लौट आओ हलके होकर। ताजे होकर। जरूरी नहीं है कि यह घटे, तुम पर निर्भर है। तुम कितने गहन भाव से, कितनी गहरी श्रद्धा से, कितने संकल्प और समर्पण से झुके थे, डुबकी लगायी थी, तुम्हारी श्रद्धा कितनी गहरी थी, उतना ही गंगा असर कर पायेगी। सूत्र वही है।

अब यह भी सोचने-जैसी बात है, किसी मनुष्य के सामने अपने पाप को प्रगट करने में खतरा तो है ही। कौन जाने वह आदमी अभी उस जगह हो या न हो। संदेह तो रहेगा ही। यह आदमी अभी ऐसी जगह न हो और तुम अपना पाप खोल दो, और यह आदमी अभी उसी जगह हो जहां इसे अभी पाप में रस है, और यह कुतूहलवश तुम से पूछने लगे... ।
फ्रायड ने एक जगह लिखा है कि मनोवैज्ञानिक तभी ठीक अर्थों में मनोवैज्ञानिक हो पाता है जब उसकी क्यूरिआसिटी, उसकी कुतूहलता समाप्त हो जाती है। जब तक कुतूहल है, तब तक वह सहयोगी नहीं हो सकता।
किसी ने आकर तुमसे कहा कि मैंने एक स्त्री के साथ व्यभिचार किया है। पहली बात तुम्हारे मन में क्या उठती है? कुतूहल उठता है। तुम जानना चाहते हो कौन-सी स्त्री, किस की स्त्री, कब किया, कैसे किया, तुम ब्यौरे और विस्तार में जाना चाहते हो। तुम इस आदमी के भीतर इसके पाप में रस लेने लगते हो, तो चूक हो गयी। यह जो रस ले रहा है पाप में, यह तुमने जो इसके सामने प्रगट किया है, इसे छिपाकर न रख सकेगा। इसकी यह अफवाहें बनायेगा। यह किसी से कहेगा। जो तुम्हारे सुनने में रस ले रहा है, वह किसी से कहने में भी रस लेगा। और इसके सामने तुम्हारी प्रतिमा नीची हो जाएगी। यह तुम्हें कल तक धार्मिक समझता था, अब अधार्मिक समझेगा। और यह अपने आपको तुमसे बड़ा मान लेगा।
कठिन है किसी व्यक्ति के सामने जाकर खोलना। पता नहीं, इस व्यक्ति में अभी कुतूहल शेष हो। अभी आक्रामक कुतूहल इसके भीतर मौजूद हो। और यह तुम्हारे भीतर खोजबीन करने लगे। और यह तुम्हारे सुकोमल हिस्सों से परिचित हो जाए और किसी दिन हमला करे। किसी दिन बीच बाजार में खड़े होकर चिल्ला दे--ए पापी! कहां जा रहा है? या किसी दिन इससे कोई झंझट हो जाए, झगड़ा हो जाए और यह खोल दे सारी बात। आदमी आखिर आदमी है।
इसलिए हिंदुओं ने और भी अदभुत बात खोजी। उन्होंने कहा, गंगा में जाकर समर्पित कर आना। गंगा तो किसी से कहेगी नहीं। गंगा में तो कोई कुतूहल नहीं है। गंगा तो वैसी ही बहती रहेगी जैसी पहले बह रही थी। तुम आये या न आये, कोई फर्क न पड़ेगा। गंगा के सामने तो तुम पूरा खोल सकोगे। वहां तो छिपाने की कोई भी जरूरत नहीं है। क्योंकि वहां दूसरा कोई मनुष्य नहीं है जिससे छिपाने का कोई कारण हो, जो कल खोल दे, परसों खोल दे, किसी आवेश के क्षण में बोल दे। तो डर भी नहीं है, तुम पूरा खोल सकते हो।
महावीर के सूत्र को हिंदुओं ने उसकी आत्यंतिक ऊंचाई पर पहुंचा दिया। उन्होंने कहा, आदमी को हटा ही लो। गंगा ठीक है। वैसे महावीर का भी मतलब यही था, उस आदमी के सामने खोलना जाकर जिसका आदमी हट गया हो और गंगा पैदा हो गयी हो। मतलब तो वही था। उस आदमी के पास चले जाना जिसके भीतर अब गंगा बह रही हो। उसमें जरा डुबकी लगा लेना। खोल देना सब। इस बात को भी ख्याल में ले लें कि जब तुम गंगा के सामने खोलते हो, तो खोलने में बहुत अड़चन नहीं है। क्योंकि तुम जानते हो गंगा ही है। अड़चन नहीं है, तो लाभ भी कम होगा। सुविधा तो बहुत है खोल देने की, लेकिन लाभ कम होगा। क्योंकि अड़चन बिल्कुल नहीं है, चुनौती बिल्कुल नहीं है। जब तुम गुरु के सामने जाकर खोलते हो, तो संदेह और श्रद्धा के बीच हजार बार डोलते हो। कहूं, न कहूं? इतना बचा लूं, या इतना कह दूं? थोड़ी साज-संवार करके कहूं, शृंगार करके कहूं, थोड़ा लीप-पोतकर कहूं कि जैसा है वैसा ही कह दूं? थोड़ा सुंदर बना लूं पाप को, थोड़े फूल लगा लूं पाप पर, थोड़े इस ढंग से कहूं कि मेरी मजबूरी थी। थोड़ा तर्क, थोड़े विचार का सहारा देकर कहूं, पाप पूरा मेरे ऊपर न पड़े, दूसरों पर भी उत्तरदायित्व बांटकर कहूं? गुरु के सामने जाने में तो हजार संकल्प-विकल्प होंगे। वहीं तुम्हारा विकास है, प्रौढ़ता है।
अगर तुमने संदेह की बात चुनी और श्रद्धा की छोड़ी, तो भटके अतल खाइयों में। अगर संदेह चीखता-चिल्लाता रहा फिर भी तुम श्रद्धा के साथ गये, श्रद्धा की बांह गही, तो तुम्हारे भीतर एक क्रांति घटी। तुम संदेह पर जीते, तुम श्रद्धा में प्रविष्ट हुए।
गंगा के पास सुविधा तो है, चुनौती नहीं है। और जहां चुनौती नहीं है, वहां विकास नहीं है। इसलिए गुरु--ऐसा मनुष्य जो गंगा हो गया है--उसमें

दोनों गुण हैं। वह मनुष्य भी है--वह तुम्हें समझ सकता है; उन्हीं अनुभवों से स्वयं भी गुजरा है--और गंगा भी है। उसके भीतर गंगा भी बह रही है। वह तुम्हें क्षमा कर सकेगा।
अब इसे ऐसा समझें।
वही आदमी तुम्हें क्षमा कर सकता है जिसने स्वयं को क्षमा कर दिया हो। जिसने स्वयं को क्षमा नहीं किया है, वह तुम्हें क्षमा नहीं कर सकेगा। जो अभी स्वयं से लड़ रहा है, वह कैसे तुम्हें क्षमा करेगा? समझो कि कोई आदमी अभी कामवासना से खुद ही लड़ रहा है और तुमने जाकर उसके सामने कामवासना की बात कही, वह तुम पर टूट पड़ेगा। वह कहेगा पापी हो, जघन्य पापी हो, नरक में सड़ोगे। वह तुमसे जब यह कहता है, तो वह सिर्फ इतना ही बता रहा है कि अभी कामवासना को वह भी सरलता से ले नहीं सकता। अभी संघर्ष कायम है। अभी ऐसे ही नहीं सुन सकता जैसे और बातों को सुन लेता है। अभी कामवासना उसे हिला जाती है। शब्द ही हिला जाता है। अभी भय है। अभी खुद की जीत पूरी नहीं हुई। अभी हार का खुद ही भीतर डर है।
तुम अगर जैन-मुनि के सामने वात्स्यायन का काम-सूत्र खोलकर रख दो, वह आंख बंद कर लेगा, या किताब फेंक देगा। घबड़ा जाएगा।
तुम जैन-मुनि को खजुराहो नहीं ले जा सकते। खजुराहो के मंदिर में वह प्रवेश न करेगा। वह दूर-दूर बचेगा, भागेगा। अभी जो डर उसके भीतर है, वह डर बाहर प्रक्षेपित होगा। अभी खजुराहो की मूर्तियां भय का कारण बन जाएंगी। मेरे एक मित्र विंध्य-प्रदेश के शिक्षा मंत्री थे। एक अमरीकी कवि खजुराहो देखने आया। वह कभी पंडित जवाहरलाल नेहरू का परिचित था, मित्र था, तो उन्होंने विशेष खबर की कि कोई योग्य व्यक्ति जाकर साथ खजुराहो दिखा दे। वह जो मेरे मित्र शिक्षा मंत्री थे, वही विंध्य-प्रदेश के मंत्रिमंडल में सबसे ज्यादा सुशिक्षित व्यक्ति थे तो उन्हीं को भेजा गया।
वे गये, लेकिन वे बड़े डरे हुए थे। भयभीत थे कि पता नहीं यह आदमी क्या सोचकर जाएगा? क्या सोचेगा--खजुराहो की नग्न, कामुक भाव-भंगिमाएं, काम से लिप्त युगल जोड़े, संभोगरत मूर्तियां! क्या सोचेगा! तो मन में थोड़े अपराधी थे। उसे घुमाया पूरे मंदिर में--जो विशेष मंदिर है, पूरा दिखाया। बाहर आकर कहा कि क्षमा करें, इससे आप ऐसा मत सोचें कि यह कोई भारत की मौलिक संस्कृति है। यह भारत की मूलधारा नहीं है। यह तो तांत्रिकों के प्रभाव में एक तरह की विकृति है। ये अश्लील मूर्तियां हमारे सभी मंदिरों की प्रतिनिधि नहीं हैं। इसको आप ख्याल रखना। आप ऐसा मत सोच लेना कि हमारे सभी मंदिर ऐसे हैं। करोड़ मंदिर हैं, उसमें एक मंदिर ऐसा है। इसको ख्याल में रखना, अनुपात को ख्याल में रखना। ये अश्लील मूर्तियां भारत की आत्मा को प्रगट नहीं करतीं। ये सिर्फ भारत में कभी एक विकृति की धारा चली थी, उसके शेष चिह्न हैं।
वह अमरीकी कवि तो बहुत चौंका। वह तो बड़े भाव से भरा था। उसके सामने तो भारत की महिमा पहली दफा प्रगट हुई थी। उसने सुना ही सुना था अब तक कि भारत मनुष्य की अंतरात्मा में बड़े गहरे उतरा है, आज उसने देखा भी था। प्रत्यक्ष प्रमाण थे। उसने सुना ही सुना था अब तक कि तंत्र ने मनुष्य की अंतर्तम-वासना के छोर छुए हैं। आखिरी केंद्र को छुआ है, रूपांतरण की विधियां खोजी हैं, आज मूर्तियों में इसे सुस्पष्ट लिखे देखा था। वह तो भाव-विभोर था। वह तो जैसे किसी ने नींद से झकझोरा हो, ऐसा घबड़ा गया। उसने कहा, क्या कहा, अश्लील! तो फिर मुझे फिर से चलकर दिखाना होगा, क्योंकि मुझे कोई मूर्ति अश्लील दिखी नहीं। अब तुम मुझे चलकर बता दो, कौन-कौन सी मूर्तियां अश्लील हैं, और कौन-कौन सी मूर्तियां हैं जो विकृत हैं, और रुग्ण मन की प्रतीक हैं। क्योंकि मुझे तो पता ही नहीं, मैं तो इसी भाव से भरा जा रहा था कि अदभुत है, तुमने याद दिला दी, तो मैं चलूं फिर से।
वह मेरे मित्र मुझे कह रहे थे कि मैं ऐसा गिरा, जैसे किसी ने आकाश से पटक दिया हो। यह एक आदमी है जिसे कुछ अश्लील न दिखायी पड़ा। अश्लील हमें भीतर की अश्लीलता से दिखायी पड़ता है। जो हमारे भीतर है, वही हमें बाहर दिखायी पड़ता है।
तो अगर कोई गुरु उत्सुकता ले, तुम्हारे घावों को कुरेदने लगे, निंदा करे, तुम्हें पापी ठहराये, तुम्हारा न्यायाधीश बने, तो समझना गुरु नहीं।

अभी गंगा बही नहीं। अभी गंगा का अवतरण नहीं हुआ इस व्यक्ति पर। इसमें डुबकी लेने से कुछ भी न होगा। इसमें डुबकी लेने से तुम और गंदे हो जाओगे। यह कोई नाला है--शहर के बीच से बहता। यह कोई गंगा नहीं है। यह सब नालियों का कूड़ा-कर्कट और गंदगी को लेकर बह रहा है। यह तुम्हें पवित्र नहीं कर सकता। महावीर ने जो कहा हैः गुरु के समक्ष सब कुछ जो प्रगट कर दे, वह सुविशुद्ध होकर सुखी हो जाता है; इस सूत्र को जैनों ने बहुत कम विचारा है, बहुत कम इसकी परिभाषा की है, क्योंकि यह सूत्र तो सारे कर्म के सिद्धांत को दो कौ.ड़ी का कर देता है। यह सूत्र तो बड़ा क्रांतिकारी है। यह तो जड़मूल से कर्म के सिद्धांत को उखाड़ फेंकता है। महावीर यह कह रहे हैं कि अगर तुमने सरल मन से स्वीकार कर लिया, तो मुक्ति हो गयी। शल्य जाता रहा। कांटा चुभेगा नहीं फिर। बात समाप्त हो गयी। इसी को तो संतों ने कहा है कि गुरु की कृपा से क्षणभर में हो सकता है। लेकिन गुरु की कृपा उसी पर हो सकती है, जो अपने हृदय को पूरा खोल दे। पात्र खुला हो, तो गुरु की कृपा तो होती ही रहती है, वह भर जाए। लेकिन कोई खोले अपने पात्र को।
जैसे एक कांटा चुभने पर सारे शरीर में वेदना या पीड़ा होती है। कांटा चुभता तो एक जगह है, लेकिन वेदना एक जगह सीमित नहीं रहती। कांटा चुभता तो पैर में है, लेकिन सिर तक चोट मारता है। कांटा चुभता तो जरा-सी जगह में है, लेकिन पीड़ा विस्तीर्ण हो जाती है। छोटा-सा पाप, सारे शरीर को घाव बना देता है। छोटी-सी भूल, छोटा-सा झूठ, सारे शरीर पर फैल जाता है, तन-प्राण पर फैल जाता है। तो किसी भूल को छोटी मत समझना। कांटे को छोटा समझकर तुम छोड़ तो नहीं देते। तुम यह तो नहीं कहते--है ही क्या, जरा-सा कांटा है। छह फीट के शरीर में एक आधा इंच का कांटा लगा है, क्या परवाह! लेकिन आंधा इंच का कांटा छह फीट के शरीर को विक्षुब्ध कर देता है।
महावीर ने शब्द चुना है, शल्य। वह कहते हैं, साधारण आदमी बड़े शल्यों
से बिंधा है। और निशल्य होना है। एक भी शल्य न रह जाए।
इसे हम समझें।
एक झूठ तुम बोले। शल्य चुभा। कांटा बिंधा। जैसे ही तुम झूठ बोलते हो, तुम एक विरोधाभास में पड़े, एक कंट्राडिक्शन पैदा हुआ। और जहां ऊर्जा में विरोधाभास पैदा होता है; वहीं अड़चन, पीड़ा, मवाद पड़ती है। वहीं घाव, फोड़ा पैदा होता है। तुमने एक झूठ बोला, झूठ बोलने का अर्थ ही यह है कि तुम जानते हो कि सच क्या है, उसके विपरीत बोला। जो तुम हृदय से जानते हो, उसके विपरीत कहा। जो तुम्हारा हृदय कह रहा है, उससे विपरीत तुम्हारी वाणी ने कहा। तुम्हारे भीतर एक विरोध पैदा हुआ। जानते थे कुछ, कहा कुछ। थे कुछ, बताया कुछ। एक उलझन पैदा हुई, एक गांठ पड़ी। यह गांठ गड़ेगी। यह गांठ तुम्हें सतायेगी, यह तुम्हें ठीक से सोने न देगी। यह तुम्हें ठीक से भोजन न करने देगी।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि भोजन करने के पहले कम से कम आधा घंटा न तो झूठ बोलना, न क्रोध करना, न कोई वैमनस्य, न कोई द्वेष, न कोई ईर्ष्या, तो ही भोजन ठीक से पचेगा। तुम कोशिश करके देखो। भोजन कर रहे हो, उसी वक्त झूठ बोलकर देखो। उसी वक्त क्रोध की बात करके देखो। अब तो इस पर प्रयोग किये गये हैं, यंत्र लगाकर जांच की गयी है--कि आदमी भोजन कर रहा है, यंत्र के पर्दे पर उसके पेट की पूरी तस्वीर दिखायी पड़ रही है, पाचक-रस छूट रहे हैं और तभी पत्नी ने कुछ बात कह दी और वह आदमी क्रोधित हो गया। जैसे ही क्रोधित हुआ, पाचक-रस बंद हो जाते हैं। शरीर भीतर सिक.ुड जाता है। पेट ठंडा हो जाता है। गरमी खो जाती है। गरमी खोपड़ी में आ गयी, पेट से खो गयी। गरमी ऊपर चढ़ गयी, पेट में न रही। अब भोजन तो पड़ता है पेट में, लेकिन पाचक-रस उससे मिलते नहीं। भोजन भारी हो जाता है। यह पचेगा नहीं। या तो कब्जियत बनेगी, या डायरिया बनेगा, लेकिन इससे मांस-मज्जा निर्मित न होगी। अब यह ठंडा पेट इस भोजन को पचाने में बड़ी देर लगायेगा, बड़ी मुश्किल से पचायेगा। एक रोग की गांठ पैदा होगी।
तुम भोजन कर रहे हो, तुम झूठ बोल दिये भोजन करते वक्त, तत्क्षण पेट सिकुड़ जाता है। क्योंकि एक विरोधाभास पैदा हो गया। तुम जब झूठ बोलो तब ख्याल करना, तुम्हारे शरीर के भीतर तत्क्षण रूपांतरण हो जाता है। कलियां

बंद हो जाती हैं। तुम सुरक्षा करने को तत्पर हो जाते हो। तुम लड़ने-झगड़ने को राजी हो जाते हो। हजार तर्क तुम्हारे मन में घूमने लगते हैं, कैसे झूठ को सच सिद्ध करें। सिद्ध तो झूठ को ही करना पड़ता है, सत्य तो स्वयंसिद्ध है। इसलिए जो सत्य बोलता है, उसके भीतर विचार कम हो जाते हैं। कोई जरूरत नहीं रह जाती। सत्य को विचार की जरूरत नहीं, जैसा था वैसा कह दिया। झूठ के लिए हजार विचार करने पड़ते हैं; सेतु बनाने पड़ते हैं, व्यूह रचना पड़ता है, क्योंकि अब झूठ बोल दिये हैं इसे सत्य सिद्ध करना है। सबसे कठिन काम है जगत में--जो नहीं है, उसको "है" जैसा सिद्ध करना। अब इस सिद्ध करने में तुम्हें बड़ी अड़चन होगी। कांटा चुभ गया।
ऐसे कांटे चुभते जाते हैं, जिंदगी की यात्रा पर जैसे-जैसे हम आगे बढ़ते हैं, कांटे ही कांटे चुभते जाते हैं! एक घड़ी ऐसी आती है, सारे तन-प्राण में शल्य ही शल्य हो जाते हैं, कांटे ही कांटे हो जाते हैं। कितना झूठ बोले? कितनी विकृतियों को पाला-पोसा? कितने जहर पीये? कितने अपने हाथ से क्रोध की अग्नियां जलायीं? कितना अपने हाथ से द्वेष और ईर्ष्या को पाला और सींचा? गलत को ही सींचते रहे। अगर आत्मा खो जाती है, तो आश्चर्य क्या! अगर आत्मा दब जाती है इन सभी कांटों के भीतर, तो आश्चर्य क्या! आत्मा का तो फूल खिलेगा कैसे, तुम तो कांटों को संभाल रहे हो। जिन्हें निकालना था, उन्हें तुमने मित्र समझा है। जिन्हें हटाना था, जिन्हें झाड़ देना था, झटकार देना था, उन्हें तुम छाती से लगाकर बैठे हो। तुमने उन्हें संपदा समझा है। महावीर कहते हैं, जैसे कांटा चुभने पर सारे शरीर में वेदना या पीड़ा होती है। और कांटे के निकल जाने पर शरीर निशल्य, सर्वांग-सुखी हो जाता है। एक छोटा-सा कांटा निकलने का सुख देखा? कांटा निकलते ही सब हलका हो जाता है। एक भार हटा। एक चित्त से पीड़ा गयी। एक प्रसन्नता उठी। एक साधारण भौतिक कांटे के निकलने से। थोड़ा सोचो तो, आध्यात्मिक कांटों का निकल जाना कैसा निर्भार न कर देगा! पंख लग जाएंगे तुम्हें। उड़ने लगोगे आकाश में। वजन न रह जाएगा तुममें। हवा की तरह हो जाओगे--मुक्त। पवित्र हो जाओगे गंगा की तरह। फिर कुछ तुम्हें अपवित्र न कर पायेगा। तुम जिन कांटों को लगाकर बैठे हो, उन्हीं से नासूर हो गये हैं।
"कांटे के निकल जाने से शरीर निशल्य सर्वांग-सुखी हो जाता है। वैसे ही अपने दोषों को प्रगट न करनेवाला मायावी दुखी या व्याकुल रहता है। और उनको गुरु के समक्ष प्रगट कर देने पर सुविशुद्ध होकर सुखी हो जाता है। मन में कोई शल्य नहीं रह जाता।" महावीर भी नहीं कहते कि तुम जाओ और बीच बाजार में खड़े होकर अपने पापों की घोषणा करो। वस्तुतः उस तरह की घोषणा में खतरा है। एक तो तुम कर न सकोगे। और अगर कभी किया तो अतिशयोक्ति कर दोगे। क्योंकि तब तुम बाजार में घोषणा करके यह सिद्ध करना चाहोगे कि मुझसे बड़ा पाप की घोषणा करनेवाला कोई भी नहीं है, देखो। तब तुम अतिशयोक्ति कर दोगे। तब तुमने जो पाप नहीं किये हैं, वह भी तुम स्वीकार कर लोगे।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन पर एक मुकदमा चला। जब सालभर की सजा काटकर वह वापस लौटा, तो मैंने पूछा, नसरुद्दीन, तुम्हारी उम्र नब्बे वर्ष की हो गयी, तुम यह कर कैसे सके? मुकदमा यह था कि उसने एक युवती के साथ बलात्कार किया। उसने कहा, मैंने इस युवती को जाना भी नहीं, न बलात्कार किया है, लेकिन जब अदालत में सुंदर युवती ने कहा, तो मैं इनकार न कर सका। यह बात ही मुझे प्रसन्नता से भर गयी कि नब्बे साल का बूढ़ा और बीस साल की युवती से बलात्कार कर सका। मैं इनकार न कर सका। यह सालभर की सजा काट लेने जैसी लगी।
मनोवैज्ञानिक इसका अध्ययन करते रहे। कुछ लोगों ने अपने पाप की घोषणाएं की हैं; वे भी अतिशयोक्तिपूर्ण हैं, झूठी हैं। पाप को बढ़ा-चढ़ाकर कहा है।
आदमी अदभुत है। या तो पाप को छिपाता है, या बढ़ा-चढ़ाकर कहता है। झूठ की पकड़ ऐसी है कि अगर इस तरफ से हटे, तो दूसरी अति पर झूठ हो जाती है।
गांधी की आत्मकथा में ऐसी ही अतिशयोक्ति है। रूसो की आत्मकथा में इसी तरह की अतिशयोक्ति है। अगस्तीन की आत्मकथा में इसी तरह की अतिशयोक्ति है और टालस्टाय की आत्मकथा में भी इसी तरह की अतिशयोक्ति है। अब तो इसके

बिल्कुल प्रबल प्रमाण मिल गये हैं कि टालस्टाय ने ऐसी बातें कही हैं जो हुई नहीं थीं। लेकिन पाप को बढ़ा-चढ़ाकर बखान किया। अगर यही सदगुण है कि अपने पाप को खोल देना, तो छोटे-मोटे पाप क्या खोलो! सोचो तुम्हीं! अगर गये तुम और स्वीकार ही करना है पाप और तुमने कहा कि किसी के दो पैसे चुरा लिये, तो तुमको भी दीनता लगेगी कि चुराये भी तो दो पैसे चुराये! तो मन करेगा कि जब चोरी स्वीकार ही कर रहे हो, तो लाखों की करने में क्या हर्जा है! कहो कि दो लाख चुरा लिये। पापी भी क्या छोटे-मोटे होना! जब पाप की ही स्वीकृति कर रहे हो, तो कम से कम और कहीं आगे न हो सके, इसमें तो आगे हो जाओ। अहंकार वहां भी पकड़ लेगा। वहां भी झूठ हो जाएगा। तो न तो ऐसे पाप की स्वीकृति करना जो किया नहीं, न ऐसे पुण्य की घोषणा करना जो किया नहीं।
महावीर कहते हैं, इसलिए एकांत में, गुरु के सामीप्य में--जो तुम्हें समझ सकेगा--उससे चुपचाप अपनी बात कह देना। और तुम उसके सामने न तो पाप को छोटा करके बोल पाओगे, न बड़ा करके बोल पाओगे। क्योंकि उसका सरल वातावरण, उसकी शांति, उसका आनंद तुम्हारे अहंकार को मौके न देगा। उसकी विनम्रता तुम्हें विनम्र बनायेगी। उसकी सहजता तुम्हें सहज बनायेगी। गुरु के दर्पण के सामने बैठकर तुम्हें वही तस्वीर घोषणा करनी पड़ेगी, जो तुम हो। बस उतनी ही घोषणा कर देनी है, जो तुम हो। इस घोषणा से ही तुम निर्भार होते हो। तुम्हारे चित्त का बोझ हलका हो जाता है। द्वंद्व मिट जाता है, विरोधाभास समाप्त हो जाता है, गांठें खुल जाती हैं।
और, जो तुम एक व्यक्ति को कह सके और आनंद पा सके, तो तुम धीरे-धीरे पाओगे कितना न होगा आनंद अगर मैं सबको कहता! धीरे-धीरे तुम पाओगे तुमने औरों के सामने भी स्वीकार करना शुरू कर दिया। क्या है जगत के पास जो तुमसे छीन लेगा? देने को क्या है? पद, प्रतिष्ठा, सब झूठे लुभावने भ्रम हैं। छीन क्या लेगा? जो तुमसे छीन सकता है जगत, वह किसी मूल्य का नहीं। जो तुम्हें दे सकता है, वह किसी मूल्य का नहीं। और इससे छिपाकर जो तुम खोते हो, वह बहुमूल्य है। और इसे प्रगट करके अपने चित्त को तुम जो पाओगे, वह तुम्हारी आत्मा है। वह परम धन है। सदा से है।
महावीर ने जैसा कहा, जीसस ने जैसा कहा, हिंदुओं ने जैसा माना, किसी न किसी के समाने हृदय को खोलना है। किसके सामने खोलते हो, यह बात उतनी महत्वपूर्ण नहीं है; खोलते हो, यह बात महत्वपूर्ण है। जिसके सामने खोल सको, वहीं खोल देना। अपने प्रिय के सामने खोल देना। अपनी पत्नी के सामने खोल देना। अपनी मां के सामने खोल देना। अपने मित्र के सामने खोल देना। जिसके पास भी तुम पाओ कि सुविधा है खोल देने की, दूसरा निंदा न करेगा, वहीं खोल देना। तो वहीं थोड़ा-सा गुरु प्रसाद मिलेगा। हां, गुरु मिल जाए, तब तुम्हें पूरा आकाश मिलेगा।
तेरे गुनाहगार गुनाहगार ही सही
तेरे करम की आस लगाये हुए तो हैं
यूं तुझको अख्तियार है तासीर दे न दे
दस्ते-दुआ हम आज उठाये हुए तो हैं
भक्त कहता है--
तेरे गुनाहगार, गुनाहगार ही सही
माना कि हम पापी हैं, स्वीकार।
तेरे करम की आस लगाये हुए तो हैं
लेकिन तेरी करुणा की आशा लगाये बैठे हैं। तू क्षमा करेगा, यह भरोसा है।
तेरे करम की आस लगाये हुए तो हैं
यूं तुझको अख्तियार है तासीर दे न दे
क्षमा कर या न कर, यह तेरी मर्जी।
यूं तुझको अख्तियार है तासीर दे न दे
दस्ते-दुआ हम आज उठाये हुए तो हैं
लेकिन प्रार्थना में हमने अपने हाथ उठाये हैं। तू हमसे यह न कह सकेगा
कि हमने हाथ न उठाये थे। तेरी करुणा के लिए हम तैयार हैं, तू दे न दे। हमने

प्रार्थना भेज दी है, तू पूरी कर, न कर। फल तेरे हाथ में है। प्रार्थना हमने कर दी है। तू यह न कह सकेगा कि हमने प्रार्थना न की।
एक छोटा बच्चा बगीचे में खेल रहा है। उसका बाप पास ही बैठा हुआ है। वह बच्चा एक बड़ी चट्टान को उठाने की कोशिश कर रहा है, वह उठती नहीं। वह सब तरफ से खींचने की कोशिश कर रहा है, लेकिन वह उससे ज्यादा वजन की है। हिलती भी नहीं। आखिर उसके बाप ने उससे कहा, तू अपनी पूरी ताकत नहीं लगा रहा है। उसने कहा, मैं अपनी पूरी ताकत लगा रहा हूं। जितनी लगा सकता हूं, पूरी लगा रहा हूं। बाप ने कहा कि नहीं, तेरी ताकत में यह भी सम्मिलित है कि तू मुझसे भी कह सकता है कि साथ दो। तू पूरी ताकत नहीं लगा रहा है। तेरी ताकत में यह भी सम्मिलित है कि तू मुझसे भी कह सकता है कि आओ, इस चट्टान को उठाने में साथ दो।
प्रार्थना पूरी ताकत है। जो तुम कर सकते हो तुमने किया, फिर तुम परमात्मा से कहते हो कि हम सीमित हैं, अब तू भी कुछ साथ दे।
यूं तुझको अख्तियार है तासीर दे न दे
दस्ते-दुआ हम आज उठाये हुए तो हैं
अपने हाथ हमने प्रार्थना में उठाये हैं, अब तेरी मर्जी!
यह हाथ उठाना आदमी एकदम से परमात्मा के सामने नहीं कर सकता, क्योंकि परमात्मा का हमें कोई पता नहीं। कहां है? किस दिशा में है? कौन है? कैसे पुकारें? क्या है उसका नाम? क्या कहें? कौन-सी भाषा वह समझता है? गुरु के पास आसान है। वहां से हम जीवन का क, ख, ग सीखते हैं। वहां से हम परमात्मा की तरफ पहली सीढ़ी लगाते हैं। वह पहला पायदान है। क्योंकि गुरु हमारे जैसा है और हमारे जैसा नहीं भी है। कुछ-कुछ हमारे जैसा है और कुछ-कुछ हमसे पार। कुछ-कुछ हमारे-जैसा है और कुछ-कुछ परमात्मा जैसा है। गुरु एक अदभुत संगम है, जहां आदमी और परमात्मा का मिलन हुआ है।
जहां तक हमारे जैसा है वहां तक तो हम उससे बोल सकते हैं। वहां तक तो हम
कह सकते हैं। वहां तक तो वह हमें समझेगा। और जहां वह हमारे जैसा नहीं है, वहां से उसकी क्षमा आयेगी। यही गुरु का चमत्कार है। यही गुरु की महिमा है। है मनुष्य, ठीक तुम्हारे जैसा। ऐसे ही हाथ-पैर, ऐसा ही मुंह, ऐसी ही जरूरतें--भोजन, भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी, जन्म-मृत्यु--सब तुम्हारे जैसा है। वहीं से गुजरा है, उन्हीं राहों से गुजरा है, जहां तुम गुजर रहे। उन्हीं अंधेरों में से टटोल-टटोलकर मार्ग बनाया है उसने, जहां तुम टटोल रहे। वह तुम्हें समझ सकेगा, क्योंकि तुम उसकी ही अतीत-कथा हो। तुम उसी की आत्मकथा हो। जहां वह कल था, वहां तुम आज हो। और जहां वह आज है, वहां तुम कल हो सकते हो।
परमात्मा बहुत दूर है। गुरु पास भी, और दूर भी। परमात्मा तक सेतु फैलाना बड़ा कठिन है। आदमी की सामर्थ्य के बाहर है। तुम कहते तो हो परमात्मा शब्द, लेकिन कोई भाव उठता है भीतर? कुछ भाव नहीं उठता। जब तक तुम किसी मनुष्य में परमात्मा की पहली झलक न पाओगे, तब तक तुम्हारे परमात्मा शब्द में कोई प्राण न होंगे। गुरु परमात्मा शब्द को सप्राण करता है। तो तुम्हारे जैसा है, इसलिए तुम जो कहोगे, समझेगा। समझेगा कि चोरी का मन हो गया था। दस हजार रुपये पड़े थे रास्ते के किनारे, कोई देखनेवाला न था, उठा लेने का मन हो गया था। वह कहेगा, बहुत बार मेरा भी हुआ है ऐसा। कुछ चिंता न करो। कुछ घबड़ाने की बात नहीं। देखो, मैं उसके पार आ गया। तुम भी आ जाओगे। सभी को होता है। स्वाभाविक है। मानवीय है।
तुम्हारे जैसा है गुरु, तुम्हारी भाषा समझेगा। और ठीक तुम्हारे जैसा
भी नहीं है कि निंदा करे, कि तुम्हारे रोग में रस ले, कुतूहल करे, कि खोद-खोदकर, कुरेद-कुरेदकर तुम्हारे भीतर छिपे हुए रहस्यों को चेष्टा कर-करके जाने। न, गुरु तो सिर्फ निष्क्रिय-भाव से, शांत-भाव से सुन लेता है तुम जो कहते हो। और तुम्हें आश्वासन दे देता है।
यह आश्वासन शब्द का उतना नहीं है जितना उसके सत्व का है। अपने अस्तित्व से, अपनी उपस्थिति से तुम्हें आश्वासन दे देता है। तुम्हारे हाथ को हाथ में ले लेता है। या तुम्हारे सिर पर अपना हाथ रख देता है। और तुम अनुभव कर लेते हो कि उसने क्षमा कर दिया। और अगर उसने क्षमा कर दिया, तो

परमात्मा निश्चित क्षमा कर देगा। जब गुरु तक क्षमा करने में समर्थ है, तो परमात्मा की तो बात ही क्या कहनी!
यूं तुझको अख्तियार है तासीर दे न दे
दस्ते-दुआ हम आज उठाये हुए तो हैं
गुरु खोज लेना साधक के लिए पहली अनिवार्य बात है।
जीवन पाया पर जीवन में क्या
दो क्षण सुख के बीत सके?
मन छलने वाले मिले बहुत पर
क्या मिल मन के मीत सके?
मन का मीत मिल जाए, तो गुरु मिला। शरीर से मित्रता रखनेवाले बहुत मिल जाएंगे। शरीर का उपयोग करनेवाले बहुत मिल जाएंगे। तुम्हारा साधन की तरह उपयोग करनेवाले बहुत मिल जाएंगे। तुम्हारे साध्य की तुम्हें जो याद दिलाये, जब वह मिल जाए, तो मन का मीत मिला। गुरु मित्र है।
बुद्ध ने तो कहा है, कि मेरा जो आनेवाला अवतार होगा, उसका नाम होगा मैत्रेय। मित्र। गुरु सदा से निकटतम मित्र है। कल्याण-मित्र। तुम से कुछ चाहता नहीं। उसकी चाह जा चुकी। वह अचाह हुआ। तुम्हारा कोई उपयोग करने का प्रयोजन नहीं। उसे कुछ उपयोग करने को बचा नहीं। जो पाना था, पा लिया। वह अपने घर आ गया। वह तुम्हारी सीढ़ी न बनायेगा। वह तुम्हारे कंधे पर न चढ़ेगा। प्रयोजन नहीं। जो देखना था, देख लिया; जो होना था, हो लिया। सब तरह तृप्त। ऐसा कोई व्यक्ति मिल जाए, तो सौभाग्य है! ऐसे व्यक्ति की छाया फिर छोड़ना मत। फिर बना लेना अपना घोंसला उसी की छाया में। फिर करना विश्राम वहीं और खोल देना अपने हृदय को पूरा। निशल्य हो जाओगे तुम। मन में कोई शल्य नहीं रह जाता।
लेकिन लोग बड़े उलटे हैं। लोग गुरु से बचते हैं। और उनको पकड़ लेते हैं
जो गुरु नहीं हैं। क्योंकि जो गुरु नहीं हैं, उनसे तुम्हें कुछ खतरा नहीं है। जो गुरु नहीं हैं, वे तुम्हें मिटायेंगे नहीं--तुम्हें सूली भी न देंगे, तुम्हें सिंहासन भी न देंगे, वे तुम्हारी मृत्यु न बनेंगे। उनके पास तुम झूठी सांत्वनाएं लेकर घर आ सकते हो। सत्य तो वहां न मिलेगा। सत्य तो महंगा है। उसके लिए तो प्राणों से कीमत चुकानी पड़ती है। सांत्वना मिलेगी, लेकिन सांत्वना बड़ी सस्ती है।
आईने से बिगड़ के बैठ गये
जिनकी सूरत जिन्हें दिखायी गयी
गुरु से तो लोग नाराज हो जाते हैं। क्योंकि गुरु तो दर्पण है। तुम्हारी सूरत तुम्हारे सामने आ जाएगी।
आईने से बिगड़ के बैठ गये
जिनकी सूरत जिन्हें दिखायी गयी
तो गुरु का काम तो बड़ा कठिन है। उसे तुम्हें तुम्हारी सूरत भी दिखानी
है और तुम्हें तुम्हारी सूरत से मुक्त भी करना है। तुम जैसे हो वह बताना है, और तुम जैसे हो सको उस तरफ ले जाना है। और तुम्हारी निंदा भी न हो जाए, तुम्हारा आत्मविश्वास भी न खो जाए, तुम्हारी प्रतिमा भी खंडित न हो जाए, बड़ा नाजुक काम है। तुम्हें संभालना भी है, तुम्हें गिरने भी नहीं देना है, और तुम्हें संभालना भी ऐसे है कि तुम्हें ऐसा न लगने लगे कि कोई जबर्दस्ती संभाल रहा है। कहीं तुम्हें ऐसा न लगने लगे कि तुम्हारी स्वतंत्रता खोयी जा रही है, तुम गिरने की स्वतंत्रता खोये दे रहे हो।
तो गुरु का काम इस जगत में सबसे नाजुक काम है। मूर्तिकार पत्थर की मूर्ति खोदते हैं, चित्रकार कैनवस पर चित्र बनाते हैं, कवि शब्दों को जमाते हैं, संवारते हैं, गुरु चैतन्य की मूर्ति निखारता है--बड़ा नाजुक है। और नाजुकता यही है कि गुरु को विपरीत काम करने पड़ते हैं। एक तरफ तुम घबड़ाकर गिर ही न जाओ, दूसरी तरफ तुम कहीं इतने आश्वस्त भी न हो जाओ कि तुम जो हो वही रह जाओ!
तुम्हारे बीज को तोड़ना भी है। तुम जैसे हो उसे बदलना भी है, लेकिन तुम्हें कोई चोट न पड़े, हिंसा न हो जाए। तुम्हें कहीं ऐसा न लगने लगे कि यह बंधन हो गया, यह परतंत्रता हो गयी, यह तो कारागृह हो गया। स्वेच्छा से,

स्वतंत्रता से तुम्हारे जीवन में अनुशासन आये। यही जटिलता है। थोपा न जाए, आये। गुरु के प्रेम में आये, गुरु की उपस्थिति में आये। गुरु के आदेश से न आये, बस उसके उपदेश से आये। वह तुम्हें आज्ञा न दे। कोई गुरु आज्ञा नहीं देता। जो आज्ञा देते हैं वे गुरु नहीं हैं। गुरु तो सिर्फ कहता है, निवेदन करता है। सुझाव ज्यादा से ज्यादा, आज्ञा नहीं। तुम्हारी स्वतंत्रता भी बचानी है और तुम्हारी सत्य की यात्रा को भी पूरा करना है। लेकिन इसकी पहली शुरुआत, महावीर कहते हैं, भूलों के समग्र स्वीकार से होती है। निशल्य हुआ व्यक्ति स्वस्थ हो गया। उसके मानसिक रोग गये। उसकी मानसिक उपाधियां गिरीं। मन स्वस्थ हो, तो आत्मा की तरफ यात्रा हो।
इसे हम समझें।
अगर शरीर बीमार हो, तो मन की तरफ यात्रा नहीं हो सकती। जैसे कोई आदमी बीमार है, क्या वीणा बजाये! कैसे गीत गाये? खाट से लगा है, कैसे नाचे? कैसा साहित्य का रस, कैसा काव्य, कैसी चित्रकला, कैसी मूर्ति! अभी शरीर रुग्ण है, घावों से भरा है। तो शरीर में अटका रहता है। शरीर स्वस्थ हो जाता है, तो आदमी मन की तरफ चलता है। तो फिर गीत भी सुनता है, संगीत भी सुनता है। नाचता भी है, चित्र भी बनाता है, मूर्ति भी गढ़ता। बगीचा लगाता है, फूल संवारता है। सौंदर्य का अनुबोध होता है। एक नया रस का संसार खुलता है। शरीर स्वस्थ हो तो आदमी मन की ऊर्जा का उपयोग करना शुरू करता है। मन की तरंगों पर चढ़ता है। लेकिन मन अगर रुग्ण हो, तो आत्मा की तरफ नहीं जा सकता। जब मन निशल्य होता है, तो और एक नयी अंतिम यात्रा शुरू होती है--आत्मा की खोज, परमात्मा की खोज, सत्य की खोज। शरीर, मन, दोनों संतुलन में हों, तो ही आत्मा की खोज हो सकती है।
अब मुझको करार है तो सबको करार है
दिल क्या ठहर गया कि जमाना ठहर गया
जैसे ही मन की उधेड़बुन ठहर जाती है, दिल ठहर जाता है, कि सारी आपा धापी, सारी दौड़-धूप, सब बंद हुई।
दिल क्या ठहर गया कि जमाना ठहर गया
सब ठहर जाता है, समय ठहर जाता है। उस परम ठहराव में ध्यान के फूल खिल सकते हैं। उस परम शांति में आदमी अपनी आखिरी मंजिल की तरफ जाता है। "ज्ञान से ध्यान की सिद्धि होती है। ध्यान से सब कर्मों की निर्जरा होती है। निर्जरा का फल मोक्ष है। अतः सतत ज्ञानाभ्यास करना चाहिए।" णाणेण ज्झाणसिज्झी, झाणादो सव्वकम्मणिज्जरणं।
णिज्जरणफलं मोक्खं, णाणब्भासं तदो कुज्जा।।
"ज्ञान से ध्यान की सिद्धि होती है।" ज्ञान को ठीक से समझ लेना। ज्ञान
का अर्थ शास्त्र-अध्ययन नहीं। वह तो महावीर बहुत पहले इनकार कर चुके। ज्ञान का अर्थ सूचनाओं का संकलन नहीं है। ज्ञान का अर्थ है, जो है उसे वैसा ही जानना। जैसा है वैसा ही जानना। तथ्य को तोड़ना-मरोड़ना नहीं। तथ्य के ऊपर अपने मन को आरोपित न करना। तथ्य को विकृत न करना। जो है, जैसा है, उसे वैसे ही जानने का नाम ज्ञान है।
गुलाब का फूल खिला। तुम कहते हो, सुंदर है। तो जो जैसा है उससे तुम हट गये। तुमने अपने मन को आरोपित किया। यह सुंदर का ख्याल तुम्हारा है। गुलाब के फूल को कुछ भी पता नहीं है कि सुंदर है, असुंदर है। आदमी हट जाए पृथ्वी से तो भी गुलाब का फूल खिलेगा। गेंदे का फूल भी खिलेगा। लेकिन न तो गेंदे का फूल असुंदर होगा, न गुलाब का फूल सुंदर होगा। न गेंदे का फूल कम सुंदर होगा, न गुलाब का फूल ज्यादा सुंदर होगा। घास के फूल भी खिलते रहेंगे। सभी एक जैसे होंगे। मनुष्य के हट जाते ही मूल्य हट जाते हैं।
जब तुम कहते हो गुलाब का फूल सुंदर है, तो तुमने फूल के साथ कुछ जोड़ा। तथ्य को तथ्य न रहने दिया। तुमने कल्पना जोड़ी। तुमने अपना भाव डाला। तुमने तथ्य को अतथ्य किया। गुलाब को देखो, कुछ कहो मत। कुछ जोड़ो मत। वहां हो गुलाब, यहां हो तुम, दो उपस्थितियां--शून्य, शांत--शब्द का कोई भी रोग-राग न हो। शब्द बीच में उठे ही नहीं। शब्द सत्य को विकृत करता है। मौन का सेतु हो। वहां गुलाब खिले, यहां तुम खिलो। दोनों एक-दूसरे के आमने-सामने साक्षात्कार हो। न तुम कुछ कहो, न तुम कुछ सोचो, न तुम कोई धारणा बनाओ, तुम

बस देखते रहो जो है। जो है उसे प्रगट होने दो, फैलने दो। तब तुम पहली दफे जानोगे गुलाब को--नामरहित, विशेषणरहित, रूपरहित। गुलाब अपने समग्र वैभव से प्रगट होगा। तुम्हारी आत्मा पर फैलता चला जाएगा। तुम पहली दफा स्पर्श करोगे उसका, जो है। और जो गुलाब के साथ कह रहा हूं, वही सारे जीवन के साथ करो, तो महावीर कहते हैं, ज्ञान।
"णाणेण ज्झाणसिज्झी।" और ज्ञान से ध्यान सिद्ध होता है। बड़ा अमूल्य सूत्र है। ऐसे ज्ञान का अपने-आप रूपांतरण ध्यान में हो जाता है। यह ज्ञान की विशुद्धि ही ध्यान बन जाती है। ध्यान का अर्थ है, निर्विचार-चित्त। जब तुम तथ्य को तथ्य की तरह देखने में कुशल हो जाते हो, तो विचार विदा हो जाते हैं। उनकी तरंगें नहीं उठतीं। मौन में साक्षात्कार होने लगता है। तुम्हारी आंख खाली हो जाती है। तुम सिर्फ देखते हो, कुछ डालते नहीं। तुम सिर्फ सुनते हो, कुछ विचारते नहीं। तुम सिर्फ छूते हो, व्याख्या नहीं करते। व्याख्या करना, विचार करना, कुछ डालना, कुछ जोड़ना, ये सब मन के कृत्य हैं। जब ये सब कृत्य खो जाते हैं, मन खो जाता है। जहां मन नहीं, वहां ध्यान। मन का अभाव, ध्यान। अ-मन की अवस्था, ध्यान।
"ज्ञान से ध्यान की सिद्धि होती है। और ध्यान से सब कर्मों की निर्जरा होती है।"
सुनो, महावीर कहते हैं, ध्यान से सब कर्मों की निर्जरा होती है। जो तुमने किये हों पाप-पुण्य अनंत-अनंत जन्मों में, क्षणभर के ध्यान से मिट जाते हैं। क्यों, ऐसा कैसे होता होगा? यह गणित कुछ समझ में नहीं आता। क्योंकि जनम-जनम तक पाप किये--चोरी की, बुराई की, झूठ बोले, हत्या की, हत्या का सोचा--कम से कम आत्महत्या की--सब तरह के गर्हित कृत्य किये हैं, जन्मों- जन्मों तक इतने कर्मों का जाल, और ध्यान से मिट जाएगा, क्या मामला है? ध्यान से इसलिए मिट जाता है कि जो तुमने किया, वह सपना था। कर्ता का भाव स्वप्न है। रात भर कितने काम करते हो, सुबह अलार्म बजा, पक्षी चहचहाये, आंख खुली, सब गया--रात कितना क्रम था, कितना उपक्रम था, कितना उपाय था, कितनी दौड़-धूप थी, कितना पाया, कितना खोया, आंख खुलते ही सब खाली हो गया। निर्जरा का अर्थ है, जिसे तुमने कर्म जाना वह माया से ज्यादा नहीं। महावीर माया शब्द का उपयोग नहीं करते। लेकिन इससे क्या फर्क पड़ता है! उनका वक्तव्य इतना साफ है। महावीर यह कह रहे हैं, जो तुमने किया वह स्वप्नवत है। जागने की जरूरत है, जागते ही स्वप्न खो जाते हैं। रात तुमने चोरी की, सुबह जागकर फिर तुम परेशान तो नहीं होते कि रात चोरी की, चोर बना, अब क्या करूं, अब क्या न करूं? क्या अब दान करूं? क्या जाकर पुलिस में रपट लिखाऊं? क्या करूं? रात किसी की हत्या कर दी, तो सुबह तुम घबड़ाते तो नहीं कि पुलिस आती होगी। जागते ही निर्जरा हो गयी। जागते ही निर्जरा इसीलिए हो सकती है कि जो किया था वह सोते का सपना था।
"ध्यान से सब कर्मों की निर्जरा होती है।" निर्जरा शब्द बड़ा प्यारा है। महावीर का अपना है। निर्जरा का अर्थ होता है, झड़ जाना। जैसे पतझड़ में पत्ते झड़ जाते हैं। जैसे स्नान करते वक्त शरीर की धूल झड़ जाती है। बैठ गये जलस्रोत के निकट, जलप्रपात के नीचे, सब धूल झड़ जाती है। ऐसे ध्यान से जब स्नान हो जाता है, तो सब निर्जरा हो जाती है।
"निर्जरा का फल मोक्ष है।" और निर्जरा की अंतिम अवस्था जहां सब झड़ गया, कुछ भी न बचा; सब घास-पात, सब पात-पत्ते, सब धूल-धवांस, सब गिर गयी, कुछ भी न बचा, तुम ही बचे तुम्हारी निपट शुद्धि में, तुम्हारा एकांत बचा, तुम्हारा कैवल्य बचा, बस तुम्हारी भीतर की रोशनी बची, शून्य में जलता हुआ प्राण का दीया बचा, सब हट गया, वही मोक्ष है। मोक्ष कोई भौगोलिक अवस्था नहीं। मोक्ष तुम्हारी शुद्धतम अवस्था है। कहो परमात्मा या मोक्ष, एक ही बात है।
"अतः सतत ज्ञानाभ्यास करना चाहिए।" महावीर के इस वचन को जैन-मुनियों
ने समझा कि सतत शास्त्र पढ़ते रहना चाहिए। करते ही यही बेचारे! शास्त्र-अभ्यास तो खूब हो जाता है, लेकिन न तो उससे ध्यान सधता है--वस्तुतः शास्त्र-अभ्यास के कारण ध्यान असंभव हो जाता है--न उससे कर्मों की निर्जरा

होती है, न मोक्ष मिलता है। फिर भी--न पौधा दिखायी पड़ता, न फल लगते, न फूल आते--फिर भी वे बैठे हैं। शास्त्र का अध्ययन किये जा रहे हैं। ज्ञान-अभ्यास का महावीर का अर्थ है, तथ्य को तथ्य की तरह देखने का अनुशासन। जो जैसा है उसे वैसा ही देखने की प्रक्रिया। इसे साधना होगा। क्योंकि जन्मों-जन्मों तक हमने तथ्यों को झुठलाना सीखा है। हम कुछ का कुछ देख लेते हैं। हम देखते भी होते हैं, लेकिन वह नहीं दिखायी पड़ता जो है। और वह दिखायी पड़ जाता है जो हम देखना चाहते हैं। हमारे भीतर की तरंगें जगत के पर्दे पर छायाएं बनाती रहती हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन मेरे पास आया। उसने अपनी वसीयत लिखी। वसीयत देखकर मैं चौंका। मैंने कहा, मुल्ला, बड़े उदार हो। क्योंकि वसीयत में उसने लिखा, कि मेरे मरने के बाद में मेरी पत्नी को पचास हजार रुपये मिलें। लेकिन यदि वह विवाह करे, तो एक लाख रुपये मिलें। मैंने कहा, लोग तो लिख जाते हैं कि अगर पत्नी विवाह करे, तो एक पैसा न मिले। अगर सदा मेरे नाम के लिए रोती रहे, तो सब मिल जाए। तुमने यह क्या किया? तुम बड़े उदार हो। कभी मैंने सोचा नहीं कि तुम इतने उदार होओगे। उसने कहा, आप गलत न समझें, मेरा मतलब कुछ और ही है, लेकिन अब आपसे क्या छिपाना! क्या मतलब है तेरा? तो उसने कहा, पहली तो बात यह है कि जो मूर्ख--और केवल कोई मूर्ख ही उससे विवाह करेगा--विवाह करेगा, उसके लिए खर्च-पानी के लिए कुछ जरूरत पड़ेगी, लेकिन उसमें भी मेरा रस नहीं। रस मेरा इसमें है कि कोई उससे विवाह करे। अकेला मैं ही क्यों दुख पाऊं इसकी वजह से? कोई और भी तो चखे दुख! और फिर एक और कारण है। मर जाने के बाद कम से कम एक आदमी तो दुखी रहेगा, कि मुल्ला न मरता तो अच्छा था।
लोग कहते कुछ, भीतर कुछ और होता। बोलते कुछ, भाव कुछ और होते। पर्त दर पर्त आदमी में झूठ है। बाहर फिर हम वही देखते चले जाते हैं जो पर्त दर पर्त हममें फैला है। तुम दूसरे में वही देख लेते हो, जैसी तुम्हारी देखने की आदत हो गयी है। चोर चोर को ही देखता रहता है। चोर को साधु दिखायी पड़ता ही नहीं, दिखायी पड़ ही नहीं सकता। वह मान ही नहीं सकता कि कोई साधु हो सकता है। जब वह खुद ही नहीं हो सका साधु, तो कौन हो सकता है!
महावीर कहते हैं ज्ञान के अभ्यास का अर्थ है, तथ्य को देखने की कला। अपने को हटाना, बीच में मत डालना। व्यवधान मत बनना, सब पर्दे हटा लेना और जैसा हो उसको वैसा ही देखना, चाहे कोई भी कीमत देनी पड़े, चाहे कोई भी कीमत चुकानी पड़े। शास्त्र-अभ्यासी तो केवल परंपरा के अंधे पूजक हैं।
लीक-लीक गाड़ी चले, लीकै चले कपूत
लीक छांड़ि तीनों चलें, शायर, सिंह, सपूत
वह जो शास्त्र की लकीर पीटते रहते हैं, वह तो कपूत हैं। वह तो कायर हैं। उनमें तो कोई बल नहीं।
लीक छांड़ि तीनों चलें, शायर, सिंह, सपूत।
जो भी लीक को छोड़कर चल सकता है, जो पिटी-पिटायी बात को नहीं देखता, जो पिटे-पिटाये शब्दों को नहीं दोहराता, जो पिटी-पिटायी धारणाओं में नहीं जीता, जो सब जाल को हटा देता है और जीवन के तथ्य को देखता है और उस तथ्य के अनुसार जीता है, वही बहादुर है, वही साहसी है, वही महावीर है। शायर, सिंह, सपूत। उसी के जीवन में काव्य का जन्म होगा। उसी के जीवन में वीर्य का जन्म होगा। वही सपूत है। क्योंकि वही जीवन को धन्य कर पायेगा। वही भाग्यवान है।
"उन महाकुल वालों का तप भी शुद्ध नहीं है जो प्रव्रज्जा धारण कर पूजा- सत्कार के लिए तप करते हैं। इसलिए कल्याणार्थी को इस तरह तप करना चाहिए कि दूसरे लोगों को पता तक न चले। अपने तप की किसी के समक्ष प्रशंसा नहीं करनी चाहिए।"
आदमी ऐसा उलटा है, बेबूझ है। उलटी खोपड़ी है आदमी की। तप भी करता है तो
भी कारण वही पुराने अहंकार के होते हैं। पहले धन की अकड़ से चलता था कि लाखों हैं, अब इस अकड़ से चलता है कि लाखों त्याग दिये। पहले यह अकड़ थी कि देखो मेरे पास कितना है, अब यह अकड़ है कि सुनो मैंने कितना त्यागा है। अकड़

अपनी जगह कायम है। रस्सी जल जाती है, अकड़ नहीं जाती। तो महावीर कहते हैं, ऐसा तप मत करना, वह तप भी अशुद्ध है।
तेसिं तु तवो ण सुद्धो, निक्खंता जे महाकुला।
जं नेवन्ने वियाणंति, न सिलोगं पवेज्जइ।।
पूजा-सत्कार के लिए तप मत करना। कल्याणार्थी को तो ऐसे तप करना चाहिए
कि किसी को पता न चले। तप तो एकांत में हो। तप तो तुम्हारा भीतर है, भीतर हो।
अब इसको समझना।
साधारणतः पाप हम एकांत में करते हैं, पुण्य भीड़ में करते हैं, पाप हम छिपाते हैं, पुण्य हम बताते हैं। पाप अगर मजबूरी में बताना भी पड़े, तो कम से कम बताते हैं। पुण्य अगर छिपाना भी पड़े, तो कम से कम छिपाते हैं। मजबूरी में। पुण्य को हम बढ़ा-बढ़ाकर बताते हैं, पाप को हम घटा-घटाकर छिपाते हैं। पाप को हम छोटा बना-बनाकर भीतर रख लेते हैं। पुण्य को हम बड़ा बनाकर आकाश में इंद्रधनुषों की भांति फैलाते हैं।
महावीर कहते हैं, प्रक्रिया उलटी होनी चाहिए। पुण्य को भीतर छिपाकर
रख लेना, पाप को बाहर प्रगट कर देना। पाप को तो बता देना, क्योंकि जो बता दो वह खो जाता है। पुण्य बताया, पुण्य खो जाएगा। पाप बताया, पाप खो जाएगा। जो बचाकर भीतर रखते हो, वही बीज बनता है। जो छिपाया, वही बढ़ेगा। पाप छिपाओगे, पाप बढ़ेगा। पुण्य छिपाओगे, पुण्य बढ़ेगा। अब तुम पर निर्भर है। गणित साफ है। अगर तुमने पाप छिपाया, तो पाप बढ़ता जाता है। वह तुम्हारी रंध्र-रंध्र में मवाद की तरह फैल जाता है। उसकी अंतःधारा तुम्हें पूरी तरह ग्रसित कर लेती है। और पुण्य तुम प्रगट करते हो, वह खो जाता है हाथ से। पुण्य प्रगट हुआ, ऐसे जैसे कि सुगंध निकल गयी फूल से। फूल खाली रह गया। गंध गयी। महावीर कहते हैं उलटा करो, थोड़े समझदार बनो। छिपाओ पुण्य को, किसी को पता न चले। जीसस ने कहा है, एक हाथ से दो, दूसरे हाथ को पता न चले। प्रार्थना करो एकांत में, अकेले में। अंधेरी रात में। तुम्हारी पत्नी को, तुम्हारे पति को पता न चले। उठ गये आधी रात, बैठ गये अपने बिस्तर पर, क्षणभर को उस एकांत में परमात्मा से अपने को जोड़ो। भीड़-बाजार का यह काम नहीं। किसी को बताना क्या है! किसी से कहना क्या है? कहा कि हाथ से खो जाएगा। कहा कि गया। तीर निकला धनुष से। फिर लौटेगा नहीं।
रोको, संभालो। पुण्य को छिपाओ। पाप को प्रगट करो। क्योंकि पाप छूट जाए, अच्छा। पुण्य छिप जाए, बीज बने, गहरे में उतरे तुम्हारे अंतस्तल में जाए, अंतरधारा बहे, तुम्हारे रोएं-रोएं में, रग-रग में पुण्य की गंध बहे, पुण्य का आनंद बहे।
"ज्ञानमयी वायुसहित तथा शील द्वारा प्रज्वलित तपोमयी अग्नि संसार के कारणभूत कर्मबीज को वैसे ही जला डालती है जैसे वन में लगी प्रचंड आग तृण-राशि को जला डालती है।" इस ज्ञान की अग्नि को जलाओ। इस ज्ञान के यज्ञ को जलाओ। इसे जलाना हो तो तथ्य को तथ्य के जैसा देखने का साहस करो। इसे अगर जलाना हो तो व्यर्थ को बाहर फेंको, सार्थक को भीतर संभालो। बुरे को कहो। कम से कम एक आदमी तो खोज लो, जिससे तुम अपना पूरा हृदय कह सको। और शुभ को मंजूषा में--हृदय की मंजूषा में छिपाओ। शुभ का सार तुम्हारे प्राणों में बस जाए। और अशुभ जैसे ही तुम्हें पता चले, तत्क्षण उसे निवेदन कर दो। गंगा में बहा दो। तो जन्मों का जो कारणभूत बीज है, जिसके कारण हम पैदा होते हैं-- वासना--वह नष्ट हो जाती है। या अहंकार, वह नष्ट हो जाता है। यह शांति जिसकी आदमी तलाश करता है, पहाड़ों पर न मिलेगी। पहाड़ों की शांति क्षणभर का धोखा है। यह शांति तुम्हें भीतर खोजनी होगी!
कितनी शांति! कितनी शांति!
समाहित क्यों नहीं होती यहां मेरे हृदय की क्रांति?
क्यों नहीं अंतर-गुहा का अशृंखल दुर्बाध्य वासी
अथिर यायावर, अचिर में चिर प्रवासी
नहीं रुकता, चाह कर--स्वीकार कर--विश्रांति?
मान कर भी, सभी ईप्सा, सभी कांक्षा
जगत की उपलब्धियां सब हैं लुभानी भ्रांति।

कितनी शांति! कितनी शांति!
समाहित क्यों नहीं होती यहां मेरे हृदय की क्रांति?
पहाड़ों पर जो शांति है, बड़ी गहन है। पहाड़ों की है, तुम्हारी नहीं। मंदिर में जाकर बैठ गये, शांति है। मंदिर की है, तुम्हारी नहीं। इस शांति से तुम्हारे भीतर का उथल-पुथल, इस शांति से तुम्हारे भीतर का रुदन, इस शांति से तुम्हारे भीतर का कोलाहल समाप्त न होगा।
समाहित क्यों नहीं होती यहां मेरे हृदय की क्रांति?
क्यों नहीं अंतर-गुहा का अशृंखल दुर्बाध्य वासी
अथिर यायावर, अचिर में चिर प्रवासी
नहीं रुकता, चाह कर--स्वीकार कर--विश्रांति?
मान कर भी, सभी ईप्सा, सभी कांक्षा
जगत की उपलब्धियां सब हैं लुभानी भ्रांति।
जानते तो तुम भी हो। लेकिन जानना तुम्हारा मानने का है।
मानकर भी सभी ईप्सा, सभी कांक्षा
जगत की उपलब्धियां सब हैं लुभानी भ्रांति
कुछ हल नहीं होता। मानकर कहीं हल हुआ है? सुनकर मान लिया, कहीं हल हुआ? जानना होगा। ज्ञान! फिर बनेगा ध्यान। फिर ध्यान से होगी निर्जरा। फिर निर्जरा से मोक्ष।
इतना ही फर्क है परमात्मा में और आदमी में कि आदमी व्यर्थ के बोझ से ढंका है, जैसे हीरा कंकड़ों में दबा, कि सोना मिट्टी में पड़ा। आग से गुजर जाए, निखर जाए, कि आदमी परमात्मा है।
सरापा आरजू होने ने बंदा कर दिया हमको
वगरना हम खुदा थे गर दिल-ए-बेमुद्दआ होते
अगर हृदय में आकांक्षा, वासना का बीज न होता, चाह न होती, तो हम स्वयं ईश्वर थे। फिर से चाह जल जाए, हम फिर ईश्वर हो जाएं। चाह हमें उतार लायी जमीन पर। लंगर की तरह चाह ने हमें जमीन से बांधा है। ज्ञान की अग्नि में चाह जल जाती है। ठीक कहते हैं महावीर--"जैसे प्रचंड अग्नि में तृण-राशि जल जाती है, ऐसा ही बीज चाह का, तृष्णा का जल जाता है।" जल्दी करो, क्योंकि कल का कोई भरोसा नहीं। जलाओ इस आग को। यह सोना कब से तुम्हारी प्रतीक्षा करता है।
जिसलिए मैं पंख लाया था,
वह काम न इनसे ले पाया।
इन पंखों का देनेवाला,
नाराज न होगा क्या मुझ पर?
पंखों से बांध लिये पत्थर!
फैलाओ पंखों को। फिर से तौलो हवाओं पर। फिर उड़ो आकाश की तरफ।
जिसलिए पंख मैं लाया था,
वह काम न इनसे ले पाया।
इन पंखों का देनेवाला,
नाराज न होगा क्या मुझ पर?
पंखों से बांध लिये पत्थर!
गिराओ पत्थर। लेकिन दूसरों की कही हुई बातों से यह न होगा। सुना बहुत कहते लोग, जगत माया है। छूटती तो नहीं! सुना बहुत, लोग कहते हैं क्रोध आग है; मिटता तो नहीं! सुना बहुत, काम पाप है; जाता तो नहीं! क्या इतने से साफ नहीं हो रहा कि सुना हुआ जो है, पढ़ा हुआ जो है; शास्त्र से, संस्कार से जो मिला है, वह ज्ञान नहीं! प्रकाश की बातें हैं, प्रकाश नहीं। पाकशास्त्र है, भोजन नहीं। जल का सूत्र होगा--एच टू ओ--लेकिन एच टू ओ से कहीं प्यास किसी की बुझी है!
कागज पर किसी को एच टू ओ लिखकर दे दो, वह प्यासा तड़फ रहा है--वह फेंक देगा कागज, वह कहेगा इसे क्या करेंगे? शास्त्र का क्या करेंगे? होगा ठीक तुम्हारा सूत्र, मुझे जल चाहिए, सूत्र नहीं। लेकिन जल शास्त्र से मिल भी नहीं सकता। स्वयं से ही मिल सकता है। और जब तक वैसा जलस्रोत तुम अपने भीतर न खोज लो, प्यासे तड़फते, जीवन के नाम पर क्षण-क्षण मरते ही तुम रहोगे।

मन में मिलन की आस है,
दृग में दरस की प्यास है, परढूंढता फिरता जिसे,
उसका पता मिलता नहीं।
झूठे बनी धरती बड़ी,
झूठे बृहत आकाश हैं;
मिलती नहीं जग में कहीं,
प्रतिमा हृदय के गान की।
किसके सामने नाचूं? किसके सामने गीत गाऊं? कहां चढ़ाऊं जीवन का अर्ध्य? कहां चढ़ाऊं जीवन का नैवेद्य? कहां है वह द्वार, जो मेरे घर का है? जो वस्तुतः मेरे घर का द्वार है।
मन में मिलन की आस है,
दृग में दरस की प्यास है,
परढूंढता फिरता जिसे,
उसका पता मिलता नहीं,
बाहर ढूंढते रहोगे, मिलेगा भी नहीं। वह भीतर छिपा बैठा है। तुम्हारा होना ही उसका द्वार है। तुम जरा शुद्ध होने की कला भर सीख लो। उसी को महावीर ज्ञान कहते हैं। और घबरा मत जाना, कितने ही हारे होओ, कितने ही भटके होओ, उससे तुम दूर जाकर भी दूर जा सकते नहीं। उसे खोकर भी तुम खो सकते नहीं। क्योंकि वह तुम्हारा स्वभाव है।
तृषित! धर धीर मरु में
कि जलती भूमि के उर में
कहीं प्रच्छन्न जल हो।
न रो यदि आज तरु में
सुमन की गंध तीखी,
स्यात, मधुपूर्ण फल हो।
दुखों की चोट खाकर
हृदय जो कूप-सा जितना
अधिक गंभीर होगा;
उसी में वृष्टि पाकर
कभी उतना अधिक संचित
सुखों का नीर होगा।
घबड़ाओ मत! बहुत बार ऐसा हुआ कि महावीर और बुद्ध जैसे पुरुषों को देखकर बजाय इसके कि लोगों ने आशा के सूत्र लिये होते, लोग निराश हो गये और घबरा गये और उन्होंने कहा कि यह तो कुछ ही लोगों के वश की बात है। यह तो महापुरुषों की बात है। अवतारी, तीर्थंकरों की बात है। बुद्धों की बात है। हम साधारणजन! तो, हम पूजा ही करने के लिए बने हैं। हम कभी पूज्य होने को नहीं बने। तो हम प्रतिमा के सामने फूल चढ़ाने को ही बने हैं, हम कभी परमात्मा की प्रतिमा बनने को नहीं बने हैं।
बड़ी भूल हो गयी। जिनसे आत्मविश्वास लेना था, उनसे हमने और दीनता और हीनता ले ली। उनका सारा प्रयास यही था कि तुम समझो कि वे तुम्हारे जैसे ही पुरुष, आज ऐसे गौरीशंकर के शिखर जैसे हो गये हैं। तुम भी हो सकते हो। देखा कभी बड़वृक्ष के नीचे, विराट वृक्ष के नीचे पड़ा छोटा-सा बड़ का चीज! बड़ का बीज सोच भी नहीं सकता कि इतना बड़ा वृक्ष कैसे हो सकेगा? लेकिन हो सकता है। उसकी संभावना है। वैसी ही संभावना तुम्हारी है। बस थोड़े-से जागने की, स्मरण की बात है।
रे प्रवासी, जाग! तेरे
देश का संवाद आया।
भेदमय संदेश सुन पुलकित
खगों ने चंचु खोली;
प्रेम से झुक-झुक प्रणति में पादपों की पंक्ति डोली;
दूर प्राची की तटी से

विश्व के तृण-तृण जगाता;
फिर उदय की वायु का वन में
सुपरिचित नाद आया
रे प्रवासी, जाग! तेरे
देश का संवाद आया।
ये जिन-सूत्र तुम्हारे देश की खबरें हैं।
रे प्रवासी, जाग! तेरे
देश का संवाद आया।
महावीर और बुद्ध डाकिया हैं। चिट्ठीरसा। खबरें लाते हैं परमात्मा की। तुम चिट्ठियों को संभालकर छाती पर मत रख लेना। खोलो और उनका अर्थ खोलो। खोलो चिट्ठियों को। उनका सार समझो। ये चिट्ठियां पूजने के लिए नहीं हैं। ये चिट्ठियां शास्त्र बना लेने के लिए नहीं हैं। ये चिट्ठियां जीवन बनाने के लिए हैं।
रे प्रवासी, जाग! तेरे
देश का संवाद आया।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग दो
चौदहवां प्रवचन

जीवन तैयारी है, मृत्यु परीक्षा है

पहला प्रश्नः आपकी आंखों से निरंतर आशीर्वाद बरसता-सा प्रतीत होता है, मधुर और सलोना। श्रोताओं पर आपकी आंखें घूमती हैं और जैसे ही मुझ पर पड़ती हैं, लगता है कोई बर्छी मेरे अंतर्तम में छिद गयी। सारा शरीर कांप जाता है। मृत्यु-सी घटित होती है। लेकिन आत्यंतिक-मृत्यु क्यों नहीं घट जाती?

वह भी घटेगी। थोड़ी प्रतीक्षा, थोड़ी बाट जोहनी होगी। प्रारंभ हो गया है। धीरे-धीरे मरने की कला आती है। इतना साहस नहीं होता कि एक छलांग में आदमी मर जाए। रत्ती-रत्ती छूटता है। लेकिन एक-एक कदम से चलकर हजारों मील की यात्रा पूरी हो जाती है। इसलिए चिंता का कोई कारण नहीं है।
और ध्यान निश्चित ही मृत्यु जैसा है। क्योंकि जिसे हमने जीवन कहा है
वह जीवन नहीं है। और जिसे हमने अब तक मृत्यु समझा है वह मृत्यु नहीं है। हम बड़े धोखे में हैं। जिसे हम जीवन कहते हैं, वह केवल एक सपना है। और जिसे हम मृत्यु कहते हैं, वह है केवल इस सपने का टूट जाना। लेकिन चूंकि सपने को हम सत्य मानते हैं, जोर से पकड़ते हैं उसे, छाती से लगाये रखते हैं उसे। जीवन को जोर से पकड़ने के कारण ही मौत दुखदायी मालूम होती है। अन्यथा मृत्यु में कोई दुख नहीं है। मृत्यु विश्राम है, विराम है। जीवन को गलत समझा है, इसलिए मृत्यु के संबंध में भी गलत दृष्टि बन गयी है।
ध्यान है मृत्यु को ठीक-ठीक जानना, पहचानना। अहंकार को धीरे-धीरे डुबाना और खोना। जहां तुम नहीं होते, वहीं परमात्मा होता है। जहां तुम मिटे, परमात्मा हुआ। तुम्हारे मिटे बिना वह हो भी नहीं सकता। तुम बहुत जगह घेरे हो। उसके लिए अवकाश नहीं है भीतर आने को। मिटो, मरो, विदा होओ, ताकि वह आ सके। और तुम ही तुम्हारी बीमारी हो। लेकिन इस बीमारी को तुमने अपना शृंगार समझा है। इस अहंकार को तुमने अपनी आत्मा समझा है। इससे भूल हो रही है।
जो मेरे पास आयेंगे, वे चाहे किसी कारण से मेरे पास आ रहे हों, मैं उन्हें पास मरने के लिए ही बुला रहा हूं। मैं उन्हें स्वाद देना चाहता हूं मृत्यु का। एक बूंद भी तुम चख लो मृत्यु की, तो मृत्यु के द्वार से ही अमृत की पहली झलक मिलती है। मृत्यु के आवरण में छिपा है अमृत। मृत्यु की ओट में छिपा है परमात्मा।
जब मंसूर को सूली लगी, तो वह आकाश की तरफ देखकर खिलखिलाकर हंसने लगा। किसी ने पूछा उस भीड़ में से जो उसकी हत्या कर रही थी कि क्या देखकर हंस रहे हो? तो मंसूर ने कहा, तुम जिसे मृत्यु समझ रहे हो, वह मेरे परमात्मा से मेरा मिलन का द्वार है। उसे मैं खड़ा देख रहा हूं। वह हाथ फैलाये बाहुओं में लेने को तत्पर है। तुम यहां मुझे मारो कि वहां मैं उसके आलिंगन में गिरा। इसलिए हंस रहा हूं कि तुम्हें किसी को दिखायी नहीं पड़ता! वह बिल्कुल सामने खड़ा है। इधर मेरे मरने की देर है कि उधर मिलन हुआ। जल्दी करो, देर क्यों लगा रहे हो?
जिन्होंने भी स्वयं को जाना, उन्होंने जाना, मृत्यु कचरे को ले जाती है, सोने को तो छोड़ जाती है। व्यर्थ को बहा ले जाती है, सार्थक को तो निखार जाती है, साफ-सुथरा कर जाती है। मृत्यु वरदान है। और जिसे मृत्यु में भी वरदान दिख गया, उसे फिर कहां वरदान न दिखेगा! जिसने मृत्यु में भी परमात्मा के हाथ देख लिये, स्वभावतः जीवन में तो उसके हाथ देख ही लेगा। उसने आखिरी कसौटी पार कर ली।
जब तक तुम मृत्यु में जीवन का सूत्र न खोज लोगे, तब तक तुम्हें बार-बार जन्मना होगा, मरना होगा। तुम फिर-फिर भेजे जाओगे, क्योंकि परीक्षा में तुम उत्तीर्ण नहीं होते। जीवन तैयारी है, मृत्यु परीक्षा है। परीक्षा अंत में है, स्वभावतः। जीवनभर तैयारी करते हैं हम, तैयारी किसलिए? कभी सोचा मृत्यु अंत में क्यों आती है? परीक्षा को अंत में आना ही होगा। मृत्यु जीवन की

समाप्ति नहीं है। जीवनभर में तुमने कुछ सीखा, कुछ जाना, कुछ निचोड़ा, कुछ सार हाथ आया, इसकी परीक्षा है। अगर कुछ सार हाथ आया हो, तो मृत्यु तुम्हें मार नहीं पाती। अगर कुछ भी हाथ न आया हो, तो मृत्यु तुम्हें मार पाती है। फिर फेंके जाते हो जन्म में। जो मृत्यु से चूका, फिर जन्मेगा।
मृत्यु से चूकने के कारण ही जन्म है। जो मृत्यु को जागकर जी लिया, सौभाग्य से जी लिया, जिसने मृत्यु को आत्मसात कर लिया; जो मरा तन्मयता से, आनंद से, अहोभाव से, जिसने मृत्यु में भी परमात्मा के हाथ फैले देख लिये, फिर उसका कोई जन्म नहीं है। इसलिए मैं कहता हूं, ध्यान तो मृत्यु को ही सीखना है। स्वेच्छा से सीखना है। और अभी तुम न सीखोगे तो मौत जब आयेगी, तो अचानक तुम अपने को तैयार न कर पाओगे।
मौत तो अचानक आती है, अकस्मात, कोई खबर नहीं देती, कोई पूर्व-संदेशा नहीं भेजती। एक दिन अचानक द्वार पर खड़ी हो जाती हैः तुम अस्त-व्यस्त! तुम चलने को तैयार भी नहीं होते, बोरिया-बिस्तर भी बांधा नहीं होता, व्यर्थ से सार्थक को छांटा नहीं होता, सार से असार को अलग नहीं किया होता, सब उलझा पड़ा होता है--बीच में मौत आकर खड़ी हो जाती है। क्षणभर का समय भी नहीं देती कि तुम जमा लो, कि तुम तैयारी कर लो, कि तुम पाथेय जुटा लो, कि आनेवाली लंबी यात्रा के लिए तुम अपने को तत्पर कर लो, एक क्षण का अवकाश नहीं; मौत आयी-- समय गया। मौत के आते ही समय नहीं बचता।
अकस्मात आनेवाली यह मृत्यु, इसकी अगर तुमने जीवन में रोज-रोज तैयारी
न की, तो जैसा पहले भी इसने तुम्हें गैर-तैयार पाया, इस बार भी पायेगी। फिर चूकोगे, फिर उतरोगे जन्म के गड्ढे में, फिर भटकोगे इन्हीं अंधेरी गलियों में, फिर इन्हीं कंटकाकीर्ण मार्गों पर, फिर इन्हीं वासनाओं की, इन्हीं क्रोध-कामनाओं की, लोभ, मद-मत्सर की भीड़ में फिर खो जाओगे।
इसलिए कहता हूं, ध्यान मृत्यु है। और अगर तुमने मुझे गौर से देखा, तो
उस गौर के क्षण में ध्यान की थोड़ी-सी झलक तुम्हें आयेगी। अगर तुमने शांत होकर मुझे देखा, तो शांति के क्षण में बर्छी चुभेगी। चुभनी ही चाहिए। वही प्रयोजन है मेरा और तुम्हारा यहां होने का कि मैं तुम्हें थोड़े मृत्यु के दर्शन दे दूं। और एक बार तुम्हें मृत्यु की झलक आने लगे और रसधार बहने लगे, और तुम देखो कि अरे, कैसा नासमझ था, मृत्यु तो वरदान है, अब तक मैंने अभिशाप समझा! बस, फिर तुम्हें कोई डिगा न सकेगा। फिर तुम चल पड़े सीधी डगर पर। फिर मिली राह। अब तुम्हारी दिशा उचित हुई।
जैसे-जैसे मृत्यु का रस बढ़ने लगेगा, वैसे-वैसे जिसे तुम जीवन कहते हो, इससे हाथ छूटने लगेंगे। मैं तुमसे यह नहीं कहता कि त्यागो। मैं तो सिर्फ इतना ही कहता हूं, जागो। जैसे-जैसे जागोगे, त्याग घटता है। किया त्याग भी कोई त्याग है! करना पड़े, बात ही व्यर्थ हो गयी! हो जाए। दृष्टि से हो, दर्शन से फले, बोध का परिणाम हो। इधर तुम जागो, उधर जागने की छाया की तरह त्याग भी घटे। स्वाभाविक है कि जब कोई चीज व्यर्थ दिखायी पड़ जाए, हाथ से छूट जाए; मुट्ठी खुल जाए, गिर जाए। उसे त्याग क्या कहना! छूट गयी। छोड़ा, ऐसा क्या कहना! छोड़ने जैसा क्या है! कचरे में न पकड़ने जैसा है कुछ, न छोड़ने जैसा है कुछ। लेकिन यह तो मृत्यु के स्वाद से ही संभव होगा।
तो यहां मेरे पास जब होओ, तब सच ही मेरे पास हो जाओ। तब कोई दूरी मत रखो। तब बीच में विचारों का व्यवसाय न चलने दो। तब चिंतन की धारा मत बहने दो। तब हटाकर सब बदलियों को सीधा-सीधा मुझे देखो! यहां मैं नहीं हूं। जैसे ही तुम सीधा-सीधा मुझे देखोगे, नहीं होने की एक लहर तुममें भी उठेगी। इधर मैं मिटा हूं, अगर मेरे साथ संगसाथ क्षणभर को भी साधा, तो उधर तुम भी पाओगे कि मिटने लगे।
सत्संग का इतना ही अर्थ है, किसी ऐसे व्यक्ति के सान्निध्य में मिटने
की कला सीख लेना, जो मिट गया हो। किसी शून्य के पास बैठकर शून्य होने का अनुभव ले लेना। शुरू-शुरू में जरूरत है सहारे की। अकेले तो तुम बहुत घबड़ाओगे। इधर मैं हूं, तो तुम्हें भरोसा है कि आदमी मिट भी जाए तो भी होता है, घबड़ाने की कोई बात नहीं। वस्तुतः जितना मिट जाए, उतना ही प्रगाढ़ता से होता है। जब कोई आदमी बिल्कुल शून्य हो जाता है, तो पूर्ण हो जाता है। इस

आश्वासन में बंधे तुम मेरे करीब आ सकते हो। बिना इस आश्वासन के तुम बहुत डरोगे। तुम नाव को किनारे से छोड़ोगे नहीं। तुम किनारे को जकड़े रहोगे। ठीक हो रहा है। छुरी चुभती है, चुभने दें। और आकांक्षा भी ठीक है। वह आकांक्षा सूचक है कि छुरी को चुभने दिया है। पूछा है, आत्यंतिक-मृत्यु कब घटित होगी? घबड़ाओ मत, वह भी होगी। चले चलो। राह पर हो।
सत्संग का जिसे सुख आ गया, उसकी भावदशा ऐसी हो जाती है--
कुछ न हुआ, न हो
मुझे विश्व का सुख, श्री, यदि केवल
पास तुम रहो।
मेरे नभ के बादल यदि न कटे--
चंद्र रह गया ढंका,
तिमिर रात को तिरकर यदि न अटे लेश गगन भास का,
रहेंगे अधर हंसते, पथ पर, तुम हाथ यदि गहो।
कुछ न हुआ, न हो
रहेंगे अधर हंसते, पथ पर, तुम हाथ यदि गहो।
बहु रस साहित्य विपुल यदि न पढ़ा--
मंद सबों ने कहा,
मेरा काव्यानुमान यदि न बढ़ा--
ज्ञान, जहां का तहां रहा,
रहे, समझ है मुझमें पूरी, तुम
कथा यदि कहो।
अगर, तुमने फैलाया अपने प्राणों का सेतु मेरी तरफ, तुमने अगर हाथ मेरी तरफ बढ़ाया--मेरा हाथ बढ़ा ही है--मैं तुम्हारे हाथ गहने को तैयार हूं। प्रतीक्षा है बस तुम्हारे हाथ के बढ़ने की। हाथ से हाथ भी छू जाएगा, तो छुरी लगेगी। हाथ में हाथ पकड़ आ जाएगा, तो आत्यंतिक मृत्यु भी घटेगी। अब तुम जिनको भी ऐसा हो रहा हो--उन्हें जानना चाहिए कि सौभाग्यशाली हैं, कुंजी हाथ में आने लगी। देर न लगेगी ताले खोल लेने में। छोटी-सी कुंजी होती है, बड़े से बड़े विराट महलों के ताले खुल जाते हैं। छोटी-सी कुंजी होती है, बड़े- बड़े द्वार खुल जाते हैं। यह जो अभी छोटी-सी छुरी की तरह छिदती मालूम पड़ती है, यह कुंजी है। इसी राह चले चले, तो महामृत्यु घटेगी। भागना भर मत। घबड़ाना भर मत।
साधक अपनी मृत्यु खोज रहा है। परमात्मा का तो हमें पता नहीं। इतना ही पता है कि हम जो हैं, गलत हैं। इस गलत को मिटाने के लिए साधक आकांक्षा कर रहा है। इस आशा में कि जब गलत मिटेगा, तो जो शेष रहेगा, ठीक होगा। प्रकाश का हमें कुछ पता नहीं, यह अंधेरा हमें खूब भटका लिया है, इतना हमें पता है। यह अंधेरा न रहेगा, तो जो बचेगा वह प्रकाश होगा, यही हम सोच सकते हैं, यही हम कामना कर सकते हैं।
साधक ने जीवन तो देखा--तुम सब ने जीवन देखा--चारों तरफ जीवन का सपना तुम्हारे फैला है, पाया क्या? सब पा लिया हो तो भी कुछ नहीं मिलता। जो कुछ नहीं पा पाते वे तो नंगे रह ही जाते हैं, खाली रह ही जाते हैं, जो सब पा लेते हैं वे भी खाली रह जाते हैं। इस जीवन की जैसे ही समझ साफ होती, वैसे ही आदमी सोचता है कि यह जीवन तो देख लिया, अब मृत्यु को भी देख लें। शायद जो यहां नहीं, वहां हो। इधर खोजा, इस राह पर खोजा, नहीं मिला, विपरीत राह पर खोज लें। अपने से दूर जाकर देख लिया, अब अपने पास आकर देख लें। बाहर जाकर देख लिया, अब भीतर आकर देख लें। विचार करके, चिंतन-मनन करके देख लिया, अब ध्यान करके देख लें। होने की प्रगाढ़ आकांक्षा करके देख ली, अब न होने की कामना करके देख लें। वह न होने की कामना ही प्रार्थना है।
जैसे-जैसे मृत्यु इंच-इंच तुममें प्रवेश करेगी, तुम पाओगे मृत्यु के बहाने परमात्मा तुम्हारे भीतर आने लगा। वह सदा मृत्यु के बहाने ही आता है। वह केवल उनके पास ही आता है, जो मरने को तत्पर हैं। जो कहते हैं तेरे

बिना जीना, इसके लिए हम राजी नहीं। तेरे साथ मरने को राजी हैं, तेरे बिना जीने को राजी नहीं। जो ऐसा दांव लगाता है, वही उसे पाता है।
तुम मुझमें प्रिय! फिर परिचय क्या!
जैसे-जैसे उसकी थोड़ी-सी किरणें तुम्हारे भीतर प्रवेश करती हैं, तो पहले तो किरणें मारती हैं, मिटाती हैं, जलाती हैं।
तुम मुझमें प्रिय! फिर परिचय क्या!
तारक में छवि प्राणों में स्मृति
पलकों में नीरव पद की गति
लघु उर में पुलकों की संसृति
भर लायी हूं तेरी चंचल
और करूं जग में संचय क्या! थोड़ा-सा परमात्मा संचय कर लो-- भर लायी हूं तेरी चंचल
लघु उर में पुलकों की संसृति और करूं जग में संचय क्या!
तेरा अधर-विचुंबित प्याला
तेरी ही स्मित-मिश्रित हाला
तेरा ही मानस मधुशाला;
फिर पूछूं क्यों मेरे साकी!
देते हो मधुमय विषमय क्या!
परमात्मा का हाथ तुम्हारे पहचानने में आने लगे, फिर तुम न पूछोगे।
फिर पूछूं क्यों मेरे साकी
देते हो मधुमय विषमय क्या!
फिर उस प्याली में जो भी हो; मृत्यु सही, तो महाजीवन है। जहर अमृत है। फिर मिटा डाले वह तो यही तुम्हारे निर्माण की प्रक्रिया है। नष्ट कर डाले, प्रलय में डाल दे तुम्हें, तो यही तुम्हारा सृजन है।
सुनार सोने को आग में डालता है। अगर सोने के पास भी थोड़ी बुद्धि होती,
तो चिल्लाता, तड़फता, कहता यह क्या करते हो, मार ही डालोगे क्या? लेकिन सोने को पता भी कैसे हो कि यही शुद्ध स्वर्ण बनने की प्रक्रिया है। ऐसे, आग में गुजरकर ही जो शेष रह जाएगा, वही कुंदन है। मरकर भी तुम्हारे भीतर जो नहीं मरता, वही आत्मा है। मिटकर भी जो तुम्हारे भीतर नहीं मिटता, वही तुम्हारा वास्तविक होना है।
मृत्यु से गुजरना ही होगा। मेरे पास तुम अगर और कुछ सीखकर गये, तो तुम कूड़ा-कर्कट बीनकर चले गये। अगर मौत सीखकर गये, तो तुमने कुंजी ले ली। हमने भारत के परम रहस्यवादी ग्रंथों को उपनिषद कहा है। उपनिषद का अर्थ होता है, गुरु के पास होना। उपनिषद का अर्थ होता है, पास बैठना। बस इतना।
पास बैठने से क्या हो जाएगा?
जो मिट गया है, उसके पास बैठने से तुम्हारे भीतर भी मिटने का साहस जगेगा। जो मिट गया है उसके पास बैठने से, उसकी खाई में झांकने से, उसकी अतल गहराई में झांकने से तुम भी खिंचने लगोगे अतल गहराई की तरफ। जो मिट गया है उसे देखकर तुम्हें पता चलेगा कि जो मिट गया है, कैसा कमलवत हो गया है; मरकर कैसे महाजीवन का अवतरण हो जाता है!
इस जगत में सबसे कठिन बात यह भरोसा है कि मरकर भी मैं बचूंगा। यह बड़ी
से बड़ी श्रद्धा है कि मरकर मैं बचूंगा। जिसको यह भरोसा आ गया, वही धार्मिक है। और जो इस भरोसे के सहारे पर चल पड़ा, साधक है। जो पहुंच गया, उसे हम सिद्ध कहते हैं।
रोम-रोम में नंदन पुलकित
सांस-सांस में जीवन शत-शत
स्वप्न-स्वप्न में विश्व अपरिचित
मुझमें नित बनते मिटते प्रिय
स्वर्ग मुझे क्या निष्क्रिय लय क्या; फिर पूछूं क्यों मेरे साकी!

देते हो मधुमय विषमय क्या!
मृत्यु दे रहा हूं तुम्हें, ले लेना। दो ख्याल रखना। एक, घबड़ाकर बचाने में मत लग जाना। उस बचाने की प्रक्रिया में तुम्हारे भीतर हजार तर्क उठते हैं, हजार संदेह उठते हैं। वे तर्क और संदेह केवल निमित्त मात्र हैं, वस्तुतः गहरे में तुम बचना चाहते हो, भागना चाहते हो। भागने के लिए कोई रेशनलाइजेशन, कोई बुद्धिगत उपाय खोजते हो। तो एक तो इससे बचना। और दूसरी बात, स्वाभाविक है कि आकांक्षा उठे कि थोड़ी-थोड़ी मृत्यु घटती है, ऐसा रस आ रहा है, पूरी क्यों नहीं घट जाती! उसकी बहुत ज्यादा चाहना मत करना। उसकी प्रतीक्षा करना, चाहना नहीं। क्योंकि चाहने से बाधा पड़ेगी। और देर लगेगी। कुछ ऐसा है कि जहां से चाह आती है, वह मृत्यु का स्रोत नहीं है। जहां
से चाह आती है, वहीं जीवेषणा है। एक क्षण को तुमने मेरी आंख में देखा, या मैंने तुम्हें देखा। एक धक्का लगा, एक सुख की तरंग उठी, कुछ चुभा हृदय में। पीड़ा भी हुई, लेकिन मीठी हुई। जो पीड़ा को देखेगा सिर्फ, वह भाग खड़ा होगा। जो मिठाई को देखेगा सिर्फ, वह और की मांग करने लगेगा। लेकिन दोनों डांवांडोल हो गये।
तुमने सुना, जीसस को जब सूली लगी तो उनके दोनों तरफ दो चोरों को भी सूली दी गयी। जीसस बीच में थे, सूली पर लटके, दोनों तरफ दो चोरों को भी सूली दी गयी थी। जिनने ऐसा आयोजन किया था, उनका तो केवल अर्थ इतना ही था कि वे जीसस को भी एक चोर-लफंगे से ज्यादा नहीं समझते। इसलिए दो चोरों के साथ-साथ सूली दी थी। लेकिन, ईसाई संतों ने बड़ी अनूठी बात इस साधारण-सी घटना में खोज ली। यह साधारण-सी घटना एक गहरा बोध-प्रसंग बन गयी।
जैकब बहुमे ने कहा है कि जीसस के दोनों तरफ दो चोर खड़े हैं, लटके हैं सूली पर, अगर तुम जरा बायें झुककर नमस्कार किये तो चोर को नमस्कार हो गयी, दायें झुककर नमस्कार किये तो चोर को नमस्कार हो गयी। ठीक बीच में रहे तो ही तुम्हारा नमस्कार जीसस को पहुंचेगा। यह तो बड़ी मीठी बात कही बहुमे ने। जरा इधर-उधर हुए कि चूके। सत्य मध्य में है। दोनों तरफ चोर हैं। दोनों तरफ असत्य है। परमात्मा मध्य में है, दोनों तरफ शैतान है।
तो न तो भाग जाना घबड़ाकर, न बहुत वासना से भरकर मेरी तरफ भागने लगना। दोनों हालत में चूक हो जाएगी, क्योंकि दोनों अतियां हैं। तुम जहां हो वहीं शांति से, स्वीकार-भाव से प्रतीक्षा करना। वहीं नत हो जाना, वहीं तुम्हारा सिर झुके। न तो तुम कहना कि मैं चाहता हूं ऐसा हो, न तुम कहना मैं चाहता हूं वैसा हो। तुम कहना, अब मैं कुछ चाहता ही नहीं। चाह को तुम हटा लेना। क्योंकि चाह डांवांडोल कर देगी। चाह कंपित कर देगी। तुम बेचाह होकर, जो घटे उसके स्वीकार-भाव से भरना।
इसे समझो। चाह में अस्वीकार है। बेचाह में स्वीकार है। जब तुम कहते हो, जो हो उसके लिए मैं राजी हूं, तो मृत्यु, आत्यंतिक-मृत्यु भी जल्दी घटेगी। लेकिन तुमने कहा कि जल्दी घटे, तुम यह कह रहे हो कि मैं अपनी आकांक्षा जो घट रहा है उसके ऊपर रखता हूं। यह अपनी आकांक्षा को घटने के ऊपर रखना ही जीवेषणा है। तो मौत नहीं घटेगी, देर लग जाएगी। मांगा, तो देर लग जाएगी।
छोड़ो परमात्मा पर, जो दे रहा है उसके लिए धन्यवाद दो। जो नहीं दे रहा है, जानो कि अभी तैयारी न होगी। क्योंकि जब फसल के पकने का समय आ जाता है, फसल पकती ही है। सभी चीजें अपने समय पर पक जाती हैं।
और हर बात की घड़ी, हर बात का बंधा हुआ क्रम है। छलांगें नहीं लगतीं। क्रमिक, धीरे-धीरे, आहिस्ता-आहिस्ता तैयारी होती है। क्योंकि तुम अगर तैयार न हो और कुछ तुम्हें मिल जाए, तो तुम गंवा दोगे। तुम अगर तैयार न हुए और कुछ तुम्हारी अपात्रता में गिरा, तो नष्ट हो जाएगा।
धीरे-धीरे, आहिस्ता-आहिस्ता चुभने दो इस छुरी को। इसकी पीड़ा को भी स्वीकार करो, इसके प्यार को भी स्वीकार करो। इसकी पीड़ा भी, इसकी मिठास भी। तुम चुनो मत। जितना हो रहा है, उसके लिए धन्यवाद; जो नहीं हो रहा है, उसके लिए भरोसा कि होगा। ऐसी श्रद्धा से जो चलता है, वह एक दिन मिट भी जाता है और मिटकर सर्वांग सुंदर भी हो जाता है।

दूसरा प्रश्नः जबसे आपके शिष्यों का, आपके साहित्य का और अंततः आपका
ही संपर्क उपलब्ध हुआ है, मेरे जीवन में प्रेम का प्रवाह आरंभ हो गया है। हर आदमी, हर चीज अच्छी लगने लगी है। परंतु कई बार जब मैं प्रेम से भरकर दूसरे के गले मिलना चाहता हूं, तो वह दूसरा सकुचा जाता है और फिर मैं पीछे हट जाता हूं। कृपया बतायें कि ऐसे समय में मैं क्या करूं?

प्रेम नाजुक बात है। प्रेम को अगर ठीक से समझा, तो उसमें यह बात समाहित है कि दूसरे का ध्यान रखना। प्रेम का अर्थ ही यह होता है कि दूसरे का ध्यान रखना।
तुम किसी के गले लगना चाहते हो, लेकिन दूसरा लगना चाहता है या नहीं? इतना काफी नहीं है कि तुम गले लगना चाहते हो। शुभ है कि तुम्हारे हृदय में गले लगने का भाव जगा। धन्यभागी हो! आभारी बनो प्रभु के। लेकिन इतने से जरूरी नहीं है कि दूसरे को तुम्हारे कंधे लगना ही पड़ेगा। तब तो प्रेम न हुआ, तब तो बलात्कार हुआ। तब तो तुमने दूसरे के साथ जबर्दस्ती की, यह तो हिंसा हो गयी। यह तो प्रेम के बहाने हिंसा हो गयी।
प्रेम तो रत्ती-रत्ती संभलकर चलता है, इंच-इंच संभलकर चलता है। प्रेम
तो देखता है कि दूसरा कितने दूर तक चलने को राजी है, उससे इंचभर ज्यादा नहीं चलता। क्योंकि प्रेम का अर्थ ही है कि तुम्हें दूसरे का ख्याल आया। दूसरे का मूल्य! दूसरा साध्य है, साधन नहीं! तुम गले लगना चाहते हो; दूसरा लगना चाहता है या नहीं? दूसरे को देखकर कदम उठाना। और धीरे-धीरे कदम उठाना, अन्यथा दूसरा घबड़ा ही जाएगा। तब तुम्हारा प्रेम आक्रमण जैसा मालूम पड़ेगा। तुमने दूसरे की चिंता ही न की। तुम इतनी देर भी न रुके कि पूछ तो लेते कि मैं पास आता हूं, आ जाऊं?
प्रेम सदा द्वार पर दस्तक देता है। पूछता है, क्या भीतर आ सकता हूं? अगर इनकार आये, तो प्रतीक्षा करता है, नाराज नहीं हो जाता। क्योंकि यह दूसरे की स्वतंत्रता है। दूसरे का स्वत्व है, अधिकार है कि वह कब तुम्हारे गले लगे, कब न लगे। तुम्हें प्रेम का अवरतण हुआ है, उसे तो नहीं हुआ। तुम्हारे भीतर प्रेम फैलना शुरू हुआ है, उसे तो तुम्हारे प्रेम का कोई पता नहीं। और वह दूसरा व्यक्ति तो प्रेम के नाम पर इतने धोखे खा चुका है कि उसे क्या पता कि फिर कोई नया धोखा नहीं पैदा हो रहा है। प्रेम के नाम पर ही लोगों को सताया गया है, इसलिए लोग सकुच गये हैं। मां ने किया प्रेम, बाप ने किया प्रेम, भाई ने किया प्रेम, पत्नी ने किया प्रेम, मित्रों ने किया प्रेम, और सबने प्रेम के नाम पर चूसा, और सबने प्रेम के नाम पर तुम्हारी छाती पर पत्थर रखे। बहाना प्रेम था, काम कुछ और लिया। जिसने भी कहा, मुझे तुमसे प्रेम है, उसी से तुम डरने लगे। क्योंकि अब कुछ और होगा! इस प्रेम के पीछे छिपा हुआ कोई न कोई रोग होगा।
रोगी आदमी के प्रेम में भी रोग होता है। स्वाभाविक है। कुछ और होता है! बाप अपने बेटे से कहता है कि तू देख, पढ़-लिख, बड़ा बन, प्रतिष्ठित हो। तुझसे मेरा प्रेम है इसलिए यह कह रहा हूं। लेकिन बेटा अगर अप्रतिष्ठित हो जाए, बड़े पदों पर न पहुंचे, तो प्रेम खो जाता है। तो प्रतिष्ठा से प्रेम होगा, बेटे से कहां प्रेम है! महत्वाकांक्षा से प्रेम होगा; शायद, मेरा बेटा है, खूब प्रशंसा पाये, इससे प्रेम होगा, क्योंकि इसके बहाने मेरा अहंकार भी तृप्त होगा। मेरा बेटा प्रधानमंत्री हो गया, राष्ट्रपति हो गया, तो यह अहंकार की ही यात्रा हुई प्रेम के द्वारा। यह प्रेम नहीं। यह प्रेम के पीछे महत्वाकांक्षा का रोग है। प्रेम तो कुछ भी नहीं मांगता, देता है।
पत्नी कहती है, मैं तुम्हें प्रेम करती हूं। पति कहता है, मैं तुम्हें प्रेम करता हूं। और जैसे-जैसे प्रेम के जाल में दूसरा फंसता है, पता चलता है कि यह तो फांसी हो गयी। पत्नी स्वतंत्रता मार डालती है पति की बिल्कुल। हिलने-डुलने योग्य भी नहीं रहने देती--पंगु कर देती है। पक्षाघात! पति पत्नी की स्वतंत्रता मार डालता है। दोनों एक-दूसरे के गुलाम हो जाते हैं। प्रेम गुलामी देता है? प्रेम स्वतंत्रता देता है। प्रेम स्वतंत्रता में सहारा देता है। प्रेम चाहता है, तुम्हें जो सुखद हो, करो। यह प्रेम

नहीं है, कुछ और है। यह प्रेम के नाम पर दूसरे पर मालकियत करने का सुख है। यह हिंसा है। दूसरे को वस्तु बना देना, परिग्रह बना लेना हिंसा है। पति-पत्नी निरंतर कलह में लगे रहते हैं। कलह क्या है? कलह यही है कि कौन किस पर मालकियत करके दिखा दे! कौन छोटा है, कौन बड़ा है?
जीवनभर संघर्ष चलता है पति-पत्नी में। संघर्ष एक ही बात का है कि मालिक कौन है? ऐसे पत्नी कहती है, तुम्हारी दासी। पर यह शब्द ही है, ऐसा स्वीकार नहीं करती। ऐसा दासी कहकर भी पैर पकड़ने से शुरू करती है, गर्दन पर समाप्त करती है। आखिर में गर्दन दबा लेती है।
प्रेम से इतने कांटे चुभे हैं लोगों को, और प्रेम के नाम पर इतना-इतना दुख लोगों ने पाया है कि जब भी तुम कहोगे कि मुझे तुमसे प्रेम हो गया है और हाथ फैलाओगे, दूसरा सकुचा जाए, आश्चर्य नहीं है। दूसरे का ध्यान रखना। और एक ख्याल रखना कि प्रेम जब भी आक्रामक होता है, तो दूसरे को घबड़ा देता है। प्रेम में आक्रमण होना ही नहीं चाहिए। आक्रमण होते ही प्रेम में हिंसा समाविष्ट हो जाती है। अब राह चलते किसी अजनबी को तुम जबर्दस्ती गले लगाकर आलिंगन कर लो, तो वह पुलिस-थाने में खबर करेगा कि यह आदमी पागल है। कुछ लेना-देना नहीं है मुझसे!
तुम्हारे भीतर प्रेम का अवतरण हुआ है, लेकिन जब तुम दूसरे को आलिंगन करते हो तो दूसरा भी समाविष्ट हुआ। तुम अकेले न रहे। हां, तुम एकांत अपने कमरे में बैठकर प्रेम के गीत गुनगुनाना, नाचना, कोई मनाही नहीं है। अन्यथा तुमने प्रेम का गलत अर्थ समझा। और फिर इस बात का भी डर है कि तुम जिसे प्रेम कह रहे हो, वह प्रेम है? या कि वासना ने नये रूप रखे? या वासना नये ढंग लेकर आयी? या वासना ने प्रेम का आवरण पहना? क्योंकि मेरी नजर ऐसी है कि जब भी तुम किसी व्यक्ति की तरफ वासना से भरकर देखते हो, तो दूसरा सकुचाता है, डरता है, घबड़ाता है; क्योंकि वासना तो एक कारागृह है। और घबड़ाहट स्वाभाविक है। क्योंकि वासना का अर्थ ही यह होता है कि तुम दूसरे व्यक्ति का उपयोग करना चाहते हो। कोई भी नहीं चाहता उसका उपयोग किया जाए।
उपयोग का मतलब हुआ कि तुमने दूसरे व्यक्ति को वस्तु में बदल दिया। उसकी आत्मा मार डाली। उपयोग तो वस्तुओं का होता है, व्यक्तियों का नहीं। कुर्सी का उपयोग होता है, टेबल का उपयोग होता है, मकान का उपयोग होता है, व्यक्तियों का तो नहीं। जब भी तुम वासना से किसी की तरफ देखते हो, तब तुमने इस ढंग से देखा कि तुम कामवासना के लिए इस दूसरे व्यक्ति का उपयोग करना चाहते हो। दूसरा तत्क्षण सचेत हो जाता है, सावधान हो जाता है। वह अपनी रक्षा में लग जाता है।
आक्रामक प्रेम में डर है कि कहीं कामवासना छिपी हो। वास्तविक प्रेम
तो प्रार्थनापूर्ण होता है, वासनापूर्ण नहीं होता। वास्तविक प्रेम को दूसरे को गले लगाना जरूरी भी नहीं है। वास्तविक प्रेम तो एक आशीर्वाद है। तुम किसी के पास से गुजरे, आशीर्वाद से भरे हुए गुजरे, काफी है। आत्मा आत्मा को गले लग गयी, शरीर को शरीर से लगाने से क्या प्रयोजन है! कभी-कभी आत्मा के गले लगने के साथ-साथ शरीर का गले लगना भी घट जाए, तो शुभ है। लेकिन वह घटे, घटाया न जाए। कभी ऐसा होगा कि तुम बड़े आशीर्वाद से भरे हुए किसी के पास से निकलते थे और उसके हृदय में भी तुम्हारे आशीर्वाद की तरंगें पहुंचीं और दोनों एक-साथ किसी अनजानी शक्ति के वशीभूत होकर एक-दूसरे के गले लग गये।
तो तुम गले लगे ऐसा नहीं, दूसरा गले लगा ऐसा नहीं, प्रेम ने दोनों को गले लगा दिया। यह बड़ी और घटना है। जब तुम लगते हो गले, तो वासना है। तुम्हारी वासना के कारण दूसरा हटेगा। कृपा करके ऐसा आक्रमण किसी पर मत करना। तुम दूसरे को भयभीत कर दोगे।
वासना की आंख से देखा जाना किसी को भी पसंद नहीं। प्रेम की आंख से देखा जाना सभी को पसंद है। तो दोनों आंखों की परिभाषा समझ लो। वासना का अर्थ है, वासना की आंख का अर्थ है कि तुम्हारी देह कुछ ऐसी है कि मैं इसका उपयोग करना चाहूंगा। प्रेम की आंख का अर्थ है, तुम्हारा कोई उपयोग करने का सवाल नहीं, तुम हो, इससे मैं आनंदित हूं। तुम्हारा होना, अहोभाग्य है! बात खतम हो गयी। प्रेम को कुछ लेना-देना नहीं है। वासना कहती है, वासना की

तृप्ति में और तृप्ति के बाद सुख होगा; प्रेम कहता है, प्रेम के होने में सुख हो गया। इसलिए प्रेमी की कोई मांग नहीं है।
तब तो तुम अजनबी के पास से भी प्रेम से भरे निकल सकते हो। कुछ करने का सवाल ही नहीं है। हड्डियों को हड्डियों से लगा लेने से कैसे प्रेम हो जाएगा! प्रेम तो दो आत्माओं का निकट होना है। और कभी-कभी ऐसा हो सकता है कि जिसके पास तुम वर्षों से रहे हो, बिल्कुल पास रहे हो, पास न होओ; और कभी ऐसा भी हो सकता है कि राह चलते किसी अजनबी के साथ तत्क्षण संग हो जाए, मेल हो जाए, कोई भीतर का संगीत बज उठे, कोई वीणा कंपित हो उठे। बस काफी है। उस क्षण परमात्मा को धन्यवाद देकर आगे बढ़ जाना। पीछे लौटकर भी देखने की प्रेम को जरूरत नहीं है। पीछे लौट-लौटकर वासना देखती है। और वासना चाहती है कि दूसरा मेरे अनुकूल चले।
अब जिन मित्र ने पूछा है, वह कहते हैं कि दूसरा हट जाता है अगर मैं आलिंगन करना चाहता हूं। इतनी तो स्वतंत्रता दूसरे को दो, अन्यथा यह तो बलात्कार हो जाएगा। यह तो एक तरह की तानाशाही हो जाएगी। तुम दूसरे को इतना भी नहीं मौका देते कि वह हट सके। दूसरा सकुचा रहा है, वह इस बात की खबर दे रहा है कि तुम्हारे प्रेम में अभी प्रार्थना का स्वर नहीं है। अभी प्रेम में कहीं छिपी वासना है; कहीं दुर्गंध है। कहीं देह की बदबू है। आत्मा की सुवास नहीं। अभी वह तुम्हारे से हटकर यह खबर दे रहा है तुम्हें कि तुम अभी उस परिशुद्धि को उपलब्ध नहीं हो, जहां अजनबी भी तुम्हारे हाथों में, तुम्हारी बांहों में आये और समा जाए। तो इसका संकेत समझना।
दूसरे व्यक्ति की परिपूर्ण स्वतंत्रता को सदा स्वीकार करना। और इतना काफी है कि तुम पास से निकल गये। दूसरा दिखा, दूसरे में तुम्हें परमात्मा दिखा, परमात्मा का रूप दिखा, तुम अहोभाव से गुजर गये। कभी-कभी ऐसा हो जाएगा कि दोनों के हृदय में एक-साथ कोई तीसरी शक्ति--परमात्मा कहो, प्रेम कहो--एक साथ उठेगी, समवेत, और तुम दोनों एक-दूसरे के आलिंगन में गिर जाओगे। लेकिन वह आलिंगन तुम्हारा नहीं होगा, न दूसरे का होगा, वह आलिंगन परमात्मा का होगा। उस क्षण की प्रतीक्षा करो। तब तक जल्दी मत करना। प्रेम बड़ी पवित्र घटना है।
जब तुम प्रेम करने की चेष्टा करने लगते हो, तभी अपवित्र हो जाता है प्रेम। तुम्हारा कृत्य नहीं है प्रेम--प्रेम है समर्पण, परमात्मा के हाथों में अपने को छोड़ देना। पहले परमात्मा का आलिंगन तो कर लो। फिर, परमात्मा के बहुत रूप हैं, इनका आलिंगन भी हो जाएगा। और हुआ या नहीं, उसका कोई प्रयोजन नहीं है। प्रेम पाप नहीं है, लेकिन प्रेम को थोपना पाप है। प्रेम तो बड़ा पुण्य है। फिराक की बड़ी प्रसिद्ध पंक्तियां हैं--
कोई समझे तो एक बात कहूं
इश्क तौफीक है गुनाह नहीं
प्रेम तो प्रसाद है--तौफीक। प्रभु-प्रसाद, प्रभु-कृपा, अनुकंपा; न मालूम कितने पुण्यों का फल है। इश्क तौफीक है गुनाह नहीं। अपराध नहीं है प्रेम, लेकिन तुम प्रेम के साथ भी दुर्व्यवहार कर सकते हो। तुम इसे पाप बना सकते हो। आदमी ने यही तो किया, प्रेम को पाप बना दिया। तुम श्रेष्ठतम को भी निकृष्टतम कीचड़ में घसीट सकते हो। और तुम श्रेष्ठतम को निकृष्ट कीचड़ से निकाल भी सकते हो। तुम पर निर्भर है।
तो सदा ध्यान रखना, दूसरे की स्वतंत्रता पर आंच न आने पाये। और यह मैं अजनबियों के लिए ही नहीं कह रहा हूं, जिनको तुम अपना मानते हो, उनके संबंध में भी ख्याल रखना। तुम्हारी पत्नी की स्वतंत्रता को आंच न आने पाये। तुम्हारे पति की स्वतंत्रता को आंच न आने पाये। जहां आंच आने लगे, समझना प्रेम पाप होने लगा। आलोक तो मिले, आंच न आये। प्रकाश तो मिले, लेकिन ताप पैदा न हो। चांद की तरह हो प्रेम, सूरज की तरह नहीं। जला न दे, झुलसा न दे। चांद की तरह--सुधा बरसे, अमृत बरसे, सोमरस बहे। शीतलता दे। तो ही प्रेम पुण्य है।
जो तुम्हारे बहुत पास हैं, तुम्हारा बेटा, तुम्हारी बेटी--छोटा बच्चा तुम्हारे घर पैदा हुआ है, परमात्मा ने एक रूप लिया, परमात्मा तुम्हारी तलाश में आया इस बहाने, इस निमित्त--तुम इस छोटे-से बच्चे को ढांचों में मत

ढालना। तुम इस तरह की कोशिश मत करना, कि यह तुम्हारे पीछे-पीछे चले, तुम्हारी हां में हां मिलाये। तुम जो कहो, वही करे। तुम इसे मार मत डालना। परमात्मा तुम्हारे घर आया है, तुम इस बच्चे को परमात्मा की प्रतिष्ठा देना। इसकी स्वतंत्रता को स्वीकार करना।
हां, अपना अनुभव इसे दे देना। लेकिन वह अनुभव आदेश न हो। तुमने जो जाना है, उसकी संपत्ति इसे सौंप देना। लेकिन चुनाव का हक इसी को देना कि वह चुन ले--राजी हो, न हो राजी। न राजी हो तो नाराज मत होना। राजी हो तो प्रसन्न मत होना। क्योंकि प्रसन्नता और नाराजगी की राजनीति से ही हम बच्चों के ऊपर जबर्दस्ती करते हैं। बाप एक बात कहता है बेटे से, कहता है तेरी जो मर्जी हो वैसा कर। लेकिन अगर बाप की मर्जी के खिलाफ करता है, तो बाप दुखी मालूम पड़ता है। तो बेटा बाप को सुखी करना चाहता है कि चलो! अगर बाप की मर्जी के अनुसार करता है, तो बाप प्रसन्न होता है। तो बेटा बाप को प्रसन्न करना चाहता है कि चलो! ऐसे-ऐसे धीरे-धीरे बेटे की आत्मा खो जाती है।
इसीलिए तो दुनिया में इतनी भीड़ है और इतने आत्महीन लोग हैं। आत्मा कहां? आत्मा तो स्वतंत्रता में पनपती है, फैलती है, फूलती है। तो चाहे अजनबी, चाहे जिनको तुम अपने कहते हो... अपने जिनको कहते हो वे भी अजनबी हैं। जो बेटा तुम्हारे घर पैदा हुआ है, उसे तुम जानते हो, कौन है? कहां से आया है? क्या संदेश लाया है? क्या उसकी नियति है? तुम्हें कुछ भी तो पता नहीं! सिर्फ तुम्हारे घर पैदा हो गया है, तुम्हें माध्यम चुन लिया है। तुम इससे ज्यादा पागलपन से मत भर जाना कि उसकी गर्दन दबाने लगो। अजनबी तो अजनबी है। इसीलिए तो सारे धर्मशास्त्र कहते हैं, यहां कौन अपना है? अपने ही हम अपने नहीं हैं, दूसरे की तो बात ही मुश्किल है। अपना ही हमें पता नहीं कि हम कौन हैं, तो किस को हम पहचानें। न, पास हों लोग कि दूर हों, अपने हों कि पराये हों, स्वतंत्रता को मत तोड़ना। जहां प्रेम स्वतंत्रता तोड़ता है, वहीं पाप हो जाता है। अन्यथा प्रेम तो इस जगत में, इस अंधेरे जगत में परमात्मा की किरण है। इस गहन अंधकार में प्रेम ही एकमात्र ज्योतिशिखा है। फिर किसी के सामने चश्मे-तमन्ना झुक गयी
शौक की शोखी में रंगे-एहतिराम आ ही गया
बारहा ऐसा हुआ है याद तक दिल में न थी
बारहा मस्ती में लब पर उनका नाम आ ही गया
जिंदगी के खाका-ए-सादा को रंगीं कर दिया
हुस्न काम आये न आये इश्क काम आ ही गया
सौंदर्य साथ दे या न दे, प्रेम सदा साथ देता है। सौंदर्य काम आये न आये, प्रेम सदा काम आ जाता है।
जिंदगी के खाका-ए-सादा को रंगीं कर दिया
वह जिंदगी की जो सादी-सी रूपरेखा है, सादा रेखाचित्र है, उसे रंगीन कर देता है प्रेम।
जिंदगी में जो हरियाली दिखायी पड़ती है, वह प्रेम की आंखों के कारण। जो फूल खिलते हैं, वह प्रेम की आंखों के कारण। जीवन के कंकड़-पत्थरों में जो कभी-कभी हीरे दिखायी पड़ जाते हैं, वह प्रेम के कारण। पदार्थ में परमात्मा की थोड़ी-सी जो झलक मिलने लगती है, वह प्रेम के कारण। अगर प्रेम न हो, तो बनाओ मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे, सब व्यर्थ होंगे।
प्रेम के कारण ही मंदिर की पत्थर की प्रतिमा में परमात्मा की झलक मिलती है। प्रेम के कारण ही काबे का साधारण-सा पत्थर परमात्मा का प्रतीक हो जाता है। कितने लोगों ने चूमा है उस पत्थर को! किसी और पत्थर को इतने लोगों ने नहीं चूमा होगा। धन्यभागी है काबा का पत्थर! करोड़ों-करोड़ों लोग जनम-जनम प्रतीक्षा करते हैं उस पत्थर के पास जाकर चूम लेने की। इतने लोगों के चुंबन ने अगर उस पत्थर को परमात्मा नहीं बना दिया है, तो फिर परमात्मा हो ही नहीं सकता। इतने लोगों ने प्रेम बरसाया है, पत्थर भी परमात्मा हो ही जाएगा।
जब तुम मंदिर में जाकर, किसी और के मंदिर में जाकर मूर्ति देखते हो, तो
मत कहना पत्थर की है। तुम्हारे लिए पत्थर की होगी, क्योंकि प्रेम की

तुम्हारे पास आंख नहीं। लेकिन जो भक्ति से, श्रद्धा से भरकर उसी मंदिर में जाता है, उसे पत्थर की प्रतिमा मुस्कुराती लगती है कभी, कभी आंसू बहाती लगती है। उसे पत्थर की प्रतिमा जीवंत मालूम होती है।
जिंदगी के खाक-ए-सादा को रंगीं कर दिया,
हुस्न काम आये न आये इश्क काम आ ही गया
सौंदर्य तो आज नहीं कल खो जाता है। सौंदर्य तो सपना है। पानी पर खींची लकीर है। लेकिन प्रेम, प्रेम सत्य है। प्र्रेमपात्र बदल जाते हों, प्रेम नहीं बदलता। बचपन में अपनी मां को कोई प्रेम करता है; पिता को प्रेम करता है; थोड़ा बड़ा होकर भाई-बहन को प्रेम करता है; पास-पड़ोस, मित्रों को प्रेम करता है; और थोड़ा बड़ा होकर किसी स्त्री को प्रेम करता है; और थोड़ा बड़ा होकर बच्चों को प्रेम करता है; और थोड़ा बड़ा होकर किसी दिन किसी मंदिर में, किसी मस्जिद में झुकता है किसी अज्ञात प्रेमपात्र के लिए। प्रेमपात्र बदलते रहते हैं, लेकिन प्रेम नहीं बदलता। बचपन से लेकर अंत तक, जन्म से लेकर मृत्यु तक अगर कोई एक चीज तुम्हारे भीतर सदा चलती रहती है, तो प्रेम है। जैसे सांस सदा चलती रहती है। सांस शरीर को संभाले रखती है, प्रेम आत्मा को संभाले रखता है।
प्रेम सौभाग्य है! लेकिन भूलकर भी दूसरे पर उसे मत थोपना। अपने भीतर संभालकर! बाहर उछालने की जरूरत भी नहीं है। दिखावा करने का, प्रदर्शन करने का कोई कारण भी नहीं है। कबीर ने कहा है--हीरा पायो गांठ गठियायो, वाको बार-बार क्यों खोले? हीरा मिल जाता है किसी को रास्ते पर पड़ा, जल्दी से गांठ में गठियाकर संभालकर चल पड़ता है, फिर इधर बार-बार थोड़े ही खोलकर देखता है? अगर कभी शक भी हो तो थोड़ा हाथ डालकर समझ लेता है कि है, फिर अपना चल पड़ता है।
प्रेम का हीरा तुम्हें मिला--हीरा पायो गांठ गठियायो, वाको बार-बार क्यों खोले? अब इसमें कोई दिखाना थोड़े ही है, बाजार में जाकर घोषणा थोड़े ही करनी है कि हम एक बड़े प्रेमी हो गये, कि जो मिलता है उसको गले लगते हैं। संभाल लो भीतर, बांध लो गांठ और जितना भीतर छिपा सको उतना भीतर छिपा दो। तुम पाओगे, वह हीरा बीज बन जाता है। उसमें अंकुर आते हैं। यह हीरा कोई पत्थर नहीं है, यह हीरा तो प्राण का सारभूत अंश है। इसे छिपा दो अपने अचेतन की गहराइयों में। इसे बाहर मत उछालते फिरो, अन्यथा गंवा दोगे।
बीज तो जमीन में छिपा देने को होता है। बाहर रखे रहोगे, खराब हो जाएगा। छिपा दो अपनी चेतना की भूमि में। गहन तल में डाल दो। वहां से फूटेगा, वहां से निकलेंगी कोंपलें, वहां से उगेगा अंकुर, और एक बीज में लाखों-करोड़ों बीज लगेंगे।
यह जो छोटा-सा प्रेम का दीया जला है, इसे हवाओं में लेकर मत भटको यहां- वहां, बुझ जाएगा। इसे तो संभालकर रखो। यह सूरज बन सकता है।

तीसरा प्रश्नः तूने आटा लगाया और हमें फंसाया। अब हम कष्ट पा रहे हैं
और अकेले-अकेले तड़फ रहे हैं, इसका जिम्मेवार कौन?

आटे का लोभ। आटे के लोभ ने फंसा दिया। न करते लोभ, न फंसते। अब जब फंस
ही गये हो, तो पीड़ा कांटे के कारण नहीं हो रही है। अभी भी कांटे से संघर्ष चल रहा होगा, इसीलिए हो रही है।
अब कांटे के साथ ही हो लो। अब कांटे से राजी हो जाओ। जिससे हम राजी हो जाते हैं, उसी से पीड़ा होनी बंद हो जाती है। पीड़ा से भी राजी हो जाओ, तो पीड़ा समाप्त हो जाती है।
इसे समझना।
जब तक हम लड़ते रहते हैं किसी चीज से, तभी तक पीड़ा होती है। जब स्वीकार
कर लिया, कहा कि चलो, सौभाग्य कि इस योग्य समझे गये कि फंसाये गये, कि इस योग्य समझे गये कि कांटा हमारे लिए डाला गया। जीसस ने कहा है, परमात्मा अपना जाल फेंकता है मछुवे की भांति। उसमें बहुत-सी मछलियां फंस जाती हैं, लेकिन सभी चुनी नहीं जातीं। जिनको व्यर्थ पाता है, उन्हें वापस सागर में छोड़ देता है; जिन्हें सार्थक पाता है, उन्हें घर ले जाता है।

अगर फंस गये होओ मेरे जाल में, कांटा छिद गया, सौभाग्यशाली हो! परमात्मा का लोभ रहा होगा। आटे का लोभ उसी को मैं कह रहा हूं। आत्मा को पाने का लोभ रहा होगा--आटे का लोभ! वह लोभ भी सौभाग्य है! धन के लोभी तो बहुत हैं, धर्म के लोभी कहां? पदार्थ के लोभी तो बहुत हैं, परमात्मा के लोभी कहां? कंकड़-पत्थर बीननेवाले तो बहुत हैं, करोड़ों हैं, हीरों के पारखी कहां? उसी को आटे का लोभ कह रहा हूं। नहीं तो मेरे पास आ नहीं सकते थे। मेरे पास आने में बाधाएं तो बहुत हैं, सुविधाएं कहां हैं? जो सब तरह की बाधाओं को तोड़कर आ सकता है, वही आ सकता है।
यह कांटा जो तुम्हें छिद गया है, यह तुम्हारे जन्मों-जन्मों का पुण्य
ही हो सकता है, अन्यथा छिद नहीं सकता था। अब इस कांटे से लड़ो मत। कहीं भीतर लड़ाई चल रही होगी। कहीं अब भी लग रहा होगा कि यह कहां उलझ गये! यह कांटा तो पीड़ा दे रहा है! पीड़ा तो होगी। सभी निखार पीड़ा से संभव होते हैं। यह प्रसव-पीड़ा है। अनेक बार गर्भवती स्त्री को मन में ख्याल आता है, कहां उलझ गये! बोझ बढ़ता जाता है पेट में, वमन होने लगता है, भोजन पचता नहीं, रात नींद नहीं आती, एक लंबी यातना हो जाती है। कितनी बार नहीं गर्भवती स्त्री सोचती होगी कि अच्छा होता कि प्रेम में पड़े ही न होते! लेकिन इस पीड़ा को झेल लेती है, तो मां बन जाती है। और मां बने बिना कोई स्त्री पूर्ण नहीं होती।
पुरुष तो बाप बनने से कुछ बहुत नहीं पाता--थोड़ी बहुत झंझटें पाता होगा--क्योंकि बाप होना पुरुष का कोई निसर्ग नहीं है, सामाजिक व्यवस्था है। प्रकृति में आदमी को छोड़कर और तो बाप कहीं होता नहीं। मां तो सभी जगह होती है। पशु में, पक्षी में, सब जगह मां होती है। मां नैसर्गिक व्यवस्था है। बाप सामाजिक व्यवस्था है। इसी कारण मार्क्स जैसे विचारकों ने तो यह भी कहा कि जब समाजवाद पूरी तरह व्यवस्थित हो जाएगा, तो बाप की संस्था खो जाएगी। क्या जरूरत रह जाएगी? राज्य काम कर देगा बाप का। वैसे कर ही रहा है धीरे-धीरे। शिक्षा मुफ्त, अस्पताल मुफ्त, तो बाप का काम छिनता जा रहा है। एक न एक दिन कम्युनिज्म जब पूरी तरह फैल जाएगा--ऐसा मार्क्स का ख्याल--बाप समाप्त हो जाएगा। मां समाप्त नहीं होगी। मां को समाप्त करने का कोई उपाय नहीं है।
तो बाप को तो थोड़ी झंझट-सी ही होती है बाप बनकर, लेकिन मां बड़ी सौभाग्य
से भर जाती है। मां बने बिना स्त्री ऐसी ही होती है जैसे कि कोई वृक्ष जिस पर फूल नहीं आया, फल नहीं लगे--बांझ। प्रसाद नहीं होता। मां बनते ही स्त्री के भीतर से एक आभा फूटती है। जीवनदात्री! लेकिन वह जीवनदात्री बनने के लिए पीड़ा सहनी पड़ती है।
और इसलिए ठीक भी है कि बाप को तो कोई पीड़ा सहनी नहीं पड़ती। इसलिए बच्चा पैदा हो जाता है, इससे बाप को तो कोई पीड़ा सहनी नहीं पड़ती। बाप तो करीब-करीब बाहर खड़ा रह जाता है। बाप का कोई बहुत बड़ा सहयोग नहीं है। जो बाप करता है वह एक इंजेक्शन भी कर सकता है। इससे कोई, बाप का कोई ऐसा आत्यंतिक साथ नहीं है। झेलना तो मां को पड़ता है। एक नये जीवन का आरोपण, उस नये जीवन का भीतर बढ़ना। फिर वह उसी बच्चे के लिए जीती है। नौ महीने तक उसी के लिए सांस लेती है, उसी के लिए भोजन करती है, उसी के लिए उठती-बैठती है। स्वभावतः एक गहन सृजन की प्रक्रिया होती है, लेकिन पीड़ा! फिर बच्चे का पैदा होना और बड़ी प्रसव-पीड़ा है।
तो जैसे-जैसे तुम मेरे जाल में फंसोगे, वैसे-वैसे पीड़ा बढ़ेगी। तुम गर्भित हुए। सत्य ने तुम्हारे भीतर जगह बनायी। अब तुम्हें बहुत-सी पीड़ाएं होंगी जो तुम्हें कभी भी न हुई थीं। वह सत्य को जन्म देने की पीड़ाएं हैं। और वे बढ़ती जाएंगी क्रमशः, जैसे-जैसे नौ महीने का समय करीब आयेगा वे बढ़ती जाएंगी। और आखिरी क्षण में तो महापीड़ा होगी। लेकिन उस पीड़ा से गुजरे बिना कोई सत्य को जन्म नहीं दे पाता।
सत्य को जन्म देना हो, तो गर्भ धारण करना ही होगा। जिसको तुम अभी कांटा कह रहे हो, वह तुम्हारे भीतर पड़ गया गर्भ का बीज है। चुभता है, इसलिए कांटा कहते हो, ठीक। गड़ता है, इसलिए कांटा कहते हो, ठीक। लेकिन उसी कांटे में तुम्हारा सारा भविष्य, तुम्हारी सारी नियति निर्भर है। अगर सत्य तुमसे जन्म ले ले, तो वही तुम्हारा जन्म होगा। और निश्चित ही यह पीड़ा

साधारण प्रसव की पीड़ा से बहुत ज्यादा है। क्योंकि साधारण प्रसव की पीड़ा में तो तुम दूसरे को जन्म देते हो, नौ महीने में झंझट खतम हो जाती है। यहां तो तुम्हें अपने को जन्म देना है। समय का कुछ पक्का नहीं कितना लगेगा। नौ महीने भी लग सकते हैं, नौ वर्ष भी लग सकते हैं, नौ जन्म भी लग सकते हैं। तुम पर निर्भर है। कितनी त्वरा, कितनी प्यास, और झेलने की कितनी क्षमता! अहोभाव से झेलने की क्षमता, आनंदभाव से झेलने की क्षमता, नाचते हुए झेलने की क्षमता, इस पर निर्भर करता है; उतना ही समय कम होता जाएगा।
पीड़ा स्वाभाविक है। लेकिन उस पीड़ा को सौभाग्य बनाने की चिंता करो।
आज भी है "म.जा.ज" खाकनशीं
और नजर अर्श पर है क्या कहिये
जैसे ही तुम मेरे करीब आये, एकदम से तुम आसमान पर तो न पहुंच जाओगे। रहोगे तो तुम जमीन पर, सिर्फ नजर आकाश की तरफ उठेगी। अड़चन शुरू हुई। पैर जमीन पर, आंख आकाश की तरफ! पहले जमीन पर ही आंखें भी गड़ी थीं। एक तालमेल था। दुकान पर थे तो दुकान पर थे। अब पैर दुकान पर होंगे, आंखें मंदिर में। अब करते होओगे भोजन, स्मरण आत्मा का। अब गिनते होओगे रुपये और भीतर याद परमात्मा की। अब अड़चन हुई। अब एक द्वंद्व शुरू हुआ। एक महाद्वंद्व, एक संघर्ष, जिसको गीता कहती है--कुरुक्षेत्र। अब एक धर्मक्षेत्र, कुरुक्षेत्र, उपद्रव शुरू हुआ! अब एक बड़ा संघर्ष है।
आज भी है "म.जा.ज" खाकनशीं
और नजर अर्श पर है क्या कहिये
फिर वही रहगुजर है क्या कहिये
जिंदगी राह पर है क्या कहिये
आह तो बेअसर थी बरसों से
नग्मा भी बेअसर है क्या कहिये
हुस्न है अब न हुस्न के जलवे
अब न.जर ही न.जर है क्या कहिये
धीरे-धीरे, सौंदर्य तो सब खो जाएगा, दिखायी पड़नेवाली चीजें तो सब खो जाएंगी, रूप तो सब खो जाएगा, आकार तो सब खो जाएगा, आंख ही बचेगी। शुद्ध।
अब नजर ही नजर है क्या कहिये
उसी को तो हमने दर्शन कहा है, द्रष्टा की स्थिति कहा है, साक्षीभाव कहा है। सब खो जाएगा। सब दृश्य खो जाएंगे। सिर्फ आंख। पहले तो बड़ा सूनापन, बड़ा सन्नाटा लगेगा।
तो पूछा है, अकेले-अकेले तड़फ रहे हैं, इसका जिम्मेवार कौन? मुझे पता है, जब व्यक्ति परमात्मा की तरफ चलता है, तो पहले तो संसार छूटने लगता है हाथों से, भीड़ विदा होने लगती है, अकेला रह जाता है। परमात्मा मिले, इसके पहले बिल्कुल अकेला हो जाता है। जब बिल्कुल अकेला हो जाता है, तभी तो परमात्मा के योग्य बनता है। महावीर ने उस अकेलेपन को कैवल्य कहा है। जब बिल्कुल केवल तुम ही रह गये, तुम्हारा होना ही रह गया।
हुस्न है अब न हुस्न के जलवे,
अब न.जर ही न.जर है क्या कहिये!
पीड़ा होगी। बड़ी गहन रात्रि मालूम होगी। पर सूरज के ऊगने के पहले रात
तो गहन अंधेरी हो ही जाती है।
इस एकांत को अकेलापन मत समझो। इस एकांत को उसे पाने की तैयारी समझो। जरा-सी दृष्टि बदलने की बात है, जरा दृष्टिकोण बदलने की बात है और सब अर्थ और हो जाता है। अकेलापन अकेलापन मालूम होता है अगर उन लोगों का ख्याल करो, जिनने कल तक घेरा था और अब वे दूर हटते चले गये हैं। स्वभावतः अगर पति ध्यान करेगा, पत्नी थोड़ी दूर होने लगेगी। पत्नी ध्यान करेगी, पति थोड़ा दूर होने लगेगा। घर-द्वार, बच्चे, अपने, दूर होने लगेंगे। ऐसा बाहर से दूर हों ऐसा जरूरी नहीं, लेकिन भीतर। भीतर कोई सरकने लगेगा पार, गहरे में जाने लगेगा। बाहर से आंख झपकने लगेगी, भीतर आंख खुलने लगेगी।
रोज ऐसा होता है।
रात तुम सोते हो, तब तुम्हें पत्नी की याद रह जाती है? पति की याद रह जाती है? बेटे-बेटी की याद रह जाती है? मित्र-प्रियजन की याद रह जाती है?

कुछ भी नहीं। आंख बंद हुई, संसार गया। तुम अपने भीतर डूबे। ध्यान में तो यह घटना और भी गहरी घटेगी। तो अकेलापन आयेगा। अगर तुमने बाहर पर नजर रखी, तो यह लगेगा अकेलापन; अगर भीतर पर नजर रखी तो यह लगेगा एकांत। एकांत और अकेलेपन में बड़ा फर्क है। भाषाकोश में कोई फर्क नहीं है। भाषाकोश में तो दोनों का अर्थ एक ही लिखा है। जीवन के कोश में बड़ा फर्क है।
एकांत का अर्थ तो बड़ा आनंदपूर्ण है। अकेलेपन का बड़ा दुखपूर्ण है। तुम गलत व्याख्या मत करो। इसे अकेलापन मत कहो, इसे कहो एकांत। इसे कहो शुद्ध अपना होना। इसे कहो तैयारी। प्रभु के पास जा रहे हैं, तो भीड़ लेकर तो कोई कभी गया नहीं। एकाकी। अकेले ही जाना पड़ता है। उस मंदिर में दो तो कभी साथ प्रविष्ट हुए नहीं। एक ही प्रविष्ट होता है। तो इसे तैयारी समझो। और जितना एकांत बढ़ने लगेगा उतना जानना कि प्रभु पास आ रहा है, संसार दूर हो रहा है। एक क्रांति घट रही है। पहले-पहले तो यह मिटने-जैसा ही लगेगा। इसीलिए तो इसको मैं मृत्यु कहता हूं।
मिटते हुओं को देखकर क्यों रो न दे "म.जा.ज"
आखिर किसी के हम भी मिटाये हुए तो हैं
जो मेरे पास आ रहे हैं, वह समझेंगे। वह इस बात को समझेंगे। जब वह दूसरे
को मिटते, एकांत की पीड़ा में उतरते देखेंगे, तो वह समझेंगे।
मिटते हुओं को देखकर क्यों रो न दे "म.जा.ज"
आखिर किसी के हम भी मिटाये हुए तो हैं
सीने में उनके.जल्वे छुपाये हुए तो हैं
हम अपने दिल को तूर बनाये हुए तो हैं
बस इतना ही ख्याल रहे कि रोशनी जलती रहे। दिल का दीया जलता रहे। भीतर होश बना रहे। संसार तो छूटेगा, छूटना ही है। लाख उपाय करो, पकड़कर रखा जा सकता नहीं। कोई नहीं रख सका, तुम भी न रख सकोगे। कोई अपवाद नहीं है।
जो कल छूटना ही है, उसे अपने हाथ से छोड़ देना कला है। शान है उसमें। गरिमा है, गौरव है। यही तो संन्यासी का गौरव है। संन्यासी का गौरव क्या है? यही कि संसारी को जबर्दस्ती छुड़ाया जाता; संन्यासी खुद ही कह देता है कि ठीक है, जो छूटना है, छूट गया। संसारी बड़ी पीड़ा से छोड़ता है, रो-रोकर छोड़ता है, दीन होकर छोड़ता है। लगता है जैसे लूटा जा रहा है। संन्यासी यह देखकर कि यहां तो सभी लुट जाते हैं, खुद खड़ा होकर लुट जाता है। कहता है, ठीक है। पीड़ा होगी, भीड़ विदा होगी, अकेलापन आयेगा, उसी अकेलेपन की राह से परमात्मा आयेगा। अकेलापन तो सेतु है उसके आने के लिए; हमने पुल बनाया। इसे इस तरह देखोगे, तो इस पीड़ा में भी सुख होगा।
जब तुम कुछ निर्माण कर रहे होते हो, तो माथे से पसीना बहता रहे, तो भी सुख होता है। क्योंकि तुम जानते हो, यह तो श्रम है। और इस श्रम के पीछे फल है। यह तो श्रम है, सृजन है। इसके पीछे अहोभाव चला आ रहा है। इसके पीछे उपलब्धि है।
इस एकांत से ही परमात्मा तुम्हारे पास आयेगा। जिस दिन तुम मौन हो जाओगे, उस दिन वह बोलेगा। जिस दिन तुम अकेले हो जाओगे, उसी दिन उसके हाथ तुम्हारे हाथ में आ जाते हैं। वह कोई दूर थोड़े ही है। पास ही है, लेकिन तुम भीड़ में इतने उलझे हो कि उसे देख नहीं पाते।
खुद दिल में रह के आंख से परदा करे कोई
हां, लुत्फ जब है पा कर भी ढूंढा करे कोई
ऐसा ही लुत्फ चल रहा है। पाया ही हुआ है, उसी को ढूंढ रहे हैं। उसे कभी खोया नहीं है, लेकिन भीड़ में आंखें उलझ गयी हैं। भीड़ में आंखें उलझने के कारण वह तुम्हारे पास ही खड़ा है, कंधे से कंधा सटाये, तुम्हारे हृदय में धड़क रहा है, तुम्हारी सांसों में चल रहा है, बह रहा है, दिखायी नहीं पड़ता। इधर से अकेले हुए, भीड़ को विदा किया, वह दिखायी पड़ने लगेगा। एक दफा दिखायी पड़ जाए, फिर मैं तुमसे नहीं कहता कि भीड़ को छोड़ो, फिर मैं कहता हूं, उतर जाना संसार में। फिर तुम्हें सभी के भीतर वही दिखायी पड़ने लगेगा। फिर भीड़ उसी की भीड़ है। लेकिन अभी भीड़ उसी की नहीं है। अभी तो अपने भीतर भी उसे नहीं जाना, तो दूसरे के भीतर कैसे जानना हो सकता है!
"तरु" का प्रश्न है।

रोयें न अभी अहले-नजर हाल पर मेरे
होना है अभी मुझको खराब और जियादा
आवारा-ओ-मजनू ही पे मौकूफ नहीं कुछ
मिलने हैं अभी मुझको खिताब और जियादा
तो तरु से मैं कहता हूं, अभी घबड़ा मत, अभी तो और मुसीबतें आने को हैं।
और कोई तुझसे सहानुभूति दिखायें तो उनसे कह देना--
रोयें न अभी अहले-नजर हाल पे मेरे
होना है अभी मुझको खराब और जियादा
आवारा-ओ-मजनू ही पे मौकूफ नहीं कुछ
मिलने हैं अभी मुझको खिताब और जियादा
लेकिन मजनू हुए बिना कौन लैला को पा सका! और मजनू हुए बिना कोई परमात्मा को कैसे पा सकता है! आवारा हुए बिना! आवारा का अर्थ है जिसका अब कुछ भी नहीं; रिक्त, खाली, अकेले। ऐसा हुए बिना कौन उसे निमंत्रण दे सका! जीसस निरंतर कहते थे कि कोई गड़रिया अपनी भेड़ों को लेकर आता। सांझ का अंधेरा घिरने लगा, सूरज ढल गया, अचानक देखता कि एक भेड़ खो गयी। तो सभी भेड़ों को उस अंधेरी रात में किसी वृक्ष के तले छोड़कर, उस भेड़ को खोजने निकल जाता है जो खो गयी। मिले हुओं को छोड़कर उसे खोजने निकल जाता जो खो गयी। अंधेरी रात में पुकारता, टेरता, और जब वह मिल जाती, तो पता है क्या करता? उसे कंधे पर रख लौटता। खो गये को कंधे पर रखकर लौटता है। और जीसस कहते थे, मैं भी ऐसा ही गड़रिया हूं।
अगर हम सच में ही रो उठें, तो उसके हाथ तुम्हारे आंसू तक पहुंच ही जाएंगे, पोंछ देंगे तुम्हारे आंसू। अगर हम सच ही पीड़ा से भर जाएं, तो वह दौड़ा चला आयेगा। हम अगर भटक ही जाएं उसको खोजते-खोजते, तो आयेगा जरूर, और कंधे पर रखकर ले जाएगा। उसे खोजना कोई आदमी का ही अकेले कृत्य थोड़े ही है। उसकी भी कुछ जिम्मेवारी है। दोतरफा जिम्मेवारी है। हम उसे खोजें, वह हमें खोजे। और ऐसा ही चल रहा है।
परमात्मा तो हमें खोज ही रहा है। जिस दिन हम खोजने लगते हैं, उसी दिन हममें और उसमें तालमेल हो जाता है।

आखिरी प्रश्नः ओशो, तेरी र.जा पूरी हो!

चैतन्य भारती ने पूछा है। "पूछना" कहना ठीक नहीं, कहा है। "तेरी र.जा पूरी हो।" यही प्रार्थना का मूलमंत्र है। इसमें ही पग जाओ पूरे-पूरे, तो कुछ और करने को नहीं है!
जीसस को सूली हुई, आखिरी क्षण उन्होंने आकाश की तरफ मुंह उठाकर कहा कि
हे परमात्मा, यह क्या दिखा रहा है! एक संदेह उठ आया होगा कि मैं तेरे लिए जीआ, तेरी प्रार्थना में जीआ, तेरी पूजा में जीआ, तेरे नाम को फैलाने के लिए जीआ और यह तू मुझे क्या दिखा रहा है! एक शिकायत आ गयी होगी--हलकी-सी बदली, छोटी-सी बदली जीसस की छाती पर तैर गयी। एक क्षण को सूरज ढक गया होगा। लेकिन जीसस तत्क्षण पहचान लिये कि चूक हो गयी, भूल हो गयी। तत्क्षण कहा, क्षमा कर, यह मैंने क्या कहा! तेरी र.जा पूरी हो! तू जो दिखा रहा है, वही ठीक है। तेरी र.जा से ऊपर मेरी र.जा नहीं है। तेरी इच्छा से ऊपर मेरी इच्छा नहीं है। तू जो चाहता है, वही मैं चाहूं, बस इतनी ही मेरी इच्छा है। यह मैंने कैसे कहा!
आखिरी क्षण! बिल्कुल स्वाभाविक है। बड़ी पीड़ा जीसस को दी गयी। सूली पर लटकाया गया। स्वाभाविक है, मानवीय। इस बात से सिद्ध होता है कि जीसस परमात्मा के बेटे तो थे ही, आदमी के बेटे भी थे। इससे कुछ और सिद्ध नहीं होता। इससे सिर्फ आदमियत सिद्ध होती है।
और जीसस ने बहुत बार बाइबिल में जगह-जगह कहा, कहीं वह कहते हैं मैं आदमी का बेटा हूं, कहीं कहते हैं परमात्मा का बेटा हूं। वह दोनों हैं। सभी दोनों हैं। उन्हें याद आ गयी, सभी को याद नहीं आयी है।
तो आदमी का बेटा बोला, यह क्या दिखा रहा है मुझे! लेकिन तभी उन्हें स्मरण आ गया होगा कि अरे! मैं आदमी का बेटा ही नहीं, परमात्मा का भी बेटा

हूं। फिर बाप की जो मर्जी! फिर उसकी जो र.जा! वह कुछ बुरा तो न चाहेगा। उससे ज्यादा समझदार मैं तो नहीं हो सकता। अगर उसने यही चाहा है, तो यही ठीक होगा, इसीलिए चाहा है। उसकी चाह का निर्णय मैं कौन हूं करनेवाला?
पूछा है, "तेरी र.जा पूरी हो।" इसे मैं कहता हूं प्रार्थना का मूलमंत्र। अगर यही तुम्हारे जीवन पर छा जाए, इसी रंग में तुम रंग जाओ, तो यही गैरिक-वस्त्र है, यही गेरुआ रंग है। यही संन्यासी की भावदशा है। हर घड़ी जो भी हो, तुम यही जानना कि परमात्मा ने किया, ठीक ही किया होगा। बुरा हो तो, भला हो तो, सुख मिले तो, दुख मिले तो, कांटे मिलें तो, फूल मिलें तो, तुम सभी उसी को समर्पित करते चले जाना। तुम सभी उसको अर्पित करते चले जाना। कहना, जो तेरी र.जा। तुम प्रसन्न रहना। तुम बोझ अपने सिर पर न ढोना। तुम नाहक ही अपने सिर पर बोझ रखे हो। करनेवाला वही। तुम व्यर्थ करने की झंझट अपने सिर पर ले लिये हो।
सुनी है तुमने कहानी? एक सम्राट आता था। राह पर उसने एक भिखारी को देखा। दूर है गांव। सम्राट को दया आ गयी, उसने भिखारी को कहा, तू भी आ, रथ में बैठ जा। वह भिखारी बैठ तो गया, लेकिन अपनी पोटली जो सिर पर रखे था, सिर पर ही रखे रहा। वह सम्राट ने कहा पोटली नीचे रख दे, अब इसको सिर पर क्यों रखे है? उसने कहा कि नहीं मालिक, इतना ही क्या कम है कि आपने मुझे बैठने दिया; अब पोटली का बोझ भी आपके रथ पर रखूं! नहीं, नहीं, ऐसा मैं कैसे कर सकता हूं! लेकिन तुम रथ पर बैठे हो, पोटली सिर पर रखे हो, क्या सोचते हो रथ पर बोझ नहीं है? बोझ तो रथ पर ही है, चाहे तुम सिर पर रखो, चाहे तुम नीचे रख दो। परमात्मा कर्ता है। सारा कृत्य उसका है। वस्तुतः परमात्मा का कोई और अर्थ नहीं है। इस सारे खेल का जो इकट्ठा जोड़ है। इस सारे कर्म के महत प्रवाह का जो केंद्र है, वही तो परमात्मा है। लेकिन हम सब अपनी-अपनी पोटली सिर पर रखे हैं, हम कहते हैं, मैं कर रहा हूं। हम कहते हैं, अब इतना बोझ परमात्मा पर क्या डालना! चांद-तारे जो चला रहा है, वह तुम्हें नहीं चला पायेगा! सारी प्रकृति कैसे लयबद्ध-स्वर में बह रही है! एक तुम्हीं चिंता लिये बैठे हो कि तुम्हें स्वयं को चलाना है। इस चिंता का छोड़ देने का ही अर्थ है, "तेरी र.जा पूरी हो।" इस चिंता को तभी कोई छोड़ सकता है जब अहंकार को छोड़ दे। जब कह दे कि अब मैं नहीं हूं, तू ही है।
जिसके हृदय में यह दीया जल जाए कि उसकी मर्जी पूरी हो, और मैं अपनी मर्जी को उसके विरोध में खड़ा न करूंगा, लड़ाऊंगा नहीं, मैं धार के खिलाफ, धारे के खिलाफ बहूंगा नहीं, नदी जहां ले जाएगी वहीं जाऊंगा, समर्पित करता हूं, अपने को छोड़ता हूं उसकी धारा में--डुबाये तो डूबूंगा और डूबने को ही किनारा समझूंगा। बचाये तो बचूंगा। ऐसी चित्तदशा में दुख हो सकता है? पीड़ा हो सकती है? ऐसी चित्तदशा में नर्क हो सकता है? असंभव। स्वर्ग खुल गया। बुझ रहे हैं एक एक करके अकीदों के दीये
इस अंधेरे का भी लेकिन सामना करना तो है
आस्था के दीये बुझते गये। और यह सबसे बड़ा दीया है आस्था का। यही आस्तिकता है।
बुझ रहे हैं एक एक करके अकीदों के दीये
इस अंधेरे का भी लेकिन सामना करना तो है
और जैसे-जैसे आस्था के दीये बुझते गये हैं वैसे अंधेरा गहन होता गया है। और यह सबसे महत्वपूर्ण दीया है। आस्था का--तेरी र.जा, तेरी मर्जी, तेरी इच्छा पूरी हो। मैं समर्पित। मैं बहूंगा। मैं तैरूंगा भी नहीं। मैं पतवार न चलाऊंगा। मैं नाव में पाल बांध दिया हूं अब, तेरी हवाएं जहां ले जाएं। रामकृष्ण कहते थे, दो तरह से नदी पार हो सकती है। या तो पतवार चलाओ, या पाल खोल दो। पाल जो खोल देता है, वही भक्त है। पतवार जो चलाता है, वह भक्त नहीं है। वह अभी भी अपने पर भरोसा किये है। वह अभी भी अपनी बाहुओं के बल पर जी रहा है। अभी सोचता है, अगर मैं न कुछ किया, तो उस पार पहुंचूंगा नहीं। भक्त कहता है, अगर इस पार रखा है, तो यह पार भी उसी का है। तो इस पार ही रहेंगे। उस पार पहुंच ही गये। इसी पार रहते हुए उस पार पहुंच गये।
दूर कितने भी रहो तुम, पास प्रतिपल,
क्योंकि मेरी साधना ने पल निमिष चल,

कर दिये केंद्रित सदा को ताप बल से
विश्व में तुम और तुम में विश्व भर का प्यार! हर जगह ही अब तुम्हारा द्वार।
इस गांव एक काशी, उस गांव एक काबा,
इसका इधर बुलावा, उसका उधर बुलावा,
इससे भी प्यार मुझको, उससे भी प्यार मुझको,
किसको गले लगाऊं, किससे करूं दिखावा;
परजात क्यों बनाऊं, दीवार क्यों उठाऊं,
हर घाट जल पीआ है, गागर बदल-बदल कर
जिसे दिखायी पड़ने लगा, सभी घाट उसके हैं। बहुत बार शरीर बदले, वह सिर्फ गागर का बदलना है। बहुत बार इच्छाएं बदलीं, वह भी सिर्फ गागर का बदलना है। बहुत बार मन बदला, वह भी सिर्फ गागर का बदलना है। प्यास एक है और उस प्यास को तृप्त करनेवाला जल एक है।
हर घाट जल पीआ है, गागर बदल-बदलकर।
और एक बार तुम्हें यह समझ में आ जाए, यह दिखायी पड़ने लगे--थोड़ी-सी भी झलक आ जाए कि सारे कृत्यों के पीछे वही है, सारे घाटों के पीछे वही है; प्यास में भी वही, जल में भी वही; जो तुम्हें चला रहा है, वही सबको चला रहा है; जो तुम्हें राह पर चलने का सुझाव दे रहा है, वही तुम्हारे राह पर पत्थर भी रख रहा है; तो जरूर दोनों में कुछ तालमेल होगा। बिना पत्थरों के चुनौती न होगी। इसलिए पत्थर भी रख रहा है। तुम्हें पुकार भी रहा है कि आओ और चलो, और राह को दुर्गम भी बना रहा है। क्योंकि दुर्गम राह पर चलोगे तभी तुम्हारा निर्माण होगा, सृजन होगा।
तुम्हें आनंद की आकांक्षा से भी भरा है, और हजार-हजार तरह के दुख भी पैदा कर रहा है, क्योंकि उन दुखों के बीच ही अगर तुम आनंदित हो सको, तो ही आनंद का कोई अर्थ है। अगर दुख न होते और तुम आनंदित होते, तो उस आनंद में कोई रीढ़ न होती, कोई बल न होता। विपरीत स्थिति पैदा करके चुनौती पैदा की गयी है। संघर्ष का मौका तुम्हें निखारने का उपाय है।
समझने की कोशिश हर घटना, हर पल में करना। और जैसे ही कभी तुम भूलने- भटकने लगो; और मन होने लगे कहने का कि हे प्रभु! यह क्या दिखा रहा है, तो तत्क्षण जाग जाना, चौंकना! अपने को झकझोर लेना और कहना, तेरी मर्जी पूरी हो। तेरी र.जा पूरी हो। यह तुम्हारा मंत्र बन जाए--महामंत्र। इसे तुम ओंकार समझो। राम-राम जपने से जो लाभ न होगा, वह लाभ इस एक सूत्र को पकड़ लेने से होगा--तेरी र.जा पूरी हो। हर घड़ी; निमिष-पल; रात-दिन; सुख में, दुख में; हार में, जीत में; सम्मान में, अपमान में; इसे याद रखना, और गहरे इसे दोहाराते रहना--तेरी र.जा पूरी हो। और जब दोहराओ, तो केवल शब्द ही मत दोहराना, इसमें अपनी आत्मा उंडेल देना। इस एक मंत्र में सारे मंत्र समा जा सकते हैं।
जीसस ने कहा है, "दाई किंग्डम कम, दाई विल बी डन", प्रभु, तेरा राज्य उतरे; प्रभु तेरी र.जा पूरी हो।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग दो
पंद्रहवां प्रवचन

त्वरा से जीना ध्यान है

सीसं जहा सरीरस्स, जहा मूलम दुमस्स य।
सव्वस्स साधुधम्मस्स, तहा झाणं विधीयते।। 117।।
लवण व्व सलिलजोए, झाणे चित्तं विलीयए जस्स।
तस्स सुहासुहडहणो, अप्पाअणलो पयासेइ।। 118।।
जस्स न विज्जदि रागो, दोसो मोहो व जोगपरिक्कमो।
तस्स सुहासुहडहणो, झाणमओ जायए अग्गी।। 119।।
पलियंकं बंधेउं, निसिद्धमण—वयणकायवावारो।
नासग्गनिमियनयणो, मन्दीकयसासनीसासो।। 120।।
गरहियनियदुच्चरिओ, खामियसत्तो नियत्तियपमाओ।
निच्चलचित्तो ता झाहि, जाव पुरओव्व पडिहाइ।। 121।।
थिरकयजोगाणं पुण, मुणीण झाने सुनिच्चलमणाणं।
गामम्मि जणाइण्णे, सुण्णे रण्णे व ण विसेसो।। 122।।

मनुष्य कुछ खोज रहा है। मनुष्य खोज है। खोज को नाम हम कुछ भी दें।
कहें आनंद, कहें महाजीवन, कहें परमात्मा, निर्वाण, मोक्ष; यह भेद नामों के हैं। एक बात सुनिश्चित है कि आदमी चाहे कैसा ही हो, खोज रहा है। ठीक-ठीक साफ भी न हो कि क्या खोज रहा हूं, फिर भी खोज रहा है। खोज जैसे मनुष्य का अंतर्तम है। बिना खोजे मनुष्य नहीं रह सकता। खोज में ही मनुष्य की मनुष्यता है।
पशु-पक्षी हैं। खोज नहीं रहे हैं। वृक्ष हैं, चट्टानें-पहाड़ हैं, हैं। खोज नहीं रहे हैं। कहीं जा नहीं रहे, कोई जिज्ञासा नहीं। अस्तित्व जैसा है, स्वीकार है। कोई रूपांतर करने की कामना नहीं। क्रांति का कोई स्वर नहीं। प्रकृति में विकास है, मनुष्य में क्रांति है। वहीं मनुष्य भिन्न है।
डार्विन का सिद्धांत सारी प्रकृति के संबंध में सही है, आदमी भर को छोड़कर। प्रकृति विकास कर रही है। कर रही है कहना ठीक नहीं, हो रहा है। विकास या "एवोल्यूशन" का अर्थ ही इतना है, जो तुम्हारे बिना किये हो रहा है। मनुष्य भर कुछ ऐसा है कि कुछ करता है। उस करने में क्रांति है। जो होता है, विकास है; जो किया जाता है, वही क्रांति है।
इस क्रांति की दृष्टि को बहुत गहरे में पकड़ लेना जरूरी है कि मनुष्य बिना किये नहीं रह सकता। कुछ करेगा, कुछ बदलेगा। कुछ मिटायेगा, कुछ बनायेगा। रूपांतरण, सुंदरतम, सत्यतर की खोज जारी रहती है। कोई छोटे पैमाने पर, कोई बड़े पैमाने पर। कोई दा.ैडता है, कोई घसिटता है। लेकिन इस यात्रा में सभी सम्मिलित हैं।
मनुष्य खड़ा नहीं, जैसे वृक्ष खड़े हैं। मनुष्य रुका नहीं, जैसे पशु- पक्षी रुके हैं। टटोलता है, अंधेरे में सही। गिरता है, फिर उठता है। कहीं कोई एक अदम्य भरोसा है गहरे में कि कुछ पाने को है। जीवन जैसा दिखायी पड़ता है, उतने पर समाप्त नहीं। कुछ छिपा है। उसे उघाड़ना है। उसका आविष्कार करना है। यह जो दिखायी पड़ रहा है, यह केवल बाह्य रूप है। भीतर कुछ हीरे छिपे होंगे। जब परिधि है, तो केंद्र भी होगा। जब घर की बाहर की दीवाल है, तो भीतर का अंतर्तम मंदिर भी होगा। तो आदमी उघाड़ रहा है, पर्दे उघाड़ रहा है। घूंघट हटा रहा है। इस खोज के दो रूप हो सकते हैं। एक रूप, जिससे विज्ञान पैदा होता है। तब हम पर्दा उठाते हैं जरूर, अपने पर से नहीं उठाते; पर पर से उठाते हैं। विज्ञान भी घूंघट हटाता है, लेकिन वैज्ञानिक स्वयं घूंघट में रह जाता है। आइंस्टीन ने खोज लिया हो कोई सत्य सापेक्षता का प्रकृति में, अस्तित्व में, लेकिन खुद पर्दे में और घूंघट में रह गया।
मरते वक्त आइंस्टीन से किसी ने पूछा कि दुबारा जन्म हो, तो तुम क्या बनना चाहोगे? तो उसने कहा एक बात पक्की है, वैज्ञानिक न बनना चाहूंगा। प्लंबर भी बन जाऊंगा तो ठीक है, लेकिन वैज्ञानिक न बनना चाहूंगा। क्या

कारण था आइंस्टीन को ऐसा कहने का कि वैज्ञानिक न बनना चाहूंगा? पूछा तो था क्या बनना चाहोगे, उत्तर में उसने कहा क्या नहीं बनना चाहूंगा। वैज्ञानिक नहीं बनना चाहूंगा। एक बात धीरे-धीरे उस मनीषी को दिखायी पड़ने लगी थी कि दूसरों पर से सब पर्दे भी उठ जाएं, और तुम अंधेरे में रह जाओ, तो सार क्या? सारे जगत में सूरज निकल आये और तुम्हारा भीतर का लोक अंधकार में दबा रह जाए, तो सार क्या? सब जान लो और अपने को न जान पाओ, तो इस जानने का मूल्य क्या? यह सब जानना भीतर के अज्ञान के सामने व्यर्थ हो जाएगा।
विज्ञान भी पर्दा उठाता है, धर्म भी। धर्म पर्दा उठाता है जाननेवाले
पर से, ज्ञाता पर से। विज्ञान पर्दा उठता है ज्ञेय पर से। विज्ञान उठाता है आब्जेक्ट पर से पर्दा, विषय पर, जो दिखायी पड़ता है दृश्य उससे। धर्म उठाता है पर्दा द्रष्टा पर से, जो देखनेवाला है, जो जाननेवाला है, जो मैं हूं। और धर्म की ऐसी समझ है कि जिसने स्वयं को जान लिया, उसने सब जान लिया। अपना घर भीतर आह्लाद से, प्रकाश से भर गया, तो सारा जगत प्रकाश से भर गया। अगर तुम प्रसन्न हो, तो तुमने ख्याल किया, तुम्हारी प्रसन्नता के कारण फूल भी हंसते हुए मालूम होते हैं। तुम उदास हो, तो फूल भी उदास मालूम होते हैं। फूलों को तुम्हारी उदासी से क्या लेना-देना! तुम अगर दुखी हो, पीड़ित हो, तो चांद भी रोता मालूम पड़ता है। तुम अगर आनंदित हो, नाच रहे, तुम्हारा प्रिय घर आ गया, मित्र को खोजते थे मिल गया, तो चांद भी नृत्य करता मालूम होता है। चांद वही है। पृथ्वी पर हजारों लोग चांद को देखते हैं; लेकिन एक ही चांद को नहीं देखते। हर आदमी का चांद अलग है। क्योंकि हर आदमी की देखनेवाली आंख अलग है। कोई खुशी से देख रहा है--किसी का प्रियजन घर आ गया। कोई दुख से देख रहा है--किसी का प्रियजन छूट गया। कोई नाच रहा है खुशी में, सौभाग्य में; कोई रो रहा है, आंसू बहा रहा है। आंसुओं की ओट से जब चांद दिखायी पड़ता है, तो आंसुओं में दब जाता है। गीत की ओट से जब दिखायी पड़ता है, तो चांद में भी गीत उठने लगता है।
इसे ख्याल लेना, तुम जैसे हो, वैसा तुम्हारा संसार हो जाता है। तुम जैसे नहीं हो, वैसा तुम्हारा संसार हो ही नहीं सकता। क्योंकि तुम ही मौलिक रूप से अपने संसार के निर्माता हो। तुम्हारी आंख, तुम्हारे कान, तुम्हारे हाथ प्रतिपल संसार को निर्मित कर रहे हैं। एक लकड़हारा इस बगीचे में आ जाए, तो वह देखेगा कि कौन-कौन से वृक्ष काटे जाने योग्य हैं। अनजाने ही! उसे फूल न दिखायी पड़ेंगे! उसे वृक्षों की हरियाली न दिखायी पड़ेगी। उसे केवल लकड़ी दिखायी पड़ेगी, जो बाजार में बिक सकती है। एक कवि आ जाए, तो उसे ऐसे रंग दिखायी पड़ेंगे जो तुम्हें दिखायी नहीं पड़ते। तुम्हें सब वृक्ष हरे मालूम पड़ते हैं। कवि को हर हरियाली अलग हरियाली मालूम पड़ती है। हर वृक्ष का हरापन अद्वितीय है। अलग-अलग है। तुम कहते हो फूल खिले हैं, लेकिन प्रगाढ़ता से तुम्हारी चेतना के सामने फूल प्रगट नहीं होते। क्योंकि वहां कोई प्रगाढ़ता नहीं है। कोई चित्रकार आये, कोई संगीतज्ञ आये, तो संगीतज्ञ सुन लेगा कोयल की कुहू-कुहू, इन पक्षियों का कलरव। हम जो होते हैं, वैसा हमें संसार दिखायी पड़ने लगता है। धर्म कहता है, जिसने स्वयं को जान लिया, उसने सब जान लिया। इक साधे सब सधे। और वह एक तुम्हारे भीतर है।
धर्म और विज्ञान दोनों एक ही खोज के दो पहलू हैं।
विज्ञान बहिर्मुखी खोज है, धर्म अंतर्मुखी। विज्ञान जाता है दूर अपने से, धर्म आता है पास और पास। उस पास आने का नाम ही ध्यान है।
महावीर के ये सूत्र ध्यान के सूत्र हैं। इन सूत्रों को बहुत गहरे में उतरने देना। क्योंकि ध्यान धर्म का सार है। कुंजी है। ध्यान को जिसने समझा, उसने धर्म को समझा। और ध्यान को छोड़कर जो सारे धर्मशास्त्र भी समझ ले, वह कुछ भी धर्म को नहीं समझा। उसका धर्म का जानना ऐसे ही है जैसे कोई भूखा पाकशास्त्र के शास्त्र पढ़ता रहे, या मिठाइयों की तस्वीरों को रखे बैठा रहे। उससे भूख न मिटेगी। ध्यान है धर्म का प्राण। ध्यान है धर्म की वास्तविकता। ध्यान है धर्म का अर्थ और अभिप्राय। ये सूत्र ध्यान के सूत्र हैं। पहला सूत्र--
"जैसे मनुष्य-शरीर में सिर और वृक्ष में उसकी जड़ उत्कृष्ट या मुख्य है, वैसे ही साधु के समस्त धर्मों का मूल ध्यान है।"

"सीसं जहा सरीरस्स--जैसे शरीर में सिर।" पैर काट दो, आदमी जी जाएगा। हाथ काट दो, आदमी जी जाएगा। सिर काट दो, आदमी नहीं जी सकेगा। अभी तो वैज्ञानिकों ने ऐसे प्रयोग किये हैं कि सिर को काटकर अकेला जिलाया रखा जा सकता है। यंत्रों के सहारे। यांत्रिक हृदय खून को गतिमान करता रहेगा। और यांत्रिक फेफड़े श्वास लेते रहेंगे। अकेला सिर जिलाये रखा जा सकता है। सारे शरीर को हटाकर भी। लेकिन सिर के हट जाते ही--सारा शरीर मौजूद है-- लेकिन फिर जिलाया नहीं जा सकता। और जिलाये रखा भी जा सके, तो उस जीवन का कोई अर्थ न होगा। क्योंकि सारा अर्थ और अभिप्राय तो मनुष्य की प्रतिभा में है, प्रज्ञा में है। उसके बोध में है। गहन मस्तिष्क के अंतस्तलों में छिपा है जीवन का अर्थ।
तो महावीर कहते हैं--"सीसं जहा सरीरस्स"--जैसा सिर है शरीर में अत्यंत मुख्य, मालिक, राजा, सिंहासन पर बैठा। "जहा मूलम दुमस्स य।" और जैसे जड़ें हैं वृक्ष की। वृक्ष को काट दो, नया अंकुर आ जाएगा--जड़ें भर बचा लो। जड़ें काट दो, बड़े से बड़ा वृक्ष समाप्त हो जाएगा। इसीलिए तो उपनिषद कहते हैं कि आदमी उलटा वृक्ष है। उसकी जड़ें ऊपर की तरफ, सिर में हैं। उलटा लटका वृक्ष है मनुष्य।
बड़ा महत्वपूर्ण प्रतीक है उपनिषदों में। और सब वृक्ष की जड़ें जमीन में हैं, आदमी के सिर की जड़ें आकाश में। पैर आदमी की शाखाएं-प्रशाखाएं हैं। जड़ें उसके सिर में हैं। सूक्ष्म जड़ें हैं। ऐसा कहें कि मनुष्य की जड़ें आकाश में, अनंत आकाश में। या परमात्मा में, अगर धार्मिक शब्द प्रिय हो। लेकिन एक बात सुनिश्चित है कि किसी गहरे अर्थ में आदमी सिर से जुड़ा है जगत से। पैर से नहीं जुड़ा है।
इसीलिए तो ब्राह्मणों ने कहना चाहा कि हम सिर हैं और शूद्र पैर हैं। ऐसे यह बात दंभ की है लेकिन बात तो ठीक ही है। अगर ब्राह्मण ब्राह्मण हो, तो सिर है। क्योंकि ब्राह्मण का अर्थ होता है, जिसने ब्रह्म को जान लिया। वह जानने की घटना तो सहस्रार में घटती है, सिर में घटती है। जिसने ब्रह्म को जान लिया, वही ब्राह्मण है। तो ठीक है कि ब्राह्मण सिर है। और यह कहना भद्दा है और आज के लोकतांत्रिक युग में तो बहुत भद्दा है कि शूद्र पैर है, लेकिन बात सही है। इसे हम उलटाकर कहें तो बात ठीक हो जाती है। जो अभी पैर ही हैं, वे शूद्र हैं। शूद्र पैर हैं, यह कहना तो अभद्र है, लेकिन जो अभी भी पैर हैं और जिनका सहस्रार नहीं खुला, जिनके मस्तिष्क में छिपे कमल अभी बंद पड़े हैं, वे शूद्र हैं। प्राचीन दृष्टि ऐसी थी कि पैदा तो सभी शूद्र होते हैं--सभी--ब्राह्मण भी, पैदाइश से तो सभी शूद्र होते हैं, फिर कभी कोई साधना से ब्राह्मण होता है।
महावीर की क्रांति का यह अनिवार्य हिस्सा था। महावीर और बुद्ध दोनों
की अथक चेष्टा थी कि ब्राह्मण का संबंध जन्म से छूट जाए। कोई व्यक्ति जन्म से ब्राह्मण नहीं होता। हो नहीं सकता। क्योंकि ब्राह्मणत्व अर्जित करना होता है। मुफ्त नहीं मिलता। जन्म से तो सभी शूद्र होते हैं, फिर कभी कोई, एकाध कोई विरला, कोई जाग्रत, जागा हुआ ब्राह्मण हो पाता है। ब्राह्मण तभी होता है, जब उसे अपनी जड़ों की स्मृति आती है। ब्राह्मण तभी होता है, जब अपनी सिर से फैली जड़ों को वह आकाश में खोज लेता है। जो सहस्रार तक पहुंचा है, वही ब्राह्मण है। अन्यथा कुछ और होगा।
महावीर कहते हैं, "जैसे सिर है मनुष्य के शरीर में और जैसे जड़ें हैं वृक्षों में।"
जड़ों को काट दो, कितना ही बलशाली वृक्ष मर जाएगा। या जड़ों को काटते रहो, तो वृक्ष दीन-हीन हो जाएगा।
जापान में टोकियो के बड़े बगीचे में चार सौ साल पुराना एक पौधा है। वह अगर वृक्ष होता, तो एकड़ों जमीन घेरता। लेकिन वह एक छोटी-सी बसी में--चाय पीने की बसी में आरोपित है। चार सौ साल पहले जिस आदमी ने उसे आरोपित किया था--जरा-सी इंचभर पतली पट्टी है मिट्टी की, चाय पीने की बसी में, उसमें लगाया हुआ है। और बसी के नीचे छेद है, उन छेदों से वह जड़ें काटता रहा है। तो पौधा चार सौ साल पुराना है, लेकिन केवल कुछ इंच बड़ा है। जराजीर्ण हो गया है। बड़ा वृद्ध है। चार सौ साल लंबी यात्रा है। लेकिन ऐसा है जैसे अभी चार

दिन का पौधा हो। जड़ें नीचे कटती गयीं, रोज-रोज जड़ों को माली छांटता रहा।
फिर उनकी पीढ़ी दर पीढ़ी यह काम करती रही। वह पौधा अनूठा है। जड़ों को बढ़ने न दिया, नीचे जड़ें न बढ़ीं, ऊपर वृक्ष न बढ़ा। वृक्ष को काटो, फिर नया हो जाएगा। जड़ को काट दो, बस वृक्ष समाप्त हुआ। उसके प्राण जड़ में हैं।
आदमी की जड़ें कहां हैं। होनी तो चाहिए ही, क्योंकि आदमी बिना जड़ों के
जी नहीं सकता--कोई नहीं जी सकता। हम अस्तित्व में किसी न किसी भांति अपनी जड़ों को फैला रहे होंगे। हमें पता हो, न पता हो--वृक्षों को भी कहां पता है कि उनकी जड़ें हैं। वृक्षों को भी कहां बोध है कि गहरे अतल अंधेरे में फैली उनकी जड़ें हैं। आदमी की भी जड़ें हैं--गहरे अतल प्रकाश में फैली, आकाश में फैली। ठीक कहते हैं उपनिषद, आदमी उलटा वटवृक्ष है। जड़ें ऊपर हैं, शाखाएं नीचे की तरफ फैली हैं।
तुमने सुना होगा, बेबीलोन में दुनिया के सात चमत्कारों में एक चमत्कार था, और वह था एक उलटा बगीचा। वृक्ष इस तरह लगाये गये थे कि नीचे लटक रहे थे। एक बड़ा सेतु बनाया गया था। सेतु के ऊपर मिट्टी डाली गयी थी। और वृक्षों को सेतु के नीचे लटकाया गया था। अब तो सिर्फ उसकी कथा रह गयी, कुछ खंडहर उसके बचे हैं, लेकिन अतीत में वह दुनिया के बड़े-बड़े चमत्कारों में से एक था।
जब भी कभी बेबीलोन के उस बगीचे के संबंध में मैंने पढ़ा है, या उसके खंडहरों के चित्र देखे, तो मुझे ख्याल आया कि जरूर यह ख्याल कहीं न कहीं उपनिषदों से तैरकर बेबीलोन तक पहुंचा होगा। क्योंकि उपनिषद अकेले शास्त्र हैं दुनिया में, जिन्होंने कहा--आदमी उलटा लटकता वृक्ष है। यह बगीचा सिर्फ बगीचा नहीं था। नहीं हो सकता। यह आदमी का प्रतीक रहा होगा। यह एक शिक्षण की पाठशाला रही होगी। आदमी ऐसा ही वृक्ष है, जिसकी जड़ें ऊपर हैं।
"जहा मूलम दुमस्स य। सव्वस्स साधुधम्मस्स, तहा झाणं विधीयते।" वैसे
ही साधु के समस्त धर्मों का मूल ध्यान है। यह जो अनुवाद है, दो तरह से हो सकता है। जैन-मुनि इसी तरह का अनुवाद करते रहे, जैसा मैं पढ़ रहा हूं--जैसे मनुष्य-शरीर में सिर और वृक्ष में उसकी जड़ उत्कृष्ट है वैसे ही साधु के समस्त धर्मों का मूल ध्यान है। ख्याल देना आखिरी हिस्से पर--वैसे ही साधु के समस्त धर्मों का मूल ध्यान है। मूल का अनुवाद एक और तरह से भी हो सकता है। लेकिन जैन-मुनियों ने उसे शायद पसंद नहीं किया। "सव्वस्स साधुधम्मस्स... " सब साधुओं का धर्म। या तो हम कहें कि साधु के समस्त धर्मों का मूल ध्यान है। या सब साधुओं के धर्म का मूल ध्यान है।
"सव्वस्स साधुधम्मस्स, तहा झाणं विधीयते।"
मैं दूसरे ही अर्थ को ज्यादा पसंद करूंगा। सभी साधुओं के धर्म का मूल ध्यान है। और इसलिए भी कि महावीर का बहुत जोर था इस बात पर कि सभी धर्म सही हैं। सभी साधुओं के धर्म सही हैं। इसलिए महावीर ने, महावीर के प्रसिद्ध महामंत्र ने सब साधुओं को नमस्कार किया है--"णमो लोए सव्व साहूणम।" समस्त साधुओं को मेरा नमस्कार है।
लेकिन जैन-मुनि इसका अनुवाद ऐसा करते हैं जिसमें बाकी साधुओं को काटा
जा सके। वे कहते हैं, वैसे ही साधु के समस्त धर्मों का मूल ध्यान है। क्योंकि जैन-साधु तो जैन-साधु को ही साधु मानता है। किसी और का साधु तो साधु नहीं है। महावीर इतने कृपण नहीं हो सकते। ऐसी कंजूसी उन्हें शोभा भी न देगी। महावीर ने निश्चित ही यही कहा होगा कि सभी साधुओं के धर्मों का मूल ध्यान है। और तब इस सूत्र का अर्थ और भी गंभीर हो जाता है। फिर चाहे ईसाई हों, या मुसलमान हों, या यहूदी हों, या हिंदू हों, या बौद्ध हों, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।
और यह बात तथ्य की है कि चाहे धर्म कहीं पैदा हुआ हो, चाहे किसी रूप-रंग में जन्मा हो, चाहे कैसी ही भाषा धर्म ने चुनी हो, लेकिन जहां भी साधु पैदा हुआ है, वहां उसका मूल ध्यान है। वह ध्यान कहता हो या न कहता हो--कहे प्रार्थना, कहे पूजा, कहे ध्यान, या कुछ और, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। ध्यान का मूल तो रहेगा ही। चाहे वृक्ष देवदारू का हो, चाहे चिनार का; चाहे आकाश को छूनेवाला वृक्ष हो और चाहे छोटा-मोटा पौधा हो; चाहे गुलाब का पौधा

हो, चाहे चांदनी का, चाहे चंपा का, क्या फर्क पड़ता है! एक बात सुनिश्चित है। सभी वृक्षों का मूल उनकी जड़ में है। बहुत फर्क है जैन-साधु में, बौद्ध-साधु में, हिंदू-साधु में, ईसाई-साधु में। वे सब फर्क ऊपर-ऊपर हैं। जड़ में तो कोई फर्क नहीं हो सकता। जड़ तो चाहिए ही होगी। जड़ के बिना वृक्ष नहीं हो सकता, ध्यान के बिना साधु नहीं हो सकता। ध्यान के बिना धर्म नहीं हो सकता। इसलिए पहला अनुवाद ठीक है। उस अर्थ को स्वीकार करने में कुछ अड़चन नहीं। साधु के समस्त धर्मों का मूल ध्यान है। बिल्कुल ठीक है। लेकिन दूसरा और भी ज्यादा ठीक है--सब साधुओं के धर्म का मूल ध्यान है।
ध्यान को हम समझें कि क्या है!
ओ रंभाती नदियो,
बेसुध कहां भागी जाती हो?
वंशी-रव
तुम्हारे ही भीतर है!
ध्यान का पहला सूत्र है--जिसे तुम खोजने चले हो, वह खोजनेवाले में छिपा है। कस्तूरी कुंडल बसै। यह ध्यान के पाठ का प्रारंभ है कि पहले अपने घर को टटोल लो। आनंद को खोजने चले हो? जगत बहुत बड़ा है। पहले घर में खोज लो, वहां न मिले, तो फिर जगत में खोजना। कहीं ऐसा न हो कि आनंद की राशि घर में लगी रहे और तुम जगत में खोजते फिरो। अकसर ऐसा ही होता है। ऐसा ही हुआ है। हम खोज रहे हैं, मिलता भी नहीं है वहां, तो हम और दूर निकलते जाते हैं खोज में। जितना ही पाते हैं कि मिलना नहीं हो रहा है, उतनी ही हमारी खोज बेचैन और विक्षिप्त होती जाती है। जितना ही हम पाते हैं कि दौड़कर नहीं पहुंच रहे हैं, हम दौड़ को और बढ़ाये जाते हैं। हमारे मन का तर्क कहता है कि शायद ठीक से नहीं दौड़ रहे, शायद जितनी शक्ति से दौड़ना चाहिए उतनी शक्ति से नहीं दौड़ रहे हैं। और दौड़ो, और उपाय करो; सारे लोग बाहर दौड़े जा रहे हैं, तो होगा तो जरूर बाहर, इतने लोग गलत थोड़े ही हो सकते हैं!
हम जिस भीड़ में पैदा होते हैं, जन्म से ही हम पाते हैं कि भीड़ भागी जा रही है किसी के साथ। हम भी भीड़ के हिस्से हो जाते हैं। कोई धन खोज रहा है, कोई पद खोज रहा है, कोई यश खोज रहा है। लेकिन खोज बाहर है, सभी की बाहर है, तो हम भी उसमें लग जाते हैं, संलग्न हो जाते हैं। मनुष्य का मन भीड़ से चलता है। भीड़ का एक मनोविज्ञान है। तुम जहां बहुत लोगों को जाते देखते हो, तुम भी चल पड़ते हो। अनजाने यह बात स्वीकृत कर ली गयी है कि जहां इतने लोग जा रहे हैं, वह ठीक ही जा रहे होंगे।
इसीलिए तो दुनिया में बहुत-सी भं्रात धारणाएं भी सदियों तक चलती हैं। पता भी चल जाता है कि गलत हैं, तो भी चलती हैं, क्योंकि भीड़ जब तक उन्हें न छोड़ दे तब तक नये लोग आते हैं और पुरानी धारणाओं को पकड़ते चले जाते हैं। जब तक भीड़ उन्हें पकड़े है तब तक नये बच्चे भी उन्हें पकड़ लेंगे, क्योंकि बच्चे तो अनुकरण करते हैं। हम सब अनुकरण में हैं।
इसलिए अलग-अलग संस्कृति, अलग-अलग समाज में, अलग-अलग चीजें मूल्यवान हो जाती हैं। किसी समाज में धन का बहुत मूल्य है। जैसे अमेरिका। तो अमेरिका में जो भीड़ है, वह धन की दीवानी है। और सब चीजें गौण हैं, धन प्रमुख है। हर चीज धन से खरीदी जा सकती है। इसलिए धन को पा लो। जिन समाजों में त्याग का बड़ा मूल्य रहा है उन समाजों में सदियों तक लोगों ने त्याग किया है। क्योंकि त्याग को सम्मान था। बचपन से ही व्यक्ति सुनता है त्याग की महिमा, उसके मन में भी भाव जगने शुरू होते हैं--यही मैं भी करूं।
भारत में ऐसा हुआ। सदियों तक त्याग की महिमा रही। उस त्याग की महिमा
के कारण करोड़ों लोग त्यागी बने। लेकिन त्यागी बन जाओ कि धन की दौड़ में पड़ जाओ, कोई फर्क नहीं है, अनुकरण जारी है। जैसे पुराने दिनों में महात्मा का प्रभाव था और हर एक व्यक्ति महात्मा बनना चाहता था, वैसे अब अभिनेता का प्रभाव है। हर एक व्यक्ति अभिनेता बनना चाहता है। कोई फर्क नहीं पड़ा आदमी में।
तुम यह मत समझना कि पहले जो आदमी महात्मा बनना चाहते थे, वे बड़े महात्मा थे। कुछ फर्क नहीं है। वह उस भीड़ का मनोविज्ञान था, यह इस भीड़ का मनोविज्ञान है। उस दिन महात्मा पूज्य था, समादृत था, उसकी प्रतिष्ठा थी।

महात्मा बनने में अहंकार की तृप्ति थी। अब अभिनेता बनने में अहंकार की तृप्ति है। बात वही की वही है।
क्रांति तो तब घटती है जब तुम भीड़ से हटते हो। जब तुम कहते हो, अनुकरण
अब मैं न करूंगा। अब मैं अपने से सोचूंगा। तुम लाख दोहराओ, तुम करोड़ हो तो भी कोई फिकिर नहीं, मैं अपनी सुनूंगा, मैं अपनी अंतरात्मा की सुनूंगा। मैं अपने हृदय की वाणी से चलूंगा।
जैसे ही कोई व्यक्ति अपनी वाणी को सुनना शुरू करता है, वैसे ही समझ में ध्यान का सूत्र पड़ने लगता है। ध्यान के सूत्र का अर्थ है, जिसे हम खोजते हैं, वह कुछ भी क्यों न हो, उसे हम पहले अपने घर तो खोज लें।
सुना है, सूफी फकीर स्त्री हुई राबिया। वह एक सांझ अपने घर के सामने कुछ खोज रही थी, दो-चार लोग आते थे, उन्होंने पूछा, क्या खो गया? उसने कहा मेरी सुई गिर गयी। तो वे दो-चार भी उसको साथ देने लगे--बूढ़ी औरत है, आंखें भी कमजोर हैं! लेकिन फिर उनमें से किसी एक को होश आया कि सुई बड़ी छोटी चीज है, जब तक ठीक से पता न चले कहां गिरी, तो इतने बड़े रास्ते पर कहां खोजते रहेंगे? तो उसने पूछा कि मां, यह बता दे कि सुई गिरी कहां है? तो वहीं आसपास हम खोज लें, इतने बड़े रास्ते पर! उसने कहा बेटा! यह तो पूछो ही मत, सुई तो घर के भीतर गिरी है। वे चारों हाथ छोड़कर खड़े हो गये, उन्होंने कहा तू पागल हुई है! सुई घर के भीतर गिरी है, खुद भी पागल बनी, हमको भी पागल बनाया। जब सुई घर के भीतर गुमी है, तो भीतर ही खोज। उसने कहा, वह तो मुझे भी पता है। लेकिन भीतर अंधेरा है, बाहर रोशनी है--सूरज अभी ढला नहीं--अंधेरे में खोजूं भी कैसे? खोज तो रोशनी में ही हो सकती है।
वे हंसने लगे। उन्होंने कहा कि मालूम होता है बुढ़ापे में तेरा सिर फिर गया है! सठिया गयी तू! अगर घर में रोशनी नहीं है, तो भी खोजना तो घर में ही पड़ेगा। तो रोशनी भीतर ले जा। दीया मांग ला उधार पड़ोसी से, अगर तेरे घर में दीया नहीं।
अब हंसने की बारी उस बुढ़िया की थी। वह बड़ी महत्वपूर्ण सूफी फकीर औरत हुई। वह हंसने लगी। उसने कहा कि मैं तो सोचती थी कि तुम इतने समझदार नहीं हो जितनी समझदारी की बात कर रहे हो। मैं तो उसी तर्क का अनुसरण कर रही थी, जिसका तुम सब कर रहे हो। तुम सब भी बाहर खोज रहे हो, बिना बूझे कि खोया कहां? भीतर खोया है, खोज बाहर रहे हो। और कारण जो मैंने बताया, वही तुम्हारा है। क्योंकि आंखों की रोशनी बाहर पड़ती है, आंखें बाहर देखती हैं, बाहर सब साफ-सुथरा है, भीतर बड़ा गहन अंधकार है।
भीतर तुमने कभी आंख बंद करके देखा? कबीर को पढ़ो, दादू को पढ़ो, नानक को पढ़ो, तो वे कहते हैं, हजार-हजार सूरजों जैसा प्रकाश! तुम भीतर आंख बंद करते हो, सिर्फ अंधेरा। कुछ सूरज का प्रकाश वगैरह नहीं दिखायी पड़ता। सूरज तो दूर, मिट्टी का दीया भी नहीं टिमटिमाता। झट आंख खोलकर तुम फिर बाहर आ जाते हो। कम से कम रोशनी तो है! कम से कम रास्ते परिचित तो हैं। चीजें दिखायी तो पड़ती हैं। फिर खोज शुरू कर देते हो।
भीतर, जो आदमी बाहर का आदी हो गया है, जब पहली दफा जाएगा तो अंधेरा पायेगा। ऐसे ही जैसे तुम भरी दोपहरी में बाहर चलकर घर आते हो, एकदम अंधेरा मालूम पड़ता है। बैठ जाओ थोड़ा। थोड़ी देर में आंखें अभ्यस्त होंगी। आंख प्रतिपल बड़ी और छोटी होती रहती है। कभी धूप से आकर आईने में आंख को देखना, तो तुम पाओगे कि आंख बड़ी छोटी हो गयी है। क्योंकि इतनी धूप भीतर नहीं ले सकती, तो छोटी हो जाती है। जब अंधेरे में बैठेते हो, तो आंख बड़ी होती है। जैसे कैमरे का लेंस काम करता है, वैसे ही आंख काम करती है। थोड़ी देर बैठते हो तो घर में जहां पहले अंधेरा मालूम पड़ा था, अंधेरा समाप्त हो जाता है, रोशनी मालूम पड़ने लगती है।
अगर कोई व्यक्ति अंधेरे में देखने का अभ्यास करता ही रहे, जैसा कि चोर
कर लेते हैं, तो दूसरे के घर में जहां बिल्कुल अंधेरा है--घर का मालिक भी जहां बिना चीजों से टकराये नहीं चल सकता--वहां भी अपरिचित चोर दूसरे के अंधेरे घर में बड़ी व्यवस्था से चल लेता है, न तो चीज गिरती है, न आवाज होती है। जिस घर में शायद कभी भी न आया हो! चोर की आंखों को अंधेरे का अभ्यास हो गया है। उसने धीरे-धीरे अंधेरे में देखने की पटुता पा ली है। उसकी आंखें

अंधेरे से सामंजस्य कर ली हैं। धूप से आते हो घर, अंधेरा मालूम पड़ता है। ऐसे ही बाहर जन्मों-जन्मों से भटके हो, जब आंख बंद करते हो तो भीतर अंधेरा मालूम पड़ता है। यह बिल्कुल स्वाभाविक है।
कबीर और नानक और दादू गलत नहीं। हजार-हजार सूरज प्रतीक्षा कर रहे हैं। लेकिन थोड़ा अभ्यास!
ध्यान का अर्थ है, भीतर होने का अभ्यास। ध्यान का अर्थ है, बाहर से हटने का अभ्यास। ध्यान का अर्थ है, बाहर पर पर्दा डाल देने का अभ्यास। बाहर पर्दा डाला कि भीतर पर्दा उठा। भीतर पर्दा उठाने की और कोई तरकीब नहीं है, बस बाहर पर्दा डाल दो।
"जैसे मनुष्य-शरीर में सिर और वृक्ष में उसकी जड़ उत्कृष्ट, वैसे समस्त धर्मों का मूल ध्यान।"
जैन-मुनि से पूछो ध्यान के संबंध में। वह भूल ही गया है। और सब साध लिया है, ध्यान बिल्कुल भूल गया है। अहिंसा साधता है, अस्तेय साधता है, अचौर्य साधता है, ब्रह्मचर्य साधता है, सब साधता है, सिर्फ ध्यान भूल गया है। यह दुर्घटना कैसे घटी होगी? क्योंकि महावीर चिल्ला-चिल्लाकर कहते हैं सब धर्मों का मूल ध्यान है।
मेरे पास जैन-मुनि आते हैं, वे कहते हैं, कैसे ध्यान करें? तुम मुनि कैसे हुए? क्योंकि मुनि तो कोई हो ही नहीं सकता बिना ध्यान के! मुनि का अर्थ है, जिसका चित्त मौन हो गया। चित्त मौन कैसे होगा बिना ध्यान के? अब तुम पूछने आये हो कि ध्यान कैसा! कितने वर्षों से मुनि हो? कोई कहता है तीस वर्ष से मुनि हैं, कोई कहता चालीस वर्ष से मुनि हैं। तो तुम मुनि शब्द का अर्थ भी भूल गये। मुनि का अर्थ ही ध्यानी होता है--मौन! जिसके भीतर चित्त में अब तरंगें नहीं उठतीं विचार की। जो निर्विचार हुआ, निर्विकल्प हुआ। मगर ख्याल ही भूल गया है। मुनि शब्द का अर्थ ही भूल गया है। ध्यान तो ऐसा लगने लगा जैसे जैन-धर्म से ध्यान का कोई संबंध नहीं है। और जैन-धर्म मौलिक रूप से ध्यान पर खड़ा है। सभी धर्म मौलिक रूप से ध्यान पर खड़े हैं। और कोई उपाय ही नहीं। जैन-धर्म उसी दिन मरने लगा, जिस दिन ध्यान से संबंध छूट गया। अब तुम साधो अणुव्रत और महाव्रत, अब तुम साधो अहिंसा, लेकिन तुम्हारी अहिंसा पाखंड होगी। क्योंकि ऊपर से आरोपित होगी। भीतर से आविर्भाव न होगा।
ध्यानी अहिंसक हो जाता है। होना नहीं पड़ता। ध्यानी में महाकरुणा का जन्म होता है। अपने को जानकर दूसरे पर दया आनी शुरू होती है। क्योंकि अपने को जानकर पता चलता है कि दूसरा भी ठीक मेरे जैसा है। अपने को जानकर यह स्पष्ट अनुभव हो जाता है कि सभी सुख की तलाश कर रहे हैं, जैसे मैं कर रहा हूं। अपने को जानकर पता चलता है, जैसे दुख मुझे अप्रिय है, वैसा सभी को अप्रिय है। जिसने अपने को जान लिया, वह अगर अहिंसक न हो, असंभव! और जिसने अपने को नहीं जाना, वह अहिंसक हो जाए, यह असंभव!
कल मैं महर्षि महेश योगी के गुरु का जीवन-चरित्र पढ़ रहा था। ब्रह्मानंद सरस्वती का। वह युवा थे। प्रकट, प्रगाढ़ खोजी थे। गुरु की तलाश में थे। किसी व्यक्ति की खबर मिली कि वह ज्ञान को उपलब्ध हो गया है, तो वह भागे हिमालय पहुंचे। वह आदमी मृगचर्म बिछाये, बिल्कुल जैसा योगी होना चाहिए वैसा योगी दिखायी पड़ता था। प्रभावशाली आदमी मालूम पड़ता था। सशक्त, बलशाली! इस युवा ने--ब्रह्मानंद ने--पूछा कि महाराज! यहां कहीं आपकी झोपड़ी में थोड़ी अग्नि मिल जाएगी? अग्नि! हिंदू संन्यासी अग्नि नहीं रखते अपने पास। न अग्नि जलाते हैं। उन्होंने कहा, तुझे इतना भी पता नहीं है कि संन्यासी अग्नि नहीं छूते। फिर भी उस युवा ने कहा, फिर भी महाराज! शायद कहीं छिपा रखी हो। वह जो योगी थे, बड़े आग हो गये, बड़े नाराज हो गये, चिल्लाकर बोले कि नासमझ कहीं का! तुझे इतनी भी अकल नहीं कि हम और अग्नि चुराकर रखेंगे! क्या समझा है तूने हमें? तो ब्रह्मानंद ने कहा, महाराज! अगर अग्नि नहीं है, नहीं छुपायी, तो ये लपटें कहां से आ रही हैं? लपटें तो आ गयीं।
ऊपर से थोपकर कोई अभिनय कर सकता है। यह घटना मुझे प्रीतिकर लगी। अग्नि छुपाने का सूत्र भी इसमें साफ है। यह बाहर की अग्नि को छूने की बात

नहीं, न बाहर की अग्नि रखने न रखने से कुछ फर्क पड़ता है, यह तो भीतर की आग संन्यासी न छुए। लेकिन ध्यान की जब तक वर्षा न हो जाए, भीतर की आग बुझती नहीं। जब तक ध्यान की रसधार न बहे, तब तक भीतर कुछ अंगारे-सा जलता ही रहता है, चुभता ही रहता है।
महावीर ने तो कहा कि मूल धर्म है--ध्यान। जिसने ध्यान साध लिया, सब साध लिया।
तो हम समझें, यह ध्यान क्या है? पहली बात, अंतर्यात्रा है। दृष्टि को भीतर ले जाना है। बाहर भागती ऊर्जा को घर बुलाना है। जैसे सांझ पक्षी लौट आता है, नीड़ पर, ऐसे अपने नीड़ में वापस, वापस आ जाने का प्रयोग है ध्यान। जब सुविधा मिले, तब समेट लेना अपनी सारी ऊर्जा को संसार से--घड़ीभर को सही--सुबह, रात, जब सुविधा मिल जाए तब बंद कर लेना अपने को। थोड़ी देर को भूल जाना संसार को। समझना कि नहीं है। समझना कि स्वप्नवत है। अपने को अलग कर लेना। अपने को ता.ेड़ लेना बाहर से। और अपने भीतर देखने की चेष्टा करना--कौन हूं मैं? मैं कौन हूं? यही एक प्रश्न। शब्द में नहीं, प्राण में। यही एक प्रश्न, बोल-बोल कर मंत्र की तरह दोहराना नहीं है, बोध की तरह भीतर बना रहे। एक प्रश्न-चिह्न खड़ा हो जाए भीतर अस्तित्व में--मैं कौन हूं? --और इसी प्रश्न के साथ थोड़ी देर रहना। एकदम से उत्तर न मिल जाएगा। और एकदम से जो उत्तर मिले, समझना कि थोथा है। एकदम से उत्तर मिल सकता है, वह उत्तर सीखा हुआ होगा। पूछोगे, मैं कौन हूं? भीतर से उत्तर आयेगा--तुम आत्मा हो। वह तुमने शास्त्र से पढ़ा है। इतनी सस्ती आत्मा नहीं है। किसी से सुन लिया है। भीतर से आयेगा--अहं ब्रह्मास्मि। वह उपनिषद में पढ़ लिया होगा, या सुन लिया होगा।
वर्षों की चेष्टा के बाद, वर्षों प्रश्न के साथ रहने के बाद--और प्रश्न के साथ रहने का अर्थ ही यह है कि तुम थोथे और उधार उत्तर स्वीकार मत करना, अन्यथा उत्तर फिर बाहर फेंक देगा। देख लेना कि ठीक है; यह कठोपनिषद से आता है, बिल्कुल ठीक है; यह गीता से आता है, बिल्कुल ठीक है; क्षमा कर गीता मैया! छोड़ पीछा! कुछ मुझे भी जानने दे! गीता बाहर है। असली गीता तो भीतर है। तुम्हारी गीता तो घटने को है, अभी घटी नहीं। अभी तुम्हारा महाभारत तो शुरू है। अभी तो तुम्हारा अर्जुन थका भी नहीं। अभी तो तुम्हारा अर्जुन कंपा भी नहीं। अभी तो तुम्हारे अर्जुन ने गांडीव छोड़ा भी नहीं और कहा कि मेरे गात शिथिल हुए जाते हैं। अभी तो तुम्हारे अर्जुन ने प्रश्न ही नहीं पूछा, तो तुम्हारा कृष्ण बोले कैसे?
तो बाहर के कृष्ण और बाहर के अर्जुन को थोड़ा बाहर ही छोड़ देना। प्रश्न बनना, तो तुम अर्जुन बनोगे। और ध्यान रखना, जहां भी अर्जुन प्रगट होता है, वहां कृष्ण प्रगट हो ही जाएंगे। जहां प्रश्न है, वहां उत्तर आयेगा ही। तुम प्रश्न भर पैदा कर लो, लेकिन प्रश्न सच्चा हो, प्रगाढ़ हो, ज्योतिर्मय हो। तुम अपने को दांव पर लगाने को तैयार होओ। अर्जुन ने ऐसे ही पूछा होता--काम चलाऊ; ऐसे ही कृष्ण को प्रभावित करने के लिए, देखो मैं कितना धार्मिक हुए जा रहा हूं--अर्जुन ने ऐसे ही पूछा होता कि चलो, क्या हर्ज है, कृष्ण को भी तृप्ति मिल जाएगी कि कैसा महान शिष्य मेरा, कैसा महान साथी! अर्जुन कोई अभिनय नहीं कर रहा था। वही तो गीता का यथार्थ है। वस्तुतः उसके प्राण कंप गये देखकर।
तुमने अगर आंख खोलकर जगत को देखा है, तुम्हारे प्राण भी कंपने चाहिए। तुमने अगर गौर से देखा, तो युद्ध-पंक्तियां बंधी खड़ी हैं। हजारों तरह का युद्ध चल रहा है, संघर्ष चल रहा है, हिंसा हो रही है। तुम उसमें भागीदार हो। अर्जुन को इतना ही तो दिखायी पड़ा कि कम से कम मैं तो अलग हो ही जाऊं; जो हो रहा है, हो। कम से कम यह दाग मेरे उपर तो न पड़े। वह थककर बैठ गया। उसने कहा, मैं भाग जाऊं। छोड़ दूं सब। कुछ सार नहीं। इतनी मृत्यु! इतनी हिंसा! मिलेगा क्या? राज-सिंहासन पर बैठ जाऊंगा तो क्या होगा? इतनी लाशों के ऊपर राज-सिंहासन रखा जाएगा? नहीं, यह प्रतिस्पर्धा, यह प्रतियोगिता मेरे काम की नहीं। उस घड़ी तैयारी बनी। उस घड़ी जिज्ञासा उठी और यह जिज्ञासा कुतूहल न थी। यह ऐसे ही पूछ लिया प्रश्न न था चलते-चलते। इसके पीछे गहरे प्राण दांव

पर लगाने की तैयारी थी। तुम अभी अर्जुन नहीं बने, तुम्हारी गीता पैदा नहीं हो सकती।
तो जब बाहर की गीता उत्तर देने लगे, कहना कि महाराज, हे कृष्ण महाराज, तुम बाहर रहो! अभी मुझे प्रश्न को जीने दो, अभी अर्जुन पैदा नहीं हुआ, तुम समय के पहले आ गये। उधार जो तुमने सीख लिया हो, बुद्धि में जो इकट्ठा कर लिया हो कूड़ा-कर्कट सब तरफ से बटोरकर, उसे बाहर रख देना।
ध्यान की प्रक्रिया थोथे ज्ञान से मुक्त होने की प्रक्रिया है। और जब कोई थोथे ज्ञान से मुक्त हो जाता है, तो वास्तविक का जन्म होता है। शायद वास्तविक तो मौजूद ही है, थोथे के कारण पता नहीं चलता।
एक बौद्ध भिक्षु हुआ--आर्य असंग। बड़ा बहुमूल्य भिक्षु हुआ। उसके जीवन में बड़ी अनूठी कथा है। नालंदा में आचार्य था। फिर समझ आयी संसार की व्यर्थता की तो सब छोड़कर चला गया। तय कर लिया कि अब तो ध्यान में ही डूबूंगा, हो गया ज्ञान बहुत। जान लिया सब, और जाना तो कुछ भी नहीं। पढ़ डाले शास्त्र सब, हाथ तो कुछ भी न आया। छोड़कर पहाड़ चला गया। एक गुफा में बैठ गया। तीन साल अथक ध्यान किया। लेकिन कहीं मंजिल करीब आती मालूम न पड़ी। हतोत्साह, हताशा से भरा गुफा से बाहर निकल आया। सोचा लौट जाऊं। तभी उसने क्या देखा कि एक चिड़िया वृक्षों से पत्ते तोड़-तोड़कर लाती है, पत्ते गिर-गिर जाते हैं, घोंसला बनता नहीं; मगर फिर चली जाती है, फिर ले आती है, फिर चली जाती है, फिर ले आती है। उसने सोचा क्या इस चिड़िया से भी कमजोर है मेरा साहस और मेरी आशा और मेरी आस्था? घोंसला बन नहीं रहा है, लेकिन इसकी कहीं भी आशा नहीं टूटती, हताशा नहीं आती। वह फिर वापस गुफा में चला गया। तीन साल तक कहते हैं, फिर उसने हिम्मत करके ध्यान किया। कुछ न हुआ। सब श्रम लगा दिया, लेकिन कुछ न हुआ। फिर घबड़ाकर एक दिन बाहर आ गया और कहा, अब बहुत हो गया!
फिर उस वृक्ष के नीचे बैठा था कि देखा एक मकड़ी जाला बुन रही है। गिर-गिर जाती है, जाले का धागा सम्हलता नहीं, फिर-फिर बुनती है। फिर उसे ख्याल आया कि आश्चर्य की बात है, ऐसी चीजें मुझे बाहर आते ही से दिखायी पड़ जाती हैं। अभी मकड़ी भी नहीं हारी, मैं क्यों हारूं? एक बार और कोशिश कर लूं। कहते हैं, वह फिर तीन साल ध्यान किया। कुछ न हुआ। बहुत परेशान हुआ। अब उसने सोचा, अब बाहर निकलूंगा पता नहीं फिर कुछ हो जाए, तो अब की दफे आंख बंद करके ही चले जाना है। अब कुछ भी हो रहा हो बाहर--मकड़ी हो कि चिड़िया हो कि कुछ भी हो, परमात्मा कोई भी इशारे दे, अब बहुत हो गया, नौ साल कोई थोड़ा वक्त नहीं, सारा जीवन गंवा दिया!
वह आंख बंद करके भागा। वह जैसे ही पहाड़ से नीचे उतर रहा था, उसने देखा
एक कुतिया, उसकी पीठ सड़ गयी है, उसमें कीड़े पड़ गये हैं--वह उसे दिखायी पड़ी। उससे न रहा गया। बैठा, उसके कीड़े अलग किये, जब वह उसके घाव धो रहा था, तभी ध्यान घटा। जो नौ साल में नहीं घटा था, वह घटा। अचानक, जैसे कुछ गहन में भीतर खींचे लिये चला गया। आंख बंद हो गयीं, वह भीतर पहुंच गया। जिसकी तलाश थी, वह रोशनी सामने खड़ी है। जिसकी तलाश थी, वह बुद्धत्व खिला। उसने कहा, हे प्रभु! इतने दिन तक खोजता था--नौ वर्ष अथक श्रम किये, तब तुम न दिखायी पड़े, तब यह रोशनी न मिली, अब! तो कहते हैं उस रोशनी से उत्तर आया कि मैं तो तब भी तेरे ही भीतर था, लेकिन तेरे ध्यान की चेष्टा बड़ी अहंकार-पूर्ण थी। तेरा अहंकार बाधा बन रहा था। इस कुतिया के घाव धोते वक्त एक क्षण को तेरा अहंकार मौजूद न रहा। करुणा हो, तो अहंकार मौजूद नहीं रहता। प्रेम हो, तो अहंकार समाप्त हो जाता है। मैं तो सदा से तेरे पास था--नौ महीने से भी और नौ सालों से भी, नौ जन्मों से भी। मैं तो भीतर था ही, मैं तेरा स्वभाव हूं, लेकिन तू भीतर नहीं आ पाता था। ध्यान भी कर रहा था तू, तो उसमें अकड़ थी--मैं पाकर रहूंगा। वह अहंकार की उदघोषणा थी।
भीतर जाना है जिन्हें उन्हें बाहर की दौड़ छोड़नी है। और बाहर की दौड़ का
जो सूक्ष्म सूत्र है--अहंकार--वह भी तोड़ना है। स्वयं को मिटाये बिना कोई ध्यान को उपलब्ध नहीं होता। और स्वयं को मिटाये बिना कोई स्वयं को उपलब्ध नहीं होता। यह जिसको हमने अभी स्वयं समझा है, जिसको अभी हम कहते

हैं--"मेरा", "मैं", यह हमारी आत्मा नहीं है। यह आत्मा ही होती, तो हम परम आनंद से भर गये होते। यह अहंकार है।
अहंकार का अर्थ है, यह हमने बाहर से इकट्ठा किया है। किसी स्कूल में "गोल्ड मेडल" मिल गया था, वह जुड़ गया। किसी अखबार में नाम छप गया था, वह काटकर चिंदी जोड़ ली। कोई आदमी ने हंसकर कह दिया कि तुम बड़े सुंदर हो, वह भी जोड़ लिया। किसी ने कहा कि तुम बड़े त्यागी हो, किसी ने कहा तुम बड़े सच्चरित्र हो, कहीं "पद्मश्री" मिल गयी, कहीं "भारतरत्न" हो गये, इस तरह के सब पागलपन इकट्ठे कर लिये, उन सबको जोड़कर अहंकार की थेगड़ी बनाकर बैठ गये हैं।
तुम जरा कभी सोचना कि "मैं कौन हूं", तो जो भी उत्तर आयें तुम हैरान होओगे, ये बाहर से दिये गये उत्तर हैं। कोई तुम्हारी मां ने दिया था, कोई तुम्हारे पिता ने, कोई तुम्हारे मित्र ने, कोई तुम्हारी पत्नी ने, कोई तुम्हारे शत्रु ने, कोई अपनों ने, कोई परायों ने। इन सबको इकट्ठा कर के तुमने एक घास-फूस की झूठी प्रतिमा खड़ी कर ली है। और निश्चित ही यह प्रतिमा प्रतिपल घबड़ायी रहती है, क्योंकि यह बिल्कुल झूठी है। यह कभी भी गिर सकती है और बिखर सकती है। इसमें कोई बल नहीं है, कोई प्राण नहीं है।
ध्यान का अर्थ है, पहले बाहर से भीतर मुड़ना। और भीतर जाते वक्त तुम पाओगे दरवाजे पर अड़ा हुआ ताला। वह ताला है अहंकार का।
"जैसे पानी का योग पाकर नमक विलीन हो जाता है, वैसे ही जिसका चित्त निर्विकल्प समाधि में लीन हो गया, उसके चिरसंचित शुभाशुभ कर्मों को भस्म करनेवाली आत्मरूप अग्नि प्रगट होती है।"
"जैसे पानी का योग पाकर नमक विलीन हो जाता है।" नमक की डली पानी में डालते ही खो जाती है। विलीन हो जाती है। ऐसे ही जिसका चित्त निर्विकल्प ध्यान में लीन हो गया, जिसने बाहर को छोड़ा, बाहर से बने हुए प्रतिबिंबों के अहंकार को छोड़ा, निर्विकल्प हुआ, निशल्य हुआ, अपने एकांत में ठहरा, तत्क्षण जन्मों-जन्मों की चिरसंचित शुभ-अशुभ कर्मों की जो राशि है, वह विलीन हो जाती है।
महावीर बड़ी क्रांतिकारी घोषणा कर रहे हैं। वह कह रहे हैं, जन्मों- जन्मों की कर्म की शृंखला को मिटाने के लिए यह मत सोचना कि जन्म-जन्म लगेंगे अब शुभ कर्म करने में, एक-एक कर्म को काटना पड़ेगा। तब तो असंभव हो जाएगा। क्योंकि हम कितने अनंत काल से कर्म करते रहे। अगर एक-एक कर्म को काटना पड़े, तो अनंत काल लग जाएगा। तब तो मुक्ति असंभव है।
महावीर कहते हैं, एक क्षण में भी घट सकती है घटना, त्वरा चाहिए, तीव्रता चाहिए; अग्नि की प्रगाढ़ता चाहिए--एक क्षण में सारा अतीत भस्म हो सकता है। और तुम ऐसे ताजे हो सकते हो, जैसे तुम पहले क्षण जन्मे, जैसे इसके पहले तुम कभी थे ही नहीं। तुम्हारा सारा इतिहास ध्यान की एक गहरी झलक में विलीन हो सकता है, विदा हो सकता है। जन्मों-जन्मों की जमी धूल तुम्हारे दर्पण पर, हवा के एक झोंके में बिखर सकती है। झोंका बलशाली चाहिए!
ध्यान एक मशाल बने। दोनों छोरों से जले।
जर्मनी की एक बहुत विचारशील महिला रो.जा लक्.जेंबर्ग कहती थी कि मैंने एक ही बात जीवन में पायी कि अगर तुम अपनी मशाल को दोनों तरफ से एक-साथ जलाओ, त्वरा से जीओ, सघनता से जीओ, तो परमात्मा दूर नहीं। हम ढीले-ढीले जीते हैं, सुस्त-सुस्त जीते हैं--कुनकुने-कुनकुने--कभी वह घड़ी नहीं आती जहां हमारा जल वाष्पीभूत हो जाए। हम लंबा जीना चाहते हैं, गहरा नहीं जीना चाहते। हम आशीर्वाद देते हैं कि सौ साल जीओ। सौ साल जीने से क्या होगा! जैसे मुर्दे की तरह जी रहे हो, ऐसे हजार साल भी जीओ तो कोई सार नहीं है। यह आशीर्वाद भ्रांत है। यह आशीर्वाद शुभ नहीं है। सौ साल जीने से क्या लेना! एक दिन भी जीओ, लेकिन जीओ! ऐसे सौ साल घसिटने से क्या होगा?
अब एक रात अगर कम जीये, तो कम ही सही
यही बहुत है कि हम मशालें जला के जीये
इससे क्या फर्क पड़ता है कि कितनी देर जीये! कितने गहरे जीये... !
ध्यान रखना, बाहर की तरफ जानेवाला व्यक्ति मात्रा और परिमाण पर जोर देने लगता है--सौ साल जीये। भीतर जानेवाला व्यक्ति कहता है, जीओ चाहे एक

क्षण, लेकिन ऐसी परिपूर्णता से जीओ, ऐसी समग्रता से जीओ कि उस एक क्षण में शाश्वतता समाविष्ट हो जाए। और एक क्षण में शाश्वत समाविष्ट हो जाता है। एक छोटा-सा क्षण अनंत काल बन सकता है। सवाल गहराई का है। लंबाई का नहीं। ऐसा समझो कि एक आदमी पानी में तैर रहा है। ऐसा तैरता चला जाता है एक किनारे से दूसरे किनारे, यह एक ढंग है। यह हम सबका ढंग है। सतह पर तैरने का। और एक आदमी डुबकी लगाता है, पानी में गहरे जाता है। गहराई में जाना ध्यान है, सतह पर तैरते रहना संसार है। सतह पर तैरनेवाले राजनीति में हैं। गहरे जानेवाले धर्म में।
"पानी का योग पाकर नमक जैसे विलीन हो जाता है, ऐसे ही निर्विकल्प समाधि में... ।"
निर्विकल्प समाधि का अर्थ है, जब ध्यान सध गया। जब ध्यान अभ्यास न रहा, सिद्धि हो गयी। जब तुम्हारे भीतर निर्विचार रहना तुम्हारी सहज संपदा हो गयी--तुम जब चाहो तब आंख बंद करके निर्विचार हो गये। पहले तो बड़ा कठिन होगा। पहले तो उलटी हालत हो जाएगी। जब आंख बंद करोगे, विचारों का हमला होगा। उससे भी ज्यादा--दुकान पर बैठकर जितना नहीं होता उतना मंदिर में होता है, कभी ख्याल किया? दुकान पर बैठकर काम में लगे रहते हो, उलझे रहते हो विचारों का कोई खास हमला पता नहीं चलता है। लेकिन मंदिर में जाकर बैठते हो कि चलो घड़ीभर शांति से बैठें, आंख बंद की कि न मालूम कहां-कहां के विचार खड़े हो जाते हैं। संगत-असंगत; अच्छे-बुरे; सार्थक-व्यर्थ; जिनसे कुछ भी नहीं लेना-देना, वे सब सिर उठाने लगते हैं। क्या हो जाता है?
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं जब ध्यान करते हैं, तब विचार और ज्यादा आते हैं। इससे तो बिना ध्यान में कम आते हैं। बिना ध्यान में कम आते हैं, क्योंकि जब तुम बिना ध्यान में हो, तब तुम्हारा मन कहीं संलग्न होता है, कहीं लगा होता है। तो जिस तरफ तुम संलग्न हो, उसी सीमा से बंधे हुए विचार, उसी दिशा से बंधे हुए विचार आते हैं। जब तुम ध्यान में बैठे हो-- असंलग्न, अव्यस्त--तो सभी दिशाओं से विचार आते हैं। तब तुम घबड़ा जाते हो। ध्यान लगता नहीं। शुरू-शुरू में यह स्वाभावकि है। बहुत-से विचार तुम्हारे भीतर पड़े हैं, जो तुमने दबा रखे हैं, वह उभरेंगे। इसलिए पहले ध्यान में रेचन होगा। सब कूड़ा-कबाड़ उठेगा। जैसे वर्षों तक किसी ने घर को बुहारा न हो, फिर एक दिन घर में आये तो धूल उठने लगे। धूल की पर्तें की पर्तें जमी हैं। हां, बाहर बैठे रहो, पोर्च में, तो भीतर सब शांति है, कोई धूल नहीं उठती। भीतर जाओ, तो धूल उठती है। ऐसे ही जन्मों-जन्मों तक हमने विचार की धूल को जमने दिया है--भीतर गये नहीं, बुहारी लगायी नहीं। भीतर कभी वर्षा होने न दी, स्नान होने न दिया, अब जब भीतर जाएंगे तो जन्मों-जन्मों का कचरा उठेगा। इसकी सफाई करनी होगी। और जब कोई सफाई करता है, तो धूल बड़े जोर से उठती है। ऐसे ही ध्यान में विचार बड़े जोर से उठते हैं। लेकिन यह तो संक्रमण की बात है। सफाई हो जाएगी, विचार चले जाएंगे।
अगर कोई व्यक्ति शांतिपूर्वक प्रयोग करता जाए, तो धीरे-धीरे-धीरे कुछ करना नहीं होता, सिर्फ अपने विचारों के साक्षी-भाव बने रहने से; साक्षी, द्रष्टा बने रहने से; देखते रहो--अलिप्त--ठीक है, विचार आते हैं, जाते हैं; देखते रहो, आने भी दो, जाने भी दो; न रोको, न धकाओ; रस मत लो; विरस, उदासी, तटस्थ; जैसे अपना कुछ लेना-देना नहीं; ऐसे देखते-देखते तुम पाओगे कि धीरे- धीरे अंतराल भी आने लगे। कुछ क्षण आ जाते हैं जब कोई विचार नहीं होता। उन्हीं अंतरालों में पहली दफा बदलियां छंटेंगी, सूरज की रोशनी उतरेगी। उन्हीं अंतरालों में पहली दफा निर्विकल्पता के थोड़े-थोड़े अनुभव होंगे-- छोटे-छोटे, क्षणभंगुर--लेकिन वे क्षण बहुमूल्य हैं। जिन्होंने उन क्षणों को जान लिया, समझो कि उन्होंने स्वर्ग की यात्रा कर ली। थोड़ी देर को सही, लेकिन किसी और लोक में प्रवेश कर गये। फिर क्षण बड़े होने लगते हैं। धीरे- धीरे विचारों से छुटकारा होता चला जाता है। विचार दूर होते चले जाते हैं। और व्यक्ति अपने में लीन होता चला जाता है। इस लीनता को कहते हैं, निर्विकल्प। इस स्थिति को कहते हैं, समाधान, समाधि। और तब चिरसंचित शुभ-अशुभ कर्मों को भस्म करनेवाली आत्मरूप अग्नि प्रगट होती है।

"जिसके राग-द्वेष और मोह नहीं हैं तथा मन-वचन-काया रूप योगों का व्यापार नहीं रह गया है, उसमें समस्त शुभाशुभ कर्मों को जलानेवाली ध्यानाग्नि प्रगट होती है।"
ध्यान अग्नि है। क्योंकि जलाती है कचरे को। क्योंकि जलाती है व्यर्थ को, और असार को। ध्यान अग्नि है, क्योंकि जलाती है अहंकार को। ध्यान मृत्यु जैसी है। क्योंकि मारती है तुम्हें--तुम जैसे अभी हो, और जन्माती है उसे--जैसे तुम होने चाहिए। तुम्हारे भविष्य को प्रगट करती है, तुम्हारे अतीत को विदा करती है। तुम्हें संसार की पकड़ के बाहर ले जाती है और परमात्मा की सीमा में प्रवेश देती है। ध्यान के इस द्वार से खोज करनी है अपने असली स्वरूप की।
तुम कहां से आ रहे हो, नाम क्या है?
वह पुकारूं शब्द मत मुझको बताओ
जो तुम्हारा आवरण है।
पर कहो वह नाम
जिसको फूल और नक्षत्र ये कहते नहीं
नाम जो असहाय, मर जाता उसी दिन
जिस दिवस हम भूमितल पर जन्म लेते हैं
झेन फकीर कहते हैं कि बताओ अपना मौलिक चेहरा--वह चेहरा, जब तुम पैदा नहीं हुए थे तब तुम्हारा था। वह चेहरा, जब तुम मर जाओगे तब भी तुम्हारा होगा--बताओ वह मौलिक चेहरा। अभी तो हम जो चेहरे रखे हुए हैं, ये सब ओढ़े हुए चेहरे हैं।
तुम कहां से आ रहे हो,
नाम क्या है?
वह पुकारूं, शब्द मत मुझको बताओ
जो तुम्हारा आवरण है।
कोई को हम कहते हैं राम, किसी को कृष्ण, किसी को कुछ, किसी को कुछ। यह
तो पुकारू नाम है। तुम जब आये थे, तो कोई नाम लेकर न आये थे। तुम जब आये थे, तब खाली, अनाम आये थे। तुम जब आये थे, तब कोई लेबिल तुम पर लगा न था। न हिंदू थे, न मुसलमान थे, न जैन थे, न ईसाई थे। तुम जब आये थे, तब न सुंदर थे, न कुरूप थे। तुम जब आये थे, न बुद्धू थे, न बुद्धिमान थे। तुम जब आये थे, तब कोई विशेषण न लगा था। विशेषण-शून्य। तुम कौन थे तब?
ध्यान में उसकी फिर से खोज करनी है। ध्यान में फिर उस जगह को छूना है, जहां से संसार शुरू हुआ है, जहां से समाज शुरू हुआ; जहां तुम्हें नाम दिया गया, विशेषण दिये गये; शिक्षा दी गयी, संस्कार दिये गये; तुम्हें एक रूप, ढांचा दिया गया; उस ढांचे के पार कौन थे तुम? एक दिन मृत्यु आयेगी, यह देह छिन जाएगी। जब तुम्हारी चिता पर जलेगी यह देह, तो अग्नि इसकी फिकिर न करेगी--हिंदू हो, मुसलमान हो, जैन हो; सिक्ख, ईसाई, कौन हो? सुंदर हो, कुरूप; स्त्री हो, पुरुष; धनी हो, गरीब हो, अग्नि कोई चिंता न करेगी, बस भस्मीभूत ही कर देगी। मिट्टी तुम्हें अपने में मिला लेगी। तब तुम कौन बचोगे? जो तुमने इस संसार में जाना और माना था, वह सब तो फिर छिन जाएगा। उस सबके छिन जाने के बाद भी जो बच जाता है, वही हो तुम।
ध्यान में हम उसी की खोज करते हैं, जो जन्म के पहले था और मृत्यु के बाद भी होगा। तो ध्यान का अर्थ हुआ--किसी भांति इन सारी समाज के द्वारा दी गयी संस्कार की पर्तों को पार कर के अपने स्वभाव को पहचानना है। स्वभाव को पहचान लेना ध्यान है। इसलिए महावीर ने तो धर्म की परिभाषा ही स्वभाव की है। वत्थू सहावो धम्मं। वस्तु के स्वभाव को जान लेना धर्म है। तुम्हारा जो स्वभाव है, उसको जान लेना तुम्हारा धर्म है। जैन और हिंदू और मुसलमान नहीं, तुम कौन हो इसे पहचान लेना धर्म है।
तुम जवानी हो
कि शैशव
आप अपना पाठ फिर दोहरा रहा है?
जिंदगी हो,
या सुनहला रूप धर कर

मृत्यु विचरण कर रही है?
कौन हो तुम? क्या है तुम्हारा नाम? कहां से आते हो? कहां को जाते हो?
तो एक तो हमारे ऊपर पड़ी हुई पर्तें हैं, कंडीशनिंग, संस्कार। इन पर्तों की गहरी गहराई में कहीं हमारा स्वरूप दब गया है। जैसे हीरे पर मिट्टी चढ़ गयी हो। मिट्टी पर मिट्टी चढ़ती चली गयी हो। हीरा बिल्कुल खो गया हो। फिर भी खो तो नहीं जाता, मिट्टी हीरे को मिटा तो नहीं सकती, दब जाता है।
महावीर कहते हैं, आत्मा सिर्फ दब गयी है। ध्यान से उस दबे तक कुआं खोदना है। अपने भीतर सारी पर्तों को तोड़कर उस जगह पहुंचना है जहां तोड़ने को कुछ भी न रह जाए।
ऐसा समझो कि जो दूसरों ने तुम्हें बताया है कि तुम हो, वही छोड़ना है, वही बाधा है। स्वयं मैं कौन हूं, जानने के लिए वह सब छोड़ देना होगा, जो दूसरों ने तुम्हें बताया है कि तुम हो। दूसरों को अपना पता नहीं, तुम्हारा क्या पता होगा? दूसरों को तुम्हारा कोई पता नहीं है। नाम दे दिया है, क्योंकि नाम के बिना काम नहीं चलता। कोई नाम तो चाहिए। तो एक लेबिल लगा दिया है। सुविधा हो गयी। पुकारने में व्यवस्था हो गयी। चिट्ठी-पत्री लिखने के लिए आसानी हो गयी। एक पता-ठिकाना बना लिया है। यह सब कृत्रिम है। यह स्वभाव नहीं है। अगर तुम जंगल में रखे गये होते और किसी ने तुम्हारा नाम न पुकारा होता, तो तुम्हारे पास कोई नाम होता? तुम्हारे पास कोई नाम न होता। अगर तुम जंगल में पाले गये होते और किसी ने तुम्हें बताया न होता कि तुम हिंदू हो, कि मुसलमान, कि जैन, तो तुम कौन होते? न तुम हिंदू होते, न मुसलमान होते, न जैन होते। अगर तुम जंगल में पाले गये होते और कोई तुमसे कहता नहीं कि तुम सुंदर हो कि असुंदर, तो तुम कौन होते? सुंदर होते कि असुंदर होते? कोई तुमसे कहता नहीं कि बुद्धू हो कि बुद्धिमान, तो तुम कौन होते? यह सब तो सिखावन है। सिखावन की पर्तों को तोड़कर... तो ध्यान है कुदाली, खोद देना है सारे संस्कारों को, पहुंच जाना है जलस्रोत तक। जैसे ही तुम जलस्रोत तक पहुंचे कि एक अभिनव जगत का आविर्भाव होता है। पहली दफा अपने पर आंख पड़ती है। पहली दफा भराव आता है। पहली दफा परितृप्ति, परितोष। सलिल कण हूं कि पारावार हूं मैं
स्वयं छाया, स्वयं आधार हूं मैं
बंधा हूं, स्वप्न हैं, लघु वृत्त में हूं
नहीं तो व्योम का विस्तार हूं मैं
यह जो बंधन है तुम्हारे ऊपर--
बंधा हूं, स्वप्न हैं, लघु वृत्त में हूं तो एक छोटी-सी सीमा बन गयी है,
नहीं तो व्योम का विस्तार हूं मैं
नहीं तो आकाश-जैसे बड़े हो तुम।
सलिल कण हूं कि पारावार हूं मैं
स्वयं छाया, स्वयं आधार हूं मैं
समाना चाहती जो बीन उर में
विकल वह शून्य की झंकार हूं मैं
भटकता खोजता हूं ज्योति तम में
सुना है ज्योति का आगार हूं मैं
लेकिन कब तक सुनोगे? जानोगे कब?
सुना है ज्योति का आगार हूं मैं
सुना है कि परमात्मा हूं। सुना है कि आत्मा हूं। सुना है कि मोक्ष मेरे भीतर बसा है--
सुना है ज्योति का आगार हूं मैं
जानोगे कब? ध्यान जानने की प्रक्रिया है।
लवण व्व सलिलजोए, झाणे चित्तं विलीयए जस्स।
तस्स सुहासुहडहणो, अप्पाअणलो पयासेइ।।
"जैसे नमक गल जाए, ऐसे ध्यान की अग्नि में सब अतीत कर्म जल जाते हैं।"
जस्स न विज्जदि रागो, दोसो मोहो व जोगपरिक्कमो।
तस्स सुहासुहडहणो, झाणमओ जायए अग्गी।।

"और उस आग में समस्त शुभ-अशुभ कर्मों का विनाश हो जाता है। जहां न राग बचते हैं, न द्वेष बचते हैं, मन-वचन-काया रूप योगों का व्यापार नहीं बचता।" इसको ख्याल में ले लेना, यह ध्यान की अनिवार्य शर्त है। "मन-वचन-काया रूप व्यापार का न रह जाना।"
यह महावीर के ध्यान की पद्धति का अनिवार्य हिस्सा है। ध्यान की बहुत पद्धतियां हैं। महावीर की अपनी विशिष्ट पद्धति है। उसका पहला सूत्र हैः मन-वचन-काया रूप योगों का व्यापार नहीं रह जाए।
जब तुम ध्यान करने बैठो, तो पहली चीज महावीर कहते हैंः शरीर थिर हो, कंपे न। इसके पीछे बड़ा विज्ञान है। क्योंकि शरीर और मन जुड़े हैं। जब शरीर कंपता है, तो मन भी कंपता है। जब मन कंपता है, तो शरीर भी कंपता है। तुमने देखा, जब क्रोध से भर जाते हो, तो हाथ-पैर कंपने लगते हैं। मन कंपा, शरीर कंपा। जब तुम भय से भर जाते हो, तो हाथ-पैर कंपित होने लगते हैं। मन कंपा, शरीर कंपा। जब तुम्हारा शरीर रुग्ण होता है, कंपता है, तो मन भी दीन-हीन हो जाता है। तो मन भी साहस खो देता है, आत्मविश्वास खो देता है, हीनग्रंथि से भर जाता है। शरीर और मन एक-दूसरे पर निरंतर क्रिया-प्रतिक्रिया करते हैं। शरीर स्वस्थ होता है, तो मन भी स्वस्थ होता है। मन स्वस्थ होता है, तो शरीर भी स्वस्थ होता है।
वैज्ञानिक तो कहते हैं कि मन और शरीर दो चीजें नहीं हैं, एक ही चीज के
दो पहलू हैं। और ठीक कहते हैं। पश्चिम में तो विज्ञान ने शरीर और मन ऐसा कहना ही बंद कर दिया, उन्होंने एक ही शब्द बना लियाः मनोशरीर। दो कहना ठीक नहीं, एक ही है।
महावीर को यह प्रतीति साफ रही होगी। इसलिए पहली बात वह कहते हैं--जब ध्यान में बैठो, तो शरीर को बिल्कुल थिर कर लो। कभी कोशिश करना। जैसे-जैसे शरीर थिर होगा, वैसे-वैसे तुम पाओगे मन भी शांत होने लगा। फिर इसके बाद वचन को थिर करना। विचार को। शरीर को पहले, क्योंकि वह सब से स्थूल है। फिर विचार की तरंगों को धीरे-धीरे शांत करना। कहना, शांत हो जाओ। फिर जब मन-काया और वचन, तीनों शांत होने लगें--पहले काया, फिर वचन, फिर मन--मन का अर्थ है, सूक्ष्म तरंगें, जो अभी विचार भी नहीं बनीं। जिसको फ्रायड अनकांशस कहता है। जिसको फ्रायड कांशस माइंड कहता है, उसको महावीर वचन कहते हैं। जो तुम्हारे भीतर विचार के तल पर आ गया, प्रगट हो गया, वह विचार--वचन।
और जो अभी अप्रगट है, प्रगट होने के रास्ते पर है, अभी तैयार हो रहा है, अभी गर्भ में छिपा है--वह मन। सबसे ज्यादा प्रगट शरीर है, उससे कम प्रगट विचार है, उससे भी कम प्रगट मन है। क्रमशः स्थूल से सूक्ष्म की तरफ चलना और एक-एक को थिर करते जाना। जब इन तीनों का व्यापार नहीं रह जाता, तो जो घटना घटती है, उसका नाम ध्यान। "राग और द्वेष और मोह नहीं।" राग, द्वेष, मोह बाहर की यात्रा पर हैं। भीतर तो तुम अकेले हो, किससे करो राग? किससे करो द्वेष? किससे करो मोह? भीतर तो तुम्हारे अतिरिक्त कोई भी नहीं। तो अपने आप राग, द्वेष, मोह क्षीण हो जाते हैं। ध्यान की घड़ी में न तुम्हारा कोई अपना होता है, न पराया होता है। ध्यान की घड़ी में न तुम्हारा कोई परिग्रह होता है। ध्यान की घड़ी में तुम्हारी कोई मालकियत नहीं रह जाती है। और मजा यही है कि ध्यान की घड़ी में तुम पहली दफा मालिक होते हो। मालकियत कोई भी नहीं रह जाती, साम्राज्य सब खो जाता है और तुम सम्राट होते हो।
स्वामी रामतीर्थ अपने को बादशाह कहा करते थे। पास कुछ था नहीं। जब अमरीका गये, तो वहां भी वह अपने को बादशाह ही कहते थे। कहते हैं अमरीकी प्रेसीडेंट उनको मिला था तो उसने पूछा, और सब तो ठीक है, लेकिन आपकी बादशाहत समझ में नहीं आती। लंगोटी को छोड़कर आपके पास कुछ भी नहीं, आप कैसे बादशाह! राम तो बोलते थे तो भी वह कहते कि "बादशाह राम" ऐसा कहता है। उन्होंने किताब लिखीः "बादशाह राम के छह हुक्मनामे।" राम हंसने लगे। उन्होंने कहा कि इसीलिए तो मैं बादशाह हूं कि मेरे पास कुछ भी नहीं। जिनके पास कुछ है, उन्हें चिंता होती है। जिनके पास कुछ है, उन्हें फिक्र होती है। जिनके पास कुछ है, वह उस कुछ के गुलाम होते हैं। मैं बादशाह इसीलिए तो हूं कि मैं किसी का गुलाम नहीं, मेरे पास कुछ भी नहीं। पता नहीं अमरीकी

प्रेसीडेंट को समझ में आयी यह बात, या नहीं आयी। शायद ही आयी हो! क्योंकि राजनीतिज्ञ को धर्म की बात शायद ही समझ में आये।
धर्म और राजनीति विपरीत दिशाएं हैं। राजधानी की तरफ जाना हो तो तीर्थ कभी न पहुंच सकोगे। तीर्थ जाना हो, तो राजधानी की तरफ पीठ कर लेना।
धर्म और राजनीति विपरीत हैं। एक दफा पापी भी पहुंच जाए स्वर्ग, राजनीतिज्ञ--संदिग्ध है बात!
मैंने सुना है, एक दफा स्वर्ग के द्वार पर दो आदमी साथ-साथ पहुंचे--एक फकीर और एक राजनीतिज्ञ। द्वार खुला, फकीर को तो बाहर रोक दिया द्वारपाल ने, राजनीतिज्ञ को बड़े बैंडबाजे बजाकर भीतर लिया। बड़े फूलहार, स्वागतद्वार! फकीर बड़ा चिंतित हुआ। उसने कहा यह तो हद्द हो गयी अन्याय की! वहां भी यही आदमी जमीन पर भी हार लेता रहा, हम सोचते थे कि कम से कम स्वर्ग में तो हमें स्वागत मिलेगा, सांत्वना थी, वह भी गयी। यहां भी इस आदमी को फिर अंदर पहले लिया गया, मुझे कहा कि रुको बाहर। यह कैसा स्वर्ग है! यहां भी राजनीतिज्ञ ही चला जा रहा है! बड़े फूल बरसाये, दुदुंभी बजी।
जब सब शोरगुल बंद हो गया, तब फिर द्वार खुला और द्वारपाल ने कहा, अब आप... आप भी भीतर आ जाएं। उसने सोचा कि शायद मेरे लिए भी कोई इंतजाम होगा, लेकिन वहां कोई नहीं था; न बैंड, न बाजा। वह थोड़ा चकित हुआ। उसने कहा, क्षमा करें, लेकिन यह मामला क्या है? हम जिंदगीभर परमात्मा की पूजा और प्रार्थना में लगे रहे, और यह स्वागत! और यह आदमी कभी भूलकर भी परमात्मा का नाम न लिया! तो उस द्वारपाल ने कहा, तुम समझे नहीं। तुम्हारे जैसे फकीर तो सदा से आते रहे, राजनीतिज्ञ पहली दफा आया है। और फिर सदियां बीत जाएंगी फिर शायद कभी आये! वह तो आता ही नहीं, इधर कभी आने का मौका ही नहीं मिलता।
बाहर का जगत है, वहां राग है, द्वेष है, स्पर्धा है। मोह है। मित्र हैं, शत्रु हैं। भीतर के जगत में तुम बिल्कुल अकेले हो। शुद्ध एकांत है। उस शुद्ध एकांत में राग-द्वेष खो जाते हैं। मोह खो जाता। लेकिन तुम्हें ये शर्तें पूरी करनी पड़ें--काया, वचन, मन। इन तीनों को थिर करना पड़े। इस चेष्टा में लग जाओ। यह चेष्टा शुरू में बड़ी कठिन होती है। ऐसे जैसे आंखें कमजोर हों और कोई आदमी सुई में धागा डाल रहा हो। बस ऐसी ही कठिनाई है। आंखें हमारी कमजोर हैं। दृष्टि हमारे पास नहीं है, हाथ कंपते हैं। सुई में धागा डाल रहे हैं, कंप-कंप जाता है। सुई का छेद छोटा है, धागा पतला है। मगर अगर चेष्टा जारी रहे, तो आज नहीं कल, कल नहीं परसों धागा पिरोया जा सकता है। कठिन होगा, असंभव नहीं।
और महावीर कहते हैं, जिस सुई में धागा पिरो लिया गया, वह गिर भी जाए तो खोती नहीं। और जिस सुई में धागा नहीं पिरोया है, वह अगर गिर जाए तो खो जाती है।
यह ध्यान का धागा तुम्हारे प्राण की सुई में पोना ही है। इसे डालना ही है। यह ध्यान का सूत्र ही तुम्हें भटकने से बचायेगा। तुम गिर भी जाओगे, तो भी खोओगे नहीं; वापिस उठ आओगे। यह कठिन तो बहुत है। जो तुमसे कहते हैं, सरल है, वे तुम्हें धोखा देते हैं। जो तुमसे कहते हैं, सरल है, वे तुम्हारा शोषण करते हैं। यह सरल तो निश्चित नहीं है, यह कठिन तो है ही, लेकिन कठिनाई ध्यान के कारण नहीं है, कठिनाई तुम्हारे कारण है।
ध्यान अपने आप में तो बड़ा सरल है, सीधी-सी बात है। सब थिर हो जाए, शांत
हो जाए, ध्यान घट जाता है। लेकिन तुमने कंपने का इतना अभ्यास किया है कि थोड़ा अभ्यास अकंपन का भी करना होगा। तुमने मन चलाने के लिए इतनी स्पर्धा की है अब तक, सारा शिक्षण, सारा संस्कार मन को ही चलाने का है। तुमने मन को तो खूब सीखा है, ध्यान को सीखा नहीं, बस यही अड़चन है। तुम्हारा सारा जीवन-व्यापार मन से चला है। और ध्यान के लिए तो कोई जीवन में जगह नहीं है। इसलिए तुम भूल गये। तुम्हारी ध्यान की क्षमता जंग खा गयी है। बस उतनी ही कठिनाई है। जिस दिन ध्यान देना शुरू करोगे, जंग थोड़ी साफ करोगे, फिर निखर आयेगा तुम्हारा स्वभाव।
"वह ध्यान, वह ध्याता आसन बांधकर और मन-वचन- काया के व्यापार को रोककर दृष्टि को नासाग्र पर स्थिर करके मंद-मंद श्वासोच्छवास ले।"

पहले शरीर को थिर कर लिया, फिर मन-वचन-काया को थिर किया, फिर शांत थिर आसन में बैठे हुए दृष्टि नासाग्र पर रखी। इसका उपयोग है। सिर्फ इतना ही उपयोग है, वह ख्याल लेना। अगर तुम आंख खोलकर बैठो ध्यान में--पूरी आंख खोलकर बैठो--तो हजार व्यवधान होंगे। कोई निकला, कोई गया, पक्षी उड़ा, सड़क से कोई गुजरा--कुछ न कुछ होता रहेगा। तो आंख पर जब दृश्य बदलते रहते हैं, तो उनकी वजह से भीतर चित्त पर कंपन होते हैं। तो हम सोचते हैं, फिर बेहतर है आंख बंद कर लें। लेकिन आंख तुमने बंद की कि तुम्हारे आंख बंद करने के साथ सपने शुरू हो जाते हैं। तुमने जब भी आंख बंद की है, तो बस जब तुम सोने गये हो तभी बंद की है। और तो तुम कभी आंख बंद करते नहीं। तो ऐसोसिएशन, एक संबंध बन गया है। आंख बंद करते ही सपने शुरू हो जाते हैं। तुम बैठो कुर्सी पर आराम से आंख बंद करके, थोड़ी देर में तुम पाओगे, दिवास्वप्न शुरू हो गया। जागे हो और सपना देख रहे हो।
तो चाहे वास्तविक जगत में परिवर्तन हो रहे हों, तो भी तुम्हारे भीतर कंपन होता है; आंख बंद करके सपने देखो, तो भी कंपन होगा। क्योंकि दृश्य फिर उपस्थित हो गये। इन दोनों से बचने के लिए सभी ध्यानियों ने नासाग्र-दृष्टि पर जोर दिया है। तो मध्य में ठहरा लो। न तो आंख खोलकर देखो कि बाहर वस्तुओं का जगत दिखायी पड़े, न आंख बंद करके देखो, नहीं तो सपने का जगत दिखायी पड़ेगा। तुम नाक के नोक पर अपनी आंख को रोककर बैठ जाओ। आधी खुली आंख सपने को भी कठिनाई होगी, आधी खुल आंख बाहर की चीजें भी दिखायी नहीं पड़ेंगी। धीरे-धीरे जब अभ्यास सघन हो जाए, जब नासाग्र-दृष्टि में चित्त थिर होने लगे, रस बहने लगे, सुख की पुलक उठने लगे, तब तुम आंख बंद करके भी कर सकते हो। फिर सपना नहीं आयेगा। और जब आंख बंद करने में सपना न आये, तो फिर तुम खुली आंख से भी ध्यान कर सकते हो। फिर बाहर लोग चलते रहें, फिरते रहें, घटनाएं घटती रहें, तुम्हारे भीतर कोई अंतर न पड़ेगा। लेकिन प्रथम जो शिशु की भांति प्रविष्ट हो रहा है ध्यान के जगत में, उसके लिए नासाग्र-दृष्टि बड़ी उपयोगी है।
"और मंद-मंद श्वासोच्छवास ले।" ख्याल किया तुमने कभी कि तुम्हारी श्वास तुम्हारे चित्त की दशाओं से बंधी है। जब तुम क्रोधित होते हो, श्वास ऊबड़-खाबड़ हो जाती है। जैसे ऐसे रास्ते पर चल रहे हो--कच्चे रास्ते पर। नीची-ऊंची हो जाती है, गति टूट जाती है। लय भंग हो जाता है। छंद बिखर जाता है। जब तुम प्रसन्न हो, तब ख्याल किया, श्वास में एक लय होती है। एक संगीत होता है। जब तुम कामवासना से भरते हो, तब ख्याल किया, श्वास विक्षिप्त हो जाती है। बड़े जोर से चलने लगती है। जब तुम्हारा चित्त बिल्कुल कामवासना से मुक्त होता है, तब श्वास बड़ी शांत, धीमी, थिर हो जाती है।
मन के वेग श्वास को प्रभावित करते हैं। इससे उलटा भी सच है। श्वास का परिवर्तन मन को प्रभावित करता है। तुम कभी कोशिश करके देखो। क्रोध आ जाए, तब तुम धीरे-धीरे श्वास लेकर क्रोध करने की कोशिश करो, तुम बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे। तुम पाओगे, अगर श्वास धीमी लेते हो, क्रोध नहीं होता। अगर क्रोध होता है, तो श्वास धीमी नहीं रहती। तुम कभी बिल्कुल श्वास धीमी लेकर संभोग में उतरने की कोशिश करो। मुश्किल पड़ जाएगी। कामऊर्जा उठती न मालूम पड़ेगी, क्योंकि श्वास की चोट चाहिए। श्वास का ताप चाहिए। कामवासना में उतरना तो एक तरह का बुखार है। जब तक श्वास जोर से ताप पैदा न करे, आक्सीजन जरूरत से ज्यादा शरीर में न दौड़े, तब तक शरीर की ऊर्जा बाहर फिंकने को राजी नहीं होती। उसको तो फेंकने के लिए भीतर से धक्के चाहिए श्वास के। आदमी की श्वास उसके मन को थिर करती है, या अथिर करती है।
तो महावीर ठीक कह रहे हैं, नासिकाग्र-दृष्टि हो, और श्वास धीमी-धीमी, आनंद-पूर्ण, मंद-मंद, मंद-मंद श्वांसोच्छवास। क्योंकि ध्यान की अवस्था तो ठीक संभोग से उलटी अवस्था है। ध्यान की अवस्था तो क्रोध से उलटी अवस्था है। ध्यान की अवस्था तो दा--ैडने से उलटी अवस्था है। दौड़ने में श्वास तेज हो जाती है, और ध्यान की अवस्था तो थिर होना है, दौड़ना बिल्कुल बंद करना है। शरीर को जरा कंपने भी नहीं देना है, तो श्वास की कोई जरूरत नहीं है। कभी-कभी तो ऐसा होगा, ध्यान करते-करते तुम डर भी जाओगे कि कहीं श्वास रुक तो नहीं गयी! घबड़ाना मत। वे बड़े कीमती क्षण हैं, जब तुम्हें ऐसा लगता है,

श्वास रुक तो नहीं गयी! तुम ध्यान के करीब आ रहे, घर के करीब आ रहे। उस वक्त चौंककर घबड़ा मत जाना, नहीं तो घबड़ाते से ही श्वास का छंद फिर टूट जाएगा। जब ऐसा लगने लगे कि श्वास रुक रही है, बड़े आनंदित होना, बड़े अनुगृहीत होना। कहना, हे प्रभु, धन्यवाद! तो घर करीब आ रहा है!
जब कोई बिल्कुल गहरे ध्यान में पहुंच जाता है, तो श्वास नाममात्र को
रह जाती है। पता ही नहीं चलता कि चल रही है या नहीं चल रही है। क्योंकि अब कोई भी गति नहीं हो रही, तो श्वास की कोई जरूरत नहीं है। सब गति ठहर गयी। जरा-सी श्वास की जरूरत है, जितने से शरीर और आत्मा का धागा जुड़ा रहता है, बस। वह बड़ी धीमी है। इसीलिए योगी चाहते हैं तो जमीन के नीचे महीनों तक रुक जाते हैं। चमत्कार कुछ भी नहीं है। सिर्फ मंद-मंद श्वास लेने की कला है। आक्सीजन की जरूरत इतनी कम कर लेते हैं कि उस छोटी-सी गुहा में जमीन के भीतर जितनी आक्सीजन है, वह महीने-भर तक काम दे देती है।
हमारी आक्सीजन की जरूरत बहुत ज्यादा है। क्योंकि श्वास हम बहुत ले रहे हैं। शरीर में हजार तरह की क्रियाएं चल रही हैं। जो योगी जमीन के भीतर बैठता है, वह जो महावीर कह रहे हैं यही करता है। शरीर को थिर, वचन को थिर, मन को थिर, नासाग्र-दृष्टि और श्वास को धीरे-धीरे मंद करता जाता है। फिर एक ऐसी घड़ी आ जाती है कि श्वास करीब-करीब रुक जाती है। उस करीब-करीब श्वास रुकी हालत में योगी महीनों तक भी छोटी-सी जगह में रह सकता है। उस जगह में जितनी हवा है, उतनी पर्याप्त है।
तुम्हें पता होगा, मेढक वर्षा के बाद जमीन में छिप जाते हैं और श्वास बंद कर लेते हैं। वैज्ञानिक बहुत चकित रहे हैं। साइबेरिया में जो सफेद भालू होते हैं, वे भी छह महीने जब अंधेरा हो जाता है साइबेरिया में--छह महीने सूरज होता है, छह महीने रात--तो रात के समय में वे सब बर्फ में सोकर पड़ जाते हैं, श्वास बंद कर लेते हैं। मरते नहीं। छह महीने! इसको विज्ञान कहता है--हाइबरनेशन।
योगियों ने यह कला बहुत पहले खोज ली, कि जब मेढक कर सकता है, रीछ कर सकते हैं, भालू कर सकते हैं, तो आदमी क्यों नहीं कर सकता? क्योंकि शरीर का शास्त्र तो एक ही जैसा है।
अगर सब थिर हो जाए, तो प्राणवायु की जरूरत कम हो जाती है। इसलिए ध्यान में अगर कभी तुम्हें ऐसा हो कि श्वास थिर हो जाए, तो घबड़ा मत जाना। घबड़ाने से तो बाहर फिंक जाओगे। बड़ी मुश्किल से जो पाया था, खो जाएगा। तब तो और भी राजी हो जाना, और भी श्वास को कह देना कि तू बिल्कुल विदा होजा तो भी ठीक, अगर मृत्यु भी आती मालूम पड़े तो कहना कि ठीक है, मैं मरने को राजी हूं। क्योंकि ध्यान में मर जाने से बड़ा और सौभाग्य क्या! मरना तो होगा ही। लेकिन जो ध्यान में मर गया, उससे बड़ा सौभाग्य कोई भी नहीं है। जीवन से बड़ा सौभाग्य है ध्यान में मर जाना। मगर कोई मरता नहीं, ध्यान के क्षण में तो परम जीवन का द्वार खुलता है।
"अपने पूर्वकृत बुरे आचरण की गर्हा करे, सब प्राणियों से क्षमा-भाव चाहे, प्रमाद को दूर करे और चित्त को निश्चल करके तब तक ध्यान करे जब तक पूर्वबद्ध कर्म नष्ट न हो जाएं।"
तो ध्यान कोई सदा करने के लिए नहीं है। ध्यान औषधि है। बीमारी जब चली गयी, तो ध्यान को भी छोड़ देना। जब तक बीमारी है, तब तक औषधि है। जब ध्यान की भी जरूरत नहीं रह जाती, तभी समाधि फलती है।
समाधि का अर्थ है, आत्मा का स्वास्थ्य। मिल गया, वापिस। कांटा चुभा था, दूसरे कांटे से निकाल दिया, फिर दोनों कांटे फेंक दिये। विचार का कांटा चुभा है, ध्यान के कांटे से निकाल लेना है। फिर दोनों कांटे फेंक देने हैं। तो ध्यान कोई सदा नहीं करते रहना है। ध्यान तो सीढ़ी है। औषधि है। उपाय कर लिया, काम पूरा हो गया, ध्यान भी गया।
तो महावीर कहते हैं, जब तक पूर्वबद्ध कर्म नष्ट न हो जाएं। जब तक तुम्हें अतीत का सारा कचरा समाप्त होता हुआ न दिखायी पड़े। जब तुम्हें ऐसा दिखायी पड़े कि अतीत सब समाप्त हो गया, जैसे मैं कभी था ही नहीं, सब अतीत पोंछ डाला; जब तुम इतने नये हो गये जैसे सुबह ही ओस, जैसे तुम अभी-अभी पैदा

हुए; जब तुम इतने नये और ताजे हो गये, तो फिर ध्यान की कोई जरूरत नहीं। अब तुम समाधि में जी सकते हो। अब तुम्हारा उठना, बैठना, चलना, सब समाधि है। "अपने पूर्वकृत बुरे आचरण की गर्हा करे। सब प्राणियों से क्षमाभाव चाहे... ।"
यह सब बातें ध्यान में सहयोगी हैं। इनसे सहायता मिलेगी। जो बुरा किया
है अतीत में, अब दुबारा न करूंगा। जो बुरा किया, वह बुरा था। तुमने ख्याल किया, आमतौर से हम बुरा कर लेते हैं, हम जानते भी हैं कि बुरा हो गया, तो भी हम रेशनलाइ.जेशन करते हैं। हम हजार तर्क जुटाते हैं, हम कहते हैं वह मजबूरी थी। या इसके अतिरिक्त कुछ हो ही नहीं सकता था। अन्यथा कोई मार्ग ही न था। या हम सिद्ध करने की कोशिश करते हैं कि हमने जो किया, ठीक ही किया। आदमी बड़े तर्क जुटाता है, गलत को भी सही सिद्ध करने के लिए। लेकिन महावीर कहते हैं, अगर तुम गलत को सही सिद्ध करने की कोशिश में लगे हो, तो एक बात पक्की है, ध्यान में कभी न पहुंच सकोगे। गलत को गलत मान लेना, स्वीकार कर लेना, क्षमा मांग लेना, क्योंकि गलत को गलत की तरह जानते ही फिर उसके दुबारा दोहरने का कारण नहीं रह जाता।
"अपने पूर्वकृत बुरे आचरण की गर्हा करे, सब प्राणियों से क्षमाभाव चाहे।" सब प्राणियों से। महावीर कहते हैं, इसकी फिकर न करे कि किसके साथ मैंने बुरा किया, क्षमा ही मांगनी है तो इसमें क्या कंजूसी! इसके पीछे बड़ा राज है। क्योंकि महावीर कहते हैं, हम इतने जन्मों से इस पृथ्वी पर हैं कि करीब-करीब हम सभी के साथ बुरा-भला कर चुके होंगे। इतनी लंबी यात्रा है कि हम करीब-करीब सभी से मिल चुके होंगे। असंभव है यह बात कि कोई भी ऐसा पृथ्वी पर हो जिससे किसी जन्म में, किसी मार्ग पर, किसी चौराहे पर मिलना न हुआ हो। तो महावीर कहते हैं, इतना लंबा अतीत है, तुम कहां हिसाब करोगे किससे क्षमा मांगें, किससे न मांगें! और फिर क्षमा ही मांगनी है, तो इसमें क्या हिसाब-किताब रखना! सभी से क्षमा मांग लेना।
"सभी प्राणियों से क्षमाभाव चाहे। प्रमाद को दूर करे।" तंद्रा को तोड़े। निद्रा को तोड़े, आलस्य को छोड़े। क्योंकि जितने ही तुम तेजस्वी बनोगे, जागरूक बनोगे, उतनी जल्दी घर करीब आयेगा, उतनी जल्दी मंजिल करीब आयेगी। नींद-नींद में लथड़ाते-लथड़ाते, किसी तरह चलते-चलते तुम मंजिल तक पहुंच न पाओगे। तुम कहीं बीच में मार्ग पर सो जाओगे।
"और चित्त को निश्चल करके तब तक ध्यान करे जब तक पूर्वबद्ध कर्म नष्ट
न हो जाएं।" संघर्ष है। हजार बाधाएं हैं। मन के पुराने तर्क हैं। पुरानी आदतें हैं। संस्कार हैं। गलत को ठीक करने की चेष्टा अहंकार की चेष्टा है। दूसरा ठीक भी करे, तो हम गलत मानने को तत्पर रहते हैं। खुद गलत भी करें तो ठीक सिद्ध करने का उपाय करते हैं। ये सब उपद्रव हैं। इन सब उपद्रवों को पार कर के ही कोई ध्यान तक पहुंचता है।
फजा में मौत के तारीक साये थरथराते हैं
हवा के सर्द झोंके कल्ब पर खंजर चलाते हैं
गुजश्ता इसरतों के ख़्वाब आईना दिखाते हैं
मगर मैं अपनी मंजिल की तरफ बढ़ता ही जाता हूं
फजा में मौत के तारीक साये थरथराते हैं
हवा में सब तरफ मौत की अंधेरी छाया है। प्रतिक्षण मौत आ सकती है, किसी
भी क्षण मौत आ सकती है।
हवा के सर्द झोंके कल्ब पर खंजर चलाते हैं
और हृदय प्रतिपल क्षीण हो रहा है, जैसे कि हवा का हर झोंका छुरी चला रहा हो। प्रतिपल हम मर रहे हैं। एक घड़ी गयी, एक घड़ी जिंदगी गयी। एक घड़ी गयी, एक घड़ी मौत करीब आयी।
गुजश्ता इसरतों के ख़्वाब आईना दिखाते हैं
और इंद्रियों की कामवासना है, सुखभोग की आकांक्षाएं हैं, वे नये-नये सपने बुने रही हैं। इधर जीवन हाथ से जा रहा, उधर वासना सपने बुन रही है। इधर मौत पास आ रही है, उधर वासना खींचे चली जाती है। वह कहती है, आज की रात और!
गुजश्ता इसरतों के ख़्वाब आईना दिखाते हैं

मगर मैं अपनी मंजिल की तरफ बढ़ता ही जाता हूं
जमीं चीं-बर-जबीं है आसमां तखरीब पर माइल
रफीकाने-सफर में कोई बिस्मिल है कोई घायल
तआकुब में लुटेरे हैं, चट्टानें राह में हाइल
मगर मैं अपनी मंजिल की तरफ बढ़ता ही जाता हूं
बड़ी चट्टानें हैं। बड़ी बाधाएं हैं। हजार तरह के उपद्रव हैं। कोई हत्यारा है, कोई घायल है, कोई दुखी है, कोई दुखी कर रहा है। इन सबसे, इन सबके बीच से आसमान नाराज मालूम पड़ता है, जमीन क्रुद्ध मालूम पड़ती है, ऐसा लगता है हम अजनबी हैं और हर चीज हमारी दुश्मन है। फिर भी आदमी को बढ़ते ही जाना है।
चिरागे-दैर फानूसे-हरम कंदीले-रहबानी
ये सब हैं मुद्दतों से बेनियाजे-नूरे-इर्फानी
न नाकूसे बिरहमन है, न आहंगे-हुदी-ख्वानी
मगर मैं अपनी मंजिल की तरफ बढ़ता ही जाता हूं
और इस सबसे भी ऊपर और एक मुश्किल खड़ी हो गयी है।
चिरागे-दैर फानूसे-हरम कंदीले-रहबानी
मंदिर का दीपक कभी का बुझ गया। काबे का फानूस मुर्दा है। उसमें कोई ज्योति नहीं।
चिरागे-दैर फानूसे-हरम कंदीले-रहबानी
गिरजे की मोमबत्ती में कोई रोशनी नहीं रही।
ये सब हैं मुद्दतों से बेनियाजे-नूरे-इर्फानी
न-मालूम कितनी सदियों से इनके साथ परमात्मा का संबंध छूट गया है।
परमात्मा का नूर अब इनमें झलकता नहीं।
न नाकूसे बिरहमन है--
न तो ब्राह्मण के शंखनाद की आवाज जगाने को है।
न आहंगे-हुदी-ख़्वानी
और न कुरान का पाठ है। न सुबह पढ़नेवाली अजान है। कोई जगाने को नहीं।
नींद के हजार उपाय हैं। जगानेवाले खुद गहरे सोये हैं।
मगर मैं अपनी मंजिल की तरफ बढ़ता ही जाता हूं।
लेकिन ध्यानी को इन सारी कठिनाइयों को पार करके बढ़ते ही जाना है।
कठिनाइयों को बहाना मत बनाना। यह मत कहना, हम इस वजह से न कर सके।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, क्या करें, समय नहीं है। ध्यान कब करें? ये वे ही लोग हैं, जो सिनेमा में भी बैठे हैं। ये वे ही लोग हैं, जो होटल में भी दिखायी पड़ते हैं। ये वे ही लोग हैं, जो सुबह रोज अखबार बड़ी तल्लीनता से पढ़ते हैं। ये वे ही लोग हैं जो रेडियो भी सुनते हैं, टेलिविजन भी देखते हैं। ये वे ही लोग हैं, जो ताश भी खेलते हैं। और जब ताश खेलते मिल जाते हैं, तो कहते हैं, क्या करें, समय काट रहे हैं। और इनसे कहो ध्यान, तो कहते हैं समय नहीं है। और इन्हें ख्याल भी नहीं आता कि ये क्या कह रहे हैं! ये कैसा बहाना कर रहे हैं! कहो कि ध्यान, तो वह कहते हैं, अभी तो बहुत संसार में उलझनें हैं। संसार की उलझनें कब कम होंगी? कभी कम हुई हैं? बढ़ती ही जाती हैं। इनसे कहो ध्यान, तो तत्क्षण कोई तरकीब निकालते हैं। तरकीब केवल इतना ही बताती है कि इन्हें अभी पता ही नहीं कि ये क्या गंवा रहे हैं। मुश्किल तो यह है, विडंबना यह है कि पता हो भी कैसे। यह तो पाकर ही पता चलता है कि क्या गंवा रहे थे। यह तो ध्यान जिस दिन लगेगा, उस दिन पता चलता है कि अरे, हम किस चीज के लिए समय नहीं पा रहे थे! तब पता चलता है कि सब समय इसी पर लगा दिया होता तो अच्छा था। क्योंकि जो ध्यान में गया समय, वही बचा हुआ सिद्ध होता है। जो ध्यान के बिना गया, वह गया। वह रेगिस्तान में खो गयी नदी। ध्यान में जो लगा, वही सागर तक पहुंचता है। शेष सब रेगिस्तान में भटक जाता है।
"जिन्होंने अपने योग, अर्थात मन-वचन-काया को स्थिर कर लिया और जिनका ध्यान में चित्त पूरी तरह निश्चल हो गया, उन मुनियों के ध्यान के लिए घनी आबादी के ग्राम अथवा शून्य अरण्य में कोई अंतर नहीं रह जाता है।"

ध्यान जिसका सध गया, हिमालय सध गया भीतर। तुम गौरीशंकर पर विराजमान
हो गये भीतर। फिर तुम बीच बाजार में बैठे रहो, तो अंतर नहीं पड़ता। जिसका ध्यान सध गया, उसे फिर कोई विघ्न न रहा, कोई बाधा न रही। ध्यान बड़ी से बड़ी संपदा है। शांति का, आनंद का एकमात्र आधार है।
तुम दूसरे के द्वारा जल्दी ही परेशान हो जाते हो। क्योंकि चैन से होने का पाठ तुमने सीखा नहीं। दूसरा तुम्हें जल्दी ही क्षुब्ध कर देता है। हालांकि तुम कहते हो, यह आदमी जिम्मेवार है। इसने गाली दी, इसलिए मैं क्रुद्ध हो गया। असली बात दूसरी है। तुम्हारे पास ध्यान नहीं है, इसलिए इसकी गाली काम कर गयी। तुम्हारे पास ध्यान होता, इसकी गाली कितनी ही आग से भरी आती, तुम्हारे पास आकर बुझ जाती। अंगारा नदी में फेंककर देखो। जब तक नदी को नहीं छूता, तब तक अंगारा है। जैसे ही नदी को छुआ कि राख हुआ। तुम्हारे भीतर ध्यान की सरिता हो, तो न गालियां चुभतीं न क्रोध, न अपमान, न सम्मान, न सफलता न असफलता, न यश न अपयश, कुछ भी नहीं छूता। भीतर ध्यान हो, तो महावीर कहते हैं, तुम पहाड़ पर रहो कि भरे बाजार में, सब बराबर है।
रोम-रोम में नंदन पुलकित,
सांस-सांस में जीवन शत-शत
स्वप्न-स्वप्न में विश्व अपरिचित
मुझमें नित बनते-मिटते प्रिय!
स्वर्ग मुझे क्या, निष्क्रिय लय क्या!
स्वर्ग मुझे क्या, निष्क्रिय लय क्या!
जिसके भीतर ध्यान की कीमिया पैदा हो गयी, वह अपने स्वर्ग को खुद ही निर्मित करने लगता है। वह मिट्टी छू देता है, सोना हो जाती है। तुम सोना छुओ, मिट्टी हो जाता है। तुम प्यारे से प्यारे आदमी को मिल जाओ, जल्दी ही कटुता आ जाती है। तुम प्रीतम से प्रीतम व्यक्ति को खोज लो, जल्दी ही संघर्ष शुरू हो जाता है। ध्यानी मिट्टी को भी छुए, सोना हो जाता है। ध्यानी कुटिया में भी रहे, तो महल हो जाता है। ध्यानी के होने में कुछ राज है। उसके पास भीतर का जादू है। वह जादू है।
स्वर्ग मुझे क्या, निष्क्रिय लय क्या!
शून्य में भी लय बजती है। नर्क में भी फेंक दो ज्ञानी को, ध्यानी को,
तो स्वर्ग बना लेगा।
तुम थोड़ा सोचो, अगर तुम्हें स्वर्ग भी किसी तरकीब से--पीछे के रास्ते
से सही, रिश्वत के द्वारा, कोई तरकीब से--पहुंचा भी दिया जाए, तो स्वर्ग तुम भोग सकोगे? तुम नर्क बना ही लोगे। तुम्हारा नर्क तुम अपने भीतर लिये चलते हो।
तुम जानते सब बात हो,
दिन हो कि आधी रात हो,
मैं जागता रहता कि कब
मंजीर की आहट मिले,
मेरे कमल-वन में उदय
किस काल पुण्य प्रभात हो;
किस लग्न में हो जाए कब
जाने कृपा भगवान की!
ध्यान का केवल इतना ही अर्थ है--जागते रहना। सतत जागते रहना। भीतर अंधेरा न हो, निद्रा न हो।
तुम जानते सब बात हो,
दिन हो कि आधी रात हो,
मैं जागता रहता कि कब
मंजीर की आहट मिले,
कौन जाने कब परमात्मा पुकार दे! कौन जाने किस क्षण अस्तित्व बरस उठे! कौन जाने किस क्षण आकाश टूटे!
तुम जानते सब बात हो,
दिन हो कि आधी रात हो,

मैं जागता रहता कि कब
मंजीर की आहट मिले,
मेरे कमल-वन में उदय
किस काल पुण्य प्रभात हो;
किस लग्न में हो जाए कब
जाने कृपा भगवान की!
जीसस की कहानी। एक धनी तीर्थयात्रा को गया। उसने अपने नौकरों को कहा
कि तुम जागे रहना, मैं कभी भी वापिस आ सकता हूं। घर लापरवाही में न मिले। तुम मुझे सोये न मिलो। तुम जागे रहना। मेरे आने की तिथि तय नहीं है। मैं कल आ सकता, मैं परसों आ सकता, मैं महीनेभर बाद आऊं, मैं सालभर बाद आऊं। पुराने शास्त्र परमात्मा को अतिथि कहते हैं। अतिथि का मतलब, जो तिथि बिना बताये आता है। अतिथि शब्द बड़ा अदभुत है। "गेस्ट" शब्द में वह बात नहीं है। "मेहमान" में वह बात नहीं है। अब हमें अतिथि तो कहना ही नहीं चाहिए, क्योंकि अब तो सभी तिथि बताकर आते हैं। पहले ही चिट्ठी-तार करके आते हैं कि आ रहे हैं। अब कोई अतिथि नहीं रहा। अतिथि का मतलब, जो अचानक आ जाए। अकस्मात! तुम्हें ख्याल भी न था। सपने में झलक न थी, और आ जाए! परमात्मा अतिथि है। जागे रहना है। कब आ जाएगा, पता नहीं। किस क्षण तुम्हारी अंतरंग-वीणा उसकी वीणा के साथ बजने लगेगी, किस क्षण तुम नाचने लगोगे उसके साथ, किस क्षण उसके हाथ में हाथ आ जाएगा, कुछ पक्का नहीं है। इसकी कोई घोषणा नहीं हो सकती। एक ही उपाय है कि हम जागते रहें। हम एक क्षण भी न गंवायें। वह कभी भी आये, हमें जागा पाये। वह कभी भी आये, हमें स्वागत के लिए तैयार पाये।
जागो हे अविनाशी!
जागो किरण-पुरुष, कुमुदासन,
विधुमंडल के वासी,
जागो, हे अविनाशी!
रत्नजड़ित पथचारी जागो,
उडु, वन, वीथि-बिहारी जागो,
जागो रसिक विराग लोक के,
मधुबन के संन्यासी,
जागो, हे अविनाशी!
जागने की कला का नाम ध्यान है। सोये रहना--संसारी; जागे रहना-- संन्यासी। भीतर की घटना है। उठो-बैठो, चलो-फिरो, जागरण न खोये।
जागो, हे अविनाशी!
जागो, मधुबन के संन्यासी!!
जागो, हे अविनाशी!!!
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग दो
सोलहवां प्रवचन

गुरु है द्वार

पहला प्रश्नः नानकदेव भी जाग्रतपुरुष थे। लेकिन उन्होंने कभी नहीं कहा कि मैं भगवान हूं। उन्होंने यह भी कहा कि आदमी को एक परमात्मा को छोड़कर किसी को भी नहीं मानना चाहिए। और जो व्यक्ति अध्यात्म की राह बताये, उसे गुरु कहना चाहिए।

पूछा है आर. एस. गिल ने। सिक्ख ही पूछ सकता है ऐसा प्रश्न। क्योंकि प्रश्न हृदय से नहीं आया। प्रश्न थोथा है, और बुद्धि से आया। प्रश्न परंपरा से आया। मान्यता से आया। पक्षपात से आया। पर समझने-जैसा है, क्योंकि ऐसे पक्षपात सभी के भीतर भरे पड़े हैं।
पहली बात, पहले ही प्रश्न की पंक्ति में पूछनेवाला कह रहा है-- नानकदेव! देव का क्या अर्थ होता है? देव का अर्थ होता है दिव्य, डिवाइन। दिव्यता का अर्थ होता है भगवत्ता। नानकदेव कहने में ही साफ हो गया कि मनुष्य के पार, मनुष्य से ऊपर; दिव्यता को स्वीकार कर लिया है। भगवान का क्या अर्थ होता है? बड़ा सीधा-सा अर्थ होता है--भाग्यवान। कुछ और बड़ा अर्थ नहीं। कौन है भाग्यवान? जिसने अपने भीतर की दिव्यता को पहचान लिया। कौन है भाग्यवान? जिसकी कली खिल गयी, जो फूल हो गया। कौन है भाग्यवान? जिसे पाने को कुछ न रहा--जो पाने योग्य था, पा लिया। जब पूरा फूल खिल जाता है, तो भगवान है। जब गंगा सागर में गिरती है, तो भगवान है। जहां भी पूर्ण की झलक आती है, वहीं भगवान है।
भगवान शब्द का अर्थ ठीक से समझने की कोशिश करो। नानक ने न कहा हो, मैं कहता हूं कि नानक भगवान थे। और नानक ने अगर न कहा होगा, तो उन लोगों के कारण न कहा होगा जिनके बीच नानक बोल रहे थे। उनकी बुद्धि इस योग्य न रही होगी कि वे समझ पाते। कृष्ण तो नहीं डरे। कृष्ण ने तो अर्जुन से कहा--सर्व धर्मान परित्यज्य... , छोड़-छाड़ सब, आ मेरी शरण, मैं परात्पर ब्रह्म तेरे सामने मौजूद हूं। कृष्ण कह सके अर्जुन से, क्योंकि भरोसा था अर्जुन समझ सकेगा। नानक को पंजाबियों से इतना भरोसा न रहा होगा कि वे समझ पायेंगे। इसलिए नहीं कहा होगा। और इसलिए भी नहीं कहा कि नानक उस विराट परंपरा से थोड़ा हटकर चल रहे थे जिस विराट परंपरा में कृष्ण हैं, राम हैं, उससे थोड़ा हटकर चल रहे थे।
नानक एक नया प्रयोग कर रहे थे कि हिंदू और मुसलमान के बीच किसी तरह सेतु बन जाए। एक समझौता हो जाए। एक समन्वय बन जाए। मुसलमान सख्त खिलाफ हैं किसी आदमी को भगवान कहने के। अगर नानक सीधे-सीधे हिंदू-परंपरा में जीते तो निश्चित उन्होंने घोषणा की होती कि मैं भगवान हूं। लेकिन सेतु बनाने की चेष्टा थी। जरूरी भी थी। उस समय की मांग थी। मुसलमान को भी राजी करना था। मुसलमान यह भाषा समझ ही नहीं सकता कि मैं भगवान हूं। जिसने ऐसा कहा उसने मुसलमान से दुश्मनी मोल ले ली।
नानक हाथ बढ़ा रहे थे मित्रता का, इसलिए नानक को ऐसी भाषा बोलनी उचित
थी जो मुसलमान भी समझेगा। नहीं तो जो मंसूर के साथ किया, वही उन्होंने नानक के साथ किया होता। या उन्होंने कहा होता, नानक भी हिंदू हैं, यह सब बकवास है। हिंदू और मुसलमान के एक होने की।
जिसको समन्वय साधना हो, वह बहुत सोचकर बोलता है। नानक बहुत सोचकर बोले। उन्होंने कृष्ण जैसी घोषणा नहीं की। उनकी जो घोषणा है, वह मुहम्मद जैसी है। उसमें मुसलमान को फुसलाने का आग्रह है। पंजाब है सीमा-प्रांत, वहां हिंदू और मुसलमान का संघर्ष हुआ। वहां हिंदू और मुसलमान के बीच विरोध हुआ। वहीं मिलन भी होना चाहिए। वहीं हिंदू और मुसलमान एक-दूसरे के सामने दुश्मन की तरह खड़े हुए, वहीं मैत्री का बीज भी बोया जाना चाहिए। सीमांत-प्रांत यदि समन्वय के प्रांत न हों, तो युद्ध के प्रांत हो जाते हैं। तो नानक ने बड़ी गहरी चेष्टा की।

इसलिए सिक्ख-धर्म बिल्कुल हिंदू-धर्म नहीं है। न मुसलमान-धर्म है।
सिक्ख दोनों के बीच है। कुछ हिंदू है, कुछ मुसलमान। दोनों है। दोनों में जो सारभूत है, उसका जोड़ है। इसलिए सिक्ख-धर्म की पृथक सत्ता है।
लेकिन इसे हमें समझना होगा इतिहास के संदर्भ में, नानक क्यों न कह सके जैसा कृष्ण कह सके। बुद्ध कह सके, महावीर कह सके, नानक क्यों न कह सके। नानक के सामने एक नयी परिस्थिति थी, जो न बुद्ध के सामने थी, न महावीर के, न कृष्ण के। न तो बुद्ध को, न महावीर को, न कृष्ण को, किसी को भी मुसलमान के साथ सामना न था। यह नयी परिस्थिति, और नयी भाषा खोजनी जरूरी थी। और जीवंत पुरुष सदा ही परिस्थिति के अनुकूल, परिस्थिति के लिए उत्तर खोजते हैं। यही तो उनकी जीवंतता है। उन्होंने ठीक उत्तर खोजा। लेकिन पूछनेवाले को सोचना चाहिए नानक देव क्यों?
इस देश में जो पले, वे चाहे हिंदू हों, चाहे जैन हों, चाहे सिक्ख हों, चाहे बौद्ध हों, इस देश की हवा में, इस देश के प्राणों में एक संगीत है, जिससे बचकर जाना मुश्किल है। यहां तो मुसलमान भी जो बड़ा हुआ है, वह भी ठीक उसी अर्थ में मुसलमान नहीं रह जाता जिस अर्थ में भारत के बाहर का मुसलमान मुसलमान होता है। यहां के मुसलमान में भी हिंदू की धुन समा जाती है। महावीर ने कहा, कोई भगवान नहीं, कोई संसार को बनानेवाला नहीं, लेकिन महावीर को माननेवालों ने महावीर को भगवान कहा। बुद्ध ने कहा, सब मूर्तियां तोड़ डालो, सब मूर्तियां हटा दो, किसी की पूजा की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन बुद्ध के माननेवालों ने बुद्ध की पूजा की। इस मुल्क में भगवत्ता की तरफ ऐसा सहज भाव है कि जिन्होंने इनकार किया, उनको भी भगवान मान लिया गया। यह इस मुल्क की आंतरिक दशा है।
तो जिन मित्र ने प्रश्न पूछा है, वह भी कहते हैं--नानकदेव! नानक कहने
से काम चल जाता। देव क्यों जोड़ दिया? "भगवान" शब्द का उपयोग न किया, "देव" शब्द को उपयोग किया। लेकिन बात तो वही हो गयी। घोषणा तो हो गयी कि नानक आदमी पर समाप्त नहीं हैं, आदमी से ज्यादा हैं।
और ठीक ही है, वह आदमी से बहुत ज्यादा हैं। आदमी तो हैं ही, लेकिन धन, आदमी से बहुत ज्यादा हैं। आदमी होना तो जैसे उनका प्रारंभ है, अंत नहीं। वहां से शुरुआत है, वहां समाप्ति नहीं।
"नानकदेव भी जाग्रतपुरुष थे।" निश्चित ही। इसमें कोई दो मत नहीं है। लेकिन जागते और सोते में कुछ फर्क करोगे? प्रकृति और परमात्मा में फर्क क्या है? जागने और सोने का। प्रकृति है सोया हुआ परमात्मा। परमात्मा है जागी हुई प्रकृति। फर्क क्या है? बुद्ध में और तुममें फर्क क्या है? बुद्ध जागे हुए, तुम सोये हुए। तुम सोये हुए बुद्ध हो। आंख खोल ली कि तुम ही हो गये। आंख की ओट में ही फर्क है, बस। आंख खोली कि प्रकाश ही प्रकाश है। आंख बंद की कि अंधेरा ही अंधेरा है।
एक आदमी सो रहा है, उसी सोये आदमी के पास एक जागा हुआ आदमी बैठा है। दोनों आदमी हैं, सही। लेकिन क्या दोनों एक ही जैसे आदमी हैं? तो फिर नींद और जागरण में कुछ फर्क करोगे, न करोगे? नींद और जागरण में इतना क्रांतिकारी फर्क है कि अगर हम जागे हुओं को कहें कि यह बिल्कुल दूसरे ही ढंग का आदमी है, तो कुछ अतिशयोक्ति नहीं। क्योंकि सोया हुआ आदमी क्या आदमी है! सोये हुए आदमी में और चट्टान में क्या फर्क है? सोये हुए आदमी और वृक्ष में क्या फर्क है? मूर्च्छित आदमी और पत्थर में क्या फर्क है? न पत्थर जाग रहा है, न सोया हुआ आदमी जाग रहा है। दोनों समान हैं।
नींद में हम प्रकृति में गिर जाते हैं। जागकर हम परमात्मा में उठने लगते हैं। और यह जागरण जिसको अभी हम जागरण कहते हैं, यह तो शुद्ध जागरण नहीं है। इसमें तो नब्बे प्रतिशत से ज्यादा नींद समाविष्ट है। जब कोई व्यक्ति सौ प्रतिशत जाग जाता है, तो उसी को किसी परंपरा में भगवान कहा है, किसी परंपरा में अरिहंत कहा है, किसी परंपरा में तीर्थंकर, किसी परंपरा में पैगंबर, किसी परंपरा में गुरु, कोई फर्क नहीं पड़ता, शब्दों का ही फर्क है। लेकिन हम शब्दों से बंध जाते हैं। सिक्ख है, तो जो उसने सुना है उससे बंध गया है। हिंदू है, तो बंध गया है; जैन है, तो बंध गया है। हम सब सुने हुए

शब्दों से बंध जाते हैं। और फिर शब्दों के कारण सत्यों को देखने में अड़चन हो जाती है।
"नानकदेव भी जाग्रतपुरुष थे, लेकिन उन्होंने कभी नहीं कहा कि मैं भगवान हूं।" उन्हें अर्जुन न मिला होगा। क्योंकि मैं भगवान हूं, यह कहने के लिए कोई सुननेवाला चाहिए। कोई समझनेवाला चाहिए। कोई आत्यंतिक प्रेम से सुननेवाला चाहिए। अन्यथा यह बात विवाद ही पैदा करेगी, इससे कुछ हल न होगा। मैं भगवान हूं, यह तो कहा ही जा सकता है किसी बड़े गहरे श्रद्धा के क्षण में, जबकि दो व्यक्ति इतने जुड़े हों कि संदेह का उपाय न हो। कृष्ण कह सके।
फिर यह भी ख्याल रखें कि प्रत्येक जाग्रतपुरुष अपनी भाषा चुनता है, अपना ढंग चुनता है। कोई जाग्रतपुरुष किसी और जाग्रतपुरुष का अनुकरण नहीं करता। तालमेल बैठ जाए, ठीक; अनुकरण नहीं करता। नानक ने अपने ढंग से चुना। नानक को अपनी शैली बनानी पड़ी। अब अगर तुम इस तरह सोचते फिरे कि जो बुद्ध ने कहा है वही नानक कहें, जो नानक ने कहा है वही मैं कहूं, तो तुम व्यर्थ की उलझन में पड़ रहे हो। मैं वही कहूंगा जो मैं कह सकता हूं। नानक ने मुझसे नहीं पूछा, मैं उनसे क्यों पूछूं? नानक की मौज, उन्होंने नहीं कहा कि मैं भगवान हूं। मेरी मौज, मैं कहता हूं।
और मैं मानता हूं कि अस्तित्व एक ऐसी घड़ी के करीब आ रहा है, जहां यह घोषणा करनी उपयोगी है। हर पच्चीस सौ वर्ष में मनुष्य की चेतना एक ऐसे द्वार के निकट आती है, जहां जागरण बड़ा आसान है। बुद्ध से, महावीर से पच्चीस सौ वर्ष पहले कृष्ण हुए। कृष्ण ने भगवत्ता की घोषणा की। फिर पच्चीस सौ साल बाद बुद्ध, महावीर हुए; जरथुस्त्र हुआ परसिया में; लाओत्सू, कन्फयूशियस हुए चीन में; हेराक्लाइटस, सुकरात हुए यूनान में। पच्चीस सौ वर्ष के बाद फिर एक गहन विस्फोट हुआ और सब तरफ सारे जगत में एक गुनगुनाहट गूंज गयी अध्यात्म की। फिर पच्चीस सौ वर्ष पूरे होते हैं। इस सदी के पूरे होते-होते सारी पृथ्वी पर धर्म की अनुगूंज होगी। घड़ी करीब आ रही है, जब लोग हिम्मत से घोषणा करें भगवत्ता की।
क्योंकि जब कोई तुमसे कहता है मैं भगवान हूं... अगर वह यह कहता हो कि मैं भगवान हूं और तुम भगवान नहीं हो, तब तो वह तुम्हारा दुश्मन है; और अगर वह इसलिए कहता हो कि मैं भगवान हूं, क्योंकि तुम भी भगवान हो; वह इसलिए घोषणा करता हो कि मैं भगवान हूं, ताकि तुम्हें भी याद आये तुम्हारे भगवान होने की... देखो मेरी तरफ, अगर मैं भगवान हो सकता हूं, तो तुम क्यों नहीं हो सकते, कोई भी कारण नहीं, कोई रुकावट नहीं; ठीक तुम जैसा हूं मैं, अगर मैं भगवान हो सकता हूं, तो तुम क्यों नहीं हो सकते? हो सकते हो। अगर यह फूल खिला, तो तुम्हारी कली भी खिल सकती है।
यह घोषणा जरूरी है अब, क्योंकि द्वार फिर करीब आयेगा। जैसे हर वर्ष मौसम का एक वर्तुल घूमता है--मंडलाकार; फिर वर्षा आती, फिर सर्दी आती, फिर गर्मी आती है, फिर वर्षा आती है--जैसे बारह महीने में एक वर्तुल घूमता है मौसम का, ऐसे ही आध्यात्मिक मौसम का भी एक वर्तुल है जो घूमता है। जैसे चौदह वर्ष में बच्चा जवान होने लगता, वीर्य परिपक्व होता, वासना जगती; और अगर सब ठीक चलता रहे तो बयालीस वर्ष के करीब वासना क्षीण होने लगती, ब्रह्मचर्य की याद आने लगती; अगर सब ठीक चलता रहे, तो सत्तर वर्ष का होते- होते व्यक्ति पुनः फिर बच्चे की तरह सरल हो जाता है। कुछ गड़बड़ हो जाए, तो बात अलग है। वह नियम की बात नहीं है। भटक गये तो बात अलग। अन्यथा नियम से सब चलता रहे, तो ऐसा होगा। एक वर्तुल है जीवन का भी। मरते-मरते फिर व्यक्ति सरल हो जाता है, जैसे छोटा बच्चा जन्म के बाद सरल होता।
ठीक ऐसा ही एक बड़ा वर्तुल है, जो पच्चीस सौ वर्ष का घेरा लेता है। हर पच्चीस सौ वर्ष में मनुष्य की चेतना ज्वार पर होती है। और जब ज्वार हो, तब बड़ी सुगमता से ऊंचाइयां छुई जा सकती हैं। जब ज्वार न हो, तब बड़ी कठिनता से ऊंचाइयां छुई जा सकती हैं।
नानक ने अपना समय देखा, मैं अलग अपना समय देख रहा हूं। नानक मेरे समय
के लिए नहीं बोले, मैं उनके समय के लिए नहीं बोलूंगा। नानक अपने भक्तों से बोले, मैं अपने भक्तों से बोल रहा हूं। नानक का अपना प्रयोजन है, मेरा अपना

प्रयोजन है। इसलिए व्यर्थ के प्रश्न बीच में मत उठाओ। क्या नानक ने कहा, यह नानक से पूछो कहीं मिल जाएं तो। मुझसे क्या पूछते हो? क्या मैं कहता हूं, वह मुझसे पूछो।
"उन्होंने यह भी कहा कि आदमी को एक परमात्मा को छोड़कर किसी को भी नहीं मानना चाहिए।" मैं तुमसे कहता हूं, तुम किसी को भी मानो, हर मानने में एक ही परमात्मा को मान सकते हो, करोगे क्या? पूजो पीपल को कि पहाड़ को, चरण उसी के पाओगे। वहीं सिर झुकेगा। उसके अतिरिक्त कोई है नहीं। मैं तो तुमसे कहता हूं कहीं भी चढ़ाओ पूजा के फूल, सब पूजा के फूल उसी के चरणों में गिर जाते हैं, क्योंकि उसी के चरण हैं, और कुछ है ही नहीं। फूल भी उसी के हैं, चरण भी उसी के हैं, चढ़ानेवाला भी उसी का है। इसलिए मैं तुम्हें संकीर्ण नहीं बनाता। मैं नहीं कहता कि सिर्फ एक को छोड़कर किसी को मत मानो। मैं तुमसे कहता हूं, तुम किसी को भी मानो, एक ही माना जाएगा। अंततः तुम पाओगे वही एक पूजा गया। मंदिर में पूजो कि मस्जिद में, राम में कि कृष्ण में, बुद्ध में कि महावीर में, कहीं भी सिर झुकाओ, किसी के भी सामने सिर झुकाओ।
तुमने नानक की कहानी सुनी? गये काबा, रात सो गये तो काबा के पवित्र पत्थर की तरफ पैर करके सो गये। मुल्ला-मौलवी नाराज हो गये होंगे, भागे हुए आये। कहा कि कैसे नासमझ हो! और हमने तो सुना कि तुम बड़े ज्ञानी हो, औलिया हो; यह कैसा ज्ञान? तुम्हें तो साधारण शिष्टाचार के नियम भी मालूम नहीं। पवित्र पत्थर की तरफ पैर करके सो रहे! परमात्मा की तरफ पैर करके सो रहे! कहानी कहती है कि नानक हंसे और उन्होंने कहा ऐसा करो, तुम मेरे पैर उस तरफ कर दो जहां परमात्मा न हो। कहते हैं उन्होंने पैर घुमाये सब तरफ, लेकिन जहां भी पैर घुमाये, वहीं काबा का पत्थर हो गया।
ऐसा हुआ हो, जरूरी नहीं। लेकिन कहानी बड़ी अर्थपूर्ण है। मैं नहीं मानता कि ऐसा वस्तुतः हुआ है। पर इतना मैं जानता हूं कि होना चाहिए ऐसा ही। क्योंकि काबा का ही पत्थर सब तरफ है, सब पत्थरों में वही पत्थर है। पत्थर मात्र काबा के पत्थर हैं, तो कहां पैर करो! और ऐसा थोड़े ही है कि परमात्मा उत्तर में है, दक्षिण में नहीं; पूरब में है, पश्चिम में नहीं; ऊपर है, नीचे नहीं। परमात्मा ने तो सभी कुछ घेरा है। चलो तो उसमें, बैठो तो उसमें, सोओ तो उसमें; ओढ़नी भी वही है, बिछौनी भी वही है, करोगे क्या! खाओ तो उसे, पीओ तो उसे, श्वास लो तो उसकी, उपाय कहां है, परमात्मा से बचने की जगह कहां है!
मैं तो तुमसे कहता हूं, पूजो जितने भी तुम्हें पूजना हो। तुम्हें जो रूप भा जाए, पूजो। तुम्हें जो नाम भा जाए, पूजो। इस अर्थ में हिंदू बड़े अदभुत हैं। दुनिया का कोई धर्म हिंदुओं जैसी गहराई को नहीं छू पाया। क्योंकि दुनिया के सभी धर्म किसी अर्थों में थोड़े संकीर्ण हैं। हिंदुओं के पास एक ग्रंथ है--विष्णु सहस्रनाम। उसमें परमात्मा के हजार नाम हैं। कोई भी नाम छोड़ा ही नहीं। जो भी नाम हो सकते थे संभव, वह सब जोड़ दिये हैं। कोई भी नाम लो, उसी का नाम है। कोई को भी पुकारो, उसी को पुकार रहे हो। चुप रहो, तो उसके साथ चुप बैठे हो; बोलो, तो उसके साथ बोल रहे हो। इधर तुम सोचते हो मैं तुमसे बोल रहा हूं, तो तुम गलती में हो। मैं उसी से बोल रहा हूं।
तुमसे मैं नाहक सिर नहीं मारूंगा। तुम तो दीवाल जैसे हो। मैं उसी से बोल रहा हूं। तुम्हें जब पुकारता हूं, तो उसी को पुकार रहा हूं।
मुसलमान, ईसाई, यहूदी, तीनों धर्म यहूदियों की संकीर्णता से पैदा हुए हैं। तीनों धर्मों का मूलस्रोत यहूदी है। और सिक्ख-धर्म भी आधा यहूदी है।
इसलिए थोड़ी-सी संकीर्णता है। नानक में तो न रही होगी, सिक्खों में है।
हिंदू कहते हैं, सभी कुछ उसका है। इसलिए तो हिंदू बड़े अदभुत हैं।
पत्थर रख लेते हैं वृक्ष के नीचे, सिंदूर पोत देते हैं, पूजा शुरू! अभी पत्थर था, अभी सिंदूर लगाया, पूजा शुरू! पत्थर को भगवान बनाने में देर नहीं लगती। अनगढ़ पत्थर पूजने लगते हैं। गढ़ो, मूर्ति बनाओ, समय जाया होता है। मिट्टी के गणेश बना लेते हैं। पूज भी लेते हैं, पूजने के बाद समुंदर में सिरा भी आते हैं। बड़े अदभुत लोग हैं। क्योंकि उसी का समुंदर है, मिट्टी उसी की है; बना लिया, सिरा दिया। दुनिया में कोई जाति अपनी मूर्तियों को सिराती नहीं। बना ली, तो फिर घबड़ाती है, कहीं मूर्ति का अपमान न हो जाए।

हिंदू अदभुत हैं। नाच-गाना करके जाकर नदी में डुबा आते हैं कि अब बस विश्राम करो, अब हमको भी तो चैन लेने दो। और भी तो काम हैं! फिर अगले साल देखेंगे। और फिर तुम सभी जगह हो। सागर तुम्हारा, मिट्टी तुम्हारी, आकाश तुम्हारा। सब तुम्हारा है। तो ऐसा मोह क्या बांधना!
ध्यान रखना, परमात्मा निराकार है, इसका अर्थ यही हुआ कि सभी आकार उसके। मुसलमानों ने बड़ी जिद्द पकड़ ली कि परमात्मा निराकार है तो मूर्तियां तोड़ने लगे। अगर समझे होते कि परमात्मा निराकार है, तो यही समझ में आता कि सभी आकार उसके। निराकार का अर्थ आकार तोड़ना नहीं है, आकार में उसको देखना है। आकार रोक न पाये, आकार द्वार बने, दरवाजा बने; बाधा न बने। मैं तो तुमसे कहता हूं, पूजो जिसको पूजना हो, कम से कम पूजो तो। क्योंकि मेरा जोर तुम्हारी पूजा में है। तुमने पूजा, तुमने प्रार्थना की, तुम झुके, बस काफी है। जहां तुम झुके, वहीं परमात्मा के चरण हो गये। परमात्मा के चरण तो वहां थे ही, तुम झुक नहीं रहे थे इसलिए दिखायी नहीं पड़ते थे। झुके कि दिखायी पड़ गये। और हिसाब कौन लगाये कि कहां है और कहां नहीं है! मंदिर में है कि मस्जिद में है कि गुरुद्वारे में है। हिसाब लगाने की जरूरत कहां। बेहिसाब सब जगह है। अमर्याद सब जगह है।
जिन मित्र ने पूछा है, वह नानक को समझे न होंगे। "आदमी को एक परमात्मा
को छोड़कर किसी को भी नहीं मानना चाहिए।" मान ही नहीं सकते। यही कहा होगा नानक ने कि जहां भी मानो, उसी को मानना, उस एक को ही मानना। सिक्ख कुछ गलत समझे होंगे। कम से कम पूछनेवाला सिक्ख तो गलत समझा ही है। मानना एक को ही। इसका अर्थ हुआ, जहां भी आंख पड़े, उसी को खोजना। जहां सिर झुके, उसी के चरण टटोलना। जहां तक हाथ पहुंच सके, उसी की तलाश करना। जहां तक मन जा सके, उसी में उड़ने देना मन को। जहां तक स्वप्न उठ सकें, उठने देना उसी में। जीना तो उसमें, सोना तो उसमें। उठना, बैठना, तो उसमें। उस एक में।
इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम एक धारणा को पकड़ लेना, और सब धारणाओं को इनकार कर देना। अगर एक धारणा ही भगवान का ढंग है, तो भगवान बड़ा सीमित हुआ। फिर वह निराकार न हुआ, फिर असीम न हुआ, फिर सारी सत्ता उसकी न हुई। वही होना चाहिए सभी में, तभी निराकार है। तभी शाश्वत है, सर्वव्यापी है।
"और जो व्यक्ति अध्यात्म की राह बताये, उसे गुरु कहना चाहिए।" गुरु भी क्यों कहना! क्योंकि उपनिषद तो कहते हैं, गुरु परमात्मा है, गुरुर्ब्रह्मा। झंझट हो जाएगी! अगर किसी को गुरु कहा, तो परमात्मा मान लिया उसको। सारे भारत के शास्त्र कहते हैं कि गुरु साक्षात ब्रह्म है। परमात्मा तो दूर है, दिखायी नहीं पड़ता है। गुरु दिखायी पड़ता है। परमात्मा तो आकाश की गंगा है, कहां है पता नहीं, गुरु ऐसी गंगा है जो तुम्हारे घर के द्वार से बह रही है। स्नान तो उसी में हो सकता है। इसमें स्नान होगा, तो ही तुम परमात्मा की गंगा के योग्य बनोगे। पहला परमात्मा तो गुरु ही है। गुरु से मिलने पर ही तो पहली दफा, परमात्मा है, इसकी प्रतीति होती है।
मगर लोग जड़ हैं। शब्दों को पकड़कर बैठ जाते हैं। वे कहते हैं, गुरु कहेंगे हम तो, भगवान नहीं कह सकते। इसलिए नानक को गुरु कहते हैं। लेकिन गुरु का अर्थ ही यही है, जिसमें भगवान प्रगट हुआ हो। जो भगवान के साथ एकाकार हो गया हो। जिसकी मौजूदगी में भगवान की झलक मिले। जिसके सत्संग में तुम्हारे भीतर का भगवान भी जगे और नाचे और प्रफुल्लित हो। गुरु का अर्थ ही यही है, जो तुम्हें खींचने लगे, प्रबल आकर्षण बन जाए। जो चुंबक की तरह तुम्हें खींचने लगे। किसी ऐसी जगह ले जाने लगे जहां तुम अपने से न जा सकते। भय पकड़ता, हिम्मत न होती। गुरु तो परमात्मा है। कबीर ने कहा है-- गुरु गोविंद दोई खड़े, काके लागूं पांय
किसके चरण छुऊं पहले? दोनों सामने खड़े हैं। दुविधा बड़ी साफ है। अगर परमात्मा के चरण पहले लगूं, तो गुरु का अपमान होता है। और गुरु के बिना परमात्मा तो कभी मिल नहीं सकता था। तो यह तो अकृतज्ञ होगा कृत्य। यह तो गुरु के प्रति आभार न हुआ। गुरु गोविंद दोई खड़े, काके लागूं पांय। अगर गुरु के पैर पड़ता हूं, तो परमात्मा का अपमान हो जाएगा। गुरु के साथ इसीलिए तो थे कि परमात्मा को खोजना था। बड़ी दुविधा है! क्या करूं?
बलिहारी गुरु आपने गोविंद दियो बताय

लेकिन गुरु ने तत्क्षण गोविंद को बता दिया कि तू गोविंद के ही पैर लग।
पद तो कबीर का यहीं पूरा हो जाता है, पक्का नहीं फिर वह पैर किसके लगे! मैं जानता हूं कि वह गुरु के लगे। क्योंकि उनकी इस दूसरी पंक्ति में ही साफ है--"बलिहारी गुरु आपकी।" गुरु ने कह दिया कि लग परमात्मा के, देर क्यों कर रहा है, रुक क्यों रहा है, सोच क्या रहा है? चुनाव थोड़े ही करना है। यहीं के लिए तो तुझे ले आया था अपने साथ, आ गयी वह घड़ी, अब झुक परमात्मा को, भूल मुझे। पद तो यहां पूरा हो जाता है, फिर किसी ने कभी कबीर को पूछा नहीं कि वस्तुतः तुम लगे किसके पैर? मैं मानता हूं कि कबीर गुरु के ही पैर लगे--"बलिहारी" शब्द में ही बात आ गयी। अब कैसे और कुछ किया जा सकता है। गुरु अंततः तुम्हें अपने से भी मुक्त कर देता है--"बलिहारी गुरु आपकी गोविंद दियो बताय।"
तो गुरु तो परमात्मा है। गुरु तो परमातमा का द्वार है। ये जो प्रश्न उठते हैं, ये उठ आते हैं संस्कारों से। संस्कार बाधा हैं। संस्कारों से मुक्त होना है। और एक ऐसा चित्त पाना है, जहां कोई संस्कार तथ्यों पर धूमिल छाया न डालते हों। जहां तथ्य प्रगट होते हों, जैसे हैं वैसे ही। भक्त की कोशिश यही है कि भगवान होना है।
तुझी से तुझे छीनना चाहता हूं
ये क्या चाहता हूं, ये क्या चाहता हूं
भक्त बेचैन भी होता है कि यह भी क्या चाह रहा हूं! लेकिन तुझ ही को तुझ
ही से छीनना चाहता हूं, चेष्टा तो यही है कि यहां जो प्राणों का दीया जल रहा है, यह भगवत्ता का दीया हो जाए। जब तक भक्त भगवान न हो जाए, तब तक यात्रा पूरी नहीं हुई। इंचभर भी दूरी रह गयी, तो कुछ पाने को शेष रहेगा। है क्या ईश्वर?
ईश्वर वह प्रेरणा है
जिसे अब तक शरीर नहीं मिला
टहनी के भीतर अकुलाता हुआ फूल,
जो वृंत पर अब तक नहीं खिला
टहनी के भीतर अकुलाता हुआ फूल, जो वृंत पर अब तक नहीं खिला--बस वही ईश्वर है। ईश्वर भविष्य है, संभावना है। ईश्वर तुम जो हो सकते हो उसका नाम है। ईश्वर तुम्हें जो होना ही चाहिए उसका नाम है। ईश्वर तुम्हारी बीजरूप संभावना है। तुम्हारे बीज में छिपा हुआ सत्य है।
टहनी के भीतर अकुलाता हुआ फूल,
जो वृंत पर अब तक नहीं खिला
मैं जब ईश्वर की बात कर रहा हूं तो मैं किसी दर्शनशास्त्र की बात नहीं
कर रहा हूं। मैं तो तुम्हारे जीवन-काव्य की बात कर रहा हूं। तुम मुझे एक कवि की तरह याद रखना। मैं कोई दर्शनशास्त्री नहीं हूं। मैं तुम्हें कोई शास्त्र नहीं दे रहा हूं। संकेत दे रहा हूं। और जीवन के काव्य को समझना हो तो बंधी-बंधायी, पिटी-पिटायी धारणाओं को हटाना, ताकि जीवन अपनी सुषमा को, अपने सौंदर्य को प्रगट कर सके। मन को थोड़ा किनारे कर के रखना।
तुम्हें मैंने आह! संख्यातीत रूपों में किया है याद
सदा प्राणों में कहीं सुनता रहा हूं तुम्हारा संवाद--
बिना पूछे, सिद्धि कब? इस इष्ट से होगा कहां साक्षात
कौन-सी वह प्रात, जिसमें खिल उठेगी क्लिन्न,
सूनी शिशिर-भीगी रात?
चला हूं मैं; मुझे संबल रहा केवल बोध--
पग-पग आ रहा हूं पास;
रहा आतप-सा यही विश्वास
स्नेह के मृदुघाम से गतिमान रखना निबिड़
मेरे सांस और उसांस।
आह, संख्यातीत रूपों में तुम्हें किया है याद!
तुमने जब भी कुछ चाहा है, मैं कहता हूं, तुमने परमात्मा ही चाहा है। तुमने धन चाहा, तो धन में भी तुम परमात्मा को ही खोजते थे। तुमने पद चाहा, तो पद में भी तुम परमपद को ही खोजते थे। तुमने किसी स्त्री के प्रेम में

आंसू बहाये, तो तुम प्रार्थना को ही टटोलते थे। तुम किसी मोह से भरे, तुम किसी राग में गिरे, तो उन सब खाई-खड्डों में भी तुम प्रभु का ही मार्ग खोजते थे। अनंत-अनंत रूपों में अनंत-अनंत ढंगों से आदमी उसी को खोज रहा है। भला तुम्हारी खोज गलत हो, लेकिन तुम्हारे प्राणों की अकुलाहट गलत नहीं है। भला तुम रेत से तेल निचोड़ने की चेष्टा कर रहे होओ, लेकिन तेल निचोड़ने की आकांक्षा थोड़े ही गलत है। तुम वहां खोज रहे हो, जहां न पा सकोगे, विषाद हाथ लगेगा, विफलता हाथ लगेगी, लेकिन इससे तुम्हारी खोज की ईमानदारी को तो इनकारा नहीं जा सकता। पत्थर पूजो, प्रेमी को पूजो, अनजाने, तुम्हारी बिना पहचान के परमात्मा की तरफ ही तुम बढ़ रहे हो।
तुम्हें मैंने आह! संख्यातीत रूपों में किया है याद
और कोई उपाय भी नहीं है। जिस दिन तुम ऐसा समझोगे, उस दिन तुम्हारे जीवन में एक लयबद्धता आ जाएगी। तब तुम देखोगे, सब कदम जो किन्हीं भी रास्तों पर पड़े, सभी मंदिर की तरफ पड़े। कभी भटके भी तो मंदिर से ही भटके। कभी दूर भी गये, तो परमात्मा से ही भटके, लेकिन चेष्टा उसी की तरफ जाने की लगी थी। हारे भी बहुत बार, पराजित भी बहुत बार हुए, गिरे भी बहुत बार, विषाद भी आया, हताशा भी आयी, लेकिन यह सब उसी के मार्ग पर घटा है। और अंतिम निर्णय में तुम पाओगे, इस सबने ही तुम्हें मार्ग को खोजने में सहायता दी है। कुछ भी व्यर्थ नहीं गया है। कुछ व्यर्थ जा नहीं सकता।
जीवन के परम अर्थशास्त्र में कुछ भी व्यर्थ नहीं जाता है। लेकिन पता
तो तब चलता है जब हम पहुंच गये--आखिरी घड़ी। तब हम लौटकर देख सकते हैं कि अरे, अगर मैं भटका न होता तो मार्ग भी पाना मुश्किल होता! कि मैंने धन से पाने की कोशिश की, वह भी जरूरी था। वह भी शिक्षण था। कि मैंने प्रेम में प्रार्थना खोजी, वह भी शिक्षण था। उस सबसे बचकर अगर आ जाता, तो इस मंदिर तक आ ही नहीं सकता था।
इसलिए मैं तो कहता हूं, जिस तरह तुम्हें याद आ सके उसी तरह याद करो। सब में वही है। और सबसे उसी की खोज चल रही है। श्रद्धा चाहिए। एक आदमी पीपल के वृक्ष के पास श्रद्धा से जल चढ़ा रहा है। तुम पीपल का वृक्ष देखते हो, हाथ से गिरती जलधार देखते हो, मैं उसके भीतर गिरती श्रद्धा की धार देखता हूं। एक आदमी मंदिर की मूर्ति के सामने बैठा दीया जला रहा है। तुम पत्थर देखते हो, मृण्मय दीया देखते हो, उसके भीतर चिन्मय की धार नहीं देखते। एक आदमी विराट, सूनी मस्जिद में बैठा परमात्मा का गीत गुनगुना रहा है। कोई है जो चुप बैठा है वृक्ष के तले, बुद्ध की भांति--न कोई प्रार्थना है, न कोई पूजा है; न कोई बाह्य उपकरण है, न कोई साधन है; न मंदिर है, न मस्जिद है; आंख बंद है--अपने में लीन। लेकिन इन सबके भीतर एक बात समान है, वह भीतर की चैतन्य-धारा। बाहर के उपकरण भिन्न-भिन्न हैं। बाहर के तो सब खिलौने हैं, जिससे मर्जी हो उससे खेल लेना, भीतर रसधार बहती रहे।
कल मैं पढ़ रहा था--
खके-सेहरा पे जमे, या कफे-कातिल पे जमे
फर्के-इंसाफ पे या पाये-सलासिल पे जमे
तेग-ए-बेदाद पे या लाश-ए-बिस्मिल पे जमे
खून फिर खून है, टपकेगा तो जम जाएगा
कहां खून गिरता है--पत्थर पर गिरता है, कि लाश पर गिरता है, कि मंदिर पर गिरता है--कहां गिरता है, इससे क्या फर्क पड़ता है?
खून फिर खून है, टपकेगा तो जम जाएगा
ऐसा ही मैं तुमसे कहता हूं--श्रद्धा फिर श्रद्धा है, टपकेगी तो जम जाएगी। और जहां श्रद्धा जमी, वहीं भगवान है। श्रद्धा होनी चाहिए। असली बात भीतर है, असली बात अंतर्तम की है। अगर वहां न हो, तो कहीं भी भगवान नहीं है। अगर वहां श्रद्धा हो, तो सब कहीं, सब दिशाओं में वही है। भीतर हो, तो बाहर भी वही है। भीतर न हो, तो फिर बाहर कहीं भी नहीं है। फिर जाओ तीर्थयात्रा, काबा और काशी, कोई अंतर न पड़ेगा। तुम व्यर्थ ही भटकोगे। घर आओ, कहीं और नहीं जाना है। तुम्हारे भीतर है तीर्थ।
फिर ख्याल रखना, आदमी आदमी में बड़े भेद हैं। तो आदमी आदमी के ईश्वर में भी भेद होंगे। चांद निकला आकाश में--पूर्णिमा की रात, शरद पूनो--

हजारों, करोड़ों प्रतिबिंब बनते हैं पृथ्वी पर। सागर भी प्रतिबिंब बनाता है, मानसरोवर में भी प्रतिबिंब बनेगा। शांत झीलों में भी बनेगा। तूफान आये हुए सागर में भी बनेगा। मिट्टी के कूड़े-कचरे से भरे डबरों में भी बनेगा। नाली का जल कहीं इकट्ठा हो गया होगा, उसमें भी बनेगा। चांद के प्रतिबिंब करोड़-करोड़ बनेंगे, चांद एक है। गंदे डबरे में भी बनेगा। प्रतिबिंब तो गंदा नहीं हो जाएगा। क्योंकि प्रतिबिंब तो है ही कहां, जो गंदा हो जाए! प्रतिबिंब तो मात्र प्रतिछाया है।
लेकिन फिर भी गंदा डबरा तो गंदा है। तो गंदे डबरे से अगर तुम पूछोगे
कि जो चांद तेरे भीतर बना, उसके संबंध में तेरा क्या ख्याल है? तो गंदा डबरा जो कहेगा, उसमें गंदगी जुड़ी होगी। स्वाभाविक है। उसने तो वही चांद देखा, जो उसकी गंदगी में प्रतिछायित हो सकता था। मानसरोवर से पूछोगे, तो वह अपने चांद की बात करेगी। इसीलिए तो दुनिया में इतने धर्म हैं। अगर ठीक से समझो, तो हर आदमी का खुदा अलग होगा। आदमी आदमी में इतने फर्क हैं।
मेरे भीतर का ईश्वर,
विकराल क्रोध है, ऊसर, अनजोती जमीन
पर तांडव का त्यौहार रचानेवाला!
मेरे भीतर का ईश्वर,
है मेरे मन के स्वर्ग-लोक की नींव हिला
मेरे भीतर भूकंप मचानेवाला!
मेरे भीतर का ईश्वर,
है अग्निचंड, मैं उसके भीतर जलता हूं मेरे भीतर का ईश्वर,
है घन घमंड, अंबर का उद्वेलित समुद्र,
मेघों को, जाने, हांक कहां ले जाता है।
मेरे भीतर का ईश्वर
है नामहीन, एकाकी, अभिशापित विहंग
जो हृदय-व्योम में चिल्लाता, मंडराता है। मेरे भीतर का ईश्वर,
है जोर-जोर से पटक रहा मेरे मस्तक को पत्थर पर। मेरे भीतर का ईश्वर,
यह महाघोर चतुरंग प्रभंजन वेगवान
मेरे मन के निर्जन, अकूल, आश्रयविहीन,
उत्तप्त प्रांत में ज्वालाएं भड़काता है।
भीतर उर के मुद्रिक कपाट
बाहर-बाहर वह प्रलय-केतु फहराता है।
आदमी आदमी का ईश्वर अलग-अलग होगा। तुम क्रोधित हो, तो तुम्हारा ईश्वर क्रोधित होगा। तुम अहंकारी हो, तो तुम्हारे भीतर का ईश्वर अहंकारी होगा।
तुम शांत हो, तो तुम्हारा ईश्वर शांत होगा। तुम उदास हो, तो तुम्हारा ईश्वर उदास होगा। क्योंकि तुम ही तो तुम्हारे ईश्वर को प्रतिबिंब दोगे।
तुम्हारा ईश्वर तुम्हारे भीतर रूप धरेगा। तुम ही तो उसकी परिभाषा बनोगे। तुम ही तो सीमा बनाओगे। तुम ही तो बागुड़ लगाओगे। तुम्हारा ईश्वर तुम्हारे-जैसा होगा।
इसीलिए दुनिया में इतने ईश्वरों की भिन्न धारणाएं हैं। इसीलिए हर सदी
का ईश्वर भी अलग होता है। बदलता चला जाता है। ईश्वर बदलता, ऐसा नहीं, प्रतिबिंब बदलते हैं। क्योंकि प्रतिबिंब धारण करनेवाले बदलते हैं। पुरानी बाइबिल का ईश्वर बड़ा क्रोधी, रुद्र-रूप, जरा-सी बात पर नाराज हो जानेवाला, जरा-सी बात पर अग्नि बरसा देनेवाला, जरा-सी बात पर महाप्रलय ला देनेवाला। क्रोध में उसने डुबा दी दुनिया एक दफा। थोड़े-से लोग चुने हुए बचा लिये थे नोह की नाव में; बाकी सब डुबा दिये। आग बरसा दी नगरों पर। जरा नाराज हुआ कि विकराल क्रोध!
ईश्वर क्रोधी है? नहीं, जिन यहूदियों ने पुरानी बाइबिल लिखी, वे क्रोधी रहे होंगे। पुरानी बाइबिल यहूदियों के संबंध में खबर देती है। वेद में ईश्वर की धारणा है, वह धारणा ईश्वर की खबर नहीं देती, वेद जिन्होंने

रचे उनकी खबर देती है। कोई ऋषि प्रार्थना कर रहा है कि मेरी गौओं के थन में दूध बढ़ जाए और मेरे दुश्मन की गौओं के थन का दूध सूख जाए। हे प्रभु, ऐसा कुछ कर कि मेरी फसल तो खूब आये, पड़ोसी की फसल न आ पाये। क्या ईश्वर इस तरह की प्रार्थनाएं सुनता है? क्या ईश्वर की इससे कोई धारणा हमारे मन में साफ होती है--यह कैसा ईश्वर है? नहीं, इससे इतना ही पता चलता है, जो प्रार्थना करनेवाले थे उनकी याचना, उनके हृदय की खबर।
तुम जब ईश्वर के संबंध में बोलते हो, तो ध्यान रखना कि तुम्हारे ईश्वर
के संबंध में बोल रहे हो। मैं जब ईश्वर के संबंध में बोलता हूं, तो ध्यान रखना मैं अपने ईश्वर के संबंध में बोल रहा हूं। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। ईश्वर बड़ी निजी धारणा है। और हर एक की अपनी दृष्टि से प्रभावित होती है। एक ऐसी घड़ी आती है जब तुम्हारी सारी दृष्टि चली गयी, जब तुम्हारे मन में कोई पक्षपात न रहा--न हिंदू का, न मुसलमान का, न सिक्ख का, न जैन का, कोई पक्षपात न रहा--तुम सब शास्त्रों, सब शब्दों से मुक्त हुए, तुम शून्य में विराजमान हुए, तब उस मानसरोवर में जो झलकता है, वह ईश्वर की निकटतम प्रतिमा है। वह प्रतिमा इतनी निकटतम है, क्योंकि मानसरोवर का स्वच्छ स्फटिक जैसा जल कोई विकृति पैदा नहीं करता है। पारदर्शी। जैसा है वैसा ही झलका देता है। वह झलक इतनी स्पष्ट और इतनी ईश्वर जैसी है, इसलिए उपनिषद के ऋषि कह सके--अहं ब्रह्मास्मि। वह झलक इतनी स्पष्ट और इतनी साफ कि उपनिषद के ऋषि कह सके, हम ब्रह्म हैं। ब्रह्म में और उस झलक में कोई फर्क न रहा। कभी-कभी बहुत थोड़े-से लोग उस ऊंचाई पर पहुंचे हैं, जिन्होंने "अहं ब्रह्मास्मि" की घोषणा की है। कोई मंसूर कह सका, अनलहक--मैं हूं सत्य।
यह तब घटता है, जब समाधि घटती है। जब सब कचरा तुम्हारे चित्त का बह गया। तुम भी जब निर्विकार, निराकार, निर्विकल्प हुए, तब घटता है। इसकी आकांक्षा करो। इस पर भरोसा करो। क्योंकि श्रद्धा न होगी, तो यह कभी भी न घटेगा।
यह मानकर तो चलो कि परमात्मा ने जिन्हें बनाया है, उनकी अंतिम नियति परमात्मा ही हो सकता है। परमात्मा ने जिसे सृजा है, उसका अंतिम निखार परमात्मा ही हो सकता है। और तुम जब तक परमात्मा न हो जाओगे, तब तक तुम वापिस-वापिस भेजे जाओगे। क्योंकि परमात्मा तब तक राजी न होगा, जब तक तुम उसके जैसे ही होकर चरणों में नैवेद्य न बन जाओ। तब तक राजी न होगा, जब तक तुम ठीक उस जैसे न हो जाओ। इसीलिए मैं कहता हूं, स्मरण रखो इस बात का कि तुम अभी बंद कली हो, खिलना है। तुम बंद परमात्मा हो, खिलना है। तुम छिपे परमात्मा हो, प्रगट होना है।

दूसरा प्रश्नः सक्रिय-ध्यान के तीसरे चरण में काफी शक्ति लगाने पर वहां प्रकाश के सिवाय कुछ भी नहीं बचता है। फिर भय पकड़ता है कि मरा! ओशो, उस घड़ी में क्या करना चाहिए?

उस घड़ी में मरना चाहिए। मरे बिना थोड़े ही चलेगा। उस घड़ी में अपने को बचाने की चेष्टा ही फिर तुम्हें वापस लौटा लायेगी। उस घड़ी में खुद को खो देना। उस घड़ी तो कहना--
अंतिम यह अभिलाष हृदय में!
जीवन दीप जलाकर मेरा,
चाहे कोई हरे अंधेरा;
किंतु बुझे यदि दीप कभी तो
बुझे तुम्हारे कोमल कर से,
अंतिम यह अभिलाष हृदय में!
परमात्मा के हाथ से अगर तुम्हारा दीया बुझता हो, तो और क्या सौभाग्य
हो सकता है!
किंतु बुझे यदि दीप कभी तो,
बुझे तुम्हारे कोमल कर से
अंतिम यह अभिलाष हृदय में!

पूछा है कि ध्यान के अंतिम चरण में केवल प्रकाश बचता है। और क्या चाहते हो? कुछ और की भी इच्छा है? प्रकाश का तो अर्थ हुआ, जो बचना चाहिए वही बचा अब। शुद्धतम बचा। प्रकाश प्रभुरूप है। प्रभु प्रकाश की आभा है। इस प्रकाश में तुम भी मत बचो। इसीलिए तो घबड़ाहट लगती है। सब गया, तो आखिर में लगता है, अब मैं भी जाऊंगा। क्योंकि तुमने अब तक अपना जो रूप जाना है, वह उसी सभी का जोड़ था। वह सब तो गया, अब तुम कैसे बचोगे? तुम्हारा सब गया, तो तुम भी जाओगे। इससे घबड़ाहट पैदा होती है।
ध्यान के अंतिम चरण में मृत्यु घटेगी है। उसको घटने देना है। स्वागत
से घटने देना है। सहर्ष घटने देना है। तो समाधि तत्क्षण उपलब्ध हो जाएगी। अगर डर-डरकर वापिस लौटते रहे, तो यह यात्रा तो ऐसी हुई कि गंगा गयी सागर तक और ठिठककर खड़ी रह गयी और लौटने लगी गंगोत्री की तरफ। सागर तक गये हैं, तो गिरना ही होगा। फिर यह गंगा कहे कि नहीं, अब मैं गिरना नहीं चाहती, मैं तो मिलने आयी थी, गिरने थोड़े ही आयी थी; मैं तो सागर होने आयी थी, मिटने थोड़े ही आयी थी, तो क्या कहोगे तुम गंगा से? तुम कहोगे, सागर होने का एक ही उपाय है कि सागर में खो जाओ। तुममें सागर तभी खो सकता है, जब तुम सागर में खो जाओ। तुम मिटो, तो सागर हो जाए।
ध्यान की आखिरी घड़ी में तुम्हारी गंगा सागर के किनारे आकर खड़ी हो जाती है, तब मन घबड़ाता है, स्वाभाविक है। मैं समझ सकता हूं। सभी का घबड़ाया है। कोई बुद्ध, कोई महावीर, कोई नानक, कोई कबीर उस घबड़ाहट से बचा नहीं। वह सभी का घबड़ाया है। वह मनुष्य का स्वाभाविक रूप है। अब तक जिसे अपना जाना था, जीवन जाना था, वह सब छूटता लगता है, बिखरता लगता है। सारा अतीत शून्य में लीन होता मालूम पड़ता है, भविष्य का कुछ पता नहीं है, तो मृत्यु मुंह बाकर खड़ी हो जाती है। उस क्षण नाचते हुए मृत्यु में समा जाना। लौटकर पीछे मत देखना। लौटकर पीछे देखा कि मुश्किल में पड़ जाओगे। लौट भी न पाओगे और गिर भी न पाओगे, त्रिशंकु हो जाओगे। बड़ी दुविधा में पड़ जाओगे, बड़े द्वैत में पड़ जाओगे। उधर सागर बुला रहा होगा, इधर पीछे का अतीत बुला रहा होगा। उधर भविष्य खींचेगा, इधर अतीत खींचेगा। तुम दोनों के बीच खिंचकर पिस जाओगे।
बहुत बार ऐसा हुआ है कि जिन लोगों ने ध्यान की इस घड़ी में मरने से विरोध किया, वे विक्षिप्त हो गये हैं। क्योंकि लौट भी नहीं सकते अब; अब गंगोत्री तक जाना कैसे संभव है? जहां तक आ गये, आ गये, लौटना तो होगा नहीं; और आगे जाना नहीं चाहते, तो सारी ऊर्जा तुम्हारे भीतर उमड़ने-घुमड़ने लगेगी। उससे विक्षिप्तता पैदा हो सकती है। धर्म के जगत में या तो मृत्यु को घटने दो, या पागल हो जाओगे।
इसलिए मैं कहता हूं--मरो।
पूछा है--हे प्रभो! उस घड़ी में क्या करना चाहिए?" कुछ करना नहीं चाहिए। चुपचाप सरक जाना चाहिए सागर में। जैसे ओस की बूंद, घास की पत्ती से सरककर पृथ्वी में गिर जाती है, खो जाती है, ऐसे चुपचाप सरक जाना चाहिए और गिर जाना चाहिए। गिरकर तुम पाओगे कि पहली दफे जाना तुम कौन हो। मिटकर तुम पाओगे कि हुए। शून्य होकर पाओगे कि पूर्ण उतरा तुममें। इधर तुम गये कि उधर परमात्मा आया। प्रकाश तो उसके आगमन की खबर है। जैसे सुबह सूरज निकलने के पहले एक लाली छा जाती है क्षितिज पर, प्राची सुर्ख होने लगती है--सूरज की अगवानी में यह सूरज का पहला संदेश हुआ। आता ही है सूरज अब। अब देर नहीं। पक्षी चहकने लगते हैं, हवाएं फिर गतिमान होने लगती हैं, प्रकृति जागने लगती है, प्राची लाल हो गयी, सूरज आता ही है अब।
जब ध्यान के आखिरी चरण में प्रकाश बचे, तो समझना कि प्राची लाली हो उठी, लाल हो उठी, अब सूरज आता ही है। अब मंत्रमुग्ध, नाचते, अहोभाग्य मानकर गिरने को तैयार हो जाना, मिटने को तैयार हो जाना। ध्यान का अंतिम चरण मृत्यु है। इसीलिए ध्यान के बाद जो घटना घटती है, उसे हम समाधि कहते हैं। समाधि का अर्थ, महामृत्यु। जो मरने योग्य था, मर गया; जो नहीं मर सकता था, वही बचा। मर्त्य गया, अमृत बचा। मरणधर्मा से छुटकारा हुआ, अमृत से गांठ बंधी।

और जिसे तुम जिंदगी कहते हो, उसमें बचाने-जैसा भी क्या है! क्या है बचाने को तुम्हारे पास? तुम व्यर्थ ही बचाने की चिंता में लगे रहते हो, बचाने को कुछ भी नहीं! हालत वैसी ही है जैसे कोई नंगा नहाता नहीं, क्योंकि कहता है कि नहाऊंगा तो कपड़े कहां सुखाऊंगा? नंगा है, कपड़े सुखाने की चिंता के कारण नहाता नहीं! तुम्हारे पास है क्या? तुम्हारे हाथ बिल्कुल खाली हैं। तुम्हारे प्राण खाली हैं, तुम रिक्त हो। इस रिक्तता को भी नहीं छोड़ पाते! नहीं है कुछ, तो भी मुट्ठी नहीं खोल पाते! अगर कुछ होता, तब तो बड़ी मुश्किल हो जाती।
बेदिलों की हस्ती क्या, जीते हैं न मरते हैं
ख्वाब है न बेदारी, होश है न मस्ती है
कुछ भी नहीं है--
ख्वाब है न बेदारी, होश है न मस्ती है
बेदिलों की हस्ती क्या जीते हैं न मरते हैं
तुम जिसे जीवन कहते हो, वह जीवन नहीं है। जीवन और मृत्यु के बीच में अटके हो। तुम जिसे मृत्यु कहते हो वह मृत्यु नहीं है, तुम जिसे जीवन कहते हो वह जीवन नहीं है। मृत्यु तो केवल उन्होंने ही जानी, जो समाधि में मरे। तुम जिसे मृत्यु कहते हो, वह तो एक बीमारी का दूसरी बीमारी में बदल जाना है। वह तो वस्तुओं का परिवर्तन है। घर बदल लेना है। भीतर के सब रोग वही के वही रहते हैं, घर बदल जाता है। तुम जिसे जीवन कहते हो, अगर वही जीवन है, तो फिर परमात्मा की खोज व्यर्थ है। परमात्मा को हम खोजते इसीलिए हैं कि जिसे हमने अब तक जीवन जाना है, वह धीरे-धीरे सिद्ध होता है कि जीवन नहीं था, भ्रांति थी। माया थी, एक सपना था।
परमात्मा की खोज का इतना ही अर्थ है कि यह जीवन, जीवन सिद्ध नहीं हुआ,
अब हम महाजीवन को खोजते हैं, किसी और जीवन को खोजते हैं।
लेकिन जिन मित्र ने पूछा है, उनका प्रश्न बिल्कुल ही अनिवार्य है। सभी ध्यानियों को घटता है, इसलिए चिंता मत लेना। डर लगे, तो अपराध-भाव भी मत पैदा होने देना, स्वाभाविक है। कोई भी उस घड़ी आकर ठिठक जाता है। यहीं तो गुरु की जरूरत हो जाती है। उस घड़ी अगर गुरु न हो, तो तुम लौट जाओगे। या कम से कम वहीं अटके रह जाओगे। गुरु के बिना इस घड़ी में पागल होने की पूरी संभावना है। गुरु का केवल इतना मतलब है कि वह तुम्हें आश्वस्त कर सके कि मत डरो, देखो मैं खो गया हूं, फिर भी हूं। बहुत होकर हूं। अनंत होकर हूं। शाश्वत होकर हूं। आ जाओ, ले लो छलांग। डरो मत। झिझको मत। संदेह न करो। उतर आओ। गुरु हाथ बढ़ा दे, खींच ले, मरने की हिम्मत दे दे, मिटने का बल दे दे, तो उतरते से ही तुम्हें पता चलेगा कि नाहक परेशान थे।
मैंने सुना है, एक आदमी एक अंधेरी अमावस की रात में पहाड़ पर भटक गया। अंधेरा गहन। हाथ को हाथ न सूझे। किसी तरह टटोल-टटोलकर वह रास्ता खोज रहा था कि एक खड्ड में गिर गया। खड्ड में गिरा तो उसने एक वृक्ष की जड़ को पकड़ लिया जोर से। सारी रात कैसे कटी, कहना कठिन है। रोते ही, आंसू बहाते ही रात बीती। सर्द रात, ठिठुर रहा, हाथ जड़ हुए जाते, कब वृक्ष की जड़ हाथ से छूट जाएगी, कहना मुश्किल! बल खोता जाता, मृत्यु निश्चित है, पता नहीं नीचे कितना बड़ा खड्ड हो! और फिर आधी रात के करीब हाथ बिल्कुल ठंडे सुन्न हो गये। पकड़ संभव न रही। जड़ छूट गयी और वह आदमी गिरा। और गिरने के बाद उस घाटी में एक खिलखिलाहट की आवाज आयी, क्योंकि नीचे कोई खाई न थी, समतल जमीन थी। गिरकर पता चला कि गिरने को कुछ नीचे था ही नहीं। नाहक कष्ट झेला।
लेकिन अंधेर में पता कैसे चले? गिरकर पता चला कि नीचे समतल भूमि थी।
खिलखिलाकर हंसने लगा।
सुनो मेरी, उतर आओ! लौटकर मत देखो; जो गया, गया। और प्रभु द्वार पर खड़ा है। सुनो मेरी। स्वागत कर लो! गले भेंट लो। आनंद से उतर आओ। नाचते, गुनगुनाते। सौभाग्य समझो! प्रकाश आया, प्राची लाल हो उठी, सूरज करीब है। मैं तुमसे कहता हूं--मरो!

तीसरा प्रश्नः अफसोस, कोई दिल का हाल नहीं पूछता। और सब यही कह रहे हैं--तेरी सूरत बदल गयी। और यह भी कह रहे हैं कि सब कुछ लुटाकर होश में आये

तो क्या आये! ऐसी मेरी हालत है, मैं क्या करूं? मेरे प्रश्न का उत्तर देने की कृपा करेंगे। आपने उत्तर नहीं दिया, तो मैं सचमुच पागल हो जाऊंगा।

तो अभी क्या ढोंग ही रच रहे हो! सचमुच पागल हो जाओगे? तो पागल होना भी तुम्हारी स्वेच्छा पर है? कि जब होना चाहोगे तब हो जाओगे। तो स्वांग होगा। मेरे उत्तर देने न देने से पागल होने का क्या संबंध है? या तो पागल हो; और या पागल नहीं हो तो कैसे हो जाओगे?
जिसने संन्यास लिया, मेरे लिए तो पागल हो ही गया। संन्यास का अर्थ ही
यह है कि तुम अब ऐसी डगर पर चले जहां हिसाब-किताब नहीं, जहां तर्क व्यर्थ हैं। जहां श्रद्धा सार्थक है। तुम ऐसी डगर पर चले, जो प्रेम की डगर है। और प्रेम तो अंधा है। या कि प्रेम के पास ऐसी आंखें हैं, जिनको सिर्फ प्रेमी ही जानते हैं, और कोई नहीं जानता। और प्रेम तो एक पागलपन है, एक दीवानगी है। प्रेम तो मजनू होना है। प्रेम का तो अर्थ ही यही है कि अब सब दांव पर लगाने की तैयारी है, लेकिन अब और देर सहने की तैयारी नहीं।
तो तुम पूछते हो कि पागल हो जाऊंगा। मेरी तरफ से तो जिस दिन तुम्हें संन्यास दिया, उसी दिन मैंने मान लिया कि तुम पागल हो गये। पागल हुए बिना परमात्मा को कब किसने पाया है? पागल होने का इतना ही अर्थ है कि जीवन में बड़ी त्वरा से खोज हो रही है। कुनकुनी नहीं, उबलती हुई खोज। दुकानदारी नहीं, जुआरी की तरह--सब लगा दिया।
होशियार मेरे पास नहीं आते। मेरे पास तो प्यासे आते हैं। होशियारों
के लिए तो बहुत और जगहें हैं, जहां वे संसार को भी सम्हाले रहते हैं, परमात्मा का भी थोड़ा सहारा पकड़े रहते हैं। न यह दुनिया जाए, न वह दुनिया जाए। कुछ दांव पर लगाना नहीं है। सब सम्हालकर रखना है, दोनों नाव पर सवार रहना है। मेरे पास तो तुम आये हो, तो उसका अर्थ ही यही है कि तुमने पागल होने की हिम्मत जुटायी।
और दूसरे तुम्हारे हृदय को नहीं देख सकते। पूछा है, "अफसोस कोई दिल का हाल नहीं पूछता।"
दिल तो दूसरों को दिखायी पड़ नहीं सकता। दिल तो वही है जिसे तुम जानते
हो, अपने निजी एकांत में। दिल तो अत्यंत वैयक्तिक है। वहां तो तुम किसी को निमंत्रण भी नहीं दे सकते। अपने निकटतम मित्र को भी वहां तुम नहीं ले जा सकते। उस जगह तो बस तुम्हारा ही आना-जाना है। दूसरे को तुम्हारे दिल का क्या पता चलेगा? इसलिए यह आशा ही छोड़ दो कि कोई तुमसे दिल का हाल पूछेगा। कोई पूछे तो तुम बता भी न सकोगे। एक तो कोई पूछेगा ही नहीं। दूसरे को तो यह भी पक्का नहीं होता कि तुम में दिल है भी!
इसीलिए तो लोग कहते हैं, आत्मा नहीं है। क्योंकि बाहर से तो सिर्फ इतना ही दिखायी पड़ता है, शरीर है; बहुत से बहुत अनुमान लगता है कि मन होगा, वह भी अनुमान है, दिखायी तो कुछ पड़ता नहीं।
हृदय की तो बात ही नहीं जमती कि तुम्हारे भीतर हृदय होगा। फिर आत्मा
तो और भी आखिरी बात हो गयी।
शरीर की पहचान तो साफ है। मन की थोड़ी-बहुत अनुमान से पहचान होती है कि मेरे भीतर भी विचार चलते हैं, दूसरे के भीतर भी चलते होंगे। चलने चाहिए। क्योंकि शरीर मेरा जैसा लगता है, तो मन भी शायद मेरे जैसा हो। फिर मन के भीतर छिपा हुआ हृदय, उस तक तो पहुंच नहीं हो पाती। उस तक तो केवल प्रेम से पहुंच हो पाती है, अनुमान से नहीं। फिर हृदय के भीतर छिपी आत्मा है। उस तक तो प्रेम से भी पहुंच नहीं हो पाती। उस तक तो ध्यान से ही पहुंच हो पाती है। फिर आत्मा के भीतर छिपा परमात्मा है, उस तक तो किसी चीज से भी पहुंच नहीं होती, ध्यान से भी नहीं होती। लेकिन जब तुम आत्मा में पहुंच जाते हो, तो परमात्मा तुम्हें खींच लेता है। आत्मा तक मनुष्य जा सकता है, वहां तक मनुष्य के कृत्य की सीमा है।
इसीलिए तो महावीर ने परमात्मा की बात नहीं की। क्योंकि जहां तक मनुष्य जा सकता है वहीं तक बात करनी उचित है, आगे की क्या बात करनी! आगे तो घटना घटती है--अपने से घटती है। ऐसा समझो कि तुम छत पर खड़े हो। जब तक खड़े हो, ठीक; छलांग लगा लो, तो छलांग लगाने के बाद फिर जमीन तक आने के लिए थोड़े ही

तुम्हें कुछ करना पड़ता है। छलांग लगा ली कि फिर तो गुरुत्वाकर्षण काम करने लगता है। फिर तो जमीन का ग्रेविटेशन तुम्हें खींच लेता है, कशिश खींच लेती है। फिर तुम यह थोड़े ही पूछोगे कि छलांग लगाने के बाद फिर मैं क्या करूं कि जमीन तक आ जाऊं? हम कहेंगे, तुम सिर्फ छलांग लगा लो, बाकी काम छोड़ो, फिक्र तुम मत मरो, वह जमीन कर लेगी।
आत्मा तक मनुष्य जाता है। आत्मा के बाद कशिश परमात्मा की शुरू होती है। वहां से सीमा परमात्मा की। छलांग लग गयी, फिर वह तुम्हें खींच लेता, उसका गुरुत्वाकर्षण खींच लेता।
"अफसोस, कोई दिल का हाल नहीं पूछता।"
अफसोस मत करो। ऐसे अफसोस किया तो व्यर्थ ही परेशान होओगे। कौन पूछेगा दिल का हाल तुमसे? कोई जरूरत भी नहीं किसी को पूछने की। और बताने की भी आकांक्षा मत करो। तुम्हारी प्रार्थना प्रदर्शन न बने।
"हां, लोग कहते हैं कि तेरी सूरत बदल गयी।"
सूरत तक उनकी पहचान है। चेहरा दिखायी पड़ता है, तुम थोड़े ही दिखायी पड़ते हो। उतना भी पूछ लेते हैं, बड़ी कृपा है, अन्यथा कौन किसकी सूरत देखता है! अपनी देखने से फुर्सत मिले तो आदमी दूसरे की सूरत देखे! अपनी देखने से तो फुर्सत मिलती नहीं। तुम जब घर से निकलते हो तो तुम्हीं बहुत परेशान होते हो आईना वगैरह देखकर कि कहीं कुछ गलती न रह जाए, कोई दाग न रह जाए, कोई कचरा न लगा रह जाए, कहीं कोई आदमी देख ले! कौन देखता है, तुम इसकी फिकर तो करो? तुम किसकी सूरत देखते हो? कोई किसी की सूरत नहीं देख रहा। लोग अपने- अपने अहंकारों में ग्रस्त हैं। लोग अपने-अपने में बंद हैं।
तो कोई अगर तुम्हारी सूरत भी देख लेता है, तो बड़ी कृपा! और कोई अगर इतना भी पहचान लेता है कि तुम्हारी सूरत बदल गयी है, तो उसे धन्यवाद दो। उसके मन में तुम्हारे लिए कुछ सहानुभूति होगी। कुछ जगह होगी तुम्हारे लिए। कुछ लगाव होगा, कुछ राग होगा। और लोग पहले सूरत ही पहचान पाते हैं। लेकिन सूरत निश्चित बदलती है, यह पक्का है। कभी तो क्षणभर में क्रांति हो जाती है।
कभी-कभी मैं देखता हूं, एक आदमी आता है, अस्त- व्यस्त, संदिग्ध, मन डांवांडोल; उसकी चाल भी देखकर कह सकते हैं कि डांवांडोल है, कुछ तय नहीं किया है; भीतर कंपन है, बाहर भी कंपन है--मेरे सामने बैठता है, कहता है कि संन्यास लूं, या न लूं? कई दिन से सोच रहा हूं, कुछ तय नहीं हो पाता। जब कोई चीज तय नहीं हो पाती, तो तुम भीतर बहुत डांवांडोल हो जाते हो, बंट जाते हो। फिर वह हिम्मत जुटा लेता है, सुन लेता है मेरी पुकार। मैं कहता हूं--कूदो, देखेंगे; सोचना बाद में कर लेंगे। सोचना इतना जरूरी भी नहीं है। वह कहता है, बिना सोचे कैसे संन्यास ले लूं?
मैं कहता हूं, जिन्होंने लिया, बिना सोचे ही लिया। हालांकि लेने के बाद पछताये नहीं। क्योंकि लेने के बाद पाया कि लेने योग्य था। कुछ चीजें हैं, जिनको लेकर ही पता चलता है क्या हैं। स्वाद से ही पता चलता है क्या हैं। पहले से पता भी कैसे चले? मैं कहता हूं, तुम ले लो। मैं देता हूं, तुम ले लो। फिर भीतर-भीतर स्वाद ले लेना, फिर बाद में तय कर लेना कि लेने योग्य था या नहीं। हिम्मतवर आदमी होता है, साहसी होता है, उतर जाता है। इधर मैं माला उसके गले में डालता हूं, उधर एक रूपांतरण शुरू होता है, उसकी सूरत बदलने लगती है। क्योंकि एक निष्कर्ष आ गया। एक दुविधा मिटी। दुविधा के मिटते ही भीतर जो लड़ते खंड थे, इकट्ठे हो जाते हैं। जब ले ही लिया, तो एक हलकापन हो जाता है, चिंता गयी। चेहरे पर प्रसाद आ जाता है। और ले सका, इतना आत्मविश्वास कर सका, इतनी श्रद्धा कर सका, तो जब वह आदमी जाता है तो उसकी चाल मैं देखता हूं अब और हो गयी। जैसे वृक्ष को जड़ें मिल गयी हों। उसके पैर जमीन में लगे होते हैं बल से। उसका सिर आकाश में उठा होता है बल से। यही आदमी क्षणभर पहले आया था, यही क्षणभर बाद जा रहा है, सूरत बदल जाती है। लेकिन सूरत बदलती है भीतर की बदलाहट से। कोई रंगरोगन लगाने से सूरतें नहीं बदलतीं। भीतर का दीया जलता है, तो चेहरे पर रोशनी आ जाती है। भीतर का दीया जलता है, तो चेहरे पर आभा आ जाती है। कुछ रहस्यपूर्ण चेहरे को मंडित कर लेता है। एक प्रभामंडल पैदा हो जाता है।

लोग ठीक ही कहते हैं कि सूरत बदल गयी। सूरत इसीलिए बदल गयी कि दिल बदल गया है। लोग नहीं पूछेंगे दिल का हाल, क्योंकि लोगों को न अपने दिल का पता है, न तुम्हारे दिल का पता है। लोग दिल को तो भूल ही गये हैं। दिल को तो विस्मरण ही कर दिया है। दिल के विस्मरण करने के कारण ही तो परमात्मा से टूट गये हैं, क्योंकि दिल ही जोड़ है। मैंने तुमसे कहा, शरीर, शरीर के भीतर मन, मन के भीतर हृदय, हृदय के भीतर आत्मा, आत्मा के भीतर परमात्मा। हृदय ठीक मध्य में है। इस तरफ मन और शरीर, उस तरफ आत्मा और परमात्मा। हृदय ठीक मध्य में है। जोड़ है। सेतु है। कड़ी है।
जो लोग हृदय को भूल गये हैं, वे आत्मा को तो कैसे याद करेंगे! उनके लिए आत्मा तो केवल एक कोरा शब्द है, अर्थहीन। जो लोग हृदय को भूल गये हैं, उनके लिए परमात्मा तो बिल्कुल व्यर्थ है। वे कैसे परमात्मा शब्द का सार्थक उपयोग करें, समझ में भी नहीं आ सकता।
तो पहली तो बात है, हृदय जगे। लेकिन मैं तुम्हारे हृदय की बात करूंगा, लोगों से आशा मत करो। वही मैं कर रहा हूं रोज सुबह-शाम। तुम्हारे हृदय की बात तुमसे कह रहा हूं कि धीरे-धीरे तुम अपने हृदय की भाषा पहचानने लगो। और रही पागल होने की बात, मेरे हिसाब से तो तुम हो ही गये हो। और अब तुम किसलिए रुके हो, अगर नहीं हो गये हो तो जाओ। पागल होने का अर्थ समझ लेना।
पागल होने का अर्थ है, तर्क से नाता तोड़ना। हिसाब-किताब के जगत से नाता तोड़ना। रहस्य के जगत में पदार्पण। पागल होने का अर्थ है, गद्य से पद्य की तरफ यात्रा। पागल होने का अर्थ है, साफ-सुथरे राजमार्गों को छोड़कर जीवन की रहस्य की पगडंडियों पर चलना। चलो तो बनती हैं। सीमेंट से पटे हुए राजमार्ग नहीं हैं, जहां सारी भीड़ चल रही है।
पागल होने का अर्थ है--अकेला होना। भीड़ चल रही है--हिंदुओं की, मुसलमानों की, जैनों की--जब तक तुम भीड़ के हिस्से बने हो, तब तक तुमने अभी परमात्मा की खोज पर कुछ दांव पर नहीं लगाया। जिस दिन तुम उतरते हो भीड़ को छोड़कर, राजमार्ग को छोड़कर; उतरते हो जीवन के बीहड़ जंगल में--और जीवन बीहड़ जंगल है, खतरे हैं वहां, वन्य-पशु हैं वहां, भटक जाने की पूरी संभावना है; पहुंचना, जरूरी नहीं कि पहुंचो ही, निश्चित नहीं है--जो आदमी राजमार्ग को छोड़कर बीहड़ के मार्ग पर उतरता है, पागल है। तुम्हारे संगी-साथी कहेंगे, क्या कर रहे हो? समझ-बूझ से काम लो। लेकिन अगर तुम समझ-बूझ को समझ पाये हो तो एक बात समझ में आ गयी होगी कि समझ-बूझ से कितना ही काम लो, हाथ कुछ आता नहीं। तो तुम कहते हो, अब तो समझ-बूझ छोड़कर जीकर देखना है। अब तो मस्त होकर जीकर देखना है। अब तो दीवाना होकर जीकर देखना है।
धार्मिक व्यक्ति स्वेच्छा से जीवन की सुरक्षाओं को छोड़कर असुरक्षा
को वरण करता है। तर्क, विचार, गणित की साफ-सुथरी, पटी-पटायी लीकों को छोड़कर प्रेम की, प्रार्थना की बेबूझ पहेलियों को सुलझाने चल पड़ता है।
लेकिन ऐसे ही व्यक्ति किसी दिन परमात्मा को पाने में सफल होते हैं।
परमात्मा तार्किक नहीं है, प्रेमी है। और सत्य तर्क की कोई निष्पत्ति नहीं, नयी आंखों का दर्शन है। ये आंखें जो तुम्हारे पास हैं, काफी नहीं। तीसरी आंख पैदा करो। और यह कान जो तुम्हारे पास हैं, काफी नहीं। तीसरा कान पैदा करो। संन्यास उसी तीसरी आंख और तीसरे कान की खोज है।
मेरे साथ होना है, तो पागल होकर ही हो सकते हो। और जब तक मैं हूं, हो लो, क्योंकि पीछे पछताने से कुछ भी न होगा। पीछे पछताये होत का, जब चिड़ियां चुग गयीं खेत।
भुलायी नहीं जा सकेंगी ये बातें
बहुत याद आयेंगे हम याद रखना
इसलिए अभी जब तुम्हारे पास हैं, तो पागल हो लो, कल पर मत छोड़ो। यह नृत्य, यह संगीत, जो मैं तुम्हें देना चाहता हूं, ले लो। संकोच मत करो।
फैलाओ झोली और भर लो।
भुलायी नहीं जा सकेंगी ये बातें
बहुत याद आयेंगे हम याद रखना।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग दो
सत्रहवां प्रवचन

ध्यान है आत्मरमण

जे इंदियाणं विसया मणुण्णा, न तेसु भावं निसिरे कयाइ।
न याऽमणुण्णेसु मणं पि कुज्जा, समाहिकामे समणे तवस्सी।। 123।।
सुविदियजगस्सभावो, निस्संगो निब्भओ निरासो य।
वेरग्गभावियमणो, झाणंमि सुनिच्चलो होइ।। 124।।
देहविवित्तं पेच्छइ, अप्पाणं तह य सव्वसंजोगे।
देहोवहिवोसग्गं निस्संगो सव्वहा कुणइ।। 125।।
णाहं होमि परेसिं ण मे परे संति णाणमहमेक्को।
इदि जो झायदि झाणे, सो अप्पाणं हवदि झादा।। 126।।
णातीतमट्ठं ण य आगमिस्सं, अट्ठं नियच्छंति तहागया उ।
विधूतकप्पे एयाणुपस्सी, णिज्झोसइत्ता खवगे महेसी।। 127।।
मा चिट्ठह, मा जंपह, मा चिंतह किं वि जेण होइ थिरो।
अप्पा अप्पम्मि रओ, इणमेव परं हवे झाणं।। 128।।
न कसायमुत्थेहि य, वहिज्जइ माणसेहिं दुक्खेहिं।
ईसा—विसाय—सोगा इएहिं, झाणोवगयचित्तो।। 129।।
चालिज्जइ बिभेइ य, धीरो न परीसहोवसग्गेहिं।
सुहुमेसु न संमुच्छइ,भावेसु न देवमायासु।। 130।।

पहला सूत्रः
"समाधि की भावना वाला तपस्वी इंद्रियों के अनुकूल विषयों में कभी राग-भाव न करे और प्रतिकूल विषयों में भी मन में द्वेष न लाए।"
मनुष्य के मन के आधार ही चुनाव में हैं। मनुष्य के मन की बुनियाद चुनने में है। चुना, कि मन आया। न चुनो, मन नहीं है। इसलिए कृष्णमूर्ति बहुत जोर देकर कहते हैं, च्वाइसलेस अवेयरनेस--चुनावरहित सजगता। चुनावरहित सजगता में मन का निर्माण नहीं होता। न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी।
मन को तो बहुत लोग मिटाना चाहते हैं। ऐसा आदमी खोजना कठिन है, जो मन से परेशान न हो। मन से बहुत पीड़ा मिलती है, बेचैनी मिलती है। मन का कोई मार्ग शांति तक, आनंद तक जाता नहीं; कांटे ही चुभते हैं। मन आशा देता है फूलों की, भरोसा बंधाता है फूलों का; हाथ आते-आते तक सभी फूल कांटे हो जाते हैं। ऊपर लिखा होता है--सुख। भीतर खोजने पर दुख मिलता है। जहां-जहां स्वर्ग की धारणा बनती है, वहीं-वहीं नर्क की उपलब्धि होती है।
तो स्वाभाविक है कि मनुष्य मन से छूटना चाहे; लेकिन चाह काफी नहीं है।
यह भी हो सकता है कि मन से छूटने की चाह भी मन को ही बनाए। क्योंकि सभी चाह मन को बनाती हैं। चाह मात्र मन की निर्मात्री है।
तो बुनियाद को खोजना जरूरी है, मन बनता कैसे है? यह पूछना ठीक नहीं कि
मन मिटे कैसे? इतना ही जानना काफी है कि मन बनता कैसे है! और हम न बनाएं तो मन नहीं बनता। हमारे बनाए बनता है। हम मालिक हैं।
लेकिन ऐसा हो गया है कि बुनियाद में हम झांकते नहीं, जड़ों को हम देखते नहीं, पत्ते काटते रहते हैं। पत्ते काटने से कुछ हल नहीं होता।
महावीर का यह पहला सूत्र, निर्विकल्प भावदशा के लिए पहला कदम है।
महावीर कहते हैं, न तो राग में, न द्वेष में। ये दो ही तो मन के विकल्प हैं।
इन्हीं में तो मन डोलता है, घड़ी के पेंडुलम की तरह। कभी मित्रता बनाता, कभी शत्रुता बनाता। कभी कहता अपना, कभी कहता पराया।
जैसे ही तुमने राग बनाया, तुमने द्वेष के भी आधार रख दिए। ख्याल किया? किसी को भी मित्र बनाए बिना शत्रु बनाना संभव नहीं। शत्रु बनाना हो तो पहले मित्र बनाना ही पड़े। तो मित्र बनाया कि शत्रुता की शुरुआत हो गई।
तुमने कहा किसी से "मेरा है", संयोग-मिलन को पकड़ा--बिछोह के बीज बो दिए।
जिसे तुमने जोर से पकड़ा, वही तुमसे छीन लिया जाएगा।

तो यह भी संभव हो जाता है कि आदमी देखता है, जिसे भी मैं पकड़ता हूं, वही मुझसे छूट जाता है। तो छोड़ने को पकड़ने लगता है, कि सिर्फ छोड़ने को पकड़ लूं।
यही तो तुम्हारे त्यागी और विरागियों की पूरी कथा है।
धन को पकड़ते थे; पाया कि दुख मिला, तो अब धन को नहीं पकड़ते। लेकिन "नहीं पकड़ने" पर उतना ही आग्रह है। पहले धन के लिए दीवाने थे, अब धन पास आ जाए तो घबड़ा जाते हैं, जैसे सांप-बिच्छू आया हो; जैसे जहर आया हो।
मन तो फिर कंप गया। पहले धन के लिए कंपता था, अब धन के विरोध में कंप गया। पहले खोजते थे सुंदर देह, सुंदर स्त्री, सुंदर पुरुष; अब अपने को समझा लिया कि दुख ही दुख पाया।
तो तुम जाओ त्यागी-वैरागियों के पास, तुम उन्हें वहां शरीर की निंदा करते हुए पाओगे। और तुम यह भी देख पाओगे कि निंदा में बड़ा रस है। शरीर के भीतर मांस-मज्जा है, कफ-पित्त है, दुर्गंध है, मल-मूत्र है, इसकी चर्चा करते हुए तुम त्यागियों को पाओगे। जैसे भोगी चर्चा करता है सुंदर आंखों की, स्वर्ण जैसी काया की, स्वर्गीय सुगंध की, वैसे ही त्यागी भी चर्चा करता है। त्यागी चर्चा करता है शरीर में भरे मल-मूत्र की! यह तो गंदगी का टोकरा है। यह तो चमड़ी ही ऊपर ठीक है, बाकी सब भीतर गंदा भरा है। चमड़ी के धोखे में मत आओ।
लेकिन दोनों का राग शरीर से है। जिसको हम विराग कहते हैं, वह भी सिर के
बल खड़ा हो गया राग है; शीर्षासन करता हुआ राग है। शरीर से छुटकारा नहीं हुआ। बंधे शरीर से ही हैं। जो अभी कह रहा है कि शरीर मल-मूत्र की टोकरी है, अभी शरीर से उसका लगाव बना है। वह इसी लगाव को तोड़ने के लिए तो अपने को समझा रहा है कि शरीर मल-मूत्र की टोकरी है। कहां जाता है पागल! शरीर में कुछ भी नहीं है। वह तुम्हें नहीं समझा रहा है, वह अपने को ही समझा रहा है तुम्हारे बहाने। वह शरीर की निंदा करके अपने भीतर जो छिपी वासना है, उस पर नियंत्रण करने की कोशिश कर रहा है।
निंदा हम उसी की करते हैं, जिससे हम डरते हैं। दमन भी हम उसी का करते हैं, जिससे हम भयभीत हैं। लेकिन भयभीत हम उसी से होते हैं, जिसमें हमारा राग है।
इस सारी व्यवस्था को समझना जरूरी है। इसलिए महावीर कहते हैं, "न तो अनुकूल विषयों में राग-भाव करे, न प्रतिकूल विषयों में द्वेष-भाव करे।"
न तो कहो कि शरीर स्वर्ण की काया है, न कहो कि मल-मूत्र की टोकरी है। चुनो ही मत--इधर या उधर। डोलो ही मत। शरीर जो है, है। तुम इसके संबंध में कोई धारणा मत बनाओ और कोई व्याख्या मत करो। तथ्य को तथ्य की भांति देखो। न तो इसके प्रशंसा के गीत गाओ, न तो स्तुति में ऋचाएं रचो, और न निंदा में गालियां निकालो। न तो शरीर गाली के योग्य है, और न स्तुति के योग्य है। शरीर बस, शरीर है। जैसा है, उतने पर ठहर जाओ।
यह तो उदाहरण हुआ। ऐसा ही जीवन की हर चीज में है। धन तो धन है। न तो कहो
कि यही मेरा सर्वस्व है; और न कहो, यह क्या है! यह तो मिट्टी ही है। कहो ही मत कुछ। कहा, कि मन बना। तुमने इधर निर्णय लिया कि मन की ईंट रखी। तुम सिर्फ देखते रहो; द्रष्टा बनो। चुनाव मत करो। बीच में खड़े रहो; न इधर जाओ, न उधर।
देखा! पेंडुलम घड़ी का रुक जाए तो घड़ी रुक जाती है। बायें जाए, दायें जाए, तो घड़ी चलती रहती है। पेंडुलम के चलने से घड़ी चलती है। मन के गतिमान होने से मन निर्मित होता है। मन डोलता नहीं, अडोल हो जाता है। वहीं ध्यान का जन्म होता है।
"जो संसार के स्वरूप से सुपरिचित हैं; निस्संग, निर्भय और आशारहित हैं, तथा जिनका मन वैराग्य से युक्त है, वही ध्यान में सुनिश्चल भलीभांति स्थित होता है"।
इसलिए एक बात ख्याल में ले लेना--"जो संसार के स्वरूप से सुपरिचित है... ।"
महावीर कहते हैं, संसार से वही मुक्त हो सकता है, जिसने जल्दबाजी नहीं की; जो संसार के स्वभाव से सुपरिचित है। कच्चे-कच्चे भागे, बिना पके वृक्ष से छूट गए--पीड़ा रह जाएगी। किसी की सुनकर संसार छोड़ दिया; अपने जानने, अपने

अनुभव से नहीं छोड़ा, किसी के प्रभाव में छोड़ दिया, तो ऊपर-ऊपर छूटेगा, भीतर-भीतर संसार खींचता रहेगा।
इसलिए महावीर का यह सूत्र अति मूल्यवान है, "जो संसार के स्वरूप से सुपरिचित हैं, वे ही केवल वीतरागता को उपलब्ध हो सकते हैं।"
वस्तुतः जो संसार से परिचित हो गया, वह वीतराग न होगा तो और करेगा क्या? फिर कोई उपाय नहीं। वीतराग-भाव तुम्हारा निर्णय नहीं है, तुम्हारे जीवन-अनुभव का निचोड़ है। वीतराग-भाव राग के विपरीत तुम्हारा संकल्प नहीं है; राग, द्वेष सब के अनुभव से तुमने पाया, कुछ सार नहीं है; इस अनुभव का नाम ही वीतरागता है।
इस पर मेरा भी बहुत जोर है। जहां रस हो वहां से भागना मत। रस का पूरा अनुभव कर लेना। दूसरे क्या कहते हैं, इसकी चिंता मत करना क्योंकि दूसरों का अनुभव तुम्हारा अनुभव नहीं बनेगा। अगर तुम्हें अभी भोजन में रस हो तो रस ले लेना। रस इतना ले लेना कि भीतर कोई भी आकांक्षा शेष न रह जाए। कहीं कोने-कातर में मन के, किसी रस को दबा मत रहने देना, उभाड़ लेना; पूरा उभाड़ लेना। हां, इतना ही ख्याल रखना कि रस बोधपूर्वक लेना, जागे लेना।
रस तो बहुत लोग लेते हैं। जो सोए-सोए लेते हैं, वे रस से कोई निष्पत्ति नहीं निकाल पाते। उनके जीवन में अनुभवों का ढेर तो लग जाता है, निचोड़ नहीं होता। अनुभव में दब जाते हैं, अनुभव में खो जाते हैं, लेकिन अनुभव से कुछ जीवन-सत्य के मणि-माणिक्य नहीं खोजकर ला पाते।
अनुभव अगर सोए-सोए किया गया तो किया ही नहीं गया। उससे कुछ सार न होगा। अगर जागकर किया गया तो अनुभव तुम्हारे लिए शिक्षण दे जाएगा, कुछ पाठ सिखा जाएगा। वही पाठ जीवन की संपदा है। वही पाठ वेद है, वही कुरान है, वही धम्मपद है। जिन्होंने जीवन के अनुभव को जाग-जागकर देखा, जाग-जागकर भोगा, उनके हाथ में कोई ज्योति आ गई। जो व्यर्थ था, वह व्यर्थ दिखाई पड़ गया, जो सार्थक था, वह सार्थक दिखाई पड़ गया।
जैसे प्रकाश पैदा हो जाए तो कमरे में क्या है, सब साफ हो जाता है। कहां कचरा पड़ा है कोने में, वह भी पता चल जाता है। कहां तिजोड़ी है, हीरे-जवाहरात रखे हैं, वह भी पता चल जाता है। अगर तुम कमरे में सोए हो अंधेरे, तो भी तिजोड़ी है, कचरा भी पड़ा है, लेकिन तुम्हें कुछ पता नहीं चलता।
और जब तक तुम्हें तिजोड़ी न दिखाई पड़े, तब तक कचरा कचरा है, यह भी पता नहीं चल सकता। जीवन में सार्थकता की थोड़ी प्रतीति हो तो क्या-क्या निस्सार है, वह अपने आप साफ हो जाता है। कांटों का बोध हो जाए तो फूलों का बोध हो जाता है। फूलों का बोध हो जाए तो कांटों का बोध हो जाता है।
जागकर जीवन के सारे अनुभव जिसने लिए, अधैर्य न किया, जल्दबाजी न की, लोभ न किया, यह न कहा कि चलो, ऋषि-महर्षि तो कहते हैं, कि छोड़ो संसार! ऋषि- महर्षि ठीक ही कहते हैं लेकिन वे अपने अनुभव से कहते हैं। उन्होंने संसार का दुख भोगा, उन्होंने संसार की पीड़ा झेली। उनकी पीड़ा को जब तक तुम न झेलोगे, तब तक उनकी निष्पत्तियां तुम्हारी निष्पत्तियां नहीं हो सकतीं। हम तो लोभ से भर जाते हैं। जब बुद्ध या महावीर जैसा कोई व्यक्ति हमारे पास से गुजरता है, तो उसकी दमक, उसकी प्रभा, उसकी शांति का वायुमंडल हमें लोभ से भर देता है। हम कहते हैं, काश, ऐसा आनंद हमारा होता! ऐसा आनंद कैसे हमारा हो जाए? कैसे डुबकी लगे इसी सागर में, जिसमें तुम डूबे?
तो हम महावीर और बुद्ध के वचनों को पकड़ने लगते हैं। हमने उनका गीत तो सुना, लेकिन किस पीड़ा से वे इस गीत को उपलब्ध हुए, उसकी हमें कोई खबर नहीं है।
अश्कों में जो पाया है वो गीतों में दिया है
इस पर भी सुना है कि जमाने को गिला है
जो तार से निकली वो धुन सबने सुनी है
जो साज पे गुजरी है वो किसको पता है
जो साज पे गुजरी है वो किसको पता है
जो तार से निकली है वो धुन सबने सुनी है
जब तुम महावीर या बुद्ध या कृष्ण या क्राइस्ट के पास होते हो तो जो धुन निकल रही है वह तो सुनाई पड़ती है, जो गीत पैदा हो रहा है वह तो सुनाई

पड़ता है, लेकिन किन पीड़ाओं से इस गीत का निखार हुआ है, किन पर्वत-खंडों को तोड़कर यह झरना बहा है; किन आंसुओं ने इन गीतों में धुन भरी है; किस कंटकाकीर्ण मार्ग पर गुजरकर मंदिर के ये स्वर्ण-कलश दिखाई पड़े हैं, उसका तो हमें कुछ भी पता नहीं चलता। गीत से हम लोभित हो जाते हैं। धुन हमें बांध लेती है। हम पूछने लगते हैं, हम क्या करें? कैसे तुम्हें हुआ, कैसे हमें भी हो जाए?
तो अगर हम महावीर का अनुकरण करने लगे, बड़े धोखे में पड़ जाएंगे। हम महावीर जैसा वेष रख सकते हैं। अगर वे निर्ग्रंथ हैं, नग्न हैं, तो हम नग्न हो सकते हैं, दिगंबर हैं, दिगंबर हो सकते हैं। कैसे उठते हैं, कैसे बैठते हैं, कैसे चलते हैं, हम भी ठीक वैसा ही अभ्यास कर सकते हैं।
लेकिन तुम पाओगे कि जो धुन उनके भीतर पैदा हुई थी वह तुम्हारे भीतर पैदा न हुई। क्योंकि मौलिक चीज खो रही है; जड़ नहीं है। तुम्हारे जीवन के अनुभव का निचोड़ नहीं है। महावीर को तुमने ऊपर से ओढ़ लिया। वे तुम्हारे प्राण में विकसित हुए फूल नहीं हैं।
यही तो दुर्भाग्य है जैन मुनियों का। यही दुर्भाग्य है बौद्ध भिक्षुओं का। यही दुर्भाग्य है ईसाई साधु-संतों का। जिससे वे प्रभावित हुए थे, ठीक ही प्रभावित हुए थे। आश्चर्य नहीं है कि जीसस की हवा तुम्हें पुकार बन जाए, आह्वान बन जाए! कि महावीर की आंख तुम्हारी आंख से मिले और तुम्हारी अतल गहराइयां कंपित हो उठें, तुम्हारे प्राणों में कोई नाद बजने लगे--स्वाभाविक है।
लेकिन तुम यह भी तो पूछो कि किन पीड़ाओं से, किस तपश्चर्या से? महावीर
का शब्द सुनकर तुम्हारे भीतर मधुर वातास फैल जाए; महावीर का शब्द-शब्द तुम्हारे भीतर मधु घोलने लगे--ठीक! लेकिन यह भी तो पूछो कि ये शब्द किस मौन से आए हैं? किस ध्यान में इनका जन्म हुआ है? किस साधना में गर्भित हुए हैं? कहां से पैदा हुए हैं।
शब्द को ही पकड़कर तुम याद कर लो तो मुर्दा शब्द तुम्हारे मस्तिष्क में अटका रह जाएगा, शोरगुल भी करेगा; लेकिन तुम्हारे भीतर वैसी शांति पैदा न हो सकेगी, जो महावीर के भीतर है। क्योंकि शब्द के कारण शांति पैदा नहीं हुई, शांति के कारण शब्द पैदा हुआ है।
महावीर की वीतरागता ऐसे ही आकश से नहीं टपक पड़ी है, छप्पर नहीं टूट गया है। महावीर की वीतरागता इंच-इंच सम्हाली गई है, साधी गई है। और जीवन के अनुभव में उसकी जड़ें हैं। अनुभव पृथ्वी है।
तुम किसी पौधे से प्रभावित हो गए, काट लाए पौधा ऊपर से और जड़ें वहीं छोड़ आए, तो थोड़ी-बहुत देर पौधा हरा रह जाए, लेकिन कुम्हलाने लगेगा; ज्यादा देर जीवंत नहीं रह सकता। और अगर तुम जड़ें ले आओ, पौधा छोड़ भी आओ तो भी चलेगा। क्योंकि जड़ें आरोपित करते ही तुम्हारे घर में भी पौधा अंकुरित होने लगेगा।
"जो संसार के स्वरूप से सुपरिचित हैं... ।"
परिचित भी नहीं कहते; महावीर कहते हैं--"सुपरिचित।" परिचित तो हम सभी हैं थोड़े-बहुत, लेकिन नींद-नींद में हैं। कुछ हो भी रहा है, कुछ पता भी चल रहा है, लेकिन सब धुंधला-धुंधला है। न तो आंखें प्रगाढ़ हैं, न ज्योति जली है, न एक-एक अनुभव को पकड़कर निचोड़ लेने की कला सीखी है। तो रोज हम वही किए जाते हैं।
तुमने कभी ख्याल किया? नया क्या करते हो? जो कल किया था, वही फिर दोहरा लेते हो। कैसे आदमी हो तुम? यह तो यंत्र जैसा हुआ। कल क्रोध किया था, आज भी कर लिया। और कल पछताए थे क्रोध करके, आज भी पछता लिए। कल भूल हो गई थी, रो लिए थे, क्षमा मांग ली थी। आज फिर भूल हो गई, फिर रो लिए, फिर क्षमा मांग ली। ऐसे वर्तुलाकार तुम कब तक भटकते रहोगे?
इसको ही पूरब में हमने संसार कहा है--संसार-चक्र। गोल-गोल घूमता रहता है, कोल्हू की बैल की तरह घूमता रहता है। बैल को शायद लगता हो कि गति हो रही है, विकास हो रहा है। कहीं जा रहा हूं, कहीं पहुंच रहा हूं। लेकिन जरा देखो, कहां पहुंच रहा है! चलता जरूर है, मगर बंधा है एक ही केंद्र से। उसी के आसपास चक्कर काटता रहता है।

तुम जरा गौर से देखो, तुम्हारे जीवन में विकास है? उत्क्रांति है? तुम कहीं जा रहे? कुछ हो रहा? कि सिर्फ उसी-उसी को पुनरुक्त कर रहे हो? वही राहें, वही लीक! जैसे कल सुबह उठे थे, वैसे आज सुबह उठ आए। जैसे कल रात सो गए थे, आज रात भी सो जाओगे। कितनी बार सूरज ऊगा है; और तुम्हें वहीं का वहीं पाता है!
तो सुपरिचित नहीं हो; परिचित तो हो। सुपरिचित का अर्थ है कि जो अनुभव तुम्हारे जीवन में गुजरा उसके गुजरने के कारण ही अब तुम और हो गए। तुमने उससे कुछ सीखा, कुछ संपत्ति जुटाई। अगर तुमने आज क्रोध किया तो तुमने उस क्रोध से कुछ सीखा। कल अगर क्रोध करना भी पड़ा तो ठीक आज जैसा नहीं करोगे। उसमें कुछ फर्क होगा, भेद होगा, सुधार होगा, तरमीम होगी, संशोधन होगा, कुछ छोड़ोगे, कुछ जोड़ोगे।
तो ठीक है, विकास हो रहा है। अगर ऐसे ही क्रोध से सीखते गए... सीखते गए... सीखते गए तो एक दिन तुम पाओगे कि क्रोध अपने आप, जैसे-जैसे तुम सुपरिचित हुए, विदा हो गया है। जीवन का ज्ञान क्रांति है।
"जो संसार के स्वरूप से सुपरिचित है... ।"
इसलिए ख्याल रखना, किसी के प्रभाव में कुछ कसम मत ले लेना। किसी के प्रभाव में कुछ छोड़ मत देना।
अकसर ऐसा होता है, जाते हो तुम सुनने, सत्संग में बैठते हो, बातें प्रभावित कर देती हैं! कोई कसम खा लेता है ब्रह्मचर्य की, लेकिन ब्रह्मचर्य की कसम मंदिर में थोड़े ही खानी होती है! अगर तुम मुझसे पूछो तो ब्रह्मचर्य की कसम वेश्यालय में किसी ने खायी हो तो शायद टिक भी जाए, मंदिर में खायी नहीं टिक सकेगी। अगर कामभोग के अनुभव से ही आयी हो तो टिक जाएगी। मंदिर में प्रवचन सुनकर, शास्त्र पढ़कर, एक भावाविष्ट अवस्था में तुमने ले ली हो, टिकेगी नहीं, टूटेगी।
तुमने तो हुक्मे-तर्के-तमन्ना सुना दिया
किस दिल से आह तर्के-तमन्ना करे कोई!
संत तो कहे चले जाते हैं, छोड़ो यह इश्क का जाल! छोड़ो यह प्रेम की झंझट! छोड़ो यह भोग!
तुमने तो हुक्मे-तर्के-तमन्ना सुना दिया
तुमने तो कह दिया, दे दिया आदेश कि छोड़ दो प्रेम!
किस दिल से आह तर्के-तमन्ना करे कोई!
लेकिन जिसे जीवन का अभी कोई अनुभव नहीं है, वह कैसे प्रेम को छोड़ दे?
जिसे जाना ही नहीं, उसे छोड़ोगे कैसे? जिसे पाया ही नहीं, उसे छोड़ोगे कैसे? एक बात को ख्याल रखना, जो पाया हो वही छोड़ा जा सकता है। जो तुम्हारी मुट्ठी में हो उसी को गिराया जा सकता है। जो तुम्हारे पास हो उसे ही फेंका जा सकता है।
लेकिन अकसर ऐसा होता है कि बूढ़े बच्चों को सिखाते हैं। इससे बड़ी झंझट पैदा होती है। बूढ़े बच्चों को शिक्षा दे रहे हैं। और बूढ़े भी कुछ जानकर दे रहे हैं, ऐसा नहीं है। जैसे जवानी में नशा होता है राग का, वैसे बुढ़ापे में नशा होता है वैराग्य का। न तो जवानी के राग में कोई समझ है, न बुढ़ापे के वैराग्य में कोई समझ है। जैसे जवानी में आदमी अंधा होता है, वैसे बुढ़ापे में भी अंधा होता है। बुढ़ापे का अंधापन बुढ़ापे का है, जवानी का अंधापन जवानी का है।
बूढ़े जवानों की निंदा किए चले जाते हैं। कभी उन्होंने मन में सोचा, कि
जब तुम जवान थे, तुम्हारे बूढ़ों ने भी ऐसा ही किया था; तुमने सुना था? अगर तुम इतना भी न समझ पाए कि तुम्हारे बूढ़ों की तुमने नहीं सुनी, तुम्हारे जवान बेटे तुम्हारी कैसे सुन लेंगे, तो तुम कुछ भी नहीं समझ पाए। तो तुम बूढ़े... धूप में बाल पक गए होंगे तुम्हारे, सुपरिचित नहीं हो।
जो ब.ूढा सुपरिचित है, वह युवकों से कहेगा, ठीक से भोगना; जागकर भोगना; होश से भोगना। वह यह नहीं कहेगा कि भोग छोड़ना। वह कहेगा, जब भोगने के दिन हैं तो खूब होश से भोग लेना। कहीं ऐसा न हो कि भोगने के दिन निकल जाएं और भोग की आकांक्षा भीतर शेष रह जाए तो बड़ी झंझट पैदा होती है। पैरों में चलने की सामर्थ्य नहीं रह जाती और मन में दूर पहाड़ चढ़ने की कल्पना और सपने

रह जाते हैं। तब बड़ी दुविधा पैदा होती है। इसी दुविधा के कारण बूढ़े निंदा करते हैं। उनकी निंदा में अगर गौर करो, तो ईर्ष्या पाओगे। बूढ़ा जब निंदा करता है जवान की, तो वह सिर्फ ईर्ष्या कर रहा है।
डी. एच. लारेन्स ने कहीं लिखा है कि जब मैं छोटे बच्चों को वृक्षों पर चढ़ा देखता हूं तो तत्क्षण मेरे मन में होता है, उतरो! गिर पड़ोगे! लेकिन तब मैंने बार-बार यह कहकर सोचा कि मामला क्या है? मैं अपने भीतर खोजूं तो! तो मुझे पता चला कि छोटे बच्चों को वृक्ष पर चढ़ते देखकर मुझे ईर्ष्या होती है। मैं नहीं चढ़ पाता अब। उम्र न रही। अब हाथ-पैर में वैसी लोच न रही, न वैसा साहस रहा; न खतरा मोले लेने का वैसा निर्बोध चित्त रहा। तो कहता तो हूं कि "उतरो, गिर पड़ोगे," लेकिन भीतर कहीं कोई ईर्ष्या पंख फड़फड़ाती है, कि मैं नहीं चढ़ पाता अब। जब मैं नहीं चढ़ पाता तो कोई भी न चढ़े।
बूढ़ों की निंदा में तुम अकसर पाओगे, जो वे नहीं कर पाते हैं, कोई भी न करे। इन्हीं से बच्चे शिक्षित होते हैं। और बच्चे उन चीजों को छोड़ने का विचार करने लगते हैं, जिनका अभी अनुभव ही नहीं हुआ है। गैर-अनुभव से छोड़ी गई कोई भी बात लौट-लौटकर आ जाएगी; फिर-फिर तुम्हें पकड़ेगी; फिर-फिर तुम्हें सताएगी।
महावीर के इस सूत्र को खूब हृदय में हीरे की तरह सम्हालकर रख लेना--
"जो संसार के स्वरूप से सुपरिचित हैं, निस्संग, निर्भय और आशारहित हैं... ।"
जो ठीक से परिचित हुआ संसार से, जिसने सब कडुवे-मीठे अनुभव लिए, जो डरा नहीं, जो निस्संकोच उतर गया अंधेरों में, जो गड्ढों में भी गिरा और भयभीत न हुआ, जिसने सारे जीवन के अनुभव लेने की ठानी कि परिचित तो हो लूं! इस जीवन में आया हूं, ठीक से जान तो लूं, कि क्या है? जिसने उधार वचन न सीखे, और उधार सिद्धांतों का बोझ न ढोया; और शास्त्रों से न जीया, जीवन के शास्त्र को ही शिक्षा देने का जिसने मौका और अवसर दिया, वह अपने आप निस्संग हो जाएगा। निस्संगता का अर्थ है, जीवन को ठीक से पहचानोगे तो तुम पाओगे, तुम अकेले हो। साथ होना धोखा है। हम सब अकेले हैं। अकेले के कारण डर लगता, भय होता, असुरक्षा मालूम होती; तो हमने संग-साथ बना लिया है। लेकिन संग-साथ मान्यता भर है। तुम मरोगे, अकेले जाओगे। तुम आए अकेले, जाओगे अकेले। थोड़ी देर को अपरिचित लोगों से... और ध्यान रखना, जब मैं अपरिचित कह रहा हूं तो मेरा मतलब यह नहीं है जिसे तुम नहीं जानते। जिसे तुम सोचते हो कि तुम जानते हो, वह भी तो अपरिचित है।
तुम्हारी पत्नी परिचित है? एक दिन एक अपरिचित स्त्री के साथ सात चक्कर लगा लिए थे, परिचय हो गया? तुम्हारा बेटा तुमसे परिचित है? एक दिन एक अनजान आत्मा तुम्हारे घर में पैदा हो गई थी। सिर्फ तुम्हारे गर्भ से पैदा हुआ, तो परिचित है? तुमने उसके अवतरण में थोड़ा साथ-सहयोग दिया, तो परिचित है?
खलील जिब्रान ने कहा है, तुम्हारे बच्चे तुम्हारे नहीं हैं। तुमसे आते हैं जरूर। तुम माध्यम हो। लेकिन दावा मत करना कि हमारे बच्चे हमारे हैं। तुम उन्हें प्रेम तो देना, ज्ञान मत देना। क्योंकि वे कल में जीयेंगे। वे भविष्य में जीयेंगे। उस भविष्य का तुम्हें सपना भी नहीं आ सकता। तुम्हारा ज्ञान अतीत का है। वे भविष्य में जीयेंगे। तुम अपना प्रेम देना, अपना ज्ञान मत देना। और दावा मत करना कि बच्चे हमारे हैं।
एक आदिम जाति है--होपी। अकेली होपी भाषा ऐसी भाषा है, जो इस संबंध में
सच के करीब पहुंचती है। तुम अपने बेटे को लेकर कहीं जाते हो, कोई पूछता है "कौन है?" तुम कहते हो, "मेरा बेटा," या "मेरी बेटी।" होपी भाषा में ऐसा कोई शब्द नहीं है, अगर होपी बाप अपने बेटे को लेकर कहीं जा रहा है और कोई पूछता है, यह कौन है, तो वह कहता है, यह लड़का है, जिसके साथ हम रहते हैं। यह लड़का है, जो हमारे घर पैदा हुआ है। पता नहीं कौन है!
यह बात ज्यादा समझ में आने जैसी लगती है--यह लड़का हमारे साथ रहता है,
हम इस लड़के के साथ रहते हैं। संयोग है। यह हमारे घर में पैदा हुआ है; वैसे हम जानते नहीं कौन है!

कौन जानता है? कभी अपने छोटे बच्चे की आंखों में झांककर देखा--जानते हो? इससे ज्यादा अजनबी आंखें और कहां पाओगे? कोई उपाय नहीं है। अपने को नहीं जानते, दूसरे को हम जानेंगे कैसे?
और एक बात तय है कि अकेले हम आते हैं, अकेले हम जाते हैं, और बीच में यह
जो दो दिन का मेला है, इसमें हम बड़े संबंध बना लेते हैं। राह पर चलते लोगों के हाथ में हाथ डाल लेते हैं। कोई पत्नी हो जाती है, कोई पति हो जाता है। कोई मित्र हो जाता है, कोई शत्रु हो जाता है। हम जल्दी से संबंध जोड़ लेते हैं, ताकि अकेलापन छिप जाए। हम संबंध की चादर फैला देते हैं ताकि अकेलापन भीतर छिप जाए। हम अकेले होने से डरे हैं, भयभीत हैं। कोई तो अपना हो इस अजनबी दुनिया में! दो-चार को अपना बनाकर थोड़ा भरोसा आता है। कोई फिक्र नहीं, कोई तो अपना है! किसी से तो नाता है!
जिस व्यक्ति ने भी जीवन को गौर से देखा, वह यह पाएगा कि हम निस्संग हैं। और जब निस्संग हैं तो नाते-रिश्तों के धोखे में पड़ने का कोई कारण नहीं।
इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम सब नाते-रिश्ते तोड़कर आज भाग जाओ। भागने
का तो ख्याल उसी को आता है, जिसको समझ नहीं आई। मां मां रहेगी, पिता पिता रहेगा, बेटा बेटा रहेगा; लेकिन भीतर अब तुम जानते हो, जागकर जानते हो कि कोई, कोई का नहीं। कोई अपना नहीं। खेल के नियम हैं।
जैसे ताश खेलते हैं, तो ताश के पत्तों में रानी होती है, राजा होता है, गुलाम होता और सब कुछ होता है; लेकिन कोई हम मानते थोड़े ही, कि राजा-रानी हैं! जानते हैं कि ताश का पत्ता है, खेल है। अगर कोई आदमी ताश के पत्तों में एकदम उठकर खड़ा हो जाए और कहे, कि यह सब धोखा है, मैं तो त्याग करता हूं यह राजा-रानियों का। तुम्हें हंसी आएगी। क्योंकि त्याग करने का ख्याल तो तभी सार्थक हो सकता है, जब राजा-रानी सच्चे हों। तुम कहोगे पागल हुए हो? है ही कौन, जिसको तुम त्याग कर रहे हो? ये राजा-रानी तो कागज पर बने चिह्न हैं। यह तो हमारी मान्यता है। त्याग तो तब हो सकता है, जब हो।
तो जब कोई आदमी कहता है, मैं पत्नी को छोड़कर जंगल जा रहा हूं, तो चूक गया। पत्नी को छोड़कर जंगल जाने की क्या जरूरत थी? पत्नी जब तुम्हारे बिल्कुल पास बैठी है, हाथ में हाथ डाले बैठी है, तब भी तुम अकेले हो, यह जानना है। पत्नी अकेली है, यह जानना है। बेटा जब तुम्हारी गोद में खेल रहा है, तब भी जानना है कि तुम अकेले हो, बेटा अकेला है।
संबंध ताश के पत्तों का खेल है; संयोग मात्र है। नदी-नाव संयोग! थोड़ी देर को मिलना हो गया है। इन थोड़े क्षणों में इस तरह जीओ कि तुम्हारे कारण किसी को व्यर्थ दुख न पहुंचे; बस काफी है। थोड़ी देर राह पर साथ हो लिए हैं, गीत गुनगुना लो, ठीक! कुछ देते बने, दे दो; ठीक! लेकिन इस भ्रांति में मत पड़ना कि यह सदा संबंध रहनेवाला है--निस्संग!
और जिसको यह पता चला कि मैं निस्संग हूं, वह निर्भय हो जाता है। मूल भित्ति है, जीवन से जो सुपरिचित होता है, वह निस्संग हो जाता है। जीवन को देखोगे तो दिखाई ही पड़ जाएगा अकेला हूं; बिल्कुल अकेला हूं। जन्मों- जन्मों से अनंत की यात्रा पर अकेला हूं।
और जब अकेला हूं, और साथ-संगी होने का कोई उपाय ही नहीं है तो भय कैसा?
जब अकेला ही हूं और अकेला ही रहा हूं और अकेला ही रहूंगा तो अब भय भी क्या करना! जब कोई आदमी तथ्यों को देख लेता है, तथ्य स्वीकार हो जाते हैं।
अकसर ऐसा होता है कि युद्ध के मैदान पर जब सैनिक जाते हैं, तो बहुत डरे रहते हैं--जाने के पहले डरे रहते हैं; बड़े घबड़ाए रहते हैं, मौत की तरफ जा रहे हैं। पता नहीं लौटेंगे, नहीं लौटेंगे! लेकिन जैसे ही युद्ध के मैदान पर पहुंच जाते हैं, भय समाप्त हो जाता है। फिर गोलियां चलती रहती हैं और बम गिरते हैं और वे ताश भी खेलते रहते हैं, गपशप भी करते हैं, हंसते भी हैं, गुनगुनाते भी हैं, भोजन भी करते हैं--सब चलता है।
एक दफा युद्ध के मैदान पर पहुंच गए, एक बात स्वीकृत हो जाती है कि ठीक है, मौत है। जो है, है। उससे बचने का क्या है? भागने का कहां है?
जैसे ही हम तथ्यों के साथ आंख मिलाना सीख जाते हैं, एक अभय पैदा होता
है कि जो है, है। मौत है तो है, करोगे क्या? जाओगे कहां? भागोगे कहां? फिर

युद्ध के क्षेत्र से तो भागना संभव भी है। युद्ध के क्षेत्र में तो बचने का कोई उपाय हो भी सकता है, लेकिन जीवन के क्षेत्र में कहां भागोगे?
यहां तो मौत सुनिश्चित ही है। कहीं भी जाओ, कैसे भी बचो, कहीं भी छिपो, मौत तुम्हें खोज ही लेगी। तो जब होना ही है तो स्वीकार हो जाता है। "निस्संग, निर्भय और आशारहित... ।"
यह आशारहित शब्द को बहुत ख्याल से समझने की जरूरत है। जीवन में हम कामना से भी ज्यादा आशा से बंधे हैं। साधु-संत तुम्हें कहते हैं, वासना छोड़ो, यह नहीं कहते कि आशा छोड़ो। क्योंकि अगर आशा छोड़ो तो साधु-संत भी आशा ही के सहारे जी रहे हैं--स्वर्ग की आशा, मोक्ष की आशा, इस संसार में नहीं मिला तो परलोक में मिलेगा सुख, इसकी आशा।
महावीर की बात कुछ और है। महावीर कह रहे हैं, आशा जानी चाहिए। आशारहितता जब तक न हो जाए, तब तक मुक्ति नहीं है।
आशा वासना का सूक्ष्मतम रूप है। आशा का अर्थ है, जो आज नहीं हुआ, कल होगा। जो आज नहीं हो पाया, कल कर लेंगे। आज चूक गए, कल न भूलेंगे, कल न चूकेंगे। आशा का अर्थ है, जीवन को कल पर टालने की सुविधा।
रोज-रोज हारते हैं, लेकिन कल की आशा बचाए रखते हैं!
बहुत घुटन है, कोई सूरते-बयां निकले,
अगर सदा न उठे, कम से कम फुगां निकले!
फकीरे-सहर के तन पर लिबास बाकी है,
अमीरे-सहर के अरमां अभी कहां निकले!
हकीकतें हैं सलामत तो ख्वाब बहुतेरे
मलाल क्यों हो जो कुछ ख्वाब रायगां निकले!
--कुछ सपने अगर झूठे निकल गए तो इतना दुखी होने की क्या जरूरत?
हकीकतें हैं सलामत तो ख्वाब बहुतेरे
और अभी संसार तो बना है; तो और सपने बना लेंगे
मलाल क्यों हो जो कुछ ख्वाब रायगां निकले!
--कुछ ख्वाब झूठे निकल गए, कुछ सपने सच न सिद्ध हुए तो इसमें दुखी होने
की क्या बात है?
आदमी हारता है एक में, तो लोग उसे आश्वासन देते हैं, क्या घबड़ाते हो?
एक बार आदमी हार जाता है, दूसरी बार जीत जाता है। दूसरी बार हार जाता है, तीसरी बार जीत जाता है। चले चलो! जीतोगे।
हालांकि इस संसार में कोई अब तक जीता नहीं। यहां सभी हारे हैं। जीत यहां संभव नहीं है। हार यहां स्वभाव है। लेकिन आशा कहे चली जाती है, आज हार गए, ठीक से संघर्ष न कर पाए, विधि-विधान न जुटा पाए, अब समझदार भी हो गए ज्यादा, अनुभव भी हो गया, कल जीत लेंगे।
ऐसे जो कभी नहीं घटता, कभी नहीं घटेगा, उसकी आशा में हम जीये चले जाते हैं। और हाथ से रोज-रोज जीवन चुकता जाता है। इधर जीवन राख हुआ जा रहा है, उधर आशा सुलगती रहती है, सुलगाए रखती है। हम दौड़े रहते हैं।
वासना से भी ज्यादा खतरनाक पकड़ है आशा की। क्योंकि ऐसा तो दिखाई पड़ता
है कि बहुत से लोग वासना से ऊब जाते हैं, मगर आशा से नहीं ऊबते। इधर वासना से ऊबते हैं, तो भागते हैं संसार छोड़कर; लेकिन संन्यास में भी आशा को तो जलाए ही रखते हैं कि जो संसार में नहीं मिला, वह संन्यास में मिल जाएगा। महावीर की दृष्टि में संन्यास घटता है, जब तुम आशारहित हो गए। जब तुमने यह स्वीकार कर लिया कि कुछ होता ही नहीं, होनेवाला नहीं है। सब आशाएं व्यर्थ हैं, धोखा हैं, प्रवंचना हैं, मृग-मरीचिका हैं।
तुम तो घबड़ाओगे। तुम कहोगे, अगर ऐसा आदमी आशारहित हो जाए, हताश हो जाए, निराश हो जाए तो जीयेगा कैसे? चलेगा कैसे? उठेगा कैसे? सुबह बिस्तर से बाहर कैसे निकलेगा? अगर कुछ भी नहीं होना है तो बिस्तर से बाहर निकलने का भी क्या प्रयोजन?
हम डरते हैं। हम डरते हैं कि ऐसा आदमी अगर निराश हो गया तो फिर जीना असंभव है; श्वास लेना असंभव है। लेकिन हमें पता नहीं है। निराश भी हम तभी तक होते हैं, जब तक आशा है। जब आशा बिल्कुल विदा हो जाती है तो निराश भी होने को कुछ नहीं बचता। इसे समझना।

निराशा आशा की असफलता है।
निराशा आशा का अभाव नहीं है, निराशा आशा की असफलता है। जिस आदमी ने आशा छोड़ दी, उसी के साथ निराशा भी छूट गई। अब निराश होने को भी कुछ न बचा। जब आशा ही न बची तो निराश होने का क्या बचा? जब जीत का कोई ख्याल ही न रहा तो हारोगे कैसे?
इसलिए लाओत्से कहता है, मुझे कोई हरा नहीं सकता। क्योंकि मैं जानता हूं, जीत होती ही नहीं। और मैं जीत की कोई आकांक्षा नहीं करता हूं। मुझे कोई हरा नहीं सकता।
कैसे हराओगे उस आदमी को, जो जीतने के लिए आतुर ही नहीं है? जिसने जीतने
की व्यर्थता को समझ लिया, उसे तुम कैसे हराओगे?
हार और जीत एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
आशा-निराशा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
सुख-दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
स्वर्ग-नर्क एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
तुम दुख से बचना चाहते हो, सुख पाना चाहते हो; मिलता तो दुख ही है। तुम निराशा से बचना चाहते हो, आशा को उकसाए रखते हो; मिलती तो निराशा ही है।
महावीर कहते हैं, आशारहित हो जाओ; आशा से शुद्ध हो जाओ। आशा को छोड़ दो।
आशा के छोड़ते ही एक क्रांति घटती है। वह क्रांति है, भविष्य का विसर्जित हो जाना। वह क्रांति है, भविष्य का समाप्त हो जाना। निराशा नहीं आती, भविष्य विदा हो जाता है। और भविष्य के विदा होते ही तुम्हारी ऊर्जा यहीं और अभी ठहर जाती है।
वही ध्यान का पहला चरण है--ऊर्जा यहां, अभी ठहर जाए। कल में न भटकती फिरे, कल में तलाश न करे। आज और यहीं और इसी क्षण तुम्हारा सारा अस्तित्व संगठित हो जाए।
अभी तुम बिखरे-बिखरे हो। कुछ अतीत में पड़ा है, जो अब रहा नहीं; कुछ वहां उलझा है... कुछ क्या, काफी उलझा है। नब्बे प्रतिशत आदमी अतीत में उलझा है। किसी ने गाली दी थी बीस साल पहले, अभी भी वहां उलझाव बना है। तीस साल पहले कोई मित्र चल बसा था दुनिया से, अभी भी एक घाव बना है। पंद्रह साल पहले कोई हार हो गई थी, अभी तक उसकी तिक्तता जीभ पर बनी है। अभी तक छूटती नहीं है। अभी तक बार-बार याद आ जाती है।
नब्बे प्रतिशत आदमी वहां उलझा है, जो है नहीं; और जो दस प्रतिशत है वह वहां उलझा है, जो अभी आया नहीं। ऐसे हम शून्य में जीते हैं।
यही ठीक अर्थ है माया में जीने का। माया का अर्थ है, उसमें जीना, जो नहीं है--अतीत; और उसमें जीना, जो अभी आया नहीं है--भविष्य।
और ब्रह्म में जीने का अर्थ है अभी जीना, यहीं जीना, सौ प्रतिशत इसी क्षण में इकट्ठे हो जाना। सारी प्राण-ऊर्जा इसी क्षण में आकर इकट्ठी हो जाए, केंद्रित हो जाए, संगठित हो जाए, एकाग्र हो जाए। तो उस ऊर्जा की एकाग्रता में ही हमारा पहला संबंध, पहला साक्षात्कार सत्य से होता है। इसलिए महावीर कहते हैं, आशारहितता।
हम अपने को धोखा दिए चले जाते हैं। हम कहते हैं, कल अच्छा हो सकेगा। मनुष्य की बड़ी से बड़ी जो भ्रांति की कला है, वह यह है कि कल थोड़ा सुधार हो जाएगा। आज दुकान ठीक नहीं चल रही है, कल चलेगी। आज ग्राहक नहीं आए, कल आएंगे। आज सम्मान नहीं मिला, कोई कारण नहीं है, कल क्यों न मिलेगा। थोड़ी और कोशिश करें।
प्रत्येक नया दिन नई नाव ले आता है,
लेकिन समुद्र है वही, सिंधु का तीर वही
प्रत्येक नया दिन नया घाव दे जाता है,
लेकिन पीड़ा है वही, नैन का नीर वही
कुछ बदलता नहीं। पीछे लौटकर देखो! रेगिस्तान की तरह... रिक्त है जीवन। अपने अतीत को देखो, वहां कुछ भी नहीं है। न होने का कारण ही जो-जो तुम अतीत में चूक गए हो, वह तुम भविष्य में रख लिए हो। जो तुम्हें पीछे नहीं मिल सका, उसे तुमने आगे सरका लिया है। जो तुम सत्य में नहीं पा सके, उसका सपना देख रहे हो।

जब महावीर कहते हैं, कि "आशारहितता", तो उनका अर्थ यह हैः सत्य यहां है, इस क्षण! तुम इस क्षण से और कहीं न भटको। तुम इस क्षण में लौट आओ। इस क्षण में होगा मिलन। इस क्षण में घटेगी वह क्रांति, जिसको समाधि कहें, सम्यक ज्ञान कहें या कोई और नाम देना हो तो और नाम दें।
इस क्षण से द्वार खुलता है अस्तित्व में। यह क्षण द्वार है। केवल वर्तमान सच है, शेष सब झूठ है। जो बीत गया, बीत गया, अब नहीं है। जो नहीं आया, अभी नहीं आया है। जो बीत गया वह कभी सच था, जब वह वर्तमान था। और जो नहीं आया है, वह कभी सच होगा लेकिन तभी जब वर्तमान बनेगा।
तो एक बात तय है कि केवल वर्तमान के अतिरिक्त और कुछ भी सच नहीं होता।
तो तुम वर्तमान में होने की कला सीख जाओ, तो सत्य के साथ हो जाओगे। सत्य से सत्संग जुड़ेगा।
और वह पल जो गया, सो गया ही
जो नया आए, रहे वह नया ही
यह नहीं होगा, नया भी जाएगा
और हर क्षण नया ही क्षण आएगा
फिर क्षणिक क्या? खंड क्या है, छिन्न क्या? आज, कल अत्यंत और अभिन्न क्या?
सब सनातन, सिद्ध और समग्र है
सब अचिंत्य, अनादि और अव्यग्र है
और वह पल जो गया सो गया ही
जो नया आए, रहे वह नया ही
इसे थोड़ा सोचना।
तुम्हारी आशा के कारण नया भी नया नहीं हो पाता। तुम जो-जो योजना बना लेते हो, उसके कारण नए को भी जूठा कर देते हो, पुराना कर देते हो, आने के पहले ही खराब कर देते हो। तुम्हारी अपेक्षा नए पर पहले से ही छाया डाल देती है।
तुम कुछ मानकर चल रहे हो, यह होगा; अगर हुआ तो भी मजा नहीं आता। क्योंकि इसको तो तुम बहुत बार सपने में देख चुके थे; बहुत बार सोच चुके थे, वही हुआ। होने के पहले ही पुराना पड़ गया।
अगर न हुआ तो दुखी होओगे कि नहीं हुआ; अगर हुआ तो सुखी न होओगे। आदमी
का गणित बड़ा अजीब है।
तुमने ख्याल किया, जिससे अपेक्षा हो उससे सुख नहीं मिलता। राह तुम चल रहे हो, तुम्हारा रूमाल गिर जाए और एक अजनबी आदमी उठाकर रूमाल दे दे तो तुम धन्यवाद देते हो; क्योंकि अपेक्षा नहीं थी। तुम प्रसन्न होते हो कि भला आदमी है। लेकिन तुम्हारी पत्नी ही रूमाल उठाकर दे दे, तो तुम धन्यवाद भी नहीं देते! हां, अगर उठाकर न दे तो नाराज होओगे कि तुमने उठाकर दिया क्यों नहीं? उठाकर दे, तो प्रसन्न नहीं होते; न धन्यवाद, न अनुग्रह। न दे तो नाराज होते हो।
जिससे अपेक्षा होती है, उससे हम दुख पाते हैं, सुख नहीं पाते। अगर पूरा हो जाए तो होना ही चाहिए था; इसलिए सुख का कोई कारण नहीं है। पत्नी ने रूमाल उठाकर दिया--देना ही चाहिए था; उसका कर्तव्य ही था। इसमें बात क्या हो गई धन्यवाद की? अगर न दिया तो कर्तव्य का पालन नहीं हुआ।
अगर बेटा बाप को सम्मान दे तो कोई सुख नहीं मिलता; न दे सम्मान तो दुख मिलता है। यह बड़ी हैरानी की बात है। फिर तुम कहते हो, हम दुखी क्यों हैं? अगर तुमने धंधा किया और दस हजार रुपये मिलने की आशा थी, मिल गए तो कोई खास सुख नहीं होता--मिलने ही थे। निश्चित ही था। मिलने के पहले ही तुम योजना बना चुके थे कि मिलेंगे। इतना ही नहीं, मिलने के बाद क्या-क्या करोगे उस सबकी भी योजना बना चुके थे। तो जब मिलते हैं, तब चौंकाते नहीं तुम्हें। विस्मय से नहीं भरते, आनंद-विभोर नहीं करते। अगर न मिले तो तुम दुखी जरूर हो जाते हो।
कलकत्ते में मेरे एक मित्र हैं, उनके घर मैं कभी-कभी रुकता था। एक बार मुझे लेकर एअरपोर्ट से वे घर जा रहे थे, उदास थे; तो मैंने पूछा कि क्या मामला है? वे बोले कि बड़ा नुकसान लग गया, कोई पांच लाख का नुकसान लग गया।

उनकी पत्नी भी पीछे थी कार में, वह हंसने लगी। उसने मुझसे कहा, आप इनकी बातों में मत पड़ना। मैंने कहा, वे उदास हैं और तू हंस रही है; बात क्या है? तो उसने कहा, मामला ऐसा है कि नुकसान हुआ नहीं, पांच लाख का लाभ हुआ है। लेकिन दस लाख का होना चाहिए था, इसलिए ये दुखी हैं। इनको मैं लाख समझा रही हूं कि तुम्हें पांच लाख का लाभ हुआ। मगर ये कहते हैं, वह कोई सवाल ही नहीं है, दस का होना निश्चित ही था। पांच का नुकसान हो गया।
अब जिसको दस लाख का लाभ होना है, उसे पांच लाख का भी लाभ हो तो प्रसन्नता कैसे हो? क्योंकि प्रसन्नता तो तुम्हारी अपेक्षा पर निर्भर होती है।
तुम ख्याल करना, अगर तुम अपेक्षाशून्य हो जाओ तो तुम्हारे जीवन में आनंद की वर्षा हो जाएगी। अगर तुम्हारी कोई आशा न रह जाए तो तुम पाओगे, प्रतिपल स्वर्ग के फूल खिलने लगे। जिसकी कोई आशा नहीं है उसे तो सांस चलना भी बड़े आनंद की घटना मालूम पड़ती है। जिंदा हूं, यह भी बहुत है। यह भी कोई जरूरी तो नहीं है कि होना चाहिए। इसकी भी कोई ऐसी अनिवार्यता तो नहीं है। यह जगत मुझे जिलाए ही रखे, इसकी क्या अनिवार्यता है? मेरे दीये को बुझा दे तो शिकायत कहां करूंगा? अपील की कोई कोर्ट भी तो नहीं है। मेरा दीया जल रहा है, यह भी धन्यभाग है।
जिस व्यक्ति के जीवन में आशा नहीं है, होना मात्र भी परम आनंद है। छोटी-छोटी चीजें आनंद की हो जाती हैं। हवाओं का वृक्षों से गुनगुनाते हुए गुजर जाना! वृक्षों में नई कोपलों का फूट आना! सुबह पक्षियों की चहचहाहट! रात आकाश का तारों से भर जाना! राह पर किसी आदमी का नमस्कार कर लेना, किसी बच्चे का मुस्कुरा देना, किसी का प्रेम से हाथ हाथ में ले लेना--सभी कुछ अपूर्व है।
लेकिन आशारहित व्यक्ति हो तो प्रतिक्षण सोने का है; प्रतिक्षण में सुगंध है, प्रतिक्षण में स्वर्ग है।
महावीर कहते हैं, "संसार से जो सुपरिचित, निस्संग, निर्भय और आशारहित है, उसी का मन वीतरागता को उपलब्ध होता है; और वही ध्यान में सुनिश्चल, भलीभांति स्थित होता है।"
ध्यान की स्थिरता का अर्थ है, वर्तमान के क्षण से यहां-वहां न जाना; जरा भी डांवांडोल न होना। जो है, उसके साथ पूरी समरसता से जीना। जो है, उससे अन्यथा की न मांग है, न चाह है, न आशा है। जो है, वैसा ही होना चाहिए। ऐसा ही भाव है। जो है, वह वैसा है ही जैसा होना चाहिए था। न कोई विरोध है, न कोई निंदा है, न कोई आलोचना है।
तथ्य की इस स्वीकृति का नाम तथाता है। और जो ऐसी तथाता को उपलब्ध हुआ, उसको महावीर और बुद्ध दोनों ने तथागत कहा है। तथागत बुद्ध और महावीर का विशिष्ट शब्द है। उसका अर्थ होता है, तथाता को उपलब्ध; तथ्य की स्वीकृति को पूर्णता से उपलब्ध है। जो है, है; जो नहीं है, नहीं है। और इसमें मेरा कोई चुनाव नहीं है। मैं राजी हूं। जो है, उसके होने से राजी हूं। जो नहीं है, उसके नहीं होने से राजी हूं। अन्यथा की कोई चाह नहीं है। तथ्य का पूरा स्वागत है। ऐसा व्यक्ति ही ध्यान को स्थित होता है।
आमतौर से तो हम रोते ही रहते हैं। लोगों की आंखें देखो, तुम उन्हें सदा आंसुओं से भरी पाओगे। हजार शिकायतें हैं। शिकायतें ही शिकायतें हैं। सारा अतीत व्यर्थ गया, वर्तमान व्यर्थ जा रहा है, भविष्य की आशा पर टंगे हैं। बड़ा पतला धागा है, जिससे तलवार लटकी है। वह भी होगा इसका पक्का भरोसा था.ेडे ही है! सिर्फ आशा है, भरोसा नहीं है।
भरोसा हो भी कैसे सकता है? आशा तो पहले भी की थी, हर बार टूट गई। आशा- आशा करके तो अब तक गंवाया; मिला कुछ भी नहीं। लेकिन बिना आशा के जीयें भी कैसे? तो फिर आगे के लिए सरका लेते हैं। पीछे के लिए रोते रहते हैं, आगे के लिए रोते रहते हैं। और बीच के क्षण में परमात्मा तुम्हारे द्वार पर दस्तक देता रहता है। परमात्मा कहता है, यहां, इसी क्षण! खोलो आंखें! देखो, मैं मौजूद हूं!
लेकिन हमें फुर्सत कहां? वर्तमान का छोटा-सा क्षण, बड़ा छोटा है-- आणविक, हमारी चिंताओं में अतीत और भविष्य की, कहीं खो जाता है।

कभी सोचना बैठकर--
आओ कि आज गौर करें इस सवाल पर
देखे थे हमने जो वह हंसी ख्वाब, क्या हुए?
पहले भी तुम ख्वाब देखते रहे थे; उनका क्या हुआ? अब फिर ख्वाब देख रहे हो। जो उनका हुआ, वही इनका भी होगा। मरते वक्त रोओगे कि ख्वाब में ही गंवाया। आशा में ही बंधे-बंधे नष्ट हुए।
ख्वाब छोड़ो। ये स्वप्नीली आंखों पर थोड़ा पानी छिड़को होश का। थोड़ा झकझोरो अपने को, जगाओ। और इस क्षण में लौट आओ। पकड़-पकड़कर... ।
पहले तो बड़ी कठिनाई होगी। क्योंकि मन की पुरानी आदतें हैं, वह खिसक-खिसक जाता है। तुमने इधर से पकड़ा, वह दूसरी गली से निकल गया। पीछे गया, आगे गया, यहीं भर नहीं आता। लेकिन तुम कोशिश करते रहो, कोशिश करते रहो, कभी अगर क्षणभर को भी यहां रुक जाएगा, तो स्वाद की शुरुआत हो जाएगी--सत्य का स्वाद! फिर स्वाद पकड़ लेता है। फिर उस स्वाद के कारण मन ज्यादा-ज्यादा रुकने लगता है।
"ध्यान-योगी अपने आत्मा को शरीर तथा समस्त बाह्य संयोगों से भिन्न देखता है। अर्थात देह तथा उपाधि का सर्वथा त्याग करके निस्संग हो जाता है।"
जिसने यह जाना कि कोई मेरा नहीं है, कोई मित्र नहीं, कोई प्रियजन नहीं; जिसने यह समझा कि मैं अकेला हूं, उसे जल्दी ही एक और नई समझ आएगी। और वह समझ होगी कि मैं शरीर नहीं हूं। क्योंकि दूसरों के साथ हम जो संबंध जोड़े हैं, वह शरीर से जोड़े हैं। जब दूसरों से संबंध टूट जाता है तो शरीर से संबंध शिथिल होने लगता है। जो आदमी दा.ैडता है, उसके पैर मजबूत रहते हैं। जब वह घर बैठ जाता है, दौड़ना बंद कर देता है, पैर अपने आप कमजोर हो जाते हैं। अगर वह वर्षों तक बैठा ही रहे तो फिर चल ही न पाएगा।
जब तुम्हारा मन शरीर के माध्यम से दूसरों से बहुत संबंध बनाता है, हजार तरह के नाते जोड़ता है तो शरीर मजबूत रहता है। शरीर की पकड़ गहरी रहती है, आसक्ति भारी रहती है। क्योंकि उसी के द्वारा... वही तो सेतु है दूसरे तक पहुंचने का।
लेकिन जब दूसरों से संबंध धीरे-धीरे छोड़ देते हो, भीतर जान लेते हो, जाग जाते हो कि कोई अपना नहीं, तो यह शरीर की दौड़ बंद हो जाती है। इस दौड़ के बंद होते ही धीरे-धीरे शरीर के साथ तुम्हारी जो आंतरिक आसक्ति है, वह क्षीण हो जाती है। जब कोई अपना नहीं है तो एक दिन पता चलता है कि शरीर भी अपना नहीं है। मैं शरीर नहीं हूं, यह बोध गहन होता है।
और जब यह बोध गहन होता है, तब एक और नई क्रांति घटती है कि मैं मन भी नहीं हूं। जैसे शरीर जोड़ता है दूसरों से, ऐसा मन जोड़ता है शरीर से। जैसे- जैसे तुम पीछे हटते जाते हो, सेतु टूटते जाते हैं।
शरीर जोड़ता है संसार से, पर से। पर से संबंध गिरा, शरीर का संबंध शिथिल हुआ। शरीर का पता चला कि शरीर मुझसे अलग है, मैं देह नहीं, तो मन जोड़ता है शरीर से। अब मन के भी जोड़ने का कोई कारण न रहा। मैं शरीर नहीं हूं तो मन का जोड़ भी उखड़ा।
और जैसे ही जोड़ उखड़ा कि आखिरी क्रांति घटती है। पता चलता है कि मैं मन
भी नहीं हूं; उसके पार जो शेष है, वही हूं। वही हूं।
उससे संबंध कभी नहीं छूटता। वही है शाश्वत आत्मा। वही है तुम्हारे भीतर सनातन। वही है नित्य। वही है अमृतधर्मा।
शरीर मरता है; इसलिए शरीर के साथ जुड़े तो भय रहेगा। मन बदलता है; मन के साथ जुड़े तो जीवन में कभी थिरता न होगी।
शरीर और मन के पार जो छिपा है--साक्षी, चैतन्य--उससे जुड़े तो फिर सब शाश्वत है, सब थिर है। फिर कोई परिवर्तन की लहर नहीं आती। फिर तुम उस अनंत गृह में पहुंचे, जहां से निकलने का कोई कारण नहीं। जहां तुम सदा के लिए विश्राम कर सकते हो। जहां विराम है--चिंताओं से, विचारों से, अशांतियों से, तनावों से। तुम अपने घर वापिस आए।
"ध्यान-योगी अपने शरीर को तथा समस्त बाह्य संयोगों को भिन्न देखता है। देह तथा उपाधि का सर्वथा त्याग करके निस्संग हो जाता है।"

"वही श्रमण आत्मा का ध्याता है, जो ध्यान में चिंतवन करता है कि मैं न
पर का हूं, न पर पदार्थ या भाव मेरे हैं। मैं तो एक शुद्ध-बुद्ध ज्ञानमय चैतन्य हूं।"
"चिंतवन"--जैनों का अपना शब्द है। इसे तुम चिंतन से एक मत समझ लेना। चिंतन से भिन्न करने के लिए ही इस शब्द को गढ़ा गया है--चिंतवन। चिंतन का अर्थ होता है, सोचना, और चिंतवन का अर्थ होता है देखना।
तुम ऐसा बैठकर सोच सकते हो कि मैं शुद्ध-बुद्ध परमात्मा हूं; इससे कुछ लाभ न होगा। यह तो मन में ही उठी तरंग है। यह तो मन ही दोहरा रहा है। नहीं, ऐसा सोचना नहीं है, ऐसा देखना है। ऐसा विचार में नहीं, भीतर दोहराना है। ऐसा भीतर अनुभव में लाना है। ऐसा स्पष्ट दिखाई पड़े कि मैं शुद्ध-बुद्ध परमात्मा हूं। इसमें जरा भी शंका और शल्य न रहे। इसमें जरा भी संदेह की छाया न पड़े। यह श्रद्धा परिपूर्ण हो। यह हो जाती है।
जो आशारहित, निस्संग भाव से जीता है, स्वभावतः धीरे-धीरे उसे यह दृष्टि उपलब्ध होती है। यह सम्यकत्व उपलब्ध होता है। वह देखने लगता है अपने भीतर। उसे साफ दिखाई पड़ने लगता है कि मैं देखनेवाला हूं। जो भी दिखाई पड़ता है, वह मैं नहीं हूं। हो भी कैसे सकता हूं? जो मुझे दिखाई पड़ता है, उससे मैं अलग हो गया। मैं तो वह हूं, जिसे दिखाई पड़ता है।
इसलिए धीरे-धीरे समस्त दृश्यों से अपने को मुक्त करके शुद्ध द्रष्टा में लीन हो जाने का नाम चिंतवन है।
"वही श्रमण आत्मा का ध्याता है... ।"
और महावीर कहते हैं, वही ध्यान को उपलब्ध हुआ, जो चिंतवन करता है, जो देखता है, जिसके अनुभव में आता है, जिसकी प्रतीति में उतरता है कि मैं न पर का हूं, न पर मेरे हैं। मैं एक शुद्ध-बुद्ध ज्ञानमय चैतन्य हूं।
"तथागत अतीत और भविष्य के अर्थ को नहीं देखते... ।"
"तथागत अतीत और भविष्य के अर्थ को नहीं देखते। कल्पनामुक्त महर्षि वर्तमान का अनुपश्यी हो, कर्म-शरीर का शोषण कर उसे क्षीण कर डालता है।" "तथागत अतीत और भविष्य में नहीं देखते"--वही तथागत की परिभाषा है; जो न पीछे देखता है, न आगे। जो बस यहीं है; इस क्षण में पर्याप्त है। जो इस क्षण से बाहर नहीं जाता।
जैसे दीये की लौ हवा के झोंके में कंपती इधर-उधर, फिर हवा के झोंके बंद
हो गए और दीये की लौ अकंप जलती है। जब तुम अकंप होते हो, तुम यहां होते हो। जरा कंपे कि या तो अतीत में गए, या भविष्य में गए। दो ही दिशाएं हैं कंपने की।
अकंप होने की दिशा है वर्तमान।
"तथागत अतीत और भविष्य के अर्थ को नहीं देखते।"
न तो अतीत में कोई सार्थकता है, और न भविष्य में कोई सार्थकता है।
तथागत तथ्य में देखते हैं। तथ्य में देखने से ही, तथ्य के साथ जुड़ने से ही, जो है उसमें उतरने से ही, सत्य का अनुभव उपलब्ध होता है।
तथ्य द्वार है सत्य का।
"... कल्पनामुक्त महर्षि वर्तमान का अनुपश्यी हो।"
अनुपश्यी वर्तमान का! वर्तमान की प्रतीति में, वर्तमान के अनुभव में, वर्तमान के साक्षात्कार की जो दशा है, जो इस समय गुजर रहा है सामने से, उसको ही देखता है। उसका ही अनुपश्यी होता है।
अवेयरनेस, जागरूकता बस इस क्षण की होती है। इसे थोड़ा करने की कोशिश करो। कठिन है, अति कठिन है। लेकिन जब सधता है तो सभी कठिनाइयां सहने योग्य थीं, ऐसा पता चलेगा। तब बहुमूल्य हीरा, अमूल्य हीरा हाथ लगता है।
थोड़ी कोशिश करो। जो भी तुम कर रहे हो... रास्ते पर चल रहे हो, तो बस चलने
का ही अनुपश्यन, चलने की ही जागरूकता रहे। भोजन कर रहे हो तो भोजन करने की ही जागरूकता रहे।
झेन फकीर बोकोजू से किसी ने पूछा कि तुम्हारी साधना क्या है? उसने कहा, जब भोजन करता हूं तो सिर्फ भोजन करता हूं और जब कुएं से पानी भरता हूं तो सिर्फ कुएं से पानी भरता हूं। और जब सो जाता हूं तो सिर्फ सो जाता हूं।
उस आदमी ने कहा, यह भी कोई साधना हुई? यह तो सभी करते हैं।

बोकोजू ने कहा, काश! सभी यह करते होते तो पृथ्वी पर बुद्ध ही बुद्ध होते। सब तथागत होते। तुम जब भोजन करते हो तब तुम हजार काम और भी करते हो।
भोजन तो शायद ही करते हो, और ही काम ज्यादा करते हो।
आदमी भोजन पर बैठा है, वह यंत्रवत भोजन को फेंके जाता है शरीर में। मन हजारों दिशाओं में भटकता है। न मालूम कहां-कहां की यात्राएं करता है। न मालूम कितनी योजनाएं बनाता है।
तुम रास्ते पर चलते हो, जब चलते हो तो सिर्फ चलते हो? चलने का तो ख्याल
ही नहीं रखते। जो वर्तमान में हो रहा है उसको तो देखते ही नहीं। उससे तो तुम चूकते ही चले जाते हो। और वर्तमान बड़ा छोटा-सा क्षण है। जरा चूके कि गया। चूके नहीं कि गया! एक शब्द भी उठा मन में कि वर्तमान गया। तुमने अगर इतना भी कहा कि "अरे! वर्तमान को देखूं," वर्तमान गया। तुमने इतना भी कहा मन में कि मुझे वर्तमान में जागरूक रहना है, तो तुम जब यह कह रहे थे तब वर्तमान जा रहा था।
जो है, वह तो शब्द मात्र से भी चूक जाता है। इसलिए भीतर शब्द न उठे, निशब्द रहे तो ही वर्तमान पकड़ में आता है। निशब्द रहे और जो क्रिया तुम कर रहे हो, उसमें ही पूरी तल्लीनता रहे। जैसे यही परम कृत्य है।
इसीलिए कबीर ने कहा है कि जो खाता-पीता हूं, वही तेरी सेवा है प्रभु!
जो उठता-बैठता हूं, वही तेरी परिक्रमा है प्रभु! "खाऊं पिऊं सो सेवा।"
बड़ी अदभुत बात कबीर ने कही कि मैं जो खाता-पीता हूं, वही तुझे मैंने भोग लगा दिया प्रभु! और भोग कहां लगाऊं? उठता-बैठता हूं, यही तेरे मंदिर की परिक्रमा है; अब और परिक्रमा करने कहा जाऊं? इसका अर्थ हुआ कि अगर क्षण को कोई पूरी तरह जीये तो सब हो गया। क्षण से चूके कि सब चूके। क्षण में जागे कि सब पाया।
"हे ध्याता, तू न तो शरीर से कोई चेष्टा कर, न वाणी से कुछ बोल और न मन
से कुछ चिंतन कर। इस प्रकार योग का निरोध करने से तू स्थिर हो जाएगा, तेरी आत्मा आत्मरत हो जाएगी। यही परम ध्यान है।"
यह परम ध्यान का परम सूत्र!
"हे ध्याता, तू न तो शरीर से कोई चेष्टा कर... ।" ध्यान के लिए शरीर की चेष्टा का कोई प्रयोजन नहीं है।
"... न वाणी से कुछ बोल।" न भीतर शब्द को निर्मित कर। क्योंकि ध्यान से उसका भी कोई संबंध नहीं है।
"... और न मन से कुछ चिंतन कर। इस प्रकार योग का निरोध करने से तू स्थिर
हो जाएगा।"
एक निशब्द शून्य भीतर घेर ले। उस निशब्द शून्य में जागरण का दीया भर जलता रहे, बस! शून्य हो और जागृति हो।
शून्य धन जागृति--कि ध्यान हुआ।
ध्यान का यही परम सूत्र है।
"... तेरी आत्मा आत्मरत हो जाएगी।"
मा चिट्ठह, मा जंपह, मा चिंतह किं वि जेण होइ थिरो।
अप्पा अप्पम्मि रओ, इणमेव परं हवे झाणं।।
यही परम ध्यान है।
इसे थोड़ा ख्याल में ले लें। कभी बैठे हैं तो बैठे रह जाएं; तो बैठने में ही लीन हो जाएं। भीतर से शब्दों को विदा कर दें, नमस्कार कर लें। कुछ चिंतन भी न करें। आत्मा का भी चिंतन न करें। यह भी मत सोचें कि मैं आत्मा हूं, शुद्ध-बुद्ध हूं। क्योंकि वह सब चूकना है।
न चिंतन करें, न शरीर की कोई क्रिया में संलग्न हों, बैठे हैं तो बैठने में डूब जाएं और भीतर सिर्फ जागे रहें, बस एक ख्याल रखें कि होश बना रहे, नींद न आ जाए।
अगर ध्यान का किसी चीज से विरोध है तो नींद से; और किसी चीज से विरोध नहीं है। संसार छोड़कर मत भागो। घर-गृहस्थी छोड़कर मत भागो। इससे कुछ लेना- देना नहीं है। सिर्फ नींद को गिरा दो।

जब मैं कह रहा हूं, नींद को गिरा दो तो मेरा मतलब यह नहीं है कि रात तुम सोओ मत। जब जागो तो परिपूर्णता से जागो। आहिस्ता-आहिस्ता चलो, उठो, बैठो एक बात ख्याल रखो कि भीतर होश को सम्हाले रखना है।
अभी नाजुक है। अभी बार-बार खो जाएगा। सम्हालते-सम्हालते आने लगेगा। फिर धीरे-धीरे तुम पाओगे, जब दिन की जागृति में जागरण सध गया, तो नींद में भी शरीर तो सो जाएगा, तुम जागे रहोगे। शरीर तो विश्राम करेगा, लेकिन तुम्हारे भीतर एक प्रहरी जागा रहेगा।
जिस दिन चौबीस घंटे जागरण सध जाता, उसी दिन व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाता।
तो जागने में तो जागना पहले साधो, फिर नींद की फिक्र कर लेंगे। पहले
तो जागने से नींद को हटाओ। तुम्हें भी कई दफे लगा होगा कि तुम्हारे भीतर जागरण की कई मात्राएं होती हैं।
जैसे समझो कि तुम रास्ते पर जा रहे हो और अचानक एक सांप रास्ते से निकल जाए तो तुम चौंक पड़ते हो। सांप नहीं निकला था तब तुम किस अवस्था में थे? थोड़ी तंद्रा थी। चले जा रहे थे डूबे-डूबे, सोये-सोये; थोड़े-थोड़े जागे, थोड़े-थोड़े सोये। सांप सामने आया, मौत सामने आ गई, एक धक्का लगा, एकदम जाग गये। एक क्षण को तुम उस अवस्था में आए जिसको महावीर कहते हैं, प्रत्येक क्षण की बनाना है।
तुम कार चला रहे थे, गीत गुनगुना रहे थे, कि सिगरेट पी रहे थे, कि रेडियो सुन रहे थे। चले जा रहे थे अपनी धुन में। अचानक दूसरी कार तेजी से सामने आ गई, मौत का खतरा आया। दुर्घटना होने-होने को थी, बाल-बाल बचे। उस क्षण एक जोर तुम्हारे भीतर ऊर्जा का उठेगा। तुम जाग जाओगे। एक क्षण को लगेगा, सब नींद टूट गई। खतरा इतना था कि नींद रह नहीं सकती थी। मनोवैज्ञानिक कहते हैं खतरे में रस ही इसीलिए है कि उससे कभी-कभी जागने की झलकें आती हैं। लोग पहाड़ पर चढ़ने जाते हैं, गौरीशंकर चढ़ते हैं, खतरनाक है, जान-जोखिम में डालना है। लेकिन जब जोखिम होती है तो भीतर जागरण होता है। जब जोखिम बहुत होती है तो भीतर बहुत जागरण होता है। पहाड़ पर चढ़नेवाले को शायद पता भी न हो, कि वह क्यों पहाड़ पर चढ़ने के लिए पागल हुआ जा रहा है! लेकिन मनस्विद कहते हैं, और सदा से ज्ञानियों को इस बात का ख्याल रहा है कि खतरे में लोगों को इसीलिए रस आता है कि खतरे में थोड़ी-सी नींद टूटती है और जागरण का स्वाद मिलता है।
लेकिन पहाड़ पर अगर रोज-रोज चढ़ते रहे... जो पहाड़ पर चढ़ने जाता है उसको तो थोड़ा रस आता है, लेकिन नेपाल में जो आदमी दूसरों को पहाड़ पर चढ़ाने का काम करते हैं जिंदगी से, उनको कुछ नहीं होता।
वह अभ्यस्त हो गया, यह यांत्रिक हो गया।
बाहर तो हर चीज यांत्रिक हो जाती है, जब तक कि भीतर का जागरण ही सीधा- सीधा न खोजा जाए... जैसे तुम कभी आग जलाते हो, अंगारों पर राख जम जाती है, ऐसी चित्त पर नींद जमी है। इसे थोड़ा झकझोरना है। इसे झकझोरते रहना है। अंगारा जलता रहे।
"हे ध्याता, न तो तू शरीर से कोई चेष्टा कर, न वाणी से कुछ बोल और न मन
से कुछ चिंतन कर। इस प्रकार निरोध करने से तू स्थिर हो जाएगा। तेरी आत्मा आत्मरत हो जाएगी। यही परम ध्यान है।"
"जिसका चित्त इस प्रकार के ध्यान में लीन है, वह आत्मध्यानी पुरुष कषाय से उत्पन्न ईर्ष्या, विषाद, शोक आदि मानसिक दुखों से बाधित, ग्रस्त या पीड़ित नहीं होता।"
"वह धीर पुरुष न तो परीषह, न उपसर्ग आदि से विचलित होता है, न ही सूक्ष्म भावों, से भयभीत होता है, और देव-निर्मित मायाजाल से मुक्त होता है।"
ध्यान, धर्म का मौलिक आधार है।
जैसे किसी को दर्शनशास्त्र में जाना हो तो विचार, तर्क मौलिक आधार है। वैसे ही किसी को स्वयं में जाना हो, स्वभाव में जाना हो तो ध्यान मौलिक आधार है।

तुम और सब साध लो और ध्यान न सधे, तो तुमने जो साधा है, वह धर्म नहीं है। तुम तप साधो, योग साधो, और हजार तरह के क्रियाकांड और विधियां करो; यज्ञ करो, हवन करो, पूजा-प्रार्थना करो, लेकिन तुम्हारे भीतर अगर ध्यान नहीं सधा तो यह सब साधना बाहर-बाहर है; भीतर तुम न आ पाओगे।
और इस भीतर आने के लिए कुछ करने जैसा नहीं है। इस भीतर आने की प्रक्रिया को तुम्हारी सारी क्रियाओं में से साधा जा सकता है। तुम दुकान पर बैठे बाजार में काम कर रहे हो, ध्यान-पूर्वक करो--सोओ मत। मजदूर हो, कि अध्यापक हो, कि दफ्तर में क्लर्क हो, कि स्कूल में चपरासी हो, कुछ भी हो; गरीब हो, कि अमीर हो; सैनिक हो कि दुकानदार हो; कोई भी कृत्य हो जीवन का, वहीं एक बात साधी जा सकती है कि जो भी तुम करो, उसे होशपूर्वक करते रहो। पृथ्वी यह परिस्थिति यह,
स्थान और पुरजन ये दलदल है,
एरावत बन हम फंसते हैं
मदांध हो समझते हैं
कमलवन हमारा है, हमारा है
यहां कुछ भी हमारा नहीं। यहां जो भी हमारा मालूम पड़ता है, वह सब दलदल है। लेकिन इस हमारे के दलदल में कुछ है, जो हमारा स्वभाव है। मेरा तो कुछ भी नहीं है, लेकिन मैं हूं।
यह मैं क्या है? इस मैं को हम कैसे पकड़ें? इस मैं की तरफ हम किन यात्राओं, किन यात्रापथों से चलें? इस मैं का सुराग कैसे मिले?
महावीर के इन सूत्रों का अर्थ हुआ कि इस मैं को जानना हो तो पहले तो जिस-जिस को तुमने मेरा माना है, उससे अपना संबंध शिथिल कर लो। क्योंकि "मेरे" के दलदल में, "मैं" फंसा है। तो पहले तो दलदल से बाहर कर लो। एक बार दलदल से बाहर हो जाए, मेरे का जाल छूट जाए तो फिर दूसरा काम करने का है, और वह यह है कि मैं सोया न रहे।
बाहर का दलदल मिटे, फिर भीतर का दलदल मिटाओ। बाहर का दलदल है संबंधों
का जाल, और भीतर का दलदल है एक तरह की सुप्ति, एक तरह की निद्रा, एक तरह की तंद्रा।
हम ऐसे चल रहे हैं जैसे कोई शराबी चल रहा हो। चल भी रहे हैं, साफ भी नहीं है--अंधेरे में टटोलते से, खोये-खोये से, सोये-सोये से।
तो झकझोरो! पुकारो! खींचो इस भीतर के दलदल से अपने को बाहर।
महावीर कहते हैं, इसके लिए न तो कोई योगासन करने जरूरी हैं। शरीर की कोई क्रिया अपेक्षित नहीं है। न कोई बहुत बड़ा विचारक होना जरूरी है। कोई बड़े विश्वविद्यालयों से बड़ी उपाधियां लेकर आना जरूरी नहीं है। न शास्त्रों का पठन-पाठन आवश्यक है। क्योंकि चिंतन यहां काम आता ही नहीं। यहां तो सिर्फ एक चीज काम आती है, और वह जागरण है।
तो तुम जो भी करते हो, अपने छोटे-छोटे कृत्यों में... बुहारी लगा रहे हो
घर में, बस जागकर लगाओ।
एक झेन फकीर हुआ; सम्राट उसके पास आया था सीखने ध्यान। तो उस फकीर ने कहा कि रुको, जब ठीक समय आएगा, मैं शुरू करूंगा। उस सम्राट ने कहा, मैं ज्यादा देर नहीं रुक सकता, मेरे पिता वृद्ध हैं उनकी मृत्यु कभी भी हो सकती है। उन्होंने ही मुझे भेजा है कि उनके जीते-जी मैं ध्यान को उपलब्ध हो जाऊं। तो जल्दी करें।
उस फकीर ने कहा, अगर जल्दी की तो देर हो जाएगी। जल्दी करने में बड़ी देर
हो जाती है। यह तो काम धीरज का है। तुमने अगर समय की मांग की तो फिर न हो सकेगा। तो तुम पहले तय कर लो। मैं तो तुम्हें स्वीकार ही तब करूंगा शिष्य की तरह, जब तुम मुझ पर छोड़ दो। जब समय परिपक्व होगा, जब मौसम आएगा और जब मैं समझूंगा, कि अब शुरू करना पाठ, शुरू कर दूंगा।
कोई और उपाय न देखकर सम्राट ने स्वीकार कर लिया। तीन साल, कहते हैं बीत गए और फकीर ने ध्यान की बात ही न की। लेकिन एक दिन फकीर आया और सम्राट बुहारी लगा रहा था आश्रम में, वही उसका काम था, और फकीर ने आकर पीछे से उस पर हमला किया एक लकड़ी के डंडे से।
सम्राट तो बहुत चौंका, उसने कहा, यह आप क्या करते हैं?

फकीर ने कहा, ध्यान की शुरुआत आज हुई। अब तुम ख्याल रखना। तुम कुछ भी
कर रहे हो... तुम्हारा काम है लकड़ी काटकर लाना, बुहारी लगाना, भोजन पकाना, तुम सब करना, लेकिन एक ध्यान रखना कि मैं कभी भी पीछे से हमला करूंगा, इसका होश रखना।
उसने कहा, यह किस तरह का ध्यान हुआ? फकीर ने कहा, वह तुम फिक्र मत करो। तुम बस इतना होश रखो।
कहते हैं ऐसा एक वर्ष बीता। और वह फकीर अनेक-अनेक रूपों से पीछे से हमला करता। धीरे-धीरे होश सम्हलने लगा। क्योंकि जब कोई चौबीस घंटे हमले के बीच में पड़ा हो तो कैसे रहेगा बेहोशी में? वह बार-बार चौंककर इधर-उधर देख लेता। जरा-सी पीछे से आवाज आती कि वह सजग हो जाता। हमले से बचना जरूरी था। बिल्ली भी चलती, कोई हवा का झोंका आता तो भी वह सजग हो जाता।
एक वर्ष होते-होते ऐसी हालत हो गई कि जब भी फकीर हमला करता--इसके पहले
कि फकीर हमला करता, उसका हाथ लकड़ी को पकड़ लेता। हमला करना मुश्किल हो गया। फकीर बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने कहा, तुमने पहला पाठ सीख लिया। अब दूसरा पाठ--कि अब रात जरा सम्हलकर सोना, क्योंकि मैं सोते में हमला करूंगा। लेकिन अब सम्राट को भी ख्याल में आ गया था कि एक बड़ी गहरी शांति, अकारण--भीतर भरी थी। एक बड़ा प्रसाद, बड़ी प्रसन्नता! कुछ सीधा संबंध भी नहीं दिखाई पड़ता था कि आदमी किसी के पीछे से हमला करे तो प्रसाद का क्या संबंध? इतने आनंद का क्या कारण? लेकिन आनंद ही आनंद था। जरूर इसमें भी कुछ राज होगा।
रात कुछ दिन तो चोटें खायीं, फिर धीरे-धीरे नींद में भी सम्हलकर सोने लगा। नींद में भी, कमरे में फकीर प्रवेश करता तो वह आंख खोलकर बैठ जाता। गहरी नींद सोया होता, घुर्राटे लेता होता, लेकिन जरा आवाज होती कि वह चौंक जाता।
तुमने देखा किसी मां को? तूफान हो, आंधी हो, नींद नहीं खुलती। बच्चा जरा रो दे, नींद खुल जाती है। जिस तरफ ध्यान होता है, उस तरफ संबंध हो जाता है।
तुम यहां सारे लोग सो जाओ आज रात, फिर मैं आकर पुकारूं, "राम", तो किसी
को सुनाई न पड़ेगा, लेकिन जिसका नाम राम है उसे सुनाई पड़ जाएगा। क्योंकि राम से उसका एक सेतु बंधा है, एक संबंध बंधा है।
एक साल बीतते-बीतते ऐसा हो गया कि फकीर नींद में भी हमला न कर पाता। हमला करता कि इसके पहले ही हमला रोकने का इंतजाम हो जाता।
एक दिन सुबह की बात है, सर्दी के दिन! फकीर, बूढ़ा फकीर वृक्ष के नीचे धूप में बैठा कुछ पढ़ रहा था, और वह युवक संन्यासी--सम्राट--बुहारी लगा रहा था। बुहारी लगाते- लगाते उसे ख्याल आया कि दो साल से यह आदमी सब तरह से मुझ पर चोट कर रहा है, लाभ भी बहुत हुए, लेकिन मैंने कभी यह नहीं सोचा कि मैं भी इस पर कभी हमला करके देखूं, इस बूढ़े पर, यह भी जागा हुआ है या नहीं?
ऐसा ख्याल भर आया, कि उस बूढ़े ने अपनी किताब पर से आंख उठाई और कहा, नासमझ! ऐसा मत करना, मैं बूढ़ा आदमी हूं।
वह बहुत घबड़ा गया। उसने कहा, "हुआ क्या? मैंने तो सिर्फ सोचा।" उसने कहा, "जब जागरूकता बहुत सघन होती है तो जैसे अभी तू पैर की आवाज को पकड़ने लगा, ऐसे विचार की आवाज भी पकड़ में आने लगती है। विचार की भी तो आवाज है। विचार की भी तो तरंग है। विचार से भी तो घटना घटती है। जैसे तू अभी नींद में भी जाग जाता है, मेरा पैर नहीं पड़ता तेरे कमरे के पास कि तू बैठ जाता है तैयार होकर। मैं इतने सम्हलकर चलता हूं, कोई उपाय नहीं। जरा-सी आवाज तुझे चौंका देती है। एक दिन तेरे जीवन में भी ऐसी घड़ी आएगी--अगर जागता ही गया-- कि विचार की तरंग भी पर्याप्त होगी।"
ध्यान का अर्थ हैः जागरण।
जैसे-जैसे तुम जागते जाते हो, वैसे-वैसे जीवन की सूक्ष्मतम तरंगों का बोध होता है। परमात्मा जीवन की आत्यंतिक तरंग है, आखिरी सूक्ष्म तरंग है। तुम्हारी जब जागरण की आखिरी गहराई आती है, तब परमात्मा का शिखर तुम्हारे सामने प्रगट होता है।

उस घड़ी में न तो तुम बचते, न परमात्मा बचता। उस घड़ी में तो एक आह्लाद बचता है--असीम! अपरिभाषित!
आज मिलन-त्यौहार मनाये कौन वहां?
बरस रही रसधार कि गाये कौन वहां?
वीणा को स्वरकार बजाये कौन वहां?
बरस रही रसधार कि गाये कौन वहां?
अमृत बरसता है। इतना कहने को भी कोई नहीं बचता कि अमृत बरस रहा है--कि गाये कौन वहां? बरस रही रसधार।
वीणा बजती है, बजानेवाला भी नहीं रह जाता।
वीणा को स्वरकार बजाये कौन वहां?
इसको हिंदुओं ने अनाहत नाद कहा है--अपने से हो रहा नादः ओंकार।
इसको महावीर ने स्वभाव कहा है--अपने से जो हो रहा। आनंद हमारा स्वभाव है। हम सच्चिदानंद-रूप हैं। लेकिन इस रूप को जानने के लिए जो आंख चाहिए ध्यान की, वह हमारे पास नहीं है। या है भी, तो बंद पड़ी है।
सौ-सौ बार चिताओं ने मरघट पर मेरी सेज बिछाई
सौ-सौ बार धूल ने मेरे गीतों की आवाज चुराई
लाखों बार कफन ने रोकर मेरा तन शृंगार किया पर
एक बार भी अब तक मेरी जग में मौत नहीं हो पाई

मैं जीवन हूं, मैं यौवन हूं
जन्म-मरण है मेरी क्रीड़ा
इधर विरह-सा बिछुड़ रहा हूं
उधर मिलन-सा आ मिलता हूं।
जिसे तुमने अब तक समझा है तुम हो, वे तो केवल सतह पर उठी तरंगें हैं।
और जो तुम हो उसका तुम्हें पता नहीं है। उसका न तो कभी जन्म हुआ और न कभी मृत्यु हुई।
उस शाश्वत को जगाओ।
उस शाश्वत में जागो।
उस शाश्वत को बिना पाए विदा मत हो जाना। जीवन उसको पाने का अवसर है।
जिसने ध्यान का धन पा लिया, उसने जीवन में कुछ कमा लिया। और जो और सब कमाने में लगा रहा और ध्यान के धन को न कमा पाया, उसने जीवन व्यर्थ गंवा दिया।
इस अवसर से चूकना मत। पहले बहुत बार चूके हो, इसलिए चूकने की संभावना बहुत है। क्योंकि चूकने की आदत बन गई है। लेकिन कितने ही बार चूके होओ, पा लेना संभव है। क्योंकि जिसे पाना है, वह तुम्हारा स्वभाव है। वह तुम्हारे भीतर मौजूद ही है। जरा पर्दे हटाना। जरा घूंघट हटाना।
घूंघट के पट खोल!
घूंघट बहुत तलों पर है। संबंधों का घूंघट, फिर शरीर का घूंघट, फिर मन
का घूंघट। इन तीन पर्तों को तुम तोड़ दो तो तुम्हारी अपने से पहचान हो जाए।
अप्पा अप्पम्मि रओ, इणमेव परं हवे झाणं।
आत्मा आत्मा में रम जाती है फिर। यही परम ध्यान है।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग दो
अठारहवां प्रवचन

मुक्ति द्वंद्वातीत है

पहला प्रश्नः आप कहते हैं कि राग और द्वेष के दो पहियों से संसार निर्मित होता है। क्या इनके ठीक विपरीत कोई दो पहिये और हैं, जिनसे मोक्ष निर्मित होता है? कृपा करके समझाएं।

पहली बातः जहां दो हैं, वहां संसार है। जहां एक बचा, वहां मोक्ष प्रारंभ हुआ।
द्वैत संसार है, अद्वैत मोक्ष है।
इसलिए संसार के तो दो पहिये हैं, मोक्ष के नहीं।
दूसरी बातः संसार गति है, प्रवाह है, खोज है, तलाश है, मार्ग है, इसलिए
दो पहियों की जरूरत है। दो पहियों के बिना यह गाड़ी चलेगी नहीं।
मोक्ष, कहीं जाना नहीं है, मोक्ष तो पहुंच गए। मोक्ष तो वहां है, जहां
सब जाना समाप्त हुआ। गाड़ी चलती रहे तो मोक्ष नहीं है। जहां रुक गया सब, ठहर गया सब, परम विश्राम आ गया, जिसके पार कोई लक्ष्य न बचा, वहीं मोक्ष है। वासना जहां शून्य होती है, कामना जहां विराम लेती है, लक्ष्य जहां संपूर्ण हो गए। सिद्धि जहां श्वास-श्वास में है--फूल खिल गया। अब और खिलने को कुछ बचा नहीं। पूर्णता उतरी। अब कुछ और उतरने को बचा नहीं।
इसलिए दो पहियों का तो सवाल ही नहीं है, एक पहिये की भी जरूरत नहीं है-- पहिये की जरूरत नहीं है।
तो पहली तो बात; जहां तक दो हैं, वहां तक संसार है। जहां एक है, वहां मोक्ष है।
दूसरी बातः जहां तक यात्रा है, वहां तक संसार है। जहां यात्रा समाप्त हुई, वहीं मोक्ष है।
तो दो पहियों की तो जरूरत है ही नहीं, एक पहिये की भी जरूरत नहीं है।
और एक पहिया हो भी, तो व्यर्थ होगा।
तीसरी बातः पूछा, "राग-द्वेष के दो पहियों से संसार निर्मित होता है।"--सच है। क्योंकि राग एक तरफ झुकाता, द्वेष दूसरी तरफ झुकाता। राग-द्वेष के झंझावात में हमारा चित्त कंपता है। आसक्ति और विरक्ति, राग और द्वेष, शत्रु और मित्र, अपना और पराया, हितकर और अहितकर, इन दोनों के बीच हम कंपते हैं। जब दोनों के बीच हम थिर हो जाते हैं और कंपन समाप्त हो जाता है, न राग बुलाता, न द्वेष बुलाता; जहां हम निर्द्वंद्व होकर, निष्कंप होकर बीच में समाधिस्थ हो जाते हैं; जहां मध्य-बिंदु मिल जाता है, वहां मोक्ष है।
राग और द्वेष के विपरीत मोक्ष में कुछ भी नहीं है। राग और द्वेष से मुक्ति, मोक्ष है। मोक्ष संसार का विरोध नहीं है, मोक्ष संसार का अभाव है। संसार नहीं बचता, इतना ही कहो, बस काफी है। फिर जो शेष रह जाता है, वही मोक्ष है।
जैसे एक आदमी बीमार है; जब बीमारियां हटा लेते हैं हम, तो जो शेष रह जाता है, वही स्वास्थ्य है।
स्वास्थ्य बीमारियों के विपरीत नहीं है कुछ, बीमारियों का समाप्त हो जाना है। जहां कोई बीमारी नहीं बची, वहां स्वास्थ्य सहज रूप से मुखरित होता है।
संसार बाधा की तरह है, पत्थर हैः झरने को रोके हुए। पत्थर हट गया, झरना बहा। झरना तो मौजूद ही है। मोक्ष तो मौजूद ही है तुम्हारे भीतर। संसार से तुम्हारी पकड़ छूटी कि जो सदा से मिला हुआ था, उसका पता चलता है। जो मिला ही हुआ था, उसकी प्रत्यभिज्ञा होती है, उसकी पहचान होती है।
मोक्ष कुछ ऐसा नहीं है, जिसे तुमने खो दिया हो। मोक्ष स्वभाव है। खोने
का कोई उपाय ही नहीं। कहीं भूलकर, चूककर रख आये हो, ऐसा कोई उपाय नहीं है।
तुम हो मोक्ष।

इसलिए इनके विपरीत कोई दो पहिये और हैं? ऐसा पूछना ही ठीक नहीं है। संसार मोक्ष के विपरीत नहीं है, इसलिए संन्यासी संसार का विरोधी नहीं है।
जो संन्यासी संसार का विरोधी है, वह अभी संसार में है। उसने राग को द्वेष से बदल लिया। कुछ लोग धन को राग करते थे, वह द्वेष करने लगा। कुछ लोग देह को राग करते थे, वह द्वेष करने लगा। सांसारिक जिनको वह कहता है, जो-जो करते थे, उससे उलटा करने लगा।
संन्यासी अगर संसार का विरोधी है तो मैं तुमसे कहता हूं, संसार में है। सिर के बल खड़ा होगा, मगर खड़ा बाजार में है। हिमालय पर बैठा हो, लेकिन खड़ा बाजार में है। भाग जाए सब छोड़कर, लेकिन जिससे भाग रहा है, उससे छुटकारा नहीं हुआ है। भीतर मन में उसकी आकांक्षा शेष है। उसी आकांक्षा को दबाने के लिए तो विपरीत कर रहा है।
संन्यासी उसे कहता हूं मैं, जो संसार का विरोधी नहीं है, जो संसार में जागा; जिसने संसार को भर-नजर देखा।
महावीर कहते हैं, जो सुपरिचित हुआ; जिसने संसार की व्यर्थता समझी।
संसार के विपरीत किसी चीज को पकड़ने का सवाल ही नहीं है, संसार की व्यर्थता स्पष्ट हो जाए तो जो शेष रह जाता है--इस कूड़े-कर्कट के बह जाने के बाद, जो जलधार भीतर शेष रह जाती है, वही मोक्ष है।
अगर मोक्ष कहीं संसार से अलग है तो फिर भागना पड़े गुफाओं में, कंदराओं में खोजना पड़े, तपश्चर्या में आंखें बंद करके कहीं दूर, जहां कोई न हो, वहां जाना पड़े। लेकिन मोक्ष यहीं है। मोक्ष तुम्हारा स्वभाव है।
समझ आ गई तो मुक्ति आ गई। नासमझी रही तो बंधन रहा। नासमझी अर्थात बंधन। समझदारी अर्थात मोक्ष।
ज्ञान मुक्ति है।
तो संसार को छोड़ना नहीं, न संसार के विपरीत सोचना। वह विपरीत की भाषा
ही भूल जाओ। विरोध की भाषा ही भूल जाओ। शत्रुता का रोग ही छोड़ो। सिर्फ भर आंख देख लेना है, ठीक से पहचान लेना है। जहां हो, वहीं जागकर देख लेना है। उस जागरण में जो भी व्यर्थ है, वह अपने से छूट जाता है, गिर जाता है। एक अंधेरे कमरे में तुम बैठे हो, हीरे भी पड़े हैं और कूड़ा-कर्कट भी पड़ा है, फिर कोई दीया लेकर भीतर आ गया। जब तक दीया न था तब तक पता न था, कूड़ा-कर्कट क्या है, हीरे क्या हैं? हो सकता है, अंधेरे में तुमने कूड़े-कर्कट की तो गठरी बांध ली हो और हीरों का ख्याल ही न आया हो। फिर कोई दीया लेकर आ गया, आंख मिली, दृष्टि खुली, दर्शन हुआ। तुम हंसोगे, अगर तुमने अपनी गठरी में कूड़ा- कर्कट बांध रखा था। जल्दी गांठ खोलोगे। जल्दी गठरी खाली कर लोगे। जल्दी से हीरे भर लोगे। इसमें कुछ त्याग थोड़े ही होगा!
इसमें कुछ अभ्यास थोड़े ही होगा! इसमें कोई श्रमसाध्य प्रक्रिया थोड़े
ही होगी!
बस दीये का आना, आंख का खुलना, दिखाई पड़ जाना सार का असार से भिन्न-- पर्याप्त है। मोक्ष है बोध।
"कहते हैं आप, राग और द्वेष के दो पहियों से संसार निर्मित होता है...
।" निश्चित ही। संसार दो के बिना निर्मित नहीं होता। संसार एक से निर्मित ही नहीं हो सकता। एक पहिये से कहीं कोई गाड़ी चली है?
यह गाड़ी शब्द बड़ा अदभुत है। इस पर तुमने शायद कभी सोचा न हो। गाड़ी का मतलब होता है, जो गड़ी है। मगर हम चलती हुई चीज को गाड़ी कहते हैं। गाड़ी तो चल ही नहीं सकती। जो गड़ी है, वह चलेगी कैसे? वृक्ष चलते हैं? गड़े हैं। चलती चीज को हम गाड़ी क्यों कहते हैं? बड़ा मधुर व्यंग्य है उस शब्द में।
संसार चलता तो है, पहुंचता कहीं नहीं। लगता है चलता है; ऐसे गड़ा है। ऐसे सपने में ही चलना होता है, यथार्थ में कोई चलना नहीं होता। भाग-दौड़, आपाधापी! जब आंख खुलती है, तुम पाते हो वहीं के वहीं खड़े हो, अपनी खाट पर पड़े हो। सब सपने में दा.ैड-धूप की। बड़े आकाश छान डाले। जब सुबह आंख खुली तो पाया, अपने बिस्तर में पड़े हैं।
तो संसार गाड़ी है। ऐसे तो गड़ा है। यथार्थ में तो गड़ा है, स्वप्न में चल रहा है, कल्पना में चल रहा है, कामना में चल रहा है, विचार में चल रहा है, मन में चल रहा है--ऐसे गड़ा है। गाड़ी बस चलती मालूम पड़ती है।

कभी छोटे-छोटे बच्चे, जो साइकिल चलाना नहीं जानते, साइकिल पर सवार हो जाते हैं--खड़ी साइकिल पर, स्टैंड पर खड़ी साइकिल पर। जोर से पैडल मारते हैं और बड़े प्रफुल्लित होते हैं क्योंकि जब चाक चलने लगता है--वह गाड़ी है। गड़ी है, मगर बच्चा बड़ा प्रसन्न हो रहा है। जितने जोर से पैडल मारता है, जितने जोर से चाक घूमता है--उसकी किलकारी सुनो!
ऐसी ही किलकारी दे रहे हैं राजनेता, धनिक, पद-प्रतिष्ठा को प्राप्त लोग। साइकिल पर चढ़े हैं। साइकिल स्टैंड पर खड़ी है। स्टैंड यानी गड़ी है। मगर चाक जोर से चल रहा है। पैडल काफी मार रहे हैं, पसीना-पसीना हुए जा रहे हैं। एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा भी कर रहे हैं, कि किसकी गाड़ी तेज चल रही है। कौन आगे जा रहा है! किसको पीछे छोड़ दिया है!
ये सब किलकारियां एक दिन व्यर्थ सिद्ध होती हैं, जब होश आता है कि हम जिसको चला रहे हैं वह गड़ा है।
संसार चलता हुआ मालूम पड़ता है और चलता नहीं। यहां कोई विकास नहीं है। गति तो बहुत है, प्रगति बिल्कुल नहीं है। चलना तो बहुत है, पहुंचना बिल्कुल नहीं है। यहां तो आश्चर्य है कि तुम बहुत चलकर अगर अपनी जगह पर भी खड़े रह जाओ तो भी बहुत चमत्कार है। डर तो यह है कि तुम जहां अपने को पाये थे, उससे भी पिछड़ जाओगे। दौड़-दौड़कर अपनी जगह पर भी बने रहे तो काफी है। संसार के लिए तो दो चाक चाहिए। झूठी ही सही गाड़ी, माया की ही सही, लेकिन है तो गाड़ी। दो चाक चाहिए। इसलिए जीवन में हम हर जगह जरा खोजबीन करेंगे तो हम पाएंगे, हर चाक के पीछे दूसरा चाक छिपा है। सफलता के पीछे विफलता छिपी है। सुख के पीछे दुख छिपा है। दिन के पीछे रात छिपी है। पुण्य के पीछे पाप छिपा है। हंसी के पीछे रुदन छिपा है। यहां तुम एक चीज तो पाओगे ही नहीं। यहां सब चीजें जोड़ी से हैं।
संसार जोड़ी से जीता है। मोक्ष का अर्थ है, यह दो का विभाजन गया। यह दो में खंडित होने की प्रक्रिया समाप्त हुई। यह जो लौ बायें कंपती थी, दायें कंपती थी, अब कंपती नहीं, अब मध्य में खड़ी हो गई। अब इसने कंपन छोड़ा, चिंतन छोड़ा। विचार की तरंगें अब नहीं आतीं। अब निर्विचार।
निर्विचार का आकाश मोक्ष है।
संसार के विरोध में नहीं है मोक्ष, संसार का अभाव है मोक्ष। इसे तुम जितने गहरे में बांधकर रख सको, रख लेना। इस पर गांठ बांध लेना। क्योंकि अगर यह तुम्हें ख्याल न रहा तो बहुत डर है कि तुम्हारा संन्यास भी संसार का विरोध बन जाए।
विरोध में उतर जाना बड़ा आसान है। मन की सारी राजनीति द्वंद्व की है। इसलिए विरोध तो बिल्कुल सुगम है, सरल है, ढलान है। जैसे पहाड़ से कोई नीचे की तरफ उतर रहा है, धीमे भी चलना चाहे तो चल नहीं सकता; दौड़ना पड़ता है। ढलान है। कोई शक्ति नहीं लगती। अगर कार पहाड़ के नीचे उतार रहे हो तो पेट्रोल की भी जरूरत नहीं पड़ती। बंद कर दो इंजन, गाड़ी अपने आप ढलकती-ढलकती चली आती है। मन की वृत्ति द्वंद्व की है, संघर्ष की है। पहले लड़ रहे थे धन के लिए, फिर लड़ने लगे ध्यान के लिए। मगर लड़ाई जारी रही। पहले लड़ते थे जीवन के लिए, फिर लड़ने लगे मोक्ष के लिए। लड़ाई जारी रही। रोग अपनी जगह रहा। नाम बदला, लेबल बदला, लेकिन भीतर की विषय-वस्तु वही की वही रही।
तो इसे स्मरण रखना। कम से कम मेरे संन्यासी--ठीक से स्मरण रखना कि संसार का विरोध नहीं है संन्यास, संसार की समझ है संन्यास। और समझ के लिए भागना उचित नहीं है। क्योंकि जिससे भागोगे उसे समझोगे कैसे? जिसे समझना हो, वहीं खड़े रहना। जिसे समझना हो, उसका ठीक से अवलोकन करना। ठीक से निरीक्षण करना, ठीक से साक्षी बनना। एक-एक पर्दा उठाकर देख लेना। सब घूंघट उघाड़-उघाड़कर देख लेना। कुछ भी छुपा न रह जाए। उसी समझ में मोक्ष का आविर्भाव होगा।
जैसे-जैसे प्रज्ञा बढ़ेगी, समझ बढ़ेगी वैसे-वैसे तुम पाओगे, तुम मुक्त होने लगे।
आखिरी बातः मोक्ष परलोक में नहीं है। वह भी द्वंद्व है--इस लोक का, उस लोक का; पृथ्वी का, आकाश का। मोक्ष परलोक में नहीं है। मोक्ष का लोकों से कोई संबंध नहीं है।

मोक्ष है तुम्हारी आत्मा की दशा। मोक्ष का स्थान-समय से कोई संबंध नहीं है। मोक्ष का संबंध है, तुम्हारा अपने में लीन हो जाना। अपने में डूब जाना। अपने से भरपूर होकर अपने रस में मग्न हो जाना।
यह अभी घट सकता है। और अगर अभी नहीं घट सकता तो कभी नहीं घट सकता। और
जब भी घटेगा, अभी घटेगा, वर्तमान के क्षण में घटेगा। इसलिए महावीर कहते हैं, जो महर्षि हैं, जो मनीषी हैं, वे बीत गए अतीत की चिंता नहीं करते। अनागत--न आए हुए भविष्य का विचार नहीं करते। वे शुद्ध वर्तमान में जीते हैं। वे वर्तमान को देखते हैं, वर्तमान का पश्ययन करते हैं, वर्तमान का दर्शन करते हैं।
एक पहिया है संसार का अतीत में, एक पहिया है भविष्य में। यह संसार की गाड़ी बड़ी अदभुत है, बड़ी विचित्र है। एक पहिया है वहां, जो अब है नहीं। और एक पहिया है वहां, जो अभी हुआ नहीं। ऐसे दो शून्यों में संसार चल रहा है। और जो है, वह अभी इन दोनों के बीच है; वह मध्य में है।
बुद्ध ने तो अपने मार्ग को मज्झिम निकाय कहा। सिर्फ इसीलिए कहा कि जो अतियों से बच गया और मध्य में खड़ा हो गया, वही उपलब्ध हो जाता है।

दूसरा प्रश्नः कभी आप कहते हैं, गुरु साक्षात ब्रह्म है, और कभी कहते हैं, गुरु साक्षात मृत्यु है। क्या वह एक साथ, एक समय में दोनों है? कृपा करके कहें।

गुरु मृत्यु है, इसीलिए गुरु ब्रह्म है। उसमें मृत्यु घट सकती है, इसीलिए महाजीवन का सूत्रपात हो सकता है।
पुराने हिंदू शास्त्र कहते हैं, "आचार्यो मृत्युः।" आचार्य मृत्यु है। गुरु मृत्यु है। क्या अर्थ है उनका? क्या प्रयोजन है?
शिष्य जब गुरु के पास आता है तो जैसा है, वैसा तो उसे मरना होगा। और जैसा होना चाहिए, वैसा होना होगा। जब शिष्य गुरु के पास आता है तो बीमारियों का जोड़ है, उपाधियों का जोड़ है। गुरु की औषधि बीमारियों को तो मिटा देगी। लेकिन जैसा शिष्य आता है अहंकार से भरपूर, वह अहंकार तो सिर्फ बीमारियों का बंडल है। जब बीमारियां हटती हैं, वह अहंकार भी मर जाता है। वह उनके बिना जी भी नहीं सकता।
फिर जो शेष बचता है, वह तो कुछ ऐसा है, जिसका शिष्य को पता ही नहीं था।
वह तो मरने के बाद ही पता चलता है। अहंकार की मृत्यु के बाद ही आत्मा का बोध होता है।
शायद शिष्य आता है अपने प्रयोजन से। वह शायद महाजीवन की तलाश में आता है। वह शायद सोचकर आता भी नहीं कि गुरु के पास मरना होगा, मिटना होगा। धीरे-धीरे, इंच-इंच गलना होगा, बिखरना होगा। वह तो किसी लोभ से आया था। वह तो शायद संसार की वासना को ही और थोड़ी गति मिल जाए, और थोड़ी शक्ति मिल जाए, कामना के जगत में और थोड़ा बलशाली हो जाऊं, जीवन के संघर्ष में और थोड़ा संकल्प मिल जाए इसलिए आया था।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, संकल्प-शक्ति की कमी है--विल-पावर।
आप कृपा करें, संकल्प-शक्ति दे दें।
मैं पूछता हूं, संकल्प-शक्ति का करोगे क्या? संकल्प-शक्ति का उपयोग संघर्ष में है, संसार में है; मोक्ष में तो कोई भी नहीं। अशांत होना हो तो संकल्प-शक्ति की जरूरत है। शांत होना हो तो विसर्जित करो। जो थोड़ी-बहुत है, वह भी विसर्जित करो। उसे भी डाल आओ गंगा में। उससे भी छुटकारा लो।
संकल्प तो बाधा बनेगा, समर्पण मार्ग है।
लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, कुछ आशीर्वाद दें। जीवन में बड़ी निराशा है। आशा का दीया जला दें। मैं उनसे कहता हूं, तुम गलत जगह आ गए।
यहां तो आशा के दीये बुझाए जाते हैं।
सुना कल महावीर का सूत्र! --आशारहितता को जो उपलब्ध हो जाए... ।
तुम आते हो शायद निराशा मिटाने। तुम आते हो यहां, कि थोड़ा बल मिल जाए
और संसार में जाकर फिर तुम जूझ पड़ो। शायद अभी हार गए थे। शायद अभी जीत नहीं

पाते थे। शायद अभी बलशाली लोगों से संघर्ष हो रहा था। तुम कमजोर पड़ते थे।
और बल लेकर, और शक्ति लेकर, और ऊर्जा लेकर उतर जाओ जीवन के युद्ध में।
लेकिन तब तुम गलत जगह आ गए। अगर तुम गुरु के पास गए तो गलत जगह गए।
इसके लिए तो तुम्हें कोई झूठा गुरु चाहिए। इसलिए झूठे गुरु चलते हैं।
झूठे सिक्के इसीलिए चलते हैं क्योंकि तुम जो चाहते हो, उसे वे पूरा करने का आश्वासन देते हैं। वह कभी पूरा होता है या नहीं, यह सवाल नहीं है।
आश्वासन काफी है; उसमें ही तुम लुटते हो।
इसे ध्यान रखना, यह सदगुरु की पहचान है--जो तुमसे आशा छीन ले; जो तुमसे संकल्प छीन ले। यह सदगुरु की पहचान है--जो तुम्हें मिटा दे। तुम भला किसी कारण से उसके पास आए हो, वह तुम्हारी चिंता ही न करे। उसके लिए तो आत्यंतिक बात ही महत्वपूर्ण है। वह तो तुम्हारे भीतर मोक्ष को लाना चाहता है।
और स्वभावतः तुम कैसे मोक्ष की कामना कर सकते हो? संसार को ही तुमने जाना है। वहां भी सफलता नहीं जानी। किसने जानी! सिकंदर भी असफल होता है। संसार में असफलता ही हाथ लगती है।
तो तुम वही सफलता पाने के लिए आ गए हो अगर, तो केवल असदगुरु से ही तुम्हारा मेल हो पाएगा, जहां गंडा-ताबीज मिलता हो, मदारीगिरी से भभूत बांटी जाती हो, जहां तुम्हें इस बात का भरोसा मिलता हो कि ठीक, यहां कुछ चमत्कार हो सकता है; जहां तुम्हारा मरता-बुझता अहंकार प्रज्वलित हो उठे; जहां थोड़ा कोई तुम्हारी बुझती ज्योति को उकसा दे।
मगर वह ज्योति संसार की है। वही तो नर्क की ज्योति है। वही तो अंधकार है। उसी ने तो तुम्हें पीड़ा दी है, सताया है। उसी से बिंधे तो तुम पड़े हो। वही तो तुम्हारी छाती में लगा विषाक्त तीर है। सदगुरु उसे खींचेगा। उसके खींचने में ही तुम मरोगे। सदगुरु तो मृत्यु है तुम्हारी; जैसे तुम हो।
यद्यपि उसी मृत्यु के बाद तुम्हें पहली दफा उसका दर्शन होता है, जो वस्तुतः तुम हो।
धोखा मरता है, सत्य तो कभी मरता नहीं। असत्य मरता है, सत्य की तो कोई मृत्यु नहीं।
आग में हम सोने को डाल देते हैं, कूड़ा-कर्कट जल जाता है, सोना कुंदन होकर बाहर आ जाता है।
गुरु तो आग है, अग्नि है। और इसीलिए गुरु ब्रह्म है। क्योंकि वहीं से तुम मिटते हो। और जहां तुमने मिटना सीख लिया, वहीं तुमने ब्रह्म होना सीख लिया।
गुरु सूली है। लेकिन उसी सूली पर लटककर तुम्हें पहली दफा पता चलता है
कि जो सूली पर मर गया वह मैं नहीं था। इधर सूली लगी, उधर सिंहासन मिला। इस तरफ सूली है, उस तरफ सिंहासन है। तुम्हें सूली भर दिखाई पड़ती है।
तुमने जीसस के चित्र देखे होंगे; सूली को अपने कंधे पर ढोते हुए, गोलगोथा की पहाड़ी पर वे जा रहे हैं। सूली ठोंक दी गई जमीन में, उन्हें सूली पर लटका दिया गया है। लेकिन ये अधूरे चित्र हैं। ये चित्र जीसस की नजर से नहीं बनाए गए। ये जिन लोगों ने देखा होगा गोलगोथा की सड़क पर जीसस को सूली ले जाते, उनकी स्मृतियां हैं। यह चित्रकार ने बाहर से देखकर बनाया है। जीसस से तो पूछो! जीसस सूली ढो रहे हैं? नहीं, जीसस तो अपने सिंहासन की तैयारी कर रहे हैं। यह सूली तो सिंहासन की सीढ़ी बनेगी।
इस तरफ सूली है, उस तरफ सिंहासन है। दृश्य में सूली है, अदृश्य में सिंहासन है। रूप में सूली है, अरूप में सिंहासन है। आकार में सूली है, आकार की सूली है, निराकार में सिंहासन है, निराकार का सिंहासन है।
तो जिन्होंने जीसस को केवल सूली ढोते देखा वे जीसस को देख ही नहीं पाए। जिस दिन तुम्हें जीसस की सूली में सिंहासन दिखाई पड़ जाए उस दिन तुम अर्थ समझोगे। उस दिन तुम्हें पहली दफा सूली सूली न लगेगी। सूली परम कृतज्ञता का कारण बन जाएगी।
गुरु के चरणों में धन्यवाद सदा के लिए रहता है क्योंकि यही है, जिसने मिटने का बोध दिया। न मिटते, न हो सकते। यही है, जिसने मिटाया। मिटाया तो बनने की शुरुआत हुई। झाड़ी धूल, तो दर्पण निखरा।

लेकिन तुम जिसे जिंदगी कहते हो, गुरु उसे जिंदगी नहीं कहता। और तुम जिसे मृत्यु कहते हो, गुरु उसे मृत्यु नहीं कहता। अलग भाषाएं हैं, अलग आयाम हैं। दो लोक बड़े भिन्न-भिन्न हैं। गुरु कुछ और भाषा बोलता है। वह तुम्हारे लिए अटपटी है।
मध्ययुग में भारत में उस भाषा का नाम ही अलग हो गया--सधुक्कड़ी; उलट बांसुरी। साधुओं की भाषा। उल्टी भाषा। जहां मृत्यु जीवन का पर्याय है। और जहां सूली सिंहासन का पर्याय है। तुम्हारे भाषाकोश में कुछ और लिखा है। गुरु के पास आकर तुम्हें नई भाषा सीखनी होगी। कष्टपूर्ण है। क्योंकि तुमने अपनी भाषा को खूब कंठस्थ कर लिया है। वह तुम्हारे रोएं-रोएं में समा गई है।
तुम जब मुझे सुनते हो, तब तुम मुझे थोड़े ही सुनते हो। तुम तत्क्षण उसका भाषांतर करते हो। तुम उसका अनुवाद करते हो। इधर मैं कुछ कहता हूं, तुम तत्क्षण अपनी भाषा में उसका अनुवाद कर लेते हो, भाषांतर कर लेते हो। जब तुम यह छोड़ोगे, तभी तुम मेरे पास आओगे। तुम्हारी भाषा मेरे और तुम्हारे बीच बाधा है।
कल मैं एक गीत पढ़ता थाः
जिंदगी से उन्स है, हुस्न से लगाव है
धड़कनों में आज भी इश्क का अलाव है
दिल अभी बुझा नहीं
--इसे लोग दिल का न बुझना कहते हैं।
जिंदगी से उन्स है
--राग है जीवन से।
हुस्न से लगाव है
--सौंदर्य के लिए अभी तड़फ है, आकांक्षा है।
धड़कनों में आज भी इश्क का अलाव है।
और अभी भी धड़कनों में राग की, आसक्ति की आंच है।
दिल अभी बुझा नहीं
अगर तुम मुझसे पूछो तो इन्हीं कारणों से तुम्हारा दिल जल नहीं पा रहा है। बुझने की तो बात ही दूर है, जला ही नहीं। इन्हीं के कारण तो दिल पर राख पड़ गई है।
रंग भर रहा हूं मैं खाक-ए-हयात में
आज भी हूं मुनहमिक फिक्रे-कायनात में
गम अभी लुटा नहीं
हर्फे-हक अजीज है, जुल्म नागवार है
अहदे-नौ से आज भी अहद अस्तवार है
मैं अभी मरा नहीं
तुम जिसे जिंदगी कहते हो... तुम जब कहते हो, "मैं अभी मरा नहीं", तो तुम बड़ी अजीब बातें कह रहे हो। अगर तुम्हारे स्वप्न में अभी भी प्राण अटके हैं तो तुम कहते हो, "मैं अभी मरा नहीं। दिल अभी बुझा नहीं।"
अगर कामना अभी भी तुम्हें तड़फाती है और वासना के दूर के सुहावने ढोल तुम्हें अभी भी बुलाते हैं तो तुम कहते हो, दिल अभी बुझा नहीं।
जहां कुछ भी नहीं है, वहां तुम चित्त से रंग भरते हो। जहां कुछ भी नहीं है, जहां कोरा पर्दा है, वहां तुम कल्पनाओं, वासनाओं, तृष्णाओं के बड़े रंगीले इंद्रधनुष बनाते हो। और कहते होः
मैं अभी मरा नहीं
हर्फे-हक अजीज है, जुल्म नागवार है
अहदे-नौ से आज भी अहद अस्तवार है
मैं अभी मरा नहीं
इसी कारण तुम मुर्दा हो।
तुम जिसे जीवन कहते हो, उसे समझो मृत्यु। तब मैं जिसे मृत्यु कहता हूं, तुम तत्क्षण समझ जाओगे उसका अर्थ। तुम जिसे जीवन कहते हो, यह बड़ी क्रमिक मृत्यु है। आहिस्ता-आहिस्ता आत्मघात है। यह रोज-रोज, धीमे-धीमे मरते जाना है।

जिस दिन तुम यह समझोगे कि यह मृत्यु है, उस दिन पहली बार तुम्हें किसी
और जीवन की पुकार सुनाई पड़ेगी--कोई और आह्वान! उस दिन तुम धार्मिक हुए। उस दिन तुम्हारी आंखें अदृश्य की तरफ उठने लगीं। उस दिन तुम्हारे हाथ में थोड़ा-सा सही, छोटा सही, पतला सही, धागा आया, जिसके सहारे तुम सूरज तक पहुंच सकोगे।
तो मैं कहता हूं, गुरु मृत्यु है, गुरु ब्रह्म है; इन दोनों में कोई विरोध नहीं है।
गुरु इसीलिए ब्रह्म है क्योंकि वह मृत्यु है। गुरु सूली है क्योंकि
वह सिंहासन है। एक द्वार से मिटाता है, दूसरे द्वार से बनाता है। एक हाथ से मिटाता चलता है, दूसरे से बनाता चलता है। जो मिटने को राजी हैं, उन्हें बनने का सौभाग्य मिल जाता है। जो मिटने से कतराते हैं, वे बनने से वंचित रह जाते हैं।

तीसरा प्रश्नः ओशो!
सूली ऊपर सेज पिया की
किस विध मिलना होय?
प्रीतम आन मिलो,
नैना नीर झरे, हृदय पीर करे
प्रीतम आन मिलो।

सूली ऊपर सेज पिया की--सदा से ऐसा ही है। लेकिन सूली हमें दिखाई पड़ती
है क्योंकि हम नासमझ हैं। क्योंकि हमने अभी पिया की भाषा नहीं समझी; अभी पिया के प्रतीक हमारे सामने खुले नहीं। अभी हमने अपनी ही भाषा से पिया को भी समझना चाहा है। इसलिए लगता है--सूली ऊपर सेज पिया की।
घबड़ाहट होती है। कौन नहीं घबड़ाएगा मरने से? गुरु के पास आकर डर लगता है, बेचैनी होती है।
एक युवती परसों सांझ मेरे पास आयी। कैलिफोर्निया से यात्रा करके आयी है। और आकर बोली कि मैं तत्क्षण वापिस लौट जाना चाहती हूं। क्योंकि पहली तो बात यही मेरी समझ में नहीं आती कि मैं आयी क्यों? और अब आ गई हूं तो मुझे डर लगता है कि जिंदा अब मैं लौट न पाऊंगी। वह रोने लगी। उसने कहा कि मेरा बच्चा है, मेरा पति है। मुझे जाने दें।
उसे सूली दिखाई पड़ी है। लेकिन उस सूली में सिंहासन की थोड़ी-सी झलक भी है, इसीलिए खिंची चली आयी है--अपने बावजूद। उससे मैंने कहा, अब लौटना मुश्किल है। अब तो कठिन है। अब तो एक ही उपाय है, मरकर ही लौट। वह बहुत घबड़ा गई। क्योंकि अभी नई है और उसे मेरी भाषा से अभी ठीक-ठीक पहचान नहीं। उसने कहा, मरकर लौट? क्या मतलब आपका? मैंने कहा, नई होकर लौट। तब वह थोड़ी आश्वस्त हुई।
"सूली ऊपर सेज पिया की!"
सूली दिखाई पड़ती है; है तो सेज ही। है तो पिया का आमंत्रण ही। लेकिन जो मरने को राजी हैं, वही उसके मिलने के हकदार हो पाते हैं। इसलिए सूली ऊपर सेज पिया की।
अब डरो मत। हिम्मत करो। ऐसे भी मिटोगे। मरना तो होगा ही। एक ही बात सुनिश्चित है इस जगत में, वह मृत्यु। और सब तो अनिश्चित है। हो न हो; संयोग की बात है। एक बात सुनिश्चित है--मृत्यु। बड़ा अदभुत जीवन है। जीवन ऐसा जिसमें सिर्फ एक बात निश्चित है, वह मरना। बाकी सब अनिश्चित है। जो होगा ही, उसे स्वेच्छा से वरण करो। बस, इतना ही फर्क है समाधि में और मृत्यु में। जो जबर्दस्ती मारा जाता है, तब मृत्यु। मृत्यु हमारी समाधि की व्याख्या है क्योंकि हम राजी न थे मरने को। उसी व्याख्या के कारण हम चूक गए एक अभूतपूर्व घटना से।
बहुत बार तुम मरे हो। लेकिन हर बार झिझकते, लड़ते, झगड़ते, संघर्ष करते, मजबूरी में, विवश, असहाय मरे हो। इसीलिए तो हम कहते हैं, यमदूत आते हैं और खींचते हैं। कोई यमदूत नहीं आते। तुम इतने जोर से पकड़ते हो कि मौत लगती है,

खींच रही है। भैंसों पर बैठकर आते हैं यमदूत। बड़ी डरावनी सूरत! खींचते हैं, जबर्दस्ती करते हैं।
बड़ी गलत कहानियां हैं। कोई जबर्दस्ती नहीं करता। तुम जिंदगी को जबर्दस्ती पकड़ते हो। इसलिए जब जिंदगी हाथ से छूटने लगती है, तुम्हें लगता है जबर्दस्ती हो रही है। तुम अपने से छोड़कर तो देखो। तुम पाओगे, यमदूत विदा हो गए। तुम पाओगे, न कोई भैंसे हैं, न काली सूरतोंवाले यमदूत हैं; तुम अचानक पाओगे, परमात्मा हाथ फैलाए खड़ा है।
वही परमात्मा तुम्हारी जिंदगी की अतिशय पकड़ के कारण यमदूत मालूम होता है। तुम अगर राजी हो, तुम अगर उसके साथ चल पड़ने को तत्पर हो, तुम तैयार हो, इधर मौत आयी और तुम उठ खड़े हुए; और तुमने कहा, मैं तैयार हूं। कहां चलूं? किस तरफ चलूं? कौन-सी दिशा में यात्रा करनी है? मैं तेरी प्रतीक्षा ही करता था।
तुम अचानक पाओगे, यमदूत विदा हो गए। वे यमदूत तुम्हारी व्याख्या के कारण थे। तुमने एक दुश्मनी बांध रखी थी। जीवन से लगाव बनाया था और मृत्यु से द्वेष किया था। तुमने द्वेष गिराया मृत्यु से, जीवन से लगाव छोड़ा, तत्क्षण तुम पाओगे, जो अंधेरे की तरह आया था वह ज्योतिर्मय हो उठा है। तब तुम्हें यमदूत न दिखाई पड़ेंगे, शायद कृष्ण की बांसुरी सुनाई पड़े, या बुद्ध की परम शांत प्रतिमा का आविर्भाव हो, या महावीर का मौन तुम्हें घेर ले, या नाचती हुई गौरांग की प्रतिमा उठे। लेकिन एक बात तय है, कुछ घटेगा जो अनूठा है, अदभुत है, आश्चर्यजनक है, अवाक कर देनेवाला है। कुछ दुखद नहीं घटेगा, कुछ घटेगा जो महासुख जैसा है, स्वर्गीय है। पर देखने के, सोचने के, व्याख्या के ढंग बदलो।
"सूली ऊपर सेज पिया की, किस विध मिलना होय।"
और जब एक दफा सूली दिखाई पड़ती है तो फिर सवाल उठता है, किस विध मिलना होय? क्योंकि वह सूली अटकाती मालूम पड़ती है। सूली को कैसे पार करें?
तुम बिना मरे परमात्मा में लीन होना चाहते हो। यह नहीं हो सकता। यह तो ऐसा हुआ कि गंगा कहे, मैं बिना उतरे सागर में लीन होना चाहती हूं। बूंद कहे, मैं बिना उतरे सागर में, सागर होना चाहती हूं। यह तो नहीं हो सकता। यह तो जीवन के गणित के विपरीत है।
बूंद को खोना होगा। गंगा को उतरना होगा।
सागर मिलेगा, बेशर्त मिलेगा, पूरा मिलेगा, लेकिन उतरे बिना कभी नहीं मिला है, कभी नहीं मिलेगा।
सूली को देखना बंद करो तो दूसरा सवाल उठना बंद हो जाए--किस विधि मिलना होय?
मरना ही विधि है। सूली विधि है। और सूली के कारण तुम घबड़ाते हो। तुम कहते हो, किस विधि मिलना होय? कोई रास्ता बताएं कि सूली से बचकर निकल जाएं, कि इधर-उधर से निकल जाएं। सूली यहां रही, रही आए, हम जरा पीछे के दरवाजे से निकल जाएं।
सूली विधि है। अगर तुम मुझसे पूछो, मरना विधि है।
"किस विध मिलना होय?"
मरो! मिटो! खो जाने को राजी हो जाओ।
"प्रीतम आन मिलो"--तुम मिटे कि प्रीतम मिले।
ऐसे चीखने-पुकारने से कुछ भी न होगा। सूली से डरते रहे और कहते रहे, "प्रीतम आन मिलो", तो कुछ भी न होगा।
"नैना नीर झरे, हृदय पीर करे
प्रीतम आन मिलो।"
नहीं, इतना काफी नहीं है। तुम तुम ही हो। और तुम तुम ही रहकर आंसू भी गिरा रहे हो। वे आंसू भी तुम्हारे हैं। उन आंसुओं में भी तुम्हारी भाषा है। उन आंसुओं में भी तुम्हारे संस्कार हैं। उन आंसुओं में भी तुम्हारी दृष्टि है। तुम्हारी आंख के आंसू हैं, तुम्हारी दृष्टि से भरे हैं। उन आंसुओं में भी तुम गौर से देखोगे तो सूली ही झलक रही है। जैसी तुम्हारी आंख में झलक रही है, तुम्हारे आंसुओं में भी सूली झलक रही है। वे तुम्हारी घबड़ाहट के आंसू हैं। वे तुम्हारी बेचैनी के आंसू हैं।

सूली को स्वीकार करो। तब एक अभिनव अनुभव होगा। आंसू फिर भी शायद बहें, लेकिन अब आनंद के होंगे। और आंसुओं में सिंहासन की झलक होगी। और तब तुम्हें कहना न पड़ेगा, प्रीतम आन मिलो। उस घड़ी में मिलन हो ही जाता है। अन्यथा कभी हुआ नहीं, अन्यथा हो नहीं सकता। इधर तुम मिटे कि मिलन हुआ। तुम ही बाधा थे। और तो कुछ रोक नहीं रहा था। तुम ही रोके हो।
"नैना नीर झरे, हृदय पीर करे"--अभी तुम्हारी पीर में भी, पीड़ा में भी तुम हो। तुम रोते भी हो तो तुम्हारे आंसू कुंआरे नहीं हैं। तुम पीर से भी भरते हो तो तुम्हारी पीड़ा में भी शिकायत है। तुम्हारी पीड़ा में भी दंश है। तुम्हारी पीड़ा में तुम्हारा सारा संसार छिपा है।
मंदिरों में जाकर देखो। लोग प्रार्थनाएं कर रहे हैं, मांगते क्या हैं? आंसू झर रहे हैं, मांगते क्या हैं? मांगते संसार की चीजें हैं। हाथ फैलाए हैं परमात्मा की तरफ, लेकिन परमात्मा को नहीं मांगते। परमात्मा से भी दो कौड़ी की चीजें मांगकर आ जाते हैं; कि दुकान ठीक चले, कि मुकदमा जीत जाएं, कि किसी स्त्री से विवाह हो जाए, कि लड़के को नौकरी लग जाए, कि बीमारी दूर हो जाए। तुम मांगते क्या हो?
तो तुम्हारे आंसू बड़े झूठे थे। अब जो आदमी मांग रहा है कि मुझे बीमारी है, वह दूर हो जाए--वह रो रहा है, लेकिन उसके रोने में परमात्मा की प्रार्थना तो नहीं है। उसके आंसुओं में बीमारी की, असहाय अवस्था की घोषणा तो है, लेकिन जीवन का धन्यभाव नहीं है, अहोभाव नहीं है।
जरा गौर करना, तुम्हारे आंसू तुम्हारे हैं। तुम गलत हो तो तुम्हारे आंसू भी गलत हैं। और तुम्हारा हृदय तुम्हारा है। तुम गलत हो तो तुम्हारे हृदय की पीर भी गलत है।
जिसे तू इंतहा-ए-दर्दे-दिल कहता है ऐ नादां
वही शौक-ए-वफा की इब्तदा मालूम होती है
जिसे तुम समझते हो कि यह दिल के दर्द की चरम सीमा है, यह केवल प्रेम की शुरुआत है, चरम सीमा नहीं।
जिसे तू इंतहा-ए-दर्दे-दिल कहता है ऐ नादां
ऐ नासमझ! जिसे तू कहता है कि यह दिल के दर्द की आखिरी घड़ी आ गई--नैना नीर झरे, हृदय पीर करे--वही शौक-ए-वफा की इब्तदा मालूम होती है। यह केवल शुरुआत है। यह प्रेम की यात्रा का पहला कदम है। और परमात्मा से मिलन तो अंतिम कदम पर होगा, पहले कदम पर नहीं।
और पहले कदम और अंतिम कदम के बीच यात्रा क्या है? --तुम्हारे मिटने की यात्रा है। तुम धीरे-धीरे अपने को छोड़ते जाओ। छलांग में छोड़ सको तो सौभाग्य। कंजूस हो तो धीरे-धीरे छोड़ो, क्रमशः छोड़ो। कृपण हो तो इंच-इंच छोड़ो, रत्ती-रत्ती त्याग करो। साहसी हो, एक क्षण में छलांग हो सकती है। कह दो एक क्षण में कि अब मैं नहीं। उसी क्षण में तुम पाओगे, परमात्मा उतर आया। इधर तुमने जगह खाली की, कि वह आया।
तुम भीतर के सिंहासन पर अकड़कर बैठे हो। वहीं से तुम पूछताछ कर रहे हो। वहां से जगह खाली नहीं करते, बातें करते हो। अच्छी-अच्छी बातें सीख ली हैं--"प्रीतम आन मिलो। नैना नीर झरे, हृदय पीर करे।"
काव्य से कुछ भी न होगा। कविता काफी नहीं है। सुंदरतम कविताएं करो, लेकिन केवल जीवन से प्रमाण दोगे तो ही कुछ होगा। मिटने की तैयारी दिखाना शुरू करो।
चौबीस घंटे स्मरण रखो कि कैसे-कैसे ढंग से तुम अपने को भरते हो और अहंकार को सख्त करते हो, मजबूत करते हो। जरा-जरा सी बात में अहंकार मजबूत होता है। जरा-जरा सी बात में अहंकार चोट खाता है। चोट खाए सांप की तरह फुफकारता है।
इसे जागकर देखो। इस सांप से छुटकारा पाओ। ऐसे जीयो, जैसे तुम नहीं हो। ऐसे जीयो, जैसे परमात्मा है और तुम नहीं हो। कोई गाली दे तो समझो, उसी को दी गई। तुम परेशान मत होओ। कोई सम्मान करे तो समझो, उसी का किया गया। तुम गौरवान्वित मत होओ। तुम अहंकार से मत भरो। कांटा चुभे तो जानो, उसी को चुभा। फूल बरसें तो जानो उसी पर बरसे। तुम अपने को हटा ही लो। भूख हो तो

उसकी, प्यास हो तो उसकी। प्रसन्नता हो तो उसकी, तृप्ति हो तो उसकी। तुम अपने को हटा ही लो।
तब--केवल तब ही उस महत का पदार्पण होता है।

चौथा प्रश्नः मिठास की याद भी मुंह को स्वाद से भर देती है। प्रकाश का स्मरण अंतस को आलोक और ऊष्मा से भर देता है। मैंने सुना था कि "ध्यानमूलं गुरुमूर्तिः।" और मुझे आपका स्मरण एक प्रगाढ़ रसमयता, आनंद और तन्मयता से भर जाता है। जब मेरी चाल में हर क्षण घूंघर की तरह आपकी धुन बजती है, जब मेरे रोम-रोम में ध्यानमूर्ति, प्रेममूर्ति और गुरुमूर्ति आप बसते हैं तो अब मैं ध्यान को कहां रखूं?

प्रेम जग जाए तो ध्यान की चिंता छोड़ो। प्रेम के पीछे-पीछे छाया की तरह चला आएगा ध्यान। छाया को रखने के लिए कोई स्थान तो नहीं बनाना पड़ता। तुम घर में आते हो, तुम्हारे लिए जगह चाहिए। तुम्हारी छाया के लिए तो कोई अलग से जगह नहीं चाहनी होती। छाया तो कोई जगह घेरती नहीं।
अगर प्रेम आ गया तो ध्यान छाया की तरह आता है; उसके लिए कोई अलग से जगह बनाने की जरूरत नहीं है। अगर ध्यान आ गया तो प्रेम छाया की तरह आता है। फिर प्रेम को अलग से बसाने की कोई जरूरत नहीं। एक साधै सब सधै।
जिसने पूछा है, उसके लिए प्रेम ही अनुकूल पड़ेगा। ध्यान का शास्त्र बाधा बनेगा।
तुम प्रार्थना की चर्चा करो, पूजा की, अर्चना की चर्चा करो, धूप-दीये जलाओ, नाचो, गुनगुनाओ, आह्लादित होओ। प्रार्थना में उतरो। तुम्हारा मंदिर प्रार्थना की यात्रा से आएगा।
जिसने पूछा है, वह इसे ठीक से याद रखे। ध्यान की चिंता में मत पड़ो। अक्सर ऐसा होता है। मन बड़ा लोभी है। प्रेम सधता है तो मन में यह होता है कि अरे! ध्यान नहीं सध रहा है। कहीं ऐसा तो न होगा कि आखिर में मैं चूक जाऊं! उधर वह पीछे मंजु बैठी है। उसको भी फिकर लगी रहती है कि ध्यान नहीं सध रहा भगवान! प्रेम सध रहा है। तो घबड़ाहट लगी रहती है कि कहीं ऐसा तो न होगा कि ध्यान चूक जाए तो कुछ चूक जाए!
प्रेम मिल गया तो मिल गया। ध्यान भी अपने आप चला आएगा। फूल खिल गए, सुगंध अपने आप फैलेगी। लेकिन इस चिंता के कारण बाधा पड़ सकती है।
तो अपनी वृत्ति को ठीक से पहचान लेना। अगर प्रेम में तन्मयता आती हो, छोड़ दो ध्यान। शब्द ही भूल जाओ। यह शब्द तुम्हारे लिए औषधि नहीं है। यह औषधि किसी और के लिए होगी। तुम्हारे रोग की औषधि तुम्हें मिल गई, रामबाण औषधि मिल गई। अब तुम फिक्र छोड़ो।
तुमने देखा! केमिस्ट की दुकान पर लाखों औषधियां रखी हैं। तुम अपना प्रिस्क्रिप्शन लेकर गए, तुम्हें अपनी औषधि मिल गई। डाली अपनी झोली में, चल पड़े। तुम इसकी फिक्र नहीं करते कि इन सब औषधियों में से और तो कुछ ले लें। इतनी दुकान पर औषधियां रखी हैं, एक ही लेकर चले? इतने से कहीं काम हल होगा! तुम्हारी बीमारी की औषधि मिल गई, बात पूरी हो गई।
तो अगर प्रेम से रस झर रहा हो तो तुम भाषा प्रेम की सीखो। कंठ को भरो उमंग से। ध्यानी तो खोज रहा है, इसलिए ध्यानी थोड़ा रूखा-सूखा होगा ही। भक्त ने तो पा ही लिया। ध्यानी अंत में कहेगा, रसधार बही। भक्त पहले दिन से कहता है कि रसधार बही। भक्त के लिए पहला दिन आखिरी दिन जैसा है। महावीर भी कहते हैं, अतिशय हो जाता रस का, अतिरेक हो जाता रस का, लेकिन आखिरी घड़ी में होगा ध्यानी के लिए। भक्त पहले कदम से ही नाचने लगता है। उसका भरोसा ऐसा है। उसकी श्रद्धा ऐसी है। जो ज्ञानी को सोच-सोचकर, चिंतन कर-करके, मनन कर-करके, निदिध्यास्न कर-करके मिलता है, भक्त श्रद्धा से पा लेता है।
अब तू चाहे आंख दिखाए, अब तू चाहे कसम खिलाए
जब तक साथ न तू गाएगा, मैं भी गीत न गाऊंगा
भक्त तो भगवान से भी मनुहार लेने लगता है। वह तो रूठ भी जाता है भगवान से, कि अगर तू नहीं गाएगा साथ, तो हम भी न गाएंगे।
अब तू चाहे आंख दिखाए, अब तू चाहे कसम खिलाए

जब तक साथ न तू गाएगा, मैं भी गीत न गाऊंगा
आंसू के द्वारे कटी सुबह, दुख के घर बीती दोपहरी अब जाने डोला कहां रुके, अब जाने शाम कहां पर हो बरसात भिगोकर पलक गई, तन झुलसाकर पतझर लौटा
खंडहर घर को कर जेठ चला, पनघट मरघट बनकर लौटा
पी डाली उम्र सितारों ने, चुन डाले गीत बहारों ने लौटा तो गेह मुसाफिर यह, खाली ही हाथ अगर लौटा
दिन एक मिला था सिर्फ मुझे, मिट्टी के बंदीखाने में
आधा जंजीरों में गुजरा, आधा जंजीर तुड़ाने में
प्राणों को पकड़े खड़ी देह, पांवों को जकड़े पड़ा गेह
अब जाने इतने पर्दों में बेपर्दा श्याम कहां पर हो?
अब तू चाहे आंख दिखाए, अब तू चाहे कसम खिलाए
जब तक साथ न तू गाएगा, मैं भी गीत न गाऊंगा
पर्दे बहुत हैं। भक्त कहता है, अब मैं कहां खोजता फिरूं? किन-किन पर्दों को उठाऊं? अब तू ही मुझे खोज ले। और दुख मैंने बहुत उठाए। सारी जिंदगी दुख उठाने में बीती। सारी जिंदगी सुख की आशा करने में, दुख को काटने में गुजारी। अब बहुत हो गया। अब मैं दुख को काटने की फिकर नहीं करता, और न सुख की तलाश करता हूं; अब मैं सुखी होता हूं।
इस बात को ख्याल में लेना। भक्त कहता है, अब मैं सुख की खोज नहीं करता,
अब मैं सुखी होता हूं। अब इस क्षण से खोज बंद हुई। अब मैं नाचूंगा। अब मैं आनंदित हूं। अब मैंने तय कर लिया कि खोजने से नहीं मिलता, खो जाने से मिलता है।
भक्त की श्रद्धा बड़ी अनूठी है। अगर श्रद्धा का सूत्र हाथ में हो तो तुम ध्यान की चिंता छोड़ दो। अगर तुम श्रद्धा कर सकते हो तो धन्यभागी हो। अगर संदेहशून्य मन से, जो मैं तुमसे कह रहा हूं उसकी मिठास तुम्हें अनुभव होती है, अगर मुझे सुनकर तुम्हारे अंतस में आलोक प्रगाढ़ होता है, ऊष्मा भरती है तो फिर तुम ध्यान के लिए अलग से जगह बनाने की सोचो ही मत। तुम्हारा ध्यान तुम्हें मिल गया।
प्रेम तुम्हारा ध्यान है।
अब इसमें व्याघात मत डालो, व्यवधान मत डालो। यह जो पूछ रहा है, यह मन है। यह मन कह रहा है, ध्यान का क्या? यह तो प्रेम है, ठीक; यह तो भक्ति है, ठीक; लेकिन ध्यान का क्या? मन एक बिबूचन पैदा कर रहा है।
तुम ध्यान की चिंता में पड़ गए कि भक्ति खो जाएगी। और ध्यान तो मिलेगा
कि नहीं पक्का नहीं है, भक्ति खो जाएगी यह पक्का है।
और जिस मन ने अभी बाधा खड़ी की है, कल अगर कभी तुम्हारा ध्यान भी जमने लगे, सधने लगे, तो यही मन कहेगा, ठीक है, ध्यान तो ठीक है; लेकिन प्रेम का क्या? भक्ति का क्या? यह ध्यान तो सूखा-सूखा है, मरुस्थल है। इसमें रसधार कहां बहेगी? इसमें नाचोगे कैसे? इससे शांति तो मिल जाएगी लेकिन आनंद? नाचता हुआ आनंद, नर्तन करती हुई दिव्यता कहां मिलेगी?
ऐसे मन तुम्हें डांवांडोल करेगा। मन की आदत यही है। तुम जहां हो, वह तुम्हें कहीं और के सपने दिखाता है। वह कहता है, कहीं और होना चाहिए। वह तुमसे कहता है, इससे बेहतर जगह है। और इसलिए तुम जहां हो, वहां से चुका देता है।
और अगर तुम इस अभ्यास में बहुत ज्यादा कुशल हो गए--चूकने के अभ्यास में--तो तुम हर जगह चूकते चले जाओगे। तुम स्वर्ग में भी होओगे तो भी मन तुमसे कहेगा, पता नहीं नर्क में क्या हो रहा है! हो सकता है, लोग वहां ज्यादा मजा उठा रहे हों।
मैंने तो सुना है, एक फकीर मरा और स्वर्ग पहुंचा। तो वह बड़ा चकित हुआ स्वर्ग में प्रवेश करके। क्योंकि उसने देखा, कई लोग जंजीरों से बंधे हैं। उसने जो देवदूत उसे अंदर ले जा रहा था, उससे पूछा कि मेरी यह समझ के बाहर है। मैंने तो सुना था, स्वर्ग मुक्ति है। और यहां भी जंजीरें बंधी हैं? इसे देखकर तो मेरी घबड़ाहट बढ़ती है। यह मामला क्या है? ये लोग बंधे क्यों हैं?

उसने कहा कि ये लोग नर्क जाना चाहते हैं इसलिए जंजीरें डालना पड़ीं।
ये लोग एकदम उतावले हो रहे हैं। ये कहते हैं, स्वर्ग तो देख लिया, अब नर्क देखना है। ये कहते हैं, यहां तो ऊब आने लगी। देख लिया, जो देखना था। पता नहीं नर्क में कहीं ज्यादा मजा हो!
मन ऐसा है। स्वर्ग भी पहुंच जाओगे तो भी चैन से न बैठने देगा। अब जिसने पूछा है, "मिठास की याद भी मुंह को स्वाद से भर देती है।" जब याद इतने स्वाद से भर रही है तो चल पड़ो। स्मरण तुम्हारा मार्ग है, सुरति तुम्हारी विधि है। अब इस मिठास में डूबो। मिठास हो जाओ।
"प्रकाश का स्मरण अंतस को आलोक से, ऊष्मा से भर देता है। मैंने सुना था
कि ध्यानमूलं गुरुमूर्तिः। और मुझे आपका स्मरण एक प्रगाढ़ रसमयता, आनंद और तन्मयता से भर देता है... ।"
तो फिर अब बैठे-बैठे क्या कर रहे हो? तो फिर रुके क्यों हो? जहां से रस बहे, जानना वहीं सत्य है। रस सत्य की खबर लाता है। रसो वै सः। उस परमात्मा का स्वभाव रस है। जहां से रस बहे, समझना परमात्मा छिपा है। पत्थर से बहे, तो प्रतिमा हो गई वह परमात्मा की। भोजन से बहे, तो अन्न ब्रह्म हो गया। संगीत से आए तो संगीत अनाहत का नाद हो गया। जिस व्यक्ति की उपस्थिति में लगने लगे वह रस, तो उपस्थिति उसकी भगवतस्वरूप हो गई। वह व्यक्ति भगवान हो गया।
जहां से रस मिल जाए, चल पड़ना उस तरफ अंधे की भांति। फिर आंखों को रख देना। इन आंखों का काम तो तभी तक था, जब तक रस का पता न हो। यह आंखों से टटोल-टटोलकर चलना तभी तक ठीक था, जब तक रस का पता न हो। जब रस की झलक मिलने लगी, तो अब सब छोड़ो समझदारी। अब हो जाओ नासमझ। अब हो जाओ पागल। अब हो जाओ उन्मत्त। दा.ैड पड़ो। अब चलने से काम न चलेगा। आंधी-अंधड़ की तरह चल पड़ो परमात्मा की तरफ।
"जब मेरी चाल में हर क्षण घूंघर की तरह आपकी धुन बजती है, जब मेरे रोम-रोम में ध्यानमूर्ति, प्रेममूर्ति और गुरुमूर्ति आप बसते हैं तो अब मैं ध्यान को कहां रखूं?"
अब ध्यान को रखकर करोगे क्या? अब ध्यान की जरूरत कहां रही? यह तो ऐसा हुआ कि किसी अंधे को आंखें मिल गईं और अब वह पूछता है कि यह मेरी लक.ड़ी, जिससे मैं टटोल-टटोलकर चलता था जब मैं अंधा था, तो अब इस लकड़ी का क्या करूं? और कहां रखूं? मैं इसको छोड़ तो सकता नहीं, क्योंकि इसने कितना साथ दिया है! अंधा था तो इसी से टटोल-टटोलकर चलता था। आंखें तो आज मिलीं, अंधा तो जन्मों से था। लकड़ी ने जन्मों साथ दिया, इसे कैसे छोड़ दूं?
प्रेम मिल गया तो ध्यान की कोई जरूरत नहीं। ध्यान मिल गया तो प्रेम की कोई चिंता नहीं। दो में से एक सध जाए। और दोनों के बीच अपने मन को डांवांडोल मत करना, अन्यथा तुम त्रिशंकु हो जाओगे।
और जब मैं कह रहा हूं, एक सध जाए तो मेरा मतलब यही है कि एक के सधते दूसरा अनायास अपने आप सध जाता है।
उजाड़ से लगा चुका उम्मीद मैं बहार की
निदाघ से उम्मीद की, वसंत की बयार की
मरुस्थली मरीचिका सुधामयी मुझे लगी
अंगार से लगा चुका उम्मीद मैं तुषार की
कहां मनुष्य है जिसे न भूल शूल सी गड़ी
इसीलिए खड़ा रहा कि भूल तुम सुधार लो
इसीलिए खड़ा रहा कि तुम मुझे पुकार लो
पुकार कर दुलार लो, दुलार कर सुधार लो
ध्यानी कहता है, मैं अपने को सुधारूंगा। ध्यानी का अर्थ हैः सारा दायित्व मेरे ऊपर है।
प्रेमी का अर्थ हैः इसीलिए खड़ा रहा कि भूल तुम सुधार लो। कि तुम मुझे पुकार लो, कि पुकार कर दुलार लो, कि दुलार कर सुधार लो।
प्रेमी का अर्थ है, कि वह कहता है, कि मैंने छोड़ दिया तुम्हारे हाथों में। अब तुम सुधार लो। मेरे किए न होगा। मेरे किए होगा भी कैसे? मैं गलत

हूं, मैं जो करूंगा वह और गलती को बढ़ाएगा। मैं नासमझ हूं। मैं जो करूंगा उससे नासमझी और उलझ जाएगी। मैं वैसे ही उलझा हूं।

तुमने कभी देखा, कोई चीज उलझी हो, सुलझाने जाओ तो और उलझ जाती है। मैं वैसे ही भ्रम में हूं। अब इसमें और उपद्रव करूंगा तो और कीचड़ मच जाएगी। प्रेमी की दृष्टि और है। वह कहता है, कि मैंने तुम्हारे हाथों में छोड़ा अपने को। तुम मुझे बना सके तो तुम मुझे सुधार न सकोगे? तुम मुझे जीवन दे सके तो तुम मुझे ज्योति न दे सकोगे? तुमने बिन मांगे जीवन दिया, तुमने बिन मांगे अहोभाग्य बरसाया, तो मांगता हूं तुमसे, ज्योति न दे सकोगे? बिन मांगे जीवन देते हो, मांगे ज्योति न दोगे?
प्रेमी परमात्मा पर छोड़ रहा है। और इसी छोड़ने में क्रांति घटनी शुरू
हो जाती है। क्योंकि जैसे ही तुमने उस पर छोड़ा, तुम्हारा अहंकार मिटना शुरू हुआ। और अहंकार मूल है सारे उपद्रव का, सारी भूलों का, सारे पाप का, सारी नासमझियों का। अहंकार द्वार है नर्क का।
तो जिसने पूछा है--कृष्ण गौतम का प्रश्न है--उससे मैं कहता हूंः
आगा.ज जो अच्छा है, अंजाम बुरा क्यों हो?
नादां है जो कहता है, अंजाम खुदा जाने!
जब प्रारंभ अच्छा है, अंत भी अच्छा होगा। तुम फिक्र छोड़ो। नासमझ है,
जो कहता है कि शुरुआत तो बड़ी अच्छी हो रही है, परिणाम परमात्मा जाने! जब शुरुआत अच्छी है तो परिणाम भी अच्छा होगा। जब बीज मिठास के और रस के हैं तो फल भी रस के और मिठास के होंगे।
तुम चल पड़ो। अब तुम बैठे-बैठे विचार मत करो। चिंतन अक्सर आलस्य बन जाता है। बहुत सोच-विचार करनेवाले लोग चलने की बात भूल ही जाते हैं। इसलिए दार्शनिक कुछ भी नहीं कर पाते। सोचते-सोचते जीवन गंवा देते हैं। करने के लिए मौका ही नहीं बचता, समय नहीं बचता, शक्ति नहीं बचती।
मैंने सुना है, पहले महायुद्ध में एक दार्शनिक भर्ती हुआ। युद्ध में जरूरत थी, सभी भर्ती किए जा रहे थे, वह भी भर्ती कर लिया गया। लेकिन बड़ी कठिनाई हुई। क्योंकि जो इसे शिक्षण दे रहा था वह बड़ी परेशानी में पड़ गया। वह कहे, "बायें घूम।" सारी दुनिया घूम जाए, वह वहीं खड़ा है। तुम खड़े क्यों हो? वह कहता, जब तक मैं सोच न लूं कि बायें घूमूं क्यों? आखिर बायें घूमने से फायदा क्या है? और फिर दायें घूमना पड़ेगा, तो यहीं क्यों न खड़े रहो? आखिर वह जो शिक्षण देनेवाला था, परेशान हो गया। उसने कहा कि तुम किसी काम के नहीं हो। अगर तुम इतना सोच-विचार करोगे तो युद्ध के मैदान पर क्या होगा? इतना सोच-विचार सैनिक के लिए नहीं है। मगर अब तुम भर्ती हो ही गए हो तो कोई तो काम देना।
तो उसे मेस में भेज दिया--भोजनालय में--कि वहां तुम कुछ काम करो। पहले
ही दिन उसको मटर के दाने दिए, कि बड़े-बड़े एक तरफ कर लो, छोटे-छोटे एक तरफ कर दो।
घंटेभर बाद जब उसका शिक्षक आया तो दाने वैसे के वैसे रखे थे और वह माथे से हाथ लगाए--जैसे रोडेन की प्रतिमा है न! विचारक--वैसे बैठा था। "तुम क्या कर रहे हो? कुछ किया नहीं?"
उसने कहा, "मैं यही तो सोच-विचार में पड़ा हूं। बड़े एक तरफ कर दूं, छोटे
एक तरफ कर दूं, कुछ मझोल हैं; इनको कहां करना? और जब तक सब बात साफ न हो जाए तब तक कोई भी कृत्य करना खतरे से खाली नहीं है। मैं सोच-विचारवाला आदमी हूं।"
गौतम! दार्शनिक होने की कोई जरूरत नहीं। अब ध्यान की चिंता छोड़ो। तुम्हें जिससे संगति बैठ सकती है, वह स्वर बजा है। अब चल पड़ो। अब श्रद्धा से भरपूर, भरोसे से। सोच-विचार एक तरफ रखकर, अब दौड़ो।

पांचवां प्रश्नः वहां तक आया हूं, जहां लगता है कि कुछ हो सकता है। अब कोई भय नहीं मालूम देता। ओशो, प्रणाम! प्रणाम!! प्रणाम!!!

शुभ है ऐसी घड़ी, जब ऐसा भाव सघन होने लगे कि अब कुछ हो सकता है। मनुष्य
के जीवन में सर्वाधिक महत्व की घड़ी यही घड़ी है, जब भरोसा आता है कि अब कुछ हो सकता है।
अन्यथा साधारणतः तो भरोसा आता ही नहीं कि कुछ, और मुझे हो सकेगा? और उस गैर-भरोसे का भी कारण है। जन्मों-जन्मों से कुछ न हुआ, आज अचानक कैसे हो सकेगा? अनंत काल में न हुआ, आज कैसे हो सकेगा?
इसलिए इस जगत में सबसे बड़ी महत्वपूर्ण घटना, जहां से और महत्वपूर्ण घटनाओं की शुरुआत होती है, वह इस क्षण का आ जाना है, जब तुम्हें यह लगे कि हां, मुझे कुछ हो सकता है।
इसीलिए तो लोग बुद्ध पर, महावीर पर, कृष्ण पर, क्राइस्ट पर भरोसा नहीं करते। क्योंकि उनको लगता है, जब हमें नहीं हो सकता तो किसी को कैसे हुआ होगा? आखिर हम भी मनुष्य जैसे मनुष्य हैं--हड्डी, मांस, मज्जा के बने। जैसे तुम थे--महावीर हो, कि बुद्ध हो, कि कृष्ण हो, कि क्राइस्ट हो। हम भी जन्मे, तुम भी जन्मे। हम भी मरण की तरफ जा रहे हैं, तुम भी मरे। हमें भी भूख लगती है, तुम्हें भी लगती है। हमारा भी शरीर जीर्ण-शीर्ण होता है, वृद्ध होता है, तुम्हारा भी हुआ। हमारी भी कमर झुक गई, तुम्हारी भी झुक जाएगी, तुम्हारी भी झुक गई थी।
तो अंतर कहां है? हमारे जैसे मनुष्य! हमें नहीं हुआ, हमें नहीं घटा वह अघट, हमारे जीवन में नहीं उतरा आकाश। हमारा आंगन तो सिकुड़ता ही गया। आकाश के तो दर्शन ही नहीं हुए। हमारे तो झरोखे बंद ही होते गए। कभी कोई खुला प्रकाश, सूरज का दर्शन न हुआ, तो तुम्हें कैसे हुआ होगा? या तो तुम धोखा दे रहे हो, या तुम भ्रम में पड़े हो, या तो तुम सिर्फ बातचीत कर रहे हो और या फिर तुम कोई सपना देख रहे हो।
ध्यान रहे, जिस दिन तुम्हें भरोसा आता है कि मुझे हो सकता है, उसी दिन पहली दफे बुद्ध, महावीर, कृष्ण, क्राइस्ट पौराणिक नहीं रह जाते, ऐतिहासिक हो जाते हैं। उसी क्षण सारा इतिहास नया हो जाता है, जैसे तुम्हारे लिए फिर से लिखा गया। पहली दफा ऐसे व्यक्तियों पर, जिनके जीवन में परमात्मा की झलक आयी, प्रतिबिंब उतरा, जिनमें किसी तरह परमात्मा की प्रभा प्रगट हुई, तुम्हें भरोसा आता है। जिस दिन तुम्हें अपने पर भरोसा आता है उसी दिन तुम्हें कृष्ण, महावीर, बुद्ध पर भरोसा आता है।
लोग ईश्वर पर भरोसा नहीं करते क्योंकि उनका अपने पर भरोसा नहीं है। नास्तिक की असली नास्तिकता आत्म-अविश्वास है। वह कहता है, कोई ईश्वर नहीं है। क्योंकि भीतर जब ईश्वर का पता नहीं चलता, किरण भी नहीं पता चलती, झलक भी नहीं पता चलती, सपने में भी कोई तरंग नहीं लहराती तो ईश्वर हो कैसे सकता है?
ईश्वर होता है उस क्षण, जब तुम्हारे भीतर तुम होने लगते हो।
शुभ घड़ी है। लेकिन ध्यान रखना, यह घड़ी कई बार आएगी और जाएगी। इसलिए जब चली जाए तो घबड़ा मत जाना, उदास मत हो जाना। क्योंकि यह बड़ी दूर की झलक है। जैसे आकाश में क्षणभर को बिजली कौंध गई हो और तुम्हें दूर हिमालय का शिखर दिखाई पड़ गया हो। पर बिजली गई, फिर घना अंधेरा है। और ध्यान रखना, जब बिजली के बाद अंधेरा होता है तो बिजली के पहले के अंधेरे से ज्यादा घना हो जाता है।
तो जिनके जीवन में यह सौभाग्य का क्षण आता है, उन्हें लगता है, अब कुछ
हो सकता है, वे बड़ी खतरे की स्थिति में भी हैं। उन्हें सचेत कर देना जरूरी है। क्योंकि यह बिजली की कौंध है; यह खो जाएगी। यह बहुत बार पकड़ में आएगी, बहुत बार छूट जाएगी। और जब छूटेगी तब तुम ऐसे अतल अंधेरे में गिरोगे, जैसे कि तुम कभी भी नहीं थे।
लेकिन अगर सावधान रहे और स्मरण रखा कि ऐसा होता है, तो तुम उन अंधेरी रातों को भी पार कर जाओगे। और जो अभी बिजली की कौंध की तरह घटा है, वह एक दिन सुबह के सूरज की तरह घटेगा। पहले झलक आती है, फिर झलक साफ होती है; फिर झलक झलक नहीं रह जाती, तुम्हारा सुनिश्चित अनुभव हो जाता है। फिर अनुभव नहीं रह जाता है, परमात्मा फिर अनुभव जैसा नहीं मालूम होता, तुम्हारा स्वत्व हो जाता है, तुम्हारा स्वभाव हो जाता है।

मधुर निर्यात और आयात, साधते हो दोनों के खेल
छनक में निकल चले थे दूर, पलक में पल-पल बढ़ता मेल
तुम्हारे खो जाने में दुख, तुम्हारे पा जाने में आज
भूमि का मिल जाता है छोर, गगन का मिल जाता है राज
पर ख्याल रखना--
मधुर निर्यात और आयात साधते हो दोनों के खेल।
छनक में निकल चले थे दूर, पलक में पल-पल बढ़ता मेल
एक क्षण तो लगता है, इतने करीब; और एक क्षण लगता है, इतने दूर। एक क्षण लगता है, हाथ की पहुंच के भीतर; और एक क्षण लगता है, असंभव! बिल्कुल असंभव! ऐसा बहुत बार होगा।
तुम्हारे खो जाने में दुख, तुम्हारे पा जाने में आज
भूमि का मिल जाता है छोर, गगन का मिल जाता है राज
तो डरना मत। यह झलक सौभाग्य है।
लेकिन जिनके जीवन में सौभाग्य आता है, उसके साथ-साथ उतने ही खतरे भी आते हैं। जब तुम्हारे पास कुछ नहीं होता तो खोने को भी कुछ नहीं होता। जब कुछ होता है तो खोने को भी कुछ होता है। जितना ज्यादा तुम्हारे पास होगा, उतने ही तुम खतरे में भी हो; क्योंकि उतना ही खोने को भी तुम्हारे पास है। एक युवक छह महीने पहले आया। आने के महीनेभर बाद उसने संन्यास लिया और मुझसे पूछा कि क्या मैं वापस जा सकता हूं अपने घर? मैंने कहा, जा सकते हो। लेकिन वह गया नहीं। महीनेभर और रुका। फिर उसने पूछा कि क्या मैं जा सकता हूं? मैंने कहा कि अब जाना ठीक नहीं।
वह थोड़ा चौंका। उसने कहा कि महीनेभर पहले आपने कहा कि जा सकते हो। अब
आप कहते हो, जाना ठीक नहीं, मामला क्या है? क्योंकि मैं तो सोचता था, महीनेभर में मैं और तैयार हो जाऊंगा तो जाने के योग्य हो जाऊंगा।
मैंने कहा, महीनेभर पहले जब तुमने पूछा था, तुम्हारे पास खोने को कुछ
भी नहीं था। तो मैंने कहा, जाओ। कोई फर्क नहीं पड़ता था। अब तुम्हारे पास कुछ खोने को है। थोड़ा-सा अंकुर फूटा है। अब मैं कहता हूं, मत जाओ। अभी रुको। अब तुम्हारे पास कुछ है, जो खो सकता है अभी जाने से। अब थोड़ी देर रुक जाओ। जरा इसे मजबूत होने दो। जरा इसकी जड़ें गहरी होने दो। अन्यथा तुम इतने दुख में पड़ जाओगे, जितने दुख में तुम पहले भी न थे।
तुम्हें पता है? एक गरीब आदमी है, गरीबी उसको भी है। फिर एक अमीर आदमी है, जिसका दिवाला निकल गया; वह भी गरीब है। दोनों के पास कुछ भी नहीं है। लेकिन जिसका दिवाला निकल गया है उसकी गरीबी का कोई अंदाज तुम गरीब आदमी की गरीबी से नहीं लगा सकते। गरीब आदमी क्या खाक गरीब है! जो अमीर ही कभी नहीं रहा, उसे गरीबी का कोई पता ही नहीं हो सकता। जो अमीर रह चुका है, उसकी गरीबी की पीड़ा बड़ी गहरी है। जिसने वैभव के दिन जाने, वही जानता है, दुर्दिन क्या है। जिसने वैभव के दिन ही नहीं जाने, वह तो दुर्दिन में भी मस्त चादर ओढ़कर सोता है। कोई दुर्दिन जैसी कोई बात ही नहीं। सहज सामान्य जीवन है।
ऐसा ही आंतरिक संपदा के संबंध में भी सच है।
जिन मित्र ने पूछा है, उनके जीवन में बड़ी महत्वपूर्ण घटना घटने के करीब आ रही है, घट रही है। पहली किरण उतरी है।
सावधान! क्योंकि इस पहली किरण के साथ ही जब अंधेरा फिर से आएगा तो बहुत गहरा होगा। तुम बहुत तड़फोगे फिर।
तुम्हारे खो जाने में दुख, तुम्हारे पा जाने में आज
भूमि का मिल जाता है छोर, गगन का मिल जाता है राज
मधुर निर्यात और आयात, साधते हो दोनों के खेल
छनक में निकल चले थे दूर, पलक में पल-पल बढ़ता मेल
परमात्मा ऐसी बहुत धूप-छांव तुम्हें देगा। परमात्मा बहुत बार करीब
और बहुत बार दूर निकल जाएगा। यह छिया-छी का खेल है। ऐसे ही तुम्हें वह मजबूत करता है, बलशाली करता है। ऐसे ही तुम्हें जीवन देता है। ऐसे ही तुम्हारी परिपक्वता आती है। ऐसे ही मिलकर-खोकर, खोकर-मिलकर, बार-बार धूप-छांव से गुजारकर तुम्हें पकाता है; परिपक्व करता है। तुम्हें प्रौढ़ता देता है। तुम्हारे जीवन में एकता आती है।

और एक ऐसी घड़ी आती है कि वह मिले तो ठीक, न मिले तो ठीक; हर हालत में तुम प्रसन्न होते हो। अंधेरी रात भी उसी की, जगमगाते सूरज का दिन भी उसी का। जब तुम्हें कुछ भी उसका पता नहीं चलता, तब भी तुम जानते हो, वह है। और जब उसका पता चलता है, तब भी तुम जानते हो, वह है। उस घड़ी धूप-छांव का खेल बंद होता है।
अभी तो खतरा आएगा। पूर्व-सावधान कर देना उचित है।
आरजुओं में हरारत है, न उम्मीदों में जोश
सर्द अब हर गर्मिये-बाजार है तेरे बगैर
जिंदगी एक मुश्तकिल आजार है तेरे बगैर
सांस एक चलती हुई तलवार है तेरे बगैर
अभी तो जब खोओगे तो लगेगा--
सांस एक चलती हुई तलवार है तेरे बगैर
जिंदगी एक मुश्तकिल आजार है तेरे बगैर
बड़ी कठिनाई होगी, जैसी कभी न हुई थी। लेकिन यह केवल सौभाग्यशालियों
को होती है कठिनाई। ऐसा दुर्दिन केवल उन्हें मिलता है, जिन्हें प्रभु की थोड़ी-सी झलक मिलनी शुरू हुई।
तुम्हारे पैर ठीक जमीन पर पड़ रहे हैं। मगर अभी भटकोगे। इतनी जल्दी कुछ भी नहीं होता। और पाकर जब भटकोगे तो बहुत रोओगे। उन आंसुओं में याद रखना। उन आंसुओं में भरोसे को कायम रखना।
अभी तो भरोसा आसान है। जब कुछ ठीक हो रहा होता है तब तो भरोसा बिल्कुल आसान है। जब सब गलत जाने लगता है, तब भरोसा कठिन होता है।
लेकिन उसी कठिनाई की चुनौती को जो मान लेता है उसके जीवन में विकास होता है।
तेरा-मेरा संबंध यही, तू मधुमय औ" मैं तृषित हृदय
तू अगम सिंधु की रास लिये
मैं मरु असीम की प्यास लिये
मैं चिर-विचलित संदेहों से
तू शांत अटल विश्वास लिये
तेरी मुझको आवश्यकता, आवश्यकता तुझको मेरी
मैं जीवन का उच्छवास लिये
तू जीवन का उल्हास लिये
तुझसे मिल पूर्ण चला बनने, बस इतना ही मेरा परिचय
तेरा-मेरा संबंध यही, तू मधुमय औ" मैं तृषित हृदय
हम प्यासे हैं। हम भूखे हैं। हम अतृप्त हैं--तृषित हृदय। और परमात्मा में छिपी है वह सुधा, वह अमृत, जो हमें तृप्त करेगी। परमात्मा और हमारे बीच जो संबंध है, वह प्यासे और जल के बीच का संबंध है।
अभी तुम्हें सरोवर दिखाई पड़ा है, पर दूर से दिखाई पड़ा है। अभी बहुत संभावना है कि फिर तुम वृक्षों की ओट में हो जाओगे। शायद सरोवर की तरफ चलने में ही बहुत बार वृक्ष ओट में आ जाएंगे और सरोवर खो जाएगा। चलोगे भी सरोवर की तरफ, तो भी अनेक बार सरोवर दिखाई पड़ेगा, अनेक बार खो जाएगा।
जब खो जाए, तब भूलना मत कि है। क्योंकि जब दिखाई पड़ता है तब बिल्कुल आसान मानना, कि है। जब खो जाता है तब बहुत दुर्गम मानना, कि है। तब उदास हो, हताश हो, थककर बैठ मत जाना।
जो इस क्षण में हुआ है, इसे तुम सदा के लिए अपनी एक चिर-संचित निधि बना लो। यह जो भरोसा जगा है कि अब कुछ हो सकता है, इसे भूलना मत। कुछ भी हो, कैसी भी परिस्थिति हो, इसे फिर-फिर जगा लेना। इसे याद रखना। यह तुम्हारी स्मृति से उतर न जाए।
तो जो अभी झलक की तरह मिला है, वह तुम्हारी स्थायी संपदा बन जाता है।

आखिरी प्रश्नः मन जब एकदम शांत रहने लगेगा तब सांसारिक कार्य कैसे होंगे?

अशांत रहकर भी चल रहे हैं, तो शांत रहकर और भले तरह से चलेंगे। आखिर शांति किसी काम में बाधा तो नहीं है। अशांत रहकर भी कर लेते हो तो शांत रहकर तो और कुशलता से कर सकोगे। यह तो सीधा-सा गणित है।
एक आदमी अशांत है और कोई काम कर रहा है, तो अर्थ हुआ कि अशांति बड़ी शक्ति ले रही है। मन का तनाव बड़ी शक्ति पी रहा है। फिर भी काम कर रहा है, किसी तरह खींच रहा है। तब भी कर लेता है। तो थोड़ा सोचो, जब तुम शांत हो जाओगे और सारी शक्ति काम में ही पड़ेगी--क्योंकि मन कोई शक्ति रोकेगा नहीं; अशांति नहीं, तनाव नहीं, कोई चिंता नहीं--जब तुम पूरे-पूरे काम में उंडलोगे तो काम की गति तो बढ़ेगी, कुशलता बढ़ेगी, गुणवत्ता बढ़ेगी।
यह प्रश्न ही क्यों उठता है? यह प्रश्न इसलिए उठता है कि तुम्हें अब
तक यही समझाया गया है कि जो शांत हो जाते हैं, वे संसार से भाग जाते हैं। इसीलिए संन्यास से एक भय हो गया है। शांति से भय हो गया है। यह भय बिल्कुल निर्मूल है।
मैं तुमसे कहता हूं, अशांत भला भाग जाते हों संसार से, शांत क्यों भागने लगे? शांत को भागने के लिए जरूरत ही क्या रही? शांत को तो आनंद आएगा चारों तरफ की अशांति के बीच खड़े होने में। क्योंकि यहां कसौटी होगी। यहां प्रतिपल भरोसा गहरा होगा कि अशांति कितनी ही हो बाहर, अब मेरे भीतर प्रवेश नहीं करती। मैं अभेद्य दुर्ग में विराजमान हो गया हूं। मेरी शांति अटूट है। अब कोई चीज इसे विशृंखल नहीं करती। मेरी शांति अब कमजोर नहीं है कि टूट जाए; कि कोई भी चीज मेरे मन को डांवांडोल करे। अब सब परीक्षाओं से गुजर रहा हूं और मेरी शांति और गहरी और मजबूत होती चली जाती है।
नहीं, मैं तुमसे कहता हूं, शांत आदमी जो भी करेगा उसमें उसकी कुशलता
बढ़ जाएगी।
लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं कह रहा हूं, शांत आदमी वे सब काम करेगा ही, जो तुम कर रहे हो। क्योंकि कुछ काम हैं, जो केवल अशांत आदमी ही कर सकता है, क्योंकि उनका मूल अशांति में है।
जैसे एक आदमी चोरी कर रहा है, तो मैं तुमसे यह नहीं कह सकता कि शांत आदमी चोरी कर सकेगा। कर सके तो कुशलता से करेगा; मगर कर सकता नहीं। क्योंकि चोरी के लिए बड़ा सोया चित्त चाहिए। बड़ा दीन-दुर्बल चित्त चाहिए।
चोरी के लिए बड़ा अशांत, विक्षिप्त चित्त चाहिए।
शांत आदमी क्रोध न कर सकेगा। कर सके तो बड़ी कुशलता से करेगा, मगर कर न सकेगा। क्योंकि क्रोध का मूल अशांति में है। लेकिन जीवन के सहज काम तो और कुशल हो जाएंगे।
शांत आदमी ज्यादा बेहतर पति होगा, ज्यादा बेहतर पत्नी होगी, ज्यादा बेहतर बेटा होगा, ज्यादा बेहतर बाप होगा, ज्यादा बेहतर मित्र होगा। शांत आदमी के जीवन में, जो भी शांति के साथ बच सकता है, वह सभी बेहतर, स्वर्णमयी होकर, सुगंधमयी होकर होगा। उसके सोने में सुगंध आ जाएगी।
तो मैं तुमसे यह नहीं कहता कि तुम्हारी सभी चीजें बचेंगी। लेकिन मैं
यह कहता हूं, जो बचाने योग्य हैं वे बचेंगी। जो बचाने योग्य ही नहीं हैं, जिनको तुम भी बचाना नहीं चाहते हो, वे ही केवल खो जाएंगी। महंगा सौदा नहीं है।
महंगा सौदा तो तुम अभी कर रहे हो अशांति को चुनकर।
"मन जब एकदम शांत रहने लगेगा तब सांसारिक कार्य कैसे होंगे?" मन बहाने खोज रहा है। मन कह रहा है, शांत मत हो जाना। यह क्या कर रहे हो? ध्यान में लगे हो? अपनी जड़ें खोद रहे हो? सब गड़बड़ हो जाएगा।
मन का तो सब गड़बड़ हो जाएगा, यह सच है। मन ठीक ही कह रहा है। क्योंकि मन
है तुम्हारा रोग, बीमारी।
अगर तुम महत्वाकांक्षी हो तो महत्वाकांक्षा चली जाएगी। अगर तुम पागल
की तरह स्पर्धा में लगे हो, स्पर्धा चली जाएगी। अगर तुम व्यर्थ चीजों को जोड़ने-बटोरने में लगे हो तो वह पागलपन उतर जाएगा।

तो मन तो ठीक कह रहा है। मन को संसार की फिक्र नहीं है, मन को अपनी फिक्र है। मन यह कह रहा है, कि मेरा क्या होगा? तुम तो शांत होने लगे, कुछ मेरी तो सोचो! कितने दिन तुम्हारे साथ रहा!
यह तो ऐसे ही हुआ, कि तुमने दवा लेनी शुरू की, बीमारी तुमसे कहे, कि जरा
यह भी तो सोचो, मेरा क्या होगा? तुम तो दवा लेने लगे। और मैं कितने दिन से साथ रही! जन्मों-जन्मों का, जुग-जुग का संग-साथ--तुम दवा लेने लगे? धोखेबाज कहीं के! दगाबाज कहीं के! दवा लेने लगे? यह तुम क्या कर रहे हो? सब खराब हो जाएगा।
लेकिन तुम बीमारी की नहीं सुनते। मन को तुमने अब तक बीमारी नहीं जाना। तुम सोचते हो, मन तुम हो। यहीं भूल हो रही है। तुम मन नहीं हो। तुम मन के पार साक्षी हो। उस साक्षी का परम आनंद घटेगा शांति में। शांति में मन चला जाएगा, तुम बचोगे। मन के बहुत-से व्यापार, जो रुग्ण हैं, जिन्होंने सिवाय दुख के और कुछ भी नहीं दिया, वे भी चले जाएंगे। लेकिन उनका चला जाना हितकर है।
मन सदा ध्यान में बाधा डालता है। क्योंकि ध्यान मन की मृत्यु है। मन समझाता हैः
बहुत खोया, और खोने दो मुझे
और भी गुमराह होने दो मुझे
आज पलकों की छबीली छांह में लग गई है आंख
सोने दो मुझे
बहुत खोया, और खोने दो मुझे
आज पलकों की छबीली छांह में लग गई है आंख
सोने दो मुझे
लेकिन जिसे तुम पलकों की छबीली छांह समझ रहे हो, वहीं से तुम्हारे जीवन का सारा ज्वर, सारा उत्ताप पैदा हुआ है। जिसे तुम सौंदर्य समझ रहे हो उसी ने तुम्हारे जीवन को कुरूप किया है। और जिसे तुम सोचते हो तुम्हारा बल, वही तुम्हारी नपुंसकता है, वही तुम्हारी निर्बलता है। इसे ठीक से देखो।
और अगर तुम्हें यह चिंता हो कि तुम अगर शांत हो गए तो संसार का क्या होगा, तो यह चिंता तुम बिल्कुल मत करो। बहुत अशांत लोग हैं। तुम्हारे जाने से यहां कुछ बाधा न पड़ेगी। यहां काफी पागल हैं। तुम इस चिंता में मत पड़ो कि मैं अगर ठीक हो गया, तो पागलखाने का क्या होगा? यह चलता ही रहा है। यह चलता ही रहेगा।
ये रंगे-बहारे-आलम है
क्यों फिक्र है तुझको ऐ साकी!
महफिल तो तेरी सूनी न हुई,
कुछ उठ भी गए कुछ आ भी गए
--यह महफिल भरी ही रहती है।
महफिल तो तेरी सूनी न हुई,
कुछ उठ भी गए कुछ आ भी गए
तुम उठने में संकोच मत करो। कुछ बाहर खड़े हैं, जोर से चिल्ला रहे हैं, जगह दो। क्यू में खड़े हैं। तुम हटो, वे बड़े प्रसन्न होंगे। तुम्हें वे धन्यवाद देंगे। इसीलिए तो लोग संन्यासी का स्वागत करते हैं! चलो एक जगह खाली हुई। इसीलिए तो लोग त्यागी की महिमा गाते हैं, चरण छूते हैं कि धन्य प्रभु! कम से कम आपने तो जगह खाली की!
तुम अक्सर पाओगे त्यागियों के पास भोगियों को स्तुति करते। जैन मंदिरों में देखो! जो छोड़कर बैठ गए हैं संसार, जो संसार को जोर से पकड़े हैं, वे उनके चरण छू रहे हैं। वे कह रहे हैं, बड़ी कृपा आपकी।
शायद उन्हें भी साफ न हो। मगर मामला क्या है? मामला यह है कि ये भी प्रतियोगी थे। ये हट गए मैदान से। जितने प्रतियोगी कम हुए उतना ही अच्छा है।
संसारी सदा संन्यासियों की प्रशंसा करता रहा है। लेकिन प्रशंसा निश्चित ही झूठ होगी, बेमन से होगी; असली नहीं होगी। असली होती तो खुद ही

संन्यासी हो जाता। यह बड़े आश्चर्य की बात है। भोगी त्यागी के चरण छूता है। अगर यह श्रद्धा सच होती तो खुद ही त्यागी हो गया होता। यह श्रद्धा झूठी है। वह कह रहा है, आपने बड़ी कृपा की। आपने बड़ा ही अच्छा किया जो छोड़ दी झंझट।
जब एक राजनीतिज्ञ विदा होता है दिल्ली से तो बाकी राजनीतिज्ञ उसका विदाई समारोह करते हैं। कहते हैं कि गिरि साहब, आप चले बंगलोर! बड़ी कृपा! फिर न आना। आप बंगलोर में ही बसना। आबोहवा भी अच्छी है। और दिल्ली में रखा क्या है?
चलो, क्यू में एक आदमी कम हुआ। थोड़े हम आगे सरके। ऐसी आशा से तो आदमी
जी रहा है।
तुम इसकी फिक्र मत करना कि संसार का क्या होगा? संसार तुम्हारे बिना बड़े मजे से चल रहा था, तुम्हारे बिना बड़े मजे से चलता रहेगा।
ये रंगे-बहारे-आलम है
क्यों फिक्र है तुझको ऐ साकी!
महफिल तो तेरी सूनी न हुई,
कुछ उठ भी गए, कुछ आ भी गए
तुम सिर्फ अपनी चिंता कर लो। और इतना मैं तुमसे कह सकता हूं आश्वासन
के साथ, कि जो भी शुभ है, वह बचेगा। जो भी श्रेयस्कर है, वह बचेगा। जो भी अशुभ है, वह छूट जाएगा। मेरे मन में तो पाप और पुण्य की परिभाषा यही हैः शांत मन जिसे न कर सके, वही पाप। जिसे करने के लिए अशांत मन अनिवार्य शर्त है, वही पाप। शांत मन ही जिसे कर सके, वही पुण्य। शांत मन जिसके होने के लिए अनिवार्य भूमिका है, वह पुण्य है।
पुण्य बचेगा। पुण्य की कुशलता बचेगी। पाप खोते चले जाएंगे। नर्क छूटेगा, स्वर्ग शेष रहेगा। बंधन गिरेंगे, मुक्ति उपलब्ध होगी। मोक्ष बचेगा। उसमें तुम्हारी कुशलता बढ़ेगी।
तुम पछताओगे न। तुम कभी लौटकर ऐसा न सोचोगे कि बड़ी गलती कर ली, जो शांत
हो गए।
अब तक किसी ने ऐसा नहीं कहा। जो भी शांत हुए हैं सदियों-सदियों में-- अनंत लोग हुए हैं। यह शृंखला छोटी नहीं है। बहुत लोग हुए सदियों-सदियों में, उनमें से किसी एक ने भी नहीं कहा कि शांत होकर पछतावा हुआ।
और इन सदियों में उनसे हजारों गुने लोग अशांत रहे, उन सबने सदा यह कहा
कि चूक गए कुछ। कुछ भूल हो गई। कहीं जीवन का तार टूट गया। वीणा बजी नहीं।
बांसुरी पर धुन उतरी नहीं। आए तो जरूर, खाली आए, खाली जा रहे हैं।
निरपवाद रूप से जो लोग अशांत रहे हैं, वे पछताए हैं।
निरपवाद रूप से जो लोग शांत हुए हैं उन्होंने धन्यभाग, सौभाग्य माना है।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग दो
उन्नीसवां प्रवचन

ध्यानाग्नि से कर्म भस्मीभूत

जह चिरसंचयमिंधण—मनलो पवणसहिओ दुयं दहइ।
तह कम्मेंधणममियं, खणेण झाणानलो डहइ।। 131।।
झाणोवरमेऽवि मुणी, णिच्चमणिच्चाइभावणापरमो।
होइ सुभावियचित्तो, धम्मझाणेण जो पुव्विं।। 132।।
अद्धुवमसरणमेगत्त—मन्नत्तसंसारलोयमसुइत्तं।
आसवसंवरणिज्जर, धम्मं बोधिं च चिंतिज्ज।। 133।।

पहला सूत्रः
"जैसे चिर-संचित ईंधन को वायु से उद्दीप्त आग तत्काल जला डालती है, वैसे ही ध्यान रूपी अग्नि अपरिमित कर्म-ईंधन को क्षणभर में भस्म कर डालती है।"
मनुष्य अति प्राचीन है; कहें कि सनातन है, सदा से है।
अनंत जन्मों में अनंत कर्म हुए हैं--पुण्य हुए हैं, पाप हुए हैं। यदि
उन सब पुण्य और पापों के लिए एक-एक का हिसाब चुकाना पड़े तो मुक्ति असंभव है। एक तो इतना लंबा काल! उस लंबे काल में इतने कर्मों की शृंखला! उसे छांटते-छांटते अनंत काल व्यतीत होगा।
और यह जो अनंत काल व्यतीत होगा पुराने कर्मों को तोड़ने में, इस बीच भी
नए कर्म निर्मित होंगे। तोड़ना भी कर्म है। किसी कर्म से छूटने की चेष्टा नया कर्म और नए कर्म की शुरुआत है। तब तो जाल दुष्टचक्र जैसा है। इसके बाहर होना मुश्किल है।
कुछ तो करोगे! अधर्म न करोगे, धर्म करोगे। पाप न करोगे, पुण्य करोगे। लेकिन महावीर कहते हैं, पुण्य भी वैसे ही बांध लेता है, जैसे पाप। बुरा करनेवाले का भी अहंकार होता है, भला करनेवाले का भी अहंकार होता है; और कभी-कभी तो बुरा करनेवाले से ज्यादा सघन होता है। बुरा करनेवाले को तो थोड़ी पीड़ा भी होती है, दीनता भी होती है, अपराध भाव भी होता है। भला करने का अहंकार तो स्वर्णमंडित हो जाता है। उसमें हीरे-जवाहरात टक जाते हैं। भला करनेवाले का अहंकार तो पुण्य से शोभायमान हो जाता है, प्रदीप्त हो जाता है।
ठीक भी करें तो भी करनेवाले की मजबूती बढ़ती है, कर्ता का भाव बढ़ता है। मंदिर बनाओ, दान दो, उपवास करो, तप करो तो भी हर कृत्य से कर्ता मजबूत होता है। और कर्ता का मजबूत होना ही संसार है। कर्ता का मजबूत होना ही संसार में वापस लौट आने की सीढ़ी है।
कर्ता क्षीण होना चाहिए।
कर्ता क्षीण होगा तो कर्म क्षीण होंगे।
धीरे-धीरे यह भाव ही मिट जाना चाहिए कि मेरे भीतर कोई कर्ता है। सिर्फ साक्षी शेष रहे। सिर्फ द्रष्टा शेष रहे।
तो कर्म को कर्म से काटा नहीं जा सकता। न पाप को पुण्य से काटा जा सकता है। क्योंकि यह हो सकता है, पाप की जगह पुण्य रख लो, लेकिन बंधन बदलेंगे नहीं; रूपांतरित भला हो जाएं। पहले से सुंदर हो जाएं; ज्यादा सजे-बजे हो जाएं; पहले से ज्यादा शृंगार हो जाए उनका। हथकड़ियों पर सोना मढ़ा जा सकता है, लेकिन हथकड़ियों को इस तरह तोड़ने का कोई उपाय नहीं है। कर्म से कर्म नहीं टूटता।
तो फिर कर्म कैसे टूटेगा?
अगर कर्म से कर्म नहीं टूटता तो क्या आदमी के लिए कोई भी आशा नहीं है? अगर हर कृत्य नए जाल को बना जाएगा तो फिर हम इस जाल के कभी बाहर हो सकेंगे या न हो सकेंगे?
महावीर कहते हैं, बाहर हुआ जा सकता है, लेकिन कर्म द्वार नहीं है बाहर होने का। कर्म ही तो संसार में आने की व्यवस्था है। अकर्म द्वार है। ध्यान का अर्थ हैः अकर्म की दशा।

ध्यान का अर्थ हैः साक्षी की दशा।
ध्यान का अर्थ हैः ऐसी जागरूक चेतना, जो कृत्य के साथ अपना तादात्म्य नहीं करती।
राह चलते हो तुम, लेकिन भीतर कोई जागकर देखता रहता है कि मैं नहीं चल रहा हूं, शरीर चल रहा है। मैं तो देख रहा हूं कि शरीर चल रहा है।
भूख लगती है, भीतर कोई देखता रहता है, भूख मुझे नहीं लगी है, शरीर को लगी है। भोजन किया जाता है, शरीर में भोजन डाला जा रहा है, कोई भीतर जागकर देखता रहता है। तृप्ति हो जाती है, भूख मिट जाती है, कोई भीतर साक्षी की तरह अवलोकन करता रहता है कि अब भूख मिट गई, शरीर तृप्त है। लेकिन किसी भी स्थिति में अपने को जोड़ता नहीं कृत्य से।
कृत्य से तोड़ लेने का नाम ध्यान है।
चौबीस घंटे कृत्य हो रहे हैं। कुछ न भी करो, खाली बैठे रहो तो भी श्वास चलती है; तो भी कृत्य हो रहा है। तुम कहते हो कि मैं श्वास ले रहा हूं। हालांकि तुमने कभी सोचा नहीं कि इससे ज्यादा झूठी बात क्या होगी, कि तुम कहते हो, मैं श्वास ले रहा हूं। जब श्वास न आएगी तब ले सकोगे? जब रुक जाएगी तब तुम कहोगे, कोई फिक्र नहीं, मैं तो लेना जारी रखूंगा? जो श्वास बाहर गई और न लौटी तो तुम लौटा सकोगे?
उस वक्त पता चलेगा कि श्वास भी मैं नहीं ले रहा था, श्वास चल रही थी।
और चलने की क्रिया के साथ मैंने नाहक ही अपने को कर्ता की तरह जोड़ लिया था। भूख तुम्हें लगी है? भूख तुमने लगाई है? लग रही है, सच है; लेकिन तुम नाहक बीच में जुड़ जाते हो। तुम दूर खड़े देख सकते हो। भूख शरीर में घटनेवाली घटना है।
महावीर ने इसीलिए उपवास पर बड़ा जोर दिया। वह उपवास आत्मदमन के लिए नहीं था; जैसा जैन मुनि करते रहे। महावीर का उपवास शरीर को पीड़ा देने के लिए नहीं था। महावीर का उपवास तो सिर्फ एक भीतर अवकाश पैदा करने के लिए था कि चेतना जागकर देखती रहे। जैसे-जैसे भूख सघन होती जाए, वैसे-वैसे संभावना बढ़ती है कि तादात्म्य पैदा हो जाए। जब भूख बहुत जोर से हो तो तुम भूल ही जाओ कि मैं साक्षी हूं। भूख थोड़ी-थोड़ी लगी हो, भोजन पास में हो, फ्रिज के पास ही बैठे हो, चौके से सुगंध आ रही है, तब शायद तुम ध्यान की बातों का मजा भी ले लो। तुम कहो, कहां भूख! मैं तो साक्षी हूं। भूख इतनी नहीं है। साक्षी होने में कुछ खर्च नहीं हो रहा है। लेकिन जब भूख पीड़ा की तरह चुभे, छाती में गहरी उतरती जाए, रोआं-रोआं चीखने-चिल्लाने लगे, तब ध्यान रखना कठिन होता चला जाएगा।
महावीर ने उपवास को सिर्फ ध्यान की प्रक्रिया समझा। ऐसी घड़ी आती है, जहां भूख अपने प्रचंड वेग में खड़ी होती है कि आदमी पागल हो जाए; कि आदमी कुछ भी खा ले; कि चोरी कर ले, कि हत्या कर दे।
रेगिस्तान में चलनेवाले लोगों का अनुभव है कि कभी प्यास ऐसी लग आती
है कि आदमी अपनी पेशाब पी जाता है, पानी न मिले तो। ऊंट की पेशाब पी जाता है, अगर पानी न मिले तो। ऐसी प्यास लग सकती है रेगिस्तान में कि आदमी को होश ही न रह जाए, साक्षी की तो बात और। यह भी ख्याल न रहे, मैं क्या पी रहा हूं।
ये तो सब सुविधा की बातें हैं कि तुम कहते हो, जल शुद्ध है या नहीं? छना है या नहीं? ये तो सुविधा की बातें हैं कि तुम कहते हो कि प्राशुक है? उबाला गया है, या किसी गंदी नाली से भर लाए हो? ये सुविधा की बातें हैं। रेगिस्तान में जब प्यास पकड़ी हो, सामने नाली भी पड़ जाए गंदगी से बहती, तो भी आदमी पी लेगा। महावीर ने इसको महत्वपूर्ण प्रयोग बनाया। क्योंकि भूख बड़ी गहरी बात है; सबसे गहरी बात है।
आदमी के जीवन में दो बातें सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैंः एक है कामवासना
और एक है भूखवासना। कामवासना से समाज जीता है। कामवासना समाज का भोजन है।
अगर तुम कामवासना को रोक लो तो तुमने समाज की एक शाखा को तोड़ दिया। अब आगे कोई संतति पैदा न होगी। तुम्हारी कामवासना से तुम्हारे बच्चे जीते हैं।
तुम्हारी कामवासना से जीवन जीता है, संसार चलता है।

तो कामवासना संसार के लिए भोजन है। उसके बिना संसार मरेगा। अगर सभी लोग ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो जाएं तो संसार तत्क्षण रुक जाएगा।
इसलिए पश्चिम के एक बहुत बड़े विचारक इमेन्युएल कांट ने ब्रह्मचर्य को पाप कहा। उसकी बात में बल है। वह कहता है, ब्रह्मचर्य तो एक तरह की हिंसा है। तुम किसी को पैदा होने से रोक रहे हो। तो किसी को जिंदा रहकर मारो या पैदा होने से रोको, बात तो बराबर है। किसी की गर्दन काटो, या किसी को पैदा न होने दो। पैदा न होने देने का मतलब हुआ कि तुमने गर्दन बनने के पहले ही काट दी।
फिर इमेन्युएल कांट ने कहा कि नीतिशास्त्र का आधारभूत नियम है कि जिस सूत्र को मानकर हम चलें उसके मानने से ऐसी घटना नहीं घटनी चाहिए कि उस सूत्र को मानना ही असंभव हो जाए। नहीं तो वह आत्मघाती सूत्र हुआ।
जैसे समझो, इमेन्युएल कांट कहता है, झूठ बोलना पाप है, अनैतिक है। क्योंकि अगर सभी लोग झूठ बोलने लगे तो झूठ बोलना संभव न रह जाएगा। झूठ तो चलता इसीलिए है कि कुछ लोग अभी भी सच में भरोसा करते हैं। झूठ झूठ के कारण नहीं चलता, सच पर भरोसा करनेवालों के कारण चलता है। झूठ के अपने पैर नहीं हैं। सच की बैसाखी को लेकर चलता है। इसीलिए तो झूठ बोलनेवाला बड़ा दावा करता है कि मैं सच बोल रहा हूं। जब तक वह तुम्हें भरोसा न दिला दे कि मैं सच बोल रहा हूं, तब तक झूठ बोलने का अवसर नहीं, उपाय नहीं।
एक अदालत में मुल्ला नसरुद्दीन पर मुकदमा था। एक बहुत सीधे-सादे, साधु पुरुष को उसने धोखा दे दिया। उसकी जेब काट ली। पुरानी मित्रता थी और साधु पुरुष था; इस पर भरोसा करता था। गांव भर को पता था कि वह आदमी अत्यंत साधु है। मजिस्ट्रेट को भी पता था। मजिस्ट्रेट ने कहा, "नसरुद्दीन! किसी और को धोखा देते। यह तुम्हारा पुराना मित्र, बचपन का साथी। गांव में साधु की तरह पूजा जाता, इसकी तुमने जेब काटी? तुम्हें संकोच न हुआ? जो इतना भरोसा करता है तुम पर, उसकी जेब काटी?"
नसरुद्दीन ने कहा, "तो और किसकी काटूं? वह जो भरोसा करता है, उसी की काटी जा सकती है। जो भरोसा नहीं करता उसकी तो काटनी मुश्किल है।"
साधु को ही धोखा दिया जा सकता है; धोखेबाज को कैसे दोगे? ईमानदार के साथ ही बेईमानी की जा सकती है; बेईमान के साथ कैसे करोगे?
इमेन्युएल कांट ने कहा, कि जिस सूत्र को मानने से उस सूत्र को मानना असंभव हो जाए, वह अनैतिक है। तो झूठ अगर सभी लोग मान लें, अगर झूठ सार्वलौकिक हो जाए, युनिवर्सल हो जाए तो झूठ असंभव हो जाएगा। अगर यह घोषणा कर दी जाए कि सभी लोग झूठ बोलते हैं और सभी लोगों को झूठ बोलना ही धर्म है तो उसी दिन झूठ मुश्किल में पड़ जाएगा। क्योंकि कौन तुम्हारा भरोसा करेगा? तुम सच भी कहो तो लोग समझेंगे, झूठ बोल रहे हो।
अगर चोरी नियम हो तो चोरी असंभव हो जाएगी। अगर सभी लोग चोरी कर रहे हों तो चोरी का अर्थ क्या है? एक घर से दूसरे घर चीजें उठाकर रखने में फायदा क्या है? सार क्या है? जहां सभी चोर हों... इसलिए तुमने देखा होगा, कि चोरों के जो मंडल होते हैं, वे आपस में चोरी नहीं करते। क्योंकि वहां तो नियम मानकर चलना चाहिए कि चोरी नहीं। नहीं तो जीवन ही मुश्किल हो जाएगा। इमेन्युएल कांट ने कहा है, ऐसा ही ब्रह्मचर्य भी है। अगर सभी लोग ब्रह्मचारी हो जाएं तो इस जगत में ब्रह्मचर्य को पालन करने के लिए भी कोई न बचेगा। इसका अर्थ हुआ कि अगर दुनिया में ब्रह्मचारी चाहिए तो कुछ कामी चाहिए ही होंगे; नहीं तो ब्रह्मचारी न बचेंगे।
तो ब्रह्मचर्य का नियम सार्वलौकिक नहीं हो सकता। इसके मानने के लिए भी, इसके माननेवालों के होने के लिए भी, इसको तोड़नेवालों की जरूरत है। महावीर ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो सकते हैं क्योंकि महावीर के माता- पिता ब्रह्मचर्य को उपलब्ध नहीं थे। अगर महावीर के माता-पिता ने ही ब्रह्मचर्य साधा होता तो महावीर के होने की संभावना ही न थी। तो महावीर के होने के लिए महावीर के माता-पिता की कामवासना को धन्यवाद तो देना ही होगा।
बुद्ध को, या कृष्ण को, या क्राइस्ट को होने के लिए भी कामवासना का सहारा ही लेकर आना पड़ेगा।
इसे समझने की जरूरत है।

ब्रह्मचर्य जीवन का समाप्त--अंतिम अध्याय होगा; अंतिम पटाक्षेप हो जाएगा। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि ब्रह्मचर्य पालन मत करना। क्योंकि सभी ब्रह्मचर्य पालन कर सकें, यह असंभव है। एक भी पालन कर पाए, यह भी बड़ा कठिन है, तो सभी कर पाएंगे यह तो असंभव है।
इमेन्युएल कांट ने असंभव की बात को संभव मानकर गलत सिद्ध करने की चेष्टा की है। यह होनेवाला नहीं है। लाखों वर्षों से आदमी ब्रह्मचर्य की चर्चा करता है, शास्त्र लिखता है। कभी कोई एकाध व्यक्ति ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो पाता है। यह बात कठिन है।
मैं यह कह रहा हूं कि कामवासना दूसरों का भोजन है, भविष्य का भोजन है, आनेवाली पीढ़ियों का भोजन है। इसीलिए कामवासना का इतना प्रबल प्रभाव है। तुम्हारे बच्चे तुमसे आने को तड़फ रहे हैं। इसलिए तुम लाख चेष्टा करो ब्रह्मचर्य साधने की, उनके प्राण संकट में पड़े हैं। वे धक्के मारेंगे। वे तुम्हारे नियम तोड़ेंगे, तुम्हारी प्रतिज्ञा का खंडन करेंगे और जन्म लेने की आतुरता प्रगट करेंगे।
जब तुम्हारे भीतर कामवासना उठती है तो वह भी तुम्हारी नहीं है। वह भी आनेवाले जन्मों का, आनेवाले जीवनों का आकर्षण है, खिंचाव है। तुमसे आनेवाले जीवन कह रहे हैं कि अपना काम पूरा करो। इसके पहले कि तुम विदा हो जाओ, तुम माध्यम बनो। जीवन की शृंखला जारी रहे।
तो एक तो कामवासना का आदमी पर बड़ा प्रभाव है। लेकिन वह इतना बड़ा प्रभाव नहीं है कि आदमी ब्रह्मचर्य से न रह सके। क्योंकि दूसरे का जीवन संकट में पड़ता है, तुम्हारा तो पड़ता नहीं। तुम तो हो। तुम्हारा तो पड़ता-- तुम्हारे मां बाप, उनके मां बाप अगर ब्रह्मचर्य का नियम लेते। तुम तो हो गए। तुम तो हो। तुम्हारा तो अब कोई संकट में पड़ने का कोई कारण नहीं है। दूसरी महत्वपूर्ण वासना है भोजन की। वह कामवासना से ज्यादा गहरी है, क्योंकि उससे तुम्हारा ही जीवन संकट में पड़ता है। कामवासना से कोई होनेवाले लोग, जिनका हमें कोई पता नहीं है, न होंगे। क्या लेना-देना है? लेकिन भोजन छोड़ने से तुम नहीं हो जाओगे।
तो महावीर ने उपवास को बड़ा गहरा प्रयोग बनाया। जैसे-जैसे भूख बढ़ती जाती है, तुम्हारा जीवन संकट में पड़ता है, वैसे-वैसे तुम्हारे भीतर होश की क्षमता क्षीण होती जाती है। भूखा क्या न करता?
मनोवैज्ञानिक कहते हैं, भूख सब पापों की जड़ है। शायद सच कहते हैं। जब
तक भूख न मिटे, दुनिया से शायद पाप मिट भी न सकेंगे। भूखा कुछ भी कर सकता है। और भूखा कुछ करे तो क्षम्य भी मालूम पड़ता है।
महावीर ने गहरे उपवास किए। सिर्फ एक बात जानने के लिए कि क्या ऐसी भी कोई सीमा है भूख की, जहां मेरा होश खो जाता हो? क्या ऐसी भी कोई सीमा आती है, जहां कि मैं भूल जाऊं कि मैं साक्षी हूं और कर्ता हो जाऊं?
इस गहरे परीक्षण के लिए उपवास। उपवास आत्मदमन नहीं है महावीर का, ध्यान का एक गहन प्रयोग है। उपवास शब्द में भी वह बात छिपी है। इसलिए महावीर ने उपवास को अनशन नहीं कहा, भूखा रहना नहीं कहा, उपवास कहा। उपवास का अर्थ होता हैः अपने निकट होना। अपने निकट वास। उपवास का अर्थ होता हैः आत्मा के पास होना। उपवास का अर्थ होता है, कर्ता से हटना, साक्षी की तरफ धीरे-धीरे सरकना।
तो तुम कुछ भी करो, उस करने में अगर साक्षीभाव बना रहे तो धीरे-धीरे कर्ता से मुक्ति हो जाती है। और कर्ता से मुक्ति होते ही सारे कर्मों का जाल, अनंत जन्मों का, एक क्षण में भस्मीभूत हो जाता है।
यह महावीर की बड़ी अनूठी उदघोषणा है। इस उदघोषणा में ही मनुष्य की संभावना है।
अगर ऐसा नहीं होता तो फिर मोक्ष की कोई संभावना मानी नहीं जा सकती। अगर हम कर्म से ही छूटकर मुक्त हो सकेंगे तो फिर हम कर्म से कभी छूट नहीं सकते। कर्ता से छूटने से अगर मुक्ति होती हो तो मुक्ति संभव है।
इसे ख्याल में रख लेना। यही गीता का भी आत्यंतिक संदेश है कि अर्जुन,
तू कर्ता न रह जा। बड़े दूसरे मार्ग से कृष्ण इसी निष्पत्ति पर पहुंचते हैं

कि अर्जुन, तू कर्ता न रह जा। तू कर्म की फिक्र छोड़। कर्म तो होता रहा, होता रहेगा। तू ऐसा भाव छोड़ दे कि मैं कर रहा हूं।
महावीर की और गीता की भाषा बड़ी विपरीत है। इसलिए यह समझना भी जरूरी है
कि कभी-कभी विपरीत भाषाओं से भी एक ही सत्य की उदघोषणा होती है। भाषा में मत उलझ जाना। जैन गीता को पढ़ते भी नहीं। जैनों के लिए गीता में कुछ सार भी नहीं मालूम होता। सार तो दूर, खतरनाक मालूम होती है, हिंसात्मक मालूम होती इै।
हिंदुओं ने महावीर का उल्लेख ही नहीं किया अपने शास्त्रों में। इतना जीवंत व्यक्ति इस भूमि पर चला, हिंदू शास्त्रों में उल्लेख भी नहीं है। इससे गहरी और निंदा और विरोध क्या हो सकता था? जैनों ने तो फिर भी कम से कम थोड़ी भलमनसाहत की। कृष्ण का उल्लेख तो किया। माना कि नर्क में डाला, माना कि कृष्ण मरकर सातवें नर्क गए, मगर फिर भी इतना सम्मान तो दिया कि उल्लेख किया--निंदा के लिए सही! भूले तो नहीं, बिसराया तो नहीं। लेकिन हिंदुओं ने तो हद्द कर दी। उन्होंने महावीर को नर्क में डालने योग्य भी न माना। महावीर का उल्लेख ही न किया। अगर बौद्ध शास्त्र न हों तो महावीर का उल्लेख सिर्फ जैन शास्त्रों में रह जाएगा। और अगर बौद्ध शास्त्र न हों तो जैनों के पास प्रमाण जुटाना भी मुश्किल हो जाएगा कि महावीर कभी हुए।
इसीलिए जब पहली दफा हिंदू शास्त्रों का पश्चिम में अनुवाद हुआ तो पश्चिम के विचारकों ने यही समझा कि महावीर बुद्ध का ही एक नाम है। मूर्ति एक जैसी लगती भी है। उपदेश भी अहिंसा का कुछ एक जैसा मालूम पड़ता है। यह बुद्ध का ही एक रूप है। महावीर को स्वीकार ही नहीं किया था। क्योंकि हिंदू शास्त्रों में कहीं उल्लेख ही नहीं।
कारण क्या रहा होगा?
भाषा बड़ी भिन्न है। भिन्न ही कहनी ठीक नहीं, ठीक विपरीत है। एक अगर रात कहता तो दूसरा दिन कहता; ऐसा फासला है। जमीन और पृथ्वी का फसला है।
लेकिन मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि दोनों एक ही बात कहना चाह रहे हैं।
कृष्ण ईश्वर की धारणा का उपयोग करते हैं उस बात को कहने के लिए। वे कहते हैं, ईश्वर कर्ता है, तू निमित्त। तू साक्षीभाव से जो हो रहा है, होने दे। इतना भर ख्याल छोड़ दे कि मैं कर रहा हूं। फिर जो करवाए परमात्मा, कर।
महावीर परमात्मा की धारणा का उपयोग नहीं करते। उनकी भाषा में परमात्मा का कोई प्रत्यय, कोई प्रतीक नहीं है। वे इतना ही कहते हैं, तू साक्षीभाव से कर। ध्यान की आत्यंतिक गहराई में, साक्षीभाव की परमदशा में अचानक तू जागकर देखेगा कि तुझसे अब तक जो हुआ था वह तुझसे हुआ ही नहीं था। यही अर्थ है कि सारे कर्म भस्मीभूत हो जाते हैं। वह तूने स्वप्न में किया था। वह कभी हुआ ही नहीं। सपने के ख्याल थे। सपने में बुदबुदाया था। सपने में कुछ सोचा था कि कर रहा हूं, कुछ हो रहा है। सुबह जागकर पाया है कि सब सपने व्यर्थ हैं। सुबह जागकर तू हंसा है कि रात जो देखा, कितना सत्य मालूम पड़ता था! कितना यथार्थ मालूम पड़ता था। जागते ही सब खो जाता है।
कभी एक प्रयोग करो छोटा। सपने में जागने की चेष्टा करो। कठिन है, लेकिन हो जाता है। अगर रोज-रोज इसी धारणा को लेकर रात सोओ कि सपने में चेष्टा करूंगा कि जाग जाऊं; कि सपने को जान लूं कि सपना है। ऐसा अगर रोज रात को सोते वक्त यही धारणा, यही भावना करते-करते सोओ तो तीन और नौ महीने के बीच किसी न किसी दिन ऐसी घटना घटेगी कि अचानक तुम सपना देख रहे होओगे और भीतर स्मरण आ जाएगा कि अरे! यह तो सपना है। और एक तब अनूठा मीठा अनुभव होता है। बड़ा अदभुत, बड़ा अनुपम, अपूर्व। क्योंकि जैसे ही तुम्हें याद आता है कि अरे! यह तो सपना है कि सपना तत्क्षण खो जाता है। और उस सपने के खोने में पहली दफे तुम्हें पता चलता है कि होश में आना और सपने का टूट जाना एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
ऐसा ही जीवन भी एक बड़ा सपना है।
महावीर माया शब्द का भी उपयोग नहीं करते। क्योंकि माया शब्द के उपयोग
के लिए भी परमात्मा का होना जरूरी है। वह परमात्मा की शक्ति हो तो माया।
कोई मायावी हो तो माया। कोई जादूगर हो तो जादू। कोई जादूगर तो है नहीं महावीर की भाषा में, इसलिए कोई माया भी नहीं है।

लेकिन यह सूत्र घोषणा कर रहा है कि जो कर्म केवल ध्यान में उतरने से समाप्त हो जाते हैं, वे वस्तुतः न रहे होंगे। अगर रहते तो ध्यान में उतरने से क्या होता था? ध्यान में उतरने से सत्य थोड़े ही बदलता है। ध्यान में उतरने से केवल माया ही बदल सकती है।
तुम कमरे में बैठे हो, आंखें झपकी हैं, सपना ले रहे हो। अगर जाग जाओगे
तो सपना टूट जाएगा, लेकिन तुम्हारे जागने से कमरे की कुर्सी, फर्निचर, दीवालें थोड़े ही समाप्त हो जाएंगी! जो है, वह तो तुम्हारे ध्यान में जाने से नष्ट नहीं होगा। वस्तुतः तुम जैसे ध्यान में जाओगे, प्रगट होगा, पूरे रूप में प्रगट होगा, जो है। जो नहीं है, वहीं खो जाएगा।
इस सूत्र का मैं यह अर्थ करता हूं कि महावीर यह कह रहे हैं कि तुमने अब
तक जो किया है, हुआ, वह सब सपने में हुआ है। जागते ही एक क्षण में मिट जाएगा।
जह चिरसंचयमिंधण-मनलो पवणसहिओ दुयं दहइ।
"जैसे चिर-संचित ईंधन को वायु से प्रदीप्त आग तत्काल जला डालती है...
।"
तह कम्मेंधणममियं, खणेण झाणानलो डहइ।।
"... वैसे ही ध्यान रूपी अग्नि अपरिमित कर्म-ईंधन को क्षणभर में भस्म
कर डालती है।"
"मोक्षार्थी मुनि सर्वप्रथम धर्म-ध्यान द्वारा अपने चित्त को सुभावित करे। बाद में धर्म-ध्यान से उपरत होने पर भी सदा अनित्य, अशरण आदि भावनाओं के चिंतवन में लीन रहे।"
यह भी ख्याल में रखना कि महावीर अकेले चिंतक हैं, जिन्होंने ध्यान को धर्म और अधर्म, दो खंडों में बांटा। अकेले! पूरे मनुष्य-जाति के इतिहास में। पतंजलि ने वैसा नहीं किया, बुद्ध ने वैसा नहीं किया, कृष्ण ने वैसा नहीं किया। अकेले महावीर ने ध्यान को धर्म और अधर्म, दो में बांटा। और इसमें बड़ी वैज्ञानिक सूझ है। यह उनका अनुपम दान है।
मनुष्य-जाति को सभी जाग्रत पुरुषों ने कुछ दिया है, जो विशिष्ट है। कुछ है, जो सामान्य है; जो सभी ने दिया है। कुछ है, जो एक-एक ने दिया है और विशिष्ट है। यह महावीर की विशिष्ट देन है ध्यान के शास्त्र और विज्ञान को। महावीर कहते हैं, अधर्म ध्यान और धर्म ध्यान।
थोड़े तुम चौंकोगे। अधर्म ध्यान? ध्यान से तो हम संबंध ही धर्म का जोड़ते हैं। लेकिन महावीर की पहुंच गहरी है। महावीर कहते हैं, कुछ ऐसी घड़ियां हैं, जो अधर्म की होती हैं, लेकिन ध्यान बंध जाता है।
जैसे जुआरी जुआ खेल रहा है; जब वह पांसे हाथ में लेकर चल रहा है तो उसके चित्त में बड़ी एकाग्रता होती है। ऐसा भी हो सकता है कि मंदिर में जो माला जप रहा है, उससे ज्यादा एकाग्रता जुआरी जब पांसे हाथ में लेकर चलता हो, तब हो।
कोई हत्यारा किसी को मारने जा रहा है, तब बड़ा एकाग्र होता है। कोई विचार नहीं उठते। इधर-उधर सोच भी नहीं जाता। तीर की तरह एक ही बात, एक ही भाव, एक हवा, उसे घेरे रखती है।
तुमने भी कभी देखा हो, शायद जुआ न खेला हो, हत्या भी न की हो, लेकिन कभी क्रोध में थोड़ी-बहुत झलक आयी होगी। हो सकता है क्रोध का मजा भी यही हो कि ध्यान बंध जाता है। क्रोधी आदमी क्रोध के क्षण में सब भूल जाता है। इसीलिए तो अक्सर क्रोध के बाद तुम कहते हो, मेरे बावजूद हो गया। मैं करना नहीं चाहता था और हो गया।
तुम्हारे बावजूद? तुम्हारा मतलब क्या? किया तो तुम्हीं ने। हुआ तो तुम्हीं से। साथ तुम्हारा था।
लेकिन तुम कहते हो, सब मैं भूल ही गया। बेहोश था। कुछ याद ही न रहा। न नियम याद रहे, न शिष्टाचार याद रहा। और खुद की खायी कसमें भी याद न रहीं।
कितनी बार तय किया कि नहीं करूंगा क्रोध, फिर हो गया।
लेकिन जब क्रोध पकड़ता है तो आदमी एकदम एकाग्र हो जाता है। महावीर ने इसको रौद्र ध्यान कहा है--क्रोध में।
कामवासना में भी आदमी ध्यान से भर जाता है।

मैंने सुना है, एक आदमी को पकड़ा गया क्योंकि उसने एक राह के किनारे बैठे दुकानदार की थैली झपट ली; रुपयों की थैली झपट ली। वह दुकानदार रुपये गिन रहा था और थैली में डाल रहा था। मजिस्ट्रेट ने पूछा कि तू भी खूब चोर है। चोर हमने बहुत देखे, भरे बाजार में, भरी दुपहरी में इतने आदमी वहां खड़े थे, यह पुलिसवाला भी चौरस्ते पर मौजूद था, यह तेरे को चोरी करने का वक्त मिला?
उसने कहा, उस समय मुझे सिवाय थैली और रुपये के कोई भी दिखाई नहीं पड़ रहा था। उस समय बस, यह थैली और रुपये दिखाई पड़ रहे थे। और सब मेरे ध्यान से उतर गया था। मेरा ध्यान बिल्कुल थैली पर लग गया था। न मुझे पुलिसवाला दिखाई पड़ा... ।
तुमने देखा, कामातुर आदमी को कुछ दिखाई नहीं पड़ता! तुलसीदास की कथा है
कि एक मुर्दे की लाश का सहारा लेकर नदी पार गए। पत्नी से मिलने जा रहे थे। गहरा कामांध भाव रहा होगा। याद भी न आयी कि यह लाश है। समझा कि कोई लकड़ी का डूंगर बहा जाता है। फिर कहते हैं, पत्नी के घर पहुंचकर, लटके सांप को पकड़कर जीना चढ़ गए--सोचकर कि रस्सी है।
पत्नी ने जो कहा, निश्चित ही कुछ न कुछ महावीर के धर्म और अधर्म ध्यान
का पता तुलसीदास की पत्नी को रहा होगा। क्योंकि पत्नी ने कहा कि इतना ध्यान तुम अगर राम पर लगा देते, जितना तुमने मुझ पर लगाया है, तो परम आनंद और परम मुक्ति तुम्हें उपलब्ध हो जाती। इतना ध्यान, जो तुमने काम पर लगाया, अगर राम पर लगा देते... ।
और वही घटना तुलसीदास के जीवन में क्रांति बनी। वह एक शब्द चोट कर गया। वह एक शब्द जैसे कुछ छिपे हुए जन्मों-जन्मों की खोज को स्पष्ट कर गया। वह एक शब्द जीवनभर के लिए क्रांतिकारी सूत्र हो गया। समझ में आ गई बात कि काम के लिए इतना ध्यान लगा रहा हूं, इतना राम पर लग जाए तो सब मिल जाए। काम से मिलेगा भी तो क्या मिलेगा?
महावीर दो भाग करते ध्यान केः अधर्म-ध्यान और धर्म-ध्यान। वे कहते हैं ध्यान तो दोनों हैं। अधर्म-ध्यान ऐसा ध्यान है, जिसमें ध्यान तो होता, मिलता कुछ भी नहीं। ध्यान तो होता है; कष्ट मिलता है, दुख मिलता है, पीड़ा मिलती है। ध्यान तो है लेकिन गलत दिशा में आरोपित है।
धर्म-ध्यान का अर्थ हैः वही ध्यान, जो गलत दिशा में आरोपित था, ठीक दिशा में लगा। काम से मुड़ा, राम की तरफ लगा। धन से हटा, धर्म की तरफ लगा। क्रोध से हटा, करुणा पर बरसा।
"मोक्षार्थी मुनि सर्वप्रथम धर्म-ध्यान द्वारा अपने चित्त को सुभावित करे... ।"
पहले अधर्म-ध्यान से हटे और धर्म-ध्यान में लगे। पहले उन-उन विषयों से अपने ध्यान को मुक्त करे, जिनसे जन्मों-जन्मों में सिवाय कांटों के और कुछ भी न मिला। फूल का आश्वासन रहा, हाथ जब आए, कांटे आए। दरवाजा दूर से दिखा, पास जब आए, सिर दीवाल से टकराया। दूर से सब स्वर्णिम मालूम पड़ा, पास आते- आते सब मिट्टी हो गया।
इस अनुभव के आधार पर पहले तो ध्यान की ऊर्जा को अधर्म से मुक्त करना
है क्योंकि यही ऊर्जा धर्म में लगेगी। अगर यह ऊर्जा अधर्म से मुक्त नहीं है तो तुम्हारे पास धर्म में लगाने को ऊर्जा न होगी।
इसलिए अक्सर होता है--तुम्हें भी हुआ होगा, मुझे बहुत लोग आकर कहते हैं--कि मंदिर में जाकर बैठते हैं, माला जपते हैं, तब न मालूम कहां-कहां के ख्याल आते हैं। ये वे ही ख्याल हैं, जिन पर तुमने अब तक ध्यान किया है। ये हर कहीं से नहीं आ रहे हैं, आकाश से नहीं आ रहे हैं। ये तुम्हारे पुराने अभ्यास से आ रहे हैं, और इसीलिए आ रहे हैं कि अब तक तुम्हारे चित्त ने जिस चीज को ध्यान जाना, वही तो आएगा, जब तुम ध्यान करने बैठोगे। पुराना एसोसिएशन, पुराना साहचर्य, पुराना संबंध।
पावलोव ने बड़े प्रयोग किये मनुष्य के संस्कारों पर। उसका बड़ा जाहिर, प्रसिद्ध प्रयोग है कि एक कुत्ते को रोटी देता है। जब उसके सामने रोटी रखता है तो कुत्ते के मुंह से लार टपकने लगती है। साथ में वह घंटी बजाता है। ऐसा रोज करता है पंद्रह दिन तक। रोटी देता है, घंटी बजाता है, लार

टपकती है। फिर सोलहवें दिन रोटी नहीं देता, सिर्फ घंटी बजाता है, और लार टपकती है। अब लार से और घंटी का कोई भी संबंध नहीं है। तुम किसी कुत्ते के सामने घंटी बजाओ, वह लार नहीं टपकाएगा; लेकिन पावलोव का कुत्ता टपकाता है। पावलोव ने यह सिद्धांत निकाला इससे, कि रोटी और लार का तो संबंध था, दोनों के बीच में घंटी भी समा गई। दोनों के साथ-साथ घंटी भी जुड़ गई।
इसलिए अक्सर तुम्हें भी हुआ होगा। पावलोव ने न भी किया हो प्रयोग, तुम अपने पर कर सकते हो। तुम अगर रोज एक बजे भोजन करते हो, एकदम घड़ी में तुमने देखा, एक बजा--भूख लगी। अभी एक क्षण पहले तक भूख का पता भी न था। और हो सकता है, घड़ी बिगड़ी हो और एक अभी बजा न हो, अभी ग्यारह ही बजे हों। लेकिन देखा, एक बज गया, एकदम कौंध की तरह भीतर कोई भूख जग आयी... साहचर्य!
तुमने अब तक जहां भी ध्यान किया है--कभी क्रोध पर किया, कभी काम पर किया, कभी धन पर किया। फिर तुम मंदिर गए। तुम कहते हो, ध्यान करने जा रहे हैं। तो तुमने जहां-जहां ध्यान किया है, वहां-वहां ध्यान जुड़ गया। घंटी से लार बंध गई। एक बजे से भूख जुड़ गई। अब तुम मंदिर में बैठे, एक बजने लगा, घंटी बजने लगी। अब तुम मंदिर में बैठे, तुम कहते हो, ध्यान करना है। माला फेरने लगे। तुम कहते हो जैसे ही कि ध्यान करना है, मन में न मालूम कितने कूड़ा-कर्कट उठने लगे। क्योंकि तुम्हीं उठा रहे हो उनको। तुम कहते हो, ध्यान करना है। और ध्यान तुमने जिन-जिन चीजों पर किया है अब तक, उनका अभ्यास प्रबल है।
कोई सुंदर स्त्री खड़ी हो गई। तुम झिड़कते हो कि हटो भी! मैं ध्यान कर रहा हूं। यह मंदिर है, यह कोई वेश्यालय नहीं है। मैं यहां पूजा-पाठ करने आया, ध्यान करने आया, माला फेर रहा हूं। हटो भी! लेकिन तुम जितना हटाते हो, माला तो याद नहीं आती, सुंदर स्त्री खड़ी हो-हो जाती है। तुम चकित भी होते हो कि यह सुंदर स्त्री, जब दुकान पर बैठकर धन कमा रहा हूं, तब इतना नहीं सताती। यह मंदिर में क्यों पीछा करती है?
ऋषि-मुनियों की कथाएं हैं, अप्सराएं सता रही हैं उनको। कोई किसी को सताएगा? अप्सराओं को क्या पड़ी है? ऋषि-मुनियों से क्या लेना-देना! और सताना ही होता तो कोई ढंग के आदमी चुनतीं--ऋषि-मुनि! सूखे, हड्डी-कंकाल! काफी समय हो गया तब मर चुके। न देह में सौंदर्य रहा, न देह में रस रहा। इनको अप्सराएं स्वर्ग से सताने आ रही हैं!
कहीं कुछ गड़बड़ है। ऋषि के मन में ध्यान के पुराने साहचर्य, संबंध बने हैं। स्त्रियों पर ध्यान किया होगा। अब कहते हैं, चौबीस घंटे ध्यान करने वृक्ष के नीचे गुफा में आकर बैठ गए हैं। ध्यान शब्द ही अधर्म से जुड़ा रहा है जन्मों-जन्मों तक। तो जब तुम धर्म के नाम पर भी ध्यान करते हो तो अधर्म तुम पर हमला करता है।
महावीर कहते हैं, यह साहचर्य तोड़ना पड़ेगा। जो पावलफ ने ढाई हजार साल बाद रूस में कहा, वह महावीर ने भारत में पच्चीस सौ सदियों पहले कह दिया था कि पहले साहचर्य को तोड़ो। एकदम मंदिर में मत भागे जाओ, पहले बाजार से मुक्त तो हो लो। नहीं तो मंदिर में बैठोगे, अप्सराएं आएंगी। और वे अप्सराएं अगर तुम गौर से देखोगे, तुम भलीभांति पहचान लोगे, कोई अप्सराएं नहीं हैं, यही जमीन की स्त्रियां हैं। यह हो सकता है कि कई स्त्रियों ने मिलकर एक अप्सरा बना दी हो। किसी स्त्री की नाक पसंद पड़ी, किसी स्त्री का कान पसंद पड़ा, किसी की आंख पसंद पड़ी, किसी के ओंठ पसंद पड़े, किसी के शरीर की गंध पसंद पड़ी, किसी के शरीर का अनुपात पसंद पड़ा; ऐसा मन चुनता रहा, ध्यान करता रहा। इन सबको इकट्ठा कर लिया। अब जब तुम ध्यान करने बैठे, तुमने तुम्हारी कल्पना में एक स्त्री खड़ी हुई, जो अप्सरा मालूम होती है। क्योंकि जितनी स्त्रियां तुम जानते हो उनमें से किसी जैसी नहीं लगती, परम सुंदर है।
मगर गौर से खोजना तो तुम पाओगे, अरे! यह नाक कमला की रही, ये कान निर्मला के रहे; ये ओंठ विमला के रहे। अड़चन न होगी। अगर जरा गौर से देखोगे, तो अप्सरा को तोड़कर देखोगे, विश्लेषण करोगे तो सब समझ में आ जाएगा। जहां-जहां ध्यान किया था, वहां-वहां से खंड इकट्ठे हो गए हैं। यह अप्सरा स्वर्ग से नहीं आयी और किसी इंद्र ने नहीं भेजी, मगर कहानी बड़ी

प्रीतिकर है। यह अप्सरा तुम्हारी इंद्रियों से आयी, इसलिए इंद्र ने भेजी। यह तुम्हारी ही इंद्रियों का सार-निचोड़ है। तुम्हारी आंखों ने जो देखा, और जो सार निचोड़ा, तुम्हारे कानों ने जो सुना और सार निचोड़ा, तुम्हारे हाथों ने जो छुआ और सार निचोड़ा। यह तुम्हारी सारी इंद्रियों ने जो निचोड़ा, इन सारी इंद्रियों के पीछे बैठा हुआ मन है, इंद्र। इंद्रियों का मालिक यानी इंद्र। उस मन में जो इकट्ठा हो गया है। अधर्म-ध्यान से जो-जो निष्पत्तियां वहां इकट्ठी हो गई हैं जन्मों-जन्मों की यात्रा में, वे ही जब तुम ध्यान करने बैठोगे, तुम्हारे सामने खड़ी हो जाएंगी। निश्चित ही वे ऐसी कोई भी स्त्री से बहुत सुंदर होंगी, जिनसे तुम परिचित हो।
वास्तविक स्त्रियों से कल्पना की स्त्रियां निश्चित ही सुंदर होती हैं। इसीलिए कवि किसी भी स्त्री से तृप्त नहीं हो पाते। क्योंकि कल्पना की स्त्री उनकी बड़ी सुंदर होती है। सभी स्त्रियां ओछी पड़ जाती हैं। जो लोग साधारण स्त्रियों से तृप्त हो जाते हैं, एक बात का सबूत देते हैं कि उनके पास कल्पना की शक्ति नहीं है; और कुछ सबूत नहीं देते। जितना कल्पना-प्रवण व्यक्ति होगा, जितनी प्रगाढ़ क्षमता होगी कल्पना करने की, उतना ही यह संसार उसे अतृप्त करेगा। क्योंकि उसकी धारणा बड़ी ऊंची होती है। उसकी कल्पना की स्त्रियां एकदम सुगंध की प्रतिमाएं हैं। स्वप्न से निर्मित, फूलों के पराग से निर्मित, चांद की चांदनी से, हवाओं की ताजगी से, ओस की ताजगी से निर्मित। साधारण स्त्री, साधारण पुरुष बहुत स्थूल है, बहुत पार्थिव है; उसकी कल्पना बड़ी पारलौकिक है।
जब ऋषियों को अप्सराओं ने घेरा तो किसी ने नहीं घेरा। ये किसी स्वर्ग
से नहीं आयी हैं, ये ऋषियों की कल्पना से आयी हैं।
महावीर कहते हैं, पहले तो धर्म-ध्यान पर जाना जरूरी है। अधर्म से, अधर्म के विषयों से चित्त को हटाना और धर्म के विषय देना जरूरी है। महावीर बहुत गणितज्ञ, वैज्ञानिक की तरह इंच-इंच बढ़ते हैं। वे कहते हैं, जल्दबाजी में कुछ भी न होगा। एकदम तुम आज तय कर लो कि मंदिर में चले जाओगे; कुछ फर्क न पड़ेगा। मंदिर में बैठोगे, लेकिन रहोगे बाजार में। ऊपर-ऊपर मंदिर में होओगे, भीतर-भीतर बाजार में। बाजार से बड़े पुराने नाते हैं।
"मोक्षार्थी मुनि सर्वप्रथम धर्म-ध्यान द्वारा अपने चित्त को सुभावित करे... ।"
अधर्म से हटे, धर्म की तरफ गतिमान हो। विषयों को धीरे-धीरे बदले।
और दूसरी बात इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण ध्यान में रखनी जरूरी है कि अधर्म-ध्यान के विषय अधार्मिक हैं। ध्यान तो वही है। धर्म-ध्यान के विषय बदल गए, ध्यान तो वही है।
फिर एक तीसरी अवस्था है, जिसको महावीर समाधि कहते हैं, सम्यकत्व कहते हैं। वस्तुतः समाधि, वस्तुतः निर्विकल्प चित्त की दशा है। वहां कोई भी विषय नहीं रह जाते। वहां तो धर्म-ध्यान से विषयों को छुड़ाना पड़ता है। पहले ध्यान को गलत विषयों से छुड़ाओ, ठीक विषयों पर लगाओ। ठीक विषयों
पर लगाना केवल संक्रमण की प्रक्रिया है, ताकि गलत से छूटने में सहारा मिल जाए। फिर जब गलत से छुटकारा हो जाए तो मत करना ऐसा, कि अब ठीक पर बैठकर रह जाओ। यह तो केवल उपाय था। जैसे बीमार को औषधि देते हैं। बीमारी चली गई, अब औषधि का क्या करना? अब इसे फेंकना होगा। इससे भी मुक्त होना होगा। यह तो केवल बीच का सहारा था; संक्रमण की स्थिति थी।
तो धर्म-ध्यान भी वस्तुतः ध्यान नहीं है, संक्रमण की स्थिति है; सीढ़ी है। फिर तो ध्यान से भी मुक्त होना है। फिर तो ये धर्म के विषय भी छोड़ देने हैं। तभी परम ध्यान होगा। जब कोई भी विषय न रह जाए, तुम्हारी चेतना बचे, चेतना की ज्योति बचे। लेकिन उस ज्योति का प्रकाश किसी चीज पर न पड़ता हो--न धन पर, न धर्म पर; न काम पर, न अकाम पर; न क्रोध पर न करुणा पर।
करुणा का उपयोग कर लेना क्रोध से बचने के लिए; लेकिन फिर करुणा से ग्रसित मत हो जाना। उससे भी पार जाना है। एक ऐसी घड़ी खोजनी है, जहां तुम हो। बस तुम हो। अकेले तुम हो।
उसको महावीर कहते हैं केवल, केवल दशा, कैवल्य, जहां बस तुम हो। ऐसा समझो कि शून्य में कोई दीया जलता हो। जहां प्रकाशित करने को कुछ भी नहीं

है, बस प्रकाश है। क्योंकि जो भी चीज मौजूद हो, वह प्रकाश को थोड़ा-सा धूमिल और दूषित करती है। क्योंकि कोई चीज मौजूद हो तो उसकी छाया पड़ती है। कोई चीज मौजूद हो तो अंधेरा पैदा होता है।
निर्विषय चित्त, निर्विकार चित्त तभी संभव है, जब मात्र ध्यान रह जाए--शुद्ध, एकदम शुद्ध। ध्यान के लिए कोई वस्तु न रह जाए, बस ध्यान की ऊर्जा रह जाए।
"मोक्षार्थी मुनि सर्वप्रथम धर्म-ध्यान द्वारा अपने चित्त को सुभावित करे। बाद में धर्म-ध्यान से उपरत होने पर भी... ।"
फिर एक घड़ी आती है, जब आदमी धर्म-ध्यान से भी उपरत हो जाता है। उसके भी पार हो जाता है, अतिक्रमण कर जाता है। फिर भी, महावीर कहते हैं, इन थोड़ी-सी बातों का चिंतवन करता रहे।
"... सदा अनित्य, अशरण आदि भावनाओं के चिंतवन में लीन रहे।"
क्योंकि महावीर कहते हैं, कि चित्त की शक्ति बड़ी प्रबल है। कभी-कभी क्षणभर को तुम पार भी हो जाते हो; और अगर शिथिल हो गए तो चित्त तुम्हें वापस खींच ले सकता है। इसलिए ऐसी घड़ी भी आ जाए कि तुम्हें लगे अब ध्यान की कोई जरूरत नहीं, यह भी महावीर सावधानी बरतने को कहते हैं कि तुम अभी जल्दी से ध्यान छोड़ मत देना। इतनी धारणाओं का चिंतवन करते रहना--
"अनित्य, अशरण, एकत्व, अन्यत्व, संसार, लोक, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, धर्म और बोधि--इन बारह भावनाओं का चिंतवन जारी रखना।"
इनमें से एक-एक भावना समझने जैसी है। ये महावीर की मूल भित्तियां हैं--ये बारह भावनाएं। जिन्होंने इन बारह भावनाओं को साध लिया, समाधि अपने आप फलित हो जाती है।
"अनित्य"--महावीर कहते हैं, इस बात को सदा स्मरण रखें कि जो भी है यहां,
सब क्षणभंगुर है। इसे क्षणभर को न भूलें। क्षणभंगुरता को क्षणभर को न बिसारें। जन्मों-जन्मों का मन पर यह प्रभाव है कि बदलती हुई चीजें थिर मालूम होती हैं।
तुम देखते हो दीवाल, वृक्ष, सब थिर मालूम होते हैं, हालांकि तुम जानते हो, सब बदल रहे हैं। जो फूल कल नहीं था, आज आ गया। जो पत्ते कल थे, गिर गए। यह दीवाल भी जो बहुत मजबूत है, यह भी राख हो जाएगी। यह भी आज नहीं कल रेत होकर बह जाएगी। कितने महल बने और बिखर गए। पहाड़ बनते हैं और खो जाते हैं। सागर बनते हैं और मिट जाते हैं। महाद्वीप के महाद्वीप लीन हो जाते हैं।
लेकिन फिर भी आंखें एक भ्रम देती हैं कि जैसे सब थिर है। तुम रोज बूढ़े
हो रहे हो लेकिन मन ऐसा ही माने रखता है कि सब ठीक चल रहा है। सब वैसे का वैसा ही है। रोज सुबह आईने के सामने खड़े होकर तुम अपने को देख लेते हो, लगता है, सब ठीक है। वैसा का वैसा है।
प्रक्रिया इतनी धीमी है और तुम्हारा होश इतना कम है। तो या तो प्रक्रिया बहुत तेजी से हो तो कुछ हो सकता है। कि रात तुम सोओ जवान और सुबह बूढ़े हो जाओ तो शायद तुम्हें अकल आए कि अरे! सब क्षणभंगुर है।
मगर बूढ़ा होना इतने धीमे-धीमे होता है, इतने आहिस्ता-आहिस्ता होता है, इतने रत्ती-रत्ती होता है, कि पता ही नहीं चलता। एक-एक बूंद रीतता है सागर। ऊपर से ऐसा लगता है, वही का वही; वैसा का वैसा है।
तो या तो जो क्षणभंगुरता है, वह बड़ी तीव्रता से, त्वरा से घूमने लगे कि
घर के बाहर गए, लौटकर आए, पत्नी बूढ़ी हो गई। गए थे तो जवान छोड़ गए थे। घर के बाहर गए, लौटकर आए तो देखा, कि घर राख हो गया। गए थे तो बिल्कुल अभी महल की तरह खड़ा छोड़ गए थे। लौटकर आए तो रेत पड़ी है, रेत का ढेर लगा है।
या तो ऐसा हो... ऐसा तो होता नहीं है। ऐसा तो स्वभाव नहीं वस्तुओं का।
तो फिर दूसरा उपाय है, कि तुम्हारा बोध गहरा हो, तुम्हारा होश गहरा हो कि बहुत धीमे से, बारीक से हो रहे फर्क को भी तुम पहचान पाओ। वह भी आंख से बच न जाए।
जागकर देखो तो तुम हर सुबह चेहरे में अंतर पाओगे। लौटकर घर आओ, तुम अंतर पाओगे। लेकिन बड़ी जागरूकता चाहिए होगी। क्योंकि अंतर बड़े आहिस्ता हो रहे हैं, बड़े धीमे-धीमे हैं।

ऐसा समझो कि बाजार में कोई साग-सब्जी तौलता है तो मोटे बांट-बटखरों से तौलता है। कोई फर्क नहीं पड़ता, तोला इधर कि तोला उधर, साग-सब्जी है। सोना नहीं तौला जाता ऐसे। बांट-बटखरे हर तरह के काम नहीं दे देंगे। रत्ती-रत्ती का हिसाब रखना होता है। तो सुनार भी तौलता है लेकिन वहां रत्ती-रत्ती का हिसाब है। लेकिन यह भी तौल बहुत गहरी तौल नहीं है। वैज्ञानिक तौलता है, वहां तो रत्ती का भी हजारवें हिस्से का ख्याल है। वहां तो सेकेंड-सेकेंड का ख्याल है। सेकेंड के हजारवें हिस्से का ख्याल है। तो ही... ।
जैसे-जैसे बहुमूल्य को पहचानना हो वैसे-वैसे तुम्हारे बांट-बटखरे ज्यादा सुनिश्चित होने चाहिए। और एक ही बटखरा है, एक ही बांट है हमारे पास, वह है जागरूकता का, होश का, ध्यान का। नाम कुछ भी हो, बांट एक ही है। यह बहुत स्पष्ट होना चाहिए। इसमें रत्ती-रत्ती का पता चलना चाहिए। यह ऐसा मोटा, साग-सब्जी तौलने जैसा बांट न हो, सोना तौलने जैसा; या वैज्ञानिक का कांटा हो, जहां रत्ती का लाखवां हिस्सा भी पहचाना जा सकता है--कि कम हुआ कि ज्यादा हुआ।
तो तुम्हारा होश बढ़े।
पहली भावना हैः अनित्य। चलते, उठते, बैठते, सोते, जागते एक बात तुम्हारे भीतर सतत बनी रहे; एक स्मरण बना रहे--सब बदल रहा है, सब बदला जा रहा है।
क्या होगा इसका परिणाम? इसका परिणाम यह होगा कि तुम मोहग्रस्त न होओगे। जो बदल ही रहा है उसको पकड़ने का कोई अर्थ नहीं है। जो जा ही रहा है, जाएगा ही, उसके साथ लगाव और आसक्ति बनाने का कोई अर्थ नहीं है। जो छूटेगा ही, वह छूट ही गया। बुद्धिमान व्यक्ति को इस संसार में पकड़ने को कुछ भी नहीं, क्योंकि कुछ पकड़ा ही नहीं जा सकता। यहां थिर कुछ भी नहीं है। इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति कोई अपेक्षा नहीं रखता थिर होने की।
अगर तुम महावीर को जाकर धोखा दे दो तो महावीर चकित नहीं होते। तुम्हारा मित्र तुम्हें आकर धोखा दे दे, तुम चकित होते हो। क्या कारण है? तुम चकित होते हो क्योंकि तुम मानते थे, कि मित्र सदा मित्र रहेगा। थिरता की अपेक्षा कर रहे थे क्षणभंगुर जगत में। यहां कोई थिर नहीं है। न शत्रु थिर है, न मित्र थिर है। कल मित्र शत्रु हो सकता है, शत्रु मित्र हो सकता है। सब चीजें बदल रही हैं। सब चीजें उथल-पुथल में हैं।
लेकिन तुम सोचते थे, मित्र सदा मित्र है। और जब मित्र धोखा दे जाता है, तुम एकदम चौंककर खड़े रह जाते हो। तुम चकित हो जाते हो।
तुम चकित मित्र के कारण नहीं होते, न उसके धोखे के कारण होते हो। तुम अपनी थिर अपेक्षा के कारण चकित होते हो।
तुम महावीर को जाकर धोखा दे आओ, कोई अंतर न पड़ेगा। वे चकित न होंगे, क्योंकि उनकी कोई अपेक्षा नहीं है।
शायद वे अपने भीतर दोहराएंगे कि देखा, संसार कैसा थिर है! सब अनित्य है। यहां मित्र भी अपना नहीं। यहां शत्रु भी पराया नहीं। यहां किसी का भरोसा, गैर-भरोसा करने का कोई कारण नहीं।
एक बड़ी प्रसिद्ध सूफी कहानी है, एक सम्राट ने अपने सारे बुद्धिमानों
को बुलाया। और उनसे कहा कि मैं कुछ ऐसा सूत्र चाहता हूं--छोटा हो। बड़े शास्त्र नहीं चाहिए। मुझे फुर्सत भी नहीं बड़े शास्त्र पढ़ने की--ऐसा सूत्र चाहता हूं, एक वचन में पूरा हो जाए। और हर घड़ी काम आए। दुख हो कि सुख, जीत हो कि हार, जीवन हो कि मृत्यु, सूत्र काम आए। तो तुम एक ऐसा सूत्र खोज लाओ। उन्होंने बड़ी मेहनत की, बड़ा विवाद किया। कुछ निष्कर्ष नहीं हो सका।
तो उन्होंने कहा कि हम बड़ी मुश्किल में पड़े हैं। बड़ा विवाद है, संघर्ष है। कोई निष्कर्ष नहीं हो पाता। अच्छा हो... कि हमने सुना है एक सूफी फकीर गांव के बाहर ठहरा है। कहते हैं बड़ा प्रज्ञा को उपलब्ध, संबोधि को उपलब्ध व्यक्ति है। हम उसी के पास चलें।
उस सूफी फकीर ने अपनी अंगूठी पहन रखी थी अंगुलि में, वह निकालकर सम्राट को दे दी और कहा कि इसे पहन लो। इस पत्थर के नीचे छोटा-सा कागज रखा है, उसमें सूत्र लिखा हुआ है। वह मेरे गुरु ने मुझे दिया था। मुझे तो जरूरत भी न पड़ी तो मैंने तो अभी तक खोलकर देखा भी नहीं। शर्त उन्होंने एक ही रखी

थी कि जब कुछ और उपाय न रह जाए, सब तरफ से निरुपाय हो जाओ, तब इसे खोलकर पढ़ना। ऐसी कोई घड़ी न आयी। उनकी बड़ी कृपा है। इसलिए मैं तो इसे खोलकर पढ़ा नहीं लेकिन जरूर इसमें कुछ राज होगा। आप रख लो। लेकिन शर्त याद रखना--इसका वचन दे दो कि जब कोई और उपाय न रह जाएगा, सब तरफ से निरुपाय, असहाय हो जाओगे, तभी अंतिम घड़ी में इसे खोलना। क्योंकि यह सूत्र बड़ा बहुमूल्य है और साधारणतः खोला गया तो अर्थहीन है। बड़ी प्रखर वेदना की स्थिति में इसे खोलना।
यह शब्द वेदना--सुनते हो, बड़ा बहुमूल्य है। यह उसी से बना है, जिससे वेद बना। वेदना के दो अर्थ होते हैं। एक तो अर्थ होता है, दुख। और एक अर्थ होता है ज्ञान। गहरे दुख के क्षण में ही ज्ञान होता है।
तो उस फकीर ने कहा कि जब वेदना का बहुत गहरा क्षण हो, तब इसे खोलना। यह वेद का सूत्र है। यह वेद है। इसे हर घड़ी में खोल लोगे तो बेकाम है। क्योंकि तुम तैयार ही न होओगे। तुम्हारा इससे तालमेल न बैठेगा। तुम जब बिल्कुल वेदना में जल रहे हो, चिता में बैठे हो और सब तुम्हारे सांसारिक उपाय व्यर्थ हो जाएं--क्योंकि तुम सम्राट हो, तुम्हारे पास बहुत उपाय हैं--तो इसको मत खोलना। जब तुम पाओ कि तुम दीन-दरिद्र, सम्राट नहीं; असहाय--लकड़ी के टुकड़े की तरह सागर में पड़े तरंगों के हाथ में--कहां ले जाएं, पता नहीं; तब इसे खोलना। उस वेदना के क्षण में इसका वेद-सूत्र तुम्हारे काम आ जाएगा। सम्राट ने अंगूठी पहन रखी। वर्षों बीत गए। कई दफे ख्याल भी आया--लेकिन शर्त पूरी करनी थी। वचन दिया था तो खोला नहीं। कई दफे जिज्ञासा भी हुई। फिर सोचा कि खराब न हो जाए कहीं।
फिर घड़ी भी आ गई। वर्षों बाद सम्राट हार गया। दुश्मन जीत गया, उसके राज्य को हड़प लिया। वह भागा एक घोड़े पर, अपनी जान बचाने को। राज्य तो गया, संगी-साथी भी थोड़ी देर बाद उसे छोड़ दिए। दो-चार सैनिक, उसके रक्षक साथ थे; वे भी धीरे-धीरे हट गए क्योंकि अब कुछ बचा ही न था तो रक्षा करने का भी कोई सवाल न था।
दुश्मन पीछा कर रहा है, वह एक पहाड़ी घाटी से भागा जा रहा है अपने घोड़े पर। पीछे घोड़ों की आवाजें आ रहीं हैं, टापें सुनाई पड़ रहीं हैं। प्राण संकट में हैं। और अचानक उसने पाया कि रास्ता समाप्त हो गया। आगे तो भयंकर गड्ढ है। लौट भी नहीं सकता। पीछे दुश्मन पास आ रहा है। आगे जा भी नहीं सकता। एक क्षण को किंकर्तव्यविमूढ़, हतप्रभ खड़ा रह गया! क्या करे?
याद आयी अचानक, खोली अंगूठी, पत्थर हटाया, निकाला कागज, उसमें एक छोटा-
सा वचन लिखा थाः "दिस टू विल पास--यह भी बीत जाएगा।"
सूत्र को पढ़ते ही मुस्कुराहट आ गई उसे। एक बात ख्याल में आयी, सब तो बीत गया--सम्राट न रहा, साम्राज्य गया। सुख बीत गया। तो जब सुख बीत जाता है तो दुख भी थिर तो नहीं हो सकता। शायद सूत्र ठीक ही कहता है। अब करने को भी कुछ नहीं है।
लेकिन सूत्र ने जैसे उसके भीतर कोई सोया तार छेड़ दिया, कोई साज छेड़ दिया। "यह भी बीत जाएगा।" ऐसा बोध आते ही जैसे एक सपना टूट गया। अब वह व्यग्र नहीं, बेचैन नहीं, घबड़ाया हुआ नहीं... कि ठीक है। वह बैठ गया।
संयोग की बात! थोड़ी दूर तक तो, थोड़ी देर तक तो घोड़ों की टापें सुनाई पड़ती रहीं, फिर टापें बंद हो गईं। शायद सैनिक किसी दूसरे रास्ते पर मुड़ गए। घना जंगल है, बीहड़-पहाड़ हैं, पक्का उन्हें पता भी नहीं है, कि सम्राट किस तरफ गया है। धीरे-धीरे घोड़ों की टापें दूर हो गईं।
अंगूठी उसने वापिस पहन ली।
कुछ दिनों बाद फिर दुबारा उसने अपने मित्रों को इकट्ठा कर लिया। हमला किया, पुनः जीता, फिर अपने सिंहासन पर बैठ गया। जब सिंहासन पर बैठा तो बड़ा आह्लादित हो रहा था, तभी उसे पुनः उस घड़ी की याद आयी। उसने फिर अंगूठी खोली, फिर कागज को पढ़ा, फिर मुस्कुराया। वह सारा आह्लाद, विजय का उल्लास, विजय का दंभ, सब विदा हो गया।
उसके वजीरों ने पूछा, "आप बड़े प्रसन्न थे, आप एकदम शांत हो गए! क्या हुआ?"

सम्राट ने कहा, यह सूत्र--"यह भी बीत जाएगा।" अब सभी बीत जाएगा। तो न इस संसार में दुखी होने को कुछ है, न सुखी होने को कुछ है।
इसको महावीर कहते हैं, अनित्य भावना।
था जिंदगी में मर्ग का खटका लगा हुआ
उड़ने से पेश्तर भी मेरा रंग जर्द था
जिसको मौत का पता है, वह उड़ने के पहले भी जानता है कि पंख टूटेंगे और गिरूंगा।
था जिंदगी में मर्ग का खटका लगा हुआ
जिसके पास बोध है, उसे मौत का खटका प्रतिक्षण लगा है। हृदय की धक-धक और कोई खबर नहीं लाती। धक-धक मौत का खटका है।
यह धक-धक ही बंद होगी एक दिन। यह धक-धक ही पहुंचा देगी उस जगह, जहां फिर धक-धक न होगी।
था जिंदगी में मर्ग का खटका लगा हुआ
उड़ने से पेश्तर भी मेरा रंग जर्द था
बुद्धिमान उड़ने के पहले भी जानता है, पंख टूटेंगे। वासनाओं के इंद्रधनुष गिरेंगे। सपने उजड़ेंगे। जिंदगी यहां जिंदगी जैसी नहीं है। जो टिकती नहीं, बचती नहीं, सदा नहीं रहती, उसे जिंदगी क्या कहना? पूरब की परिभाषा यही है कि वही है सत्य--जो सदा है, सनातन है, शाश्वत है। क्षणभंगुर सत्य नहीं है, क्षणभंगुर सपना है।
पूरब और पश्चिम की परिभाषाओं में बड़ा फर्क है। अगर पश्चिम में तुम पूछो, सपना क्या है? सत्य क्या है? तो अलग व्याख्याएं हैं। पश्चिम कहता है, सपना वह है, जो नहीं है; और सत्य वह है, जो है। पूरब कहता है, हैं तो दोनों ही। सपना भी है अन्यथा होता कैसे? सत्य भी है। फर्क होने और न होने का नहीं है, फर्क शाश्वतता का, क्षणभंगुरता का है।
सत्य वह है, जो है, था और होगा। सपना वह है, जो पहले नहीं था, अभी है, और अभी नहीं हो जाएगा।
पूरब और पश्चिम की व्याख्या बड़ी बुनियादी रूप से भिन्न हैं। इसलिए पश्चिम में जब माया का अनुवाद करते हैं वे, तो सदाः इल्यूजन। वह गलत है अनुवाद। माया का अनुवाद इल्यूजन नहीं है, भ्रम नहीं है।
इल्यूजन का अर्थ होता हैः जो नहीं है; सिर्फ दिखाई पड़ा। माया का अर्थ होता है, जो है लेकिन क्षणभंगुर है। होने में कोई शक नहीं है, शाश्वतता में शक है। टिकेगा नहीं। लहर की तरह आया और गया। यह भी बीत जाएगा।
तो जो चीज भी तुम्हें लगती हो, बीत जाएगी, याद रखना। अगर यह एक सूत्र
भी पकड़ में आ जाए तो और क्या चाहिए? तो तुम्हारी पकड़ ढीली होने लगेगी। तुम धीरे-धीरे उन सब चीजों से अपने को दूर पाने लगोगे, जो चीजें बीत जाएंगी। क्या अकड़ना! कैसा गर्व! किस बात के लिए इठलाना! सब बीत जाएगा। यह जवानी बीत जाएगी।
याद बन-बनके कहानी लौटी
सांस हो-होके बिरानी लौटी
लौटे सब गम जो दिए दुनिया ने
मगर न जाकर जवानी लौटी
यह सब बीत जाएगा। यह जवानी, यह दो दिन की इठलाहट, यह दो दिन के लिए तितलियों जैसे पंख। ये सब बीत जाएंगे। यह दो दिन की चहल-पहल, फिर गहरा सन्नाटा। फिर मरघट की शांति।
महावीर कहते हैं, मौत को मत भूलना। अनित्य का यही अर्थ है। अनित्य भावना का अर्थ हुआ, मृत्यु को स्मरण रखना। प्रतिपल मृत्यु को स्मरण रखना। मनुष्य की महिमा यही है कि उसे मृत्यु का पता है। मृत्यु के पता से ही धर्म का जन्म हुआ है। मृत्यु का जिसको जितना बोध है, उसके जीवन में धर्म की उतनी प्रगाढ़ता हो जाएगी।
इसीलिए तो लोग बुढ़ापे में धार्मिक होने लगते हैं। मौत करीब आने लगती है। पगध्वनि ज्यादा साफ सुनाई पड़ती है। चीजें दूर होने लगती हैं। "यह भी बीत जाएगा", इसका स्मरण ज्यादा-ज्यादा आने लगता है।

इसीलिए तो आदमी दुख में परमात्मा को स्मरण करता है। क्योंकि दुख में पता चलता है, यहां पर कुछ भी नहीं है, खोजूं परमात्मा को। सुख में फिर भूल जाता है। मौत करीब आती है तो याद आ जाता है। लेकिन कोई अगर तुम्हें चमत्कार से जवान बना दे... ।
मुल्ला नसरुद्दीन बीमार था, उसके डाक्टर ने कहा, बचना मुश्किल है। तो उसने अपनी पत्नी को कहा, अब डाक्टर को बुलाने की कोई जरूरत नहीं। नाहक फीस खराब करनी। अब तो पुरोहित को बुलाओ। अब तो मंत्र सुना दे कान में। पढ़ दे कुरान। पुरोहित आने लगा।
संयोग की बात, मुल्ला मरा नहीं। डाक्टर के डायग्नोसिस में, निदान में कहीं भूल थी। महीनेभर जी गया तो उसने फिर डाक्टर को बुलाया। अब वह स्वस्थ हो गया था, सब ठीक था। उसने डाक्टर से कहा, डाक्टर ने जांच की और उसने कहा, चमत्कार है। तुम बिल्कुल ठीक हो गए हो। मैं तो सोचता था, तुम बचोगे नहीं तीन सप्ताह से ज्यादा। और अब तो ऐसा लगता है, तुम कम से कम दस साल बचोगे। उसने अपनी पत्नी को कहा, अब पुरोहित को बुलाने की कोई जरूरत नहीं। और पुरोहित को जाकर कह दे कि अब दस साल तो मौत का कोई कारण नहीं है। इसलिए दस साल इस तरफ कृपा मत करना। लेकिन नौ साल बाद, तीन सौ चौसठ दिन बीत जाने के बाद अगर जीवित रहो तो आ जाना। एक दिन बचे, तब आ जाना।
आदमी बिल्कुल मरने के वक्त याद करता। धर्म को टालता। लेकिन इसमें सार
की बात समझ लेने जैसी है--मौत याद दिलाती धर्म की। लेकिन मौत क्या इस तरह थोड़े ही है कि तुम कहो दस साल बाद होने वाली है तो जब एक दिन बचे, नौ साल तीन सौ चौसठ दिन बीत जाएं, तब तुम आ जाना। मौत तो किसी पल आ सकती है। मौत अभी आ सकती है। मौत कल आ सकती है। हम मौत से घिरे हैं।
अनित्य भावना का अर्थ हैः मौत हमें घेरे हुए है। हम मौत के हाथ में पड़े ही हैं। हम मौत के जाल में फंसे ही हैं। कब जाल सिकोड़ लिया जाएगा और कब हम हटा लिए जाएंगे, कुछ तय नहीं है। लेकिन इतना तय है कि यह होगा।
अगर तुम थोड़े-से होशपूर्वक सोचो तो जैसे-जैसे मौत साफ होगी, वैसे-वैसे धर्म की तरफ तुम्हारी दिशा, अपने आप तुम्हारा हृदय का कांटा धर्म की दिशा में मुड़ने लगेगा।
"अनित्य, अशरण"--अशरण महावीर का बुनियादी सूत्र है। जैसे कृष्ण का सूत्र है शरणागति। इसलिए मैं कहता हूं, बड़ी विपरीत भाषाएं हैं और फिर भी एक ही तरफ ले जाती हैं।
कृष्ण कहते हैं, परमात्मा की शरण गहो। मामेकं शरणं व्रज सर्वधर्मान परित्यज्य। आ तू मेरी शरण। छोड़ सब धर्म।
महावीर कहते हैं, अशरण हो रहो। किसी की शरण भूलकर मत जाना। क्योंकि पर
से मुक्त होना है। अकेले हो तुम। कोई दूसरा सहारा नहीं है। सब सहारे धोखे हैं। सहारों के कारण ही अब तक तुम भटके हो। अब सहारों का सहारा छोड़ो। अब तुम बेसहारे हो, इस सत्य को समझो। अपने पैर पर खड़े हो जाओ। कोई दूसरा तुम्हारा कल्याण न कर सकेगा। तुमने ही करना चाहा तो ही कल्याण होनेवाला है। और दूसरे की शरण पर छोड़कर कहीं तुम ऐसा मत करना कि यह सिर्फ धोखाधड़ी हो। ऐसा दूसरे पर टालकर तुम बच रहे हो।
अक्सर शरणागति में जानेवाले लोग यही करते हैं। एक मित्र मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, हम तो आपकी शरण आ गए। मैं उनको कहता हूं, कुछ ध्यान करो। वे कहते हैं, अब हमें क्या करना? हम तो आपकी शरण आ गए। मैं उनसे पूछा कि जब तुम दुकान करते हो, तब तुम मेरी शरण नहीं छोड़ते। तुम यह नहीं कहते, अब क्या दुकान करें! करो बंद दुकान। जब मेरी शरण आ गए, कर दो दुकान बंद। उन्होंने कहा, वह कैसे हो सकता है!
दुकान तुम नहीं छोड़ते, बाजार तुम नहीं छोड़ते, धन तुम नहीं छोड़ते। सिर्फ शरण आ गए, ध्यान छोड़ते हो? और ध्यान तुमने कभी किया नहीं। छोड़ने को भी तुम्हारे पास है नहीं। तो किसको धोखा दे रहे हो?
वे सोचते हैं कि वे बड़ी ऊंची बात कह रहे हैं। वे कह रहे हैं कि हम आपकी शरण आ गए; अब और क्या करना है?
अगर यह सच हो तो कृष्ण का सूत्र काम कर जाएगा। लेकिन यह सौ में निन्यान्नबे मौकों पर सच होता नहीं। इसलिए कृष्ण का सूत्र तुम्हारे लिए

धोखे का कारण बन जाता है। तुम अपने को उस आड़ में छिपा लेते हो। तुम कहते हो, अब कृष्ण के सहारे हैं। अब वे जहां ले जाएंगे, जाएंगे।
मगर इसमें बेईमानी है। अगर यह पूरा हो तो ठीक। फिर तुम दीन हो जाओ, दरिद्र हो जाओ, सड़क पर भीख मांगो, तो भी तुम प्रसन्न हो। तुम कहोगे, उनकी शरण हैं; जहां ले जाएं। यही दिया, यही जरूरी होगा। गरीबी आवश्यक रही होगी। तुम शिकायत न करोगे। शरणागति में शिकायत नहीं है। शरणागति में सब स्वीकार है।
लेकिन आदमी बड़ा बेईमान है। वह मतलब की जो बातें हैं, खुद करता है। जिन बातों को वह सोचता है, गैर-मतलब हैं, करना चाहता नहीं, उनको वह छोड़ता है। वह कहता है, आपकी शरण हैं। मोक्ष अब आप सम्हालो। संसार तो हम सम्हाल रहे हैं, मोक्ष आप सम्हालो। धन तो हम कमाएंगे, अब ध्यान तो आपके ही हाथ में है। बस, आपके चरणों में सिर रख दिया।
सिर में कोई कीमत है ही नहीं। कचरा भरा है। उसको चरणों में रख दिया, सोचते हैं कि बहुत बड़ा काम कर दिया। कुछ हो तो सिर में! घास-फूस भरा है। वे खेत में झूठे आदमी देखे? खड़े रहते हैं। बड़ी हांडी लगी रहती है। कुर्ता भी बड़ा पहने रहते हैं। पशु-पक्षियों को डराने के काम आ जाते हैं। बस वैसा ही सिर है। उसको रख देने से भी क्या होगा?
कृष्ण ने कहा था, "सर्वधर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।" किससे कहा था? जिससे कहा था, उसके पास था कुछ। शरण में रखने को कुछ था। चरणों में न्योछावर करने को कुछ था। अर्जुन बड़ा बलशाली व्यक्ति था। और ऐसे ही उसने नहीं रख दिया जल्दी। कि कृष्ण ने कहा और उसने रख दिया, उसने कहा, जी हुजूर! ठीक कहते हैं। जो हुकुम! उसने बड़ी जद्दोजहद की। सिर था मूल्यवान। ऐसे ही रख देने का न था। सब जांच-परख की; इसलिए गीता का जन्म हुआ।
लोग आ जाते हैं, वे कहते हैं, आपके चरणों में सिर रख दिया, अब आप सम्हालें। वे उत्तरदायित्व से बच रहे हैं।
महावीर को यह दिखाई पड़ा कि हजारों लोग धर्म के नाम पर खुद धोखा खा रहे हैं, दूसरों को धोखा दे रहे हैं। तो महावीर ने बहुत जोर दिया--अशरण भावना।
किसी की शरण नहीं जाना है। महावीर ने कहा, उत्तरदायित्व तुम्हारा है। पाप तुम्हारे, पुण्य तुम्हारे, तुम दूसरे के चरणों में कैसे जा सकते हो? दूसरे से कुछ सीखना हो, सीख लेना। कुछ पूछना हो, पूछ लेना। करना तो तुम्हें होगा। साधना तो तुम्हें होगा।
तो महावीर कहते हैं, इसे याद रखना--अशरण भावना। बड़ा डर लगता है आदमी को अकेले होने में। बड़ा भय लगता है, असुरक्षा मालूम होती है।
नाजुक कश्ती, नाजुक चप्पू और इस पर तूफान का जोर
पार करेगा दरिया को तू अपनी जान-ए-चार तो देख
बड़ा डर लगता है। नाजुक कश्ती--नाजुक भी कहना ठीक नहीं, कागज की कश्ती।
अब डूबी, तब डूबी। चलाने के पहले ही पता है कि डूबेगी।
नाजुक कश्ती, नाजुक चप्पू और इस पर तूफान का जोर
और चारों तरफ अंधड़ जीवन के, मृत्यु के, परिवर्तन के, क्षणभंगुरता के। नाजुक कश्ती, नाजुक चप्पू और इस पर तूफान का जोर
पार करेगा दरिया को तू...
यह सागर तुझसे होगा पार?
... अपनी जान-ए-चार तो देख?
थोड़ी अपनी समार्थ्य तो देख।
इसलिए घबड़ाहट होती है। लेकिन महावीर कहते हैं, कोई और उपाय ही नहीं है। छोटी कश्ती है तो कश्ती को मजबूत करो। चप्पू कमजोर हैं तो नए चप्पू बनाओ। तूफान का जोर है तो तूफान से लड़ने की हिम्मत जगाओ।
सागर बड़ा है माना, लेकिन अगर तुम होश से चलो तो तुम्हारा होश सागरों
से बहुत बड़ा है। आकाश बड़ा है माना, लेकिन जिसके पास आत्मा है, उसके लिए आकाश भी छोटा है। अपने को जगाओ।
महावीर का पूरा जोर आत्मबल पर, स्वयं की संभावना को वास्तविकता बनाने
पर है।

"अन्यत्व"--चौथी भावना। स्मरण रखो कि तुम कौन हो। जो बाहर दिखाई पड़ रहे हैं, भाई है, बहन है, पत्नी है, पति है, मित्र है; वे अन्य हैं। उनके साथ अपने मैं को बहुत ज्यादा ग्रसित मत कर लेना। वह धोखा होगा। परिवार मत बसा लेना। यहां हम अकेले हैं। अकेले आए, अकेले जाएंगे। यहां परिवार तो सिर्फ हमारी एक कल्पना है, एक धारणा है।
अकेले चूंकि रहने में घबड़ाहट होती है, एक परिवार बना लेते हैं। रास्ते पर दो यात्री मिल जाते हैं, हाथ में हाथ डाल लेते हैं। दोनों अपरिचित। कहां से आते हैं, पता नहीं। कहां को जाते हैं, पता नहीं।
दूसरे बाहर हैं; इनसे मैं अन्य हूं।
फिर यह मेरा शरीर भी मुझसे बाहर है। मेरी चेतना इससे भी अन्य है। फिर
यह मेरा मन भी मुझसे बाहर है। ये विचार भी मुझसे अन्य हैं। ऐसा काटते जाना--इलिमिनेशन। एक-एक को छोड़ते जाना, जिससे तुम्हें पता चल जाए कि यह मैं नहीं हूं। ऐसे हटते-हटते-हटते-हटते... जैसे कोई प्याज को छीलता है; एक छिलका छीला, दूसरा आया। उसको भी छीलो, वह भी छिलका है। ऐसे छीलते-छीलते अखीर में शून्य हाथ लगता है। प्याज पूरी समाप्त हो जाती है। छिलके ही छिलके हैं। ऐसा ही अहंकार पूरा समाप्त हो जाता है। छिलके ही छिलके हैं। और फिर जो शून्य हाथ में लगता है, उसी को महावीर ने आत्मा कहा है। वह जो सबसे भीतर छिपा हुआ शून्य साक्षी है, द्रष्टा होना जिसका एकमात्र गुणधर्म है, वही मैं हूं। मैं कौन हूं यह जानने के लिए पहली प्रक्रिया है यह जानना कि मैं कौन नहीं हूं। गलत के साथ संबंध छोड़ते-छोड़ते एक दिन पता चलता है ठीक का। कृष्णमूर्ति कहते हैं, असार को पहचान लेना, सार को पहचान लेने की पहली व्यवस्था है। असत्य को समझ लेना सत्य की तरफ पहला कदम है। क्या गलत है इसे समझ लेना क्या ठीक है, उसकी तरफ यात्रा बन जाती है।
पांचवीं भावना--"संसार।" इस संसार को भूलना मत। संसार का अर्थ है महावीर के विचारों मेंः जन्म-मरण रूप संसरण; इसीलिए संसार। यह जो चाक है जन्म-मरण का--घूमता रहता है, घूमता रहता है--जन्म, फिर मृत्यु; फिर जन्म, फिर मृत्यु। एक ही चाक। चाक के आरे घूमते रहते हैं। यह जो जन्म-मरण रूपी संसरण है, यही संसार है।
इसे याद रखना। यहां हम मरने से तो बचना चाहते हैं, लेकिन हमें यह ख्याल नहीं कि जब तब हम जन्म से नहीं बचना चाहते तब तक मरने से न बच सकेंगे। यहां हम मृत्यु से तो बचना चाहते हैं और जीवन को पकड़ना चाहते हैं। बड़ी मूढ़ता का कृत्य है। जिसने जीवन को पकड़ा उसने मृत्यु को भी पकड़ लिया। ये दोनों इकट्ठे हैं। एक ही चके के दो आरे हैं।
अगर मृत्यु से बचना हो तो जन्म को भी छोड़ देना। अगर मृत्यु से बचना हो
तो जीवन से भी दूर खड़े हो जाना। जीवेषणा छोड़ोगे तो यमदूतों का आना बंद होगा। जीवेषणा के पीछे छिपी-छिपी मौत आती है। इसलिए महावीर कहते हैं, संसार के चाक को याद रखना।
"लोक"--छठवीं धारणा। महावीर कहते हैं, यह संसार जो दिखाई पड़ रहा है, यह
तो संसार है ही; इसके पीछे छिपे हुए संसार भी हैं, उन सभी संसारों का नाम लोक। नर्क है, स्वर्ग है, मनुष्य-लोक है। इन तीनों का इकट्ठा नाम लोक। इससे तो बचना ही। लेकिन यह मत सोचना कि इससे बचकर और स्वर्ग में पहुंच जाएंगे। कल्पवृक्ष के नीचे बैठकर मजा करेंगे। वह मजा करने की धारणा इसी संसार को बचा लेने का उपाय है।
मजा क्या करोगे? कभी सोचा? कल्पवृक्ष के नीचे बैठ गए तो करोगे क्या? कभी बैठकर शांति से सोचना कि बैठ गए कल्पवृक्ष के नीचे, अब क्या करना? तो तुम पाओगे, सारी संसार की वासनाएं उठनी शुरू हो गईं। कितना धन चाहिए-- अचानक तुम कहोगे, हो जाए करोड़ रुपये की बरसात। आ जाएं सजी हुई थालियां भोजन की, कि नाचने लगें सुंदर स्त्रियां आसपास, कि मिल जाए सिंहासन चक्रवर्ती का।
तुम जरा बैठकर सोचना। अभी बैठे नहीं हो कल्पवृक्ष के नीचे, लेकिन सिर्फ कल्पना भी करोगे तो तुम पाओगे, कल्पवृक्ष का ख्याल आते ही सारा संसार फिर आ गया।

तो महावीर कहते हैं, संसार से ही नहीं छूटना, संसार के पीछे छिपे संसारों से भी छूटना है।
"अशुचि"--सातवीं धारणा। महावीर कहते हैं, जहां-जहां मिश्रण है वहां- वहां अशुद्धि है।
देखा तुमने! दूधवाला दूध में पानी मिला लाता है, तुम कहते हो, दूध अशुद्ध है। मगर, अगर दूधवाला कहे कि शुद्ध पानी मिलाया है, तो अशुद्ध कैसे हो जाएगा? दूध भी शुद्ध था, पानी भी शुद्ध था, तो दो चीजें शुद्ध होकर मिलती हैं तो और भी शुद्धि बढ़ गई होगी, दोहरी हो गई होगी। दुगुनी हो गई है। कौन कहता है अशुद्ध है?
लेकिन फिर भी तुम कहोगे, अशुद्ध है। असलियत बात यह है, अशुद्धि का अर्थ ही इतना होता हैः विजातीय से मिल जाना। दूध पानी नहीं है, इसलिए पानी के मिलाने से अशुद्ध हुआ। दूसरी बात तुमने ख्याल नहीं दी क्योंकि पानी मुफ्त मिलता है। नहीं तो दूसरी बात भी सच है। पानी भी अशुद्ध हो गया दूध के मिलाने से। क्योंकि पानी का स्वभाव दूध नहीं है। पानी मुफ्त मिलता है इसलिए कोई फिक्र नहीं करता। करो पानी को अशुद्ध, कोई चिंता नहीं करता। दूध को मत करो क्योंकि दूध के दाम लगते हैं। लेकिन दोनों अशुद्ध हो जाते हैं। दो शुद्ध चीजें भी मिलती हैं तो परिणाम अशुद्धि होता है।
महवीर कहते हैं, यहां संसार में सब मिलावट है। यहां सब चीज एक-दूसरे
से मिली है। खिचड़ी हो गई है। इसलिए सब अशुद्ध हैं। तुम्हारी आत्मा मन में घुल गई है। मन शरीर में घुला है। शरीर बाहर संसार में डूबा है। सब एक-दूसरे को छेदे हैं। एक-दूसरे से भिदे पड़े हैं। एक-दूसरे में उलझे हैं। एक-दूसरे से गांठ बंधी है। इसलिए अशुद्धि है।
इस अशुद्धि को याद रखना--अशुचि।
और इसे याद रखना, कि तुम शुद्ध तो तभी हो, जब बस केवल तुम हो। जरा कुछ जुड़ा कि अशुद्धि हुई। कोई विचार आया, कोई भाव आया, कोई कल्पना उठी, अशुद्धि हुई। दूध में पानी पड़ा, या पानी में दूध पड़ा।
"आस्रव"--महावीर का पारिभाषिक शब्द है। आस्रव का अर्थ होता हैः द्वार
पर सम्हलकर बैठना। क्योंकि प्रतिपल तुम्हारे मन में बाहर के जगत से संस्कार आ रहे हैं, वासनाएं आ रही हैं।
तुम बैठे हो राह के किनारे, ध्यान कर रहे हो, एक कार निकल गई। कार के निकलते ही, कार का दृश्य आंख में आते ही तत्क्षण तुम्हारे भीतर कोई सोयी वासना जग गई--ऐसी कार मेरे पास हो। शायद तुमने इतने शब्दों में कहा भी नहीं। शायद तुमने फिर आंख बंद कर ली, फिर अपनी माला फेरने लगे। लेकिन एक झलक कार की, और एक वासना का उठ आना, उमग आना भीतर घट गया। यह आस्रव।
आस्रव का अर्थ हैः बाहर से चीजों को तुम्हें अशुद्ध करने का मौका देते रहना।
तो जागे रहना। कुछ भी बाहर से निकले, तुम होश रखना, आस्रव मत होने देना। कार निकल जाए, देखते रहना। कार के निकलने में कोई बाधा नहीं है।
सुंदर स्त्री निकल जाए, देखते रहना। सुंदर पुरुष निकल जाए, देखते रहना। सुंदर पुरुष-स्त्री के निकलने में बाधा नहीं है। जब तक तुम्हारे भीतर छाप न पड़े, जब तक तुम्हारे भीतर संस्कार न हों, जब तक तुम्हारे भीतर कोई तरंग न उठे तक तब कोई हर्जा नहीं है।
अगर तुम भीतर निस्तरंग रह सको तो बाजार में भी हिमालय है। हिमालय पर
भी बैठकर अगर तुम निस्तरंग न रह सको तो बाजार है।
"संवर"--यह भी महावीर का पारिभाषिक शब्द है। महावीर कहते हैं, जो गलत
हो सकता है, उसे होने मत देना। और जो ठीक हो रहा है, उसे सम्हालना। उसका संवरण करना।
जैसे तुम ध्यान कर रहे हो, धर्म-ध्यान कर रहे हो, कोई निकलाः कार निकली, स्त्री निकली, पुरुष निकला तो आस्रव--इस छाया को भीतर मत पहुंचने देना, दरवाजे पर रोक देना--एक। और भीतर जो ध्यान की प्रक्रिया चल रही है, उसे सम्हालना; उसका संवरण करना। तो बाहर से कुछ भीतर न आए और भीतर से कुछ बाहर न जाए।

"निर्जरा"--और जो भी छोड़ने योग्य है, छूटता हो तो पुरानी आदत के वश पकड़ना मत। जैसे पुराने पत्ते वृक्ष से गिरते हैं तो वृक्ष पकड़ता नहीं।
आदमी अदभुत है। यहां कचरा भी नहीं छोड़ा जाता। आदमी उसको भी सम्हालकर
रख लेता है, पता नहीं कब काम पड़े। लोग टूटी-फूटी चीजें इकट्ठी करते रहते हैं। घर को कबाड़ बना लेते हैं इस आशा में, कि पता नहीं कब काम पड़ जाए।
एक दिन मैंने देखा, मुल्ला नसरुद्दीन एक ही जूता पहने चला आ रहा है। मैंने पूछा कि दूसरे का क्या हुआ? उसने कहा, दूसरे का कुछ नहीं हुआ। एक रास्ते पर मिल गया। तो मैंने कहा, इस एक का क्या करोगे? उसने कहा, जब एक मिल सकता है तो दूसरा भी मिल सकता है। इसको तो सम्हालकर रख लें।
आदमी कुछ भी इकट्ठा कर रहा है। यह बाहर ही नहीं हो रहा, यह भीतर भी हो रहा है। भीतर भी तुम व्यर्थ हो गई चीजों को पकड़े चले जाते हो।
तो पुराने पत्ते वृक्ष से छूट ही नहीं पाते। नए पत्तों को आने की जगह नहीं, अवकाश नहीं। तुम नए नहीं हो पाते, क्योंकि तुम पुराने को जकड़े रहते हो। अतीत को पकड़े रहते हो।
किसी ने बीस साल पहले गाली दी थी, अब उसे किसलिए पकड़े हो? मगर नहीं, उसे तुम पकड़े बैठे हो। शायद वह आदमी भी मर चुका। शायद वह आदमी हजार दफे क्षमा भी मांग चुका, लेकिन फिर भी वह गाली पकड़ी है। वह वहां बैठी है। उसे तुम किसलिए पकड़े हो? उसे जाने दो।
निर्जरा का अर्थ हैः जो व्यर्थ हो जाए और छूटने लगे--और व्यर्थ होकर चीजें अपने आप छूटती हैं। स्वभावतः गिरती हैं। तुम उनको पकड़ मत लेना, रोक मत लेना। सूखे पत्तों को गिर जाने देना, उड़ जाने देना।
तो तुम ऐसे प्रतिपल नए होते रहोगे।
फिर "धर्म"--धर्म का अर्थ है स्वभाव। महावीर का धर्म का अर्थ रिलीजन
या मजहब नहीं है, महावीर का अर्थ हैः स्वभाव। जैसे अग्नि का धर्म है जलाना; जैसे पानी का धर्म है नीचे बहना; नीचे की तरफ, गड्ढे की तरफ बहना। जैसे अग्नि का धर्म है ऊपर लपट की तरह उठना, आकाश की तरफ दौड़ना; ऐसे मनुष्य का धर्म है परमात्मा होना। उसका स्वभाव है। ऐसा नहीं कि मनुष्य को परमात्मा होना है, मनुष्य परमात्मा है; उघाड़ना है।
तो महावीर कहते हैं, धर्म को मत भूलना।
लेकिन जैनियों से पूछो, जैन पंडितों से, जैन मुनियों से पूछो; वे धर्म
का अर्थ करेंगे, जैन धर्म। वे कहते हैं, जैन धर्म को याद रखना। यह बात गलत हो गई। महावीर जैन धर्म की कोई बात नहीं कह रहे हैं। यह मजहब की बात ही नहीं है। महावीर जैसे व्यक्ति मजहब की बातें करते ही नहीं। मजहब जैसे रोग और महावीर जैसे चिकित्सक उनकी बात करें! असंभव।
महावीर कहते हैं, धर्म याद रखना--सिर्फ धर्म। बुद्ध और महावीर दोनों
ने धर्म शब्द का बड़ा अदभुत प्रयोग किया है। वह प्रयोग हैः सीधा-सरल स्वभाव। जो लाओत्सु की भाषा में ताओ का अर्थ है और जो वेद की भाषा में ऋत का अर्थ है, वही महावीर और बुद्ध की भाषा में धर्म का अर्थ है।
धर्म का अर्थ हैः जो होना तुम्हारा स्वभाव है। उस स्वभाव से विपरीत
मत होना। उस स्वभाव से विपरीत को पकड़ना मत। उस स्वभाव से विपरीत को आने मत देना। उस स्वभाव के अनुकूल को सम्हालना और उस स्वभाव को सदा स्मरण रखना कि मैं कौन हूं। भला आज साफ-साफ न भी हो सके कि मैं परमात्मा हूं, लेकिन याद मत बिसारना, भूलना मत। याद बनाए ही रखना। आज नहीं उघड़ेगा, कल उघड़ेगा। कल नहीं परसों उघड़ेगा। लेकिन जिसे याद है, वही उघाड़ पाएगा। और जिसे याद ही नहीं, वह क्या खाक उघाड़ेगा! तुम्हें भला भूल ही गया हो कि धन कहां गड़ा है, लेकिन इतनी याद भी हो कि गड़ा है तो तुम खोजते रहोगे। इस कोने में खोदोगे, उस कोने में खोदोगे, इस कमरे में, उस कमरे में, आंगन में, आंगन के बाहर--खोदते रहोगे। तुम्हें याद हो कि धन गड़ा है।
मैंने सुना है, एक बाप मरा। उसके पांच बेटे थे। पांचों काहिल और सुस्त थे। सिर्फ धन में उनकी लोलुपता थी, क्योंकि गुलछर्रे करें। मरते बाप से कहा कि देखो, धन तो मैं बहुत छोड़े जा रहा हूं। वह मैंने सब खेत में गड़ा दिया है। बाप तो मर गया। वे पांचों बेटे बाप को मरघट पर किसी तरह जल्दी-जल्दी समाप्त करके भागे खेत। खोद डाला पूरा खेत। वहां कुछ गड़ा न था। लेकिन जब

पूरा खेत खुद गया तो उन्होंने कहा, अब बीज भी फेंक ही दो। फसल आयी। खूब फसल आयी।
तब उन्हें समझ आयी कि धन वहां सोने-चांदी की तरह नहीं गड़ा था। उस खोदने में ही धन पैदा हुआ। उस खोदने में ही खेत उर्वर हो गया। बीज फेंक दिए। ऐसे वे खेती करनेवाले न थे। अलाल थे, काहिल थे। बाप कहता कि खेती करना, जमीन को खोदना, बखर लगाना, वह उनसे होनेवाला नहीं था। वे बाप के मरते ही चादर तानकर सो गए होते। लेकिन धन गड़ा था, इस आशा में खोदने चले गए। तुम्हारे भीतर तुम्हें याद बनी रहे कि परमात्मा छिपा है कहीं, तो खोज जारी रहेगी। अगर तुमने यह बात ही विस्मृत कर दी तो खोदोगे क्या? खोजोगे क्या?
इसलिए महावीर कहते हैं, धर्म को याद रखना।
और "बोधि"--बोधि है अंतिम नियति, कैवल्य, समाधि। तुम्हारा परमात्मा हो जाना। तुम हो सकते हो, इसे मत भूलना।
तो दो बातेंः धर्म--कि तुम हो। लेकिन उसमें एक खतरा है। कहीं ऐसा न हो
कि तुम बिना ही खोदे और मान लो, कि हो। बिना ही उघाड़े भरोसा कर लो कि ठीक है, जब महावीर कहते हैं तो ठीक कहते होंगे।
इतने से काम नहीं चलेगा। इतना याद रखना कि तुम हो, लेकिन अभी जो तुम हो, उसे भी उघाड़ना है। तुम जो हो, अभी होना है। यह बड़ा विरोधाभासी लगेगा। इसे मैं फिर से दोहरा दूं। तुम जो हो, अभी होना है। अभी तुम्हें अपने स्वरूप को उघाड़ना है।
इसलिए धर्म की याद रखना और बोधि की याद रखना कि घटना घटती है। संबोधि कल्पना नहीं है, कवियों का कल्पनाजाल नहीं है। घटा है, यथार्थ है। जीवन का परम यथार्थ है। बुद्ध और महावीर, कृष्ण और कबीर, नानक और दादू इनकी याद का और कोई अर्थ नहीं है। इनकी याद का इतना ही अर्थ है कि इस रास्ते पर कुछ लोग परम अवस्था को उपलब्ध हुए हैं। ताकि तुम्हें भरोसा बना रहे। वे गवाहियां हैं। वे प्रमाणपत्र हैं। उनके कारण तुम इस संदेह में पूरी तरह डूब न जाओगे कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि ऐसा होता ही नहीं है! तो हम अपना व्यर्थ समय करें, व्यर्थ शक्ति करें।
इन ज्योतिर्मय पुरुषों के कारण तुम अपने अंधेरे को स्वीकार नहीं कर पाते और अपने प्रकाश को तुम कभी-कभी याद करते रहते हो। आ ही जाती है याद कहीं न कहीं। इसलिए मस्जिदें बनीं, मंदिर बने जगत में, गुरुद्वारे बने। वे याददाश्त की जगह हैं। जा रहे हो बाजार, रास्ते में मंदिर दिखाई पड़ गया; अगर तुममें थोड़ी भी बुद्धि हो तो मंदिर तुम्हें याद करा जाएगा कि बाजार जाओ भला, लेकिन आना मंदिर है। बाजार का चक्कर लगाकर आओ, मगर आना मंदिर है। आज नहीं आ सकते भला, लेकिन कल आना जरूर है। कि जीवन की नियति मंदिर में है, दुकान में नहीं है। कि जीवन का परम सौभाग्य राजधानियों में नहीं है। कि जीवन का परम सौभाग्य ध्यान में है; महत्वाकांक्षा में नहीं है, हिंसा में नहीं है, परिग्रह में नहीं है--कि ध्यान, कि धर्म, कि बोधि।
मगर क्या ऐसी चीजें होती हैं?
अगर तुम्हें याद भूल जाए, तुम अगर यह मान ही लो कि ऐसी चीजें होती ही नहीं तो फिर तुम उस दिशा में खोज ही न करोगे, तड़फोगे ही न। तुम प्यासे ही न होओगे। जो होता ही नहीं, उस दिशा में हम जाते ही नहीं। यह याद बनी रहे। इसके परिणाम देखो। सोवियत रूस है; राज्य ने मान लिया कि कोई परमात्मा नहीं है, कोई मोक्ष नहीं। तो इन पचास वर्षों में एक भी व्यक्ति रूस में समाधि को उपलब्ध नहीं हो सका। यह तो बड़ा अहित हो गया। हालांकि मैं यह नहीं कहता हूं कि रूस धार्मिक रहता तो जरूरी था कोई समाधि को उपलब्ध हो जाता। लेकिन संभावना थी। बीस करोड़ लोगों का मुल्क है। कोई बहुत हजारों लोग समाधि को उपलब्ध हो जाते, ऐसा भी नहीं है। मगर एकाध तो हो ही सकता था। वह भी नहीं हुआ।
अगर सारी दुनिया कम्युनिस्ट हो जाए और नास्तिक हो जाए तो बुद्ध, महावीर, कृष्ण, पागल सिद्ध हो जाएंगे।

यह तो बात ही दूर ही रही कि हम बुद्धत्व को पाने की चेष्टा करेंगे, जिनत्व को पाने की चेष्टा करेंगे; अगर हम जिन हो भी जाएंगे घर के भीतर, तो हम बाहर खबर न करेंगे; नहीं तो लोग पागलखाने ले जाएंगे।
रूस में यह हो रहा है। जो व्यक्ति भी राज्य की धारणाओं से भिन्न बात कहता है, वह करार दे दिया जाता है कि इसका दिमाग खराब है। उसको तत्क्षण मनोचिकित्सालय ले जाकर इलेक्ट्रिक शाक, इन्सुलिन शाक, दवाइयां पिलाना शुरू कर देते हैं। वह लाख चिल्लाए।
अब तुम थोड़ा सोचो, कितना बड़ा अंतर पड़ा है। अच्छा किया यहूदियों ने जीसस को सूली तो लगा दी। यह कहा कि यह आदमी गलत है, खतरनाक है। अगर जीसस आज रूस में होते तो सूली न मिलती, किसी पागलखाने में इलेक्ट्रिक शाक मिलते, जो कि और भी दुखांत है। क्योंकि सूली तो जीसस को नहीं मार पाई, लेकिन पागलखाना तो नष्ट कर देता।
जब महावीर कहते हैं, बोधि को स्मरण रखना, भावना करना, तो इसका अर्थ हैः बुद्धत्व उपलब्ध हुआ है, बुद्ध हुए हैं, जिन हुए हैं। आज भी हो सकते हैं, कल भी होते रहेंगे। यह हमारा स्वरूप-सिद्ध अधिकार है। जो भी हिम्मत करेगा, जो भी दावा करेगा, उसको मिलकर रहेगा। अगर हम न पाते हों, हमारी कमजोरी है। अगर हमें न मिलता हो तो केवल एक खबर मिलती हैः हमने चेष्टा नहीं की। हमने श्रम नहीं किया। हमने योग्यता अर्जित नहीं की।
लेकिन बोधि को पाने जो भी चले, वह स्मरण रखे, बहुत कुछ खोना होगा। जैसे
हम हैं, वैसे तो हमें मिटना होगा। जो हम हैं, वैसे तो हमें विसर्जित होना होगा।
मिलने को मिलेगा बिलआखिर
ऐ अर्श सुकूने-साहिल भी
तूफाने-हवादिस से लेकिन
बच जाए सफीना मुश्किल है
वह किनारा मिलेगा शांति का--सुकूने-साहिल भी। अंततः मिलेगा। लेकिन-- तूफाने-हवादिस से लेकिन
बच जाए सफीना मुश्किल है
लेकिन यह नाव तूफान में बचेगी, यह मुश्किल दिखाई पड़ता है। मुश्किल ही नहीं है, मैं तो कहता हूं, यह निश्चित है, यह नाव तो डूबेगी। तुम बचोगे, नाव डूबेगी।
नाव यानी तुम्हारा शरीर। नाव यानी तुम्हारा मन। नाव यानी तुम्हारा अहंकार। यह तो नहीं बचेगा। यह तो तूफान में जाएगा। इसको बचाने की कोशिश की तो तुम उस पार जाने से भी वंचित रह जाओगे। और यह तो फिर भी जाएगा। यह तो फिर भी न बचेगा। यह तो बचाकर भी नहीं बचता। जाना इसका स्वभाव है। और जो बचता है सदा, और जाना जिसका स्वभाव नहीं है, उसकी तुमने याद नहीं की। उसकी सुरति नहीं जगाई।
निराला की बड़ी प्रसिद्ध पंक्तियां हैंः
स्नेह-निर्झर बह गया है
स्नेह-निर्झर बह गया है,
रेत ज्यों तन रह गया है
आम की यह डाल जो सूखी दिखी
कह रही है अब यहां पिक या शिखी
नहीं आते, पंक्ति में वह हूं लिखी नहीं जिसका अर्थ
जीवन ढह गया है
दिए हैं मैंने जगत को फूल-फल किया है अपनी प्रभा से चकित चल पर अनस्वर था सकल पल्लवित पल ठाठ जीवन का वही, जो ढह गया है अब नहीं आती पुलिन पर प्रियतमा श्याम तृण पर बैठने को निरुपमा बह रही है हृदय पर केवल अमा

मैं अलक्षित हूं यही कवि कह गया है
स्नेह-निर्झर बह गया है
रेत ज्यों तन रह गया है
यह तन तो रेत जैसा ढह ही जाएगा। यह तो घर है, घास-फूस की मचिया है। यह
तो मिट्टी का बना घर है। यह मिटेगा ही। यह नाव तो डूबेगी ही। यह तो हर हाल डूबेगी। जो बचाना चाहते हैं, उनकी भी डूबती है। जो डुबाने-डूबने की फिक्र छोड़कर चल पड़ते हैं, उनकी भी डूबती है। नाव तो डूबती है, लेकिन जिसने नाव को बचाया वह खुद भी डूब जाता है। और जिसने नाव की फिक्र न की, नाव तो डूब जाती है, लेकिन वह उबर जाता है।
यहां जो डूबते हैं, वे ही उबरते हैं। यहां जो बचने की चेष्टा करते हैं, वे डूबे ही रह जाते हैं।
हम न औतार थे न पैगंबर, क्यूं यह अजमत हमें दिलाई गई
मौत पाई सलीब पर हमने उम्र वनवास में बिताई गई
ये बड़ी मीठी पंक्तियां हैं। राम को वनवास मिला ठीक, वे अवतार थे। जीसस
को सूली लगी ठीक, वे मसीहा थे।
हम न औतार थे न पैगंबर क्यूं यह अजमत हमें दिलाई गई
मौत पाई सलीब पर हमने उम्र वनवास में बिताई गई
तुम राम हो या न हो, उम्र तो वनवास में बीतेगी। तुम राम हो या न हो, सीता तो तुम्हारी चुराई ही जाएगी। तुम जीसस हो या न, सूली तो लगेगी। वह तो निश्चित है। उसका अवतार और पैगंबर से कुछ लेना नहीं। वह तो जन्म का स्वभाव है कि मृत्यु होगी। वह तो पाने का स्वभाव है कि खोना पड़ेगा। वह तो पत्ते के आने में ही तय हो गया कि सूखेगा और गिरेगा। वसंत पतझड़ की तैयारी है। यह तो होगा ही। लेकिन इसे अगर तुम स्वेच्छा से हो जाने दो--वही फर्क है। वही फर्क है तुममें और जीसस में; तुममें और राम में।
राम इसे स्वेच्छा से हो जाने देते हैं। वनवास तो हुआ। वे तैयार हो गए। धनुषबाण लेकर खड़े हो गए घर के बाहर, कि चला। एक बार भी ना-नुच न की। यह नहीं कहा कि कैसा अन्याय है! यह कैसा बलात व्यवहार! बाप पर धोखे का शक भी न किया, शिकायत भी न की।
वनवास तो सभी को होता है। राम ने स्वीकार किया इसीलिए अवतार हो गए। सूली तो सभी को लगती है। किसी को खाट पर पड़े-पड़े लगती है, इससे क्या फर्क पड़ता है? खाट भी वैसी ही लकड़ी की बनी है, जैसी सूली बनती है। कहां सूली लगती है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। सूली तो लगती है। मौत तो सभी की होती है। जीसस ने स्वीकार कर ली। अंतिम घड़ी में कहा, हे प्रभु! तेरी मर्जी पूरी हो। उसी क्षण पैगंबर हो गए।
सभी यहां पैगंबर और अवतार होने को हुए हैं। इससे कम पर राजी मत हो जाना। दुख तो मिलेगा ही। तो फिर इस दुख के साथ थोड़ा सर्जनात्मक खेल खेल लो। इसे स्वीकार कर लो। इसे आनंद और अहोभाव से उठा लो। मरने को तैयार हो जाओ। अपनी सूली अपने कंधे पर ढोने को तैयार हो जाओ। और तुम पाओगे कि अमृत उपलब्ध हुआ। अमृत मिला ही हुआ है। थोड़ा मृत्यु से तुम ऊपर उठो, तो अमृत के दर्शन हों। हम ऐसे हैं, जैसे कोई आदमी जमीन पर आंख गड़ाये चल रहा हो, और आकाश उपलब्ध है और आंख उठाकर देखता न हो। और कहता हो, आकाश कहां है? जमीन ही जमीन दिखाई पड़ती है। मिट्टी ही मिट्टी दिखाई पड़ती है।
ऐसे ही तुम्हारे भीतर मिट्टी भी है, जमीन भी है, आकाश भी है। आकाश यानी तुम्हारी आत्मा। मिट्टी, जमीन यानी तुम्हारा शरीर। शरीर से थोड़ी आंख उठाओ। शरीर यानी मृत्यु।
शरीर से थोड़ी आंख ऊपर उठाओ। आत्मा यानी अमृत, शाश्वत जीवन।
उस स्थिति को महावीर ने मुक्ति, मोक्ष कहा है। मोक्ष को पाए बिना जाओ
तो आना व्यर्थ हुआ। फिर-फिर भेजे जाओगे। वह पाठ सीखे बिना इस पाठशाला से कोई कभी छूटा नहीं। सीख ही लो। जो सीख जाता है, उसे दुबारा नहीं भेजा जाता है। जरूरत ही न रही।
पुनर्जन्म के सिद्धांत का इतना ही अर्थ है कि बिना पाठ सीखे जो गया उसे वापिस स्कूल भेज दिया जाता है--फिर उसी कक्षा में। सीखकर आना ही होगा, ज्ञान की संपदा जगानी ही होगी। तुम्हारे भीतर का वेद जब तक गुनगुनाने न

लगे, जब तक तुम्हारे भीतर की ऋचाएं प्रगट न हो उठें, तब तक परमात्मा तुम्हारा पीछा नहीं छोड़नेवाला है।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग दो
बीसवां प्रवचन

गोशालकः एक अस्वीकृत तीर्थंकर

पहला प्रश्नः मक्खली गोशालक के जीवन के अनेक प्रसंग जैन शास्त्रों में मिलते हैं, लेकिन उनका उल्लेख किसी आदर के साथ नहीं किया गया है। गोशालक को वे कलहप्रिय और उद्धत कहने के साथ ही साथ विलक्षण भी बताते हैं। आप तो उसका नाम आदर के साथ लेते हैं। क्या गोशालक का अपना कोई दर्शन था? और क्या उसकी परंपरा के मर जाने से जैनियों ने उसके साथ अन्याय किया? इस पर कुछ प्रकाश डालने की कृपा करें।

गोशालक का निश्चित ही एक जीवन-दृष्टिकोण था। दर्शन कहना उसे उचित नहीं, क्योंकि शास्त्रबद्ध, सूत्रबद्ध जीवन- प्रणाली बनाने में उसका कोई भरोसा नहीं था। उसकी दृष्टि यही थी कि जीवन इतना बड़ा रहस्य है कि दर्शन में समा सके यह संभव नहीं है; जीवन का कोई दर्शन हो सकता है, यह संभव नहीं है।
इसलिए सभी दर्शन किसी न किसी रूप में मनुष्य की कल्पनाएं हैं और जबर्दस्ती जीवन के ऊपर आरोपित किए जाते हैं। जीवन बड़ा है, शब्द बड़े छोटे हैं। सत्य बहुत बड़ा है, सिद्धांत बहुत छोटे हैं। सत्य को फांसी लग जाती है सिद्धांतों में डालने से। शब्दों में समाने की चेष्टा में ही विराट सत्य मर जाता है।
इसलिए मक्खली गोशाल दार्शनिक तो नहीं है। कोई परंपरा बनानेवाला भी नहीं है। पर उसकी एक जीवन-दृष्टि है। दर्शन मैं उस नहीं कहता, सिर्फ जीवन-दृष्टि है। और जीवन-दृष्टि उसकी बड़ी बहुमूल्य है, समझने जैसी है।
चूंकि उसने कोई दर्शन नहीं बनाया, इसीलिए उसकी कोई परंपरा नहीं बन सकी। लोग तो सुरक्षा चाहते हैं। लोग तो कोई सिद्धांत चाहते हैं। सत्य की किसको चिंता है? लोग चाहते हैं, कोई सिद्धांत हाथ में आ जाए, जिससे हम जीवन के उलझाव को किसी भांति सुलझा लें। सुलझे, न सुलझे, हमें भरोसा आ जाए कि सुलझ गया, तो हम निश्चिंत हो जाएं।
लोग अपनी चिंता मिटाना चाहते हैं। इसलिए गोशालक जैसे व्यक्ति लोगों
को प्रीतिकर नहीं लगते। क्योंकि वे तुम्हारी चिंता मिटाने का कोई उपाय नहीं करते। वे तो तुमसे कहते हैं, तुम्हारी चिंता ही व्यर्थ है। वे कहते हैं, हल कोई नहीं है, चिंतित होना व्यर्थ है, यह समझ लो। बस इतना काफी है। हम प्रश्न पूछते हैं, हम उत्तर की अपेक्षा करते हैं। हम कहते हैं, संसार किसने बनाया? यह प्रश्न हमारे भीतर कांटे की तरह चुभता है। कोई कह देता है, ईश्वर ने बनाया। यद्यपि कुछ हल नहीं होता। क्या हल होगा? कोई अंतर नहीं पड़ता।
फिर अगर तुम पूछना चाहो तो पूछ सकते हो, ईश्वर को किसने बनाया? लेकिन
एक तरह की राहत मिलती है कि चलो... । वह जो एक भीतर कांटे की तरह चुभता प्रश्न था, हल हुआ। ईश्वर ने बनाया।
गोशालक जैसे व्यक्ति, जब तुम उनसे पूछो, जगत किसने बनाया, तो कंधा बिचका देते हैं। वे कहते हैं, हमें नहीं मालूम और किसी को नहीं मालूम। इस फर्क को समझना।
दुनिया में तीन तरह के लोग हैं। एक, जो कहते हैं, ईश्वर ने बनाया; हमें मालूम है। दूसरे, जो कहते हैं, ईश्वर ने नहीं बनाया; हमें मालूम है। लेकिन उन दोनों में एक बात समान है। दोनों कहते हैं, हमें मालूम है।
गोशालक कहता है, किसको पता? कौन जानता है? कैसे कोई जान सकता है? इतना निश्चित है, कभी अगर बनाया हो किसी ने, तो हम तो मौजूद न थे। क्योंकि हम तो बनाने के बाद ही मौजूद हो सकते हैं। हम तो बनाये गए। हम तो मौजूद न थे, जब बनाया गया होगा। तो अब उपाय कहां है जानने का, कि किसने बनाया? और अगर किसी ने बनाया तो जिसने बनाया वह तो मौजूद ही रहा होगा बनाने के पहले। तो कुछ तो था ही। प्रश्न हल नहीं होता। बनानेवाले को किसने बनाया?

गोशालक कहता है, उत्तर नहीं है, प्रश्न व्यर्थ है। प्रश्न निरर्थक है। तुम कृपा करो और प्रश्न को गिर जाने दो। तुम जरा देखो कि तुमने एक ऐसा प्रश्न पूछ लिया है, जिसके कारण तुम झंझट में पड़ोगे। या तो आस्तिक बन जाओगे या नास्तिक बन जाओगे। दोनों हालत में तुम जीवन के विराट को इंकार कर दोगे। दोनों हालत में जीवन का रहस्य टूट जाएगा। तुम बीच में सिद्धांत की एक दीवाल खड़ी कर लोगे। दोनों हालत में तुम अपने अज्ञान को छिपा लोगे। गोशालक कहता है, कुछ पता नहीं--बनाया, नहीं बनाया! सच तो यह है, यह भी पक्का नहीं है कि है भी? हो सकता है सपना ही हो।
तो गोशालक कोई दर्शन नहीं देता, एक दृष्टि देता है। उत्तर नहीं देता, प्रश्न को देखने की एक समझ देता है। इसलिए परंपरा नहीं बनी। और ऐसे व्यक्ति के पीछे कैसे अनुयायी इकट्ठे हों?
हां, कुछ लोग गोशालक जिंदा था तो इकट्ठे हो गए थे। वह उसके व्यक्तित्व
की गरिमा रही होगी। उसके उत्तर तो थे ही नहीं कुछ। कुछ हिम्मतवर लोग उसके साथ हो लिए होंगे। लेकिन वह चमत्कार रहा होगा उसके अपने होने का; जिसको करिश्मा कहते हैं। वह उसका प्रसाद रहा होगा।
इसलिए जैन शास्त्र विरोध भी करते हैं और उसे विलक्षण भी कहते हैं। विलक्षण तो पुरुष था ही। क्योंकि बिना सिद्धांत के, बिना उत्तर दिए अगर लोग आकर्षित हो गए थे तो आदमी में कुछ जादू तो था ही। वह जादू बौद्धिक नहीं था, वह जादू व्यक्तित्व का था, अस्तित्व का था।
जैन शास्त्र उसके विरोध में हैं, क्योंकि जैन शास्त्र तो जानते हैं
कि जानते हैं। जैनों का जो सबसे बड़ा आग्रह है, वह ख्याल में रखो। वह है कि जैन साधना-पद्धति से गुजरकर जो व्यक्ति परम स्थिति को पहुंचता है, वह सर्वज्ञ हो जाता है। यह जैनों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धांत है-- सर्वज्ञ।
तो गोशालक से ठीक बिल्कुल विपरीत हो गई बात। गोशालक कहता है जो जानता
है, वह तो जानता है कि कुछ भी नहीं जानता। गोशालक से सुकरात की दोस्ती बन जाती है। गोशालक से सार्त्र और कामू की और काफ्का की दोस्ती भी बन जाती है। नीत्से भी गोशालक के पास बैठता तो मैत्री अनुभव करता। लेकिन जैन तो कैसे मैत्री अनुभव कर सकते हैं? यह तो उनसे ठीक विपरीत है।
जैनों का तो आग्रह यही है कि जब कोई व्यक्ति परम जागरूकता को उपलब्ध होता है तो वह सर्वज्ञ हो जाता है। सब जानता है। तीनों काल जानता है। जो हुआ, वह जानता है। जो हो रहा है, वह जानता है। जो होगा, वह जानता है। उसके लिए कुछ भी अज्ञात नहीं रह जाता।
इसका अर्थ हुआ कि जो व्यक्ति जैनों के हिसाब से समाधि को उपलब्ध होता
है, उसके लिए कुछ रहस्य नहीं रह जाता। सब रहस्य खुल गया। पोथी पूरी खोलकर देख ली, पढ़ ली।
गोशालक कहता है, पोथी का पहला पाठ ही पढ़ना असंभव है। पोथी खुलती ही नहीं। इसमें पहली लकीर क, ख, ग भी समझ में नहीं आते। तो सर्वज्ञ का दावा तो व्यर्थ है। सर्वज्ञता तो हो नहीं सकती। यहां तो हम उसी को जाननेवाला कहेंगे, जिसने जान लिया कि कुछ जानने का उपाय नहीं है।
चूंकि यह सर्वज्ञता से बिल्कुल विपरीत दृष्टि थी, जैन बड़े नाराज हुए। जैन जितने नाराज गोशालक से हुए, किसी से भी नहीं हुए।
इससे एक बात तो यह भी सिद्ध होती है कि महावीर के सामने, विशेष कर महावीर के अनुयायियों के सामने जो सबसे बड़ा प्रतिद्वंद्वी रहा होगा वह गोशालक था। और भी बड़े विचारक मौजूद थे। बौद्ध ग्रंथों में छह विचारकों के नाम उल्लेख किए गए हैं--अजित केशकंबल, पूर्णकाश्यप, प्रबुद्ध कात्यायन, संजय वेलट्ठीपुत्त, मक्खली गोशाल और निगंठनाथ पुत्त। निगंठनाथ पुत्त महावीर का नाम है। लेकिन इनमें से किसी का भी विरोध जैन शास्त्रों में नहीं है। सिर्फ गोशालक का विरोध है।
तो एक बात तो निश्चित है कि गोशालक ठीक विपरीत धु्रव की भांति महावीर
के सामने खड़ा हुआ होगा। दावा भी उसका है कि कुछ जाना नहीं जा सकता। अज्ञान का इतना बड़ा समर्थक कभी कोई हुआ ही नहीं। तो जैनों को सबसे ज्यादा कष्ट इस आदमी से रहा होगा। इसको जैन कहते हैं, उद्दंड, कलहप्रिय, विवादी। यह जैनों

की व्याख्या है। यह कहलप्रिय जैनों को मालूम हुआ होगा। क्योंकि जैन दावा कर रहे थे कि हमारा गुरु सर्वज्ञ है। और यह आदमी कह रहा था सर्वज्ञ? अल्पज्ञ होना भी संभव नहीं, अज्ञ होना भी संभव नहीं।
और इसकी बात में वजन है। इसकी बात में गहराई है। तो यह विवादी मालूम पड़ा होगा। यह उद्दंड मालूम पड़ा होगा। लेकिन साथ-साथ उन्हें स्वीकार तो करना ही पड़ा कि इसके पास विच्रण प्रतिभा है।
प्रतिभा तो थी। बिना सिद्धांत के लोग आकर्षित हुए। और इस आदमी के पास कोई चरित्र भी नहीं था। यह भी थोड़ा सोच लेने जैसा है।
गोशालक के पास कोई लोकमान्य चरित्र नहीं था कि कोई कह सके कि इस आदमी
की जीवन-व्यवस्था अनुशासन की है, सत्य की है, अहिंसा की है, योग की है, ध्यान की है; ऐसा कहने का भी कोई कारण नहीं था। जिसको हम चरित्रहीन कहें, ऐसा व्यक्ति है गोशालक।
लेकिन तुम समझ सकते हो, आधुनिक युग में मनोविज्ञान ने एक बड़ी ऊंची खोज
की है, बड़ी गहरी खोज की है कि जो इस जगत में सर्वाधिक चरित्रवान लोग होते हैं, वे साधारण अर्थों में चरित्रहीन होते हैं। जीसस भी चरित्रहीन मालूम पड़े लोगों को। इसीलिए तो सूली लगी। सुकरात पर यही तो जुर्म था कि वह खुद तो भ्रष्ट है ही, दूसरों को भ्रष्ट कर रहा है। उसकी बातें प्रभावशाली हैं और दूसरे लोग भी उसकी बातों में आकर भ्रष्ट हो रहे हैं।
इस सदी का एक बहुत बड़ा विचारक विल्हेम रेक अमरीका के कारागृह में मरा। अमरीका में उसे जबर्दस्ती पागल करार दे दिया गया। क्योंकि वह कुछ ऐसी बातें कह रहा था, जो नीतिवादियों के बड़े विपरीत थीं। उसके बुनियादी सिद्धांतों में एक था, जिसका गोशालक से मेल हो सकता है। वह कहता था, चरित्र केवल उन्हीं के पास होता है, जो मुर्दा होते हैं।
चरित्र का अर्थ ठीक से समझ लेना। चरित्र का अर्थ होता हैः अभ्यासजन्य जीवन की शैली। एक आदमी चेष्टा कर-करके, चेष्टा कर-करके रोज पांच बजे सुबह ब्रह्ममुहूर्त में उठ आता है। अभ्यास बना लेता है। ऐसा जड़ अभ्यास बना लेता है कि किसी दिन अगर पड़ा भी रहना चाहे बिस्तर पर, तो भी पड़ा नहीं रह सकता। पुरानी आदत उसे उठाकर खड़ाकर देती है।
इसका अर्थ हुआ कि चरित्र केवल अभ्यास है, आदत है। जो व्यक्ति बोधपूर्वक जीता है, वह चरित्र से नहीं जीता, वह बोध से जीता है। आदत से नहीं जीता, सहजता से जीता है। आज सुबह अगर उठने का लगता है उसे, आज का ब्रह्ममुहूर्त अगर उसे जगाता है तो जगता है। लेकिन आज की घड़ी अगर सोने जैसी लगती है तो सोता है।
प्रतिपल चीजें बदलती रहती हैं। कभी कोई स्वस्थ है, कभी अस्वस्थ है। कभी वर्षा है, कभी शीत है, कभी ताप है। कभी कोई जवान है, कभी कोई बूढ़ा है।
कभी कोई रात देर से सोया है, कभी कोई जल्दी सोया है। कभी दिन में बहुत श्रम किया और ज्यादा सोने की जरूरत है। और कभी दिन में उतना श्रम नहीं किया, कम सोने से चल जाएगा।
तो जो व्यक्ति बोध से जीता है, वह तो प्रतिपल तय करता है कि कैसे जीऊं। जीना प्रतिपल तय होता है। जो व्यक्ति आदत से जीता है, वह प्रतिपल तय नहीं करता। तय तो उसने सदा के लिए कर लिया है। उसने तो लकीर खींच दी है चरित्र की। अब उसका अनुगमन करना है। विल्हेम रेक कहता है कि चरित्रवान व्यक्ति-- जिनको हम चरित्रवान कहते हैं--अक्सर मुर्दा व्यक्ति हैं, जो मर चुके। अब तो सिर्फ मरी हुई लाश चल रही है। एक नियम जिंदा हो गया है, आदमी तो मर चुका। आत्मा तो मर चुकी, सिद्धांत जिंदा हो गया है।
गोशालक का कोई चरित्र नहीं है। विल्हेम रेक गोशालक से मिल जाता तो तत्क्षण सिर झुकाकर नमस्कार करता।
जैन नाराज हैं। क्योंकि जैनों का तो सारा आधार चरित्र है, अभ्यासजन्य। इंच-इंच हिसाब बांधकर चलना है। जरा-सी भूल-चूक न हो जाए। सिद्धांत से यहां-वहां चित्त न हो जाए। सब सम्हालकर लीक पर चलना है। इसलिए जैन मुनि से मुर्दा आदमी तुम दुनिया में दूसरा नहीं खोज सकते। वह बिल्कुल मरा हुआ है। उसका कोई भविष्य नहीं है। उसका सिर्फ अतीत है। जो उसने तीस साल पहले तय किया था उसी को दोहरा रहा है। वह पुनरुक्ति है। उसके भीतर नए

का कोई आविर्भाव नहीं होता। सुबह होती ही नहीं। एक यांत्रिक पुनरुक्ति है, जो वह दोहराये चला जाता है। रोज वही करता है, जो कल भी किया था, परसों भी किया था। लकीर का फकीर है।
गोशालक बड़ा स्वतंत्र है। अनुशासनमुक्त, आदतशून्य व्यक्ति था। अनप्रेडिक्टेबल। उसके बाबत कुछ घोषणा नहीं की जा सकती कि गोशालक कल क्या करेगा। कल ही तय होगा। कल आने दो। क्षण-क्षण जीनेवाला था।
मेरे लिए तो बहुत मूल्य की बात है यह। गोशालक मेरे लिए तो मील का पत्थर है मनुष्य-जाति के इतिहास में। इसलिए मैं सम्मान से उसका नाम लेता हूं। मेरे लिए तो वह उतना ही मूल्यवान है, जितने मूल्यवान महावीर। उनसे रत्तीभर भी कम मूल्य नहीं है। लेकिन अनुयायी महावीर का है, उसको तो बड़ी अड़चन है।
तो जैन शास्त्र गोशालक के संबंध में बड़ी निंदा से भरे हैं। ऐसी गालियों से भरे हैं कि कभी-कभी आश्चर्य होता है कि अहिंसा को माननेवाले लोग इतनी गालियां निकाल कैसे सके? करुणा, प्रेम, अहिंसा की बात करनेवाले लोग इतनी क्षुद्रता पर उतर कैसे आए? गोशालक बुरा भी रहा हो तो भी ये भले लोग इतनी गालियां कैसे दे सके? बुरे आदमी को भी इतनी गालियां देना भले आदमी का लक्षण नहीं। अगर विरोध था तो सैद्धांतिक विरोध करके पूरा कर लेते। लेकिन विरोध भावात्मक मालूम पड़ता है, सैद्धांतिक नहीं है। महावीर के मुकाबले, महावीर के अनुयायियों को लगा होगा, एक ही व्यक्ति खड़ा है प्रखर, जो ठीक विपरीत बात कह रहा हैः न कोई चरित्र, न कोई ज्ञान।
और इस सबसे भी कठिन बात, पर बड़ी महत्वपूर्ण, गोशालक का जो दृष्टिकोण
था वह था, अकर्मण्यतावाद। वह कहता था, किए से कुछ भी नहीं होता। वह कहता किए से न पाप होता है, न किए से पुण्य होता है। वह कहता था, करना नासमझी की बात है। करने से कभी कुछ हुआ ही नहीं है। जो होना है, वही होता है। जो होना था, वही हुआ। जो होना है, वही होगा। वह परम नियतिवादी था। वह कहता था, सब हो रहा है। हमारे किए का कुछ सार नहीं है, इसलिए जीवन से संघर्ष करने का कोई प्रयोजन नहीं है।
वह बहने के पक्ष में था, तैरने के पक्ष में नहीं। संघर्ष के पक्ष में नहीं, समर्पण के पक्ष में। अगर गोशालक को क्रोध हो जाए तो वह कहता, क्रोध हुआ। मैं क्या करूं? प्रेम हो जाए तो कहता, प्रेम हुआ। मैं क्या करूं? गोशालक कोई दायित्व स्वीकार नहीं करता था। वह कहता था, इतने विराट में मैं एक छोटा-सा कलपुर्जा हूं। कहां जा रहा है यह विराट, मुझे पता नहीं। कहां से आ रहा है, मुझे पता नहीं। क्यों मेरे भीतर क्रोध होता है इसका भी मुझे पता नहीं।
इसको थोड़ा ख्याल से समझने की कोशिश करना। इसका अर्थ हुआ, आदमी के किए कुछ भी न होगा। पुरुषार्थ कुछ भी नहीं है। कृष्ण की गीता से मेल खाएगी यह बात। कृष्ण भी यही कह रहे हैं, लेकिन जरा और ढंग से। कृष्ण कहते हैं, ईश्वर कर रहा है। गोशालक उतनी बात भी बीच में नहीं लाता। वह कहता है, कहां पता है कि ईश्वर है? कौन कर रहा है यह तो मुझे पता नहीं। इतना पता है कि मेरे किए कुछ भी नहीं हो रहा है। कृष्ण कहते हैं, ईश्वर पर छोड़ दो। गोशालक कहता है, छोड़ दो। ईश्वर है या नहीं, मुझे पता नहीं। लेकिन इसे ढोने की कोई भी जरूरत नहीं है। सब ढोना नासमझी है।
यह गोशालक की दृष्टि अगर सही हो तो अहंकार बिल्कुल समाप्त हो जाएगा। बचने का उपाय नहीं बचेगा।
शायद कृष्ण की गीता का माननेवाला भी किसी पीछे के दरवाजे से अहंकार
को बचा ले। वह कहे कि ईश्वर मेरा उपयोग कर रहा है, मैं उपकरण हूं। इससे भी अहंकार बच सकता है। क्योंकि मुझे उपकरण चुना है, तुमको तो नहीं चुना। मैं हूं माध्यम। मैं हूं निमित्त।
कृष्ण की बात सुनकर अर्जुन यह तो समझ भी ले कि चलो, मैं बीच में नहीं आता। लेकिन ईश्वर ने मुझे चुना है धर्म-युद्ध के लिए। तो अहंकार नए रूप में खड़ा होगा। दुर्योधन को तो नहीं चुना है। किसी और को तो नहीं चुना है, अर्जुन को चुना है। परमात्मा का हाथ अर्जुन के कंधे पर है।

यह भी खतरनाक हो सकती है बात। इसका मतलब हुआ, मेरी जिम्मेवारी भी न रही, और जो मुझे करना है वह तो मैं करूंगा ही। अब ईश्वर का समर्थन और सैंक्शन भी मिल गया। अब ईश्वर भी मेरे हाथ में है। अब मैं अपनी बात को सही सिद्ध करने के लिए ईश्वर का भी सहारा ले लूंगा। और ईश्वर तो मौन है। वह आकर कभी कहता नहीं कि किसको मैंने चुना।
महात्मा गांधी को यह ख्याल था कि ईश्वर ने उन्हें उपकरण की भांति चुना है। वह गीता से ही उनको सनक सवार हुई। गीता पढ़-पढ़कर ही उनको यह ख्याल बैठ गया कि ईश्वर ने उनको चुना है; वे माध्यम हैं। लेकिन कौन सिद्ध कर सकता है कि गोडसे को ईश्वर ने नहीं चुना था? गोडसे को भी यही ख्याल है कि वह कर क्या सकता है? ईश्वर ने चुना है। और तुम सोचते हो, जिन्ना को यह ख्याल नहीं था?
कौन निर्णय करेगा कि कौन वस्तुतः चुना गया है? यह तो ईश्वर के बहाने, आदमी जो करना चाह रहा है, उसके लिए ईश्वर की मोहर ले लेता है।
गोशालक उतनी भी जगह नहीं छोड़ता। गोशालक कहता है, कोई ईश्वर है, पता नहीं। इतना तय है कि आदमी के पुरुषार्थ से कुछ भी नहीं होता। जो होता है, वही होता है। कभी हो जाता है तो तुम सोचते हो, हम जीत गए। कभी नहीं होता तो तुम सोचते हो, हम हार गए। लेकिन जो होना था, वही होता है। जब हो जाता है, तुम अकड़ जाते हो। जब नहीं होता, तुम सिकु.ड़ जाते हो। तुम नाहक अकड़ते-सिकुड़ते हो। तुम नाहक जीतते-हारते हो। जो होना है वही होता है।
इसका अर्थ समझना। अगर यह बात ख्याल में बैठ जाए कि जो होना है वही होता है, तो तुम तत्क्षण तनाव से मुक्त हो गए। ध्यान फलित हो जाएगा। अहंकार से मुक्त हो गए। जब मेरे किए कुछ होता ही नहीं तो मैं कहां खड़ा हो सकता हूं? कृष्ण तो कहते हैं, कम से कम तुम निमित्त हो सकते हो। गोशालक कहता है, निमित्त भी नहीं हो सकते। तुम हो ही कहां?
यह तो ऐसा ही है कि एक हाथी निकलता था, एक पुल के ऊपर से। वजनी हाथी, पुराना जीर्ण-शीर्ण पुल! कंपने लगा पुल। एक मक्खी बैठी थी हाथी के ऊपर। जब वे दोनों पुल पार कर गए तो उसने कहा, बेटा! मक्खी ने कहा हाथी से, बेटा! हमने पुल को बुरी तरह हिला दिया।
हम तो मक्खी से भी छोटे हैं। इस विराट को जरा सोचो तो! इसमें हमारा होना न होना क्या फर्क रखता है? हमारे होने न होने से कितना फर्क पड़ता है! आदमी इस पृथ्वी के मुकाबले ही बहुत छोटा है। पृथ्वी खुद भी बहुत छोटी है। सूरज साठ हजार गुना बड़ा है। और सूरज खुद ही बहुत साधारण है। इससे बड़े-बड़े महासूर्य हैं, जो रात में तारों की तरह दिखाई पड़ते हैं। फासले के कारण छोटे दिखाई पड़ते हैं। हमारे सूरज से करोड़ों गुने बड़े सूरज हैं। और अब तक कोई दो अरब सूर्यों का पता चल चुका है। आगे भी होंगे। यह पृथ्वी हमारी तो कुछ भी नहीं है। इस पृथ्वी पर हम और भी नाकुछ हैं।
गोशालक यह कहता है, जरा अपना अनुपात तो सोचो। फिर तुम जो करते हुए मालूम पड़ते हो, वह भी प्रकृति ही तुमसे करा रही है। एक स्त्री निकली तुम्हारे सामने से और तुम्हारे मन में वासना उठी। यह वासना तुमने उठाई? तुम कैसे उठाओगे? होती न, तो उठती कैसे? प्रकृति ने उठाई। प्रकृति ने दी ही हुई है। तुम पैदा इस वासना के साथ हुए हो।
इसलिए गोशालक की दृष्टि परम स्वीकार की है। वह कहता है, जो है, है। बुरा तो बुरा; भला तो भला। न यहां हार का कोई उपाय है, न जीत का कोई उपाय है। गोशालक परम भाग्यवादी है। और मजा यह है कि भगवान भी नहीं है गोशालक के विचार में। मार्क्स भी राजी हो जाता गोशालक से। क्योंकि वह भी परम भाग्यवादी है। वह कहता है, भगवान तो कोई भी नहीं है। लेकिन जगत एक नियम से चल रहा है। उसको मार्क्स कहता है, इतिहास का नियम। नाम कुछ भी दो। गोशालक कहता है, इतना तय है आदमी नहीं चला रहा है, चल रहा है।
यह अकर्मण्यतावाद तो और भी महावीर के विपरीत पड़ता है। क्योंकि महावीर
का तो सारा बल इस बात पर है कि पुरुषार्थ; इसीलिए तो नाम महावीर है। करो, तो पा सकोगे। लड़ोगे, तो जीतोगे। बहे, तो गए। तैरो। धारे के विपरीत तैरो। इंच-इंच लड़ोगे तो ही किसी दिन पहुंचोगे। सिद्धि मुफ्त नहीं मिलती। बड़ा गहन संघर्ष करना है।

महावीर गोशालक के विरोध में रहे हों, ऐसा तो मुझे मालूम नहीं होता। महावीर तो गोशालक के विरोध में नहीं हो सकते। लेकिन महावीर का माननेवाला अड़चन में पड़ा होगा। अगर महावीर सही हैं तो गोशालक गलत होना ही चाहिए। अगर गोशालक सही है तो महावीर गलत हो जाएंगे।
अनुयायी की बुद्धि तो बड़ी छोटी होती है। वह दो विरोधों के बीच किसी तरह का समन्वय नहीं देख पाता। महावीर के मार्ग से भी आदमी पहुंचता है। गोशालक के मार्ग से भी पहुंच सकता है। महावीर के मार्ग पर संकल्प का आखिरी उपाय करना होता है। इस उपाय को करते-करते ही एक दिन संकल्प टूटकर गिर जाता है। अहंकार को निखारना पड़ता है; पवित्र करना पड़ता है। एक ऐसी घड़ी आती है पवित्र होते-होते ही, जैसे कपूर उड़ जाता है, ऐसा अहंकार उड़ जाता है। शुद्ध अहंकार कपूर की तरह उड़ जाता है।
जैसे तुम रात दीया जलाते हो तो पहले दीये की ज्योति तेल को जलाती है। फिर तेल चुक जाता है तो बाती को जलाती है। फिर बाती भी चुक जाती है, तो फिर ज्योति भी बुझ जाती है। तो ज्योति ने पहले तेल को जलाया, फिर बाती को जलाया, फिर जब सब जल गया तो खुद भी बच नहीं सकती। इतनी शुद्ध हो गई कि खो जाती है।
महावीर के मार्ग पर अहंकार को शुद्ध करने की प्रक्रिया है। शरीर छूटेगा पहले, फिर मन छूटेगा। फिर एक दिन तुम पाओगे अचानक, तेल भी जल गया, बाती भी जल गई, फिर लपट जो रह गई थी, वह कोरे आकाश में खो गई।
शुद्ध हो-होकर अहंकार कपूर की भांति उड़ जाता है।
गोशालक के मार्ग पर शुद्ध करने का कोई सवाल ही नहीं है। शुद्ध करने की चेष्टा को गोशालक कहता है, व्यर्थ है। जो है ही नहीं, उसे शुद्ध क्या करना? इतना जान लेना काफी है कि नहीं है। अभी घट सकती है बात।
तो जैनों को कठिनाई हुई। गोशालक ने बड़ा गहरा विवाद अनुयायियों के लिए खड़ा कर दिया होगा। इसलिए जैन बड़े नाराज हैं। और चूंकि गोशालक के कोई शास्त्र नहीं हैं, इसलिए और सुविधा हो गई।
तुम ऐसा ही समझो कि अगर हिंदुओं के सब शास्त्र खो जाएं और कृष्ण के संबंध में सिर्फ जैनों के शास्त्र बचें तो कृष्ण के संबंध में क्या स्थिति बनेगी? लोग क्या सोचेंगे? लोग सोचेंगे, आदमी महानारकीय रहा होगा, क्योंकि शास्त्र में लिखा है कि सातवें नर्क में गया।
अगर बुद्ध के संबंध में बौद्धों के शास्त्र खो जाएं, सिर्फ हिंदुओं
के शास्त्र बचें तो उन शास्त्रों से क्या पता चलेगा? हिंदू शास्त्र कहते हैं कि परमात्मा ने नर्क बनाया। लेकिन सदियां बीत गईं, कोई पाप करे ही नहीं। नर्क कोई जाए ही नहीं। तो नर्क में बैठे थे जो पहरेदार, और व्यवस्थापक, और मैनेजर, वे थक गए। कोई आता ही नहीं! ऊब गए। उन्होंने परमात्मा से प्रार्थना की, यह नर्क बनाया किसलिए? न कोई पाप करता, न कोई आता। हमें नाहक अटका रखा है। बंद करो यह दुकान। हमें छुट्टी दो या आदमी भेजो।
तो परमात्मा ने कहा, ठीक है घबड़ाओ मत। मैं जल्दी ही बुद्ध के रूप में अवतार लूंगा और लोगों के मन भ्रष्ट करूंगा। फिर उन्होंने बुद्ध की तरह अवतार लिया, लोगों को भ्रष्ट किया। लोग नर्क जाने लगे। अब तो नर्क में ऐसी भीड़ है कि वहां जगह ही नहीं बची। लोग क्यू लगाए खड़े हैं सदियों से। जगह नहीं मिल रही है अंदर जाने के लिए, इतना धक्कम-धुक्का है।
यह सब बुद्ध की कृपा से हुआ! हिंदू यह भी नहीं कह सके कि बुद्ध भगवान नहीं हैं। यह तो बड़ा झूठ होता। इतने बड़े सत्य को झुठलाना संभव न हुआ। तो मान लिया कि भगवान तो हैं, लेकिन आए हैं पाप करवाने, लोगों को भ्रष्ट करने। तो तरकीब समझे? तरकीब यह हुई कि बुद्ध को स्वीकार कर लिया कि हैं भगवान के रूप ही। दसवें अवतार हैं। और साथ में बात भी बता दी कि कोई इनकी मानना मत, नहीं तो नर्क जाओगे, बुद्ध-धर्म का अनुगमन मत करना। यह भगवान की एक शरारत है। यह भगवान की एक चालबाजी है। यह भगवान का एक शड्यंत्र है। हैं तो भगवत-रूप।
जैनों ने भी कृष्ण को नर्क भेजा, सातवें नर्क में डाला। लेकिन थोड़ी बेचैनी लगी होगी। क्योंकि इतना प्रतिभाशाली व्यक्ति, इतना महिमावान, ऐसा

तेजोद्दीप्त! इसको नर्क में डालने में हाथ कंपा होगा। शास्त्र लिखनेवाले को भी डर लगा होगा। उसको भी लगा होगा कि यह थोड़ी ज्यादती हुई जा रही है। तो शास्त्रकारों ने जैन शास्त्रों में लिखा है कि अगली सृष्टि में, जब यह प्रलय होकर सब समाप्त हो जाएगा, फिर से सृष्टि का निर्माण होगा, कृष्ण पहले जैन तीर्थंकर होंगे। इससे राहत हो गई। इधर चांटा मारा, इधर पुचकार लिया।
अगर विरोधी का ही शास्त्र बचे तो निर्णय करना मुश्किल है। यही असुविधा है गोशालक के लिए। खुद का कोई शास्त्र नहीं है। खुद कुछ लिखा नहीं है। करने को ही जो नहीं मानता था, वह लिखे क्यों? कुछ बोलाचाला होगा। कुछ दिन तक लोगों को याद रही होगी, फिर बिसर गई।
शास्त्रों में जहां उल्लेख है--या तो बौद्ध शास्त्रों में उल्लेख है। लेकिन बौद्ध शास्त्रों में सम्मानपूर्वक उल्लेख है। उसका कारण भी स्पष्ट है। सब कारण राजनैतिक हैं। बौद्ध शास्त्रों में सम्मानपूर्वक उल्लेख है, क्योंकि बौद्ध शास्त्रों का असली संघर्ष महावीर से है।
गोशालक तो मर चुका। अब बुद्ध और महावीर के बीच तीस साल का अंतर है।
गोशालक महावीर से उम्र में बड़ा था। इसलिए जब महावीर जवान रहे होंगे और उनके विचार का प्रभाव फैल रहा होगा, उस समय तक गोशालक की प्रतिष्ठा हो चुकी थी। इसलिए महावीर का संघर्ष तो प्रतिष्ठित गोशालक से रहा।
प्रतिष्ठित से संघर्ष होता है।
महावीर ने एक शब्द भी बुद्ध के खिलाफ नहीं बोला। वे बूढ़े थे। जब बुद्ध
की प्रतिष्ठा आनी शुरू हुई तब तक महावीर तो पूरी तरह लोकमान्य हो चुके थे। उन्होंने एक शब्द बुद्ध के खिलाफ नहीं बोला। लेकिन महावीर के अनुयायी उल्लेख करते हैं--ऐसा उल्लेख करते हैं कि गोशालक के संबंध में महावीर ने बड़ा विरोध किया है।
बौद्ध ग्रंथों में महावीर का विरोध है। और निश्चित ही जब महावीर का विरोध है तो अपने शत्रु का शत्रु अपना मित्र हो जाता है। तो गोशालक का सम्मानपूर्वक उल्लेख है। महावीर के संबंध में तो बहुत मजाक बौद्ध शास्त्रों में है।
बौद्ध शास्त्र कहते हैं, एक हैं सर्वज्ञ--एक ही थे सर्वज्ञ का दावा करनेवाले--एक हैं सर्वज्ञ; वे कहते हैं, उन्हें तीनों काल का पता है। भविष्य, वर्तमान, अतीत, सब उन्हें मालूम है। तीनों लोक उन्हें मालूम हैं, लेकिन ऐसी घड़ियां रही हैं कि सुबह के अंधेरे में कुत्ते की पूंछ पर पैर पड़ गया। जब कुत्ता भौंका तब सर्वज्ञ को पता चला कि अरे! यहां कुत्ता सो रहा है। तीनों लोक के ज्ञाता हैं!"
"कभी ऐसा भी हुआ है कि ऐसे दरवाजे पर भीख मांगने खड़े हो गए जहां कोई रहता ही नहीं। जब लोगों ने, पास-पड़ोसियों ने कहा, यहां क्या खड़े हैं? इस घर में कोई रहता नहीं; तब पता चला। तीनों काल का ऐसे उन्हें पता है, और यह भी पता नहीं कि सामने घर में कोई रहता है कि नहीं रहता? वहां भीख मांगने खड़े हैं।"
ऐसे बहुत मजाक बौद्ध शास्त्रों में महावीर के लिए हैं। लेकिन गोशालक
का कोई विरोध नहीं है। गोशालक का तो सम्मान से उल्लेख है। जैन शास्त्रों में बुद्ध का कोई विरोध नहीं है, क्योंकि महावीर तो प्रतिष्ठित थे। तीस साल फासला था। इस प्रतिष्ठित आदमी को झगड़े अपने समय के प्रतिष्ठित लोगों से रहे होंगे--बुद्ध तो अभी उठ ही रहे थे। बुद्ध की महिमा तो बाद में सिद्ध हुई, जब महावीर जा चुके।
लेकिन एक बात सदा स्मरण रखना कि महावीर ने ऐसा कहा हो, इसकी कम संभावना है। बुद्ध ने ऐसा मजाक उड़ाया हो महावीर का, इसकी भी कम संभावना है। ये तो अनुयायियों के द्वारा डाले गए शब्द हैं उनके मुंह में। और शास्त्र बहुत बाद में लिखे गए।
बुद्ध के मरने के पांच सौ साल बाद शास्त्र लिखे गए। महावीर के मरने के चार सौ साल बाद शास्त्र लिखे गए। चार सौ साल तक अनुयायियों के मस्तिष्क में रहे शास्त्र। उनकी स्मृति में रहे। उन्होंने खूब कांट-छांट की होगी।

जैनों का ही एक वर्ग--दिगंबर--मानता है कि सब जैन शास्त्र झूठे हैं। क्योंकि चार सौ साल में सब गड़बड़ हो गया। जिन्होंने याद रखा, उन्होंने अपना हिसाब जोड़ दिया। और ऐसा सच मालूम होता है। कुछ बातें महावीर की रह गई होंगी, कुछ जुड़ गई होंगी, कुछ छूट गई होंगी।
इसलिए मैंने जब महावीर के सूत्रों पर बोलना शुरू किया तो मैं सभी सूत्रों पर नहीं बोल रहा हूं। मैंने वे सब सूत्र अलग कर दिए हैं जो महावीर के योग्य नहीं हैं। छोड़ ही दिए मैंने। वे महावीर के लिए अयोग्य हैं। गोशालक को गाली महावीर ने दी हो, यह बात ही अशोभन है। इसलिए छोड़ ही दी,
वह बात ही नहीं उठाई है। कोई कह सकता है कि मैं महावीर के साथ ज्यादती कर रहा हूं। सब सूत्रों पर नहीं बोल रहा हूं। मैंने चुन लिए हैं।
लेकिन मैं कहता हूं, कि मैं ज्यादती नहीं कर रहा हूं। ज्यादती पहले बहुत हो चुकी। मैं गलत को छोड़े दे रहा हूं। जो मुझे लगता है कि महावीर जैसी चेतना को उपलब्ध व्यक्ति के मुंह में शोभा नहीं देगा, वह मैं छोड़ देता हूं। गोशालक के संबंध में जैन शास्त्र क्या कहते हैं, सुनकर तुम हैरान होओगे। जैन शास्त्र निंदा, गर्हित निंदा से भरे हैं। और निंदा भी सज्जन, सांस्कृतिक चेतना की नहीं है--अत्यंत ओछी, गंदी।
एक उल्लेख ख्याल में रखने जैसा है। जैन शास्त्र कहते हैं कि जब गोशालक मरा तो मरते वक्त उसे समझ में आया कि मैंने बड़ी भूल की, जो तीर्थंकर महावीर का जीवनभर विरोध किया--मरते वक्त समझ में आया उसको कि मैंने जीवनभर जो तीर्थंकर महावीर का विरोध किया, बड़ी भूल की। पापी को अपना पाप अनुभव हुआ, पश्चात्ताप हुआ।
तो उसने क्या कहा? उसने अपने पास जो दो-चार-दस शिष्य थे, दो-चार-दस! क्योंकि ज्यादा तो जैन मान नहीं सकते कि रहे होंगे। दो-चार-दस जो शिष्य थे, उनसे कहा, सुनो, मैंने जीवनभर जो कहा, वह गलत था। महावीर जो कहते हैं, शत-प्रतिशत ठीक कहते हैं। वही तीर्थंकर हैं। मैं तो एक झूठा, धोखेबाज आदमी था। खैर! मैं मर रहा हूं, लेकिन मेरी बात याद रखना। तुम सब अब महावीर के अनुयायी हो जाना। और मैंने जो पाप किया है जीवनभर में, उसके पश्चात्ताप के लिए तुमसे मैं कहता हूं, कि जब मैं मर जाऊं तो मेरी अर्थी मत निकालना, रास्ते पर मुझे खींचना। मेरे ऊपर थूंकना। कुत्तों से मेरे ऊपर पेशाब करवाना। और पूरे नगर में मेरी लाश को सड़क पर खींचते ले जाना, ताकि सारे देश को पता चला जाए कि गोशालक ने पश्चात्ताप कर लिया है।
ये जैन शास्त्र इस तरह की बात करें, यह थोड़ा विचारणीय है।
गोशालक जैसा व्यक्ति हमारे लिए खो गया है। अब जो उल्लेख रह गए हैं, वे विरोधियों के हैं। विरोधियों से कभी भी निर्णय मत लेना। एक बात पक्की है कि विरोधियों ने जो कहा है, वह तो सही हो ही नहीं सकता। तो बड़ी छानबीन करके तुम्हें खोजना पड़ेगा। बौद्ध और जैन ग्रंथों में देखकर कुछ बातें जो साफ होती हैं, उनमें एक बात सबसे महत्वपूर्ण है, वह हैः अकर्मण्यतावाद का सिद्धांत।
"प्राणियों में दुख का कोई हेतु नहीं है, न विशुद्धि का कोई हेतु है। पुरुषार्थ और पराक्रम काम नहीं आते। नियति या भाग्य ही सब कुछ है। जो हुआ, वह होना था। जो होना है, वह होगा। जो हो रहा है, वही हो सकता है। सब कुछ नपा- तुला है। और कर्म से, पाप या पुण्य से कोई भेद नहीं पड़ता है।"
इसको अगर नकारात्मक दृष्टि से लें तो इसका अर्थ हुआ कि आदमी को अधार्मिक होने की बड़ी सुविधा दे दी। क्योंकि पाप-पुण्य से कोई फर्क नहीं पड़ता, तो करो जो करना है।
लेकिन यह गोशालक को विरोधी की दृष्टि से देखना होगा। गोशालक को सहानुभूति से देखो। जैसा मैं तुमसे कहता हूं, महावीर को सहानुभूति से देखो, बुद्ध को सहानुभूति से देखो, कृष्ण को सहानुभूति से देखो, क्योंकि और समझने का कोई उपाय नहीं है। वैसे ही कहता हूं, गोशालक को भी सहानुभूति से देखो। नकारात्मक नहीं, विधायक दृष्टि से देखो।
विधायक दृष्टि का यह अर्थ हुआ कि अगर मेरे किए कुछ भी नहीं होता तो तुम्हारी चिंता कहां बचेगी? चिंता तो इसीलिए उठती है कि मेरे किए कुछ हो

सकता है। मैं कुछ करूंगा तो कुछ फर्क हो सकता है, इसलिए मन में तनाव पैदा होता है। इसलिए अशांति पैदा होती है, चिंता पैदा होती है।
और कभी-कभी तुम्हारे मंतव्य में और जगत की गति में कभी-कभी संयोगवशात मेल पड़ जाता है तो तुम अहंकार से भर जाते हो। कभी अधिक मौकों पर मेल नहीं पड़ता तो तुम दुख और विषाद से भर जाते हो।
अगर गोशालक की बात सही है तो न दुख का कोई कारण है, न सुख का कोई कारण है। जो होना था, हुआ है। जो हो रहा है, वही होना है। जो होना है, वही होगा। तुम अपने आप शांत हो जाते हो। न कोई तनाव, न कोई चिंता, न कोई दौड़, न कोई संघर्ष, न कोई अकड़, न कोई हार, न कोई जीत, न कोई विषाद, न कोई संताप।
इस संतापशून्य अवस्था में जिसका तुम्हें अनुभव होगा, गोशालक उसी को ध्यान कहता है। वह करने की बात नहीं है; जब करना छूट जाता है, तब जो शेष रह जाता है वही ध्यान है।
लेकिन गोशालक ध्यान शब्द का भी उपयोग नहीं करता। क्योंकि ध्यान शब्द
से भी क्रिया का पता चलता है। हम कहते हैं, ध्यान करने जा रहे हैं। गोशालक कहता है, करने से क्या होगा? और तुमने अगर ध्यान किया होगा तो तुम्हें पता होगा। करने से क्या होता है? उछलो-कूदो, शोरगुल मचाओ, या आंख बंद करके बैठो। करने से होता क्या है? हां, कभी-कभी ऐसा होता है कि हो जाता है। हो सकता है कि करने के समय ही कभी-कभी हो जाए।
गोशालक कहता है, वह संयोग मात्र है। तुम अगर ध्यान न भी कर रहे होते तो
उस वक्त होता। वह यह नहीं कह रहा है कि तुम ध्यान मत करो। वह इतना ही कह रहा है, तुम्हारी दृष्टि करने से ऊपर उठे, होने पर जगे। और जिस व्यक्ति को करने का बोझ उतर गया, जिसने सारी चिंता छोड़ दी अस्तित्व पर, उसका ध्यान हो गया। तो मुझे तो गोशालक उतना ही बहुमूल्य है, जितने महावीर। गोशालक एक तीर्थंकर है। सहज-समाधि उसका योग है। सहज-स्वीकार जीवन का उसकी साधना है। नकार नहीं, अस्वीकार नहीं, विरोध नहीं, दमन नहीं। जैसा जीवन आ जाए, उसे वैसा ही आलिंगन कर लेना स्वागत से। यही उसकी जीवन-दृष्टि है।
अगर तुम गोशालक का विधायक रूप समझो तो कृष्णमूर्ति से बहुत मिलेगा, मेल खाएगा। लेकिन जैन तो उस विधायक रूप को नहीं समझ सकते थे।
विरोधी का हम विधायक रूप देखते ही नहीं। विरोधी में तो हम बुरा-बुरा देखते हैं। अपने में भला-भला देखते हैं, विरोधी में बुरा-बुरा देखते हैं। जब तक हमारे मन में यह भाव है कि हमारी अपनी कोई दर्शन-परंपरा है, शास्त्र है, सिद्धांत है, तब तक हम सम्यक रूप से देख ही नहीं सकते।
एक जैन मित्र राजस्थान से आए। तो मुझसे कहने लगे, एक जैन मुनि ने कहा, कहां जा रहे हो? वह आदमी तो गोशालक है। मैंने कहा, बात तो उन्होंने ठीक कही। मुझमें कोई खोजना चाहे तो गोशालक को बिल्कुल खोज ले सकता है। मैंने उनसे कहा, बात तो उन्होंने ठीक कही।
वे बेचारे बड़े परेशान थे। क्योंकि वे भी जैन हैं। और उनको लगा, यह तो बड़ी गाली हो गई। गोशालक कह दिया। मुझसे कहने लगे, आप कुछ कहेंगे नहीं? इसमें आप कोई वक्तव्य दें कि उन्होंने आपको गोशालक कहा।
मैंने कहा, गलत तो कहा नहीं। ठीक ही कहते हैं। मुझमें कुछ गोशालक का हिस्सा है। मैं भी मानता हूं, आदमी के किए कुछ होता नहीं। अगर तुमसे करने को भी कहता हूं तो सिर्फ इसलिए कि कर-करके ही तुम जानोगे कि करने से कुछ नहीं होता। बिना किए शायद मन में कोई भाव रह जाए कि कर लेते तो शायद हो जाता। तो मैं कहता हूं, कर लो। करके देख लो। चलो, यह खुजलाहट है, यह भी कर लो।
तो तुमसे कहता हूं, ध्यान करो, प्रार्थना करो, पूजा करो। बाकी करने से कभी कुछ हुआ नहीं। कर-करके ही एक दिन तुम्हें अचानक बुद्धि आएगी--अगर बुद्धि है तो जरूर एक दिन आएगी कि अरे! यह मैं क्या कर रहा हूं? मेरे किए तो कुछ भी नहीं होता।
उस दिन तुम्हारे ऊपर सदज्ञान उतरा। उस दिन तुम्हारी समाधि पकी। उस दिन फसल काटने के दिन आए। जिस दिन तुमको लगा, मेरे किए भी नहीं होता, उस दिन समर्पण हुआ। अभी तो तुम समर्पण भी करते हो, तो कहते हो कि मैंने समर्पण किया। अब समर्पण भी कोई कर सकता है? अगर तुमने किया, तो समर्पण हुआ ही

नहीं। तुम्हारी किए समर्पण होगा? तो यह तुम्हारा कृत्य रहा। तुम्हारा कृत्य तो तुम किसी भी दिन वापस ले सकते हो। एक दिन तुमने कहा, समर्पण किया, दूसरे दिन तुमने कहा, अच्छा वापस लेते हैं। नहीं करते। तो कोई क्या करेगा? मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, हम आप पर समर्पण करते हैं। मैंने कहा, जब तक करते हो, तब तक तुम अपने पास ही रखो। क्योंकि यह की हुई चीज झंझट है। यह तो अमानत रही। किसी भी दिन तुम आ गए कि लाओ, वापस दो।
जो किया गया है, वह लौटाना पड़ सकता है। लेकिन जो हुआ है, उसे तुम लौटा नहीं सकते।
प्रेम होता है। तुम कहते हो, किसी से प्रेम हो गया। तुम्हारे करने जैसा कुछ भी नहीं है। इसलिए जीसस ठीक कहते हैं कि परमात्मा प्रेम जैसा है; होता है, किया नहीं जाता।
ध्यान प्रेम जैसा है; होता है, किया नहीं जाता। लेकिन कर-करके जब तक थकोगे न, जब तक तुम ठीक से दौड़ाए न जाओगे, तब तक तुम विश्राम कर ही नहीं सकते। तुम जब थक जाओगे दा.ैड-दौड़कर, तुम्हारे पैर जब जवाब दे देंगे, तुम्हारा अहंकार जब खुद ही गिर जाएगा, थककर गिर जाएगा कि अब कुछ नहीं होता; तुम बैठ जाओगे, उसी घड़ी कुछ होगा।
ऐसा ही बुद्ध को हुआ। शायद बौद्ध शास्त्रों में गोशालक का जो सम्मान
से उल्लेख है, इसका एक कारण बुद्ध की समाधि भी रही होगी। क्योंकि बुद्ध ने छह साल तक ऐसा ही किया, जैसा महावीर ने बारह साल तक किया। सब तरह से चेष्टा की। फिर थक गए। कुछ पाया नहीं। तो छह साल के बाद ऊबकर, परेशान होकर छोड़ दिया। और जिस रात छोड़ा, उसी रात समाधि घटी। उसी रात बुद्धत्व उपलब्ध हुआ। तो शायद गोशालक की बात बुद्ध को समझ में आती रही होगी, कि कहता तो यह आदमी ठीक है। हालांकि बड़ी खतरनाक बात है। अगर नकरात्मक रूप से लें तो बड़ी खतरनाक है। क्योंकि उसका मतलब होगा, तो फिर कुछ करने की जरूरत नहीं। चोर चोरी करे। हत्यारा हत्या करे। बेईमान बेईमान रहे। शराबी शराब पीए। करने से तो कुछ होता नहीं।
तब तुमने गलत अर्थ ले लिया। शराबी से पूछो, कितनी बार छोड़ने की कोशिश नहीं कर चुका है। कहां छूटती? और जिसकी छूट गई हो, उससे पूछो कि क्या तेरी कोशिश से छूटी? अगर वह ईमानदार आदमी हो तो कहेगा, कोशिश तो बहुत की, न छुटी। जब छूटनी थी, छूट गई। एक दिन ऐसा हुआ कि छूट गई। वह जो कोशिश कर रहा है और थकता है और नहीं छूटती... अक्सर तो ऐसा होता है, कोशिश से और पकड़ती है। जिसे तुम भुलाने की कोशिश करते हो, उसकी और याद आती है? भुलाने में भी तो याद ही आती है। करोगे भी क्या?
किसी को भुलाना चाहते हो, उतार देना चाहते हो मन से कि अब याद न आए, तकलीफ होती है, कांटा चुभता है याद का; न आए याद। लेकिन जब भी तुम सोचते हो न आए याद, तभी तो याद कर ली। न याद करने में याद फिर हो गई। तो यह तो याद बढ़ती चली जाएगी। हां, ऐसा कभी होता है एक दिन कि याद बिसर जाती है, नहीं आती।
गोशालक इतना ही कह रहा है कि जीवन में सब सहज हो रहा है। यहां तुम चेष्टा को बीच में मत लाओ।
और उसकी बात सही है। क्योंकि कितनी अदालतें हैं। कितने चोरों को दंड दिए गए, कौन-सी बदलाहट हुई है? चोर बढ़ते गए, जैस-जैसे कानून बढ़े। तुम कानून बनाओ, चोर और वकील बढ़ते हैं और कुछ नहीं होता। ज्यादा कानून बनाओ, और ज्यादा चोर, और ज्यादा वकील। कानून से कुछ रुकता तो नहीं। कारागृह बनाओ, कोई फर्क नहीं पड़ता।
अब तो मनोवैज्ञानिक पश्चिम में कहने लगे हैं कि कारागृह खतरनाक हैं, क्योंकि इनसे और चोर निष्णात होकर निकलते हैं। नए सिक्खड़ आते हैं, किसी ने किसी की जेब काट ली, पकड़ गया। पहुंच गया जेल, छह महीने की सजा हो गई। वहां मिलते हैं महागुरु। कोई बीस साल से काट रहे हैं, कोई पंद्रह साल से काट रहे हैं। छह महीने सत्संग हो जाता है। उस सत्संग में वह और मजबूत होकर बाहर आ जाता है। वह सब सीखकर आ जाता है कि पकड़ा क्यों गया। कहां भूल हो गई? कहां चूक हो गई? अब कभी न होगी।

ऐसा कभी नहीं होता कि जो आदमी एक दफे जेल गया हो, वह फिर न गया हो। वह जेल से बाहर आते से फिर वही कृत्य करता है। हां, अब पहले से ज्यादा कुशलता से करता है।
तो मनोवैज्ञानिक तो कहते हैं, ये तुम्हारे कारागृह लोगों को पाप से रोकते नहीं हैं, पाप का शिक्षण देते हैं। ये विश्वविद्यालय हैं पाप के। और तुम सोचते हो दंड देने से कुछ होता है। कोड़े मारो, भूखा मारो, अंधेरी कोठरियों में बंद करो, इससे कुछ होता है। तुम सोचते हो, शायद इससे रुकावट होगी।
इंग्लैंड में ऐसा था सौ साल पहले तक कि जो भी चोर चोरी करता, उसको चौरस्ते पर खड़ा करके कोड़े मारते थे; ताकि पूरा गांव देख ले कि चोर की क्या हालत होती है। फिर उनको वह बंद करनी पड़ी प्रथा। क्योंकि पाया गया कि पूरा गांव इकट्ठा हो जाता और वहीं जेब कट जाती। एक आदमी को चोरी की वजह से कोड़े मारे जा रहे हैं, उसकी चमड़ी उधेड़ी जा रही है, लहूलुहान हो रहा है और भीड़ उत्सुकता से देख रही है। लोग ऐसे तन्मय हो जाते देखने में।
हिंसा जहां हो रही हो, वहां लोगों का बड़ा ध्यान लगता है--जिसको महावीर अधर्म ध्यान कहते हैं। एकदम लोग तत्पर हो जाते हैं। जिनकी कभी एकाग्रता नहीं सधी, वह भी सध जाती है। उसी वक्त जेब कट जाती।
आखिर समझ में आया कि यह तो कोई सार नहीं। हम सोचते हैं, लोगों को शिक्षा मिलेगी। वहीं जेब काटनेवाले मौजूद हैं। वे इस अवसर को भी नहीं चूकते।
वह अपराध और दंड की अब तक की जो व्यवस्था रही है, वह बिल्कुल व्यर्थ है। उससे हो सकता है, समाज को थोड़ा सुख मिल जाता हो कि जिसने हमारा नियम तोड़ा उसको हमने सता लिया। हिंसा का थोड़ा मजा आ जाता हो। है तो मूढ़तापूर्ण। एक आदमी किसी की हत्या करता है, हम उसको फांसी की सजा देते हैं। यह तो बड़े मजे की बात हुई। यही पाप उसने किया। यही पाप हम करते हैं और हम कहते हैं, चूंकि तुमने किसी को मारा इसीलिए हम तुम्हें मारेंगे।
एक छोटे स्कूल में एक शिक्षक अपने बच्चों से पूछ रहा था कि तुम पशुओं
को सताते तो नहीं? तुमने कभी किसी पशु को सुरक्षा दी? करुणा की? एक लड़के ने हाथ हिलाया। उसने कहा, हां, एक दफा। एक लड़का कुत्ते को मार रहा था तो मैंने उसकी ऐसी मरम्मत की--लड़के की! कुत्ते पर तो दया हो गई। मगर वस्तुतः कुत्ते पर दया हुई? लड़के की मरम्मत कर दी उसने। वह कुत्ते को मार रहा था, उसने लड़के की मारपीट कर दी। अब वह सोच रहा है कि बड़ी करुणा हुई।
लेकिन तुम्हारी अदालतें भी यही कर रही हैं, कानून भी यही कर रहा है। दंड किसी को अपराध से रोक नहीं पाया, न रोक पाएगा। चेष्टा से कौन बदलता है? तुम कभी अपने जीवन पर विचार तो करो। चालीस-पचास साल तुम जी लिए हो दुनिया में। कितनी चेष्टा तुमने की है, कोई बदलाहट हुई है या कि तुम ठीक वैसे के वैसे हो? तब तुम्हें गोशालक की अंतर्दृष्टि समझ में आएगी। लेकिन इस बदलने की चेष्टा में तुमने चिंता बहुत उठाई, तनाव बहुत झेला। और गोशालक कहता है, हो सकता है उसी चिंता और तनाव के कारण तुम इतने ज्यादा व्यस्त रहे अपने को बदलने में, कि अगर विश्व की ऊर्जा तुम्हें बदलने भी आयी होगी तो लौट गई होगी। तुम ग्राहक न रहे होओगे।
छोड़ो चिंता। छोड़ो अस्तित्व पर। जैसा होता है, उसे चुपचाप होने दो। तुम एक दफा प्रयोग करके देखो गोशालक का भी।
महावीर, बुद्ध और कृष्ण और पतंजलि तो दुनिया में स्वीकृत तीर्थंकर हैं। गोशालक अस्वीकृत तीर्थंकर है। लेकिन स्वीकृत तीर्थंकारों से दुनिया कुछ अच्छी हुई, ऐसा मालूम पड़ता नहीं।
इसलिए कभी-कभी मैं सोचता हूं, जो अस्वीकार हो गए हैं उन पर भी ध्यान देना जरूरी है। हो सकता है, उनके पास कुछ कुंजी हो। जिन्हें हमने स्वीकार किया है, हो सकता है हमने उन्हें इसीलिए स्वीकार किया कि हमारे रोग से उनका कुछ तालमेल बैठता था। हमारा रोग है, कर्ता होने का रोग।
महावीर कहते हैं, करो ध्यान, करो तप। जंचती है बात। गोशालक कहता है करने से क्या होगा? बात जंचती नहीं। महावीर जब कहते हैं करो, तो तुम्हें ऐसा लगता है, हां, अपने बल में कुछ है, अपने बस में कुछ है।

गोशालक कहता है, किसी के बस में कुछ नहीं। तुम चाहते हो, यह आदमी चुप रहे। यह न बोले। क्योंकि यह तुम्हारी असलियत खोल रहा है। यह तुम्हारी दीनता जाहिर कर रहा है। महावीर के साथ तो अहंकार बच सकता है, गोशालक के साथ कैसे बचाओगे? महावीर के साथ तो धर्म की आड़ में बच सकता है, गोशालक के साथ तो कोई आड़ न चलेगी।
तुम चकित होओगे जानकर कि महावीर नग्न रहे, गोशालक भी नग्न रहा। गोशालक भी दिगंबर था। लेकिन महावीर की नग्नता के पीछे कारण था कि जो भी सभ्यता, संस्कृति, संस्कार समाज ने दिया है उसका त्याग। उस सबको छोड़ देना है। संसार से जो मिला है वह सब छोड़ देना है। वस्त्र भी संसार से मिले हैं।
वस्त्रों के साथ बहुत-सी बातें जुड़ी हैं। वे सब छोड़ देनी हैं। आदमी को भीतर जाना है, बाहर का सब छोड़ देना है। शरीर ही छोड़ देना है तो वस्त्र तो और भी शरीर के बाहर हैं। अंतर्मुखी होना है।
गोशालक भी नग्न था। गोशालक के नग्न होने का कारण बिल्कुल दूसरा था।
वह कहता था नग्न ही आए हैं, नग्न ही जाना होगा। तो बीच में यह कपड़ों का उपद्रव क्यों? यह चेष्टा क्यों? बच्चे जब पैदा हुए थे तो नग्न थे। तो ठीक है, वही स्वीकार है।
महावीर की नग्नता में अनुशासन मालूम होता है, गोशालक की नग्नता में सहजता मालूम होती है। अगर तुम्हें महावीर नग्न मिल जाएं तो तुम नमस्कार करोगे। क्योंकि महावीर की नग्नता में योग मालूम होगा, साधना मालूम होगी, तपश्चर्या मालूम होगी। गोशालक नग्न मिल जाए तो तुम कहोगे, हिप्पी है। क्योंकि गोशालक कहता है, नग्न आए हैं, नग्न जाएंगे।
गोशालक यह भी नहीं कहता, इसमें कुछ गौरव है नग्न होने में। वह कहता है तुम्हें कपड़े पहनना ठीक लगता है, चलो ठीक। हमें नंगा रहना ठीक लगता है, यही ठीक। हमें हम रहने दो, तुम तुम रहो। हम तुम्हें आदेश नहीं देते, तुम कृपा करके हमें आदेश मत दो।
गोशालक इतना ही कहता है, प्रत्येक अपनी प्रकृति के अनुकूल चले, सहज रहे।
गोशालक न तो स्वर्ग की बात करता है, न नर्क की। गोशालक ने बड़ा मजाक किया है। पूरा सिद्धांत तो उल्लिखित नहीं है कहीं, लेकिन महावीर कहते हैं, सात नर्क हैं। गोशालक से कोई पूछता है, कितने नर्क हैं? वह कहता है, सात सौ। वह सिर्फ मजाक कर रहा है। वह यह नहीं कह रहा कि सात सौ हैं। वह यह कह रहा है, पागल हुए हो? न कोई नर्क है, न कोई स्वर्ग है। बस तुम हो और तुम्हारा चैतन्य है। बाकी सब सिद्धांतों के जाल हैं।
वाइजे-सादालोह से कह दो, छोड़ उकबा की बातें
इस दुनिया में क्या रक्खा है, उस दुनिया में क्या होगा?
वह भोले-भाले धर्मगुरु से कह दो कि छोड़ परलोक की बातें। इस दुनिया ही में कुछ नहीं रक्खा है तो उस दुनिया में क्या होनेवाला है? वाइजे-सादालोह से कह दो, छोड़ उकबा की बातें
इस दुनिया में क्या रक्खा है, उस दुनिया में क्या होगा?
अक्सर जो तुम्हें बताते हैं, उस दुनिया में बहुत कुछ रक्खा है, वे तुम्हें प्रभावित करते हैं क्योंकि तुम्हारे लोभ को जगाते हैं। वे कहते हैं, यहां तो कुछ नहीं है लेकिन वहां है। क्या बाहर भटक रहे हो? क्या कंकड़-पत्थर इकट्ठे कर रहे हो? क्या ठीकरे जोड़ रहे हो? कामिनी-कांचन में कुछ भी नहीं; लेकिन वहां है स्वर्ग में। वे तुम्हारे लोभ को जगाते हैं, तुम्हारे भय को जगाते हैं। वे तुम्हारी बीमारियों को उकसाते हैं।
गोशालक जैसे व्यक्ति न तुम्हारे लोभ को उकसाते हैं, न तुम्हारे भय को उकसाते हैं। वे तुम्हें केवल तुम हो जाओ स्वयं, सहज, प्रकृति के साथ चलने लगो, निसर्ग तुम्हारी व्यवस्था हो जाए, इतनी बात कहते हैं। इसलिए बहुत संप्रदाय बन नहीं सकते।
तकदीर कुछ ही, काविसे-तदबीर भी तो है
तखरीब के लिबास में तामीर भी तो है
जुलमात के हिजाब में तनवीर भी तो है
आ मुंतजिर-ए-इस्रते-फर्दे इधर भी आ

तकदीर कुछ ही, काविसे-तदबीर भी तो है
किस्मत तो थोड़ी है; ज्यादा तो पुरुषार्थ है।
तखरीब के लिबास में तामीर भी तो है
और विनाश तो है, लेकिन उसमें छिपा निर्माण भी तो है।
जुलमात के हिजाब में तनवीर भी तो है
अंधेरा है माना, लेकिन बड़ा प्रकाश है। सुबह जल्दी करीब आ रही है। जगत में दुख है माना, लेकिन स्वर्ग में बड़ा सुख भी है।
आ मुंतजिर-ए-इस्रते-फर्दे इधर भी आ
ओ आगामी कल के सुख! मेरी तरफ भी दृष्टि दे।
आदमी ऐसे जीता है--लोलुपता में, भरोसे में, आशा में। गोशालक जैसे तीर्थंकरों के पास आशा का कोई उपाय नहीं। गोशालक तुम्हें ठीक जैसा है, वैसा ही कह देता है। तुम्हें जरा भी सांत्वना नहीं देता।
तुम पूछो आत्मा अमर है? वह कहेगा, जब तक मरे नहीं, पता कैसे चले? जब मैं
मर जाऊं तब पूछना। अभी तो मैं जिंदा हूं। या तुम मरोगे तब जान लेना। अभी पहले से जानकर भी क्या होगा? और पहले जानने का उपाय भी कहां है? जानने के पहले जानने का उपाय कहां है? अभी तो जी लो, फिर मौत भी आएगी, देख लेना। होगी अमरता तो मिल जाएगी, न होगी तो नहीं मिलेगी। इसकी चिंता भी क्या करना? गोशालक ने खूब झकझोर दिया होगा भारत को। इसीलिए जैन शास्त्र बड़े परेशान रहे हैं। उसने सारे सिद्धांतों की बुनियाद उखाड़ दी होगी। उसने आदमी को इतना नैसर्गिक बनने का संदेश दिया कि सिद्धांत, धर्म और शास्त्र और परंपरा का कोई उपाय नहीं रह गया।
कल मैं एक गीत पढ़ता थाः
हवा हूं हवा मैं वासंती हवा हूं
चढ़ी पेड़ महुआ थपाथप मचाया
गिरी धम्म से फिर चढ़ी आम ऊपर
उसे भी झकोरा किया कान में कू
उतरकर भगी मैं हरे खेत पहुंची
वहां गेहुंओं में लहर खूब मारी
पहर दोपहर क्या अनेकों पहर तक
ऐसे व्यक्ति--गोशालक जैसे व्यक्ति--तेज आंधी की तरह आते हैं। हवा हूं हवा मैं वासंती हवा हूं
चढ़ी पेड़ महुआ थपाथप मचाया
वे आदमी की चेतना को खूब थपथपाते हैं, झकझोर देते हैं।
गिरी धम्म से फिर चढ़ी आम ऊपर
उसे भी झकोरा किया कान में कू
उतरकर भगी मैं हरे खेत पहुंची
वहां गेहुओं में लहर खूब मारी
पहर दोपहर क्या अनेकों पहर तक
ऐसे व्यक्ति धूल-धवांस झाड़ जाते हैं चेतना की। ऐसे व्यक्ति संप्रदाय निर्मित नहीं करते। ऐसे व्यक्तियों का धर्म बड़ा शुद्ध है। ऐसे व्यक्ति ऐसे हैं, जैसे शुद्ध सोना। आभूषण बनाने हों तो कुछ मिलाना पड़ता है सोने में। चौबीस कैरेट सोने के आभूषण नहीं बनते। फिर बीस कैरेट, अठारह कैरेट-- कुछ मिलाना पड़ता है--तांबा, कुछ और। नहीं तो सोना बहुत नर्म है। जैसे-जैसे संप्रदाय बनता है, सोने के आभूषण बनते हैं, वैसे-वैसे अशुद्धि मिलती है। जितना व्यवस्थित संप्रदाय बनता है, उतना ही विकृत संप्रदाय हो जाता है। जैन संप्रदाय बहुत व्यवस्थित है। छोटा है, लेकिन बहुत नियोजित है, व्यवस्थित है। एक-एक रेखा साफ है, सीमा पर बंधी है। द्वार, दरवाजे, आंगन, बागुड़, सब साफ है। जैन संप्रदाय गणित जैसा सुस्पष्ट है। और गोशालक जैसे व्यक्ति काव्य जैसे हैं--अस्पष्ट, धुंधले, रहस्यपूर्ण।
फिर हम यहां रास्ता खोज रहे हैं। हम चाहते हैं कोई रास्ता बता दे। हमें रास्ता पता नहीं है। गोशालक रास्ते पर मिल जाए तो वह कहता है, रास्ता है ही नहीं। क्या खोज रहे हो? इससे हमें चैन नहीं होता। हम कहते हैं हटो।
हमें रास्ता पूछना है। हम बेचैन हैं बिना रास्ते के। हम चाहते हैं, जीवन

का लक्ष्य क्या है? गोशालक मिल जाए, वह कहता है कोई लक्ष्य है ही नहीं। अलक्ष्य जीवन चल रहा है। कहीं पहुंचना थोड़े ही है!
जीवन नृत्य जैसा है, यात्रा जैसा नहीं। इसमें कोई अंतिम पड़ाव नहीं है। हां, बीच में बहुत पड़ाव हैं, वे विश्राम के लिए हैं। सुबह उठे फिर चल पड़ना है। यह अनंत यात्रा है।
मगर इससे हमारे मन में भरोसा नहीं आता। कोई चाहिए, जो हमें बता दे स्पष्ट कि कहां हम जा रहे हैं? क्यों जा रहे हैं? तो निश्चिंतता हो जाए, भय मिटे। हिसाब बैठ जाए। तो हम क्या करें और क्या न करें। तो क्या करने से रास्ते पर रहेंगे और क्या करने से रास्ते से बिछुड़ जाएंगे!
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, आप कुछ मर्यादा क्यों नहीं देते? साफ-साफ अनुशासन क्यों नहीं देते? आप हमें ठीक-ठीक बता दें क्या हम करें और क्या हम न करें? बस, फिर हम निपट लेंगे। मगर आप कुछ कहें तो! साफ-साफ सूत्र दे दें।
वे मुझसे चाहते हैं कि मैं उन्हें आश्वासन दे दूं कि इतनी बातें तुम पूरी करते रहोगे, पानी छानकर पीओगे तो मोक्ष निश्चित है। मांसाहार न करोगे, मोक्ष निश्चित है। खेती-बाड़ी न करोगे, मोक्ष निश्चित है। तो फिर वे इतने काम करना शुरू कर दें। ये काम बंद करे दें। यह कोई बहुत कठिन तो नहीं है। ये काम बंद किए जा सकते हैं।
लेकिन मैं उनसे कहता हूं, मोक्ष इतना सस्ता नहीं है कि पानी छानने से मिल जाए। मोक्ष इतना सस्ता नहीं है, यह शुभ है। नहीं तो जितने लोग पानी छानकर पी रहे हैं, ये मोक्ष में रहेंगे। तुम थोड़ा सोचो। उस मोक्ष में तुम रहना पसंद करोगे, जहां सब पानी छाननेवाले पहुंच गए? वह बड़ा बेरौनक होगा। वह बड़ा उदास होगा। वहां कोई जीवन का उल्लास, आनंद न होगा।
गोशालक बहुत मस्त आदमी था। मस्त फकीर! नाचता-गाता आदमी था। जैन शास्त्रों में इसलिए भी बड़ा विरोध है। क्योंकि कभी-कभी ऐसा हो जाता कि गोशालक के पास महफिल जमी है, नाच रहे लोग। एक गांव में वेश्या ने निमंत्रण दे दिया, और गोशालक वहीं चला गया नाचते हुए। अब जैन शास्त्रों में उसका विरोध होना स्वाभाविक है।
कहते हैं वह मरा--जैन शास्त्र कहते हैं--तो एक वेश्या के घर ही टिका हुआ था। पता नहीं, यह सच हो या न हो। क्योंकि जैन शास्त्रों की बात मानने का कोई भी कारण नहीं है। मगर यह हो भी सकता है। क्योंकि गोशालक जैसे व्यक्ति को पापी में और पुण्यात्मा में कोई फर्क नहीं है। गोशालक जैसे व्यक्ति को वेश्या में भी वही परमात्मा नजर आता है--वही शुद्ध, जो पुण्यात्मा में है; कोई भेद नहीं है।
भेद ओछी दृष्टियों के हैं। भेद नासमझों के हैं। गोशालक निश्चित अभेद में रहा होगा। परमहंस था।

दूसरा प्रश्नः महावीर अशरण का उपदेश देते थे और शिष्य भी बनाते थे। क्या ये दोनों बातें परस्पर-विरोधी नहीं हैं?

दिखती विरोधी हैं; हैं नहीं। और इस जगत में जो भी सत्पुरुष हुए हैं, वे हमेशा विरोधाभासी दिखाई पड़ेंगे। जीवन विरोधाभासी है। तो जो भी इस जीवन को झलकाएगा इसकी सचाई में, वह भी विरोधाभासी होगा।
सिर्फ पंडित विरोधाभासी नहीं होते। ज्ञानी सदा विरोधाभासी होंगे। क्योंकि ज्ञानी छांटता नहीं। वह जिंदगी पर कोई ढांचा नहीं रोकता। उसके लिए जिंदगी जैसी है, स्वीकार है। वह सिर्फ जिंदगी को झलका देता है। फिर जो भी जिंदगी में है, वह सब उसमें झलक जाता है। वह दर्पण का काम करता है।
अब यह बात महावीर कहते हैं, अशरण। किसी की शरण मत जाओ। लेकिन महावीर
के पास शिष्य आते हैं। शिष्य कहते हैं, "सिद्धे शरणं पवज्झामि।" हे सिद्ध पुरुष! हम तुम्हारी शरण आते हैं। "अरिहंते शरणं पवज्झामि।" हे पहुंचे हुए पुरुष! हम तुम्हारी शरण आते हैं।
महावीर इनको स्वीकार भी करते हैं। तब तो बड़ी उलटी बात मालूम पड़ती है।
महावीर कहते हैं अशरण! और ये शरण आनेवाले लोग भी स्वीकार हो जाते हैं।

इनकी भी महावीर दीक्षा करते हैं। इनको संन्यस्त करते हैं। इनको सत्य के मार्ग का इंगित करते हैं।
तो विरोध दिखाई पड़ता है, लेकिन सिर्फ दिखाई पड़ता है। जब महावीर शिष्य बनाते हैं तो वे इतना ही कह रहे हैं कि मैं तुमसे जरा ऊंचाई पर खड़ा हूं। तुम वृक्ष के नीचे हो, मैं वृक्ष पर खड़ा हूं। यहां से मुझे जरा दूर तक दिखाई पड़ता है। जैसे मैं इस वृक्ष पर चढ़ आया हूं, उतने दूर तक तुम मेरे सूचन का उपयोग कर सकते हो। तुम भी इस वृक्ष पर चढ़ आ सकते हो।
तुम रास्ते पर किसी से पूछते हो, नदी का रास्ता कहां है? कोई आदमी बता देता है, तो क्या तुम्हारा गुरु हो गया? क्या तुम उसकी शरणागति हो गए? तुम उसे धन्यवाद देकर नदी की तरफ चले जाते हो। तुम ऐसा थोड़े ही, कि उसके चरण पकड़ लेते हो कि अब मैं तुम्हें कभी भी न छोडूंगा महाराज! क्योंकि आपने नदी का रास्ता बताया। वह कहेगा, अगर नदी का रास्ता बताया तो कोई गलती तो नहीं की। जाओ नदी।
नदी का रास्ता पूछने में तो हम ऐसी भूल नहीं करते, लेकिन परमात्मा का रास्ता पूछने में अक्सर ऐसी भूल करते हैं। इसलिए महावीर कहते हैं, सुन लो, समझ लो, मैं जो कहता हूं उसे गुन लो। फिर पकड़ो अपनी गैल। जाओ अपनी डगर पर। फिर मेरे पैर पकड़कर मत रुको। मैंने कोई कसूर तो किया नहीं। मुझे क्यों सताते हो? जाओ। जितना मैं जानता हूं, कह दिया। इसका कुछ उपयोग करना हो, कर लो।
तो एक तरफ महावीर कहते हैं, अशरण। क्योंकि वे जानते हैं, आदमी बड़ा पागल है।
आदमी ऐसा पागल है कि मील के पत्थरों को पकड़कर रुक जाता है। हालांकि मील के पत्थर पर लगा है तीर, कि चलो आगे। जाओ आगे। दिल्ली बहुत दूर है। मगर वह पत्थर पकड़कर छाती से लगाकर बैठा है कि मिल गई दिल्ली। दिल्ली लिखा है पत्थर पर। हालांकि लिखा है, हजार मील दूर कि दो हजार मील दूर। वह उसकी फिकर नहीं कर रहा है।
तुम कभी मील के पत्थर के पास बैठकर यह नहीं कहते कि बड़ा विरोधाभास है, दिल्ली लिखा है और दो हजार मील भी लिखा है! दिल्ली है तो ठीक, पत्थर ठीक। अगर दो हजार मील तो यहां दिल्ली क्यों लिखते हो? फिर दो हजार मील वहीं लिखना दिल्ली।
महावीर कहते हैं, शिष्य बनना एक बात है, शरण जाना दूसरी बात है। शिष्य बनने का अर्थ इतना है, कोई पहुंचा, किसी ने जाना, कोई जागा, उसका लाभ ले लो। कोई बहुत भटका, तब उसे मार्ग मिल गया, तुम उससे थोड़ा समझ लो। मगर रहना अपने पैरों पर। झुको उसके सामने, जो जानता है। लेकिन झुको इसीलिए कि उठकर चलना है। झुके ही मत रह जाना कि फिर पैर पकड़ लिए तो छोड़ेंगे नहीं।
तो तुम तो चल ही न पाओगे, तुम किसी चलनेवाले को भी रोक लोगे। शिष्य गुरुओं के द्वारा पहुंचते हैं कि नहीं पता नहीं, बहुत से गुरुओं को डुबाते हैं यह पक्का है। इतने जोर से पकड़ लेते हैं कि न तो खुद जाते हैं, न उसे जाने देते हैं।
तो महावीर कहते हैं कि जाग्रत पुरुष से सीखो। वह वृक्ष पर बैठा है, उसे दूर का दृश्य दिखाई पड़ता है। तुम नीचे खड़े हो अंधेरे में, घाटी में। वह पर्वत के शिखर पर खड़ा है। उसकी दृष्टि का विस्तार बड़ा है। उसकी सुन लो, समझ लो। सोचो, विचार कर लो। तुम्हारी बुद्धि उससे राजी हो जाए, तुम्हारा हृदय उसके साथ धड़के, तो फिर चलो।
लेकिन ध्यान रखना, चलना तुम्हें ही होगा।
इसीलिए कहते हैं, अशरण। किसी और के पैर से तुम न चल सकोगे। चलना तुम्हें ही होगा इस बात पर बार-बार जोर देने के लिए कहते हैं कि मार्ग कोई भी बता दे, नक्शा कोई भी तुम्हें दे दे, चलना तुम्हें ही पड़ेगा।
हम साधारण जीवन में सदा सहारा मांगते रहते हैं। कोई पति का सहारा, पत्नी का सहारा, बाप का, बेटे का सहारा, मित्र का सहारा। सहारे के हम आदी हो गए हैं। हम बैसाखियों पर ही चलने के आदी हो गए हैं। तो जब हम धर्म के जीवन में प्रवेश करते हैं, पुरानी आदत कहती है, सहारा! कोई गुरु का सहारा।

यह सहारे की सतत खोज तुम्हें आत्मवान न बनने देगी। तुम अपने सहारे कब बनोगे? अपने पैर कब खड़े होओगे? अपनी आंखों से कब देखोगे? अपने कानों से कब सुनोगे? यह सहारे की खोज तो तुम्हें पंगु बना दी है।
छोटे बच्चे की मां चलाती है। हाथ पकड़कर चलाती है। लेकिन यह कोई सदा के लिए इंतजाम नहीं है। यह कोई स्थिर व्यवस्था नहीं है। हाथ पकड़कर चलाती है ताकि उसे भरोसा आ जाए कि वह चल सकता है। फिर तो बच्चा खुद ही हाथ छुड़ाने लगता है।
तुमने देखो? बच्चा खुद ही कहता है, मत पकड़ो मेरा हाथ। और जो मां बच्चे
के हाथ को जोर से पकड़ती है, वह मां नहीं है। और जो बच्चा, जब चलना भी सीख गया तब भी मां का पल्लू पकड़े रहता है, वह कभी प्रौढ़ न हो पाएगा।
तो विरोध दिखता है। मां एक दिन कहती है, मेरा हाथ पकड़, चल। फिर धीरे- धीरे हाथ को सरकाती जाती है। फिर हाथ को अलग कर लेती है। फिर बच्चा पकड़ना भी चाहे तो वह दूर हो जाती है। वह कहती है, अब तू चल। थोड़ी दूर खड़ी हो जाती है जाकर; कहती है, आ। बच्चा उसकी तरफ आना शुरू करता है। एक दफा बच्चे को भरोसा आ जाए कि मेरे पास पैर हैं, मेरे पैर हैं, तो प्रौढ़ता आनी शुरू होती है।
सत्य के जगत में भी ऐसा ही है। गुरु थोड़ी दूर तक हाथ पकड़कर चला देता है। क्योंकि तुम जन्मों से चले नहीं। तुम भूल ही गए कि तुम्हारे पास पैर हैं। तुम जन्मों से उड़े नहीं, भूल ही गए कि तुम्हारे पास पंख हैं। थोड़ी देर उड़ा देता है, थोड़े आकाश में तुम्हें पंखों का थोड़ा ख्याल आ जाता है। फिर तुमसे कहता है, जाओ। दूर अनंत आकाश है, उड़ो। वह पूरा आकाश तुम्हारा है। दावा करो।
मैंने सोचा था कि दुश्वार है मंजिल अपनी
एक हंसी बाजू-ए-सीमी का सहारा भी तो है
दश्ते-जुल्मात से आखिर को गुजरना है मुझे
कोई रुख्शंदा और ताबीदा सितारा भी तो है
पहले ठीक है। शुरू-शुरू चलते हैं तो किसी रजत बांह का सहारा हो, अच्छा। कोई चमकता हुआ सितारा हो, अच्छा।
दश्ते-जुल्मात से आखिर को गुजरना है मुझे
लेकिन अंततः तो अंधेरे से खुद ही गुजरना है। वह दूर जो तारा दिखाई पड़ता है उससे आशा ले लो, उससे श्रद्धा ले लो; लेकिन उसके कारण थककर बैठ मत जाना। यह मत कहना, अब मुझे क्या करना! तारा तो है। यह मत कहना महावीर से कि तीर्थंकर तो तुम हो, अब मुझे क्या करना! तुम तो पहुंच गए, अब तुम ही मुझे पहुंचा दोगे।
इसलिए महावीर कहते हैं, शरण मत खोजना। शरण खोजने के कारण धर्म भ्रष्ट हुआ।
ये जो दुनिया में इतने मंदिर, मस्जिद, इतने गुरुद्वारे, इतनी कलह दिखाई पड़ती है, यह शरण की कलह है।
न्याय के हे देवता! कब सिखाओगे मनुष्यों को
कि आप अपनी वे रक्षा करें
त्राण वैसे तो उन्हें हैं मिले लाखों बार
पर हर बार त्राता ने उन्हें बेच डाला है
न्याय के हे देवता! रोक रक्खो रक्षकों को स्वर्ग में देव, त्राता मानवों का और मत भेजो
लोग रोते, त्राण तो हम पा गए
पर हाय भूखों मर रहे
और वह कहताः
बहुत-सी पक रही हैं कल्पना की पूड़ियां
मेरे पिता के गेह में
धीरज धरो, फिर पेट भर खाना
लोग कहतेः
एक टुकड़ा दे सकते नहीं हमें सामान्य रोटी का हुक्म वह देताः

नहीं, बैकुंठ चलकर ही तुम्हें भोजन मिलेगा
और वह सामान्य क्यों?
अदभुत, अमूल्य, अपूर्व होगा
न्याय के हे देवता! कब सिखाओगे मनुष्यों को
कि आप अपनी रक्षा वे स्वयं करे
... कि अपनी आप वे रक्षा करें।
महावीर त्राता हैं, लेकिन त्राण के आधार पर तुम्हारे प्राणों को नष्ट नहीं करना चाहते। सभी सदगुरु यही कहेंगे।
झुको जरूर। झुके बिना कोई सीखता नहीं।
शिष्य बनो जरूर। विनम्र हुए बिना कोई सीखता नहीं।
फैलाओ झोली, लेकिन अपने पैरों का भरोसा मत खो देना। ऐसा मत सोचना कि बस, त्राता के पैर पकड़ लिए तो त्राण हो गया।
ऐसा ईसाइयत मानती है कि जीसस ने सबके पाप हल कर दिए। अब इससे बड़ा झूठ
भी कोई हो सकता है? जीसस को गए दो हजार साल हो गए। अगर जीसस ने सभी के पाप समाप्त कर दिए तो दो हजार साल से फिर क्या हो रहा है दुनिया में? पाप नहीं हो रहे? इन दो हजार सालों में जितने पाप हुए हैं, उतने शायद ईसा के पहले कभी भी न हुए हों। ये दो हजार साल आदमी के दुख, पीड़ा, घावों के, पाप के, घृणा के, हिंसा के, युद्धों के साल हैं। आदमी खूंखार से खूंखार होता चला गया। और ईसाइयत फिर भी दोहराए चली जाती है कि ईसा ने सबको मुक्त कर दिया।
यह बड़ी झूठी बात है। मगर इस झूठ के पीछे तर्क है। आदम ने पाप किया था सबके लिए, उसकी वजह से सब पापी हो गए थे! अब कोई किसी दूसरे के पाप से कैसे पापी हो सकता है? तो जब आदम ने पाप किया, सब पापी हो गए। जीसस ने सभी के लिए पुण्य कर दिया, सब पुण्यात्मा हो गए। अब इतना ही जरूरी है हर आदमी को कि वह ईसाई हो जाए, बस पर्याप्त।
यह बड़ी सस्ती बात हो गई। इसलिए महावीर कहते हैं, शरण मत गहना। चरण छू लेना लेकिन शरण मत गहना। झुकना, शिष्य बनना, दीक्षित होना, सीखना, लेकिन यात्रा तुम्हीं को करनी पड़ेगी। तुम त्राता को त्राण मत समझ लेना। त्राता से सिर्फ इशारे मिलते हैं। चलना पड़ेगा।
शास्त्र को सत्य मत समझ लेना और शास्ता को मंजिल मत समझ लेना।
इसलिए विरोधी बात कहते मालूम पड़ते हैं। एक तरफ दीक्षा देते हैं, एक तरफ कहते हैं अशरण रहो।

आखिरी प्रश्नः अशरण होने और असहाय होने के भावों में क्या भेद है? और क्या दोनों के बीच कुछ समानता भी है?

समानता भी है, भेद भी है। अशरण होने का अर्थ होता है, अपने पैरों पर खड़े होना। असहाय होने का अर्थ होता है, दूसरों के पैरों की आशा थी, वह छूट गई, लेकिन अपने पैरों पर खड़े होने का बल नहीं आया। असहाय होने का अर्थ होता है, अभी सहारे की आकांक्षा थी, वह नहीं मिल रहा है। असहायता नकारात्मक है। अशरणता विधायक है।
इसे ऐसा समझो, जैसा मैं निरंतर कहता हूं। एक आदमी अपने कमरे में अकेला बैठा है, अकेलापन अनुभव कर रहा है अकेलेपन का अर्थ हुआ कि वह चाहता है कोई साथ होता। किसी की याद आ रही है। किसी की मौजूदगी चाहिए। किसी की मौजूदगी नहीं है, अनुपस्थिति खल रही है, तो अकेलापन, लोनलीनेस।
और फिर एक आदमी ध्यान में मग्न अकेला बैठा है, उसको अकेलापन नहीं कह सकते--एकांत, अलोननेस। उसे किसी की याद नहीं आ रही है, वह अपनी ही पुलक से भरा है, अपने ही आनंद में लवलीन डूबा है।
दोनों अकेले हैं बाहर से देखने पर। लेकिन एक पर की याद से भरा है और एक स्वयं की स्मृति में जगा है। दोनों बड़े भिन्न हैं।
ऐसा ही अशरण और असहाय। असहाय का अर्थ है, सहारे की जरूरत है, सहारे की आदत है; और सहारा नहीं मिल रहा है। तो आदमी असहाय मालूम पड़ रहा है। अब डूबा, तब डूबा। क्या करूं, क्या न करूं? कहां जाऊं?
रास्ते में रुक के दम ले लूं, मेरी आदत नहीं

लौटकर वापस चला जाऊं, मेरी फितरत नहीं
और कोई हमनवा मिल जाए यह किस्मत नहीं
ऐ गमे-दिल क्या करूं?
ऐ वहशते-दिल क्या करूं?
दिल में एक शोला भड़क उठा है आखिर क्या करूं? मेरा पैमाना छलक उठा है आखिर क्या करूं?
जख्म सीने में महक उठा है आखिर क्या करूं?
ऐ गमे-दिल क्या करूं, ऐ वहशते-दिल क्या करूं
लौटकर वापिस चला जाऊं मेरी फितरत नहीं
रास्ते में रुक के दम ले लूं मेरी आदत नहीं
और कोई हमनवा मिल जाए यह किस्मत नहीं
लौटकर जा नहीं सकता; जाने का उपाय नहीं। रुक जाऊं, ऐसी आदत नहीं। कोई संगी-साथी मिल जाए ऐसी किस्मत नहीं। ऐ गमे-दिल क्या करूं? ऐ वहशते-दिल क्या करूं?
तो फिर आदमी बड़ा असहाय मालूम पड़ता है। जैसे कोई सागर में डूब रहा है। तिनके का भी सहारा नहीं। नाव तो दूर, तिनका भी नहीं।
तो असहाय अवस्था तो नकारात्मक है। अशरण अवस्था विधायक है। अशरण का अर्थ कि मेरे पास अपने पैर हैं। अशरण का अर्थ हुआ कि तैरूंगा, नाव चाही ही नहीं, तिनके का कोई सवाल ही नहीं।
जो अशरण भाव को उपलब्ध हुआ है, उसे तुम नाव बताओ भी, तो वह कहेगा कि नहीं, क्षमा करें। धन्यवाद! हम तैरकर निकल जाएंगे। क्योंकि कोई बाहर का सहारा क्या लेना! जब तैर सकते हैं तो नाव में क्या बैठना! धन्यवाद! बड़ी कृपा, आपने याद किया। लेकिन हम तैरकर चले जाएंगे।
अशरण का अर्थ है तैरने पर बल।
असहाय का अर्थ हैः खोजते थे नाव, मिलता नहीं तिनका। भ्रम रखने को भी कुछ आसरा नहीं रहा। तो असहाय अवस्था में आदमी रोता है, चीखता-चिल्लाता है, पुकारता है। अक्सर असहाय अवस्था में आदमी प्रार्थना करने लगता है, पूजा करने लगता है। भगवान की याद करने लगता है। यह भगवान केवल भय पर आधारित है। अशरण भावना में आदमी में ध्यान जगता है। और अशरण भावना में आदमी अपने
बल पर इस भांति आश्वस्त हो जाता है, आत्मविश्वास ऐसा सजग हो जाता है, स्वयं पर श्रद्धा ऐसी गहन हो जाती है कि सागर कितना ही बड़ा हो, ये दो हाथ सागर से ज्यादा बड़े मालूम होते हैं। आकाश कितना ही बड़ा हो, ये दो पंख सारे आकाश को पार कर लेंगे, ऐसे भरोसे से भरे होते हैं।
जो व्यक्ति अशरण को उपलब्ध हुआ उसे तुम प्रसन्न पाओगे, नाचता हुआ पाओगे। असहाय को तुम दुखी, परेशान, तलाश करता हुआ पाओगे। फिर कोई सपना मिल जाए, फिर कोई सहारा मिल जाए।
महावीर कहते हैं, असहाय मत बनना, अशरण बनना।
असहाय अवस्था में तो हम हैं। इसीलिए हम कहीं भी सहारे खोजते हैं-- मंदिर में, मस्जिद में, शास्त्र में, पुराण में, कुरान में, गुरु में। कोई मिल जाए जो हमें कह दे, कि तुम घबड़ाओ मत। कहीं ताबीज, गंडा मिल जाए, बांध लें और निश्चिंत हो जाएं।
महावीर कहते हैं, सत्य इतना सस्ता नहीं। खोजना होगा। कीमत चुकानी होगी।
तैरना होगा इस विराट झंझावात से भरे सागर में। लहरें हैं, डूबने का खतरा है। लेकिन उस खतरे और जोखिम से गुजरे बिना कोई परम मंजिल तक पहुंचता नहीं है। तो अशरण।
अब डर यही है कि अशरण का तुम यह अर्थ मत समझ लेना कि किसी से कुछ सीखना
ही नहीं है। तैरना तो सीखना है। वह किसी तैरनेवाले से सीख लो। जिसको तुमने सागर में तैरते देखा हो, उससे सीख लो। फिर तैरकर ही जाना। फिर तैरनेवाले के कंधे का सहारा मत मांगना।
इसलिए महावीर कहते हैं, शिष्य तो बनो, लेकिन शरण को मत गहो। शरणागति नहीं। सीखने के लिए तैयारी रखो, मन को बंद मत करो। सीखते ही, जो जान लिया उसका उपयोग करो। जो जान लिया उसके सहारे चलो। और कोई सहारा मत मांगो। अपने

सहारे जो चलता है, धीरे-धीरे बलशाली होता जाता है। धीरे-धीरे उसके भीतर से भय गिर जाते हैं, असुरक्षा गिर जाती है, शंकाएं गिर जाती हैं। और एक, जिसको गुरजिएफ ने कहा है, आत्मिक केंद्रीकरण, क्रिस्टलाइजेशन उपलब्ध होता है। आत्मश्रद्धा ही अंततः आत्मा को पाने का द्वार बनती है। आत्मश्रद्धा
पर बल देने के लिए महावीर कहते हैं, अशरण भावना। लेकिन जिन्होंने आत्मा को पा लिया हो उनसे सीखने को बहुत कुछ है। सच तो यह है, जो उनकी शरण गह लेते हैं उनको सीखने को कुछ भी नहीं है। क्योंकि वे कहते हैं, सीखकर क्या करेंगे? अब आप तो हैं।
मैंने सुना है एक आदमी अंधा था। उसके आठ लड़के थे, आठ बहुएं थीं। चिकित्सकों ने कहा कि तुम्हारी आंख ठीक हो सकती है, आपरेशन करना होगा। उसने कहा, क्या करेंगे? फायदा क्या है? मेरी पत्नी के पास दो आंखें हैं, मेरे आठ लड़कों के पास सोलह आंखें हैं, मेरी आठ बहुओं के पास सोलह आंखें हैं। ऐसी चौतीस आंखें मुझे उपलब्ध हैं। दो न हुईं मेरी, क्या फर्क पड़ता है?
लेकिन संयोग की बात! जिस दिन उसने यह इंकार किया उसी रात घर में आग लग गई। वे चौतीस आंखें भागकर बाहर निकल गईं। अंधा चिल्लाता रहा, टटोलता रहा रास्ता। लपटों में जल-भुनकर गिरकर मर गया। मरते वक्त एक ही भाव उसके मन में था, अपनी आंख अगर आज होती... ! जो बाहर भागकर निकल गए--पत्नी, बेटे, बहुएं, उनको याद आयी उसकी, लेकिन बाहर जाकर याद आयी। जब अपने प्राण संकट में पड़े हों तो किसको किसकी याद आती है?
इसलिए महावीर कहते हैं, अपनी आंख। आंखवालों से सीख लेना, मगर अपनी आंख
के अतिरिक्त किसी और की आंख को अपना सहारा मत बनाना।
अपनी आंख जब तक न मिल जाए, सीखना, साधना; लेकिन चेष्टा यही रखना कि अपनी आंख मिल जाए। अपनी आंख से ही कोई सत्य का दर्शन कर पाता है।
सत्य के साक्षात के लिए स्वयं की आंख के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग दो
इक्कीसवां प्रवचन

छह पथिक और छह लेश्याएं

कीण्हा णीला काऊ, तेऊ पम्मा य सुक्कलेस्सा य।
लेस्साणं णिद्देसा, छच्चेव हवंति णियमेण।। 134।।
कीण्हा णीला काऊ, तिण्णि वि एयाओ अहम्मलेसाओ।
एयाहि तिहि वि जीवो, दुग्गइं उववज्जई बहुसो।। 135।।
तेऊ पम्हा सुक्का, तिण्णि वि एयाओ धम्मलेसाओ।
एयाहि तिहि वि जीवो, सुग्गइं उववज्जई बहुसो।। 136।।
पहिया जे छ प्पुरिसा, परिभट्टारण्णमज्झदेसम्हि।
फलभरियरुक्खमेगं, पेक्खित्ता ते विचिंतंति।।
णिम्मूलखंधसाहु—वसाहं छित्तुं चिणित्तु पडिदाइं।
खाउं फलाइं इदि, जं मणेण वयणं हवे कम्मं।। 137।।

आज के सूत्रः
"लेश्याएं छह प्रकार की हैंः कृष्णलेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या, तेजो लेश्या (पीत लेश्या), पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या।"
"कृष्ण, नील और कापोत, ये तीनों अधर्म या अशुभ लेश्याएं हैं। इनके कारण जीव विभिन्न दुर्गतियों में उत्पन्न होता है।"
"पीत (तेज), पद्म और शुक्ल; ये तीनों धर्म या शुभ लेश्याएं हैं। इनके कारण जीव विविध सुगतियों में उत्पन्न होता है।"
"छह पथिक थे। जंगल के बीच जाने पर वे भटक गए। भूख सताने लगी। कुछ देर बाद उन्हें फलों से लदा एक वृक्ष दिखाई दिया। उनकी फल खाने की इच्छा हुई। वे मन ही मन विचार करने लगे। एक ने सोचा कि पेड़ को जड़मूल से काटकर उसके फल खाए जाएं। दूसरे ने सोचा, केवल स्कंध ही काटा जाए। तीसरे ने विचार किया कि शाखा को तोड़ना ठीक रहेगा। चौथा सोचने लगा कि उपशाखा ही तोड़ी जाए। पांचवां चाहता था कि फल ही तोड़े जाएं। छठे ने सोचा कि वृक्ष से टपककर फल जब नीचे गिरें तभी चुनकर खाए जाएं।"
"इन छह पथिकों के विचार, वाणी तथा कर्म, क्रमशः छहों लेश्याओं के उदाहरण हैं।"
लेश्या महावीर की विचार-पद्धति का पारिभाषिक शब्द है। उसका अर्थ होता हैः मन, वचन, काया की काषाययुक्त वृत्तियां। मनुष्य की आत्मा बहुत-से पर्दों में छिपी है। ये छह लेश्याएं छह पर्दे हैं।
पहला पर्दा हैः कृष्ण लेश्या। बड़ा अंधकार, काला, अमावस की रात जैसा। जिस पर कृष्ण लेश्या पड़ी है, उसे अपनी आत्मा का कोई पता नहीं चलता। इतने अंधेरे में दबे हैं प्राण, कि प्राण हो भी सकते हैं, इसका भी भरोसा नहीं आता। स्वयं ही पता नहीं चलती आत्मा तो दूसरे को तो पता कैसे चलेगी?
हमारा युग कृष्ण लेश्या का युग है। लोग अमावस में जी रहे हैं। पूर्णिमा खो गई है। पूर्णिमा तो दूर, दूज का चांद भी कहीं दिखाई नहीं पड़ता। इसीलिए आत्मा पर भरोसा नहीं आता।
भरोसा आए भी कैसे? पर्दा इतना काला है कि भीतर प्रकाश का स्रोत छिपा है, इसकी प्रतीति कैसे हो? जब तुम दूसरे को भी देखते हो, तब भी देह ही दिखाई पड़ती है। स्वयं को देखते हो, तब भी देह ही दिखाई पड़ती है।
दर्पण के सामने खड़े होकर तुम अपने को देखते हो, वह तुम्हारा होना नहीं है; तुम्हारी देह की छाया है। न तुम्हें अपना पता चलता है, न दूसरों की आत्मा का कोई बोध होता है।
कृष्ण लेश्या उठे, तो ही आत्मदर्शन हो सकते हैं।
ऐसी महावीर ने छह पर्दों की बात कही है--कृष्ण लेश्या, फिर नील लेश्या, फिर कापोत लेश्या... क्रमशः अंधेरा कम होता जाता है।
कृष्ण के बाद नील। अंधेरा अब भी है, लेकिन नीलिमा जैसा है। फिर कापोत-- कबूतर जैसा है। आकाश के रंग जैसा है।

जैसे-जैसे पर्दे उठते हैं, वैसे-वैसे भीतर की झलक स्पष्ट होने लगती है। लेकिन एक बात ख्याल रखना। महावीर कहते हैं, शुभ्र लेश्या भी पर्दा है।
वह अंतिम लेश्या है। जब तक रंग हैं, तब तक पर्दा है। जब तक रंग हैं, तब तक राग है।
राग शब्द का अर्थ रंग होता है।
विराग शब्द का अर्थ, रंग के बाहर हो जाना होता है।
वीतराग शब्द का अर्थ होता है, रंग का अतिक्रमण कर जाना।
अब तुम पर कोई रंग न रहा। क्योंकि जब तक रंग है, तब तक स्वभाव दबा रहेगा। तब तुम्हारे ऊपर कुछ और पड़ा है। चाहे सफेद ही क्यों न हो, शुभ्र ही क्यों न हो।
हम तो काली अंधेरी रात में दबे हैं। महावीर पूर्णिमा को भी कहते हैं,
कि वह भी पूर्ण अनुभूति नहीं है। अमावस तो छोड़नी ही है, पूर्णिमा भी छोड़ देनी है। कृष्ण लेश्या तो जाए ही, शुक्ल लेश्या भी जाए। कृष्ण पक्ष तो विदा हो ही, शुक्ल पक्ष भी विदा हो। तुम पर कोई पर्दा ही न रह जाए। तुम बेपर्दा हो जाओ।
इसलिए महावीर नग्न रहे। वह नग्न सूचक है। ऐसी ही आत्मा भी भीतर नग्न हो, तभी उसका अहसास शुरू होता है। और जब अपनी आत्मा का पता चले तो औरों की आत्मा का पता चलता है। जितना गहरा हम अपने भीतर देखते हैं, उतना ही गहरा हम दूसरे के भीतर देखते हैं।
हमें तो अभी मनुष्यों में भी आत्मा है, इसका भरोसा नहीं होता। ज्यादा
से ज्यादा अनुमान... होनी चाहिए। है, ऐसी कोई प्रामाणिकता नहीं मालूम होती। अंदाज करते हैं--होगी। तर्कयुक्त मालूम पड़ती है कि होनी चाहिए। लेकिन वस्तुतः है, ऐसा कोई अस्तित्वगत हमारे पास प्रमाण नहीं है। अपने भीतर ही प्रमाण नहीं मिलता, दूसरे के भीतर कैसे मिले?
महावीर कहते हैं, जैसे-जैसे पर्दे उठते हैं, वैसे-वैसे तुम्हें दूसरे में आत्मा दिखाई पड़नी शुरू होती है। ऐसी घड़ी आती है, जब पत्थर में भी आत्मा दिखाई पड़नी शुरू होती है।
तेजो लेश्या से क्रांतिकारी परिवर्तन शुरू होता है। पहली तीन लेश्याएं अधर्म की, बाद की तीन लेश्याएं धर्म की--तेजो, पद्म और शुक्ल। तेजो लेश्या के साथ ही तुम्हारे भीतर पहली झलकें आनी शुरू होती हैं।
ये रंगों के आधार पर पर्दों के नाम रखे महावीर ने। यह जीवन का इंद्रधनुष है। है तो रंग एक ही। वैज्ञानिक उसे कहते हैं श्वेत। बाकी सब रंग श्वेत रंग के ही खंड हैं।
इसलिए प्रिज्म के कांच के टुकड़े से जब सूरज की किरण गुजरती है तो सात रंगों में बंट जाती है। या तुमने कभी स्कूल में बच्चों के समझाने के लिए देखा हो तो एक चाक पर सात रंग लगा देते हैं। चाक को जोर से घुमाते हैं तो सातों रंग खो जाते हैं, सफेद रंग रह जाता है। सफेद रंग सातों रंगों का जोड़ है। या सातों रंग सफेद रंग से ही जन्मते हैं।
इंद्रधनुष पैदा होता है हवा में लटके हुए जलकणों के कारण। जलकण लटका
है हवा में, सूरज की किरण निकलती है, टूट जाती है सात हिस्सों में। सूरज की किरण सफेद है।
लेकिन महावीर कहते हैं, सफेद के भी पार जाना है। अधर्म के तो पार जाना
ही है, धर्म के भी पार जाना है। अधर्म तो बांध ही लेता है, धर्म भी बांध लेता है। धर्म का उपयोग करो अधर्म से मुक्त होने के लिए। कांटे को कांटे से निकाल लो, फिर दोनों कांटों को फेंक देना। फिर दूसरे कांटे को भी सम्हालकर रखने की कोई जरूरत नहीं है। बीमारी है औषधि ले लो। बीमारी समाप्त हो, औषधि को भी कचरे-घर में डाल आना। फिर बीमारी के बाद औषधि को छाती से लगाए मत घूमना। वह केवल इलाज थी। उसका उपयोग संक्रमण के लिए था। जैसे-जैसे शुभ लेश्याओं का जन्म होता है, जैसे-जैसे आदमी श्वेत की तरफ बढ़ता है, वैसे-वैसे दृष्टि की गहराई बढ़ती है। वैसे-वैसे दूसरों में भी परमात्मा की झलक मिलती है।

श्वेत लेश्या की आखिरी घड़ी में जब पूर्णिमा का प्रकाश जैसा भीतर हो जाता है तो पत्थर में भी परमात्मा दिखाई पड़ता है। इसी अनुभव से महावीर की अहिंसा का जन्म हुआ।
महावीर जो कहानी कहे हैं... महावीर ने बहुत कम बोध कथाओं का उपयोग किया है। उन बहुत कम बोध कथाओं में एक यह हैः
"छह पथिक थे। जंगल के बीच जाने पर भटक गए। भूख लगी। कुछ देर बाद उन्हें फलों से लदा एक वृक्ष दिखाई दिया। फल खाने की इच्छा हुई। मन ही मन विचार करने लगे। पहले ने सोचा, पेड़ को जड़मूल से काटकर इसके फल खाए जाएं।"
महावीर कहते हैं, यह कृष्ण लेश्या में दबा हुआ आदमी है। यह अपने छोटे-
से सुख के लिए, क्षणभंगुर सुख के लिए... भूख थोड़ी देर के लिए मिटेगी, फिर लौट आएगी। भूख सदा के लिए तो मिटती नहीं। लेकिन यह पूरे वृक्ष को मिटा देने को आतुर है। इसे वृक्ष की भी आत्मा है, वृक्ष को भी भूख लगती है, प्यास लगती है, वृक्ष को भी सुख और दुख होता है, इसकी कोई प्रतीति नहीं है।
यह आदमी अंधा है, जिसे वृक्ष में कुछ भी नहीं दिखाई पड़ रहा है। सिर्फ अपनी भूख को तृप्त करने का उपाय दिखाई पड़ रहा है। और अपनी भूख की तृप्ति के लिए, जो फिर लौट आनेवाली है, कोई शाश्वत तृप्ति हो जानेवाली नहीं है, वह इस वृक्ष को जड़मूल से काट देने के लिए उत्सुक हो गया। यह आदमी बिल्कुल अंधा है। ऐसे आदमी तुम्हें सब तरफ मिलेंगे। ऐसा आदमी तुम्हें स्वयं के भीतर भी मिलेगा।
कितनी बार नहीं तुमने अपने छोटे-से सुख के लिए दूसरे को विनष्ट तक कर देने की योजना नहीं बना ली। कितनी बार, जो मिलनेवाला था वह ना-कुछ था, लेकिन तुमने दूसरे की हत्या कर दी; कम से कम हत्या का विचार किया। जमीन के लिए, दो इंच जमीन के लिए; धन के लिए, पद के लिए, तुमने प्रतिस्पर्धा की। दूसरे की गर्दन को काट देना चाहा। इसकी बिल्कुल भी चिंता न की, कि जो मिलेगा वह ना-कुछ है। और जो तुम विनष्ट कर रहे हो, उसे बनाना तुम्हारे हाथ में नहीं। तुम एक जीवन की समाप्ति कर रहे हो। एक परम घटना के विनाश का कारण बन रहे हो। एक दीया बुझा रहे हो। एक तुम जैसा ही प्राणवंत, तुम जैसा ही परमात्मा को सम्हाले हुए कोई चल रहा है, तुम उस अवसर को विनष्ट कर रहे हो। और तुम्हें कुछ भी मिलनेवाला नहीं। तुम्हें जो मिलेगा, वह थोड़ी-सी क्षणभंगुर की तृप्ति है। घड़ीभर बाद फिर भूख लग आएगी।
कृष्ण लेश्या से भरा आदमी महत हिंसा से भरा होता है। जब भी तुम्हारे
मन में अपने सुख के लिए दूसरे को दुख देने तक की तैयारी हो जाए तो तत्क्षण समझ लेना, कृष्ण लेश्या में दबे हो। पर्दा पड़ा। इस पर्दे को अगर तुम बार-बार भोजन दिए जाओगे तो यह मजबूत होता चला जाएगा।

जागना। जब ऐसा मौका आए कि अपने छोटे सुख के लिए दूसरे को दुख देने का ख्याल उठे, तब सम्हलना। तब अपने हाथ को खींच लेना। क्योंकि असली सवाल यह नहीं है कि तुमने दूसरे को दुख दिया या नहीं दिया; असली सवाल यह है कि दूसरे को दुख देने में तुमने अपनी कृष्ण लेश्या पर पानी सींचा। उसकी जड़ों को मजबूत किया। उसी में तुम्हारा आत्मतत्व खो गया है। उसी में खो गया जीवन का अभिप्राय। उसी से पता नहीं चलता कि जीवन में कुछ अर्थ भी है? पता नहीं चलता कौन हूं मैं? कहां जा रहा हूं? क्यों जा रहा हूं?
तुम अंधे हो क्योंकि कृष्ण लेश्या की तुम अब तक सम्हाल करते रहे। उसे खाद दिया, पानी दिया। उस पर्दे में कभी छेद भी हुआ तो जल्दी से तुमने रफू किया, सुधार लिया। तुम जब-जब दूसरे पर नाराज होते हो, तब-तब तुम ख्याल करना, किसी अर्थों में वह तुम्हारे कृष्ण लेश्या के पर्दे पर चोट कर रहा है। तुम्हारे अहंकार को चोट लगती है, तुम नाराज हो जाते हो।
कल मैं एक कहानी पढ़ रहा था। अमरीका में टेक्सास प्रांत के लोग बड़े अभद्र, हिंसक समझे जाते हैं। एक सिनेमागृह में एक टेक्सास प्रांत का आदमी अपनी बंदूक सम्हाले इंटरवल के बाद वापस लौटा। बाहर गया होगा। अपनी सीट पर उसने किसी आदमी को बैठे देखा। उसने पूछा--टेक्सास के आदमी ने--कि महानुभाव! आपको पता है, यह सीट मेरी है। वह जो आदमी बैठा था, मजाक में ही कहा, थी आपकी। अब तो मैं बैठा हूं। सीट किसी की होती है?

बस, उसने बंदूक तानी और गोली मार दी। भीड़ इकट्ठी हो गई और उसने लोगों
से कहा कि इसी तरह के लोगों के कारण टेक्सास के लोग बदनाम हैं।
पर बहुत बार तुम्हारे मन में भी--चाहे तुमने गोली न मारी हो, यह कहानी अतिशयोक्तिपूर्ण मालूम होती है, लेकिन बहुत बार गोली मार देने का मन तो हो ही गया है। बहुत छोटी बातों पर--कि कोई तुम्हारी सीट पर बैठ गया है--गोली मार देने का मन तो हो ही गया है।
महावीर कहते हैं, मन भी हो गया तो बात हो गई।
इस कहानी में वे यह नहीं कह रहे हैं कि पहले आदमी ने वृक्ष तोड़ा; सिर्फ सोचा।
"... भूख लगी, फल खाने की इच्छा हुई, वे मन ही मन विचार करने लगे।"
ऐसा कुछ किया नहीं है अभी; ऐसी भाव-तरंग आयी, ऐसा विचार आया। लेकिन महावीर कहते हैं, विचार आ गया तो बात हो गई। जहां तक तुम्हारा संबंध है, हो गई। जहां तक वृक्ष का संबंध है, अभी नहीं हुई; लेकिन तुम्हारा संबंध है, वहां तक तो हो गई।
जब तुम ने सोचा किसी को मार डालें, ऐसी मन में एक कल्पना भी उठ गई तो बात हो गई। दूसरा अभी मारा नहीं गया। अपराध अभी नहीं हुआ, पाप हो गया।
पाप और अपराध में यही फर्क है। पाप का अर्थ है, तुम्हें जो करना था, वह भीतर तुमने कर लिया। अभी दूसरे तक उसके परिणाम नहीं पहुंचे। परिणाम पहुंच जाएं तो अपराध भी हो जाएगा। अदालत अपराध को पकड़ती है, पाप को नहीं पकड़ सकती। पाप तो मन के भीतर है। अपराध तो तब है, जब मन का विष बाहर पहुंच गया और उसके परिणाम शुरू हो गए। और बाह्य जगत में तरंगें उठने लगीं। तब पुलिस पकड़ सकती है। तब अदालत पकड़ सकती है।
कानून तुम्हें तब पकड़ता है, जब पाप अपराध बन जाता है।
लेकिन महावीर कहते हैं, धर्म के लिए उतनी देर तक रुकना आवश्यक नहीं है। जीवन की परम अदालत में तो हो ही गई बात। तुमने सोचा कि हो गई। नहीं किया, क्योंकि करने में बाधाएं हैं, कठिनाइयां हैं, सीमाएं हैं। करना महंगा सौदा हो सकता है। सोच-विचार करके तुम रुक गए। होशियार आदमी हो, चालाक आदमी हो, मुस्कुराकर गुजर गए, लेकिन भीतर सोच लिया गोली मार दूं। पर जहां तक धर्म का संबंध है, बात हो गई; क्योंकि तुम्हारी कृष्ण लेश्या मजबूत हो गई।
कृष्ण लेश्या को मजबूत करना पाप है।
कृष्ण लेश्या को क्षीण करना पुण्य है।
शुक्ल लेश्या को मजबूत करना पुण्य है। और शुक्ल लेश्या के भी पार उठ जाना, पाप और पुण्य दोनों के पार चले जाना मुक्ति है, निर्वाण है।
जब तुम्हारे मन में पाप का विचार उठता है, तब तुम दूसरे का नुकसान करना चाहते हो--अपने छोटे-मोटे लाभ के लिए। वह भी पक्का नहीं है कि होगा। लेकिन यह संभव कैसे हो पाता है? दुनिया में इतने युद्ध, इतनी हिंसा, इतनी हत्याएं, इतनी आत्महत्याएं, छोटी-छोटी बात पर कलह, यह संभव कैसे हो पाता है? क्या लोग बिल्कुल अंधे हैं? क्या लोगों को बिल्कुल पता नहीं चलता कि वे क्या कर रहे हैं? क्या लोगों को मूल्यों का कोई भी बोध नहीं है?
बोध हो नहीं सकता इस काले पर्दे के कारण, जो आंख पर पड़ा है। महावीर कहते हैं, तुम अंधे नहीं हो, सिर्फ आंख पर पर्दा है। बुर्का ओढ़े हुए हो-- काला बुर्का; कृष्ण लेश्या का।
हमारे छोटे-छोटे कृत्य में हमारी लेश्या प्रगट होती है। तुम उसे छिपा नहीं सकते। और अब तो इसके लिए वैज्ञानिक आधार भी मिल गए हैं।
सोवियत रूस में किरलियान फोटोग्राफी के विकास ने बड़ी हैरानी की बात खोज निकाली है कि जो तुम्हारे भीतर चेतना की दशा होती है, ठीक वैसा आभामंडल तुम्हारे मस्तिष्क के आसपास होता है। और किरलियान की खोज महावीर से बड़ी मेल खाती है। जिस व्यक्ति के जीवन में हिंसा के भाव सरलता से उठते हैं, उसके चेहरे के पास एक काला वर्तुल... ।
संतों के चित्रों में तुमने प्रभामंडल बना देखा है, ऑरा बना देखा है।
वह एकदम कवि की कल्पना नहीं है--अब तो नहीं है। किरलियान की खोज के बाद तो वह कवि की कल्पना बड़ा सत्य साबित हुई। किरलियान की खोज ने तो यह सिद्ध

किया कि जो कैमरा हजारों साल बाद पकड़ पाया, वह कवि की सूक्ष्म मनीषा ने बहुत पहले पकड़ लिया था। ऋषियों की मनीषा ने बहुत पहले देख लिया था।
जब तुम्हारी दृष्टि साफ होने लगती है तो जब तुम्हारे पास कोई आता है,
तो तत्क्षण तुम्हें उसके चेहरे के आसपास विशिष्ट रंगों के झलकाव दिखाई पड़ते हैं। अगर हिंसक व्यक्ति है, लोभी व्यक्ति है, क्रोधी व्यक्ति है, मद-मत्सर, अहंकार से भरा व्यक्ति है तो उसके चेहरे के आसपास एक काला वर्तुल होता है।
अब तो इसके फोटोग्राफ भी लिए जा सकते हैं। क्योंकि किरलियान ने जो सूक्ष्मतम कैमरे विकसित किए हैं, उन्होंने चमत्कार कर दिया। और ऐसा वर्तुल लोभी, हिंसक, अहंकारी, क्रोधी के आसपास होता है, और ठीक ऐसा ही वर्तुल जब आदमी मरने के करीब होता है, तब भी होता है।
जो आदमी मरने के करीब है, किरलियान कहता है, छह महीने पहले अब घोषणा की
जा सकती है कि यह आदमी मर जाएगा। क्योंकि छह महीने पहले उसके चेहरे के आसपास मृत्यु घटना शुरू हो जाती है। जो छह महीने बाद उसके हृदय में घटेगी, वह उसके आभामंडल में पहले घट जाती है।
इन दोनों का जोड़ ख्याल में लेने जैसा है। इसका अर्थ हुआ, जो काला मंडल
है हिंसा का, अहंकार का, क्रोध का, मत्सर का, मद का, वही मृत्यु का मंडल भी है। इसका अर्थ हुआ, जो काले मंडल के साथ जी रहा है, वह जी ही नहीं रहा। वह किसी अर्थ में मरा हुआ है। उसके जीवन का उन्मेष पूरा नहीं होगा। उसके जीवन की लहर, तरंग, पूरी नहीं होगी--दबी-दबी, कटी-कटी, टूटी-टूटी। जैसे जीते भी वह मुर्दे की तरह ही ढोता रहा अपनी लाश को। कभी जीया नहीं नाचकर। कभी उसके जीवन में वसंत नहीं आया। कभी नई कोंपलें नहीं फूटीं। पुराना ही होता रहा। जन्म के बाद बस मरता ही रहा।
काला पर्दा पड़ा हो आदमी के चित्त पर तो जीवन संभव भी नहीं है। जीवन की किरण हृदय तक पहुंच पाए, इसके लिए खुले द्वार चाहिए। और जीवन का उल्लास तुम्हें भी उल्लसित कर सके और जीवन का नृत्य तुम्हें भी छू पाए इसके लिए बीच में कोई भी पर्दा नहीं चाहिए। बेपर्दा होना है।
तुम जब बिल्कुल नग्न, खुले आकाश को अपने भीतर निमंत्रण देते हो, तभी परमात्मा भी तुम्हारे भीतर आता है।
इसका होश रखो। तुम दूसरे की हानि नहीं करते हो, हानि तो अंततः तुम्हारी है। तुम अगर किसी को मार भी डालो तो उसका तो कुछ भी नहीं बिगड़ता है। क्योंकि यहां जीवन का तो कोई अंत नहीं है। ज्यादा से ज्यादा पुराना शरीर चला गया, नया मिल जाएगा। जीवन की यात्रा तो अनंत है। तुम मारकर भी किसी की कोई हानि नहीं कर पाते हो। लेकिन बिना मारे भी अगर मारने का विचार उठा तो तुमने अपनी बड़ी हानि कर ली।
महावीर कहते हैं, हर हत्या आत्यंतिक अर्थों में आत्महत्या है।
दूसरे को कौन कब मार पाया? अपने को ही आदमी मारता रहता है। मारते रहने
का अर्थ हुआः जी नहीं पता। जीने के मार्ग में इतनी बाधाएं खड़ी कर लेता है... और हम सबको इसका पता भी चलता है। यह कोई दर्शनशास्त्र नहीं है, जो महावीर कह रहे हैं। ये जीवन के सीधे-सीधे गणित हैं। यह तुम्हें भी पता चलता है कि तुम जितने क्रोधी हो, उतने कम जी पाते हो। क्रोध जीने दे तब न! तुम जितने हिंसक हो उतना ही जीना मुश्किल हो जाता है। हिंसा के साथ जीवन की प्रफुल्लता घटे कैसे? तुम जितने ज्यादा लोभी हो, उतने ही सिकुड़ते जाते हो; फैल नहीं पाते। फैलाव के लिए थोड़ी दान की क्षमता चाहिए। फैलाव के लिए देने की हिम्मत चाहिए, बांटने का साहस चाहिए। तुम कृपण की भांति इकट्ठा करते चले जाते हो। तिजोड़ी तुम्हारी भरती चली जाती है, तुम तो खाली के खाली रह जाते हो।
आता है इक रोज मधुवन में जब वसंत
तृण-तृण हंस उठता, कली-कली खिल जाती है
कोयल के स्वर में भर जाती है नई कूक
कोंपल पेड़ों पर पायल नई बजाती है
लेकिन कृष्ण लेश्या में दबे हुए आदमी के जीवन में ऐसा कभी नहीं होता। वसंत आता ही नहीं। कोयल कूकती ही नहीं। कोंपलें पायल नहीं बजातीं। ऐसा

आदमी नाममात्र को जीता है--मिनिमम। श्वास लेता है कहना चाहिए, जीता है कहना ठीक नहीं। गुजार देता है कहना चाहिए।
अगर तुम नाचे नहीं, गाए नहीं, गुनगुनाए नहीं, अगर आनंद का उत्सव तुम्हारे ऊपर नहीं बरसा तो कहीं चूक हो रही है। कृष्ण लेश्या को पहचानना। जिन अंतर्शत्रुओं की सारे शास्त्रों में चर्चा है, वे सभी कृष्ण लेश्या को मजबूत करते हैं।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक टैक्सी में बैठा हुआ पहाड़ से नीचे उतर रहा था। ढलान से उतरते हुए अचानक टैक्सी का ब्रेक खराब हो गया और गाड़ी अत्यंत वेग से दौड़ने लगी। नियंत्रण के बाहर हो गई गाड़ी।
ड्राइवर घबड़ाया और उसने पूछा कि बड़े मियां, गाड़ी का ब्रेक फेल हो गया।
अब मैं क्या करूं? मुल्ला ने कहा, सबसे पहले मीटर बंद करो। फिर जो चाहे करना।
एक आदमी है, जिसका चित्त सदा लोभ में लगा हुआ है। कहते हैं मुल्ला को
एक दफा डाकुओं ने पकड़ लिया। छाती पर बंदूक लगा दी और कहा कि दे दो, जो भी तुम्हारे पास है। अगर नहीं दिया तो मरने के लिए तैयार हो जाओ। मुल्ला ने कहा, जरा सोचने भी तो दो। देर लगती देखकर डाकू बोले, जल्दी करो। सोचना क्या है? या मरने को तैयार हो जाओ, या तुम्हारे पास है जो, दे दो। मुल्ला ने कहा, तो फिर मार ही डालो क्योंकि जो मैंने इकट्ठा किया है वह बुढ़ापे के लिए इकट्ठा किया है। तुम मार ही डालो। इस धन के बिना मैं जी ना सकूंगा। इस धन के बिना मरना बेहतर है।
ऐसी अतिशयोक्ति तो कम घटती है। तुम सोचोगे, अगर तुम्हारी छाती पर कोई बंदूक लगा दे तो तुम तो ऐसा न करोगे। तुम कहोगे कि ले जा, जो ले जाना है। मुझे छोड़ दे। लेकिन छोटी-छोटी मात्रा में रोज तुम यही कर रहे हो, जो मुल्ला ने इकट्ठा किया है। जब भी धन और जीवन में चुनाव होता है, तुम धन चुनते हो, जीवन नहीं चुनते। इसलिए मुल्ला की कहानी को अतिशयोक्ति मत समझना। अगर दस रुपये बचते हों, थोड़ा जीवन खोता हो तो तुम दस रुपये बचाते हो। शायद भीतर एक हिसाब है कि जीवन तो मुफ्त में मिला है। कुछ खर्च तो करना पड़ा नहीं है। धन तो बड़ी मुश्किल से मिलता है। बड़े श्रम से मिलता है।
अपने भीतर चिंतन की इन प्रक्रियाओं को पकड़ना। इन्हीं के ताने-बाने से कृष्ण लेश्या बनती है।
मुल्ला का बेटा उससे पूछ रहा था कि पिताजी, मैं दुविधा में हूं। दांतों का डाक्टर बनूं या कानों का? मुल्ला ने कहा, इसमें दुविधा की बात क्या है? दांतों के डाक्टर बनो। क्योंकि व्यक्ति के कान तो केवल दो होते हैं, दांत बत्तीस होते हैं।
अगर भीतर लोभ हो तो हर तरफ लोभ छाया डालेगा। तुम्हारे सभी निर्णय, तुम्हारे सभी वक्तव्य, तुम्हारा उठना-बैठना, सब लोभ से परिचालित होगा। तुमने कभी देखा कि चौबीस घंटे में तुम कुछ एकाध कृत्य भी करते हो, जो लोभ से मुक्त हो? लोग तो ध्यान भी करते हैं, तो वे पहले पूछते हैं, मिलेगा क्या? प्रार्थना भी करते हैं तो पूछते हैं, लाभ क्या होगा? परमात्मा के मंदिर में भी जाते हैं तो वे दुकान में ही जाते हैं--लाभ! तुम्हारे जीवन में कुछ ऐसा है, जो उपयोगिताशून्य हो? जिसकी कोई उपयोगिता न हो, लेकिन मौज से तुम करते हो? जिसका मूल्य आंतरिक हो?
कोयल गुनगुनाती, या पक्षी वृक्षों में टी-वी-टुट-टुट करते रहते, या वृक्षों में फूल खिलते, या आकाश में तारे हैं, या पहाड़ों से झरने फूटते हैं--कहां प्रयोजन है? कहां उपयोगिता है? तुम किसी झरने से पूछो कि क्या लाभ है, तू बहता ही रहता है? फायदा क्या है नासमझ! इसमें सार क्या है?
यह पूरी प्रकृति निस्सार है मनुष्य के अर्थों में। क्योंकि इसमें से कहीं रुपये तो निकलते नहीं। आदमी तो उतना ही करता है, जिसका उपयोग हो, युटीलिटी हो। लेकिन ध्यान रखना, अगर तुम उतना ही करते हो जिसका उपयोग है तो तुम मशीन हो गए, आदमी न रहे। तुम मुर्दा हो गए। तुम्हारी उपयोगिता हो गई, लेकिन जीवन का कोई गहन आनंद न रहा।
सभी आनंद उपयोगिता मुक्त हैं। और जब तुम उपयोगिता मुक्त होओगे, तभी तुम आनंद के जगत में प्रवेश करोगे। उल्लास का कोई मूल्य थोड़े ही है!

उल्लास अपने आप में मूल्यवान है। उल्लास किसी और चीज का साधन थोड़े ही है; अपने आप में साध्य है। जीवन स्वयं साध्य है। इससे कुछ और पाना नहीं है। जिसने जीवन से कुछ और पाने की कोशिश की, उसकी कृष्ण लेश्या कभी कटेगी नहीं।
तो मैं तुमसे यह कहता हूं कि तुम जैन मंदिरों में बैठे जैन मुनि हैं, उनको भी गौर से देखना, तुम कृष्ण लेश्या से भरे पाओगे। उन्होंने संसार छोड़ा है लोभ के कारण; लोभ से मुक्त होकर नहीं। जैन मुनि समझाते हैं अपने श्रावकों को कि संसार में क्या रखा है? अरे स्वर्ग खोजो। धन में क्या रखा है? पुण्य खोजो। यह धन तो कल खो जाएगा, पुण्य कभी न खोएगा।
इस तर्क का अर्थ समझते हो? इसका अर्थ हुआ कि मुनि ऐसा धन खोज रहे हैं,
जो कभी नहीं खोता। और तुम ऐसा धन खोज रहे हो, जो खो जाता है। तो मुनि तुमसे ज्यादा लोभी हैं। तुम तो क्षणभंगुर में भी प्रसन्न हो, मुनि शाश्वत धन खोज रहे हैं। लेकिन दुकानदारी न गई। मन का गणित न गया। अगर उपवास भी कर रहे हैं, तप भी कर रहे हैं, ध्यान भी कर रहे हैं तो उपयोगिता लगी है। ध्यान से आत्मा मिलेगी, कि ध्यान से परमात्मा मिलेगा।
मैं तुमसे कहता हूं, ध्यान से सिर्फ ध्यान मिलता है। प्रेम से सिर्फ प्रेम मिलता है। और ध्यान जब पूरी तरह बरसता है तो उसी वर्षा की एक व्याख्या परमात्मा है। परमात्मा कुछ और नहीं है, जो ध्यान से मिलता है। उपयोगिता-शून्य, बाजार के बाहर, लोभ-लाभ की वृत्ति के बाहर, मद-मत्सर के बाहर, तुम जब किसी क्षण में भी सहज आनंद से जीते हो, उसी क्षण में जो घटता है, वही परमात्मा है। कहो मोक्ष, कहो निर्वाण, कहो समाधि, कैवल्य। जो मर्जी नाम दो, क्योंकि उसका कोई नाम नहीं। लेकिन तुम्हें अपने प्रतिपल में विचार करना होगा, देखना होगा, कहां-कहां कृष्ण लेश्या को तुम मजबूत करते हो।
लेश्याएं छह प्रकार की हैं। कृष्ण, नील, कापोत, ये तीन अधर्म लेश्याएं महावीर ने कहीं।
पतंजलि के हिसाब में... पतंजलि ने मनुष्य के सात चक्रों का वर्णन किया। ये तीन लेश्याएं महावीर की और पतंजलि के तीन निम्न चक्र एक ही अर्थ रखते हैं। ये एक ही तथ्य को प्रगट करने की दो व्यवस्थाएं हैं।
जिसको पतंजलि मूलाधार कहता है--जो व्यक्ति मूलाधार में जीता है, वह कृष्ण लेश्या में जीता है। मूलाधार में जीनेवाला व्यक्ति अंधकार में जीता है, अमावस में जीता है।
छठवां चक्र है, आज्ञाचक्र। जो व्यक्ति आज्ञाचक्र में पहुंच जाता है,
वह ठीक वहीं पहुंच गया, जो महावीर की परिभाषा में शुक्ल लेश्या में पहुंचता है। तृतीय नेत्र खुल गया। पूर्णिमा हुई। पूरा चांद निकला।
और जिसको पतंजलि सहस्रार कहता है--सहस्रदल कमल, सातवां चक्र, वही महावीर के लिए वीतराग स्थिति है। रंग-राग सब गया। सब लेश्याएं गईं। कृष्ण लेश्या तो गई ही, श्वेत लेश्या भी गई। काले पर्दे तो उठ ही गए, सफेद पर्दे भी उठ गए। पर्दे ही न रहे।
परमात्मा बेपर्दा हुआ, नग्न हुआ, दिगंबर हुआ। आकाश के अतिरिक्त और कोई ओढ़नी न रही, ऐसा निर्दोष हुआ।
तो जो छह चक्र हैं पतंजलि के, वे ही छह लेश्याएं हैं महावीर की। पहले तीन चक्र सांसारिक हैं। अधिकतर लोग पहले तीन चक्रों में ही जीते और मर जाते हैं। चौथा, पांचवां और छठवां चक्र धर्म में प्रवेश है। चौथा चक्र है हृदय, पांचवां कंठ, छठवां आज्ञा। हृदय से धर्म की शुरुआत होती है। हृदय यानी प्रेम। हृदय यानी करुणा। हृदय यानी दया। हृदय के अंकुरण के साथ ही धर्म की शुरुआत होती है। जिसको हृदय चक्र कहा है पतंजलि के शास्त्र में, वही तेजो लेश्या है। हृदयवान व्यक्ति के जीवन में एक तेज प्रगट होता है। तुमने प्रेमी का चेहरा दमकता देखा होगा। जब तुम कभी किसी के प्रेम में होते हो तो तुम्हारे चेहरे पर एक नई ही आभा प्रगट हो जाती है। चेहरा तुम्हारा, कल भी तुम्हारा था, आज तुम्हारा किसी से प्रेम हुआ; तत्क्षण तुम्हारे चेहरे पर एक रौनक आ जाती है, जो कभी न थी--एक दीप्ति। तुम ज्यादा

जीवंत हो उठते हो। जैसे किसी ने तुम्हारी बुझते-बुझते दीये की ज्योति को उकसा दिया। राख जम गई थी, किसी ने झाड़ दी और तुम्हारा अंगारा फिर दमक उठा। साधारण प्रेम में ऐसा हो जाता है तो जिस प्रेम की महावीर और पतंजलि बात करते हैं, उसकी तो बात ही क्या कहनी!
एक स्त्री के प्रेम में तुम पड़ जाओ, एक मित्र के प्रेम में पड़ जाओ, एक रौनक आ जाती है। तेजो लेश्या! एक स्वर्णिम दमक आ जाती है।
कल एक कविता पढ़ रहा था। प्रेम की कविता है।
इस तगैयुर के लिए उनको दुआ देता हूं मैं
मौत थी कल रात तक, जिंदगी कल रात से
हो रहा है मेहरबां मुझ पर वह रश्के-सदबहार
खिल रही है फिर मेरे दिल की कली कल रात से
उनका जलवा ख्वाब में पुर-कैफ मुझको कर गया आंख में आई हुई है नींद-सी कल रात से
किस कदर है उनसे मिलने की खुशी कल रात से
जिंदगी में आ गई है ताजगी कल रात से
आलमे-वहशत था तारी हर तरफ कल रात तक
हर दरो-दीवार में है दिलकशी कल रात से
बन गया है दिल का हर अरमान एक बज्मे-निशात
नगमाजन है अर्स साजे-जिंदगी कल रात से
साधारण प्रेम में जो कल तक मौत थी, वह आज जिंदगी मालूम पड़ने लगती है।
कल तक जहां साज टूटा पड़ा था, आज झनझना उठता है।
जैसे ही हृदय पर चोट लगती है, वैसे ही तुम्हारे जीवन में दीप्ति का जन्म होता है। सांसारिक प्रेम में तो यह चोट ऐसी है कि जैसे एक बड़े विराट हृदय में जरा-सा एक कोना रोशन हुआ हो। जब यह कोना कोना नहीं रह जाता, और तुम्हारा पूरा हृदय रोशन होता है तो उसी को महावीर अहिंसा कहते हैं। उसी को बुद्ध करुणा कहते हैं। उसको जीसस ने प्रेम कहा है। या भक्तों ने, नारद ने प्रार्थना कहा है।
जब तुम्हारा पूरा हृदय आंदोलित हो उठता है प्रेम से तो तुम्हारे जीवन में तेजो लेश्या का जन्म हुआ। लेकिन महावीर उसको भी लेश्या ही कहते हैं, यह ख्याल रखना। महावीर कहते हैं, वह भी बंधन ही है--धर्म का सही, सुंदर है सही, शुभ है सही, लेकिन भूल मत जाना कि बंधन है। फिर उसके बाद पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या। क्रमशः और सुंदरतर होता जाता जीवन।
शुक्ल लेश्या--योग की तृतीय आंख, या तंत्र का शिवनेत्र, महावीर की शुक्ल लेश्या है। जैसे तुम्हारे भीतर इन छह के बीच अमावस और पूर्णिमा का अंतर है। जब तुम्हारे जीवन की ऊर्जा आज्ञाचक्र पर आकर ठहरती है तो तुम्हारा सारा अंतर्लोक एक प्रभा से मंडित हो जाता है। एक प्रकाश फैल जाता है। तुम पहली दफा जागरूक होते हो। तुम पहली दफा ध्यान को उपलब्ध होते हो।
इसलिए पतंजलि ने उसे आज्ञाचक्र कहा। आज्ञाचक्र का अर्थ है कि इस घड़ी में तुम जो कहोगे, कहते ही हो जाएगा। तुम्हारी आज्ञा तुम्हारे व्यक्तित्व के लिए सहज स्वीकृत हो जाएगी। इतनी जागरूकता में जो भी कहा जाएगा, जो भी निर्णय लिया जाएगा, वह तत्क्षण पूरा होने लगेगा। क्योंकि अब कोई विरोधी नहीं रहा। अब तुम एक-सूत्र हुए, एक-जुट हुए। अब तुम्हारे भीतर दो आंखें न रहीं, एक आंख हुई। दो थीं तो द्वंद्व था। एक कुछ कहती, दूसरी कुछ कहती। यही अर्थ है उस प्रतीक का--तृतीय नेत्र का। अब एक आंख हुई। तुम एक-दृष्टि हुए। जीसस ने अपने शिष्यों को कहा है, जब तक तुम्हारी दो आंखें एक आंख न बन जाए, तब तक तुम मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश न कर सकोगे।
दो का अर्थ है, भीतर खंड-खंड बंटे हैं हम। एक मन कुछ कहता, दूसरा मन कुछ कहता। एक मन कहता है, अभी तो भोग लो। एक मन कहता है, क्या रखा भोगने में? छोड़ो। एक मन कहता है, मंदिर चलो--प्रार्थना की पावनता। दूसरा मन कहता है, व्यर्थ समय खराब होगा। घंटेभर में कुछ रुपये कमा लेंगे। बाजार ही चलो। प्रार्थना बूढ़ों के लिए है, अंत में कर लेंगे। मरते वक्त कर लेंगे। इतनी जल्दी क्या है? अभी कोई मरे नहीं जाते।

तुमने ख्याल किया? कि मन कभी भी निर्णीत नहीं होता। अनिर्णय मन का स्वभाव है। छोटी-छोटी बातों में अनिर्णीत होता है। कौन-सा कपड़ा आज पहनना है, इसी के लिए मन अनिर्णीत हो जाता है। किस फिल्म को देखने जाना, इसीलिए अनिर्णीत हो जाता है। जाना कि नहीं जाना इसी के लिए आदमी सोचने लगता है, डांवांडोल होने लगता है; जैसे तुम्हारे भीतर दो आदमी हैं, एक नहीं। आज्ञाचक्र पर आकर तुम्हारा द्वंद्व समाप्त होता है, तुम एक बनते हो। इसलिए पतंजलि ने उसे आज्ञाचक्र कहा क्योंकि तुम पहली दफा स्वामी बनते, मालिक बनते। जब तक आज्ञाचक्र न खुल जाए तब तक कोई अपना मालिक नहीं।
मैंने तुम्हें स्वामी कहा है, तुम्हें संन्यास दिया है। तुम स्वामी मेरे कहने से हो नहीं गए। यह तो सिर्फ दिशा-निर्देश किया है। यह तो तुम्हारे भीतर आकांक्षा का बीज डाला है। यह तो तुम्हारी अभीप्सा जगाई है। यह तो तुम्हें एक दृष्टि और दिशा दी है। यह तो तुम्हारे लिए बोध दिया है कि यह तुम्हें होना है। इससे होने के पहले रुकना मत, जब तक कि स्वामी न हो जाओ।
तो ठीक, आज्ञाचक्र बड़ा सुंदर शब्द है। वहां आकर तुम पहली दफा गुलामी
के बाहर होते हो। तुम्हारी आज्ञा चलती है तुम्हारे ऊपर। महावीर का शब्द भी बड़ा सुंदर हैः शुक्ल। पूर्णिमा हो गई। सब अंधेरा गया। कोना-कोना जाग्रत हो उठा।
अगर आधुनिक मनोविज्ञान की भाषा से हम समझना चाहें तो पहले तीन चक्र, जिसको फ्रायड कांशस माइंड कहता है, चेतन मन कहता है, उसके हैं। दूसरे तीन चक्र, जिनको महावीर धर्म लेश्या कहते हैं, अनकांशस माइंड के, अचेतन मन के हैं। और सातवीं स्थिति सुपरकांशस माइंड की है, अति-चेतन मन की। जो व्यक्ति तीन चक्रों में ही जीता, वह ऊपर-ऊपर जीता है। जैसे कोई व्यक्ति अपने घर के बाहर पोर्च में जीता हो। वहीं टीन-टप्पर बांधकर रहने लगा है। पूरा महल खाली पड़ा है। पूरा महल उसका है, जन्मसिद्ध उसका अधिकार है, लेकिन स्मरण नहीं रहा। वह भीतर जाना भूल गया है। याद खो गई। विस्मरण हो गया है।
तो जो व्यक्ति पहले तीन चक्रों में ही जी लेते हैं, उन्हें अपने ही पूरे महल का कोई पता नहीं चल पाता। जो व्यक्ति अपने भीतर प्रवेश करते हैं और छठवें चक्र तक पहुंचते हैं, उन्हें अपने महल में निवास मिलता है। पहले तीन चक्र थोड़े-से रोशन हैं। बाकी तीन चक्र अभी बिल्कुल अंधेरे में पड़े हैं। इसीलिए फ्रायड उनको अनकांशस कहता है; अचेतन कहता है। लेकिन वे अचेतन इसीलिए हैं कि तुम वहां नहीं गए। तुम्हारे जाते ही चेतन हो जाएंगे। तुम जहां गए वहीं चेतना पहुंच जाती है। तुम्हारी दृष्टि जहां पड़ी, वहीं चैतन्य का जन्म हो जाता है। तुम वहां गए नहीं इसलिए।
ऐसा समझो, चौदह साल तक बच्चा बड़ा होता है। तब तक उसका काम-केंद्र अचेतन रहता है। ऐसा कम से कम अतीत में तो रहता था। अब जरा मुश्किल है। क्योंकि काम-चेतना के शोषण करने के लिए इतने लोग आतुर हैं कि छोटे बच्चों की काम-चेतना भी परिपक्व हुए बिना जाग्रत हो जाती है।
एक बड़ी हैरानी की घटना अमरीका में घट रही है। लड़कियां दो साल पहले मासिक धर्म से ग्रस्त होने लगी हैं। चौदह साल में होती थीं, अब वे बारह साल में होने लगी हैं। मालूम होता है कि चारों तरफ का दबाव, वासना का ज्वार चारों तरफ--फिल्म हो, टेलीविजन हो, रेडियो हो, पोस्टर हो, अखबार हो; और सब तरफ की हवा और सब तरफ छिछला प्रदर्शन शायद मनुष्य की प्रकृति पर दबाव डाल रहा है। दो साल उम्र गिर जाना नीचे, बड़ी हैरानी की बात है। बायोलाजिस्ट बड़े चकित हैं कि यह कैसे हुआ! अगर ऐसा जारी रहा तो शायद कुछ दिनों में और उम्र गिर जाएगी। शायद सात वर्ष के छोटे-छोटे बच्चे कामातुर हो उठेंगे। ये बेमौसम के फल होंगे और इनके जीवन में बड़ी कठिनाई खड़ी होगी।
लेकिन साधारणतः चौदह साल की उम्र तक कामवासना का केंद्र सोया पड़ा रहता है, अचेतन रहता है। चौदह साल की उम्र में चैतन्य बनता है। और जैसे ही चेतना काम-केंद्र पर जाती है तो काम-केंद्र फिर अचेतन नहीं रह जाता। फिर सारा मन उसी के आसपास घूमने लगता है। अक्सर लोग पहले केंद्र के पास ही समाप्त हो जाते हैं। अक्सर लोग इस पहले केंद्र पर ही जीते हैं और मर जाते हैं। बूढ़े से बूढ़ा आदमी भी कामलोलुप ही जीता है। चाहे कहता न हो, मन ही मन

में छुपाकर रखता हो; इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। लेकिन चित्त में कामवासना ही चलती रहती है। यह बड़ी दुर्दिन की घटना है, दुर्भाग्य की घटना है। इसका मतलब हुआ, महल अपरिचित रह गया।
जैसे-जैसे तुम चैतन्य को भीतर प्रवेश करवाते हो, जैसे-जैसे तुम अपने
और उपेक्षित अंगों पर रोशनी डालते हो, वैसे-वैसे तुम पाते हो, नई-नई संभावनाओं का आविर्भाव होता है।
महावीर कहते हैं, छठवें केंद्र पर शुक्ल लेश्या पूर्ण होती है।
पूर्णिमा की चांदनी फैल जाती है तुम्हारे पूरे व्यक्तित्व पर। पूर्णिमा की चांदनी फैल जाने के लिए तुम्हें अंतर्यात्रा पर जाना होगा। और जो पर्दे तुम्हें बाहर रोकते हैं, उन्हें धीरे-धीरे छोड़ना होगा।

कृष्ण, नील, कापोत, इन्हें छोड़ो।
लोभ, मोह, घृणा, क्रोध, अहंकार, ईर्ष्या छोड़ो। प्रेम, दया, सहानुभूति जगाओ। परिग्रह छोड़ो, अपरिग्रह जगाओ। कृपणता छोड़ो, बंटना सीखो। मांगो मत, दो। और अंतर्यात्रा शुरू होगी।
चीजों को मत पकड़ो। चीजों का मूल्य नहीं है। चीजों को अपना मालिक मत बनने दो, चीजों के मालिक रहो। उपयोग करो साधन की तरह; साध्य मत बनाओ। तो धीरे-धीरे पर्दे टूटते हैं।
अगर ऐसा न किया तो जीवन में सब तो पा लोगे, लेकिन जो पाने योग्य था, बस उसी से वंचित रह जाओगे।
पीड़ा मिली जनम के द्वारा
अपयश पाया नदी किनारे
इतना कुछ मिल गया एक बस
तुम्हीं नहीं मिले जीवन में
हुई दोस्ती ऐसी दुख से
हर मुश्किल बन गई रुबाई
इतना प्यार जलन कर बैठी
क्वांरी ही मर गई जुनाई
बगिया में न पपीहा बोला
द्वार न कोई उतरा डोला
सारा दिन कट गया बीनते
कांटे उलझे हुए वसन में
पीड़ा मिली जनम के द्वारा
अपयश पाया नदी किनारे
इतना कुछ मिल गया एक बस
तुम्हीं नहीं मिले जीवन में
और एक चूक जाए, सब चूक गया। वह एक, जिसको भक्त प्रीतम कहते हैं, उसी को महावीर परमात्मा कहते हैं। वह प्यारा तुम्हारे भीतर ही बैठा है। लेकिन तुम भीतर जाओ तो मिलन हो। तुम अपने बाहर ही बाहर भटक रहे हो। और तुमने ऐसे पर्दे टांग रखे हैं कि भीतर की याद ही भूल गई है। काले पर्दे ही दिखाई पड़ते हैं। लगता है, भीतर कुछ और है नहीं।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, हमने पढ़ा कबीर को, पढ़ा नानक को; तो
वे सभी कहते हैं कि भीतर जाने से प्रकाश होता है। हम तो जाते हैं तो सिवाय अंधकार के कुछ नहीं दिखाई पड़ता। वह कृष्ण लेश्या जब तक न हटेगी, काला पर्दा पड़ा रहेगा। तुम जाओगे भीतर तो तुम काला ही पाओगे। अक्सर तुम भीतर आंख बंद करोगे, तो या तो विचारों का ही ऊहापोह मचा रहेगा। या अगर कभी क्षणभर को विचारों से छुटकारा मिला तो अंधेरी रात, अमावस! घबड़ाकर तुम बाहर निकल आओगे।
और अंधेरे से हमें डर लगता है। अंधेरा हम पैदा करते हैं और अंधेरे से हमें डर लगता है। अंधेरा हम जीवनभर बनाते हैं और अंधेरे से हमें डर लगता है। तो जैसे ही अंधेरा दिखा, फिर भागे बाहर, फिर खोल दी आंख।
मुझसे लोग कहते हैं कि जब भीतर का अंधेरा दिखाई पड़ता है तो बड़ी घबड़ाहट होती है। डर लगता है कहीं मर न जाएं, कहीं खो न जाएं। यह कैसा अंधेरा है!

ईसाई फकीरों ने तो उसको नाम ही दिया हैः डार्क नाइट आफ द सोल। जिसको महावीर कृष्ण लेश्या कहते हैं, वही है। ईसाई फकीर कहते हैं, जब कोई व्यक्ति अपनी अंतरात्मा की तरफ जाता है तो एक बड़ी अंधेरी रात से गुजरना पड़ता है। वह अंधेरी रात हमारी बनाई हुई है; हमीं को मिटानी पड़ेगी। दूसरा कोई उसे मिटा भी नहीं सकता। साहस करके, दुस्साहस करके हमें उस पर्दे को चीर डालना होगा।
कठिन नहीं है क्योंकि उसका ताना-बाना बहुत साफ है। लोभ, माया, मोह, मद, इनसे ही बना है। इनको तुम क्षीण करो, वह काली चादर अपने आप क्षीण होने लगेगी। उसके ताने-बाने उखड़ जाएंगे। जगह-जगह छेद हो जाएंगे। जगह-जगह छेद से तुम्हें नील लेश्या का दर्शन होने लगेगा।
जिस व्यक्ति की कृष्ण लेश्या गिरती है, उसे भीतर नीले आकाश का दर्शन होगा। बड़ा शांत! जैसे कोई गहरी नदी हो और नीली मालूम पड़ती हो।
फिर जो उसके भी पार जाएगा, उसके लिए महावीर कहते हैं, कापोत लेश्या।
तब और भी हलका नीलापन; गहरा नहीं। ऐसे क्रमशः पर्तें टूटती जाती हैं।
"... तेजो लेश्या, पद्म लेश्या, शुक्ल लेश्या, इनमें पहली तीन अशुभ हैं।
इनके कारण जीव विभिन्न दुर्गतियों में उत्पन्न होता है।"
यह भी समझ लेना जरूरी है। क्योंकि इस सूत्र की व्याख्या बड़ी अन्यथा
की जाती रही है। वह व्याख्या ठीक है, लेकिन बहुत महत्वपूर्ण नहीं है।
व्याख्या की जाती रही है कि इन तीन लेश्याओं में जो उलझा हुआ है, वह नर्क जाएगा; दुर्गति में पड़ेगा। पशु-पक्षी हो जाएगा, कीड़ा-मकोड़ा हो जाएगा। यह व्याख्या गलत नहीं है, लेकिन बड़ी महत्वपूर्ण भी नहीं है।
असली व्याख्याः जो व्यक्ति इन लेश्याओं में उलझेगा उसकी बड़ी दुर्गति होती है। वह कभी भविष्य में, किसी दूसरे जन्म में कीड़ा-मकोड़ा बनेगा, ऐसा नहीं है। वह यहीं कीड़ा-मकोड़ा बन जाता है। कीड़ा-मकोड़ा बनने के लिए कीड़े- मकोड़े की देह लेना जरूरी नहीं है।
तुमने आदमी देखे, जो कीड़े-मकोड़ों जैसे हैं, या नहीं देखे? तुमने आदमी देखे, जिन्हें देखकर आदमी की याद बिल्कुल नहीं आती? जिन्हें देखकर जानवरों का स्मरण होता है। तुमने आदमी देखे, जिनका व्यक्तित्व अभी मनुष्य की सीमा को छूता ही नहीं; मनुष्य के क्षितिज को छूता ही नहीं? जिनके नीचे के पशु-पक्षी अभी भी सक्रिय हैं। देह मनुष्य की है, लेकिन मन अभी बहुत पिछड़ा हुआ है; बहुत पीछे का है।
तुम कभी आंख बंद करके देखो, तुम पाओगे, मन बंदर की भांति है। जब तक मन शांत न हो जाए, तब तक तुम यह मत समझना कि वृक्ष से उतर आए तो उतर आए। डार्विन ठीक ही कहता है कि आदमी बंदर से पैदा हुआ है। लेकिन एक जगह भूल करता है वह यह--अभी पैदा कहां हुआ है? कभी-कभी कोई होता है। कुछ बंदर झाड़ों से नीचे उतर आए हैं। कुछ बंदर झाड़ों पर बैठे हैं, लेकिन बंदरपन सभी के भीतर है।
कभी कोई महावीर, कभी कोई बुद्ध वस्तुतः मनुष्य होता है, जब मन का बंदर नहीं रह जाता। अभी तुम देखो, मन के बंदर को तुम मुंह बिचकाते, इस झाड़ से उस झाड़ पर छलांग लगाते, इस शाखा से उस शाखा पर डोलते हुए पाओगे। तुम बंदर को भी इतना बेचैन न पाओगे, जितना तुम मन को बेचैन पाओगे।
डार्विन तो बड़ी बाहर की शोध करके इस नतीजे पर पहुंचा; अगर भीतर जरा उसने झांका होता तो इतनी बाहर की शोध करने की जरूरत न थी। आदमी बंदर से निश्चित आया है। आदमी अभी भी बंदर है। और इस भीतर के बंदर से छुटकारा जब तक न पाया जाए तब तक मनुष्य का जन्म नहीं होता। मनुष्य की देह एक बात है; मनुष्य का चित्त बड़ी और बात है।
महावीर का यह सूत्र हैः "कृष्ण, नील और कापोत, ये तीनों अधर्म या अशुभ लेश्याएं हैं। इनके कारण जीव बड़ी दुर्गतियों में उत्पन्न होता है।"
तो तुम यह मत सोचना कि भविष्य में कभी दुर्गति होगी। जिस क्षण जो लेश्या तुम्हें पकड़ती है, उसी क्षण दुर्गति हो जाती है। दुर्गति उधार नहीं है कि फिर कभी होगी। दुर्गति अभी हो जाती है। जब तुम क्रोध से भरते हो, तब दुर्गति हो जाती है। जब तुम अहंकार से भरते हो तब दुर्गति हो जाती है।

दुर्गति प्रतिपल हो रही है।
इस पर मैं जोर देना चाहता हूं। क्योंकि इस बात ने कि कभी मरने के बाद होगा, लोगों को बड़ा निश्चिंत बना दिया है। लोग सोचते हैं, देखेंगे जब होगा तब देखेंगे। आदमी की सोचने की सीमा है।
जैसे कोई तुमसे कहे कि आज शाम तुम मर जाओगे, तो तुम बहुत घबड़ा जाओगे।
वह कहे कि सात दिन बाद मरोगे तो तुम उतने न घबड़ाओगे। तुम कहोगे, सात दिन? देखेंगे। सात दिन... कोई अभी आज तो मर नहीं रहे। कोई कहे, सात साल बाद मरोगे तो कुछ चोट न मालूम पड़ेगी। कोई कहेगा, सत्तर साल बाद मरोगे। तुम कहोगे, छोड़ो भी! सात सौ साल बाद कोई कहे तो... ।
वक्तव्य तो वही है कि मर जाओगे। लेकिन जैसे-जैसे समय बड़ा होता जाता है, वैसे-वैसे तुम्हारी चिंता क्षीण होती चली जाती है।
तुमने कभी ख्याल किया! एक आदमी मर जाए तुम्हारे पड़ोस में तो पीड़ित हो जाते हो तुम। फिर पता चलता कि कहीं अफ्रीका में हजार आदमी मर गए, कि बांगला देश में दस हजार आदमी मर गए। एक आदमी का मरना पड़ोस में तुम्हें पीड़ित कर देता है। दस हजार आदमी बांगला देश में मरते हैं, तुम अखबार पढ़ लेते हो; कुछ भी नहीं होता।
क्या मामला है? इससे क्या फर्क पड़ता है, तुम्हारे पड़ोस में मरे, एक मील
पर मरे कि हजार मील पर मरे! लेकिन सीमा है तुम्हारी। तुम्हारी पत्नी मर जाए तो ज्यादा पीड़ा होती है। पड़ोसी की पत्नी मर जाए तो उतनी पीड़ा नहीं होती। जरा दूर है। चाहे एक घर का ही फासला हो, मगर फासला हो गया। किसी और की पत्नी मरी।
जैसे तुम्हारे चित्त से दूरी होती जाती है, वैसे-वैसे तुम्हारी चिंता, तुम्हारी बेचैनी कम होती जाती है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि मनुष्य के मन की बड़ी सीमाएं हैं। एक आदमी मरे और हजार आदमी मरें, तो दोनों खबरें सुनकर तुम्हें हजार गुना दुख नहीं होता, जब हजार आदमी मरते हैं। ख्याल किया? एक आदमी मर गया, हजार आदमी मर गए, दस हजार आदमी मर गए... दस हजार आदमी मरे सुनकर क्या तुम्हें दस हजार गुना दुख होता है? संभावना तो यह है कि शायद उतना भी न हो, जितना एक आदमी के मरने से होता था--अगर वह एक आदमी परिचित होता, पहचाना होता, जाना-माना होता।
मैंने सुना है, एक बस में एक हिंदू और पचास मुसलमान यात्रा कर रहे थे।
बस उलट गई, सब मर गए। किसी ने किसी को कहा कि सुना तुमने? बस उलट गई। पचास मुसलमान और एक हिंदू मर गए। उस आदमी ने कहा, अरे, बेचारा आदमी! हिंदू रहा होगा वह; उसने कहा, बेचारा आदमी। हिंदू के लिए पीड़ा हुई, बाकी पचास मुसलमान के लिए कोई... ।
तुमको भी नहीं लगता, जब पचास मुसलमान मर जाएं तो कुछ चोट नहीं मालूम पड़ती। मुसलमान थे, बात खतम हो गई। मुसलमान सुनता है, हिंदू मर गए, कुछ अंतर नहीं पड़ता। हिंदू थे। जैसे हिंदुओं में कोई प्राण नहीं, कोई जीवन नहीं। कोई मृत्यु हिंदू की भी होती है कहीं! अच्छा हुआ मर गए। मुसलमान मरता है तो पीड़ा होती है मुसलमान को।
जो निकट मालूम पड़ता है... ।
हिरोशिमा में एक लाख आदमी मर गए एक साथ, तो भी दुनिया में ऐसा नहीं हुआ
कि दुख की लहर फैल गई हो। लोगों ने पढ़ लिया अखबार में, सुन लिया, लेकिन कोई चोट न हुई। सीमा के बाहर हो गई बात।
आदमी की बड़ी छोटी-सी सीमा है। उसकी रोशनी बड़ी टिमटिमाती हुई थोड़ी-सी सीमा पर पड़ती है। उसके पार फिर कुछ अंतर नहीं पड़ता।
तो तुमने जो व्याख्या सुनी है अब तब कि मरने के बाद, अगर तुम गलत लेश्याओं के साथ ग्रसित रहे तो दुर्गति होगी, नर्क में पड़ोगे। मरने के बाद नर्क में पड़ोगे? तुम्हें कोई फिक्र नहीं होती, इसकी कोई चोट ही नहीं पड़ती। मैं तुमसे कहता हूं, इस व्याख्या ने आदमी का बड़ा नुकसान कर दिया। यह व्याख्या सही है। अगर जीवनभर गलत लेश्याओं का संबंध रहा तो तुम्हारा अगला जीवन इन्हीं गलत भित्तियों पर खड़ा होगा। तो दुर्गति तो होनेवाली है। लेकिन मैं तुम्हें याद दिलाना चाहता हूं कि तुम टालो मत। दुर्गति अभी भी

हो रही है, इसीलिए कल भी होगी, परसों भी होगी। जो अभी हो रही है, उसको अभी देखने की कोशिश करो। कहीं ऐसा न हो कि मौत के बाद सोचकर तुम टाल ही दो। "पीत, पद्म, शुक्ल, ये तीनों धर्म या शुभ लेश्याएं हैं। इनके कारण जीव विविध सुगतियों में उत्पन्न होता है।"
और वही सुगति के लिए भी याद रखना। मैं स्वर्ग और नर्क को वर्तमान में खींच लाना चाहता हूं। मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि स्वर्ग और नर्क यहीं हैं। इसका तुम यह मतलब मत समझना कि आगे नहीं हैं। लेकिन जो भी आगे है, वह यहां भी है। और तुम उसे यहां देख लो तो ही आगे सम्हाल सकोगे। अगर तुमने यहां न देखा तो तुम आगे भी न सम्हाल सकोगे।
तुमने कभी देखा! कोई बीमार है और तुम एक फूल जाकर उसको भेंट कर आए। उस क्षण में तुमने अपने भीतर झांककर देखा? तुम्हारी प्रतिमा उज्ज्वल हो जाती है तुम्हारी ही आंखों में। हलके हो जाते हो तुम। किसी को गाली दे दी, किसी का अपमान कर दिया, उसके बाद तुमने देखा? तुम्हारी प्रतिमा तुम्हारी ही आंखों में धूल-धूसरित हो जाती है। तुम नीचे गिर जाते हो। तुम तड़फते हो। नर्क और स्वर्ग प्रतिपल घटता है। तो जब भी तुम सुखी अनुभव करो, जानना
कि सुख स्वर्ग है। जब भी दुखी अनुभव करो, जानना कि दुख नर्क है। जब भी दुखी अनुभव करो, जानना कि तुमने अधर्म लेश्याओं के साथ संबंध जोड़ा होगा, अन्यथा दुख होता नहीं। और जब भी सुखी समझो तो जानना कि तुमने शुभ लेश्याओं के साथ संबंध जोड़ा, धर्म के साथ संबंध जोड़ा; अन्यथा सुख होता नहीं।
सुख परिणाम है शुभ भाव का। दुख परिणाम है अशुभ भाव का। तुम्हारे ही भाव हैं, तुम्हीं पर परिणाम आते हैं।
यह जो महावीर ने छोटी-सी बोधकथा कही हैः
"पहले ने सोचा, पेड़ को जड़मूल से काटकर उसके सारे फल खा जाएं... ।" इसे अपने भूख की चिंता है, लेकिन पेड़ के जीवन की कोई भी नहीं।
"दूसरे ने कहा, केवल स्कंध ही काटा जाए... ।" पूरे वृक्ष को क्यों नष्ट करें? स्कंध काटने पर फिर अंकुरित हो जाएगा। फिर वृक्ष पैदा हो जाएगा। लेकिन इस दूसरे को भी सोच में न आया कि स्कंध भी क्यों काटा जाए? फल काटने के लिए स्कंध काटना जरूरी कहां है? तुमने देखा जीवन में? जहां सुई की जरूरत होती है, तुम तलवार लिए घूमते हो। और जो काम सुई से हो सकता है, वह तलवार से हो ही नहीं सकता। अक्सर तो ऐसा होगा कि सूई से जो काम होता था, तलवार के कारण उसमें बाधा पड़ जाएगी। अब फल खाने हैं और पूरे वृक्ष को पीड़ से काटने बैठ गए। कोई... अनावश्यक है।
बहुत लोग, अधिक लोग यही कर रहे हैं। तुम्हें कितना भोजन चाहिए? कितना कपड़ा चाहिए? कितना छप्पर चाहिए? लेकिन तुम इकट्ठा किए जा रहे हो। कोई सीमा ही नहीं है। ऐसी जगह लोग पहुंच जाते हैं धन इकट्ठा करने की, कि उनको समझ में भी आता है कि अब करके और करेंगे क्या? क्योंकि धन से जो मिल सकता था, मिल गया। अब तो अतिरिक्त धन इकट्ठा हो रहा है, फिर भी किए चले जाते हैं। जैसे एक नशा है। इस धन का क्या करेंगे अब, यह कोई सवाल भी नहीं है। जो भी इस दुनिया में धन से खरीदा जा सकता था, वह सब मिल गया है। अच्छा मकान है, अच्छी कार है, अच्छा बगीचा है, अच्छा भोजन, अच्छे कपड़े हैं; अब और क्या चाहिए? लेकिन दौड़ जारी रहती है।
जो व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की सीमा नहीं मानता वह सदा दुखी रहता है।
और जो अपनी आवश्यकताओं की सीमा पहचान लेता है, उसके जीवन में सुख का अवतरण शुरू हो जाता है। आवश्यकता की सीमा को पहचान लेना सुख की पहली व्यवस्था है। और आवश्यकता की सीमा को ही न पहचाने जो, वह तो सुखी हो ही नहीं सकता। उसके पास कितना ही हो, वह दुखी रहेगा। जितना होगा, उतना ज्यादा दुखी होगा; क्योंकि और ज्यादा की मांग बढ़ती जाएगी।
पहले ने सोचा पेड़ को जड़मूल से काटकर, दूसरे ने कहा केवल स्कंध ही काटा जाए। तीसरे ने कहा, इतने की क्या जरूरत? शाखा को तोड़ने से चल जाएगा। चौथे ने कहा, उपशाखा ही तोड़ना काफी है। पांचवें ने कहा, पागल हुए हो? शाखा, उपशाखा, स्कंध, वृक्ष को करना क्या है? फल ही तोड़ लिए जाएं।
भूख लगी है, फल की जरूरत है। भूख के लिए फल चाहिए। शाखाएं, प्रशाखाएं क्यों तोड़ी जाएं?

छठे ने कहा, बैठें; पके फल हैं, गिरेंगे। तोड़ने की जरूरत नहीं है। छीनना भी क्या?
और ध्यान रखना, अस्तित्व इतना दे रहा है बिना मांगे और बिना छीने, कि
जो छीनने में पड़ जाता है वह भूल ही जाता है जीवन का एक परम गुण, कि यहां प्रसाद बंट रहा है। यहां मिल ही रहा है। तुम झपट्टा मारने में सिर्फ ओछे सिद्ध होते हो। जीवन का कुछ रहस्य ऐसा है कि यहां बिना मांगे... सब मिल ही रहा है। जीवन मिल गया तो अब और क्या चाहिए? और भी मिल जाएगा। जब जीवन बिना मांगे मिल गया... ।
तुमने कभी मांगा था जीवन? सोचा इस पर? कहीं तुम हाथ जोड़कर याचक की तरह खड़े हुए थे कि जीवन दे दो मुझे? जीवन मिल गया। जब जीवन मिल गया तो और क्या है, जो नहीं मिल सकेगा? थोड़ी प्रतीक्षा चाहिए।
तो छठे ने कहा, हम बैठ जाएं। पके फल लगे हैं, हवा के झोंके आएंगे। फिर वृक्ष को भी तो दया होगी। फिर वृक्ष भी तो समझेगा कि हम भूखे हैं। फिर वृक्ष भी तो चाहता है कि कोई उसके फलों को चखे और प्रसन्न हो, आनंदित हो। नहीं तो वृक्ष की भी प्रसन्नता कहां है?
कवि के पास गीत हो तो गुनगुनाकर तुम्हें सुनाना चाहता है। तुम ताली बजाओ इसकी प्रतीक्षा करता है। संगीतज्ञ वीणा बजाना चाहता है। तुम्हारी आंखें आह्लाद से भर जाएं तो वह प्रफुल्लित होगा। फूलों की गंध बिखरती है और हवाओं पर सवार हो जाती है, दूर-दूर की यात्रा पर निकल जाती है कि कोई नासापुट प्रतीक्षा करते होंगे।
वृक्षों के फल जब पक जाते हैं तो शाखाएं अपने आप नीचे झुक जाती हैं, ताकि कोई राहगीर आए तो शाखाएं बहुत दूर न हों। फिर जब फल पक जाते हैं तो अपने से गिरने लगते हैं।
जो पक गया है, वह अपने से गिर आता है।
महावीर यह कह रहे हैं, भरोसा करो, श्रद्धा करो। तुम जिस जीवन से आए हो उसी से वृक्ष भी आया। तुम दोनों जुड़े हो कहीं भीतर गहरे में। तुम्हारी भूख तुम्हारी ही भूख नहीं है, वृक्ष को भी पीड़ा होगी। तुम जरा भूखे होकर इस वृक्ष के नीच बैठ तो जाओ।
इस सत्य को भी अब आधुनिक मनोविज्ञान ने बड़े प्रमाण दिए हैं। न्यूयार्क में एक वैज्ञानिक वृक्षों पर प्रयोग कर रहा था--वृक्षों के संवेगों पर, भावनाओं पर। वह बड़ा हैरान हो गया। पहले किसी ने सोचा भी नहीं था कि वृक्षों में संवेग हो सकते हैं। महावीर के बाद जगदीशचंद्र बसु तक बात ही भूल गई थी। फिर जगदीशचंद्र बसु ने थोड़ी बात उठाई कि वृक्षों में जीवन है। लेकिन बसु भी धीरे-धीरे विस्मृत हो गए। विज्ञान से यह बात ही खो गई। इसकी चर्चा ही बंद हो गई।
अभी अमरीका में फिर पुनः एक नया उदभव हुआ, आकस्मिक हुआ। दुनिया की बहुत-सी खोजें आकस्मिक हुई हैं। जो वैज्ञानिक काम कर रहा था वह किसी और दृष्टि से काम कर रहा था। लेकिन खोज में उसको यह अनुभव हुआ कि वृक्षों में कुछ संवेदनाएं मालूम होती हैं। तो उसने वृक्षों में महीन तार जोड़े और यंत्र बनाए देखने के लिए, कि वृक्ष भी कुछ अनुभव करते हैं?
तो तुम अगर वृक्ष के पास जाओ कुल्हाड़ी लेकर, तो तुम्हें कुल्हाड़ी लेकर आता देखकर वृक्ष कंप जाता है। अगर तुम मारने के विचार से जा रहे हो, वृक्ष को काटने के विचार से जा रहे हो तो बहुत भयभीत हो जाता है। अब तो यंत्र हैं, जो तार से खबर दे देते हैं। नीचे ग्राफ बन जाता है, कि वृक्ष कंप रहा है, घबड़ा रहा है, बहुत बेचैन है, तुम कुल्हाड़ी लेकर आ रहे हो। लेकिन अगर तुम कुल्हाड़ी लेकर जा रहे हो, और काटने का इरादा नहीं है, सिर्फ गुजर रहे हो वहां से तो वृक्ष बिल्कुल नहीं कंपता। वृक्ष के भीतर कोई परेशानी नहीं होती।
यह तो बड़ी हैरानी की बात है। इसका मतलब यह हुआ कि तुम्हारे भीतर जो काटने का भाव है, वह वृक्ष को संवादित हो जाता है। फिर जिस आदमी ने वृक्ष काटे हैं पहले, वह बिना कुल्हाड़ी के भी निकलता है तो वृक्ष कंप जाता है।
क्योंकि उसकी दुष्टता जाहिर है। उसकी दुश्मनी जाहिर है।

लेकिन जिस आदमी ने कभी वृक्ष नहीं काटे हैं, पानी दिया है पौधों को, जब
वह पास से आता है तो वृक्ष प्रफुल्लता से भर जाता है। उसके भी ग्राफ बन जाते हैं कि कब वह प्रफुल्ल है, कब वह परेशान है।
और वैज्ञानिक अदभुत आश्चर्यजनक निष्कर्षों पर पहुंचे हैं कि एक वृक्ष को काटो तो सारे वृक्ष बगीचे के कंप जाते हैं, पीड़ित हो जाते हैं। और एक वृक्ष को पानी दो तो बाकी वृक्ष भी प्रसन्न हो जाते हैं--जैसे एक समुदाय है।
इससे भी गहरी बात जो पता चली है, वह यह कि एक वृक्ष के पास बैठकर तुम एक कबूतर को मरोड़कर मार डालो, तो वृक्ष कंप जाता है। जैसे कबूतरों से भी बड़ा जोड़ है, संबंध है। जैसे सारी चीजें जुड़ी हैं, संयुक्त हैं।
होना भी ऐसा ही चाहिए, क्योंकि हम एक ही अस्तित्व की तरंगें हैं। सागर
तो एक है, हम उसकी ही लहरें हैं। एक लहर वृक्ष बन गई, एक लहर पशु बन गई, एक लहर मनुष्य बन गई, लेकिन हम सब भीतर जुड़े हैं। हम सब जीवन के ही अंग हैं। तो महावीर कहते हैं, छठवां कहता है, बैठें। वह श्वेत लेश्या को उपलब्ध व्यक्ति है। उसके भीतर चंद्रमा की चांदनी फैल गई है। वह होश से भरा व्यक्ति है। वह कहता है, काटने-पीटने की जरूरत ही नहीं है। छीनने-झपटने की बात ही गलत है। जहां जीवन मुफ्त मिला है, वहां भोजन न मिलेगा?
जीसस ने कहा है अपने शिष्यों को, देखो खेत में लगे हुए लिली के फूलों को; न तो ये श्रम करते हैं, न ये दुकान करते हैं, न ये बाजार करते। फिर भी कोई अनजान, अपरिचित इनकी सब जरूरतें पूरी कर जाता है। और देखो तो जरा इनके सौंदर्य को। सम्राट सोलोमन भी अपनी सारी सजावट के साथ इतना सुंदर न था, जितने ये खेत के किनारे लगे लिली के फूल हैं। तुम इन जैसे हो जाओ; जीसस ने अपने शिष्यों से कहा।
महावीर तो इस तरह जीए हैं। महावीर तो जब उन्हें भूख लगती तो गांव में
आ जाते। कैसे यह पक्का हो कि मैंने मांगा नहीं? तो वे सुबह ही जब ध्यान में होते तब निर्णय कर लेते कि आज किसी द्वार के सामने कोई स्त्री अपने बच्चे को कंधे पर लिए खड़ी होगी और यदि निवेदन करेगी कि आप हमारे घर भोजन कर लें, तो मैं भोजन करूंगा। कोई स्त्री अगर कंधे पर बच्चे को लिए खड़ी होगी तो! एक पैर बाहर निकला होगा देहली के, एक पैर भीतर होगा तो!
ऐसा ध्यान में तय कर लेते, फिर वे गांव में जाते। अगर ऐसी कोई युवती बच्चे को लिए हुए एक पैर देहली के बाहर, एक भीतर खड़ी हो और निवेदन करे कि हे महामुनि! आप कहां जा रहे हैं? सौभाग्य हमारा। हमारे घर को धन्य करें, भोजन ग्रहण कर लें। तो वे भोजन ग्रहण कर लेते। अगर ऐसा न होता तो वे पूरे गांव का चक्कर लगाकर वापस चले आते। कई लोग रास्ते में उनको कहते भी, कि भोजन ग्रहण कर लें, तो भी वे न करते। क्योंकि जो उन्होंने स्वयं सुबह बांध लिया था नियम, उससे अन्यथा नहीं।
उस नियम का अर्थ था, महावीर कहते कि अगर प्रकृति को देना होगा तो वह नियम पूरा करेगी। अगर नहीं देना होगा तो हम झपटेंगे नहीं। मांगने में तो झपटना हो जाएगा। किसी के दरवाजे पर जाकर खड़े हो गए और कहा कि भोजन दो, तो जबर्दस्ती है। न देना हो उसे तो? इंकार करे तो बेइज्जती होती है, अपमान होता है। बेमन से दे तो लेने का मजा ही चला गया।
तो महावीर ने बड़ा अनूठा प्रयोग किया। सिर्फ महावीर ने किया पृथ्वी पर। दो-दो महीने, महीने-महीनेभर के उपवास के बाद गांव में जाते और अगर न मिलता तो वे प्रसन्नता से वापस लौट आते।
इसमें कुछ विषाद भी न था, शिकायत भी न थी। वे कहते, तो ठीक है। आज भोजन
की जरूरत न होगी। जब प्रकृति आज देने को तैयार नहीं है तो साफ है कि मेरे मन का ही ख्याल होगा कि भूख लगी है। अगर भूख लगी ही होती तो कहीं न कहीं, कहीं न कहीं प्रकृति में कंपन होता। कोई न कोई उपाय बनता।
एक दफा उन्होंने नियम ले लिया कि कोई राजकुमारी लोहे की जंजीरों में बंधी... अब राजकुमारी और लोहे की जंजीरों में बंधी! --निमंत्रण देगी; द्वार पर कोई गाय खड़ी, उसके सींग में गुड़ लगा; तो स्वीकार करूंगा। कई दिन आए और गए, पूरा नगर परेशान हो गया। क्योंकि पूरा नगर देख रहा है कि उन्होंने कुछ व्रत लिया है, पूरा नहीं हो रहा है। हम भोजन भी नहीं दे पा रहे हैं। लोग रो

रहे हैं, पीड़ित हैं, परेशान हैं। वे रोज आते हैं, उसी प्रसन्नचित्त-भाव से, उसी आह्लाद से, चक्कर लगाकर गांव का वापस चले जाते हैं। ऐसा कई दिन हुआ। फिर एक दिन वह घटना भी घट गई। वह जो बिल्कुल अकल्पित मालूम पड़ती है कि कभी कैसे घटेगी, वह भी घट गई।
एक बैलगाड़ी में गुड़ लदा जाता था। और कोई गाय पीछे से उस गुड़ को खाने के लिए बढ़ी तो उसके सींग में गुड़ लग गया। वह गाय वहां खड़ी थी गुड़ चबाती। सींग में गुड़ लगा। और बाप नाराज हो गया था तो अपनी बेटी को उसने हथकड़ियां डलवाकर कारागृह में बंद कर दिया था। सींखचों के पार राजकुमारी लोहे की जंजीरों में पड़ी थी। गाय सींग पर गुड़ लगाए खड़ी थी। तो महावीर ने भोजन स्वीकार किया।
महावीर कहते हैं, जब जरूरत होगी, मिलेगा। मांगो मत। मांगकर व्यर्थ दीन मत बनो।
इसलिए श्वेत लेश्या का वे कह रहे हैं, छठवें ने कहा, चुप भी रहो। शांति
से बैठो भी। वृक्ष से फल टपकेंगे। पके फल चुनकर क्यों न खाए जाएं?
जो तोड़ा जाए वह कच्चा होगा। जो कच्चा हो वह अभी खाने योग्य नहीं। जो अपने से गिर जाए वही पका होगा। वही खाने योग्य भी होगा। जो अपने से मिल जाए वही खाने योग्य है।
प्रकृति दे रही है हजार-हजार ढंगों से। अगर आदमी झपटे न, तो भी मिलता है। पक्षियों को मिलता है, पशुओं को मिलता है, वृक्षों को मिलता है। देखा? वृक्ष तो कहीं जाते-आते भी नहीं। जड़ जमाए एक ही जगह खड़े हैं। तो भी क्या कमी है? कुछ तुमसे कम हरे हैं? कुछ तुमसे कम ताजे हैं? कुछ तुमसे कम जीवंत हैं? खूब हरे हैं। खूब जीवंत हैं। जमीन में जड़ें रोपे खड़े हैं। कहीं जाते भी नहीं। आने-जाने की चिंता भी नहीं करते। वहीं आना पड़ता है परमात्मा को देने। वहीं प्रकृति को लाना पड़ता है। वहीं बादल आकर बरस जाते हैं। वहीं जमीन हजार-हजार ढंगों से भोजन को जमा देती है। वहीं सूरज की किरणें आ जाती हैं। वहीं हवा के झोंके प्राणवायु ले आते हैं।
जब वृक्षों तक के लिए यह हो रहा है तो आदमी की अश्रद्धा खूब है, अदभुत है। यह होगा ही। लेकिन श्वेत लेश्या के जन्म के बाद ही ऐसी महत श्रद्धा का जन्म होता है कि सब होता है। सब होगा ही, इस परम श्रद्धा से ही आदमी आस्तिक बनता है।
और महावीर कहते हैं कि ये छहों भी लेश्याएं हैं, छठवीं भी। इनके पार वीतराग की, अरिहंत की अवस्था है। उस अरिहंत की अवस्था में तो कोई पर्दा नहीं रहा। शुभ्र पर्दा भी नहीं रहा।
"... इन छहों पथिकों के विचार, वाणी तथा कर्म कमशः छहों लेश्याओं के उदाहरण हैं।"
छठवीं लेश्या को अभी लक्ष्य बनाओ। श्वेत लेश्या को लक्ष्य बनाओ। चांदनी में थोड़े आगे बढ़ो। चलो, चांद की थोड़ी यात्रा करें। पूर्णिमा को भीतर उदित होने दो।
हिंदू संस्कृति का सारा सार इस सूत्र में हैः
सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद दुःखभाग भवेत।
सब सुखी हों, रोगरहित हों, कल्याण को प्राप्त हों। कोई दुख का भागी न हो।
यह श्वेत लेश्या में जीनेवाले आदमी की दशा है। इसके पार तो कहा नहीं
जा सकता। इसके पार तो अवर्णनीय है, अनिर्वचनीय का लोक है। इसके पार तो शब्द नहीं जाते। छठवें तक शब्द जाते हैं, इसलिए छठवें तक महावीर ने बात कर दी। यद्यपि जो छठवें तक पहुंच जाता है, उसे सातवें तक जाने में कठिनाई नहीं होती। जिसने अंधेरी रातों के पर्दे उठा दिए, वह फिर आखिरी झीने-से पारदर्शी सफेद पर्देर् को उठाने में क्या अड़चन पाएगा? वह कहेगा, अब अंधेरा भी हटा दिया, अब प्रकाश भी हटा देते हैं। अब तो हम जो हैं, जैसा है, उसे वैसा ही देख लेना चाहते हैं--निपट नग्न, उसकी सहज स्वभाव की अवस्था में।
इन चित्त की दशाओं को हम छिपाने की कोशिश करते हैं। इन्हें मिटाने की कोशिश करें। छिपाने से पाखंड पैदा होता है। छिपाने से कुछ छिपता भी नहीं।

तुम लाख छिपाओ, पता चल ही जाता है। तुमने कभी इस पर ख्याल किया? इस पर निरीक्षण किया? तुम जो-जो छिपाते हो, तुम्हें लगता हो तुमने छिपा लिया, लेकिन सभी को पता चल जाता है।
मैंने सुना, मुल्ला नसरुद्दीन अपनी पत्नी से कह रहा था कि मैं एक घंटे में वापिस आने का प्रयत्न करूंगा। यदि न आया तो शाम तक आ जाऊंगा। और अगर शाम तक भी न आ पाया तो समझ लेना कि मुझे अकस्मात बाहर जाना पड़ गया। वैसे अगर मैं बाहर गया तो चपरासी से चिट्ठी जरूर भिजवा दूंगा। मुल्ला की पत्नी ने कहा, चपरासी को तकलीफ मत देना, मैंने चिट्ठी तुम्हारी जेब से निकाल ली है।
वह चिट्ठी तो लिखकर रखे ही हुए है! यह तो सब बातचीत कर रहे हैं। छिपाने
के उपाय कर रहे हैं।
हम जो भीतर हैं, उसकी एक अनिवार्य उदघोषणा होती रहती है। अक्सर तो जिसे हम छिपाते हैं, हमारे छिपाने के कारण ही वह प्रगट हो जाता है। तुम देखो कोशिश करके। जिसे तुम छिपाओगे, तुम पाओगे, दूसरों को कुछ संकेत मिलने लगे।
एक पुलिसवाले ने मुल्ला नसरुद्दीन को रोककर कहा--वह अपनी कार में कहीं जा रहा है--कि तुम्हारा लाइसेंस देखें जरा। मुल्ला ने कहा, बड़ी हैरानी की बात है। लेकिन हवलदार साहब, मैंने तो कोई नियम तोड़ा भी नहीं। लाइसेंस दिखाने की क्या जरूरत है?
उस हवलदार ने कहा, महानुभाव! तुम इतनी सावधानी से मोटर चला रहे हो कि मुझे शक हो गया। सावधानी से चलाते ही वे लोग हैं, जिनके पास लाइसेंस नहीं। तुम जो-जो छिपाने की चेष्टा करते हो, किसी बेबूझढंग से वह प्रगट होने लगता है। तुम क्रोध छिपाना चाहते हो, तुम्हारे चारों तरफ क्रोध की छाया पड़ने लगती है। तुम लोभ छिपाना चाहते हो, वह तुम्हारे चारों तरफ उसकी छाया पड़ने लगती है। तुम्हारे छिपाए कुछ भी छिपेगा नहीं।
लाख बैठे कोई छुप-छुप के कमींगाहों में
खून खुद देता है जल्लादों के मस्कन का सुराग
साजिशें लाख उढ़ाती रहें जुलमत की नकाब
लेकर हर बूंद निकलती है हथेली पे चिराग
तुम किसी की हत्या करो, लाख छिपाने की कोशिश करो, एक-एक बूंद चिराग लेकर तुम्हारी खबर देने लगती है। तुम चोरी करो, तुम लाख छिपाने की कोशिश करो, तुम्हारी आंखें, तुम्हारे हाथ-पैर, तुम्हारा उठना-बैठना, सब तुम्हारे चोर होने की खबर देने लगते हैं। वह तो तुम अंधों के बीच रहते हो, इसलिए शायद लोगों को पता नहीं चलता। क्योंकि वे खुद, खुद को छिपाने में लगे हैं, तुम्हारी फिक्र किसको है? तुम चोरों के बीच रहते हो, इसलिए तुम्हारी चोरी शायद थोड़ी-बहुत छिप भी जाती है, पता नहीं चलता।
इसीलिए लोग संतों के पास जाने से डरते हैं। इसीलिए लोगों ने संतों का सदा ही बहिष्कार किया। कभी उनको पत्थर मारे, कभी जहर पिलाया, कभी सूली लगा दी। इसके पीछे कोई बहुत महत्वपूर्ण कारण है। इतने लोग नाराज क्यों थे? जीसस से नाराजगी का कारण क्या था? सीधा-सादा आदमी! रहा होगा थोड़ा झक्की। बाकी किसी का कोई नुकसान तो कर नहीं रहा था। इसके लोग पीछे क्यों पड़ गए? इसको मार डालने की इतनी क्या आतुरता?
कुछ अड़चन थी। यह आदमी एक चलता-फिरता आईना था। जो आदमी इसके सामने आया, उसे अपनी शक्ल दिखाई पड़ी। नाराजगी आती है आईने पर। लोग अगर आईने में देखकर उन्हें पता चले कि कुरूप हैं तो आईने को तोड़ देते हैं। क्योंकि वे कहते हैं, यह आईना हमें कुरूप बनाए दे रहा है।
लोग जीसस पर नाराज हो गए। क्योंकि इस जीसस की मौजूदगी में जो-जो उन्होंने छिपाया था, वह उदघोषित होने लगा। इस आदमी की मौजूदगी में छिपाना मुश्किल था।
महावीर को लोगों ने खूब पत्थर मारे, खूब परेशान किया। गांवों से भगाया। कहीं टिकने न दिया। क्या अड़चन? महावीर किसका क्या बिगाड़ रहे थे? किसी से कुछ लेना-देना न था। अपनी मौज में मस्त। दीवाने ढंग के आदमी थे।

रहने देते इस दीवाने को। कौन किसका क्या बिगाड़ रहा था? किसी का कुछ नुकसान नहीं था। लेकिन जो आदमी इसके करीब आया उसे बेचैनी हुई।
तुमने कहानी सुनी? अकबर ने अपने दरबारियों से कहा, यह लकीर मैं खींच देता हूं। इसे बिना छुए छोटा कर दो। वे नहीं कुछ कर पाए। बीरबल उठा, उसने एक बड़ी लकीर उसके पास खींच दी। वह लकीर छोटी हुई बिना छुए।
महावीर या बुद्ध के पास जब तुम खड़े होते हो, अचानक तुम छोटे हो गए। बड़ी लकीर खिंच गई। तुम नाराज होते हो। तुम्हारी नाराजगी तुम्हारे इस दीनभाव से निकलती है कि तुमने मुझे छोटा किया। कुछ किया नहीं किसी ने। तुम्हें छुआ भी नहीं। लेकिन अब महावीर भी क्या करें, उनकी बड़ी लकीर है। मजबूरी है। तुम पास आते हो, तुम्हारी छोटी लकीर! तुम छोटे मालूम पड़ते हो।
कहते हैं, ऊंट पहाड़ों के पास जाने से डरते हैं। डरते हों, क्योंकि तब
तक पहाड़ नहीं होता तब तक वे पहाड़ होते हैं। जब पहाड़ के पास जाते हैं, तब पता चलता है, अरे! हम और कुछ भी नहीं। मगर ऊंट इतने नासमझ नहीं हैं कि पहाड़ों को सूली पर लटका दें। कि पहाड़ों को जहर पिला दें। मगर आदमी बड़ा पागल है।
हम नाराज रहे सुकरात पर, जीसस पर, बुद्ध पर, महावीर पर। हमारी नाराजगी
का कारण है। हमारे अंधेरे पर्दे, हमारी अंधेरी शकलें, हमारे घाव भरे हुए चित्त, हमारी बहती मवाद, हमारी सड़ांध, सब उनके सामने आकर खुलने लगती है। वहां छिपाना मुश्किल हो जाता है। उनके सामने हम आकर बेपर्दा होने लगते हैं। और वे हमसे कहते हैं, बेपर्दा हो जाओ। तो एक दिन ऐसी घड़ी भी आएगी, जब सब पर्दे गिर जाएंगे, तब तुम पाओगे कि तुम्हारे भीतर वह छिपा है, जो सदा कुंआरा है; जो सदा पवित्र है; जिसको रुग्ण होने का कोई उपाय नहीं और जिसके अशुद्ध होने की कोई संभावना नहीं।
लेकिन उस तक जाने के लिए, बड़ी बीमारियां हमने पाल रखी हैं, उनको गिराना होगा। उन बीमारियों को हमने बड़े साज-संवारकर रखा है। बड़ा आगंन छवा, लिपा पुताकर रखा है। उनके लिए हमने बड़ी सुविधा जुटाकर रखी है, क्योंकि बीमारियों को हमने मित्र समझा है।
महावीर कहते हैं, आत्मा ही शत्रु है अपनी, आत्मा ही मित्र। अगर शत्रुओं को बसाने लगे अपने पास--क्रोध, मान, लोभ, माया, मोह--तो आत्मा अपनी ही शत्रु हो जाती है। मित्रों को बसाने लगे तो मित्र हो जाती है।
महावीर की जो ऊंचाई है, वह तुम्हारी भी है। जीसस की जो पवित्रता है, वह तुम्हारी भी है। कृष्ण का जो आनंद है, वह तुम्हारा भी है। लेकिन तुम्हें दावा करना होगा। और इस दावे के लिए तुम्हें छोटे दावे छोड़ने होंगे। तुम्हें क्षुद्र के दावे छोड़ने होंगे, अगर विराट का दावा करना है। तुम्हें जमीन से आंखें उठानी होंगी, अगर आकाश के मालिक बनना है।
उसकी ऊंचाई के सन्मुख हिमगिरि नगण्य
उसकी नीचाई के सन्मुख नीचा पाताल
उसकी असीमता के सन्मुख आकाश क्षुद्र
उसकी विराटता के सन्मुख अति क्षुद्र काल
है आंख उसकी वर्षा ही करती बादल से
है उसकी ही मुस्कान थिरकती फूलों पर संगीत उसी का गूंज रहा है कोयल में
हैं बिंधे उसी के स्वप्न नुकीले सूलों पर सौंदर्य सकल यह उसका ही प्रतिबिंब रूप है स्वर्ग उसी की सुंदरतम कल्पना नीड़ है नर्क उसी की ग्लानि घृणा का गेह ग्राम
जग की हलचल उसके ही मन की भाव-भीड़
वह अणु में बंदी होकर भी है मुक्त सदा
वह जल में रहकर भी जल से है बहुत दूर
जलकर भी ज्वाला में न राख बनता है वह
पाषाणों में दबकर भी होता नहीं चूर
वह विराट, वह निरंतर शुद्ध, वह शाश्वत शुद्ध, वह सदा पवित्र तुम्हारा स्वभाव है। लेकिन हटाओ पर्दे।
वह अणु में बंदी होकर भी है मुक्त सदा

वह जल में रहकर भी जल से है बहुत दूर
जलकर भी ज्वाला में न राख बनता है वह
पाषाणों में दबकर भी होता नहीं चूर
पर उसकी घोषणा के पहले, उस पर दावा करने के पहले तुमने अब तक जो दावे किए हैं, वे सब छोड़ देने होंगे।
संसार के ऊपर तुमने जो दावे किए हैं, उनको छोड़ देना संन्यास है। संसार
को छोड़ देना संन्यास नहीं है, संसार के ऊपर किए गए दावों को छोड़ देना संन्यास है। और इन दावों को छोड़कर कुछ खोता नहीं। क्योंकि इन दावों से कुछ मिलता नहीं। इन दावों को छोड़कर ही कुछ मिलता है। क्योंकि इन दावों के कारण ही कुछ छिपा है और ढका पड़ा है।
जो तुम्हारा है उसे पाने की दिशा में बढ़ो। और जो तुम्हारा नहीं है, जानो कि तुम्हारा नहीं है। न धन तुम्हारा है, न पद तुम्हारा है, न प्रतिष्ठा तुम्हारी है। जो भी बाहर मिल सकता है उसमें कुछ भी तुम्हारा नहीं है। तुम आए खाली हाथ, तुम जाओगे खाली हाथ।
तुम इस बात को जिस दिन समझ लोगे कि खाली हाथ आना, खाली हाथ जाना; थोड़े दिन बीच में हाथ का भर लेना संसार से, कुछ सार नहीं रखता है। उसी दिन तुम उसकी तलाश में निकल पड़ोगे, जो तुम्हारे भीतर है जन्म के पूर्व; और जो तुम्हारे भीतर होगा मृत्यु के बाद। और जो तुम्हारे भीतर बह रहा है अभी भी, इस क्षण भी। इस क्षण भी तुम भीतर मुड़ो तो उसी सागर से मिलन हो जाता है। महावीर की व्याख्या में ये छह पर्दे तुम हटा दो, ये छह चक्र तुम तोड़ दो
और तुम्हारी ऊर्जा सातवें चक्र में प्रविष्ट हो जाए तो तुम्हारे भीतर उस कमल का जन्म होगा, जो जल में रहकर भी जल को छूता नहीं।
उस पवित्रता को जो नहीं खोजता, वही अधार्मिक है। उस पवित्रता की जो खोज में निकलता है, वही धार्मिक है। शब्दों में बहुत मत उलझना। उस पवित्रता को कुछ लोग परमात्मा कहते हैं, कहें, सुंदर शब्द है। कुछ लोग उस पवित्रता को आत्मा कहते हैं, कहें; सुंदर शब्द है। कुछ लोग उसे आत्मा भी नहीं कहना चाहते, परमात्मा भी नहीं कहना चाहते, शून्य कहते हैं; बड़ा सुंदर शब्द है।
कहो ब्रह्म, कहो शून्य, लेकिन एक बात स्मरण रखो कि जो बाहर है, वह तुम्हारा नहीं है। जो भीतर है, जो तुम हो, बस वही केवल तुम्हारा है। और शेष सब पर्दे गिरा दो। तो इस शुद्धतम की प्रतीति सच्चिदानंद से भर जाती है। सच्चिदानंद होकर भी हम भिखारी बने हैं। एक झूठा सपना देख रहे हैं। व्यर्थ मांग रहे हैं उसे, जो हमें मिला ही हुआ है। खोज रहे हैं उसे, जो हमारे भीतर ही पड़ा है। उसकी तलाश कर रहे हैं... ।
तुमने कभी देखा? कभी-कभी हो जाता है। आदमी चश्मा लगाए चश्मा खोजने लगता है। भूल ही जाता है कि चश्मा तो आंख पर चढ़ा है। भूल ही जाता है कि उसी चश्मे से मैं चश्मे को खोज रहा हूं।
ऐसे मौके तुम्हें भी आए होंगे। इस जीवन में कुछ ऐसा ही घटा है। जो है, भूल गया है। सिर्फ विस्मरण हुआ है, उसे हमने खोया नहीं है। मात्र स्मरण पर्याप्त है। स्मरण मात्र से उसे पाया जा सकता है।
धर्म है--खोज नहीं, पुनर्खोज। पाए हुए की खोज; मिले हुए की खोज। जो प्राप्त है उसकी प्राप्ति का उपाय।
लेकिन इन छह पर्दों से लड़ना होगा। कठिन नहीं है लड़ाई। क्योंकि हमारे
ही सहयोग से पर्दे खड़े हैं। सहयोग के हटते ही गिरने शुरू हो जाते हैं।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग दो
बाईसवां प्रवचन

पिया का गांव

पहला प्रश्नः मैं जब प्रथम-प्रथम आपको मिली थी तब कुछ भी तो पता नहीं था। न मालूम आपने कहां से कहां चला दिया! एकांत अब प्रीतिकर लगता है। अब तो न कहीं जाना है, न आना। न कुछ होना है और न कुछ जानना है। बहुत कुछ पाया, जिसके योग्य न थी। बस, अब तो अलविदा और प्रणाम।
न जाने किधर आज मेरी नाव चली रे
चली रे चली रे मेरी नाव चली रे
कोई कहे यहां चली, कोई कहे वहां चली
मैंने कहा पिया के गांव चली रे

साधारणतः किसी को भी पता नहीं है कि कहां जा रहे हैं। जा रहे हैं जरूर। गति से जा रहे हैं, शक्ति से जा रहे हैं, लेकिन स्पष्ट नहीं है कि कहां जा रहे हैं। कहां से आ रहे हैं, इसका भी कुछ पता नहीं है।
कहां से आना, कहां से जाना तो दूर की बातें हैं, यह भी ठीक पता नहीं है
कि कौन हैं। कौन है यह जो तुम्हारे भीतर चल रहा, जी रहा, सुख भोग रहा, दुख भोग रहा, चिंतित होता है, ध्यान करता है--कौन छिपा है तुम्हारे भीतर? मनुष्य की स्थिति बड़ी विक्षिप्त है। पशु-पक्षियों की स्थिति भी बेहतर है। उन्हें भी पता नहीं कि कौन हैं, कहां जा रहे हैं। मनुष्य की विडंबना यह है कि उसे इतना पता है कि पता नहीं कौन है! इतना पता है कि पता नहीं कहां जा रहे हैं।
पशु-पक्षी ऐसे चल रहे हैं, जैसे बेहोश। आदमी होश में नहीं है, बेहोशी
और होश के बीच में लटका है। आदमी त्रिशंकु की स्थिति में है। और आदमी की स्थिति में से पार होने के दो ही उपाय हैं--या तो गिर जाओ वापस बेहोशी में, जो कि असंभव है। हो जाओ पशु-पक्षी पुनः, जो कि असंभव है। क्योंकि विकास की किसी भी स्थिति से वापस नहीं लौटा जा सकता है। जो जान लिया, जान लिया। उसे फिर अनजाना नहीं किया जा सकता। जहां तक आ गए हैं, यह तो हो सकता है आगे न जाएं, लेकिन पीछे नहीं जा सकते। अटके रह जा सकते हैं। और वही अटकाव बेचैनी और अशांति बनता है।
और दो ही उपाय हैंः या तो पूरी बेहोशी हो, कि यह भी न पता चले कि मैं कौन हूं? कि मुझे पता नहीं कि मैं कौन हूं। पता का भी पता न चले। बेहोशी की भी याद न आए। थोड़ी-सी भी होश की किरण न हो।
ऐसी आदमी चेष्टा करता है। शराब पीकर कभी चेष्टा करता है कि भूल जाएं सब। वह चेष्टा फिर से पशु हो जाने की चेष्टा है। कभी धन की दौड़ में, कभी पद की दौड़ में--वे भी शराबें हैं; उनमें कभी आदमी अपने को भुला लेना चाहता है, लेकिन भूल नहीं पाता। शराब कितनी देर साथ देगी? सुबह फिर स्मरण वापस लौट आता है--और भी प्रगाढ़ होकर, और भी चुभता हुआ, और भी धार लेकर।
पद की दौड़, धन की दौड़, यश की दौड़ एक न एक दिन टूटती है। वह नशा भी एक दिन उखड़ता है। एक दिन पद पर पहुंचकर पता चलता है, कहां पहुंचे? चले बहुत, पहुंचे कहीं भी नहीं। धन जोड़कर एक दिन पता चलता है कि जो जोड़ लिया, वह बाहर का बाहर पड़ा रह जाएगा। और हम भीतर तो खाली के खाली रह गए। यह जोड़ कुछ जोड़ न हुआ। यह धन अपना न हो सका तो "धन" कैसे हो सकेगा? मौत छीन लेगी, जो छिन जाएगा उसे धन क्या कहना? जो छिन जाएगा वह विपत्ति हो सकती है, संपत्ति नहीं।
एक विकल्प है कि आदमी लौट जाए, जो कि हो नहीं सकता। झूठा विकल्प है। भ्रामक विकल्प है। रास्ता वहां से जाता नहीं, सिर्फ दिखाई पड़ता है। दिखाई पड़ता है क्योंकि हम वहां से होकर आए हैं।
तुम्हें पता है जो बीत गया कल, उसका। जो बीत गया परसों, उसका। यद्यपि लौट नहीं सकते वहां। जिसका पता है वहां लौट नहीं सकते। जाना तो पड़ेगा उस कल में, जिसका अभी पता नहीं है। जाना पड़ेगा भविष्य में, अनजान में। जो जाना-माना है अतीत, वहां लौटा नहीं जा सकता। समय को पीछे की तरफ लौटाया

नहीं जा सकता। घड़ी के कांटे पीछे की तरफ चलाए नहीं जा सकते। घड़ी के चला लो, जीवन के नहीं चलाए जा सकते। मगर परिचय उससे है, जो बीत गया। परिचय उससे है, जो अब कभी न होगा। और उससे कोई परिचय नहीं है, जो होने जा रहा है।
पशुता मनुष्यता का अतीत है, परिचित है। इसलिए तो आदमी शराब पी लेता है। इसलिए तो पद, धन की दौड़ में लग जाता है। भुलाने के हजार उपाय खोज लेता। फिर शराब हो, कि संभोग हो, कि संगीत हो, कहीं भी भुलाने का उपाय आदमी जब खोजता है कि अपने होश की छोटी-सी किरण को डुबा दूं; यह छोटा-सा दीया भी बुझ जाए, गहन अंधकार हो जाए, तो कम से कम द्वंद्व तो मिटे! अंधेरा ही बचे। अंधेरे का ही अद्वैत सही, लेकिन अद्वैत तो हो जाए। एक तो बचे! दो की दुविधा तो न रहे। पर यह हो नहीं पाता। लाख बुझाओ इस किरण को, यह बुझेगी नहीं।
तो दूसरा उपाय है--और दूसरा ही केवल उपाय है--कि पूरे जागरूक हो जाओ।
जैसे पूरी बेहोशी में एक सुख है क्योंकि अखंड रूप से अद्वैत है, अंधेरे का है। वैसे ही पूरे होश में महाआनंद है, महासुख है; वह भी अखंड एकता का है।
कोई अंधेरा न बचा। भीतर सारा अंधकार समाप्त हो गया।
तो जब तुम मेरे पास आते हो तो तुम्हें भी साफ नहीं होता किसलिए आए हो।
तुम्हें भी साफ नहीं होता, क्या घटेगा? तुम्हें भी साफ नहीं होता कि तुम्हें मैं कहां ले चलूंगा? हो भी नहीं सकता साफ। क्योंकि पता तो हमें उसी का होता है, जो हो चुका। जो नहीं हुआ है उसका तुम्हें पता नहीं होता।
सदगुरु का इतना ही अर्थ है कि जो तुम्हारा भविष्य है वह उसका अतीत है।
जो तुम्हें अभी होना है, उसके लिए हो चुका।
इसे समझ लेना। सदगुरु का बस इतना ही अर्थ है कि जो तुम्हारा भविष्य है, वह उसका अतीत है। वह स्वयं तो अपने अतीत में नहीं जा सकता, लेकिन तुम्हें तुम्हारे भविष्य की झलक दे सकता है। वह उस रास्ते से गुजर चुका, जिससे तुम्हें अभी गुजरना है। वह हो चुका फूल, तुम अभी बीज हो। बीज को पता भी कैसे हो सकता है?
ठीक पूछा है कि "मैं जब प्रथम-प्रथम आपको मिली थी तब कुछ भी तो पता नहीं था।"
अगर कुछ पता होता तो पहली तो बात, मुझसे मिलना मुश्किल हो जाता। क्योंकि जिनको पता है, वे यहां आते नहीं। जिनको पता है, उनका दंभ उन्हें यहां न आने देगा। उनका ज्ञान ही बाधा है। पता ही होता, तब तो ठीक था। पता भी नहीं है, सिर्फ भ्रांति है कि पता है। गीता पढ़ ली है, कुरान पढ़ लिया है, धम्मपद पढ़ लिया है, महावीर के वचन कंठस्थ कर लिए हैं। पता बिल्कुल नहीं है। महावीर को पता रहा होगा, महावीर के वचन याद कर लेने से तुम्हें पता नहीं हो जाएगा। कृष्ण को मालूम रहा होगा, लेकिन गीता कंठस्थ होने से तुम्हें मालूम नहीं हो जाएगा।
तुम्हारा जीवंत अनुभव होगा तो ही मालूम होगा।
इसलिए शास्त्र ज्ञान दे सकता है। और ज्ञान बाधा बन सकता है। बोध तो केवल शास्ता से मिलता है, शास्त्र से नहीं। शास्ता का अर्थ है, जीवित शास्त्र। जिसको हुआ है ऐसे किसी आदमी को खोज लेना। उसके माध्यम से ही शास्त्रों का अर्थ और अभिप्राय तुम्हारे लिए खुलेगा।
और ऐसा आदमी खोजना हो तो पहली शर्त है कि अपने ज्ञान की भ्रांति छोड़ देना। गुरु से मिलना हो ही नहीं सकता, अगर शिष्य को थोड़ा भी ख्याल हो कि मुझे मालूम है। जितना मालूम है उतनी ही दीवाल रहेगी। उतनी ही ओट रहेगी। शिष्य का अर्थ ही है इस बात की घोषणा, कि मुझे मालूम नहीं। इस बात की घोषणा, कि मैं अज्ञानी हूं।
जब तुम अज्ञानी किसी के समक्ष अपने को स्वीकार कर लेते हो तो क्रांति
के लिए तत्पर हो गए, तैयार हो गए। अहंकार तुमने हटाकर रख दिया।
प्रश्न पूछा है तरु ने। खतरा था; क्योंकि पंडितों का सत्संग उसने किया है मुझसे पहले। साधु-संन्यासियों के पास गई है। स्वामियों के प्रवचन सुने हैं। खतरा था। ज्ञान उसके पास था। लेकिन उसने हिम्मत की और अज्ञानी होने के लिए राजी हुई। उसी हिम्मत से घटना घटी।
डर था कि वह अपने ज्ञान को पकड़ लेती। जो सुना-समझा था उसे पकड़ लेती तो मुझसे मिलना न हो पाता।

मेरे पास भी रहकर बहुत हैं, जो मुझसे वंचित रह जाएंगे। अगर ज्ञान की जरा भी दीवाल रही तो मैं यहां चिल्लाता रहूंगा, आवाज तुम तक पहुंचेगी नहीं। मैं रोज-रोज तुम्हें समझाता रहूंगा, तुम रोज-रोज चूकते रहोगे। मैं रोज-रोज दोहराता रहूंगा और तुम बहरे... और बहरे होते जाओगे। ज्ञान कान में भरा हो तो कान सुनने में असमर्थ हो जाते हैं। ज्ञान आंख में भरा हो तो आंख देखने में असमर्थ हो जाती है।
अज्ञान को स्वीकार करने में एक निर्दोषता है।
कठिन था। तरु को पता था। बहुत-सी बातें पता थीं। और बहुत मुश्किल होता
है कि जो तुम्हें पता है, उसे हटाकर रख देना। उसे ही मैं त्याग कहता हूं। धन, पद, प्रतिष्ठा, इनका त्याग कुछ भी नहीं है, ज्ञान का त्याग ही वास्तविक त्याग है। क्योंकि ज्ञान से जितना अहंकार भरता है, उतना किसी चीज से नहीं भरता। ज्ञान जैसी अकड़ देता है, रीढ़ को जैसा सख्त, पथरीला कर देता है, वैसी कोई चीज नहीं करती।
छोड़ सकी तो पाने का रास्ता बना। झुक सकी तो भरने का उपाय हुआ।
पूछा हैः "न मालूम आपने कहां से कहां चला दिया।" क्योंकि जो वह सोचकर आयी होगी, उस तरफ तो मैं नहीं ले गया। क्योंकि तुम जो सोचकर आते हो, वह तो गलत ही है। "तुम" सोचकर आते हो, तुम्हारा सोचना तुम्हारे अतीत का ही प्रतिफलन होता है। अन्यथा हो भी नहीं सकता। तुम जो सोचकर आते हो, वह तुम्हारी अतीत की ही कुछ पुनरावृत्ति होता है। जो तुमने जाना है, उसी को तो मांगोगे। जो तुमने पहले जाना है, थोड़ा सुधारकर मांग लोगे। जो सुख तुम्हें पहले मिले हैं, थोड़ी तरमीम, संशोधन करके मांग लोगे।
अभिनव को कैसे मांगोगे? जो तुमने जाना ही नहीं, जीया ही नहीं, उसे कैसे मांगोगे?
इसलिए जो जानता है, थोड़ा-सा भी जानता है, थोड़ा-सा भी समझता है, वह अड़चन में पड़ जाता है। उसकी प्रार्थना कलुषित हो जाती है। उसकी पूजा में उसके ज्ञान की छाया पड़ जाती है। उसकी पूजा की शुभ्रता उसके ज्ञान की कालिमा से दब जाती है।
तो जब तुम मंदिर जाओ, पूजा करो, प्रार्थना करो तो कुछ मांगना मत। क्योंकि तुम जो मांगोगे, वह गलत होगा। तुम जो मांगोगे वह गलत ही हो सकता है। काश! तुम्हें ठीक का ही पता होता तो मंदिर जाने की जरूरत ही न होती।
तुम्हें ठीक का पता नहीं है। इसलिए तुम्हारी मांग में ही भूल होगी।
तुम वही मांगोगे, जो तुम पहले मांगते रहे हो। तुम फिर-फिर दोहराकर उसी रास्ते से घूमते रहोगे, जिस पर तुम पहले घूमते रहे हो। तुम कोल्हू के बैल की तरह चलते रहोगे।
इसलिए अगर थोड़ी समझ हो तो मांगना मत। झोली फैलाकर खड़े हो जाना, मांगना मत। हृदय खोलकर खड़े हो जाना, मांगना मत। यह मत कहना कि यह दे, वह दे। इतना ही कहनाः झोली खुली है। तू देगा तो हम स्वीकार करेंगे आनंद से, अहोभाव से। तू नहीं देगा तो हम समझेंगे, यही तेरा देना है। तू झोली खाली रखेगा तो हम समझेंगे, यही हमारी झोली का भरा होना है। खालीपन से ही तूने हमारी झोली भरी है। तू चाहता है, हम खालीपन में जीएं। तो हम नाचेंगे, गुनगुनाएंगे, आनंदित होंगे; मांगेंगे नहीं।
ध्यान रखना, जिसने प्रार्थना में मांगा, उसकी प्रार्थना तो खराब ही
हो गई। उस मांगने के कारण प्रार्थना तो प्रार्थना ही न रही। प्रार्थना में आदमी अपने को देता है, मांगता नहीं।
तो जो मेरे पास आए हैं और जिनको ख्याल है कि कुछ मिल जाए; और जिनकी जितनी स्पष्ट धारणा है कुछ पाने की, उतनी ही अड़चन है। तो बार-बार उनके मन में यही अपेक्षा गूंजती रहती है--अभी तक मिला नहीं, अभी तक मिला नहीं। और जो मिल रहा है, वह उन्हें दिखाई नहीं पड़ता। क्योंकि उनकी आंख में उनकी मांग भरी है। वे अपनी ही मांग को दोहराए चले जा रहे हैं। मांग अंधा कर देती है।
तरु ने कुछ मांगा नहीं। जो उसे मैंने कहा, उसने किया है। कहा, गीता पढ़
तो गीता पढ़ी। कहा, उपनिषद पढ़ तो उपनिषद पढ़ा। कहा, चल जिन-सूत्र पढ़ तो जिन-सूत्र पढ़े। कहा, धम्मपद पढ़ तो धम्मपद पढ़ा। कहा, भजन गा भजन गाए। जो उसे कहा,

उसने किया है। मांगा उसने कुछ नहीं। जो करने को कहा है, उसे इंकार नहीं किया। उसने सरलता से मेरे हाथों में अपने को छोड़ा। उसके परिणाम होने स्वाभाविक हैं। उसके महत परिणाम होते हैं।
तो यह संभव हो सका कि जिसका उसे ख्याल भी नहीं रहा होगा, जो वह कभी सपने में भी मांग नहीं सकती थी, उस तरफ यात्रा शुरू हुई।
जब तुम अपने अतीत से कुछ भी दोहराना नहीं चाहते, तो अभिनव का पदार्पण होता है। परमात्मा सदा नया है। सत्य सदा नया है। सत्य इतना नया है कि उसकी कोई धारणा भी नहीं की जा सकती। और एक बार तुम्हें सत्य के इस नयेपन का अनुभव हो जाए तो तुम सब मांग छोड़ देते हो। तब एक नई प्रतीति होनी शुरू होती है कि इतना मिल रहा है और हम याचक बने हैं! हमने मांगा यहीं भूल हो गई।
फिर तुम जो मांगते हो, अगर मिल जाए तो भी धन्यवाद पैदा नहीं होता। क्योंकि जो तुमने मांगा है, तुम सोचते हो, तुमने अर्जित किया। लोग मांगने में भी अगर कई दिन तक मांगते रहें तो धीरे-धीरे अधिकारी हो जाते हैं। वे सोचने लगते हैं, हमने इतनी प्रार्थना की इसलिए मिला। प्रार्थना की इसलिए! भिखमंगा भी जब सड़क पर आधा घंटे मांगता रहता है और तुम देते हो तो धन्यवाद थोड़े ही देता है! वह जानता है कि आधा घंटे चीखे-चिल्लाए, श्रम किया। और अगर तुम रोज-रोज देने लगो तो धन्यवाद देना तो दूर, अगर तुम किसी दिन न दोगे तो वह नाराज होगा।
रथचाइल्ड के संबंध में मैंने सुना है--यहूदी धनपति--एक भिखमंगे को वह रोज हर महीने पहली तारीख को सौ डालर देता था। वह भिखमंगा उसे जंच गया। एक दिन बगीचे में उसी बेंच पर आकर बैठ गया था। दया आ गई। कोई रथचाइल्ड के पास कमी न थी। उसने कहा कि तू सौ डालर हर महीने एक तारीख को आकर ले जाया कर। वह भिखमंगा इस तरह से उसके दफ्तर में आने लगा, जैसे लोग अपनी तनख्वाह लेने जाते हैं। अगर दस-पांच मिनट भी उसको रुकना पड़ता तो वह नाराज हो जाता, चीख-पुकार मचाने लगता।
कोई दस साल तक ऐसा चला। एक दिन आया लेने तो जो क्लर्क उसे देता था--और
भी भिखमंगों को रथचाइल्ड बांटता था। बहुत धन उसने बांटा--उसने कहा कि इस तारीख से अब तुम्हें पचास डालर ही मिल सकेंगे। उसने पूछा, क्यों? सदा मुझे सौ मिलते रहे। सालों से मिलते रहे। यह फर्क कैसा! उस क्लर्क ने कहा कि ऐसा करें, मालिक का धंधा बहुत लाभ में नहीं चल रहा है। और उनकी लड़की की शादी हो रही है। और उस लड़की की शादी में बहुत खर्च है। तो उन्होंने सभी दान आधा कर दिया है।
वह तो एकदम टेबल पीटने लगा। उसने कहा बुलाओ रथचाइल्ड को, कहां है! मेरे पैसे पर अपनी लड़की की शादी? एक गरीब आदमी का पैसा काटकर लड़की की शादी में मजा, गुलछर्रे उड़ाएगा? बुलाओ, कहां है!
रथचाइल्ड ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि मैं गया और मुझे बड़ी हंसी आयी। लेकिन मुझे एक बात समझ में आयी कि यही तो मैं परमात्मा के साथ करता रहा हूं।
यही तो हम सबने परमात्मा के साथ किया है। जो मिला है उसका हम धन्यवाद नहीं देते। उस दस साल में उसने कभी एक दिन धन्यवाद न दिया। लेकिन पचास डालर कम हुए तो वह नाराज था, शिकायत थी। और आगबबूला हो गया। उसके पचास डालर काटे जा रहे हैं?
अगर तुमने मांगा तो पहली तो बात, मिलेगा नहीं। और शुभ है कि नहीं मिलता क्योंकि तुम जो भी मांगते हो, गलत मांगते हो। तुम सही मांग ही नहीं सकते। तुम गलत हो। गलत से गलत मांग ही उठ सकती है। नीम में केवल नीम की निबोरियां ही लग सकती हैं, आम के सुस्वादु फलों के लगने की कोई संभावना नहीं है। जो तुम्हारी जड़ में नहीं है, वह तुम्हारे फल में न हो सकेगा। तुम गलत हो तो तुम जो मांगोगे वह गलत होगा।
तो पहली तो बात--मिलेगा नहीं। और शुभ है कि नहीं मिलता। परमात्मा की बड़ी अनुकंपा है कि तुम जो मांगते हो, वह नहीं मिलता। इसे कभी सोचना बैठकर कि तुमने जो-जो मांगा था अगर मिल जाता तो कैसी मुसीबत में पड़ते!
लेकिन कभी-कभी ऐसा होता है कि मिल जाता है। तो जो मिल जाए तो भी धन्यवाद पैदा नहीं होता, कृतज्ञता पैदा नहीं होती, और जिस प्रार्थना का

परिणाम कृतज्ञता न हो, वह प्रार्थना प्रार्थना नहीं है। प्रार्थना का पहला स्वाद भी कृतज्ञता है और अंतिम स्वाद भी कृतज्ञता है। एक गहरा अनुग्रह का भाव!
तो जिस प्रार्थना के पीछे अनुग्रह का स्वाद छूट जाए, समझ लेना कि प्रार्थना ठीक थी; पहुंच गई परमात्मा के हृदय तक। पूरी हुई या नहीं, यह सवाल नहीं है। अगर अनुग्रह का भाव पैदा कर गई तो पूरी हो गई।
तो जो मेरे पास आए हैं, अगर उनकी कुछ मांग है, तो एक तो मांग बाधा बनेगी। मुझसे मिलन न हो पाएगा। अगर मिल भी गए, उनकी मांग पूरी भी हो गई तो कृतज्ञता पैदा न होगी। असंभव है। और अगर कृतज्ञता पैदा न हुई तो आस्तिकता पैदा नहीं होती।
परमात्मा को चाहे भूल जाओ, कृतज्ञता को मत भूलना। क्योंकि कृतज्ञता
का संचित जोड़ ही परमात्मा है। जितने तुम अनुग्रह के भाव से भरते जाते हो, उतना ही तुम्हारे परमात्मा का मंदिर निर्मित होता चला जाता है।
"... न मालूम आपने कहां से कहां चला दिया। एकांत अब प्रीतिकर लगता है।" एकांत प्रीतिकर लगे तो प्रार्थना शुरू हुई।
हमें एकांत प्रीतिकर क्यों नहीं लगता? एकांत को हम कहते हैं, अकेलापन, लोनलीनेस। एकांत को हम एकांत थोड़े ही कहत हैं! अलोननेस थोड़े ही कहते हैं! एकांत को हम कहते हैं, अकेलापन। अकेलेपन में लगता है, दूसरे की कमी है। दूसरा होना चाहिए था, और है नहीं। अकेलेपन का अर्थ है शिकायत। अकेलेपन का अर्थ है कि अभाव अनुभव हो रहा है दूसरे की मौजूदगी का। जब तुम कहते हो अकेलापन लग रहा है, तो क्या अर्थ हुआ इसका? इसका अर्थ हुआ कि दूसरा अनुपस्थित है, उसकी अनुपस्थिति खल रही है।
अकेलापन नकारात्मक है; एकांत विधायक है।
एकांत का अर्थ है, अपने होने में आनंद आ रहा है। अकेलेपन का अर्थ है, दूसरे के न होने में दुख मालूम हो रहा है। दूसरे की अनुपस्थिति चुभ रही है। एकांत का अर्थ है, अपने होने में रस बह रहा है।
जब अकेला आदमी कमरे में बैठा हो तो उदासी से घिरा होता है। और जब एकांत में बैठा हो तो उसके चारों तरफ आनंद की आभा होती है।
भाषाकोश में तो दोनों शब्दों का एक ही अर्थ लिखा है, लेकिन जीवन के कोश में बड़ा भेद है। इसलिए भाषाकोश पर बहुत मत जाना। भाषा को बहुत जाननेवाले लोग अक्सर जीवन से वंचित रह जाते हैं। अगर तुम भाषाकोश में देखोगे, डिक्शनरी में देखोगे तो एकांत, एकाकी, अकेला, सबका एक ही अर्थ है। भाषाकोश की तो अंधेर नगरी है। वहां तो सभी चीज एक भाव बिक रही है। "अंधेर नगरी बेबूझ राजा, टके सेर भाजी, टके सेर खाजा।" सभी एक भाव बिक रहा है। जीवन का कोश बड़ा अलग है। फासले बड़े सूक्ष्म हैं। महावीर एकांत में होते हैं; तुम जब होते हो, अकेले होते हो। तुम जब होते हो तब तुम सोचते होते हो कि दूसरे को कहां खोज लूं! पत्नी को, पति को, मित्र को, बेटे को, पिता को, भाई को, समाज को--दूसरे को कैसे खोज लूं? सच तो यह है कि जब तक दूसरा मौजूद होता है, तब तक तुम्हें दूसरे की याद ही नहीं आती। दूसरे की याद ही तब आती है, जब तुम अकेले होते हो।
तुम्हारे अकेले में बड़ी भीड़ खड़ी होती है। भाषाकोश बनानेवाले को वह भीड़ दिखाई नहीं पड़ती क्योंकि वह भीड़ तो सूक्ष्म है और मन की है। तुम जाकर पहाड़ पर बैठ जाओ। तुम अकेले न जाओगे। अकेले दिखाई पड़ोगे, तुम्हारे भीतर एक भीड़ चल रही है।
जब बायजीद अपने गुरु के पास पहली दफा गया और उसने जाकर चरणों में सिर झुकाया और कहा कि मैं आ गया हूं सब छोड़कर अकेला तुम्हारे चरणों में। गुरु ने कहा, बकवास बंद। भीड़ को बाहर छोड़कर आ। उसने लौटकर पीछे दिखा कि कोई आ तो नहीं गया पीछे? कोई भी न था। उस मस्जिद में गुरु अकेला बैठा था। उसने चारों तरफ देखा। गुरु ने कहा, यहां-वहां मत देख। आंख बंद कर; वहां देख। घबड़ाकर उसने आंख बंद की, निश्चित ही वहां भीड़ ख.ड़ी थी। जिस पत्नी को रोते छोड़ आया था, वह अभी भी रो रही थी। जिन बच्चों को विदा कर आया था, माफी मांग आया था कि मुझे जाने दो, वे अब भी बिसूरते खड़े थे। जिन मित्रों से कह आया था गांव के बाहर आकर कि अब मेरे पीछे मत आओ, अब मुझे अकेला छोड़ दो, वे

साथ ही चले आए थे। बाहर से तो नहीं, भीतर आ गए थे। भीतर भीड़ थी। बायजीद को दिखा कि गुरु ने ठीक कहा। भीड़ तो मैं साथ ले आया हूं और कहता हूं, मैं अकेला आया हूं!
अकेला होना तो बड़ी उपलब्धि है। मगर उस अकेलेपन का अर्थ होता है एकांत। जब तुम्हें अकेले में आनंद आने लगे तो एकांत बरसा। अकेले में आनंद कब आता है? अकेले में आनंद तभी आता है, जब परमात्मा की थोड़ी झलक मिलने लगे; नहीं तो नहीं आता। अकेले में आनंद तभी आता है, जब वस्तुतः तुम अकेले नहीं होते हो, परमात्मा तुम्हें घेरे होता है।
प्रसिद्ध ईसाई फकीर स्त्री हुई--थेरेसा। एक दिन उसने गांव में घोषणा
की कि मैं एक बड़ा चर्च बनाने जा रही हूं। लोग हंसने लगे। वह भिखमंगी थी। उसके पास कुछ भी न था। लोगों ने पूछा, तेरे पास है क्या? चर्च बनाएगी कैसे? चर्च ऐसे कोई आकाश से नहीं बनता। और तू, सुना है कि सोचती है, दुनिया का सबसे सुंदर चर्च बन जाए! कोई खजाना मिल गया है तुझे?
उसने खीसे से दो पैसे निकाले और उसने कहा कि ये मेरे पास हैं। लोग हंसने लगे। उन्होंने कहा कि हमें शक तो सदा से था कि तू पागल है। दो पैसे में चर्च? उसने कहा, ये दो पैसे, मैं और धन ईश्वर। उसको क्यों भूले जाते हो? वह जो मुझे चारों तरफ से घेरा है, उसे भी जोड़ में रखो। अकेले दो पैसे और थेरेसा से तो चर्च नहीं बन सकता, यह सच है। लेकिन थेरेसा, दो पैसे और धन ईश्वर; चर्च बनेगा या नहीं, यह कहो। पागल मैं हूं, या पागल तुम हो?
लेकिन उन लोगों की बात भी ठीक थी। उनका गणित साफ-सुथरा था। उन्हें तो
दो पैसे, और गरीब औरत थेरेसा दिखाई पड़ रही थी। वह जो परमात्मा उसे घेरे था, वह तो केवल उसे ही दिखाई पड़ रहा था। चर्च बना। और कहते हैं, दुनिया का सुंदरतम चर्च बना। उस जगह, जहां थेरेसा ने वे दो पैसे लोगों को दिखाए थे, वह चर्च प्रमाण की तरह खड़ा है कि अगर परमात्मा का साथ हो तो तुम अकेले नहीं हो।
अकेले होकर अकेले नहीं हो, अगर परमात्मा का साथ हो। अगर परमात्मा का साथ न हो तो तुम भीड़ में भी अकेले हो। मित्र हैं, प्रियजन हैं, संबंधी हैं, सगे हैं। कभी ख्याल किया, लेकिन कहीं अकेलापन मिटता है? कंधे से कंधे लगे हैं। भीड़ में, जमात में खड़े हो, लेकिन अकेले हो। आदमी भीड़ में भी हो तो अकेला है। भक्त अकेला भी हो तो अकेला नहीं है।
तो अगर एकांत में आनंद आने लगा, एकांत में सुगंध आने लगी, एकांत में धूप जलने लगी, एकांत में रस बहने लगा तो शुभ लक्षण है। उसका अर्थ है, अब अकेले में भी अकेलापन नहीं है। अब अकेले में भी कुछ भरापन है। अब अकेला भी खालीपन नहीं है, अनुपस्थिति नहीं है। बल्कि किसी की अप्रगट, अदृश्य उपस्थिति का अनुभव होने लगा है।
"एकांत अब प्रीतिकर लगता है... ।"
ध्यान कहो, प्रार्थना कहो, तभी शुरू होती है जब एकांत प्रीतिकर लगने लगता है।
"... अब न कहीं जाना है न आना; न कुछ होना है, न कुछ जानना!" अब कोई जरूरत
भी नहीं। जाना-आना, जानना-होना, सब दौड़ है। सब बाहर ले जाती है। जब कोई अपने भीतर डूबने लगे तो न कुछ जानने को बचता, न कुछ होने को बचता। सब दौड़ गई। आदमी घर लौट आया। विश्राम का क्षण आया। विराम आया।
इस विराम की हमें कोई अनुभूति नहीं है, इसलिए खतरा भी है। खतरा यह है
कि मन सोचने लगे, क्या कर रहे हो बैठे-बैठे? कुछ तो करो। मन की पुरानी आदतें प्रबल हैं। संस्कार गहन हैं। वह फिर उधेड़-बुन पैदा कर सकता है। इसलिए सावधान रहना।
विराम तो स्वीकार कर लेना, विश्राम तो करना, लेकिन विश्रांति को असावधानी मत बनने देना। अगर विश्रांति में असावधानी आ जाए तो मन के खेल बड़े प्राचीन हैं। मन फिर कुछ खेल निकाल ले सकता है। क्योंकि मन सदा व्यस्त रहना चाहता है। मन चाहता है, कुछ करते रहो, कुछ होते रहो, कुछ पाते रहो। मन तो भिखारी का पात्र है, जो कभी भरता नहीं। कुछ न कुछ डालते रहो--ड़ालते रहो, पात्र खाली का खाली रहता है। मन तो याचक है।

और जब कहीं नहीं जाना, कुछ भी नहीं होना, शांत बैठे हैं तो मन बड़ा बेचैन होगा। सावधानी रखना। नहीं तो मन बने हुए एकांत को खंडित कर सकता है। जरा-सी हवा की लहर शांत झील को फिर लहरों से भर देती है। जरा-सा झोंका दीये की ज्योति को फिर कंपा जाता है। मन का जरा-सा झोंका अब यह खतरनाक हो सकता है।
इसलिए महावीर ने कहा है, कि जब ध्यान भी सध जाए, यहां तक कि शुक्ल ध्यान की भी जरूरत न रह जाए तो भी बारह भावनाओं को करते रहना। महावीर कह रहे हैं, जब समाधि भी उपलब्ध हो जाए तो भी जल्दी मत करना क्योंकि मन के धोखे बड़े पुराने हैं। कहां छिपा बैठा हो। कहां अचेतन की किसी गर्त में, गुहा में बैठा हो। कहां भीतर कोई जगह बना ली हो और वहां से धीरे-धीरे फिर उपद्रव की शुरुआत कर दे। फिर वहां से अंकुरित हो जाए।
तुमने देखा? घास-पात हम उखाड़कर फेंक देते हैं, मैदान साफ हो जाता है। लगता है, सब ठीक हो गया। इतनी जल्दी मत सोच लेना। बीज पड़े होंगे पिछले वर्ष के। वर्षा आएगी, फिर घास-पात पैदा हो जाएगा। माली कहते हैं कि एक साल घास-पात पैदा हो जाए तो बारह साल उखाड़ने में लगते हैं। बीज गिरकर मिल जाते हैं भूमि में, उनका पता भी नहीं चलता।
और यह आश्चर्य की बात है, यहां अगर फूल बोने हों तो खाद दो, पानी दो, सम्हालो, तब भी पक्का नहीं कि पैदा होंगे। और घास-पात उखाड़ो, हटाओ, जलाओ; फिर वर्षा होती है, न खाद की जरूरत, न माली की जरूरत, न सूरज की जरूरत; घास-पात फिर पैदा हो जाता है।
उतार पर चीजें अपने आप हो जाती हैं, चढ़ाव पर कठिनाई है। उतार पर आदमी दौड़ता चला जाता है। चढ़ाव पर दौड़ना मुश्किल हो जाता है। चढ़ाव में श्रम है। तो जो भी ऊर्ध्वगामी यात्राएं हैं, उनमें श्रम है। अधोगामी यात्राओं में कोई श्रम नहीं है। ध्यान को सम्हालो, सम्हाल-सम्हाल छूट-छूट जाता है।
काम को दबाओ, हटाओ, मिटाओ, मिटाते-मिटाते भी उभर आता है। घास-पात की तरह है। क्रोध को मिटाओ, मिटते-मिटते भी कब उभर पड़ेगा कुछ पक्का पता नहीं। करुणा को साधो, साधते-साधते भी कब हाथ से छूट जाएगी कुछ पता नहीं।
इससे यह नतीजा लेना कि जो चीज बिना सम्हाले सम्हल जाती हो, उससे जरा सावधान रहना। वह घास-पात होने का डर है। जो सम्हाल-सम्हालकर छूट-छूट जाती हो, उसके लिए पूरी चेष्टा करना क्योंकि वहीं खजाना छिपा है। वहीं स्वर्ण-भंडार है। वहीं जीवन की ऊर्ध्वयात्रा है, उर्ध्वगमन है, तीर्थयात्रा है। "न जाने किधर आज मेरी नाव चली रे
चली रे चली रे नाव चली रे
कोई कहे यहां चली, कोई कहे वहां चली
मैंने कहा पिया के गांव चली रे"
दूसरों को तो दिखाई भी नहीं पड़ता। इसलिए कोई कहता है, यहां चली, कोई कहता है, वहां चली। कोई कहता है पागल हो गई है तरु। कोई कहता है दिमाग फिर गया, दीवानी हो गई। कोई कहता है पहले बड़ी बुद्धिमान थी; बुद्धि गंवाई। पहले बड़ी समझदार थी, सब समझ-बूझ खोई। लोकलाज गंवाई।
तो कोई तो कुछ कहेगा, कोई कुछ कहेगा। उस समय भीतर यह याद रखना ही--"मैंने कहा पिया के गांव चली रे।" क्योंकि उस पिया को अगर जरा भी विस्मरण किया तो लोगों की बातें सार्थक मालूम पड़ सकती हैं। क्योंकि लोग जो कह रहे हैं, वह वही कह रहे हैं, जो तुमने भी अतीत में सोचा होता। तो लोग जो कह रहे हैं उससे मिलते-जुलते भाव कहीं गहन में तुम्हारे भी पड़े हैं। जब कोई कहता है किसी को, कि क्या पागल हो गए? तो उसके कहने का थोड़े ही परिणाम होता है! अगर वह आदमी चिंतित हो जाता है तो परिणाम इसलिए होता है कि वह भी सोचता है कि पता नहीं, पागल हो ही न गया होऊं!
कल ही मुझे एक पत्र मिला। एक दंपति संन्यास लेकर गए। भोले लोग हैं, पहाड़ से आए थे। पहाड़ का भोलापन है। दोनों बड़ी मस्ती में गए। लेकिन जब इतनी मस्ती में गए तो गांव के लोगों ने सोचा कि दिमाग खराब हो गया। और दोनों का साथ-साथ हो गया। रिश्तेदारों ने जबर्दस्ती इलाज करवाना शुरू कर दिया। कल मुझे पत्र मिला कि हम अस्पताल में पड़े हैं। हम हंसते हैं तो लोग कहते हैं, शांत रहो, हंसो मत। हंसने की बात क्या है? इंजेक्शन लगाए जा रहे हैं,

ट्रेन्क्विलाइजर दिए जा रहे हैं। हम कहते हैं, हमें तो वैसी ही नींद मस्ती की आ रही है। हम तो प्रसन्न हैं, हम नाच-गा रहे हैं, हम कुछ पागल नहीं हैं। लेकिन गांव में कोई मानने को तैयार नहीं है। जितना हम समझाते हैं कि हम पागल नहीं हैं तो वे कहते हैं, ऐसा तो सभी पागल कहते हैं। कोई पागल कभी मानता है? तुम चुप रहो। हम जानते हैं।
तो उन्होंने पूछा है, कि अब तो हमें भी शक होने लगा, कहीं यही लोग ठीक न हों। तो अब करना क्या है?
हमारा भी अतीत इन्हीं तर्कों में जीया है। हमारे भी देखने के ढंग जन्मों-जन्मों तक ऐसे ही रहे हैं। तो जब कोई कहने लगा यहां चली, कोई कहने लगा वहां चली, तो भीतर याद रखना बहुत मुश्किल हो जाता है कि पिया के गांव चली है। क्योंकि इस पिया से तो मुलाकात बड़ी नई है। और ये जो लोग कह रहे हैं यहां चली, वहां चली, इनसे बड़े पुराने संबंध हैं। इनकी भाषा तो जानी-मानी है, इस पिया की भाषा तो जानी-मानी नहीं है।
यह पिया का गांव है भी या नहीं? जिसको दिखाई पड़ने लगता है, उसको भी शक आता है। जिनको नहीं दिखाई पड़ता उनका शक तो बिल्कुल स्वाभाविक है। जिसको पिया का गांव साफ-साफ दिखाई पड़ने लगता है, उसके मंदिर के कलश धूप में चमकते दिखाई पड़ने लगते हैं, उसको भी शक होता है कि कहीं मैं कल्पना तो नहीं कर रहा? क्योंकि वे कलश दूसरों को दिखाए नहीं जा सकते। यह कठिनाई है।
पति को दिखाई पड़े तो अपनी पत्नी को भी नहीं दिखला सकता। पत्नी कहती है, अगर वे कलश हैं और पिया का गांव है तो हमें भी तो दिखाई पड़े। पांच पंचों को दिखाई पड़े तो सत्य है। तुमको दिखाई पड़ने से क्या होता है? तुम कोई कल्पना के जाल में पड़ गए हो। तुम्हें कुछ बुद्धि-भ्रम हुआ है। तुम्हारी बुद्धि, तुम्हारा विवेक, तुम्हारे तर्कना की क्षमता क्षीण हुई। तुम किस सम्मोहन में पड़ गए हो? जो किसी को नहीं दिखाई पड़ता वह तुम्हें दिखाई पड़ रहा है?
तो जिस व्यक्ति को पिया का गांव दिखाई भी पड़ता है, वह भी इस जगत में बड़ा अकेला हो जाता है। और यह जगत तो बड़ा लोकतांत्रिक है। यहां तो सत्य का निर्णय भीड़ से होता है। यहां तो कितने लोग मानते हैं इससे तय होता है कि सत्य है या नहीं!
तुम अकेले पड़ जाओगे, जिस दिन तुम्हें पिया का गांव दिखाई पड़ना शुरू होगा। उस दिन तुम इतने अकेले हो जाओगे कि तुम्हें खुद ही संदेह पैदा होना शुरू होगा कि पता नहीं, कहीं कोई भ्रांति तो नहीं हो रही है? मैं किसी भ्रम का शिकार तो नहीं हूं? उस वक्त याद रखना, बड़ा श्रम मांगता है, बड़ी श्रद्धा मांगता है।
इसे स्मरण रखना। इसे मन में निरंतर दोहराते रहना। इसकी बहुत फिकर मत करना कि लोग क्या कहते हैं। एक ही कसौटी है--अगर तुम्हें आनंद मिल रहा हो तो तुम फिकर ही मत करना कि भ्रम है कि सत्य! क्योंकि आनंद लक्ष्य है। मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि अगर भ्रम से भी आनंद मिल रहा हो तो तुम सत्य को फेंक देना कूड़ाघर में, कचरे में। क्योंकि आनंद मिल ही नहीं सकता भ्रम से। इसलिए तो हमने ब्रह्म की परिभाषा में अंतिम बात कही है--सच्चिदानंद। आनंद आखिरी बात है। सत, चित, आनंद--आखिरी बात है। जहां से तुम्हें आनंद मिल रहा हो, फिर दुनिया कुछ भी कहे, तुम फिक्र मत करना। तुम अपने आनंद को ही कसौटी मानना, तो ही पहुंच पाओगे पिया के गांव तक। नहीं तो बीच में हजार बाधाएं हैं। सारी दुनिया तुम्हें इस तरफ खींचेगी।
और सारी दुनिया का इस तरफ खींचना भी अकारण नहीं है। जब किसी एक व्यक्ति को पिया का गांव दिखाई पड़ता है तो वह बाकी सारे लागों के लिए चिंता का कारण हो जाता है। अगर वह सही है तो हम सब गलत हैं। जो कहता है, मुझे परमात्मा के दर्शन हुए, अगर वह सही है तो बाकी इन चार अरब लोगों का क्या? अगर बुद्ध सही हैं तो इन चार अरब बुद्धुओं का क्या? ये गलत होंगे ही। बुद्धुओं को यह बात जंचती नहीं। यह पसंद नहीं पड़ती। कौन अपने को बुद्धू मानना चाहता है? ये चार अरब भीड़ की तरह इकट्ठे हो जाते हैं। ये कहते हैं बुद्ध को कुछ भ्रम हुआ होगा।

इसलिए तो जीसस को सूली लग जाती है। सुकरात को जहर पिला देते हैं। बुद्ध और महावीर को पत्थर मारे जाते हैं। यह अकारण नहीं है, इसके पीछे बड़ा गहरा कारण है। कारण यह है कि अगर तुम सही हो, तो हम गलत हैं। और यह बात मानना कि हम गलत हैं... और हम ज्यादा हैं, तुम अकेले हो। तुम कभी-कभी होते हो। तुम अपवाद-रूप हो, हम नियम हैं।
इसलिए मनोवैज्ञानिक तो पागलों को, बुद्धों को, एक ही गणना में गिनते हैं। दोनों को एबनार्मल कहते हैं। दोनों सामान्य नहीं हैं, कुछ गड़बड़ हैं। पागल को भी एबनार्मल कहते हैं, बुद्ध को भी, महावीर को भी, कृष्ण को भी। सामान्य नहीं हैं। कुछ चूके, इधर-उधर हैं। नियम नहीं हैं, अपवाद हैं।
अगर मनोवैज्ञानिकों का बस चले तो वे बुद्धों को भी चिकित्सा करके ठीक
कर देना चाहेंगे। ऐसा हो रहा है। पश्चिम के पागलखानों में ऐसे कुछ लोग आज बंद हैं, जो अतीत के दिनों में बुद्ध हो गए होते। जिनको बड़ा सम्मान मिलता; कबीर और दादू और नानक हो गए होते, वे आज पागलखानों में बंद हैं। वह तो बुद्ध-महावीर ने बड़ा अच्छा किया, जल्दी निकल गए। आज बड़ी कठिनाई में पड़ते। सुगमता से निकल गए।
पश्चिम में तो अभी भी किताबें लिखी जाती हैं, जिनमें सिद्ध किया जाता
है कि जीसस का दिमाग खराब था--न्यूरोटिक। और अगर तुम मनोवैज्ञानिक की बात पढ़ो तो बात समझ में तुम्हें भी आएगी। क्योंकि यह आदमी आकाश की तरफ देखता है और कहता है, हे पिता! --कौन पिता? इससे पूछो कि कौन पिता? कहां है? तो यह आकाश की तरफ हाथ बताता है। किसी को नहीं दिखाई पड़ते। तुम सब सिर उठाओ, किसी को कोई पिता नहीं दिखाई पड़ते।
तो इस एक आदमी की आंख पर भरोसा करें? हम सबकी आंखों पर संदेह करें? और अगर हम यह मान लें कि यह ठीक है तो हम गलत हैं। तो फिर हम ठीक होने के लिए क्या करें? क्या उपाय करें? उससे बड़ी बेचैनी पैदा होगी। उससे बड़ी घबड़ाहट पैदा होगी।
अगर बुद्ध मापदंड हैं, महावीर मापदंड हैं तो हम एबनार्मल हैं। तो हम ठीक-ठीक मापदंड पर, कसौटी पर नहीं उतर रहे हैं। तो हमारे जीवन में वैसे ही तो चिंता बहुत है, और चिंता बढ़ जाएगी। और इतने लोगों को कैसे स्वस्थ करियेगा?
इससे ज्यादा सुगम और सीधी बात मालूम यह पड़ती है कि यह एक आदमी कुछ विकृत हो गया है। यह कुछ असामान्य है। अगर लोग भले होते हैं तो इसे स्वीकार कर लेते हैं कि ठीक है, तुम भी रहो, कोई हर्जा नहीं। अगर लोग और भी भले हुए तो कहते हैं, तुम अवतार हो, तीर्थंकर हो; हम तुम्हारी पूजा करेंगे, मगर गड़बड़ मत करो। हम माने लेते हैं कि तुम भगवान हो। सदा-सदा तुम्हारी याद रखेंगे, लेकिन दखलंदाजी नहीं। तुम बैठो मंदिर की इस वेदी पर। हम पूजा कर जाएंगे, पाठ कर जाएंगे, लेकिन बाजार में मत आओ। हमारे जीवन को नाहक अस्त-व्यस्त मत करो। हम साधारणजन हैं, तुम अवतारी पुरुष हो। कहां तुम, कहां हम! हम तो हमीं जैसे होंगे। तुम्हारे जैसा कभी कोई हुआ है? तुम तो एक ईश्वर का अवतरण हो इस पृथ्वी पर। हम साधारण मनुष्यों को साधारणता से जीने दो।
अगर लोग भले होते हैं तो ऐसा करते हैं। अगर लोग जरा और तेज-तर्रार होते हैं तो वे कहते हैं, बंद करो बकवास! तुम्हारा दिमाग खराब है। सूली पर लटका देंगे, जहर पिला देंगे। तुम पागल हो।
लेकिन बुद्ध या महावीर जैसे व्यक्ति की मौजूदगी से बेचैनी पैदा होती है। और वह बेचैनी यह है कि दो में से एक ही ठीक हो सकता है। या तो हमारी दृष्टि ठीक है या इनका दर्शन ठीक है। और यह स्वाभाविक मालूम पड़ता है कि हमारी दृष्टि ठीक हो, क्योंकि हमारी भीड़ है। हम सदियों में भरे पड़े हैं। बुद्ध-महावीर कभी-कभी पुच्छल तारे की तरह निकल जाते हैं--आए, गए! लेकिन रात के जो स्थायी तारे हैं उनका भरोसा करो। ये बुद्ध-महावीर तो ऐसे हैं कि बिजली चमक गई। अब बिजली चमकने में बैठकर किताब पढ़ सकते हो? कि दुकान का हिसाब लगा सकते हो? कि खाता-बही लिख सकते हो? किस काम के हैं? काम तो दीये से ही चलाना पड़ता है। बिजली चमकती होगी, होगी बहुत बड़ी; और बड़ी महिमाशाली होगी, लेकिन इसका उपयोग क्या है?

तो जब तुम्हारे जीवन में कभी पहली झलकें आनी शुरू होंगी तो बड़ा खतरा पैदा होता है। खतरा यह कि तुम्हारा अतीत भी कहता है भूल मत जाना, कल्पना में मत पड़ जाना। और भी लोग कहते हैं--"कोई कहे यहां चली, कोई कहे वहां चली।" तुम्हारा अतीत भी कहेगा कहां जा रहे हो? क्या कर रहे हो? सम्हलो! सम्हालो! "मैंने कहा पिया के गांव चली रे"
इसे सतत स्मरण रखना। इसे महामंत्र बना लेना। कसौटी क्या है पिया के गांव की? कसौटी सिर्फ एक है कि तुम्हारा आनंद भाव बढ़ता जाए, तुम्हारी मगनता बढ़ती जाए, तुम्हारी एकता बढ़ती जाए, तुम्हारा मन और तुम्हारा हृदय दो न रह जाएं एक हो जाएं; तुम्हारा विचार और तुम्हारा भाव इकट्ठा हो जाए, तुम्हारे भीतर निर्द्वंद्वता बढ़ती जाए।
है एक तीर जिसमें दोनों छिदे पड़े हैं
वह दिन गए कि अपना दिल जिगर से जुदा था
प्रेम का एक तीर, जिसमें हृदय और मन दोनों जुड़ गए हैं। एक ही तीर दोनों
को छेद गया है।
है एक तीर जिसमें दोनों छिदे पड़े हैं
वह दिन गए कि अपना दिल जिगर से जुदा था
अगर तुम्हें ऐसा अनुभव होता हो कि यह पिया के गांव के करीब आने से तुम्हारे भीतर के खंड एक दूसरे में गिरकर अखंड बन रहे हैं, टुकड़े-टुकड़े में बंटा हुआ व्यक्तित्व अखंड बन रहा है, तो तुम फिक्र मत करना। सारी दुनिया एक तरफ हो तो भी चिंता मत करना।
और इस अखंडता से ही आनंद का रस बहता है। जितने तुम खंडित, उतने दुखी। जितने तुम अखंड, उतनी ही रसधार बहती है। उस आनंद का भरोसा करना। और आनंद बढ़ता जाए, तो सारी दुनिया कहे तुम पागल हो तो स्वीकार कर लेना कि हम पागल हैं। लेकिन हम आनंदित हैं। तुम दुनिया का दुख, चिंता, और परेशानी मत चुनना क्योंकि दुनिया कहती है कि वास्तविकता कुछ और है। तुम आनंद को ही वास्तविकता समझना।
सच्चिदानंद की परिभाषा भूले नहीं। वेदांत ने खूब शास्त्र लिखे सच्चिदानंद पर, मगर किसी ने भी यह फिक्र नहीं की, कि सच्चिदानंद का मौलिक अर्थ क्या होगा! ये केवल भगवान के गुण नहीं हैं, यह साधक की कसौटी भी है। जैसे-जैसे तुम्हारे भीतर सत बढ़े--सत का अर्थ होता है अखंड बनो। तुम्हारी बीइंग तुम्हारी आत्मा बने। जैसे-जैसे तुम्हारे भीतर चित बढ़े, तुम्हारा चैतन्य बढ़े, बेहोशी घटे, और जैसे-जैसे तुम्हारे भीतर आनंद बढ़े... ।
ये परमात्मा के ही गुण नहीं हैं, ये साधक के रास्ते के लिए मापदंड हैं, कसौटी हैं। जैसे सुनार सोने को कसने के लिए एक पत्थर रखता है, उस पर कसता रहता है। कसकर देख लेता है, सोना है या नहीं। तुम सच्चिदानंद के पत्थर पर कसकर देखते रहना। कोई भी अनुभव हो! आनंद देता हो, चैतन्य बढ़ता हो, सत्य बढ़ता हो, तुम्हारे जीवन का अस्तित्व मजबूत होता हो, बल आता हो, आत्मा सघन होती हो, तुम ज्यादा केंद्रित होते हो, फिर फिक्र छोड़ देना।
उपनिषद के ऋषियों की बड़ी प्रसिद्ध प्रार्थना हैः
"असतो मा सदगमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्माअमृतं गमय।"
असत से सत का ओर। वह जो भ्रामक है, प्रतीति मात्र है, आभास मात्र है, उससे उसकी ओर--जो भ्रामक नहीं, प्रतीति नहीं, आभास मात्र नहीं। अंधकार से ज्योति की ओर। और मृत्यु से अमृत की ओर ले चलो, हे प्रभु!
तो तुम्हारे भीतर जिससे भी ज्योति बढ़ती हो, अंधेरा कम होता हो; और जिससे भी मृत्यु का भय कम होता हो और अमृत की श्रद्धा बढ़ती हो, और जिससे भी तुम्हें लगता हो, जीवन का असत हट रहा है और सत बढ़ रहा है, फिर तुम चिंता मत करना। फिर तुम बिल्कुल अकेले हो तो भी सही हो।

और ख्याल रहे, दुनिया में सत्य भीड़ के पास नहीं होता, कभी-कभी अकेले व्यक्तियों के पास होता है--कभी-कभी! दुर्भाग्य है लेकिन ऐसा ही है। कभी- कभी कोई एकाध विलक्षण व्यक्ति सत्य को उपलब्ध होता है। भीड़ तो भेड़-चाल

चलती है। भीड़ तो लकीर की फकीर होती है। भीड़ तो दूसरे जहां जा रहे हैं वहीं चलती है।
मुल्ला नसरुद्दीन मस्जिद में नमाज पढ़ने गया था। जब वह नमाज पढ़ने बैठा
तो उसका कुर्ता, पीछे से एक कोना उठा हुआ था, धोती में उलझा होगा--तो पीछे के आदमी ने कुर्ता खींचकर ठीक कर दिया। मुल्ला ने सोचा कि शायद कुर्ता खींचना इस मस्जिद का रिवाज है। तो उसने अपने सामनेवाले आदमी का कुर्ता खींचा। उस आदमी ने पूछा, क्यों जी! किसलिए कुर्ता खींचते हो? उसने कहा, मेरे पीछेवाले से पूछो। मुझे कुछ पता नहीं। मैं तो समझा कि यहां का रिवाज है।
तुम न मालूम कितने लोगों के कुर्ते खींच रहे हो! क्योंकि तुम्हारा कुर्ता खींच दिया गया है। तुम सोचते हो, यहां का रिवाज है। तुम सौ में से निन्यानबे काम ऐसे कर रहे हो जो कि तुम देखते हो दूसरे कर रहे हैं। किसी ने कहा, फलां फिल्म अच्छी चल रही है--चले! खींच दिया किसी ने कुर्ता। खड़े हैं क्यू में, खींच रहे हैं दूसरों का कुर्ता।
तुम अपनी बुद्धि से कभी जीयोगे? फैशन ऐसे बदलते रहते हैं। जीवन के ढंग ऐसे बदलते रहते हैं। बस चल पड़ती है एक बात। कोई चला दे! उसका सतत प्रचार करता रहे, चल पड़ती है। पकड़ा दे। इसीलिए तो विज्ञापन का इतना प्रभाव हो गया दुनिया में। पश्चिम के विकसित मुल्कों में जो चीज बाजार में दस साल बाद आएगी, दस साल पहले विज्ञापन शुरू हो जाता है। अभी वह चीज आयी भी नहीं बाजार में। आएगी भी कभी, यह भी पक्का नहीं। दस साल बाद का क्या पक्का है? लेकिन दस साल पहले बाजार में काम शुरू हो जाता है, विज्ञापन शुरू हो जाता है। क्योंकि पहले बाजार पैदा करना पड़ता है।
बाजार तुम कैसे पैदा करते हो? पुराने अर्थशास्त्री कहते थे कि जहां- जहां मांग होती है वहां-वहां पूर्ति होती है। जब लोगों की जरूरत होती है तो कोई न कोई पूर्ति करनेवाला पैदा हो जाता है। अब हालत बदल गई। अब तो पहले मांग पैदा करो। मांग हो या न हो इसकी फिक्र ही छोड़ो। अब तो ऐसा है, पूर्ति है तो मांग पैदा की जा सकती है।
अमरीका में आज से दस साल पहले तक वे कहते थे, जिस आदमी के पास कार नहीं,
वह भी कोई आदमी है? अब सब आदमियों के पास कार हो गई। अब क्या करना? क्योंकि कार की फैक्ट्रियां चल रही हैं, उनको चलना ही है। तो अब हर आदमी के पास कम से कम दो कार होनी चाहिए। ऐसा तीन साल पहले तक वे कहते थे कि जिस आदमी के घर में दो कार को रखने का गैरेज नहीं है वह भी कोई आदमी है! वह भी बात बदल गई क्योंकि फैक्ट्रियों को तो चलना ही है। अब लोगों के पास दो-दो कारें भी हो गईं। अब वे कहते हैं चार कार का गैरेज होना चाहिए। नए साल के विज्ञापन कह रहे हैं कि चार कार का गैरेज होना चाहिए। चार कार नहीं हैं? तुम भी कोई आदमी हो? तीन हों तो बेचैनी मालूम होगी; चार होनी चाहिए।
हर आदमी के पास कम से कम दो मकान होने चाहिए--एक शहर में, एक जंगल में,
या पहाड़ पर, या समुद्र के किनारे।
विज्ञापन जोर से करते रहो, लोगों के मन पकड़ लिए जाते हैं। लोगों के मन चलने लगते हैं। बस उनके दिमाग में दोहराते रहो कि ऐसा होना चाहिए। जितना दोहराओ, उतने ही असत्य सत्य मालूम होने लगते हैं। जिनको तुम सत्य मानते हो वे केवल दोहराए गए असत्य हैं।
जब उपनिषद के ऋषि कहते हैं, "असतो मा सदगमय", तो वे यह कह रहे हैं कि ये सत्य तो जो बाहर से सुनाई पड़ रहे हैं, बहुत सुन लिए। इनसे तो कुछ सत्य मिलता नहीं; अब तो हमें वास्तविक सत्य की तरफ ले चलो। ये तो दोहराए हुए झूठ हैं। काफी दिनों से दोहराए जा रहे हैं, लोगों को भरोसा आ गया है।
तुम जरा अपने जीवन की व्यवस्था और शैली का विश्लेषण करना। क्यों ऐसे कपड़े पहने हुए हो? क्यों एक खास मार्के की सिगरेट पीते हो? क्यों एक खास ढंग से चलते-उठते-बैठते हो? विश्लेषण करोगे तो तुम पाओगे, तुम सिर्फ अनुकरण कर रहे हो। और जो अनुकरण कर रहा है, वह परमात्मा तक कभी नहीं पहुंचता। वह भीड़ में धक्के-मुक्के खूब खाता है।
इसी धक्कम-धुक्की को भारतीयों ने कहा है आवागमन। जन्मता खूब, मरता खूब, पहुंचता कहीं नहीं। धक्कम-धुक्के ही खाता रहता है। धीरे-धीरे धक्का-

धुक्के की ऐसी आदत हो जाती है कि वह चैन से बैठ ही नहीं सकता अकेला, जब तक भीड़ में न पड़ जाए। जब भीड़ उसे पीसने लगती है सब तरफ से, तभी उसको लगता है जीवित है।
सत्य का मार्ग अकेले का मार्ग है। वह एकांत का मार्ग है। भीतर जाना है। जो भी चीज बाहर ले जाती है, वह तुम्हें अपने से दूर ले जाएगी। जो भी तुम्हारे मन में किसी वासना और तृष्णा को पैदा करती है, वह तुम्हें अपने घर से दूर ले जाएगी।
तो शुभ है कि ऐसा भाव जगे, कि न अब कुछ पाना है, न कुछ होना है, न कुछ जानना है। इसी गहन भाव में डूबो। डूबकर अपने ही भीतर जो सब पाने का पाना है, वह पा लिया जाता है। जो सब जानने का जानना है, वह जान लिया जाता है। जो सब होने का होना है वह हो लिया जाता है।
आ जाओ कि अब खल्वते-गम खल्वते-गम है
अब तो दिल के धड़कने की भी आवाज नहीं है
इन पंक्तियों का अर्थ है कि अब तो केवल दुख का एकाकीपन है, अकेलापन है। अब तो दिल भी नहीं धड़कता। अब आ जाओ!
यह निश्चित ही किसी पार्थिव प्रेम के लिए कही गई होंगी।
आ जाओ कि अब खल्वते-गम खल्वते-गम है
कि अब तो केवल उदासी और दुख का अकेलापन ही बचा है। अब तो इतना भी कोई साथ देने को नहीं है। अपना दिल भी नहीं धड़कता। वह भी साथी न रहा। ऐसा गहन अकेलापन हो गया है। अब दिल के धड़कने की भी आवाज नहीं है।
लेकिन जो परमात्मा की तरफ जा रहा है, जो पिया के घर की तरफ जा रहा है, उसका एकाकीपन खल्वते-गम नहीं है। उसका एकाकीपन बड़ा आनंदमग्न, अहोभाव से परिपूर्ण है। नाचता हुआ, खिला हुआ है, सुगंधित है।
भक्त भगवान को यह नहीं कहता कि मैं बड़ा उदास हूं, बड़ा दुखी हूं, आ जाओ। दुख में भी क्या बुलाना! भक्त कहता है, अब देखो कैसा नाच रहा! देखो कैसा गुनगुना रहा हूं! देखो कैसे फूल खिले हैं, अब तो आ जाओ! कैसा मस्त हूं! कैसा तुम्हें पीकर मगन हो रहा हूं! दूर से ही तुम्हें देख रहा हूं और मस्ती में डूबा जा रहा हूं। अब तो आ जाओ।
भक्त का एकाकीपन बड़ा आनंदमग्न है। वहां भी दिल के धड़कने की आवाज नहीं है। आनंद में डूब जाती है दिल के धड़कने की आवाज। सब आवाजें आनंद में डूब जाती हैं। प्रेम के सागर में सब डूब जाता है।
ध्यान रखना, परमात्मा को कभी दुख में मत बुलाना। दुख में तो सभी बुलाते हैं, इसीलिए तो आता नहीं। दुख भी कोई मौका है बुलाने का? दुख में सभी याद करते हैं, रोते हैं, बिसूरते हैं कि आ जाओ, इतना दुखी हो रहा हूं। लेकिन दुख कोई आने की घड़ी ही नहीं है। वसंत में बुलाना, सुख में बुलाना। और तुम पाओगे वह चला आ रहा है। जैसे तुम नाच रहे हो, वैसा ही नाचता वह भी चला आ रहा है।
सुख में ही मिलन होता है। तुम जितने सुखी हो जाओ उतना मिलन आसान हो जाएगा। परमात्मा भी दुखियों से बचता है, ख्याल रखना। दुख दूरी है। कौन किसके दुख में साथ खड़ा होता है? लेकिन लोग दुख में ही उसे बुलाते हैं। दुख की आवाज उस तक नहीं पहुंचती। पहुंचनी भी नहीं चाहिए क्योंकि दुख की आवाज बेईमान है। तुम परमात्मा को थोड़े ही बुला रहे हो! तुम सुख को बुला रहे हो। तुम कहते हो इतना दुखी हूं। आ जा, तो थोड़ा सुखी हो जाऊं। तुम्हारी प्रतीक्षा सुख की है। जब तुम सुख में परमात्मा को बुलाते हो तो तुम परमात्मा को ही बुलाते हो, क्योंकि सुख तो आ ही गया है। जब कोई सुख में प्रार्थना करता है तो उसकी कोई मांग नहीं होती। उसकी प्रार्थना मांग-मुक्त होती है। क्योंकि मांगने को क्या है? जब दुख में प्रार्थना करते हो तो क्षुद्र मांगें उठती हैं।
भक्त तो कहता है--
तू जो कहे तो दिल भी दूं, जान भी दूं, जिगर भी दूं
गो मैं गदाए-इश्क हूं मुझको न बेनवां समझ

यद्यपि मैं प्रेम का भिखारी हूं, लेकिन मुझे कंगाल मत समझना! भक्त भगवान से कहता हैः माना कि तेरे द्वार पर भीख मांगने के लिए खड़ा हूं लेकिन मुझे कंगाल मत समझना।
तू जो कहे तो दिल भी दूं, जान भी दूं, जिगर भी दूं
गो मैं गदाए-इश्क हूं
--प्रेम का भिखारी हूं।
मुझको न बेनवां समझ
--लेकिन मुझे कंगाल मत समझ; देने को आया हूं।
प्रेम की बड़ी अनूठी दुनिया है। वहां भक्त देने को गया है। वहां भक्त अपने को न्योछावर करने को गया है। लेकिन तुम अपने को दे तभी सकते हो, जब तुम हो। और तुम न्योछावर तभी कर सकते हो, जब तुम्हारे पास कुछ हो। तुम्हारे पास सुख के फूल हों तो ही तुम उसके चरणों में चढ़ा सकोगे। वृक्षों के फूलों को तोड़कर कब तक अपने को धोखा दोगे? ये फूल उसके चरणों में चढ़े ही हुए हैं। उनको वृक्ष से तोड़कर तुम उसके चरणों से छीन लेते हो। चढ़ाते नहीं, मार डालते हो। जिंदा थे, मार डाले। जीवंत थे, हवाओं में नाच रहे थे, तुमने तोड़कर नाच छीन लिया। अभी और खिलते, खिलना छीन लिया। तुमने परमात्मा के चरणों से हटा लिया और गए और किसी मंदिर की मुर्दा पत्थर की मूर्ति पर जाकर चढ़ा आए। खूब धोखा दे रहे हो! किसको धोखा दे रहे हो?
अपने आनंद के फूल जब चढ़ाओगे, तो ही उसके चरणों पर चढ़ते हैं। और तब किसी मंदिर में जाने की जरूरत नहीं। तुम जहां हो, उसके चरण तुम्हें खोजते हुए वहीं आ जाते हैं। तुम्हारे हाथ बस फूलों से भरे हों, उसके चरण तुम्हें खोजते हुए निश्चित ही आ जाते हैं।

दूसरा प्रश्नः जैन दर्शन कहता है कि इस आरे में मोक्ष संभव नहीं है। बार-बार मेरी समकीत का वमन या उपशम होने का क्या यही कारण तो नहीं है? मोक्ष यहीं और अभी है इस धारणा को पकड़ लेना क्या एक आत्मवंचना नहीं है?

जैन दर्शन क्या कहता है इसका कोई मूल्य नहीं है। जिन क्या कहते हैं इसका मूल्य है। जैन दर्शन तो पंडितों ने निर्मित किया। पंडित तो बड़ी तरकीबें खोजता है। एक तरकीब सदा से पंडित की रही। वह सदा यह कहता है कि जो अतीत में संभव था, वह अब संभव नहीं है।
मुसलमान कहते हैं--मुसलमान पंडित--कि पैगंबर अब नहीं होंगे। जो मोहम्मद के लिए संभव था, वह अब किसी और के लिए संभव नहीं है।
अगर ऐसा ही है तो परमात्मा बड़ा कृपण मालूम होता है, बड़ा कंजूस मालूम होता है। एक मोहम्मद को पैदा करके चुक गया? बहुत बांझ मालूम होता है। और अन्यायी भी मालूम होता है। क्योंकि किसी काल में पैदा किया और अब नहीं करता। यह बात व्यर्थ मालूम होती है। इसके पीछे कारण कुछ और है।
मुसलमान पंडित नहीं चाहता कि अब किसी और को मोहम्मद स्वीकार करे, किसी और को पैगंबर स्वीकार करे। क्योंकि एक ही पैगंबर काफी अस्त-व्यस्त कर गया। उसी को सम्हाल-सम्हालकर व्यवस्थित करने में इतना समय लग गया, तब तो उस पर कब्जा कर पाए। तब तो उसको बांधकर, जंजीरों में डालकर मस्जिद में कैद कर पाए। कुरान की पोथी में बंद कर पाए बामुश्किल। अब फिर कोई निकल आए, फिर सब गड़बड़ हो जाए। पंडित बड़ी मुश्किल से व्यवस्था जुटा पाता है।
ईसाई कहते हैं कि जीसस अकेले बेटे हैं परमात्मा के। कोई दूसरा बेटा नहीं--इकलौते बेटे! और बाकी ये सब लोग क्या हैं? यह सारा अस्तित्व फिर क्या है, अगर जीसस अकेले बेटे हैं? यह सारा अस्तित्व उसी से पैदा हुआ है। वह बाप सिर्फ जीसस का नहीं हो सकता, सभी का है। समानरूपेण सभी का है।
और जीसस निरंतर दोहराते रहे कि जो मेरा पिता है वह तुम्हारा भी पिता है। लेकिन ईसाई पंडित दोहरता है कि नहीं, इकलौते बेटे। क्यों? क्योंकि बामुश्किल वह इंतजाम जमा पाया दो हजार साल में। दो हजार साल में जीसस को मिटाने में वह सफल हो पाया। लीप-पोत डाला उसने सब। जो भी क्रांति की संभावना थी, सब समाप्त कर दी। दो हजार साल लग गए इस एक आदमी के अंगार को बुझाने में या राख से ढांकने में। अब फिर कोई अंगार हो जाए, फिर कोई

उदघोषणा कर दे, फिर झंझट पैदा हो। यहूदियों ने इसीलिए जीसस को मारा कि इस आदमी ने उपद्रव खड़ा कर दिया।
जाग्रत पुरुष विद्रोही होगा ही। जाग्रत पुरुष ऐसी बातें कहेगा ही, जो अंधों के समाज को बेचैन करेंगी। जाग्रत पुरुष इस तरह की जीवन दिशा देगा ही, जिससे भीड़-भड़क्का में चलनेवाले लोग बड़ी दुविधा में पड़ेंगे, अब क्या करें!
क्योंकि जाग्रत पुरुष विकल्प देता है। और जाग्रत पुरुष एक वैकल्पिक समाज भी देता है। वह कहता है, यही एकमात्र मार्ग नहीं है, जिस पर तुम चल रहे हो। यह तो कोई मार्ग ही नहीं है। और जाग्रत पुरुष का बल, उसकी चुंबकीय शक्ति सब चीजों को अस्त-व्यस्त कर जाती है। जहां-जहां तुमने घरगूले बना रखे थे, वह सब गिरा देता है। जहां-जहां तुमने तरकीबें निकाल रखी थीं, उन सब तरकीबों के प्राण खींच लेता है। जहां-जहां तुमने धोखे बना रखे थे, उन सब धोखों को उघाड़कर नग्न कर देता है। वह तुम्हारी सारी आत्मवंचना तोड़ देता है।
तो ईसाई ठीक ही कहते हैं कि आखिरी... ! बस अब बहुत हो गया। अब और दुबारा नहीं। जैन कहते हैं, महावीर चौबीसवें तीर्थंकर--बस खतम! अब आगे नहीं।
यह रोक लेने की प्रवृत्ति करीब-करीब दुनिया के सभी धर्मों में है। लेकिन समय से मोक्ष का क्या संबंध? इतना मैं मानता हूं कि कुछ समय होते हैं, तब मोक्ष थोड़ा आसान; और कुछ समय होते हैं, तब थोड़ा कठिन। लेकिन असंभव कभी भी नहीं। कुछ समय निश्चित होते हैं, जब मोक्ष थोड़ा आसान है।
हर चीज के लिए यह सही है। वर्षा में वृक्षों का बढ़ना आसान है। गर्मी में थोड़ा कठिन हो जाता है, लेकिन असंभव नहीं। अगर पानी सींचने की व्यवस्था की तो गर्मी में भी बढ़ेंगे। ऐसे ही बढ़ेंगे। कोई बाधा नहीं है।
मनुष्य की जीवन-यात्रा में भी ऐसे बहुत-से पल आते हैं, जब मोक्ष आसान
हो जाता है। खासकर उन क्षणों में, जब बुद्ध या महावीर जैसा व्यक्ति मोक्ष को उपलब्ध होता है, तो वह द्वार खोलकर खड़ा हो जाता है। उस वक्त जिनकी थोड़ी भी हिम्मत होती है, साहस होता है, वे मोक्ष की यात्रा पर गतिमान हो जाते हैं। अगर महावीर जैसे व्यक्ति की मौजूदगी में भी तुम्हारे भीतर साहस पैदा नहीं होता तो जब महावीर जैसा व्यक्ति तुम्हें न मिलेगा, तब तुममें साहस पैदा होगा इसकी आशा करना कठिन है। तब तुम धारे के साथ बह सकते हो। महावीर एक लहर की तरह हैं। हवा जा रही है दूसरे किनारे की तरफ, तुम नाव में पाल बांध दो और छोड़ दो; पतवार भी नहीं चलानी पड़ती।
तो अनुकूल समय होते हैं, प्रतिकूल समय होते हैं, यह बात सच है। अनुकूल देश होते हैं, प्रतिकूल देश होते हैं। अनुकूल उम्र होती है, प्रतिकूल उम्र होती है। सुअवसर होते हैं, जिनका कोई उपयोग कर ले तो जल्दी घटना घट जाए। कठिन अवसर होते हैं। लेकिन असंभव है इस आरे में किसी व्यक्ति का मोक्ष पाना, यह बात फिजूल है। क्योंकि परमात्मा के लिए सब समय समान हैं। और तुम जानकर चकित होओगे, यह धारणा सभी कालों में रही है। जीसस को यहूदियों ने कहा कि तुम पा नहीं लिए हो। महावीर को सभी ने थोड़े ही तीर्थंकर स्वीकार कर लिया था। बहुत थोड़े-से लोगों ने स्वीकार किया था। अधिक ने तो यही कहा कि सब बकवास है। बुद्ध को सभी ने थोड़े ही स्वीकार किया था। अधिक तो हंसे और अधिक ने कहा कि सब बातचीत है, सब कल्पना का जाल है, कविता है।
इस समय में भी घटना घट सकती है। इस समय में भी मोक्ष को उपलब्ध व्यक्ति हैं। ऐसा तो कभी नहीं हुआ कि मोक्ष को उपलब्ध व्यक्ति न हों। कभी कम, कभी ज्यादा, यह बात सच है। कभी हजारों की संख्या में भी एक साथ, कभी उंगलियों पर गिने जा सकें।
आज उंगलियों पर गिने जा सकें इतने ही व्यक्ति मोक्ष को उपलब्ध हैं। लेकिन मार्ग रुका नहीं। संकरा भला हो, चलने में थोड़ा दुर्गम भी हो।
लेकिन जिसने पूछा है, उसके पूछने का क्या कारण होगा? पूछा हैः "जैन दर्शन कहता है इस आरे में मोक्ष संभव नहीं है।"
अगर मोक्ष भी समय पर निर्भर हो तो क्या खाक मोक्ष रहा! मोक्ष का मतलब
है स्वतंत्रता। अगर स्वतंत्रता भी शर्तबंद हो कि कभी हो सकती है और कभी नहीं हो सकती तो मोक्ष भी बंधन ही हो गया। मोक्ष का तो अर्थ ही इतना है कि

जब भी जो पाना चाहे, उसे मिलेगा। पाना चाहनेवाला होना चाहिए। पाने की अदम्य चाह होनी चाहिए।
"बार-बार मेरी समकीत का उपशम या वमन होने का क्या यही तो कारण नहीं है?"
जरा भी नहीं। जिसने पूछा है वह कह रहा है कि मेरा ध्यान बार-बार चूक जाता है, मेरी समाधि बार-बार छूट जाती है, इसका कारण यही तो नहीं? तो तरकीब खोज रहे हो तुम, कि आरे में तरकीब मिल जाए, समय में तरकीब मिल जाए। यह पंचम काल, कलियुग, इसमें कहीं मोक्ष हुआ है? तो तुमको राहत मिल गई। तुमने कहा, तो फिर हमारी कोई गलती नहीं है। हम तो ध्यान ठीक ही साध रहे थे। अब समय ही प्रतिकूल है तो हम क्या कर सकते हैं?
नहीं, इस तरह अपना दायित्व समय पर मत छोड़ो। क्योंकि अगर समय पर तुमने दायित्व छोड़ दिया तो जो संभव था वह फिर निश्चित ही असंभव हो जाएगा। अगर समाधि चूक-चूक जाती है तो कहीं तुम्हारी भूल है। सीधी-सी बात को इतने जाल में क्यों ले जाना? अगर समाधि बार-बार चूक जाती है तो भूल खोजो। कहीं चूक कर रहे हो, उसे खोजो। कुछ रूपांतरण करो। मार्ग खोजो, अगर बीहड़ में खो गए हो।
लेकिन जो आदमी जंगल में खो गया हो, वह कहने लगे, इस पंचम काल में कहीं मार्ग मिलता है? बैठ जाए। तो शायद मार्ग दो वृक्षों के पार ही हो, जरा-सी झाड़ी की ओट में पड़ा हो तो भी चूक जाएगा।
और इस तरह के खतरनाक तर्क स्वयंसिद्ध हो जाते हैं। जब वह बैठ जाएगा और चलेगा नहीं, मार्ग खोजेगा नहीं, कहेगा कि पंचम काल में कहीं हो सकता है? कलियुग में कोई मोक्ष को गया है? ये बातें होती थीं पहले, सतयुग में। अब कहां? यह तो अंधेरे का समय है। अब कहां? यह तो भटकने का, पाप का युग है। अब कहां?
ऐसा सोचकर बैठ गया तो फिर होगा नहीं। और जब होगा नहीं तो वह सोचेगा, निश्चित ही जो मैं सोचता था, जो मैंने सुना था कि इस आरे में मोक्ष नहीं होता, बिल्कुल ठीक है। शत प्रतिशत ठीक है। जैसे-जैसे वह यह सोचता जाएगा, वैसे-वैसे मिलना असंभव होता जाएगा। यह तो दुष्टचक्र हो जाएगा।
नहीं, मैं तुमसे कहता हूं ऐसा कोई काल नहीं है, ऐसा कोई समय नहीं है, जब मोक्ष संभव न हो। हां, ऐसा हो सकता है कभी कठिन, कभी सरल। कठिन और सरल भी मोक्ष के कारण नहीं, लोगों की मनोदशाओं के कारण।
कोई युग होता है, बड़ा आत्यंतिक रूप से भौतिकवादी होता है। लोग मानते
ही नहीं कि जीवन के बाद कोई जीवन है। लोग मानते ही नहीं कि आत्मा जैसी कोई वस्तु है। लोग मानते ही नहीं कि परमात्मा है। तो स्वभावतः कठिन हो जाता है।
जब लोग मानते हैं और श्रद्धा का वातावरण होता है कि आत्मा है, परमात्मा है और खोजना है... । तुम्हारे घर में अगर तुम मान ही लो कि खजाना नहीं है तो खोज बंद हो जाती है। मिलने की संभावना कम हो जाती है। खजाना अपने आप ही निकल आए तो बात अलग; अन्यथा मिलेगा कैसे? कभी भूल-चूक से गिर पड़ो खजाने पर, बात अलग, अन्यथा मिलेगा कैसे? लेकिन जो मानता है कि खजाना है, वह खोजता है। मान्यता से खोज निकल आती है। खोज से संभावना सुगम हो जाती है।
मैं तुमसे कहता हूं, मोक्ष संभव है। क्योंकि मोक्ष तुम्हारी आत्यंतिक दशा है। इसका समय से कुछ लेना-देना नहीं। मोक्ष तुम्हारा ही स्वभाव है, इसे उघाड़ने की जरूरत है। मोक्ष तुम लेकर ही आए हो। थोड़े पर्दे पड़े हैं। पर्दे हटाने हैं।
तो इस तरह की झूठी बातों में मत पड़ना। हालांकि इस तरह की झूठी बातें पकड़ने का बड़ा रस है मन को। क्योंकि तब झंझट मिटी, श्रम मिटा, साधना गई। अब कोई जरूरत न रही। अब तुम जो करना है करो। इस आरे में मोक्ष होता नहीं।
तुम्हारी समाधि अगर चूक रही है तो तुम्हारी समाधि में भूल है। अगर दो
और दो पांच हो रहे हैं तो फिर से गणित करो। या दो और दो तीन ही रह जाते हैं, फिर से जोड़ो। यह कहकर मत बैठ जाओ कि होगा नहीं।

तो जिनने भी तुम्हें ऐसा समझाया है कि होगा नहीं, वे धर्म के दुश्मन हैं। क्योंकि धर्म की इससे बड़ी दुश्मनी क्या होगी कि कोई समझा दे कि अब मोक्ष असंभव है? वह तो तुम्हें हताश कर देगा। वह तो तुम्हारे भीतर से आशा का सारा दीया बुझा देगा। वह तो तुमसे सारी किरण छीन लेगा, उत्साह छीन लेगा।
पूछा हैः "मोक्ष यहीं और अभी, इस धारणा को पकड़ लेना क्या एक आत्मवंचना नहीं है?"
आत्मवंचना इस धारणा को पकड़ना है कि मोक्ष अभी नहीं हो सकता। अभी और यहीं हो सकता है, इससे तो कोई हानि होनेवाली नहीं है। नहीं हुआ तो नहीं हुआ। हो गया तो द्वार खुले स्वर्ग के।
अगर खजाना घर में दबा पड़ा है, मैं कहता हूं, खोजो। अगर नहीं मिला तो भी क्या खोया? खोजने में थोड़े हाथ-पैर मजबूत ही हो जाएंगे, और कुछ भी न होगा। अगर मिल गया तो मिला। लेकिन तुम अगर बैठे रहे और न खोजा तो पड़ा भी रहे खजाना, तो भी नहीं मिलेगा।
मैं तुमसे कहता हूंः जीवन को सदा विधायक दृष्टि से देखो, नकारात्मक दृष्टि से नहीं। खोजकर देखो। मुझे खोजकर मिला है, इसीलिए तुम्हें भी मिल सकता है। मैं तुम्हारा समसामयिक हूं। तुम्हारे सामने बैठा हूं। उसी समय में, उसी जगह में, जहां तुम हो।
जो पंडित तुमसे कह रहे हैं कि इस आरे में संभव नहीं है, उनसे पूछो, क्या तुमने पूरी कोशिश कर ली? क्या तुमने आखिरी कोशिश कर ली? तो तुम अकसर पाओगे उन्होंने कोशिश की ही नहीं; क्योंकि दूसरे पंडितों ने उनको समझाया है कि इस आरे में संभव ही नहीं है।
यह तो बड़ा उपद्रव का जाल है। एक आदमी किनारे बैठा है और कहता है, यह नदी अथाह है। इसमें कोई थाह ले ही नहीं सकता। उससे तुम पूछोगे, तुमने ली? तुमने कोशिश की? कम से कम तुम डुबकी लगाए? वह कहता है, डुबकी लगाने से सार क्या है? हमसे पहले कोई बैठा था, वह कह गया यह अथाह है। उससे पूछा था कि डुबकी लगाई थी? उसके गुरु उसको बता गए थे कि डुबकी व्यर्थ है।
मैं तुमसे कहता हूं, वही आदमी हकदार है कहने का जिसने डुबकी लगाई हो।
और बड़े मजे की बात यह है, जिसने भी डुबकी लगाई, उसने पा ही लिया। किनारे पर बैठनेवाले लोग पाने के श्रम से बचना चाहते हैं, लेकिन यह भी नहीं मानना चाहते कि हम काहिल हैं, सुस्त हैं, अलाल हैं, तामसी हैं। समय पर दोष टाल देते हैं। समय ही खराब है। इस समय में इस नदी की थाह नहीं मिल सकती। नदी की थाह है तो कभी भी मिल सकती है। डुबकी लगानेवाला चाहिए।
मैं तुमसे कहता हूं, मिल सकता है; क्योंकि मिला है। अगर चूक होती हो तो अपनी चूक सुधारो।
मैं तो तुमसे कहता हूं, ईश्वर अगर न भी हो तो भी फिक्र मत करो। खोजो। होना जरूरी नहीं है खोज के लिए, है ऐसी आस्था भर जरूरी है। खोजो। अगर नहीं होगा तो पता चल जाएगा, नहीं है। लेकिन उस पता चलने में भी तुम्हारे जीवन में बड़ा आविर्भाव हो जाएगा चैतन्य का।
खुदा न सही आदमी का ख्वाब सही
कोई हसीन नजारा तो है नजर के लिए
क्या फिक्र करनी कि ईश्वर नहीं है। न सही। चलो, आदमी का सपना सही।
कोई हसीन नजारा तो है नजर के लिए।
कोई सुंदर सपना तो सही! उस सुंदर सपने के सहारे तुम सुंदर हो जाओगे-- चाहे सपना हो या न हो। उस सुंदर सपने को देखते-देखते तुम सुंदर हो जाओगे-- चाहे कोई खुदा हो न हो।
फूलों की तलाश करनेवाला फूलों जैसा हो जाता है। क्योंकि हम जो खोजते हैं वैसे हो जाते हैं। सुगंध का खोजी सुगंध से भर जाता है। सत्य का खोजी, सत्य हो या न हो, सत्य हो जाता है। हम जो खोजते हैं वही हो जाते हैं।
तुम कभी गौर से देखो। धन खोजनेवाले आदमी को तुम गौर से देखो। उसकी शक्ल पर वैसी ही भावदशा बन जाती है जैसी रुपयों पर होती है--वैसी ही घिसी- पिटी, चली-चलाई, हजार हाथ में गुजरी, घिनौनी। कंजूस आदमी के चेहरे को देखो।

वैसा ही चेहरा लगने लगता है। जैसा घिसा-पिसा रुपया। कई हाथों से चल-चलकर चिकना हो गया। तेल-सा बहता मालूम होता है चेहरे से।
कामी आदमी को देखो। तो उसकी आंखों में एक कामना का ज्वर, एक बुखार, एक उत्ताप।
परमात्मा के खोजी को देखो, परमात्मा है या नहीं छोड़ो। क्योंकि बिना खोजे पता भी कैसे चलेगा कि है या नहीं--छोड़ो। लेकिन परमात्मा के खोजी को देखो। परमात्मा न हो, परमात्मा के खोजी तो हैं; उनको देखो। परमात्मा हो या न हो, वे धीरे-धीरे परमात्म-रूप हो जाते हैं।
खुदा न सही आदमी का ख्वाब सही
कोई हसीन नजारा तो है नजर के लिए
और कल पर मत टालो क्योंकि कल का कोई भरोसा नहीं। जो करना है आज कर लो।
जो करना है अभी कर लो। क्योंकि अभी के तुम मालिक हो। कल के तुम मालिक नहीं।
यही समय तुम्हें मिला है। बंधन चाहो तो हो सकता है। मोक्ष चाहो तो हो सकता है।
अब यह बड़े मजे की बात है। बंधन तो पहले भी होता था, बंधन अब भी होता है।
मोक्ष पहले ही होता था, मोक्ष अब नहीं होता। यह तर्क जरा जंचता नहीं। बीमारी पहले भी होती थी, स्वास्थ्य पहले भी होता था, बीमारी अब भी होती है, स्वास्थ्य अब नहीं होता। जो आदमी बीमार हो सकता है, वह स्वस्थ क्यों नहीं हो सकता? और जिस आदमी के हाथ में जंजीरें पड़ सकती हैं, वह जंजीरें क्यों नहीं तोड़ सकता?
जब कारागृह के भीतर आने का उपाय है तो जिस दरवाजे से भीतर आया जाता है, उसी से तो बाहर भी जाया जाता है। जब कारागृह के भीतर आ गए तो एक बात पक्की है कि बाहर भी जाया जा सकता है। मगर वे ही लोग जा पाएंगे, जो आज का उपयोग कर लेंगे।
घूंघट में शर्मानेवाली यह निशिगंधा
संभव है कल बोले भी तो स्वीकार न हो
यह भी मुमकिन है, कल रूठने-मनाने को
यह रात न हो, यह बात न हो, यह प्यार न हो
हरेक भक्ति के साथ चल रही विरक्ति
हरेक राग का आंचल पकड़े है विराग
खिड़की पर ऐसे ही फिर न घटा अंगड़ाएगी
करना है तो तुम ब्याह सपन का अभी करो
यह समय दुबारा लौट नहीं आएगा
भरना है तो मांग मिलन की अभी भरो
जिसने गाया है, शायद सांसारिक प्रेम के लिए गाया है, लेकिन परमात्मा
के प्रेम के लिए भी बात इतनी ही सही है।
करना है तो तुम ब्याह सपन का अभी करो
यह समय दुबारा लौट नहीं आएगा
भरना है तो मांग मिलन की अभी भरो
अभी के अतिरिक्त कोई और "कभी" है भी नहीं। कभी पर टाला तो सदा के लिए टाला। कहा "कल", तो फिर कभी संभव न हो सकेगा। यही समय है तुम्हारे पास। पंचम काल कहो, कलियुग कहो, भ्रष्ट, पतित, पापी--मगर यही समय है तुम्हारे पास। इससे अन्यथा तुम्हारे पास कोई काल है नहीं।
कीचड़ में ही पड़े हो माना; लेकिन कमल कीचड़ में ही पैदा होते हैं। कीचड़
को दोष मत देते रहो, कमल होने की चेष्टा करो। और ध्यान रखो, महावीर के समय में सभी महावीर न थे। सभी कीचड़ कमल नहीं हो गए थे। और आज भी सभी कीचड़ कीचड़ नहीं हैं। आज भी कीचड़ में कोई कमल खिला है। लेकिन अगर तुमने एक बार यह मान लिया कि आज हो ही नहीं सकता तो महावीर भी तुम्हारे सामने खड़े हो जाएं, तुम कहोगे किसी ने स्वांग भरा है। महावीर हो ही नहीं सकते।
मगर यह तुम्हारी दृष्टि महावीर को कोई नुकसान नहीं पहुंचाती, तुम्हीं
को नुकसान पहुंचाती है। अगर महावीर नहीं हो सकते तो फिर तुम गए। फिर तुम्हारा कोई भविष्य नहीं। फिर तुम किसलिए हो? फिर तुम्हारा कोई अभिप्राय

नहीं। जिस जगत में मुक्ति संभव न हो, जिस समय में मुक्ति संभव न हो, उस समय में मरने के अतिरिक्त फिर और क्या होगा?
जीवन है तो दो ही संभावनाएं हैंः मौत या मोक्ष। अगर मोक्ष हो ही नहीं सकता तो फिर जीवन का एक ही अर्थ रह गया--मरना, मृत्यु। तो उठे रोज, खाए-पीए रोज, सोए रोज--सारी तैयारी की, बस मरने के लिए? अंततः मरे! तो सार क्या है? दो दिन पहले मरे तो हर्ज क्या? दो साल पहले मरे तो हर्ज क्या? और पैदा ही न होते तो क्या हर्ज था? या पैदा होते मर गए तो क्या रोना! अगर मौत ही होनी है, कुछ और हो ही नहीं सकता, तो फिर जीवन का कोई अर्थ नहीं है। मोक्ष हो सकता है इसीलिए अर्थ है।
मस्ती में गाते हुए मर्द
धूप में बैठे बालों में कंघी करती हुई नारियां
तितलियों के पीछे दौड़ते हुए बच्चे
फुलवारियों में फूल चुनती हुई सुकुमारियां
ये सब के सब ईश्वर हैं
क्योंकि जैसे ईसा और राम आए थे,
ये भी उसी प्रकार आए हैं
और ईश्वर की कुछ थोड़ी विभूति
अपने साथ लाए हैं
तो उपदेशको! आओ हम ईमानदार बनें
और मानवता को डराएं नहीं, बल्कि यह कहें
कि जिस सरोवर का जल पीकर तुम पछताते हो।
उस तालाब का पानी हमने भी पीया है
और जैसे तुम हंस-हंसकर रोते और रो-रोकर हंसते हो इसी तरह हंसी और रुदन से भरा जीवन हमने भी जीया है गनीमत है कि हर पापी का भविष्य है
जैसे हर संत का अतीत होता है
आदमी घबड़ाकर व्यर्थ रोता है
मैं दानव से छोटा नहीं, न वामन से बड़ा हूं
सभी मनुष्य एक ही मनुष्य हैं
सबके साथ मैं आलिंगन में खड़ा हूं
वह जो हारकर बैठ गया उसके भीतर मेरी ही हार है
वह जो जीतकर आ रहा है
उसकी जय में मेरी ही जय-जयकार है
महावीर तुम्हारी ही जीत हैं। राम तुम्हारी ही विजय-यात्रा हैं। रावण तुम्हारी ही हार है। जीसस तुम्हारी ही बजती हुई वीणा, जुदास तुम्हारा ही टूटा हुआ तार है।
दोनों तुम्हारी संभावना हैं--राम और रावण। और तुम पर निर्भर है। एक बात ख्याल रखना--अत्यंत महत्वपूर्ण--कि राम बनो तो चेष्टा करनी पड़ेगी, रावण बिना चेष्टा के बन सकते हो। रावण बनने के लिए चेष्टा नहीं करनी पड़ती। रावण बिना मेहनत के आदमी बन जाता है। जो कुछ भी न बनेगा वह रावण बन जाएगा। रावण के भीतर राम सोया है। राम के भीतर रावण जाग गया है। बस इतना ही भेद है।
तुम अगर सोए हो तो मैं कहता हूं, जागना भी हो सकता है। समय, युग की व्यर्थ बातें मत उठाओ। अपनी भूलें स्वीकार करो। ऐसे बहाने मत खोजो। यह आत्मवंचना है। ये बड़ी तर्कयुक्त तरकीबें हैं अहंकार को बचा लेने की, सुरक्षा की। सीधा-सीधा देखो। जहां गलती मालूम पड़ती हो उसे सुधारो। जहां नीचे का खिंचाव मालूम पड़ता है उसे तोड़ो। जहां ऊपर उठने में कठिनाई मालूम पड़ती है उसका अभ्यास करो।
धीरे-धीरे इंच-इंच चलकर मोक्ष निर्मित होता है।
बूंद-बूंद गिरकर सागर भरता है।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग दो
तेईसवां प्रवचन

षट पर्दों की ओट में

चंडो ण मुंचइ वेरं, भंडणसीलो य धरमदयरहिओ।
दुट्ठो ण य एदि वसं, लक्खणमेयं तु किण्हस्स।। 138।।
मंदो बुद्धिविहीणो, णिव्विणाणी य विसयलोलो य।
लक्खणमेयं भणियं, समासदो णीललेस्सस्स।। 139।।
रूसइ णिंदइ अन्ने, दूसइ बहुसो य सोयभयबहुलो।
ण गणइ कज्जाकज्जं, लक्खणमेयं तु काउस्स।। 140।।
जाणइ कज्जाकज्जं, सेयमसेयं च सव्वसमपासी।
दयदाणरदो य मिदू, लक्खणमेयं तु तेउस्स।। 141।।
चागी भद्दो चोक्खो, अज्जवकम्मो य खमदि बहुगं पि।
साहुगुरुपूजणरदो, लक्खणमेयं तु पम्मस्स।। 142।।
ण य कुणइ पक्खवायं, ण वि य णिदाणं समो य सव्वेसिं।
णत्थि य रायद्दोसा, णेहो वि य सुक्कलेस्सस्स।। 143।।

मनुष्य जैसा है, अपने ही कारण है। मनुष्य जैसा है, वह अपने ही निर्माण
से वैसा है।
महावीर की दृष्टि में मनुष्य का उत्तरदायित्व चरम है। दुख है तो तुम कारण हो। सुख है तो तुम कारण हो। बंधे हो तो तुमने बंधना चाहा है। मुक्त होना चाहो, मुक्त हो जाओगे। कोई मनुष्य को बांधता नहीं, कोई मनुष्य को मुक्त नहीं करता। मनुष्य की अपनी वृत्तियां ही बांधती हैं, अपने राग-द्वेष ही बांधते हैं, अपने विचार ही बांधते हैं।
एक अर्थ में गहन दायित्व है मनुष्य का, क्योंकि जिम्मेवारी किसी और
पर फेंकी नहीं जा सकती।
महावीर के विचार में परमात्मा की कोई जगह नहीं है। इसलिए तुम किसी और
पर दोष न फेंक सकोगे। महावीर ने दोष फेंकने के सारे उपाय छीन लिए हैं। सारा दोष तुम्हारा है। लेकिन इससे हताश होने का कोई कारण नहीं है। इससे निराश हो जाने की कोई वजह नहीं है।
चूंकि सारा दोष तुम्हारा है, इसलिए तुम्हारी मालकियत की उदघोषणा हो रही है। तुम चाहो तो इसी क्षण जंजीरें गिर सकती हैं। तुम उन्हें पकड़े हो, जंजीरों ने तुम्हें नहीं पकड़ा है। और किसी और ने तुम्हें कारागृह में नहीं डाला है, तुम अपनी मर्जी से प्रविष्ट हुए हो। तुमने कारागृह को घर समझा है। तुमने कांटों को फूल समझा है।
ओल्ड टेस्टामेंट में, पुरानी बाइबिल में सोलोमन का प्रसिद्ध वचन हैः "ऐज ए मैन थिंकेथ सो ही बिकम्स।" जैसा आदमी सोचता, वैसा हो जाता है।
बुद्ध ने धम्मपद के वचनों का प्रारंभ किया हैः तुम जो हो वह अतीत में सोचे हुए विचारों का परिणाम है। तुम जो होओगे, वह आज सोचे गए विचारों का फल होगा। मनुष्य जैसा सोचता है, वैसा हो जाता है।
संसार विचार की एक प्रक्रिया है; मोक्ष, निर्विचार की शांति है। संसार गांठ है विचारों की। तुम सोचना बंद कर दो--गांठ अपने-आप पिघल जाती है, बह जाती है। तुम सहयोग न दो, तुम्हारा साथ न रहे, तो जंजीरें अपने-आप स्वप्नवत विलीन हो जाती हैं।
इन सूत्रों में इसी तरफ इंगित है। जैसा पहले कहा कि मनुष्य के ऊपर सात पर्दे हैं। अब महावीर एक-एक पर्दे की विचार-शृंखला के संबंध में इशारे करते हैं।
"स्वभाव की प्रचंडता, रौद्रता, वैर की मजबूत गांठ, झगड़ालू वृत्ति, धर्म और दया से शून्यता, दुष्टता, समझाने से भी नहीं मानना, ये कृष्ण लेश्या के लक्षण हैं।"
इन तानों-बानों से बना है पहला पर्दाः अंधेरे का पर्दा। अंधेरा अगर तुम्हारे बाहर होता तो कोई बाहर से रोशनी भी ला सकता था। तुम घर में बैठे हो अंधेरे में, पड़ोसी भी दीया ला सकता है। लेकिन जीवन में जो अंधेरा है, वह

कुछ ऐसा है कि तुम उसे निर्मित कर रहे हो। वह तुम्हारे बाहर नहीं तुम्हारे भीतर उसकी जड़ें हैं; इसलिए कोई भी दीया लाकर तुम्हें दे नहीं सकता, जब तक कि तुम अंधेरे की जड़ों को न तोड़ डालो।
जड़ें हैंः स्वभाव की प्रचंडता।
बहुत लोग हैं, जो क्रुद्ध ही जीते हैं। कुछ लोग हैं, जिन्हें कभी-कभी क्रोध होता है। कुछ लोग हैं, क्रोध जिनका स्वभाव है। जिनसे तुम अक्रोध की आशा ही नहीं कर सकते। जिनके संबंध में तुम निश्चित रह सकते हो कि वे कोई न कोई कारण क्रोध करने का खोज ही लेंगे। देखनेवाले चकित होते हैं कि जहां कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता था, वहां भी लोग कारण खोज लेते हैं।
मैंने सुना है, एक पति-पत्नी में निरंतर झगड़ा होता रहता था। पत्नी मनोवैज्ञानिक के पास गई और मनोवैज्ञानिक ने कहा कि कुछ झगड़े को हटाने के उपाय करो। बनाया है तो बन गया है। अब पति का जन्मदिन आता हो--कब आता है? उसने कहा, कल ही उनका जन्मदिन है। तो उसने कहा, इस मौके को अवसर समझो। कुछ उनके लिए खरीदकर लाओ, कुछ भेंट करो। कुछ प्रेम की तरफ हाथ बढ़ाओ। प्रेम की ताली एक हाथ से तो बजती नहीं। तुम्हारा हाथ बढ़े तो शायद पति भी उत्सुक हो।
पत्नी को बात जंची। बाजार से दो टाई खरीद लायी। दूसरे दिन पति को भेंट कीं। पति बड़ा प्रसन्न हुआ। ऐसा कभी हुआ न था। पत्नी कुछ लायी हो खरीदकर, इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता था। मनोवैज्ञानिक का सत्संग लाभ कर रहा है। प्रसन्न हुआ। इतना प्रसन्न हुआ कि उसने कहा कि आज अब भोजन मत बना। आज हम नगर के श्रेष्ठतम होटल में चलते हैं। मैं अभी तैयार हुआ।
वह भागा। स्नान किया, कपड़े बदले, पत्नी दो टाई ले आयी थी, उसमें से एक टाई पहनकर बाहर आया। पत्नी ने देखा और कहा, अच्छा, तो दूसरी टाई पसंद नहीं आयी!
अब आदमी एक ही टाई पहन सकता है एक समय में। दो ही टाई तो एक साथ नहीं बांधे जा सकते। अब कोई भी टाई पहनकर आता पति... विवाद शुरू हो गया। यह बात पत्नी को नाराज कर गई कि दूसरी टाई पसंद नहीं आयी। मैं इतनी मेहनत से, इतने भाव से, इतने प्रेम से खरीदकर लायी हूं।
कुछ लोग हैं जिनके लिए क्रोध एक भावावेश होता है--अधिक लोग। किसी ने गाली दी, क्रुद्ध हो गए।
लेकिन कुछ लोग हैं, जो क्रुद्ध ही रहते हैं। किसी के गाली देने न देने
का सवाल नहीं है। वे गालियां खोज लेते हैं। जहां न हो गाली, वहां भी खोज लेते हैं। जहां न हो गाली, वहां भी व्याख्या कर लेते हैं।
महावीर कहते हैं ऐसा व्यक्ति, जिसने क्रोध को अपनी सहज आदत बना लिया हो, कृष्ण लेश्या में दबा रहेगा--क्रोध, रौद्रता, दुष्टता!
राह से तुम चले जा रहे हो, एक कुत्ता दिखाई पड़ जाता है, तुम उठाकर पत्थर ही मार देते हो। कुछ लेना-देना न था। कुत्ता अपनी राह जाता, तुम अपनी राह जाते थे। तुम राह से निकल रहे हो, वृक्ष फूले हैं, तुम फूल ही तोड़ते चले जाते हो। क्षणभर बाद तुम उनको फेंक देते हो रास्ते पर; लेकिन जैसे दुष्टता तुम्हारे भीतर है।
और ध्यान रखना, जो दुष्टता आदत का हिस्सा है, वही असली खतरनाक बात है।
जो दुष्टता कभी-कभार हो जाती है, वह कोई बहुत बड़ा प्रश्न नहीं है, मानवीय है। कोई किसी क्षण में नाराज हो जाता है, क्रुद्ध हो जाता है, कभी किसी क्षण में दुष्ट भी हो जाता है। वह क्षम्य है। उससे कृष्ण लेश्या नहीं बनती। कृष्ण लेश्या बनती है, गलत वृत्तियों का ऐसा अभ्यास हो गया हो, कि जहां कोई भी कारण न हो वहां भी वृत्ति अपने ही अभ्यास के कारण, कारण खोज लेती हो। तो फिर तुम अपने अंधेरे को पानी सींच रहे हो, खाद दे रहे हो। फिर यह अंधेरा और बड़ा होता चला जाएगा।
"स्वभाव की प्रचंडता... ।"
इसे थोड़ा ख्याल रखना। ऐसी कोई वृत्ति आदत मत बनने देना। कभी क्रोध आ जाए तो बहुत परेशान होने की जरूरत नहीं है। मनुष्य कमजोर है। असली प्रश्न तो तब है, जब कि क्रोध तुम्हारे घर में बस जाए; नीड़ बसाकर बस जाए।

क्रोधी आदमी अकेला भी बैठा हो तो भी क्रोधी होता है। तुम उसकी आंख में क्रोध देखोगे। चलेगा तो क्रोध से चलेगा। बैठेगा तो क्रोध से बैठेगा।
क्रोध उसकी छाया है, उसका सत्संग है। वह जो भी करेगा, क्रोध से करेगा। दरवाजा खोलेगा तो क्रोध से खोलेगा। जूते उतारेगा तो क्रोध से उतारेगा। सूफी फकीर बोकोजू से कोई मिलने आया। उसने जोर से दरवाजे को धक्का दिया। क्रोधी आदमी रहा होगा, कृष्ण लेश्या का आदमी रहा होगा। फिर जूते उतारकर फेंके। बोकोजू के पास आकर बोला, शांति की आकांक्षा करता हूं। कोई ध्यान का मार्ग दें। बोकोजू ने कहा, यह बकवास पीछे। पहले जाकर दरवाजे से क्षमा मांगो, जूते को सिर झुकाकर नमस्कार करो।
उस आदमी ने कहा, क्या मतलब? दरवाजे से क्षमा? जूते से नमस्कार? ये तो मृत चीजें हैं, जड़ चीजें हैं। इनसे क्या क्षमा और क्या नमस्कार!
बोकोजू ने कहा, क्रोध करते वक्त न सोचा कि जड़ चीजों पर क्रोध कर रहे हो? जूते को जब क्रोध से फेंका, तब न सोचा कि जूते पर क्या क्रोध करना! दरवाजे को जब धक्का दिया, बेहूदगी और अशिष्टता की, तब न सोचा। जाओ वापस, अन्यथा मेरे पास आने की कोई सुविधा नहीं है। मैं तुमसे बात ही तब करूंगा, जब तुम दरवाजे से क्षमा मांगकर आ जाओ।
अब यह जो आदमी है, कृष्ण लेश्या से दबा होगा। ऐसा नहीं कि उसने जानकर कोई क्रोध किया। क्रोध उसका अंग बन गया है। वह क्रोध से ही दरवाजा खोल सकता है।
तुम भी लोगों को ध्यानपूर्वक देखोगे तो तुम्हें दिखाई पड़ने लगेगा। पहले औरों को देखना, क्योंकि औरों के संबंध में सत्य को जानना सरल होता है। तुम्हारा कुछ लेना-देना नहीं। दूसरे की बात है। तुम दूर खड़े होकर देख लेते हो। लोगों को जरा गौर से देखना। कभी रास्ते के किनारे बैठ जाना किसी वृक्ष के नीचे, चलते लोगों को देखना। देखना कि कौन आदमी क्रोध से चल रहा है। कौन आदमी प्रेम से चल रहा है। कौन आदमी आनंदभाव से चल रहा है। और तुम पाओगे, हर स्थिति में भाव-भंगिमा अलग है।
प्रेम से चलनेवाले की चाल में एक संगीत होगा। कोई अदृश्य पायल बजती होगी। हृदय में कोई गहन आनंद की वर्षा होती होगी। क्रोध से चलनेवाला आदमी जैसे कांटों में चुभा पड़ा है। पीड़ा से जलता हुआ, आग की लपटों में झुलसता चल रहा है। राह वही, लोग अलग-अलग हैं।
जिन रास्तों पर तुम चलते हो, उन्हीं पर बुद्ध और महावीर चले हैं। जिन वृक्षों के नीचे से तुम गुजरे हो, उन्हीं के नीचे से बुद्ध और महावीर गुजरे हैं। लेकिन तुम एक ही दुनिया में नहीं चले और एक ही रास्तों पर नहीं गुजरे। क्योंकि असली में तो तुम क्या हो, इससे तुम्हारी दुनिया निर्मित होती है।
ऐसा पहले दूसरों को देखना। कुछ लोग मूर्च्छित मालूम पड़ेंगे। चले जा रहे हैं, लेकिन जैसे किसी नशे में हैं। कभी-कभी कोई आदमी, कोई छोटा बच्चा जाग्रत मालूम पड़ेगा। कभी-कभी किसी की आंखों में जागृति की चमक दिखाई पड़ेगी, अन्यथा अंधेरा है। चल रहे हैं, जगे हुए हैं, फिर भी सोये हुए हैं। ऐसा पहले दूसरों का निरीक्षण करना और फिर जो तुम्हें दूसरों के निरीक्षण में दिखाई पड़े, धीरे-धीरे अपने पर लागू करना। फिर खुद चलते हुए, बैठते हुए, उठते हुए देखना कि तुम किन्हीं भाव-दशाओं में बहुत लिप्त तो नहीं हो गए हो! कहीं ऐसा तो नहीं है कि तुम क्रोध से भरे जीने लगे हो, रोष से भरे जीने लगे हो, हिंसा तुम्हारी अंतर्भूमि बन गई है, दुष्टता तुम्हारा स्वभाव बन गई है!
अगर यह दिखाई पड़े तो एक बड़ी महत्वपूर्ण अनुभूति हुईः कृष्ण लेश्या पहचान में आयी। और जिसे मिटाना हो उसे पहचान लेना जरूरी है। जिससे मुक्त होना हो, उसे आर-पार देख लेना जरूरी है।
"स्वभाव की प्रचंडता, वैर की मजबूत गांठ... ।"
ऐसे लोग हैं, जो जन्म-जन्म तक वैर की गांठ बांधकर रखते हैं। जो भूलते
ही नहीं। जो और सब भूल जाते हैं, वैर नहीं भूलते। ऐसा भी होता है कि पीढ़ी दर पीढ़ी वैर चलता है। बाप मर जाता है तो अपने बेटे को शिक्षण दे जाता है कि पड़ोसी से झगड़ते रहना। अपनी पुश्तैनी दुश्मनी है।

पुश्तैनी दुश्मनी का क्या मतलब हो सकता है? लड़े कोई और थे, जारी कोई और रखे हैं। शुरू किसी ने किया था, वे कभी के मर चुके होंगे दादे-परदादे; लेकिन पुश्तैनी दुश्मनी है, जारी रखे हुए हैं।
ऐसा तो कम होता है, लेकिन बीस साल पहले किसी ने तुम्हें गाली दे दी थी,
वह तुम अभी भी याद रखे हो। गालियां मुश्किल से भूलती हैं। जिस आदमी ने तुम्हारे साथ निन्यानबे उपकार किए हों, वह भी अगर एक गाली दे दे तो निन्यानबे उपकार भूल जाते हैं, वह एक अपमान याद रह जाता है।
तुम कभी अपने पीछे लौटकर विचार करते हो, क्या याद रह गया? तुम अचानक चकित हो जाओगे। सिर्फ जलते हुए अंगारे याद रह गए। तुम कभी पीछे लौटकर देखना कि कौन-सी याददाश्तें तुम्हारे घर में बड़ा गहरा घर किए बैठी हैं। तुम बहुत हैरान होओगे। कभी कोई छोटी-सी बात... तीस साल हो गए, किसी आदमी ने तुम पर व्यंग्य से हंस दिया था, वह अभी भी हंसी उसकी सुनाई पड़ती है। तीस साल में लाखों-अरबों अनुभव हुए हैं। लेकिन वह अंगारा अब भी कहीं घाव की तरह बैठा है। अभी भी हरा है। अभी भी पीड़ा होती है। अभी भी तुम उस आदमी से बदला लेना चाहोगे। छोटी-छोटी बातें याद रह जाती हैं। क्षुद्र बातें याद रह जाती हैं। जीवन के अनंत उपकार भूल जाते हैं।
गुरजिएफ कहता था कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने माता-पिता से किसी न किसी दिन समझौता करना होता है। और जो व्यक्ति अपने माता-पिता को क्षमा न कर सके वह कभी ध्यान में प्रविष्ट नहीं हो सकता।
तुम तो कहोगे, माता-पिता को क्षमा? लेकिन गुरजिएफ बड़ी गहरी बात कह रहा है।
स्वाभाविक है कि जिन माता-पिता ने तुम्हें बड़ा किया, कई दफा तुम पर नाराज हुए होंगे। तुम्हारे हित में हुए होंगे। कई बार मारा, डांटा-डपटा होगा, अगर वह चुभन अभी शेष रह गई है और अगर तुम अपने मां-बाप से भी रसपूर्ण रिश्ता नहीं बना पाए हो, तो और किससे बना पाओगे?
तो गुरजिएफ कहता है, मां-बाप का आदर जिसके मन में आ गया वह साधु होने लगा।
पूरब की सारी संस्कृति कहती है मां और पिता के आदर के लिए। क्यों? तुम शायद इस तरह कभी सोचे नहीं, लेकिन मनोविज्ञान इसी तरह सोचता है। जब संस्कृति इतना जोर देती है कि माता-पिता का आदर करो, तो इसका अर्थ ही यह है कि अगर जोर न दिया जाए तो तुम अनादर करोगे। जोर केवल खबर दे रहा है कि अगर तुम्हें छोड़ दिया जाए तुम पर, तो तुम अनादर करोगे। पश्चिम में मनोविश्लेषण ने बड़ी खोजें की हैं। उनमें सबसे बड़ी खोज यह है कि जितने भी लोग मानसिक रूप से बीमार होते हैं वे किसी न किसी तरह अपनी मां से नाराज हैं।
अगर सारे मनोविश्लेषण को एक शब्द में दोहराना हो और सारी मानसिक बीमारियों को एक शब्द में लाना हो तो वह--मां से नाराजगी।
हर आदमी छोटा था, बच्चा था, कमजोर था। उस कमजोरी के क्षण में असहाय था, किसी पर निर्भर था। मां और पिता पर निर्भर था। और मां और बाप को बच्चे को बड़ा करना है, कई बातें गलत हैं, जिनसे रोकना है। कई बातें सही हैं, जिनकी तरफ बच्चे को गतिमान करना है। बहुत दफा नाराज भी होना है, बहुत दफे डांटना- डपटना भी है। वे घाव भीतर रह जाते हैं।
अक्सर ऐसा होता है कि जब बेटे जवान हो जाते हैं, शक्तिशाली हो जाते हैं और मां और बाप बूढ़े होने लगते हैं, तब बदला शुरू होता है। तब पहिया पूरा घूम गया। पहले बच्चे थे तुम, कमजोर थे, तुम कुछ कर न सके, सहा; फिर मां- बाप बच्चे हो जाते हैं, बूढ़े हो जाते हैं, कमजोर हो जाते हैं। तुम शक्तिशाली हो जाते हो। फिर तुम सताना शुरू कर देते हो।
मां-बाप के पास भी हमारा क्रोध, हमारा वैर-भाव गांठ की तरह बना रहता है
तो औरों की तो बात ही क्या! और महावीर कहते हैं कि यह वैर की गांठ जितनी गहरी होगी, उतना ही तुम्हारा कृष्ण लेश्या का पर्दा सघन होगा।
मुल्ला नसरुद्दीन एक बस में यात्रा कर रहा था। बस के अंदर एक कतार में खुद बैठा, दूसरी तरफ उसकी पत्नी बैठी थी। और दूसरी कतार में एक अपरिचित महिला यात्री। हवा के झोंके से उस युवती का आंचल लहरा-लहराकर मुल्ला के

पैर को झाड़ता-पोंछता। जब बस के मुड़ने पर उस महिला का हाथ मुल्ला के पैर पर पड़ गया तो उसने अपनी पत्नी के कान में कहा, मुझे गौतम बुद्ध समझ रही है। थोड़ी देर बाद जब बस के झटके से चप्पल सहित उसका पैर मुल्ला के पैर में लगा तो पत्नी ने मुल्ला के कान में कहा, सावधान! अब आपकी असलियत पहचान गई है। आदमी वैर की गांठ बांधता है संसार से, उसका आधारभूत कारण क्या है? आधारभूत कारण है कि आदमी अपने को तो गौतम बुद्ध समझता है, इसलिए अपेक्षा करता है। बड़ी अपेक्षा करता है कि सारा संसार उसके चरणों में झुके। और जब लोग उसके चरणों में झुकना तो दूर रहा, उसका अपमान करते हैं; चरणों में झुकना तो दूर रहा, अपेक्षा पूरी करना तो दूर रहा, उसकी उपेक्षा करते हैं; चरणों में झुकना तो दूर रहा, ऐसी स्थितियां पैदा करते हैं कि उसे उनके चरणों में झुकना पड़े तो घाव खड़े होते हैं, वैर की गांठ बंधती है।
अहंकार के कारण वैर की गांठ बंधती है। और अहंकार कृष्ण लेश्या का आधार है। जितना अहंकार होगा, उतनी वैर की गांठ होगी। तुमने अगर अपने को बहुत कुछ समझा तो वैर की गांठें बहुत हो जाएंगी। क्योंकि कोई तुम्हारी अपेक्षा पूरी करने को नहीं है। लोग अपने अहंकार के लिए जी रहे हैं। तुम्हारे अहंकार की तृप्ति करने को कौन जी रहा है? लोग तुम्हारे अहंकार से संघर्ष कर रहे हैं। तुम जितने अहंकारी हो, लोग उतना तुम्हें नीचे दिखाने की चेष्टा करेंगे। क्योंकि तुम्हारे नीचे दिखाए जाने में ही उनका ऊंचा होना निर्भर है। तुम भी तो लोगों के साथ यही कर रहे हो कि उनको नीचा दिखाओ। तो वही आदमी वैर की गांठ नहीं बांधेगा जिसके पास कोई अहंकार नहीं है। लाओत्सु कहता है, मुझे तुम हरा न सकोगे क्योंकि मैं हारा हुआ हूं। मेरी जीत की कोई आकांक्षा नहीं है। तुम मुझे हटा न सकोगे मेरी जगह से क्योंकि मैं अंत में ही खड़ा हुआ हूं। इसके पीछे अब और कोई जगह ही नहीं है। लाओत्सु यह कह रहा है, जो विनम्र है उसके साथ किसी की शत्रुता नहीं होगी। और अगर किसी की शत्रुता होगी भी, तो वह जो शत्रुता बना रहा है उसकी समस्या है, विनम्र की समस्या नहीं है।
किसी की दी गई गाली तुम्हें चुभती है क्योंकि तुम अहंकार को सजाए बैठे हो। तुमने अहंकार का कांच का महल बना रखा है। किसी ने जरा-सा कंकड़ फेंका कि तुम्हारे दर्पण टूट-फूट जाते हैं। अहंकार बड़ा नाजुक है। जरा-सी चोट से डगमगाता है, टूटता है, कंपता है। तो फिर वैर की गांठ बनती जाती है। तुम मित्र किन्हें कहते हो? तुम मित्र उन्हें कहते हो जो तुम्हारे अहंकार की परिपूर्ति करते हैं। इसलिए तो चापलूसी का दुनिया में इतना प्रभाव है। अगर तुम किसी की चापलूसी करो, खुशामद करो, तो तुम अतिशयोक्ति करो तो भी जिसकी तुम खुशामद करते हो, वह मान लेता है कि तुम ठीक कह रहे हो। वस्तुतः वह सोचता है कि तुम्हीं पहले आदमी हो जिसने उन्हें पहचाना। वह तो सदा से यही मानता था कि मैं एक महापुरुष हूं। कोई उसको पहचान नहीं पा रहा था, तुम मिल गए उसे पहचाननेवाले।
जिसकी तुम खुशामद करो, तुम कभी चकित होना; तुम अतिशयोक्ति करते हो, अंधे को कमलनयन कहते हो, असुंदर को सौंदर्य की प्रतिमा बताते हो, अज्ञानी को ज्ञान का अवतार कहते हो और तुम्हें भी चकित होना पड़ता होगा कि वह मान लेता है। यह तो उसने माना ही हुआ था। तुम पहली दफा पहचाननेवाले मिले। कोई दूसरा पहचान नहीं पाया। खुशामद इसीलिए कारगर होती है।
अगर वह आदमी विनम्र हो और असलियत को जानता हो तो तुम खुशामद से उसे प्रसन्न न कर पाओगे। जिस आदमी को तुम खुशामद से प्रसन्न कर लो, सम्हलकर रहना। यह आदमी वैर की गांठ भी बांधेगा। जो खुशामद से प्रसन्न होगा, वह अपमान से नाराज होगा। जो झूठी खुशामद से प्रसन्न हो जाता है, वह अवास्तविक अपमान से भी नाराज हो जाएगा; तथ्यहीन अपमान से भी नाराज हो जाएगा।
विनम्र व्यक्ति को न तो खुशामद से प्रसन्न किया जा सकता है और न अपमान
से नाराज किया जा सकता है। विनम्र व्यक्ति तुम्हारी नियंत्रण-शक्ति के बाहर हो जाता है। वह स्वयं अपना मालिक होने लगता है।
कृष्ण लेश्या में दबा हुआ आदमी गुलाम है। बड़ा गुलाम है। उसके ऊपर बटन लगे हैं, जो भी चाहो तुम दबा दो, बस वह वैसे ही व्यवहार करता है। जरा अपमान कर दो कि वह आग-बबूला हो गया। बटन दबा दो कि वह सौ डिग्री पर उबलने लगा, भाप

बनने लगा। दूसरा बटन दबा दो, वह प्रसन्न हो गया, आनंदित हो गया। तुम जो कहो, करने को राजी है। जान देने को राजी हो जाए तुम्हारे लिए।
इसका अर्थ हुआ कि कृष्ण लेश्या से भरा हुआ आदमी प्रतिक्रिया से जीता है। तुम उससे कुछ भी करवा ले सकते हो। विनम्र व्यक्ति अपने बोध से जीता है, प्रतिक्रिया से नहीं।
"स्वभाव की प्रचंडता और वैर की मजबूत गांठ, झगड़ालू वृत्ति... ।"
संसार में इतने झगड़े नहीं हैं जितने दिखाई पड़ते हैं। जितने दिखाई पड़ते हैं वे झगड़ालू वृत्ति के कारण हैं। लोग झगड़ने को तत्पर ही खड़े हैं। लोग प्रतीक्षा कर रहे हैं कब मिले अवसर। लोग बिना झगड़े बेचैन हो रहे हैं। लोग निमंत्रण दे रहे हैं कि आ बैल, मुझे सींग मार। क्योंकि जब तक बैल सींग नहीं मारता, उन्हें उनके अस्तित्व का बोध नहीं होता। लड़ने में ही उन्हें पता चलता है कि हम हैं। जब जीवन में कठिनाई होती है, संघर्ष होता है, तभी उन्हें पता चलता है कि हम भी कुछ हैं। सिद्ध करने का मौका मिलता है।
इसे समझना। जिस व्यक्ति को अपनी आत्मा की कोई झलक नहीं मिली, वह हमेशा झगड़ने को तैयार होगा। क्योंकि झगड़ने में ही उसे थोड़ा आत्मभाव पैदा होता है। झगड़ने में ही लगता है, मैं भी हूं। और तो कोई उसे उपाय नहीं दिखाई पड़ता सिद्ध करने का। कैसे सिद्ध करे कि मैं भी हूं?

एक आदमी ने अमरीका में सात हत्याएं कीं एक घंटे के भीतर। अपरिचित, अनजान आदमियों पर गोली दाग दी। उनमें कुछ तो ऐसे थे, जिनको उसने कभी देखा ही नहीं था पहले। दो तो ऐसे थे, जिनको उसने गोली मारते वक्त भी नहीं देखा क्योंकि वे पीठ किए खड़े थे समुद्र के तट पर, उसने पीछे से गोली मार दी। अदालत में जब पूछा गया, ऐसा उसने क्यों किया? क्या वह विक्षिप्त है? तो उसने कहा, मैं विक्षिप्त नहीं हूं। मुझे सिद्ध करने का कोई मौका ही नहीं मिल रहा है कि मैं भी हूं। मैं अखबार में पहले पेज पर अपना नाम और अपनी तस्वीर छपी देखना चाहता था, वह मैंने देख ली। अब तुम मुझे सूली पर भी चढ़ा दो, तो मैं तृप्त मरूंगा। मैं ऐसे ही नहीं जा रहा हूं, नाम करके जा रहा हूं। लोग कहते हैं बदनाम हुए तो क्या, कुछ नाम तो होगा ही। तुम्हें अपनी आत्मा का पता कब चलता है? जब तुम किसी के साथ संघर्ष में जूझ जाते हो। उस संघर्ष की स्थिति में तुम्हारी आत्मा में त्वरा आती है। तुम्हें लगता है, मैं भी हूं। मेरे कारण कुछ हो रहा है।
कहते हैं अडोल्फ हिटलर कलाविद होना चाहता था। उसने एक कला, चित्रकला सीखने के लिए आवेदन किया था, लेकिन विश्वविद्यालय ने उसे स्वीकार न किया। वह जीवन के अंत समय तक भी कागजों पर चित्र बनाता रहा। लेकिन वह बड़ा रुष्ट हो गया, जब उसे विश्वविद्यालय ने इंकार कर दिया।

मनुष्य बड़ा अदभुत है। वह कुछ सृजन करना चाहता था, लेकिन किया उसने विनाश। मनोवैज्ञानिक सोचते हैं कि अगर उसे कला-विश्वविद्यालय में जगह मिल गई होती तो शायद दुनिया में दूसरा महायुद्ध न होता। वह अगर सृजन में संलग्न हो गया होता तो उसकी शक्ति सृजनात्मक हो गई होती। उसने सुंदर चित्र बनाये होते, रंग भरे होते, गीत गुनगुनाए होते। वह दुनिया को थोड़ा सुंदर करके छोड़ जाता। वह इतिहास में अपना नाम छोड़ना चाहता था। लेकिन जब सृजनात्मक मार्ग न मिला तो उसकी सारी ऊर्जा विध्वंसात्मक हो गई।
तुम ख्याल रखना; जब तुम झगड़ालू वृत्ति से भरते हो, तब तुम किसी तरह चोर रास्ते से आत्मा का अनुभव करने चले हो। जब तुम कुछ विनाश करते हो, तब तुम्हें अपने होने का पता चलता है। स्कूल में विद्यार्थी खिड़कियों के कांच फोड़ आते हैं, कालेज में उपद्रव खड़े कर देते हैं। इससे उनको पता चलता है कि हम भी हैं। अपने बल का पता चलता है।
बल को जानने के दो उपाय हैंः या तो कुछ निर्माण करो, या कुछ मिटाओ। तीसरा कोई उपाय नहीं है। तो जो व्यक्ति मिटाने में बल का अनुभव करता है, वह कृष्ण लेश्या में दबा रह जाएगा। सृजन में बल का अनुभव करो। कुछ बनाओ। कुछ तोड़ो मत। क्योंकि तोड़ना तो कोई भी कर सकता है, पागल कर सकता है। तोड़ना तो कोई बुद्धिमत्ता की अपेक्षा नहीं रखता।

कुछ बनाओ। एक गीत बनाओ, एक मूर्ति बनाओ, एक वृक्ष लगाओ, पौधा रोपो। जब
उस पौधे में फूल आएंगे तब तुम्हें आत्मवान होने का पता चलेगा। देखी है माली की प्रसन्नता, जब उसके फूल खिल जाते हैं? देखा है मूर्तिकार का आनंद, जब उसकी मूर्ति बन जाती है? देखा है कवि का प्रफुल्ल भाव, जब कविता के फूल खिल जाते हैं?
कुछ बनाओ। दुनिया में सृजनात्मक लोग बहुत कम हैं। और हर आदमी ऊर्जा लेकर पैदा हुआ है। तुम्हारी ऊर्जा अगर सृजन की तरफ न गई तो विध्वंस की तरफ जाएगी। इसे तुम ख्याल करके देखो। जीवन में चारों तरफ आंख फैलाकर देखो। जो लोग कुछ बनाने में लगे हैं, तुम उन्हें झगड़ालू न पाओगे। तुम उन्हें बड़ा विनम्र, उदारमना, सरल, सौम्य, आर्जव से भरे, मार्दव से भरे हुए पाओगे--मृदु, कोमल... जो लोग भी कुछ बनाने में लगे हैं। जो लोग भी मिटाने में लगे जाते हैं, तुम उन्हें बड़े झगड़ालू पाओगे। वे हर चीज पर झगड़ने को और विवाद करने को तत्पर हैं।
एक बड़ी अदभुत घटना घटती है। तुम राजनीति के क्षेत्र में देख सकते हो।
जो लोग सत्ता में पहुंच जाते हैं, सत्ता में पहुंचते ही उनके पास बनाने की ताकत आ जाती है। कुछ बना सकते हैं। अगर उनमें थोड़ी भी बनाने की क्षमता हो तो उनकी ऊर्जा सृजनात्मक होने लगती है।
ये वे ही लोग हैं, जो सत्ता में जब नहीं थे तो विध्वंसात्मक थे। जब इनके हाथ में सत्ता नहीं थी तो हड़ताल, बगावत, शड्यंत्र, ट्रेनों को गिराना, लोगों को उभाड़ना, झगड़ाना--झगड़ालू वृत्ति के लोग थे; ये वे ही लोग हैं। इन्हीं को तुम सत्ता में बिठाल दो, ये तत्क्षण हड़तालों के खिलाफ हो जाते हैं। ये तत्क्षण तोड़-फोड़ के विरोध में हो जाते हैं। तोड़-फोड़ के कारण ही पहुंचे वहां तक। तोड़-फोड़ से ही पहुंचे वहां तक। सभी क्रांतिकारी सत्ता में पहुंचते से ही क्रांति का साथ छोड़ देते हैं।
क्या हो जाता है? इन आदमियों में इतना परिवर्तन कैसे हो जाता है? समझने योग्य है। क्योंकि ऊर्जा एक ही तरफ बह सकती है। सत्ता में पहुंचते से ही लोगों की क्रांति समाप्त हो जाती है। तब वे कुछ और ही बात करने लगते हैं--देश के निर्माण की, शांति की, सुख की। ये वे ही लोग हैं जो कुछ दिन पहले स्वतंत्रता की बात करते, सुख की नहीं। देश के निर्माण की बात नहीं करते, गति की, प्रगति की बात करते; नए की बात करते। यही व्यक्ति जो कल पुराने को मिटाने को तत्पर थे, सत्ता में आते से ही पुराने को सम्हालने में तत्पर हो जाते हैं। यह अनूठी घटना है। लेनिन और स्टैलिन जैसे ही सत्ता में पहुंचते हैं, ये क्रांति के दुश्मन हो जाते हैं। ये उन लोगों को, जो अब भी क्रांति में लगे हैं, उनको नष्ट करने लगते हैं। उनको जेलों में फेंकने लगते हैं। ऐसा प्रत्येक व्यक्ति के भीतर भी घटता है। तुम जरा कोशिश करके देखना! तुम किसी चीज के बनाने में उत्सुक हो जाओ--कोई छोटी-सी चीज! बांसुरी बजाने में उत्सुक हो जाओ, और तुम पाओगे, तुम्हारी झगड़ालू वृत्ति कम हो गई। क्योंकि ऊर्जा अब बांसुरी से भी तो बहेगी। जो ऊर्जा बांसुरी से बहेगी, वह झगड़े के लिए अब उपलब्ध न रहेगी। महावीर ने इसीलिए अहिंसा पर इतना जोर दिया।
"वैर की मजबूत गांठ, झगड़ालू वृत्ति, धर्म और दया से शून्यता... ।"
ऐसे व्यक्तियों के मन में दया का भाव नहीं उठता। अभी अमरीका में एक विश्वविद्यालय ने इस बात का अध्ययन करने की कोशिश की, कि जो लोग रास्ते पर कभी किसी की हत्या कर देते हैं या कार से किसी को धक्का मारकर गिरा देते हैं, उस घड़ी कुछ लोग त्राता की तरह आ जाते हैं। एक आदमी ने एक बूढ़ी को कार से धक्का मारा और वह धक्का मारकर कार लेकर भागा। एक आदमी, जो दुकान में खरीद-फरोख्त कर रहा था, वह उचककर अपनी मोटर साइकिल पर सवार हुआ। उस कार के पीछे लग गया। कोई तीन मील दूर जाकर उसने पकड़ा और उस आदमी की पिटाई की। मनोवैज्ञानिक इसका अध्ययन कर रहे थे। उस आदमी से पूछा गया कि जब बूढ़ी औरत रास्ते पर कार का धक्का खाकर गिरी तो क्या यह उचित नहीं था कि पहले तुम उस बूढ़ी स्त्री को अस्पताल पहुंचाते, बजाय इस आदमी के पीछे जाकर तीन मील दूर जाकर इसकी मारपीट करने के? क्योंकि वह बूढ़ी मर गई। अगर वह अस्पताल

पहुंचाई गई होती तो बच जाती। उस आदमी ने कहा, यह तो मुझे ख्याल ही नहीं आया। मुझे तो पहला ख्याल यह आया कि इस आदमी को दंड देना जरूरी है।
यह आदमी लोगों से कहेगा कि मैं दयाभाव से भरा आदमी हूं, लेकिन यह आदमी दयाभाव से भरा नहीं है। अगर किसी एक स्त्री पर कोई गुंडा हमला कर देता है तो जो आदमी उस गुंडे से जूझने लगते हैं, वे भी गुंडे जैसे ही गुंडे हैं। उनको भी उस स्त्री से कुछ मतलब नहीं है। झगड़ालू वृत्ति के हैं। हालांकि वे कहेंगे कि दयाभाव से प्रेरित होकर, सदभाव से प्रेरित होकर उन्होंने ऐसा किया। लेकिन वे सदभाव की सिर्फ आड़ ले रहे हैं। और वह मामला ऐसा है कि समाज भी उनका साथ देगा। तो उनका गुंडागर्दी करने का बड़ा सुविधापूर्ण मौका है। मगर ये आदमी गुंडों जैसे ही गुंडे हैं। ये गुंडे ही हैं; इनमें कुछ फर्क नहीं है।
असली सवाल तो उस स्त्री को बचाने का था, वह तो एक तरफ हो गया। स्त्री
से तो कुछ लेना-देना नहीं है। इनको एक मौका मिल गया अपना क्रोध, अपनी हिंसा प्रगट करने का।
महावीर कहते हैं, "धर्म और दया से शून्यता... ।"
तो कभी-कभी ऐसा भी होता है, गलत तरह के लोग भी दया की आड़ में हिंसा को
ही चलाते हैं। कोई चिल्लाता है इस्लाम खतरे में; कोई कहता है हिंदू धर्म खतरे में; और जो उस नाम से चलता है वह गुंडागर्दी है।
जो धर्म पे बीती देख चुके, ईमां पे जो गुजरी देख चुके
इस राम और रहीम की दुनिया में इंसान का जीना मुश्किल है
चाहे धर्म हों--हिंदू, मुसलमान, ईसाई; चाहे नए धर्म हों--कम्युनिज्म, समाजवाद, फासिज्म; लेकिन सबके पीछे ऐसा मालूम पड़ता है दया तो केवल बहाना है, असली मतलब कुछ और है।
स्टैलिन जब सत्ता में आया रूस में, तो आया तो इसी कारण कि गरीबों की हिमायत करनी है। लेकिन सत्ता में आने के बाद लाखों गरीबों को मार डाला। जो मारे गए वे अधिकतर गरीब थे, जिनके लिए सत्ता में आने की आकांक्षा थी। क्या हुआ? गरीबों के हित के लिए गरीबों को मारा!
तुमने कभी ख्याल किया? अपने भीतर भी निरीक्षण किया? तुम अपने बच्चे
को कहते हो, चुप हो जाओ। वह चुप नहीं होता, तुम उसको डांटते-डपटते हो, मारते हो। और तुम कहते यही हो कि तेरे हित के लिए मार रहे हैं। तुझे शिष्टाचार सिखा रहे हैं। लेकिन तुमने भीतर गौर किया? वस्तुतः तुम शिष्टाचार सिखाना चाहते हो या तुम्हारी आज्ञा नहीं मानी गई इसलिए तुम नाराज हो?
आदमी अच्छी बातों की आड़ में अपनी बुरी बातों को छिपाता है। अच्छे लिबास में, साधु-संतों के लिबास में भी गुंडे निकलते हैं। साधु लिबास में भी डाकू निकलते हैं। और यह सबने किया है। थोड़ी साफ आंख हो तो तुम देख लोगे, कि कारण कुछ और था, वजह कुछ और थी, बहाना तुमने कुछ और खोजा। बहाना कुछ अच्छा खोजा, जिसकी आड़ में बुराई चल सके।
"धर्म और दया से शून्यता, दुष्टता, समझाने से भी नहीं मानना, ये कृष्ण लेश्या के लक्षण हैं।"
तुम अपनी दया में भी विचार करना और अपने धर्म में भी विचार करना। तुम मंदिर भी जा सकते हो। जाने का कारण मंदिर जाना बिल्कुल न हो, कुछ और हो सकता है।
ऐसा हुआ, लंदन के एक चर्च में इंग्लैंड की रानी आने को थी। तो सैकड़ों फोन आए पादरी के पास। सुबह से ही फोनों का आना शुरू हो गया कि हमने सुना है रानी आ रही है। कब पहुंचेगी? हम भी आना चाहते हैं। जो कभी चर्च न आए थे... । उस पादरी को बड़ी हंसी आयी। उसने फोन पर सभी को एक बात कही कि रानी आएगी कि नहीं पक्का नहीं। क्या भरोसा! राजा-रानियों का क्या भरोसा। लेकिन अगर तुम आना चाहते हो तो स्वागत है। एक बात पक्की है, परमात्मा रहेगा। रानी आए या न आए। पर लोगों ने कहा, ठीक है, परमात्मा तो ठीक है, मगर रानी अगर आ रही हो तो ठीक-ठीक कह दें, तो हम आ जाएं। कब आ रही है?
रानी आयी तो चर्च भरा था; खचाखच भरा था। बाहर तक भीड़ थी। रानी ने पादरी
को कहा कि तुम्हारे चर्च में काफी भीड़ है। लोग बड़े धार्मिक मालूम होते हैं इस हिस्से के। उस पादरी ने कहा, पहली दफा यह मुझको भी दिखाई पड़ रही है भीड़।

इसके पहले तो ये कभी दिखाई नहीं पड़े थे। अपनी-अपनी बाइबिल लिए बैठे हैं, बड़े भावमुग्ध। मगर यह भावमुग्धता, यह हाथ में बाइबिल, सब झूठी है। प्रयोजन कुछ और है।
तुम मंदिर जाओ तो ख्याल रखना, किसलिए गए। तुम कभी दया भी करो तो ख्याल रखना कि किसलिए की। अपने भीतर खोज जारी रखना। रास्ते पर भिखमंगा हाथ फैलाकर खड़ा हो जाता है, तुम दो पैसे डाल देते हो। दया से डाले, जरूरी नहीं है। शायद इसलिए डाले हों कि और लोग देख रहे थे। दो पैसा डालकर दानी बनने जैसी सस्ती बात और क्या हो सकती है? शायद कहीं भिखारी फजीहत खड़ी न कर दे, ज्यादा शोरगुल न मचा दे। कहीं लोगों को यह पता न चल जाए कि तुम दो पैसे भी न दे सके। हद्द कंजूस हो! तो दे दिए। या छुटकारा पाने के लिए दे दिए, कि झंझट मिटे। अपने भीतर देखना। तुम्हारी दया के भीतर भी जरूरी नहीं कि दया हो। तुम्हारी प्रार्थना के भीतर भी जरूरी नहीं कि प्रार्थना हो। और जो भीतर नहीं है उसके बाहर होने से कुछ अर्थ नहीं है।
इसलिए महावीर कहते हैं, "धर्म और दया से शून्यता।"
दिखावा हो सकता है लेकिन भीतर सब सूनापन होगा।
"दुष्टता, समझाने से भी नहीं मानना... ।"
तुमने कई दफे ख्याल किया? किसी से तुम विवाद में पड़ जाते हो, तुम्हें दिखाई भी पड़ने लगता है कि दूसरा ठीक है, फिर भी अहंकार मानने नहीं देता। और तुम चीखते-चिल्लाते हो कि अंधेरे के बाहर कैसे आएं? और तुम रोते- गिड़गिड़ाते हो कि हे प्रभु! अंधेरे से प्रकाश की तरफ ले चल। असत से सत की तरफ ले चल। मृत्यु से अमृत की तरफ ले चल। लेकिन तुम इसके लिए रास्ता तो बनाते नहीं। कितनी बार नहीं विवाद में केवल अहंकार ही कारण होता है! अन्यथा तुम्हें दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है दूसरा ठीक है, मान लो। लेकिन कैसे मान लो? पराजय स्वीकार नहीं होती।
जब दो व्यक्ति लड़ते हैं, विवाद करते हैं तो जरूरी नहीं है कि यह सत्य
के लिए विवाद हो रहा हो। यह विवाद होता है मेरे सत्य के लिए। और जहां मेरा महत्वपूर्ण है, वहां सत्य तो होता ही नहीं। हम कहते हैं, मैं कैसे गलत हो सकता हूं? इसको हम तरकीब से, पीछे के दरवाजे से सिद्ध करना चाहते हैं कि जो भी हम कहते हैं वह ठीक है।
मैंने सुना है चार मेंढक, वर्षा में बाढ़-आयी एक नदी पर डूबने को थे। एक लक्कड़ बहता आ गया, वे उस पर सवार हो गए। बड़े प्रसन्न हुए। लक्कड़ बहने लगा। बाढ़ थी तेज, नदी भागी जा रही है सागर की तरफ। पहले मेंढक ने कहा, यह लक्कड़ संसार का श्रेष्ठतम लक्कड़ है। देखो तो कितना जीवंत और गतिवान! कैसा बहा जाता है। लक्कड़ तो बहुत देखे, मगर ऐसा प्राणवान लक्कड़ कभी नहीं देखा। न कभी हुआ, न कभी होगा। दूसरे ने कहा, लक्कड़ नहीं बह रहा है महानुभाव! नदी बह रही है। विवाद छिड़ गया। दूसरेेेेेे ने कहा, लक्कड़ तो और लक्कड़ों जैसा ही है। कुछ विशिष्टता इसमें नहीं है। जरा गौर से तो देखो। बह रही है नदी। नदी के बहने के कारण लक्कड़ भी बह रहा है।
तीसरे ने कहा, न लक्कड़ बहता, न नदी; विवाद फिजूल है। तुम दोनों अंधे हो। तुम आधा-आधा देख रहे हो। तुम अधूरा देख रहे हो। आंखें साफ चाहिए तो असली बात तुम्हें समझ में आ जाए--जैसा कि सभी धर्मशास्त्रों ने कही है--कि सब प्रवाह तो मनुष्य के मन में हैं। सब गति मन की है। सब दौड़-धूप मन की है। ऐसा मैं देखता हूं कि न तो नदी का सवाल है, न लक्कड़ का, यह मन में बह रही विचारों की धारा है, जिससे जीवन में परिवर्तन दिखाई पड़ता है। मन ठहर जाए, सब ठहर जाता है। शास्त्रों में खोजो तो तुम्हें पता चलेगा।
विवाद चलने लगा। कोई निर्णय तो करीब आता दिखाई न पड़ा। आखिर तीनों को ख्याल आया कि चौथा चुप बैठा है। चौथा मेंढक चुप बैठा था। कुछ बोला ही नहीं था। सबकी सुन रहा था, गुन रहा था, लेकिन बोला कुछ भी नहीं था। उन तीनों ने कहा कि अब कुछ निर्णय तो होता नहीं। निर्णय होने का उपाय भी नहीं।
इसलिए तो संसार में विवाद सदियों से चलते रहे हैं, सनातन चलते रहे हैं। कुछ निर्णय नहीं होता। नास्तिक-आस्तिक के बीच क्या निर्णय हुआ? जैन-हिंदू के बीच क्या निर्णय हुआ? मुसलमान-ईसाई के बीच क्या निर्णय हुआ? निर्णय तो कभी होते ही नहीं।

तो उन तीनों ने कहा कि आप चुप हैं। आप कुछ कहें। उस चौथे मेंढक ने कहा, विवाद का कोई अर्थ नहीं है क्योंकि तुम तीनों ही ठीक हो। नदी भी बह रही है, लक्कड़ भी बह रहा, मन की गति तो सारी दुनिया को पता है। तीनों ही ठीक हो और तीनों ही गलत भी। क्योंकि तुम छोटे-से सत्य को बहुत बड़ा करके कह रहे हो। तुम खंड सत्य को अखंड करने की चेष्टा कर रहे हो। अंश सत्य को सिद्ध कर रहे हो कि वही पूरा सत्य है।
महावीर जैसा रहा होगा यह मेंढक--स्यातवादी। उसने कहा, तुम तीनों ही ठीक हो। साधु-चरित्र रहा होगा यह मेंढक। श्वेत लेश्या को उपलब्ध रहा होगा यह मेंढक। उसने कहा तुम तीनों ही ठीक हो और तीनों गलत भी। गलत इसलिए कि तुम अंश को पूरा सिद्ध कर रहे हो। और सही इसलिए कि तुम्हारी तीनों की बातों में सत्य की कोई झलक है।
तीनों बहुत नाराज हो गए। यह बात तो तीनों के बर्दाश्त के बाहर हो गई। क्योंकि उनमें से कोई भी यह मानने को राजी नहीं था कि उसका वक्तव्य पूर्ण सत्य नहीं है। और न ही उनमें से कोई यह बात मानने को राजी था कि उसके विराधी के वक्तव्य में भी सत्य का अंश हो सकता है।
और तब एक चमत्कारों का चमत्कार घटित हुआ। मेंढकों में शायद ऐसा न होता रहा हो, मनुष्य में सदा होता रहा है। लेकिन उस दिन मेंढकों में भी हुआ। वे तीनों इकट्ठे हो गए और चौथे को धक्का देकर लक्कड़ से बाढ़ में गिरा दिया। उन्होंने कहा, बड़े आए साधु बने! बड़े ज्ञानी होने का दावा कर रहे हैं। वे तीनों इकट्ठे हो गए। उन्होंने अपना विवाद छुड़ा दिया, छोड़ दिया विवाद क्योंकि यह उन तीनों को ही दुश्मन मालूम पड़ा। और एक बात में वे राजी हो गए कि यह तो कम से कम गलत है; बाकी निर्णय हम पीछे कर लेंगे।
यही अवस्था महावीर के साथ हुई। और सारे दर्शनों के दावे हैं, महावीर
का कोई दावा नहीं है। इसलिए महावीर किसी को भी रुचे नहीं। महावीर ने कहा, वेदांत भी ठीक है, सांख्य भी ठीक है, वैशेषिक भी ठीक है, मीमांसा भी ठीक है, लेकिन सभी अंश सत्य हैं। यह बात किसी को जंची नहीं। इसलिए एक बहुत महत्वपूर्ण विचार-दर्शन महावीर ने दिया, लेकिन अनुयायी वे ज्यादा न खोज पाए। क्योंकि सभी नाराज हो गए। वेदांती भी नाराज हुआ। उसने कहा, अंश सत्य? हमारा और अंश सत्य? सांख्य भी नाराज हुआ कि हमारा और अंश सत्य? अहंकार को बड़ी चोटें लगीं।
महावीर जैसा अंधेरे में फेंक दिया और कोई व्यक्तित्व इतिहास में खोजना मुश्किल है। महावीर के विरोध में सभी इकट्ठे हो गए। यह बहुत चमत्कार की बात है।
जैन शास्त्रों के खिलाफ भारत के सभी शास्त्र हैं। वे सभी उनका खंडन करते हैं। क्योंकि यह जो बात है, यह बात किसी के अहंकार को टिकने नहीं देती। आदमी कहता है या तो मैं पूरा सत्य हूं, या पूरा गलत हूं। और पूरा गलत देखें कौन सिद्ध करता है! मेरे रहते कोई सिद्ध न कर पाएगा। और जब तक तुम ही देखने को राजी न हो, सत्य तो दिखाया नहीं जा सकता। इसलिए तुम विवाद में पड़े रह सकते हो।
महावीर कहते हैं, समझने से भी, समझाने से भी न मानना, दिखाई भी पड़ने लगे तो झुठलाना, आंख को भी झुठलाना, अंतर्दृष्टि खुलने लगे तो भी पत्थर अटकाना, कृष्ण लेश्या को मजबूत करने के उपाय हैं। ठीक इनके विपरीत चलो, कृष्ण लेश्या अपने आप उखड़ जाती है। जड़ें टूट जाती हैं। पर्दा गिर जाता है। शिखरों से ऊपर उठने देती न हाय लघुता आपी
मिट्टी पर झुकने देता है देव, नहीं अभिमान हमें
तो न तो हम शिखरों के साथ एक होने का दावा कर पाते हैं।
शिखरों से ऊपर उठने देती न हाय लघुता आपी
आदमी की सीमा है। आदमी लघु है, अंश है। विराट का बड़ा छोटा-सा आणविक कण है।
शिखरों से ऊपर उठने देती न हाय लघुता आपी
और अड़चन दूसरी है और भी, और भी बड़ी--
मिट्टी पर झुकने देता है देव, नहीं अभिमान हमें

और अहंकार दे दिया है, झुक भी नहीं सकते। उठ भी नहीं सकते क्योंकि सीमा है। झुक भी नहीं सकते क्योंकि अहंकार है। इन दोनों के बिबूचन में जो पड़ा है, जो जीवन के सीधे-सीधे सत्य को स्वीकार नहीं करता कि अहंकार का दावा गलत है। आत्मा का दावा सही है, अहंकार का दावा गलत है।
फर्क क्या है दावों में? अहंकार यह कह रहा है कि मैं पृथक और अपने बल
से सर्वशक्तिमान हूं। आत्मा यह कहती है साथ-साथ, सबके संग, सबके साथ एक इस विराट की मैं भी एक छोटी तरंग हूं। अगर मुझमें कोई शक्ति है तो वह विराट की है। अगर मुझमें कोई निर्बलता है, वह मेरी है। अगर भूल-चूक है, मेरी है। अगर कुछ सत्य है तो विराट का है। अगर रोशनी है तो परमात्मा की है। अगर अंधेरा है तो मेरा है। ऐसा जिसने समझा, उसका कृष्ण लेश्या का पर्दा टिक नहीं सकता, अपने आप गिर जाता है। उसके आधार न रहे, सहारे न रहे।
"मंदता, बुद्धिहीनता, अज्ञान और विषय लोलुपता, ये संक्षेप में नील लेश्या के लक्षण हैं।"
फिर कृष्ण लेश्या के पीछे छिपा हुआ नीला पर्दा है। अंधेरे के पार गहरी नीलिमा का पर्दा है।
"मंदता, बुद्धिहीनता, अज्ञान और विषय लोलुपता... ।"
कुछ न कुछ हम मांग ही रहे हैं--लोलुप। हम बिना मांगे क्षणभर को नहीं हैं। हम बिना मांगे रहते ही नहीं हैं। हमारा मांगना चलता है दिन-रात, अहर्निश। हम भिखमंगे हैं। हम एक क्षण को भी अपने सम्राट होने में थिर नहीं होते।
तुमने कभी देखा? कभी भी क्षणभर को अगर मांग बंद हो जाए तो एक अपूर्व उल्लास आ जाता है। उस घड़ी में तुम याचक नहीं होते। उस घड़ी में समाधि के करीब सरकने लगते हो। जैसे ही मांग आयी कि फिर याचक हुए, फिर छोटे हुए। या तुमने यह देखा कि जब भी तुम किसी से कुछ मांगते हो तो भीतर कुछ सिकुड़ जाता है? जब तुम किसी को कुछ देते हो, भीतर कुछ फैल जाता है? देने का मजा, मांगने की पीड़ा तुम्हें अनुभव नहीं हुई? किसी से कुछ मांगकर देखो। तुम उस मांगने के ख्याल से ही छोटे होने लगते हो, संकीर्ण होने लगते हो। तुम्हारी सीमा सिकुड़ने लगती है। तुम बंद होने लगते हो। भय पकड़ने लगता है। देगा, नहीं देगा? मिलेगा, नहीं मिलेगा? अगर मिला भी तो भी मांगने में तुम छोटे और दीन तो हो ही गए।
इसलिए एक और बहुत आश्चर्यजनक घटना है कि जिससे भी तुम्हें कुछ मिलता है, उसे तुम कभी क्षमा नहीं कर पाते। धन्यवाद तो दूर, तुम किसी से मांगने गए कि दस रुपये चाहिए अगर वह दे दे तो तुम उसे कभी क्षमा नहीं कर पाते। भीतर गहरे में तुम नाराज रहते हो। उस आदमी ने तुम्हें छोटा कर दिया। उसने हाथ ऊपर कर लिया, तुम्हारा हाथ नीचे हो गया।
इसलिए सूफी कहते हैं, नेकी कर और कुएं में डाल। अच्छा करना लेकिन उसकी घोषणा मत होने देना। उसको जल्दी से कुएं में डाल देना, नहीं तो तुम्हें कोई क्षमा न कर सकेगा। क्योंकि जिसके साथ तुम अच्छा करोगे, वहीं साथ-साथ एक घटना और घट रही है कि तुमने उसे छोटा कर दिया। और कोई क्षमा नहीं करता किसी को छोटा करने के कारण।
सहायता करना, लेकिन इस तरह करना कि जिसकी तुम सहायता करो, उसे पता भी न चले कि सहायता की गई। इस तरह करना कि उसे लगे कि देनेवाला वही है, लेनेवाले तुम हो। इस तरह देना कि देनेवाले को देनेवाले की अकड़ न पकड़े और लेनेवाले को पता ही न चले कि किसी ने उसे दिया है।
पश्चिम का एक बहुत बड़ा धनपति मारगन जब मरा, तो मरने के पहले उसे किसी
ने पूछा कि तुमने इतनी अटूट धनराशि इकट्ठी की है और तुम्हारे नीचे हजारों बड़ी प्रतिभा के और बुद्धिमान लोग काम करते थे। तुमने इतने-इतने बुद्धिमानों का कैसे उपयोग किया? उसने कहा, राज छोटा-सा है। मैंने कभी उन्हें ऐसा अनुभव नहीं होने दिया कि मैं उन पर कोई अहसान कर रहा हूं। और मैंने कभी ऐसा भी अनुभव नहीं होने दिया कि वे मेरी बात मानकर कोई काम कर रहे हैं। मेरी सदा यह चेष्टा रही कि उनको सदा यह लगता रहे कि वे ही मुझ पर अहसान कर रहे हैं और उनकी बातें मानकर मैं चल रहा हूं।

वह आदमी बड़ा कुशल था। उसको अगर कोई काम भी करवाना होता तो अपने बीस मित्रों को इकट्ठा कर लेता। उनसे कहता कि यह समस्या आ गई है, अब हल खोजना है। खुद चुपचाप बैठा रहता। अब बीस आदमी जहां इकट्ठे हों, बीस हल आते। उनमें से जो हल उसका अपना होता, वह उसको स्वीकार कर लेता। लेकिन अपनी तरफ से वह कभी न कहता कि यह, यह मेरा सुझाव है। वह चुप बैठा रहता। वह सुझाव को आने देता। ठीक समय की प्रतीक्षा करता। कोई न कोई उस सुझाव को देगा ही। या अगर ठीक सुझाव न आता, कुछ हेर-फेर से आता, तो वह थोड़ी तरमीम करता, वह थोड़े संशोधन पेश करता, लेकिन वह भी सुझाव की तरह; आज्ञा की तरह नहीं। उसने बड़े- बड़े लोगों से काम लिया।
मरते वक्त वह कहकर गया कि मेरी कब्र पर एक पत्थर लगा देना कि यहां एक आदमी सोता है, जिसने अपने से ज्यादा बुद्धिमान लोगों से काम लेने की कुशलता दिखाई। उसने कहा कि मेरे सारे इतने विराट धन को इकट्ठा कर लेने का राज इतना है कि मैंने कभी किसी को अनुभव नहीं होने दिया कि वह मुझसे छोटा है।
यह जो नील लेश्या से भरा हुआ आदमी है, याचक होता है--विषय लोलुपता। वह कुछ न कुछ मांगता ही रहता है। उसकी लोलुपता उसके पर्दे को मजबूत करती है। "अज्ञान, बुद्धिहीनता, मंदता... ।"
मंदताः मिडियोक्रिटी, बड़े लोगों के ऊपर छाती पर पत्थर की तरह बैठी है। कोई भी मंद होने को पैदा नहीं हुआ है। परमात्मा तो असाधारण और अद्वितीय चेतनाएं ही पैदा करता है। अगर मंद हो तो तुम अपने कारण हो। मंद हो तो तुमने अपने को निखारा नहीं। मंद हो तो तुम ऐसे हीरे हो जिसको साफ नहीं किया गया है; जिस पर पालिश नहीं किया गया। अनगढ़ पड़े हो। और कोई और तो तुम पर निखार ला नहीं सकता, तुम्हीं ला सकते हो। तो जो तुम हो उससे तृप्त मत हो जाना।
अब ख्याल रखना, लोग अतृप्त हैं, उससे जो उनके पास है; अपने से तो लोग बिल्कुल तृप्त हैं। उनको बड़ी कार चाहिए, यह अतृप्ति है, बड़ा मकान चाहिए, यह अतृप्ति है। तिजोड़ी में और धन चाहिए, यह अतृप्ति है; लेकिन अपने से तृप्त हैं कि जो हैं, वह बिल्कुल ठीक हैं। तो मंद ही रहेंगे।
अपने से अतृप्त होना, और जो मिला है उससे तृप्त होना।
छोटा मकान भी काम दे देगा। कार न हुई तो भी चल जाएगा। तिजोड़ी में बहुत
न धन हुआ तो भी पर्याप्त है। वस्तुओं से तृप्त होना और चैतन्य से तृप्त मत होना; नहीं तो तुम मंद रह जाओगे। चैतन्य को तो घिसते ही रहना। उसको किसी भी क्षण ऐसा मत सोचना कि आखिरी घड़ी आ गई। उसमें और निखार आ सकते हैं। उसमें बड़े अनंत निखार छिपे हैं। उसमें इतने निखार छिपे हैं कि तुम्हारा चैतन्य एक दिन सच्चिदानंद परमात्मा हो सकता है।
मगर बड़ी चमत्कार की बात है। लोग अपने से बिल्कुल तृप्त हैं। इतने ज्यादा तृप्त हैं कि अगर तुम कहो भी उनसे तो वे कहेंगे, क्या कह रहे हैं? मुझमें और परिष्कार! मैं तो परिष्कृत हूं ही, अगर कुछ अड़चन है तो थोड़ी चीजें कम हैं, वे बढ़ जाएं। लेकिन चीजें बढ़ने से तुम्हारा चैतन्य बढ़ेगा? तुम अगर बुद्धू हो तो गरीब होकर बुद्धू रहोगे, अमीर होकर बुद्धू रहोगे। तुम अगर बुद्धू हो तो लंगोटी लगाकर बुद्धू रहोगे, सिंहासन पर बैठकर बुद्धू रहोगे।
बुद्धिमान आदमी वस्तुओं में शक्ति व्यय नहीं करता। बुद्धिमान आदमी सारी शक्ति चैतन्य की जागृति में लगाता है।
महावीर कहते हैं, "मंदता, बुद्धिहीनता, अज्ञान।"
कोई अज्ञानी होने को पैदा नहीं हुआ है, लेकिन अधिकतर लोग अज्ञानी जीते हैं, अज्ञानी मरते हैं। उसका कारण है कि कोई यह स्वीकार ही नहीं करता कि मैं अज्ञानी हूं। लोग तो मानकर चलते हैं कि वे ज्ञानी हैं। जब तुम पहले से मान ही लिए कि तुम ज्ञानी हो तो तुमने अज्ञानी होने की कसम खा ली। अब तुम कभी ज्ञानी न हो सकोगे। सीलबंद! अब तुम अज्ञानी ही रहोगे। तुमने प्रण कर लिया कि हमको अज्ञानी ही रहना है।
ज्ञान की तरफ जिसे जाना है, उसे स्वीकार करना पड़ेगा कि अभी मैं अज्ञानी हूं और इस अज्ञान को आत्यंतिक मानने का कोई कारण नहीं है; इसमें

निखार हो सकते हैं। जैसे बीमार आदमी इलाज करता है तो स्वस्थ हो जाता है। दुर्बल आदमी व्यायाम करता है तो शक्तिशाली हो जाता है। ऐसे ही अज्ञान किसी की स्थिति नहीं है। तुमने अभ्यास नहीं किया, तुमने श्रम नहीं किया ज्ञान के लिए। तुम क्षुद्र बातों की छीना-झपटी में लगे रहे और विराट से चूकते रहे।
और मजा यह है कि विराट के लिए कोई छीना-झपटी नहीं करनी थी। कोई प्रतियोगिता ही नहीं है वहां। तुम अकेले हो। तुम्हें अगर अपनी बुद्धि पर निखार लाने हैं, अगर तुम्हें अपनी बुद्धि में हीरे जड़ने हैं तो कोई झगड़ा नहीं है, कोई से झगड़ा नहीं है। क्योंकि यहां किसी को मतलब ही नहीं है बुद्धि से। तुम्हें अगर प्रतिभा को जगाना है तो कोई से तुम्हारा कोई झगड़ा नहीं, कोई स्पर्धा नहीं है, किसी को लेना-देना नहीं है। लेकिन अगर तुम्हें तिजोड़ी बड़ी करनी है तो करोड़ों लोग स्पर्धी हैं।
मैंने सुना, मुल्ला नसरुद्दीन एक रात गए अपने घर लौटा। और आते ही उसने अपनी पत्नी के हाथों में सोने का एक कटोरा रख दिया। पत्नी उसकी यह भेंट देखकर प्रसन्न भी हुई और आश्चर्यचकित भी। क्योंकि मुल्ला कुछ काम तो करता नहीं। सोने का कटोरा ले कहां से आया है? थोड़ी डरी भी। कटोरा लाने के विषय में जब पत्नी ने उससे प्रश्न किया जो वह बोला, इसे मैंने एक दा.ैड में जीता है। दा.ैड में? पत्नी को और भी आश्चर्य हुआ क्योंकि मुल्ला और दौड़े! बैठ जाए तो उठता मुश्किल से है, उठ जाए तो चलता मुश्किल से है... दौड़े! लेट जाए तो बैठता मुश्किल से, दौड़े! दौड़ में? पत्नी को और भी आश्चर्य हुआ। कैसी दौड़? मुल्ला ने कहा, अजी, अभी-अभी एक दौड़ हुई जिसमें पहले नंबर पर मैं रहा, दूसरे नंबर पर एक सिपाही और तीसरे नंबर पर वह, जिसका यह कटोरा है। छीना-झपटी है। वस्तुओं के जगत में तो बड़ी छीना-झपटी है। तुम अपने कटोरे पर गौर करना, वह बहुत हाथों में रह चुका है। तुम्हारा कटोरा तुम्हारा नहीं है। तुम नहीं थे, तब भी था। तुम नहीं रहोगे, तब भी होगा। तुम्हारा कटोरा बड़ा झूठा है। न मालूम कितने लोगों के हाथों में रह चुका है। छीना-झपटी चल रही है। कटोरा हाथ बदलता रहता है। एक हाथ से दूसरे हाथ, दूसरे से तीसरे हाथ; हाथवाले आते हैं, चले जाते हैं, कटोरा चलता रहता है। यह कटोरे की यात्रा है।
एक तुम्हारे भीतर की चेतना है, जो कुंआरी है, जूठी नहीं। उसे जगाओ। उससे ही तृप्ति मिलेगी। ये कटोरों को जितनी देर तुम सम्हाले रहोगे... और जैसा तुमने दूसरों से छीन लिया है, कोई न कोई तुमसे छीन ले जाएगा। यह ज्यादा देर तुम्हारे हाथ में भी रहनेवाला नहीं है। यह कटोरे की आदत नहीं है। यह संभव भी नहीं है, क्योंकि यहां इतने लोग छीनने के लिए उत्सुक हैं। यहां तो सिर्फ एक चीज तुम्हारे हाथ में रह जाती है, वह तुम्हारे चैतन्य की बात है। उसे कोई नहीं छीनता। उसे कोई छीनना भी चाहे तो छीन नहीं सकता। उसे मौत भी नहीं छीन सकती।
महावीर जब कहते हैं अज्ञान, तो उनका अर्थ है, जो व्यक्ति ऐसी चीजों को जुटाने में लगा है जिन्हें मौत छीन लेगी, वह अज्ञानी है। जो व्यक्ति ऐसी चीज की खोज में लगा है, जिसे मृत्यु भी न छीनेगी, वही ज्ञानी है, वही बुद्धिमान है। जो सार को खोज रहा, वही बुद्धिमान है। जो स्वयं को खोज रहा, वही बुद्धिमान है।
"जल्दी जो रुष्ट हो जाता है, दूसरों की निंदा करता है, दोष लगाता है, अति शोकाकुल होता है, अत्यंत भयभीत होता है, ये कापोत लेश्या के लक्षण हैं।"
तीसराः जल्दी रुष्ट हो जाना, दूसरों की निंदा करना, दोष लगाना, अति शोकाकुल होना, अत्यंत भयभीत होना।
भयभीत हम सभी हैं--अकारण। क्योंकि जो होना है, होगा। उससे भय का कोई अर्थ नहीं। जैसे मौत होनी है, होगी। उससे भय क्या? निश्चित है। होगी ही। भयभीत होओ या न होओ, होगी ही। देह जराजीर्ण होनी है, होगी। बुढ़ापा आना है, आएगा ही। उससे भयभीत क्या होना है, जो होना ही है? लेकिन हम बड़े भयभीत हैं। हम जीवन के तथ्यों से भयभीत हैं। हम जीवन के तथ्यों को झुठलाना चाहते हैं। हम चाहते हैं सब बूढ़े हुए, हम न हों। सब मरें, हम न मरें, जीवन हमारे

लिए अपवाद कर दे। तो हम कंप रहे हैं। और हम जानते भी हैं गहरे में कि यह होनेवाला नहीं है। अपवाद कभी कोई हुआ नहीं इसलिए डर भी लगा है। पैर जमाकर खड़े हैं, जानते हुए कि पैर उखड़ेंगे।
इस भय के कारण हम क्या-क्या कर रहे हैं, थोड़ा सोचो। इस भय के कारण हम धन इकट्ठा करते हैं कि शायद धन से थोड़ा बल आ जाए। इस भय के कारण हम प्रतिष्ठा इकट्ठी करते हैं कि शायद नाम-धाम लोक में ख्यात हो जाए तो कुछ सहारा मिल जाए। भय के कारण हम पूजा करते हैं, प्रार्थना करते हैं। इस भय से हम भगवान को निर्मित करते हैं। सोचते हैं, शायद किसी का सहारा नहीं, अदृश्य का सहारा मिल जाए। मगर जो आदमी भय से भगवान के पास जा रहा है, वह जा ही न सकेगा।
महावीर ने कहा, अभय पहला चरण है। अभय का अर्थ हुआ, जो नहीं होनेवाला है, वह नहीं होगा; उसका तो भय करना क्या? जो होनेवाला है, वह होगा; उसका भय करना क्या?
सुकरात मरता था; तो उसके एक शिष्य ने पूछा कि आप भयभीत नहीं मालूम होते। जहर घोंटा जा रहा है, जल्दी ही प्याला भरकर आपके पास आ जाएगा। छह बजे आपको प्याला पी लेना है। आप मरने को तत्पर बैठे हैं। आप भयभीत नहीं मालूम होते। सुकरात ने क्या कहा? सुकरात ने कहा, मैंने सोचा कि या तो प्याला पीकर मैं मर ही जाऊंगा, कुछ बचेगा ही नहीं, तो भय क्या? भय करने को ही कोई न बचेगा। और या, दूसरी संभावना है कि जैसा लोग कहते हैं, आत्मा अमर है। जहर का प्याला पीकर शरीर ही हटेगा, आत्मा बचेगी; तो फिर भय क्या? बचूंगा ही। सुकरात कह रहा है, दो ही तो विकल्प हैं कि या तो बिल्कुल मिट जाऊंगा। मिट जाऊंगा तो क्या भय? भयभीत होने के लिए कोई कारण ही नहीं। कोई भय करनेवाला ही नहीं। बात ही समाप्त हो गई। कहानी का ही अंत हो गया। तो मैं निश्चिंत हूं। और अगर बच गया--जैसा आत्मज्ञानी कहते हैं--तो भय की क्या जरूरत?
या तो नास्तिक सही होंगे, या आस्तिक सही होंगे। नास्तिक सही हैं तो भी निर्भय, आस्तिक सही हैं तो भी निर्भय।
इसको ही मैं कहता हूं परम आस्तिकता। इस आदमी ने देख ली बात। इस आदमी
को विवेक उपलब्ध हुआ। इस आदमी के पास दृष्टि है, अंतर्दृष्टि है, आंख है। तुम जरा जीवन में देखना। तुम कहते हो कि कल दिवाला न निकल जाए, इससे भयभीत हो रहे हैं। या तो निकलेगा, या नहीं निकलेगा। निकल गया तो क्या करना है? झंझट मिटी। निकल ही गया। नहीं निकला तो परेशान क्यों हो रहे हो? महावीर कहते हैं, जो होगा, होगा; तुम नाहक कंपे जा रहे हो। तुम्हारे कंपने से होने में तो कोई फर्क पड़ता नहीं। तो कम से कम कंपन तो छोड़ो।
भय तीसरी लेश्या है अधर्म की। इसलिए भय से जो भगवान की पूजा करते हैं,
वे धर्म में प्रविष्ट नहीं होते। वे अभी अधर्म की सीमा में ही हैं। चौथी लेश्या से धर्म शुरू होता है।
ये जो भयभीत लोग हैं, ये जल्दी रुष्ट हो जाते हैं। भयभीत आदमी शांत रह
ही नहीं सकता। उसके भीतर ही कंपन जारी है। वह रुष्ट होने को तत्पर है। वह छोटी-छोटी बातों से दुखी होता है। बड़ी क्षुद्र बातों से दुखी होता है। तुमने कभी सोचा, कैसी छोटी-छोटी बातें तुम्हें दुखी कर जाती हैं! अति क्षुद्र बातें। तुम सोचो तो खुद ही हंसोगे। पत्नी को चाय लाने में पांच मिनट देरी हो गई कि बस तुम रुष्ट हो गए। और ऐसे रुष्ट हो गए कि शायद रोष दिनभर रहे।
लोग कहते हैं, बिस्तर के गलत कोने से उतर गए। गलत से भी उतर गए हो तो उतर गए, खतम हुआ। मगर अब दिनभर... वह जो बिस्तर के गलत कोने से उतर गए हैं, वह दिनभर पीछा कर रहा है। किसी आदमी ने नमस्कार न किया कि दिनभर छाया की तरह कांटा चुभता रहता है। कोई आदमी देखकर हंस दिया, रुष्ट हो गए।
ऐसे छुई-मुई, ऐसे दीन होकर संभव नहीं है कि तुम कभी आत्मवान हो सको। जरा देखो भी तो, किन बातों पर रुष्ट हो रहे हो। इन बातों में कुछ सार भी है? अगर तुम गौर से देखोगे तो सौ में से निन्यानबे तो तुम असार पाओगे, जिनमें रुष्ट होने का कोई कारण नहीं है। और एक जो तुम सार की पाओगे, उसके

साथ तुम पाओगे कि अगर तुम रुष्ट हो जाओ तो बिगड़ जाएगी बात। वह जो सार की बात है, अगर रुष्ट न हुए तो ही सम्हल पाएगी।
तो जो व्यर्थ की बातें हैं उनके कारण हम रुष्ट होते हैं, अपने को बिगाड़ते हैं। और जो सार्थक बातें हैं, रुष्ट होकर उन बातों को बिगाड़ लेते हैं।
क्रोध में कब कौन आदमी सम्यक व्यवहार कर पाया? रुष्ट होकर आदमी तो मदांध हो जाता है। उस अंधेपन में कौन ठीक चल पाया? जितनी कठिन समस्या हो सामने, उतनी ही शांत चित्त की अवस्था चाहिए, तो ही तुम उसे हल कर पाओगे। लोग कहते हैं बड़ी समस्या में उलझा हुआ हूं इसलिए बड़ा बेचैन हूं। बेचैन हो तो समस्या सुलझेगी कैसे? सुलझाएगा कौन? यह तो तुम बड़ा उलटा कर रहे हो। जब कोई समस्या न हो तब बेचैन हो लेना, कोई हर्जा नहीं। जब समस्या हो तब तो बड़े चैन में हो जाओ। तब तो बड़े शांत हो जाओ क्योंकि हल तुम्हें करना है। शांत हृदय से हल आ सकेगा।
"दोष लगाना, निंदा करना, अति शोकाकुल हो जाना... ।"
छोटी-छोटी चीजों पर--फाउंटेनपेन ठीक नहीं चल रहा, खर्र-खर्र की आवाज
कर रहा है, शोकाकुल हो गए। अपने व्यवहार को जांचते रहो, देखते रहो। बोकोजू झेन फकीर हुआ; वह जब अपने गुरु के पास था, छोटा बच्चा था, उसका काम था गुरु का कमरा साफ करना। कमरा साफ कर रहा था कि गुरु के पास एक बड़ी बहुमूल्य मूर्ति थी, बड़ी बहुमूल्य मूर्ति थी बुद्ध की, वह गिर गई। वह चकनाचूर हो गई। वह बहुत घबड़ाया। गुरु को उस मूर्ति से बड़ा लगाव है। वह रोज दो फूल उस मूर्ति के चरणों में चढ़ा जाता है। और सदियों पुरानी मूर्ति है। गुरु के गुरु के पास थी, और गुरु के गुरु के पास थी। और पीढ़ी दर पीढ़ी वसीयत की तरह मिली है। यह क्या हो गया?
वह घबड़ा ही रहा था कि तभी गुरु कमरे में आ गया। तो उसने मूर्ति अपने दोनों हाथों के पीछे छिपा ली और उसने गुरु से कहा, एक बात पूछनी है। जब कोई आदमी मरता है तो क्यों मरता है? तो उसके गुरु ने कहा, उसका समय आ गया। तो उसने कहा कि यह आपकी मूर्ति का समय आ गया था।
गुरु हंसा और उसने कहा, जो तू मुझे समझा रहा है, अपने जीवन में याद रखना। क्योंकि तेरे जीवन में बहुत मूर्तियों का समय आएगा। जब टूटे तो याद रखना, समय आ गया था।
और बोकोजू कहता है, वही बात उसके जीवन को बदलनेवाली बन गई। जो चीज टूट गई, उसने सोचा, समय आ गया था। जो साथी छूट गए। उसने सोचा, समय आ गया था। जो प्रियजन चल बसे, उसने सोचा, समय आ गया था। कोई नाराज हो गया तो उसने समझा, समय आ गया था। बोकोजू ने कहा कि यह बात मेरे लिए सूत्र बन गई। यह अहर्निश मेरे मन में रहने लगा कि वही होता है, जिसका समय आ गया था। धीरे-धीरे-धीरे कोई भी चीज फिर शोकाकुल न करती।
"... अति शोकाकुल होना, अत्यंत भयभीत होना, ये कापोत लेश्या के लक्षण हैं।"
हिंदू शास्त्रों में वचन हैः "साहसे श्री वसति।" साहस में श्री बसती है, श्रेय बसता, श्रेयस बसता--अभय में।
जीवन को साहस से पकड़ो। ये कंपते हुए हाथ बंद करो। ये हाथ व्यर्थ कंप रहे हैं। इन हाथों के कंपने के कारण तुम जीवन पर पकड़ ही नहीं उठा पाते। तुम जीवन को सम्हाल ही नहीं पाते। तुम्हारे भय के कारण ही यह चेतना की लौ कंपती जाती है। ये झकोरे तुम्हारे भय से आते हैं, किसी और पवन से नहीं।
और जब तक तुम इन तीन पर्दों के पार न हो जाओ तब तक तुम्हें सुकून, शांति का कोई अनुभव न होगा।
सुकून-ए-दिल जहाने-बेस-ओ-कम में ढूंढने वाले
यहां हर चीज मिलती है सुकून-ए-दिल नहीं मिलता
यहां हृदय की शांति नहीं मिलती--इस संसार में। और यह जो संसार तुम जानते हो, इन तीन पर्दों में निर्मित हैः कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या। इनके पार धर्म का जगत शुरू होता है।
"त्याग, कार्य-अकार्य का ज्ञान, श्रेय-अश्रेय का विवेक, सबके प्रति समभाव, दया, दान में प्रवृत्ति, ये पीत या तेजो लेश्या के लक्षण हैं।"

"कार्य-अकार्य का ज्ञान"--क्या करने योग्य है, क्या करने योग्य नहीं है। जो भी करते हो सोचकर करो, विचारकर करो। जो न करने से चल जाए उसे करो मत। जिसके किए चल ही न सके, उसी को करो। संरक्षित करो अपनी ऊर्जा को, व्यर्थ मत गंवाओ। इस ऊर्जा से हीरे खरीदे जा सकते हैं, तुम कंकड़-पत्थरों पर गंवा रहे हो।
"कार्य-अकार्य का ज्ञान"--क्या है करने योग्य? जिससे आनंद बढ़े वह करने योग्य है। जिससे सत्य की प्रतीति बढ़े वह करने योग्य है। जिससे अंधेरा बढ़े, दुख बढ़े, असत्य बढ़े, वह करने योग्य नहीं है।
तो सोचो। सोचकर, सम्हलकर चलो। थोड़ी सावधानी, थोड़े सावचेत बनो। चौबीस घंटे में तुम इतनी बातें कर रहे हो कि अगर तुम गौर से देखोगे तो पाओगे, उनमें से नब्बे प्रतिशत तो करने योग्य ही नहीं हैं।
कितनी बातें तुम लोगों से कहते हो, न कहते तो क्या हर्ज था? और उन कहने
के कारण कितनी झंझटों में पड़ जाते हो।
इंगलैंड के बड़े विचारक एच. जी. वेल्स ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि अगर लोग चुप रहें तो दुनिया में से निन्यानबे प्रतिशत झगड़े समाप्त हो जाएं। बोलने से झगड़े खड़े होते हैं। बोले कि फंसे। कुछ कहा कि उलझे। चुप रह जाओ। टेलिग्राफिक होना चाहिए आदमी को। जैसे तार करने गए हैं दफ्तर में पोस्ट आफिस के, एक-एक पैसे के दाम हैं; एक-एक पंक्ति के, एक-एक शब्द के दाम हैं। तो आदमी सोच-सोचकर निकालता है कि दस शब्द में काम चल जाए।
उतना ही बोलो, जितना बोलने से काम चल जाए। उतना ही चलो, जितना चलने से काम चल जाए। उतने ही संबंध बनाओ, जितनों से काम चल जाए। तो तुम धीरे-धीरे पाओगे, जीवन में एक संयम अवतरित होने लगा।
"कार्य-अकार्य का ज्ञान, श्रेय-अश्रेय का विवेक, सबके प्रति समभाव, दया, दान में प्रवृत्ति, ये तेजो लेश्या के लक्षण हैं।"
छीनने-झपटने की प्रवृत्ति, विषय-लोलुपता संसार को बनाती है। देने की वृत्ति, दान की, बांटने की वृत्ति धर्म को निर्माण करती है। लोभ अगर संसार की जड़ है तो दान धर्म की।
जैसे ही तुम देते हो, कई घटनाएं घटती हैं। एकः देने के कारण वस्तुओं
पर तुम्हारा मोह क्षीण होता है। दोः देने के कारण तुम्हारा प्रेम विकसित होता है। तीनः देने के कारण दूसरा व्यक्ति मूल्यवान बनता है। छोटी-सी भी चीज किसी को दे दो, उस क्षण में तुमने दूसरे को मूल्य दिया।
इसलिए तो भेंट का इतना मूल्य है। चाहे कोई चार पैसे का रूमाल ही किसी
को दे जाए, पैसे का कोई सवाल नहीं है। लेकिन जब कोई किसी को कुछ चीज भेंट में दे आता है तो उसका मूल्य स्वीकार कर रहा है कि तुम मेरे लिए मूल्यवान हो। कि मैं तुम्हारे लिए कुछ देने को उत्सुक और तत्पर हूं। कि तुम्हें कुछ देकर मैं आनंदित होता हूं।
जो व्यक्ति दूसरों से लेकर ही आनंदित होता है, वह केवल सुख ही जानता है, आनंद नहीं जानता। और सब सुख के पीछे दुख छिपा है। क्योंकि जब तुम दूसरों से छीनते हो, तुम दूसरों को छीनने के लिए निमंत्रण दे रहे हो। तुम शत्रुता खड़ी करते हो, जब तुम छीनते हो। जब तुम देते हो, तब तुम मित्रता खड़ी करते हो। देने में आनंद है, और आनंद के पीछे कोई दुख नहीं है।
महावीर कहते हैं, समभाव। चीजों को एक ही दृष्टि से देखना। अगर गौर से देखो तो गुलाब का फूल भी मिट्टी है। चंपा का फूल भी, चमेली का फूल भी, आदमी की देह भी, आकाश में खड़े हुए ये वृक्ष भी, हिमालय के शिखर भी, सभी मिट्टी के खेल हैं। सभी एक ही ऊर्जा के खिलौने हैं। अगर तुम धीरे-धीरे देखना शुरू करो तो तुम पाओगे, सारा जीवन एक की ही अनेक-अनेक रूपों में अभिव्यक्ति है। एक की अभिव्यक्ति--तो समता पैदा होती है।
जानता हूं राह पर दो दिन रहेंगे फूल
आज ही तक सिर्फ है यह वायु भी अनुकूल
रात भर ही के लिए है आंख में सपना
आंजनी कल ही पड़ेगी लोचनों में धूल
इसलिए हर फूल को गलहार करता हूं
धूल का भी इसलिए सत्कार करता हूं

फूल और धूल में फर्क क्या है? जो फूल है, कल धूल था। जो फूल है, कल फिर धूल हो जाएगा। जो अभी धूल है, कल फूल पर नाचेगी, सुगंध बनेगी, रंग-रूप बनेगी। धूल और फूल में फर्क क्या है? मित्र और शत्रु में फर्क क्या है? जो मित्र था वह शत्रु हो जाता है। जो शत्रु था, वह मित्र हो जाता है। जीवन और मृत्यु में फर्क क्या है? जीवन मृत्यु बनता रहता है, मृत्यु नए जीवन का रूप धरती रहती है। रोज दिन रात बनता है, रात दिन बनती है; फिर भी तुम देखते नहीं।
जानता हूं राह पर दो दिन रहेंगे फूल
आज ही तक सिर्फ है यह वायु भी अनुकूल
रात भर ही के लिए है आंख में सपना
आंजनी कल ही पड़ेगी लोचनों में धूल
इसलिए हर फूल को गलहार करता हूं
धूल का भी इसलिए सत्कार करता हूं
तब एक समभाव पैदा होता है। तब न कोई अपना है, न पराया है। तब कोई न मित्र है, न शत्रु है। तब न किसी से सुख है, न दुख है। तब सब सम है। और जैसे- जैसे बाहर समभाव पैदा होता है, भीतर समता पैदा होती है। असली मूल्य तो समता का है, सम्यकत्व का है, समाधि का है।
ये सभी एक ही धातु से बने हैं--सम। सम्यकत्व हो, समाधि हो, संबोधि हो, समता हो, समभाव हो, समत्व हो, सब एक ही धातु से बने हैं--सम। सम पैदा हो जाए। चीजों के भेद महत्वपूर्ण न रह जाएं, चीजों का अभेद दिखाई पड़ने लगे। रूप महत्वपूर्ण न रह जाएं, रूप के भीतर छिपा अरूप पहचान में आने लगे।
सोने के हजारों गहने रखे हैं, गहना दिखाई पड़े तो भूल हो रही है। सब गहनों के भीतर सोना दिखाई पड़ने लगे तो तुम ठीक दिशा पर लगने लगे। "कार्य-अकार्य का ज्ञान, श्रेय-अश्रेय का विवेक, सबके प्रति समभाव, दया, दान में प्रवृत्ति, ये पीत या तेजो लेश्या के लक्षण हैं।"
दिल तो सबको मेरी सरकार से मिल जाते हैं
दर्द जब तक न मिले दिल नहीं होने पाते
और जब तक तुम्हारे मन में दया का दर्द न उठे, तब तक तुम्हारे पास दिल
है नहीं। धड़कने को दिल मत समझ लेना, जब तक कि दूसरे के दर्द में न धड़के। जब तक सिर्फ धड़कता है, तब तक सिर्फ फेफड़ा है, फुफ्फस है, जब दूसरे के लिए धड़कने लगे, करुणा और प्रेम से धड़कने लगे, तभी दिल है।
"त्यागशीलता, परिणामों में भद्रता, व्यवहार में प्रामाणिकता, कार्य में ऋजुता, अपराधियों के प्रति क्षमाशीलता, साधु-गुरुजनों की सेवापूजा में तत्परता, ये पद्म लेश्या के लक्षण हैं।"
"त्यागशीलता"--छोड़ने की क्षमता। पकड़ने की आदत तो सभी की है। धन्यभागी हैं वे, जो छोड़ने की क्षमता रखते हैं। जो छोड़ने की क्षमता रखते हैं, वे ही मालिक हैं। जब तक तुम कोई चीज छोड़ नहीं सकते, तुम उसके मालिक नहीं। जब तक तुम सिर्फ पकड़ सकते हो, तब तक तुम गुलाम हो।
यह विरोधाभासी लगेगा। लेकिन यह परम सत्यों में एक है कि जब तुम किसी चीज का त्याग कर देते हो, उसी दिन तुम उसके मालिक हुए। जब तक त्याग करने की क्षमता न थी, तब तक गुलाम थे।
"त्यागशीलता, परिणामों में भद्रता... ।"
बाहर से हजार घटनाएं घट रही हैं। कोई गाली दे जाता है, कोई सम्मान कर जाता है; कोई सफलता का संदेश ले आता है, कोई विफलता का; लेकिन तुम भीतर भद्र रह सको। तुम्हारी भद्रता अकलुषित रहे। तुम्हारी समता को कोई डिगा न पाए। तुम्हारे भीतर परिणाम तुम्हारी मालकियत में रहें। तुम्हारा कोई मालिक न हो सके। तो विफलता को सफलता को एक-सा देख लेना। सुख का सुसमाचार आए कि दुख की खबर आए, एक-सा देख लेना। तुम्हारा परिणाम अभद्र न हो पाए। तुम्हारे परिणाम में जरा भी डांवांडोलपन न हो।
"व्यवहार में प्रामाणिकता... ।"
और तुम जो भी करो, वही करो, जो तुम करना चाहते थे। तुम्हारा भीतर और बाहर एक जैसा हो। तुम्हारे चेहरे पर नकाब न हो। तुम्हारे चेहरे पर मुखौटे

न हों। तुम सीधे-साफ, नग्न; तुम जैसे हो वैसे ही; चाहे कोई भी परिणाम हो, तुम अपने को छिपाओ न।
प्रामाणिकता बड़ा बहुमूल्य शब्द है। जिसको पश्चिम के अस्तित्ववादी आथेन्टीसिटी कहते हैं, वही महावीर की प्रामाणिकता है।
हम तो अक्सर... अक्सर चौबीस घंटे में तेईस घंटे अप्रामाणिक होते हैं।
एक घंटा हम प्रामाणिक होते हैं, जब हम गहरी नींद में होते हैं; उसका कोई मतलब नहीं। अन्यथा हम कुछ कहते, कुछ सोचते, कुछ बतलाते। गिरगिट की तरह हमारा रंग बदलता। हम जैसा मौका देखते, तत्क्षण वैसा रंग धर लेते।
अवसरवादिता प्रामाणिकता के विपरीत है। हमारा अपना कोई स्वर नहीं, कोई आत्मा नहीं। जैसा दूसरा आदमी हम देखते, वैसा ही हम व्यवहार कर लेते हैं। हम समय के अनुसार चलते, आत्मा के अनुसार नहीं।
प्रामाणिकता का अर्थ हैः हमारे भीतर अपना बल पैदा हुआ। अब हम अपने बल
से जीते हैं। कष्ट झेलना पड़े तो झेल लेते हैं, लेकिन सत्य को नहीं खोते।
"सत्यं वद। धर्मं चर।" हिंदू शास्त्र कहते हैं, सत्य बोले और धर्म में चले। जैसा हो वैसा कहे। परिणाम की चिंता छोड़ दे। परिणाम का हिसाब न रखे।
निष्कपट छोटे बच्चे जैसा हो जाए। बाहर और भीतर के बीच कोई द्वंद्व न रहे। एक धारा बहे।
उस एक धारा के बहने में ही योग उपलब्ध होता है। उस एक धारा के बहने में
ही तुम पहली दफा खंड-खंड नहीं रह जाते, अखंड बनते हो। तुम्हारे सारे खंड एक महासंगीत में सम्मिलित होते हैं। तुम्हारे सारे स्वर एक-दूसरे के विपरीत नहीं रह जाते; उन सबके बीच एक संगति, एक संगीत का जन्म होता है।
"कार्य में ऋजुता... ।"
सरलता, सीधापन। कुछ लोग एढ़े-टेढ़े चलते हैं। उनको जाना हो पश्चिम तो पहले पूरब की तरफ जाते हैं। उनको आना हो घर तो पहले बाजार की तरफ जाते हैं। कुछ लोग इरछे-तिरछे चलते हैं। उनकी इरछा-तिरछा चलना आदत हो गई है।
तुम भी बहुत बार यही करते हो। किसी से चार पैसे उधार लेने हैं तो तुम सीधे नहीं मांग लेते। तुम पहले कुछ और चालें चलते हो। पहले तुम भूमिका बनाते हो, फिर भूमिका के पीछे से तुम धीरे-धीरे जाल फैलाते हो। फिर आखिर में चार पैसे मांगते हो।
सीधा-सीधा... महावीर कहते हैं, व्यवहार में, कार्य में ऋजुता! सीधी रेखा। दो बिंदुओं के बीच जो सबसे निकटतम की दूरी है, वह है सीधी रेखा। ऐसे आड़े-तिरछे चलकर बड़ी लंबी यात्रा होती है। और उस यात्रा में बड़ी ऊर्जा व्यय होती है।
"अपराधियों के प्रति क्षमाशीलता... ।"
क्योंकि जो भी अपराधी है, ध्यान रखना, वह भी मनुष्य है--तुम्हारे जैसा; तुम्हारी ही कमियों और सीमाओं से भरा हुआ। तो जिस व्यक्ति ने अपने को पहचाना है, वह दूसरे को क्षमा करने को सदा तत्पर होगा। क्योंकि वह देखेगा, दूसरे में जो हो रहा है, वह मुझमें हो चुका है। दूसरे में जो हो रहा है, वह मुझमें भी हो सकता है। ठीक-ठीक अपने को जाननेवाला व्यक्ति सारे मनुष्यों को जान लिया।
वह चोर को भी क्षमा कर सकेगा क्योंकि वह जानता है, चोर अपने भीतर भी छिपा है। वह क्रोधी को भी क्षमा कर सकता है क्योंकि वह जानता है, क्रोध अपने भीतर भी कहां मिट गया है?
और जैसे-जैसे तुम अपराधी को क्षमा करने लगते हो, तुम्हारी अपराध की क्षमता कम होने लगती है। अगर तुम अपराधी को क्षमा नहीं करते तो तुम्हारी अपराध की क्षमता कम नहीं होगी। क्योंकि अपराधी को क्षमा न करना एक ही हालत में संभव है कि तुम्हें यह ख्याल ही नहीं है कि तुम्हारे भीतर भी ऐसा ही अपराधी पड़ा है। तुम्हारा अपराधी अंधेरे में हो तो ही तुम अपराधी को क्षमा नहीं करते। और जो अंधेरे में है उसे तुम मिटा न सकोगे। जिसने अपनी शक्ल ठीक से देखी, उसने सारे जगत की शक्लें ठीक से देख लीं। अब वह नाराज नहीं है। अब वह समझ सकता है।
"साधु गुरुजनों की सेवा... ।"

और जहां भी तुम्हें दिखाई पड़े कोई भलाई, कोई भला पुरुष, कोई जाग्रत पुरुष, कहीं जरा-सी भी झलक दिखाई पड़े तो महावीर कहते हैं, जो व्यक्ति अपनी अंतरात्मा की खोज में चल रहा है, वह वहां सेवा करने को तत्पर होगा। क्योंकि उस सत्संग से ही आखिरी घटना घटेगी। उस सत्संग से ही तुम्हारे भीतर, भीतर जाने की समझ जगेगी।
जो जाग गए हैं, उनके पास बैठकर उनके जागने को पकड़ना सीखना चाहिए। जो जाग गए हों, उनकी सेवा करके विनम्रता से प्रतीक्षा करनी चाहिए उस अवसर की, जहां उनकी ऊर्जा और तुम्हारी ऊर्जा में कोई तालमेल बैठ जाएगा। जहां उनकी लहर के साथ गठबंधन बांधकर तुम भी अंतर्यात्रा पर निकल जाओगे। जो तुमसे आगे हों, उनका हाथ पकड़ लेने की चेष्टा करनी चाहिए। और गुरुजनों का हाथ पकड़ना हो तो एक ही उपाय है; उसको महावीर सेवा-पूजा कहते हैं।
अब यह बड़ी विचार की जरूरत है इस संबंध में, क्योंकि ईसाइयत के प्रभाव
के बाद सेवा का अर्थ ही बदल गया। जब जैन साधु के पास जाता है तो उससे पूछो कहां जा रहा है? वह कहता है, साधु की सेवा करने। ईसाइयत के प्रभाव के बाद सेवा का अर्थ हो गया हैः कोढ़ी की सेवा, बीमार की सेवा, मलेरिया है, प्लेग है, हैजा फैला है, तो सेवा। ईसाइयत ने सेवा का बड़ा साधारण अर्थ लिया है। जिसकी कहीं कोई पीड़ा है, जिसको हम दया कहते हैं, उसको ईसाइयत सेवा कहते हैं। दया में तुम उसकी तरफ जाते हो, जो तुमसे पीछे है।
महावीर सेवा कहते हैं उसकी तरफ जाने को, जो तुमसे आगे है; जो तुमसे ज्यादा स्वस्थतर है। तुम कोढ़ी हो, वह स्वस्थ है। तुम बीमार हो, वह स्वस्थ है। तुम सोए हो, वह जागा है। तुम अंधेरे में पड़े हो, वह रोशनी में खड़ा है। सेवा उसकी, जो हमसे आगे है। दया उसकी, जो हमसे पीछे हो। क्योंकि सेवा में पकड़ने पड़ेंगे चरण। दया में देना होगा, जो हमारे पास है। और सेवा में पाने की तत्परता रखनी होगी, जो दूसरा हमें दे सकता है। सेवा स्वीकार करने की दशा है। अंग्रेजी में वैसा कोई शब्द नहीं है। सर्विस से वह बात पता नहीं चलती, सर्विस से तो दया ही पता चलती है।
तो तुम साधारणतः सोच ही नहीं सकते कि परम स्वस्थ आदमी... महावीर खड़े हैं, उनकी सेवा के लिए जा रहे हो, वहां क्या जरूरत है? किसी गरीब की, किसी बीमार की, किसी रुग्ण की सेवा करो। महावीर को सेवा की क्या जरूरत है? वे तो पहुंच गए। वहां तो अब कोई रोग नहीं, कोई पीड़ा नहीं, कोई दुख-दारिद्य्र नहीं, उनकी सेवा के लिए क्या जा रहे हो?
लेकिन जैन परंपरा में, पूरब की परंपरा में सेवा का अर्थ हैः जिसको मिल गया उसके पास जाना; उसके चरण दाबने, उसके सामने झुकना, उसकी पूजा करनी। इसलिए सेवा और पूजा समानार्थी हैं। सिर्फ पूजा भी कही जा सकती थी, लेकिन पूजा मंदिर की मूर्ति की हो सकती है, सेवा नहीं हो सकती। जीवित गुरु की सेवा और पूजा दोनों हो सकती है। वहां सेवा और पूजा सम्मिलित है।
इससे एक बहुत अनूठी दृष्टि पूरब की साफ होती है। पूरब कहता है, दीन और दुखी पर दया करो, आनंद-अमृत को उपलब्ध की सेवा करो। जो तुम्हें पाना है, उस तरफ सेवा से झुके हुए जाओ। जो तुम्हें मिल गया है, वह दूसरे को दे दो, दया करो। दया में दान है। सेवा में झोली फैलाना है।
ये पद्म लेश्या के लक्षण हैं।
"पक्षपात न करना, भोगों की आकांक्षा न करना, सबमें समदर्शी रहना, राग, द्वेष तथा प्रणय से दूर रहना, ये शुक्ल लेश्या के लक्षण हैं।"
और अंतिम लेश्या, शुक्ल लेश्या।
"पक्षपात न करना"--सत्य जैसा हो, वैसा ही स्वीकार करना; पूर्व पक्षपातों के आधार पर नहीं।
अब मैं जो यह कह रहा हूं, महावीर के सूत्रों का अर्थ कर रहा हूं, यहां
जो जैन बैठे होंगे, वे कहेंगे, बिल्कुल ठीक है। लेकिन यह बिल्कुल ठीक तुम्हें दिखाई पड़ रहा है या सिर्फ पुराने पक्षपात के कारण?
क्योंकि ये महावीर के सूत्र हैं और तुम जैन हो, इसलिए सिर हिला दिया;
तो झूठ हो गया। यह तुम्हें दिखाई पड़े।
सत्य पक्षपात से निर्णीत नहीं होता, दर्शन से निर्णीत होता है। किसी धारणा को लेकर सत्य के पास गए कि चूक गए। निर्धारणा से जाना।

"भोगों की आकांक्षा न करना... ।"
सांसारिक विषय लोलुपता को तो छोड़ आए बहुत पीछे। छठवीं स्थिति में इस आखिरी पर्दे में भोग की इच्छा छोड़नी है। निश्चित ही महावीर का प्रयोजन है, स्वर्ग में भोग की इच्छा, पुण्य के द्वारा भोग की इच्छा। क्योंकि विषय लोलुपता को तो बहुत पीछे छोड़ आए। वे तो कृष्ण और नील लेश्याओं के हिस्से थे। अब भोग की लिप्सा न करना। परलोक में कुछ मांगना नहीं।
"सबमें समदर्शी रहना... ।"
पहले कहा, समभाव; अब कहा समदर्शी। समभाव का अर्थ है, भावना। अभी घटना घटी नहीं है, तुम चेष्टा कर रहे हो। तुम प्रयास कर रहे हो, साध रहे हो। समदर्शी का अर्थ हैः घटना घट गई। अब तुम्हें दिखाई पड़ने लगा।
समभाव साधते-साधते समदर्शी की अवस्था आती है। पहले तो देख-देखकर, चेष्टा कर-करके साधना होगा कि सभी में एक का ही विस्तार है। मिट्टी का ही खेल है धूल और फूल दोनों में। मगर ऐसा अभी तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता। ऐसा तुमने सुना गुरुजनों से। ऐसा तुमने शास्त्र में सुना। ऐसा तुमने सत्संग में सीखा। इसकी तुम चेष्टा करते हो। जब चेष्टा करते हो, तब क्षणभर को लगता भी है कि ठीक है, धूल और फूल एक है। लेकिन फिर चेष्टा भूली, भटके, फिर फूल, फूल दिखाई पड़ने लगता है, धूल धूल दिखाई पड़ने लगती है। चेष्टा करने से कभी क्षणभर को झलक मिलती है, फिर खो-खो जाती है।
समदर्शी का अर्थ है, जो गुरुजनों ने कहा, वह अब तुम्हें स्वयं दिखाई पड़ता है। तुम्हारी दृष्टि पैदा हो गई।
"राग, द्वेष तथा प्रणय से दूर रहना... ।"
न तो किसी को अपना मानना, न किसी को पराया मानना। न इस संसार से किसी तरह का सुख मिल सकता है--प्रणय की आकांक्षा, कि इस संसार से किसी भी तरह का सुख संभव है, इसकी संभावना को भी स्वीकार न करना। संभावना मात्र का गिर जाना। ये शुक्ल लेश्या के लक्षण हैं।
इन एक-एक पर्दों को पार करते चलना है। बहुत दफा भटकोगे, गिरोगे, फिर उठ-उठ आना।
एक तेरे बिना प्राण ओ प्राण के
सांस मेरी सिसकती रही उम्र भर
भेस भाए न जाने तुझे कौन-सा
इसलिए रोज कपड़े बदलता रहा
किस जगह कब कहां हाथ तू थाम ले
इसलिए रोज गिरता-सम्हलता रहा
इस द्वार क्यों न जाऊं उस द्वार क्यों न जाऊं
घर पा गया तुम्हारा मैं घर बदल-बदल कर
खोज जारी रखनी है। भटकाव होगा, गिरना होगा। उठ आना, सम्हल जाना। बहुत बार वस्त्र बदलने पड़ेंगे। लेकिन धीरे-धीरे, धीरे-धीरे भीतर के बोध सजग होते जाते हैं। और तुम ठीक उस वस्त्र में हो जाते हो, जिस वस्त्र में उस प्रीतम से मिलना हो सकता है, उस भीतर के अंतर्जगत में प्रवेश हो सकता है।
वह वेष तो सत्य का है, ऋजुता का है, समदर्शन का है।
सत्यं वद। धर्मं चर।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग दो
चौबीसवां प्रवचन

आज लहरों में निमंत्रण

पहला प्रश्नः जैन मानते हैं कि जिन-शासन के अतिरिक्त सभी शासन मिथ्या हैं, इसलिए दूसरे शासन में नहीं जाना चाहिए। जाग्रत व सिद्ध पुरुषों के बाबत बताए जाने पर भी वे उनकी ओर उन्मुख नहीं होते। क्या उन्हें सन्मार्ग पर लाना संभव नहीं है?

पहली बातः मानते तो ठीक ही हैं वे, कि जिन-शासन के अतिरिक्त सभी शासन मिथ्या हैं। लेकिन वे जानते नहीं कि जिन-शासन क्या है। जिसे वे जिन-शासन समझते हैं, वह जिन-शासन नहीं है। उनकी मान्यता में भ्रांति नहीं है। जिन-शासन का इतना ही अर्थ हुआः जाग्रत पुरुषों का, जीते हुए पुरुषों
का शासन। जो स्वयं जागा हो, उस के साथ ही होने में सार है; सोए हुओं के साथ होने में सार नहीं।
तो मान्यता तो बिल्कुल ठीक है। अब कठिनाई यह है कि जागे हुओं को कैसे जानें, कौन जागा हुआ है? तो सस्ता उपाय यह है कि जिसे परंपरा से लोग मानते रहे हैं जागा हुआ, उसे मान लो और उसी के साथ बंधे रहो। परंपरा से ज्यादा सोयी हुई कोई बात हो सकती है?
महावीर जागे थे। जिसको तुम जैन कहते हो, यह अगर महावीर के समय में होता तो महावीर को न मानता। तब यह पार्श्वनाथ को मानता, क्योंकि पार्श्वनाथ के पीछे ढाई सौ साल की परंपरा थी। और महावीर के समय में विवाद खड़ा हो गया था। पार्श्वनाथ को माननेवाले लोग महावीर के विरोध में थे। उसी विरोध से तो दिगंबर और श्वेतांबरों का जन्म हुआ। श्वेतांबर वे लोग हैं, जिन्होंने पार्श्वनाथ को माना और महावीर को इनकार करने की वृत्ति रखी। वह विरोध अब भी कायम है। ढाई हजार साल हो गए, लेकिन श्वेतांबर की जो मान्यता है, वह अभी भी पार्श्वनाथ से प्रभावित है। पार्श्वनाथ जाग्रत पुरुष थे। लेकिन जो पार्श्वनाथ की आंखों में आंखें डालकर देखे उनके लिए जाग्रत पुरुष थे। पार्श्वनाथ के समय में अगर ये जैन होते तो पार्श्वनाथ को न मानते; ये आदिनाथ को मानते।
आदमी अतीत को मानता है। और जाग्रत पुरुष हो सकता है केवल वर्तमान में। महावीर मिल जाएं तो कुछ और खोजने की जरूरत नहीं है। आदिनाथ मिल जाएं तो कुछ खोजने की और जरूरत नहीं। लेकिन आदिनाथ अतीत में तो मिलेंगे नहीं। अतीत तो जा चुका। खोजना तो आज होगा।
इसलिए एक अनिवार्य दुविधा खड़ी होती है। जो आदमी परंपरा को मानता है,
वह जिन-शासन को नहीं मान सकता। क्योंकि जिन का अर्थ हुआः जागा हुआ, जीवंत व्यक्ति। परंपरा को माननेवाला, परंपरा को मानने के कारण ही वर्तमान के जाग्रत पुरुषों से वंचित रह जाता है।
और ऐसा कुछ जैन ही कर रहे होते तो भी ठीक था। सभी ऐसा कर रहे हैं। हिंदू कृष्ण को मानते हैं। जब कृष्ण मौजूद थे तो बड़ी अड़चन थी। हिंदू राम को मानते हैं। जब राम मौजूद थे तो बड़ी अड़चन थी।
जाग्रत पुरुष जब मौजूद होता है तो बड़ी कठिनाई है। कठिनाई यह है कि अगर तुम उसे मानो तो तुम्हें बदलना पड़े। बदलाहट की झंझट है। तुम्हें अपना सारा जीवन रूपांतरित करना पड़े। मानने का और क्या अर्थ होता है? चरण छू आए, सिर झुका आए, इससे क्या होगा?
इसलिए मुर्दा पुरुषों को मानने में सुविधा होती है। वे तुम्हें बदल नहीं सकते। उनके साथ कोई जोखिम नहीं है--मरे महावीर क्या करेंगे तुम्हारा? जा चुके महावीर क्या करेंगे तुम्हारा? जहां बिठाओगे वहां बैठेंगे, जहां उठाओगे वहां उठेंगे। जो पूजा लगा दोगे वही स्वीकार करेंगे। न लगाओगे तो बैठे रहेंगे। भूखे बैठे रहेंगे। फूल न चढ़ाओगे तो क्या करेंगे? अतीत के महापुरुष जा चुके। अब तो राख के ढेर रह गए। उनके साथ बड़ी सुविधा है। तुम बदलते नहीं। तुम जैसे हो वैसे ही रहते हो। वस्तुतः तुम अपने महापुरुष को अपने ढंग से बदल लेते हो।

लेकिन यह तुम केवल मरे हुओं के साथ कर सकते हो। जिंदा पुरुष, जिंदा जाग्रत व्यक्ति को, जिंदा सिद्ध को तुम नहीं बदल सकोगे। वह तुम्हें बदलेगा। जब तुम उसके पास जाओगे तो तुम मिटोगे, नए होओगे। वह तुम्हारी मृत्यु बनेगा और नया जीवन भी। उसके माध्यम से तुम एक नए आलोक को उपलब्ध होओगे। लेकिन अंधेरे की दुनिया छोड़नी पड़ेगी। बहुत कुछ खोना पड़ेगा, तब तुम कुछ पा सकोगे।
बात तो बिल्कुल ठीक है कि जिन-शासन के अतिरिक्त सभी शासन मिथ्या हैं। लेकिन मानने का कारण, मानने की मूल वृत्ति बड़ी खतरनाक है। सत्य बातों को भी हम गलत कारणों से मान सकते हैं। हम इतने गलत हैं कि ठीक बातें भी हमारे हाथ में पड़ते-पड़ते गलत हो जाती हैं। हम ऐसे गंदे हैं कि अमृत भी हम पर बरसे तो जहर हो जाता है। आखिर हमारी प्याली में ही भरेगा। हमारी प्याली की गंदगी उसे रूपांतरित करती है।
सत्य के खोजी को अभी खोजना होगा। गुरु अभी हो सकता है। कल के गुरु काम नहीं आएंगे। बीते कल के गुरु काम नहीं आएंगे। आनेवाले कल के गुरु भी काम नहीं आएंगे। आज--जीवन आज है।
तुम महावीर के समय में जी कैसे सकते हो? तुम महावीर के साथ चल कैसे सकते हो? तुम महावीर की छाया में हो कैसे सकते हो? वह वृक्ष न रहा। अगर आज तुम्हें भरी दुपहरी में सिर से पसीना बहने लगता है तो तुम छाया खोजते हो किसी वृक्ष की, जो है; तुम उस वृक्ष की छाया में नहीं बैठते जो कभी था। पागल होओगे तुम अगर उस वृक्ष की छाया में बैठोगे। न वृक्ष है, न छाया है। धूप से जलोगे। अगर प्यास लगती है तो तुम उस सरोवर के पास जाते हो, जो अभी है। तुम उस सरोवर के पास नहीं जाते, जो कभी था। रहा होगा। बड़ा सुंदर था। पुराणों में उल्लेख है लेकिन उससे प्यास तो न बुझेगी। भूख लगती है, तो तुम अभी ताजा भोजन खोजते हो।
जो भूख और प्यास के संबंध में सही है, वही सत्य के संबंध में भी सही है। सत्य खोजो अभी। जाओ किसी सरोवर के पास, जो अभी हो। खतरा यह है कि शायद तुम इस सरोवर के पास भी जाओगे, लेकिन जब यह जा चुका होगा। तुम्हारी बुद्धि इतनी मंद है कि जब तक तुम्हारी समझ में आ पाता, तब तक जिन पुरुष विदा हो जाते हैं। घसिट-घसिटकर बामुश्किल तुम्हारी अकल में घुस पाती है बात कि अरे! लेकिन जब तक तुम अरे कहते हो तब तक विदाई हो गई।
बुद्ध एक गांव से गुजरे तीस सालों तक। कहते हैं करीब-करीब पंद्रह बार
उस गांव से गुजरे। और एक आदमी तीस सालों से चाहता था कि उनके दर्शन कर ले; न कर पाया। कभी दुकान पर ग्राहक थे और न जा पाया। कभी लड़की की शादी थी और न जा पाया। कभी बीमार था, कभी पत्नी से झगड़ा हो गया। कभी जा रहा था और रास्ते में कोई पुराना परिचित मित्र मिल गया तो फिर घर लौट आया। कभी घर मेहमान आ गए तब उनको छोड़कर कैसे जाए?
ऐसे हजार बहाने मिलते रहे और बुद्ध आते रहे और जाते रहे--तीस साल। एक दिन अचानक गांव में खबर आयी कि बुद्ध आज शरीर छोड़ रहे हैं, तब वह भागा। बुद्ध ने अपने भिक्षुओं से पूछा उस सुबह, कुछ पूछना तो नहीं है? क्योंकि अब विदा की वेला आ गई। अब मैं जाऊंगा। कहा होगा, मेरी नाव लग गई किनारे, अब मैं जाता हूं दूसरी तरफ। कुछ और तो पूछना नहीं है? कोई आखिरी बात?
भिक्षु तो रोने लगे। इतना दिया था बुद्ध ने। बिना पूछे दिया था। पूछा
था तो दिया था, न पूछा था तो दिया था। पूछने को कुछ बचा न था। और ऐसी दुख की घड़ी में, जब वे विदा हो रहे हों, किसको प्रश्न उठे? ऐसी दुख की घड़ी में मन तो बंद हो जाता है, हृदय रोने लगता है। आंसू बहने लगे। उन्होंने कहा, हमें कुछ पूछना नहीं है। जितना दिया है उसे भी अगर हम कर पाए, उसका अंश भी कर पाए तो बस काफी है। तुमने सागर उंड़ेला है अमृत का, अगर हम एक बूंद भी पी पाए तो बस पर्याप्त हो जाएगी।
बुद्ध ने तीन बार पूछा, जैसी उनकी आदत थी। फिर से पूछा कि किसी को कुछ पूछना हो। फिर से पूछा कि किसी को कुछ पूछना हो। जब किसी ने कुछ न कहा तो उन्होंने कहा, अलविदा। वे वृक्ष के पीछे चले गए। उन्होंने आंख बंद कर ली और वे देह को छोड़ने लगे। उन्होंने देह छोड़ दी। भीतर धारणा की कि देह से अलग हो जाऊं, अलग हो गए।

मन को छोड़ रहे थे, तभी वह आदमी भागा हुआ गांव से पहुंचा। और वह चिल्लाया कि बुद्ध कहां हैं? मुझे मिलने दो, मुझे जाने दो, मुझे कुछ पूछना है।
भिक्षुओं ने कहा, बड़ी देर लगाई। तीस साल तुम्हारे गांव से गुजरे। और अनेक बार हम तक ऐसी खबर भी आयी कि तुम आना चाहते हो लेकिन तुम कभी आए नहीं। उसने कहा, करूं क्या, कभी मेहमान आ गए, कभी पत्नी बीमार पड़ गई। कभी दुकान पर ग्राहक ज्यादा थे। कभी आया भी था तो रास्ते में कोई मित्र मिल गया कई वर्षों का, तो फिर घर लौट गया। हजार कारण आ गए, मैं न आ पाया। लेकिन मुझे रोको मत। कहां हैं बुद्ध?
भिक्षुओं ने कहा, अब असंभव है। हम तो उन्हें विदा भी दे चुके। अब तो वे अपनी ज्योति को समेटने में लगे हैं।
लेकिन कहते हैं, बुद्ध ने आंखें खोलीं और उन्होंने कहा, अभी मैं जीवित हूं और वह आदमी आ गया! चलो देर सही, अबेर सही, आ तो गया। मेरे नाम पर यह लांछन न रह जाए कि मैं अभी सांस ले रहा था और कोई आदमी द्वार से प्यासा चला गया। कहां है? उसे बुलाओ। वह क्या पूछना चाहता है?
वह आदमी फिर भी जल्दी पहुंच गया। और भी उस गांव में लोग रहे होंगे, जो फिर भी न पहुंचे। आदमी बड़ा मंदबुद्धि है। मंदबुद्धि ही रोग है। न तो जैन का सवाल है, न हिंदू का, न मुसलमान का; मंदबुद्धि... ।
मंदबुद्धि जड़ चीजों को पकड़ लेता है। अब इतना सुंदर विचार है कि जिन-शासन के अतिरिक्त सब मिथ्या है। इसका अर्थ हुआ, जाग्रत पुरुष जो कहे उसके अतिरिक्त सोए हुए आदमी जो कह रहे हों, उनका कोई मूल्य नहीं है। उनका आदेश मानकर मत चल पड़ना, अन्यथा भटकोगे। अंधे अंधों को और भटका देंगे। अंधों का सहारा पकड़कर मत चलना। अंधे तो गिरेंगे, तुम भी गिरोगे। अंधा अंधा ठेलिया दोनों कूप पड़ंत।
इतना ही अर्थ है जिन-शासन को स्वीकार करने का कि जहां जिनत्व दिखाई पड़े, जहां कोई जाग्रत और जीता हुआ व्यक्ति दिखाई पड़े, जहां तुम्हारे प्राण कहने लगें कि हां, संभावना यहां है, जहां सुबह होती दिखाई पड़े, जहां सूरज ऊगता दिखाई पड़े, वहां झुक जाना; उस शासन को स्वीकार कर लेना।
तो बात तो ठीक ही है। मैं यह नहीं कह रहा हूं लेकिन कि जो उसको मानते हैं वे ठीक हैं। बात तो ठीक है, बात को माननेवाले गलत हैं। कहते तो हैं, जिन-शासन एकमात्र सत्य है और बाकी सब मिथ्या। लेकिन मानते शास्त्र को हैं, जिन को थोड़े ही! मानते परंपरा को हैं, जिन को थोड़े ही! मानते पंडित को हैं, पंडित की व्याख्या को मानते हैं।
जाग्रत पुरुष का सीधा दर्शन तो जलानेवाला है। वहां तो कुछ छूटेगा, मिटेगा, गिरेगा, बदलेगा। वहां तो तुम अस्तव्यस्त होओगे। तुम, तुम ही न रह सकोगे। वहां तो तुम आग से गुजरोगे। आग से गुजरे बिना कोई शुद्ध कुंदन बनता भी नहीं। वहां तो तुम पीटे जाओगे, मिटाए जाओगे, रचे जाओगे। बिना विध्वंस के सृजन होता भी नहीं। वहां तो जैसे कुम्हार मिट्टी को रौंदता है, ऐसे रौंदे जाओगे। बिना रौंदे तुम्हारे जीवन का घट बनता भी नहीं। वहां तो तुम चाक पर चढ़ाए जाओगे। सम्हालेगा भी गुरु, थपकारे भी देगा, मारेगा भी, पीटेगा भी, जगाएगा भी।
जीवित गुरु के पास होने का अर्थ हुआ, तुम्हें नींद छोड़नी पड़ेगी। इसलिए मुर्दा गुरुओं को छाती से लगाए पड़े रहने में बड़ी सुविधा है। मूर्तियों को पूजने में बड़ी सुविधा है।
और भी बड़े मजे की बात है कि जो कहते हैं कि "जिन-शासन के अतिरिक्त सब मिथ्या है।" उन्हें यह भी पता नहीं कि जिनों ने क्या कहा है। उन्हें यह भी पता नहीं कि जिन-शासन का मौलिक सूत्र यही है कि सभी में कुछ न कुछ सत्य का अंश है।
तब आदमी की मंदबुद्धि पर बड़ी हैरानी होती है। यह तो विरोधाभास हो गया। समस्त जिन पुरुषों ने--महावीर ने, बुद्ध ने, कृष्ण ने, सभी ने कहा है कि मैं ही ठीक हूं ऐसी धारणा अहंकार की घोषणा है। और महावीर ने तो बहुत आग्रहपूर्वक कहा है कि जरा भी आग्रह रखा कि मैं ही ठीक हूं, तो तुम गलत हो गए। दूसरे में भी ठीक को देखने की क्षमता चाहिए।

इस पृथ्वी पर कोई भी बिल्कुल गलत तो हो ही नहीं सकता। इस जगत में पूर्णता जैसी कोई चीज होती ही नहीं। बिल्कुल गलत का तो अर्थ हुआ, एक आदमी गलती में पूर्ण हो गया।
मुल्ला नसरुद्दीन पर कोई नाराज हो गया और उसने कहा कि तुम, तुम पूर्ण मूर्ख हो। मुल्ला ने कहा, ठहरो। इस जगत में पूर्ण कभी कोई होता ही नहीं। तुम मेरी खुशामद मत करो। तुम मेरी स्तुति मत करो। इस जगत में पूर्ण कभी कोई होता ही नहीं। यहां सब अधूरा है।
पूर्ण मूर्ख खोजना ही असंभव है। पूर्ण गलत आदमी भी खोजना असंभव है। अगर पूर्ण गलत होता तो जी ही नहीं सकता था। जी रहा है तो कहीं न कहीं सत्य के सहारे ही जीएगा। जीवन सत्य के साथ है। किरण भला हो, न हो सूरज सत्य का। छोटी-मोटी क्षीण धारा हो, न हो बाढ़ आयी हुई नदी, मगर होगी जरूर। जी रहा है, जीवन है, तो जीवन असत्य के साथ तो हो नहीं सकता। कहीं न कहीं सत्य से जुड़ा होगा। कहीं न कहीं परमात्मा अभी भी उसमें बह रहा होगा।
महावीर ने तो कहा है, सभी में सत्य है। इसी से तो उनका स्यातवाद पैदा हुआ, अनेकांतवाद पैदा हुआ। महावीर ने कहा है कि जो-जो भी तुम्हें बिल्कुल भी गलत लगता हो, उसकी दृष्टि में भी खोजोगे तो कुछ न कुछ तो अंश पाओगे सत्य का। पूर्ण चाहे सत्य न हो, पूर्ण असत्य भी नहीं हो सकता। और महावीर ने तो कहा है, पूर्ण सत्य को कहने का कोई उपाय ही नहीं है।
इसलिए दो बातेंः जितनी दृष्टियां हैं, सभी अंश सत्य हैं और पूर्ण सत्य को अब तक किसी ने कहा नहीं; कहा जा सकता नहीं। कहते से ही अपूर्ण हो जाता है। वाणी में लाते ही अधूरा हो जाता है। अनुभव में हो सकता है पूर्ण, अभिव्यक्ति में अपूर्ण हो जाता है। लाख सम्हालकर कहो, कहने के माध्यम में ही अपूर्ण हो जाता है।
जैसे तुम एक लकड़ी को पानी में डालो--सीधी लकड़ी को, पानी में तिरछी दिखाई पड़ने लगती है। लाख सम्हालकर डालो, इससे कोई संबंध नहीं है। पानी का माध्यम तिरछापन पैदा करता है। तुम कहो कि हम और सम्हालकर डालेंगे। हम लकड़ी को और सीधा कर लेंगे, बिल्कुल सीधा कर लेंगे, रेखाबद्ध कर के डालेंगे; इससे कुछ फर्क न पड़ेगा। धीमे-धीमे डालेंगे, इससे कोई फर्क न पड़ेगा। पानी का माध्यम ही लकड़ी को तिरछा कर जाता है। लकड़ी तिरछी होती नहीं, दिखाई पड़ने लगती है, तिरछी हो गई।
भाषा का माध्यम अनुभव को तिरछा कर देता है। इसलिए भाषा में आकर कोई भी सत्य पूर्ण नहीं रह जाता। और असत्य तो कभी भी पूरा नहीं है। इसलिए जो भी हम कहते हैं, आधा-आधा है।
यही तो जिन-शास्त्र है, यही तो जिन-देशना है कि जो भी हम कहते हैं, आधा- आधा है। सभी दृष्टियां हैं, दर्शन कोई भी नहीं। दर्शन तो अनुभव है।
तुम खुद ही सोचो; सुबह हुई, वृक्षों के पार क्षितिज पर सूरज निकला, पक्षियों ने गीत गाए, गुनगुन मचाई, मोर नाचे, रंगीन बादल फैले, तुमने देखा-- दर्शन। अब तुमसे कोई कहे वर्णन करो उसका। तो तुम जो भी वर्णन करोगे, तुम पाओगे बहुत कुछ शेष रह गया है, जो नहीं कहा जा सकता। तुम लाख रंगों का वर्णन करो, सुननेवाले पर तुम वही प्रभाव थोड़े ही पैदा कर पाओगे, जो तुम पर पैदा हुआ था सुबह के सूरज को ऊगते देखकर। तुम बड़े से बड़े कवि होओ, तो भी तुम पाओगे, हाथ कंपते हैं, बड़े से बड़े कवि को भी लगता है कि हम सिर्फ तुतलाते हैं। तो जितना बड़ा कवि होता है उतना ही साफ लगता है कि हम सिर्फ तुतलाते हैं। छोटे-मोटे कवियों को लगता है कि हमने कह दिया। उनके पास कहने को कुछ है नहीं। जिसके पास जितना बड़ा दर्शन है उतनी ही भाषा की असमर्थता मालूम होती है।
रवींद्रनाथ ने मरते क्षण कहा कि हे प्रभु! यह भी तू क्या कर रहा है? अब, जब कि मैं थोड़ा गाने में कुशल हुआ जा रहा था, तू मुझे विदा करने लगा? एक बूढ़ा मित्र पास बैठा था, उसने कहा, क्या कह रहे हो तुम? कुशल हो रहे थे? तुम महाकवि हो।
रवींद्रनाथ ने कहा, दूसरे कहते होंगे। मेरी पीड़ा मैं जानता हूं। अगर तुम मुझसे पूछते हो तो मैं इतना ही कह सकता हूं कि मैंने अभी तक जो गीत गाए, वे ऐसे ही हैं जैसे संगीतज्ञ संगीत शुरू करने के पहले साज को बिठाता है।

वीणाकार तार खींच-खींच कर देखता है, ठीक है? तबलाबाज तबला बजा-बजाकर ठोंक-ठोंककर देखता है, ठीक है?
रवींद्रनाथ ने कहा कि अभी तक जो मैंने गाए, वे केवल साज को संवारने जैसे थे। अभी असली गीत शुरू कहां हुआ था? असली गीत तो अपने साथ ही ले जा रहा हूं।
जितना बड़ा कवि होगा उतना ही असमर्थ पाएगा। जितना बड़ा अनुभव होगा उतना
ही प्रगट करना मुश्किल हो जाएगा। छोटे-मोटे अनुभव प्रगट नहीं होते। तुम्हें किसी से प्रेम हो जाए, भाषा असमर्थ हो जाती है। क्या कहो? कैसे कहो?
तो जिन्होंने सत्य को जाना, इतने विराट में डूबे, लौटकर जो भी वे कहते हैं, सभी अधूरा है। इसलिए महावीर ने कहा, जो भी दृष्टियां हैं, सभी दृष्टियां हैं। सभी में सत्य का अंश है।
जैन कहता है कि महावीर के अतिरिक्त सभी मिथ्या है। लेकिन इसका अर्थ क्या हुआ? अगर महावीर सही हैं तो सभी में सत्य है। और अगर सभी मिथ्या हैं यह सही है, तो महावीर मिथ्या हो गए।
यह तुम ऐसा समझो, कहते हैं एक सम्राट ने--जो बड़ा खूंखार आदमी था--कहा कि
इस गांव में जो भी असत्य बोलेगा उसे सूली पर लटका देंगे। और उसने कहा कि सिखावन के तौर पर, नगर का बड़ा द्वार जब सुबह खुलेगा, तो वहां जल्लाद मौजूद रहेंगे फांसी लगाकर। और जो भी आदमी आएंगे उनसे पूछेंगे। अगर उनमें से कोई भी असत्य बोला तो तत्क्षण सूली पर लटका देंगे, ताकि पूरा गांव रोज सुबह देख ले कि असत्य बोलनेवाले की क्या हालत होती है।
मुल्ला नसरुद्दीन उसके दरबार में था, उसने कहा अच्छा, तो कल फिर दरवाजे पर मिलेंगे। उस सम्राट ने कहा, तुम्हारा मतलब? उसने कहा, कल वहीं तुम भी मौजूद रहना। हम असत्य बोलेंगे और तुम हमें फांसी पर लगाकर देख लेना।
सम्राट बड़ा नाराज हुआ। उसने बड़ा इंतजाम किया कि यह आदमी चाहता क्या है! और सुबह जब दरवाजा खुला, सम्राट मौजूद था, और वजीर मौजूद थे, पूरे दरबारी मौजूद थे, फांसी का तख्ता मौजूद था, जल्लाद मौजूद थे। और मुल्ला अपने गधे पर सवार दरवाजे के भीतर प्रविष्ट हुआ।
सम्राट ने कहा, "कहां जा रहे हो नसरुद्दीन?"
नसरुद्दीन ने कहा, "फांसी के तख्ते पर लटकने जा रहा हूं।"
अब बड़ी मुश्किल हो गई। अगर उसको लटकाओ तो वह सच हो जाए। अगर न लटकाओ तो
वह झूठ है। अब करो क्या? अगर उसको फांसी पर लटका दो तो एक सच्चे आदमी को फांसी हो गई। अगर उसको फांसी पर न लटकाओ, तो एक झूठा आदमी पहले ही दिन छूटा जा रहा है। सम्राट ने अपना सिर ठोंक लिया। नसरुद्दीन ने कहा कि सत्य और असत्य का निर्णय इतना आसान नहीं। हटाओ फांसी वगैरह। कौन जानता है कौन सत्य बोल रहा है, कौन असत्य बोल रहा है! कौन जानता है क्या सत्य है, क्या असत्य है!
सत्य और असत्य बड़ी नाजुक बातें हैं।
महावीर ने अगर कोई भी बात सिखाई है तो इतनी ही बात सिखाई है कि दूसरे
को अत्यंत हार्दिकता से समझने की कोशिश करना। तुम्हारे लिए इतनी ही खोज काफी है कि उसमें कुछ भी सत्य हो तो खोज लेना। असत्य से तुम्हें लेना-देना क्या है?
एक आदमी जंगल में भटक गया हो, राह खोजते-खोजते सूरज ढल गया हो, अंधेरा घिर गया हो, पैर काटों से चुभे हों, झाड़ियों ने कप.ड़े फाड़ दिए हों, राह न सूझती हो, उसे दूर एक झोपड़े से दीया जलता हुआ दिखाई पड़ता है। उस झोपड़े के चारों तरफ अंधेरा है, जरा-सी रोशनी है। वह रोशनी देख लेता है, अंधेरा छोड़ देता है। वह यह थोड़े ही कहता है कि इतने अंधेरे में रोशनी कहां हो सकती है? वह अंधेरा देखकर बैठ थोड़े ही जाता है। वह जो टिमटिमाती दीये की रोशनी है, उसको देखता; अंधेरे को नहीं देखता। वह कहता, धन्यभाग! कोई है। पास ही कोई है। मिल गई राह, चला चलूं। पहुंच ही जाऊंगा। घबड़ाने की कोई बात नहीं।
जब कोई आदमी कुछ कहे तो तुम उसमें दीये की टिमटिमाती रोशनी भी देखना। वही देखना। जितना सत्य का अंश है उतना देख लेना। तुम्हें असत्य से लेना-

देना क्या है? हंसा तो मोती चुगे। तुम अपने मोती-मोती चुन लेना, कंकड़ छोड़ देना।
लेकिन तुम कंकड़ों ही कंकड़ों पर चोंच मारते हो। तुम मोती चुनने में उत्सुक नहीं हो। तुम तो यही सिद्ध करने में उत्सुक हो कि मोती तो बस हमारे ही घर होते हैं और सब जगह कंकड़ होते हैं। तुम अंधेरे में ही आंख गड़ाए बैठे हो। तुम रोशनी को देखना ही नहीं चाहते।
जिन-शासन का मौलिक आधार यही है--सत्य सब कहीं है। अनंत रूपों में प्रगट होता है। अनेकांत का अर्थ होता है सत्य के अनेक पहलू हैं। सत्य एकांत नहीं है। जो कहता है, मैं ही सत्य, वह यह कहने से ही असत्य हो जाता है। ज्यादा से ज्यादा इतना ही कहना, "मैं भी सत्य।" "मैं ही सत्य"--असत्य हो गया। मैं भी सत्य, और भी सत्य हैं।
लेकिन अहंकार दावा करता है, "मैं ही सत्य।" "भी" पर अहंकार का जोर नहीं है, "ही" पर जोर है। महावीर का जोर "भी" पर है। इसलिए महावीर तो कहते हैं कि वह व्यक्ति भी, जो तुम्हारे बिल्कुल विपरीत बोल रहा हो, उसकी भी बात ध्यानपूर्वक सुनना। उसमें भी कुछ सत्य होगा। अंश तो होगा ही, कुछ तो होगा ही।
यहां पापी से पापी व्यक्ति में थोड़ा संतत्व होता है और यहां संत से संत व्यक्ति में थोड़ा पापी होता है। यहां कोई पूर्ण तो होता नहीं। इसलिए तो हम कहते हैं इस देश में कि जो पूर्ण हो गया, दुबारा नहीं आता। पूर्ण होते से ही फिर दुबारा आने का उपाय नहीं। यहां तो आना हो तो थोड़ी अपूर्णता रखनी होती है।
जैन कहते हैं--जैन दर्शन; बड़ा महत्वपूर्ण दर्शन है--वह कहता है, तीर्थंकर होने के लिए भी तीर्थंकर कर्मबंध करना पड़ता है। वह भी पाप है। तीर्थंकर होने के लिए भी तीर्थंकर कर्मबंध करना पड़ता है। दूसरों पर करुणा की वासना रखनी पड़ती है तो ही कोई तीर्थंकर हो सकता है, नहीं तो तीर्थंकर भी नहीं हो सकता। दूसरों की सहायता करूं, इतनी वासना तो बचानी ही पड़ती है। नहीं तो तीर्थंकर भी कैसे होगा?
इसलिए सभी सिद्ध पुरुष तीर्थंकर नहीं होते। अनेक सिद्ध पुरुष तो सिद्ध होते ही विलीन हो जाते हैं महाशून्य में। थोड़े-से सिद्ध पुरुष तीर्थंकर होते हैं। वे, वे ही सिद्ध पुरुष हैं, जिनकी सिद्धि में थोड़ी-सी वासना भी जुड़ी है अभी, कि दूसरों की सहायता करूंगा। जिनको अभी इतना और भाव बचा है, वे तीर्थंकर की तरह पैदा होते हैं। शुभ है कि इतनी वासना कुछ लोग बचाते हैं, अन्यथा जगत बड़ा अंधेरे से भर जाए।
"जैन मानते हैं कि जिन-शासन के अतिरिक्त सभी शासन मिथ्या हैं।" बिल्कुल ठीक मानते हैं और बिल्कुल गलत कारणों से मानते हैं।
"इसलिए दूसरे शासन में जाना नहीं चाहिए।" जिनपुरुष मिल जाएं तो जाने
की जरूरत भी नहीं है।
जैन शास्त्र में मत अटके रहना। शास्त्र न तो जागे होते हैं, न सोए होते हैं। शास्त्र तो बस शास्त्र हैं। किताब किताब है। किताब में कुछ भी नहीं होता।
खोजो कहीं जीवित व्यक्ति को। किसी को खोजो, जिसके पास तुम्हारी आंखें आकाश की तरफ उठने लगें; जिसकी अभीप्सा तुम्हें भी संक्रामक रूप से पकड़ ले; जिसके बवंडर में तुम भी थोड़े उड़ने लगो।
"... जाग्रत व सिद्ध पुरुषों के बाबत बताए जाने पर भी वे उनकी ओर उन्मुख नहीं होते।"
दुनिया में सबसे कठिन बात वही हैः जाग्रत पुरुषों की तरफ उन्मुख होना। उसका मतलब है, अपने से विमुख होना। जाग्रत पुरुष के सन्मुख होने का एक ही उपाय है, अपने से विमुख होना। जो अपनी तरफ पीठ करे, वही जाग्रत पुरुष की तरफ मुंह कर सकता है।
लेकिन अगर अभी तुम उतनी हिम्मत नहीं कर पाओ तो कुछ आश्चर्य नहीं है। आश्चर्य तो यह होता है कि तुम इसी में अकड़ अनुभव करते हो। जानना चाहिए कि मैं अभी दीन-हीन। अभी मेरी इतनी सामर्थ्य नहीं कि सूरज की तरफ सीधी आंखें करके देखूं। अभी तो मैं सूरज की तस्वीरें ही शास्त्र में बनी हैं, उन्हीं

को देख पाता हूं। अभी तो उन्हीं तस्वीरों में मन को लुभाता हूं। मेरी हिम्मत नहीं। मैं कमजोर हूं। अभी मेरा बल नहीं। इतना साहस नहीं इस यात्रा पर निकलने का। अभियान पर जाने का दुस्साहस अभी मुझसे होता नहीं।
अगर तुम विनम्रतापूर्वक यह स्वीकार करो तो कोई खतरा नहीं है। एक न एक दिन साहस भी इकट्ठा हो जाएगा। लेकिन आदमी अपने अहंकार को बचाता है। वह यह नहीं कहता कि यह मेरी कमजोरी है कि मैं शास्त्र देख रहा हूं। वह अपनी कमजोरी को भी आभूषणों से अलंकृत करता है, शृंगार करता है। वह कहता है, यही सत्य है, इसलिए कहां, कौन सिद्ध पुरुष? कहीं कोई सिद्ध पुरुष नहीं। पंचम काल में होते ही नहीं। हो चुके वक्त! जा चुका समय, जब सिद्ध पुरुष होते थे! वह महावीर के साथ ही बंद हो गया। महावीर के बाद हम व्यर्थ ही जी रहे हैं। महावीर के बाद कुछ घट ही नहीं रहा। इतिहास रुक गया वहीं। महावीर के बाद दुनिया रही ही नहीं है। महावीर क्या मरे, सब मर गया। महावीर क्या गए, सब गया। सब संभावना, सत्य को पाने की सारी सुविधा, सब चली गई।
यह भी कोई बात हुई? यह तो बड़ी खतरनाक धारणा हुई। इस धारणा का अर्थ तो बड़ी हताशा होगा। तब हमारे हाथ में कुल इतना ही है कि हम महावीरों की स्तुति करते रहें, स्वयं महावीर न बनें।
इसलिए तुम जब उन्हें सिद्ध पुरुषों की बात कहोगे, वे राजी न होंगे। तुम शायद सोचते हो कि तुम बड़ी सरल-सी बात कह रहे हो कि देखो! कोई सिद्ध पुरुष है, कोई जाग्रत पुरुष है, आओ, सुनो, समझो, बैठो पास; थोड़ा सत्संग करो। चलो थोड़ी सेवा करें। तुम सोचते हो, सीधा-सा निमंत्रण दे रहे हो। यह निमंत्रण इतना सीधा नहीं है। यह निमंत्रण खतरनाक है। क्योंकि वह आदमी अगर आ जाए तो फिर वही न हो सकेगा, जो था। वह अपनी सुरक्षा कर रहा है।
और दूसरी बात ध्यान रखना, दूसरे के बताए कोई कभी आता नहीं। तुम यह चिंता ही छोड़ो। इसमें समय खराब भी मत करो। जिसको जब आना है, तभी आता है। जिसकी प्यास जब पक जाती है तभी आता है। तुम किसी को खींच-तानकर लाना मत। तुम जितनी खींच-तान करोगे, उतने ही वह सुरक्षा के उपाय करेगा। तुम जितना सिद्ध करने की कोशिश करोगे कि चलो, कोई जाग्रत पुरुष है, वह उतना ही सिद्ध करने की कोशिश करेगा कि नहीं, जाग्रत नहीं है। सब पाखंड है। सब धोखाधड़ी है। सब शड्यंत्र है, जालसाजी है।
तुम यह कोशिश ही मत करो। तुम आ गए, इतना बहुत। तुम बदलो। सारी शक्ति तुम अपनी बदलाहट में लगा दो। तुम्हारी बदलाहट ही शायद, जिन्हें तुम लाना चाहते हो, उन्हें आकर्षित करे तो करे। तुम्हारी आंखों में आ गई नई चमक, तुम्हारे चेहरे पर आ गई नई दीप्ति, तुम्हारे पैरों में आ गया नया संगीत का स्वर, तुममें उतर आया माधुर्य, मार्दव, शायद किसी को बुला लाए तो बुला लाए। तुम्हारे जीवन में अगर थोड़ी मधुरिमा फैल जाए, थोड़ा स्वाद तुम्हारा बदल जाए तो जो तुम्हारे निकट हैं, जिन्हें तुम स्वभावतः चाहते हो आएं, जागें, वे भी मार्ग को पाएं, उनके जीवन में भी फूल खिलें... ।
तुम्हारी आकांक्षा तो ठीक है, लेकिन जल्दबाजी मत करना। तुम लाने की कोशिश ही मत करना। तुम तो चुपचाप अपने को बदलने में लगे रहो। तुम्हारी बदलाहट जैसे-जैसे सघन होगी वैसे-वैसे वे उत्सुक होंगे। और दूसरा कोई उपाय नहीं है।
अगर तुम उन्हें मेरे पास लाना चाहते हो तो एक ही उपाय है--तुम्हारे जीवन में किसी तरह मेरी खबर उन्हें मिलनी चाहिए; तुम्हारे शब्दों में नहीं। तुम्हारे कहने से वे न सुनेंगे। तुम्हारे होने को सुनेंगे। तुम्हारे भीतर गूंजने लगे नाद, तो शायद... फिर भी मैं कहता हूं शायद, कोई जरूरी नहीं है। क्योंकि ऐसे बज्र-बधिर लोग हैं कि तुम्हारे भीतर घंटनाद गूंजता रहे, उन्हें कुछ भी सुनाई न पड़ेगा। ऐसे अंधे लोग हैं कि तुम बदल भी जाओ, उन्हें कोई दीप्ति न दिखाई पड़ेगी।
तुम उनकी फिक्र छोड़ो। तुम उनकी चिंता मत करो। तुम उनके लिए प्रार्थना करो जरूर, लेकिन उन्हें समझाओ मत।
तुम जब ध्यान करके उठो तो उनके लिए प्रार्थना करो। जब तुम ध्यान करके उठो तब उन पर भी प्रभु की अनुकंपा हो, वे भी सत्य की तरफ उन्मुख हों, उनमें

भी जाग आए ऐसी प्रार्थना करो, बस। तुम प्रभु को समझाओ कि उन्हें जगाए। तुम सीधे जगाने मत चले जाना।
बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को कहा है कि हर प्रार्थना, हर ध्यान करुणा पर पूरा होना चाहिए। जो तुम्हें हुआ है वह सारे जगत को हो, ऐसी भावना से ही ध्यान को पूरा करना। जो तुम्हें मिला है वह सबको मिले, ऐसी भावना से ही ध्यान के बाहर आना।
इसका परिणाम होगा। तर्क से, विचार से तुम सिद्ध न कर पाओगे। अक्सर तो ऐसा होगा, अगर तुमने तर्क किया तो शायद वे तुम्हें डांवांडोल कर दें, बजाय इसके कि तुम उन्हें समझा पाओ। क्योंकि बात कुछ ऐसी है कि तर्क से समझाई नहीं जा सकती, लेकिन तर्क से खंडित की जा सकती है। तुमने अगर मेरे निकट कुछ पाया तो तुम उसे तर्क से समझा न सकोगे। हां, कोई भी उसे तर्क से खंडित कर सकता है।
फूल है गुलाब का खिला; तुम कहते हो, परम सुंदर है। कोई भी सिद्ध कर सकता है कि नहीं है सुंदर। तुम सिद्ध न कर पाओगे कि सुंदर है। सीधी-सी बात, कि गुलाब का सुंदर फूल, तुम सिद्ध कैसे करेगे कि सुंदर है? सौंदर्य की क्या कसौटी है, क्या मापदंड है? क्या आधार है घोषणा का, कि सुंदर है? दार्शनिक सदियों से चिंतन करते रहे। अब तक तय नहीं कर पाए कि सौंदर्य
की परिभाषा क्या है? किस चीज को सुंदर कहें? और कोई भी सिद्ध कर सकता है कि सुंदर नहीं है। सिर्फ घोषणा भर कर दे कि नहीं है सुंदर। कहां है सुंदर? क्या है इसमें सौंदर्य? लाल रंग में रखा क्या है? पंखुड़ियां ही खुल गई तो रखा क्या है? अरे सुगंध ही सही! तो सुगंध में भी रखा क्या है?
कोई भी आदमी असिद्ध कर सकता है बड़ी आसानी से। नास्तिक होना बड़ा आसान है। आस्तिक होना बड़ा कठिन है। क्योंकि आस्तिक कुछ ऐसी बातों पर श्रद्धा कर रहा है, जो सिद्ध नहीं की जा सकतीं। आस्तिक बड़ा हिम्मतवर है। वह ऐसे रास्तों पर जा रहा है, जिनके लिए ठीक-ठीक शब्द, तर्क, प्रमाण जुटाने असंभव हैं।
इसलिए तुम ख्याल रखना, तुम व्यर्थ की झंझट में पड़ना ही मत। तुम बदलते जाओ, तुम्हारी आस्तिकता धीरे-धीरे प्रगट होने लगे तुम्हारे जीवन में, तुम्हारे व्यवहार से। वही शायद उन्हें ले आए तो ले आए और कोई उपाय नहीं है।
"... क्या उन्हें सन्मार्ग पर लाना संभव नहीं है?"
लाने की कोशिश की तो मुश्किल है। वे और अकड़ जाएंगे। वे और जिद्द बांध जाएंगे। क्योंकि लाने की कोशिश में उनको लगता है तुम उन्हें हराने चले? लाने की कोशिश में उनको लगता है तुम उनके ऊपर विजय की घोषणा कर रहे? तुम उन्हें पराजित करने में उत्सुक हो? लाने की चेष्टा में लगता है कि तुम्हारा कोई स्वार्थ होगा।
नहीं, यह बात ही मत करना। वे अगर बहुत उत्सुक भी हों तो भी टालना। कहना
कि ले चलेंगे, जब कभी सुविधा होगी। ऐसी जल्दी भी क्या है? तुम हजार बहाने करना कि बहुत कठिन है ले चलना। मिलाना बड़ा मुश्किल है। तो शायद... ।
लोग बड़ी उलटी खोपड़ी के हैं। अगर उनको कहो मिलाना बहुत मुश्किल है तो
वे तुम्हारे पीछे पड़ेंगे कि मिला दो, एक दफा तो मिला दो। कि ले चलना बहुत कठिन है। वे तुमसे कहेंगे, कि कभी एक दफा तो ले चलो। तुम उनसे कहो कि चलो, ले चलते हैं, तो वे हटेंगे।
आदमी का मन बड़े विपरीत ढंग से चलता है। निषेध करो तो निमंत्रण; निमंत्रण दो तो सोचता है, मतलब क्या है? कोई स्वार्थ होगा। कोई छिपी बात होगी। यह आदमी इतना उत्सुक क्यों है वहां ले जाने में? जेब तो नहीं काट लेगा रास्ते में! कोई तरकीब लगा रहा है। कहीं फंसाने ले जा रहा है।
नहीं, तुम यह कोशिश ही बंद कर दो। इसलिए तो मैं ऐसी कोशिश कर रहा हूं
कि यहां मुश्किल से ही लोग आ पाएं। देखते हैं, कितने दरवाजे हैं! और बड़े करता जाऊंगा। उन पर पहरेदार बिठाते जाऊंगा। बहुत मुश्किल कर देना है आना।
तो ही लोग आ पाएंगे।
तुम लाने की चेष्टा करना ही नहीं। तुम सिर्फ प्रार्थना करना।
तुम्हारे ध्यान के बाद--जिनको भी तुम चाहते हो कि वे कभी यहां आ जाएं--

ध्यान के बाद उनकी सूरत का स्मरण करना, और प्रार्थना करना कि कभी उनका भी सदभाग्य उदय हो। बस, चुपचाप, एकांत, मौन में तुम्हारी की गई प्रार्थना रेशम के पतले धागों की तरह उन्हें बांध लेगी, ले आएगी।
मोटे रस्से तर्क के मत बांधना। उनमें तुम जिसको बांधते हो उसको लगता है, यह तो बंधन हुआ जा रहा है, हथकड़ी डली जा रही है। कहां जा रहे हो? अपनी स्वतंत्रता गंवाना है? पागल होना है?
प्रेम के कच्चे धागे पर्याप्त हैं। वे प्रार्थना में बंध जाते हैं। सदगुरु के पास होना समर्पण के अतिरिक्त संभव नहीं है। सदगुरु के पास होना कोई तर्क की निष्पत्ति, निष्कर्ष नहीं है। तर्क की हार और पराजय है। सदगुरु के पास होना बुद्धि का खिलवाड़ नहीं है, हृदय का आविर्भाव, हृदय की अभिव्यंजना है। जो सब तरह से मिटने को तैयार है वही केवल आ पाता है।
तुम, जिसे मैंने किया याद
जिससे बंधी मेरी प्रीति
कौन तुम अज्ञात वय-कुल-शील मेरे मीत?
कर्म की बाधा नहीं तुम
तुम नहीं प्रवृत्ति से उपरांत
कब तुम्हारे हित थमा संघर्ष मेरा?
रुका मेरा काम
तुम्हें धारे हृदय में
मैं खुले हाथों सदा दूंगा बाह्य का जो देय
न ही गिरने तक कहूंगा, तनिक ठहरूं
क्योंकि मेरा चुक गया पाथेय
तुम, जिसे मैंने किया याद
जिससे बंधी मेरी प्रीत
कौन तुम अज्ञात वय-कुल-शील मेरे मीत?
सदगुरु तो बिल्कुल अज्ञात है। जो दिखाई पड़ता है, वह थोड़े ही! जो तुम्हारे देखने के पार रह जाता है वही। जो सुनाई पड़ता है वह थोड़े ही! जो मौन में प्रतीत होता है वही। जिसे तुम देखते हो वह तो केवल रूप है, आकार है। जो उस रूप और आकर में छिपा निराकार है।
अज्ञात वय-कुल-शील मेरे मीत!
ऐसी मित्रता बांधनी बड़ी मुश्किल है। क्योंकि न कुल का पता, न वय का पता। कहां ले जाओगे? कहां ले चले? कुछ भी पता नहीं। अज्ञात की यात्रा है। तुम, जिसे मैंने किया याद
जिससे बंधी मेरी प्रीति
और यह बंधन प्रेम का है। यह तर्क का नहीं है। तुम अगर मेरे पास हो और किसी भांति मुझसे बंध गए हो, तो यह बंधन हृदय का है। यह अकारण है। तुम्हें प्रेम हो गया। और जब तक किसी को प्रेम न हो जाए, तब तक पास होने की कोई सुविधा नहीं है।
तुम, जिसे मैंने किया याद
जिससे बंधी मेरी प्रीति
कौन तुम अज्ञात वय-कुल-शील मेरे मीत?
कर्म की बाधा नहीं तुम
तुम नहीं प्रवृत्ति से उपरांत
सदगुरु तुम्हें प्रवृत्ति से उपरांत थोड़े ही करता है! सदगुरु तुम्हें तोड़ता थोड़े ही तुम्हारे संसार से! तुम्हारे संसार में ही तुम्हें नए होने का ढंग देता है।
कर्म की बाधा नहीं तुम
सदगुरु तुम्हें यह थोड़े ही कहता है, कि छोड़ो-छाड़ो, भागो! भगोड़ा थोड़े ही बनाता! सदगुरु तुम्हें जगाता। वह कहता, भागो नहीं, जागो।
कर्म की बाधा नहीं तुम
तुम नहीं प्रवृत्ति से उपरांत
कब तुम्हारे हित थमा संघर्ष मेरा?
रुका मेरा काम

तुम्हें धारे हृदय में
मैं खुले हाथों सदा दूंगा बाह्य का जो देय
न ही गिरने तक कहूंगा, तनिक ठहरूं
क्योंकि मेरा चुक गया पाथेय
सदगुरु के साथ जाना एक अंतहीन संघर्ष पर जाना है। जहां धीरे-धीरे सब
खो जाएगा। पाथेय भी खो जाएगा। कुछ भी न बचेगा। तुम भी खो जाओगे।
और अंत तक अगर तुमने यह हिम्मत रखी, कि तुमने नहीं कहा कि रुको, ठहरो,
यह मैं खोया जा रहा हूं, तो ही तुम पहुंच पाओगे। मिटकर ही कोई पहुंचता है। मरकर ही कोई पाता है।
इसलिए बहुत स्वाभाविक है कि लोग डरते हैं। डरने के कारण अपने आसपास विचार की बागुड़ खड़ी करते हैं। डरने के कारण मुर्दा मंदिरों में, मस्जिदों में पूजा कर लेते हैं। ऐसे मन को समझा लेते हैं कि हम भी धार्मिक हैं। शास्त्र को लेकर बैठ जाते हैं। पढ़ लेते हैं, गुनगुना लेते हैं, पाठ कर लेते हैं। ऐसे मन को भ्रांति दे लेते हैं कि हम कुछ ऐसे ही जीवन नहीं गंवा रहे हैं! गीता पढ़ते हैं, कुरान पढ़ते हैं, जिन-सूत्र पढ़ते हैं।
लेकिन तुम जो पढ़ोगे वह तुम्हारा ही अर्थ होगा। महावीर का अर्थ तो तुम महावीर होकर ही जान सकते हो। और कोई उपाय नहीं! क्योंकि शब्द तो बाहर से आ जाते हैं। अर्थ कहां से लाओगे? अर्थ तो भीतर से आएगा।
इसीलिए तो एक तरफ कहते हो, जिन-शासन ही सत्य है। और दूसरी तरफ कहे चले जाते हो, कि और सब मिथ्या है। जिन-शासन का अर्थ ही यही होता है कि यहां पूर्ण मिथ्या कोई भी नहीं! मिथ्या में भी सत्य है छिपा। तुम मिथ्या-मिथ्या को छोड़ देना। असार-असार को त्याग देना, सार-सार को ग्रहण कर लेना। हंसा तो मोती चुगै--चुन लेना मोती। कंकड़-पत्थर से तुम्हें क्या लेना-देना?

दूसरा प्रश्नः पिछले एक वर्ष के भीतर आश्रम से बाहर के वातावरण में काफी परिवर्तन हुआ है। पहले जो लोग आपके विरोध में बोलते थे, अब वैसा बोलने में न केवल हिचकते हैं बल्कि आपमें उत्सुक भी होने लगे हैं। और चाहते हैं कि कैसे आपके सान्निध्य का लाभ लें? क्या यह संक्रमण की अवस्था है? और कृपया उपदेश दें कि हम संन्यासियों को इस अवस्था में क्या करना उचित है?

तुम उनकी तरफ ध्यान ही मत देना। तुम उन्हें टालना। वे कहें कि ले चलो, तुम कहना बड़ा कठिन है। तुम जल्दी मत करना। उन्हें आने दो अपने से।
ऐसा ही होता है। तीन सीढ़ियां आदमी का चित्त पूरी करता है। पहली--विरोध की।
शुभ लक्षण है कि पहली सीढ़ी पर तो चढ़े। उपेक्षा तो नहीं है। उपेक्षा खतरनाक है। मेरे पास वे लोग कभी न आ पाएंगे, जिनकी मेरी तरफ उपेक्षा है। अगर विरोध कर रहे हैं तो चल पड़े। कहां जाएंगे। रस लेने लगे। मेरी तरफ ध्यान उनका पड़ने लगा। मित्रता बनने लगी। तुम फिक्र छोड़ो।
तुम उन्हें विरोध करने दो। विरोध का मतलब ही इतना है कि उन्हें मुझमें खतरा दिखाई पड़ने लगा। विरोध का मतलब ही इतना है कि उन्हें मुझमें आकर्षण मालूम होने लगा। अन्यथा कौन किसका विरोध करता है? क्या लेना-देना है? विरोध हम उसी का करते हैं, जहां खतरा है, जहां बुलावा है। जहां लगता है कि अगर विरोध नहीं किया तो खिंचे चले जाएंगे।
तो रुक रहे हैं। रुकने के लिए विरोध कर रहे हैं। विरोध वे मेरा नहीं
कर रहे हैं। अपने आकर्षण के लिए बाधा खड़ी करने के लिए कर रहे हैं। शुभ लक्षण है। इससे चिंतित होने की कोई भी जरूरत नहीं है।
मेरे पास कभी-कभी संन्यासी आ जाते हैं। वे कहते हैं, फलां आदमी आपका बड़ा विरोध करता है, जाएं, उसे समझाएं? मैंने कहा, पागल हुए हो? किसी तरह वह उत्सुक हुआ, अब तुम उसे समझाने जा रहे हो। बामुश्किल तो उत्सुक हुआ है मुझमें और तुम अब समझाने की कोशिश कर रहे हो? ये चाहते हैं कि समझा-बुझा दें, विरोध न करे। विरोध न करे तो वह मुझसे टूट गया। जुड़ गया, तुम फिक्र मत करो। उसका विरोध ही उसे खींच लाएगा।

विरोध भी मित्रता का एक ढंग है। विरोध भी आकर्षण का एक रूप है। जब विरोध धीरे-धीरे, धीरे-धीरे करते-करते व्यर्थ हो जाता है... क्योंकि विरोध से कुछ भी मिलता तो नहीं। कब तक खींचोगे? आदमी आकाश पर कब तक थूकता रहेगा? क्योंकि सब थूका हुआ अपने ही चेहरे पर वापस पड़ जाता है। इसमें सार क्या है? आज नहीं कल दिखाई पड़ेगा, यह मैं क्या कर रहा हूं? इसमें कुछ सार नहीं। व्यर्थ भौंक रहा हूं। व्यर्थ चीख-चिल्ला रहा हूं।
मेरी तरफ से न तो कोई उत्तर है, न समझाने की कोई कोशिश है। तो वह आदमी धीरे-धीरे दूसरी सीढ़ी पर चढ़ता है। तब वह उत्सुक होता है कि मामला क्या है? हम विरोध किए जा रहे हैं और उस तरफ से कुछ भी उत्तर नहीं आता, कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। तो कहीं ऐसा तो नहीं है... उसे संदेह पैदा होना शुरू होता है। अपने पर संदेह होना शुरू होता है। कहीं ऐसा तो नहीं कि हम व्यर्थ ही विरोध कर रहे हैं या हमारा विरोध गलत है!
यह सीढ़ी आदमी खुद ही पार कर सकता है। दूसरे जबर्दस्ती किसी को चढ़ा नहीं सकते। वह दूसरे पर खड़ा हो जाता है। अब उसकी जिज्ञासा उठनी शुरू होती है। कुतूहल पैदा होता है कि जाएं, जरा पास से देखें, मामला क्या है! हमारा विरोध सही है या गलत है?
अपने पर संदेह आ गया तो मुझ पर श्रद्धा की तरफ एक कदम और उठा। मुझ पर श्रद्धा आने के पहले अपने पर संदेह आना जरूरी है। इसलिए तो मैं कहता हूं, मेरी तरफ उन्मुख होने के लिए अपने से विमुख होना जरूरी है।
अब यह दूसरी सीढ़ी में लोग... काफी लोग हैं। तुम उनको अभी खींचने की कोशिश मत करना, अन्यथा वे फिर पहली सीढ़ी पर उतर जाएंगे। अगर तुमने खींचा तो उन्हें फिर अपने पर भरोसा आ जाएगा कि अरे, हम भी कहां जाल में फंसे जाते थे! वे फिर पहली सीढ़ी पर खड़े होकर विरोध करने लगेंगे। तुम फिक्र ही मत करना।
मेरे संन्यासी को तो ऐसे जीना चाहिए जैसे संसार में कोई और है ही नहीं। मैं हूं और तुम हो। मेरे और तुम्हारे बीच संसार है। तुम विस्मरण कर दो इस सब को कि कौन क्या कह रहा है, कौन आना चाह रहा है, कौन उत्सुक हुआ, कौन विरोध कर रहा है। यह तो चलता ही रहेगा। कुछ लोग पहली सीढ़ी पर रहेंगे, कुछ लोग दूसरी सीढ़ी पर रहेंगे।
तुम जब कोई ध्यान ही न दोगे, तब उन्हें और भी हैरानी होगी। तब उन्हें तुम पर भी कुतूहल पैदा होगा। मेरी तो बात ही उनके मन से दूर रहेगी, तुम भी कुतूहल जगाने लगे। वे तुममें भी उत्सुक हो जाएंगे। और जब वे तुममें उत्सुक होंगे तभी उनके आने का रास्ता बनता है।
तो पहली सीढ़ीः विरोध की। दूसरी सीढ़ीः जिज्ञासा की, कुतूहल की। और तीसरी सीढ़ीः श्रद्धा की।
जिसने विरोध किया वह मेरे लिए श्रद्धा की तरफ चल पड़ा। उसे पता न हो-- मैं प्रसन्न होता हूं कि चलो, विरोध तो किया। अब जल्दी कुतूहल भी होगा, उत्सुकता जगेगी। फिर कभी श्रद्धा भी आ जाएगी। जब पहला कदम उठा लिया तो तीसरा भी उठ ही जाएगा। कम से कम आदमी चला तो। एक-एक पैर चलकर आदमी हजार मील की यात्रा कर लेता है। यह तो केवल तीन कदम का मामला है।
मगर तुम जल्दबाजी मत करना। तुम्हारे कारण बहुत बार बहुत-से लोग मेरे पास नहीं आ पाते। और तुम पूरी चेष्टा करते हो लाने की। कभी तुम उनको खींच-खांचकर ले भी आते हो तो वे अकड़े बैठे रहते हैं। यहां मैं देख लेता हूं उनको कि वह अकड़ा कौन आदमी बैठा हुआ है। वह रक्षा करता रहता है अपनी। वह यह सिद्ध करने में लगा है कि तुम गलत हो। वह तुमसे झगड़े में लगा है। उसे मुझसे कुछ लेना-देना नहीं है। वह मुझे सुनता भी नहीं है, या कुछ का कुछ सुन लेता है, ताकि बाहर जाकर वह कह सके कि हमने पहले ही कहा था कि कहां गलत आदमी में तुम उलझे हो! और हमारा भी समय खराब करवाया।
नहीं, तुम किसी को लाना ही मत। तुम आते जाओ। तुम्हारे आने से जो पगडंडी बन रही है, वह बहुत लोगों के लिए रास्ता बनेगी। बस तुम आते जाओ। तुम आते-जाते रहो। तुम्हारे आने-जाने से जो जंगल में रास्ता बन रहा है उस रास्ते पर बहुत लोग आएंगे।

मगर तुम खींचकर किसी को कभी मत लाना। आदमी पशु थोड़े ही है कि गले में डाल दिया रस्सा और खींच लिया। आदमी अपनी मौज से आए तो ही आता है। आदमी नाचता हुआ आए तो ही आता है।

तीसरा प्रश्नः पच्चीस सौ वर्ष पहले महावीर ने प्रचलित अंधविश्वासों
पर प्रहार करके सदधर्म का तीर्थ बनाया। आज आप भी उसी दिशा में गमन कर रहे हैं, फिर भी अंधश्रद्धालुओं में जाग नहीं आ रही। बीसवीं सदी में भी लोग इतने कायर क्यों हैं? और उनमें मिथ्या गुरुओं का इतना आकर्षण क्यों है?

जागने का कोई संबंध सदी से नहीं है, समय से नहीं है। आदमी सदा जैसा है। मकान बदल गए, रास्ते बदल गए, कपड़े बदल गए, आदमी की आत्मा थोड़े ही बदल गई है। आदमी वैसा ही क्रोध करता है, वैसा ही प्रेम करता है, वैसी ही ईर्ष्या करता है, द्वेष करता है। जैसा तब करता था, वैसा अब करता है।
वह आदमी बैलगाड़ी में चलता था, तुम फिएट कार में चलते हो, इससे क्या फर्क पड़ता है? वह आदमी जमीन पर बैठकर खाना खाता था, तुम टेबल-कुर्सी पर खाते हो, इससे क्या फर्क पड़ता है? वह आदमी हाथ से खाना खाता था, तुम चम्मच-कांटे से खाते हो, इससे क्या फर्क पड़ता है? भीतर तुम्हारी अंतरात्मा तो ठीक वैसी की वैसी है, जैसी उस आदमी की थी। आदमी वैसा का वैसा है। आदमी का अब कोई विकास नहीं हो रहा है। प्रकृति जहां तक ले आ सकती थी, ले आयी। अब आदमी को विकास अपने हाथ में लेना होगा, तो विकास होगा। अब क्रांति होगी, विकास नहीं होगा। अब तो वे ही लोग, जो अपने जीवन की प्रक्रिया को समझकर उठना चाहेंगे, अतिक्रमण करना चाहेंगे, उठेंगे।
तो बीस सदी पहले भी उठे, अब भी उठ सकते हैं। जिनको नहीं उठना, नहीं उठना चाहते, वे बीस सदी पहले सोए थे, अब भी सोते रहेंगे। और तुम जबर्दस्ती किसी की नींद तोड़ने की कोशिश मत करना, क्योंकि वह नाराज होगा। फिर हमें हक भी क्या है? कोई सोना चाहता है तो कम से कम इतनी स्वतंत्रता तो होनी ही चाहिए कि सोता रहे। तुम बैंडबाजे लेकर रामधुन मत मचा देना चार बजे रात माइक लगाकर, ताकि सभी लोग जगें ब्रह्ममुहूर्त में। वे सब गाली देंगे। तुमको देंगे, राम को भी देंगे, कि कहां के दुष्ट! सोने नहीं देते। जबर्दस्ती धर्म को लाने का कोई उपाय ही नहीं है। अगर कोई सो रहा हो तो आहिस्ता से चुपचाप निकलना, ताकि कहीं जग न जाए। उसको नींद लेने का हक है। आदमी को भटकने का हक है। यह आदमी की स्वतंत्रता है कि वह संसार में रहना चाहे तो रहे। जब तक रहना चाहे, तब तक रहे।
परमात्मा भी बाधा नहीं डालता। प्रकृति को बनाए कितना समय हुआ होगा-- अगर कभी किसी ने बनाई। वह भी थक गया होगा कि लोग अभी तक भटक ही रहे हैं। अब इनको बुला ही लो। कि जाकर पकड़ लाओ एक-एक को। मगर नहीं, परमात्मा स्वतंत्रता देता है। अनंत काल तक तुम स्वतंत्र हो।
और यही मजा है, महिमा है कि स्वतंत्रता के कारण ही एक दिन तुम इस संसार
से मुक्त होना चाहते हो।
तुम अगर अभी नींद से ऊबे नहीं, तो तुम्हें जगाने से भी क्या होगा? तुम फिर करवट लेकर सो जाओगे। तुम अगर नींद से अभी ऊबे नहीं और सपनों में तुम्हें रस है तो कोई तुम्हें जबर्दस्ती बिठा भी दे तो तुम बैठकर ही आंखें बंद करके सो जाओगे और नींद लेने लगोगे।
नहीं, जबर्दस्ती कोई उपाय नहीं है। यह करना ही मत। और इसकी चिंता भी
मत लेना। तुम जग जाओ, इतना काफी है। और तुम अपने ध्यान को इस तरह बांटो भी मत।
"बीसवीं सदी में भी लोग इतने कायर क्यों हैं?"
आदमी सदा से कायर है। और स्वभावतः कायर है क्योंकि मौत सदा खड़ी है सामने। आदमी डरे न तो क्या करे? मौत डराती है। प्रेम डराता है क्योंकि प्रेम भी मौत है। गुरु डराता है क्योंकि गुरु भी मौत है। घबड़ाहट होती है। दया करो आदमी पर। सब तरफ से मौत घेरे हुए है। जहां जाता है, वहीं मांग
है कि मिटो। तो अपने को बचाने की चेष्टा कर रहा है। कमजोर, असहाय आदमी! और

सबसे बड़ी मौत सदगुरु के पास घटती है। वहां अहंकार बिल्कुल ही विसर्जित होता है, राख हो जाता है।
तो स्वाभाविक है डर। आदमी सदा से कायर है क्योंकि मौत सदा से मौजूद है। कोई ऐसा थोड़े ही है कि पहले मौजूद थी, बीसवीं सदी में मौजूद नहीं है।
कोई सदियों से थोड़े ही फर्क पड़ता है।
जीवन के वास्तविक प्रश्न सदा वही के वही हैं। ऊपर की छोटी-मोटी बातें बदलती हैं। आधारभूत नियम नहीं बदलते।
आज से दो हजार साल पहले तुम्हारे गांव में जिसके पास बढ़िया बैलगाड़ी होती, दूर तक भागनेवाले छकड़े होते, शानदार घोड़ा होता, उससे तुम्हारी ईर्ष्या थी। अब तुम्हारी ईर्ष्या उससे है, जिसके पास फिएट कार है। बात वही की वही है। इससे क्या फर्क पड़ता है कि घोड़े से ईर्ष्या थी, कि अब कार से ईर्ष्या है! कल हो सकता है हवाई जहाज लोगों के पास हो जाएंगे। हर आदमी अपनी छत पर अपना हवाई जहाज रख लेगा। तब तुम्हें उससे ईर्ष्या होगी कि जिसके पास हवाई जहाज है, वह कुछ मजा लूट रहा है, मैं चूका जा रहा हूं।
लेकिन ईर्ष्या तो वही है। जीवन को ठीक से देखो तो समय से कोई अंतर नहीं पड़ता, अंतर तो सिर्फ ध्यान से पड़ता है। नहीं तो हम एक ही चाक में कोल्हू के बैल की तरह घूमते रहते हैं।
"... मिथ्या गुरुजनों का इतना आकर्षण क्यों है?"
सदा से रहा है। बड़े गहरे कारण हैं। क्योंकि मिथ्या गुरु एक तो तुम्हें मिटाता नहीं, तुम्हें सजाता है, संवारता है। मिथ्या गुरु तुम्हारे जीवन में कोई क्रांति नहीं लाता, तुम्हारे जीवन में थोड़ी सुविधा लाता है। तुम बीमार हो तो मिथ्या गुरु कहता है, घबड़ाओ मत। यह देखो चमत्कार से राख हाथ से गिर रही है, इसको सम्हाल लो। ठीक हो जाओगे।
वह तुम्हारी बीमारी ठीक करता है। होती है बीमारी ठीक कि नहीं यह दूसरी बात है। मगर कम से कम तुम्हें भरोसा तो देता है। चलो तीन महीने तक तो भरोसा रहेगा कि तीन महीने बाद ठीक हो जाएगी। और नहीं हुई तो कोई हर्जा नहीं। हो गई तो बड़ा लाभ है।
तुम बैठ जाओ बाजार में और बांटने लगो राख। सौ मरीज आएंगे, पचास तो ठीक होंगे ही। सभी तो मर जानेवाले नहीं हैं। जो पचास ठीक हो जाएंगे, वे तुम्हारा गुणगान करेंगे कि महापुरुष है, सत्य साईंबाबा है। ये रहे सत्य साईंबाबा! ठीक हो गए। जो ठीक नहीं हुए वे किसी दूसरे सत्य साईंबाबा को खोजेंगे। जो ठीक हो गए वही तुम्हारे इर्द-गिर्द इकट्ठे होने लगेंगे। वे गुणगान करेंगे। और उनके गुणगान का भी कारण है, वे ठीक हो गए। वे झूठ भी नहीं कह रहे।
अब मजा यह है कि आदमी की सौ बीमारियों में से पचास बीमारियां झूठ हैं। हैं ही नहीं; सिर्फ उसे ख्याल है। इसलिए झूठी दवाइयां भी काम आती हैं।
बीमारियां ही झूठ हैं तो झूठी दवाइयां काम आ जाती हैं। डाक्टर पानी का इंजेक्शन दे देता है, तुम बिल्कुल ठीक हो जाते हो।
कभी तुमने ख्याल किया? डाक्टर तुम्हें देखने आता है, नब्ज वगैरह देखता है, स्टेथस्कोप सीने पर लगाता है, उसी बीच तुम ठीक होने लगते हो। तुमने ख्याल किया इस बात का? पर डाक्टर जरा बड़ा होना चाहिए और फीस काफी होनी चाहिए। मुफ्त आ जाए डाक्टर, तो फायदा नहीं होता। जितनी ज्यादा फीस ले, उतना फायदा होता है। फीस दवा से भी ज्यादा काम करती है। क्योंकि उतना बड़ा डाक्टर! अब तुम्हें बीमार रहने की सुविधा ही नहीं रह जाती। इतना बड़ा प्रामाणिक डाक्टर आया, ठीक होना निश्चित ही है। उस ठीक होने की धारणा से तुम ठीक होते हो।
जब तुम देखते हो कि हजारों लोग कह रहे हैं कि फलाने बाबा की राख से ठीक
हो गए, तो तुम भी धक्कम-धुक्का खाकर भीड़ में इकट्ठे हो जाते हो। राख तुम्हें मिल गई--मिलते ही तुम ठीक होने लगते हो। तुम्हारी बीमारी झूठ। और उसी झूठी बीमारी को ठीक करने में तुम लगे हो इसलिए मिथ्या गुरु को खोजते हो।
अभी बंगलोर विश्वविद्यालय ने सत्य साईंबाबा को पत्र लिखा कि हम खोज करना चाहते हैं। वे जवाब भी नहीं देते पत्रों का। उल्टे उन्होंने यह

वक्तव्य दिया कि तुम अपना काम करो, हम अपना काम करें। बीच में बाधा क्यों डालते हो? यह तो ऐसा हुआ कि चोर भी कहने लगें कि हम अपना काम करते हैं, साहुकार अपना काम करें, बीच में बाधा क्यों डालते हो? जो मेडिकल कालेज से पढ़कर आया छह साल, वह भी तख्ती लगाकर बैठा है, उसके सामने बड़ा तख्ता लगा है। कोई नीम-हकीम बैठ जाए, वह कहे, तुम अपना काम करो, अपना काम हम करें, बीच में बाधा क्यों डालते हो?
बाधा डालनी पड़ेगी। क्योंकि सत्य साईंबाबा के कारण हजारों लोग मर रहे हैं, जिनका इलाज हो सकता था। जिनको लाभ हो रहा है, उनको तो लाभ किसी भी चीज से हो जाता। लेकिन हजारों लोग मर रहे हैं। कोई कैंसर का आदमी पहुंच जाता है और वे कहते हैं, बस ठीक हो जाओगे। तो वह आपरेशन नहीं करवाता, इलाज नहीं करवाता क्योंकि अब... ठीक हो जाएगा। वह मर जाता है।
यह तो खतरनाक बात है। यह तो इसमें और हत्या करने में फर्क ही नहीं है। मैं तुम्हारी आकर छाती में छुरा भोंक दूं, तो तुम मरोगे। और तुम मेरे पास कैंसर लेकर आए और मैंने कहा, बिल्कुल फिक्र मत करो। यह राख ले जाओ, सब ठीक हो जाएगा। और तुम मर गए तीन महीने बाद। हालांकि कोई अदालत मुझे पकड़ेगी नहीं, लेकिन पकड़ना चाहिए। क्योंकि मरे तुम मेरे कारण। यह छुरा मैंने मारा। बड़ी तरकीब से मारा, राख की आड़ में मारा।
तो यह तो कहना गलत है साईंबाबा का, कि किसी को हमारे काम में बाधा डालने का क्या कारण? लाखों लोग तुम मार रहे हो, खराब कर रहे हो। उनकी जिंदगी बरबाद कर रहे हो। मगर वे लाखों लोग आए चले जा रहे हैं क्योंकि उनको आशा है कि शायद ठीक हो जाएं। शायद कोई रास्ता मिल जाए। शायद कोई चमत्कार हो जाए। आदमी दुख की अवस्था में सब तरह की बातों पर भरोसा करने लगता है। होशियार से होशियार आदमी करने लगता है।
और वे वैज्ञानिकों के सामने बंगलोर विश्वविद्यालय के, अपना प्रदर्शन बताने को राजी नहीं हैं क्योंकि डर है कि पकड़े जाएंगे। क्योंकि यह भभूत, और ये घड़ियां और ये ताबीज, यह सब मदारीगिरी है। इससे कुछ लेना-देना धर्म का नहीं है।
लेकिन एक बात मैं बंगलोर विश्वविद्यालय के कुलपति को कहना चाहता हूं
कि अगर तुम ठीक कमेटी बनाना चाहते हो निरीक्षण के लिए तो वैज्ञानिक योग्य आदमी नहीं है। क्योंकि वैज्ञानिकों को मदारीगिरी का कोई भी पता नहीं है। उस कमेटी में कम से कम दो मदारी जरूर रखो। गोगिया पाशा, के. लाल, इनको रखो। नहीं तो तुम न पकड़ पाओगे। पश्चिम में कई दफा यह हो गया। मदारी को ही नहीं पकड़ सकते।
क्योंकि आखिर... वैज्ञानिक का लेना-देना क्या है मदारी से? वैज्ञानिक
को पता क्या है तरकीबों का? वैज्ञानिक सरलतम लोग हैं दुनिया के। सीधे- सादे लोग हैं, गणित की दुनिया में जीते हैं--दो और दो चार। वैज्ञानिक को लूटना जितना आसान है, उतना किसी को भी लूटना आसान नहीं है। और वैज्ञानिक को जितनी आसानी से धोखा दिया जा सकता है, किसी को भी नहीं दिया जा सकता। और मजा यह है कि जब तुम वैज्ञानिक को धोखा दे दो, तो तुम्हें प्रमाण मिल गया कि देखो, वैज्ञानिकों ने भी कह दिया। मगर वैज्ञानिक का मतलब क्या है?
यह तो ऐसा हुआ कि जैसे एक दांत का डाक्टर है, और तुम आंख का डाक्टर कुछ गड़बड़ कर रहा है, उसके निरीक्षण के लिए दांत के डाक्टर को लगा दो।
इससे लेना-देना कुछ नहीं है। आंख के संबंध में वह कुछ जानता नहीं है। आंख के डाक्टर को पकड़ना हो कि ठीक है कि गलत, तो आंख के डाक्टर होने चाहिए। तो इतना भर मेरा कहना है कि उनकी कमेटी में अभी ठीक आदमी नहीं हैं। कमेटी में कोई फिलासफी का प्रोफेसर है, क्या लेना-देना है फिलासफी के प्रोफेसर को? भोले-भाले लोग हैं। नहीं तो फिलासफी के प्रोफेसर बनते? इस भरी दुनिया में यह गधापन करते? कोई तर्कशास्त्र के प्रोफेसर हैं; उनको क्या लेना-देना! या कोई संस्कृत का ज्ञाता है; उसे क्या लेना-देना है? न! गोगिया पाशा, के. लाल इनको रखो। ये फौरन पकड़ लेंगे। क्योंकि जो साईंबाबा कर रहे हैं, वह ये सब कर रहे हैं। उनसे बहुत बेहतर कर रहे हैं। बिना इनको रखे वह कमेटी अधूरी है। और साईंबाबा प्रदर्शन करने को तैयार नहीं हैं।

उन्होंने जो वक्तव्य दिया उसमें यह कहा कि मैं तो यह सब चमत्कार इसलिए कर रहा हूं कि लोगों में धर्म की श्रद्धा बढ़े।
तो मैं उनसे कहना चाहता हूं कि अगर धर्म की श्रद्धा बढ़ाने के लिए ही
कर रहे हो तो इससे अच्छा मौका क्या होगा? इस कमेटी को निरीक्षण कर लेने दो। अगर इस कमेटी ने प्रमाण दे दिया कि तुम सही हो, तो बड़ी श्रद्धा बढ़ेगी। और अगर इस कमेटी ने सिद्ध कर दिया कि तुम गलत हो तो इस गलत के आधार पर सही श्रद्धा बढ़ कैसे सकती है?
हर हालत में लाभ होगा। इससे बचो मत। इससे भागो मत। लेकिन वे घबड़ा रहे होंगे। घबड़ाहट स्वाभाविक है। साधारण मदारी जो कर रहे हैं वही वे कर रहे हैं। लेकिन साधारण मदारी ईमानदार है। वह कहता है, हाथ की तरकीब है। ये जो धार्मिक मदारी हैं, ये कहते हैं यह सिद्धि है।
सिद्धि वगैरह कुछ भी नहीं है। लेकिन आदमी इस जाल में पड़ता है। पड़ता इसलिए है कि आदमी बड़ा असहाय है। अब किसी को कैंसर हो गया। अब वह घबड़ाया, कि मरे! अब बचने की कोई आशा न रही। अगर वह डाक्टर के पास जाता है तो डाक्टर भी कोई धोखेबाज तो नहीं है। वह महावीर की भाषा बोलता है डाक्टर। वह कहता है, स्यात ठीक हो जाओ। कोई निर्णय तो नहीं है, गारंटी तो नहीं है कि हम तुम्हें ठीक कर देंगे। हम कोई... हमारे हाथ में कोई जीवन-मृत्यु तो नहीं है। डाक्टर कहता है, हम उपाय करेंगे। जो भी श्रेष्ठतम हो सकता है, हम करेंगे। कभी-कभी लोग बच भी जाते हैं, कभी-कभी लोग नहीं भी बचते।
तो डाक्टर तो महावीर की भाषा बोल रहा है। वह कहता है, शायद ठीक हो जाओ।
हम कोई उपाय न छोड़ेंगे। लेकिन मरीज घबड़ाता है कि स्यात... ? जब डाक्टर कह रहा है स्यात, तब तो बड़ी मुश्किल हो गई। डाक्टर से तो निश्चय सुनने आए थे कि निश्चित ठीक हो जाओगे। कोई डाक्टर ऐसा नहीं कह सकता, क्योंकि कोई डाक्टर इतना बेईमान नहीं हो सकता। डाक्टर को अपनी सीमा पता है। डाक्टर को पता है कि हम सब उपाय करें, फिर भी कभी आदमी मर जाता है।
जीवन के रहस्य डाक्टर के ज्ञान से ज्यादा बड़े हैं। और कभी-कभी हम कोई
भी उपाय न करें तो भी आदमी बच जाता है। जीवन और मृत्यु, हम जो जानते हैं उतने पर समाप्त नहीं हैं।
तो डाक्टर तो झिझकता है। वह कहता है, हम कोशिश करेंगे। हम कुछ भी उठा न रखेंगे। लेकिन फिर भी बात तो परमात्मा के हाथ में है। हो गए ठीक तो ठीक। क्योंकि अंततः तो वही ठीक करेगा तो हो जाओगे। अगर बचने की जीवन-ऊर्जा होगी भीतर, तो ठीक हो जाओगे। हम तो सहारे दे सकते हैं। शायद था.ेड़ा बहुत सहारा बन जाए।
इससे भरोसा नहीं आता। जो कैंसर से मर रहा है वह प्रामाणिक रूप से सुनना चाहता है कि निश्चित तुम ठीक हो जाओगे। इस कहने से ठीक होगा या नहीं होगा, यह सवाल नहीं है। यह सुनने से उसको राहत मिलती है, सांत्वना मिलती है। साईंबाबा के पास जाता है, वे कहते हैं बिल्कुल ठीक हो जाओगे। कोई घबड़ाने की जरूरत नहीं है।
और फिर अगर साधारण डब्बे में से राख निकालकर दें तो ज्यादा परिणाम नहीं मालूम होता। हवा में हाथ घुमाकर राख निकाल दी। इससे उस कैंसर से घबड़ाए हुआ आदमी को लगता है कि है तो आदमी चमत्कारी। हवा से राख निकाल देता है।
कहीं हवा से राख नहीं निकलती। सब राख छिपी हुई है, वहां से निकलती है। लेकिन उस आदमी को तो दिखाई पड़ता है कि हवा से निकाल दी। तो जो आदमी इतना चमत्कारी है उसके वचन में भरोसा करने जैसा है। यह आदमी भरोसा कर लेता है। इसको सांत्वना मिल गई।
अब इसने अगर भरोसा कर लिया तो सांत्वना तो जरूर मिल गई, लेकिन सांत्वना से थोड़े ही कैंसर ठीक होता है। यह मरेगा। हालांकि सुखपूर्वक मरेगा। तीन महीने परेशान नहीं होगा, लेकिन मरेगा। साईंबाबा के कारण इसका मरना निश्चित हो गया। डाक्टर के साथ संभावना थी, बच भी जाता। न भी बचता, लेकिन बचने की भी पचास प्रतिशत संभावना थी।
सत्य साईंबाबा के साथ सौ प्रतिशत बचने की आशा और सौ प्रतिशत न बचने की स्थिति है। अगर बच गया तो तभी बच सकता है, जब कैंसर झूठा रहा हो। अगर झूठा

कैंसर था तो डाक्टर तो बचा ही लेता। उसमें कोई अड़चन ही न थी। इसलिए लाभ कुछ भी नहीं हो रहा। अगर ख्याल भर था... ।
कभी-कभी झूठे ख्याल हो जाते हैं। किसी आदमी को पेट में गैस बनती है। गैस के भर जाने से हृदय की धड़कन बढ़ जाती है। वह सोचता है, हार्ट-अटैक हो गया। कुछ मालूम नहीं है। एनिमा काफी होगा। और न भी एनिमा ले तो भी पेट की गैस निकल जाएगी। तो यह आदमी तो ठीक हो जाएगा।
कुछ लोगों को बिल्कुल काल्पनिक और मानसिक बीमारियां होती हैं। वे सोचते हैं तो हो जाती हैं। भाव कर लेते हैं तो हो जाती हैं। वस्तुतः नहीं हैं। तो कोई भी उनको भरोसा दिला दे कि ठीक हो जाएगा, तो ठीक हो जाते हैं। इसलिए दुनिया में बहुत धोखाधड़ी की सुविधा है, चलती है।
मिथ्या गुरु की तलाश में तुम जाते हो क्योंकि तलाश अभी मिथ्या चीजों
की है। शरीर ठीक भी हो गया तो क्या फर्क पड़ने वाला है? मरोगे! चार दिन पहले मरे कि चार दिन बाद मरे, क्या फर्क पड़ता है? मुकदमा जीत गए तो भी मरोगे।
जीते-हारे कोई फर्क नहीं पड़ता, लेकिन मुकदमा जीतना चाहते हो।
मेरे पास लोग आ जाते हैं। वे कहते हैं, बस आप आशीर्वाद दे दें। मैं कहता हूं किसलिए? वे कहते, आपको तो सब पता ही है। आप तो आशीर्वाद दे दें। तुम बोलो भी तो, कि किसलिए? वे कहते हैं, मुकदमा है अदालत में। मैंने कहा, तुम मुझे फंसा रहे हो। चोरी तुम करो, फंसो तुम, आशीर्वाद मेरा। मेरा इसमें क्या हाथ है?
पर वे कहते हैं, और गुरुओं के पास जाते हैं, वे तो आशीर्वाद दे देते हैं। वे तो पूछते ही नहीं। वे वे जानें। मैं तुम्हें ऐसा आशीर्वाद नहीं दे सकता। मैं तो इतना ही कह सकता हूं कि अगर तुमने चोरी की हो तो जरूर तुमको सजा मिले। अगर न की हो तो तुम निश्चित छूट जाओ, ऐसी मेरी शुभकामना। मैं आशीर्वाद यह नहीं दे सकता कि तुम मुकदमा जीत जाओगे। क्योंकि यह तो बात ही गलत हो गई। ये तो चोर भी चोर हुए और साधु भी उनके साथ सम्मिलित हुए। मिथ्या गुरु की इसलिए तलाश चलती है क्योंकि मिथ्या गुरु कोई खास काम पूरा कर रहा है, जो कि सदगुरु नहीं कर सकता। तो जब तुम्हारे भीतर से व्यर्थ की चीजों का आकर्षण जाएगा, व्यर्थ की वासना गिरेगी, उसी क्षण व्यर्थ के गुरुओं से भी छुटकारा हो जाता है।

चौथा प्रश्नः मुझे गरज किसी से न वास्ता
मुझे काम अपने ही काम से
तेरे जिक्र से, तेरी फिक्र से
तेरी याद से, तेरे नाम से

ऐसा हो जाए, ऐसी बन पड़े बात तो जीवन में जो पाने योग्य था, पा लिया।
तेरे जिक्र से, तेरी फिक्र से
तेरी याद से, तेरे नाम से
परमात्मा ऐसा तुम्हें घेर ले उठने-बैठने में, सोने जागने में। जिसे तुम देखो, उसमें वही दिखाई पड़े। जो तुम करो, उसमें उसी की सेवा हो, तो पा लिया जीवन का गंतव्य।
फिर तुम्हें कहीं और जाने की जरूरत नहीं। तुमने यहीं पा लिया उसे। उसकी याद उसके आने का ढंग है। उसका जिक्र उसके उतर आने की व्यवस्था है। तुमने सीढ़ियां लगा दीं। तुमने पलक-पांवड़े बिछा दिए। तुम याद करे जाओ, वह आ ही जाएगा। तुम थको मत। तुम अथक याद किए जाओ।
रिंदों के लिए मंजिले-राहत है यहीं
मयखाना-ए-पुर-कैफ मसर्रत है यहीं
पीकर तो जरा सैर-ए-जहां की कर ऐ शेख
तू ढूंढता है जिसको वह जन्नत है यहीं
रिंदों के लिए मंजिले-राहत है यहीं--पियक्कड़ों के लिए कहीं और जाने की जरूरत नहीं है। जिन्होंने उसके प्याले को पीना सीख लिया, उसका जिक्र, उसकी फिक्र, उसका नाम। जिन्होंने उसकी शराब ढाल ली उन्हें कहीं जाने की जरूरत नहीं।

रिंदों के लिए मंजिले-राहत है यहीं
उनके पास खुद मंजिल चली आती है। उठकर एक कदम भी नहीं चलना पड़ता।
परमात्मा को खोजना नहीं पड़ता, परमात्मा उन्हें खोजता आता है। बस, याद
भर तुम ठीक से कर पाओ। तुम्हारी याद बीज बन जाती है। अंकुरित होता है परमात्मा, फूल खिलते हैं मोक्ष के।
मयखाना-ए-पुर-कैफ मसर्रत है यहीं
उनकी मधुशाला भी यहीं है। मधुशाला का आनंद भी यहीं है।
पीकर तो जरा सैर-ए-जहां की कर ऐ शेख
हे धर्मगुरु! जरा पीकर, मतवाला होकर, मस्त होकर, नाचता, दीवाना होकर जरा दुनिया की सैर कर।
तू ढूंढता है जिसको वह जन्नत है यहीं
वह स्वर्ग यहीं है। वह मतवाले के पैर-पैर पर है। जहां मस्त बैठ गए वहीं स्वर्ग है। काश! यह हो जाए। उसका ध्यान ही तब आता है, उसकी याद ही तब आती है, जब उसने किसी तरह तुम्हारी तरफ हाथ बढ़ा दिया।
फिर तेरे कूचे को जाता है ख्याल
दिले-गुमगस्ता मगर याद आया।
मेरा ध्यान फिर तेरी गली की तरफ खिंच रहा है। लगता है मुझे फिर मेरे दिल की स्मृति हो आयी।
उसकी पुकार तुम्हारी ही अंतर्तम की पुकार है। अगर तुम्हें उसकी याद आने लगी तो अपनी ही याद आ रही है। वह कोई पराया थोड़े ही है! वह कोई दूसरा थोड़े ही है, दूजा थोड़े ही है!
फिर तेरे कूचे को जाता है ख्याल
दिले-गुमगस्ता मगर याद आया
जब तक उसकी याद नहीं, तब तक तुम्हें अपनी भी याद नहीं होगी।
फिर बेखुदी में भूल गया राहे-कूए-यार
जाता वगरना एक दिन अपनी खबर को मैं
बेहोशी में मंजिल का पता ही भूल गए। प्रेमी का घर ही भूल गए... ।
फिर बेखुदी में भूल गया राहे-कूए-यार
उस प्रीतम का निवास कहां? बेहोशी में यही याद न रहा। ध्यान के अभाव में यह भी स्मृति न रही।
जाता वगरना एक दिन अपनी खबर को मैं
अन्यथा अपनी खबर को एक न एक दिन जाता। क्योंकि जो परमात्मा के पास पहुंचा वह अपने पास पहुंचा। जो परमात्मा से मिला वह अपने से मिला। इसीलिए तो महावीर कहते हैं, आत्मा ही परमात्मा है--"अप्पा सो परमप्पा।"
इस धुन को गूंजने दो। इस गीत को भीतर गुनगुन करने दो। यह तुम्हारी हृदय की धड़कन-धड़कन में बस जाए। श्वास-श्वास को इसी में डुबा लो, पग जाओ इसी रस में।
फिर कुछ और करना नहीं है। फिर सब शास्त्र एक तरफ हटाकर रख दो। मंदिर-मस्जिद को भूलो। फिर जहां तुमने जिक्र किया उसका और जहां उसकी याद की, वहीं मंदिर है। फिर तुम चलोगे तो तीर्थ बनने लगेंगे। तुम्हारे कदम-कदम पर तीर्थ बनने लगेंगे। लेकिन यह हो जाए। यह आसान नहीं है।
ऐसा ही आशीर्वाद मैं दे सकता हूं। ऐसा आशीर्वाद मांगो तो कुछ मांगा।
यह हो सकता है लेकिन होना आसान नहीं है। यह जगत में सबसे ज्यादा दुर्गम है। क्योंकि हमारा मन ऐसा आदी हो गया है व्यर्थ की बातों को याद करने का, कि बैठते हैं परमात्मा को याद करने, न मालूम और और, न मालूम क्या-क्या याद आ जाता है।
इसलिए मेरी दृष्टि में तो रास्ता ऐसा है कि तुम परमात्मा की याद को,
और और चीजों की याद को, दुश्मन मत समझना, अन्यथा मुश्किल में पड़ोगे। तुम तो ऐसा करना कि सभी चीजों को परमात्मा ही मान लेना। तो पत्नी की भी याद आए तो तुम याद रखना कि परमात्मा की ही याद आ रही है। आखिर वह भी तो परमात्मा का ही रूप है। अपने बेटे की भी याद आए तो याद रखना, परमात्मा की ही याद आ रही है।

तुम बेटे में और परमात्मा में, पत्नी में और परमात्मा में, पति में, परमात्मा में किसी तरह का संघर्ष खड़ा मत करना। अन्यथा मुश्किल में पड़ोगे। तुम्हें तो जो भी याद आए उसी में तुम परमात्मा की याद को मान लेना। धीरे- धीरे तुम पाओगे, सब विरोध समाप्त हो गए। जो शक्ल दिखाई पड़ेगी उसमें तुम उसी की ज्योति देख पाओगे, किसी भी आंख में झांको, तुम्हें उस आंख में उसी का प्रतिबिंब मिलेगा। झीलें हजार हैं, चांद एक है। सभी झीलों में उस चांद का प्रतिबिंब बनता है। बहुत रूप में परमात्मा प्रगट हुआ है। उसने बहुत रंग धरे हैं। उसने बहुत वेश धरे हैं। वही है; उसके अतिरिक्त और कोई भी नहीं।
इसलिए मैं तुमसे यह नहीं कहता कि तुम सांसारिक याद और परमात्मा की याद को संघर्ष में जुटा दो। उस संघर्ष में पड़े कि तुम टूट जाओगे। और तुम बहुत बुरी तरह हारोगे और पराजित हो जाओगे। और तुम ही अगर हार गए तो परमात्मा की विजय कैसे होगी? इसलिए तुम झगड़े में मत पड़ना। द्वंद्व में मत पड़ना।
तुम तो एक चेष्टा शुरू करो... वृक्ष दिखाई पड़े, तो देखो वृक्ष को, पहचानो परमात्मा को। फूल हाथ में आए, गौर से देखना। जरा गहरे देखना। तुम उसे छिपा हुआ पाओगे ही। वह है ही तो ऐसे कैसे होगा कि न पाओगे? पत्थर भी पड़ा दिखाई पड़े, और थोड़े ज्यादा गौर से देखना। फूल में जरा जल्दी दिख जाएगा, पत्थर में जरा और गहरे छिपा है। मगर छिपा तो है ही।
ऐसी अपनी आंख को निखारते चलो। ऐसी अपनी दृष्टि को साफ करते चलो।

पांचवां प्रश्नः मन की आवाज कौन-सी है और हृदय की आवाज कौन-सी है? जानने की कसौटी क्या है? कृपया समझाएं।

मन की ही सब आवाजें हैं, हृदय की कोई आवाज नहीं। जहां आवाजें खो जाती हैं, वहां हृदय है।
मौन है हृदय की आवाज।
शून्य है हृदय का स्वर।
इसलिए झंझट बिल्कुल नहीं है। तुम सोचते हो, कोई आवाज हृदय की और कोई
मन की; तो तुम बड़ी गलती में पड़े जा रहे हो। सब आवाजें मन की हैं। यह मन ही है।
धन को भी मन ही पकड़ना चाहता है और धन को मन ही त्यागना चाहता है। मन बड़ा जटिल है। एक तरफ कहता है, पकड़ लो, लूट लो मजे। दूसरी तरफ कहता है क्या रक्खा? सब असार है।
पर दोनों मन हैं। एक तरफ कहता है दौड़ लो। चार दिन मिले जिंदगी के, कुछ
पा लो पद। दूसरी तरफ से कहता है, क्या रखा है पदों में? जो पहुंच गए उनको तो देखो।
मन अपने से ही एकालप करता रहता है, मोनोलाग करता रहता है। एक तरफ से जवाब देता है, एक तरफ से उत्तर खड़ा करता है। पर दोनों आवाजें मन की हैं। यास कहती है कुछ, तमन्ना कुछ
किसकी बातों का एतबार आए
फिर धीरे-धीरे तुम्हें जो-जो समझाया गया है कि शुभ है, सत्य है, अगर मन वही कहता है तो तुम सोचते हो, यह हृदय की आवाज है। जब मन कहता है वेश्या के घर चलो तो तुम कहते हो, यह मन की, इंद्रियों की, शरीर की। और जब मन कहता है मंदिर चलो, तुम कहते हो, यह आत्मा की, हृदय की।
गलती बात है। जो वेश्या के घर ले जाता है वही मंदिर भी ले जाता है। वे
सब जुड़े हैं। हृदय तो कहीं नहीं ले जाता। वहीं छोड़ देता है जहां तुम सदा से हो। न मंदिर, न वेश्या; न धन, न धर्म; न भोग, न त्याग।
इसलिए तो महावीर कहते हैं धर्म-अधर्म दोनों के पार जाना है। पाप-पुण्य दोनों के पार जाना है।
तुम सोचते हो पाप की आवाज मन की और पुण्य की हृदय की? नहीं, दोनों मन
की ही हैं। सब आवाजें मन की हैं। मन व्यर्थ ही ऊहापोह में लगा रहता है।
कुछ कटी हिम्मते-सवाल में उम्र

कुछ उम्मीदे-जवाब में गुजरी
और ऐसे ही मन समय को गंवाता रहता है। इधर पूछता, इधर खोजता है। उत्तर
भी बना लेता, फिर उत्तर में से दस नए प्रश्न बना लेता। फिर प्रश्नों में से दस उत्तर खड़े कर लेता। ऐसा बुनता जाता मकड़ी का जाला। अपने में से ही निकाल-निकाल कर जाले को बुनता चला जाता है। मगर यह सब मन का ही खेल है।
तुम पूछते हो हृदय की आवाज कौन-सी? हृदय की कोई आवाज नहीं। जब सब आवाज तिरोहित हो जाती है तो जो सन्नाटा शेष रह जाता है, वही हृदय का है। उस सन्नाटे में ही तुम्हें दिखाई पड़ेगा, दर्शन होगा। उस शून्य में ही पूर्ण का अवतरण होता है।

आखिरी प्रश्नः आपने एक दिन कहा था कि इधर तुम कृष्ण हुए कि उधर रास सजा। मैं इस बात पर झूम तो उठा था, लेकिन जब कृष्ण का भाव करना चाहा तो मुझमें गोपियों का भाव भर गया। और इस भाव ने मुझे और भी आह्लाद से भर दिया। जैसे कृष्ण के आगे रास-मंडल रचाया था, वैसे ही आपके सन्मुख होने लगा। किंतु आपके रास सजाने का भाव क्या था?

यही था, जो हुआ। जो हुआ, बिल्कुल यही था।
कृष्ण के साथ रास रचाना हो तो गोपी बनना ही पड़ेगा। गोपी बन-बनकर एक दिन कृष्ण भी बन जाओगे, लेकिन गोपी बनने से गुजरना ही पड़ेगा। गोपी बनना कृष्ण होने के रास्ते पर पड़ाव है। जो गोपी बनने को तैयार नहीं वह कृष्ण कभी न बन पाएगा।
ऐसे गोपी नाचते-नाचते-नाचते पास आती जाएगी। मंडल छोटा होता जाएगा। नाच तीव्र होता जाएगा। गोपी धीरे-धीरे खोती जाएगी, लीन होती जाएगी। मंडल और छोटा होता जाएगा। रास और सघन हो उठेगा। मध्यरात्रि आ जाएगी। चांद सिर पर होगा। नाचते-नाचते-नाचते-नाचते गोपी कृष्ण में लीन हो जाएगी। कृष्ण हो उठेगी।
मंडल तब बिल्कुल समाप्त हो गया।
रास पूर्ण हुआ।
मिलन हुआ।
पुराणों में कथा है। राधा के नाम का कोई उल्लेख नहीं है शास्त्रों में--पुराने शास्त्रों में। सिर्फ इतना ही उल्लेख है कि कृष्ण के पास एक गोपी ऐसी भी थी, जो छाया जैसी थी। उसका कोई नाम नहीं है। वह छाया की तरह उनके पीछे लगी रहती थी। छाया की तरह... यही तो राधा होने का ढंग है। अच्छा किया कि नाम नहीं लिया। नाम तो बाद में दिया, बहुत बाद में--मध्ययुग में। कवियों ने नाम दिया क्योंकि कवि को बिना नाम दिए न चलेगा। नाम लेकिन बड़ा प्यारा दिया। प्रतीकात्मक है राधा। धारा के विपरीत--राधा। धारा को उल्टा कर लो तो राधा। जैसे गंगा गंगोत्री की तरफ बहने लगे तो राधा हो गई। मूलस्रोत की तरफ बहने लगे तो गोपी-भाव का जन्म हुआ। जब अपना नाम भी भूल जाए तो राधा का जन्म हुआ। जब अपना अलग होने का कोई ख्याल ही न रह गया, कृष्ण की छाया बन गए। जहां जाने लगे वे... छाया क्या करे? छोड़ भी नहीं सकती पीछा। छुड़ाना भी चाहें कृष्ण, तो भी पीछा नहीं छोड़ती। जब कृष्ण मथुरा से द्वारका चले गए तो और सब तो छूट गए होंगे, सिर्फ राधा साथ गई होगी। छाया साथ गई होगी। छाया को तो छोड़ोगे कैसे?
रास गहन होता है तो पहले गोपी का जन्म होता है। फिर गोपी धीरे-धीरे छाया हो जाती है। गोपी की पार्थिवता खो जाती है। सिर्फ प्रकाशरूप रह जाती है। अस्तित्व मात्र। और तब किसी भी क्षण पतिंगा ले लेगा आखिरी छलांग शमा में। डूब जाएगा और एक हो जाएगा।
यही मेरा मतलब था, जो हुआ। गोपियों का भाव भर गया, गोपी होने की धारणा बनी--बस, कृष्ण की तरफ पहला कदम उठा। गोपी की आकांक्षा क्या है? हजारों गोपियां हैं। कृष्ण की कथा मधुर है। परमात्मा एक है, खोजी अनंत हैं। मंजिल एक है, रास्ते बहुत हैं। रास्तों पर चलनेवाले यात्री बहुत हैं।
कृष्ण एक हैं। सोलह हजार गोपियां हैं। सोलह हजार तो सिर्फ प्रतीक हैं, हजारों गोपियां हैं। लेकिन हजारों गोपियों को एक कृष्ण ने लुभा

लिया। कोई वैमनस्य भी नहीं है। कोई ईर्ष्या भी नहीं है। प्रत्येक गोपी कृष्ण से सीधे जुड़ गई। दूसरी गोपी की कोई चिंता भी नहीं है। प्रत्येक गोपी को ऐसा लगने लगा, कृष्ण उसी के साथ नाच रहे हैं। तुमने ऐसे चित्र देखे होंगे, जिसमें कृष्ण अनेक रूप ले लिये हैं। सब गोपियों के साथ नाच रहे हैं।
परमात्मा जब तुम्हें मिलेगा, तो "तुम्हें" मिलेगा। यह कोई सार्वजनिक चीज नहीं होगी। यह बिल्कुल निजी और वैयक्तिक होगी। जब परमात्मा तुम्हें मिलेगा तब यह परमात्मा बिल्कुल तुम्हारा होगा। यह तुम्हारी आत्मा होगा। मगर इससे मिलने के लिए गोपी की भावदशा चाहिए।
तुझे न देख सकूं मैं तो कुछ मलाल नहीं
यही बहुत है कि तू मुझको देख सकता है
दार्शनिक तो कहता है, मुझे परमात्मा को देखना है।
इसलिए तो हम दर्शनशास्त्र कहते हैं दार्शनिक की खोज को--देखने की चेष्टा। भक्त कहता है, मैं तुझे न देख सकूं तो कुछ मलाल नहीं।
तुझे न देख सकूं मैं तो कुछ मलाल नहीं
यही बहुत है कि तू मुझको देख सकता है
यह क्या कम है कि तेरी आंख मुझ पर पड़ रही है? हो गई बात। मैं अंधा हूं, मैं नासमझ हूं, मैं भटका हूं, फिक्र छोड़--तो कोई मलाल नहीं। तेरी दृष्टि मुझ पर पड़ रही है, बस बहुत।
जैसे सूरज निकला, अंधा न देख सके सूरज को, इससे क्या फर्क पड़ता है? सूरज तो अंधे को नहाए जा रहा है। सूरज की तो किरण-किरण अंधे को नहाए जा रही है।
दार्शनिक और भक्त का यही भेद है। ज्ञानी कहता है, परमात्मा को देखना है। भक्त कहता है, परमात्मा मुझे देख ले।
अब तुम्हें एक रहस्य की बात ख्याल में ले लेनी चाहिए। गोपी का अर्थ होता है स्त्रैण चित्त। स्त्री का चित्त चाहता है प्रेमी उसे देख ले। पुरुष का चित्त चाहता है प्रेयसी को देखे। प्रेयसी चाहती है पुरुष देख ले।
इसलिए तुम्हें बड़ी हैरानी होगी। मनोवैज्ञानिक बड़े चिंतन में पड़े रहते हैं कि पुरुष की बड़ी आकांक्षा होती है अपनी प्रेयसी के शरीर को नग्न, उसके पूरे सौंदर्य में अनढंका देख लेने की। लेकिन स्त्री कभी चेष्टा नहीं करती पुरुष के शरीर को नग्न देखने की। उसकी कोई उत्सुकता ही नहीं होती। इसीलिए तो नंगी स्त्रियों की तस्वीरें बहुत बिकती हैं, नंगे पुरुषों की नहीं बिकतीं। नहीं तो स्त्रियां भी उतनी ही हैं, वे भी तस्वीरें खरीदतीं। इसलिए फिल्मों में नग्न स्त्री का नृत्य तो खूब दिखाई पड़ता है; नंगा पुरुष नाचे तो लोग कहेंगे, बंद करो, यह क्या बकवास लगा रखी है? नग्न पुरुष में स्त्री की कोई आकांक्षा नहीं है।
जब तुम किसी स्त्री को प्रेम से आलिंगन में भरोगे तो तुम चकित होओगे, तुम्हारी आंख खुली होगी, स्त्री की आंख बंद हो जाती है।
गहरे प्रेम के क्षण में स्त्री सदा आंख बंद कर लेती है। स्त्रैण चित्त चाहता है कि उसका प्रेमी उसे देख ले, बस काफी। गोपी का यही अर्थ होता है कि परमात्मा मुझे देख ले, बस काफी है।
तुझे न देख सकूं मैं तो कुछ मलाल नहीं
यही बहुत है कि तू मुझको देख सकता है
परमात्मा के प्रेम में स्त्रैण-चित्तता की जरूरत है। प्रेम में ही स्त्रैण-चित्तता की जरूरत है। पुरुष का प्रेम नाममात्र को प्रेम है। प्रेम तो स्त्री का ही होता है। पुरुष के लिए हजार कामों में प्रेम एक काम है। स्त्री के लिए प्रेम ही बस एकमात्र काम है। स्त्री के सब काम प्रेम से निकलते हैं। वह खाना पकाएगी, बुहारी लगाएगी, तुम्हारे कपड़े पर बटन टांक देगी, तुम्हारी प्रतीक्षा करेगी। उसका सारा काम... तुम्हारे बच्चे, उनकी देखभाल करेगी। तुम्हारे घर, तुम्हारे बगीचे को संवारेगी। उसकी सारी चिंता उसके प्रेम से निकलती है। उसका सारा काम उसके प्रेम से निकलता है।

पुरुष को और हजार काम हैं। अक्सर पुरुष को ऐसा लगता है कि प्रेम के कारण मेरे काम में बाधा पड़ती है। इसलिए बहुत कामी-धामी जो पुरुष होते हैं, वे प्रेम में पड़ते ही नहीं। जिनको दुकान ठीक से चलानी है, वे प्रेम को हटा देते हैं कि हटाओ, बंद करो। दुकान में बाधा पड़ती है। जिसको राजनीति में उतरना है, वह प्रेम को हटा देता है--हटाओ! प्रेम से बाधा पड़ती है। जिसको वैज्ञानिक बनना है वह प्रेम को हटा देता है--हटाओ! जिसको ध्यानी बनना है वह प्रेम को हटा देता है--हटाओ, ध्यान में बाधा पड़ती है।
ऐसा लगता है कि पुरुष को और हजार काम हैं, जो प्रेम से ज्यादा महत्वपूर्ण हैं। वह प्रेम को हटा देता है और काम करने को। स्त्री के लिए और कोई काम ही नहीं है। अगर प्रेम न हो तो स्त्री एकदम अकेली रह जाती है। कुछ काम नहीं सूझता, क्या करे! काम निकलता ही नहीं।
स्त्रैण-चित्त का इतना ही अर्थ है कि तुम्हारे लिए प्रेम ही ध्यान हो। गोपी बनने का यही अर्थ है कि तुम्हारी दृष्टि में प्रेम ही एकमात्र काम रह जाए। और सब प्रेम से निकले। फिर तुम्हें हर तरफ परमात्मा दिखाई पड़ने लगेगा। तुम पहले... परमात्मा तुम्हें देखने लगे, इस आकांक्षा को जगाओ। फिर तुम्हें परमात्मा हर तरफ दिखाई पड़ने लगेगा। जिस दिन परमात्मा ने तुम्हें देख लिया उसी दिन तुम उसे देख पाओगे।
भक्त और ज्ञानी के रास्तों का यही फर्क है। भक्त कहता है प्रभु, मैं नाच रहा हूं, तू देख ले। कोई बात नहीं कि मैं तुझे देखूं, मगर मैं नाच रहा हूं, तेरी आंख इधर पड़ जाए। बस, जरा तेरी आंख पड़ जाए, पर्याप्त पुरस्कार हो गया। तूने देख लिया, जीत गए हम; सार्थक हो गए।

बला-ए-जां हैं गालिब उसकी हर बात
इबारत क्या, इशारत क्या, अदा क्या
बात, संकेत, भावभंगिमा...
बांकेबिहारी की बात-बात बड़ी प्यारी है
बात-बात बला मेरी जान की
लेकिन इसका सूत्र खुलता है तुम्हारे नृत्य से, गीत से, तुम्हारे हृदय
को खोलने से। तुम पुकारो परमात्मा को कि तू मुझे देख ले; बस पर्याप्त है। जिस दिन उसकी आंख तुम पर पड़ी उसी दिन तुम्हारी आंख पैदा हो जाएगी। उसकी आंख की चोट तुम्हारी आंख को खोल देगी।
ज्ञानी कहता है, पहले हम परमात्मा को देखेंगे। उसकी यात्रा भिन्न है।
वह कहता है, पहले हम आंख पैदा करेंगे जिससे परमात्मा दिख जाए। जब हम परमात्मा को देखेंगे तभी वह हमारी तरफ देखेगा। भक्त कहता है पहले वह हमारी तरफ देख ले, फिर हमने न भी देखा तो भी हर्ज क्या है? उसने देख लिया।
दोनों हालत से घटना घट जाती है।
मेरी बात सुनकर प्रश्नकर्ता को गोपीभाव जगा; तो इससे साफ समझ लेना चाहिए कि भक्ति उसके लिए मार्ग होगी। और यह भाव जगा है तो इसको लेकर मत बैठे रहना। इस निमंत्रण को स्वीकार करो और चलो यात्रा पर।
आज अपने स्वप्न को मैं सच बनाना चाहता हूं
दूर की इस कल्पना के पास जाना चाहता हूं
चाहता हूं तैर जाना सामने अम्बुधि पड़ा जो
कुछ विभा उस पार की इस पार लाना चाहता हूं
स्वर्ग में भी स्वप्नभू पर देख उनसे दूर ही था
किंतु पाऊंगा नहीं कर आज अपने पर नियंत्रण
तीर पर कैसे रुकूं मैं आज लहरों में निमंत्रण
प्रभु की पुकार आयी तुम्हारी तरफ। तुममें जो गोपी का भाव जगा है यह बिना कृष्ण के पुकारे जग ही नहीं सकता है।
तीर पर कैसे रुकूं मैं आज लहरों में निमंत्रण
अब रुको मत। अब नाचो। अब स्वयं ही लहर बनो। लहर का निमंत्रण मिल गया,
अब नाचो। जमने दो रास। होओ उन्मत्त। होओ मदमत्त। पागल बनो। स्त्रैण बनो। छाया बनो उसकी। मंडल को करो छोटा। नाचते-नाचते-नाचते-नाचते एक दिन उसमें

प्रवेश हो जाएगा। नृत्य करते-करते ही प्रवेश हो जाता है। इधर तुम मिटे कि उधर प्रवेश हुआ।
शुभ घड़ी आयी; उसे खो मत जाने देना।
मैं ब असद फक्र-ए-जुहाद से कहता हूं मजाज
मुझको हासिल सर्फे-बेअते-खैयाम अभी
अत्यंत गौरव से, संयमियों से, योगियों से मैं कहता हूं कि मुझे खैयाम
की शिष्यता की प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।
मैं ब असद फक्र-ए-जुहाद से कहता हूं मजाज
संयमियों से, योगियों से, ज्ञान के खोजियों से मैं बड़े गौरव के साथ कहता हूं--
मुझको हासिल सर्फे-बेअते-खैयाम अभी
मुझे खैयाम की मधुशाला में शिष्यता की प्रतिष्ठा मिल गई है। मुझे बेहोशी का, मदहोशी का, प्रभु की मदिरा पीने का निमंत्रण मिल गया है।
फिर संयमी बड़ा फीका है। भक्त के आगे संयमी बड़ा फीका है। फिर संयमी तो मरुस्थल जैसा है, भक्त वसंत में वृक्षों पर फूल खिल गए ऐसा। भक्त झरने जैसा है।
तो जिसको भक्ति की लहर उठ रही हो वह रुके न; चल पड़े। रास में सम्मिलित
हो जाओ। और उसका रास चल ही रहा है। उसी के आसपास तारे नाच रहे हैं। उसी के आसपास पृथ्वी, ग्रह, उपग्रह नाच रहे हैं। उसका रास चल ही रहा है। इस सारे जीवन-नृत्य का वही केंद्र है।
तुम भी रास में सम्मिलित हो जाओ।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग दो
पच्चीसवां प्रवचन

चौदह गुणस्थान

जेहिं दु लक्खिज्जंते, उदयादिसु संभवेहिं भावेहिं।
जीवा ते गुणसण्णा, णिद्दिट्ठा सव्वदरिसीहिं।। 144।।
मिच्छो सासण मिस्सो, अविरदसम्मो य देसविरदो य।
विरदो पमत्त इयरो, अपुत्व अणियट्टि सुहुमो य।।
उवसंत खीणमोहो, सजोगिकेवलिजिणो अजोगी य।
चोद्दस गुणट्ठाणाणि य, कमेण सिद्धा य णायव्वा।।145।।

आज के सूत्र महावीर की साधना-पद्धति में अत्यंत विशिष्ट हैं। साधक की यात्रा में जैसा सूक्ष्म पड़ावों का विभाजन महावीर ने किया है, वैसा किसी और ने कभी नहीं किया। राह का पूरा नक्शा, रास्ते पर पड़नेवाले पड़ाव, मील के किनारे लगे पत्थर, सभी की ठीक-ठीक सूचना दी है।

यह तभी संभव है, जब कोई गुजरा हो, पहुंचा हो। यह केवल विचार कर लेने से, दार्शनिक चिंतन से संभव नहीं है। और फिर हजारों वर्षों में और जो लोग सिद्धत्व को उपलब्ध हुए, उन सबने भी गवाही दी है कि महावीर का वक्तव्य साधक से लेकर सिद्ध की मंजिल तक अत्यंत सूक्ष्म रूप से सही है।
महावीर की भाषा में साधक चौदह गुणस्थानों से गुजरता है। एक-एक गुणस्थान को ठीक से समझना आवश्यक है। कहीं न कहीं तुम भी खड़े होओगे इसी रास्ते पर। अपनी जगह ठीक से पहचान लो, तो कैसी यात्रा करनी, कहां से यात्रा करनी, किस तरफ जाना--सुगम हो जाता है।
"मोहनीय कर्मों के उदय आदि (उपशम, क्षय, क्षयोपशम आदि) से होनेवाले जिन परिणामों से युक्त जीव पहचाने जाते हैं, उनको सर्वदर्शी जिन ने गुण या गुणस्थान की संज्ञा दी है। अर्थात सम्यकत्व आदि की अपेक्षा जीवों की अवस्थाएं, श्रेणियां, भूमिकाएं गुणस्थान कहलाती हैं।"
"मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, अविरत सम्यकदृष्टि, देशविरत, प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, उपशांतमोह, क्षीणमोह, संयोगिकेवलीजिन, अयोगिकेवलीजिन, ये क्रमशः चौदह जीव-समास या गुणस्थान हैं। सिद्ध जीव गुणस्थानातीत होते हैं।"
पहला स्थान हैः मिथ्यात्व। जैसा है उसे वैसा न देखने को महावीर मिथ्यात्व कहते हैं। जैसा है उससे अन्यथा देखने को महावीर मिथ्यात्व कहते हैं।
जैसा है उसे देखने में एक ही बाधा है--हमारा अहंकार। सत्य को देखना हो
तो अपनी सारी अस्मिता को एक तरफ हटाकर रख देना जरूरी है। अगर तुमने कहा कि मेरा सत्य ही सत्य होगा तो तुम मिथ्यात्व में ही जीयोगे।
सत्य मेरा और तेरा नहीं है। सत्य तो बस सत्य है। मेरे-तेरे के विशेषण सत्य को मिथ्या कर जाते हैं।
अक्सर ऐसा होता है, जब तुम कहते हो कि जो मैं कह रहा हूं वही सत्य है तो तुम्हारा जोर सत्य पर नहीं होता। चूंकि तुम कह रहे हो इसलिए सत्य होना चाहिए। तुम्हारे कहने से थोड़ी ही कोई बात सत्य होती है। सत्य से मेल खा जाए तो सत्य होती है। तुम्हारे होने से सत्य नहीं होती।
इसलिए जो व्यक्ति अपने मैं को उतारकर रख देगा और सत्य के साथ जाने को राजी होगा, वही पहला कदम उठा पाता है। अन्यथा लोग पहले कदम पर ही अटके रह जाते हैं। अधिक लोग मिथ्यात्व में ही जीते हैं।
तुम्हें भी बहुत बार ऐसा मौका आ जाता होगा, जब तुम्हें थोड़ी झलक भी मिलती है कि तुम जो कह रहे हो वह ठीक नहीं, लेकिन कैसे करें स्वीकार? बेइज्जती है, अपमान है, प्रतिष्ठा गिरती है। तो तुम जिद्द किए जाते हो। तुम झूठ को भी सच किए जाते हो।
आस्कर वाइल्ड ने कहा है कि दुनिया में दो तरह के लोग हैं। दुनिया दो विभागों में विभाजित है। एक वे लोग, जो कहते हैं सत्य को हमारे साथ खड़ा

होना होगा। हम जहां खड़े हों, सत्य को वहां खड़ा होना होगा। ये मिथ्यात्व-दृष्टि लोग हैं।
दूसरे लोग, जो कहते हैं सत्य जहां होगा हम वहां खड़े हो जाएंगे। ये सम्यक-दृष्टि लोग हैं। जरा-सा ही फर्क है। शब्दों को यहां-वहां रख दो।
सत्य को मेरे साथ खड़ा होना होगा, या मैं सत्य के साथ खड़ा होऊंगा। शब्दों में तो बड़ा थोड़ा फर्क है, लेकिन अस्तित्व में बड़ा गहरा फर्क हो जाता है। जमीन-आसमान जैसा फर्क हो जाता है।
जोशुआ लियेमेन ने लिखा है कि जब वह युवा था और अपने गुरु के आश्रम में
था तो रोज दो घंटे के लिए आश्रम के बगीचे में घूमने और ध्यान करने का समय मिलता था। घूमने और प्रार्थना करने का समय मिलता था। खुली प्रकृति में प्रार्थना के पंख लगाकर उड़ने के लिए सुविधा मिलती थी। एक और युवक उसका मित्र था, वे दोनों साथ ही साथ घूमते थे। दोनों को सिगरेट पीने की लत थी, लेकिन संकोच होता था, कि गुरु से पूछे बिना आश्रम में धूम्रपान कैसे करें! तो उन्होंने कहा, पूछ ही क्यों न लें? और गुरु इतना सरल है, इतना सीधा है कि शायद ही इनकार करे।

उन्होंने पूछा। दूसरे दिन लियेमेन जब पहुंचा तो उसने देखा, उसका साथी धूम्रपान कर रहा है। वह बहुत हैरान हुआ। उसने कहा, क्या तुमने पूछा नहीं? मैंने तो पूछा, लेकिन मेरे पूछते ही उन्होंने कहा नहीं, कभी नहीं। तुमने मालूम होता है पूछा नहीं, या कि पूछकर भी आज्ञा का उल्लंघन कर रहे हो? उस युवक ने कहा, आश्चर्य! मैंने तो पूछा और उन्होंने कहा कि बिल्कुल ठीक है, पीयो।
लियेमेन ने कहा कि मेरी समझ में नहीं आता कि हम दोनों को इतने विपरीत उत्तर क्यों दिए गए? उस दूसरे युवक ने कहा, पहले यह कहो, तुमने पूछा क्या था? लियेमेन ने कहा, मैंने पूछा था कि क्या मैं प्रार्थना करते समय धूम्रपान कर सकता हूं? उन्होंने कहा, नहीं, कभी नहीं। और लियेमेन ने पूछा उस युवक से, तुमने क्या पूछा था?
उस युवक ने कहा कि बस, बात साफ हो गई। मैंने पूछा था कि क्या मैं धूम्रपान करते समय प्रार्थना कर सकता हूं? उन्होंने कहा, निश्चित। "धूम्रपान करते समय प्रार्थना कर सकता हूं?" कौन मना करेगा? लेकिन "प्रार्थना करते समय धूम्रपान कर सकता हूं?" कौन हां भरेगा? पर बात जरा-सी फर्क की है, पर बड़े फर्क की है। जमीन-आसमान का फासला हो जाता है।
महावीर कहते हैं, सत्य के पक्ष में खड़े होना; सत्य को अपने पक्ष में खड़ा मत करना। तुम्हारे पक्ष में होने के कारण ही सत्य असत्य हो जाता है। तुम असत्य हो। तुम्हारा जहर सत्य को भी जहरीला कर देगा। तुम अपनी छाया सत्य पर मत डालना। तुम अपनी गंदगी सत्य पर मत डालना। तुम सत्य के साथ हो लेना लेकिन सत्य को अपने पीछे चलने की जबर्दस्ती मत करना। वहां हिंसा हो जाती है। जब तुम सत्य को अपने पीछे घसीटते हो, सत्य मर जाता है। सत्य जीता है स्वतंत्रता में।
तो तुम भूलकर भी यह चेष्टा मत करना कि मैं जो कहूं वह सत्य हो। तुम यह चेष्टा जरूर करना कि जो सत्य हो वही मैं कहूं। अंतर जरा-सा है; अंतर बहुत बड़ा भी है। हम सबके मन में यह दंभ होता ही है कि जो मैं कहता हूं वह सत्य होना ही चाहिए। मैंने कहा!
मैंने देखा कि मुल्ला नसरुद्दीन अपने घर में दो गुल्लक रखे हुए है। मैंने पूछा यह किसलिए? तो वह कहता है कि मैं एक में असली सिक्के डालता हूं, दूसरे में नकली सिक्के। हर साल खोलता हूं। तो मैंने कहा, अब की बार तुम जब खोलो तो मैं मौजूद रहूंगा। उसने खोला, गुल्लक तोड़े, तो सब सिक्के जिसमें वह नकली सिक्के डालता, उसी गुल्लक में निकले। असली सिक्केवाला गुल्लक तो खाली निकला। मैंने कहा, मामला क्या है? क्या सभी सिक्के नकली हैं? उसने कहा कि जो हमने नहीं ढाला वह असली कैसे हो सकता है? अगर ये ही सिक्के मैंने ढाले होते अपने घर में, तो सब असली गुल्लक में होते। दूसरों के ढाले सिक्के असली हो कैसे सकते हैं? सब नकली हैं।

दूसरे जो कहते हैं, दूसरों के कहने के कारण ही तुम कहने लगते हो असत्य। तुम जो कहते हो, तुम्हारे कहने के कारण ही कहने लगते हो सत्य। सत्य की यह पूजा न हुई। सत्य का तो यह बहुत अपमान हुआ। सत्य तुमसे बड़ा है। तुम सत्य से बड़े होने की चेष्टा करोगे, मिथ्यात्व होगा।
इसलिए महावीर कहते हैं, साधक का पहला कदम और पहला पड़ाव, जहां हम सब हैं, यहां से शुरू होता है। यात्रा शुरू भी हो सकती है, ना भी हो। अगर हम यही जोर दिए चले जाएं कि मेरे पक्षपात सही हैं, मेरी धारणाएं सही हैं, मेरे शास्त्र सही हैं, मेरे तीर्थंकर सही हैं, मेरे अवतार सही हैं, मेरे गुरु सही हैं; और सबके भीतर कारण केवल इतना ही है कि वे मेरे हैं, इसलिए सही हैं। और तो कोई कारण नहीं है।
तुम जैन घर में पैदा हुए तो तुम कहते हो, जैन धर्म सही है। तुम अगर हिंदू घर में पैदा होते तो यही तुम हिंदू धर्म के संबंध में कहते। तुम अगर मुसलमान घर में पैदा होते तो यही तुम इस्लाम के संबंध में कहते।
तो न तो तुम्हें इस्लाम से कुछ मतलब है, न जैन से, न हिंदू से। तुम जहां पैदा हुए वहीं सत्य को भी पैदा होना चाहिए। जैसे तुम्हारे होने में सत्य का कोई ठेका है!
तुम्हें बचपन से कुरान पढ़ाई गई, तुमने कुरान को अपना मान लिया तो कुरान सत्य है। गीता पढ़ाई गई तो गीता सत्य है। लेकिन सत्य इतना सस्ता तो नहीं। सत्य को तो खोजना पड़ता है। ऐसे मुफ्त तो मिलता नहीं। सत्य संस्कार से नहीं मिलता, न समाज से मिलता है। समाज से तो पक्षपात मिलते हैं, पूर्वाग्रह मिलते हैं, मुर्दा धारणाएं मिलती हैं, थोथे शब्द मिलते हैं, उधार, बासे सिद्धांत मिलते हैं। लेकिन तुम्हारे अहंकार के आभूषण बन जाते हैं वही।
जब हिंदू कहता है कि हिंदू धर्म सही, तो वह यह कह रहा है मैं सही। मेरे कारण हिंदू धर्म सही। जब तुम कहते हो, भारतभूमि पवित्र भूमि, पुण्य भूमि; तो तुम क्या कह रहे हो? इतना ही कह रहे हो कि तुम जैसे पवित्र महापुरुष भारत में पैदा हुए तो भारत पवित्र होना ही चाहिए। और क्या कह रहे हो? तुम पोलैंड में पैदा होते कि चीन में, तो तुम यही वहां भी कहते। तुम यही कहते कि पोलैंड पवित्र भूमि है। स्वर्ग अगर कहीं है तो बस यहीं है। आदमी का अहंकार ऐसा है कि वह जिस चीज से अपने अहंकार को जुड़ा हुआ पाता है उसी की गुण-गरिमा गाने लगता है।
तो महावीर कहते हैं, अगर तुम यही करते रहे तो मिथ्या-दृष्टि ही बने रहोगे। तुम पहली सीढ़ी पर ही अटके रह जाओगे। दूसरी सीढ़ी पर कदम केवल उन्हीं का बढ़ता है, जो अपने मैं को सत्य और असत्य का निर्णायक सूत्र नहीं बनाते।
जो कहते हैं, मैं निर्णायक नहीं हूं।
सत्य है तो है। चाहे मेरा दुश्मन ही घोषणा कर रहा हो। सत्य है तो है।
और चाहे मैं ही घोषणा करूं, अगर असत्य है तो असत्य है। मेरी घोषणा से असत्य सत्य नहीं होता।
पहला गुणस्थानः मिथ्यात्व। यहां सारा संसार इसी गुणस्थान में जीता है।
इसलिए तो छोटी-छोटी बात पर विवाद हो जाता है। क्षुद्र बातों पर विवाद
हो जाता है। तुम कभी देखते हो? निरीक्षण करते हो? कैसी छोटी बातों पर लड़ उठते हो! पति-पत्नी हैं, भाई-भाई हैं, बाप-बेटे हैं, मित्र-मित्र हैं, जरा- जरा सी बात पर कलह हो जाती है।
कलह का कारण? कारण बताने जैसा भी नहीं लगता। अगर कोई पूछे पति-पत्नी
से लड़ते वक्त, कि कारण क्या है? तो वे भी संकोच करते हैं कि कारण कुछ भी नहीं है। मगर होना तो चाहिए कलह चल रही है।
कारण बड़े छोटे हैं, लेकिन कारणों के पीछे छिपा हुआ बड़ा अहंकार है। छोटे कारण, और बड़ा अहंकार पीछे छिपा हुआ है। पत्नी कहती है, जो मैंने कहा वही सत्य है, वैसा ही होना चाहिए; अन्यथा हो ही नहीं सकता। पति कहता है, जो मैंने कहा वही सत्य है। वैसा ही होना चाहिए।
और दोनों सोचते हैं कि सत्य के लिए आग्रह कर रहे हैं। दोनों सोचते हैं सत्याग्रह कर रहे हैं। लेकिन आग्रह मात्र असत्य का होता है। सत्य का कोई

आग्रह होता ही नहीं। इसलिए सत्याग्रह बिल्कुल थोथा शब्द है। सत्य का कोई आग्रह नहीं होता, निवेदन होता है। आग्रह तो अहंकार का होता है। दावा तो अहंकार का होता है।
हम सत्य के नाम पर अपने अहंकार का साम्राज्य फैलाते हैं। बाप बेटे से कहता है, कि ऐसा ही है। और अगर बेटा पूछे क्यों? तो कहता है, उलटकर जवाब मत दो। मैं बाप हूं। मैं जानता हूं। जिंदगी ऐसे ही धूप में नहीं पकाई है। ये बाल अनुभव से सफेद हुए हैं। जब तुम भी बड़े होओगे, तब जानोगे। तुम्हारे बाप ने भी तुमसे कहा होगा। तुम बड़े हो गए, जाना कुछ? बड़े होकर इतना ही पता चला कि न बाप को पता था, न तुमको पता है। लेकिन यही तुम अपने बेटे से कह रहे हो कि बड़े हो जाओगे तब जानोगे।
क्या जान लिया बड़े होकर? कौन-सा सत्य, कौन-सी संपदा हाथ लगी? लेकिन बाप का अहंकार कैसे मान ले कि बेटा भी ठीक कह सकता है? पति का अहंकार कैसे मान ले कि पत्नी ठीक कह सकती है? पत्नी का अहंकार कैसे मान ले कि पति ठीक कह सकता है?
अहंकारों का संघर्ष है। सत्यों का कोई संघर्ष नहीं है। तो दुनिया में
जो इतना धर्मों का विवाद है, शास्त्रार्थ है, यह सब अहंकारों का शास्त्रार्थ है, इससे धर्म का कोई लेना-देना नहीं। धर्म तो विनम्र आदमी की खोज है, जो कहता है मुझे पता नहीं। पता ही होता तो मैं खोजता क्या? खोजने को क्या था? मुझे पता नहीं। अज्ञानी हूं। खोज पर निकला हूं। टटोलता हूं। कोई भी बता दे कि सत्य क्या है, तो सुनूंगा, समझूंगा, सदभाव से ग्रहण करूंगा, जांचूंगा, परखूंगा। शायद हो, शायद न हो। अनुभव तय करेगा कि क्या है।
सत्य का खोजी विवादी नहीं होता। सत्यार्थी संवादी होता है, विवादी नहीं।
महावीर कहते हैं, पहला गुणस्थानः मिथ्यात्व। जैसा है उसे वैसा न देखना। जैसा है वैसा दिखाई भी पड़े तो भी पर्दे डाल रखना। जैसा है वैसा अनुभव में भी आने लगे तो अनुभव को भी झुठलाना। न्यस्त स्वार्थ हैं हमारे। तुम अगर न्यस्त स्वार्थों की ओट से ही देख रहे हो तो फिर बड़ी अड़चन है। सत्य साईंबाबा ने कल बंगलोर विश्वविद्यालय के कुलपति और उनकी कमेटी
को जो उत्तर दिया, उसमें उन्होंने कहा, कि कुत्तों के भौंकने से चांद-तारे गिर नहीं जाते। अब थोड़ा सोचने जैसा जरूरी है कि कुत्तों के भौंकने से चांद-तारे आकर ऐसा कहते भी नहीं कि भौंकते रहो, हम गिरेंगे नहीं। इतना कह दिया तो चांद-तारे भौंक गए। इतना कह दिया तो चांद-तारे गिर गए। फिर तय कौन करे कि चांद-तारे कौन हैं और कुत्ते कौन हैं?
सत्य साईंबाबा का यह वक्तव्य थोथे अहंकार का वक्तव्य है। एक तरफ चिल्लाए चले जाते हैं कि सभी के भीतर ब्रह्म का वास है। एक तरफ कहे चले जाते हैं कि सभी के भीतर भगवत्ता विराजमान है। और जहां चोट अहंकार पर पड़नी शुरू होती है वहां तत्क्षण कहने लगते हैं कि कुत्तों के भौंकने से चांद-तारे नहीं गिरेंगे। ये कुत्तों में भगवान नहीं है? कुत्ते यानी कुलपति बंगलोर के! इनमें भगवान नहीं है?
यह उत्तर न हुआ। कुलपति ज्यादा साधु-चरित्र मालूम होते हैं। सीधा-सा निवेदन किया है कि आप जो चमत्कार करते हैं, ये चमत्कार हैं या केवल मदारीगिरी है? इसे हम जानने के लिए आपके निकट आना चाहते हैं। और आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप हमें सत्य को खोजने में सहयोगी बनें।
इसमें कोई कुत्ता भौंका नहीं किसी पर। सत्य के खोजी को तत्क्षण स्वीकार करना चाहिए। अगर सत्य है तो भय क्या? अगर कुलपति और उनके आठ-दस मित्र आकर सत्य साईंबाबा के चमत्कार देखने को उत्सुक हुए हैं, शुभ है। हर्ज कहां है? लेकिन हर्ज मालूम होगा क्योंकि न्यस्त स्वार्थ है, वेस्टेड इंटरेस्ट है। वह चमत्कार इत्यादि कुछ भी नहीं है, मदारीगिरी है। और मदारीगिरी भी अति साधारण कोटि की है। सड़क पर चलते मदारी जो करते हैं वैसी है। कोई भी मदारी कर सकता है, कोई भी व्यवसायी जादूगर कर सकता है; वैसी है।
लेकिन उसी में सारा लाभ है, उसी में सारी प्रतिष्ठा है।

अगर एक बार यह सिद्ध हो गया कि यह राख शून्य से नहीं उतरती। कहीं शरीर
के किसी हिस्से में छिपी रहती है, वहां से उतरती है। एक बार यह सिद्ध हो गया कि ये स्विस घड़ियां जो प्रगट होती हैं, स्विजरलैंड से नहीं आतीं, स्मगलरों से खरीदी जाती हैं। एक बार यह सिद्ध हो गया तो सत्य साईंबाबा की कोई स्थिति नहीं रह जाती। उसी पर तो सारा बल है। तो नाराजगी पैदा होती है। अन्यथा निमंत्रण शुभ था। स्वीकार कर लेना था। धन्यवाद देना था कि उत्सुक हुए, चलो अच्छा है। विश्वविद्यालय भी धर्म में उत्सुक होते हैं तो बहुत अच्छा है। सुशिक्षित, सुसंस्कृत लोग धर्म की तरफ खोज करने निकलते हैं, बहुत अच्छा है। आओ, समझो। खोजें।
सत्य का खोजी तो सहयोग देगा। लेकिन सत्य की यह खोज नहीं है। सत्य साईंबाबा का वक्तव्य असत्य साईंबाबा का वक्तव्य है। यह इसमें सत्यता बिल्कुल नहीं है। और फिर इसमें छिपा क्रोध है, गाली-गलौज है। कुत्ते... ! यह बात ही बेहूदी हो गई। अपने वक्तव्य में उन्होंने इसी तरह की बातें कही हैं, जो सब गाली-गलौज हैं--कि चींटी समुद्र की थाह लेने चली है। कौन समुद्र है, कौन चींटी है? ज्ञानी तो कहते हैं, चींटी भी समुद्र है। क्योंकि ज्ञानी तो कहते हैं, बूंद में भी सागर छिपा है। लेकिन निर्णय कौन कर रहा है कि कौन चींटी और कौन समुद्र है? चलो चींटी ही सही, समुद्र की थाह लेने चली तो साथ दो। बाधा क्या खड़ी करनी? सीढ़ियां लगाओ, नाव तैराओ। चींटी कम से कम इतनी आकांक्षा से भरी यही बहुत है।
लेकिन समुद्र इतना भयभीत क्यों है? चींटी थाह लेने चली इससे समुद्र
डर क्यों रहा है? डर यही होगा कि चींटी थाह ले सकती है। समुद्र बड़ा छिछला मालूम होता है। शायद समुद्र हो ही न, केवल धोखा है। तो क्रोध उपजता है। मिथ्यात्व दृष्टि से भरा हुआ आदमी, विवाद को तत्पर, लड़ने को उत्सुक, क्रोध सहज, अभिशाप देने को तैयार।
ये सत्य साईंबाबा कहते हैं कि शिरडी के साईंबाबा के अवतार हैं। होना
तो नहीं चाहिए, दुर्वासा मुनि के होंगे। अवतार तो जरूर किसी के होंगे, क्योंकि यहां सभी अवतार हैं। लेकिन इनमें कौन कुत्ता है, कौन चींटी है, कौन सागर, कौन चांद-तारा है? हर एक सोच लेता है अपने को ही कि चांद-तारा है, बाकी सब कुत्ते हैं।
इसको भौंकने की तरह क्यों लिया? यह जरूरी तो नहीं है कि बंगलोर का विश्वविद्यालय सत्य साईंबाबा को उखाड़ने के लिए उत्सुक हो। और अगर सत्य है तो उखड़ेगा कैसे? सत्य है तो प्रगट होगा। स्वीकार करो।
तुम्हारी घबड़ाहट ही तुम्हें असत्य किए दे रही है। बचाव क्या करना है? उघाड़ दो। नग्न खड़े होकर चमत्कार दिखा दो। एक बार तय हो जाए तो लाभ ही होगा। एक तरफ सत्य साईंबाबा कहते हैं कि मैं सत्य की सेवा करना चाहता हूं। धर्म में लोगों की श्रद्धा बढ़ाना चाहता हूं। लेकिन इससे और शुभ अवसर क्या मिलेगा कि लोग खुद कहते हैं कि हम प्रमाण खोजने आते हैं। प्रमाणित करो। सिद्ध हो जाएगा कि चमत्कार सच्चे हैं, झूठे नहीं हैं तो बड़ी श्रद्धा बढ़ेगी। ये बंगलोर विश्वविद्यालय के कुलपति और उनकी कमेटी के लोग, ये भी तुम्हारे भक्त हो जाएंगे। इनसे इतने घबड़ा क्या गए हो?
लेकिन असत्य में आग्रह होता है क्योंकि असत्य में न्यस्त स्वार्थ होते हैं। अगर यह बात खुल जाए, अगर यह पोल खुल जाए तो सत्य साईंबाबा का सारा का सारा व्यक्तित्व गिर जाता है। दो कौड़ी के न रह जाएंगे। कुत्ते भी भौंकेंगे नहीं फिर। रास्ते से निकल जाएंगे देखते कि कोई कुत्ता भौंके तो! लेकिन कुत्ते भी इधर-उधर मुंह कर लेंगे। कोई चींटी थाह लेने न आएगी। तो भय है।
मिथ्यात्व हम सबके भीतर संभव है। जहां भी अहंकार जुड़ा कि मिथ्यात्व संभव है। महावीर कहते हैं, मिथ्यात्व हमारी सामान्य स्थिति है। जिसको हम अज्ञानी कहते हैं उसी को महावीर मिथ्यात्वी कहते हैं।
दूसरा चरणः जिस व्यक्ति ने मिथ्यात्व से थोड़ी ऊपर आंख उठाई, ठीक-ठीक श्रद्धान किया, यथार्थ धर्म में रुचि ली, अधर्म में अरुचि की। मिथ्यात्व से भरा व्यक्ति धर्म में अरुचि प्रगट करता है, अधर्म में रुचि लेता है।
हालांकि वह बहाने कई खोजता है, तर्क कई खोजता है।

रामकृष्ण ने कहा है कि एक आदमी काली का बड़ा भक्त था और महीने-पंद्रह दिन में काली के द्वार में जाकर बकरे कटवा देता था। फिर अचानक उसने पूजा बंद कर दी। तो रामकृष्ण ने उससे पूछा, क्या हुआ भक्ति का? तुम तो बड़े भक्त थे और बड़े बकरे कटवाते थे। उसने कहा, अब दांत ही न रहे।
कोई काली के लिए थोड़े ही बकरे कटवाता है! काली तो बहाना है। उस आदमी के दांत गिर गए, खराब हो गए और दांत निकलवाने पड़े। तो अब मांसाहार करने की सुविधा न रही। तो बस पूजा-पत्री बंद!
ख्याल करना, तुम जब मंदिर में पूजा करने बैठे हो तो पूजा कर रहे हो या पूजा के बहाने कुछ और कर रहे हो? तुम अगर साधु-सत्संग में भी गए हो तो सत्य की खोज में गए हो कि वहां भी संसार का ही कुछ खोजने पहुंच गए हो? तुम अक्सर तो पाओगे कि तुम्हारी रुचि धर्म में नहीं है, अधर्म में है। अधर्म से मतलब हैः जिससे तुम सत्य तक न पहुंचो और भटक जाओ। धर्म से अर्थ हैः जिससे तुम सत्य तक पहुंच जाओ।
चमत्कारी व्यक्ति के पास लोग इकट्ठे हो जाते हैं क्योंकि चमत्कारी व्यक्ति के पास आशा बंधती है कि शायद मुकदमा जीत जाएं, शायद जिस स्त्री को भगाने का सोच रहे हों, उसमें सफलता मिल जाए, शायद लाटरी खुल जाए, शायद कुछ हो जाए, इलेक्शन जीत जाएं, प्रधानमंत्री हो जाएं।
इसलिए दिल्ली में जितने राजनेता हैं, सबको सत्य साईंबाबा के भक्त पाओगे। जैसे ही कोई राजनेता पद से उतरता है कि तत्क्षण सत्संग में लग जाता है। तत्क्षण गुरुओं की खोज में निकल पड़ता है। फिर इलेक्शन जीतना, फिर चुनाव लड़ना। फिर किसी का आशीर्वाद चाहिए। यह रुचि धर्म की रुचि नहीं है।
यह रुचि मौलिक रूप से अधार्मिक है।
महावीर कहते हैं इससे उठो, तो पहला कदम उठा।
दूसरा चरण, दूसरा गुणस्थान हैः सासादन।
महावीर कहते हैं इतनी जल्दी, एकदम से न उठ जाओगे। उठते-उठते उठोगे।
बहुत बार तो निकल आओगे इसके बाहर, और फिर-फिर खींचने का मन हो जाएगा। फिर-फिर पुरानी आदतें वापस बुला लेंगी।
सासादन का अर्थ होता है, जो व्यक्ति मिथ्यात्व के बाहर निकलने की चेष्टा में संलग्न है लेकिन पुरानी आदतों के कारण, पुराने कर्मोदय के कारण वापस खींच लिया जाता है। फिर-फिर पुराने राग में रस आने लगता है। क्षणभर को भी सही, बार-बार फिर सोचने लगता है उन्हीं दिनों की बात; जब धन था, पद था, प्रतिष्ठा थी। दिवास्वप्न देखने लगता है।
सासादन का अर्थ है, व्यक्ति मिथ्यात्व के बाहर निकला तो; लेकिन अभी मिथ्यात्व की सूक्ष्म तरंगें उठती हैं। फिर-फिर मूर्च्छा के क्षण में वापस संसार के सपने देखने लगता है। मिथ्यात्व-अभिमुख हो जाता है, यद्यपि साक्षात मिथ्यात्व में प्रवेश नहीं करता।
तो सासादन का अर्थ हुआः सपने संसार के देखता है, यद्यपि बाहर से संसार
से अपने को रोक लिया है।
जैसे कोई आदमी घर छोड़कर त्यागी हो गया। मंदिर में बैठा ध्यान कर रहा है, माला हाथ में है। और सब भूल गया मंदिर और माला, पत्नी की याद आ गई--तो सासादन। मिथ्यात्व से विरत होने की चेष्टा की है। श्रम किया है, मंदिर तक चला आया है, माला हाथ में ले ली, प्रार्थना में लीन है, लेकिन क्षणभर को प्रार्थना खो गई, मंदिर खो गया, माला खो गई, पत्नी सामने खड़ी हो गई। किसी और को दिखाई न पड़ेगी यह स्थिति। यह प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं ही निरीक्षण करनी होगी। बहुत बार सासादन की घटना घटती है।
यहां भी तुम मेरे पास बैठे हो, सुनते-सुनते अचानक घड़ी देखने लगते हो-- सासादन! घड़ी देखी, मतलब कि कहीं अदालत जाना है, कि दफ्तर जाना है; कि संसार की याद आ गई। कई बार तो तुम घड़ी किसी कारण से भी नहीं देखते, सिर्फ पुरानी देखने की आदत से देखते हो। कितना समय हो गया। कितना समय खो गया। इतनी देर संसार में कुछ कर लेते। इतनी देर गंवा दी।
एक लहर मन में आ गई। यह भी स्वाभाविक है। छूटते-छूटते चीजें छूटती हैं। छोड़ते-छोड़ते घटना घटती है। बार-बार पुरानी आदतें पकड़ती हैं। पुराने

राग, पुराने रंग, पुरानी स्मृतियां, पुराने सुख फिर-फिर आह्वान देते हैं, फिर-फिर बुलाते हैं, फिर-फिर निमंत्रण भेजते हैं।
सासादन दूसरा गुणस्थान है। जो हममें से मिथ्यात्व से ऊपर उठने की चेष्टा में लगते हैं उनकी दशा सासादन की है। पहले से बेहतर। कम से कम चलो बाहर से ही सही, छोड़ा तो! बाहर से छोड़ा तो भीतर से भी छूटेगा। इतना होश तो आया कि अब अहंकार का आग्रह न रखेंगे। लेकिन बेहोशी के क्षण आते हैं। उन बेहोशी के क्षणों का नाम सासादन है।
तुमने तय कर लिया, अब क्रोध न करेंगे। और किसी आदमी का पैर बाजार की भीड़ में तुम्हारे पैर पर पड़ गया। उस एक क्षण में तुम भूल ही गए कि तुमने तय कर लिया था अब क्रोध न करेंगे। याद ही न आयी। क्रोध हो ही गया। या न भी हुआ, उस आदमी से तुमने कुछ न भी कहा, तो भी तुम्हारे भीतर क्रोध झलक गया। एक क्षण को भीतर लपट उठ गई।
तो पहले मिथ्यात्व से मुक्त होना है, फिर सासादन के भी पार जाना है। तीसरी अवस्था हैः मिश्र। सम्यकत्व एवं मिथ्यात्व की मिश्रित स्थिति।
कुछ-कुछ सत्य की झलक बनने लगती है। कुछ-कुछ सत्य का अवतरण होने लगता है और कुछ-कुछ अतीत संस्कारों के कारण असत्य का अंधेरा भी घिरा रहता है।
जैसे दीया जलाते हो, छोटा-सा टिमटिमाता दीया। एक कोने में रोशनी भी हो जाती है, बाकी कमरा अंधेरा भी बना रहता है--मिश्र, खिचड़ी अवस्था। सम्यकत्व एवं मिथ्यात्व की मिश्रित अवस्था; दही और गुड़ के मिश्रित स्वाद जैसी। ऐसा जैन शास्त्र दृष्टांत लेते हैं--दही और गुड़ के मिश्रित स्वाद जैसी।
जो सासादन के पार जाता है उसकी मिश्र अवस्था बनती है। बहुत लोग मिश्र अवस्था में होते हैं। निन्यानबे प्रतिशत तो मिथ्यात्व में जीते हैं, फिर बाकी तेरह गुण-स्थान तो एक प्रतिशत के हैं। इनमें से भी बहुत-से सासादन में ही डोलते रहते हैं--त्रिशंकु की भांति। उनमें से कुछ मिश्र तक आते हैं। दोनों चीजें भीतर होती हैं। सीमारेखा भी साफ होती है, लेकिन दोनों साथ-साथ होती हैं। धर्म-बोध भी होता है, अधर्म में रस भी होता है। पता भी होता है कि क्या ठीक है, और फिर भी गलत के बंधन नहीं छूटते।
महावीर बहुत वैज्ञानिक ढंग से आगे बढ़ रहे हैं। वे तुम्हारे चित्त का एक-एक स्पष्ट विश्लेषण कर रहे हैं ताकि तुम पहचान लो कहां तुम हो, और फिर किस तरफ जाना है।
चौथा गुणस्थान हैः अविरत सम्यकदृष्टि। साधक की चतुर्थ भूमि; जिसमें बोध हो जाने पर भी भोगों अथवा हिंसा आदि पापों के प्रति विरक्त भाव जाग्रत नहीं हो पाता।
बोध भी हो जाता है, एक दृष्टि भी मिल जाती है। ठीक-ठीक समझ में आ जाता है, क्या करने योग्य है, क्या न करने योग्य है, लेकिन अभी निर्णय नहीं होता। राग, लोभ, मोह, हिंसा, अहंकार के प्रति अभी वैराग्य का जन्म नहीं होता। ऐसा नहीं होता कि अब छोड़ ही दें। दिखता है कि ठीक क्या है, लेकिन जो दिखता है वह आचरण नहीं बन पाता। प्रतीति होती है, साफ-साफ प्रतीति होती है कि सत्य बोलें। सत्य ही शुभ है। लेकिन असत्य का पूर्ण त्याग कर दें, इतना साहस नहीं जुट पाता। यह जानना कि क्या सत्य है, एक बात है; और सत्यमय हो जाना बिल्कुल दूसरी बात है। यह पहचान लेना कि ठीक रास्ता कौन-सा है एक बात है, फिर उस पर चल पड़ना बिल्कुल दूसरी बात है।
अविरत सम्यकदृष्टि का अर्थ हैः जो खड़ा हो गया। पुराने रास्ते पर जा
भी नहीं रहा है, नए का दर्शन भी होने लगा है लेकिन ठिठका खड़ा है। नए पर जा नहीं पाता क्योंकि नए पर जाना हो तो पुराने का परिपूर्ण त्याग चाहिए। तुम दोनों एक साथ नहीं सम्हाल सकते। एक को छोड़ना होगा।
इसमें से तुम अपने भीतर बहुत बार ऐसा ही पाओगे। मेरे पास लोग आते हैं,
वे कहते हैं, हमें पता है कि क्रोध बुरा है। पता है कि कामवासना रोग है। पता है कि लोभ से कुछ न मिला, न मिलेगा। पता है खाली हाथ आए हैं, खाली हाथ जाएंगे। फिर भी वैराग्य का जन्म नहीं हो रहा है।

कम से कम एक बात तो साफ है कि वे अपने को साफ देख पा रहे हैं; जो कि काफी बहुमूल्य है। दृष्टि तो साफ है। दृष्टि साफ है तो आचार भी उसके पीछे-पीछे चला आएगा। दृष्टि ही साफ न हो तो आचरण के जन्मने का उपाय ही नहीं।
लेकिन दृष्टि ही साफ किए मत बैठे रहना। क्योंकि जो अभी साफ है, कल धुंधली हो सकती है। अगर आचरण में न लाई गई तो ज्यादा देर साफ न रहेगी। दृष्टि जब मिले तो तत्क्षण साहस करके उसको आचरण में लाना क्योंकि दृष्टि के क्षण बड़े कम हैं। कभी-कभी बिजली कौंध जाती है और रास्ता दिखाई पड़ता है। उस क्षण में चल पड़ना, ऐसे खड़े मत रह जाना। क्योंकि बिजली अभी कौंधी, सदा न कौंधेगी। कल कौंधेगी कि न कौंधेगी क्या पता! जो पहली झलकें आती हैं, वे बिजली की कौंध की तरह हैं, उन कौंध का उपयोग कर लेना। उपयोग करने से बिजली और कौंधेगी। चल पड़े तो दृष्टि और निखरेगी। करने से ही दृष्टि का निखार होता है। सिर्फ सोचते रहने से धारणाएं साफ हो जाती हैं, लेकिन जीवन उलझा का उलझा रह जाता है।
दृष्टि के साफ होने का मामला ऐसा है कि तुम एक पाकशास्त्र लिए बैठे हो
और भूखे हो। और पाकशास्त्र में सब लिखा है। रत्ती-रत्ती ब्यौरा दिया है कैसे भोजन बनाना। भोजन की सामग्री भी मौजूद है। आटा मौजूद है, पानी मौजूद है, नमक मौजूद है, चूल्हा जला हुआ है। तुम पाकशास्त्र लिए बैठे हो। इससे भूख मिटेगी नहीं। इससे कुछ हल न होगा।
बहुत लोग शास्त्र लिए बैठे हैं। शास्त्र की चर्चा में लीन हैं। जनम-जनम गंवाते हैं लेकिन कभी उसका उपयोग नहीं करते। भूखे के भूखे रह जाते हैं। फिर भूख भी नहीं मिटती, तो धीरे-धीरे भूख विस्मृत होने लगती है।
यह काफी मूल्यवान है। इस सूचन को ख्याल में रखना। अगर तुम उपवास करो
तो तीन-चार दिन के बाद भूख लगनी बंद हो जाती है। तीन दिन सताती है। रोज-रोज तुम्हारे द्वार पर दस्तक देती है। तुम सुनते ही नहीं तो धीरे-धीरे शरीर राजी हो जाता है कि ठीक है, शायद तुमने आत्महत्या ही का तय कर लिया है, तो ठीक है। शरीर भी क्या करेगा? धीरे-धीरे, धीरे-धीरे भूख भूल जाती है। जो लोग लंबे उपवास करते हैं, उनको एक अड़चन होती है उपवास तोड़ने में, अब कैसे भोजन ग्रहण करें? क्योंकि शरीर भूल ही गया। बहुत देर तक भूखे बैठे-बैठे, शास्त्र लिए-लिए भूख विस्मृत हो जाती है।
बहुत लोगों की परमात्मा की भूख मर गई है। इतने दिन परमात्मा से उपवास किया है, मर ही जाएगी। परमात्मा की भूख मर गई हो तो बड़ी कठिनाई हो जाती है। ऐसे ही लोग कहते हैं कि परमात्मा मर गया। मरी है उनकी भूख। लेकिन ठीक ही कहते हैं। जिसकी भूख मर गई उसका भोजन भी मर गया। भोजन तो तभी तक रसपूर्ण है जब तक भूख है। भूख में रस है भोजन का। भूख न लगी हो, सुस्वादु से सुस्वादु भोजन रखा रहे तो भी मन में कोई तरंग नहीं आती। अगर भूख बिल्कुल मर गई हो तो भोजन भोजन जैसा भी मालूम न पड़ेगा। भोजन भोजन जैसा लगता है भूख के कारण। भूख की व्याख्या है; अन्यथा भोजन भोजन जैसा न लगेगा।
परमात्मा नहीं मर गया है, अनेक लोगों की भूख मर गई है। और भूख मरने का कारण यही है कि भूख को जिलाने के लिए भी भोजन चाहिए। भूख भी भूखी रहे तो मर जाती है।
कुछ करो। जो दृष्टि मिले उसके अनुसार दो पग चलो। जो अनुभव में आए उसे थोड़ा आचरण में डालो।
जो तुम्हें दिखाई पड़े कि ठीक है, बस इसको मानकर सैद्धांतिक रूप से मत बैठे रहो, अन्यथा ज्यादा देर दिखाई भी न पड़ेगा। फिर धुंध छा जाएगी। फिर मन धुएं से घिर जाएगा। थोड़े चलो। थोड़े आगे बढ़ो। जैसे-जैसे आगे बढ़ोगे वैसे- वैसे ज्यादा स्पष्ट दर्शन होंगे।
तो महावीर कहते हैं अविरत सम्यकदृष्टिः चतुर्थ भूमि। इसमें बोध तो हो जाता है, होने लगता है लेकिन भोगों और हिंसा आदि पापों से विरति का भाव जाग्रत नहीं होता।
पांचवां गुणस्थानः देशविरत। अब संयम का क्षेत्र शुरू हुआ। अब जो तुम्हें दिखाई पड़ता है उसे तुम आचरण में उतारने लगे। बहुत ज्यादा जानने की जरूरत नहीं है। थोड़ा जानो, लेकिन उस थोड़े को उतारो। हजार मील लंबे शास्त्र का कोई सार नहीं, इंचभर शास्त्र--लेकिन उतारो, चलो। चलने से

रास्ते तय होते हैं। बैठे-बैठे सोचने से कोई रास्ते तय नहीं होते। विचार करनेवाले कहीं भी नहीं पहुंचते। अस्तित्वगत है पहुंचना, विचारगत नहीं।
बौद्धिक नहीं है, जीवनगत है।
देशविरत का अर्थ होता है, जिसने अपने जीवन में अब सीमा बनानी शुरू की। जिसने अपने जीवन को परिधि देनी शुरू की। जिसने अपने जीवन में जो व्यर्थ है उसे हटाना, जो सार्थक है उसे लाना शुरू किया। जिसने कहा, अब मैं यूं ही ऊलजलूल, असंगत न जीयूंगा। कभी बायें गए, कभी दायें गए, कभी दक्षिण गए, कभी पूरब गए, कभी पश्चिम गए, ऐसे चल-चलकर कहीं कोई पहुंचेगा? सब दिशाओं में दौड़ते रहे तो विक्षिप्तता आएगी।
देशविरत का अर्थ होता है दिशा तय हुई, देश तय हुआ, सीमा बांधी, संयम में उतरे। अब जो करने योग्य है वही करेंगे, जो करने योग्य नहीं है, नहीं करेंगे। अब कर्तव्य में ही रस होगा, अकर्तव्य में धीरे-धीरे विरसता को लाएंगे। सीमा दी जीवन को, दिशा दी। और सारी ऊर्जा एक दिशा में डाली।
जैसे शरीर, मन, वचन--तीनों असंयमी के सभी दिशाओं में भागते रहते हैं। संयमी और असंयमी में इतना ही फर्क है कि असंयमी सभी दिशाओं में एक साथ भागता रहता है, इसलिए उथला रह जाता है।
जैसे कि किसी तालाब को तुम सभी दिशाओं में खोल दो, सभी दिशाओं में पानी बह जाए, तो जहां बड़ी गहराई थी और नीला जल दिखाई पड़ता था, वहां सब छिछला पानी हो जाएगा। अगर बहुत फैल जाए तो कीचड़ ही रह जाएगी। तालाब तो खो ही जाएगा।
संयम का अर्थ है, संरक्षित ऊर्जा। महावीर का पारिभाषिक शब्द है-- देशविरत। सीमा बनाई, देश बनाया। हर कहीं न भागते रहे। अपने जीवन को संयत किया, संगृहीत किया। अपनी ऊर्जा को एक जगह भरा तो गहराई आनी शुरू होती है। असंयमी आदमी छिछला होता है। आवाज बहुत करता है, जैसा छिछला जल करता है। जहां छिछली नदी होती है वहां बड़ा शोरगुल मचता है। कंकड़-पत्थरों पर दौड़ती है, बड़ा शोरगुल मचाती है। नदी जितनी गहरी होती है उतना ही शोरगुल कम हो जाता है। गहरी नदी पता ही नहीं चलता कि बहती भी है कि नहीं बहती? गति बड़ी शांत हो जाती है।
देशविरतः संयम, सीमा का बांधना, कर्म और विचार को परिधि देना। इसे तुम थोड़ा सोचना।
तुम जो विचार करते हो उसमें से निन्यानबे प्रतिशत न करो तो चलेगा।
उसमें से निन्यानबे प्रतिशत सिर्फ व्यर्थ है, शुद्ध कचरा है, कचरा मात्र।
उसमें कुछ भी और नहीं है लेकिन तुम्हारी ऊर्जा तो व्यय होती ही है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि आदमी अपनी ऊर्जा का पंद्रह प्रतिशत से ज्यादा उपयोग ही नहीं कर पाता। पचासी प्रतिशत ऐसे ही खो जाती है। जिनके जीवन में तुम्हें कुछ घटनाएं घटती दिखाई पड़ती हैं, कोई आइंस्टीन, कोई फ्रायड, जो जीवन में बड़े सत्यों की खोज कर लाते हैं--चाहे विज्ञान के, चाहे मन के, चाहे धर्म के; उनमें और तुममें फर्क क्या है? ऊर्जा सबको बराबर मिली है, समतौल में मिली है, लेकिन तुम ऊर्जा को ऐसे ही बहाते रहते हो।
एक वैज्ञानिक अपनी ऊर्जा को संयमित कर लेता है। वह सोचता तो अपनी ही विज्ञान की बात सोचता है। सपना भी देखता है तो अपने ही विज्ञान का सपना देखता है।
मैडम क्यूरी को नोबेल प्राइज मिली सपने के कारण। जो हल किया सूत्र, वह उसने सपने में किया। जाग्रत रूप से तो वह तीन साल से हल कर रही थी, वह हल नहीं होता था। लेकिन सोते-जागते एक ही उधेड़-बुन थी। बस जगत में एक ही काम थाः उस सूत्र को हल करना। गणित का कोई सवाल था, जो अटका रहा था तीन साल से। जिस रात हल हुआ, उस रात वह सोयी, सोचते-सोचते-सोचते-सोचते उसी प्रश्न के मनन में, मंथन में डूबी सो गई। लगता है सपने में हल हुआ। नींद में मालूम होता है, उठी। उत्तर उसे मिल गया तो जाकर वह टेबल पर लिख भी आयी। वापस सो गई आकर।
सुबह जब आंख खुली तो उसे याद भी न रहा। सपना याद न रहा, उठना याद न रहा, लेकिन जब वह अपने टेबल पर गई तो चकित हुई। उत्तर लिखा था। हस्ताक्षर भी उसी के थे। कमरे में कोई दूसरा था भी नहीं। और दूसरा कोई होता भी तो भी हल

नहीं कर सकता था। मैडम क्यूरी नहीं कर पा रही थी तीन साल से। तब उसे धीरे- धीरे याद आयी कि रात सपना... । सपने के फिर ब्यौरे का पता चला, फिर उसे स्मरण आया कि सपने में ही उसने देखा कि वह उठी भी थी। समझा था कि सपने का ही अंग है उठना भी। और टेबल पर लिखना भी सपने जैसा मालूम हुआ था। तब सारी बात साफ हो गई।
वैज्ञानिक अपनी सारी ऊर्जा को एक ही दिशा में लगा देता है। तभी तो प्रकृति के गहन सत्यों को खोज के लाता है। डुबकी गहरी लगाता है। ऐसे ही जल के ऊपर सतह पर नहीं तैरता रहता, डुबकी मारता है। गहरे में जाता है। सारी ऊर्जा एक ही दांव पर लगाता है।
ऐसा ही ध्यानी भी--महावीर, या बुद्ध, या कृष्ण, या पतंजलि गहरी डूब लेते हैं तो हीरे-मोती बीन लाते हैं। हमारे पास भी उतनी ही ऊर्जा है। ऊर्जा की मात्रा में जरा भी फर्क नहीं। जितनी महावीर को मिली उतनी तुम्हें मिली है। प्रकृति सबको बराबर देती है, मगर सभी बराबर उपयोग नहीं करते।
जीसस एक कहानी कहते थे। एक बाप के तीन बेटे थे। तीनों योग्य थे, बुद्धिशाली थे। और बाप तय न कर पाता था कि किसको अपना उत्तराधिकारी बना जाए। बड़ा धन था, बड़ी जमीन थी, बड़ा वैभव था। बाप चिंतित था, किसको चुने।
फिर उसने एक उपाय खोजा। उसने एक बोरे भर फूलों के बीज तीनों बेटों में बांट दिए और कहा कि मैं तीर्थयात्रा पर जा रहा हूं। जो बीज मैं तुम्हें दे जा रहा हूं, सम्हालकर रखना। इन पर बहुत कुछ निर्भर है। तुम्हारा भविष्य इन्हीं पर निर्भर है। इन्हीं के माध्यम से मैं अपने उत्तराधिकारी को चुनूंगा। इसलिए किसी भूल-चूक में मत रहना। मैं लौटकर आऊंगा तो बीज वापस चाहिए। बाप चला गया।
पहले बेटे ने सोचा कि बड़ी झंझट है। बीज घर में रखें, चूहे खा जाएं, सड़ जाएं, बच्चे इधर-उधर फेंक दें। तो बेहतर यह है कि बाजार में बेच देना चाहिए। पैसे पास में रख लेंगे सम्हालकर। जब बाप आएगा, फिर बीज खरीद लेंगे, दे देंगे। सीधी गणित की बात थी।
दूसरे बेटे ने सोचा कि बाप ने कहा है बीज वापस लौटाना, तो वह यही बीज चाहता होगा। कहीं बाजार में बेचें, दूसरे बीज फिर बाद में खरीदें और बाप कहे, ये तो वे बीज नहीं हैं। तो हम मुश्किल में पड़ जाएंगे। तो उसने तिजोड़ी में बंद करके ताला बंद कर दिया। चाबी सम्हालकर रख ली कि जो दिए हैं, वही लौटा देंगे। झंझट में पड़ना क्यों?
तीसरे बेटे ने सोचा कि बीज बाजार में बेच दें तो वही बीज तो होंगे नहीं, जो पिता दे गए। धोखा होगा। तिजोड़ी में बंद करना? पिता पता नहीं कब आएं--छह महीने, सालभर, दो साल। तिजोड़ी में बीज अगर सड़ गए तो राख रह जाएगी। तो उसने सोचा बेहतर है, इन्हें बो दो। उसने बीज बो दिए।
जब सालभर बाद पिता वापस लौटा तो पहले बेटे ने लाकर बाजार से तत्क्षण बीज वापस लौटा दिए। लेकिन बाप ने कहा, ये वे बीज नहीं हैं, जो मैंने तुम्हें दिए थे। शर्त यही थी कि वही लौटाने हैं। दूसरा बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने जल्दी से तिजोड़ी खोली। जिन बीजों से बड़े सुगंध वाले फूल पैदा होते थे वे सब सड़ गए थे। उनसे सिर्फ दुर्गंध आ रही थी। बाप ने कहा, मैंने तुम्हें बीज दिए थे। ये तो बीज न रहे, राख हो गई। बीज का तो अर्थ है, जिसमें पौधा पैदा हो सके। क्या इनमें पौधा पैदा हो सकता है? और मैंने तुम्हें सुगंध की संभावना दी थी, और तुम दुर्गंध लौटा रहे हो। मैंने तुम्हें जीते-जागते बीज दिए थे, तुम मुझे मुर्दा राख लौटा रहे हो? यह शर्त पूरी न हुई।
तीसरे बेटे से पूछा। बाप बड़ा चिंतित भी हुआ कि क्या तीनों अयोग्य सिद्ध होंगे? तीसरे बेटे ने कहा, मैं मुश्किल में हूं। जो बीज आप दे गए थे वे मैंने बो दिए। उनकी जगह करोड़ गुने बीज हो गए हैं। क्योंकि मैंने सोचा जितना पिता दे गए हैं, उतना भी क्या लौटाना! उतना ही लौटाना तो कोई योग्यता न होगी। बाजार में मैं बेच न सका क्योंकि ये वे बीज दूसरे होंगे। दूसरे मेरे भी बीज हैं लेकिन आप जो बीज दे गए थे, उनकी ही संतान हैं; उन्हीं का सिलसिला है, उन्हीं की शृंखला है। लेकिन जितने आप दे गए थे, मैं उतने ही

लौटाने में असमर्थ हूं क्योंकि मैंने कभी गिनती नहीं की। करोड़ गुने हो गए हैं। आप सब ले लें।
बाप पीछे गया भवन में। दूर-दूर तक फूल ही फूल खिले थे। बीज ही बीज भरे थे। बाप ने कहा, तुम जीत गए। तुम मेरे उत्तराधिकारी हो। क्योंकि वही बेटा योग्य है, जो संपदा को बढ़ाए, जो संपदा को जीवित रखे, जो संपदा को फैलाए, जो संपदा को और मूल्यवान करे।
हम सभी को बराबर ऊर्जा मिली है, बराबर बीज मिले हैं। कोई महावीर उसे खिला देता है, परमात्म-स्थिति उपलब्ध हो जाती है। कोई बुद्ध कमल बन जाता है। और हम ऐसे ही सिकुड़े-सिकुड़े या तो बाजार में बिक जाते हैं--अधिक तो हम बाजार में बिक जाते हैं या तिजोड़ियों में सड़ जाते हैं। जो कर्मठ हैं बहुत, वे बाजार में बिक जाते हैं, जो सुस्त, काहिल हैं वे तिजोड़ियों में सड़ जाते हैं। लेकिन जीवन की इस ऊर्जा का फैलाव हमसे नहीं हो पाता।
महावीर कहते हैंः देशविरत का अर्थ है, जिसने अपनी सारी ऊर्जा को एक दांव पर लगाया। जिसकी ऊर्जा तीर बनी और लक्ष्य की तरफ जिसने अपनी प्रत्यंचा को साधा। देशविरतः लक्ष्य दिया, दिशा दी, मर्यादा बांधी। जो व्यर्थ करता नहीं, व्यर्थ बोलता नहीं, व्यर्थ सोचता नहीं। जिसका सारा जीवन एक संगति है। और प्रत्येक कदम दूसरे कदम से जुड़ा है। और जिसके जीवन में एक मर्यादा है।
अगर नदी बनना हो तो किनारा चाहिए। तो सागर तक पहुंच सकोगे। अगर किनारे छोड़कर बहने लगे, मर्यादा टूट गई तो सागर तक कभी न पहुंच सकोगे। किसी मरुस्थल में खो जाओगे। सागर तक पहुंचने के लिए नदी को किनारे में बंधे रहना जरूरी है।
देशविरत का अर्थ है, किनारों में बंधा हुआ व्यक्तित्व।
छठवां गुणस्थान हैः प्रमत्तविरत। संयम के साथ-साथ मंद रागादि के रूप में प्रमाद रहता है। संयम तो आ गया, अनुशासन आ गया, लेकिन जन्मों-जन्मों तक जो हमने राग किया है, मोह किया है, लोभ किया है, उसकी मंद छाया रहती है। एकदम चली नहीं जाती। हम उसके ऊपर उठ आते हैं, लेकिन हमारे अचेतन में दबी मंद छाया रहती है। हम ऊपर से क्रोध नहीं भी करते तो भी क्रोध की तरंगें भीतर अचेतन में उठती रहती हैं। हम लोभ नहीं भी करते। हम नियंत्रण कर लेते हैं, लेकिन भीतर अचेतन लोभ के संदेश भेजता है।
कहते हैं भर्तृहरि ने सब राज्य छोड़ दिया, वे जंगल में जाकर बैठ गए। बड़े अनूठे व्यक्ति थे। पहले लिखा शृंगार शतक--जीवन के भोग का काव्य। जीवन के भोग की जैसी स्तुति हो सकती है वैसी भर्तृहरि ने की। कोई और फिर कभी उनके साथ मुकाबला न कर पाया। कोई और उन्हें पीछे न कर पाया। फिर लिखा वैराग्य शतक। पहले राग की स्तुति की, फिर वैराग्य की स्तुति की। अक्सर ऐसा होता है, जो राग को ठीक से जीएगा, वह किसी न किसी दिन वैराग्य को उपलब्ध हो जाएगा। जो शृंगार शतक से ठीक से गुजरेगा, वह वैराग्य शतक को उपलब्ध होगा। भर्तृहरि ने सब छोड़ दिया, वे जंगल में बैठे--सब बड़ा साम्राज्य, धन-वैभव, मणि-माणिक्य। अचानक आंख खुली, दो घुड़सवार सामने की ही पगडंडी पर घोड़ों को दौड़ाते हुए आए। आंख खुल गई। ध्यान में बैठ थे, ध्यान टूट गया। देखा, सामने एक बड़ा बहुमूल्य हीरा पड़ा है रास्ते में। उठे नहीं, मन उठ गया। गए नहीं हीरा उठाने को, मन ने उठा लिया। एक झलक भीतर कौंध गई कि उठा लूं। ऐसा नहीं कि शब्द भी बने। ऐसा भी जरूरी नहीं है कि ऐसा सोचा कि उठा लेना चाहिए। नहीं, बस एक झलक कौंध गई, एक कंपन भाव का हो गया, उठा लूं। सजग हो गए, झकझोर दिया अपने को कि अरे! इतना सब छोड़कर आया, इससे बड़े बहुमूल्य हीरे छोड़कर आया तब मन में यह वासना न उठी और आज अचानक यह उठ गई?
चेतन से तुम छोड़ दो, अचेतन इतनी जल्दी नहीं छूट जाता। सम्हलकर बैठ गए, लेकिन एक बात तो ख्याल में आ गई कि अभी भीतर सूक्ष्म राग पड़े हैं। बड़े गहरे में होंगे। उनकी आवाज भी अब मन तक नहीं पहुंचती, लेकिन मौजूद हैं, तलघरे में पड़े हैं। ऊपर तुम्हारे बैठकखाने तक उनकी कोई खबर भी नहीं आती लेकिन तलघरा भी तुम्हारा ही तुम्हारे ही बैठकखाने के नीचे है।
जिसको मनोवैज्ञानिक अनकांशस कहते हैं, अचेतन मन कहते हैं, महावीर उसी स्थिति की बात कर रहे हैं, प्रमत्तविरत। संयम के साथ-साथ मंद रागादि के

रूप में प्रमाद रहता है। अभी बेहोशी है। होश ऊपर-ऊपर है। जैसे बर्फ की चट्टान पानी में तैरती है तो एक हिस्सा ऊपर होता है, नौ हिस्से नीचे पानी में डूबी होती है।
तो होश ऊपर-ऊपर है बर्फ की चट्टान की तरह। नौ हिस्सा बेहोशी नीचे है। दिखाई नहीं पड़ती किसी को, लेकिन स्वयं व्यक्ति को समझ में आती है। और जितना होश बढ़ता है उतनी ही ज्यादा समझ में आती है। शायद तुम बैठे होते भर्तृहरि की जगह तो तुम्हें पता भी न चलता। लेकिन बड़ी निर्मल आत्मा रही होगी। शब्द भी न बना, और लहर पकड़ में आ गई कि भाव हो गया। थोड़ा-सा मैं कंप गया हूं। कोई भी न पहचान पाता। सूक्ष्म से सूक्ष्म यंत्र भी शायद न पकड़ पाते कि कंपन हुआ है। क्योंकि कंपन बड़ा ना के बराबर था। जैसे शून्य में जरा-सी लहर उठी। लेकिन भर्तृहरि पहचान गए।
वे जो दो घुड़सवार आए, उन दोनों की नजर भी एक साथ उस हीरे पर पड़ी। दोनों
ने तलवारें निकालीं और दोनों ने कहा, पहले नजर मेरी पड़ी है। भर्तृहरि बैठे देख रहे हैं। एक क्षण भी न लगा, वे तलवारें एक-दूसरे की छाती में चुभ गईं। हीरा अपनी जगह पड़ा रहा, जहां दो जिंदा आदमी थे वहां दो लाशें गिर गईं। भर्तृहरि ने आंखें बंद कर लीं। वे मुस्कुराए होंगे कि हद्द हो गई! हीरा अपनी जगह पड़ा है। दो आदमी आए और चले गए।
सब हीरे पड़े रह जाते हैं। सब जो यहां मूल्यवान मालूम पड़ता है, पड़ा रह जाता है। हम आते हैं और चले जाते हैं। और अक्सर हम एक-दूसरे की छाती में छुरे भोंक जाते हैं। हम उसके लिए बड़े दुख दे जाते हैं, बड़े दुख उठा जाते हैं, जो हमारा कभी नहीं हो पाता। जो हमारा हो नहीं सकता है।
सातवांः अप्रमत्तविरत। सप्तम भूमि, जहां किसी प्रकार का भी प्रमाद प्रगट नहीं होता। इतनी हलकी झलक भी जहां नहीं रह जाती। प्रगट नहीं होती। किसी तरह की अभिव्यक्ति नहीं होती। सूक्ष्मतम अभिव्यक्ति भी शून्य हो जाती है मूर्च्छा की, अहंकार की, प्रमाद की।
इसी अवस्था में कोई व्यक्ति साधु बनता है। इस अवस्था में आकर ही साधुता का आविर्भाव होता है। चौदह गुणस्थानों में यह सातवां है। मध्य में आकर खड़े हो गए। आधी यात्रा पूरी हुई। जिसने सातवें को पा लिया हो वही साधु है।
अक्सर जिनको तुम साधु कहते हो वे सातवें तक पहुंचे हुए लोग नहीं होते। उनमें से कुछ तो पहले में ही अटके होते हैं। उनमें से कुछ दूसरे में अटके होते हैं। सातवें तक पहुंचना भी कठिन मालूम होता है। क्योंकि सातवें का अर्थ है, भीतर दीया पूरी तरह जल गया, अब कोई अंधकार नहीं है। अब कोई अभिव्यक्ति नहीं होती किसी राग की।
आठवांः अपूर्वकरण। साधक की अष्टम भूमि, जिसमें प्रविष्ट होने पर जीवों के परिणाम प्रतिसमय अपूर्व-अपूर्व होते हैं। सातवें में व्यक्ति साधु बन जाता है। आठवें में घटनाएं घटनी शुरू होती हैं। सातवें तक साधना है, आठवें से अनुभव आने शुरू होते हैं। सातवें तक तैयारी है, आठवें से प्रसाद बरसना शुरू होता है।
प्रतिपल अपूर्व-अपूर्व अनुभव होते हैं, जैसे कभी न हुए थे। ऐसी सुगंधें आसपास डोलने लगती हैं जैसी कभी जानी न थीं। ऐसी मधुरिमा कंठ में घुलने लगती है जैसी कभी जानी न थी। ऐसे जीवन की पुलक अनुभव होती है, जिसकी कोई मृत्यु नहीं हो सकती। अमृत का स्वाद मिलता।
सातवें तक तैयारी है। पात्र तैयार हुआ। आठवें में वर्षा शुरू होती है। कबीर कहते हैं, बादल गहन-गंभीर होकर घिर गए। अमृत बरस रहा है। दादू कहते हैं, हजार-हजार सूरज निकल आए ऐसी रोशनी है, कि अंधेरे को खोजो भी तो कहीं मिलता नहीं। मीरा कहती है, पद घुंघरू बांध नाची।
ये आठवें की घटनाएं हैं--अपूर्वकरण। यहां अनूठे संगीत का जन्म होता है। यही घड़ी है जहां झेन फकीर कहते हैं, एक हाथ की ताली बजती है। अपूर्व--जो हो नहीं सकता ऐसा होता है। जो कभी हुआ नहीं ऐसा होता है। जिसको कहा नहीं जा सकता ऐसा होता है। जिसको बताने का कोई उपाय नहीं। गूंगे का गुड़। गूंगे केरी सरकरा।

इस घड़ी में आदमी बड़े आनंद में लीन होने लगता है। और प्रतिपल नया-नया होता जाता है। द्वार के बाद द्वार खुलते चले जाते हैं, पर्दे के बाद पर्दे उठते चले जाते हैं। सात तक तुम साधो, आठ के बाद घटता है।
अपूर्वकरणः नाम भी महावीर ने ठीक दिया। पहले जैसा नहीं हुआ, कभी नहीं हुआ। और जब तुम्हें पहली दफा होता है तभी तुम्हें भरोसा भी आता है। कि महावीर हुए होंगे कि बुद्ध हुए होंगे, कि कबीर ठीक कहते हैं। तुम गवाही बनते हो। आठवें पर तुम्हारी गवाही पैदा होती है। आठवें के पहले तुम जो सिर हिलाते हो वह बहुत सार्थक नहीं है। आठवें के पहले तुम कहते हो हां, ठीक लगती है बात। बस, वह लगती ही है। तर्क से लगती होगी, संस्कार से लगती होगी। बार-बार सुनी है, पुनरुक्ति से लगती होगी। या तुम्हारे भीतर वासना है, आकांक्षा है कि ऐसा घटे, इसलिए तुम मान लेते होओगे कि हां, घटता है।
लेकिन आठवें पर पता चलता है। आठवें पर तुम दस्तखत कर सकते हो कि हां, महावीर हुए, कि बुद्ध हुए, कि जीसस हुए। कि इन्होंने जो भी कहा है, ठीक कहा है। क्योंकि अब तुम्हारे अनुभव में आ रही बात। अब अस्तित्वगत प्रमाण मिल रहा है।
अपूर्वकरण की स्थिति में ही कोई कह सकता है, आत्मा है। अपूर्वकरण की स्थिति में ही कोई कह सकता है कि परमात्मा है। अपूर्वकरण की स्थिति में ही कोई कह सकता है, समाधि है। इसके पहले सब तर्कजाल है। इसके बाद ही अनुभव के स्रोत खुलने शुरू होते हैं।
प्रतिसमय अपूर्व-अपूर्व। तब कुछ भी जीवन में जड़ता जैसी नहीं रह जाती। यंत्रवत कुछ भी नहीं रह जाता। जैसे तुम प्रतिक्षण मरते हो और प्रतिक्षण जन्मते हो। जैसे पुराना मर जाता है हर क्षण और नए का आविर्भाव होता है।
जैसे प्रतिपल पुराने की धूल उड़ जाती है और तुम्हारा दर्पण फिर नया हो जाता है।
जिसको बौद्धों ने क्षण-क्षण जीना कहा है, वह अपूर्वकरण की स्थिति है। जिसको कृष्णमूर्ति कहते हैं, मरो अतीत के प्रति, ताकि भविष्य का जन्म हो सके। छोड़ो अतीत को, पकड़ो मत, ताकि अपूर्व घट सके।
यह अपूर्वकरण ध्यान का पहला स्वाद है। यहां से तुम दूसरे लोक में प्रविष्ट हुए। यहां से दूसरी दुनिया शुरू हुई। ऐसा समझो, अपूर्वकरण है, जैसा कि कोई यात्री नाव में बैठे नदी के इस किनारे से और नाव चले, तो मध्य तक तो पुराना किनारा ही दिखाई पड़ता रहता है--सातवें तक। नए किनारे का पता नहीं चलता। दूसरा किनारा अभी धुंध में छिपा है दूर। आठवें से, पुराना किनारा तो दिखाई पड़ना बंद होने लगता है, नया किनारा दिखाई पड़ना शुरू होता है। आठवें से पुराना तो धुंध में छिप जाता और नए का आविर्भाव होता है। आठवां, साधु के जीवन में आत्मा का जन्म है। आठवां, अंधेरे में प्रकाश का अवतरण है। आठवां, मरुस्थल में अमृत की वर्षा है--अपूर्वकरण।
और फिर ऐसा नहीं है कि वही-वही अनुभव रोज दोहरता है, प्रतिपल नया होता जाता है। जैसे-जैसे तुम दूसरे किनारे के करीब होने लगते और चीजें स्पष्ट होने लगती हैं, हर घड़ी गहन से गहन, सघन से सघन प्रतीति आनंद की होती चली जाती है।
नौवांः अनिवृत्तिकरण। साधक की नवम भूमि में, जिसमें समान समवर्ती सभी साधकों के परिणाम समान हो जाते हैं और प्रतिसमय उत्तरोत्तर अनंतगुनी विशुद्धता को प्राप्त होते हैं।
अनिवृत्तिकरण नौवीं साधक की भूमि है। यह समझने जैसी है। इस स्थिति में लोगों के व्यक्तित्व समाप्त हो जाते हैं, व्यक्तिगत भेद समाप्त हो जाते हैं। इस स्थिति में आकर सभी साधक एक जैसे हो जाते हैं। उनकी समान दशा हो जाती है। इस समय तक व्यक्तित्व की छाया रहती है। कोई स्त्री है, कोई पुरुष है, कोई बुद्धिमान है, कोई बहुत बौद्धिक है, कोई संगीत में कुशल है, कोई गणित में कुशल है, कोई कलाकार है, कोई कुछ है।
आठवें तक भेद बने रहते हैं। नौवें से अभेद शुरू होता है। इस समय, जो भी साधक नौवें में पहुंचता है उसके व्यक्तित्व की खोल गिर जाती है। जैसे सांप सरक जाता है पुरानी चमड़ी को छोड़कर, पुरानी खोल को छोड़कर। यहां से अव्यक्तिगत जीवन शुरू होता है। यहां से तुम्हारा कोई भेद किसी से नहीं रह

जाता। न तुम स्त्री, न तुम पुरुष; न तुम गोरे, न तुम काले; न तुम सुंदर, न तुम असुंदर; न तुम महत्वपूर्ण, न तुम महत्वहीन। इस अवस्था में सभी समान हो जाते हैं।
और ध्यान रखना, यह अभी केवल नौवीं अवस्था है। नौवीं अवस्था में व्यक्ति को समता के बोध का जन्म होता है। तब वह सबमें एक का ही वास देखता है। उनमें भी जो सोए हैं, वह उस एक को ही देखना शुरू कर देता है, जो उसके भीतर जग गया है। अब फर्क सोने और जगने का होगा, लेकिन अब और कोई फर्क नहीं है। इस घड़ी में न तो साधु जैन रह जाता है, न हिंदू, न मुसलमान। रह ही नहीं सकता। इस घड़ी में न तो मंदिर-मस्जिद में कोई फर्क रह जाता, न गुरुद्वारा में, गिरजाघर में कोई फर्क रह जाता। इस घड़ी में जिन्होंने भी जाना है वे सभी एक ही वक्तव्य को देते मालूम पड़ते हैं। भाषा होगी अलग, कथन अलग नहीं। कथ्य होगा अलग, कथन अलग नहीं। कथा होगी भिन्न-भिन्न, लेकिन जो कहा जा रहा है वह एक ही है।
नौवीं अवस्था में व्यक्ति धर्मों के विशेषणों के पार हो जाता है। देह
की भिन्नता के पार हो जाता है, मन की विशिष्टताओं के पार हो जाता है।
सामान्य का जन्म होता है, या सार्वलौकिक।
साधक की नवम भूमि, जिसमें समान समवर्ती सभी साधकों के परिणाम समान हो जाते हैं और प्रतिसमय उत्तरोत्तर अनंतगुनी विशुद्धता को प्राप्त होते हैं। और इसी क्षण से विशुद्धता बढ़नी शुरू होती है।
समता के बाद है विशुद्धता।
इसलिए जो अभी कह रहा हो कि मैं जैन मुनि हूं, वह अभी कहीं भटक रहा है विशेषण में। जो कहता हो मैं हिंदू संन्यासी हूं, वह अभी कहीं भटक रहा है विशेषण में। जो कहता हो मैं ईसाई हूं, वह भटक रहा कहीं विशेषण में। विशेषण छूट जाते हैं। क्योंकि भीतर जिसका अनुभव होता है वह बिल्कुल एक-रस है। इसीलिए शुद्धता बढ़ती है।
ऐसा समझो कि तुम्हारा कमरा है, बैठकघर है तुम्हारा, तुम्हारा फर्निचर है, दीवाल पर तुम्हारी तस्वीरें हैं, तुम्हारी घड़ी है, तुम्हारा फूलदान है, तुम्हारा रेडियो-टेलीविजन है। फिर किसी दूसरे का, पड़ोसी का बैठकघर है, उसकी अपनी तस्वीरें हैं, अपना फूलदान है, अपना रेडियो है, अपनी पसंद का फर्निचर है, अपने ढंग के पर्दे हैं।
फिर तुम दोनों ऐसा करो कि धीरे-धीरे चीजों को बाहर निकालते जाओ। जब कमरे दोनों खाली हो जाएंगे तो बड़े समान हो जाएंगे। क्योंकि भेद पर्दे का था। पर्दे अलग हो गए। भेद कुर्सी-टेबल का था, कुर्सी-टेबल अलग हो गई। भेद चित्रों का था, चित्र दीवाल से अलग हो गए। भेद रेडियो-टेलिविजन का था, वे भी अलग हो गए। अब दोनों कमरे खाली रह गए, काफी एक जैसे हो गए। क्योंकि दोनों कमरे केवल कमरे रह गए।
दोनों के भीतर शुद्धता है, शून्यता है। दोनों में अवकाश है। जैसे- जैसे चीजें खाली होती हैं तुम्हारे भीतर से, वैसे-वैसे अवकाश, आकाश उपलब्ध होता है। आकाश समान है। भराव के कारण भेद है। एक किताब कुरान है, एक किताब बाइबल है। दोनों में से स्याही के अक्षर छांटकर बाहर निकाल लो, कोरे कागज रह गए। फिर फर्क करना मुश्किल हो जाएगा, कौन कुरान है और कौन बाइबल है। कोरी किताबें बस कोरी किताबें हैं। कौन कुरान, कौन बाइबल?
सूफियों की एक बड़ी प्रसिद्ध किताब है, जिसमें कुछ भी लिखा हुआ नहीं है। उसको वे कहते हैं, "द बुक आफ द बुक।" किताबों की किताब। खाली है। सूफी फकीर उसको खूब पढ़ते हैं, वही पढ़ने जैसी है। उसमें कुछ लिखा नहीं है। सूफी फकीर बैठ जाते हैं, सुबह से खाली किताब खोलकर पढ़ने लगते हैं। चेष्टा यह है कि इसी खाली किताब जैसे खाली हो जाएं। महावीर जिसको नौवीं भूमि कहते हैं, वही है "द बुक आफ द बुक"। वही है किताबों की किताब। वहां साधक शून्यता को उपलब्ध होता है।
दसवां गुणस्थानः सूक्ष्मसाम्पराय। जहां सब कषाय क्षीण हो जाने पर भी लोभ या राग की कोई सूक्ष्म छाया शेष रहती है।

अब यह जरा समझने जैसा है। नौवें पर सब शून्य हो गया। दसवें में महावीर कहते हैं, जहां सब कषायें क्षीण हो गईं, फिर भी राग की कोई सूक्ष्म छाया शेष रहती है।
तुम्हारे कमरे तो समान हो गए, लेकिन तुम्हारे तलघरों का क्या? तुम्हारा चेतन मन तो बिल्कुल समान हो गया। जहां तक तुम्हारा बोध जाता है वहां तक तो सब समान हो गया, लेकिन अनंत-अनंत जन्मों में जो कर्मों की सूक्ष्म रेखाएं तुम्हारे भीतर पड़ी हैं, उनका क्या?
तुमने कभी देखा? पानी को बहा दो फर्श पर, धूप आती है, पानी उड़ जाता है लेकिन एक सूखी रेखा रह जाती है। वह दिखाई भी नहीं पड़ती। साधारणतः कोई उसको देख भी नहीं पाएगा, जहां से पानी बहा था। अब वहां पानी बिल्कुल नहीं है। अब पानी का नाममात्र भी नहीं बचा, लेकिन एक सूखी रेखा रह गई है। अगर तुम पानी फिर ढालो तो बहुत संभावना है कि उसी सूखी रेखा को पकड़कर पानी बहेगा। क्योंकि वह सूखी रेखा सुगम होगी।
कर्म सूखी रेखाएं हैं। जहां तुमने बहुत-बहुत कर्म किए थे, क्रोध बहुत बार किया था, क्रोध तो छोड़ दिया, क्रोध का फर्निचर तो बाहर फेंक दिया; लोभ बहुत बार किया, लोभ भी छोड़ दिया, लेकिन अनंत कालों में अनंत लोभ के जो परिणाम हुए थे, और तुम्हारी जीवनधारा से जो लोभ बहा था, उसकी सूखी रेखाएं रह गई हैं। वे तुम्हें दिखाई भी नहीं पड़तीं। वे नौवीं अवस्था में पहुंचे व्यक्ति को ही दिखाई पड़नी शुरू होती हैं। वे इतनी सूक्ष्म हैं, हैं ही नहीं, लेकिन हैं।
जैसे तुम्हारा कमरा खाली कर दिया, पड़ोसी का भी कमरा खाली कर दिया, लेकिन फिर भी तुम्हारे कमरे में एक खास बात होगी, जो पड़ोसी के कमरे में न होगी। तुम इतने दिन तक इस कमरे में रहे, तुम्हारी बास इस कमरे में होगी। तुम्हारा होने का ढंग इस कमरे में होगा। तुम्हारी उपस्थिति इस कमरे में होगी। तुम इतने दिन तक इस कमरे में रहे, तुम्हारी आदतें, तुम्हारे मनोवेग, तुम्हारी वासनाएं इस कमरे में उठीं और फैलीं, वे इस कमरे में होंगी। तुमने अगर इस कमरे में किसी की हत्या कर दी थी तो उस हत्या की घटना इस कमरे पर बड़ी स्पष्ट रूप से लिखी है। अदृश्य है लिखावट, कोई उसे पढ़ न पाएगा, लेकिन लिखी है। जिस कमरे में किसी की हत्या हुई हो, उस कमरे में तुम अगर जाकर सोओगे तो रात ठीक से सो न पाओगे। वर्षों पहले हुई होगी हत्या, लेकिन कोई चीख-पुकार अभी भी दीवाल की कणों से लटकी रह गई है। कोई सूक्ष्म भाव अभी भी भटकता रह गया है। उसी को तो हम प्रेतात्मा कहते हैं। कोई सूक्ष्म भाव लटका रह गया है।
इसलिए जहां संत बैठे हैं, जहां संत चले हैं वहां तीर्थ बन जाते हैं, क्योंकि उनका सूक्ष्म भाव वहां लटका रह जाता है। सदियां बीत जाती हैं। जब कभी तुम ऐसी जगह जाकर खड़े हो जाओगे, जहां कभी कोई संत बैठा था और समाधि को उपलब्ध हुआ था, तो वह जगह अब भी उस गीत को गुनगुना रही है; तुम्हें चाहे पता भी न चले। लेकिन पता तुम्हें भी चल जाता है। तुम्हें भी कभी-कभी लगता है, किसी स्थान पर बैठकर बड़ी शांति मिलती है। किसी स्थान पर बैठकर एकदम तुम अशांत होने लगते हो। किसी वृक्ष के नीचे बैठकर बड़ा अहोभाव पैदा होता है। किसी घर में जाते ही कुछ भय लगता है। किसी घर में तुम कभी गए भी नहीं, बाहर से ही निकलते हो, लेकिन मालूम होता है कोई बुला रहा, निमंत्रण है--आओ। कोई तुम्हें पाहुना बनाना चाहता है। कोई कहता है, पधारो जी। कोई कह नहीं रहा, लेकिन घर की स्थिति, घर के सूक्ष्म कंपन... ।
तो महावीर कहते हैं, दसवीं स्थिति हैः सूक्ष्मसाम्पराय। अति सूक्ष्म। दिखाई नहीं पड़ेंगे; अदृश्य लेखन हैं। वे नौवें को ही दिखाई पड़ेंगे, जो इस अवस्था में आ गया है, जहां अब सब समान है। सब विशेषण गिर गए, सब रूप-रंग-आकृतियां गिर गईं, उसी को दिखाई पड़ेगा। जन्मों-जन्मों में जो- जो किया गया है उसकी सूक्ष्म तरंगें भीतर शेष रह गई हैं।
जहां सब कषायें क्षीण हो जाने पर भी लोभ या राग की कोई सूक्ष्म छाया शेष रहती है।
ग्यारहवीं अवस्था हैः उपशांतमोह। साधक की ग्यारहवीं भूमि, जिसमें कषायों का उपशमन हो जाने से वह कुछ काल के लिए अत्यंत शांत हो जाता है।

ऐसी अवस्था--जैन शास्त्रों में जो उदाहरण दिया जाता है वह ठीक है--ऐसी है, जैसे कि किसी नदी से, छोटे झरने से बैलगाड़ियां गुजर गईं। उनके गुजरने से जमीन में जमी मिट्टी, कूड़ा-कर्कट, सूखे पत्ते, सब ऊपर उठ आये। झरना गंदा हो गया। फिर बैलगाड़ियां चली गईं दूर, धीरे-धीरे पत्ते फिर बैठ गए, धूल फिर बैठ गई तलहटी में, झरना फिर स्वच्छ और साफ हो गया।
तो ऊपर तो बिल्कुल स्वच्छ और साफ हो गया है। पी लो, इतना स्वच्छ है। लेकिन अगर जरा हिलाया तो नीचे पर जो बैठी धूल है, वह फिर उठ आएगी। कूड़ा- कर्कट बैठा है नीचे। सम्हालकर चुल्लू भरना, अन्यथा फिर उठ आएगा।
यह जो ग्यारहवीं अवस्था है, यह है उपशांतमोह। मोह शांत हो गया। जैसे धूल, कूड़ा-कर्कट झरने में नीचे बैठ गया; लेकिन मिट नहीं गया है। बहुत सम्हल-सम्हलकर चलना होगा। इस अवस्था में व्यक्ति को ऐसे चलना होता है, जैसे कोई गर्भिणी स्त्री चलती है। एक गर्भ है; पेट में एक नया जीवन है। सम्हलकर चलती है, कहीं गिर न जाए, फिसल न जाए।
जैसे-जैसे गर्भ बड़ा होने लगता है, वैसे-वैसे सावधानी बरतनी होती है।
इस ग्यारहवीं अवस्था में हम आखिरी अवस्था के बहुत करीब आ गए। समझो कि सात महीने पूरे हुए गर्भ के; कि आठवां महीना लग गया; कि अब नौवां महीना करीब आ रहा है। अब बड़ी सावधानी की जरूरत है।
उस सावधानी पर जोर देने के लिए ही इसको महावीर ने उपशांतमोह कहा है। बैठ गई तलहटी में धूल, उठ सकती है। निश्चिंत होकर मत बैठ जाना। अभी अंत नहीं आ गया। बड़ी सुखद अवस्था है, बड़ी शांति की अवस्था है। कुछ क्षण में तो ऐसा लगेगा कि सिद्ध हो गए। कुछ फर्क नहीं है सिद्ध में और इस अवस्था में, जहां तक पानी की स्वच्छता का संबंध है। फर्क इतना ही है कि सिद्ध का पानी अब तुम कितना ही उछलो-कूदो, गंदा नहीं हो सकता। यह अभी गंदा हो सकता है।
अगर किनारे से बैठकर देखो तो दोनों बिल्कुल एक जैसे हैं।
उपशांतमोह की अवस्था का व्यक्ति ठीक सिद्ध जैसा मालूम होगा।
साधारणतः बाहर से लोग फर्क भी नहीं कर सकते, मगर वह स्वयं फर्क कर सकता है।
अभी विकृति उठ सकती है। अभी सांप आखिरी बार फन उठा सकता है।
बारहवीं अवस्था हैः क्षीणमोह, कषायों का समूल नाश। अब ऐसा नहीं कि झरने में नीचे कचरा बैठा है, कचरा झरने से समाप्त कर दिया गया। जब बिल्कुल शुद्ध हो गया है।
फिर भी महावीर अभी इसको बारहवीं अवस्था कहते हैं। महावीर का गणित बहुत साफ है।
तेरहवीं अवस्था हैः संयोगिकेवलीजिन। महावीर कहते हैं सब ठीक हो गया, लेकिन अभी देह से संबंध है। अभी देह से संयोग है। सब समाप्त हो गया, लेकिन अभी जो चैतन्य जागा है, वह अभी देह में है। अभी देह से जुड़ा है।
संयोगी, केवली, जिन--तीन शब्द हैं। संयोगीः संयोगी का अर्थ है, अभी देह
से संबंध है। केवलीः केवलज्ञान को उपलब्ध हो गया है। जिनः जाग गया है। केवल-ज्ञान की उपलब्धि, परमात्मा या भगवान की संज्ञा।
महावीर कहते हैं, इस तेरहवीं अवस्था में व्यक्ति भगवान की स्थिति में
है लेकिन अभी काया से जुड़ा है। अभी देह से संबंध है। सब समाप्त हो गया, लेकिन अभी देह से मुक्ति नहीं हुई है। अभी देह के भीतर है।
ऐसा समझो कि तुम जेलखाने में बंद हो और खबर आ गई। जेलर ने आकर कहा कि खड़े हो जाओ, छुटकारे का समय आ गया। तुम्हारी मुक्ति का क्षण आ गया। जंजीरें खोल दी गईं, तुम चल पड़े जेलर के साथ दरवाजे की तरफ, लेकिन अभी तुम दरवाजे के भीतर हो। एक अर्थ में मुक्त हो गए। हो ही गए मुक्त। अब कुछ बचा नहीं। जंजीरें भी छूट गईं, मुक्ति का आदेश भी आ गया, द्वार की तरफ चल भी पड़े, लेकिन अभी भी कारागृह में हो। अब कोई कारण नहीं कि तुम रहोगे कारागृह में लेकिन हो अभी भी।
महावीर कहते हैं, इस अवस्था में व्यक्ति को भगवान या परमात्मा की संज्ञा उपलब्ध होती है।
फिर चौदहवीं अवस्था हैः अयोगिकेवलीजिन। अयोगी यानी जब शरीर से भी संबंध छूट गया, तब तुम कारागृह के बाहर हो गए। जरा-सा फर्क है; शायद इंचभर का। एक क्षणभर पहले तुम कारागृह के भीतर थे, एक क्षण के बाद कारागृह के

बाहर हो गए। बहुत बड़ा भेद नहीं है। इसलिए महावीर कहते हैं, तेरहवीं अवस्था में व्यक्ति को भगवान कहा जा सकता है। सब व्यावहारिक अर्थों में वह भगवत्ता को उपलब्ध हो गया। जरा-सी बात रह गई है कि अभी कारागृह के दरवाजे के पार नहीं हुआ है।
अयोगिकेवलीजिनः साधक की अंतिम भूमि। जिसमें मन, वचन, काया की समस्त चेष्टाएं शांत होकर शैलेशी स्थिति प्राप्त होती है।
अब डिग नहीं सकता। तेरहवीं अवस्था तक थोड़ा-सा खतरा है। जेलर का मन बदल जाए, कोई दुर्घटना हो जाए, वह जो द्वार पर खड़ा पहरेदार है चाबी घर भूल आया हो; कि चाबी लगे न, कि चाबी खराब हो गई हो, कि ताला अटक जाए। अभी भीतर है, बिल्कुल चल पड़ा है बाहर होने के लिए, लेकिन अभी देह से जुड़ा है। चौदहवीं अवस्था में देह से संबंध पूर्ण रूप से छूट गया। तो शैलेशी अवस्था।
यह चौदहवीं अवस्था भी साधक की आखिरी अवस्था है। इन चौदहों के जो आगे चला गया, उसको सिद्ध कहते हैं। तो सिद्ध की अवस्था गुणातीत है--गुणस्थान-मुक्त। सिद्ध परिभाषा के बाहर है। जो हिंदू शास्त्रों में ब्रह्म की परिभाषा है, वही जैन शास्त्रों में सिद्ध की परिभाषा है--सच्चिदानंदरूप। चूंकि ब्रह्म का तो कोई शब्द जैनों के पास नहीं है--सिद्ध। क्योंकि जैनों की तो सारी खोज स्वयं की खोज है।
तेरहवीं अवस्था से व्यक्ति भगवान की अवस्था को उपलब्ध होता है।
भगवत्ता अनुभव हो जाती है, कि जीवन भगवतस्वरूप है। लेकिन एक आखिरी बात रह जाती है--देह का पर्दा। चौदहवें पर वह पर्दा भी गिर जाता।
फिर पंद्रहवीं में क्या होता है? पंद्रहवें पर यात्रा समाप्त हो गई।
उसके पार कुछ भी नहीं है। उसको पंद्रहवां भी नहीं कहते। चौदह गुणस्थान हैं, पंद्रहवीं अवस्था तुम्हारा स्वभाव है। चौदह को पार करके कोई स्वयं को उपलब्ध होता है।
महावीर के इस गणित को स्मरण रखना। इसमें तत्क्षण तुम्हें समझ में आ सकेगा कि तुम कहां खड़े हो। और पता चल जाए कि मैं कहां हूं तो ही यात्रा सुगमता से होती है।
तुम हो तो पहली अवस्था में, और सोच रहे हो सातवीं अवस्था में, तो तुम
चल न पाओगे। चलोगे तो पहली से ही चलना पड़ेगा। जहां हो वहीं से यात्रा शुरू होगी। तुम जहां नहीं हो वहां से यात्रा शुरू नहीं हो सकती।
इसलिए ठीक-ठीक अपने को पहचानना। और मैं कहता हूं कि महावीर के अतिरिक्त किसी व्यक्ति ने कभी भी इतना सूक्ष्म तौलने का उपाय नहीं दिया है। यहां एक-एक बात साफ कर दी गई है। अड़चन न होगी। तुम अपने को ठीक-ठीक जांच पाओगे, कहां हो। और तुम कहां हो यह जानना अत्यंत जरूरी है, तो ही तुम वहां पहुंच सकोगे जहां पहुंचना है।
अगर स्मरणपूर्वक इस यात्रापथ का उपयोग किया, इस यात्रामार्ग-निर्देश
का उपयोग किया तो किसी न किसी क्षण में वह अपूर्व, विलक्षण, अलौकिक घटना घटती है, जब तुम अपने घर आ जाते हो।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग दो
छब्बीसवां प्रवचन

प्रेम के कोई गुणस्थान नहीं

पहला प्रश्नः बारहवें और तेरहवें गुणस्थानः क्षीणमोह और सयोगिकेवलीजिन में क्या भिन्नता है इसे स्पष्ट करने की कृपा करें।

यह प्रश्न स्वाभाविक है। जैन शास्त्रों में इस संबंध में बड़ा ऊहापोह है। क्योंकि दोनों अवस्थाएं करीब-करीब एक जैसी मालूम पड़ती हैं।
बारहवीं अवस्था में समस्त मोह, माया शून्य हो जाती है। कुछ शेष बचता नहीं। और कुछ होने की संभावना भी न रही। सब बाधाएं गिर गईं, सब अवरोध समाप्त हुए। फिर तेरहवीं अस्वस्था में, तेरहवें गुणस्थान में सूत्र केवल इतना ही कहते हैं, सयोगिकेवलीजिन। केवलज्ञान उपलब्ध होता है, जिनत्व उपलब्ध होता है।
लेकिन जब सभी मोह क्षीण हो गए, जब सभी बाधाएं हट गईं, जब अंधकार जाता रहा तो फिर दोनों में फर्क क्या है? दोनों में देह है, इसलिए सयोगी से कोई फर्क नहीं पड़ता। बात थोड़ी बारीक है और नाजुक है। ऐसा समझना, कभी तुम बीमार पड़े, चिकित्सा हुई। सारी बीमारियां चली गईं तो भी जरूरी नहीं कि तुम स्वस्थ हो गए। अभी दौड़ न सकोगे, अभी श्रम न कर सकोगे। चिकित्सक कहेगा कुछ देर आराम करो। बीमारी तो गई, लेकिन स्वास्थ्य का आविर्भाव होने दो। बारहवां गुणस्थान नकारात्मक है। तेरहवां गुणस्थान विधायक है। बारहवें गुणस्थान में जो कूड़ा-कर्कट था, वह गया। व्यर्थ हटा। लेकिन सार्थक को उतरने दो। बारहवां गुणस्थान शून्य जैसा है। तेरहवां गुणस्थान पूर्ण जैसा है। बौद्धों ने निर्वाण की जो परिभाषा की है, वह बारहवें गुणस्थान की ही परिभाषा है।
इसलिए जैन दृष्टि में अभी और थोड़े आगे जाना है। शून्य तो हो गए, अभी पूर्ण नहीं हुए। मोह तो गया, राग गया लेकिन अभी वीतरागता नहीं उतरी। तुम तैयार हो गए, मेहमान अभी नहीं आया। तुमने घर सजा लिया, द्वार-दरवाजों पर बंदनवार बांध दिए, स्वागतम लटका दिया, दीये जला लिए, धूप-दीप बाल ली। तुम तैयार हो गए, मेहमान अभी नहीं आया।
बारहवें में तुम्हारी तैयारी पूरी हो गई। अब तुमसे कुछ और नहीं मांगा
जा सकता, तुम जो कर सकते थे, जो मनुष्य के लिए संभव था, वह हो गया। अब उतरेगा कोई। प्रकाश का अवतरण होगा। पात्र तैयार हो गया, अमृत की अब वर्षा होगी। इसे तुम ऐसा मत सोचना कि इन दोनों के बीच समय का कोई फासला है। इन दोनों के बीच "एम्फेसिस", जोर का फासला है। तुम यह मत सोचना कि बारहवां घट गया तो तेरहवें के घटने में अब कुछ समय लगेगा। युगपत हो सकता है। यह विश्लेषण तो इसलिए है ताकि तुम्हें सीढ़ी-सीढ़ी बात समझ में आ जाए।
ऐसा भी हो सकता है, बीमारी गई और तुम स्वस्थ हो गए, लेकिन बीमारी का जाना ही स्वस्थ हो जाना नहीं है। बीमारी का जाना स्वस्थ होने के लिए अनिवार्य चरण है। लेकिन बीमारी का न होना ही स्वास्थ्य की परिभाषा नहीं है। स्वास्थ्य कुछ विधायक है। ऐसा नहीं है कि जब तुम स्वस्थ होते हो तो तुम इतना ही कह सकते हो कि मेरे सिर में कोई दर्द नहीं है, पेट में कोई दर्द नहीं है, कहीं कांटा नहीं चुभता; इतना ही कह सकोगे? कि कैंसर नहीं है, टी. बी. नहीं है। स्वास्थ्य की बस इतनी ही व्याख्या कर सकोगे? या कहोगे कि कुछ अपूर्व मुझे भरे है, कुछ लहरा रहा है। कुछ मेरे रोएं-रोएं में कंप रहा है, जो सिरदर्द का अभाव ही नहीं है, जो किसी अनूठी ऊर्जा की मौजूदगी है। किसी परम शक्ति का मेरे भीतर निवास है।
स्वास्थ्य विधायक है। इसलिए पूरब में जो स्वास्थ्य का विज्ञान है उसे हमने आयुर्वेद कहा है। पश्चिम का शब्द मेडिसिन, मेडिकल साइंस बहुत दरिद्र है। मेडिसिन का मतलब होता है सिर्फ औषधि। पश्चिम ने चुना मेडिकल साइंस-- औषधि का विज्ञान; क्योंकि उनकी दृष्टि में स्वास्थ्य का अर्थ है, बीमारी का न हो जाना।

पूरब ने चुना आयुर्वेदः आयु का विज्ञान, जीवन का विज्ञान। सिर्फ औषधि नहीं है आयुर्वेद, औषधि से कुछ ज्यादा है। औषधि से तो इतना ही मालूम होता है, दर्द न रहा। लेकिन दर्द न रहने का अर्थ, आनंद हो गया? दर्द रहता तो आनंद में बाधा पड़ती जरूर, दर्द न रहा तो आनंद के लाने में सुविधा हो गई जरूर; लेकिन दर्द का न होना ही आनंद की परिभाषा है?
बौद्ध बारहवें गुणस्थान को निर्वाण की परिभाषा मानते हैं, इसलिए वे आनंद की बात नहीं करते। वे कहते हैं, परम अवस्था--दुख-निरोध। निर्वाण यानी दुख-निरोध; दुख न रहेगा। इससे आगे बात नहीं करते। उनसे पूछो, दुख न रहेगा यह भी कोई बात हुई? रहेगा क्या फिर? होगा क्या फिर? संसार न रहेगा, समझ में आ गया, लेकिन क्या मोक्ष की बस इतनी ही परिभाषा है? फिर मोक्ष अपने आप में क्या है? अगर संसार से ही परिभाषा हो सकती हो मोक्ष की, तो मोक्ष बड़ा लचर हुआ, बड़ा कमजोर हुआ, दीन हुआ, दरिद्र हुआ। जिसकी परिभाषा भी संसार से ही करनी होती हो... ।
ऐसा समझो कि एक आदमी अमीर है, वह धन का त्याग कर दे; और एक आदमी गरीब है, उसके पास बहुत कुछ नहीं है, झोपड़ा है। वह अपने झोपड़े का त्याग कर दे। क्या तुम कहोगे कि अमीर का त्याग गरीब के त्याग से बड़ा है?
अगर त्याग धन का ही छोड़ना है तब तो निश्चित ही अमीर का त्याग गरीब के त्याग से बड़ा है। क्योंकि गरीब ने झोपड़ा छोड़ा, अमीर ने महल छोड़ा।
लेकिन त्याग धन का छोड़ना ही नहीं है। त्याग एक विधायक चित्त की दशा है। क्या छोड़ा यह मूल्यवान नहीं है, छोड़कर जो मिलता है वही मूल्यवान है। जो मिलता है, उसे छोड़ने से नहीं नापा जा सकता।
या ऐसा समझो कि एक आदमी ने एक पैसा चुरा लिया और दूसरे आदमी ने करोड़ रुपये चुरा लिए। क्या करोड़ रुपये चुरानेवाला बड़ा चोर है? एक पैसा चुरानेवाला छोटा चोर है। तो फिर तुम समझे नहीं।
चोरी तो बराबर है। एक पैसे की हो कि करोड़ रुपये की हो। चोरी में कोई मात्रा से फर्क नहीं पड़ता। एक आदमी ने एक पैसे की चोरी छोड़ी। एक पैसा रास्ते पर पड़ा था, वह पड़ा रहा और निकल गया। और एक आदमी के रास्ते पर करोड़ रुपये पड़े थे, उसने करोड़ रुपये की चोरी छोड़ी। चोरी की संभावना थी, न की। इन दोनों में कौन-सा बड़ा अचोर है? दोनों अचोर हैं।
अचौर्य चित्त की एक विधायक दशा है।
बारहवां गुणस्थान कहता है संसार नहीं हुआ, समाप्त हुआ। जैसे तुम किसी देश की सीमा पार करते हो, तो जो इस देश की सीमा है, समाप्त होता है देश, वही दूसरे देश की शुरुआत है। तो सीमा पर जो तख्ती लगी होती है, एक तरफ लिखा होता है--भारत समाप्त। दूसरी तरफ लिखा होगा है--चीन शुरू।
बारहवां गुणस्थान इस तरफ की खबर देता है--"संसार समाप्त"; तेरहवां गुणस्थान उस तरफ की खबर देता है--"मोक्ष शुरू।" दोनों एक ही तख्ती पर होंगे। तख्ती की एक तरफ लिखा है--"संसार समाप्त"; दूसरी तरफ लिखा है "मोक्ष प्रारंभ।" दोनों में रत्तीमात्र फासला नहीं दिखाई पड़ता, पर फासला बड़ा है। दोनों की सीमारेखा एक ही है। इसलिए जैन शास्त्रों में भी खूब चिंतन चला है कि फर्क क्या है?
मेरे देखे बारहवां गुणस्थान इतना ही कहता हैः कि जो छोड़ने योग्य था, छूट गया; जो मिटने योग्य था, मिट गया; जो व्यर्थ था, असार था, उससे मुक्ति हुई। तेरहवां गुणस्थान कहता हैः वहीं रुकना नहीं हुआ, जो मिलने योग्य था, मिला; जो पाने योग्य था, बरसा। मेहमान घर आ गया।
जैन सूत्रों में भी बात साफ है। बारहवें सूत्र की परिभाषा है-- णिस्सेसखीणमोहो, फलिहामलभायणुदय-समचित्तो।
खीणकसाओ भण्णइ णिग्गंथो वीयराएहिं।।
"संपूर्ण मोह पूरी तरह नष्ट हो जाने से जिनका चित्त स्फटिकमणि के पात्र में रखे हुए स्वच्छ जल की भांति निर्मल हो गया है, ऐसे पुरुषों को वीतरागदेव ने क्षीणमोह या क्षीणकषाय कहा है।"
"निर्मल हो गया"--नकारात्मक है। शुद्ध हो गया, अशुद्धि गई। तेरहवें गुणस्थान की परिभाषा हैः
केवलणाणदिवायर-किरणकलावप्पणासिअण्णाणो।

णवकेवललद्धुग्गमं-पावियरपरमप्पववएसो।।
"केवलज्ञानरूपी दिवाकर की किरणों के समूह से जिनका अज्ञान-अधंकार सर्वथा नष्ट हो गया, तथा जो सम्यकत्व, अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख, अनंत वीर्य को उपलब्ध हुए वे सयोगिकेवलीजिन कहलाते हैं।"
अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, सम्यकत्व, समाधि, अनंत सुख, अनंत वीर्य, ये उपलब्धि की सूचनाएं हैं--क्या मिला!
संसार गया, मोक्ष मिला। इसलिए महावीर कहते हैं, तेरहवें गुणस्थान में
आए हुए व्यक्ति को भगवान कहा जा सकता, परमात्मा कहा जा सकता है।

दूसरा प्रश्नः क्या तेरहवें गुणस्थान को उपलब्ध होकर भी कोई उससे च्युत हो सकता है, क्या कोई अब तक हुआ है?

नहीं, तेरहवें गुणस्थान तक पहुंचकर कोई कभी च्युत नहीं हुआ, न हो सकता है। तो फिर सवाल उठता है कि चौदहवें गुणस्थान की क्या जरूरत है? जब तेरहवें से वापसी हो ही नहीं सकती, जब तेरहवें से गिरना हो ही नहीं सकता, तो फिर तेरहवें और चौदहवें का फासला क्या?
तेरहवें गुणस्थान से कोई च्युत नहीं होता, लेकिन कोई चाहे तो तेरहवें गुणस्थान पर रुक सकता है। महाकरुणावान पुरुष रुक गए हैं। तेरहवें गुणस्थान पर जो रुक गए हैं, उनके लिए ठीक-ठीक शब्द बौद्धों के पास है; वह शब्द है "बोधिसत्व"। जिन्होंने कहा, हम चौदहवें में प्रवेश न करेंगे। क्योंकि हम अगर चौदहवें में प्रवेश कर गए तो शरीर छूट जाएगा। शरीर छूट जाएगा तो हम किसी के काम न आ सकेंगे। संबंध टूट जाएंगे।
बौद्धों में कथा है कि बुद्ध जब स्वर्ग या मोक्ष के द्वार पर पहुंचे, द्वार खुला तो वे खड़े रह गए। द्वारपाल ने कहा, आप प्रवेश करें। बुद्ध ने कहा कि नहीं, अभी नहीं। अभी बहुत हैं मेरे पीछे, जो अंधेरे में भटकते हैं। जो रोशनी मुझे मिली है, जब तक उन तक न पहुंचा दूं तब तक मैं प्रवेश न करूंगा।
यह तेरहवें गुणस्थान में रुक जाने की बात है। इसका अर्थ हुआ, जो व्यक्ति भगवत्ता को उपलब्ध हो गया है, वह कहता है थोड़ी देर और अभी इस देह में रहूंगा। क्योंकि इस देह से ही उनके साथ संबंध बना सकता हूं, जो अभी देह को ही अपना होना समझते हैं। इस देह से ही कोई संवाद हो सकता है उनके साथ, जिन्होंने देह में ही अपने प्राणों को आरोपित कर लिया है; जो देह के साथ तादात्म्य-रूप हो गए हैं।
देह में रुक जाने की आकांक्षा को जैनों ने तीर्थंकर कर्मबंध कहा है।
जो तेरहवीं अवस्था में रुक जाता है करुणावश, कि पीछे चलते लोगों को थोड़ी सहायता पहुंचा सकूं; जो मुझे मिला है वह बांट भी सकूं; जो मैंने पाया है उसे और भी पा सकें।
ऐसी कोई मजबूरी नहीं है। अगर तेरहवीं गुणअवस्था में किसी व्यक्ति ने चेष्टा न की तो वह अपने आप चौदहवीं में सरक जाएगा। तेरहवीं अवस्था से चौदहवीं में जाना ऐसा है, जैसे कि बड़ी कोई ढलान पर उतर रहा हो, या नदी की गहन धार में बहा जाता हो जहां पैर जमाकर खड़ा होना मुश्किल हो जाए।
इसलिए जगत में तेरहवीं अवस्था को जैसे ही लोग उपलब्ध होते हैं, तत्क्षण चौदहवीं अवस्था में प्रवेश हो जाते हैं--या थोड़ी देर-अबेर। ज्यादा देर रुक नहीं पाते। कुछ बलशाली लोग ज्ञान के बाद भी अज्ञान के संसार में पैरों को टेककर खड़े रहे हैं।
उन बलशाली पुरुषों के कारण ही संसार एकदम अंधेरा नहीं है, उसमें कहीं- कहीं दीये टिमटिमाते हैं--कोई बुद्ध, कोई कृष्ण, कोई क्राइस्ट, कोई महावीर, कोई जरथुस्त्र, कोई मोहम्मद। कहीं थोड़े-थोड़े दीये टिमटिमाते हैं। यह इन बलशाली पुरुषों का... ।
संसार से छूटना बड़ा कठिन है; लेकिन उससे भी बड़ी कठिन बात है, संसार से छूटकर थोड़ी देर संसार में रुक जाना। अति कठिन बात है। संसार से छूटना ही पहले अति कठिन बात है, फिर जब छूटने की घड़ी आ जाए तो उस समय याद किसको रहती है?

तुम दुख में ही जीए और अचानक महल आ गया, सब सुखों का द्वार खुल गया, तुम रुक पाओगे, तुम दौड़कर महल में प्रवेश कर जाओगे। तुम कहोगे, जन्मों-जन्मों से जिसको खोजा है वह सामने खड़ा है। मंजिल सामने तो खड़ी है, अब कैसा रुकना! तुम एक क्षण भी रुक न पाओगे।
तो तेरहवीं अवस्था से कोई गिरता तो नहीं यह सच है, लेकिन तेरहवीं अवस्था में कोई रुक सकता है। कठिन है, अति दुर्गम है, लेकिन हुआ है। तेरहवीं अवस्था में जो रुक गए हैं, वे ही अवतारी पुरुष हैं।
जैन परिभाषा में अवतार परमात्मा के घर से नहीं आता। इसलिए अवतार शब्द
का उपयोग जैन नहीं करते। अवतार शब्द का ही मतलब हैः उतरे; अवतरित हो ऊपर से आए। जैन परिभाषा में तो सभी नीचे से ऊपर की तरफ जाते हैं। ऊर्ध्वगमन है जगत में, अधोगमन नहीं है। अवतार का मतलब तो हुआ, अधोगमन। अवतार का तो मतलब हुआ, असीम सीमा में उतरा, विराट क्षुद्र हुआ, महत छोटा बना, आकाश आंगन बना, असीम ने सीमा में अपने को बांधा।
अवतरण तो अधोगमन हुआ। यह तो पतन हुआ। जिसको हिंदू अवतार कहते हैं, उसको जैन मानता है कि यह तो पतन है। तो उसकी बात में भी बल है। पतन तो है ही। जैसे परमात्मा च्युत हुआ। यह तो हो नहीं सकता। परमात्मा च्युत हो ही नहीं सकता। इसलिए जैन कहते हैं सिर्फ ऊर्ध्वगमन होता है, सिर्फ उत्क्रांति होती है, सिर्फ विकास होता है। पीछे कोई जाता ही नहीं, आगे ही जाना है। जाना मात्र आगे की तरफ है। हम ऊपर ही उठते हैं।
इसलिए तेरहवीं अवस्था में पहुंचा हुआ व्यक्ति अवतारी पुरुष है। आया
है लंबी यात्रा पार करके। जन्मों-जन्मों में बारह अवस्थाएं पूरी की हैं, तेरहवीं पर आया, भगवान हुआ।
यह भगवान का अर्थ भी समझ लेना। हिंदू सोचते हैं, भगवान का अर्थ, जिसने संसार बनाया।
जैनों में भगवान का वैसा अर्थ नहीं है। संसार को तो किसी ने बनाया नहीं। कोई स्रष्टा तो नहीं है। लेकिन जिसने अपने को बना लिया, वह भगवान।
इन बारह सीढ़ियों से गुजरकर जो तेरहवीं पर आ गया, वही भगवान।
इसलिए भगवान एकवाची भी नहीं है। ऐसा नहीं है कि एक भगवान है। जितनी आत्माएं हैं उतने भगवान के होने की संभावना है। अनंत भगवान के होने की संभावना है। हिंदू कहते हैं भगवान अनंत हैं, जैन कहते हैं अनंत हैं भगवान।
प्रत्येक जीवन-ऊर्जा किसी न किसी दिन तेरहवें गुणस्थान में आएगी-- देर-अबेर। भटकोगे... कितना भटकोगे? किसी न किसी दिन पीड़ा से थके-हारे, टूटे घर आओगे। उस तेरहवें गुणस्थान में भगवत्ता उपलब्ध होगी।
यह जो भगवान की तेरहवीं अवस्था है, इससे कोई च्युत तो नहीं हो सकता। च्युत होना होता ही नहीं। लेकिन कोई चाहे तो रुक सकता है। चौदहवीं अवस्था को आने से रोक सकता है। बड़ी प्रगाढ़ करुणा करनी पड़े। करुणा को ऐसी प्रगाढ़ता से करना पड़े कि वह करीब-करीब वासना बन जाए। सांसारिक आदमी जैसे वासना से बंधा है और संसार से नहीं छूटता, ऐसे तेरहवें गुणस्थान में पहुंचा हुआ व्यक्ति करुणा की जंजीरें ढालता है; करुणा से बंधता है। रुकता है कि किसी तरह थोड़ा साथ, थोड़ा संग, थोड़ी पुकार दे सके। उसकी नाव आ लगी, उस पार जाने का निमंत्रण आ पहुंचा, फिर भी वह हजार उपाय करता है कि इस किनारे पर थोड़ी देर रुक जाए।
अलग-अलग सदगुरुओं ने अलग-अलग उपाय किए हैं, कैसे इस किनारे पर थोड़ी देर और रुक जाएं कि तुमसे थोड़ी बात हो सके, कि तुम्हें थोड़ा संदेश दिया जा सके; कि तुम्हारी नींद को थोड़ा हिलाया जा सके; कि तुम्हारे स्वप्न थोड़े तोड़े जा सकें।
अपने आप रुकना नहीं होता। अपने आप तो तेरहवें गुणस्थान से चौदहवां गुणस्थान सहज घट जाता है। जैसे बड़ी चिकनी भूमि हो और तुम खिसक जाओ, रपट जाओ। बड़ी रपटीली भूमि हो और ढलान हो। तेरहवें से चौदहवां इतने करीब है, और इतना आकर्षक है, इतना मोहक है कि कौन रुकना चाहेगा?

फिर रुकना कठिन भी है। इसलिए जैन कहते हैं, हजारों लोग केवलज्ञान को उपलब्ध होते हैं, कभी कोई एकाध तीर्थंकर हो पाता है। तीर्थंकर का अर्थ है, जो तेरहवें में रुकता--बलपूर्वक, चेष्टापूर्वक।
चौदहवें का अर्थ है, शरीर से संबंध का टूट जाना। जो तेरहवें में हुआ है, उससे कुछ ज्यादा नहीं होता चौदहवें में। जो तेरहवें में है, उससे चौदहवें में कुछ कम हो जाता है बस, ज्यादा नहीं होता। तेरहवें तक शरीर का साथ है, चौदहवें में शुद्ध आत्मा रह जाती है, शरीर से संबंध छूट जाता है।

तीसरा प्रश्नः महावीर ने वैराग्य और ध्यान के मार्ग को चौदह सीढ़ियों में बांटा है। क्या प्रेम के मार्ग की भी ऐसी कोई व्याख्या है? कृपया इस पर कुछ कहें।

प्रेम को बांटने का कोई उपाय नहीं। क्योंकि प्रेम छलांग है। ज्ञान क्रमिक है, प्रेम छलांग है। ज्ञान इंच-इंच चलता, कदम-कदम चलता। प्रेम इंच-इंच नहीं चलता, कदम-कदम नहीं चलता।
ज्ञान बड़ा होशियार है, प्रेम बड़ा पागल है। इसलिए ये जो गुणस्थान हैं, ज्ञान के साधक के लिए हैं। भक्ति के मार्ग पर कोई गुणस्थान नहीं हैं।
भक्त जानता नहीं विभाजन को। भक्त जानता ही नहीं कोटियों को। भक्त जानता ही नहीं विश्लेषण को। भक्त की पहचान तो संश्लेषण से है--सिन्थेसिस।
भक्त की तो पहचान चीजों को जहां-जहां भेद हो वहां अभेद देखने की है। ज्ञानी की सारी चेष्टा जहां अभेद भी हो, वहां भेद पहचानने की है। महावीर ने तो अपने पूरे शास्त्र को भेद-विज्ञान कहा है। कहा कि यह भेद को पहचानने की कला है। पहचानना है कि शरीर क्या है, आत्मा क्या है। पहचानना है कि संसार क्या है, मोक्ष क्या है। एक-एक चीज पहचानते जाना है। एक-एक चीज का ठीक-ठीक ब्यौरा और ठीक-ठीक विश्लेषण करना है। ठीक विश्लेषण करने से ही कोई मुक्त अवस्था को उपलब्ध होता है। ज्ञान का खोजी विश्लेषण करता है। विश्लेषण उसकी विधि है। वह कैटेगरीज बनाता है, कोटियां बनाता है। उसका ढंग वैज्ञानिक है।
भक्त, प्रेमी कोटियां तोड़ता है। सब कोटियां को गड्डमड्ड कर देता है। दीवाना है, पागल है। पागलों ने कहीं हिसाब लगाए?
तो यह तो पूछो ही मत, कि क्या भक्ति के मार्ग पर भी, प्रेम के मार्ग पर
भी इसी तरह की कोटियां हो सकती हैं, विभाजन हो सकता है? संभव नहीं है।
एक आदमी धन इकट्ठा करता है तो धीरे-धीरे करता है। लुटेरा आता है, लूटकर ले जाता है इकट्ठा।
रामकृष्ण के पास एक आदमी हजार सोने की मोहरें लेकर आया। कहा, स्वीकार
कर लें। रामकृष्ण ने कहा, अब तुम तो ले आए तो चलो स्वीकार कर लिया। लेकिन मैं क्या करूंगा। तुमने तो अपना बोझा छुड़ाया, मुझ पर डाल दिया। ऐसा करो, मैंने स्वीकार कर लीं। अब मेरी तरफ से इनको बांधकर गंगा में डाल आओ।
उस आदमी ने पोटली बांधी बड़े बेमन से। हजार बार सोचने लगा कि यह क्या हुआ! मगर अब कुछ कह भी न सका। भेंट कर दीं। और यह आदमी पागल है। यह कह रहा है, गंगा में फेंक आ। गया बेमन से। बड़ी देर लगा दी, आया नहीं तो रामकृष्ण ने कहा, जरा पता तो लगओ। वह गंगा पहुंचा कि घर भाग गया? वह है कहां? अब तक लौटा नहीं।
भेजा देखने को, तो देखा कि वह गंगा के किनारे पर बैठकर... बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई है। वह पहले पटक- पटककर खनखना-खनखनाकर गिनती कर रहा है। एक-एक गिनकर फेंक रहा है। किसी ने खबर दी रामकृष्ण को। वे गए और उन्होंने कहा, पागल! जोड़ना हो तो गिनती करनी पड़ती है, फेंकने के लिए क्या गिनती कर रहा है? अरे! नौ सौ निन्यानबे हुईं तो भी चलेगा। एक हजार एक हुईं तो भी चलेगा। बांध पोटली, इकट्ठी फेंक! यह क्या गिनती कर रहा है?
वह पुरानी आदत रही होगी--जोड़नेवाले की आदत, गिनती करने की। वह पुराने हिसाब से जैसे अपनी दुकान पर बैठकर खनखनाकर देखता होगा। असली है कि नकली है, वह अभी भी कर रहा है। अब पूरी प्रक्रिया उलटी हो गई।
प्र्रेम तो डूबना जानता है।

यह कौन आया रहजन की तरह
जो दिल की बस्ती लूट गया
आराम का दामन चाक हुआ
तसकीन का रिश्ता टूट गया
यह कौन आया रहजन की तरह
जो दिल की बस्ती लूट गया
डाकू की तरह आता है परमात्मा। इसलिए तो हिंदू परमात्मा को हरि कहते हैं। हरि यानी लुटेराः हर ले जाए जो; झपट ले। रहजन की तरह आ जाए--डाकू। जो लूट ले।
यह कौन आया रहजन की तरह
जो दिल की बस्ती लूट गया
प्रेम कुछ तुम्हारे बस में थोड़े ही है। ध्यान तुम्हारे बस में है। ज्ञान तुम्हारे बस में है। त्याग, तपश्चर्या तुम्हारे बस में है, प्रेम तुम्हारे बस में थोड़े ही है। किसी अज्ञात क्षण में, किसी अनजानी घड़ी में, किसी सौभाग्य की घड़ी में आ जाता है कोई और लूट ले जाता है।
आराम का दामन चाक हुआ
प्रेम के पहले आदमी आराम से जीता है। प्रेम के बाद फिर आराम नहीं। प्रेम के पहले तो आदमी जानता ही नहीं कि पीड़ा क्या है। प्रेम के बाद ही जानता है कि पीड़ा क्या है। क्योंकि प्रेम में जलता है, पिघलता है, गलता है, मिटता है।
आराम का दामन चाक हुआ
तसकीन का रिश्ता टूट गया
प्रेम के पहले जिंदगी बड़ी धीमी-धीमी चलती है, धीरज से चलती है। कहीं कोई दौड़, छलांग नहीं। आदमी सावधानी से चलता है। प्रेम के बाद मस्ती पकड़ लेती है। फिर कहां धीरज? फिर कहां धैर्य! फिर कैसा आराम।
बुद्धि तो बड़ा सोच-विचारकर कहीं झुकती है। हृदय झुका ही हुआ है। अगर इसे तुम ठीक से समझ सको तो ऐसा समझना, हृदय तो तुम्हारा अभी भी भक्ति में डूबा हुआ है। तुम्हारा अपने हृदय से संबंध छूट गया है। तुम अपनी बुद्धि में समा गए। अपनी खोपड़ी में निवास कर लिया है। वहीं रह गए। अटक गए वहीं।
उलझ गए वहीं।
हृदय तो अब भी प्रार्थना कर रहा है। हृदय तो अभी भी नमाज पढ़ रहा है। हृदय तो अभी भी डूबा है। हृदय का होना ही परमात्मा में है।
वे जो बुद्धि में भटक गए हैं और जिनको हृदय का रास्ता नहीं मिलता, उनके लिए चौदह गुणस्थान हैं। जिनको हृदय करीब है और जिन्हें कोई अड़चन नहीं, जो सरलता से हृदय में उतर सकते हैं, उनके लिए कोई गुणस्थान नहीं, कोई भेद-विभाजन नहीं। उनके लिए न कोई शास्त्र है, न कोई साधना है।
जवानी मोहब्बत, वफा नाउम्मीदी
यह है मुख्तसर-सा हमारा फसाना
किए दिल ने हरेक जगह तुझको सिजदे
जबीं ढू.ंढती ही रही आस्ताना
बुद्धि ढूंढ़ती ही रही कि कहां है वह जगह, जहां सिर झुकाऊं।
जबीं ढ.ूंढती ही रही आस्ताना
देहली ढूंढ़ती ही रही कि कहां सिर को रखूं, कहां माथा टेकूं? कहां मंदिर? कहां मस्जिद?
जबीं ढूंढ़ती ही रही आस्ताना
किए दिल ने हरेक जगह तुझको सिजदे
और दिल तो हर जगह तेरी प्रार्थना करता रहा, तेरी पूजा में लीन रहा। दिल तो पूजा में डूबा ही है। वहां तो जल ही रहा दीया। वहां तो धूप उठ ही रही। वहां तो वेदी सजी है।
जो बुद्धि में बहुत बुरी तरह खो गए हैं--बुद्धि के अरण्य में, विचारों
के जंगल में, जंजाल में, उनके लिए ज्ञान का रास्ता है।

इसलिए जैन शास्त्र अत्यंत बौद्धिक हैं, रूखे हैं। गणित की तरह हैं। आइंस्टीन की किताब पढ़ो कि जैन शास्त्र पढ़ो, एक से हैं। न्यूटन को पढ़ो कि अरिस्टोटल को पढ़ो कि जैन शास्त्र पढ़ो, एक से हैं।
बहुत बार कई जैनों ने मेरे पास आकर कहा है कि कभी आप कुंदकुंद पर बोलें। कई दफे उनकी बात सुनकर मैं भी कुंदकुंद की किताब उलटाकर देखता हूं, फिर बंद कर देता हूं। बिल्कुल रूखा-सूखा है। मैं भी चेष्टा करके कविता उसमें डाल न सकूंगा। बड़ी अड़चन होगी। काव्य है ही नहीं। रसधार बहती ही नहीं। सीधा-सीधा गणित का हिसाब है--दो और दो चार।
जैन शास्त्र पैदा ही तब हुए, जब भारत एक बड़ी बौद्धिक क्रांति से गुजर रहा था। सारा देश बड़े चिंतन में लीन था। सदियों के चिंतन के बाद निष्कर्ष लिए जा रहे थे। ऐसा भारत में ही था ऐसा नहीं, सारी दुनिया में एक महत ऊर्जा उठी थी। भारत में बुद्ध थे, महावीर थे, मक्खली गोशाल था, अजित केशकंबल था, निगंठनाथपुत्त महावीर थे। यूनान में थेलीस, सुकरात, प्लेटो, अरिस्टोटल। ईरान में जरथुस्त्र। चीन में कन्फ्यूसियस, लाओत्सु, च्वांगत्सु, लीहत्सु।
सारी दुनिया में एक बड़ी तीव्र उत्क्रांति हो रही थी। सब तरफ हवा गर्म थी। विचार कसे जा रहे थे। विचार, तर्क, चिंतन, मनन अपनी आखिरी कसौटी छू रहा था, आखिरी ऊंचाई छू रहा था। उस उत्तुंग क्षण में जिन-सूत्र रचे गए। वे उस दिन की पूरी खबर लाते हैं, उस दिन का पूरा वातावरण, उस दिन की पूरी हवा और मौसम उनमें छिपा हुआ है।
भक्त बड़े और ढंग से जीता है। भक्त का मार्ग स्त्रैण है। इसीलिए जैन तो मानते ही नहीं कि स्त्री का मोक्ष हो सकता है। उस मानने में बड़ा विचार है। एक बात निश्चित है, जैन शास्त्र में स्त्री का मोक्ष नहीं हो सकता।
स्त्री का हो सकता है कि नहीं इस पर पूरा, किसी को कोई दावा नहीं कहने का; लेकिन इतनी बात पक्की है कि जैन शास्त्र से तो नहीं हो सकता। क्योंकि जैन शास्त्र से स्त्री का मेल ही नहीं बैठ सकता। वह उनमें हृदय है ही नहीं।
उसमें तो सभी पुरुषों का भी बैठ जाए मेल, यह भी कठिन मालूम होता है।
तो जैन शास्त्र ठीक ही कहते हैं कि स्त्री का मोक्ष नहीं हो सकता। क्योंकि जैन शास्त्र पुरुष मन की खोज है--तर्क, चिंतन, मनन। प्रेम की खोज नहीं है। इसलिए एक बड़ी अनूठी घटना घटी। जैनों का एक तीर्थंकर--तेईसवां--एक तीर्थंकर स्त्री थी। नाम है मल्लीबाई। लेकिन जैनों ने मल्लीबाई को मल्लीबाई लिखना भी पसंद न किया। वे उसको मल्लीनाथ लिखते हैं। वह थी तो स्त्री, लेकिन बना दिया पुरुष। वे मानते नहीं कि मल्लीबाई स्त्री थी। वे कहते हैं, मल्लीनाथ। और मुझे भी लगता है, वे ठीक कहते हैं। वह चाहे देखने में स्त्री रही हो, भीतर से पुरुष ही रही होगी। इसलिए नाम बदला तो ठीक ही किया। मल्लीबाई मल्लीनाथ ही रही होगी। हृदय तो नहीं रहा होगा। इसलिए बात तो ठीक ही लगती है।
पुरुष का चित्त तो तर्क की धार है, गणित का हिसाब है, विज्ञान का फैलाव है। विश्लेषण उसका द्वार है। स्त्री का चित्त अलग ढंग से धड़कता। हृदय, प्रेम, रस--"रसो वै सः"। स्त्री के लिए परमात्मा रस-रूप है, कृष्ण-रूप है। सत्य यानी प्रीतम। सत्य यानी सिर्फ गणित का कोई अंतिम निष्कर्ष नहीं। सत्य यानी जहां हृदय झुक जाए।
किए दिल ने हरेक जगह तुझको सिजदे
जबीं ढूंढ़ती ही रही आस्ताना
हृदय झुकता ही रहा। जहां गया वहीं अपने प्रीतम को खोज लिया। और बुद्धि खोजती ही रही कि वह जगह कहां है, जहां मैं झुकूं? बुद्धि खोज-खोजकर जगह नहीं पाती कि कहां झुकूं; और हृदय को बिना खोजे जगह मिल जाती है। हृदय की एक छलांग है।
और जब मैं कह रहा हूं स्त्री-चित्त, तो तुम यह मत सोचना कि तुम पुरुष
हो तो प्रेम तुम्हारे लिए नहीं। और तुम ऐसा भी मत सोचना कि तुम स्त्री हो तो जिन-सूत्र तुम्हारे लिए नहीं है। शरीर से स्त्री और पुरुष होना एक बात है, चित्त से स्त्री और पुरुष होना बिल्कुल दूसरी बात है।

अगर जैनों ने मल्लीबाई को मल्लीनाथ कहा, तो ठीक ऐसे ही चैतन्य महाप्रभु को चैतन्यबाई कहा जा सकता है। वह स्त्रैण चित्त है। वह गौरांग का नाचता हुआ रूप! --जैसे राधा हो गए। किसी ने ऐसी हिम्मत नहीं की। क्योंकि स्त्री को पुरुष बनाना तो आसान मालूम होता है। कहते हैं, "खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसीवाली रानी थी।" लेकिन किसी पुरुष को नामर्द कहो तो झगड़ा खड़ा हो जाता है।
पुरुषों की दुनिया है यह। यहां स्त्री को अगर पुरुष कहो तो मालूम होता है, प्रशंसा कर रहे हो। और अगर पुरुष को स्त्री कहो तो लगता है निंदा हो गई। चूंकि पुरुष ने ही सारे मापदंड तय किए हैं।
लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, यह बात गलत है। अगर मल्लीबाई मल्लीनाथ कही
जा सकती है तो क्यों नहीं चैतन्य को चैतन्यबाई कहो? ज्यादा उचित होगा। ठीक-ठीक खबर मिलेगी।
तो तुम ऊपर शरीर को आईने में देखकर तय मत कर लेना, भीतर खोजबीन करना।
अगर तुम हृदय की तरफ झुके हो तो तुम स्त्रैण हो। अगर तुम बुद्धि की तरफ झुके हो तो तुम पुरुष हो। जो मनोवैज्ञानिक मापदंड है वह हृदय और बुद्धि के बीच तय होगा।
हृदय का रास्ता सुगम है। और हृदय का रास्ता अत्यंत उल्लासपूर्ण है। वहां कोई खंड, कोटियां, विभाजन नहीं हैं।
इसलिए महावीर तो कहते हैं, मेरी दृष्टि भेद-विज्ञान की है। और भक्त कहते हैं, हमारी दृष्टि अभेद-विज्ञान की है। हम एक को ही देखते हैं। अनेक में भी एक को ही देखते हैं। हमें एक ही दिखाई पड़ता है। सभी रूप उसके मालूम होते हैं। सभी नाम उसके मालूम होते हैं। रूप के कारण भक्त धोखे में नहीं पड़ता। आकृति के कारण धोखे में नहीं पड़ता। वह सभी आकृतियों में छिपे निराकार को देख लेता है।
और भक्ति को मैं कहता हूं, वह एक छलांग है। इसलिए भक्ति तो एक क्षण में
भी घट सकती है। ज्ञान के लिए सदियां लग जाती हैं। तुम्हारी मर्जी! ज्ञान से भी लोग पहुंचते हैं।
कुछ हैं, जो सीधी तरह से कान पकड़ना जानते ही नहीं। करोगे भी क्या? वे चक्कर लगाकर, हाथ से सिर के पीछे से घूमकर कान पकड़ते हैं। कुछ को अपने घर भी आना हो तो वे पहले सारी दुनिया का चक्कर लगाकर फिर घर आते हैं। अगर तुम चलते ही रहो, चलते ही रहो तो जमीन गोल है, एक दिन अपने घर आ जाओगे चलते-चलते- चलते।
मैंने सुना है एक आदमी भागा जा रहा था। राह किनारे बैठे एक बूढ़े से पूछा कि दिल्ली कितनी दूर है? सभी लोग दिल्ली जा रहे हैं तो वह भी जा रहा होगा। एक बुखार है, दिल्ली चलो। उस बूढ़े ने कहा, जिस तरफ तुम भागे जा रहे हो, अगर उसी तरफ भागे गए तो बहुत दूर है क्योंकि दिल्ली पीछे छूट गई। अगर तुम इसी दिशा में भागे चले जाओ तो पहुंचोगे जरूर एक दिन दिल्ली, लेकिन सारी दुनिया का चक्कर लगाकर पहुंचोगे। हजारों मील की यात्रा है। अगर लौट पड़ो तो दिल्ली बिल्कुल पीछे है। आठ मील पीछे छोड़ आए हो।
अगर बुद्धि की तरफ से गए तो बड़ी लंबी यात्रा है। पृथ्वी भी इतनी बड़ी नहीं है। क्योंकि बुद्धि के फैलाव का कोई अंत ही नहीं है। बुद्धि का आकाश बहुत बड़ा है।
मैंने सुना है कि शिव अपने बेटों के साथ खेल रहे हैं--कार्तिकेय और गणेश। और ऐसे ही खेल में उन्होंने कहा कि तुम मानते हो कि मैं ही यह सारी सृष्टि हूं? तो मेरे भक्त को मेरी परिक्रमा कैसी करनी चाहिए, तुम बताओ। तो कार्तिकेय तो बड़े बुद्धिमान रहे होंगे, ज्ञानी रहे होंगे। चले सारी सृष्टि का चक्कर लगाने। शिव की परिक्रमा करनी है। और शिव यानी सारी सृष्टि। सब में व्याप्त परमात्मा। पता नहीं अभी तक लौटे भी कि नहीं कार्तिकेय। कहानी कुछ कहती नहीं। गणेश ने ज्यादा होशियारी की। वजनी शरीर, हाथी की सूंड! अब इतनी बड़ी पृथ्वी का चक्कर क्या? उन्होंने शिव का चक्कर लगाकर जल्दी से वहीं बैठ गए। हो गई! सृष्टि की परिक्रमा हो गई। अगर शिव ही समाए हैं सारी सृष्टि में तो अब सारी सृष्टि की परिक्रमा क्या करनी! शिव की कर ली तो सारी सृष्टि की हो गई। कार्तिकेय ने सोचा ठीक उलटा। वह भी ठीक

है, वह भी तर्क ठीक है। कि जब सारी सृष्टि में समाए हैं तो सारी सृष्टि की जब परिक्रमा होगी तभी तो परिक्रमा हो पाएगी।
बुद्धि यानी कार्तिकेय। हृदय यानी गणेश। हृदय से तो अभी घट सकता है।
ऐसा एक चक्कर मारा शिव का और बैठ गए कि हो गई बात पूरी।
लेकिन बुद्धि से बहुत लंबी यात्रा है--अनंत काल। जो क्षण में हो जाता है, वह शायद अनंत काल में ही हो पाए। तुम पर निर्भर है। किन्हीं-किन्हीं को यात्रा का ही सुख आता है तो उन्हें रोकने का कोई कारण नहीं।
लेकिन अपने भीतर ठीक से जांच कर लेना। भक्त के लिए तो भगवान चुपचाप आ जाता है। अचानक आ जाता है।
एक दिन चुपचाप अपने आप
यानी बिन बुलाए तुम चले आए
मुझे ऐसा लगा, जैसे लगा था रातभर
इसकी प्रतीक्षा में कि दोनों हाथ फैलाकर
तुम्हें उल्लास से खींचा
सबेरे की किरण-कुसुम को हाथ से सींचा
एक दिन चुपचाप अपने आप
यानी बिन बुलाए तुम चले आए
भक्त तो सिर्फ प्रतीक्षा करता है। कहां जाए खोजने? कहां है परमात्मा
या कहां परमात्मा नहीं है? कहां खोजने जाए? या तो सब जगह है या कहीं नहीं है। कहां खोजने जाए? परमात्मा की कोई दिशा तो नहीं। भक्त सिर्फ प्रतीक्षा करना जानता है। रोता है, प्रार्थना करता है, आंसू गिराता है।
एक दिन चुपचाप अपने आप
यानी बिन बुलाए तुम चले आए
भक्त तो कहता है हम बुलाएं भी किस जबान से? किस जुबां से? किन ओंठों से लें तेरा नाम? ओंठ हमारे झूठे हैं। और उनसे हम और बहुत नाम ले चुके हैं। कैसे पुकारें तुझे? हमारी सब पुकार बड़ी छोटी है, क्षीण है। कहां खो जाएगी इस विराट में, पता भी न चलेगा।
एक दिन चुपचाप अपने आप
यानी बिन बुलाए तुम चले आए
मुझे ऐसा लगा, जैसे लगा था रातभर
इसकी प्रतीक्षा में...
और भक्त कहता है, वे जो बीत गईं जीवन की घड़ियां, बस एक रात थी, जो प्रतीक्षा में बीत गई।
कि दोनों हाथ फैलाकर
तुम्हें उल्लास से खींचा
सबेरे की किरण-कुसुम को हाथ से सींचा
भक्त को भगवान मिलता है। भक्त को भगवान स्वयं खोजता है। ज्ञानी सत्य
की खोज करता है। भक्त को भगवान खोजता है। भक्त कहीं जाता-आता नहीं। किन्हीं सीढ़ियों पर यात्रा नहीं करता... ।
पीड़ ऐसी कि घटा छायी है
ठंडी यह सांस की पुरवाई है
तुझको मालूम क्या है आज यहां
बरखा बादल के बिना आयी है
वर्षा हो जाती है बादल के बिना आए। उसका अमृत-घट भर जाता है। बादल भी नहीं उमड़ते-घुमड़ते और वर्षा हो जाती है।
अतर्क्य है भक्त का मिलन परमात्मा से। ज्ञानी का तो तर्क है। ज्ञानी
का तो बिल्कुल साफ-साफ है। रत्ती-रत्ती का उत्तर है। ज्ञानी अर्जित करता है। भक्त के लिए भगवान प्रसाद-रूप है। भक्त कहता है, मेरे किए मिलेगा यह संभव ही नहीं है। मेरे किए ही तो चूक रहा है। मेरे कारण ही तो बाधा पड़ रही है। भक्त अपनी बाधा हटा लेता है।
ज्ञानी जिस दिन पाता है, उस दिन किसी को धन्यवाद देने की भी जरूरत नहीं है। क्योंकि उसने अर्जित किया है। इसलिए महावीर की संस्कृति का नाम

पड़ गया है श्रमण संस्कृति। श्रम से पाया है, चेष्टा से पाया है, पुरुषार्थ से पाया है।
भक्त तो कहता है, भगवान प्रसाद-रूप मिला है। मैंने पाया, ऐसी बात ही गलत है।
ज्ञानी तो कहता है, जब तक मैं पूर्ण न हो जाऊं तब तक कैसे सत्य मिलेगा? इसलिए ज्ञानी अपने को पूर्ण करने में लगता है। ज्ञानी की साधना है, भक्त की तो सिर्फ प्रार्थना है। भक्त कहता है, पूर्ण और मैं? होनेवाला नहीं। मिलोगे तो अपूर्ण में ही मिलन होगा। मर्जी हो तो जैसा हूं, ऐसा ही स्वीकार कर लो। मुझसे यह सधेगा न, कि मैं पूर्ण हो सकूं।
तो ज्ञान में एक खतरा है कि अहंकार बच जाए। भक्ति में अहंकार का खतरा नहीं है। भक्ति का खतरा दूसरा है--कि आलस्य का नाम भक्ति बन जाए। ज्ञान में आलस्य का खतरा नहीं है। दोनों के खतरे हैं, दोनों के लाभ हैं। ज्ञानी का खतरा है कि अहंकारी हो जाए कि मैंने अर्जित किया। भक्त का खतरा है कि आलस्य प्रतीक्षा बन जाए। आलस्य प्रतीक्षा नहीं है। प्रतीक्षा बड़ी सक्रिय चित्त की दशा है, सक्रिय और निष्क्रिय एक साथ। बड़ी तीव्र प्यास की दशा है। तुमने कभी देखा? ओलंपिक के चित्र देखे होंगे। दौड़ के लिए प्रतियोगी खड़े होते हैं रेखा पर। सीटी बजने की प्रतीक्षा है। दौड़े नहीं हैं अभी। ऊर्जा से भरे खड़े हैं। एक क्षण, एक-एक क्षण सूचना की प्रतीक्षा है, और दौड़ पड़ेंगे। दौड़े नहीं हैं अभी, लेकिन ऊर्जा से भरे खड़े हैं।
ऐसी ही दशा भक्त की है। खोजने नहीं जाता लेकिन आलस्य में नहीं है। बड़ी त्वरा से भरा है।
एक गीत कल मैं पढ़ रहा था। है तो इस संसार के प्रेम का गीत लेकिन प्रेम
इस संसार का हो कि उस संसार का, बहुत भेद नहीं।
देखती ही न दर्पण रहो प्राण तुम
प्यार का महूरत निकल जाएगा
कौन शृंगार पूरा यहां कर सका
सेज जो भी सजी सो अधूरी सजी
हार जो भी गुंथा सो अधूरा गुंथा
बीन जो भी बजी सो अधूरी बजी
हम अधूरे, अधूरा हमारा सृजन
पूर्ण तो बस एक प्रेम ही है यहां
कांच से ही ना नजरें मिलाती रहो
बिंब को मूक प्रतिबिंब छल जाएगा
देखती ही न दर्पण रहो प्राण तुम
प्यार का यह महूरत निकल जाएगा
भक्त कहता है, हम तो अपूर्ण हैं। कब तक सजते-संवरते रहें? तुम हमें ऐसे ही स्वीकार कर लो। हम कभी पूर्ण हो पाएंगे इसकी संभावना भी नहीं। लेकिन हमारा प्रेम पूर्ण है। हम अपूर्ण होंगे, हमारी चाह पूर्ण है। हमारी चाहत देखो।
कौन शृंगार पूरा यहां कर सका
सेज जो भी सजी सो अधूरी सजी
हार जो भी गुंथा सो अधूरा गुंथा
बीन जो भी बजी सो अधूरी बजी
हम अधूरे, अधूरा हमारा सृजन
पूर्ण तो बस एक प्रेम ही है यहां
कांच से ही नजरें ना मिलाती रहो
बिंब को मूक प्रतिबिंब छल जाएगा
भक्त कहता है, जो अभी मिल सकता है उसे कल पर मत टालो। जो इसी क्षण घट सकता है, उसे कल पर मत टालो। मत कहो कि हम तैयार होंगे। हम सीमित हैं। हमारी सीमाएं हैं। हम अपूर्ण हैं। हमारी चाहत पूर्ण हो सकती है, हमारी अभीप्सा पूर्ण हो सकती है, लेकिन हम पूर्ण नहीं हो सकते।

यहां फर्क तुम समझने की कोशिश करना। ज्ञानी कहता है, चाहत छोड़ो और पूर्ण बनो। भक्त कहता है, चाहत को पूर्ण करो; तुम्हारी पूर्णता-अपूर्णता की चिंता न करो। दोनों विपरीत, लेकिन पहुंच जाते हैं एक ही शिखर पर।

चौथा प्रश्नः ओशो एशो आमी तोमार बोइरागी
आमी पूना गेलाम, आमी काशी गेलाम
लाओ री लाओ संगे डुगडुगी
बहुत हंसी आती है। अब तो डुगडुगी के सिवा कुछ बचा नहीं है।

डुगडुगी ही बच जाए तो सब बच गया। डुगडुगी खो जाए तो सब खो गया। तुम डुगडुगी हो जाओ तो सब हो गया। आह्लाद! नृत्य! तुम्हारे भीतर के स्वर नाचने लगें, गुनगुनाने लगें, तो निश्चित ही फिर हंसी के योग्य ही है सब--सब खोजबीन, सब दौड़धूप।
भक्त तो उत्सव में मानता है। भक्त तो उत्सव को ही पूजा और प्रार्थना बनाता है। यह जगत एक महोत्सव है। इसमें तुम नाहक उदास-उदास बैठे हो। सम्मिलित हो जाओ। सब थिरक रहा है, तुम भी थिरको। सब नाच रहा है। देखो चांद-तारे, देखो वृक्ष, पशु-पक्षी, देखो हवाएं, अकाश में घिरे बादल, ये बूंदों की टिपटिप! सब नाच रहा है। यहां थिर कोई भी नहीं है। सब फुदक रहे हैं। सिर्फ आदमी उदास है।
डुगडुगी बनो। बजो। बांसुरी बनो। फूटने दो स्वर कोः झरनों की तरह, चांद-तारों की तरह। नाचो, इस महत नृत्य में सम्मिलित हो जाओ।
तब जरूर हंसी आएगी। हंसी आएगी, नाहक इतने दिन उदास रहे। नाहक इतने दिन रोए। नाहक इतने दिन वंचित रहे। जो मिला ही था, उसके साथ नाच क्यों न सके? रास हो ही रहा है। यह ब्रह्मांड रास की एक प्रक्रिया है।
तुम्हें सुनाई नहीं पड़ता? बांसुरी कभी बंद नहीं हुई, बज ही रही है। तुम बहरे हुए हो। अंधे हुए हो। नाच हो ही रहा है। ऐसा नहीं था कि कुछ कभी वृंदावन में हुआ था, अब नहीं हो रहा है। परमात्मा नाच ही रहा है। जिनके पास आंखें हैं, वे जहां भी हैं, उन्हें वहीं वृंदावन के दर्शन हो जाएंगे। हंसी तो आएगी। क्योंकि तब पता चलेगा कि हम अकारण ही परेशान थे। हंसी अपने पर आएगी। हंसी औरों पर भी आएगी, जो अभी भी परेशान हैं। हंसी आएगी इस सारे खेल पर।
इसीलिए तो भक्तों ने कहा है कि यह जगत लीला है। यह खेल है। इसे बहुत गंभीरता से मत लो। गंभीरता ज्ञानी का मार्ग है; सरलता, उत्फुल्लता भक्त का।
हंसी तो आएगी क्योंकि फिर जो कहने योग्य मालूम पड़ेगा उसे कह भी न सकोगे। हंसकर ही कहा जा सकता है या रोकर कहा जा सकता है। वाणी बड़ी छोटी पड़ जाती है। डुगडुगी बजाकर ही कहा जा सकता है।
शब-ए-वस्ल की क्या कहूं दास्तां
जबां थक गई, गुफ्तगू रह गई
उस मिलन की रात की कहानी क्या कहूं? कैसे कहूं?
जबां थक गई, गुफ्तगू रह गई
कहते-कहते जबान तो थक गई लेकिन जो कहना चाहते थे, वह नहीं कहा जा सका। बजाओ डुगडुगी! उससे ही कहो। नाचो! ले लो एकतारा हाथ में। और जो तुम्हें नाचकर मिलेगा, वह किसी शास्त्र से किसी को कभी नहीं मिला।
नृत्य का अर्थ है, गीत का अर्थ है, उत्सव का अर्थ है कि तुमने पैर से पैर मिलाए अस्तित्व के साथ। तुम ऐसे किनारे पर न खड़े रहे राह के। जा रही थी यात्रा, रथोत्सव हो रहा था, तुम भी सम्मिलित हुए। नाचता जा रहा है अस्तित्व प्रतिपल। तुम क्यों बैठे किनारे? कैसे उदास? कैसे हताश?
उठो! लौटाओ अपनी थिरक! इस नाचते हुए रासमंडल में सम्मिलित हो जाओ। खो जाओगे उस नृत्य में। तुम न बचोगे। डुगडुगी बजेगी तो तुम न बचोगे।
भक्त खोने की तैयारी रखता। ज्ञानी अपने को बचाता, निखारता। भक्त अपने
को डुबाता और खोता।
मिलते ही किसी के खो गए हम

जागे जो नसीब सो गए हम
जब वस्तुतः भाग्य जागता है, जब वस्तुतः वर्षा होती है, जब वस्तुतः अमृत के द्वार मिलते हैं तो तुम नहीं बचते। कोई आज तक परमात्मा से मिला थोड़े ही! मिलने के पहले ही खो जाता है। मिलने की पहली शर्त खो जाना है। मिलते ही किसी के खो गए हम
जागे जो नसीब सो गए हम
भक्त के लिए प्रतिपल प्रतीक्षा का है। वह राह देख ही रहा है। कब आ जाएंगे उसके प्रीतम, कहा नहीं जा सकता।
आज आएंगे वो गीतों को जरा चुप कर दो
चांद को नभ से उतारो और द्वारे धर दो
चलकर आते हैं, थके होंगे, चरण धोने को
आंसू यह कम हैं, जरा आंख में शबनम भर दो
चलकर आते हैं, थके होंगे, चरण धोने को
आंसू यह कम हैं, जरा आंख में शबनम भर दो
भक्त, भगवान है या नहीं ऐसी जिज्ञासा ही नहीं करता। भगवान आ ही रहा है। भक्त को प्रश्न ही नहीं उठा है भगवान के होने न होने का।
जिसको प्रश्न उठ गया, वह श्रद्धा न कर पाएगा।
हम भक्त की तरह पैदा होते हैं, फिर विनष्ट हो जाते हैं। इसे थोड़ा समझने की कोशिश करना। प्रत्येक बच्चा भक्त की तरह पैदा होता है। होना ही चाहिए क्योंकि स्त्री के गर्भ से पैदा होता है। हृदय के पास धड़कता हुआ पैदा होता है। होना ही चाहिए प्रत्येक बच्चा भक्त की तरह पैदा--श्रद्धा से भरा, स्वीकार-भाव से। "हां" हर बच्चे का स्वर है। धीरे-धीरे "ना" सीखता है, नहीं सीखता है, नकार सीखता है, नास्तिकता सीखता है।
नास्तिकता सीखी जाती है, आस्तिकता हमारा स्वभाव है। नास्तिकता हम बाहर से सीख लेते हैं। जीवन के कड़वे-मीठे अनुभव, जीवन की धोखाधड़ी हमें नास्तिकता के लिए तत्पर कर देती है। संदेह हम सीखते हैं। श्रद्धा हम लेकर आते हैं। नास्तिक कोई पैदा नहीं होता, नास्तिक निर्मित होते हैं। आस्तिक पैदा होते हैं। आस्तिक हमारा स्वभाव है।
छोटा बच्चा "नहीं" कहना जानता ही नहीं। कुछ भी कहो, "हां" कहता है। अभी उसने "नहीं" सीखी नहीं है। अभी जीवन ने उसे इतना दुख नहीं दिया कि वह नहीं कहे। अभी इनकार उसे आया नहीं। अभी किसी ने धोखाधड़ी नहीं की। अभी किसी ने वंचना नहीं की। किसी ने जेब नहीं काटी। किसी ने उसे सताया नहीं। अभी वह ना कहे कैसे?
आस्तिकता स्वाभाविक है। भक्ति हम लेकर आते हैं। संदेह हम सीखते हैं। संदेह बाहर से उधार मिलता है। अगर तुम्हारे मन में प्रश्न हैं तो फिर तुम्हें ज्ञान के रास्ते पर थोड़ी यात्रा करनी होगी। अगर कोई प्रश्न नहीं हैं जीवन में, और तुम्हारे मन में संदेह सहज नहीं उठता, आदत गहरी नहीं हुई संदेह की तो फिर कोई भी अड़चन नहीं है। तुम इसी क्षण परमात्मा के मंदिर में प्रविष्ट हो सकते हो। द्वार-दरवाजे बंद भी नहीं हैं।

पांचवां प्रश्नः ऐसा लगता है कि अब थोड़ी-सी आयु ही बची है। न जाने कौन
कब इस शरीर को समाप्त कर दे! इससे मन में एक उतावलापन रहता है कि जो करना है, शीघ्रता से करूं; अन्यथा बिना कुछ पाए ही चला जाना होगा। भय या अड़चन बिल्कुल नहीं लगती। हर क्षण जाने को तैयार हूं। दुबारा आने से भी डर नहीं लगता। परंतु एक भय, एक अड़चन अवश्य सताती है कि उस समय आप गुरु भगवान तो नहीं उपलब्ध होंगे। क्या मेरा उतावलापन उचित है? मैं क्या कर सकता हूं? हर प्रकार से तैयार ही होकर आया हूं।

ओमप्रकाश सरस्वती ने पूछा है। मैं जानता हूं, वे पूरी तरह तैयार होकर
आए हैं। वे कुछ भी खोने को तैयार हैं, कुछ भी देने को तैयार हैं। और उसी कारण बाधा है।
हृदय उनका भक्त का है, ज्ञानी का नहीं है। अगर ज्ञानी का उनका स्वभाव होता तो सब कुछ देने की यह तैयारी उन्हें गुणस्थानों की सीढ़ियों पर चढ़ा

देती। लेकिन बुद्धि उनका स्वभाव नहीं है, हृदय उनका स्वभाव है। इसलिए सब देने की यह तैयारी ही बाधा है। इसे भी छोड़ो। उसका ही है, देना क्या है? समर्पण भी क्या करना है? उसकी ही वस्तुएं उसे देते हुए शर्म खाओ।
यह बात ही भूलो कि कुछ देना है। यह बात ही भूलो कि कुछ करना है। यह पूछो ही मत कि मैं क्या करूं? उतावलापन है? उतावलेपन को उतावलापन मत कहो। वह शब्द गलत है। उसे प्रतीक्षा कहो, त्वरित प्रतीक्षा कहो, त्वरा से भरी प्रतीक्षा कहो, अभीप्सा कहो। उतावलापन गलत व्याख्या है।
निश्चित ही भक्त को भी एक अधैर्य होता है कि पता नहीं कब मिलन होगा! लेकिन उसके अधैर्य में एक सौंदर्य है। वह अधैर्य में भी शांति से जीता है।
वह जानता है कि मिलना तो होगा; चाहता है जल्दी हो जाए।
उतावलेपन में धीरज नहीं है, सिर्फ अधैर्य है। अभीप्सा में अधैर्य भी
है और धीरज भी है। अभीप्सा बड़ी पैराडाक्सिकल, बड़ी विरोधाभासी स्थिति है। एक तरफ वह जानता है, मिलना तो होना ही है। वह तो निश्चित है। वह बात तो हो ही गई। उसमें कुछ सोचना नहीं है।
दूसरी तरफ वह कहता है, अब जल्दी हो जाए। अब और देर न लगाओ। अब कब से पलक-पांवड़े बिछाकर बैठा हूं। अब आ भी जाओ। और भीतर वह जानता है कि ऐसी जल्दी भी क्या है? आओगे तो तुम निश्चित ही।
भक्त की मनोदशा बड़ी विरोधाभासी है। जो मिला ही हुआ है उसे, उसके लिए तड़फता है। जिसका मिलना बिल्कुल सुनिश्चित है, उसके लिए तड़फता है। उतावलापन मत कहो। कभी-कभी गलत शब्द खतरनाक हो सकता है। उतावलेपन में
एक तरह का तनाव है। अभीप्सा में तनाव नहीं है। प्यास कहो, पुकार कहो। उतावलापन मत कहो। उतावलापन बुद्धि का शब्द है। और ओमप्रकाश बुद्धिमान आदमी नहीं, हृदयवान आदमी हैं।
हृदयवान शब्द का लोग उपयोग ही नहीं करते। किसी को कहो बुद्धिमान नहीं, तो वह नाराज हो जाए। क्योंकि एक ही मतलब होता है, बुद्धिमान नहीं है यानी बुद्धू। दूसरी बात ही हम भूल गए हैं कि कोई हृदयवान भी हो सकता है। ओमप्रकाश हृदय के केंद्र के करीब हैं। घटेगी घटना। घटनी ही है। लेकिन तुम्हारी तरफ से कोई तैयारी की जरूरत नहीं है। और न तुम्हारे पास कोई उपाय है कि तुम कुछ कर सको। तड़पो, रोओ, नाचो। लेकिन यह भी उसे पाने के साधन की तरह नहीं। क्योंकि साधन की तरह सोचना ही बाजार की भाषा है, प्रेम की भाषा नहीं।
नाचो, क्योंकि श्रद्धा है। नाचो, क्योंकि वह आता ही होगा। नाचो, क्योंकि वह आ ही रहा है, रास्ते पर ही है। नाचो, कि दूर उसके रथ के पहियों की आवाज सुनाई ही पड़ने लगी है। कितने ही दूर-दिगंत में, आकाश में बादलों के पास होती है गड़गड़ाहट लेकिन वह चल पड़ा। वह अनंत काल से तुम्हारी तरफ चल ही रहा है।
नाचो! उसने तुम्हें चुन लिया है--साधन की तरह नहीं, साध्य की तरह। गाओ! इसलिए नहीं कि गाने से उसे रिझाना है। गाओ इसलिए, कि उसने तुम्हें रिझा लिया है। अब गाओगे न तो करोगे क्या?
इस फर्क को ख्याल में ले लेना। भक्त साधन की तरह नहीं कुछ करता, साध्य
की तरह करता है। परम आह्लाद से भरकर करता है क्योंकि जो घटना है, वह घट ही चुका है। जो होना है वह हो ही चुका है। उसे रंचमात्र भी संदेह नहीं है। अनंत काल में भी अगर परमात्मा से मिलना होगा तो इसी क्षण मिलना हो गया है। इस श्रद्धा में ही मिलना हो गया है कि अनंत काल में मिलना हो जाएगा।
नारद स्वर्ग जा रहे हैं। और एक वृक्ष के नीचे उन्होंने एक बूढ़े संन्यासी को बैठे देखा, तप में लीन माला जप रहा है। जटा-जूटधारी! अग्नि को जला रखा है। धूप घनी, दुपहर तेज, वह और आग में तप रहा है। पसीने से लथपथ। नारद को देखकर उसने कहा कि सुनो, जाते हो प्रभु की तरफ, पूछ लेना, जरा पक्का करके आना, मेरी मुक्ति कब तक होगी? तीन जन्मों से कोशिश कर रहा हूं। आखिर हर चीज की हद्द होती है।
चेष्टा करनेवाले का मन ऐसा ही होता है, व्यवसायी का होता है। नारद ने कहा जरूर पूछ आऊंगा। उसके ही दो कदम आगे चलकर दूसरे वृक्ष के नीचे, एक बड़े बरगद के वृक्ष के नीचे एक युवा संन्यासी नाच रहा था। रहा होगा कोई प्राचीन

बाउलः एकतारा लिए, डुगडुगी बांधे। थाप दे रहा डुगडुगी पर, एकतारा बजा रहा, नाच रहा। युवा है। अभी बिल्कुल ताजा और नया है। अभी तो दिन भी संन्यास के न थे।
नारद ने कहा--मजाक में ही कहा--कि तुम्हें भी तो नहीं पूछना है कि कितनी देर लगेगी? वह कुछ बोला ही नहीं। वह अपने नाच में लीन था। उसने नारद को देखा ही नहीं। उस घड़ी तो नारायण भी खड़े होते तो वह न देखता। फुर्सत किसे? नारद चले गए। दूसरे दिन जब वापस लौटे तो उन्होंने उस बूढ़े को कहा कि मैंने पूछा, उन्होंने कहा कि तीन जन्म और लग जाएंगे। बूढ़ा बड़ा नाराज हो गया। उसने माला आग में फेंक दी। उसने कहा, भाड़ में जाए यह सब! तीन जन्म से तड़फ रहा हूं, अब तीन जन्म और लगेंगे? यह क्या अंधेर है? अन्याय हो रहा है। नारद तो चौंके। थोड़े डरे भी। उस युवक के पास जाकर कहा कि भई! नाराज मत
हो जाना--वह नाच रहा है--मैंने पूछा था। अब तो मैं कहने में भी डरता हूं। क्योंकि उन्होंने कहा है कि वह युवक, वह जिस वृक्ष के नीचे नाच रहा है, उस वृक्ष में जितने पत्ते हैं, उतने ही जन्म उसे लग जाएंगे।
ऐसा सुना था उस युवक ने, कि वह एकदम पागल हो गया मस्ती में और दीवाना होकर थिरकने लगा। नारद ने कहा, समझे कि नहीं समझे? मतलब समझे कि नहीं? जितने इस वृक्ष में पत्ते हैं इतने जन्म! उसने कहा, जीत लिया, पा लिया, हो ही गई बात। जमीन पर कितने पत्ते हैं! सिर्फ इतने ही पत्ते? खतम! पहुंच गए! कहते हैं वह उसी क्षण मुक्त हो गया। ऐसा धीरज, ऐसी अटूट श्रद्धा, ऐसा सरल भाव, ऐसी प्रेम से, चाहत से भरी आंख... उसी क्षण! पता नहीं उस बूढ़े का क्या हुआ! मैं नहीं सोचता कि वह तीन जन्मों में भी मुक्त हुआ होगा क्योंकि वह वक्तव्य नारायण ने माला फेंकने के पहले दिया था। वह बूढ़ा कहीं न कहीं अब भी तपश्चर्या कर रहा होगा।
अक्सर तुम माला जपते लोगों का चेहरा देखो तो उस बूढ़े का चेहरा थोड़ा तुम्हें समझ में आएगा। बैठे हैं। खोल-खोलकर आंख देख लेते हैं, बड़ी देर हो गई अभी तक। तपश्चर्या, उपवास करते लोगों के चेहरे को गौर से देखो तो उस बूढ़े की थोड़ी पहचान तुम्हें हो जाएगी।
नहीं ओमप्रकाश के लिए वैसा होने की कोई जरूरत नहीं है। लो एकतारा हाथ में, ले लो डुग्गी, नाचो। हो ही गया है। करना क्या है और? परमात्मा को हमने कभी खोया नहीं है, सिर्फ भ्रांति है खो देने की। नाचने में भ्रांति झड़ जाती है। गीत गुनगुनाने में भ्रांति गिर जाती है। उल्लास, उत्सव में राख उतर जाती है, अंगारा निकल आता है।
रही बात कि--"उस समय आप गुरु-भगवान तो नहीं उपलब्ध होंगे।"
अगर मुझसे संबंध जुड़ गया तो मैं सदा उपलब्ध हूं। संबंध जुड़ने की बात है। जिनका नहीं जुड़ा उन्हें अभी भी उपलब्ध नहीं हूं। वे यहां भी बैठे होंगे। जिनसे नहीं जुड़ाव हुआ, उन्हें अभी भी उपलब्ध नहीं हूं। जिनसे जुड़ गया उन्हें सदा उपलब्ध हूं।
ओमप्रकाश से जोड़ बन रहा है। तो घबड़ाओ मत। अहोभाव से भरो। जोड़ बन गया
तो यह जोड़ शाश्वत है। यह टूटता नहीं। इसके टूटने का कोई उपाय नहीं है।
और यह उतावलेपन को तो बिल्कुल भूल जाओ। अधैर्य पकड़ो, लेकिन धीरज के साथ।
दिन जो निकला तो पुकारों ने परेशान किया
रात आयी तो सितारों ने परेशान किया
गर्ज है यह कि परेशानी कभी कम न हुई
गई खिजां तो बहारों ने परेशान किया
यह उतावलापन संसार का है। धन मिल जाए, पद मिल जाए, यह उतावलापन सांसारिक है।
गर्ज है यह कि परेशानी कभी कम न हुई
गई खिजां तो बहारों ने परेशान किया
अब बहार आ गई है। जरा देखो तो! मगर तुम पुरानी खिजां की आदत, पुरानी पतझड़ की आदत परेशान होने की बनाए बैठे हो। यह पुरानी छाया है तुम्हारे अनुभव की। इसे छोड़ो। चारों तरफ वसंत मौजूद है।

अगर मैं कुछ हूं तो वसंत का संदेशवाहक हूं। यह वसंत मौजूद है। यह बहार
आ ही गई है। जरा आंख बंद करो तो भीतर दिखाई पड़े। जरा आंख ठीक से खोलो तो बाहर दिखाई पड़े। अब परेशान होने की कोई भी जरूरत नहीं। जो ऊर्जा परेशानी बन रही है, उसी ऊर्जा को आनंद बनाओ।

आखिरी प्रश्नः कल आपने कहा कि उत्तर गीता से मिला हो तो कृष्ण महाराज
को नमस्कार करना। माना कि कृष्ण से मिलना संभव नहीं, कोई याददाश्त भी नहीं, लेकिन कृपया बताएं कि ओशो महाराज को कैसे नमस्कार करें, जब तक कि भीतर का ओशो उभरकर न आ जाए!

जब तक भीतर का रजनीश उभरकर न आए तब तक नमन करो; जब उभरकर आ जाए तब नमस्कार कर लेना। नमन और नमस्कार में कोई बहुत फासला थोड़े ही है! नमन जरा लंबा कर दिया साष्टांग, तो नमस्कार!
कृष्ण महाराज को नमस्कार करने को कहा क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारे भीतर का कृष्ण तुम्हारे बाहर की कृष्ण की धारणा में दबा रह जाए। कहीं ऐसा न हो कि शास्त्र तुम्हारे सत्य को उभरने न दे। कहीं ऐसा न हो कि उधार ज्ञान तुम्हारी मौलिक प्रतिभा को प्रगट न होने दो। कहीं ऐसा न हो कि तुम सूचनाओं को ही ज्ञान समझते हुए जीयो और मर जाओ; और तुम्हें अपनी कोई जीवंत अनुभूति न हो।
मेरी बात तुम सुन रहे हो। अगर मेरी बात को संगृहीत करने लगे तो खतरा है। सुनो मेरी, गुनो अपनी। समझो, संग्रह मत करो। याददाश्त भरने से कुछ भी न होगा। स्मृति के पात्र में तुमने, जो-जो मैंने तुमसे कहा, इकट्ठा भी कर लिया तो दो कौड़ी का है। उससे कुछ लाभ नहीं। तुम्हारा बोध जगे। जो मैं कह रहा हूं उसे समझो, उससे जागो। कोई परीक्षा थोड़ी ही देनी है कहीं कि तुमने जो मुझसे सुना, वह याद रहा कि नहीं रहा।
एक मित्र एक दिन आए, वे कहने लगे, बड़ी मुश्किल है। रोज आपको सुनता हूं लेकिन घर जाते-जाते भूल जाता हूं। तो अगर मैं नोट लेने लगूं तो कोई हर्ज तो नहीं? तो नोट लेकर भी क्या करोगे? अगर नोट लिया तो नोट-बुक का मोक्ष हो जाएगा, तुम्हारा कैसे होगा? तो याद तो नोट-बुक को रहेगा। तुमको तो रहेगा नहीं।
और याद रखने की जरूरत क्या है? मैंने उनसे पूछा, याद रखकर करोगे क्या? समझ लो, बात हो गई। सार-सार रह जाएगा। फूल तो विदा हो जाएंगे, सुगंध रह जाएगी। पहचानना भी मुश्किल होगा, किस फूल से मिली थी। लेकिन उस सुगंध के साथ-साथ तुम्हारे भीतर की सुगंध भी उठ आएगी। उस सुगंध का हाथ पकड़कर तुम्हारी सुगंध भी लहराने लगेगी।
तो एक दिन तो गुरु को नमस्कार करना ही है। नमन से शुरू करना, नमस्कार
से विदा देनी। इसे याद रखना। इसे भूलना मत। कृष्ण से उतना खतरा नहीं है, जितना तुम्हारे लिए मुझसे खतरा है। क्योंकि कृष्ण से तुम्हारा कोई लगाव ही नहीं। जिनका लगाव है, वे तो मेरे पास आते भी नहीं। तो कृष्ण को तो तुम बड़े मजे से नमस्कार कर सकते हो। असली कठिनाई तो मुझे नमस्कार करने में आएगी।
लेकिन नमस्कार करने के पहले नमन का अभ्यास करना होगा। नमन ही लंबा होकर नमस्कार बनता है। झुको! तुम अगर झुके तो तुम्हारे भीतर कोई जगेगा। तुम अगर अकड़े रहे तो तुम्हारे भीतर कोई झुका रहेगा। तुम झुको तो तुम्हारे भीतर कोई खड़ा हो जाएगा।
बाहर का गुरु तो केवल थोड़ी देर का साथ है ताकि भीतर का गुरु जग जाए। और जिस दिन तुम्हें यह समझ में आ जाता है, उस दिन तुम जल्दी न करोगे हाथ छुड़ाने की।
जमाले-इश्क में दीवाना हो गया हूं मैं
यह किसके हाथ से दामन छुड़ा रहा हूं मैं?
प्रेम में कैसा पागलपन हो गया!
जमाले-इश्क में दीवाना हो गया हूं मैं

प्रेम में ऐसी दीवानगी भी आती है कि प्रेमी से ही हाथ छुड़ाकर भागने के लिए आदमी तत्पर हो जाता है।
जमाले-इश्क में दीवाना हो गया हूं मैं
यह किसके हाथ से दामन छुड़ा रहा हूं मैं
तुम छुड़ाओ मत। जल्दी मत करो। मैं खुद ही चुपचाप हाथ अलग कर लूंगा। तुम जरा तैयार हो जाओ, तुम पकड़ना भी चाहोगे तो मैं पकड़ने न दूंगा। क्योंकि अगर मैंने तुम्हें पकड़ने दिया तो मैं तुम्हारा दुश्मन हुआ, मित्र न हुआ। कल्याणमित्र तो वही है, जो तुम्हें तुम्हारा बोध दे जाए और हट जाए बीच से। जो तुम्हें परमात्मा के द्वार तक पहुंचा जाए, फिर तुम लौटकर उसे खोजो तो मिले भी न।
मगर ऐसा सदगुरु कभी खोता नहीं, क्योंकि तुम उसे अपने अंतर्तम में विराजमान पाओगे। तब तुम अचानक पहचानोगे एक दिन, जो बाहर से बोला था, वह भीतर की ही आवाज थी। जिसने बाहर से पुकारा था वह भीतर से ही उठी पुकार थी। वह जो बाहर दिखाई पड़ा था वह अपने ही अंतर्तम की छवि थी। बाहर जिसके दर्शन हुए थे, वह अपना ही भविष्य रूप धरकर आया था।
घबड़ाओ मत। अभी तो तुम भुलाने की कोशिश करोगे तो भुला न सकोगे। जब तक जाग नहीं गए तब तक भुलाना संभव भी नहीं, उचित भी नहीं। संभव हो तो भी उचित नहीं।
किस-किस उन्वां से भुलाना उसे चाहा था रविश
किसी उन्वां से मगर उनको भुलाया न गया
जब तक तुम जाग ही नहीं गए हो, जब तक तुम अपने प्रीतम स्वयं ही नहीं बन
गए हो, तब तक तुम भुला भी न सकोगे कृष्ण को, या महावीर को, या मोहम्मद का। किस-किस उन्वां से भुलाना उसे चाहा था रविश
किसी उन्वां से मगर उनको भुलाया न गया
भुलाने की जल्दी भी मत करो। जागने की फिक्र करो। भुलाने पर जोर मत दो, जागने पर जोर दो। इधर तुम जागे, कि एक अर्थ में तुम भूल जाओगे गुरु को और एक गहरे अर्थ में पहली दफे तुम उसे पाओगे। अपने ही भीतर विराजमान पाओगे। तुम्हारे ही सिंहासन पर विराजमान पाओगे। तुम्हारी ही आत्मा जैसा विराजमान पाओगे।
अचानक तुम पाओगे, गुरु और शिष्य दो नहीं थे।
मैं तुम्हारी ही संभावना हूं। जो तुम हो सकते हो, उसकी ही खबर हूं।
लेकिन छुड़ाने की कोई जल्दी नहीं है। जल्दी छुड़ाने में तो तुम अटके रह जाओगे। लाभ भी न होगा। छूटना तो हो ही जाएगा। सीख लो। जाग लो। तुम हो जाओ।
मां अपने छोटे बच्चे को चलना सिखाती है। हाथ पकड़कर सिखाती है।
हालांकि बच्चा हाथ छोड़ना चाहता है। क्योंकि बच्चे के अहंकार को चोट लगती है कि कोई और मेरा हाथ पकड़कर चलाए! लेकिन मां पकड़ती है। माना कि बच्चे के अहंकार को चोट लगती है, लेकिन अभी उसे उस पर छोड़ा भी नहीं जा सकता है।
अभी तो तुम छुड़ाओगे भी तो मैं न छोडूंगा। अभी भी तुम भागोगे तो मैं तुम्हारा पीछा करूंगा। तुम कहीं भी निकल जाओ, मैं छाया की तरह तुम्हें सताऊंगा। अभी तो उपाय नहीं है।
तो मां पकड़ती है बच्चे का हाथ। फिर एक दिन बच्चा चलने लगता है, तो चुपचाप हाथ को छुड़ाती है--फिर चाहे बच्चा पकड़ना भी चाहे।
क्योंकि अब बच्चे को भी समझदारी आ गई है इतनी कि मां के हाथ में हाथ हो
तो ज्यादा सुरक्षित। अनुभव ने सिखा दिया। कई दफे गिरा है, घुटने टूट गए हैं, अब अनुभव ने सिखा दिया है कि यह हाथ पकड़े ही रहूं। लेकिन अब मां छुड़ाती है।
यही तो जीवन का विरोधाभास है। एक दिन पकड़ना पड़ता है, एक दिन छुड़ाना पड़ता है। जिस सीढ़ी से चढ़ते हो उसे छोड़ना पड़ता है। जिस नाव से दूसरे किनारे जाते हो, उससे उतरना पड़ता है।
इसलिए अभी नमन करो, फिर नमस्कार भी हो जाएगा। तुम न करोगे तो मैं कर लूंगा।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग दो
सत्ताईसवां प्रवचन

पंडितमरण सुमरण है

सरीरमाहु नाव त्ति, जीवो वुच्चइ नाविओ।
संसारो अण्णवो वुत्तो, जं तरंति महेसिणो।। 146।।
धीरेण वि मरियव्वं, काउरिसेण वि अवस्समरियव्वं।
तम्हा अवस्समरणे, वरं खु धीरत्तणे मरिउं।। 147।।
इक्कं पंडियमरणं, छिंदइ जाईसयाणि बहुयाणि।
तं मरणं मरियव्वं, जेण मओ सुम्मओ होइ।। 148।।
इक्कं पंडियमरणं, पडिवज्जइ सुपुरिसो असंभंतो।
खिप्पं सो मरणाणं, काहिइ अंतं अणंताणं।। 149।।
चरे पयाइं परिसंकमाणो, जं किचिं पासं इह मन्नमाणो।
लाभंतरे जीविय वूहइत्ता, पच्चा परिण्णाय मलावधंसी।। 150।।
तस्स ण कप्पदि भत्त-पइण्णं अणुवट्ठिदे भये पुरदो।
सो मरणं पत्थितो, होदि हु सामण्णणिव्विणो।। 151।।

जीवन की सबसे बड़ी पहेली स्वयं जीवन में नहीं है, जीवन की सबसे बड़ी पहेली मृत्यु में है। और जिसने मृत्यु को न जाना वह जीवन से अपरिचित रह जाता है। जीवन को जानने की कुंजी मृत्यु में है।
छोटे बच्चों की कहानियां तुमने पढ़ी होंगी। कोई राजा है या रानी है, उसके जीवन की कुंजी किसी तोते में बंद है या किसी मैना में बंद है। तोते को मरोड़ दो, राजा मर जाता है। राजा को मारने में लगे रहो, राजा नहीं मरता। जीवन को सुलझाने में लगे रहो, जीवन नहीं सुलझता। जीवन का सुलझाव मृत्यु में है।
इसलिए जगत में जो बड़े मनीषी हुए, उन्होंने मृत्यु को समझने की चेष्टा
की है। साधारणजन मृत्यु से बचते हैं, भागते हैं। परिणाम में जीवन से वंचित रह जाते हैं। इस विरोधाभास को जितना ठीक से पहचान लो, उतना उपयोगी है। मृत्यु से भागना मत। जो मृत्यु से भागा, वह जीवन से ही भाग रहा है। क्योंकि मृत्यु जीवन की पूर्णाहुति है। मृत्यु है जीवन का आत्यंतिक स्वर। जीवन मृत्यु पर समाप्त होता, पूरा होता। मृत्यु है फल। जीवन है यात्रा, मृत्यु है मंजिल।
थोड़ा सोचो, मंजिल से बचने लगो तो यात्रा कैसे होगी? और अंतिम से बचने लगो तो प्रथम से ही बचना शुरू हो जाएगा। मौत से जो डरा, मौत से जो भागा, उसके ऊपर जीवन की वर्षा नहीं होती। वह जीवन से अछूता रह जाता है। इसलिए कायर से ज्यादा दयनीय इस जगत में कोई और नहीं है।
पश्चिम के एक बहुत बड़े विचारक आल्बेर कामू ने अपनी एक किताब की शुरुआत इस वचन से की है कि "मेरे देखे दर्शनशास्त्र की सबसे बड़ी समस्या आत्मघात है।"
महावीर से पूछो, बुद्ध से पूछो, तो वे कहेंगे, मृत्यु। कामू कहता है आत्मघात। करीब पहुंचा, लेकिन चूक गया।
मृत्यु और आत्मघात में बड़ा फर्क है। आत्मघात का अर्थ हुआ, जीवन ने अतृप्त किया। जीवन से जो सुख मांगा था, न मिला। जो मूल्य खोजे थे, वे न पाए जा सके। जो आशा की थी, वह टूटी। जो इंद्रधनुष बांधे थे कल्पनाओं के, वे सब बिखर गए। उस हताशा में आदमी अपने को मिटा लेता है।
ऐसी मिटाने की जो वृत्ति है, यह जीवन का अंतिम शिखर नहीं है। यह संगीत
की आखिरी ऊंचाई नहीं है, यह तो वीणा का टूट जाना है।
आत्मघात दूसरा छोर है; जीवन से भी नीचा। मृत्यु आत्मघात के बिल्कुल विपरीत है--जीवन की आखिरी ऊंचाई, जीवन का गौरीशंकर। मृत्यु अर्जित करनी पड़ती है। मृत्यु के लिए साधना करनी प.ड़ती है। मृत्यु को सम्हालना पड़ता है। जो अति कुशल है, वही केवल ठीक-ठीक मृत्यु को उपलब्ध हो पाता है। और ठीक मृत्यु ही न मिली तो जीवन हाथ से बह गया। फिर तुम पाठशाला में तो रहे, लेकिन पाठ न आया। तुम विद्यालय से गए तो लेकिन उत्तीर्ण न हुए।

इसलिए पूरब कहता है, जो उत्तीर्ण न होंगे उन्हें बार-बार भेज दिया जाएगा। उचित है। जीवन से अगर मृत्यु का पाठ सीख लिया तो फिर आना नहीं है।
जो होशपूर्वक, आनंदपूर्वक, उल्लासपूर्वक मरता है उसकी फिर वापसी नहीं है। यही तो पुनर्जन्म का पूरा सिद्धांत है।
तुम भी चाहते हो कि वापसी न हो। लेकिन तुम चाहते हो, वापसी न हो ताकि फिर-फिर न मरना पड़े। वापसी उसकी नहीं होती, जो मरना सीख लेता है। जो इस भांति मर जाता है कि मरने को फिर कुछ और बचता ही नहीं, तो दुबारा मौत नहीं होती। तुम भी चाहते हो कि वापसी न हो। क्योंकि वापसी होगी तो फिर मौत होगी। तुम मौत से डरे हो। जो वस्तुतः वापसी नहीं चाहता वह मौत से डरता नहीं, मौत का आलिंगन करता है।
आज के सूत्र मौत के संबंध में हैं। ये चरम सूत्र हैं। इन पर एक-एक सूत्र को बहुत ध्यानपूर्वक समझने की कोशिश करना। क्योंकि ये तुम्हारे विपरीत भी हैं।
तुम अगर यहां आए तो जीवन की तलाश में आए हो। लोग महावीर के पास गए तो जीवन की तलाश में गए थे। जीवन में हार रहे थे तो तरकीबें खोजने गए थे, कैसे जीत जाएं। लेकिन सदगुरु तो मृत्यु का सूत्र देता है।
उस परम मृत्यु को हमने अलग-अलग नाम दिए हैं। पतंजलि कहते हैं, समाधि। इसीलिए तो जब कोई संन्यासी मरता है तो उसकी कब्र को हम समाधि कहते हैं। अर्थ हुआ कि उसका ध्यान और उसकी मृत्यु एक ही जगह पहुंच गए। साधारण आदमी मरता है तो उसकी कब्र को हम समाधि नहीं कहते, कब्र ही कहते हैं; मकबरा कहते हैं। समाधि नहीं कहते क्योंकि यह आदमी अभी फिर-फिर पैदा होगा। अभी समाधि नहीं मिली, अभी आखिरी मृत्यु नहीं मिली।
समाधि का अर्थ है आत्यंतिक मृत्यु--आखिरी, चरम। अब न कोई जन्म होगा, न मौत होगी। पाठ सीख लिया। यह व्यक्ति विद्यालय से वापिस घर की तरफ लौटने लगा। यह घर में स्वीकृत हो जाएगा। उत्तीर्ण हुआ। प्रमाणपत्र लेकर जा रहा है।
ये सूत्र तुम्हारे विपरीत होंगे। इसलिए और भी गौर से समझोगे तो ही समझ पाओगे। पहला सूत्रः
सरीरमाहु नाव त्ति, जीवो वुच्चइ नाविओ।
संसारो अण्णवो वुत्तो, जं तरंति महेसिणो।।
"शरीर है नाव। जीव है नाविक। यह संसार है समुद्र, जिसे महर्षिजन तर जाते हैं।"
शरीर तो हमारे पास भी है लेकिन शरीर नाव नहीं है। "शरीर नाव है" का अर्थ होता है, शरीर शरीर से श्रेष्ठतर के लिए साधन बने। अभी तो शरीर साध्य है। तुम भोजन जीने के लिए थोड़े ही करते हो। तुम जीते ही भोजन करने के लिए हो। तुम कपड़े थोड़े ही शरीर को बचाने के लिए पहनते हो। तुम शरीर को कपड़े पहनने के लिए बचाए रहते हो। अभी तो शरीर ऐसा लगता है, जैसे गंतव्य है। इसके पार कुछ भी नहीं।
महावीर कहते हैं, शरीर है नाव। अर्थ हुआ, शरीर से पार जाना है। शरीर है नाव। बैठना है, उतरना भी है, शरीर संक्रमण है। नाव में बैठने के पहले भी यात्री था। नाव में बैठा है तब भी है। नाव से उतर जाएगा तब भी होगा। नाव ही यात्री नहीं है। तुम शरीर में आए उसके पहले भी थे, अभी भी हो; शरीर से उतरोगे जिस दिन मौत में, तब भी होओगे। मौत तो दूसरा किनारा है। जन्म है यह किनारा, मृत्यु है वह किनारा; शरीर है नाव। और संसार है सागर।
लेकिन अधिक लोग संसार को सागर की तरह नहीं देख पाते। जब तक तुम्हारा शरीर ही नाव नहीं, तो तुम संसार को सागर की तरह न देख पाओगे। तुम इसी किनारे पर अटके रहते हो। तुम सागर में उतरते ही नहीं। सागर में तो वही उतरता है जो मृत्यु की तरफ स्वयं, स्वेच्छा से अग्रसर होने लगा। मृत्यु यानी वह दूसरा किनारा। तुम तो डर के कारण इस किनारे को पकड़कर रुके रहते हो। तुम तो सब आयोजन करते हो कि किसी तरह यह किनारा न छूट जाए। तुम तो नाव में होकर भी यात्रा नहीं करते।
इसलिए संसार कभी-कभी तो तुम कहते भी हो, संसारसागर, भवसागर। मगर तुम महावीर और बुद्ध के वचन उधार ले रहे हो। बैठे किनारे पर हो, बातें सागर की

कर रहे हो। सागर का तुम्हें कोई पता नहीं। सागर में तो वही उतरता है, जीवन उसी के लिए सागर बनता है, जिसने पहले शरीर को नाव समझा और जो मौत के किनारे की तरफ अग्रसर हुआ।
हमने एक नाव जो छोड़ी भी तो डरते-डरते
इसपे भी ची ब जबीं हो गया दरिया तेरा
कवि ने कहा है, एक नाव भी, छोटी-सी नाव ही हमने तेरे सागर में छोड़ी थी
कि तेरा सागर एकदम नाराज हो गया। एकदम तूफान उठने लगे, लहरें उठने लगीं, आंधियां, बवंडर आ गए।
हमने एक नाव जो छोड़ी भी तो डरते-डरते
कुछ बड़ा किया भी न था। जरा-सी एक नाव छोड़ी थी।
इसपे भी ची ब जबीं हो गया दरिया तेरा
और तेरा दरिया बड़ा नाराज हो गया।
जो व्यक्ति नाव उतारेगा उसी को दरिये की नाराजगी पता चलेगी। किनारे
पर बैठे-बैठे दरिया का पता ही नहीं चलता। सागर का अनुभव तो माझी को होता है। जिसने अपनी छोटी-सी डोंगी को इस विराट सागर में उतार दिया... और कितनी ही बड़ी नाव हो, छोटी ही है। क्योंकि सागर बड़ा विराट है। जिसने तूफान और आंधियों से भरे इस सागर में अपनी नाव को उतार दिया, किसी ऐसे किनारे की तलाश में जो यहां से दिखाई भी नहीं पड़ता।
इसलिए नदी नहीं कहते संसार को, सागर कहते हैं। दूसरा किनारा दिखाई पड़े तो नदी। दूसरा किनारा दिखाई ही नहीं पड़ता। है तो निश्चित। इसीलिए तो हमें मौत दिखाई नहीं पड़ती। है तो निश्चित। इस जीवन में मृत्यु के अतिरिक्त और कुछ भी निश्चित नहीं है। बाकी सब अनिश्चित है। एक ही बात निश्चित है, वह मृत्यु।
किनारा तो निश्चित है। क्योंकि जिसका एक किनारा है, उसका दूसरा किनारा भी होगा ही। कितने ही दूर... कितने ही दूर। एक किनारे के होने में ही दूसरा किनारा हो गया है। अब तुम दृढ़तापूर्वक मान ले सकते हो कि दूसरा किनारा होगा ही। अनुमान की जरूरत नहीं है। यह तो सीधा गणित है। यह किनारा है तो वह किनारा भी होगा। एक छोर है तो दूसरा छोर भी होगा। जन्म हो गया तो मृत्यु भी होगी।
हम अक्सर जीवन को जन्म से ही जोड़े रखते हैं। इसलिए हम जन्मदिन मनाते हैं, मृत्युदिन नहीं मनाते। हालांकि जिसको हम जन्मदिन कहते हैं, वह एक तरफ से जन्मदिन है, दूसरी तरफ से मृत्युदिन है। क्योंकि हर एक वर्ष कम होता जाता है। मौत करीब आती जाती है। अगर ठीक से पूछो तो जन्मदिन से ज्यादा मृत्युदिन है क्योंकि जन्म तो दूर होता जाता, मौत करीब होती जाती है। जन्म का किनारा तो बहुत दूर पड़ता जाता, मौत का किनारा करीब आता जाता। लेकिन फिर भी हम पीछे मुड़कर देखते रहते हैं। हम जन्म के किनारे को ही देखते रहते हैं।
दूसरा किनारा दिखाई नहीं पड़ता इसलिए कहते हैंः भवसागर। होना निश्चित है, लेकिन दृष्टि में नहीं आता। बहुत दूर है।
"शरीर को नाव, जीव को नाविक कहा। यह संसार समुद्र है, जिससे महर्षिजन
तर जाते हैं।"
और जो उस किनारे को छू लेता है, वही महर्षि है। जो जीते-जी मर जाता है वही महर्षि है। जो शरीर की नाव को खेकर उस पार पहुंच जाता है... ।
पहुंचते तो तुम भी हो, बड़े बेमन से। पहुंचते तो तुम भी हो, घसीटे जाते
हो तब। इसलिए तो मृत्यु की एक बड़ी दुखांत धारणा लोगों के मन में है--यमदूत, काले-कलूटे, भयावने, भैंसों पर सवार; घसीटते हैं।
यह बात बेहूदी है। यह तुम्हारे भय की खबर देती है। यह मृत्यु का चित्रण तुमने अपने भय के पर्दे से किया है। तुम भयभीत हो इसलिए भैंसे, काले-कलूटे, यमदूत... । लेकिन महर्षिजनों से पूछो। जिनकी आंख निर्मल है, उनसे पूछो। और उनकी बात ही सच होगी क्योंकि उनकी आंख निर्मल है। वे कहते हैं, मृत्यु में उन्होंने परमात्मा को पाया। यह छोटा, क्षुद्र जीवन गया, विराट जीवन मिला। सीमा टूटी, असीम से मिलन हुआ। असीम का आलिंगन है मृत्यु।

महर्षिजन से पूछो तो वे कहेंगे, परमात्मा बाहें फैलाए खड़ा है। संसार छूटता है निश्चित। पर संसार में पकड़ने जैसा भी कुछ नहीं है। मिलता है अपरिसीम, जाता है क्षुद्र। मिलता है विराट, खोता है क्षुद्र। खोता है क्षणभंगुर, मिलता है शाश्वत।
नहीं, मृत्यु का देवता यमदूत काला-कलूटा, भैंसों पर सवार नहीं है। मृत्यु से ज्यादा सुंदर कुछ भी नहीं है क्योंकि मृत्यु है विश्राम। इस जीवन में निद्रा से सुंदर तुमने कुछ जाना? गहरी निद्रा, जब कि स्वप्न भी थपेड़े नहीं देते। सब वायु-कंप रुक जाते हैं। गहरी निद्रा, जब बाहर का संसार प्रतिछवि भी नहीं बनाता, प्रतिबिंब भी नहीं बनाता। जब बाहर के संसार से तुम बिल्कुल ही अलग-थलग हो जाते हो। गहरी निद्रा, जब तुम अपने में होते हो डूबे, गहरे, तल्लीन--उससे सुंदर इस जगत में कुछ जाना है?
मृत्यु उसका ही अनंतगुना रूप है। मृत्यु से सुंदर कुछ भी नहीं। मृत्यु से ज्यादा शांत कुछ भी नहीं। मृत्यु से ज्यादा शुभ और सत्य कुछ भी नहीं। लेकिन हमारे भय के कारण मृत्यु का रूप हम विकृत कर लेते हैं। हमारे भय के कारण विकृति पैदा होती है।
महावीर कहते हैं, महर्षिजन शरीर को नाव बनाकर, जन्म के किनारे को चेष्टापूर्वक छोड़ते हुए, मृत्यु के किनारे को अपने आप उपलब्ध हो जाते हैं। वे खींचे-घसीटे नहीं जाते। उनके साथ जबर्दस्ती नहीं की जाती, वे स्वेच्छा से संक्रमण करते हैं।
इसका अर्थ हुआ, ऐसे जीयो कि तुम्हारा जीना मृत्यु के विपरीत न हो। ऐसे जीयो कि तुम्हारे जीवन में भी मृत्यु का स्वाद हो। ऐसे जीयो कि जीवन का लगाव ही तुम्हारे मन को पूरा न घेर ले, जीवन का विराग भी जगा रहे।
विजय आनंद एक फिल्म बनाता था। कहानी में नायक के मरने की घड़ी आती।
नायक गिर-गिर पड़ता है, मरता है, लेकिन विजय आनंद का मन नहीं भरता। तो आखिर में वह झल्लाकर, चिल्लाकर नायक से कहता है, अपने मरने में जरा और जान डालिए।
मैंने सुना तो मुझे लगा, यह सूत्र तो महत्वपूर्ण है। जरा उलटा कर लो। विजय आनंद ने कहा, अपने मरने में जरा और जान डालिए। मैं तुमसे कहता हूं, अपने जीवन में थोड़ी और मृत्यु डालिए। मृत्यु से घबड़ाइए मत। मृत्यु को काट-काट अलग मत करिए। रोज-रोज मरिए, क्षण-क्षण मरिए, प्रतिक्षण।
जैसे हम श्वास लेते हैं और प्रतिक्षण श्वास छोड़ते हैं। भीतर जाती श्वास जीवन का प्रतीक है। बाहर जाती श्वास मृत्यु का प्रतीक है। जब बच्चा पैदा होता है, तो पहली श्वास भीतर लेता है, क्योंकि जीवन का प्रवेश होता है। जब आदमी मरता, तो आखिरी श्वास बाहर छोड़ता, क्योंकि जीवन बाहर जाता। भीतर आती श्वास नाव में बैठना है, बाहर जाती श्वास नाव से उतरना है। प्रतिपल घट रहा है। जब तुम भीतर श्वास लेते हो तो जीवन। जब तुम बाहर श्वास लेते हो तो मृत्यु।
ऐसा ही काश! तुम्हारे मन के क्षितिज पर भी उभरता रहे। प्रतिक्षण तुम मरो और जीयो। और प्रतिक्षण जन्म और मृत्यु घटते रहें, और तुम किसी को भी पकड़ो न। और तुम दोनों में संतरण करो और सरलता से बहो, तो एक दिन जब विराट मृत्यु आएगी, तुम अपने को तैयार पाओगे। तो तुम नाव में रहे। तो तुमने शरीर का नाव की तरह उपयोग कर लिया।
ध्यान रहे, प्रतिपल कुछ मर रहा है। ऐसा मत सोचना, जैसा लोग सोचते हैं
कि सत्तर साल के बाद एक दिन आदमी अचानक मर जाता है। यह भी कोई गणित हुआ? मृत्यु कोई आकस्मिक थोड़े ही घटती है। इंच-इंच आती है, रत्ती-रत्ती आती है। रोज-रोज मरते हो, तब सत्तर साल में मर पाते हो। बूंद-बूंद मरते हो तब सत्तर साल में मर पाते हो। यह जीवन का घड़ा बूंद-बूंद रिक्त होता है, तब एक दिन पूरा खाली हो पाता है। ऐसा थोड़े ही कि एक दिन आदमी अचानक जिंदा था और एक दिन अचानक मर गया! सांझ सोए तो पूरे जिंदा थे, सुबह मरे अपने को पाया; ऐसा नहीं होता।
जन्म के बाद ही मरना शुरू हो जाता है। इधर जन्मे, ली भीतर श्वास कि बाहर-श्वास लेने की तैयारी हो गई। फिर जन्म से निरंतर जीवन और मरण साथ-साथ

चलते हैं। समझो कि जैसे दोनों तुम्हारे दो पैर हैं; या पक्षी के दो पंख हैं। न पक्षी उड़ सकेगा दो पंखों के बिना, न तुम चल सकोगे दो पैरों के बिना। जन्म और मृत्यु जीवन के दो पैर हैं, दो पंख हैं।
तुम एक पर ही जोर मत दो। इसीलिए तो लंगड़ा रहे हो। तुमने जिंदगी को लंगड़ी दौड़ बना लिया है। एक पैर को तुम ऐसा इनकार किए हो कि स्वीकार ही नहीं करते कि मेरा है। कोई बताए तो तुम देखना भी नहीं चाहते। कोई तुमसे कहे कि मरना पड़ेगा तो तुम नाराज हो जाते हो। तुम समझते हो यह आदमी दुश्मन है। कोई कहे कि मृत्यु आ रही है तो तुम इस बात को स्वागत से स्वीकार नहीं करते। न भी कुछ कहो तो भी इतना तो मान लेते हो कि यह आदमी अशिष्ट है। मौत भी कोई बात करने की बात है? मौत की कोई बात करता है?
इसलिए तो हम कब्रिस्तान को गांव के बाहर बनाते हैं, ताकि वह दिखाई न पड़े। मेरा बस चले तो गांव के ठीक बीच में होना चाहिए। सारे गांव को पता चलना चाहिए एक आदमी मरे तो। पूरे गांव को पता चलना चाहिए। चिता बीच में जलनी चाहिए ताकि हर एक के मन पर चोट पड़ती रहे। ऐसा क्यों बाहर छिपाया हुआ गांव से बिल्कुल दूर? जिनको जाना ही पड़ता है मजबूरी में, वही जाते हैं। जो भी जाते हैं, वे भी चार आदमी के कंधों पर चढ़कर जाते हैं, अपने पैर से नहीं जाते।
एक झेन फकीर मर रहा था। मरते वक्त एकदम उठकर बैठ गया और उसने अपने शिष्यों से कहा कि मेरे जूते कहां हैं? उन्होंने कहा, क्या मतलब है? जूते का क्या करियेगा? चिकित्सक तो कहते हैं, आप आखिरी क्षण में हैं और आप ने भी कहा, यह आखिरी दिन है। उसने कहा, इसीलिए तो जूते मांगता हूं। मैं चलकर जाऊंगा मरघट। बहुत हो गया यह दूसरों के कंधों पर जाना। जबर्दस्ती मैं न जाऊंगा। कहते हैं, मनुष्य जाति का पहला आदमी! उस आदमी का नाम था बोकोजू। यह झेन फकीर चलकर गया। कब्र खोदने में भी उसने हाथ बंटाया, फिर लेट गया और मर गया।
यह तो कुछ बात हुई। यह इस आदमी ने जीवन का उपयोग नाव की तरह कर लिया। खेकर गया उस पार। लेकिन इसके लिए तो बड़ी प्राथमिक, प्रथम से ही तैयारी करनी होगी। इसके लिए तो पूरे जीवन ही आयोजना करनी होगी। मृत्यु से मिलन के लिए पूरे जीवन धीरे-धीरे मरना सीखना होगा।
जीवन--धर्म की दृष्टि में--मरने की कला को सीखने का अवसर है।
"निश्चय ही धैर्यवान को भी मरना है और कापुरुष को भी मरना है। जब मरण अवश्यंभावी है तब फिर धीरतापूर्वक मरना ही उत्तम है।"
धीरेण वि मरियव्वं, काउरिसेण वि अवस्समरियव्वं।
तम्हा अवस्समरणे, वरं खु धीरत्तणे मरिउं।।
और जब मरना ही है, और जब मरना सुनिश्चित ही है, अवश्यंभावी है, टलने की कोई सुविधा नहीं है, कभी टला नहीं है; हालांकि आदमी अपने अज्ञान में ऐसा मानता है कि किसी और का न टला होगा, मैं टाल लूंगा। आदमी की मूढ़ता की कोई सीमा है।
जो कभी नहीं हुआ, आदमी उसको भी मानता है कि कोई तरकीब निकल आएगी, मेरे लिए हो जाएगा। आदमी का अहंकार ऐसा मदांध है कि यह बात मान लेता है कि मैं अपवाद हूं। और कोई मरता है, सदा कोई और मरता है। मैं तो मरता नहीं। इसलिए मानने में सुविधा भी हो जाती है। जब भी अर्थी तुमने देखी, किसी और की निकलते देखी है। और जब भी ताबूत सजा, किसी और का सजा। चिता जली, किसी और की जली है। तुम तो सदा देखनेवाले रहे। इसलिए लगता भी है कि शायद कोई रास्ता निकल आएगा। मौत मेरी नहीं। मुझे नहीं घटती, औरों को घटती है। ये और सब मरणधर्मा हैं। मैं कुछ अलग, अछूता, नियम के बाहर हूं।
महावीर कहते हैं मृत्यु अवश्यंभावी है; निरपवाद घटेगी। फिर जो होना
ही है, उससे बचने की आकांक्षा व्यर्थ है। फिर जो होना ही है, उससे भय भी व्यर्थ है। धैर्यवान को भी मरना है, वीर पुरुष को भी मरना है, साहसी को भी मरना है, कापुरुष को भी मरना है, कायर को भी मरना है। मरण अवश्यंभावी है। तो फिर धीरतापूर्वक मरना ही उचित है। तो फिर शान से मरना ही उचित है।
जब जो होना ही है तो उसे प्रसादपूर्वक करना उचित है। जो होना ही है उसे शृंगारपूर्वक करना उचित है। जो होना ही है, उसे समारोहपूर्वक करना उचित

है। जब मरना ही है तो फिर रोते, झीकते, चीखते-चिल्लाते अशोभन ढंग से क्यों मरना!
आदमी के हाथ में इतना ही है--मरने से बचना तो नहीं है--आदमी के हाथ में इतना ही है, वह कापुरुष की तरह मरे या एक साहसी व्यक्ति की तरह मरे, धीरपुरुष की तरह मरे। चुनाव मृत्यु और न-मृत्यु में तो है ही नहीं। चुनाव तो इतना ही हमारे हाथ में है कि शान से मरें कि रोते मरें। आंसुओं से भरे मरें या गीतों से भरे मरें। उठकर मौत को आलिंगन कर लें या चीखें-चिल्लाएं, भागें; और मृत्यु के द्वारा घसीटे जाएं।
महावीर कहते हैं, विकल्प तो यहां है--मौत को स्वीकार करके मरें या अस्वीकार करते हुए मरें।
कहावत है, वीर पुरुष एक बार मरता है। कायर अनेक बार। ठीक है कहावत। क्योंकि जितनी बार भयभीत होता है, उतनी बार ही मौत घटती है। वीर पुरुष एक बार मरता। अगर मुझसे पूछो तो कहावत बिल्कुल ठीक, पूरी-पूरी ठीक नहीं है। वीर पुरुष मरता ही नहीं। कापुरुष बार-बार मरता, क्योंकि जिसने मरण को स्वीकार कर लिया उसकी मृत्यु कहां? मृत्यु तो हमारे अस्वीकार के कारण घटती है। वह तो हमारे इनकार के कारण घटती है। वह तो हम घसीटे जाते हैं इसलिए घटती है।
यह बोकोजू जो चल पड़ा जूते पहनकर मरघट की तरफ, यह मरा? इसको कैसे मारोगे? इससे मौत हार गई।
"धैर्यवान को भी मरना, कापुरुष को भी। जब मरण अवश्यंभावी है... ।" महावीर का तर्क सीधा हैः "... तो फिर धीरतापूर्वक मरना उचित है।" धीरतापूर्वक मरने का क्या अर्थ होता है? धीरतापूर्वक मरने का अर्थ होता है, मृत्यु के भय लिए जरा भी अवसर न देना। मृत्यु कंपाए न। धीरपुरुष ऐसा है, जैसे निष्कंप जल। झील शांत। निष्कंप दीये की ज्योति। हवा के कोई झोंके नहीं आते।
धीरपुरुष की वही परिभाषा है, जो गीता के स्थितप्रज्ञ की। कृष्ण से अर्जुन ने पूछा है, किसको कहते हैं आप धीरपुरुष? कौन है स्थितधी? स्थितधी का ठीक अर्थ धीरपुरुष है। कौन है जिसको आप स्थितप्रज्ञ कहते हैं? कौन है जिसकी प्रज्ञा ठहर गई? धी यानी प्रज्ञा। धी यानी आत्यंतिक बोध, अंतर्तम में जलती हुई ज्योति।
कौन है स्थितधी?
महावीर कहते हैं वही, जिसे मृत्यु विचलित नहीं करती। जिसे अपनी मृत्यु विचलित नहीं करती, उसे फिर किसी की मृत्यु विचलित नहीं करती।
वही तो कृष्ण भी अर्जुन से कहते हैं कि ये जो तेरे सामने खड़े हैं, तू
यह मत सोच कि तेरे मारने से मारे जाएंगे। "न हन्यते हन्यमाने शरीरे।" कोई मरता नहीं। लोग भय के कारण मरते हैं। कोई मारता नहीं।
तो मृत्यु असली मृत्यु नहीं है। क्योंकि मृत्यु को जिसने स्वीकार किया वह तो अमृत के दर्शन को उपलब्ध होता है। मृत्यु तभी मृत्यु मालूम होती है जब हमारा अस्वीकार होता है।
तुमने कभी ख्याल किया? वही काम तुम अपनी मौज से करो और वही काम किसी की आज्ञा के कारण जबर्दस्ती करो। तुम कवि हो, और एक सिपाही तुम्हारी पीठ पर बंदूक लगाए खड़ा हो, कहता हो करो कविता। तुम अचानक पाओगे, कविता सूख गई। तुम अचानक पाओगे, रसधार बहती नहीं। तुम अचानक पाओगे, शब्द जुड़ते नहीं। तुम अचानक पाओगे, गीत उठता नहीं। न केवल यही, तुम्हारे भीतर क्रोध उठेगा, बगावत उठेगी। अगर हिम्मतवर हुए तो लड़ने लग जाओगे। अगर गैर-हिम्मतवर हुए तो झुककर तुकबंदी करने लगोगे। कविता पैदा नहीं होगी। किसी तरह शब्द जमा दोगे उधार, मुर्दा, जिनमें न कोई लय होगी, न कोई प्राण होगा, न कोई आत्मा होगी।
तुमने कविता पहले भी की है लेकिन तब तुमने अपनी मौज से की थी। दिनभर
के थके-मांदे घर आए थे। शरीर की जरूरत थी कि सो जाते, लेकिन आधी रात जगते रहे। टिमटिमाते दीये की रोशनी में बैठ कागज काले करते रहे। तुम्हारे हृदय से बहती थी। उमंग और थी, उल्लास और था।

रूस में कविता मर गई। उन्नीस सौ सत्रह के बाद रूस में कोई ढंग की कविता नहीं हुई; न एक ढंग का उपन्यास लिखा गया, न ढंग की एक पेंटिंग बनी। सारा साहित्य मर गया। और रूस असाधारण देश है। क्रांति के पहले रूस ने इतने बड़े साहित्यकार दिए, जितने दुनिया के किसी देश ने नहीं दिए। तालस्ताय, चेखव, गोर्की, दोस्तोवस्की, तुर्जनेव--ऐसे नाम कि जिनका कोई मुकाबला नहीं दुनिया में। एकबारगी जिन्होंने दुनिया को फीका कर दिया। अगर उस समय के दुनिया के दस बड़े उपन्यास चुने जाएं तो पांच रूसी होंगे और पांच गैर-रूसी। सारी दुनिया आधी-आधी बांट दी।
फिर अचानक क्रांति हुई और सब मर गया। हुआ क्या? बंदूक लग गई पीछे, कविता मर गई। जो सहज और स्वतंत्र न रहा, वह जीवंत नहीं रह जाता। तो कविता लिखी जाती है, खेत-खलिहान की प्रशंसा में, फैक्ट्री इत्यादि की प्रशंसा में, लेकिन उसमें कुछ प्राण नहीं है। जबर्दस्ती लिखी जाती है, सरकारी आज्ञा से लिखी जाती है। उपन्यास भी लिखे जाते हैं। सब चलता है। किताब भी छपती हैं, किताब बिकती भी हैं, लेकिन कुछ मूल स्वर खो गया। जबर्दस्ती हो गई।
भूखे कवियों ने, सर्दी में ठिठुरते कवियों ने बेहतर कविता लिखी थी। रूस में आज कवि जितना संपन्न है उतना दुनिया के किसी कोने में नहीं। अच्छे से अच्छा मकान उसके पास है, अच्छे से अच्छी कार उसके पास है, भोजन की व्यवस्था, अच्छी से अच्छी कपड़ों की व्यवस्था, उसके बच्चों का जीवन सुरक्षित। दुनिया में मनुष्य-जाति के इतिहास में कवि, चित्रकार, मूर्तिकार, उपन्यासकार, साहित्यकार कभी इतने सम्मानित और प्रतिष्ठित न थे। और न कभी इतने सुविधा-संपन्न थे, जितने रूस में हैं। लेकिन कविता मर गई। गरीबी में न मरी, भूख में न मरी, दीनता-दुर्बलता में न मरी, रोग, मृत्यु में न मरी, लेकिन सुविधा में मर गई। पीछे बंदूक लगी है। जबर्दस्ती में मर गई।
जीवन का कुछ सूत्र है कि जो तुम स्वभाव, सौभाग्य, सहजता से करते हो, उसका आनंद अलग। जो तुम जबर्दस्ती करते हो, जबर्दस्ती के कारण ही सब गलत हो जाता है।
जो लोग स्वीकारपूर्वक मरे हैं, उनसे पूछो; महर्षिजनों से पूछो।
मृत्यु परमात्मा का रूप है। वह परमात्मा का संदेशवाहक है, डाकिया है।
नहीं, मृत्यु भैंसों पर सवार होकर नहीं आती। मृत्यु परियों की तरह सुंदर है। पक्षियों की तरह उड़कर आती। तुम्हें आलिंगन में ले लेती।
तुम्हें गहनतम विश्राम और विराम देती। तुम्हें समाधि का सुख देती। लेकिन उसकी तैयारी करनी पड़े। उसे अर्जित करनी पड़े।
फिर मरना अवश्यंभावी है तो धीरतापूर्वक मरना उचित। धीर बनो। इसे रोज-रोज साधो। धीरता को रोज-रोज साधो।
छोटी-छोटी चीजें अधीर कर जाती हैं। एक प्याली गिरकर टूट जाती है और तुम अधीर हो जाते हो। तो थोड़ा सोचो तो, जब तुम टूटोगे तो कैसे न अधीर होओगे! एक छोटी-मोटी दुकान चलाते थे, डूब जाती है, तो अधीर हो जाते हो। तो जब तुम्हारे जीवन का पूरा व्यवसाय छीन लिया जाएगा, जीवन का पूरा व्यापार बंद होगा, पटाक्षेप होगा, पर्दा गिरेगा तो तुम कैसे बेचैन न हो जाओगे! दिवाला निकल गया, एक मित्र नाराज हो गया, और तुम अधीर हो जाते हो। किसी ने गाली दे दी, अपमान कर दिया और तुम अधीर हो जाते हो।
इस धीरज को लेकर तुम मृत्यु का सामना कर सकोगे? इसे साधो। ये सब अवसर हैं धीरज को साधने के, धैर्य को निर्मित करने के। जीवन एक गहन प्रयोगशाला है। और प्रतिपल परमात्मा अनंत अवसर देता।
कभी किसी के द्वारा गाली दिलवा देता। कभी किसी के द्वारा अपमान करवा देता। वह कहता है, साधो। धैर्य साधो। स्थितधी बनो। धीरज जगाओ। धीरता पैदा करो। यह आदमी जो गाली दे रहा है, यह तुम्हारा हिताकांक्षी है। इसे पता हो न हो, यह तुम्हारा कल्याणमित्र है।
कबीर ने तो कहा है, "निंदक नियरे राखिये आंगन कुटी छवाय।" घर के पास ही बसा लो उनको। आंगन कुटी छवा दो। अतिथि की तरह उनकी सेवा करो, पैर दबाओ। पर

निंदक को दूर मत जाने दो, पास ही रखो। क्योंकि वह बार-बार तुम्हें धैर्य को जगाने का अवसर देगा।
सोचो थोड़ा इस पर। जो भी घटता है उसका सृजनात्मक उपयोग कर लो। दिवाला निकल जाए तो सृजनात्मक उपयोग कर लो। यह मौका है। इस वक्त अपने को कस लो। सफलता में तो सभी धैर्यवान मालूम पड़ते हैं। वह तो धोखा है। असफलता जब घेर ले, तभी परीक्षा है।
और ऐसी छोटी-छोटी असफलताओं में साधते-साधते, छोटी-छोटी लहरों से लड़ते- लड़ते तुम बड़े सागर में उतरने के योग्य हो जाओगे। किनारे से दूर बड़े तूफान हैं। तूफानों के पार दूसरा किनारा है।
सफलता हो तो बहुत हंसो मत। सफलता में तो रो लो तो चलेगा। विफलता में हंसना है। जब जीत आ रही हो, हंसने की जरूरत नहीं। क्योंकि जीत के साथ हंसने से किसी को कोई लाभ कभी नहीं हुआ। तब रो लो तो चलेगा। जब फूलमालाएं गले में डाली जा रही हों तो सिर नीचे झुका लो तो चलेगा। तब उदास हो जाओ तो चलेगा। मुझे आज साहिल पर रोने भी दो
कि तूफान में मुस्कुराना भी है!
किनारे पर रो लो तो चलेगा क्योंकि तूफान में हंसने की तैयारी करनी है। जो तूफान में हंसा वही हंसा। साहिल पर तो कोई भी हंस लेता है। किनारे पर हंसने में क्या लगता है? हलदी लगे न फिटकरी, रंग चोखा हो जाए। कुछ लगता ही नहीं किनारे पर तो। किनारे पर तो मूढ़ भी हंस लेते हैं, कायर भी हंस लेते हैं। तूफान में हंसने की तैयारी करनी है।
मुझे आज साहिल पर रोने भी दो
कि तूफान में मुस्कुराना भी है!
सफलता में ऐसे खड़े रह जाओ, जैसे कुछ भी नहीं हुआ। तभी तुम विफलता में ऐसे खड़े रह सकोगे कि जैसे कुछ भी नहीं हुआ।
इसको कृष्ण ने कहा है, "समत्वं योग उच्चते।" दुख में, सुख में सम हो जाओ, यही योग है। यही धीरता है।
बहुत कुछ और भी है इस जहां में
यह दुनिया महज गम ही गम नहीं है
लेकिन वह जो बहुत कुछ है, उसे जानने की कला चाहिए। साधारणतः तो आदमी
को लगता है, दुख ही दुख है। क्योंकि हम केवल दुख को चुनने में कुशल हैं। हम कांटे बीनने में बड़े निष्णात हो गए हैं। फूल हमें दिखाई ही नहीं पड़ते। फूल उसी को दिखाई पड़ते हैं, जो कांटों में भी फूल देखने के लिए तैयार हो जाता है।
फूलों को कांटों में खोज लेना है। दुख में सुख की तरंग को पकड़ना है। अशांति में शांति की तरंग को पकड़ना है। विफलता में सफलता का स्वर खोजना है।
ऐसी खोज जारी रहे पूरे जीवन, तो तुम मृत्यु में महाजीवन खोज पाओगे। इन छोटी-छोटी तरंगों से जूझते-जूझते तुम मृत्यु की महातरंग से जूझने के योग्य हो जाओगे। फिर तुम्हें वह तरंग मिटा न पाएगी। जिसने धीर की अवस्था पा ली, उसे फिर कुछ भी नहीं मिटा पाता है।
इसे महावीर एक बड़ा अनूठा शब्द देते हैं। वह उन्हीं ने दिया है। इसे वे कहते हैंः पंडितमरण। यह बड़ा प्यारा शब्द है।
"एक पंडितमरण--ज्ञानपूर्वक, बोधपूर्वक मरण--सैकड़ों जन्मों का नाश कर देता है। अतः इस तरह मरना चाहिए, जिससे मरण सुमरण हो जाए।"
हम तो जीवन तक को व्यर्थ कर लेते हैं। महावीर कहते हैं, मृत्यु को भी सार्थक किया जा सकता है। इस तरह मरो कि मृत्यु भी, मरण भी सुमरण हो जाए। पंडितमरण इसे उन्होंने नाम दिया
महावीर ने जितना चिंतन मृत्यु पर किया है उतना शायद किसी मनीषी ने नहीं किया। इसलिए महावीर ने कुछ बातें कहीं हैं, जो किसी ने भी नहीं कहीं। उन्हें हम धीरे-धीरे समझें, समझ पाएंगे। पहली बात, उन्होंने मृत्यु में एक भेद कियाः पंडितमरण। मरते तो सभी हैं। प्रज्ञापूर्वक मरना। पंडित शब्द बनता है प्रज्ञा से--जिसकी प्रज्ञा जाग्रत हुई। जो देखता है; होशपूर्वक

है। ऐसे ही सोए-सोए नहीं मर जाता, जागा-जागा मरता है। जो मृत्यु का स्वागत नींद में नहीं करता, होश के दीये जलाकर करता है।
इक्कं पंडियमरणं छिंदइ जाईसयाणि बहुयाणि।
तं मरणं मरियव्वं, जेण मओ सुम्मओ होइ।।
"ऐसे मरो कि मृत्यु सुमरण बन जाए। ऐसे मरो कि तुम्हारी मृत्यु पंडितमरण बन जाए।"
समझें हम। सीखना होगा जीवन की यात्रा में ही। क्योंकि मृत्यु तो एक बार आती है, इसलिए रिहर्सल का मौका नहीं है। तुम ऐसा नहीं कर सकते कि चलो, मरने का थोड़ा अभ्यास कर लें। क्योंकि मृत्यु तो दुबारा नहीं आती, एक ही बार आती है।
तो जीवन में अभ्यास करना होगा मृत्यु का; और कोई उपाय नहीं है। मृत्यु
तो जब आएगी तो बस आ जाएगी। पहले से खबर करके भी नहीं आती। कोई पूर्वसूचना नहीं देती। मृत्यु अतिथि है। आने की तिथि नहीं बताती, इसलिए अतिथि। खबर नहीं देती कि अब आती हूं, तब आती हूं। बस आ जाती है। अचानक एक दिन द्वार पर खड़ी हो जाती है। फिर क्षणभर सोचने का भी अवसर नहीं देती। तो अगर तुम तैयार ही हो तो ही तैयार रहोगे, अन्यथा विचलित हो जाओगे।
अनेक लोग ऐसा सोचते हैं कि मृत्यु के क्षण में सम्हाल लेंगे--अभी क्या जल्दी है? अनेक लोग ऐसा सोचते हैं कि ले लेंगे राम का नाम मरते क्षण में। मगर तुम ले न पाओगे। अगर तुम्हारे पूरे जीवन पर राम का नाम नहीं लिखा है, तो मृत्यु के क्षण में भी तुम ले न पाओगे। अगर पूरे जीवन काम-काम-काम चलता रहा तो मरते वक्त राम नहीं चल सकेगा। क्योंकि मरते वक्त तो सारे जीवन का जो सार-निचोड़ है वही गूंजेगा। अगर जिंदगीभर धन ही धन गिनते रहे तो मरते वक्त तुम रुपये गिनते ही मरोगे। मन में गिनते मरोगे। सोचते मरोगे कि क्या होगा, इतनी संपत्ति इकट्ठी कर ली है। अब क्या होगा, क्या नहीं होगा।
एक आदमी मर रहा था। उसने अपनी पत्नी से पूछा कि मेरा बड़ा बेटा कहां है? उसने कहा कि आप घबड़ाएं मत, वह आपके पैर के पास बैठा है। उसने कहा, और मंझला? कहा, वह भी पास बैठा है, आप विश्राम करें। और उसने कहा, सबसे छोटा? उसने कहा कि वह तो आपके दायें हाथ पर बैठा हुआ है। वह आदमी हाथ के घुटने टेककर उठने लगा। पत्नी ने कहा, आप यह क्या कर रहे हैं? कहां जा रहे हैं उठकर? उसने कहा, कहीं जा नहीं रहा हूं। मैं यह पूछता हूं कि फिर दुकान कौन चला रहा है? तीनों यहीं मौजूद हैं।
अब यह आदमी मर रहा है। गिर पड़ा और मर गया लेकिन दुकान चलाता रहा। जा रहा है लेकिन चिंता दुकान की बनी है। जल्दी लौट आएगा। फिर दुकान पर बैठ जाएगा। फिर बेटे होंगे बड़े, मंझले, छोटे। फिर दुकान चलेगी, फिर मरेगा। फिर घुटने, कोहनियां टेककर पूछेगा, दुकान कौन चला रहा है।
ऐसे घूमता रहता चाक जीवन का। हम पुनरुक्त करते रहते वही-वही। लेकिन
एक बात याद रखना, यह धोखा कभी कोई नहीं दे पाया। यद्यपि ऐसी कथाएं लिखी हैं। अजामिल की कथा है, कि मरते वक्त--सदा का पापी--बुलाया, "नारायण, नारायण!" नारायण उसके बेटे का नाम था। पापी अक्सर ऐसे नाम रख लेते हैं। छिपाने के लिए नाम बड़े काम देते हैं। और कहते हैं, ऊपर के नारायण धोखे में आ गए। और जब अजामिल मरा तो उन्होंने समझा कि मेरा नाम बुलाया था। तो वह स्वर्ग में बैठा है।
यह जिन्होंने भी कहानी गढ़ी है, धोखेबाज लोग रहे होंगे, बेईमान रहे होंगे। अगर परमात्मा ऐसा धोखा खा जाता है तो फिर हद्द हो गई। तुम भी न खाते धोखा जब वह "नारायण, नारायण" बुला रहा था, तो किसी ने धोखा नहीं खाया। उसकी पत्नी ने धोखा नहीं खाया, उसके लड़के ने धोखा नहीं खाया। और जब वह नारायण को बुला रहा था तो वे सभी जान रहे होंगे कि किसलिए बुला रहा है। कुछ न कुछ उपद्रव... । पुराना पापी था। मरते वक्त कुछ और करवा जाना चाहता हो।
मैंने सुना है, एक पापी मर रहा था। उसने अपने सब बेटों को इकट्ठा कर लिया, और कहा कि मेरी आखिरी बात मानोगे? वे सब डरे। बड़े तो बहुत डरे क्योंकि वे जानते थे बाप को, कि वह आखिरी बात में कहीं उलझा न जाए। जिंदगीभर उलझाया अब आखिरी बात... और जाते-जाते कोई ऐसा दंदफंद न खड़ा कर जाए। मगर छोटा बेटा जरा नया-नया था और बाप को जानता नहीं था तो वह पास आ गया

और उसने कहा, आप कहें। उसने कान में कहा कि ये सब तो लुच्चे-लफंगे हैं। इन्होंने कभी मेरी सुनी नहीं और आज भी नहीं सुन रहे हैं। मैं मर रहा हूं; बाप मर रहा है। तुम बेटा कसम खाते हो कि करोगे? उसने कहा, कसम खाता हूं। आप बोलिए तो।
उसने कहा, तो ऐसा करना; जब मैं मर जाऊं तो मेरी लाश को टुकड़े करके पड़ोसियों के घर में डाल देना और पुलिस में रिपोर्ट लिखा देना। उसने कहा, लेकिन किसलिए? उसने कहा कि मेरी आत्मा बड़ी प्रसन्न होगी, जब सब बंधे जाएंगे। मेरी आत्मा की प्रसन्नता के लिए इतना तो कर देना। फिर मैं तो मर ही गया, तो काटने में हर्जा क्या है? जिंदगीभर से यह एक आकांक्षा रही है कि इन सबको बंधा हुआ देख लूं। अब मरते बाप की यह आकांक्षा--इनकार मत करना। देख, तूने कसम भी खा ली।
तो वह जो अजामिल बुला रहा था बेटे को कि "नारायण, नारायण", पता नहीं कौन-सा उपद्रव करवाने के लिए बुला रहा हो। कोई धोखे में नहीं था, लेकिन कथाकार कहते हैं कि ऊपर का नारायण धोखे में आ गया। ये आदमी की बेईमानियां हैं। इस धोखे में मत पड़ना। तुम इस धोखे में मत जीना।
मृत्यु के क्षण में तुम वही कर पाओगे, जो तुमने जीवनभर किया है। उसी
का सार-निचोड़। उसी की निष्पत्ति। जैसे हजार-हजार गुलाब के फूलों से इत्र निकाल लिया जाता है। इत्र तो बूंदभर होता है; हजार-हजार फूलों से निचुड़ता है। ऐसे ही तुम्हारे पूरे जीवन के फूलों से--जो भी फूल रहे हों; सुगंध के कि दुर्गंध के, उनका इत्र मरते क्षण में तुम्हारे सामने होगा।
तुमने यह बात सुनी होगी। लोग कहते हैं, मरते वक्त आदमी के सामने पूरे जीवन की तस्वीर आ जाती है। उसका मतलब केवल इतना ही है कि पूरे जीवन का सार-निचोड़, सारे अनुभवों का इत्र आदमी के हाथ होता है। वही इत्र लेकर आदमी चलता है, दूसरी यात्रा पर निकलता है।
पंडितमरण का अर्थ है, व्यक्ति पूरे जीवन मरने के लिए तैयारी करता रहा। जो अवश्यंभावी है उसके लिए तैयार होता रहा।
बुद्ध के पास जब कोई संन्यासी पहली दफा दीक्षित होते थे तो वे उन्हें कहते थे, तीन महीने मरघट पर रहो। वे थोड़े चौंकते कि किसलिए? मरघट पर क्या सार है? बुद्ध कहते, पहले मृत्यु को ठीक से देखो। बैठे रहो मरघट पर। आती रहेंगी लाशें, जलती रहेंगी चिताएं, हड्डियां टूटती रहेंगी, सिर फोड़े जाते रहेंगे, राख हो जाएगी। लोग राख को बीनने आ जाएंगे। तुम यह देखते रहो तीन महीने। बस बैठे रहो मरघट पर।
तीन महीने अगर तुम भी मरघट पर बैठोगे, और कुछ देखने न मिलेगा तो मृत्यु अवश्यंभावी है यह सत्य तुम्हारा अनुभूत सत्य हो जाएगा।
और किसी न किसी दिन तीन महीनों में, जिस दिन ध्यान ठीक से पकड़ लेगा और चित्त एकाग्र होगा, चिता जल रही होगी... और रोज-रोज चिता जलते देखोगे तो किसी दिन तुम नहीं सोचते ऐसा नहीं होगा कि तुम देख लोगे, यह मैं ही जल रहा हूं! यह देह मेरी जैसी देह है। यह देह ठीक मेरी जैसी देह है और राख हुई जा रही है। मैं राख हो रहा हूं, यह तुम नहीं देख पाओगे?
यह अगर प्रतीति सघन हो जाए कि मृत्यु अवश्यंभावी है तो तुम फिर तत्क्षण उसकी तैयारी में लग जाओगे। अभी तो हम जीवन की तैयार में लगे हैं-- जीवन, जो कि जाएगा। उसकी तैयारी कर रहे हैं, जो कि छीना जाएगा। मृत्यु जो कि आएगी ही, उसकी कोई तैयारी नहीं है। इधर हम तैयारी कर रहे हैं; मकान बनाते, धन जोड़ते, पद-प्रतिष्ठा--सारा आयोजन करते हैं कि जीना है। मरने का आयोजन कब करोगे? और यह जीना सदा रहनेवाला नहीं है। इंतजाम लोग ऐसा करते हैं, जैसे सदा रहना है। और एक दिन अचानक इंतजाम के बीच में मौत आ धमकती है। सब ठाठ पड़ा रह जाएगा। और किसी भी घड़ी संदेश आ जाता है और बंजारे को अपना तंबू उखाड़ लेना पड़ता है। चल पड़ना पड़ता है।
"पंडितमरण, ज्ञानपूर्वक मरण सैकड़ों जन्मों का नाश कर देता है, अतः इस तरह मरना चाहिए जिससे मरण सुमरण हो जाए।"
अदभुत सदगुरु रहे होंगे महावीर। सिखाते हैं मरने की कला। कहते हैं, ऐसे मरो कि मरण सुमरण हो जाए।

कैसे होगा मरण सुमरण? रोज-रोज मरो। प्रतिपल मरो। सुबह मरो, सांझ मरो। रात जब सोओ तो मर जाओ। जो दिन बीत गया उसके लिए मर जाओ। जो-जो बीतता जाता है उसके लिए मरते जाओ, उसको इकट्ठा मत करो। उसका बोझ मत ढोओ। बोझ की तरह अतीत को मत खींचो। जो गया, गया। उसे जाने दो। प्रतिपल नए हो जाओ। इधर मरे, उधर जन्म। इधर पुराने को छोड़ा, नए का आविर्भाव।
तो मौत तुम्हें ऐसी जगह नहीं पाएगी, जहां तुम्हारे पास कुछ छीनने को हो। तुम्हारे पास कुछ होगा ही नहीं। किसी क्षण मौत आएगी तो तुम तो हर वक्त अतीत के लिए मरते जाते हो। अतीत के संबंध, आसक्तियां, राग, धन, पद, प्रतिष्ठा... तुम तो मरते जाते हो। सम्मान-अपमान, सफलता-विफलता... तुम तो मरते जाते हो। सुख-दुख, विषाद... तुम तो मरते जाते हो।
मृत्यु एक दिन आएगी, तुम कोरे कागज की तरह पाए जाओगे। तुम्हारे पास पकड़ने को कुछ न होगा। तुम्हारे पास बुलाने को कुछ न होगा, चीखने-चिल्लाने को कुछ न होगा। तुम जानोगे, कोई मेरा नहीं। तुम जानोगे, कुछ मेरा नहीं। तुम खड़े हो जाओगे। तुम जूते पहनकर खड़े हो जाओगे। तुम मौत के हाथ में हाथ डाल लोगे। तुम कहोगे, मैं तैयार हूं। मैं तो सदा से तैयार था, इतनी देर क्यों लगाई? इतनी देर कहां रही तू? कबसे हम प्रतीक्षा करते। कबसे हम तैयार बैठे थे।
बस, ऐसे आदमी से मौत हार जाती है। इसको महावीर सुमरण कहते हैं।
जीवन को, जो कि क्षणभंगुर है, उसे शाश्वत मत समझो। जो जाएगा वह जा ही चुका है। जो मिटेगा वह मिट ही रहा है। जो छूटेगा, वह तुम्हारे हाथ से छूट ही रहा है। व्यर्थ अटके मत रहो। व्यर्थ मुट्ठी मत बांधो, खोलो मुट्ठी। लेकिन हमारी तर्कदृष्टि और है। हम कहते हैं, जो छूटनेवाला है उसे जोर
से पकड़ लो कि कहीं और जल्दी न छूट जाए। हम कहते हैं, जो क्षणभंगुर है उसे भोग लो। कहीं क्षण बीत न जाए। हम कहते हैं, इसके पहले मौत आए, जीवन को जी लो, निचोड़ लो रस। कहीं ऐसा न हो, कि मौत आ जाए और तुम रस ही न निचोड़ पाओ। चांदनी की डगर पर तुम साथ हो
प्राण युग-युग तक अमर यह रात हो
कल हलाहल ही पिला देना मुझे
आज मधु की रात मधु की बात हो
हाथ में रवि-चंद्र पग में फूल है
नृत्यमय अस्तित्व उन्मद झूल है रिक्त भीतर से मगर यह जिंदगी बस बगूले-सी भटकती धूल है
रात है, मधु है, समर्पित गात है
आज तो यह पाप भी अवदात है
सघन श्यामल केश लहराते रहें
मैं रहूं भ्रम में अभी तो रात है
चांदनी की डगर पर तुम साथ हो
प्राण युग-युग तक अमर यह रात हो
--जो होना नहीं है उसकी हम आकांक्षा करते हैं।
प्राण युग-युग तक अमर यह रात हो!
--कोई रात, कोई नींद, कोई सपना युग-युग तक होने को नहीं है।
चांदनी की डगर पर तुम साथ हो
कौन किसके साथ है? चांदनी बड़ा झूठा सम्मोहन है। कौन किसके साथ है? लगते हैं कि लोग किसी के साथ हैं। राह पर अनजान मिल गए यात्री हैं। पलभर को साथ हो गया। नदी-नाव संयोग हैं। अभी नहीं थे साथ, अभी साथ हैं, अभी फिर बिछुड़ जाएंगे।
कल हलाहल ही पिला देना मुझे
--कल मौत आए, ठीक। कल जहर पिलाओ, ठीक।
आज मधु की रात मधु की बात हो।
तो साधारणतः हम मृत्यु को टालते हैं कि कल होगी मृत्यु। आज तो जीवन है। आज क्यों मृत्यु की बात उठाएं?

ऐसे विचारक भी हैं जगत में जो कहते हैं, मृत्यु की बात ही उठानी रुग्णता है। उनकी दृष्टि में महावीर तो मार्बिड, रुग्ण विचारक हैं।
फ्रायड जैसे विचारक हैं। जो कहते हैं, मृत्यु की बात ही नहीं उठानी चाहिए।
हालांकि फ्रायड खुद मृत्यु से बड़ा भयभीत होता था। वह इतना भयभीत हो जाता था कि कभी अगर कोई मौत की ज्यादा बात करे तो दो दफे तो वह बेहोश हो गया था। किसी ने मौत की चर्चा छेड़ दी और वह घबड़ाने लगा। वह फेंट ही कर गया, गिर ही गया कुर्सी से।
उसका शिष्य जुंग अपने संस्मरणों में लिखता है कि फ्रायड के साथ वह अमरीका जा रहा था जहाज पर। जुंग की बड़ी बहुत दिनों की रुचि थी, इजिप्त की ममी--ताबूतों में, मुर्दा लाशों में। उसको क्या पता कि यह फ्रायड इतना घबड़ा जाता है! सोच भी नहीं सकता था। दोनों जहाज के डेक पर खड़े थे। कुछ बात चल पड़ी, संस्मरण निकल आया, उसने इजिप्त की ममियों की बात की। उसने उनका वर्णन किया। वह तो वर्णन करता रहा, एकदम फ्रायड कंपने लगा और वह तो चारों खाने चित्त हो गया।
ऐसे व्यक्तियों से यह सदी प्रभावित हुई है। ऐसे व्यक्तियों ने इस सदी
के मानस को रचा है। फ्रायड का मनोविज्ञान इस सदी की आधारभूत शिला बन गया है। और फ्रायड कहता है, जो मृत्यु की बात करते हैं, वे मार्बिड, वे रुग्णचित्त।
मगर थोड़ा सोचो। अगर फ्रायड और महावीर में चुनना हो तो कौन रुग्णचित्त मालूम होगा? महावीर मृत्यु का इतना चिंतन और चर्चा और इतना ध्यान करने के बाद जैसे महाजीवित मालूम पड़ते हैं। इधर फ्रायड, कहता है मृत्यु का चिंतन रुग्ण है। लेकिन लगता है यह रैशनलाइजेशन है। लगता है, वह इतना डरता है खुद, कि अपनी सुरक्षा कर रहा है। वह इतना भयभीत है मृत्यु से कि जो मृत्यु की बात करते हैं, उनको वह रोकने की चेष्टा कर रहा है कि यह बात ही रुग्ण है। यह बात ही मत उठाओ।
महावीर में जीवन का फूल खिला है मृत्यु के मध्य में। नहीं, महावीर रुग्ण नहीं हैं। महावीर से स्वस्थ आदमी और खोजना मुश्किल होगा।
लेकिन हम साधारणतः महावीर की बजाय फ्रायड से राजी हैं। हम कहें कुछ, चाहे हम जैन ही क्यों न हों, और जाकर मंदिर में महावीर की पूजा ही क्यों न कर आते हों, लेकिन अगर हम मन में टटोलेंगे तो हम फ्रायड के साथ राजी हैं, महावीर के साथ नहीं। अगर कोई मृत्यु की चर्चा छेड़ दे तो हम भी कहते हैं, कहां की दुखभरी बातें उठा रहे हो! छोड़ो भी।
कल हलाहल ही पिला देना मुझे
आज मधु की रात मधु की बात हो।
फिर भी हम जानते हैं--क्योंकि जो है, उसे हम कैसे झुठला सकते हैं?
हाथ में रवि-चंद्र पग में फूल है
नृत्यमय अस्तित्व उन्मद झूल है
रिक्त भीतर से मगर यह जिंदगी
बस बगूले-सी भटकती धूल है।
जानते तो हैं--
बस बगूले-सी भटकती धूल है
रिक्त भीतर से मगर यह जिंदगी
इस रिक्तता को, इस सूनेपन को भरने के लिए हम हजार उपाय करते हैं जिंदगी में।
महावीर कहते हैं, इस सूनेपन को तुम भर न पाओगे। तुम कितना ही ढांक लो,
यह उघड़ेगा। यह उघड़कर रहेगा।
मृत्यु अवश्यंभावी है। तुम्हें अपनी इस शून्यता का साक्षात्कार करना
ही होगा। तुम्हें अपने को मिटते हुए देखना ही होगा। इससे तुम बच न सकोगे। इससे कोई कभी बच नहीं पाया। तो बजाय बचने के, भागने के, मृत्यु को हम शुभ घड़ी में क्यों न बदल लें?
रात है, मधु है, समर्पित गात है
भीतर से हम जानते भी हैं, सब जा रहा, सब क्षणभंगुर। पानी का बबूला--अब फूटा, तब फूटा। मगर दोहराए जाते हैं ऊपर से--

रात है, मधु है, समर्पित गात है
आज तो यह पाप भी अवदात है
सघन श्यामल केश लहराते रहें
मैं रहूं भ्रम में अभी तो रात है
हम कितनी-कितनी भांति भ्रम को पोसते हैं। कितनी-कितनी भांति भ्रम को उखड़ने नहीं देते। एक तरफ से उखड़ता है तो ठोंक लेते हैं। दूसरी तरफ से उखड़ता है, वहां ठोंक लेते हैं। इधर पलस्तर गिरा, चूना उखड़ गया, पोत लेते हैं। टीमटाम करते रहते हैं। और यह टीमटाम करते-करते एक दिन बीत जाते; व्यतीत हो जाते हैं।
इसके पहले कि ऐसी घड़ी आए, अपने को व्यर्थ समझा-समझाकर, पानी के बबूलों
से मन को मत उलझाए रखना। क्षणभंगुर को क्षणभंगुर जानना शाश्वत को जानने की पहली शर्त है। असार को असार की तरह पहचान लेना सार का द्वार खोलना है। जी उठे शायद शलभ इस आस में
रात भर रो-रो दीया जलता रहा
थक गया जब प्रार्थना का पुण्यबल
सो गई जब साधना होकर विफल
जब धरा ने भी न धीरज दिया
व्यंग्य जब आकाश ने हंसकर किया
आग तब पानी बनाने के लिए
रात भर रो-रो दीया जलता रहा
लेकिन तुम चाहे रोओ, चाहे चीखो-चिल्लाओ; जो नहीं होता, नहीं होता। आग पानी नहीं बनती।
आग तब पानी बनाने के लिए
रात भर रो-रो दीया जलता रहा
रोते रहो, आग पानी नहीं बनती। और सब तुम पर हंसेंगे।
जब धरा ने भी न धीरज दिया
व्यंग्य जब आकाश ने हंसकर किया
थक गया जब प्रार्थना का पुण्यबल
सो गई जब साधना होकर विफल
तुम जो भी कर रहे हो, वह विफल होना उसका निश्चित है। लाख उपाय करो तो
भी तुम हारोगे। यह जीवन ही हारने को है। इस जीवन का अर्थ ही विफलता है। यहां कोई जीत नहीं पाता। यहां विजय होती ही नहीं। जहां मृत्यु होनी है, वहां विजय कैसी? मृत्यु में ही अगर जीते तो जीत हो सकती है।
इसलिए महावीर ने कहा है, जो मृत्यु को जीत लेता है वही जयी है, वही जिन है। जिन शब्द का अर्थ होता है, जीत लिया। तो दो तरह के विजेता हैं जगत में।
एकः नेपोलियन, सिकंदर, तैमूरलंग, नादिरशाह--ये सब धोखे के विजेता हैं। मौत तो इनको बिल्कुल भिखारी कर जाती है।
फिर और एक दूसरी तरह के विजेता हैंः महावीर, बुद्ध, कृष्ण, क्राइस्ट। जीवन में तो इनकी कोई विजय की कहानी नहीं है। इतिहास में तो इनके कोई चरण-चिह्न नहीं हैं। समय के भीतर तो इन्होंने कुछ जीता नहीं है, इसलिए इतिहास में इनका ठीक-ठीक उल्लेख भी नहीं है। लेकिन शाश्वत में इनने विजय की घोषणा की है। विजय की दुंदुभी बजाई है अमृत में।
अगर कहीं कोई शाश्वत का इतिहास है तो वहां तुम नादिर का, तैमूरलंग का
और चंगीज का और हिटलर का और नेपोलियन और सिकंदर का नाम न पाओगे। वहां तुम्हें महावीर का, बुद्ध का, कृष्ण का, क्राइस्ट का, मोहम्मद का, जरथुस्त्र का नाम मिलेगा। एक दूसरे ढंग की विजय है। वास्तविक विजय है। "असंभ्रांत, निर्भय सत्पुरुष एक पंडितमरण को प्राप्त होता है और शीघ्र ही अनंत-मरण का--बार-बार के मरण का--अंत कर देता है।"
एक ही बार मर जाता है। पूरा-पूरा मर जाता है। कुछ रोकता नहीं, कुछ झिझकता नहीं। समग्ररूप से समर्पित हो जाता है मृत्यु को। तो पंडितमरण एक, फिर होनेवाले भविष्य के अनंत जन्म और मृत्युओं से छुटकारा हो जाता है।

जागो! तुम्हारा तो जीवन भी अभी पंडित-जीवन नहीं है। यात्रा बड़ी है। मरण को भी पंडितमरण बनाना है। ऐसी झूठी बातों में बहुत मत उलझे रहो। अपने मन को समझाते मत रहो। ये सांत्वनाएं, जो तुम दे रहे हो, बहुत काम न आएंगी। खुद को बहलाना था आखिर, खुद को बहलाता रहा
मैं ब-ई-सोजे-दरू हंसता रहा, गाता रहा
भीतर तो आग है। हृदय तो जल रहा है। हृदय में तो कोई तृप्ति नहीं, मगर खुद को बहलाना था तो खुद को बहलाता रहा।
मैं ब-ई-सोजे-दरू हंसता रहा गाता रहा!
आग को भीतर छिपाए हो। मौत को भीतर छिपाए हो। ऊपर से हंसते रहते, गाते रहते। कागज के फूल चिपकाए हो।
यह धोखे की पट्टी टूटेगी। यह पर्दा उठेगा। इसके पहले कि मौत उठाए, तुम
ही उठा लो, तो शोभा है; तो सम्मान है, तो गरिमा है।
जो मौत करे वह तुम ही कर दो, इसी का नाम संन्यास है। जो मौत करे वह तुम
ही कर दो। जहां-जहां से मौत तुम्हें छीन लेगी, वहां-वहां तुम ही कह दो कि मेरा यहां कुछ भी नहीं है। मौत पत्नी से छीन लेगी? तो जान लो मन में कि पत्नी कौन किसकी है? मौत पति से छीन लेगी? तो जान लो मन में, जाग जाओ, कौन किसका पति है? साथ हो लिए दो क्षण को। अजनबी हैं। एक-दूसरे की सेवा कर ली, बहुत। एक-दूसरे को दुख न दिया तो काफी। सुख तो कौन किसको दे पाया? एक-दूसरे के लिए फूल, बिछाए... बिछे तो नहीं, चेष्टा की बहुत। एक-दूसरे के रास्ते से थोड़े कांटे बीन लिए, पर्याप्त। इतना ही बहुत है। यह भी असंभव है। यह भी हो गया, चमत्कार है।
लेकिन कौन किसका है? अजनबी को अजनबी जानो। जो बच्चा तुम्हारे घर पैदा हुआ, वह भी अजनबी है। एक अज्ञात आत्मा न मालूम कहां से, न मालूम किन लोकों से, न मालूम किन ग्रह-नक्षत्रों से, न मालूम किन पृथ्वियों से, न मालूम किन जीवन-पथों से होकर तुम्हारे द्वार आ गई है। अपना मानने की भूल मत करो।
धन है तो ठीक, नहीं है तो ठीक। आसक्ति को थोड़ा शिथिल करो। मुट्ठी खोलो। और ऐसा मत कहो कि जब मौत आएगी तब निपट लेंगे।
तोड़ लेंगे हरेक शै से रिश्ता
तोड़ देने की नौबत तो आए
हम कयामत के खुद मुंतजिर हैं
पर किसी दिन कयामत तो आए
--आएगी मौत, तब निपट लेंगे।
तोड़ लेंगे हरेक शै से रिश्ता
तोड़ देने की नौबत तो आए
लेकिन जब नौबत आएगी तो एक पल में घट जाती है। पल के छोटे-से खंड में घट जाती है। तुम्हें अवसर न मिलेगा। तुम जाग भी न पाओगे और मौत तुम्हें उठा ले जाएगी।
नहीं, इस तरह टालो मत, स्थगित मत करो। मौत आ रही है, आ ही गई है। नौबत आ
ही गई है। नौबत आती ही रही है। कयामत कल नहीं है, कयामत आज है, अभी है, यहीं है। तुम्हें जो करना हो, अभी कर लो।
चीजों को सीधा-सीधा देखो। आंखों में भ्रम मत पालो। तो जीवन भी पंडित
का जीवन हो जाता है और मृत्यु भी पंडित की मृत्यु हो जाती है।
"साधक पग-पग पर दोषों की आशंका, संभावनाओं को ध्यान में रखकर चले। छोटे से छोटे दोष को भी पाप समझे; उससे सावधान रहे। नए-नए लाभ के लिए जीवन को सुरक्षित रखे।"
"जब जीवन तथा देह से लाभ होता दिखाई न दे तो परिज्ञानपूर्वक शरीर का त्याग कर दे।"
यह महावीर की अनूठी बात है। सिर्फ महावीर ने कही है सारे मनुष्य-जाति
के इतिहास में। महावीर ने भर अपने संन्यासी को स्वेच्छा-मरण की आज्ञा दी है।
महावीर कहते हैं, जीवन तो साधन है; अपने आप में साध्य नहीं है। तुमसे कोई पूछे, किसलिए जीते? तो तुम कहोगे, जीने के लिए जीते हैं। तुमसे कोई पूछे कि सौ साल जीना चाहते हो? तुम कहोगे, जरूर जीना चाहते हैं।

क्या करोगे? सौ साल नहीं, हजार साल भी जीकर करोगे क्या? होगा क्या? तुम कहोगे, होने का सवाल कहां है? बस जीना ही बहुत है। हम लोगों को आशीर्वाद देते हैं, सौ साल जीयो। कोई फिक्र ही नहीं करता कि सौ साल जीकर यह बेचारा करेगा क्या? इसकी भी तो कुछ सोचो! तुमने तो आशीर्वाद दे दिया। तुम तो मुफ्त में देकर मुक्त हो गए, अब यह फंस गया। यह लटका रहेगा किसी अस्पताल में। हाथ-पैर उल्टे-सीधे बंधे होंगे। नाक में आक्सीजन जा रही होगी। शरीर में ग्लूकोज का इंजेक्शन लगा होगा। इसकी भी तो सोचो। तुमने तो दे दिया आशीर्वाद कि सौ साल जीयो।
सिर्फ जीना अपने आप में मूल्य थोड़े ही है! इसलिए महावीर ने इस बात को बड़ी हिम्मत से लिया। महावीर की बात आज नहीं कल दुनिया में स्वीकार करनी पड़ेगी।
पश्चिम में बड़े जोर से इस पर आंदोलन चला है। हालांकि उनको किसी को महावीर का पता नहीं क्योंकि महावीर पश्चिम के लिए बिल्कुल अपरिचित हैं। पश्चिम में इसका बड़ा चिंतन चल रहा है क्योंकि पश्चिम अब, सौ साल के करीब जीने की सुविधा उसको उपलब्ध हो गई है। यहां तो हम आशीर्वाद ही देते रहे। आशीर्वाद से ही कोई जीता है? लेकिन पश्चिम के विज्ञान ने आशीर्वाद को पूरा कर दिया।
अब लोग जी रहे हैं। सौ साल के पार पहुंच गए हैं कुछ लोग। अब वे बड़ी मुश्किल में हैं। वे कहते हैं, हमें मरने का हक चाहिए। पश्चिम में बूढ़ों की जमातें हैं, जो आंदोलन चला रही हैं। जो कह रही हैं, हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है कि हमें मरना चाहिए। हमें तुम बचा नहीं सकते। हमको मरने का मौका दो।
मगर अब तक इसकी कोई दुनिया के किसी कानून में व्यवस्था नहीं है। आत्महत्या बड़ा अपराध है। ब.ड़े मजे की बात है। अगर आत्महत्या करते हुए पकड़ लिए जाओ, तो सरकार तुमको मार डाले। यह भी कोई बात हुई? तुम खुद ही मर रहे थे। अब तुमको और मारने की क्या जरूरत है? तुम तो खुद ही अपराध भी कर रहे थे, दंड भी दे रहे थे। निपटारा हुआ जा रहा था। लेकिन अगर पकड़ लिए गए--मर गए तो ठीक, अगर अपराध कर गुजरे तो फिर कोई दंड नहीं है--लेकिन अगर करते हुए पकड़ लिए गए और अपराध पूरा न हो पाया तो दंड है।
यह अब तक तो ठीक था। हमारे नियम और कानून भी कारण से होते हैं। जीवन बड़ा मुश्किल रहा है, बड़ा असंभव रहा है। सत्तर साल, अस्सी साल जीना बड़ा मुश्किल रहा है। जितनी खोजें हुई हैं दुनिया में जमीन के नीचे पड़ी हुई मनुष्य की हड्डियों की, तो ऐसा लगता है पांच हजार साल पहले चालीस वर्ष आखिरी उम्र थी। क्योंकि पांच हजार वर्ष पहले की कोई भी हड्डी नहीं मिली है, जो चालीस वर्ष से ज्यादा पुराने आदमी की हो।
और पीछे जाने पर, कोई सत्तर और पचहत्तर हजार साल पुरानी जो पेकिंग में हड्डियां मिली हैं, वे तो बताती हैं कि आदमी मुश्किल से पच्चीस साल जीता था। तो जीवन बड़ा मुश्किल रहा है। और पच्चीस साल भी, एक घर में अगर एक दर्जन बेटे पैदा हों तो दो बच जाएं, बहुत। क्योंकि दस बच्चों में नौ बच्चे मर जाते थे।
तो जीवन की बड़ी मुश्किल थी। जीवन बड़ा न्यून था। मुश्किल से मिलता था। जीवन का बड़ा अवसर था। सभी को नहीं मिल जाता था। तो सौ साल जीने का हम आशीर्वाद देते थे, वह ठीक है। अब जीवन बड़ा सुगम है। कम से कम पश्चिम में तो सुगम हो गया है। लोग सौ साल तक पहुंच रहे हैं। सत्तर-अस्सी साल औसत उम्र हो गई है। अस्सी साल का होना कोई बहुत बूढ़ा होना नहीं है।
इसलिए हम चौंकते हैं, यहां जब अखबार में कभी खबर आती है कि नब्बे साल
के बूढ़े ने विवाह कर लिया तो हम बहुत चौंकते हैं। यह भी क्या पागलपन है? नब्बे साल का बूढ़ा, और विवाह? लेकिन पश्चिम में शरीर की उम्र लंबा रही है। नब्बे साल का बूढ़ा भी विवाह करने की हालत में है।
तो एक नया सवाल उठना शुरू हुआ है कि आदमी को मरने का हक होना चाहिए। यह जन्मसिद्ध अधिकार होना चाहिए सभी विधानों में। क्योंकि एक आदमी अगर एक सौ दस साल का हो गया और मरना चाहता है... क्योंकि करोगे क्या? रोज उठना वही, रोज सोना वही, रोज खा-पी लेना वही। फिर सब अपने संबंधी जा चुके, मित्र-

475

प्रियजन जा चुके और एक आदमी जिंदा है। उसकी सारी दुनिया जा चुकी। वह सौ साल पहले पैदा हुआ था, वह दुनिया जा चुकी। सब बदल गया। वह बिल्कुल अजनबी है। जैसे किसी और लोक में जबर्दस्ती उसको लाकर खड़ा कर दिया। बच्चों से कोई तालमेल नहीं रहा। बच्चे बिल्कुल दूसरी दुनिया में जी रहे हैं। वह करे भी क्या जीकर? सार भी क्या है? कष्ट होता है, शरीर दुखता है, अर्थराइटिस है, हजार बीमारियां हैं। करे क्या जीकर?
और जी रहा है क्योंकि मेडिकल साइंस ने जीने की सुविधा जुटा दी है। जी सकता है। अब हम आदमी को खींच सकते हैं, दो सौ साल तक भी। उसको मरने ही न दें। उसको अस्पताल में रखकर हम जिंदा रख सकते हैं। अब अस्पताल में डाक्टरों की भी बड़ी कठिनाई है। क्योंकि अगर वे आक्सीजन बंद करें तो उसका मतलब है, उन्होंने इसको मारा। पुराने नियम से वे हत्यारे हैं। उनका पुराना शास्त्र कहता है, किसी को मारना नहीं, बचाने की कोशिश करना। अगर वे इसको ग्लूकोज न दें तो यह मर जाएगा। लेकिन तब मारने का जुम्मा उनके ऊपर पड़ेगा। अभी कानून इसका मौका नहीं दे रहा है, लेकिन कानून को यह मौका देना पड़ेगा।
महावीर की बात समझ में आने जैसी है। महावीर कहते हैं, जब कोई आदमी ऐसी जगह आ जाए, जहां शरीर से अब कुछ भी ध्यान में गति न होती हो, समाधि की तरफ यात्रा न होती हो; ध्यान से, धर्म से, समाधि से परमात्मा का अब कोई अनुभव में विकास न होता हो, कोई लाभ न होता हो... यह महावीर का लाभ ठीक से समझना। यह जैनियों का लाभ नहीं है कि अब कोई धन कमाने की सुविधा न रही, कि रिटायरमेंट हो गया, अब जीकर क्या करें?
महावीर जब कहते हैं, नए-नए लाभ के लिए जीवन को सुरक्षित रखे, तो वे यह कहते हैं, रोज-रोज परमात्मा का अधिकतम अंश अनुभव में आने लगे तो तो जीवन का कोई सार है। लेकिन कभी अगर ऐसा हो जाए कि जब जीवन तथा देह से लाभ होता दिखाई न दे तो परिज्ञानपूर्वक शरीर का त्याग कर दे।
यह शर्त सोचने जैसी हैः "परिज्ञानपूर्वक।" महावीर कहते हैं, आत्महत्या का भी अधिकार है, लेकिन परिज्ञानपूर्वक। उस शब्द में सब कुछ छिपा है। परिज्ञानपूर्वक का अर्थ होता है, जहर खाकर मत मरना, पहाड़ से कूदकर मत मरना क्योंकि वह तो क्षण में हो जाता है, भावावेश में हो जाता है।
छुरा मारकर मत मरना, गोली चलाकर मत मरना।
परिज्ञानपूर्वक का अर्थ है उपवास कर लेना। पानी, भोजन बंद कर देना। नब्बे दिन लगेंगे, अगर आदमी स्वस्थ हो तो मरने में। तीन महीने तक... तीन महीने तक सतत एक ध्यान बना रहे कि मैं मरने को तैयार हूं--परिज्ञान हुआ। तीन महीने में हजार दफा... तीन महीने बहुत दूर हैं, तीन मिनट में तुम्हारा मन हजार दफा बदलेगा कि मरना कि नहीं मरना? अरे छोड़ो भी! कहां के पागलपन में पड़े हो? रात सोए, उठकर बैठ गए, जल्दी पहुंच गए फ्रिज के पास और भोजन कर लिया कि यह तो नहीं चलेगा। क्या सार है मरने में? पता नहीं आगे कुछ है या नहीं है।
और तीन महीने अगर तुम उपवास किए हुए, जल-अन्न त्यागे हुए और एक ही भाव में बने रहो, तो यह धीर की अवस्था हो गई। यह हकदार है मरने का। इसको कोई अड़चन नहीं। इसने अर्जित कर लिया। इसको महावीर कहते हैं परिज्ञानपूर्वक मरना। लेकिन वे जानते हैं कि कुछ लोग अजीब हैं। वे हर जगह से अपने लिए धोखा निकाल लेते हैं।
इसलिए दूसरे सूत्र में उन्होंने कहा, "किंतु जिसके सामने अपने संयम,
तप आदि साधना का कोई भय या किसी तरह की क्षति की आशंका नहीं है, उसके लिए भोजन का परित्याग करना उचित नहीं है।"
अगर अभी त्याग, तप और ध्यान बढ़ रहा है और तुम्हारे शरीर की कमजोरी के कारण, बुढ़ापे के कारण, दौर्बल्य के कारण तुम्हारे तप-ध्यान में कोई बाधा नहीं पड़ रही है, कोई आशंका नहीं है, तुम्हारा संयम आगे जा रहा है तो उसके लिए भोजन का परित्याग करना उचित नहीं है।
"यदि वह फिर भी भोजन का त्याग कर मरना चाहता है तो कहना होगा, वह मुनित्व से विरक्त हो गया।"

वह च्युत हो गया। क्योंकि उसमें एक नई आकांक्षा पैदा हो गई मरने की। मरना आकांक्षा से नहीं होना चाहिए। अब कुछ लाभ नहीं रहा और हम किसी के ऊपर बोझ हो गए हैं तो क्या सार है? अब कोई गति नहीं हो रही है, जीवन में कुछ नए साध्य नहीं खुल रहे हैं, नए फूल नहीं खिल रहे, सब असार हो गया, हम किसी पर बोझ होकर बैठ गए हैं तो विदा हो जाना चाहिए।
जीवन से जब तक सार निचुड़ता हो... और सार का अर्थ है आत्मा। सार का अर्थ
यह नहीं कि तुम तिजोड़ी भरते जा रहे हो, लाभ होता जा रहा है। सार से महावीर का अर्थ है, भीतर की संपदा अभी उपलब्ध हो रही है तो जीवन अभी योग्य है। अभी इस नाव का उपयोग करना है।
लेकिन कभी ऐसा भी हो जाता है कि तुम नाव पर गए यात्रा करने, और एक ऐसी घड़ी आयी कि नाव में छेद हो गए और नाव डूबने लगी, तो महावीर कहते हैं, छलांग लगाकर फिर तैर जाना। फिर नाव में ही मत बैठे रहना। फिर यह मत सोचना कि नाव को कैसे छोड़ दें? फिर छोड़ देना नाव को क्योंकि असली सवाल दूसरा किनारा है। अगर नाव दूसरे किनारे की तरफ अभी भी ले जाने में समर्थ हो तो चलते जाना। अगर नाव असमर्थ हो गई हो, देह कमजोर हो गई हो, जराजीर्ण हो गई हो तो छलांग लगा देना। तैरकर पार हो जाना। नाव से ही थोड़े ही दरिया पार होता है, तैरकर भी होता है, नाव के बिना भी होता है।
तो इतना स्मरण रहे। और नियम के संबंध में यह खतरा है कि नियम का लोग अक्सर गलत अर्थ ले लेते हैं।
मैंने सुना है, एक डाक्टर ने मुल्ला नसरुद्दीन को सलाह दी कि वह प्रतिदिन पांच किलोमीटर दौड़ा करे तो उसका स्वास्थ्य सुधर जाएगा। और फिर घरेलू जीवन में भी सुख-शांति संभव होगी। हफ्ते भर बाद मुल्ला ने डाक्टर को फोन किया और बताया कि वह उनके परामर्श पर ठीक-ठीक चल रहा है। डाक्टर ने पूछा, और घरेलू जीवन कैसा बीत रहा है? मुल्ला ने कहा पता नहीं। क्योंकि मैं तो अब घर से पैंतीस किलोमीटर दूर पहुंच गया हूं।
नियम को समझकर चलना जरूरी है। और नियम से नासमझी पैदा कर लेना बहुत आसान है, क्योंकि नासमझ हम हैं। हममें नियम जाते से ही तिरछा हो जाता है। और ऐसी भी संभावना है कि हम नियम का पालन भी कर लें और जो हम कर रहे थे उसमें कोई फर्क न पड़े।
ऐसा भी हुआ कि मुल्ला नसरुद्दीन को उसके डाक्टर ने एक बार कहा कि अब
यह शराब पीने की आदत सीमा के बाहर जा रही है। इसमें कुछ सुधार करना जरूरी है। तो तुम ऐसा करो कि योगासन शुरू करो। तो उसने डाक्टर की सलाह मानकर योगासनों का अभ्यास आरंभ कर दिया और सालभर में वह योग में दक्ष हो गया। घंटों शीर्षासन में खड़ा रहता। एक दिन मुल्ला की पत्नी से डाक्टर ने पूछा, योग के कारण नसरुद्दीन में कोई परिवर्तन आया? पत्नी ने कहा, हां एक दृष्टि से तो काफी परिवर्तन आया है। अब वे सिर के बल खड़े होकर भी मजे में पूरी बोतल पी सकते हैं।
होगा! क्योंकि हम जैसे हैं, जैसे ही कोई नियम हमें मिला, हम उसे अपना रंगरूप दे देते हैं। वह नियम हमारे जैसा हो जाता है। बजाय इसके कि नियम हमें बदले, हम नियम को बदल लेते हैं।
इसलिए तो दुनिया में इतने वकील हैं। उनका कुल काम इतना है कि कानून जब बने तो वे अपराध के हिसाब से कानून को बदलने की चेष्टा करें। वे अपराध के रंग में कानून को रंगें। तो जितने कानून बढ़ते जाते हैं उतने वकील बढ़ते जाते हैं। क्योंकि अपराधी अपराध छोड़ने को राजी नहीं है। वह कहता है, कानून से तरकीब निकालो। वह कानून का ही उपयोग अपराध करने के लिए कर लेता है।
और ऐसा ही वकील तुम्हारे भीतर भी है जिसको तुम बुद्धि कहो, तर्क कहो,
मन कहो। तो नियम को समझना और मन की चालबाजी से सावधान रहना।
महावीर कहते हैं, "साधक को पग-पग पर दोषों की आशंका (संभावना) को ध्यान में रखकर चलना चाहिए।"
चरे पयाइं परिसंकमाणो, जं किचिं पासं इह मन्नमाणो।
छोटे-छोटे दोष को भी समझपूर्वक देखना चाहिए। ऐसा न कहे कि छोटा-सा दोष है, क्या हर्ज है, चल जाएगा। क्योंकि छोटा बड़ा हो जाता है। छोटा बीज बड़ा वृक्ष हो जाता है। छोटा कांटा आखिर में नासूर बन जाता है।

छोटे दोष को छोटा न समझे। सावधान रहे।
लाभंतरे जीविय वूहइत्ता...
और जीवन का एक ही अर्थ है कि इससे महाजीवन का लाभ होता रहे।
पच्चा परिण्णाय मलावंधसी...
और अगर वह लाभ बंद हो जाए तो मौत को स्वेच्छा से स्वीकार करे। लेकिन-- तस्स ण कप्पदि भत्त-पइण्णं अणुवट्ठिदे भये पुरदो।
सो मरणं पत्थितो, होदि हु सामण्णणिव्विण्णो।।
लेकिन यदि अभी जीवन में कुछ भी संभावना शक्ति की थी, अगर जीवन में अभी
एक बूंद भी रस बचा था तो उस रस को भी ध्यान में परिवर्तित करना है। उस रस को भी परमात्मा की खोज में लगाना है।
तो जल्दबाजी न करे। क्योंकि बहुत लोग भगोड़े हैं। अगर उन्हें मरने का मौका मिल जाए तो वे कोई छोटे-से कारण से ही मर जाएंगे। कोई छोटी-मोटी बात, और वे मर जाएंगे। अहंकार को लगी कोई छोटी-मोटी चोट और वे मर जाएंगे।
कल मैं पढ़ता था कि एक सर्कस के शेरों को सिखानेवाले रिंग मास्टर ने आत्महत्या कर ली, क्योंकि एक शेर ने उसकी आज्ञा न मानी। अब शेर... ! आदमी भी होता तो भी ठीक था! उसने आज्ञा न मानी इससे उनका बड़ा भारी, आत्मसम्मान की हानि हो गई। उन्होंने आत्महत्या कर ली। भद्द हो गई होगी क्योंकि सर्कस का मामला! वे चिल्लाते रहे होंगे, आवाज देते रहे होंगे। शेर तो शेर! वह बैठा रहा होगा कि अच्छा चलो, देते रहो आवाज।
मगर यह अहंकार को लगी चोट कोई आत्महत्या करने लायक नहीं थी। हंसकार टाल जाना था। आदमी बड़ी छोटी-छोटी बातों पर मरने को तैयार हो जाता है, यह ख्याल रखना। तुमने भी कई दफे सोचा होगा कि मर ही जाओ। परीक्षा में फेल हो गए कि इंटरव्यू में न आए, मर ही जाओ।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं, ऐसा आदमी खोजना कठिन है, जिसने जीवन में कम से
कम दस बार आत्महत्या का विचार न किया हो। छोटी-छोटी बात--पति से झगड़ा हो गया कि बस पत्नी सोचने लगती है, कि क्या करें? केरोसिन डाल लें, कि गैस के चूल्हे में आग लगा लें, कि बिल्डिंग से कूद पड़ें, कि ट्रेन के नीचे सो जाएं? जरा-जरा सी बात!
मैं एक घर में रहता था। और मेरे पड़ोस में ठीक दीवाल से लगे हुए एक बंगाली प्रोफेसर रहते थे। अभी नया-नया मैं आया था और दीवाल बड़ी पतली थी, जैसी आजकल के मकानों की होती है। तो उनकी सब बातें मुझे सुनाई पड़ती थीं--न सुनना चाहूं तो भी। पहले दिन... दूसरे दिन मैं थोड़ा हैरान हुआ। क्योंकि वह दूसरे दिन उन्होंने एकदम धमकी दी कि मैं जाकर मर जाऊंगा। तो मेरी कोई ज्यादा पहचान भी नहीं थी। बस थोड़ा परिचय हुआ था। अब वे तो निकल भी गए घर से अपना छाता उठाकर। बंगाली! बिना छाते के तो मरने भी नहीं जा सकते। मैं थोड़ा चिंतित हुआ। मैं गया। मैंने उनकी पत्नी से कहा कि मामला क्या है? मेरा कोई इतना परिचय नहीं है, लेकिन कोई मरने जा रहा हो तो मुझे कुछ करना चाहिए। उसने कहा, आप बिल्कुल बेफिकर रहो। वे अपने आप आ जाएंगे। पंद्रह मिनट से ज्यादा नहीं लगेगा। मैंने कहा, गए कहां हैं। उन्होंने कहा, वे कहीं जाते- वाते नहीं। यह तो जिंदगी हो गई मुझे। ऐसा कोई सप्ताह नहीं जाता जब वे मरने न जाते हों।
जरा-जरा सी बात पर आदमी मरने को तत्पर है।
इसलिए महावीर की सावधानी ठीक है। कि तुम ऐसा मत सोच लेना कि मरना कोई धर्म है। मरना तभी सार्थक हो सकता है, जब जीवन का कोई और उपयोग न रहा। जितने दूर तक यह नाव ले जा सकती थी, ले गई। अब तैरना पड़ेगा। अब यह नाव नहीं काम आती--तो!
अन्यथा सावधानीपूर्वक जीना, सावचेत जीना। छोटी-छोटी भूल को छोटी- छोटी मत मानना। कोई भूल छोटी नहीं होती। भूल छोटी होती ही नहीं। क्योंकि एक दफा छोटी भूल समझकर जो हृदय में पड़ जाती है, वह कल बड़ी हो जाती है, फैल जाती है, विस्तीर्ण हो जाती है। सभी लोग छोटे-छोटे दोष मानकर दोष करते हैं और एक दिन उनमें ग्रसित हो जाते हैं और निकलना मुश्किल हो जाता है।
किसी मित्र ने कहा कि अरे! पी भी लो। जरा-सी शराब थी, तुमने सोचा इतनी शराब से क्या बननेवाला, बिगड़नेवाला? साढ़े छह फीट लंबा शरीर है, तीन सौ

पौंड वजन है, क्या बिगड़नेवाला है? तुम पी गए। मगर वह छोटा-सा दोष धीरे-धीरे पकड़ेगा। बुराई बड़े आहिस्ता आती है। बुराई जब आती है तो जूते उतारकर आती है। आवाज ही नहीं होने देती। पैरों की भी आवाज नहीं होती।
इसलिए महावीर कहते हैं, बहुत सावधान रहना, बहुत सावचेत रहना। जीवन से
एक सत्य साधना है--जीवन साधन है, साध्य नहीं--और वह सत्य है, महाजीवन। उस महाजीवन को साधने के लिए मृत्यु को सुमरण बनाना है, पंडित की मौत मरनी है, जाननेवाले की मौत मरनी है। और अज्ञानी की मौत तो हम सब बहुत बार मर चुके। उससे कुछ लाभ नहीं हुआ। उससे हम मरे ही नहीं, फिर-फिर लौट आए।
किससे महरूमिए-किस्मत की शिकायत कीजे
हमने चाहा था कि मर जाएं, सो वह भी न हुआ
--अब किससे शिकायत करो भाग्य की?
किससे महरूमिए-किस्मत की शिकायत कीजे
हमने चाहा था कि मर जाएं, सो वह भी न हुआ
कितनी बार तो हम मर भी चुके, फिर भी मरे नहीं। और कितनी बार हमने चाहा
कि मर जाएं, वह भी नहीं हुआ।
तुम्हारी चाह से मौत नहीं घटेगी। महावीर कहते हैं, जिसको मौत का अनुभव करना हो, उसे अचाह साधनी पड़ती है--निष्काम चाह, वासनाशून्यता। क्योंकि सब वासना जीवन से जुड़ी है। जब तक वासना है तब तक तुम जीवन को पकड़े हो। जैसे ही वासना छूटती है, तुम कुछ भी नहीं मांगते, तुम मरने को तैयार हो गए। पंडितमरण की तैयारी हो गई।
और जो ज्ञानी की तरह मरता है, मृत्यु एक बड़े अभिनव, सुंदर रूप में प्रगट होती है। मृत्यु परमात्मा की तरह आती है।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग दो
अट्ठाईसवां प्रवचन

रसमयता और एकाग्रता

पहला प्रश्नः कुछ दिन ध्यान में जी लगता है, फिर कुछ दिन पूजा और भजन चलता है, लेकिन एकाग्रता कहीं भी नहीं होती। अपनी इस स्थिति से परेशान हूं। कृपा कर मुझे साधें।

मन का स्वभाव ऐसा। न यहां लगता, न वहां लगता। मन का स्वभाव है द्वंद्व। जो करोगे वहीं से उचटा हुआ लगेगा। जहां हो वहां से भागा हुआ रहेगा। जहां नहीं हो वहां का रस जन्मेगा। जो मिला, व्यर्थ हो जाता है। जो नहीं मिला, वे दूर के ढोल बड़े सुहावने लगते हैं।
मन के इस स्वभाव को समझो। न तो ध्यान काम आता, न भजन काम आता; मन के स्वभाव को समझना काम आता है।
मन की यह प्रक्रिया है। पद मिल जाए तो असंतुष्ट, पद न मिले तो असंतुष्ट। पद न मिले तो पीड़ा, पद मिल जाए तो व्यर्थता का बोध। गरीब रोता, अमीर नहीं है। अमीर रोता कि अमीर हो गया, अब क्या करूं?
जो भी तुम्हारे पास है, वह पास होने के कारण ही दो कौड़ी का हो जाता है।
और जो तुमसे बहुत दूर है, दूर होने के कारण ही उसका बुलावा मालूम होता है। मन के इस आधारभूत जाल को समझो। इसे पहचानो। यह ध्यान और भजन का ही सवाल नहीं है। भोजन करो तो मन में उपवास का रस उमगता है कि पता नहीं, उपवास करनेवाले न मालूम किस गहन शांति और आनंद को उपलब्ध हो रहे हों। उपवास करो तो भोजन की याद आती है।
जीवन के प्रत्येक पल तुम ऐसा ही पाओगे।
बाग में लगता नहीं, सहरा से घबड़ाता है जी
अब कहां ले जाके बैठें ऐसे दीवाने को हम
बगीचे में बिठाओ तो लगता नहीं। मरुस्थल में ले जाओ तो घबड़ाता है।
बाग में लगता नहीं, सहरा से घबड़ाता है जी
अब कहां ले जाके बैठें ऐसे दीवाने को हम
मन एक तरह का पागलपन है, एक तरह की विक्षिप्तता है। मन से मुक्त होना
ही मुक्ति है। मन के पार होना ही स्वस्थ होना है। तो पहली तो बात, मन के इस स्वभाव को समझने की कोशिश करो। अक्सर लोग समझने की कम कोशिश करते हैं, छुटकारा पाने की ज्यादा कोशिश करते हैं। और छुटकारा बिना समझे कभी नहीं है। तो तुम्हारी आकांक्षा यह होती है, कैसे झंझट मिटे। लेकिन बिना समझे झंझट मिटी ही नहीं। नासमझी में झंझट है।
तो तुम चाहते हो, कैसे इस मन से छुटकारा हो? लेकिन पहले इस पहचानो तो। इससे दोस्ती तो साधो। इससे परिचय तो बनाओ। इसके कोने-कांतर तो खोजो। दीया तो जलाओ कि इसके सारे स्वभाव को तुम ठीक से देख लो। उस देखने में, उस दर्शन में, उस साक्षीभाव में ही तुम पाओगे विजय की यात्रा पूरी होने लगी।
जिस दिन कोई मन को पूरा समझ लेता है, उसी दिन मन विसर्जित हो जाता है। जैसे सूरज के ऊगने पर ओसकण तिरोहित हो जाते हैं, ऐसे ही बोध के जगने पर मन तिरोहित हो जाता है। जैसे दीये के जलने पर अंधेरा नहीं पाया जाता, ऐसे समझ के, प्रज्ञा के दीये के जलने पर मन नहीं पाया जाता।
तो मन से लड़ो मत--पहली बात। लड़ने का अर्थ ही नासमझी है। लड़कर कभी कोई जीता? तुमने यही सुना है कि जो लड़े वे जीते। मैं तुमसे कहता हूं, लड़कर कोई कभी जीता? समझकर जीत होती है। लड़नेवाले तो नासमझ हैं। लड़ोगे किससे! छायाओं से लड़ रहे हो।
जैसे कोई अपनी छाया से लड़ने लगे, खींच ले तलवार, करने लगे हमला। परिणाम क्या होगा? छाया कटेगी? परिणाम यही होगा, खुद ही थकेगा। और डर है कि छाया से लड़ने में कहीं अपने हाथ-पैर न काट ले। क्रोध में, उबाल में, पागल न हो उठे। कहीं ऐसी घड़ी न आ जाए कि विक्षिप्तता में अपने को ही काट ले।
अक्सर मन के साथ लड़नेवाले ऐसी ही स्थिति में पड़ जाते हैं। मन तुम्हारा है; तुम्हारी छाया। है नहीं, बस छाया जैसा है।

रोशनी बढ़ाओ।
थोड़े जागकर मन को समझो।
जब ध्यान करो और मन कहे, भजन में, तो जरा जागकर देखो, एक तरफ खड़े होकर देखो कि मन क्या कह रहा है। जब भजन करो और मन कहे, ध्यान लगाओ, तब जागकर देखो कि मन क्या कह रहा है। इसकी चालबाजियां पहचानो। इसकी कूटनीति पहचानो। मन बड़ा राजनीतिज्ञ है। यह तुम्हें भटकाए रहता है। यह तुम्हें चलाए रहता है।
और तुमने ध्यान करके भी देख लिया, वहां भी नहीं लगा। और तुमने भजन करके भी देख लिया, वहां भी नहीं लगा। तो अब यह तो समझो कि मन कहीं लगेगा ही नहीं। मन का लगना धर्म नहीं। न लगना मन की आदत है। कहीं लगता नहीं। जो नहीं लगता वही मन है।
तो अब जब मन तुमसे कहे कि ध्यान करो, क्या भजन में पड़े हो? तो जागकर देखना कि यह फिर वही मन, जो कहीं नहीं लगता, भजन में भी नहीं लगा था; तब इसने कहा था, ध्यान करो। अब कहता है भजन करो। पहले कहा, संसार में उलझे रहो। फिर कहा, संन्यास ले लो। अब संन्यास में भी नहीं लगता; कहता है संसार में लौट चलो।
इस मन को जरा देखना। कुछ करने की बात नहीं है, सिर्फ शांत भाव से देखना। तुम्हारे देखने में ही तुम पाओगे मन गिरने लगा। तुम पर उसकी पकड़ जाने लगी। तुम पर पकड़ छूट जाए। तुम थोड़े शिथिल हो जाओ मन के पास से। तुम थोड़े बाहर सरकने लगो।
न तो ध्यान से घटती है बात, न भजन से; घटती है समझ से। इसलिए समस्त धर्मों का सार है जागरूकता।
प्रश्नकर्ता पूछता है, एकाग्रता नहीं बनती। एकाग्रता की खोज ही गलत है। जागरूकता खोजो। एकाग्रता की खोज तो फिर मन के ही सिक्कों में फंसे। यह मन ही है, जो कहता है एकाग्र बनो। यह तुम्हें असंभव चीजें करने को देता है।
फिर वे नहीं होतीं तो तुम हारे-थके परेशान हो जाते हो।
एकाग्रता की कोई जरूरत ही नहीं है। थोड़ा जीवन की गणित की व्यवस्था के सूत्र समझने चाहिए।
पहला सूत्रः जब भी मन नहीं होता, तब तुम एकाग्र होते हो।
कभी अपने काम में पूरे संलग्न। चाहे बुहारी लगा रहे हो घर में, लेकिन पूरे संलग्न। अचानक तुम पाते हो, मन नहीं है। संगीत सुनते संलग्न, मन नहीं है। चित्र बनाते... किसी भी घड़ी जब तुम पाते हो कि मन नहीं है, तुम ही हो, तो एकाग्रता अपने आप घटती है।
एकाग्रता घटाई नहीं जा सकती। एकाग्रता मन की तन्मयता का परिणाम है।
जब मन डूबा होता है तब तुम एकाग्र होते हो। जब मन उभर आता है तब तुम अनेकाग्र हो जाते हो। मन तुम्हें अनेक में बांट देता है; खंड-खंड कर देता है।
अब तुम चेष्टा कर रहे हो एकाग्र होने की। एकाग्र होने की चेष्टा और झंझट लाएगी क्योंकि करोगे किससे चेष्टा तुम एकाग्र होने की? मन से ही करोगे। सब चेष्टा मात्र मन से होती है।
अब तुम एक ऐसे काम में लगे हो, जैसे कोई आदमी अपने जूते के बंद खींच-खींचकर खुद को उठाने की कोशिश करे। खुद को कैसे उठाओगे जूते के बंद खींचकर? थोड़े-बहुत उछल-कूद लो, फिर बार-बार जमीन पर पड़ जाओगे। यह असंभव चेष्टा है।
मन कभी एकाग्र नहीं होता। जब एकाग्रता होती है तो मन नहीं होता। तो तुम मन के द्वारा एकाग्र होने की चेष्टा ही छोड़ो। तुम तो छोटे-छोटे कामों में रस लो। रस का परिणाम है एकाग्रता। बुहारी लगाओ तो ऐसे लगाओ, जैसे भगवान के मंदिर में लगा रहे हो। चाहे घर तुम्हारा ही हो; है तो भगवान का ही मंदिर।
भोजन करो तो ऐसे ही करो जैसे भगवान को ही भोग लगा रहे हो। भोजन तो तुम
ही कर रहे हो लेकिन अंततः तो भगवान को ही लग रहा है भोग। वही तो तुम्हारे भीतर आकर भूख बना। उसी ने तो तुम्हारी भूख जगाई। वही तो तुम्हारे भीतर भूखा है। उसके लिए ही तो तुम भोजन दे रहे हो। रस जगाओ। एकाग्रता की बात मत

उठाओ। रस का सहज परिणाम एकाग्रता है। जो करते हो उसे रसपूर्ण ढंग से करो। उसमें डुबकी लो। छोटे और बड़े काम नहीं हैं दुनिया में। जिस काम में तुम डुबकी ले लो, वही बड़ा हो जाता है। बुहारी लगाने में डूब जाओ, वही बड़ा हो जाता है।
कबीर कहते हैंः "खाऊं-पिऊं सो सेवा, उठूं-बैठूं सो परिक्रमा।" मेरा उठना बैठना ही उस परमात्मा की परिक्रमा है। और जो मैं खाता-पीता हूं, यही उसकी सेवा है। रस!
मेरे देखे अधिक लोगों के जीवन का कष्ट यही है कि वे जीवन में कहीं भी
रस नहीं ले रहे हैं। जो भी कर रहे हैं, बेमन से कर रहे हैं। कर रहे हैं क्योंकि करना है। खींच रहे हैं। जैसे बैलगाड़ी में जुते बैल; ऐसा जीवन को खींच रहे हैं। नाचते हुए, उमंग से भरे हुए नहीं।
अगर तुम कोई ऐसे काम में लगे हो, जिसमें तुम रस ले ही नहीं सकते तो बदलो वह काम। कोई काम जीवन से ज्यादा मूल्यवान नहीं है। अक्सर ऐसा हुआ है, हो रहा है कि लोग ऐसे काम में उलझे हैं जो उनमें रस नहीं जगाता। किसी को कवि होना था, वह जूते बेच रहा है, बाटा की दुकान पर बैठा है। और जिसको बाटा की दुकान पर बैठना था, वह कविता कर रहा है। तो उसकी कविता में जूते की पालिश की गंध आती। आएगी ही।
लोग वहां हैं, जहां उन्हें नहीं होना था। और यह विकृति के कारण है। क्योंकि तुमने कभी अपने सहज भाव को तो खोजा नहीं। किसी के पिता ने कहा कि दुकान करो। इसमें ज्यादा लाभ है। किसी के पिता ने कहा, डाक्टर बन जाओ। किसी की मां को ख्याल था, बेटा इंजीनियर बने। परिवार को धुन थी कि बेटा नेता बने।
तो सब धक्का दे रहे हैं एक-दूसरे को कि यह बन जाओ, वह बन जाओ। कोई यह नहीं पूछता कि यह बेटा क्या बनने को पैदा हुआ है? इससे भी तो पूछो। थोड़े इसके हृदय को भी तो टटोलो। तो फिर लोग गलत जगहों पर पहुंच जाते हैं।
एक बहुत बड़ा सर्जन, जिसकी सारी जगत में ख्याति थी, जब साठ वर्ष का हुआ
और उसकी साठवीं वर्षगांठ मनाई गई तो सारी दुनिया से उसके मित्र इकट्ठे हुए, उसके मरीज इकट्ठे हुए और उन्होंने उसका बड़ा स्वागत किया। लेकिन वह बड़ा उदास था। उसके स्वागत में एक नृत्य का आयोजन किया गया था। तो जब लोग नृत्य करने लगे और वह सर्जन देखता रहा तो उसकी आंख से आंसू टपकने लगे। उसके पास बैठे उसके मित्र ने पूछा, क्या मामला है? हम सब तुम्हारी वर्षगांठ पर इकट्ठे हुए प्रसन्नता से। यह नृत्य तुम्हारे स्वागत में होता है, तुम रोते क्यों हो? तुम्हारी आंख में आंसू क्यों हैं? तुम किस पीड़ा से भीग गए हो?
उसने आंसू पोंछ लिए। उसने कहा कि नहीं, वह कोई बात नहीं है। पर मित्र
ने जिद्द की। कहा कि क्या तुम्हें कोई जीवन में विफलता मिली? तुम जैसा सफल आदमी नहीं है। तुमने जो आपरेशन किया, सफल हुआ। तुम्हारे जैसा कुशल सर्जन दुनिया में नहीं। फिर क्या?
लेकिन उसने कहा, मैं कभी सर्जन होना ही नहीं चाहता था। मेरा दिल तो एक नर्तक होने का था। आज नाच को देखकर मैं रो उठा। मैं छोटा-मोटा नर्तक होता, कोई मुझे न जानता तो भी मेरी तृप्ति होती। आज मैं दुनिया का सबसे बड़ा सर्जन हूं, लेकिन मेरी कोई तृप्ति नहीं है। मेरी नियति ही मुझे न मिली। तो आज भी जब मैं किसी को नाचते देखता हूं तो बस, मुझे याद हो आती है।
तुम अपनी जिंदगी को गौर से देखो। पहली तो बात--जो कर रहे हो उसमें रस लेने की कोशिश करो। हो सकता है तुमने रस का अभ्यास नहीं किया। तुम्हें किसी ने सिखाया ही नहीं कि रस का अभ्यास कैसे करना।
रस के अभ्यास का पहला सिद्धांत है कि जो भी कर रहे हो, इसका परिणाम मूल्यवान नहीं है। तुम्हें यही सिखाया गया है कि परिणाम मूल्यवान है। तुम करते हो, इससे दस रुपये मिलेंगे कि हजार रुपये मिलेंगे कि लाख रुपये मिलेंगे। लाख रुपये में मूल्य है, परिणाम में मूल्य है।
रस का सिद्धांत है, जो तुम कर रहे हो, वह अपने आप में मूल्य है। अंतर्निहित है मूल्य। हजार मिलेंगे, दस हजार मिलेंगे, वह बात गौण है। करने में जो डुबकी लगेगी वही बात महत्वपूर्ण है। अगर डूब गए तो मिल गए करोड़ों।

अगर न डूबे और करोड़ों भी मिले तो कुछ भी न मिला। वह समय व्यर्थ गया, जो बिना डूबे गया। वे दिन व्यर्थ ही बीते, जो बिना डूबे बीते। जब रसधार न बही तो तुम जीए न जीए बराबर। रस-विमुग्धता में ही जीवन है। तो पहली तो बात जो कर रहे हो... ।
तुमसे नहीं कहता कि जल्दी बदलने में लग जाना। क्योंकि हो सकता है, तुम अपना काम भी बदल लो और रस न आए। क्योंकि रस आने की तुम्हारी आदत ही न रही हो। तुमने रस बनाने की बात ही न बनाई हो।
तो पहले तो जो कर रहे हो उसमें रस लेने की कोशिश करना। सौ में पचास मौके तो ऐसे हैं कि तुम उसी में रस ले पाओगे। रस लेते ही एकाग्रता हो जाएगी।
देखा, स्कूल में छोटे बच्चे पढ़ते हैं; बाहर चिड़िया गुनगुनाने लगी गीत, बच्चा एकटक होकर सुनने लगता है। शिक्षक डंडा पीटता है टेबल पर, कि यहां ध्यान दो। एकाग्रता करो। एकाग्रता बच्चा कर ही रहा है। मगर शिक्षक पर नहीं कर रहा, यह बात सच है। यह ब्लैकबोर्ड पर नहीं कर रहा। ब्लैकबोर्ड पर लिखे अक्षरों पर नहीं कर रहा। लड़का तो एकाग्रता कर ही रहा है। एकाग्रता तो हो ही रही है। वह जो चिड़िया गीत गा रही है वह उसे सुन रहा है। शिक्षक कहता है, एकाग्रता करो। मन को ऐसा विचलित मत करो।
बात बिल्कुल गलत कह रहा है शिक्षक। शिक्षक उसके मन को विचलित करने की कोशिश कर रहा है। वह एकाग्र है। अगर कोई बाधा न दे, तो यह सारा संसार थोड़ी देर के लिए मिट जाएगा। वह चिड़िया की गुनगुनाहट होगी, उसका गीत होगा, इस बच्चे की भावदशा होगी। और यह एक बात सीख लेगा--रस की।
रस चूंकि उसे चिड़िया के गीत में आ रहा है, इसलिए एकाग्र हो गया है। उसी कक्षा में ऐसे बच्चे भी होंगे, जिन्हें रस गणित के सवाल में आ रहा है। वे वहां एकाग्र हो गए होंगे।
हमें लोगों को एकाग्रता नहीं सिखानी चाहिए। उनका रस देखकर उन्हें दिशा देनी चाहिए। जो बच्चा गणित को सुनकर एकाग्र हो गया है, बाहर भौंकते कुत्ते, लड़ती बिल्लियां, गीत गाती चिड़ियां, रास्ते पर बैठे मदारी की बीन-- कुछ नहीं सुनाई पड़ती। यह बच्चा आइंस्टीन होने को पैदा हुआ है। इसकी एकाग्रता ही खबर देती है।
अब इस बच्चे से तुम कहो, कि चिड़ियां गीत गा रही हैं, उन पर एकाग्रता करो, यह न कर पाएगा। यह संभव नहीं होगा।
हमें देखना चाहिए कि कहां हमारी एकाग्रता है। वहीं हमारा जीवन है। मगर आज अचानक जीवन बदलने का तुम्हारे हाथ में उपाय नहीं। आज तो पहचानने का भी उपाय नहीं कि कहां तुम्हारी एकाग्रता होती है। तुम तो भूल ही गए। तुम्हारे जीवन की सारी व्यवस्था उल्टी-सीधी हो गई है। दूसरों ने तुम्हें चला दिया। दूसरों ने तुम्हें मार्ग दे दिया। दूसरों ने तुम्हें दिशा और आदर्श दे दिए। तुम्हें पूरी तरह भरमा दिया है।
पहले तो जो काम कर रहे हो उसमें रस लेने की आकांक्षा जगाओ। जो काम कर रहे हो उसे इतने भाव से करो, इतनी मगनता से करो कि उससे अतिरिक्त ऊर्जा बचे ही नहीं विघ्न-बाधा डालने को।
एकाग्रता का और क्या अर्थ होता है? एकाग्रता कोई जबर्दस्ती थोड़े ही है। एकाग्रता बड़ी स्वाभाविक घटना है।
अब तुम यहां मुझे सुन रहे हो। जिनको मेरी बात में रस आ रहा है, वे एकाग्र हैं। एकाग्रता कर थोड़े ही रहे हो, एकाग्रता हो रही है। इसे समझने की कोशिश करो। तुम्हारे करने की थोड़े ही बात है। तुम थोड़े ही बैठे हो सब मांस-पेशियों को खींचकर, आंखें मुझ पर गड़ाकर और चेष्टा कर रहे हो कि एकाग्रता! ऐसे एकाग्रता करोगे तो तुम सुन ही न पाओगे, जो मैं कह रहा हूं। एकाग्रता सहज है। तुम्हें रस आ रहा है। उसी रस के कारण तुम चले आए हो। उसी रस के कारण तुम रोज चलते आए हो। वही रस तुम्हें लाता रहा है।
रस है तो एकाग्रता है।
तो तुम रस को जगाओ, एकाग्रता की बात ही छोड़ दो। अगर रस जगे ही न तो फिर समझो, फिर हिम्मत करो, साहस करो। बदलो उस व्यवस्था को, जिसमें रस नहीं जगता। हो सकता है वह व्यवस्था तुम्हारे लिए नहीं है।

तो दरिद्र हो जाना बेहतर है समृद्ध होने की बजाय। सड़क का भिखारी हो जाना बेहतर है सम्राट होने की बजाय--अगर रस आ जाए। क्योंकि रस ही सम्राट बनाता है।
तो कभी-कभी तुम किसी भिखारी के चेहरे पर ऐसी आभा देखोगे, जो सम्राटों
के चेहरों पर नहीं दिखती। रसविमुग्ध है वह। अपने काम में लीन है। रथचाइल्ड ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि एक भिखारी आया, पांच बजे सुबह उसका दरवाजा खटखटाने लगा। वह बड़ा नाखुश हुआ। पांच बजे सुबह नींद से भरे उसको उठाया। वह बड़ा झल्लाता हुआ बाहर आया। ऐसे वह देना पसंद करता था। दान उसका रस था। लेकिन यह कोई वक्त है?
तो उसने भिखारी को कहा कि सुनो जी! यह कोई समय है? भिखारी ने कहा कि आप
भी सुनो। आप बैंकिंग का धंधा करते हैं, मैं कोई सलाह तो देता नहीं। यह हमारा धंधा है। इसमें हम सलाह किसी की मानते नहीं।
रथचाइल्ड ने प्रकाश जलाया कि इस आदमी को देखना चाहिए, जो दुनिया के बड़े से बड़े करोड़पति को कह सकता है कि सुनो, तुम बैंकिंग का धंधा करते हो, हम तुम्हें कभी सलाह देते नहीं। हमारी सलाह का कोई मतलब भी नहीं, क्योंकि हमें कोई अनुभव भी नहीं। तुम हमें सलाह मत दो। हम जन्मजात भिखारी हैं।
उस आदमी के चेहरे को देखा, वह बड़ा प्रसन्न आदमी था। रथचाइल्ड ने लिखा, मैं मंत्रमुग्ध हो गया। यह हिम्मत भिखारी की नहीं, सम्राट की होती है। रथचाइल्ड को ऐसा कहना, जिसके पास भीख मांगने आए कि चुप! सलाह मत देना। मेरे धंधे को मैं भलीभांति जानता हूं।
रथचाइल्ड ने उसे खूब दिया; और कहा, मैं खुश हुआ इस बात से कि कोई आदमी अपने भिखमंगेपन की भी इतनी प्रतिष्ठा रखता है।
कभी तुम्हें राह का भिखारी भी प्रसन्न मिल सकता है। प्रसन्नता का कोई संबंध इससे नहीं कि तुम्हारे पास क्या है। जो भी तुम्हारे पास है, उसमें अगर रस है तो प्रसन्नता है। तुम अगर हाथ के भिक्षापात्र को भी गीत गुनगुनाते हुए ढो रहे हो तो आनंद है। और तुम्हारे पीछे स्वर्णरथ चल रहे हैं और तुम मुर्दा, बुझे, तो कुछ अर्थ नहीं है।
एकाग्रता मत पूछो। यद्यपि तुम्हें यही सिखाया गया है स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय तक। और तुम्हारे तथाकथित धर्मगुरु भी तुम्हें यही सिखाते हैं कि--एकाग्रता। मैं तुमसे कहता हूं, रसमग्नता। वह शब्द हटा दो। क्योंकि वह शब्द सीधा काम का ही नहीं है।
एकाग्रता जरूर आती है, मगर परिणाम की तरह आती है। एकाग्रता साधन नहीं है; जहां रस लोगे वहीं घट आती है। रस के पीछे बंधी चली जाती है। रस की छाया है।
तो तुम कहीं भी रस लो। अगर मंदिर में रस न आता हो, फिक्र छोड़ो। फिर मंदिर में परमात्मा तुम्हारे लिए नहीं घटेगा। जहां रस ही नहीं है, वहां एकाग्रता नहीं होगी। एकाग्रता नहीं होगी, परमात्मा कहां होनेवाला है! अगर तुम्हें बांसुरी के गीत में रस आता है तो वहीं तुम्हारा परमात्मा तुम्हें मिलेगा। अगर नर्तक की पायलों में तुम्हें रस आता है तो तुम्हारा परमात्मा वहीं नाचेगा।
तुम्हारे परमात्मा की खोज तुम्हारे रस से ही तय होगी। रसो वै सः। उस परमात्मा का स्वभाव रस है। किसी शास्त्र ने नहीं कहा कि परमात्मा का स्वभाव एकाग्रता है। सच्चिदानंद! वह रस की बात है। तुम्हें जहां आ जाए रस, जहां आ जाए आनंद, जहां उमंग उठे, जहां तुम खिल उठो। फिर वह कुछ भी हो। चाहे खेल हो, तो प्रार्थना बन गई। और ऐसे तुम बैठे-बैठे प्रार्थना करते रहो, भजन करते रहो, ध्यान करते रहो; रस उमगे नहीं, मेघमल्हार बजे नहीं, हृदय गुनगुनाए नहीं--ऐसे तुम करते चले जाओ जबर्दस्ती, यंत्रवत, करनी चाहिए, कर्तव्यवश, लोग कहते हैं इससे रस मिलेगा इसलिए कर रहे हैं।
नहीं, जहां रस मिलता है वहीं परमात्मा आता है।
इसलिए मैं तुमसे कहता हूं कि मेरे पास तुम्हें देने के लिए कोई अनुशासन नहीं है। क्योंकि अनुशासन कोई भी होगा, पराया होगा, दूसरे का होगा। तुम्हें अपना अनुशासन खोजना पड़ेगा। प्रत्येक व्यक्ति को अपना

मार्ग खोजना पड़ेगा। मैं इशारे देता हूं। उन इशारों से तुम अपना मार्ग समझने की कोशिश करो।
कबीर ज्ञान को भी उपलब्ध हो गए तो भी कपड़ा बुनते रहे। जुलाहापन उन्होंने छोड़ा नहीं। किसी ने पूछा कि अब तो आप बंद करें। कभी सुना नहीं कि कोई बुद्धपुरुष और कपड़े बुनता रहा और जुलाहा बना रहा और बाजार में कपड़े बेचने जाता रहा। अब तो छोड़ो।
लेकिन कहते हैं, कबीर ने कहा, इसी कपड़े के बुनने ने तो मुझे परमात्मा
से मिलाया। इसे कैसे छोड़ दूं? यह मेरी प्रार्थना। यह मेरी पूजा। यह मेरी अर्चना।
"झीनी झीनी बीनी रे चदरिया।"
वह जुलाहे का गीत है। कोई और दूसरा तो गा भी नहीं सकता। बुद्ध कैसे गाएंगे? बुद्ध ने कभी चदरिया बीनी नहीं। उन्हें कुछ पता भी नहीं। महावीर कैसे गाएंगे? चदरिया थी, वह भी छोड़ दी! उनसे तो पूछो कैसी छोड़ी रे चदरिया, तो बता सकते हैं।
लेकिन कबीर ने बुन-बुनकर पाया। वे ताने-बाने चादर के बुनते-बुनते उनका ध्यान फला। वहीं रसविमुग्ध हुए। पर कैसे पाया उन्होंने? क्योंकि हमें बुद्ध की बात समझ में आ जाती है कि दूर बोधिवृक्ष के नीचे ध्यान में बैठे हुए हैं। कि महावीर वनों में, पर्वतों में, एकांत में, बारह वर्ष मौन में खड़े हुए। कबीर... कबीर कपड़ा बुन-बुनकर पा लिए।
रस से बुना होगा। कबीर कहते थे, राम के लिए बुन रहा हूं। सभी ग्राहकों में राम देखते थे। जब अपना कपड़ा बुनकर और काशी के बाजार में बेचने जाते, कोई मिल जाता रास्ते में और कहता, कहां जा रहे हो? तो वे कहते, राम आए होंगे। उनको जरूरत है, कपड़ा बुनकर लाया हूं। बड़ा बढ़िया बुना है। राम को देने जा रहा हूं।
जब कोई ग्राहक उनसे कपड़ा खरीदता तो वे कहते, सम्हालकर रखना राम। बड़ी मेहनत से बुना है। बड़े रस से बुना है। कपड़ा ही नहीं है, पीढ़ी दर पीढ़ी चले ऐसी मजबूती से बुना है। अपने प्राण उंडेले हैं।
तो जिसको ग्राहक में राम दिखाई पड़े, अब उसे किसी बोधिवृक्ष के नीचे जाने की जरूरत न रही। सभी लोग बोधिवृक्ष के नीचे जा भी नहीं सकते। और अच्छा है कि जाते नहीं; नहीं तो बड़ी झंझट खड़ी हो जाए। एकाध बुद्ध बोधिवृक्ष के नीचे बैठता है, चलता है। एकाध महावीर मौन खड़ा हो जाता है, चलता है। लेकिन सभी ऐसे खड़े हो जाएं तो जीवन बड़ा विरस हो जाएगा।
अधिक को तो कबीर जैसा होना पड़ेगा। अधिक को तो गोरा जैसा होना पड़ेगा।
गोरा कुम्हार बस घड़े बनाता रहा। और घड़े बनाते-बनाते खुद को भी बना लिया।
रैदास जूते सीते-सीते, जूते बनाते-बनाते पहुंच गए।
तो तुम जो कर रहे हो, उसमें रस डालो। उंडेलो रस। वही तुम्हारा भजन, वही तुम्हारा ध्यान।
अगर तुम्हारी सारी चेष्टाएं असफल हो जाएं तो फिर साहस करो। तो फिर तुम गलत जगह हो। तुम कुछ ऐसी जगह बहने की कोशिश कर रहे हो, जो चढ़ाव पर है। तो नदी चढ़ाव पर तो नहीं बहती, ढाल पर ही बह सकती है। रसधार भी ढाल पर ही उतरकर, बहकर मिलता है।
तो फिर बदलो। इसीलिए साहस की जरूरत है। पहले सारी चेष्टा कर लो। और फिर तुम्हें लगे कि नहीं, इस ढंग से मेरे लिए परमात्मा से मिलन नहीं हो सकेगा तो बदलो। उस बदलाहट को मैं संन्यास कहता हूं। बदलने की हिम्मत रखो। एक आदमी चालीस साल तक लंदन के बाजार में दलाल का काम करता रहा। बड़ा सफल आदमी था। खूब कमाई थी। सब तरह का सुख था। किसी ने कभी सोचा भी न था, एक रात वह घर से नदारद हो गया। पत्नी भी भरोसा न कर सकी, बेटे भी भरोसा न कर सके, मित्र भी भरोसा न कर सके, काम धंधे में जो लोगों से संबंध था वे भी भरोसा न कर सके। क्योंकि न तो वह आदमी कभी किसी और स्त्री के संग में देखा गया था, कि पत्नी सोच भी सके कि वह किसी स्त्री के साथ भाग गया। न उसके कोई धार्मिक रुझान थे कि वह कोई जाकर किसी आश्रम में संन्यासी हो गया होगा। न कोई दुख था कि आत्महत्या कर ली होगी। सब भांति सुखी-संपन्न आदमी था; जिसको हम सुखी-संपन्न कहते हैं, वैसा आदमी था। सब ठीक-ठाक था।

कोई तीन साल बाद उस आदमी का पता चला कि वह पेरिस में चित्रकला सीख रहा है। भिखमंगे की हालत हो गई है। भागे उसके मित्र। उससे कहा, तुमने यह क्या किया? तुम्हारे पास सब था, सब ठीक था। उसने कहा, वही अड़चन थी। सब ठीक था, कहीं कुछ गड़बड़ न थी। लेकिन कोई प्रफुल्लता न थी। कहीं कोई उमंग न थी। सब ठीक चल रहा था और सब ठीक मैं चला रहा था, लेकिन कोई रसधार न बह रही थी। मेरे जीवन में सदा से आकांक्षा थी कि चित्रकार बनूं। दलाल बनना मैंने कभी चाहा न था। वह सफलता सांयोगिक थी। अब मैं खुश हूं। मेरे पास अब कुछ भी नहीं है। चित्र बनाता हूं, बिक जाते हैं तो भोजन के लायक, कपड़े के लायक इंतजाम कर पाता हूं। अपने पास रहने का छप्पर भी नहीं है। एक मित्र के कमरे में बना हूं, रह रहा हूं। लेकिन वापस मुझे जाना नहीं है। मैं प्रसन्न हूं। और जो मित्र गए थे उन्होंने देखा कि वह आदमी एक अदभुत ऊर्जा से, एक अदभुत आभा से भरा था। सूख गया था शरीर उसका, लेकिन एक रोशनी थी। उसने कहा, मैं किसी से नाराज नहीं हूं। मेरी पत्नी को कहना, मैं किसी से नाराज नहीं हूं। सब ठीक था। मैं बिल्कुल, जैसा जिसको हम सुखी-संपन्न कहते हैं, वैसा आदमी था। मेरे बच्चे ठीक हैं, मेरे बेटे ठीक हैं, मेरी पत्नी ठीक है। सब ठीक था।
लेकिन सब ठीक से कहीं कुछ होता? ठीक से कुछ ज्यादा चाहिए। ठीक से क्या होगा? ऐसे तो ठीक-ठीक-ठीक, और मर जाएंगे। सुविधापूर्वक जी लिए और मर गए।
नाच तो पैदा ही न हुआ। जीवन में फूल तो खिले ही नहीं।
लौटा नहीं वापस। बड़ा चित्रकार बन गया।
इसे मैं संन्यास कहता हूं। न उसने गैरिक वस्त्र पहने, न वह किसी आश्रम में गया लेकिन इसे मैं संन्यास कहता हूं। संन्यास का अर्थ हुआ, साहस इस बात का कि अगर दिखाई पड़े कि मेरा जीवन मरुस्थल में खोया जा रहा है तो अपनी राह बदल लेने की। चाहे कोई भी कीमत चुकानी पड़े।

आदमी कमजोर है। वह सुविधा से जीता है। चाहे कुछ न मिले, लेकिन सुविधा
तो है, सुरक्षा तो है। कुछ न मिले!
इसलिए ये सारे प्रश्न उठते हैं कि एकाग्रता कैसे सधे? तो पहले तो कोशिश करना। सध जाए तो शुभ। चेष्टा करने से पचास प्रतिशत मौके हैं, सध जाएगी। न सधे तो हिम्मत करना। देर मत लगाना, क्योंकि जिंदगी रोज हाथ से सरकी जाती है। जिंदगी उन्हीं की है, जो हिम्मत से जिंदगी को बदलने के लिए तैयार होते हैं। नहीं तो जिंदगी बह जाती है। चिकने घड़े के ऊपर जैसे वर्षा का जल बह जाता है, कुछ भरता-करता नहीं। या उल्टे घड़े पर जैसे वर्षा गिरती रहती है--टप-टप। बहुत आवाज, शोरगुल मचता है लेकिन घड़ा खाली का खाली रहता है। उल्टा रखा है।
तो जरा गौर से देखना। तुम्हारा घड़ा अगर भरता न हो तो कहीं उल्टा तो नहीं रखा है?
तो न तो मौलिक सवाल ध्यान का है, न भजन का है; मौलिक सवाल समझ का है। मन
के स्वभाव को समझो।
एकाग्रता की बात ही मत उठाओ, रसमयता की बात उठाओ। रसमयता के पीछे-पीछे तुम पाओगो, एकाग्रता घूंघर बजाती हुई चली आती है।

दूसरा प्रश्नः बिना किसी उद्देश्य के मैं अपने पति के साथ यहां आ गई। इरादा था कि यहां से दक्षिण भारत घूमने जाऊंगी। किंतु आपके प्रवचन सुनकर कुछ ऐसी पागल हुई कि संन्यास भी ले लिया। और अब ऐसा लगने लगा कि जैसा पहले कभी नहीं लगा था। जिस किनारे पर अब तक खड़ी थी वह किनारा ओझल हो गया है आंख से; और अब तो आप ही मेरे कृष्ण बन गए हैं, जिनकी मैं आराधना करती थी। और यह विश्वास लेकर जाती हूं कि जो ध्यान मिला यहां, वह कायम रहेगा। और पुकारने पर आप सदा आते रहेंगे।
"मेरे तो ओशो ही दूसरो न कोई।"

पूछा है त्रिवेणी ने। नई-नई महिला, नया-नया उसका आना हुआ है। लेकिन जैसे बहुत दिन का प्यासा जल के पास आ जाए, दिल खोलकर पी ले, ऐसा उसने पीया है।

तो कभी-कभी ऐसा होता है, जो मुझे बहुत सुनते रहे, वे खाली हाथ रह जाते हैं। और ऐसा भी होता है, कभी-कभी कोई नया व्यक्ति एकदम भरपूर हो उठता है।
प्यास पर निर्भर है।
त्रिवेणी कोई पढ़ी-लिखी महिला नहीं है, ग्रामीण है; गैर-पढ़ी लिखी है।
पर हृदय उसका बड़ा पढ़ा-लिखा मालूम होता है--"ढाई आखर प्रेम के।" बुद्धि का कोई शिक्षण नहीं हुआ है लेकिन हृदय जीवंत है।
तो घटना बड़ी सरलता से घट गई है। पति-पत्नी दोनों यहां हैं। लक्ष्मी मुझे कहती थी कि दोनों दिनभर रसविमुग्ध बैठे रहते हैं। जाते ही नहीं आश्रम से। खोए-खोए! जैसे कुछ मिल गया है--कोई खजाना। भरोसा भी नहीं हो रहा है कि मिल गया है। इतने अचानक मिला है। विश्वास भी नहीं आता कि मिल गया है। हटते भी नहीं। कहीं जाते भी नहीं। ठगे-ठगे!
त्रिवेणी मुझे मिलने आयी थी। कुछ कहा नहीं उसने। कुछ कहने को उसके पास है भी नहीं। यह प्रश्न भी किसी दूसरे से लिखवाया होगा। यह प्रश्न भी किसी और ने तैयार किया होगा। लेकिन वह मौजूद रही, बैठी रही। और बैठे-बैठे उसने जो कहना था, कह दिया--बिना कहे। उसकी मौजूदगी से उसने अपने भाव अर्पित कर दिए। अपना भाव-सुमन चढ़ा दिया।
लोग आते हैं, बहुत बात कर जाते हैं और बिना कुछ कहे भी चले जाते हैं।
आए, बकवास कर जाते हैं। त्रिवेणी आयी, बैठी रही चुपचाप एक तरफ। न कुछ बोली, न पास पैर छूने आयी। मगर उसने छू लिए पैर। गहन भाव की बात है।
यह प्रश्न कई तरह से सोचने जैसा है। पहली बातः "बिना किसी उद्देश्य के मैं अपने पति के साथ यहां आ गई।"
ऊपर से जिसे हम उद्देश्य कहते हैं, ऊपर से जिसे हम चेष्टापूर्वक खोज कहते हैं, वह बड़ी उथली है। भीतर एक निरुद्देश्य खोज चल रही है। वह जन्मों- जन्मों से चल रही है। हमें कभी पता भी नहीं होता कि कहां किस द्वार पर हमारे लिए द्वार खुल जाएंगे! हमें पता भी नहीं होता कि कहां किस घड़ी में जीवन को शरण मिल जाएगी। शायद हम चेष्टा करके उसकी खोज भी नहीं कर रहे थे। अकस्मात घटता है। अक्सर चेष्टा करनेवाले लोग वंचित रह जाते हैं। क्योंकि चेष्टा में अहंकार है।
मेरे पास दो तरह के लोग आते हैं। एक, जो जान-बूझकर धर्म की खोज में निकले हैं। उनके साथ बड़ी अड़चन है। वे सब आश्रमों में हो आए हैं। सब गुरुओं के पास हो आए हैं, सब शास्त्र पढ़ लिए हैं। कहीं कुछ नहीं होता।
जब ऐसा व्यक्ति मेरे पास आता है तो मैं जानता हूं, होना बहुत मुश्किल है। उसकी सचेष्ट-आकांक्षा ही बाधा बन रही है। उसकी आकांक्षा के कारण ही वह बंद है।
दूसरे तरह के लोग हैं, जो कभी निरुद्देश्य आ जाते हैं। अकारण! वे ज्यादा खुले होते हैं। कुछ पाने की खोज नहीं होती। कुछ पाने की अपेक्षा नहीं होती। मन ज्यादा खुला होता है। सरलता से चीजें घट जाती हैं।
तुम इसे समझने की कोशिश करना। जो-जो तुमने उद्देश्यपूर्वक खोजा है, उसे तुम कभी न पा सकोगे। जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, वह उद्देश्यपूर्वक खोज से नहीं मिलता। आनंद, सत्य, प्रभु, कोई भी सीधी खोज से नहीं मिलते। आकस्मिक घटते हैं। अनायास घटते हैं। प्रसादरूप मिलते हैं।
कोई मित्र तुमसे कहता है कि मैं तैरने जाता हूं नदी में, बड़ा आनंद आता है। तुम कहते हो, तो हम भी आएंगे। आनंद की तो हम भी तलाश कर रहे हैं। बस, गड़बड़ हो गई। तुम्हें न मिलेगा! क्योंकि तुम तैरोगे ही नहीं। एक हाथ मारोगे और सोचोगे, आनंद अभी तक नहीं मिला। कब मिलेगा अब? आधी नदी पार भी हो गई, अभी तक आनंद नहीं मिला? अब तुम उदास होने लगोगे।
क्योंकि आनंद मिलता है तब, जब तुम तैरने में परिपूर्ण लीन हो जाते हो। तुम भूल ही जाते हो। आनंद इत्यादि की बकवास भूल जाते हो। अचानक तुम पाते हो, मिला। क्योंकि तुम्हारे खोने में ही आनंद है। और तो कोई आनंद नहीं है। तुम नदी भी पार कर लेते हो, तैर भी जाते हो। मित्र से कहते हो, हमें तो कुछ मिला नहीं। तुम कहते थे, बड़ा आनंद मिलता है।
ऐसे कभी-कभी तुम किसी को यहां मेरे पास ले आते हो, कहते हो चलो, सुनने में बड़ा आनंद आता है। बस, तुम गड़बड़ में उसको डाल रहे हो। यह तो भूलकर कहना

ही मत कि सुनने में बड़ा आनंद आता है। क्योंकि आनंद का लोभ सभी को है। वह भी सोचेगा कि चलो, आनंद की तो खोज हम भी कर रहे हैं। अगर सुनने से ही आनंद मिलता है, इतना सस्ता मिलता है, चले चलते हैं। क्या बिगड़ता है? सुन ही लें। मगर वह पूरे समय बैठा है, देख रहा है किनारे से। जैसे तुमने देखा हो, बिल्ली बैठी रहती है, चूहे की राह देखती रहती है। ऐसे लगती है बिल्कुल शांत बैठी है, ध्यान कर रही है। ऊपर से देखो तो ऐसा लगता है, बड़ी महावीर बनी बैठी है, ध्यान-मग्न; लेकिन उसकी नजर लगी है चूहे की पोल पर कि कब निकले! अभी तक नहीं निकला, अब निकले। बड़ी देर हुई जा रही है, भूख बढ़ती जा रही है। तो वह जो आदमी आ गया है सुनने, इसलिए कि आनंद मिलेगा, वह आनंद के चूहे
पर लगाए नजर बैठा है। और ध्यान रखना, बिल्ली की नजर से चूहा डरता है। निकलता ही नहीं। वह भी अंदर से देख लेता है कि कहीं कोई ध्यानमग्न तो नहीं बैठा है! अगर बैठा है तो खतरा है। चूहे भी बिल्ली के पास नहीं आते। कितना ही ध्यान करो! क्योंकि चूहे कहते हैं, सौ-सौ चूहे खाए हज को चली। इतने चूहे खा चुकी है, इसका भरोसा चूहों को नहीं आता कि यह ध्यान में बैठी होगी। आनंद बड़ी नाजुक घटना है। तुम जब बिल्कुल बेखबर होते हो, मस्त होते हो,
तब तुममें प्रवेश कर जाता है। सामने के द्वार से आता ही नहीं, पीछे के द्वार से आता है। ऐसा ढोल इत्यादि बजाकर आता ही नहीं। चुपचाप, पगध्वनि भी नहीं होती ऐसे चला आता है।
तो अक्सर जो आकस्मिक रूप से आ गए हैं... ।
तुमको मैं कहता हूं, अपने मित्रों को कभी मत कहना कि बड़ा आनंद मिलता है, चलो। नहीं तो तुम उसके कारण बाधा बन जाओगे। तुम ही बाधा बन जाओगे। वे आएंगे और आनंद नहीं मिलेगा तो वे कहेंगे, तुमने धोखा दिया। और तुम्हें भी क्या खाक मिलता होगा, जब हमको नहीं मिला। सुना तो हमने भी वही, सुना तुमने भी वही। हमें तो कुछ भी न मिला। तो तुम नाहक की बातें करते हो।
नहीं, त्रिवेणी को हो गया होगा। वह यहां आने के लिए आयी ही न थी। जाते
थे पति-पत्नी दक्षिण की यात्रा को, पूना बीच में पड़ गया। सोचा होगा चलो, यहां भी देखते चलो। मगर कोई खोज नहीं थी। ऐसी कोई चेष्टा नहीं थी। ऐसी कोई अपेक्षा भी नहीं थी कि आनंद मिलेगा कि रसधार बहेगी कि बादल उमड़ेंगे- घुमड़ेंगे कि बिजली चमकेगी। ऐसा कुछ ख्याल ही न था। इतनी सरलता से कोई आ जाता है तो घटना घट जाती है।
सरलता से आना मुश्किल है। क्योंकि जो सरल हैं, वे आएं क्यों? जो जटिल हैं वे आते हैं। जटिल को मिलना मुश्किल। जो खोज रहा है वह आता है। जो खोज नहीं रहा वह आता नहीं। जो खोज रहा है उसको मिलता नहीं।
तो कभी-कभी जब न खोजनेवाला आ जाता है सत्संग में, तो घटना घट जाती है।
"बिना किसी उद्देश्य के मैं अपने पति को साथ आ गई।"
इसीलिए कुछ हो गया। अपेक्षा न हो तो जीवन में बड़ी घटनाएं घटती हैं। जो-जो तुमने अपेक्षा बांधी, वही-वही नहीं घटेगा। अपेक्षा के कारण ही घटना बंद हो जाता है।
तुमने देखा! किसी से प्रेम हो जाता है, खूब रस बहता है। लेकिन यह थोड़े दिन ही चलता है। यह हनीमून भी पूरा होते-होते चल जाएगा, संदिग्ध है। यह सुहागरात पर ही समाप्त हो जाता है। उसी स्त्री से, उसी पुरुष से बड़ा रस मिला था। फिर क्या हो जाता है?
अपेक्षा नहीं थी, जब मिला था। तब तुमने सोचा न था कि मिलेगा। तब तुम सचेत रूप से खोज नहीं रहे थे, मांग नहीं रहे थे; मिला था। फिर सचेत रूप से मांगने लगे। अब तुम कहते हो रोज-रोज मिलना चाहिए। अब तुम कहते हो, आज नहीं मिला, बात क्या है? कोई धोखा चल रहा है?
अब तुम मांग करते हो। अब तुम दावेदार बन गए। अब तुम मुकदमा लड़ने को तैयार हो। अब तुम कलह करते हो पत्नी से कि आज सुख नहीं दिया। या फिर तुम्हें संदेह होता है कि क्या पत्नी अब धोखा देने लगी? या कभी-कभी यह भी संदेह होता है क्या पहले-पहल धोखा दिया था? क्या मैं कोई सपने में खो गया था?

कुछ भी नहीं हुआ है। एक जीवन की छोटी-सी घटना तुम नहीं समझ पा रहे हो।
जब पहली दफा किसी स्त्री या किसी पुरुष से मिले थे तो मिलने में कोई भी अपेक्षा न थी--निरपेक्ष। घटना आकस्मिक घट गई थी। लेकिन अब अपेक्षा है। ऐसा हर तरफ होता है। पहली दफा ध्यान में लोगों को कभी-कभी ऐसी अनुभूति आती है। फिर कठिन हो जाता है। क्योंकि फिर दूसरे दिन ध्यान नहीं करते। फिर तो वे थोड़ा हिलते-डुलते हैं, और भीतर तैयार रहते हैं कि अब हो... अब हो... अब हो। नहीं होता। क्योंकि जब पहली दफा हुआ था तो "अब हो, अब हो" ऐसी कोई आवाज भीतर नहीं थी। अब तुमने एक नई चीज जोड़ दी, जो बाधा बन रही है।
इधर मेरे हजारों लोगों पर ध्यान-प्रयोग करने के जो नतीजे हैं, उनमें
एक नतीजा यह है कि पहली दफा जैसी झलक मिलती है, फिर बड़ी कठिन हो जाती है। फिर जब तक वह पहली झलक भूल नहीं जाती, दूसरी झलक नहीं मिलती। कभी महीनों लग जाते हैं भूलने में। जब बिल्कुल हार-हारकर आदमी सोचता है, कि अरे! वह भी मिली न होगी। कल्पना कर ली होगी। जब पहली झलक भूल जाती है तब दूसरी झलक मिलती है। दूसरी, तीसरी, चौथी झलक के बाद यह समझ में आना शुरू होता है कि मैं जो मांग रहा था, वह बाधा बन रही थी।
निरुद्देश्य आने से ही कुछ हुआ। अब ऐसी निरुद्देश्यता को कायम रखना।
अब खतरा है। त्रिवेणी पूछती है कि घर जाकर यह ध्यान कायम रहेगा न? अब खतरा है। जो हुआ है, बिना मांगे हुआ है। अब भी क्यों मांगना? जब अभी बिना मांगे हो गया है तो फिर भी बिना मांगे होता रहेगा।
अब खतरा है। अब खतरा यह है कि जो रस उसे मालूम हुआ है, अब वह चाहेगी कि
वह घर पर कायम रहे। लौट-लौटकर उसको फिर पाना चाहेगी। इस चाह से ही मर जाएगा। अब निरुद्देश्य न रही त्रिवेणी। अब त्रिवेणी को उद्देश्य मिल गया। अब दुबारा अगर वह पूना आएगी तो भी खतरा है। जरूर आएगी। आना पड़ेगा उसे। क्योंकि वह जो रस मिला, अब उसकी वासना जगेगी। अब वह बार-बार आएगी। अब मैं भी उससे डरा हूं। क्योंकि जब वह बार-बार आएगी और न पाएगी तो मुझ पर नाराज होगी।
इसलिए अभी से सावधान कर देता हूं। बात ही छोड़ो। जैसी आयी थी निरुद्देश्य, ऐसी ही घर वापस लौट जाओ। जैसे निरुद्देश्य मन से मुझे यहां चाहा, मुझे प्रेम किया, ऐसे ही घर पर भी करना। आनंद मत मांगना, ध्यान मत मांगना। मांगना ही मत कुछ। घटेगा। खूब-खूब घटेगा। जितना घटा है वह तो सिर्फ शुरुआत है। यह तो अभी एक झाला आया है। अभी तो मूसलाधार वर्षा होगी। मगर मांगना मत। यह तो सिर्फ शुरुआत है। और जब दुबारा यहां आओ तो अपेक्षा लेकर मत आना। फिर ऐसे ही आ जाना। कठिन होगा। क्योंकि इस बार तो निरुद्देश्य आना स्वाभाविक हुआ था। अब दूसरी बार बड़ा कठिन होगा। लेकिन अगर समझा कि पहली दफा निरुद्देश्य जाने से घट गया था तो अब उद्देश्य लेकर क्यों जाएं?
चले आना, जब आने की सुविधा बने। यह सोचकर मत आना कि वहां जाकर खूब आनंद होगा; कि वहां खूब ध्यानमग्नता आएगी; कि डूबेंगे। यह सोचकर ही मत आना। फिर ऐसे आना जैसे अजनबी हो। फिर घटेगा। जितना घटा उससे बहुत ज्यादा घटेगा। और इस सूत्र को अगर समझ लिया तो घटता ही रहेगा।

परमात्मा शुरू होता है, अंत कभी भी नहीं होता। हमारे पात्र भर जाते हैं, फिर भी बरसता रहता है। पात्र ऊपर से बहने लगते हैं, फिर भी बरसता रहता है। बाढ़ आ जाती है, बरसता ही रहता है। लेकिन अड़चन खड़ी होती है कि जैसे ही हमने अपेक्षा की कि हम सिकुड़े। हमारा पात्र बंद हुआ। हम अपात्र हुए। "बिना किसी उद्देश्य के यहां आ गई। इरादा कुछ और था--दक्षिण भारत घूमने जाऊंगी। किंतु आपके प्रवचन सुनकर कुछ ऐसी पागल हुई कि संन्यास भी ले लिया... ।"
ठीक कहती है। संन्यास एक तरह का पागलपन है। संन्यास एक तरह की मस्ती है। हिसाब-किताब की दुनिया के बाहर है। तर्क-वितर्क की दुनिया के बाहर है। सोच आदि को जो एक किनारे हटाकर रख देता है वही संन्यस्त होने का अधिकारी है। जो कहता है, लोक-लाज खोई। जो कहता है, अब फिक्र नहीं कि लोग क्या कहेंगे। जो कहता है, दूसरों के मत का अब कोई प्रभाव नहीं। अब हम अपने ढंग

से जीएंगे। जीवन हमारा है, हम अपने ढंग से जीएंगे, अपने ढंग से नाचेंगे। न हम किसी को जोर-जबर्दस्ती करते कि वह हमारे ढंग का हो। न हम किसी को जोर-जबर्दस्ती करने देंगे कि हम उसके ढंग के हों। न हम किसी को दबाएंगे, न हम दबेंगे।
संन्यास बड़ी गहरी उदघोषणा है। वह इस बात की उदघोषणा है कि अब न तो मैं किसी पर आग्रह थोपूंगा अपना कि वह मेरे जैसा हो, और न मैं चाहूंगा कि कोई चेष्टा करे मुझे अपने जैसा बनाने की। तो न तो मैं किसी का मालिक बनूंगा, और न किसी को मालिक बनने दूंगा। न मैं किसी की स्वतंत्रता छीनूंगा, और न किसी को मेरी स्वतंत्रता छीनने दूंगा।
दोहरी उदघोषणा है संन्यास। अब जो मेरी मौज है, वैसे ही जीऊंगा। यद्यपि इसका यह अर्थ नहीं कि तुम अपनी मौज में किसी को कष्ट दो। क्योंकि कष्ट देने का तो अर्थ हुआ, उदघोषणा इकहरी हो गई। तुम दूसरे पर अपने को थोपने लगे।
जीवन के परम रहस्यों में एक है कि न तो दूसरे के जीवन में बाधा देना और
न किसी को अवसर देना कि तुम्हारे जीवन में बाधा दे। बड़ा कठित है। आसान है बात, या तो दूसरे के जीवन पर हावी हो जाओ, दूसरे की छाती पर बैठ जाओ, मूंग दलो; यह आसान है। या दूसरे को अपनी छाती पर बैठ जाने दो, वह मूंग दले, यह भी आसान है। और यही अक्सर घटता है। या तो तुम किसी की छाती पर मूंग दलोगे, या कोई तुम्हारी छाती पर मूंग दलेगा। इसलिए मैक्यावेली ने कहा है, इसके पहले कि दूसरा तुम्हारी छाती पर मूंग दले, देर मत करो; उचको, झपटो, बैठ जाओ दूसरे की छाती पर, तुम मूंग दलना शुरू करो। नहीं तो कोई न कोई तुम्हारी छाती पर दल देगा।
मैक्यावेली कहता है, रक्षा का एकमात्र उपाय आक्रमण है। इसके पहले कि कोई हमला करे, तुम हमला कर दो। राह मत देखो कि वह करेगा, फिर रक्षा कर लेंगे। क्योंकि जिसने राह देखी वह तो पिछड़ गया।
तो दुनिया में ऐसा ही हो रहा है। बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है। तो
या तो बड़ी मछली बनो या छोटी मछली बनोगे। और क्या करोगे?
साधारण हैं दोनों बातें। यही हो रहा है। यही कलह है, यही संघर्ष है-- देशों में, जातियों में, व्यक्तियों में, सारे संबंधों में। पति पत्नी पर हावी होना चाहता है कि वह मेरे ढंग से चले।
एक पत्नी मेरे पास आती है। वह कहती है पति को बस, किसी तरह शराब रुकवा दें। और कुछ भी करे, मगर शराब न पीये। मैंने पूछा उसको कि सच में तू शराब के इतने विपरीत है या अपनी चलाने का आग्रह है? क्योंकि तेरे पति को मैं जानता हूं। भला आदमी!
और शराबी अक्सर भले आदमी होते हैं। खतरा तो उनसे है, जो माला इत्यादि लिए बैठे हैं। उनमें भले आदमी खोजना बहुत मुश्किल है। वे अक्सर दुष्ट प्रकृति के लोग होते हैं। शराबी तो अक्सर भले आदमी होते हैं।
तेरे पति को मैं जानता हूं, भला आदमी है। ऐसे किसी को कुछ गड़बड़ भी नहीं करता। वह कहती है, ऐसे तो कुछ गड़बड़ नहीं करते, पीकर ऐसा कुछ खराब भी नहीं करते। सिर्फ आपका प्रवचन देते हैं पीकर--दो-दो तीन-तीन घंटे! ऐसी कोई बुरी बात भी नहीं कहते। ज्ञान की बातें करते हैं। तो मैंने कहा, हर्जा क्या है? वे मेरा ही प्रवचन देते हैं। बात तो यही कहते हैं। बात भी बिल्कुल दोहराते हैं। जब वे पी जाते हैं तो शब्द शब्द दोहराते हैं, भाव-भंगिमा दोहराते हैं। तो फिर मैंने कहा, हर्ज क्या है? तू समझना कि टेप रिकार्ड लगाया है। सुन लिया कर।
नहीं, मगर वह कहती है, यह ठीक नहीं है। मैंने कहा, एक काम कर। तीन महीने... कितने दिन से तेरे पति पीते हैं? वह कहने लगी, कोई बीस साल से। मैंने कहा, बीस साल की आदत है, छूटते-छूटते छूटेगी। मगर तू एक काम कर। तू तीन महीने कहना छोड़ दे। तू तो कोई शराब नहीं पीती, सिर्फ कहती है कि मत पीयो। और बीस साल का अनुभव है कि वे सुनते नहीं। कहने में कुछ सार भी नहीं है। तीन महीने के लिए तू कहना छोड़ दे।

उसने पांच-सात दिन के बाद आकर कहा कि असंभव। मेरी भी बीस साल की आदत है। यह नहीं हो सकता। इससे मुझे बड़ी बेचैनी होती है, इसलिए नहीं कह सकती।
इसकी तो आप मुझे छुट्टी दे दें।
तो मैंने कहा, अब तू सोच। तेरे पति की तो शराब की आदत है बीस साल की।
कैसे छूटेगी? तुझे सिर्फ कहना रोकना है, वह भी नहीं छूटता। वह भी तेरी शराब हो गई।
और मजा तुझे अंदाज में नहीं है, अगर मैं तेरे पति को राजी कर लूं और वे शराब न पीयें तो तू दुखी हो जाएगी। क्योंकि तेरा सारा रस यही है। पति को तूने दीन-हीन कर दिया है। तेरी मालकियत कायम हो गई शराब पीने के कारण। ऐसे पति सब तरह से ठीक हैं। अगर शराब छोड़ दें तो तेरी मालकियत खतम हो जाएगी। तू ऊंची हो गई है, पति को नीचा बना लिया है। पति तुझसे डरते हैं, तू डराती है। अगर तेरे पति ने शराब छोड़ी तो वे तुझे डराएंगे। इसकी तू तैयारी कर ले। जीवन में हम या तो डरते हैं या डराए जाते हैं। हम अच्छे-अच्छे बहाने खोज लेते हैं डराने के। और हम अगर डराए जाते हैं तो भी हम अच्छे-अच्छे तर्क ले लेते हैं कि हम क्यों डर रहे हैं। हम कहते हैं कि वह बात ठीक ही है, इसलिए हम डर रहे हैं। संन्यास का अर्थ इन दोनों स्थितियों के पार जाना है। संन्यास का अर्थ है, न तो हम डराएंगे किसी को; क्योंकि हम कौन हैं? और न हम किसी से डरेंगे। न तो हम किसी को उसके मार्ग से विचलित करेंगे, न हम अपने मार्ग से विचलित होंगे।
इसका अर्थ हुआ, संसार से संबंध छोड़ा। क्योंकि संसार में दो ही तरह के संबंध हैं--या तो डराए जाओ, या डराओ। अगर तुम मेरी बात समझो तो पत्नी को छोड़कर नहीं जाना, दुकान छोड़कर नहीं जाना, घर छोड़कर नहीं जाना। संसार से संबंध छोड़ने का यह सार है कि मत डरना किसी से और मत डराना किसी को। तुम संसार के बाहर हो गए। क्योंकि इन दोनों में ही संसार बंटा है। तब तुम न बड़ी मछली रहे, न छोटी मछली रहे। तुम मछली ही न रहे। तुम संसारी न रहे।
बड़ी हिम्मत चाहिए। रास्ता कठिन होगा क्योंकि तुम अचानक अकेले पड़ जाओगे। और तुम्हारी सारी प्रतिष्ठा दांव पर लग जाएगी। क्योंकि जिनने प्रतिष्ठा दी थी, वे प्रतिष्ठा खींच लेंगे वापस। उन्होंने कुछ शर्तों से प्रतिष्ठा दी थी। वे कहते थे, तुम बड़े बुद्धिमान हो, अब न कहेंगे। वे कहते थे, तुम बड़े होशियार हो, अब न कहेंगे। अब तो वे कहेंगे, तुम पागल हो गए, सम्मोहित हो गए। किसके जाल में पड़ गए! तुमने अपनी बुद्धि गंवा दी। अब तो वे तुम पर संदेह करेंगे।
तो तुम्हारी सारी प्रतिष्ठा कठिनाई में पड़ जाएगी। संन्यास महंगा सौदा है। पागल ही कर सकते हैं।
त्रिवेणी ठीक कहती है कि "यहां आकर संन्यास ले लिया। ऐसी पागल हो गई
कि संन्यास ले लिया। और अब आप ही मेरे कृष्ण बन गए हैं।"
जहां प्रेम हो गया वहीं कृष्ण का आविर्भाव हो जाता है। कृष्ण से थोड़े
ही प्रेम होता है! जहां प्रेम होता है, वहीं कृष्ण का आविर्भाव हो जाता है। यही कठिन बात है।
अगर तुम किसी दूसरे को सिद्ध करोगे कि मुझे कृष्ण के दर्शन हो गए तो
वह हंसेगा। उसका हंसना भी ठीक है। वह कहेगा, हमें तो कोई कृष्ण के दर्शन होते नहीं; तुम्हें कैसे हो गए? कुछ भ्रांति हो गई होगी।
वह भी ठीक है। क्योंकि कृष्ण के दर्शन तो प्रेम में होते हैं; प्रेम
की आंख हो तो होते हैं। और प्रेम की आंख हो तो कुछ और ही होने लगता है, जो इस जगत में होता ही नहीं।
मोहब्बत में कदम रखते ही गुम होना पड़ा मुझको
निकल आयीं हजारों मंजिलें एक-एक मंजिल से
अगर प्रेम की आंख खुली, कि एक दूसरा ही लोक खुला। हजारों मंजिलें खुल जाती हैं। इधर प्रेम की आंख बंद हुई कि सब बंद हो जाता है।
कृष्ण दिखाई पड़ सकते हैं, जहां तुम्हारा प्रेम जग जाए। प्रेम कृष्ण
को निर्मित करता है। प्रेम कृष्ण का आविष्कार करता है।
तो तुम्हारा प्रेम जगा, इसे स्मरण रखना। और इस प्रेम को मुझ पर ही मत रोक लेना। इसे और बढ़ाना, कि धीरे-धीरे कृष्ण सब जगह दिखाई पड़ने लगें। जो

घटना तुमने मुझ पर घटा ली है, वह तुम्हारी प्रेम की आंख के कारण घटी है।
इसी आंख से वृक्ष को देखना। तो तुम पाओगे, कृष्ण खड़े हैं हरे-भरे। इसी आंख से पहाड़ को देखना तो तुम पाओगे, कृष्ण खड़े हैं। कैसे आकाश को छूते शिखर।
हिमाच्छादित! कृष्ण खड़े हैं।
तुम इसी प्रेम की आंख से देखते चले जाना, तो हर जगह कृष्ण दिखाई पड़ेंगे। यह प्रेम की आंख जो पैदा हुई है, यह बढ़ती जाए, यह मुझ पर रुके न। क्योंकि रुक जाए तो खतरा हो जाता है। रुकने से संप्रदाय बन जाता है। बढ़ने से धर्म, रुकने से संप्रदाय।
तुमने अगर यह जिद्द की कि यही आदमी कृष्ण है, और कोई कृष्ण नहीं--तो बस, जल्दी ही यह प्रेम मर जाएगा। क्योंकि प्रेम फैलता रहे तो जीता है। प्रेम बढ़ता रहे तो जीता है। प्रेम सिकुड़ जाए तो मरने लगता है। तुमने गर्दन पर फांसी लगा दी। जैसे किसी की गर्दन दबा दो और कोई मर जाए, ऐसा प्रेम को सिकोड़ना मत, अन्यथा मर जाएगा। फिर एक दिन तुम पाओगे कि मुझमें भी दिखाई नहीं पड़ेंगे कृष्ण।
इसलिए यह जो मौका मिला, यह जो पलक थोड़ी खुली, इसको और खोलते ही चले जाना।
"... अब यह विश्वास लेकर जाती हूं कि जो ध्यान यहां मिला है, वह कायम रहेगा।"
यह बात छोड़कर जाओ। यह साथ लेकर मत जाओ। यह रहेगा कायम, लेकिन तुम यह बात यहीं छोड़ जाओ। तुम यह बात ही मत उठाओ। यह विश्वास खतरनाक है। यह विश्वास तो इस बात की सूचना है कि अविश्वास आना शुरू ही हो गया। डर लगने लगा मन में कि अब घर वापस जाना है। पता नहीं जो यहां हो रहा था, वह वहां होगा या नहीं होगा। तुम्हारा घर परमात्मा के उतने ही निकट है जितना यहां। सभी घर उसके हैं। सभी जगह वही है।
तुम यह विश्वास ही उठाने का मतलब हुआ कि कहीं गहरे में अविश्वास आने लगा कि अब जाती हूं घर, अब पता नहीं जो हुआ है, वह साथ जाएगा या नहीं? फिक्र छोड़ो। विश्वास की कोई जरूरत नहीं है।
तुम आनंदमग्न, नाचती, गीत गुनगुनाती वापस जाओ। तुम्हारे गीतों में बंधा हुआ, जो यहां घटा है वह तुम्हारे साथ चला आएगा। अपेक्षाशून्य! जैसे निरुद्देश्य आना यहां हुआ था, ऐसे ही निरुद्देश्य वापस चली जाओ। दूर न जा पाओगी।
याद आगाजे-मोहब्बत की दिलों से न गई
काफिले घर से बहुत दूर न होने पाए
कभी नहीं हो पाते दूर। प्रेम की झलक मिल जाए... ।
याद आगाजे-मोहब्बत की दिलों से न गई।
फिर दिल कभी भूलता ही नहीं। दिल में घट जाए, एक दफा दिल में झंकार हो जाए, फिर दिल कभी भूलता ही नहीं।
याद आगाजे-मोहब्बत की दिलों से न गई
काफिले घर से बहुत दूर न होने पाए
फिर तुम जाओ कितने ही दूर--पृथ्वी के किसी दूर के कोने पर भी, तो भी घर
से दूर न हो पाओगे। वह घर परमात्मा है, जिससे हम कभी दूर नहीं हो पाते।
एक दफा पुलक आ जाए, झलक आ जाए। वह झलक आयी है। इसलिए विश्वास इत्यादि
की बात मत उठाओ। विश्वास तो थोथी चीज है। विश्वास तो अविश्वास को ढांकने का उपाय है। विश्वास तो शंका को छिपाने की व्यवस्था है। विश्वास तो संदेह को लीपापोती करना है।
तुम जैसी निरुद्देश्य यहां आयी थीं, बिना किसी भाव के; कुछ पता न था क्या घटेगा, ऐसे ही वापस जाओ बिना कुछ पता लिए कि क्या घटेगा। बहुत कुछ घटने को है। मैं तुमसे पहले तुम्हारे घर पहुंच गया हूं।
"... जो ध्यान यहां मिला वह कायम रहेगा और पुकारने पर आप सदा आते रहेंगे?"
तुम फिक्र ही न करो। कभी-कभी बिना पुकारने पर भी आऊंगा। द्वार पर दस्तक दूं तो घबड़ाना मत। कभी अचानक सामने खड़ा हो जाऊं तो घबड़ाना मत।

प्रेम न तो समय जानता, न स्थान जानता। क्षेत्र और काल दोनों के पार है।
दिन-रात खुली रहती हैं राहें दिल की
तकती हैं किसे रोज निगाहें दिल की
ये किसका तसव्वुर है, ये किसका है ख्याल
रोके जो रुकती नहीं आहें दिल की
दिन-रात खुली रहती हैं राहें दिल की--वे प्रेम के रास्ते सदा ही खुले हुए हैं। अपेक्षा से बंद हो जाते हैं। द्वार बंद हो जाता, भिड़ जाता। अपेक्षा भर मत ले जाओ। प्रफुल्लता से, मग्न-भाव से जाओ।
दिन-रात खुली रहती है राहें दिल की
तकती हैं किसे रोज निगाहें दिल की
दिल की निगाह के लिए कोई भौतिक उपस्थिति जरूरी नहीं है। दिल की आंख दूर से देख लेती है। और दिल की आंख न हो तो पास से भी नहीं देख पाती। दिल की आंख न हो तो आदमी अंधे की तरह आता, अंधे की तरह चला जाता।
ये किसका तसव्वुर है, ये किसका है ख्याल
आता हूं तुम्हारे साथ। लेकिन तुम्हारी अपेक्षा रही तो न आ पाऊंगा। अपेक्षा छोड़ दो। अपेक्षा का त्याग कर दो। आता हूं तुम्हारे साथ एक तसव्वुर की तरह, एक भाव की तरह, एक भक्ति की तरह।
ये किसका तसव्वुर है, ये किसका है ख्याल
रोके जो रुकती नहीं आहें दिल की
रोना! अपेक्षा मत ले जाओ।
हंसना! अपेक्षा मत ले जाओ।
गाना, नाचना, चुप होकर बैठ जाना। अपेक्षा मत ले जाओ। सहज होना; सहजस्फूर्त। और फिर संबंध नहीं टूटता है।
तू सोज-ए-हकीकी है मैं परवाना हूं
तू वादा-ए-गुलरंग है मैं पैमाना हूं
तू रूह है मैं जिस्म हूं
तू अस्ल है मैं नक्ल
जिसमें है बयां तेरा, वह अफसाना हूं
भक्त कहता हैः
तू सोज-ए-हकीकी है, मैं परवाना हूं
तू है सत्य का दीया, मैं हूं पतिंगा, परवाना। तुझ पर जलने को आता हूं। तू वादा-ए-गुलरंग है मैं पैमाना हूं
--तू फूलों के रंग जैसी शराब है, मैं तेरा पात्र हूं।
तू वादा-ए-गुलरंग है मैं पैमाना हूं
तू रूह है मैं जिस्म
--तू है आत्मा, मैं शरीर।
तू अस्ल है मैं नक्ल
भक्त अपने को पोंछ देता है, मिटा देता है। अपेक्षा रखोगे तो तुम रहोगे। क्योंकि अपेक्षा तुम्हारी है; तुम्हारे अहंकार की, अस्मिता की है। अपेक्षाएं हटा दो। अपेक्षाओं के गिरते ही तुम्हारा अहंकार गिर जाएगा। तू रूह, मैं जिस्म
तू अस्ल, मैं नक्ल
तब भक्त नक्ल हो जाता है, नकल हो जाता है। वह कहता है तेरी छाया, प्रतिबिंब; दर्पण में बनी तेरी प्रतिछवि।
तू अस्ल, मैं नक्ल
जिसमें है बयां तेरा, वह अफसाना हूं
ज्यादा से ज्यादा वह कहानी हूं, वह गीत हूं, जिसमें तेरा बयान है। अपने को पोंछो। अपने को हटाओ। उसी ढंग से परमात्मा के लिए जगह बनती है। तो मैं कहता हूं, त्रिवेणी, घर जाओ--खाली, शून्यवत। कोई अपेक्षा नहीं, कोई अतीत अनुभव की स्मृति नहीं। जो हुआ है वह फिर-फिर हो, ऐसी वासना नहीं-- शून्य! उस शून्य में ही उसका दीया उतर आएगा; उसकी रोशनी भरेगी।
तू वादा-ए-गुलरंग मैं पैमाना हूं

यह शून्यता ही तुम्हें पात्र बना देगी। फूलों के रंगों जैसी शराब, परमात्मा की मस्ती उसमें उतरेगी और भरेगी। तुम मिटोगे तो परमात्मा हो सकता है।

तीसरा प्रश्नः कथा कहती है कि श्री कृष्ण भगवान ने जब सिरदर्द मिटाने
के लिए भक्तों से उनकी चरणधूलि मांगी, तब सबने इंकार कर दिया, लेकिन गोपियों ने चरणधूलि दी। ओशो, इस प्रसंग का रहस्य बताने की कृपा करें।

रहस्य बिल्कुल साफ है। बताने की कोई जरूरत नहीं है। सीधा-सीधा है।
दूसरे डरे होंगे। दूसरों की अस्मिता रही होगी, अहंकार रहा होगा।
अब यह बड़े मजे की बात है। अहंकार को विनम्र होने का पागलपन होता है। अहंकार को ही विनम्र होने का ख्याल होता है। तो जो दूसरे रहे होंगे, उन्होंने कहा, पैर की धूल भगवान के लिए? कभी नहीं। कहां भगवान, कहां हम! हम तो क्षुद्र हैं, तुम विराट हो। हम तो ना-कुछ हैं, तुम सब कुछ हो। लेकिन इस ना-कुछ में भी घोषणा हो रही है कि हम हैं, छोटे हैं। हमारे पैर की धूल तुम्हारे सिर पर? पाप लगेगा, नर्क में पड़ेंगे।
लेकिन गोपियां जो सच में ही ना-कुछ हैं, उन्होंने कहा हमारे पैर कहां?
हम कहां? हमारे पैर की धूल भी तुम्हारे ही पैर की धूल है। और यह धूल भी कहां? तुम ही हो। और फिर तुम्हारी आज्ञा हो गई तो हम बीच में बाधा देनेवाले कौन? हम कौन हैं जो कहें नहीं?
प्रेम की विनम्रता बड़ी अलग है। ज्ञान की विनम्रता थोथी है, धोखे से भरी है। ज्ञानी जब तुमसे कहता है, हम तो आपके पैर की धूल हैं, तुम मान मत लेना। जरा उसकी आंख में देखना। वह कह रहा है, समझे कि नहीं, कि हम महाविनम्र हैं!
तुम यह मत कहना कि ठीक कहते हैं आप; बिल्कुल सही कहते हैं आप। तो वह नाराज हो जाएगा और फिर कभी तुम्हारी तरफ देखेगा भी नहीं। वह सुनना चाहता है कि तुम कहो, कि अरे! आप और पैर की धूल? नहीं-नहीं। आप तो पूज्यपाद! आप तो महान, आपकी विनम्रता महान। वह यह सुनना चाहता है कि तुम कहो कि आप महान। दूसरों ने इंकार कर दिया होगा। कृष्ण के सिर में दर्द है, इससे उन्हें थोड़े ही मतलब है! उन्हें अपने नर्क की पड़ी है, कि पैर की धूल दे दें और फंस जाएं। यह भी खूब आदमी फंसाने के उपाय कर रहा है! अभी पैर की धूल दे दें, फिर फंसें खुद। तुम्हारा तो सिरदर्द ठीक हो, हम नर्क में सड़ें। नहीं, यह पाप हमसे न हो सकेगा। इनको अपनी फिक्र है। गोपियों को अपना पता ही नहीं है। इसलिए उन्होंने कहा, पैर की धूल तो पैर की धूल। इसे थोड़ा समझ लेना।
प्रेम के अतिरिक्त और कोई विनम्रता नहीं है। गोपियां तो समझती हैं सब लीला उसकी है। यह सिरदर्द उसकी लीला, यह पैर, यह पैर की धूल उसकी लीला। वही मांगता है। उसकी ही चीज देने में हमें क्या अड़चन है?
तखलीके-कायनात के दिलचस्प जुर्म पर
हंसता तो होगा आप भी यजदां कभी-कभी
यह भगवान, जिसने दुनिया बनाई हो--यजदां, स्रष्टा; कभी-कभी हंसता तो होगा; कैसा दिलचस्प जुर्म किया! यह दुनिया बनाकर कैसा मजेदार पाप किया! तखलीके-कायनात के दिलचस्प जुर्म पर
हंसता तो होगा आप भी यजदां कभी-कभी
भक्त कहते हैं--हंसी उसको भी तो आती होगी कि खूब मजाक रहा!
कृष्ण खूब हंसे होंगे, जब ज्ञानियों ने धूल न दी और गोपियों ने धूल दे दी। खूब हंसे होंगे। छोटी-सी मजाक भी न समझ पाए।
ज्ञानियों से ज्यादा बुद्धू खोजना मुश्किल है। शास्त्र समझ गए, शास्त्र का सागर समझ गए, और जरा-सी मजाक न समझ पाए, जरा-सी बात न समझ पाए।
परमात्मा के लिए इतना भी न कर पाए। गोपियां तो खूब खुश हुई होंगी।
उन्होंने तो सोचा होगा, चलो अपराध तुम्हीं करवा रहे हो तो करेंगे।
दिलचस्प हो गया अपराध, तुम्हारी आज्ञा से हो रहा है।
खताओं पे जो मुझको माइल करे फिर
सजा और ऐसी सजा चाहता हूं

उन्होंने तो सोचा होगा, चलो अच्छा। अब ऐसी सजा देना कि हम और खताएं करें। अब ऐसा दंड देना कि हम और खताएं करें ताकि तुम और दंड दो। यह संबंध बना रहे। यह दोस्ती बनी रहे। यह गठबंधन बना रहे।
खताओं पे जो मुझको माइल करे फिर
सजा और ऐसी सजा चाहता हूं
गोपियां तो प्रसन्नता से नर्क चली जाएंगी, अगर उनके नर्क के जाने से कृष्ण का सिरदर्द ठीक होता हो। उन्हें तो क्षणभर भी ख्याल न आया होगा कि यह कोई पाप हो रहा है।
प्रेम शिष्टाचार के नियम मानता ही नहीं। जहां शिष्टाचार के नियम हैं, वहां कहीं छुपे में गहरा अहंकार है। सब शिष्टाचार के नियम अहंकार के नियम हैं। प्रेम कोई नियम नहीं मानता। प्रेम महानियम है। सब नियम समर्पित हो जाते हैं। प्रेम पर्याप्त है; किसी और नियम की कोई जरूरत नहीं है।
ज्ञानी और भक्त में बड़े फर्क हैं। वे दृष्टियां ही अलग हैं। वे दो अलग संसार हैं। वे देखने के बिल्कुल अलग आयाम हैं। जिसको हम ज्ञानी कहते हैं, वह रत्ती-रत्ती हिसाब लगाता है। कर्म, कर्मफल, क्या करूं, क्या न करूं, किसको करने से पाप लगेगा, किसको करने से पुण्य लगेगा।
भक्त तो उन्माद में जीता। वह कहता जो तुम कराते, करेंगे। पाप तो तुम्हारा, पुण्य तो तुम्हारा। भक्त तो सब कुछ परमात्मा के चरणों में रख देता है। वह कहता है अगर तुम्हारी मर्जी पाप कराने की है तो हम प्रसन्नता से पाप ही करेंगे। भक्त का समर्पण आमूल है। मदहोशी! बेहोशी! परमात्मा के हाथ में अपना हाथ पूरी तरह दे देना--बेशर्त।
वाइजो-शेख ने सर जोड़कर बदनाम किया
वरना बदनाम न होती मय-ए-गुलफाम अभी
धर्म-उपदेशकों ने, तथाकथित ज्ञानियों ने, धर्मगुरुओं ने--सर जोड़कर बदनाम किया--खूब सिर मारा और बदनाम किया, तब कहीं बेहोशी को, मदहोशी को, फूलों के रंग जैसी शराब को वे बदनाम करने में सफल हो पाए; अन्यथा कभी बदनाम न होती।
वाइजो-शेख ने सर जोड़कर बदनाम किया
वरना बदनाम न होती मय-ए-गुलफाम अभी
भक्त तो शराबी जैसा है। ज्ञानी हिसाबी-किताबी है। दोनों के गणित अलग-अलग हैं। भक्त तो जानता ही नहीं क्या बुरा है, क्या भला है। भक्त तो कहता है, जो भगवान करे वही भला। जो मैं करना चाहूं वह बुरा, और जो भगवान करे वह भला।
तो गोपियों ने सोचा होगा, भगवान कहते हैं अपनी चरण-रज दे दो, उन्होंने जल्दी से दे दी होगी। भगवान कराता है तो भला ही कराता होगा। उनका समर्पण समग्र है।

आखिरी प्रश्नः ध्यान की मृत्यु और प्रेम की मृत्यु क्या भिन्न हैं? क्या उनकी प्रक्रियाएं भी भिन्न हैं?

मृत्यु तो एक ही है; ध्यान की हो कि प्रेम की। लेकिन प्रक्रियाएं, उस मृत्यु तक पहुंचने के मार्ग, विधियां भिन्न-भिन्न हैं। ध्यान से भी यही घटता है कि तुम मिट जाते हो। प्रेम से भी यही घटता है कि तुम मिट जाते हो। मिटना तो दोनों हालत में होता है, लेकिन दोनों के मार्ग बड़े अलग-अलग हैं। ध्यान के पहले चरण पर तुम नहीं मिटते। ध्यान के पहले चरण पर तो तुममें
जो गलत है उसको मिटाया जाता है, सही को बचाया जाता है। अशुभ को मिटाया जाता है, शुभ को बचाया जाता है। अशुद्धि जलाई जाती है, शुद्धि बचाई जाती है।
तो ज्ञान के मार्ग पर या ध्यान के मार्ग पर व्यक्ति शुद्ध होने लगता है। मिटता नहीं, परिशुद्ध होता है, लेकिन बचता है। आखिरी छलांग में परिशुद्धि ऐसी जगह आ जाती है, जहां कि शुद्धता भी अशुद्धि मालूम होने लगती है। जहां होना मात्र अशुद्धि मालूम होती है, वहां आखिरी छलांग में ध्यानी अपने को बुझा देता है। भक्त पहले कदम पर बुझाता है। वह इसका हिसाब नहीं करता--अच्छा और बुरा।

तो भक्ति छलांग है और ध्यान क्रमिक विकास है। ध्यान एक-एक कदम, धीरे- धीरे चलता है; आहिस्ता-आहिस्ता। भक्ति बिल्कुल पागलपन है। वह एकदम छलांग लगा लेती है। ध्यानी ऐसे है, जैसे सीढ़ियों से उतरता है छत से--एक-एक कदम, सम्हल-सम्हलकर। सम्हलना ध्यान का सूत्र है--सावधानी।
भक्त ऐसा है, छत से छलांग लगा देता है। फिक्र ही छोड़ता है हाथ-पैर टूटेंगे, बचेंगे, मरेंगे, क्या होगा। वह छलांग लगा देता है। उसकी श्रद्धा आत्यंतिक है। वह कहता है, उसे बचाना है तो वह बचा ही लेगा। जाको राखे साइयां। उसे नहीं बचाना है तो तुम सीढ़ियों पर भी सम्हल-सम्हलकर चलो तो भी मर जाओगे, तो भी मिट जाओगे।
तो भक्त तो छलांग लगाता है--एक ही कदम। फिर एक कदम के बाद उसे कुछ करना नहीं पड़ता। फिर तो जमीन का गुरुत्वाकर्षण खींच लेता है। ऐसा थोड़े ही कि तुमने एक कदम छलांग लगाई, फिर तुम पूछते हो अब हम क्या करें छलांग लगाकर? पूछने का मौका ही नहीं है। गए! एक कदम तुमने उठाया कि जमीन खींचने लगती है। एक कदम तुम न उठाते तो जमीन की कशिश के लिए तुम उपलब्ध न थे। एक कदम उठाया कि जमीन की कशिश काम करने लगी।
तो भक्ति का शास्त्र कहता है कि तुम छलांग लो, फिर परमात्मा की कशिश बाकी काम कर देती है। तुम छोड़ो, वही कर लेगा।
ध्यानी कहता है, हम छोड़ न पाएंगे ऐसे। हम तो जो गलत है उसे छोड़ेंगे।
पता नहीं परमात्मा है भी या नहीं?
तो तुम्हें सोचना है अपने भीतर कि तुम्हें कौन-सी बात ठीक लगती है। अगर पागल होने की हिम्मत है तो भक्ति। अगर तर्क बहुत प्रगाढ़ है, सोच-विचार काफी निखरा हुआ है, बुद्धि बलशाली है तो भक्ति तुम्हारे काम की नहीं। घबड़ाहाट कोई भी नहीं है। पहुंचोगे तो वहीं। जब तुम सीढ़ियां उतर रहे
हो तब भी कशिश ही तुम्हें खींच रही है। तुम धीरे-धीरे उतर रहे हो, बस इतनी ही बात है। भक्त तेजी से जा रहा है, तीर की तरह जा रहा है। तुम आहिस्ता- आहिस्ता जा रहे हो, एक-एक कदम जा रहे हो। जब तुम एक कदम उतरते हो सीढ़ी से तब भी कशिश ही तुम्हें खींचती है। लेकिन तुम एक कदम उतरते हो, फिर दूसरा कदम उतरते हो। तुम पर निर्भर है।
और जल्दबाजी में ऐसा मत करना, यह मत सोचना कि चलो यह सीधा मार्ग है भक्ति का; छलांग लगा जाओ। अगर तुम्हारे मन में यह न जंचे तो छलांग लगेगी ही नहीं।
तो अपने मन को पहचानना। तुम्हें जो ठीक लगे वही तुम्हारे लिए ठीक है।
और सदा ध्यान रखना जो तुम्हारे लिए ठीक है, वह जरूरी नहीं कि सभी के लिए ठीक हो। जो दूसरे के लिए ठीक है वह तुम्हारे लिए गैर-ठीक हो सकता है। जो दूसरे के लिए अमृत है, तुम्हारे लिए जहर हो सकता है।
मृत्यु तो एक ही है। मृत्युएं दो नहीं हैं। अंतिम परिणाम तो एक ही है, लेकिन चलनेवाले दो ढंग के हैं। कुछ हैं, जो होशियारी से चलते हैं, सम्हल-सम्हलकर चलते हैं। रास्ते पर देखा, कोई आदमी सम्हलकर चलता है। और शराबी को देखा, डांवांडोल चलता है।
भक्त तो शराबी जैसा है। उसने तो भक्ति की सुरा पी ली। अब वह डांवाडोल चलता है। अब गिर जाए, तो उसे फिकर नहीं। न पहुंच पाए तो उसे फिकर नहीं। तुमने कभी एक मजे की घटना देखी है? शराबी गिर जाता है रास्ते पर, हाथ-पैर नहीं टूटते। तुम जरा गिरो!
एक बैलगाड़ी में दो आदमी बैठे थे--एक शराबी शराब पीए और एक आदमी पूरे होश में। बैलगाड़ी उलट गई। जो होश में था, उसके हाथ-पैर टूट गए। जो शराबी था उसको पता ही नहीं चला। जब उसने सुबह आंख खोली तो उसने कहा, अरे! बैलगाड़ी का क्या हुआ?
तुमने देखा, कभी-कभी छोटे बच्चे गिर पड़ते हैं छत से, चोट नहीं खाते। बड़ा आदमी गिरे तो जरूर चोट खाता है। क्या कारण होगा? शराबी जब गिरता है तो उसे पता ही नहीं चलता कि गिर रहे हैं। गिरने का पता चले तो आदमी रोकता है। रोके तो विरोध खड़ा होता है, प्रतिरोध होता है। जब होशवाला आदमी गिरता है तो वह सब तरह से अपने को रोकता है कि गिर न जाऊं। जमीन खींच रही है नीचे, वह

खींच रहा है, सम्हाल रहा है अपने को जमीन के विपरीत। तो दोहरी शक्तियों में विरोध होता है। उसी में हड्डियां टूट जाती हैं।
शराबियों को गिरते देखकर और चोट लगते न देखकर चीन और जापान में एक विशेष कला विकसित हुई, उसका नाम है ज्युदो, जुजुत्सु। यह देखकर कि शराबी गिरता है रोज। पड़े हैं नाली में। फिर सुबह उठकर घर जाते हैं, फिर नहा-धोकर फिर चले दफ्तर। न उनकी हड्डी-पसली टूटी, न कहीं कुछ है। तुम सुबह पहचान भी नहीं सकते कि ये रातभर सड़क पर पड़े रहे हैं। सुबह बिल्कुल ठीक मालूम पड़ते हैं। तुम तो गिरो इतना! बच्चा रोज गिरता है, दिनभर गिरता है घर में। मां- बाप तो गिरें; फौरन हड्डी-पसली टूट जाएगी।
अभी अमरीका में उन्होंने एक प्रयोग किया हार्वर्ड युनिवर्सिटी में
कि एक बड़े पहलवान को, बड़े शक्तिशाली आदमी को एक छोटे बच्चे की नकल करने को कहा। आठ घंटे बच्चा जो करे वह तुम करो। वह आदमी सोचता था, मैं शक्तिशाली आदमी हूं, गुजर जाऊंगा। काफी, हजारों डालर मिलनेवाले थे। चार घंटे में चारों खाने चित्त हो गया। क्योंकि वह बच्चा कभी गिरे तो अब उसको गिरना पड़े। यह बड़ी झंझट की बात।
वह बच्चा... बच्चे को आनंद आ गया। उसने कहा कि यह मेरी नकल कर रहा है।
तो वह और जोर-जोर से करने लगा। चार घंटे में वह जो पहलवान था, उसने कहा माफी करो। वे हजारों डालर रखो अपने। यह तो हमारी जान ले लेगा। आठ घंटे में हम मर ही जाएंगे। क्योंकि उचकता, कूदता, चिल्लाता, चीखता। और जो वह करे, वही उसे करना है।
मनोवैज्ञानिक प्रयोग करके देख रहे थे कि छोटे बच्चे में कितनी ऊर्जा है, फिर भी थकता नहीं। कारण क्या होगा? छोटा बच्चा अभी अपने को सम्हालता नहीं। अभी जो घटता है, उसके साथ हो लेता है। अगर बच्चा गिरता है, तो वह गिरने में सहयोग करता है। तुम गिरते हो तो विरोध करते हो। तुम्हारे विरोध के कारण हड्डी टूट जाती है। हड्डी गिरने के कारण नहीं टूटती। हड्डी तुम्हारे विरोध के कारण टूटती है।
अगर तुम गिरने में साथ हो जाओ, अगर जब तुम गिरने लगो तो गिरने से तुम्हारे बचने की कोई आकांक्षा न हो, तुम गिरने के साथ सहयोग कर लो, तुम गिरने से एक कदम आगे गिर जाओ, तुम कहो, लो राजी; तो चोट न खाओगे। तो तुम ऐसे गिर जाओगे... बिना किसी प्रतिरोध के। तुम पृथ्वी की गोद में गिर जाओगे। चोट न खाओगे।
शराबी चोट नहीं खाता। ऐसे ही भक्त भी चोट नहीं खाता। वह गिरता है; बड़ी ऊंची छलांग है उसकी। मगर वह शराबी है। उसने प्रेमरस पीया है। उसने प्रेम की सुरा पी ली।
मगर तुम अगर नहीं हो शराबी और तुम्हारा स्वभाव वैसा नहीं है तो करना मत। तुम अपनी सीढ़ियां उतरना। छोटी-छोटी सीढ़ियां-सीढ़ियां बनाकर उतरना। कोई जल्दी भी नहीं है क्योंकि दोनों तरह से लोग पहुंच जाते हैं।
तो मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम इसमें से एक को अपनी स्वभाव की, प्रकृति की अनुकूलता बिना देखे चुन लो। इसलिए मैं भक्ति की भी बात करता हूं, ध्यान की भी बात करता हूं। मैं दोनों की बात करता हूं क्योंकि तुममें दोनों तरह के लोग हैं। अंतिम घटना तो एक है, लेकिन उस तक पहुंचने के रास्ते बड़े भिन्न हैं।
अगर तुम्हें विचार की बड़ी पकड़ है तो तुम ध्यान से चलो। अगर तुम्हारा हृदय खुला है, तुम छोटे बच्चे हो सकते हो, या कि तुम स्त्रैण हो सकते हो, तुम प्रेम बहा सकते हो और प्रेम में बह सकते हो बिना शर्त लगाए, तो फिर प्रेम के मार्ग से उतरो।
मिटोगे तो दोनों हालत में क्योंकि जब तक तुम न मिटोगे, तब तक परमात्मा
न हो सकेगा। और जिस दिन तुम मिटोगे उस दिन तुम्हें चाहे पता न भी चले कि तुम मिट गए हो, सारी दुनिया को पता चल जाएगा कि तुम मिट गए हो। जिनके पास भी आंखें हैं उन्हें पता चल जाएगा कि तुम मिट गए हो। तुम्हारा शून्य बड़ा मुखर होता है!
शून्य बड़ा संगीतपूर्ण होता है। शून्य का सन्नाटा सुनाई पड़ने लगता है।
जो लोग भी मिट गए हैं, उनके पास लोग भागे चले आते हैं, खिंचे चले आते हैं।

समझ में भी नहीं आता कि क्या आकर्षण है। आकर्षण इतना ही है कि जहां कोई मिट गया वहां शून्य पैदा हो गया।
वैज्ञानिकों से पूछो, हवा चलती है, क्यों चलती है? यह हवा अभी चल रही है, यह गुलमोहर का वृक्ष कंप रहा है। यह हवा क्यों चल रही है? तो वैज्ञानिक कहते हैं, हवा के चलने का एक कारण है, एक ही कारण है। जब कहीं जोर की गर्मी पड़ती है तो वहां की हवा विरल हो जाती है। वहां शून्य पैदा हो जाता है। उस शून्य को भरने के लिए आसपास की हवा दौड़ने लगती है। क्योंकि शून्य को प्रकृति बर्दाश्त नहीं करती। उसको भरना पड़ता है। आसपास की हवा उस शून्य को भरने के लिए दौड़ती है, इसलिए हवा चलती है। इसलिए गर्मी में बवंडर उठते हैं, तूफान उठते हैं। क्योंकि शून्य पैदा हो जाता है। सूरज की गर्मी के कारण हवा विरल हो जाती है, फैल जाती है। जगह खाली हो जाती है। उसे भरने हवा आती है।
ठीक ऐसा ही परमात्मा के आत्यंतिक लोक में भी घटता है। जब कोई व्यक्ति मिट जाता है, खाली हो जाता, तो प्रकृति या परमात्मा शून्य को बर्दाश्त नहीं करता। उस शून्य को भरने के लिए चेतना की लहरें चल पड़ती हैं।
तुम चेतना की लहरों की तरह यहां आ गए हो। जहां कहीं कोई व्यक्ति मिटा
कि चेतनाएं उस तरफ सरकने लगती हैं। ऐसा व्यक्ति हिमालय पर बैठा हो तो लोग वहां रास्ता खोजते हुए, पगडंडियां बनाते हुए पहुंच जाते हैं। जाना ही पड़ेगा। शून्य को परमात्मा बर्दाश्त नहीं करता। उसे भरना ही पड़ेगा।
जहां गुरु पैदा होगा वहां शिष्य आते चले जाते हैं। गुरु के होने का एक
ही अर्थ है, जहां शून्य पैदा हुआ।
मोहब्बत इस तरह मालूम हो जाती है दुनिया को
कि यह मालूम होता है नहीं मालूम होती है
प्रेम तुम्हारे जीवन में घटेगा, पता भी नहीं चलेगा तुम्हें; किसी और
को भी शायद पता न चले, फिर भी सबको पता चल जाएगा। और ऐसा भी पता चलता रहता है कि मालूम नहीं हो रहा है। किसी को मालूम नहीं हो रहा है। लेकिन चुपचुप, गुपचुप, हृदय से हृदय तक खबर पहुंच जाती है।
मोहब्बत इस तरह मालूम हो जाती है दुनिया को
कि यह मालूम होता है नहीं मालूम होती है
और मृत्यु तो मोहब्बत की आखिरी घड़ी है। वह तो चरमोत्कर्ष, वह तो आखिरी उत्कर्ष, वह तो चरम स्थिति है। जहां कोई व्यक्ति बिल्कुल शून्य हो जाता है, सब तरफ से परमात्मा दौड़ पड़ता है अनेक-अनेक रूपों में उसे भरने को।
इसी को हिंदू अवतरण कहते हैं। यह परमात्मा का दौड़कर किसी को भर देना अवरतण है--उतर आना। कोई खाली हो गया, परमात्मा दौड़ा उसे भरने को। ध्यानी को भी भरता है, प्रेमी को भी भरता है। लेकिन भरता तभी है, जब तुम मिटते हो।
अपने को बचाना मत। कोई भी मार्ग खोजो। अपने को मिटाने का मार्ग खोजो।
संसार है अपने को बचाने की चेष्टा; धर्म है अपने को मिटाने का साहस।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग दो
उन्तीसवां प्रवचन

त्रिगुप्ति और मुक्ति

जहा महातलायस्स सन्निरुद्धे जलागमे।
उस्सिंचणाए तवणाए, कमेण सोसणा भवे।।
एवं तु संजयस्सावि पावकम्मनिरासवे।
भवकोडीसंचियं कम्मं, तवसा निज्जरिज्जइ।। 152।।
तवसा चेव ण मोक्खो संवरहीणस्स होई जिणवयणे।
ण हु सोत्ते पविसंते, किसिणं परिसुस्सदि तलायं।। 153।।
ज अन्नाणी कम्मं खवेइ बहुआहिं बासकोडीहिं।
तं नाणी तिहिं गुत्तो, खवेइ ऊसासमित्तेणं।।
सेणावइम्मि णिहए, जहा सेणा पणस्सई।
एवं कम्माणि णस्संति, मोहणिज्जे खयं गए।। 154।।
सव्वे सरा नियट्टंति, तक्का जत्थ न विज्जइ।
मई तत्थ न गाहिया, ओए अप्पइट्ठाणस्स खेयन्ने।। 155।।

धर्म के दो रूप संभव हैंः एक विज्ञान जैसा, एक काव्य जैसा। जीवन को देखने के दो ही ढंग हैं, दो ही ढंग हो सकते हैं--या तो कवि की आंख से, या वैज्ञानिक की आंख से। दोनों सही हैं। दोनों में कोई ऊंचा-नीचा नहीं है, पर दोनों बड़े विपरीत हैं।
जो काव्य की दृष्टि से सही है, वही विज्ञान की दृष्टि से कल्पना मात्र मालूम होता है। जो विज्ञान की दृष्टि से सही है, वही काव्य की दृष्टि से अत्यंत रूखा-सूखा, गणित और तर्क मालूम होता है। जो विज्ञान की दृष्टि से सत्य है वह काव्य की दृष्टि से मुर्दा मालूम होता है। और जो काव्य की दृष्टि से सत्य है वह विज्ञान की दृष्टि से केवल सपना मालूम होता है।
इसे अगर ख्याल रखा तो बड़ी सुगमता होगी। महावीर का जीवन को देखने का ढंग वैज्ञानिक का ढंग है। वे ऐसे देखते हैं, जैसे वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला में निरीक्षण करता है। उनकी दृष्टि में काव्य बिल्कुल नहीं है। इसलिए भक्ति का कोई उपाय महावीर के साथ नहीं है। प्रार्थना का, पूजा का कोई उपाय महावीर के साथ नहीं है।
और जिन्होंने महावीर के साथ पूजा और प्रार्थना जोड़ ली, उन्होंने बड़ा अन्याय किया है। महावीर के साथ तो परमात्मा शब्द का भी कोई अर्थ नहीं है। महावीर के लिए तो परमात्मा भी आदमी का कल्पनाजाल है। आत्मा ही सब कुछ है। आत्मा की ही श्रेष्ठतम दशा को उन्होंने परमात्मा कहा है। परमात्मा कहीं है नहीं, जिसे हमें खोजना है। परमात्मा हमें होना है। परमात्मा ऐसा कुछ नहीं है, जो भक्त के सामने खड़ा हो जाएगा। परमात्मा कुछ ऐसा है, जो भक्त के भीतर प्रगट होगा।
भक्त बीज है भगवान का।
तो जब बीज खिलता है, फूलता है तो ऐसा थोड़े ही कि बीज अपने खिले हुए फूलों को देखता है; बीज तो खो गया होता है। खिले फूल होते हैं। बीज का और वृक्ष का कभी मिलना थोड़े ही होता है। जब तक बीज है तब तक वृक्ष नहीं है, जब वृक्ष है तब बीज जा चुका।
तो भगवान का दर्शन, ऐसी कोई चीज महावीर के साथ संभव नहीं है। भक्त ही अपनी परमशुद्ध अवस्था में भगवान हो जाता है। इसलिए पूजा किसकी? अर्चना किसकी? दीये किसके नाम पर जलें? यज्ञ, हवन किसका हो?
महावीर मनुष्य-जाति के उन थोड़े-से प्राथमिक अग्रणी लोगों में से हैं, जिन्होंने धर्म को विज्ञान की शक्ल दी; जिन्होंने धर्म को गणित का आधार दिया। जो-जो कल्पना-पूर्ण था वह अलग कर लिया।
ध्यान रखना, जब मैं कह रहा हूं कल्पनापूर्ण, तो मैं नहीं कह रहा हूं असत्य, क्योंकि मेरे लिए भक्त भी उतने ही सच हैं, नारद भी उतने ही सत्य हैं और चैतन्य भी और मीरा भी। ये देखने के दो ढंग हैं।

एक वैज्ञानिक वृक्ष के पास आए तो उसे सौंदर्य दिखाई नहीं पड़ता, इसलिए नहीं कि सौंदर्य नहीं है। वृक्ष हरा है, फूल से भरा है; सूरज की रोशनी में नाचती उसकी पत्तियां हैं, हवाओं के झोंकों में प्रफुल्लित मग्न खड़ा है। लेकिन वैज्ञानिक को कुछ भी यह दिखाई नहीं पड़ता। वैज्ञानिक को दिखाई पड़ता है वृक्ष का विज्ञान--वनस्पति-विज्ञान। उसे दिखाई पड़ता है वृक्ष किन तत्वों से बना है। उसे दिखाई पड़ता है किन-किन खनिज से मिलकर बना है।
पृथ्वी ने क्या-क्या दिया, हवा-पानी से क्या मिला, आकाश-सूरज ने क्या दिया।
वैज्ञानिक को दिखाई पड़ता है, यह वृक्ष कैसे निर्मित हुआ है। कैसे इसका सृजन हुआ है। किन चीजों के तालमेल से यह घटना घटी।
कवि भी उसी वृक्ष के नीचे आता है। उसे इस सबकी कुछ भी याद नहीं आती।
नहीं कि जो वैज्ञानिक कहता है वह गलत है। उसे खनिज, रसायन, पदार्थ, जिनसे बना है वृक्ष, उनका कोई भी बोध नहीं होता। उसे कुछ और ही बोध होता है।
उसे दिखाई पड़ती हैं सूरज की किरणें वृक्ष की पत्तियों पर नाचतीं। उसे
एक सौंदर्य का, एक अपूर्व सौंदर्य का अनुभव होता है--ऐसा कि वह खुद भी नाच उठे। हवा के गुजरते हुए झोंके उसे किसी और ही लोक की खबर और संदेश दे जाते हैं। वह गुनगुनाने लगता है।
वैज्ञानिक गंभीर हो जाता है। सोचने लगता है, विचारने लगता है, विश्लेषण करने लगता है। कवि गुनगुनाने लगता है। गंभीर रहा हो तो गंभीरता गिरा देता है, नाचने लगता है।
दोनों सच हैं। सत्य इतना बड़ा है कि दोनों सच हो सकते हैं, साथ-साथ सच
हो सकते हैं। सत्य के साथ कंजूसी मत करना। बहुत कंजूसी हुई है इसलिए इसे मैं कहता हूं। सत्य के साथ कंजूसी मत करना। ऐसा मत कहना कि मेरी दृष्टि जहां पूरी होती है वहां सत्य पूरा हो जाता है। तुम्हारी दृष्टि की सीमा है, सत्य की कोई सीमा नहीं। सत्य इतना बड़ा है कि अपने विरोधी को भी समा लेता है। सत्य इतना विराट है कि विरोधाभास भी संयुक्त हो जाते हैं, परिपूरक हो जाते हैं।
अमरीका के बड़े महत्वपूर्ण कवि वाल्ट ह्विटमेन से किसी ने कहा, तुम्हारी कविताओं में बड़े विरोध हैं, बड़े विरोधाभास हैं, कंट्राडिक्शन हैं। कहीं तुम एक बात कहते हो, कहीं दूसरी बात कहते हो। कहीं तुम एक बात कहते हो, कहीं ठीक उससे उल्टी बात कहते हो। पता है वाल्ट ह्विटमेन ने क्या कहा? वाल्ट ह्विटमेन ने कहा, मैं बहुत विराट हूं। मेरे भीतर सभी विरोध समा जाते हैं और परिपूरक हो जाते हैं।
यह वचन तो ऋषि का हो गया। यह तो बड़ी सूझ का हो गया। यह तो बड़ी अंतर्दृष्टि का हो गया।
सत्य बड़ा विराट है। उसमें विज्ञान भी समा जाता है, उसमें काव्य भी समा जाता है। उसमें सारे तथ्य भी समा जाते हैं और सारी कल्पनाएं भी समा जाती हैं। उसमें गणित और तर्क भी समा जाता है। उसमें रस और भक्ति और प्रेम भी समा जाता है।
जब हम भक्ति की तरह देखते हैं तो हम कुछ चुनते हैं। और जब हम तर्क की तरह देखते हैं तब भी हम कुछ चुनते हैं। जो भी हम देखते हैं वह हमारा चुनाव है। इसका महावीर को बोध था।
इसलिए महावीर ने अपनी दृष्टि तो कही, साथ ही यह भी कहा कि यह दृष्टि मात्र है। और सभी दृष्टियों से जो पार हो जाता है, वही परम सत्य को जान पाता है। जो न वैज्ञानिक रह गया, न कवि रह गया। जिसके पास अपने देखने का कोई पक्षपात नहीं, कोई चश्मा नहीं। जिसकी आंख खुली, खाली, निर्दोष, कुंआरी है। जो कुंआरी आंख से देखता है।
लेकिन कुंआरी आंख से देखना बड़ा कठिन है। क्योंकि कुंआरी आंख से देखने
का अर्थ है, हृदय भी सत्य जैसा विराट होना चाहिए। क्योंकि सारे विरोध समाहित करने होंगे। रात और दिन को विरोध में खड़ा न करना होगा। सुख और दुख को विरोध में खड़ा न करना होगा। जीवन और मृत्यु को विरोध में खड़ा न करना होगा। दोनों को साथ-साथ देखना होगा, विपरीत की तरह नहीं, एक-दूसरे के परिपूरक की तरह।

जैसे शिक्षक काले ब्लैकबोर्ड पर सफेद खड़िया से लिखता है। काले ब्लैकबोर्ड पर ही लिखा जा सकता है सफेद खड़िया से। सफेद दीवाल पर लिखोगे तो दिखाई न पड़ेगा। तो काला सफेद का दुश्मन नहीं है, परिपूरक है। सफेद को उभार लाता है, सफेद को प्रगट करता है, सफेद के लिए अभिव्यक्ति और अभिव्यंजना बनता है।
दुनिया से जिस दिन कविता खो जाएगी, उस दिन विज्ञान भी खो जाएगा। जिस दिन दुनिया से विज्ञान खो जाएगा, उस दिन कविता भी खो जाएगी। वे एक-दूसरे को उभारते हैं, प्रगट करते हैं। दुनिया समृद्ध है क्योंकि अनंत-अनंत दृष्टियों का यहां मेल है। दुनिया में इतने धर्म हैं, वे मनुष्य को समृद्ध करते हैं। वे अलग-अलग देखने की दृष्टियां हैं।
तुम्हें जो रुचिकर लगे, तुम्हें जो भा जाए उस पर चलना। लेकिन भूलकर भी ऐसा मत सोचना कि यही सत्य है, यही मात्र सत्य है। जिसने ऐसा सोचा, यही सत्य है, उसने अपने सत्य को असत्य कर लिया।
इसलिए महावीर ने स्यातवाद को जन्म दिया। स्यातवाद का अर्थ होता है, मैं भी ठीक, तुम भी ठीक। मैं भी ठीक, तुम भी ठीक, कोई और भी हो वह भी ठीक। जो कहा गया है वह भी ठीक, और जो अभी कहा जाएगा वह भी ठीक। जो दृष्टियां प्रगट हो गई हैं वे तो ठीक हैं ही, जो दृष्टियां भविष्य में प्रगट होंगी वे भी ठीक हैं।
लेकिन सभी दृष्टियां अधूरी हैं। कोई दृष्टि पूरी नहीं है। कोई दृष्टि पूरी हो नहीं सकती। दृष्टि मात्र अधूरी है। जहां सारी दृष्टियां शांत हो जाती हैं वहां दर्शन का जन्म होता है। लेकिन दृष्टियां तो तभी समाप्त होती हैं, जब तुम बिल्कुल समाप्त हो जाते हो। जब तक तुम हो, दृष्टि बनी रहती है। तुम्हारे देखने का ढंग प्रभावित करता रहता है। तुम हिंदू हो, तुम मुसलमान हो, तुम जैन हो, तुम ईसाई हो, तो तुम्हारे देखने का ढंग प्रभावित करता रहता है। तुम जो भी देखते हो, उसे तुम रंगते जाते हो। उसे तुम अपने भाव का वस्त्र उढ़ाते जाते हो। तुम उसे अपनी वेशभूषा पहनाते जाते हो।
जब तुम बिल्कुल मिट जाते हो, जब न तुम्हारे भीतर हिंदू है, न मुसलमान है, न जैन है, न ईसाई है, न आस्तिक है, न नास्तिक है; जब तुम यह भी नहीं जानते कि मैं विश्वास करता हूं कि अविश्वास करता हूं; जब तुमने सब धूल झाड़ दी, जब तुम बिल्कुल निपट शून्य हो गए, निराकार हो गए तो दर्शन का जन्म होता है। तब जो जाना जाता है, उसे महावीर कहते हैं, वही सत्य है। और वैसा सत्य ही मुक्त करता है।
ये आज के सूत्र, कैसे हम उस मुक्तिदायी सत्य तक पहुचें, कैसे उस मोक्ष
को पा लें, कैसे हम सभी पक्षपातों से, सभी जालों से छूट जाएं, कैसे हमारे ऊपर से सारी सीमाएं गिर जाएं और हम असीम हो जाएं, उसके सूत्र हैं।
हरेक दौर का मजहब नया खुदा लाया
करें तो हम भी मगर किस खुदा की बात करें
इसलिए महावीर ने खुदा की बात ही न की।
हरेक दौर का मजहब नया खुदा लाया
जब भी आदमी बोला, जब भी आदमी ने सोचा तो एक नए परमात्मा को जन्म दिया।
जब भी आदमी ने विचार किया तो एक नए परमात्मा को गढ़ा। एक मंदिर उठा, मस्जिद उठी, गुरुद्वारा उठा। जब भी आदमी ने जगत के सत्य की ख्ल्लाज करनी चाही, तो उसने प्रतिमा बनाई किसी परमात्मा की--हिंदुओं का परमात्मा है, बौद्धों का, ईसाइयों का, मुसलमानों का, जैनों का। सबकी दृष्टि है। दृष्टि के अनुकूल उनका परमात्मा है।
बाइबल कहती है कि परमात्मा ने आदमी को अपनी ही शकल में बनाया। हालत ठीक उल्टी है। आदमी परमात्मा को अपनी शकल में बनाता है। तुम्हारी जो शकल है वही तुम्हारे परमात्मा की शकल होती है। उससे अन्यथा हो भी नहीं सकती। तुम्हारी शकल में ही तो तुम अपने परमात्मा को गढ़ोगे। थोड़ा सुंदर, थोड़ा सजाया-संवारा, थोड़ा निखारा, भूल-चूकें काटीं, लेकिन होगी तो तुम्हारी ही शकल। थोड़ी सुंदर नाक बनाओगे, थोड़ी सुंदर आंख बनाओगे, लेकिन होगी तो तुम्हारी ही शकल। राम हों कि कृष्ण हों, तुम्हारी ही शकल है। थोड़े सजे-

संवरे! जो सुंदरतम की कल्पना हो सकती थी उस कल्पना को... लेकिन वे कल्पनाएं भी बदल जाती हैं।
हरेक दौर का मजहब नया खुदा लाया
वे कल्पनाएं भी बदल जाती हैं।
जब हमने कृष्ण की कल्पना की तो नीलवर्ण सुंदरतम वर्ण समझा जाता था, इसलिए कृष्ण को हमने श्याम कहा। आज तो शायद श्याम कहने को कोई राजी न होगा, अगर नया परमात्मा बनाओ। आज अगर नया परमात्मा बनाओगे तो गौरांग होगा, गोरा होगा। कविता की भाषा बदल गई। उन दिनों श्याम वर्ण की बड़ी चर्चा थी, बड़ी महिमा थी।
ऐसे श्याम वर्ण की खूबियां हैं। गोरा रंग उथला-उथला होता है; उसमें गहराई नहीं होती। श्याम वर्ण में बड़ी गहराई होती है। जैसे नदी बहुत गहरी हो तो नीली हो जाती है; उथली हो तो सफेद रहती है।
उस दिन की धारणा थी तो श्याम वर्ण। उस दिन की धारणा थी तो हमने मोर-मुकुट पहनाया। आज किसी को मोर-मुकुट पहनाओगे तो कठिनाई हो जाएगी।
राम को हमने धनुषबाण दिया। आज धनुषबाण दोगे तो राम हिंसक मालूम होंगे। हवा में अहिंसा है। बात अहिंसा की और शांति की है। आज तो कबूतर देना पड़ेगा। उड़ाओ कबूतर! आज धनुषबाण लेकर राम चलेंगे तो बड़ी अड़चन हो जाएगी। खुद भी नहीं चल पाएंगे। साथ भी चलने में लोग झिझकेंगे कि धनुषबाण तो रखो महाराज! इसे साथ लेकर चलो तो आदिवासी मालूम पड़ते हो। और फिर धनुषबाण का वक्त गया।
लेकिन उस दिन शौर्य की प्रतिष्ठा थी, बल की पूजा थी, वीर्य की पूजा थी
तो हमने धनुषबाण दिया था। धनुषबाण के बिना राम जंचते ही न उस दिन। उस दिन कबूतर का किसी को ख्याल ही नहीं था कि शांति के कपोत उड़ाओ।
वक्त बदल जाता है, खुदा की शकल बदल जाती है। समय बदल जाता है, सोचने के ढंग बदल जाते हैं, मापदंड बदल जाते हैं, धारणाएं बदल जाती हैं। तो परमात्मा का रूप हम बदलते चले जाते हैं।
यहूदियों का परमात्मा बहुत क्रुद्ध है। जरा-सी बात पर नाराज हो जाए, जला दे, राख कर दे। ईसाइयों का परमात्मा अति दयालु है। वक्त बदल गया था। यहूदी जहां से गुजर रहे थे, वहां बड़े सख्त और कठोर परमात्मा की जरूरत थी। जहां से जीसस ने परमात्मा की कहानी को पकड़ा, वहां सख्त, कठोर परमात्मा बेहूदा मालूम होने लगा था। थोड़ा अमानवीय मालूम होने लगा था। तो प्रेमपूर्ण परमात्मा। तो जीसस ने कहा, परमात्मा प्रेम है।
ऐसी शकल बदलती जाती है। लेकिन महावीर ने कहा कि ऐसा कब तक करते रहोगे?
यह तुम अपनी ही शकल को झांककर देखते रहते हो। यह बात ही बंद करो। इसमें समय मत गंवाओ। परमात्मा को खोजने की फिकर ही छोड़ो। क्योंकि वह खोज में तुम अपनी ही शकल को निर्मित करते हो। बेहतर हो, तुम अपनी ही शकल के भीतर उतरो और अपने को खोज लो।
यह महावीर का बुनियादी सूत्र है। परमात्मा की खोज आत्मखोज बननी चाहिए। क्योंकि तुम जो परमात्मा बनाओगे वह तुम्हारी ही प्रतिछवि होनेवाली है। इसलिए इसको बनाने में व्यर्थ जाल में मत पड़ो। यह तुम्हारा ही खिलौना होगा। तुम अपने भीतर जाओ। उसे खोजो, जिसने सारे परमात्मा बनाए। उसे खोजो, जिसने सारे मंदिर निर्मित किए। उसे खोजो, जिसने सारी प्रार्थनाएं गढ़ी और रचीं। वह जो तुम्हारा चैतन्य का स्रोत है, वह जो तुम्हारा मूलाधार है, उस गंगोत्री की तरफ बहो।
अपने को जान लो। अपने को बिना जाने तुम जो भी परमात्मा के संबंध में सोचोगे, तुम्हारा अज्ञान ही प्रतिफलित होगा।
यह खोज कैसे हो? और जब तक यह खोज न हो जाए तब तक अज्ञान के कारण बड़े उपद्रव होते हैं। परमात्मा के नाम पर लाभ तो कुछ हुआ दिखाई पड़ता नहीं, हानि बहुत हुई मालूम होती है। कितने दंगे-फसाद! कितना खून-खराबी! कितना रक्तपात! सारा इतिहास धर्म के नाम पर बलात्कारों से भरा पड़ा है। मस्जिद-मंदिर ने लड़वाया ही ज्यादा। आदमी काटे। सुंदर बहाने दिए गलत कामों के लिए। खूबसूरत नारे दिए वीभत्स प्रक्रियाओं को छिपा लेने के लिए।

अगर हिंदू को काटो तो पुण्य हो रहा है। अगर तुम मुसलमान हो तो हिंदुओं
को काटने में पुण्य है। या हिंदुओं को जबर्दस्ती मुसलमान बना लेने में पुण्य है। अगर तुम हिंदू हो तो बात बदल जाती है। अगर तुम ईसाई हो तो येन-केन-प्रकारेण कैसे भी लोगों को ईसाई बना डालो! खरीद लो रोटी से, धन से, किसी भी उपाय से।
अब तक आदमी ने धर्म के नाम पर जो किया है वह धार्मिक तो नहीं मालूम होता। लेकिन यह स्वाभाविक है। आदमी जो भी करेगा उसमें आदमी की ही छाया पड़ेगी। अगर हम हिंसक हैं तो हमारा धर्म हिंसक होगा। अगर हम मांसाहारी हैं तो हमारे धर्म में मांसाहार के लिए हम कोई उपाय खोज लेंगे। अगर लड़ने की, ईर्ष्या की, जलन की वृत्ति है, तो हम अपने धर्म के आधार बना लेंगे, जिनसे हम लड़ेंगे, झगड़ेंगे। आदमी बड़ा चालाक है, बड़ा कपट से भरा है। वह जो करना चाहता है, उस के लिए अच्छे बहाने खोज लेता है। वह बहानों की आड़ में फिर सारे बुरे काम करते चला जाता है।
ये मुसलसल आफतें, ये यूरसें, ये कत्ले-आम
आदमी कब तक रहे औहामे-बातिल का गुलाम
ये निरंतर होते धर्म के नाम पर आक्रमण, ये लगातार होते हुए अनाचार! आदमी कब तक मिथ्या भ्रमों का शिकार रहे!
अगर आज दुनिया में नई पीढ़ियां धर्म के प्रति तिरस्कार से भरी हैं तो इसका कारण नई पीढ़ियां नहीं हैं, अब तक धर्म के नाम पर जो हुआ है उसका बोध। महावीर को यह बात ढाई हजार साल पहले दिखाई पड़नी शुरू हुई कि धर्म के नाम पर जो भी हो रहा है, वह किसी दिन दुनिया में अधर्म ही लाएगा; धर्म उससे आनेवाला नहीं है। इसलिए महावीर ने कुछ सीधी-सीधी बातें कहीं, जिनका मंदिर और मस्जिद, कुरान और बाइबल से कोई लेना देना नहीं। कुछ छोटे-से सूत्र प्रगट किए, जो मनुष्य के अंतर्जीवन में जाने का विज्ञान बन सकते हैं--कैसे तुम अपने भीतर जाओ और कैसे तुम अपने को परिशुद्ध कर लो। फिर तुम जो भी करोगे वह धार्मिक होगा। इसको ख्याल में लेना।
आमतौर से कहा जाता है, तुम धार्मिक हो जाओ, फिर तुम जो भी करोगे वह शुभ होगा। महावीर ने कहा, पहले तुम शुभ हो जाओ, फिर तुम जो करोगे वह धार्मिक होगा। इन बातों में बड़ा फर्क है।
हम लोगों को कहते हैं, पहले मंदिर जाओ, पूजा करो, प्रार्थना करो, फिर तुम धीरे-धीरे शुभ हो जाओगे। शुभ होने का मार्ग ही यही है। लेकिन वह जो अशुभ आदमी मंदिर जाएगा, वह मंदिर को अशुभ कर आएगा। मंदिर उसे शुभ न कर पाएगा। मंदिर तो जड़ है; आदमी को न बदल सकेगा। आदमी मंदिर को बदल देता है। इसलिए महावीर कहते हैं, पहले तुम शुभ होने लगो, फिर तुम जहां जाओगे वहीं मंदिर होगा। यह सूत्र समझना।
"जैसे किसी बड़े तालाब का जल, जल के मार्ग को बंद करने से, पहले के जल को उलीचने से तथा सूर्य के ताप से क्रमशः सूख जाता है, वैसे ही संयमी का करोड़ों भवों में संचित कर्म, पापकर्म के प्रवेश-मार्ग को रोक देने पर, तथा तप से निर्जरा को प्राप्त होता है, नष्ट होता है।"
महावीर कहते हैं, एक तालाब भरा है, इसे हमें सुखा लेना है। हम चाहते हैं कि जमीन वापस मिल जाए। इस तालाब को हम समाप्त करना चाहते हैं। तो हम क्या करेंगे?
तीन काम करने जरूरी हैं। एक सबसे बुनियादी, कि इस तालाब में आने का जो जलस्रोत है, वह रोक दिया जाए। अगर इस तालाब में जल के झरने पड़ते ही रहे तो हम उलीचते भी रहे तो पागलपन होगा। तुम उलीचते रहोगे और नए जल के झरने पानी को भरते रहेंगे।
इसलिए जो प्राथमिक, वैज्ञानिक कदम होगा वह यह कि पहले जल के आनेवाले झरनों को रोक दो।
दूसरा काम होगा, जो भरा हुआ जल है, वह जल के झरने रोकने से नहीं समाप्त
हो जाएगा, उसे उलीचो।
और उलीचने से भी पूरा साफ न हो जाएगा। सूर्य के ताप को... सूर्य के ताप
की भी सहायता लेनी होगी, ताकि कहीं भी पड़ा न रह जाए। जमीन बिल्कुल सूख जाए।
जमीन में दबा भी न रह जाए।

तो तीन काम महावीर कहते हैं। पहला तो मूलस्रोत को रोक दो। दूसरा, जो
है उसे उलीचो। तीसरा, सूरज की खुली रोशनी को मौका दो ताकि कहीं भी छिपा हुआ, भूमि में दबा हुआ कुछ न रह जाए। सब सूख जाए।
मनुष्य तालाब जैसा है। अनंत-अनंत जन्मों के कर्म भरे पड़े हैं। न मालूम कितनी बुराइयां की हैं, न मालूम कितने धोखे दिए हैं, न मालूम कितने पाप, न मालूम कितने अशुभ, न मालूम कितनी वासनाएं की हैं, आकांक्षाएं की हैं। लोभ, काम, क्रोध--वह सब भरा हुआ पड़ा है।
अब इससे छुटकारा पाना है। इस हृदय की भूमि को मुक्त करना है। तो पहली बात, स्रोत रोको।
बहुत से लोग हैं, जो यह करना चाहते हैं लेकिन स्रोत नहीं रोकते। तो इधर एक हाथ से वे कोशिश भी करते रहते हैं और दूसरे हाथ से मिटाते भी चले जाते हैं।
तुमने भी बहुत बार सोचा होगा कि जीवन में शुभ का अवतरण हो, सत्य का पदार्पण हो, मंगल की वर्षा हो, हम भी कुछ दिव्यता में जीएं। तो कभी-कभी तुमने थोड़ी चेष्टा भी की है। कुछ अच्छा करें; दान करें, पुण्य करें, सेवा करें; कर्तव्य को निभाएं। यह तुमने थोड़ी-बहुत कोशिश भी की है, लेकिन तुम जल्दी थक जाते हो। जल्दी ही पाते हो, यह हो नहीं पाता।
क्यों? क्योंकि मूल वृत्ति तो टूटती नहीं। मूल धारा तो बहती चली जाती है। वह नदी तो गिर रही है, वह तो गिरती ही रहती है। थोड़ा-बहुत उलीचते हो। दान किया तो थोड़ा उलीचा। दान यानी थोड़ा दिया। मगर इससे क्या होगा? आदमी लाख कमाता है तो हजार का दान कर देता है। लाख कमाता तभी हजार का दान करता है; नहीं तो करता ही नहीं।
दान का मौलिक अर्थ यह है कि तुम परिग्रह मत करो। लेकिन दान वही करता
है जिसके पास काफी आ रहा है। और वह सोचता है, अब करें भी क्या? थोड़ा दान भी कर लें? एक हाथ से दान करता है लेकिन दान भी ऐसी जगह करता है, इस ढंग से करता है कि आगे और आने का इंतजाम हो जाए। तो राजनेताओं को दान दे देता है, राजनैतिक पार्टियों को दान दे देता है। दान का मजा भी ले लिया और नए लाइसेंस का इंतजाम भी कर लिया।
मूल स्रोत खुला रहता है। मूल धारा गिरती चली जाती है। उसमें से थोड़ा- थोड़ा बांटता भी है। तो दानी होने का मजा भी ले लेता है, लेकिन कभी परिग्रह से मुक्त नहीं हो पाता।
तो पहले तो लोभ की वृत्ति को ही तोड़ देना पड़े। दान जिसे करना है उसे पहले लोभ छोड़ देना पड़े। दान जिसे करना है, पहले उसे वह जो लोभ की मूर्च्छा है, वह त्याग देनी पड़े।
"... वैसे ही संयमी का करोड़ों भवों में संचित कर्म पापकर्म के प्रवेशमार्ग को रोक देने पर तथा तप से निर्जरा को प्राप्त होता है, नष्ट होता है।"
तो पहले तो हमें अपने पापकर्म कहां से उदय होते हैं, इसकी तलाश करनी चाहिए।
मेरे पास लोग आते हैं वे कहते हैं, कि आपके सामने हम कसम लेते हैं कि
हम क्रोध न करेंगे। मैं उनसे कहता हूं, तुम कसम तो लेते हो, यह उलीचना तो हुआ, लेकिन अब तक तुम क्रोध करते क्यों रहे? जब तक तुम उसका मूल न खोजोगे, तुम्हारी कसम से थोड़े ही कुछ होगा? यह हो सकता है कसम से तुम दबाने लगो, रोकने लगो, क्रोध को प्रगट न करो। लेकिन क्रोध पैदा नहीं होगा ऐसा कैसे संभव है? कसम के न लेने से थोड़े ही पैदा हो रहा था, जो कसम के लेने से रुक जाएगा। क्रोध पैदा होता था किसी कारण से। उस कारण को खोजो।
क्यों क्रोध पैदा होता है? अहंकार को चोट लगती है तो क्रोध पैदा होता है। तुम्हारी प्रतिमा को कोई नीचे गिराता है तो क्रोध पैदा होता है। तुम समझते हो अपने को जैसा, वैसा कोई नहीं मानता तो क्रोध पैदा होता है। और जब तक अहंकार है भीतर, अहंकार का घाव है भीतर, तब तक क्रोध होता ही रहेगा। तुम लाख कसमें खाओ।
अब मजे की बात यह है कि अक्सर लोग अहंकार के कारण ही कसम भी खा लेते हैं। इस मनुष्य के जाल को समझना। मंदिर में गए, मुनि के पास गए, साधु के पास

गए, वहां भीड़ भरी है। वहां कोई कसम खा रहा है कि अब मैं प्रतिज्ञा लेता हूं, अणुव्रत लेता हूं कि अब कभी क्रोध न करूंगा। लोग ताली बजा रहे हैं। लोग कह रहे हैं, धन्यभागी है। कितना भव्य जीव! तुम्हारे अहंकार को भी फुरफुरी लगी।
तुमने कहा, अरे! यह आदमी भव्य जीव हुआ जा रहा है। हम बैठे यहां क्या कर रहे हैं? तुम भी खड़े हो गए। तुम्हें पक्का पता भी नहीं तुम क्यों खड़े हो गए हो! लेकिन लोगों ने और तालियां बजाईं कि चलो, एक भव्य जीव और पैदा हुआ। तुमने कसम ले ली। तुमने प्रतिज्ञा ले ली। तुमने कहा कि मैं अब कभी क्रोध न करूंगा। या ब्रह्मचर्य का व्रत ले लिया।
लेकिन यह कोई व्रत से हल होनेवाली बात है? इतना सस्ता मामला है? तो तुम क्रोध के विज्ञान को समझ ही नहीं रहे। जो क्रोध के विज्ञान का मौलिक आधार है वही भर रहा है इस प्रतिज्ञा से भी। तुम्हारे अहंकार को मजा आ रहा है, रस आ रहा है।
इसीलिए तो लोग त्यागी-तपस्वियों की खूब प्रशंसा करते हैं। रथयात्रा निकाल देते हैं, शोभायात्रा निकाल देते हैं। बैंडबाजे के साथ त्यागी का स्वागत कर देते हैं। अब यह जो त्यागी है, इसका अहंकार फुसलाया जा रहा है। इसका प्रभाव बढ़ रहा है। इसकी अस्मिता प्रगाढ़ हो रही है। और अस्मिता ही सारे रोगों का कारण है। वह अहंकार ही सारे लोगों का कारण है।
तो जरा त्यागी का तुम अपमान करके देखना, तब पता चलेगा। संसारी तो शायद तुम धक्का-मुक्का दे दो, उसके पैर पर पैर रख दो तो कहेगा, चलता ही रहता है। संसार में यह होता ही रहता है। जरा त्यागी के पैर पर पैर पड़ जाए, तब अड़चन हो जाएगी। तुम जैसा त्यागी को क्रोधी पाओगे वैसा तुम संसारी को क्रोधी न पाओगे। घर में एक आदमी धार्मिक होने लगे तो घर भर परेशान हो जाता है।
तुम सभी को अनुभव होगा। एकाध घर में कोई उपद्र्रवी हुआ और धार्मिक हो गया... । अब वे पूजा कर रहे हैं तो घर में कोई आवाज नहीं कर सकता, बच्चे खेल नहीं सकते, रेडियो नहीं चलाया जा सकता। उनके ध्यान में बाधा पड़ती है। वह सारे घर का दमन करने लगता है। वे भोजन करने बैठे हैं तो, वे चलें-उठें- बैठें तो।
तुम कभी किसी त्यागी के साथ रहे हो? त्यागी को दूर से देखना सुख। त्यागी के पास रहो, तुम भाग खड़े होओगे। क्योंकि वहां हर चीज बंधी-बंधी मालूम पड़ेगी। तुम भी बंधे हुए मालूम पड़ोगे। त्यागी बड़ा बोझरूप हो जाएगा। उसका अहंकार पत्थर की तरह है। वह तुम्हारी छाती पर लटक जाएगा। होना तो उल्टा चाहिए था कि त्यागी विनम्र हो जाता, कि त्यागी के साथ रहना आनंद और सौभाग्य हो जाता, कि उसके पास थोड़ी देर रहने को मिल जाता तो तुम्हारे जीवन में भी फूल खिलते। मगर ऐसा होता नहीं। लोग त्यागियों को नमस्कार करके बच निकलते हैं। वह नमस्कार भी बच निकलने की तरकीब है कि महाराज! आप यहां ठीक, हम अपनी जगह ठीक। अब आप मिल गए तो पैर छूए लेते हैं। और करें भी क्या? मगर आपने महान त्याग किया है।
ख्याल रखना, आदमी को क्रोध आता है अहंकार पर चोट लगने से। और क्रोध त्याग की भी वह चेष्टा करता है अहंकार को ही भरने के लिए। तो मूल रोग तो जारी रहता है। आदमी को लोभ है, मद है, मत्सर है मूर्च्छा के कारण। उसे होश नहीं कि मैं कौन हूं। इसी बेहोशी में वह कसमें भी लेता है, संसार भी त्याग देता है। हिमालय चला जाता है। लेकिन बेहोशी तो छूटती नहीं। बेहोशी अपनी जगह बनी है।
तो महावीर कहते हैं, "यह जिनवचन है कि संवरविहीन मुनि को केवल तप करने
से ही मोक्ष नहीं मिलता; जैसे कि पानी के आने का स्रोत खुला रहने पर तालाब का पूरा पानी नहीं सूखता।"
"संवरविहीन मुनि... ।"
जिसने मूल स्रोत को नहीं रोका है। जिसमें आने का मार्ग तो खुला ही हुआ
है और जो थोड़े-बहुत उलीचने में लग गया है।
तुम एक नाव में जा रहे हो, छेद हो गए हैं नाव में, पानी भरा जा रहा है। तुम छेद तो रोकते नहीं, पानी उलीचते हो। यह नाव बहुत ज्यादा देर चलेगी

नहीं, यह डूबेगी। पानी उलीचना जरूरी है, लेकिन उससे भी ज्यादा जरूरी है छेदों का बंद कर देना।
महावीर यह नहीं कह रहे हैं कि पानी मत उलीचो। लेकिन पानी उलीचने से क्या होगा? अगर छेद नया पानी लाए चले जा रहे हैं तो तुम व्यर्थ की चेष्टा में लगे हो। पहले छेद बंद करो, फिर पानी उलीच लो तो कुछ राह बनेगी। तो नाव के उस पार पहुंचने का उपाय होगा।
छेद खोजो अपने जीवन के। बुराई को छोड़ने की उतनी चिंता मत करो। बुराई कहां से आती है इसकी खोज करो। लेकर प्रकाश, ध्यान का दीया लेकर अपने भीतर खोज करो कहां से बुराई आती है।
बुद्ध से कोई पूछता कि क्रोध कैसे छोड़ें तो बुद्ध कहते, पहले यह तो जानो कि तुम क्रोध करते कैसे हो। छोड़ने की बात पीछे। नंबर दो है, दोयम। प्रथम है, तुम क्रोध करते कैसे हो। तो अब तुम ऐसी कोशिश करो कि जब क्रोध हो तब तुम पूरी तरह जागकर देखना कि क्रोध उठता कैसे है। यह सीधी बात है। बुद्ध एक दिन सुबह-सुबह अपने भिक्षुओं के बीच आए, बैठे; और उन्होंने
एक रूमाल हाथ में लिया हुआ था, उसमें एक गांठ बांधी, दूसरी गांठ बांधी, पांच गांठें बांधीं। भिक्षु देखते रहे चौंककर कि मामला क्या है? ऐसा उन्होंने कभी किया न था।
फिर उन्होंने पूछा कि भिक्षुओ, इस रूमाल में पांच गांठें लग गईं। तुमने दोनों हालतें देखीं, जब इसमें कोई गांठ न थी और अब जब कि गांठ लग गई। क्या यह रूमाल दूसरा है या वही है? गांठ से शून्य और गांठ लगे रूमाल में कोई फर्क है या यह वही है?
एक भिक्षु ने कहा कि महाराज! आप झंझट में डालते हैं। एक अर्थ में तो यह रूमाल वही है। गांठ जरूर लग गईं लेकिन रूमाल तो वही का वही है। और दूसरे अर्थ में रूमाल वही नहीं है क्योंकि पहले रूमाल में गांठें नहीं थीं। वह गांठमुक्त था, इसमें गांठें हैं।
बुद्ध ने कहा, ऐसा ही आदमी है। आदमी परमात्मा ही है, बस गांठें लग गई हैं। फर्क इतना ही है जितना गांठ लगे रूमाल में और गैर-गांठ लगे रूमाल में है! दोनों बिल्कुल एक जैसे हैं। गांठ में थोड़ी उलझन बढ़ गई है, बस। गांठ खोलनी है।
तो बुद्ध ने कहा, ठीक है, गांठ खोलनी है। तो मैं तुमसे पूछता हूं, मैं क्या करूं कि जिससे गांठ खुल जाएं? और उन्होंने दोनों रूमाल के कोने पकड़कर खींचना शुरू किया। एक भिक्षु ने खड़े होकर कहा कि महाराज! इससे तो गांठें और छोटी हुई जा रही हैं। आप खींच रहे हैं, इससे तो गांठों का खुलना मुश्किल हो जाएगा। यह कोई ढंग न हुआ खोलने का। इससे तो और उलझन बढ़ जाएगी। खींचने से कहीं गांठें खुली हैं? गांठें छोटी होती जा रही हैं, और सूक्ष्म होती जा रही हैं। इतनी छोटी हो जाएंगी तो फिर खोलना मुश्किल हो जाएगा।
तो बुद्ध ने कहा, मैं क्या करूं? तो उस भिक्षु ने कहा, आप रूमाल मेरे हाथ में दें। मैं पहले देखना चाहता हूं कि गांठें किस ढंग से लगाई गई हैं।
क्योंकि जब तक यह पता न हो कि लगाई कैसे गईं तब तक खोली नहीं जा सकतीं।
बुद्ध ने कहा, मेरी बात तुम्हारी समझ में आ गई। इतना ही दिखाने के लिए मैंने यह रूमाल, ये गांठें और यह प्रयोग किया था।
जिस चीज को भी खोलना हो वह लगी कैसे? खोलने के लिए जल्दी मत करना।
क्योंकि डर यह है कि कहीं तुम खींचने-तानने में गांठ को और छोटा न कर लो।
और मैं ऐसा ही देखता हूं। यही हुआ है, हो रहा है। आदमी क्रोध को छोड़ना चाहता है। और इसको बिना समझे कि क्रोध की गांठ लगी कैसे, खींचतान में पड़ जाता है। क्रोध की गांठ और छोटी हो जाती है। संसारी में क्रोध की गांठ थोड़ी फुसली-फुसली है, जल्दी खुल सकती है। त्यागी में बहुत मुश्किल है। गृहस्थ में इतनी उलझी नहीं है, जितनी संन्यासी में उलझ जाती है। घर में जो बैठा है, इसकी बड़ी मोटी-मोटी गांठ है। वह जो मुनि होकर मंदिर में बैठ गया है, उसकी बड़ी सूक्ष्म गांठ है। उसने खूब खींच ली हैं। हां, सूक्ष्म होने में एक लाभ मालूम पड़ता है--लाभ है नहीं--वह यही मालूम पड़ता है कि गांठ अगर बहुत सूक्ष्म हो जाए तो किसी को दिखाई नहीं पड़ती। मगर गांठ से छुटकारा थोड़े ही होता है! दिखाई नहीं पड़ने से छुटकारा तो नहीं होता।

तो लोग गांठों को सूक्ष्म करते जाते हैं। तुम कामवासना छोड़ना चाहते हो। ब्रह्मचर्य की चर्चा सदियों तक चली है। ब्रह्मचर्य के बड़े स्तुति में गीत गाए गए हैं। तो तुम्हारे मन में भी लोभ जगता कि हम भी ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हों। अच्छा है, शुभ है भाव, लेकिन जब तक कामवासना को समझा नहीं, तब तक तुम मुक्त कैसे हो सकोगे? जब तक कामवासना को जागकर देखा नहीं कि यह गांठ लगती कैसे? इसके लगने की विधि क्या है? यह कैसे जकड़ लेती है और मन को घेर लेती है, और मन को डुबा लेती है? खींच लेती, अवश कर देती, असहाय कर देती। जहां नहीं जाना वहां खिंचे चले जाते हैं। जो नहीं करना वह फिर-फिर कर लेते हैं। इस गांठ को ठीक से जानना जरूरी है।
तो महावीर कहते हैं, जो व्यक्ति संवरविहीन है... । संवर महावीर का पारिभाषिक शब्द है। संवर का अर्थ है आने का मार्ग। जिसने मूल उदगम को नहीं रोका है। कुएं से पानी उलीच रहा है और झरना नया पानी लिए चला आ रहा है। झरना भरे जा रहा है कुएं को और तुम उलीचे जा रहे हो। तुम्हारे उलीचने से कुछ लाभ नहीं है। खतरा तो यह है कि तुम्हारे उलीचने से आनेवाला झरना और गतिमान हो जाएगा।
यह तुमने ख्याल किया होगा। अगर किसी कुएं का पानी वर्षों तक न भरो तो सूख भी सकता है। क्योंकि जब पानी कोई भरता ही नहीं कुएं में तो झरना धीरे- धीरे अवरुद्ध हो जाता है। धूल जम जाती है। कंकड़-पत्थर बैठ जाते हैं, मिट्टी बैठ जाती है। झरना धीरे-धीरे मुंद जाता है। झरने का काम ही नहीं रह जाता। तुम एक बाल्टी पानी निकालते हो, एक बाल्टी पानी झरने को कुएं में भरना पड़ता है। तो झरना चलता रहता है। जो झरे, वही झरना। जब झरे ही न, तो झरना बंद हो जाता है।
अगर वर्षों तक कुएं से पानी न भरा जाए तो संभव है कुआं सूख जाए। लेकिन उलीचनेवाला अगर झरने बंद न करे, तब तो कुआं कभी नहीं सूखेगा। क्योंकि कुएं के पीछे सागर छिपा है, जहां से झरने भागे चले आ रहे हैं। इधर तुम उलीचते हो, झरनों को और गति मिल जाती है। वे और तेजी से भागे चले आते हैं। उनको और काम मिल जाता है।
इसलिए जिस व्यक्ति ने ब्रह्मचर्य को थोपने की कोशिश की और कामवासना
के झरने को रोका नहीं, कामवासना को समझा नहीं, उसके विज्ञान को पहचाना नहीं, वह और मुश्किल में पड़ जाएगा। तुम कोशिश करके देखो। जैसे-जैसे तुम ब्रह्मचर्य की चेष्टा करोगे, तुम पाओगे खोपड़ी में झरने ही झरने खुल गए, वासना ही वासना के। वही-वही विचार उठते हैं, वही-वही स्वप्न आते हैं। कहीं भी नजर डालो, तुम्हें बस वासना का ही विस्तार दिखाई पड़ेगा। तुम जो भी देखोगे वहां वासना दिखाई पड़ेगी।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने मनोवैज्ञानिक के पास गया था। एक ऊंट निकल रहा
था रास्ते पर से। तो उस मनोवैज्ञानिक ने पूछा, इस ऊंट को देखकर तुम्हें किस बात की याद आती है? उसने कहा, स्त्री की। जरा मनोवैज्ञानिक भी चौंका। उसने कहा अच्छा कोई बात नहीं। यह जो घड़ी लटकी है इसको देखकर तुम्हें किसकी याद आती है? उसने कहा, स्त्री की। उसने कहा, मुझे देखकर तुम्हें किसकी याद आती है, उसने कहा, स्त्री की। उसने कहा, तुम हद्द पागल आदमी हो! उसने कहा, पागल क्या? मुझे स्त्री के सिवाय किसी की याद ही नहीं आती। इसमें ऊंट का कोई संबंध नहीं है, न घड़ी का, न तुम्हारा। मुझे याद ही स्त्री की आती है। इससे ऊंट का कोई संबंध मत जोड़ना कि ऊंट को देखकर मुझे स्त्री की याद आती है। याद ही बस एक आती है।
तुम जरा कोशिश करके देखो। जिस चीज से तुम जबर्दस्ती छूटना चाहो, उसकी याद सघन हो जाती है। एक दिन तय करके देख लो कि महीनेभर ब्रह्मचर्य का व्रत ले लो। महीनेभर का ही लेना, ज्यादा का मत लेना क्योंकि प्रायोगिक है। उस महीने में तुम पाओगे कि सारी जीवन-ऊर्जा बस कामवासना में ही संलग्न हो गई। दो-चार दिन उपवास करके देख लो, बस भोजन ही भोजन, भोजन ही भोजन। ऐसे विचार तुम्हें भोजन के पहले कभी भी न आते थे, वे उपवास में आते हैं। तो उल्टी घटना घट जाती है।
मैं जैनों के घरों में ठहरता रहा। उनके पर्युषण पर्व आते, दस-दस दिन
का उपवास कर लेते। इधर सोहन बैठी है पीछे; वह आठ-आठ दिन के उपवास करती रही,

उससे पूछो। सालभर चौके में काम करती है, भोजन बनाती है, भोजन खिलाती है--और अच्छा भोजन बनाती है--भोजन की याद ही न आएगी। अक्सर जो महिलाएं भोजन बनाती हैं उनको भोजन में रस ही खो जाता है। भोजन बनानेवाले को भोजन करने में उतना मजा नहीं आता।
लेकिन उपवास कर लो तो सब झरने खुल जाते हैं। सब तरफ से रसधार बहने लगती हैं। जैसे स्वाद ही जीवन का केंद्र बन जाता है। और इसलिए जैन पर्युषण के बाद जैसे भोजन पर टूटते हैं... ! तुम जाकर साग-सब्जीवालों से पूछ सकते हो कि पर्युषण के बाद एकदम दाम बढ़ जाते हैं। मिठाई के दुकानदारों से पूछ सकते हो कि पर्युषण के बाद एकदम बिक्री बढ़ जाती है। आठ दिन, दस दिन किसी तरह सोच-सोचकर विचार कर-करके टाले रखते हैं। और दस दिन के बाद पागल होकर टूट पड़ते हैं।
जिस चीज को तुम जबर्दस्ती रोकोगे, उसको महावीर कहते हैं यह तपश्चर्या
तो हुई, संवर न हुआ। अकेली तपश्चर्या से कोई मुनि मोक्ष को उपलब्ध नहीं होता। संवर पहली बात है। झरने को सुखाओ।
झरना कहां है? सभी चीजों का मौलिक झरना कहां है? वह मनुष्य की अचेतना में है। वह मनुष्य की मूर्च्छा में है। हम बेहोश हैं। हमें पता ही नहीं गांठ कैसे लगती है! रोज गांठ लगती है और हम देख नहीं पाते। क्रोध रोज उठता है और हम देख नहीं पाते कि यह गांठ हमारे रूमाल पर लगती कैसे?
तो अब जब क्रोध उठे तो उस मौके को खोना मत। वह बड़ा स्वर्ण-अवसर है। क्रोध जैसी महत्वपूर्ण घटना घट रही है। इसे तुम फिजूल की बकवास में खराब मत कर देना। जब क्रोध उठे तो द्वार-दरवाजे बंद करके बैठ जाना। और क्रोध की गांठ तुम्हारे मन पर कैसे लग रही है उसका पूरा दर्शन करना, अवलोकन करना, निरीक्षण करना, देखना, दबाना मत, क्योंकि दबाने की कोई जरूरत नहीं है। किसी पर निकालना भी मत, क्योंकि किसी पर निकालने में समय खो जाएगा। वह तो घड़ी देखने की है, साक्षात्कार की।
किसी ने गाली दी, तुम क्रोध से उबलने लगे; भागो! बंद करो अपना द्वार-दरवाजा। बैठकर कमरे में आंख बंद करके देखो। यह जो धुआं उठ रहा है क्रोध का, कहां से आ रहा है? कहां है इसका ईंधन? कहां है इसकी मूल चिनगारी?
और यह तो तभी संभव है इसको देखना, जब तुम कोई विरोध न करो। तुम यह न कहो
कि यह बुरा है, गंदा है, पाप है। क्योंकि जैसे ही तुमने यह कहा, तुम्हारी आंखें बंद हो गईं। दुश्मन को हम आंख मिलाकर थोड़े ही देखते हैं! सिर्फ गहरे प्रेम में ही, मैत्री में ही किसी की आंख में आंख डालकर देखते हैं। दुश्मन से तो हम बचकर निकल जाते हैं।
अगर क्रोध को तुमने दुश्मन समझ लिया तो फिर तुम कभी क्रोध का निरीक्षण न कर पाओगे। निरीक्षण न किया तो गांठ कैसे लगती है, समझ में न आएगा। गांठ कैसे लगती है समझ में न आया तो गांठ खोलोगे कैसे? कसमें खाने से थोड़े ही गांठ खुलती है!
इसलिए मैं कहता हूं महावीर ने धर्म को वैज्ञानिक रूप दिया। धर्म को मनोविज्ञान बनाया। उसको ठीक जहां से काम शुरू होना चाहिए, वहां से इशारे किए।
पहला इशारा उनका यह है कि मूलस्रोत की पहचान; मूल उदगम की पहचान।
और तुमने ख्याल किया? अगर गंगा को पकड़ना हो, वश में करना हो तो गंगोत्री पर जितना सरल है फिर आगे कहीं भी उतना सरल नहीं है। गंगोत्री पर तो ऐसे छोटा-सा झरना है गंगा। गौमुख में से गिरती है, बहुत बड़ी हो भी नहीं सकती। गंगा को अगर वश में करना हो तो गंगोत्री पर करना आसान है। प्रयाग में या काशी में अगर वश में करने गए तो तुम पागल हो जाओगे। वह वश में होनेवाली नहीं। बहुत बड़ी हो जाती है।
सभी चीजें अपने मूल उदगम पर बड़ी छोटी होती हैं, तुम्हारी सीमा के भीतर होती हैं।
तो क्रोध को वहां देखो, जहां से क्रोध उठता है। काम को वहां देखो जहां
से काम उठता है। झगड़े का सवाल नहीं है। एक वैज्ञानिक अवलोकन की बात है।

"यह जिनवचन है कि संवरहीन मुनि को केवल तप करने से मोक्ष नहीं मिलता, जैसे कि पानी के आने का स्रोत खुला रहने पर तालाब का पूरा पानी नहीं सूखता।"
तो पहली चीज, मूलस्रोत की पहचान। उस मूलस्रोत को एक ही नाम दिया जा सकता है, वह है मूर्च्छा। महावीर का शब्द है प्रमाद--सोए-सोए जीना।
हम जी तो जरूर रहे हैं, लेकिन हमारा जीना बड़ी तंद्रा से भरा हुआ है। कुछ ठीक पक्का पता नहीं है क्यों जी रहे हैं। कुछ पक्का पता नहीं कौन हैं। कुछ पक्का पता नहीं कहां जा रहे हैं, कहां से आ रहे हैं। धक्कमधुक्की है, चले जा रहे हैं।
कभी भीड़ में देखा? कोई भीड़ का रेला आ रहा हो, लोग चले जा रहे हों, तुम
भी चले जा रहे हो। रुकना भी मुश्किल क्योंकि भीड़ धक्के दे रही है। तुम्हें यह पक्का पता भी नहीं कहां जा रहे, कहां से ले जाए जा रहे, यह भीड़ कहां जा रही है। लेकिन यह सोचकर कि सब जा रहे हैं तो ठीक ही जा रहे होंगे, आदमी चलता चला जाता है। हम पैदा भीड़ में होते हैं, और भीड़ में ही मर जाते हैं। और हमें पता ही नहीं चल पाता हमें जाना कहां था, होना क्या था। क्या होने को हम पैदा हुए थे। हमारी नियति क्या थी। हमारा स्वभाव क्या था।
यह मूर्च्छा तोड़ना पहली बात है। कैसे टूटे यह मूर्च्छा? जो भी करो, महावीर कहते हैं; विवेकपूर्वक करो।
जैन मुनि विवेक का बड़ा गलत अर्थ करते हैं। जब तुम जैन मुनि से पूछोगे
कि महावीर जब कहते हैं "जयं चरे, जयं चिट्ठे"--विवेक से उठें, विवेक से बैठें, तो उनका मतलब क्या है? तो जैन मुनि कहेगा, विवेक से बैठने का मतलब जमीन झाड़कर बैठें। कोई चींटी न मर जाए। पानी छानकर पीएं कि कोई हिंसा न हो जाए। यह विवेक का अर्थ!
यह विवेक का अर्थ नहीं है। विवेक का अर्थ है, बैठने की क्रिया में मूर्च्छा न हो। जब तुम बैठो तो सिर्फ बैठो। उस वक्त तुम्हारा चैतन्य सिर्फ बैठने का ही काम करे, बस। जब तुम चलो तो सिर्फ चलने का ही काम करे, बस। तुम कुछ और हजार बातें न सोचो।
रास्ते पर तुम चल रहे हो, हजार बातें सोच रहे हो। तो चलना तो मूर्च्छित होगा ही। मन हजार जगह एक साथ थोड़े ही हो सकता है। एक ही जगह हो सकता है। भोजन तुम कर रहे हो, उस वक्त बैठे तुम दुकान पर विचार कर रहे हो। बैठे घर में, भोजन कर रहे, विचार चल रहा बाजार का।
मैंने सुना है, एक आदमी एक साधु के पास जाता था। बड़ा भक्तिभाव में रस लेता था, भजन-कीर्तन करता था। और जो लोग भी भजन-कीर्तन इत्यादि करने लगते हैं, वे चाहते हैं सभी को करवा दें। हिंसा का भाव है वह। क्योंकि तुम कौन हो सभी को करवाने वाले? वह अपनी पत्नी को भी लगाना चाहता था। दुनिया में सबसे कठिन काम वही है। पति को अगर भजन-कीर्तन करना है, पत्नी निश्चित रूप से भजन-कीर्तन नहीं करेगी। दो में से एक ही करता है। दोनों... आकस्मिक संयोग हो जाए, बात अलग। ऐसा होता नहीं।
तो वह पत्नी को बड़ी खींचतान मचाता था, बड़ा शोरगुल मचाता था कि चल, धर्म
कर कुछ। समय खो रही है। जीवन जा रहा है। लेकिन पत्नी अपनी जिद्द पर थी। उसने अपने गुरु को कहा। गुरु ने कहा, मैं आऊंगा। मैं तेरी पत्नी को समझाऊंगा। कल सुबह आता हूं पांच बजे।
तो पति तो उठ जाता था चार बजे ही से। जोर से शोरगुल मचाता था। उसको ही
वह भजन-कीर्तन कहता था। हालांकि मोहल्ला भर उसको गाली देता था। बच्चे घर के गाली देते थे। मगर धार्मिक आदमी जब इस तरह के काम करता है तो कोई रुकावट भी नहीं डाल सकता।
वह जब आया साधु, उसने द्वार पर दस्तक दी तो पत्नी बुहारी लगा रही थी। उसने पत्नी से कहा कि देखो, तुम्हारा पति कितना ध्यान में लीन है! उसकी पत्नी ने कहा, छोड़ो बकवास! वह इस समय बाजार गया हुआ है और एक जूते की दुकान पर जूते खरीद रहा है।
वह पति तो अंदर बैठा था। उसने यह सुना तो वह बड़ा हैरान हुआ। उसने कहा हद्द हो गई! झूठ की भी एक सीमा होती है। पांच बजे रात न तो दुकानें खुलीं, और मैं इधर अपने ध्यान में लगा हूं। अब यह दिखता है कि यह सोचकर कि मैं बीच

में उठ नहीं सकता... । वह निकलकर बाहर आ गया। उसने कहा, तूने समझा क्या है? मैं इधर घर में बैठा हूं। ध्यान कर रहा हूं, तुझे पता है। झूठ बोल रही है सरासर!
उसकी पत्नी ने कहा, अब तुम ईमान से कह दो। कम से कम तुम्हारे गुरु की मौजूदगी में ईमान से कह दो, कि तुम नहीं चमार की दुकान पर थे? जूते नहीं खरीद रहे थे?
वह थोड़ा चौंका। और गुरु सामने खड़ा था, एकदम झूठ बोल भी न सका। गुरु ने कहा, क्या मामला क्या है?
उसने कहा, यह बात तो ठीक कह रही है मगर इसको पता कैसे चला? क्योंकि जूते फट गए हैं मेरे, तो मैं ध्यान तो कर रहा था, लेकिन ख्याल बाजार का था। और मैं जरूर पहुंच गया था चमार की दुकान पर। झगड़ा मच गया था, क्योंकि दाम वह बहुत ज्यादा बता रहा था। मोल-भाव कर रहा था। मगर इसको पता कैसे चला?
अब यह तो किसी को भी पता नहीं कि स्त्रियों को पता कैसे चलता है, मगर
चल जाता है। छिपा नहीं सकते स्त्रियों से कुछ। पता चल ही जाता है।
तो तुम जब ध्यान कर रहे हो, तब ध्यान ही हो। मगर यह तभी हो पाएगा जब तुम
और काम भी ध्यानपूर्वक ही करने लगो। चलो तो सिर्फ चलो। भोजन करो तो सिर्फ भोजन करो। बिस्तर पर लेटो तो बस फिर लेट ही जाओ। फिर मन न दौड़ता रहे हजार जगह! नहीं तो लेटने की क्या जरूरत? दौड़ते ही रहो।
लोग लेट जाते हैं बिस्तर पर, फिर कहते हैं नींद नहीं आती। नींद न आने
का कुल कारण इतना है कि तुम लेटते ही नहीं। शरीर तो पड़ा है बिस्तर पर लाश की भांति; मन भाग रहा है दूर-दूर लोकों में; न मालूम कहां-कहां की योजनाओं में।
जब मन भागा हुआ है तो नींद नहीं घट सकती। विश्राम तो तभी संभव है जब मन
और शरीर तालमेल करते हैं। मन कहीं जा रहा है, शरीर बिस्तर पर पड़ा है। दोनों में इतना खिंचाव है, तनाव है, नींद संभव नहीं है।
साधु ही सोता है। साधु ही सो सकता है। क्योंकि साधु ही जगता है। जब जगता है तो बस जगता है। जब सोता है तो बस सोता है।
महावीर का जो वचन है, विवेक, जागरूकता, अप्रमाद, यतनाचार, जतनपूर्वक जीना--उसका अर्थ जैन मुनि बड़ा क्षुद्र कर रहे हैं। हालांकि जो वे अर्थ कर रहे हैं वह मेरे अर्थ में समाविष्ट हो जाता है, लेकिन उनके अर्थ में मेरा अर्थ समाविष्ट नहीं होता।
जो व्यक्ति जागरूकता से जीएगा वह स्वभावतः देखकर चलेगा कि किसी कीड़े- मकोड़े पर पैर न पड़ जाए। इसके लिए देखकर चलने की अलग से जरूरत न रहेगी, जागकर चलना काफी है। वह तो नींद में ही, बेहोशी में ही चलते हो इसलिए ऐसी भूल हो जाती है।
जो आदमी जागकर जी रहा है उसके सारे जीवन की प्रक्रियाओं में जागरण का प्रकाश पड़ने लगेगा। उसके जीवन से हिंसा समाप्त हो जाएगी। जिसके भीतर तनाव नहीं, उसके बाहर हिंसा समाप्त हो जाती है। जिसके भीतर संघर्ष नहीं, उसके बाहर संघर्ष समाप्त हो जाता है। बाहर तो हम लड़ते इसीलिए हैं कि भीतर लड़ रहे हैं। बाहर तो हमारे जीवन में धुआं इसीलिए दिखाई पड़ता है कि भीतर हम जल रहे हैं।
बाहर के बदलने से कुछ भी न होगा, भीतर की बदलाहट होगी तो बाहर की बदलाहट अपने से हो जाती है। अंतस बदला तो आचरण अपने से बदल जाता है।
तो मेरी दृष्टि में महावीर के सूत्र का अर्थ हुआः अंतस में दीया जला रहे।
तुम जरा कोशिश करो। बहुत कठिन मामला है। जैन मुनि जो कहता है वह सरल है; इसलिए दो कौड़ी का है। वह तो कोई भी अभ्यास कर ले सकता है। उसका कोई बहुत मतलब नहीं है।
पानी छानकर पी लेने का कोई बहुत मतलब नहीं है। मैं यह नहीं कह रहा कि पानी छानकर मत पीना। लेकिन यह मत समझ लेना कि पानी छानकर पी लिया तो मोक्ष कुछ करीब आ गया। ठीक किया। हाइजनिक है, स्वास्थ्यवर्धक है। पानी छानकर पीया तो वैज्ञानिक दृष्टि से ठीक काम किया। लेकिन इससे कुछ मुक्ति करीब आ रही है ऐसा मत सोच लेना। जमीन बुहारकर बैठे, ठीक किया। जो करने योग्य था वह

किया। लेकिन इससे कुछ अतिमानवीय रोशनी का जन्म नहीं हो जाएगा। इससे कुछ परमात्मा तुममें नहीं उतर आएगा।
इतने सस्ते में तुम परमात्मा को लाना चाहते हो तो तुम जरा जरूरत से ज्यादा मांग रहे हो। तुम कहते हो, हम रोज बुहारी लगाकर बैठे, रोज पानी छानकर पीया, मोक्ष कहां है? लेकिन तुम मोक्ष की कीमत कितनी आंक रहे हो? मोक्ष का मतलब हुआः बुहारी लगाकर बैठे धन पानी छानकर पीया = मोक्ष? मोक्ष दो कौड़ी का कर दिया तुमने।
नहीं, मोक्ष बड़ी घटना है। और उस बड़ी घटना की बड़ी तैयारी जरूरी है।
उस तैयारी का पहला कदम तुम उठाना शुरू करो। मैं कहता हूं कठिन है। क्योंकि अगर तुम जागकर चलना चाहोगे तो तुम पाओगे, क्षणभर भी नहीं चल पाते। अगर भोजन तुम होश से करना चाहोगे तो एकाध कौर कर लिया तो बहुत। फिर भटके, फिर भटके। लेकिन बार-बार लौटाते रहो! पकड़-पकड़कर अपने घर आते रहो। फिर जब याद आ जाए कि अरे! कहां चला गया? फिर चबाने लगे बिना होश के, फिर लौटकर आ जाओ। फिर हाथ शिथिल कर लो। फिर से अपने को जगाकर बैठ जाओ। फिर से भोजन शुरू कर दो।
राह चलते-चलते एक कदम चलोगे, होश रहेगा, दूसरे कदम पर फिर बेहोशी आ गई, फिर कोई ख्याल उतर आया, फिर किसी ख्याल में खो गए। जब याद आ जाए, फिर अपने को सम्हाल लो। शुरू-शुरू में तो ऐसा ही होगा। पकड़ोगे, खोओगे; पकड़ोगे, खोओगे। हाथ लगेगा धागा, छूटेगा; छूटेगा हजार बार।
तुम फिकिर मत करो। हजार बार छूटे, हजार बार पकड़ो। इससे हताश भी मत होना, क्योंकि यह बात ही ऐसी है कि सधते-सधते सधती है। यह बात इतनी मूल्यवान है कि यह एक दफा में सध जाती तो इसका कोई मूल्य ही न था। ये कोई मौसमी फूल नहीं हैं कि डाल दिए बीज और दो-चार सप्ताह में फूल आ गए। ये तो देवदार और चिनार के बड़े वृक्ष हैं, जो बहुत समय लेते हैं। बड़े होते हैं। आकाश को छूने जाते हैं।
मोक्ष से बड़ी और कोई घटना इस संसार में नहीं है, न इस संसार के बाहर है। मोक्ष महत्तम घटना है। इसलिए उसके लिए जितना भी श्रम किया जाए वह अंततः थोड़ा है। जब मोक्ष की उपलब्धि होती है तो पता चलता है, जो हमने किया था वह न कुछ था। हां, जब तक मिला नहीं है मोक्ष, तब तक ऐसा लगता है कि कितना कर रहे हैं, और कुछ भी नहीं हो रहा है... कुछ भी नहीं हो रहा है।
और बात ख्याल रखना, जैसे सौ डिग्री गर्मी पर पानी भाप बनता है-- निन्यानबे पर भी भाप नहीं बनता, साढ़े निन्यानबे पर भी भाप नहीं बनता, ठीक सौ डिग्री पर बनता है। ऐसे ही तुम्हारे प्रयत्न की एक डिग्री है। तुम्हारी चेष्टा की एक डिग्री है, तुम्हारे तप की एक डिग्री है। ठीक उस जगह आकर अचानक रोशनी हो जाती है, अंधकार कट जाता है। उसके एक क्षण पहले तक गहन अंधेरी रात थी।
हताश मत होना। लौट मत जाना। यह मत सोचना कि क्या फायदा! हो सकता है, तुम सनतानबे डिग्री पर थे कि अनठानबे डिग्री पर थे और लौट गए, निराश हो गए। एक कदम और--एक कदम और। लौटना ही मत। जीवन की एक ही बात को याद रखो तो महावीर का सारा सार-संचय तुम्हारे पास रहेगा। उठो जागकर, बैठो जागकर, चलो जागकर, बोलो, सुनो--जो भी करो--अपने को झकझोर कर। भीतर दीया जागने का जगा रहे। तुम मुझे यहां सुन रहे हो, तुम इस तरह सुन सकते हो कि बैठे हैं, हजार बातें चल रही हैं खोपड़ी में, यह मेरी बात भी सुनाई पड़ रही है उन्हीं हजार बातों के बीच में। कहीं-कहीं कुछ-कुछ शब्द भीतर प्रवेश कर जाते हैं। वे हजार बातों में लिपटकर उनका अर्थ भी बदल जाता है। कुछ का कुछ सुनाई पड़ जाता है। कहा कुछ, सुन कुछ लेते हो। अर्थ कुछ था, अर्थ कुछ निकाल लेते हो। ऐसे सोए-सोए सुनकर तुम जो ले जाते हो, वह तुम्हारा ही होगा। उसका मुझसे कुछ लेना-देना नहीं है।
जागकर सुनो। जागकर सुनने का अर्थ है, सुनते वक्त तुम कान ही कान हो जाओ। तुम्हारा पूरा शरीर कान की तरह काम करे तो जागकर सुना। भोजन करते वक्त तुम स्वाद ही स्वाद हो जाओ। तुम्हारा पूरा शरीर बस भोजन करे। चलते वक्त तुम पैर ही पैर हो जाओ। बस तुम चलो। सोचते वक्त तुम मन ही मन हो जाओ; फिर सिर्फ सोचो।

तो मैं यह नहीं कह रहा हूं कि सोचने के लिए समय ही मत दो। घड़ी दो घड़ी निकाल लो और उस समय सिर्फ सोचो। जरूरत है उसकी भी। वह भी तुम्हारे जीवन का अंग है। उसे भी समय चाहिए। सब समय को ठीक से बांट दो। मगर एक ख्याल रहे कि जो भी कृत्य हो वह मूर्च्छा में न हो।
अगर हाथ में आ-आकर होश छूट जाता हो, तो इतना ही ख्याल रखना कि थोड़ी चेष्टा और।
मिल ही जाता दुआ को बाग-ए-कुबूल
हिम्मत-ए-दिल ही पस्त है शायद
--स्वीकार हो जाती प्रार्थना।
मिल ही जाता दुआ को बाग-ए-कुबूल
हिम्मत-ए-दिल ही पस्त है शायद
अगर नहीं मिलती प्रार्थना को स्वीकृति, अगर प्रार्थना पूरी नहीं होती
तो इतना ही जानना कि अभी दिल की हिम्मत, दिल का साहस--अभी दिल खोलकर मांगा ही नहीं। द्वार पर दिल खोलकर दस्तक ही न दी। कुछ कमी रह गई।
इतना ही ख्याल रखना कि कुछ कमी रह गई। फिर चेष्टा करना। किसी भी दिन कमी पूरी हो जाएगी। और कोई भी नहीं कह सकता, कब पूरी हो जाएगी। क्योंकि अब तक कोई थर्मामीटर नहीं बन सका, जिससे हम पता लगा सकें कि आदमी का होश समाधि के करीब आ गया या नहीं। कोई उपाय नहीं।
जैसे थर्मामीटर में हम पता लगा लेते हैं कि आदमी का बुखार ज्यादा तो नहीं हो गया? कम तो नहीं हो गया? अब तक कोई थर्मामीटर नहीं बना, कि पता चल सके कि आदमी का होश कितना है? अभी होश को मापने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए तुम्हें टटोल-टटोलकर ही चलना होगा। मगर एक बात पक्की है-- जिन्होंने खोजा, उन्हें मिला। अगर तुम्हें न मिले तो ऐसा मत सोचना कि होश मिलता ही नहीं। अधिक लोग जल्दी ही ऐसा सोच लेते हैं कि न कोई परमात्मा है, न कोई आत्मा है, न कोई होश है। यह कुछ होनेवाली बात नहीं है। इस तरह पस्ते- हिम्मत मत हो जाना, हताश मत हो जाना।
तपश्चर्या का यही अर्थ है, जब महावीर कहते हैं तप, तो उनका यही अर्थ है। तप का अर्थ है, अपने को तपाते जाना, गरमाते जाना। सौ डिग्री पर भाप बनोगे, छलांग लगेगी। देखा! पानी नीचे की तरफ बहता है। फिर जब भाप बन जाता है तो ऊपर की तरफ उठने लगता है। वही पानी, जो सदा नीचे की तरफ बहता था, अब अचानक ऊपर की तरफ उठने लगता है। वही पानी जो दृश्य था, अब अदृश्य होने लगता है। वही पानी जो गड्ढों की तलाश करता था, आकाश की तलाश में निकल जाता है। बस सौ डिग्री का फर्क है!
ठीक ऐसे ही मनुष्य की चेतना साधारणतः नीचे की तरफ बहती है। इस नीचे की तरफ बहने को हम पाप कहें। जब ऊपर की तरफ बहने लगती है तो पुण्य कहें। और इन दोनों के बीच जो जोड़नेवाला सेतु है, वह तप है। तप शब्द बिल्कुल ठीक है। वह ताप से ही बना है; गर्मी से ही बना है।
लेकिन कुछ नासमझ हैं, वे धूप में खड़े हो जाते हैं। वे कहते हैं, तप कर रहे हैं। कुछ नासमझ हैं, अंगीठियां लगाकर बैठ जाते हैं। वे कहते हैं तप कर रहे हैं।
आदमी के पागलपन की कोई सीमा नहीं। अंगीठियां लगाकर तुम तप करोगे? शरीर को जला लोगे, पसीने-पसीने हो जाओगे। इससे तप का कोई संबंध नहीं है। धूप में खड़े रहोगे--सिर से सूरज को ऊगने-डूबने दोगे? इससे तप का कोई संबंध नहीं है। तुम नाहक कष्ट झेलोगे।
तप है आंतरिक। ख्याल करो, सूरज की किरणों में दोनों बातें हैंः ताप भी है, और प्रकाश भी है। प्रत्येक ताप के साथ प्रकाश भी जुड़ा है। प्रकाश के दो गुणधर्म हैंः एक तो चीजों को प्रकाशित करना और उत्तप्त करना।
ऐसे ही तुम्हारे भीतर चैतन्य का जब प्र्रकाश जगना शुरू होता है तो दो घटनाएं घटती हैं। एक तो तुम भीतर प्रकाशित होने लगते हो और तुम्हारी जीवन-ऊर्जा उत्तप्त होने लगती है। तो एक तरफ तो तुम सौ डिग्री की तरफ बढ़ने लगते हो, जहां छलांग लगेगी, सीमा टूटेगी। दृश्य का बंधन गिरेगा। नीचे की तरफ बहने की पुरानी आदत से छुटकारा होगा। और दूसरी तरफ जैसे-जैसे ताप सघन होता जाएगा वैसे-वैसे तुम रोशनी से मंडित होते जाओगे। तुम्हारे भीतर एक

प्रभामंडल जन्मेगा। अंगीठियां जलाने की जरूरत नहीं; तुम्हारे चेहरे से, तुम्हारी आंखों से, तुम्हारे व्यक्तित्व से, तुम्हारे उठने-बैठने से, प्रकाश की झलक मिलनी शुरू होगी। तुम एक दीया बन जाओगे।
और धीरे-धीरे व्यक्ति पारदर्शी हो जाता है। तुम उसके दीये को बाहर से
भी देख सकते हो। जिनके पास भी थोड़ी देखने की आंख है और सहानुभूति से भरी आंख है, वे किसी भी जीवित-जागते व्यक्ति के भीतर रोशनी को देखने में समर्थ हो जाते हैं।
तो तपश्चर्या का अर्थ तुम यह मत ले लेना कि अपने को व्यर्थ कष्ट देने हैं। तपश्चर्या का अर्थ है, जो कष्ट आ जाएं उन्हें स्वीकार करना है, देने नहीं हैं। आनेवाले कष्ट ही काफी हैं, अब और देने की क्या जरूरत है? इतने जन्मों के कर्मों का जाल है हमने बहुत-से कष्ट तो अर्जित ही कर लिए हैं; वे आ ही रहे हैं। बस उन्हें तुम सहिष्णुता से, समभाव से झेल लेना। दुखी मत होना। दुख आए तो, स्वीकार कर लेना। जो दुख आए तुम उससे परेशान और उद्विग्न मत होना, राजी हो जाना। कहना कि किसी को कभी दुख दिया होगा, वह लौट आया है। छुटकारा हुआ जाता है।
बुद्ध पर एक आदमी थूक गया तो बुद्ध बड़े प्रसन्न हो गए। उन्होंने आनंद
से कहा, देख आनंद! इस आदमी पर जरूर मैंने कभी थूका होगा। जन्मों-जन्मों की यात्रा है। कभी इसे कुछ दुख दिया होगा, कुछ अपमान किया होगा। आज छुटकारा हुआ। अगर यह न थूक जाता तो अटके रहते। इसके साथ उलझे रहते। यह छुटकारा होना ही था। आज खाता बंद। आज लेन-देन पूरा हो गया।
जब जीवन में दुख आए तो उसे इस भांति स्वीकार कर लेना कि अपने किए गए किसी कर्म का फल है, स्वीकार कर लिया। इससे उद्विग्न मत होना, तो नया दुख निर्मित न होगा और पुराना दुख भस्मीभूत हो जाएगा।
जिंदगी के गमों को अपनाकर
हमने दरअसल तुझको अपनाया।
वे जिसने जीवन के दुख स्वीकार कर लिये, उसने परमात्मा को स्वीकार कर लिया।
और मजे की बात है... साधारणतः हम सुख खोजते हैं और दुख पाते हैं। और जब कोई व्यक्ति दुख को स्वीकार करने लगता है तो जीवन में सुख की वर्षा होने लगती है। यह जीवन का गणित है। खोजो सुख, पाओगे दुख। मिले दुख, स्वीकार कर लो और तुम अचानक पाओगे, महत सुख उत्पन्न होने लगा। दुख के स्वीकार में ही सुख की क्षमता पैदा हो जाती है।
जरा करके देखो! जब कोई दुख आए, उसे स्वीकार करके देखो। छोटा-मोटा दुख! प्रयोग करो, स्वीकार कर लो। ऐसा सोचो ही मत कि मेरे ऊपर कोई विपदा आ गई है। ऐसा सोचो मत कि परमात्मा मेरे साथ अन्याय कर रहा है। ऐसा सोचो मत। शिकायत लाओ ही मत। गिला, शिकवा लाओ ही मत। इतना ही जानो कि मैंने कुछ दुख बोए होंगे, फल काट रहा हूं, ठीक, चलो निपटारा हुआ जाता है।
सिरदर्द आए... छोटा-सा दुख है, स्वीकार कर लो। स्वीकार में ही तुम अचानक पाओगे, एक क्रांति हो गई। जब तुम पूरे मन से स्वीकार करोगे, तुम पाओगे, सिरदर्द उतना दर्द न रहा, जितना मालूम होता था। अस्वीकार करने से दुख अनंतगुना मालूम होने लगता है। स्वीकार करने से क्षीण हो जाता है। अगर तुमने पूरी तरह स्वीकार कर लिया तो तुम अचानक पाओगे कि दर्द तो गया। इतना फासला हो जाता है तुममें और दर्द में।
अगर दर्द को भी तुमने मेहमान की तरफ स्वीकार कर लिया तो तप। अलग से दुख देने की कोई जरूरत नहीं है।
यह महावीर तो कह ही नहीं सकते कि अपने को दुख दो, क्योंकि महावीर कहते हैं, किसी को दुख मत दो; उसमें तुम भी सम्मिलित हो। यह तो बात बड़े पागलपन की हो जाएगी कि कहा जाए कि दूसरे को दुख मत दो और अपने को दुख दो। जो तुम दूसरे के साथ नहीं करते वह अपने साथ क्यों करो? दया दूसरे के साथ है तो अपने साथ भी चाहिए।
सच तो यह है कि जो अपने साथ दया करता है वही दूसरे के साथ दया कर सकता है। और जो अपने साथ कठोर है वह किसी के भी साथ कोमल नहीं हो सकता। जो अपने साथ कोमल नहीं, वह किसके साथ कोमल होगा? जो अपने से प्रेम नहीं कर सका वह

किसी को प्रेम नहीं कर सकेगा। जो व्यक्ति अपने को प्रेम करता है वही दूसरों को प्रेम कर सकता है। जो घटना घटती है, पहले घर में घटती है, अपने भीतर घटती है; फिर उसकी किरणें दूसरों तक फैलती हैं।
इसलिए महावीर यह तो कह ही नहीं सकते कि तुम अपने को दुख दो। इतना ही कहा है कि जो दुख आए वह तुम्हारे दूसरों को दिए हुए दुखों का परिणाम है। उसे स्वीकार कर लो।
"अज्ञानी व्यक्ति तप के द्वारा करोड़ों जन्मों या करोड़ों वर्षों में जितने कर्म का क्षय करता है, उतने कर्मों का नाश ज्ञानी व्यक्ति त्रिगुप्ति के द्वारा एक सांस में सहज कर डालता है।"
अब यह बात सीधी-साफ है, लेकिन फिर भी न मालूम कैसा दुर्भाग्य कि महावीर को माननेवाले लोग त्रिगुप्ति की तो बात भूल गए, बस वे करोड़ों वर्षोंवाली तपश्चर्या में लगे हुए हैं।
ज अन्नाणी कम्मं खवेइ बहुआहिं बासकोडीहिं।
हजारों-लाखों वर्ष तक, लाखों जन्मों तक, कोटि-कोटि जन्मों तक कोई तप करे, तब कहीं बड़ा अल्प कर्म का विनाश होता है।
तं नाणी तिहिं गुत्तो...
और ज्ञानी त्रिगुप्ति के द्वारा...
खवेइ ऊसासमित्तेणं...
एक सांस में उतने कर्मों से मुक्त हो जाता है।
क्या है यह त्रिगुप्ति?
महावीर कहते हैं, "मन, वचन, काया, इनकी प्रवृत्तियों में जागरूक होकर जीना त्रिगुप्ति।"
ये तीन गुप्त बातें, ये तीन सीक्रेट, ये तीन कुंजियां--मन, वचन, काया। शरीर से जो भी करो, होशपूर्वक करना। मन से जो भी करो, होशपूर्वक करना। वचन से जो भी करो, होशपूर्वक करना। ये तीन कुंजियां--इनको जो साध लेता है, वह करोड़ों जन्मों में भी श्रम करके जो आदमी पाता है, उसे एक सांस में बिना श्रम के पा लेता है।
अज्ञानी आदमी कुछ भी करे तो जो भी करेगा, उसके अज्ञान से ही निकलेगा न!
वह तप भी करे तो भी अज्ञान से निकलेगा। और अज्ञान से जो भी निकलेगा उससे नए कर्मबंधों का जन्म होता है। वह त्याग भी करे तो भी अज्ञान से ही करेगा। अज्ञानी व्यक्ति का अर्थ है--यह मत सोचना कि जो शास्त्र नहीं जानता-- अज्ञानी से अर्थ है, जो जागा हुआ नहीं है; जो ज्ञानपूर्वक नहीं जी रहा है। यहीं सुविधा हो जाती है चीजों के अर्थ बदल लेने में। जब महावीर कहते हैं अज्ञानी व्यक्ति तो समझ में आ गई बात, कि ज्ञानी होना जरूरी है। पढ़ो शास्त्र, कंठस्थकरो शास्त्र, बन जाओ तोते, तो ज्ञानी हो जाओगे।
शब्द कितने ही संगृहीत हो जाएं, उससे कोई ज्ञानी नहीं होता। वह तो यंत्रवत है। पढ़ो, बार-बार पढ़ो, गुनो, याद हो जाते हैं। याद से तुम्हारे जीवन में थोड़े ही कुछ रोशनी आएगी! तुम्हारे जीवन में कोई दीया प्रगट हो, तुम्हारे जीवन में कोई अनुभव जगे, तुम्हारा अनुभव हो तो ही ज्ञान। उधार ज्ञान ज्ञान नहीं।
"मोक्षावस्था का शब्दों में वर्णन करना संभव नहीं, क्योंकि वहां शब्दों की प्रवृत्ति नहीं है। वहां न तर्क का प्रवेश है, न वहां मानस-व्यापार संभव है। मोक्षावस्था संकल्प-विकल्पातीत है; साथ ही समस्त मल-कलंक से रहित होने से वहां ओज भी नहीं है। रागातीत होने के कारण सातवें नर्क तक की भूमि का ज्ञान होने पर भी वहां किसी प्रकार का खेद नहीं है।" पहले सूत्र में कहते हैं, अज्ञानी व्यक्ति करोड़ों जन्मों तक तपश्चर्या करे तो भी कुछ खास लाभ नहीं होता। ज्ञानी व्यक्ति क्षणभर में, श्वासभर में होश से जीए तो बहुत लाभ होता है।
इस बात को इंगित करने के लिए कि ज्ञानी से अर्थ शास्त्र को जाननेवाला नहीं है, तीसरा सूत्र बिल्कुल साफ है।
महावीर कहते हैं, मोक्षावस्था का शब्दों में वर्णन करना संभव नहीं है। इसलिए शास्त्र काम न आएंगे। क्योंकि वहां शब्दों की प्रवृत्ति ही नहीं है। वहां तो केवल चैतन्य का प्रवेश है, शब्दों का कोई प्रवेश नहीं

है। वहां तुम तो जा सकते हो लेकिन तुम्हारी बुद्धि और तर्क नहीं जा सकता। तर्क और बुद्धि को पीछे ही छोड़ जाना पड़ता है।
जैसे कोई आदमी हिमालय पर चढ़ता है, तो जैसे-जैसे ऊंचाई बढ़ने लगती है, बोझ कम करने लगता है। पहले सोचा था सब सामान ले चलें। फिर जब पहाड़ चढ़ता है तो पता चलता है, इतना सामान तो ले जाना संभव न होगा। तो जो-जो काम का नहीं है, छोड़ दो। फिर और ऊंचे पहाड़ पर चढ़ता है तो पता चलता है, और भी कुछ छोड़ना पड़ेगा।
जब तेनसिंग और हिलेरी गौरीशंकर पर पहुंचे तो बिल्कुल सब सामान छोड़कर पहुंचे। कुछ भी न था। उतनी ऊंचाई पर कुछ भी ले जाना संभव नहीं होता। मोक्ष आखिरी ऊंचाई है चेतना की। वहां तो विचार भी ले जाने संभव नहीं होते, संकल्प-विकल्प भी संभव नहीं होते। इसलिए महावीर कहते हैं, उसका तो वर्णन ही नहीं हो सकता।
इसलिए शास्त्र जो भी कहते हैं, वे सब प्राथमिक सूचनाएं हैं, अंतिम का कोई दर्शन नहीं है। शास्त्र जो भी कहते हैं, वह सब क, ख, ग, है। वह पहली, प्राथमिक पाठशाला है। शास्त्रों में जीवन का विश्वविद्यालय नहीं है, प्राथमिक शिक्षा है। शास्त्रों पर मत रुक जाना।
अनुभव ही जीवन का विश्वविद्यालय है। वहां शब्दों की कोई प्रवृत्ति नहीं है। क्योंकि जो व्यक्ति भीतर जाएगा, उसे पहले तो शरीर छोड़ना पड़ता है। क्योंकि शरीर हमारा सबसे बाहरी रूप है। जैसे कोई आदमी इस भवन में अंदर आएगा तो दरवाजा, दरवाजे से लगी हुई चारदीवारी छोड़कर आना पड़ता है।
तो पहले तो शरीर छूट जाता है। फिर जब और भीतर प्रवेश करते हैं तो मन की प्रक्रियाएं छूट जाती हैं। जब और भीतर प्रवेश करते हैं तो हृदय के भाव छूट जाते हैं। जब बिल्कुल भीतर अपने घर में पहुंच जाते हैं, ठीक अंतर्गृह में, तो वहां शुद्ध चेतना बचती है, कोई भी और नहीं बचता--न शरीर, न मन, न भाव। इस शुद्ध अवस्था में मुक्ति के पहले दर्शन होते हैं।
तो महावीर कहते हैं, त्रिगुप्ति के द्वारा ऐसी मुक्ति की दशा का अनुभव तुम्हें होगा, वही ज्ञान है। वहां तर्क का प्रवेश नहीं, इसलिए कोई मोक्ष को सिद्ध नहीं कर सकता कि है। न कोई सिद्ध कर सकता कि नहीं है। क्योंकि जो चीज सिद्ध ही नहीं की जा सकती तर्क से कि है, उसको असिद्ध भी नहीं किया जा सकता। सिर्फ अनुभव से जो लेगा स्वाद, वही जानेगा--गूंगे का गुड़। जो लेगा स्वाद, वह जानेगा कि है। लेकिन वह भी तुम्हें सिद्ध नहीं कर पाएगा।
अगर तुम गूंगे से पूछो कि तुझे स्वाद मिला, बोल! तो वह तुम्हारा हाथ खींचेगा। उस तरफ जहां उसको स्वाद मिला। तुम भी आ जाओ और तुम भी चख लो गुड़। यही महावीर-बुद्ध, यही दुनिया के सारे सत्पुरुष कर रहे हैं। खींच रहे हैं हाथ तुम्हारा कि आओ! हम जहां गए, वहां खूब पाया। तुम भी थोड़ा स्वाद लो। तुम कहते हो, पहले सिद्ध करो, फिर हम आएंगे। छोड़ो हाथ। ऐसे हाथ मत खींचो। हम ऐसे बुद्धिहीन नहीं हैं कि हर किसी के साथ हो लें। तुम पहले सिद्ध कर दो कि परमात्मा है, मोक्ष है, आत्मा है, तो हम आने को तैयार हैं। हम तर्कशील व्यक्ति हैं। हम सोच-विचार कर चलते हैं। हम अंधविश्वासी नहीं हैं।
तो फिर तुम कभी भी न जा सकोगे। तो तुम्हें पता नहीं तुमने किससे अपना हाथ छुड़ा लिया। तुमने उससे अपना हाथ छुड़ा लिया जो तुम्हें तुम तक पहुंचा देता। तुमने उससे अपना हाथ छुड़ा लिया जो तुम्हारे लिए जीवन में सौभाग्य की किरण होकर आया था। और तुमने जिस बात के नाम पर हाथ छुड़ा लिया उस कूड़ा- कर्कट को तुम मूल्य दे रहे हो--तर्क।
जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है उसके लिए कोई तर्क नहीं है। प्रेम के लिए कोई सिद्ध कर सका कि है? प्रेम जैसी सामान्य जीवन की अनुभव की घटना भी सिद्ध नहीं होती। सबको अनुभव होती है तो भी सिद्ध नहीं होती। इस जमीन पर करोड़ों लोग प्रेम करते हैं लेकिन फिर भी सिद्ध नहीं होता। खैर महावीर और बुद्ध तो कभी-कभी अपवाद रूप होते हैं। यह आत्यंतिक प्रेम, मोक्ष, परमात्मा तो कभी-कभी घटता है, इसलिए सिद्ध नहीं हो पाता; चलो। लेकिन इतने लोग तो

प्रेम करते हैं--इतने लैला, इतने मजनू, इतने शीरी, इतने फरिहाद! फिर भी कुछ कह नहीं पाता कोई।
कल मैं एक गीत पढ़ता थाः
कहना चाहा तो मगर बात बताई न गई
दर्द को शब्द की पोशाक पहनाई न गई
और फिर खत्म हुई ऐसे कहानी अपनी
उनसे सुनते न बनी हमसे सुनाई न गई
रही हरेक जगह सांस पर रही न गई
बात ऐसी थी, कही तो मगर कही न गई
इस तरह गुजरी तेरी याद में हरेक सुबह
पीर जो कोई सही तो हो मगर सही न गई
प्रेम नहीं कहते बनता। प्रेम को शब्द की पोशाक पहनाते नहीं बनती।
कहना चाहा तो मगर बात बताई न गई
कौन प्रेमी नहीं कहना चाहा है? तुमने कभी प्रेम किया किसी को? तब तुम्हें अड़चन आती है, कैसे कहें कि मुझे प्रेम है? कहो, शब्द बड़े छोटे मालूम पड़ते हैं। जो है, उसके मुकाबले ना-कुछ मालूम पड़ते हैं। लाख सिर पटको, कहो कि मुझे प्रेम है तो भी तुम्हें लगता है, कह कहां पाए?
कहना चाहा तो मगर बात बताई न गई
प्रेमी कितना सिर पटकते हैं, कितने उपाय करते हैं। चलो फूल का गुलदस्ता खरीद लाओ, कि हीरे-जवाहरात के हार ले आओ। मगर हीरे-जवाहरात से भी नहीं कहा जाता। फूल भी नहीं कह पाते। कुछ है, जो प्रगट नहीं हो पाता।
दर्द को शब्द की पोशाक पहनाई न गई
और फिर खत्म हुई ऐसे कहानी अपनी
सभी प्रेमियों की ऐसे ही कहानी खत्म होती है।
उनसे सुनते न बनी हमसे सुनाई न गई
रही हरेक जगह सांस पर रही न गई
बात ऐसी थी, कही तो मगर कही न गई
कह भी देते हैं तो भी रह जाती है बात। कह भी देते हैं तो भी लगता है कहां कही? कह भी देते हैं तो भी मन तड़फता रह जाता है, कह न पाए।
इस तरह गुजरी तेरी याद में हरेक सुबह
पीर जो कोई सही तो हो मगर सही न गई
लगता है कह भी दिया और लगता है कह भी न पाए। लगता है हो भी गया और लगता
है हो भी न पाया। ऐसी विडंबना साधारण प्रेम के साथ घट जाती है।
तो परमात्मा की तो हम बात ही छोड़ दें। वह तो आत्यंतिक घटना है, आखिरी घटना है। उसको बताने के लिए कोई शब्द आदमी की भाषा में नहीं है। उसको बताने के लिए कोई विचार आदमी के पास नहीं है। उसकी तरफ इशारा करने में हमारी कोई अंगुली काम नहीं आती। हमारी अंगुली बड़ी स्थूल और वह बड़ा सूक्ष्म। स्थूल को स्थूल से दिशा-निर्देश किया जा सकता है। स्थूल को स्थूल से कहा जा सकता है। सूक्ष्म को कैसे स्थूल से कहें? वह बड़ा जीवंत और हमारे सब शब्द मुर्दा।
इसलिए जिन्होंने जाना वे मौन रहे। महावीर ने तो अपने संन्यासी को मुनि नाम इसीलिए दिया कि जानोगे--बस चुप! मुनि कहा इसीलिए कि मौन घटेगा। मौन से ही उसे जानोगे, जानकर मौन से ही उसे कह पाओगे।
इसका यह अर्थ नहीं है कि महावीर ने कुछ कहा नहीं। बहुत कहा, लेकिन उस सारे कहने से भी बात कही न गई। शब्द की पोशाक पहनाई न गई। लाख तरह से उपाय किया होगा। इधर से हारे तो उधर से किया होगा, उधर से हारे तो और कहीं से किया होगा। इस दरवाजे से प्रवेश न हो सका तो दूसरे दरवाजे पर खटखटाया होगा। लेकिन अंतिम निर्णय में यह कहा कि वह मोक्ष कुछ ऐसा है कि कहा नहीं जा सकता। तुम्हें भी अनुभव हो जाए, बस ऐसी शुभाकांक्षा की जा सकती है। या तुम हाथ देने को राजी हो जाओ हाथ में तो तुम्हें भी ले जाया जा सकता है। सदगुरु का अर्थ यही है--जो तुम्हें ले जाए। सत्संग का अर्थ यही है, जहां तुम किसी और के हाथ में अपना हाथ देने को तैयार हो जाओ। "मोक्षावस्था का शब्दों में वर्णन नहीं है... ।"

सव्वे सरा नियट्टंति तक्का जत्थ न विज्जइ।
और तर्क से उसे कहा नहीं जा सकता... ।
तक्का जत्थ न विज्जइ।
मई तत्थ न गाहिया... ।
वहां मन का कोई व्यापार ही नहीं रह जाता। मन के पार है, मन के अतीत है।
ओए अप्पइट्ठाणस्स खेयन्ने।
वह मन के बहुत पार है। वह इतने पार है मन के कि और सारी बातें तो छोड़ ही दो, आध्यात्मिक व्यक्ति में जो ओज प्रगट होता है, वह ओज भी उस जगह तक नहीं पहुंचता। वह ओज भी बाहर-बाहर रह जाता है। वहां पहुंचते-पहुंचते ओज भी खो जाता है। क्योंकि ओज के लिए भी अंधकार का सहारा चाहिए। ओज के प्रगट होने के लिए अंधकार की पृष्ठभूमि चाहिए।
इसलिए महावीर कहते हैं, "साथ ही समस्त मल-कलंक से रहित होने से वहां ओज
भी नहीं है।"
अब यह बड़ी महत्वपूर्ण बात वे कह रहे हैं। अत्यंत असाधारण बात वे कह रहे हैं। वे यह कह रहे हैं, प्रकाश को देखने के लिए भी अंधेरे की पृष्ठभूमि चाहिए।
जब तुम दीया जलाते हो तो तुम्हें रोशनी दिखाई पड़ती है। तुम सोचते हो रोशनी के कारण, तो गलती है तुम्हारा ख्याल। वह जो चारों तरफ अंधेरा घिरा है, उसकी दीवाल के कारण। थोड़ा सोचो कि दुनिया से अंधेरा मिट जाए, फिर तुम्हें रोशनी दिखाई पड़ेगी? फिर कैसे दिखाई पड़ेगी? फिर नहीं दिखाई पड़ेगी। अभी मैं बोलता हूं, तुम्हें सुनाई पड़ता है क्योंकि बोलने के आसपास शून्य भी छाया हुआ है। अगर शून्य मिट जाए तो बोलना संभव न रहे। अगर बोलना मिट जाए तो शून्य का अनुभव होना मुश्किल हो जाए। शोरगुल के कारण ही शांति का अनुभव होता है, ख्याल रखना। अगर बिल्कुल सन्नाटा हो, कोई आवाज न होती हो तो शांति का पता ही न चलेगा।
पता चलने के लिए विपरीत चाहिए, द्वंद्व चाहिए।
महावीर कहते हैं, वह इतना आत्यंतिक एक है, वहां कोई दो नहीं बचते; कि वहां ओज तक का पता नहीं चलता। वहां इतनी रोशनी है कि रोशनी का पता नहीं चलता। अंधेरा है ही नहीं। वहां इतनी शुद्धता है कि शुद्धता का भी पता नहीं चलता। क्योंकि शुद्धता का पता होने के लिए कुछ अशुद्धि, कुछ मल-कलंक शेष रह जाना चाहिए।
तुमने कभी ख्याल किया? जब स्वास्थ्य परिपूर्ण होता है तो बिल्कुल पता नहीं चलता। थोड़ी बीमारी रहे तो ही पता चलता है। पैर में दर्द है तो शरीर का पता चलता है। सिर में दर्द है तो सिर का पता चलता है। जिस आदमी ने सिर का दर्द नहीं जाना उसे सिर का पता ही नहीं चलता। शरीर में कोई पीड़ा हो तो पता चलता है। बच्चों को शरीर का पता नहीं चलता, सिर्फ बूढ़ों को पता चलता है। जिस दिन शरीर का पता चलने लगे, समझना बुढ़ापा करीब आ रहा है। शरीर के पता चलने का अर्थ है कि कुछ जराजीर्ण होने लगा।
हमारे पास एक बड़ा बहुमूल्य शब्द है--वेदना। वेदना शब्द के दो अर्थ हैं। एक तो अर्थ है--ज्ञान। वेद भी उसी से बना--विद से। वेदना का अर्थ है, ज्ञान। और दूसरा अर्थ है, दुख। बड़ी अजीब-सी बात है। इस एक शब्द के दो अर्थः ज्ञान और दुख। मगर बड़ी सार्थक बात है। दुख का ही पता चलता है। दुख का ही ज्ञान होता है। आनंद का तो पता ही नहीं चल सकता। आनंद तो लापता है। जब आनंद घटता है तो उसके विपरीत तो कुछ भी नहीं बचता इसलिए पता कैसे चलेगा? महावीर कहते हैं, वहां तो रोशनी भी नहीं रह जाती। या इतनी रोशनी हो जाती है, रोशनी ही रोशनी हो जाती है, कि उसे किन शब्दों में कहें? इसलिए महावीर ने सच्चिदानंद शब्द का भी प्रयोग नहीं किया। उपनिषद कहते हैंः सच्चिदानंद। महावीर उसका भी प्रयोग नहीं करते। वे कहते हैं, असत रहा नहीं तो सत किसको कहें? अचित रहा नहीं तो चित किसको कहें? दुख रहा नहीं तो आनंद किसको कहें?
इसलिए महावीर ने और एक छलांग ली--सच्चिदानंद के पार। कुछ है नहीं कहने
को वहां, लेकिन चल सकते हो, पहुंच सकते हो।

इस अज्ञात पर जाने की जिनमें हिम्मत है... यह अज्ञात है। इसे अगर तुमने कहा कि पहले सिद्ध हो जाए तो हम चलेंगे जरूर, लेकिन सिद्ध तो हो जाए! तो तुम कभी जा ही न सकोगे क्योंकि यह कुछ बात सिद्ध होनेवाली नहीं है। तुम जाओगे तो सिद्ध होगी। तुम्हारे अनुभव से सिद्ध होगी।
तो महावीर कहते हैं, ज्ञान की घटना ही... । और उस ज्ञान की घटना की तरफ जाना हो तो त्रिगुप्ति--मन, वचन, काया--तीनों के व्यापार में जागरण को सम्हालना।
ज्ञान की अंतिम आत्यंतिक दशा का नाम मोक्ष। जिसको हिंदू ब्रह्म कहते हैं, उसको महावीर मोक्ष कहते हैं। और निश्चित महावीर का शब्द ज्यादा महत्वपूर्ण है। क्योंकि ब्रह्म से ऐसा लगता है, कहीं कोई बाहर। ईश्वर से ऐसा लगता है, कहीं कोई बाहर। मोक्ष से तो सिर्फ इतना ही पता चलता है कि हम सारे बंधन से मुक्त। हमारा होना सीमा के पार, मर्यादा के पार। सारी जंजीरें छूट गईं, कारागृह गिर गया और हम मुक्त गगन में उड़ चले। उस अनंत में खो चले, विसर्जित हो चले।
अनंत-अनंत जन्मों की अज्ञानपूर्ण चेष्टा भी वहां नहीं ले जा सकती, और ज्ञानपूर्ण एक श्वास वहां ले जा सकती है। इसलिए असली सवाल जागने का, जाग्रत होने का है।
महावीर की सारी चिंतना को एक शब्द में निचोड़कर रखा जा सकता है--उनके सारे विज्ञान को--और वह शब्द है, जागरूकता, अवेयरनेस, अप्रमत्त हो जाना। यह बड़ा अनूठा धर्म है। यह सीधा विज्ञान का धर्म है। इसमें मंदिर की जरूरत नहीं, मूर्ति की जरूरत नहीं, पूजा-अर्चना की जरूरत नहीं, क्रिया- कांड की जरूरत नहीं, पंडित-पुरोहित की जरूरत नहीं, यज्ञ-हवन की जरूरत नहीं। इसमें कोई साधन-सामग्री की जरूरत नहीं। कुछ भी जरूरत नहीं। इसमें तुम काफी हो। बस तुम ही प्रयोगशाल हो।
तुम्हारे भीतर सब मौजूद है। वह भी मौजूद है जिसको जगाना है। बस, थोड़ा अपने को हिलाना-डुलाना है। अभी तुम गांठ-लगे रूमाल हो, बस जरा गांठ को खोल लेनी है। जो तुम्हें होना है वह तुम हो; थोड़ी-सी बाधाएं हैं, उनको गिरा देना है।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग दो
तीसवां प्रवचन

एक दीप से कोटि दीप हों

पहला प्रश्नः जिन-धारा अनेकांत-भाव और स्यातवाद से भरी है; फिर भी प्रेम शून्य क्यों हो गई? कृपा करके समझाएं।

प्रेमशून्य होना ही थी; होना अनिवार्य था। हो गई, ऐसा नहीं। कोई भी जीवन-व्यवस्था परिपूर्ण नहीं है। प्रत्येक जीवन- व्यवस्था का कुछ लाभ है, कुछ हानि है।
जो लोग प्रेम को, प्रार्थना को, पूजा को आधार मानकर चलेंगे, खतरा है कि उनका प्रेम, उनकी पूजा, उनकी प्रार्थना उनके संसार को ही छिपाने का रास्ता बन जाए। प्रेम के पीछे राग के छिप जाने का डर है। प्रेम तो नाम ही रहे और भीतर राग खेल करने लगे। प्रेम तो नाम ही रहे, वीतरागता से बचने का उपाय हो जाए।
तो प्रेम के मार्ग का खतरा है; वैसे ही ध्यान के मार्ग का खतरा है। ध्यान के मार्ग का खतरा है कि राग को छुड़ाने में, मिटाने में प्रेम छूट जाए। राग को हटाने में प्रेम हट जाए।
मनुष्य बहुत चालबाज है। इसलिए तुम उसे जो भी दो, वह अपने ढंग से ढाल लेगा। अगर तुम ध्यान की बात कहो तो वह प्रेम को मार डालेगा। अगर तुम प्रेम की बात कहो, वह राग को बचा लेगा।
इसलिए प्रत्येक सदी में, प्रत्येक समय में, युग में जो उचित था, उस समय
के लिए जो उचित था; जिससे संतुलन निर्मित होता... जब महावीर जन्मे, तब प्रेम के नाम पर बहुत उपद्रव हो चुका था। परमात्मा के नाम पर बहुत तमाशा हो चुका था। मंदिर, पूजा, पंडित, यज्ञ-हवन, बहुत खेल हो गए थे। उन सबसे छुड़ा लेना आदमी को जरूरी था।
तो महावीर, आदमी बायें तरफ बहुत झुक गया था इसलिए दायें तरफ झुके। जो थोड़े-से लोग उनकी बात को समझ सके, वे संयम को, संतुलन को उपलब्ध हो गए। लेकिन फिर पीढ़ी दर पीढ़ी लोग समझ से तो नहीं मानते, परंपरा से मानते हैं। फिर लोग दायीं तरफ बहुत झुक गए। फिर वे इतनी दायीं तरफ झुक गए कि ध्यान के नाम पर, तप के नाम पर उन्होंने प्रेम की हत्या कर दी। जीवन को रसशून्य कर डाला।
तो फिर भक्ति का पुनराविर्भाव हुआ। वल्लभ, रामानुज, चैतन्य, निम्बार्क--एक अनूठा युग आया भक्ति का। फिर भक्ति का पुनरउदभव हुआ।
यह अति हो गई थी--ध्यान की, तप की, तपश्चर्या की। इससे आदमी सूख गया। फूल खिलने बंद हो गए। फिर प्रेम को जगाना पड़ा। तो कबीर, नानक, मीरा, दादू, रैदास--अदभुत भक्त पैदा हुए। इन्होंने फिर बायें तरफ मोड़ा।
जो थोड़े-से लोग समझे, जिन्होंने जागरूक रूप से इस बात को पहचाना वे संयम को उपलब्ध हो गए। उनके जीवन में प्रेम भी रहा, राग छूटा। प्रेम बचा, राग छूटा। प्रीति बची, प्रीति के थोथे बंधन छूटे। प्रीति संसार से मुक्त हुई और परमात्मा की तरफ बही, प्रार्थना बनी। लेकिन जो नहीं समझे, जिन्होंने फिर परंपरा को पकड़ा, उन्होंने फिर बात वहीं की वहीं पहुंचा दी। ऐसा सदा होता रहेगा। कोई मार्ग परिपूर्ण नहीं हो सकता। इसलिए कोई मार्ग शाश्वत नहीं हो सकता। बदलाहट करनी ही होगी। ऐसा ही समझो कि तुम मरघट किसी की अर्थी ले जाते हो तो कंधे बदल लेते हो। एक कंधा दुखने लगता है तो अर्थी दूसरे कंधे पर रख लेते हो। इसका कुछ यह मतलब नहीं है कि दूसरा कंधा कभी न दुखेगा। थोड़ी देर बाद दूसरा भी दुखेगा। फिर तुम पहले कंधे पर रख लोगे। इस कारण कि दूसरा भी दुखेगा, अगर न बदलो तो मुश्किल में पड़ जाओगे। अर्थी को मरघट तक ही न ले जा पाओगे। कंधे बदलने होते हैं। मनुष्य-जाति कंधे बदलती रहती है।
पूछा है, "जिन-धारा से प्रेम शून्य क्यों हो गया?"
जिन-धारा ध्यान की धारा है, तप की धारा है। प्रेम को साधना का अंग नहीं माना है महावीर ने, साधना की पूर्णाहुति माना है। जब कोई चलते-चलते मंजिल

पर पहुंचेगा तो प्रेम प्रगट होगा। मंजिल तक कौन पहुंचता है! जो पहुंचता है उसको प्रगट होता है। महावीर पहुंचे, प्रेम प्रगट हुआ। जैनी तो मंजिल तक पहुंचे नहीं। चले ही नहीं, पहुंचने की तो बात दूर। शास्त्र लिए बैठे हैं, थोथे सिद्धांत लिए बैठे हैं। तो प्रेम तो समाप्त हो ही जाएगा।
महावीर ने परमात्मा को जगह न दी क्योंकि परमात्मा के नाम से खूब हो चुका था उपद्रव। खूब धोखाधड़ी, खूब पाखंड। बड़ी सुविधा है परमात्मा के नाम से पाखंड चलाने की, क्योंकि परमात्मा बड़ी आड़ बन जाता है। फिर तुम कुछ भी करो, सब परमात्मा की लीला है। लूटो-खसोटो तो परमात्मा की लीला है। क्या करोगे तुम? परमात्मा करवा रहा है।
तो हर चीज के लिए परमात्मा आड़ बन जाता है। महावीर ने परमात्मा को हटा दिया बीच से। तो हानियां तो बंद हो गईं, लेकिन परमात्मा को हटाने से एक खतरा है। परमात्मा हटा तो आदमी अकेला रह जाता है। प्रेमपात्र ही हट जाता है तो प्रेम के उमगने की सुविधा नहीं रह जाती। बहुत कठिन है शून्य को प्रेम करना। कोई चाहिए, जिसे तुम प्रेम कर सको।
अकेले कमरे में तुम बैठे हो। मैं तुमसे कहता हूं, भर जाओ प्रेम से। तुम कहोगे किसके प्रति? मैं कहूंगा, तुम इसकी फिकर छोड़ो। भर जाओ बस प्रेम से। इस सूने कमरे को प्रेम से भर दो। तो भी तुम क्या करोगे? तुम ज्यादा से ज्यादा सोचोगे अपनी प्रेयसी की बात, अपने बेटे की, बेटी की, मित्र की, अपने प्रियतम की। उस सोच में, उस कल्पना में ही तुम प्रेम से भर पाओगे कमरे को। बिना कल्पना के प्रेम को जगाना बहुत थोड़े-से सिद्धपुरुषों की संभावना है। महावीर ने परमात्मा तो हटा दिया, खतरा हट गया। लेकिन खतरे के साथ-साथ लाभ भी हट गए। लाभ था कि परमात्मा के सहारे प्रेम विकसित होता है। वह हमारा परमप्रिय हो जाता है। वह हमारा प्यारा है। और अहंकार निर्मित नहीं होता।
इसलिए जैन मुनि से ज्यादा अहंकारी मुनि तुम कहीं भी न पाओगे। क्योंकि अहंकार को समर्पित करने की जगह न रही। कोई चरण न रहे, जहां जाकर अहंकार को रख दो। अपने से बड़ा कुछ भी न रहा। महावीर ने तो कहा था, तुम ही परमात्मा हो। इसलिए नहीं कहा था कि तुम्हारा अहंकार बच जाए, इसलिए कहा था ताकि तुम परमात्मा के नाम से जो जाल चल रहे हैं, उसमें कहीं उलझो न।
लेकिन परिणाम तो महावीर के हाथ में नहीं है। परमात्मा को छुड़ा दिया तुमसे; फिर तुम क्या करोगे परमात्मा के अभाव में, वह तो तुम्हारे हाथ में है। महावीर ने तो कह दी बात। कहते ही तीर निकल गया। अब उसको तरकस में वापस नहीं ले जाया जा सकता। जो कह दिया वह महावीर से छूट गया। अब तुम्हारे हाथ में है कि तुम उसमें से क्या अर्थ निकालोगे।
मैं रहीम खानखाना का जीवन पढ़ता था। अकबर के नौ रत्नों में एक थे। अकबर उनसे बड़ा खुश था और बहुत जमीन-जायदादें दीं। करोड़ों रुपया उन्हें भेंट किया। वह जैसा उनके पास पैसा आता था ऐसे ही वे लुटा भी देते थे। मरे तो भिखारी थे। करोड़ों रुपये आए-गए उनके हाथ में, लेकिन जो आया--बांटा। बांटने में कभी रुके नहीं। ऐसा बांटा कि शायद अकबर भी थोड़ा ईर्ष्यालु हो उठता था। कहते हैं गंग कवि ने एक दोहा कहा। वे इतने खुश हो गए रहीम, कि छत्तीस लाख रुपये एक-दो कड़ियों के लिए बोरों में बंधवाकर चुपचाप रातोंरात गंग कवि के घर भेज दिए, किसी को पता न चले। गंग बहुत हैरान हुआ तो गंग ने एक पद लिखा।
सीखे कहां नबाबज्यू ऐसी देनी देन
ज्यों-ज्यों कर ऊंचो करौ त्यों-त्यों नीचे नैन
यह देना कहां से सीखे? सीखे कहां नबाबज्यू? यह नबाबी कहां सीखी? यह सम्राट होना कहां सीखा?
सीखे कहां नबाबज्यू ऐसी देनी देन
देनेवाले बहुत देखे, लेकिन रात चोरी से अंधेरे में... । अंधेरे में तो लोग चुराने आते हैं, देने कोई आता है? किसी को पता न चले--ऐसी देनी देन। ज्यों-ज्यों कर ऊंचो करौ त्यों-त्यों नीचे नैन

देनेवाला तो अकड़कर खड़ा हो जाता है। सारे संसार को दिखलाना चाहता है।
और तुम, जैसे-जैसे तुम्हारा हाथ ऊंचा होता जाता है, देने की क्षमता बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे आंख नीची होती जाती है।
रहीम ने इसके उत्तर में एक दोहा लिखाः
देनहार कोऊ और है भेजत सो दिन-रैन
लोग भरम हम पे करें याते नीचे नैन
देनेवाला कोई और है, जो दिन-रात भेज रहा है और लोग शक हम पर करते हैं; इसलिए आंखें नीची हैं। इसलिए देने में संकोच है। क्योंकि लोग सोचेंगे, हमने दिया।
यह परमात्मा की धारणा का लाभ हैः
देनहार कोऊ और है भेजत सो दिन-रैन
परमात्मा की धारणा का यह लाभ है कि तुम अपने को किसी के चरणों में पूरा रख सकते हो। सब तरह से रख सकते हो।
देनहार कोई और है भेजत सो दिन-रैन
कोई भेजे चला जा रहा है। हमारा किया कुछ भी नहीं है। कोई कर रहा है।
लोग भरम हम पे करें याते नीचे नैन
इसलिए आंखें संकोच से नीची कर लेते हैं कि लोग बड़ी गलत बात सोच रहे हैं कि हम दे रहे हैं। देनेवाला कोई और है।
तो अहंकार को खड़े होने की जगह नहीं रह जाती। परमात्मा की धारणा का लाभ
है कि अहंकार न बचे।
अगर कोई ठीक से उपयोग करे तो सभी धारणाएं लाभपूर्ण हैं। और अगर कोई ठीक से उपयोग न करे तो सभी धारणाएं खतरनाक हैं। सत्यों से फांसी लग सकती है। सत्य तुम्हारे प्राण को संकट में डाल सकते हैं। सत्य जहर हो सकता है। सब पीनेवाले पर निर्भर है। समझदार तो ऐसे भी हुए हैं कि जहर को भी औषधि बनाकर पी गए। और नासमझ ऐसे हुए हैं कि अमृत को भी जहर बना लिया, विषाक्त हुए और मर गए।
महावीर ने परमात्मा का तत्व हटाया, उसके साथ बड़े जंजाल थे, वे भी हट गए। पंडित हटा, पुरोहित हटा, पूजा-प्रार्थना हटी, धोखाधड़ी, बीच के दलाल हटे लेकिन अहंकार को रखने की जगह न रह गई। महावीर तो बड़े कुशल रहे होंगे, बिना परमात्मा के अहंकार को छोड़ दिया।
लेकिन जैनों से इतनी आशा नहीं की जा सकती। परमात्मा हट गया तो अकड़ आ गई। हम ही सब कुछ हैं। कोई ईश्वर नहीं, कहीं जाकर झुकना नहीं। तो तुम मुसलमान फकीर में जैसी विनम्रता देखोगे, सूफी फकीर में जैसी विनम्रता देखोगे, वैसी तुम जैन मुनि में नहीं देख सकते। भक्त में तुम जैसी विनम्रता देखोगे, वैसी तुम जैन मुनि में नहीं देख सकते। बड़ी अकड़ है।
जैन मुनि तो श्रावक को हाथ जोड़कर नमस्कार भी नहीं कर सकता। नमस्कार
ही भूल गया। अकड़ ऐसी हो गई कि नमन की कला ही जाती रही। त्याग-तपश्चर्या से अहंकार भरा; कटा नहीं। इसलिए मैं कहता हूंः अमृत को जहर बनाने की सुविधा है, जहर को अमृत बनाने की सुविधा है।
त्याग-तपश्चर्या से अहंकार कटना चाहिए।
लोग भरम हम पे करें याते नीचे नैन
त्यागी और तपस्वी को तो यह सोचना चाहिए कि किए हुए पापों का प्रक्षालन कर रहा हूं त्याग-तपश्चर्या करके। जो किए थे पाप, उन्हें काट रहा हूं। इसमें गौरव कहां? इसमें गरिमा क्या? पश्चात्ताप है। आंखें नीची होनी चाहिए। लेकिन त्यागी अकड़कर खड़ा हो जाता है। वह... जानते हो कितने उपवास किए? कितना धन छोड़ा? कितना बड़ा घर छोड़ा? कितना साम्राज्य छोड़ा? आंखें तो नहीं झुकतीं, आंखें अकड़कर खड़ी हो जाती हैं।
और फिर जैन तत्व में आदमी के ऊपर कोई भी नहीं है। इसलिए बड़ी अड़चन हो जाती है। कहां रखो इस बोझिल सिर को? यह पत्थर की तरह तुम्हारी आत्मा पर बैठ जाता है।
इसलिए जैन दृष्टि से धीरे-धीरे प्रेम तिरोहित हो गया। परमात्मा ही जब
न हुआ तो प्रेम रखो कहां? प्रेम करो किसको? भक्ति खो गई।

मगर यह होना ही था। इसमें किसी का दोष भी नहीं है। ये जीवन के सहज नियम हैं।
मैं तुमसे जो कह रहा रहूं, तुममें से जो समझ पाएंगे उनके ही काम का है। मैं तुमसे जो कह रहा हूं, कहते से ही मेरे हाथ के बाहर हो गया। फिर तुम क्या उसका अर्थ करोगे, तुम पर निर्भर है। फिर मेरी उस पर कोई मालकियत भी न रही। फिर मैं यह भी नहीं कह सकता कि तुमने मेरे सत्य को बिगाड़ा। क्योंकि कहा, कि मेरा सत्य कहां रहा? तुम्हारा हो गया। सुन लिया, तुम्हारे कान में पड़ गया, तुम्हारा हो गया, अब तुम जो चाहो, सो करो। जो अर्थ निकालना हो, निकालो। जैसा अर्थ, जिस दिशा में ले जाना हो, ले जाओ। तुम मालिक हो गए। तुम्हें दिया, तुमसे बोला कि मेरी मालकियत समाप्त हो गई। अब मैं तुम पर कोई मुकदमा नहीं चला सकता।
तुम सुनोगे तुम्हारे ही ढंग से। तुम उसका उपयोग भी करोगे तुम्हारे ही ढंग से। तुम उसमें से कुछ चुन लोगे, कुछ छोड़ दोगे।
मैंन सुना है, कुरान में एक वचन आता कि जो शराब पीएगा वह नर्क में सड़ेगा। एक मुसलमान शराब पीता था। उसके धर्मगुरु ने उससे कहा कि भाई, मैंने सुना है तुम कुरान भी पढ़ते हो। कभी-कभी तुम्हारे द्वार से निकलता हूं तो तुम्हारी आयतें सुनकर मैं भी मस्त हो जाता हूं। शराबी था, मस्ती से गाता होगा। लेकिन तुम कुरान में इतनी सी बात नहीं समझ पाए कि लिखा है कि जो शराब पीएगा वह नर्क में सड़ेगा?
उस मुसलमान ने कहा, समझता तो भला हूं, लेकिन एक-एक कदम चल रहा हूं। अभी आधे वाक्य तक पहुंचा हूं--"जो शराब पीएगा।" अभी यहीं तक पहुंचा हूं। अपनी- अपनी सीमा, सामर्थ्य! अभी आधे वाक्य पर नहीं पहुंचा हूं। धीरे-धीरे चल रहा हूं, कभी पहुंच जाऊंगा।
तुम अपने मतलब से चुन लोगे। तुम जो चुनना चाहते हो वही चुन लोगे।
मुल्ला नसरुद्दीन पर एक मुकदमा चला। गांव के एक नेताजी को किसी आदमी
ने उल्लू का पट्ठा कह दिया। अब ऐसे तो सभी नेता उल्लू के पट्ठे होते हैं।
नहीं तो नेता क्यों हों? आदमी अपने को तो सम्हाल ले! आदमी खुद तो चल ले! आदमी सारी दुनिया को बदलने चल पड़ता है। सारी दुनिया को ठीक करने चल पड़ता है।
पर नेता बहुत नाराज हुआ। उसने मानहानि का मुकदमा चला दिया। मजिस्ट्रेट ने पूछा मुल्ला को--मुल्ला गवाह था--कि जिस होटल में यह घटना घटी, वहां पचासों लोग आ-जा रहे थे। और जिस आदमी ने नेताजी को उल्लू का पट्ठा कहा, उसने नाम लेकर भी नहीं कहा; सिर्फ उल्लू का पट्ठा कहा। तो इसका क्या सबूत है कि उसने नेताजी को ही कहा, किसी और को नहीं कहा? अब मुल्ला नसरुद्दीन नेता के पक्ष में गवाही देने आया था। वह बोला, इसका बिल्कुल पक्का सबूत है। यद्यपि वहां सैकड़ों लोग आ-जा रहे थे, लेकिन इसने नेताजी को ही उल्लू का पट्ठा कहा।
मजिस्ट्रेट ने कहा, इसका प्रमाण क्या है?
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, क्योंकि वहां और दूसरा कोई उल्लू का पट्ठा मौजूद ही नहीं था।
अब करोगे क्या? पक्ष में गवाही देने आए हैं!
तुम्हारे मतलब तुम्हारे हैं। तुम पक्ष में खड़े होओ कि विपक्ष में; बहुत फर्क नहीं पड़ता। तुम गवाही कहां से दे रहे हो, बहुत फर्क नहीं पड़ता। तुम तो तुम ही हो। तुम्हारे पास आते-आते किरणें तक मैली हो जाती हैं। तुम्हारे हाथ आते-आते सोना भी कचरा हो जाता है। तुम्हारे पास पहुंचते- पहुंचते सभी सत्य असत्य हो जाते हैं।
इसलिए तो लाओत्सु कहता है, "सत्य को कहना ही मत; क्योंकि कहा कि असत्य हुआ।"
कहा कि असत्य हुआ। किसी ने सुना कि असत्य हुआ। क्योंकि सुननेवाले को शब्द पहुंचेगा। शब्द को अर्थ तो वही चढ़ाएगा। अर्थ की खोल तो वही पहनाएगा। मैं तो नग्न सत्य तुम्हें दे दूंगा। वस्त्र तो तुम पहनाओगे। वे वस्त्र तुम्हारे होंगे। जब सजा-संवारकर तुम सत्य को खड़ा करोगे तो वह बिल्कुल ही रूपांतरित हो जाएगा।

इसलिए दुनिया में प्रतियुग में दृष्टियों को बदलना पड़ता है। कभी ध्यान की धारा प्रवाहमान होती, कभी प्रीति की धारा प्रवाहमान होती।
दोनों की जरूरत है। वे दोनों आवश्यक हैं। जब एक अति पर चली जाती है तो दूसरी धारा उसे खींचकर फिर संतुलन पर लाती है। ऐसा नहीं है कि वह संतुलन सदा रहेगा, लेकिन संतुलन के थोड़े-से क्षणों में कुछ लोग मुक्त हो जाएंगे। फिर असंतुलन हो जाएगा, फिर कोई खींचकर संतुलन को पैदा करेगा।
भक्ति और ध्यान विरोधी नहीं हैं, परिपूरक हैं। जब एक अति हो जाती है
तो दूसरा उसे सुधार लेता है।
तुमने कभी रस्सी पर चलनेवाले बाजीगर को देखा? जब नट रस्सी पर चलता है
तो हाथ में एक डंडा रखता है। रस्सी पर चलना खतरनाक काम है--इतना ही खतरनाक जैसा जिंदगी है। शायद इतना खतरनाक नहीं भी है, जितनी जिंदगी है। क्योंकि रस्सी से गिरे तो हाथ-पैर टूटेंगे, जिंदगी से गिरे तो मौत निश्चित है। रस्सी पर चलनेवाला नट क्या करता? अगर वह देखता है कि बायें तरफ ज्यादा झुक गया है और खतरा गिरने का है, तो तत्क्षण अपने हाथ की लकड़ी को दायें तरफ झुका लेता है। वजन दायें तरफ डाल देता है। लेकिन यह ज्यादा देर नहीं चल सकता। क्योंकि थोड़ी देर में ही पाता है कि अब दायें तरफ गिरने का खतरा है, तो फिर वजन बायें तरफ डाल देता है। ऐसा बायें-दायें वजन को डालता हुआ रस्सी पर अपने को सम्हालता है।
भक्ति और ज्ञान बायें और दायें हैं। और इन दोनों के बीच में मार्ग है अगर तुम मुझसे पूछो। न तो भक्ति मार्ग है, न ज्ञान मार्ग है। इनके ठीक मध्य में, जहां संतुलन है वहां मार्ग है। लेकिन अगर तुम भक्ति की तरफ ज्यादा झुक गए हो तो महावीर ज्ञान की तरफ खींचते हैं, ध्यान की तरफ खींचते हैं। तुम्हें लगता है ध्यान की तरफ खींच रहे हैं; उनका प्रयोजन केवल तुम्हें बीच में ले आना है, मध्य में ले आना है। क्योंकि मध्य में मुक्ति है।
जब महावीर जा चुके होते हैं और तुम उनकी सुन-सुनकर धीरे-धीरे ज्यादा ध्यान की तरफ झुक जाते हो--ऐसे, कि अब गिरे और खोपड़ी तोड़ लोगे, तो कोई रामानुज, कोई वल्लभ, तुम्हें भक्ति की तरफ खींचने लगता है। तुम्हें लगता है कि ये लोग दुश्मन हैं। क्योंकि एक कहता था दायें, एक कहता है बायें। एक उधर खींच गया, दूसरा इधर खींचने लगा। तुम बड़ा विरोध करते हो। जैन को भक्ति की तरफ खींचो, तो एकदम लड़ने को खड़ा हो जाएगा। किसी भक्त को ध्यान की तरफ खींचो, तप की तरफ खींचो, एकदम झगड़ने को खड़ा हो जाएगा। तुम्हें लगता है ये दुश्मन हैं।
नानक एक तरफ खींच रहे, महावीर एक तरफ खींच रहे, मीरा एक तरफ खींच रही, मोहम्मद एक तरफ खींच रहे, यह मामला क्या है? तुम तो कहते हो किसी एक से ही तय हो जाना ठीक है। ऐसे तो खिंचा-खिंचव्वल में खराबी हो जाएगी। लेकिन ये दोनों ही तुम्हें सत्य की तरफ खींच रहे हैं। सत्य संतुलन है। ठीक मध्य में, जहां न बायां रह जाता न दायां; जहां कोई अति नहीं रह जाती--निरति; वहीं समाधि है, वहीं सम्यकत्व है, वहीं समत्व है, वहीं समता का जन्म है।
सम दो अतियों के मध्य में होता है; न इधर, न उधर। लेकिन तुम बार-बार अतियों में चले जाओगे यह सुनिश्चित है। तुम एक अति से बचोगे तो दूसरी अति में चले जाओगे क्योंकि अति में जाना मन की आदत है। इसलिए फिर-फिर तुम्हें खींच लेना होगा। यह जारी रहेगा। जब तक मनुष्य है इस पृथ्वी पर, यह जारी रहेगा। ध्यान और भक्ति के बीच खींचतान जारी रहेगी। महावीर और मीरा को आते रहना पड़ेगा नए-नए रूपों में।
और अगर तुममें थोड़ी समझ हो, तुममें अगर थोड़ी भी आंख हो तुम्हारे पास
तो तुम देख पाओगे, वे तुम्हें अलग-अलग नहीं खींच रहे, दोनों बीच के लिए खींच रहे हैं।
ध्यानी की अलग भाषा है। उसका अलग शास्त्र है, अलग शब्दावलि है। वह मोक्ष की बात करता है, मुक्ति की बात करता है। बंधन छोड़ने की बात करता है। प्रेमी कि बिल्कुल विपरीत भाषा है। वह प्रेम की, मिलन की, आत्यंतिक बंधन की बात करता है। वह कहता है, परमात्मा से कभी छूटना न हो।
काह करूं बैकुंठ लै कल्पवृक्ष की छांह
रहिमन दाख सुहावनो जो गल प्रीतम बांह

रहीम कहते हैं, क्या करूंगा लेकर कल्पवृक्ष की छांव को और बैकुंठ को।
दो कौड़ी हैं। प्यारे का हाथ मेरे गले में पड़ा हो तो बस, परमअवस्था हो गई।
तो पहुंच गए उस अंगूर के तले; स्वर्ग के तले।
काह करूं बैकुंठ लै कल्पवृक्ष की छांह
रहिमन दाख सुहावनो...
बैठे हैं अंगूर की छाया में।
जो गल प्रीतम बांह
अगर प्यारे का हाथ गले में है।
ज्ञानी कहेगा, प्यारे का हाथ गले में? बात क्या कर रहे हो? रहिमन दाख सुहावनो... अंगूर, शराब... क्या बातें कर रहे हो? ये तो सब बंधन की बातें हैं। ये भाषाएं अलग हैं। इनकी पद्धति अलग है।
अगर तुम बहुत ध्यान की तरफ चले गए हो तो किसी मीरा को खींच लेने का अवसर देना। अगर बहुत प्रेम की तरफ चले गए हो, और प्रेम कीचड़ बनने लगा हो और राग बनने लगा हो तो किसी महावीर को खींचने की सुविधा देना। दोनों का उपयोग कर लेना मध्य में आने को। जैसी जब जरूरत हो, वैसा उपयोग कर लेना।
असली बात न भूले कि सत्य को पाना है, कि जागना है, कि जो है, उसे जानना है।

दूसरा प्रश्नः जीसस अपने शिष्यों से कहते थे कि यदि मेरे साथ चलने में कोई तुम्हें रोके तो तुम उसे मार डालो और मेरे साथ चल पड़ो। प्रेम के पुजारी जीसस की ऐसी आज्ञा? आप तो हमें ऐसी आज्ञा नहीं देते। लेकिन यदि ऐसी समस्या हमारे सामने भी आए तो आप क्या आज्ञा देंगे--वही, जो जीसस ने दी?

मार डालो!
लेकिन तुम समझे नहीं जीसस का अर्थ, इसलिए अड़चन हो गई। बाहर थोड़े ही कोई तुम्हें रोक सकता है, रोकनेवाले भीतर हैं। पत्नी थोड़े ही तुम्हें रोक सकती है, अगर तुम जा रहे हो सत्य की तरफ। बेचारी पत्नी क्या रोकेगी! मरोगे तो कैसे रोकेगी? जब मरने में नहीं रोक सकती तो संन्यास में कैसे रोकेगी? जो होना है, अगर होना है तो पत्नी कैसे रोकेगी? अगर पत्नी भी रोक पाती है तो कहीं तुम्हारा ही भीतर डांवाडोल है। पत्नी का तुम बहाना लेते हो। जीसस कहते हैं कि उस डांवाडोलपन को मार डालो। कोई जीसस पत्नी को मार डालने को थोड़े ही कहेंगे। इतनी अकल, जितनी तुममें है, इतनी तो उनमें भी रही होगी। कम से कम इतना तो भरोसा करो कि इतनी अकल उनमें भी रही होगी।
भीतर हैं रोकनेवाली चीजें। राग है, मोह है, लोभ है, क्रोध है। शत्रु भीतर है, बाहर नहीं। बाहर तो सिर्फ प्रक्षेपण होता है।
जब तुम कहते हो, फलां आदमी मेरा शत्रु है, मेरे राह में, मार्ग में रोड़े डाल रहा है तो वह आदमी सिर्फ पर्दा है, शत्रुता तुम्हारे भीतर है, जो तुम उसके ऊपर आरोपित कर रहे हो। शत्रुता को मार डालो, फिर देखो कौन शत्रु! और मित्रता को मार डालो, फिर देखो कौन मित्र है! राग को मिटा दो फिर देखो, कौन अपना, कौन पराया! अहंकार को छोड़ दो, फिर देखो कौन रोकता है। कैसे रोक सकता है?
एक मित्र संन्यास लेने आए थे। वे कहते हैं, लेना तो है। जब यहां पूना में आता हूं तो एकदम पक्का भाव हो जाता है। लेकिन जैसे ही अपने गांव की याद आती है, फिर घबड़ा जाता हूं कि गेरुए वस्त्र, माला! गांव में लोग पागल समझेंगे। तो गांव के कारण नहीं ले पा रहा हूं।
तो मैंने उनसे कहा, गांव का इससे क्या लेना-देना? पागल न समझे जाओ, यह
है असली भय। गांव क्या करेगा? अगर पागल समझे जाने को राजी हो तो गांव क्या करेगा? अगर पागल हो ही जाओगे तो गांव क्या करेगा?
गांव क्या कर सकता है! लेकिन भीतर भाव है कि गांव में जो प्रतिष्ठा है,
वह न मिट जाए। तो प्रतिष्ठा रोक रही है, गांव तो नहीं रोक रहा। सीधी बातों को सीधा न करके हम उलझाते हैं। प्रतिष्ठा का मोह रोक रहा है। गांव तो नहीं रोक रहा। प्रतिष्ठा के मोह को मार डालो।

जीसस का मतलब इतना ही है। जीसस अपने शिष्यों से कहते थे कि यदि मेरे साथ चलने में कोई तुम्हें रोके तो उसे मार डालो और मेरे साथ चल पड़ो।
हजार बाधाएं आती हैं जीसस जैसे व्यक्ति के साथ चलने में। वे बाधाएं बाहर नहीं हैं, वे तुम्हारे भीतर हैं।
एक बहुत बड़ा धनपति, और बहुत प्रतिष्ठित विद्वान और जेरूसलम के विश्वविद्यालय का अध्यापक निकोदेमस जीसस को मिलना चाहता था। लेकिन दिन में मिलने जाने से डरता था--दिन में! क्योंकि लोगों को पता चल जाए तो वह प्रतिष्ठित आदमी था। पांच पंचों में एक था जेरूसलम के। लोग क्या कहेंगे? वह बड़ा पंडित था। उसके वचन शास्त्रों की तरह समझे जाते थे। लोग क्या कहेंगे कि तुम भी पूछने गए? तो तुम्हें भी पता नहीं है अभी?
उम्र भी उसकी ज्यादा थी। जीसस तो अभी जवान थे--कोई तीस साल की, इकतीस साल की उम्र थी।
वह उम्र में भी बड़ा था, प्रतिष्ठा में भी बड़ा था, धन में भी बड़ा था। नाम
भी उसका बड़ा था। सारा देश उसे जानता था। हजारों उसके शिष्य थे, विद्यार्थी थे। वह कैसे इस आवारा आदमी के पास चला जाए दिन में? और वहां भीड़ भी आवाराओं की लगी हुई थी। वे क्या कहेंगे? लोग हंसेंगे। गांवभर में भद्द हो जाएगी। प्रतिष्ठा टूट जाएगी।
तो एक दिन आधी रात अंधेरे में, जब सारे लोग जा चुके थे तब वह अंधेरे में सरकता चुपचाप जीसस के पास पहुंचा। हिलाया उनको, कहा कि सुनो। एक बात पूछनी है। तुम्हें मिल गया? जीसस ने कहा, दिन में क्यों न आए? निकोदेमस बोला, लोगों के कारण।
जीसस ने कहा, इतने लोग आते हैं, लोगों के कारण कोई रुकता नहीं। रुकने
का कारण कहीं भीतर होगा। निकोदेमस, किसे धोखा दे रहे हो? इतने बड़े पंडित और समझदार होकर इतनी-सी बात भी समझ में नहीं आ रही? रात में मिलने आए हो ताकि किसी को पता न चले? ताकि कल भरी दुपहरी में तुम कह सको कि यह जीसस आवारा है? जो जाते हैं इसके पास, नासमझ हैं, भूले-भटके हैं। यह दूसरों को भटका रहा है। ताकि तुम अपनी प्रतिष्ठा भी बचा लो निकोदेमस! और तुम्हारे पास कुछ है भी नहीं, इसलिए तुम पूछने को भी तरसते हो।
हां, मुझे मिला है लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, जब तक तुम मरो नहीं, तुम्हारा पुनर्जन्म न हो, तुम न पा सकोगे।
निकोदेमस भी प्रश्न पूछनेवाले की तरह गलत समझा। उसने कहा, मरो नहीं? क्या मतलब? और पुनर्जन्म से तुम क्या चाहते हो? क्या मैं फिर किसी स्त्री के गर्भ में प्रवेश करूं? यह तो असंभव है।
जीसस ने कहा, सीधी-सीधी बात है। असंभव मत बनाओ। न तो मैं यह कह रहा हूं
कि तुम मरो; और न मैं यह कह रहा हूं, किसी स्त्री के गर्भ में प्रवेश करो। मैं इतना ही कह रहा हूं कि तुम्हारा पुराना अहंकार गिरे। तुम नए हो जाओ। प्रतिष्ठा पाकर क्या मिला? देखो जीवन को सीधा-सीधा। प्रतिष्ठा है तुम्हारे पास, पद है तुम्हारे पास, तथाकथित ज्ञान का अंबार लगा है तुम्हारे पास; मिला क्या? छोड़ो उसे, जिससे नहीं मिला तो तुम उसे पाने के हकदार हो सकते हो, जिससे मिल सकता है। मैं देने को तैयार हूं। लेकिन पहले इस सबको मार आओ, मिटा आओ। पुराने को गिराओ ताकि नया निर्मित हो सके। ये घास-फूस उखाड़ो और फेंको ताकि फूलों के बीज बोए जा सकें। निकोदेमस ने कहा कि यह जरा कठिन है।
लेकिन अगर सत्य को पाना इतना भी मूल्यवान नहीं है कि तुम थोड़ी कठिनाई
से गुजर सको तो तुम सत्य पाने के हकदार भी नहीं।
सीधा-सा मतलब है। वही मैं भी तुमसे कहता हूं कि जो तुम्हारे मार्ग में आए, मार डालना। लेकिन मेरा अर्थ समझ लेना। किसी को मार मत डालना। कि पत्नी बीच में आए तो उठाकर एक टेंड़पा उसका सिर तोड़ दो।
भीतर तुम्हारे जो-जो बाधाएं हैं उन्हें गिरा दो। बाहर कभी कोई बाधा नहीं है--रही ही नहीं। बाहर तो हमारी तरकीबें हैं। जो हम भीतर से करने में डरते हैं, लेकिन इतनी भी हिम्मत नहीं है कि स्वीकार कर लें अपनी कमजोरी, उनके लिए हम बाहर कारण खोजते हैं। यह बाहर का सब तर्कजाल है।

तुम कहते हो पत्नी दुखी होगी, इसलिए संन्यास नहीं ले रहे हो। लेकिन और कितने काम तुमने किए, तब तुमने पत्नी के दुखी होने की कोई फिकर न की; संन्यास में ही फिकर कर रहे हो? पत्नी तुम्हारी सुखी रही है इसका अर्थ है पूरे जीवन? अभी तक मैंने सुखी पत्नी नहीं देखी, न सुखी पति देखा। सब रोते दिखाई पड़ते हैं। पति सोचता है, पत्नी दुख दे रही है। पत्नी सोचती है, पति दुख दे रहा है। और फिर भी तुम कहते हो, पत्नी दुखी होगी। इतने दुख दिए, यही एक दुख देने में डर रहे हो?
नहीं, कहीं कुछ और बात है। शराब पीते हो तब नहीं सोचते कि पत्नी दुखी होगी। जुआ खेलते हो तब नहीं सोचते कि पत्नी दुखी होगी। किसी और स्त्री के प्रेम में पड़ जाते हो तब नहीं सोचते कि पत्नी दुखी होगी। तब कहते हो क्या करें! मजबूरी है। हो गया, प्रेम हो गया; अब क्या करें?
ऐसा ही कह न सकोगे कि संन्यास हो गया, अब क्या करें? नहीं, पत्नी से किसको प्रयोजन है? और फिर दूसरे को दुख देना न देना तुम्हारे बस में है? सुख देना तुम्हारे हाथ में है?
जो तुम नहीं करना चाहते हो उसके लिए तुम बाहर कारण खोज लेते हो। जो तुम करना चाहते हो, उसके लिए भी कारण खोज लेते हो। करते तुम वही हो, जो तुम करना चाहते हो और सदा कारणों का सहारा ले लेते हो।
जब जीसस कहते हैं, मार डालो जो बाधा बने--उनका कुल प्रयोजन इतना है कि अपने भीतर से सारा जाल गिरा दो, फिर तुम्हें जो ठीक लगे, करो। तभी कोई जीसस के पीछे आ सकता है। तभी कोई मेरे साथ आ सकता है। कुछ चुकाना पड़ेगा मूल्य। सत्संग मुफ्त तो नहीं है। महंगे से महंगा सौदा है।
और संसार में सब चीजें छोटी-मोटी चीजें देने से मिल जाती हैं, यहां तो कोई अपने को पूरा दे सकेगा तो ही पा सकेगा।
कहते हो कि "प्रेम के पुजारी से ऐसी आज्ञा?"
यह प्रेम की ही आज्ञा है। यह आज्ञा बड़ी प्रेमपूर्ण है; नहीं तो दी न गई होती। जीसस तुम्हें प्रेम करते हैं इसलिए ऐसा कह सके। यह पुकार प्रेम की ही पुकार है। अन्यथा तुम्हें पीछे चलाने में कुछ जीसस को सुख मिलनेवाला नहीं है। न तुम्हें पीछे चलाते, न फांसी मिलती। तुम्हें पीछे चलाया, फांसी मिली।
अकेले बैठे रहते, कोई फांसी लगानेवाला न था। तुम्हें चलाया तो कंधे
पर अपनी सूली ढोनी पड़ी। अकेले बैठे रहते, तुम्हें पीछे न चलाते तो सूली ढोने की कोई नौबत न आती।
तुम्हें साथ चलाकर जीसस को क्या मिला? फांसी मिली, सूली मिली। कोई सिंहासन तो मिल न गया। लाभ जीसस को क्या हो गया? लेकिन प्रेम था। बिना चलाए न रह सके। जो मिला था, बिना बांटे न रह सके। जो पाया था, चाहा कि तुम्हारी झोली में भी भर दें। किसी गहन प्रेम से ही पुकारा था कि आओ मेरे पीछे। किसी बड़े खजाने की खबर उनको मिल गई थी। वह खजाना इतने पास है और तुम भिखमंगे हो। तो कहा था, चले आओ मेरे पीछे। जिनको भी जीसस का खजाना समझ में आ गया, वे चल पड़े।
जीसस सुबह निकलते हैं एक झील के पास से। दो मछुए मछलियां मार रहे हैं। उन्होंने जाल फेंका है, अभी सूरज ऊगा है और जीसस पीछे आकर खड़े हो गए। और उन्होंने एक मछुए के कंधे पर हाथ रखा और कहा कि देख, मेरी तरफ देख। कब तक मछलियां पकड़ता रहेगा? अरे आ! मैं तुझे कुछ बड़ी चीजें पकड़ने का राज बताता हूं। और फिर मैं सदा यहां न रहूंगा। मेरे जाने का वक्त जल्दी ही आ जाएगा। वह मछुआ तो चौंका होगा। यह कौन अजनबी आदमी? और कैसी अजीब-सी बातें कर रहा है! लेकिन उसने जीसस को देखा, वह सीधा भोला-भाला आदमी रहा होगा। वह कोई पंडित न था। उसे शास्त्रों का कुछ पता नहीं था। मछलियां मारने में ही जिंदगी बिताई थी। सीधा-सादा भोला-भाला आदमी था। तर्क, गणित, जाल कुछ भी न था।
उसने जीसस की आंखों में देखा--सीधे आदमी ही आंखों में आंखें डालकर देख सकते हैं--और उस के हाथ से जाल छूट गया। उसने अपने भाई को भी ललकारा, जो डोंगी में बैठकर जाल डाल रहा था कि तू भी आ। जिन आंखों की हम तलाश करते थे वे आ गईं। इस आदमी के पास कुछ है। हम इसके साथ चलेंगे। यह भी न पूछा तुम कौन

हो? पता-ठिकाना? तुम्हारा अधिकार क्या? तुम्हारी आप्तता क्या? किस अधिकार के बल से बोल रहे हो कि हमारे पीछे आओ, फेंको जाल?
वे पीछे हो लिए। वे गांव के बाहर निकलते थे कि एक आदमी भागा हुआ आया और उसने कहा कि तुम दोनों कहां जा रहे हो पागलो? तुम्हारा बाप, जो बीमार था, वह मर चुका।
उन दोनों ने जीसस से कहा, हमें तीन-चार दिन की मोहलत, सुविधा दे दें।
हम जाकर अपने पिता का अंतिम संस्कार कर आएं। तो जीसस ने कहा कि जो मुर्दे गांव में हैं, काफी हैं। वे मुर्दे का संस्कार कर लेंगे। तू फिकर न कर। तुम फिकर मत करो। तुम मेरे पीछे चल पड़े तो अब लौटकर मत देखो। मरे हुए बाप को दफनाने के लिए मरे हुए लोग काफी हैं गांव में; वे फिकर कर लेंगे। मुर्दे मुर्दे को दफना लेंगे। तुम मेरे पीछे आओ।
यह हमें लगेगा बड़ी कठोर बात है। और प्रेमी, प्रेम के संदेशवाहक जीसस
के मुंह से, कि दफना लेंगे मुर्दे मुर्दे को... । लेकिन मुर्दे को दफनाकर भी क्या होना है? जो जा ही चुका, जा ही चुका। अब तुम इस लाश को मिट्टी में गड़ा दो कि आग में जला दो कि पशु-पक्षियों के लिए छोड़ दो। क्या फर्क पड़ता है? कि तुम विधि-विधान पूरा करो कि मंत्र जाप करो; क्या फर्क पड़ता है? जो चुका, जा चुका। अब तो यह खोल पड़ी रह गई है। प्राण तो उड़ चुके। पिंजड़ा पड़ा रह गया है; पक्षी तो जा चुका। अब यहां कुछ भी नहीं है।
इसलिए जीसस कहते हैं, यह काम तो मुर्दे भी कर लेंगे। इसलिए तुम्हें जाने की कोई जरूरत नहीं है। पीछे लौट-लौटकर मत देखो, अन्यथा मेरे साथ न चल सकोगे।
जिन्हें जीसस के साथ चलना हो, उन्हें आगे देखना चाहिए। जो जा चुका, जा चुका। अतीत न हो चुका। जो ऊग रहा सूरज, उस तरफ ध्यान देना चाहिए क्योंकि वहां जीवन है। वहां जीवन की संभावना है। वहां जीवन की नियति है। वहां भाग्य का छिपा हुआ खजाना है।
हिम्मतवर लोग रहे होंगे। यह घड़ी ऐसी थी कि कहते कि यह भी क्या बात हुई! जिस पिता ने हमें जन्म दिया वह मर गया और तुम हमें रोकते हो? लेकिन बड़े सीधे-साफ लोग रहे होंगे। उनकी बात समझ में आ गई। उन्होंने कहा, यह बात तो ठीक ही है। दफनाकर भी क्या होगा? और इतने लोग तो गांव में हैं ही, वे दफना ही लेंगे।
वे नहीं गए वापस। वे जीसस के साथ ही चलते रहे।
यह आवाज प्रेम की ही आवाज थी। यह करुणा का ही संदेश था। क्योंकि जीसस
को पता है, एक बार व्यक्ति मुक्त हो जाए तो नाव ज्यादा देर इस किनारे पर नहीं टिकती। थोड़ी देर टिकती है। थोड़ी देर टिक जाए, यह भी चमत्कार है। थोड़ी देर भी चेष्टा से टिकती है। यह नाव जल्दी छूट जाएगी। अगर पीछे लौट-लौटकर देखते रहे, और व्यर्थ की बातों में उलझते रहे और व्यर्थ के बहाने खोजते रहे और कहा कि कल आएंगे, परसों आएंगे, तो तुम कभी न आ पाओगे।
इसलिए जीसस कहते हैं, जो मार्ग में आए, जो बाधा बने, उसे हटा दो, मिटा दो।
मैं भी तुमसे यही कहता हूं। जो व्यर्थ है उसके साथ संग मत जोड़ो। जो थोथा है उससे दोस्ती मत बनाओ। थोथे से दोस्ती तुम्हारे भीतर के थोथेपन का सबूत है।
ओछे को सत्संग रहिमन तजौ अंगार ज्यूं
तातै जारे अंग सीरो पै कारो लगे
रहीम कहते हैंः
ओछे को सत्संग रहिमन तजौ अंगार ज्यूं
ओछे से दोस्ती मत बांधो। व्यर्थ से दोस्ती मत बांधो। असार से दोस्ती
मत बांधो। अंगार समझो ओछे को।
तातै जारे अंग
जब गरम होता, जलता होता तो शरीर को जलाता है।
सीरो पै कारो लगे

और जब ठंडा हो जाता है तो शरीर में कालिख लगाता है। ऐसा अंगार समझो ओछेपन को। जलाएगा या तो, अगर जीवित रहा, गरम रहा। अगर मरा, मुर्दा हुआ तो कोयला हो जाएगा, तो फिर शरीर को काला करेगा। मगर हर हालत में सताएगा।
पर ध्यान रखना, जीवन के सारे सूत्र आत्यंतिक अर्थों में अंतस के संबंध में हैं। तुम किसी ओछे आदमी से दोस्ती क्यों करते हो? दोस्ती अकारण तो नहीं होती। तुम्हारे भीतर कुछ ओछापन होता है जो उसके साथ तालमेल खाता है। तुम बुरे आदमी की दोस्ती कैसे कर लेते हो? कोई आसमान से दोस्ती थोड़े ही टपकती है!
एक अजनबी आदमी गांव में आए, जल्दी ही तुम पाओगे, दो-चार दिन के भीतर उसने अपने जैसे लोग खोज लिए। अगर वह भक्त था तो भक्तों के सत्संग में पहुंच जाएगा। गीत गुनगाएगा, नाचेगा, प्रभु का स्मरण करेगा। शराबी था तो शराबखाने पहुंच जाएगा। शराबियों के गले में हाथ पड़ जाएंगे। जुआरी था, जुआघर खोज लेगा।
भक्त वर्षों रह जाए इस गांव में, और उसे पता न चलेगा कि जुआघर कहां है।
और जुआरी वर्षों रह जाए, उसे पता न चलेगा कि कहीं भजन भी हो रहा है। उसी रास्ते से गुजर जाएगा। लेकिन भजन आंख में दिखाई न पड़ेगा, कान में सुनाई न पड़ेगा। शोरगुल मालूम होगा। उससे कोई संबंध न जुड़ेगा। लेकिन कहीं पासों की खनकार सुनाई पड़ जाए तो वह सजग हो जाएगा। उसकी दुनिया आ गयी। उसके भीतर कोई चीज तालमेल खा गई।
तुम बाहर उन्हीं से दोस्ती बना लेते हो, जैसे तुम हो। इसलिए बाहर को दोष मत देना। भीतर अपने खोजना।
ओछे को सत्संग रहिमन तजौ अंगार ज्यूं
तातै जारे अंग सीरो पै कारो लगे।

तीसरा प्रश्नः आपने कहा है कि एक-दूसरे से विपरीत अनेक मार्ग हैं, जो
एक परमात्मा पर ले जाते हैं। अतीत में ऐसा रहा है कि एक ही मार्ग के साधक एक गुरु के पास इकट्ठे होते थे। जैसे योगी अलग, भक्त अलग, तांत्रिक अलग, ध्यानी अलग। इससे सभी को अपने मार्ग पर चलने में सुविधा थी। परंतु आपके पास, आपके आश्रम में तो सब विपरीत मार्गों का मेला लगा हुआ है--योगी और भक्त, तांत्रिक और सूफी, कर्मयोगी और ध्यानी, सब एक साथ। ऐसा कैसे? इससे बाधाएं भी बनती हैं। इस संबंध में कुछ कहने की कृपा करें।

यह सच है। अतीत में ऐसा ही था। एक गुरु एक संकीर्ण मार्ग का उपदेष्टा होता था। उसके लाभ भी थे, हानियां भी थीं।
लाभ तो यह था कि तुम्हारे मन में कभी दुविधा पैदा न होती थी। एक ही बात... एक ही बात... एक ही बात सुनते थे। एक ही बात... एक ही बात... एक ही बात करते थे। संदेह पैदा न होता था। चुपचाप अपने मार्ग को पकड़कर चलते थे। लेकिन खतरा था। संकीर्णता पैदा होती थी। सांप्रदायिकता पैदा होती थी, कि मैं ही ठीक हूं, और सब गलत हैं। यही मार्ग ठीक है, और सब मार्ग गलत हैं।
तो लाभ था, हानि थी। और लाभ से हानि ज्यादा बड़ी सिद्ध हुई। लाभ तो बहुत थोड़े लोगों को हुआ, हानि करोड़ों को हुई। सारी दुनिया सांप्रदायिक हो गई। सारी दुनिया में यह मतांधता फैल गई कि हम ठीक और बाकी सब गलत।
जैन से पूछो, वह कहता है हमारा गुरु गुरु, बाकी सब कुगुरु। हमारा शास्त्र शास्त्र, बाकी सब कुशास्त्र। मुसलमान से पूछो, हिंदू से पूछो, ईसाई से पूछो। सब संकीर्ण हो गए, सांप्रदायिक हो गए। धर्म की तो हत्या हो गई। सुविधा तो मिली होगी थोड़े-से लोगों को, सरल-चित्त लोगों को--जिन्होंने इतना ही जाना कि हमारे लिए क्या ठीक है, हमें मिल गया और चुपचाप उस पर चल पड़े। सौ में से एक को तो सुविधा मिली होगी, निन्यानबे तो सिर्फ संकीर्ण हो गए।
मैं ठीक उल्टा प्रयोग कर रहा हूं, जैसा कभी नहीं हुआ है। मैं यह फिकर
कर रहा हूं कि चाहे सुविधा थोड़ी कम हो, संकीर्णता न हो। मानना मेरा ऐसा है कि जो एक सरल आदमी पुरानी संकीर्ण सीमाओं से जा सका, वह सरल आदमी मेरे पास भी जा सकेगा। उसे दुविधा पैदा नहीं होगी यहां भी। क्योंकि सरल आदमी मुझे

देखेगा। मैं क्या कहता हूं इसकी बहुत फिकर ही नहीं करता। सरल आदमी तो मुझ पर भरोसा करता है। वह कहता है वे जो कहते होंगे, ठीक कहते होंगे। उसे कोई दुविधा पैदा नहीं होती। वह मेरे विरोधाभास में भी मुझे ही देखता है। दोनों में मुझे ही देखता है। और सरल आदमी तो अपने काम की बात चुन लेता है और चल पड़ता है।
जटिल आदमियों के साथ झंझट है। लोभियों के साथ झंझट है। उन लोभियों को दुविधा पैदा होगी क्योंकि वे चाहते हैं, ध्यान भी झपट लें, प्रेम भी झपट लें। भक्ति पर भी कब्जा कर लें, ध्यान पर भी कब्जा कर लें। तपस्वी भी हो जाएं, जीवन का रस भी न खोए। त्याग का भी मजा ले लें, अहंकार का भी मजा ले लें और परमात्मा की पूजा का भी रस आ जाए।
लोभी! उसको तकलीफ होगी। सरल-चित को तो मेरे पास कोई तकलीफ नहीं है। उसको कभी कोई तकलीफ नहीं है, किसी के पास कोई तकलीफ नहीं है। सरल-चित्त आदमी तो अपने मतलब की बात खोज लेता, चल पड़ता।
तुम जाते हो नदी के किनारे। प्यासा आदमी तो अपने चुल्लू में पानी भर लेता है। पूरे नदी की थोड़े ही फिक्र करता है कि अब इसको घर ले जाएं, बांधकर रखें, क्या करें, क्या न करें। वह धन्यवाद देता है नदी को कि ठीक। अपनी चुल्लू भर ली, अपनी प्यास बुझा ली, बात खतम हो गई।
हां, अगर तुम लोभी हो तो तुम प्यास तो भूल ही जाओगे, तुम सोचोगे इस नदी
पर कब्जा कैसे किया जाए। यह पूरी नदी मेरे तिजोड़ी में कैसे बंद हो जाए। इस पूरी नदी का मैं मालिक कैसे हो जाऊं। तो तुम अड़चन में पड़ोगे।
सरल तो पहले भी अड़चन में नहीं पड़ा, अब भी नहीं पड़ेगा।
मैं जो प्रयोग कर रहा हूं वह नया है। मैं चाहता हूं कि संसार में अब संकीर्णता न रहे, सांप्रदायिकता न रहे। संप्रदाय के नाम पर बहुत हानि हो चुकी। आदमी लड़े और कटे और मरे। आदमी निर्मित नहीं हुआ, विनष्ट हुआ। अब संप्रदाय नहीं चाहिए। अब तो दुनिया में धर्म नहीं चाहिए, धार्मिकता चाहिए। मंदिर-मस्जिद नहीं चाहिए, धर्म-भावना चाहिए। कुरान-गीता छूटें, छूटें; सदभाव न छूटे। जैन, हिंदू, मुसलमान नहीं चाहिए। अब तो भले, सीधे, सरल-चित्त लोग चाहिए। क्योंकि जैन, हिंदू, मुसलमान तो हजारों वर्षों से जमीन पर हैं। और जमीन रोज नर्क होती चली गई। इनके होने से कुछ लाभ नहीं हुआ। ये तो अब विदा लें। इनको तो हम अलविदा कहें। अब तो खाली आदमी, सूना आदमी, स्वस्थ-सरल आदमी चाहिए।
इसलिए मैं सारे धर्मों की बात कर रहा हूं। इसमें जो सरल हैं उनको तो बड़ा लाभ होगा, जो जटिल हैं उनको बड़ी दुविधा होगी। लेकिन मेरे देखे, मेरे लेखे अगर सौ आदमी पुरानी दुनिया में चलते थे धर्म के मार्ग पर तो निन्यानबे संकीर्ण हो गए, एक सरल पहुंचा। मैं तुमसे कहता हूं, वह एक सरल तो मेरे पास भी पहुंच जाएगा और निन्यानबे संकीर्ण न हो पाएंगे। और अगर निन्यानबे संकीर्ण न हों तो उनके पहुंचने की संभावना भी बढ़ गई। मैं तुम्हें विराट करना चाहता हूं। तुम्हें पूरी दृष्टि देना चाहता हूं। तुम सब देख लो। फिर तुम्हें जो रुचिकर लगे उस पर चल पड़ो। कठिनाई तो तब होगी जब तुम सभी रास्तों पर चलने की कोशिश करने लगोगे। तब अड़चन होगी।
लेकिन यह तो पागलपन है। तुम केमिस्ट की दुकान पर जाते हो, अपना प्रिस्क्रिप्शन दिखाते हो, दवा ली, चल पड़े। तुम यह नहीं कहते कि यहां लाखों दवाएं रखी हैं। तुम यह नहीं कहते कि एक ही दवा से क्या होगा? सब दवाएं दे दो। तुम अपना रोग देख लेते हो, अपनी औषधि लेकर अपने घर चले आते हो। तुम चिंता में नहीं पड़ते कि केमिस्ट की दुकान पर लाखों दवाएं रखी हैं और हम एक ही लिए जा रहे हैं? तुम लोभ में नहीं पड़ते।
मैं तुम्हारे सामने सब द्वार खोल रहा हूं। तुम्हें जो द्वार रुच जाए, तुम उससे प्रवेश कर जाना। अब तुम यह कोशिश मत करना कि सभी द्वारों से तुम प्रवेश करो; अन्यथा तुम पगला जाओगे। संकीर्ण तुम मेरे पास न हो सकोगे, लेकिन अगर लोभी हुए तो पागल हो जाओगे। लेकिन वह भी मेरे कारण नहीं, अपने लोभ के कारण।
मैं तो तुम्हें सारा दृश्य दे रहा हूं, पूरा नक्शा दे रहा हूं दुनिया का। फिर तुम्हें जो तुम्हारे भीतर धुन बजा देता हो, उसे पकड़ लो। मेरे लिए

रास्ते मूल्यवान नहीं हैं, तुम मूल्यवान हो। विधियों का कोई मूल्य नहीं है, व्यक्तियों का मूल्य है। तुम्हें जो विधि रुच जाए, जिस विधि से तुम्हारे भीतर कमल खिलने लगे, वही तुम्हारा मार्ग हो गया।
लेकिन मेरे पास एक बात तुम्हें जरूर समझ में आ जाएगीः कि जो तुम्हारे लिए मार्ग है, जरूरी नहीं है सबके लिए हो। जो तुम्हारे लिए मार्ग नहीं है, हो सकता है दूसरे के लिए हो। क्योंकि तुम यहां मेरे पास देखोगे भक्ति से खिलते हुए लोगों को। तुम यहां देखोगे ध्यान से खिलते हुए लोगों को। तुम यहां मुसलमानों को प्रभु की तरफ बढ़ते देखोगे, जैनों को, हिंदुओं को, ईसाइयों को, यहूदियों को।
तो एक बात तो यहां तुम्हें सीख ही लेनी पड़ेगी कि सब पहुंच जाते हैं। पहुंचने की गहरी आकांक्षा हो, अभीप्सा हो। सब पहुंच जाते हैं। सब मार्गों से पहुंच जाते हैं। सभी मार्ग उस की तरफ ले जाते हैं। उस एक ही यात्रा चल रही है। वह एक ही तीर्थ है। सभी यात्राएं वहीं पहुंच जाती हैं।
लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि तुम सभी मार्गों पर दौड़ने लगो। तब तुम पगला जाओगे। तब तुम कहीं न पहुंचोगे। चलना तो एक ही मार्ग पर होगा।
देखा? गंगा बहती है पूरब की तरफ, नर्मदा बहती पश्चिम की तरफ; दोनों सागर पहुंच जाती हैं।
यह तो अच्छा हुआ कि दोनों का कहीं मिलना नहीं होता बीच में। नहीं तो गंगा कहेगी, पागल हुई? पश्चिम में कहीं सागर है? सदा से पूरब में रहा। हम सदा पूरब में मिलते रहे सागर से। तेरा दिमाग फिर गया नर्मदा? लौट आ। मेरे साथ हो ले। हमारे संप्रदाय में सम्मिलित हो जा।
और नर्मदा कहेगी, तू पागल हो गई? हम सदा से गिरते रहे सागर में। यही हमारा ढंग रहा। तुझे कुछ भ्रांति है। पूरब में कहीं सागर है? पूरब से तो हम आते हैं, पश्चिम को हम जाते हैं। पूरब में सागर होता तो हम आते ही क्यों पूरब से? पूरब में कुछ भी नहीं है। भटक जाओगी।
नदियां आपस में बात नहीं करतीं, अच्छा है। दोनों सागर पहुंच जाती हैं। सभी नदियां अंततः सागर पहुंच जाती हैं।
ऐसा ही सभी चेतनाएं अंततः परमात्मा में पहुंच जाती हैं। तुम अपना मार्ग पकड़ लो और ध्यानपूर्वक, स्मरणपूर्वक, उस पर चलो। दूसरों को उनके मार्ग पर चलने दो। आशीर्वाद दो उन्हें कि वे भी पहुंचें। प्रार्थना करो उनके लिए कि वे भी पहुंचें। इससे क्या फर्क पड़ता है कैसे पहुंचते हैं, कौन-सा वाहन लेते हैं! पहुंचें। और उनसे आशीर्वाद मांगो अपने लिए कि हम भी पहुंच जाएं, जो हमने मार्ग चुना है उससे। तो दुनिया में एक सदभाव पैदा हो। हो चुका संप्रदाय बहुत, अब सदभाव चाहिए।

चौथा प्रश्नः त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बंधुश्च सखा त्वमेव
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देव देव
--सरोज के वंदन।

जो मैं अभी कह रहा था। कोई ध्यान से खिल जाता, कोई प्रेम से खिल जाता। सरोज का प्रश्न एक भक्त का प्रश्न है। भक्त के पास प्रश्न भी नहीं है, निवेदन है। शायद निवेदन कहना भी ठीक नहीं, अहोभाव की अभिव्यक्ति है।
पूछने को कुछ नहीं है, धन्यवाद देने को कुछ है।
ध्यान का मार्गी पूछता है, क्या करें। प्रेम का मार्गी धन्यवाद देता
है कि जो हुआ, वह बहुत है। और न हो तो चलेगा। जो हो ही गया है वह अपनी पात्रता से ज्यादा है। ऐसे ही पात्र के ऊपर से बहा जा रहा है; बाढ़ आ गई है। यहां तुम इन प्रश्नों में भी दखोगे। अलग-अलग लोग, अलग-अलग उनकी लहरें, अलग उनकी तरंगें।
अब सरोज पूछती है--प्रश्न है ही नहीं इसमें। वह कहती है तुम ही पिता, तुम ही माता, तुम ही बंधु, तुम ही सखा। तुम ही सब कुछ। तुम ही देवताओं के देवता।

भक्त के पास एक अहोभाव है। भक्त खोज नहीं रहा है, भक्त को मिल गया है।
भक्त कहता है जीवन बरस ही गया है। उत्सव चल ही रहा है। जो मिलना था वह मिल ही गया है। परमात्मा ने उसे दे ही दिया है।
ध्यानी तो खोज रहा है कि मिलेगा तब आनंदित होगा। भक्त आनंदित है।
ध्यानी खोजेगा तो आनंदित होगा, भक्त आनंदित है इसलिए खोज लेगा। ध्यानी का साधन पहले है, साध्य अंत में। भक्त का साध्य पहले है, साधना अंतिम।
इसलिए भक्त और ध्यानी की भाषा में बड़े जमीन-आसमान के अंतर हैं। वे एकदम उल्टी बातें बोलते हैं। इसलिए तो ज्ञानी कहते हैं कबीर को-- उलटबांसी। उल्टी बांसुरी बजा रहे हो। और कबीर भी कहते हैं, "एक अचंभा मैंने देखा नदिया लागी आग।" नदी में आग लगी देखी।
अब यह कोई सोच-विचारवाला आदमी कहेगा कि दिमाग खराब हो गया है। कबीर यही कह रहे हैं कि मैंने साध्य को पहले देखा, साधन को पीछे। मंजिल पहले पाई, मार्ग पीछे। मिलन परमात्मा से पहले हो गया तब बाद में समझ आयी कि कैसे मिलें। नदिया लागी आग, एक अचंभा मैंने देखा।
लेकिन गणित से, तर्क से, विचार से चलनेवाला आदमी कहेगा, यह तो उलटबांसी हो गई। यह तो उल्टी बात हो गई।
दोनों की भाषाएं निश्चित उल्टी हैं। लेकिन तुम ऐसा समझो कि कोई कहता
है मुर्गी से अंडा होता है, और कोई कहता है अंडे से मुर्गी होती है। क्या ये सच में उल्टी बातें हैं? ये दोनों ही सच हैं। लेकिन इतनी हिम्मत चाहिए समझने की कि दोनों एक साथ सच हैं। बड़ा कठिन मालूम होता है क्योंकि हम तो संकीर्णता से सोचते हैं। हम कहते हैं, मुर्गी पहले तो अंडा बाद में। अब कोई कहता है अंडा पहले, तो हमें झगड़ा खड़ा हो जाता है। हम कहते हैं, ये दोनों बातें तो एक साथ नहीं हो सकतीं। या तो मुर्गी पहले, या अंडा पहले। दो में से कुछ एक ही पहले हो सकता है। लेकिन तुमने कभी ख्याल किया? दोनों एक-दूसरे के पहले खड़े हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन दो स्त्रियों के प्रेम में था। अलग-अलग मिलता था तब
तो ठीक था। एक-दूसरे के सौंदर्य की बात करता, खूब चर्चा करता। दोनों स्त्रियों की भी आपस में धीरे-धीरे पहचान हो गई। उन्होंने कहा कि यह आदमी धोखा दे रहा है, इसको फांसना पड़ेगा।
एक दिन नौका-विहार के लिए दोनों ने इकट्ठा मुल्ला नसरुद्दीन को अपने साथ ले लिया। नदी पर बैठकर, पूर्णिमा की रात, बीच मझधार में मुल्ला से कहा कि नसरुद्दीन, अब कहो कौन सुंदर है? अब मुल्ला बहुत घबड़ाया। अकेले में एक स्त्री को कह दो कि तुम दुनिया की सबसे सुंदर स्त्री हो; कोई हर्जा नहीं। सभी कहते हैं। कहना ही पड़ता है। फिर इससे कुछ अड़चन नहीं आती। दूसरी स्त्री को फिर अकेले में कह दो। इससे कोई तार्किक झंझट नहीं आती। अलग-अलग समय में अलग-अलग स्थान में दोनों वक्तव्य ठीक मालूम होते हैं। लेकिन दो स्त्रियां... !
और मुल्ला थोड़ा घबड़ाया क्योंकि दोनों नाराज मालूम होती हैं। नदी का मामला! मझधार! धक्का दे दें!
तो उसने कहा, यह भी कोई बात है? अरे तुम एक-दूसरे से सुंदर हो। एक-दूसरे से ज्यादा सुंदर हो। एक-दूसरे से बढ़-चढ़कर सुंदर हो।
अब एक दूसरे से बढ़-चढ़कर सुंदर हो, इसका मतलब क्या होता है? लेकिन शायद यही ज्यादा सच है। यह वक्तव्य बेबूझ हो जाता है लेकिन ज्यादा सच है।
अंडा मुर्गी के पहले, मुर्गी अंडे के पहले। दोनों एक-दूसरे के पहले। दोनों असल में दो नहीं हैं। मुर्गी अंडे का ही एक रूप है। अंडा मुर्गी का ही एक रूप है। मुर्गी अंडे का ही एक ढंग है और अंडे पैदा करने का। अंडा मुर्गी का ही एक ढंग है और मुर्गी पैदा करने का। ये दोनों दो हैं ऐसा सोचने से गड़बड़ खड़ी हो जाती है। ये संयुक्त घटनाएं हैं।
इसे तुम ऐसा समझो कि एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। कौन आगे, कौन पीछे? युगपत हैं, साथ-साथ हैं। साधन और साध्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
भक्त को साध्य पहले मिलता है, फिर वह साधन खोजता है। वह परमात्मा को पहले खोज लेता है फिर उसका रास्ता खोजता है। तुम कहोगे यह बात अजीब है।
क्या करें?

एक अचंभा मैंने देखा, नदिया लागी आग! ऐसा होता भक्त को। पहले भगवान मिल जाता है, फिर वह उसी से पूछ लेता है अब रास्ता कहां है? अब तुम्हीं बता दो। जब मिल ही गए तो तुम्हारा पता-ठिकाना क्या?
ध्यानी पहले रास्ता खोजता है। ध्यानी ज्यादा तर्कयुक्त है, ज्यादा व्यवस्था से चलता है। उसके जीवन में एक शृंखला है। भक्त बड़ा बेबूझ है। प्रेम सदा से बेबूझ है।
यहूदियों में एक धारणा है--बड़ी प्रीतिकर धारणा। यहूदी भक्ति का ही एक मार्ग है। यहूदी कहते हैं, इसके पहले कि भक्त भगवान को खोजे, भगवान भक्त को खोज लेता है। यहूदी धर्म की बड़ी गहरी देन में से एक देन यह है। वे कहते हैं, तुम खोजना ही तब शुरू करते हो जब वह तुम्हें खोज लेता है, नहीं तो तुम शुरू ही नहीं करते। जब वह किसी तरह तुम्हारे भीतर आ ही जाता है, तभी तुम्हारे भीतर उसे पाने की आकांक्षा जगती है; नहीं तो आकांक्षा ही नहीं जगती। यहूदी कहते हैं, तुम ही नहीं खोज रहे भगवान को, भगवान भी तुम्हें खोज रहा है। तुम ही नहीं तड़फ रहे उसके लिए, वह भी तड़फ रहा है। और मजा तो तभी है जब आग दोनों तरफ से लगे। अगर भक्त ही खोजता रहे भगवान को और भगवान को जरा भी न पड़ी हो--मिल गए तो ठीक, न मिले तो ठीक; और भगवान उपेक्षा से भरा हो तो खोज का सारा मजा ही चला गया, रस ही चला गया।
ध्यानी कहता है सत्य तुम्हें नहीं खोज सकता, तुम सत्य को खोज सकते हो। एकतरफा है उसकी खोज। वह कहता है हम खोजेंगे। सत्य कैसे खोजेगा? सत्य को तो उघाड़ना पड़ेगा।
भक्त कहता है यह कोई हमीं खोज रहे ऐसा नहीं, वह भी उघड़ने को आतुर है।
यह हमीं उसका घूंघट उठाने नहीं चले हैं, वह भी घूंघट डालकर बैठा है कि आओ, उठाओ; कि बड़ी देर लगाई, कहां रहे? आओ! परमात्मा भी खोज रहा है। यह खोज दोनों तरफ से है। यह आग दोनों तरफ से है। यह यात्रा दोनों तरफ से चल रही है।
अब यह सरोज का जो प्रश्न है, एक भक्त का प्रश्न है। प्रश्न तो है ही नहीं। क्योंकि भक्त प्रश्न पूछ नहीं सकता। अहोभाव है। वह अपने हृदय की बात कह रही है कि ऐसा उसे हुआ है।
अब उसे लगता है कि गुरु ही पिता, गुरु ही माता, गुरु ही संगी, गुरु ही साथी, गुरु ही ज्ञान, गुरु ही परमात्मा।
प्रेम जहां भी पड़ता है वहीं परमात्मा की छवि देख लेता है।
तुझ से अब मिलके ताज्जुब है कि अर्सा इतना
आज तक तेरी जुदाई में यह क्यों कर गुजरा
और जब परमात्मा की उसे झलक मिलती है तो उसे भरोसा ही नहीं आता कि आज तक इतना अर्सा तुझसे बिना मिले गुजरा कैसे? यह हो ही कैसे सका? यह मैं हो कैसे सका इतने दिन तक? यह मेरे होने की संभावना ही कैसे हो सकी?
उसे भरोसा ही नहीं आता कि मैं था भी। भक्त को तो उसी दिन भरोसा आता है अपने होने पर, जब भगवान का मिलन होता है। उसी दिन भक्त होता है। उसके पहले तो सब सपना था। एक झूठी दास्तान थी। न किसी ने कही, न किसी ने सुनी, एक झूठी दास्तान थी।
तुझसे अब मिलके ताज्जुब है कि अर्सा इतना
आज तक तेरी जुदाई में यह क्यों कर गुजरा
बहुत दिनों में मोहब्बत को हो सका मालूम
जो तेरे हिज्र में गुजरी वह रात रात हुई
प्रेमी को पता चलता है धीरे-धीरे प्रेम में पगते-पगते किः
जो तेरी हिज्र में गुजरी वह रात रात हुई
जो तेरे बिना गुजरी वह रात रात हुई। वह हुई, न हुई बराबर हुई। तुझे मिलकर जीवन शुरू हुआ।
"त्वमेव माता च पिता त्वमेव।"
तुझे मिलकर जीवन शुरू हुआ।
जो तेरे हिज्र में गुजरी वह रात रात हुई
इसलिए अगर किसी के हाथ में हाथ जाने से तुम्हारे जीवन में रसधार बहे
तो लगेगा तुम्हीं पिता, तुम्हीं माता; क्योंकि नया जन्म हुआ। एक जन्म है, जो माता-पिता से होता है, वह शरीर का जन्म है। फिर एक जन्म है, जो सदगुरु से

होता है; वह आत्मिक जन्म है, वह वास्तविक जन्म है। वह तुम्हारी चेतना का आविर्भाव है।
जो तेरे हिज्र में गुजरी वह रात रात हुई
इसलिए फिर सदगुरु सभी कुछ मालूम होने लगता है। यह भक्त का अपना ही हृदय सदगुरु में झलकता। जो उसे भीतर दिखाई पड़ता है, वही उसे सदगुरु में दिखाई पड़ता है। सदगुरु तो दर्पण है, तुम अपना ही चेहरा देख लेते हो।
और भक्त को फिर बड़ा भरोसा आ जाता है। गुरु का साथ मिला कि भरोसा आ गया। अगर गुरु है तो परमात्मा है। अगर कोई ऐसा व्यक्ति है, जो तुम्हें अपने से पार दिखाई पड़ता है, जिसे देखने में तुम्हारी आंखें जमीन से आकाश की तरफ उठ जाती हैं, तो बस पर्याप्त है।
कहते हैं मंसूर को सूली लगी तो वह खिलखिलाकर हंसने लगा। वह खिलखिलाकर हंसा तो लोगों ने पूछा, तुम हंसते क्यों हो? वह कहने लगा, मैं इसलिए हंस रहा हूं कि चलो, मुझे सूली पर लटका देखने के लिए कम से कम तुम्हारी आंखें तो ऊपर उठीं। तुम जमीन पर सरकते लोग, घसिटते लोग--तुम आकाश की तरफ आंख ही नहीं उठाते। चलो, मेरी फांसी के बहाने--वह लटका था एक बड़े ऊंचे खंभे पर-- तुम्हारी आंखें तो आकाश की तरफ उठीं, इसलिए हंसा।
अर्श तक देखिये पहुंचे कि न पहुंचे कोई
आह के साथ दुआ भी मेरी परवाज में
आकाश तक पहुंचना होगा कि नहीं होगा, कहना मुश्किल है। लेकिन भक्त कहता हैः
आह के साथ दुआ भी मेरी परवाज में
मैं रो ही नहीं रहा हूं, मेरे भीतर आह ही नहीं उठ रही है, मेरी उड़ान में प्रार्थना का भी बल है।
अर्श तक देखिये पहुंचे कि न पहुंचे कोई
भक्त यह भी नहीं कहता कि पहुंच ही जाऊंगा। नहीं, प्रेम इस तरह के दावे नहीं करता। झिझकता है भक्त। भक्त कहता हैः
अर्श तक देखिये पहुंचे कि न पहुंचे कोई
पहुंचना हो कि न पहुंचना हो। लेकिन एक अर्थ में भक्त झिझकता है कि पहुंचना होगा कि नहीं, और एक अर्थ में आश्वस्त होता है कि पहुंचना तो हो ही गया।
आह के साथ दुआ भी मेरी परवाज में
मेरी उड़ान में सिर्फ आह ही नहीं है, प्यास ही नहीं है, तुझे खोजने की अभीप्सा ही नहीं है, तुझे पा लेने की प्रार्थना भी है। तुझे पा लिया इसका धन्यवाद भी।
आह के साथ दुआ भी मेरी परवाज में
फिर इस उड़ान को कोई रोक सकता नहीं। यह होकर रहेगी। यह हो ही गई है।
पहलू में जो रह-रहकर धड़कता है मेरा दिल
क्या आपने फिर मुझको पुकारा तो नहीं?
भक्त को तो ऐसे ही लगने लगता है कि भगवान पुकार रहा है। यहां जो भक्त
की तरह मेरे पास आए हैं, उन्हें मेरी हर आवाज में लगेगा--आपने मुझे पुकारा तो नहीं?
पहलू में जो रह-रहकर धड़कता है मेरा दिल
क्या आपने फिर मुझको पुकारा तो नहीं?
उसे अपनी धड़कन की आवाज भी ऐसे लगती है कि परमात्मा के पैरों की आवाज है।
क्या आपने फिर मुझको पुकारा तो नहीं?
हर जुल्म गवारा है मगर यह भी खबर है
दिल आपकी है चीज, हमारा तो नहीं
हर ओर बहारों ने लगा रक्खे हैं मेले
यह आपकी नजरों का इशारा तो नहीं
सब तरफ उसे उसी की नजरों का इशारा दिखाई पड़ता है। फूल खिलते हैं तो लगता परमात्मा हंसा। चांद निकलता तो लगता परमात्मा निकला। चांदनी फैल जाती है तो लगता परमात्मा फैला।

पहलू में जो रह-रहकर धड़कता है मेरा दिल
क्या आपने फिर मुझको पुकारा तो नहीं?
हर ओर बहारों ने लगा रक्खे हैं मेले
यह आपकी नजरों का इशारा तो नहीं
भक्त को बड़ी गहरी आंख उपलब्ध हो जाती है। बिना कुछ किए, बिना मांगे, बिना प्रयास के--प्रसाद से। चाहिए दिल, जो रो सके। चाहिए दिल, जो हंस सके। चाहिए दिल, जो संदेह न करे, श्रद्धा करे।

पांचवां प्रश्नः पूछा है आनंद सागर ने।
सीमार माझे असीम
तुमी बाजाओ आपन सूर
आमार मध्ये तोमार प्रकाश
ताई एतो मधुर
कत वर्णे कत गंधे
कत गाने कत छंदे
अरूप तोमार रूपेर लीला
जागे हृदय पूर
आमार मध्ये तोमार शोभा,
एमन सुमधुर
हे ओशो!
लहो सागरेर नमन, प्रवीणेर वंदन।

ऐसा ही लगता है प्रेमी को कि मेरी सीमा में असीम उतरा; कि मेरे आंगन में आकाश उतरा। भक्त जब सुनता है तो एक-एक शब्द अमृत बनकर बरसता है। भक्त जब सुनता है खुले हृदय से तो जो ज्ञानी को, ध्यानी को, केवल शब्द मालूम होते हैं, भक्त को सिर्फ शब्द नहीं मालूम होते; उन शब्दों में एक अनूठा जीवन, एक आभा, उन शब्दों में शून्य की झनकार... ।
सीमार माझे असीम
लगता, मेरी सीमा में असीम आया। गुरु का मिलन सीमा से असीम का मिलन है। शिष्य यानी सीमा। शिष्य वही जिसे अपनी सीमा का पता चल गया और जो राजी है असीम के चरणों में अपनी सीमा को डाल देने को।
सीमार माझे असीम
तुमी बाजाओ आपन सूर
और शिष्य कहता है, बजाओ तुम अपनी वीणा। बजाओ तुम अपना स्वर। मैं राजी हूं। मैं सुनूंगा, मैं नाचूंगा। मैं घूंघर पहनकर आ गया हूं। तुम बजाओ अपना स्वर।
आमार मध्ये तोमार प्रकाश
मैं तो अंधेरा हूं, लेकिन जलाओ तुम अपना दीया। तुम्हारा प्रकाश हो मेरे मध्य
ताई एतो मधुर।
कत वर्णे कत गंधे
कहा न जा सके ऐसा रूप। कही न जा सके ऐसी गंध।
कत गाने कत छंदे
बांधा न जा सके जो छंद में। गीत में जो समाए न, अटाए न।
अरूप तोमार रूपेर लीला
तुम्हारी रूप की लीला अपूर्व है, अरूप है।
जागे हृदय पूर
जगाओ उसे मेरे हृदय में।
आमार मध्ये तोमार शोभा
मैं तो कुछ भी नहीं हूं। मेरी कोई शोभा है तो तुम्हारी मौजूदगी से है। मेरे पास तो कुछ भी नहीं है, बस तुम हो। मैं तो शून्य हूं। तुम विराजो तो सब हो जाता है। तुम न विराजो तो रिक्त रह जाता हूं। मेरे शून्य में तुम उतर आओ

तो सब है मेरे पास। तुम चले जाओ तो सब भी हो मेरे पास तो बस रिक्तता है, खालीपन है।
आमार मध्ये तोमार शोभा
एमन सुमधुर
भक्त की सारी आकांक्षा परमात्मा के लिए जगह देने की, अवकाश देने की है। भक्त जगह खाली करता है। भक्त कहता है, मैं हटता, तुम आओ। मैं चला, तुम विराजो। यह सिंहासन तुम्हारे लिए खाली करता।
ऐसा भक्त अपने को गलाता, मिटाता, शून्य करता। जैसे-जैसे शून्य होता वैसे-वैसे पूर्ण उसमें उतरता। एक दिन भक्त अचानक पाता है, एक सुबह जागकर अचानक पाता है, कि भक्त तो बचा ही नहीं, भगवान ही बचा है। एक दिन भक्त अचानक पाता है, उसकी बांह गले में पड़ गई। एक दिन भक्त अचानक पाता है उसकी अंगूर की छाया तले बैठे हैं। नहीं, भक्त को बैकुंठ की चाह नहीं, न भक्त को कल्पवृक्षों की चाह है। उसके प्रेम की वर्षा होती रहे।
भक्त मिटना चाहता है। मिटने में ही प्रेम की वर्षा है।
और जो शिष्य भक्त की तरह गुरु के पास आता है, अनायास गुरु उसके माध्यम
से बहुत-से काम करने शुरू कर देता है। तुम छोड़ो भर, कि तुम उपकरण बन जाते हो। और गुरु के पास तो सिर्फ सीखना है छोड़ने की कला। अगर तुम गुरु के पास अपने को छोड़ सके तो तुमने अ, ब, स सीख लिया छोड़ने का। यही अ, ब, स काम आएगा परमात्मा के पास छोड़ने में।
परमात्मा कहीं दिखाई नहीं पड़ता। बड़ा अदृश्य है। उपस्थित है और उपस्थिति मालूम नहीं होती। उसी का स्वर गूंज रहा है लेकिन सब सुनाई पड़ता है, वही सुनाई नहीं पड़ता।
गुरु में परमात्मा थोड़ा-सा दृश्य होता है--थोड़ा-सा। एक किरण उस सूरज
की उतरती मालूम होती है। थोड़ा रूप धरता। यही तो अवतार का अर्थ हैः अवतरित होता। जैसे भाप उतर आए, जल बन जाए। भाप की तरह दिखाई न पड़ती थी, जल बन जाए। भाप की तरह दिखाई न पड़ती थी, जल की तरह दिखाई पड़ने लगी।
गुरु का इतना ही अर्थ है कि जिसके माध्यम से तुम्हें अदृश्य की याद आ जाए, तुम्हारी सीमा में असीम का आंदोलन हो उठे, तुम्हारे अंधेरे में थोड़ा प्रकाश लहरा जाए। तुम्हारे बंद पड़े जल में, तुम्हारे ठहर गए जल में; फिर से लहर आ जाए, फिर से गति आ जाए, फिर से प्रवाह आ जाए।
तो न केवल इधर तुम मिटोगे, उधर तुम होने लगोगे, तुम धीरे-धीरे अंतिम मरण का पाठ सीखोगे। तुम पाओगे, जब गुरु के पास जरा-सा झुकने से इतना मिल जाता है तो फिर पूरे ही क्यों न झुक जाएं?
पूरा जो झुका उसे परमात्मा मिल जाता है। थोड़ा जो झुका उसे गुरु मिल जाता है। और थोड़ा झुकना पूरा झुकने की प्राथमिक शिक्षा है।
एक दीप से कोटि दीप हों, अंधकार मिट जाए
गुरु के पास जो शिष्य झुकते हैं, उनके बुझे दीये जलने लगते हैं।
एक दीप से कोटि दीप हों, अंधकार मिट जाए
आंगन-आंगन खिले कल्पना सजे द्वार बंदनवारों से
उठे गीत समवेत स्वरों से पगडंडी-पथ-गलियारों से
रोम-रोम उन्मन मुंडेर का पाटल-सा मुसकाए
एक दीप से कोटि दीप हों, अंधकार मिट जाए
पोप-पोर उमगे अणुओं का बिछले दिशा-दिशा अरुणाई
पग-पग उठे किरण पुखराजी डग-डग फेनिल श्वेत जुन्हाई
कोसों तक ऊसर भूमि में नेह-बीज अकुराए
एक दीप से कोटि दीप हों अंधकार मिट जाए
अगर झुक सकते हो तो चूको मत। अगर जरा झुक सकते हो तो उतना ही झुको। उससे और झुकने की कला आएगी क्योंकि झुककर जब मिलेगा तो पता चलेगा कि नाहक अकड़े खड़े रहे। नाहक प्यासे रहे। व्यर्थ ही जीवन को रात बनाया। जो जीवन दिन बन सकता था, उसे अपने हाथ ही अंधकार में सम्हाले रहे।

आखिरी प्रश्नः तरु ने पूछा है।
एक पागल द्वार पर आया था, कुछ गुनगुनाकर चला गयाः

तुम मुझे यूं भुला न पाओगे
जब-जब सुनोगे गीत मेरे
संग-संग तुम भी गुनगुनाओगे

तरु समझी नहीं। पागल नहीं था, मैं ही आया था। मैं ही गुनगुना गया हूं। "तुम मुझे यूं भुला न पाओगे
जब-जब सुनोगे गीत मेरे
संग-संग तुम भी गुनगुनाओगे"
और जो मैंने तुझसे कहा तरु, उसे औरों से कह। बात को फैला।
दिल ने आंखों से कही, आंखों ने उनसे कह दी
बात चल निकली है अब देखें कहां तक पहुंचे।
आज इतना ही।

जिन-सूत्र, भाग दो
इकतीसवां प्रवचन

याद घर बुलाने लगी

ण वि दुक्खं ण वि सुक्खं, ण वि पीडा णेव विज्जदे बाहा।
ण वि मरणं ण वि जणणं, तत्थेव य होई णिव्वाणं।। 156।।
ण वि इंदिय उवसग्गा, ण वि मोहो विम्हयो ण णिद्दा य।
ण य तिण्हा णेव छुहा, तत्थेव य होइ णिव्वाणं।। 157।।
ण वि कम्मं णोकम्मं, ण वि चिंता णेव अट्टरुद्दाणि।
ण वि धम्मसुक्कझाणे, तत्थेव य होइ णिव्वाणं।। 158।।
णिव्वाणं ति अवाहंति, सिद्धी लोगाग्गमेव य।
खेमं सिवं अणाबाहं, जं चरंति महेसिणो।। 159।।
लाउअ एरण्डफले, अग्गीधूमे उसू धणुविमुक्के।
गइ पुव्वपओगेणं, एवं सिद्धाण वि गती तु।। 160।।
अव्वाबाहमणिंदिय—मणोवमं पुण्णपावणिम्मुक्कं।
पुणरागमणविरहियं, णिच्चं अचलं अणालंबं।। 161।।

पानी पर तिरता है आईना
आंख झिलमिलाने लगी
पात-पात डोलती है प्रार्थना
सांझ गुनगुनाने लगी
रोक लूं मैं बादलों की घंटियां
बजने से पुरवा के पांव में
झलकने लगीं पीली बत्तियां
जले हुए दीपों के गांव में
अंधकार झूलता है पालना
याद घर बुलाने लगी
याद घर बुलाने लगी! इन थोड़े-से शब्दों में सारे धर्म का सार है--याद घर बुलाने लगी। जहां हम हैं, वहां हम तृप्त नहीं। जो हम हैं उससे हम तृप्त नहीं। एक बात निश्चित है कि हम अपने घर नहीं, कहीं परदेश में हैं। कहीं अजनबी की भांति भटक गए हैं। कहां जाना है यह भला पता न हो, लेकिन इतना सभी को पता है कि जहां हम हैं, वहां नहीं होना चाहिए।
एक बेचैनी है। कुछ भी करो, कितना ही धन कमाओ, कितनी ही पद-प्रतिष्ठा जुटाओ, कुछ कमी है, जो मिटती नहीं। कोई घाव है, जो भरता नहीं। कोई पुकार है जो भीतर कहे ही चली जाती हैः यह भी नहीं, यह भी नहीं; कहीं और चलो। खोजो घर।
द्वार-द्वार दरवाजे-दरवाजे दस्तक दिए। न मालूम कितने- कितने जन्मों में, कितने-कितने ढंग से अपने घर को खोजा है।
मगर सारी खोज एक ही बात की है कि कोई ऐसा स्थान हो, जहां तृप्ति हो।
कोई ऐसी भावदशा हो, जिसमें कोई वासना न उठती हो।
वासना का अर्थ ही है कि जो हम हैं, उसमें रस नहीं आ रहा, कुछ और होना चाहिए। चाह का अर्थ ही है बेचैनी। चाह उठती ही बेचैनी से। राहत नहीं है।
कोई कांटा चुभ रहा है। कोई अतृप्ति सब तरफ से घेरे है। सब मिल जाता है। फिर भी अतृप्ति वैसी की वैसी बनी रहती है--अछूती, अस्पर्शित।
धर्म का जन्म मनुष्य के भीतर इस महत घटना से होता है--बेचैनी की इस घटना से होता है। जैसे परदेश में हैं, जहां न कोई अपनी भाषा समझता, न कोई अपना है। जहां सब संबंध सांयोगिक हैं। जहां सब संबंध मन के मनाये हुए हैं; वास्तविक नहीं हैं। और जहां पानी का धोखा तो बहुत मिलता है, पानी नहीं मिलता--मृग-मरीचिका है। दूर से दिखाई पड़ता जल का स्रोत, पास आते रेत ही रेत रह जाती है।
इस भटकाव को हम कहते हैं संसार। इस भटकाव में घर की याद आने लगी तो धर्म की शुरुआत हुई।
पानी पर तिरता है आईना
आंख झिलमिलाने लगी

अगर बाहर देख-देखकर ऊब पैदा हो गई हो, देख-देखकर देख लिया हो, कुछ देखने जैसा नहीं है, आंख झपकने लगी हो, भीतर देखने का ख्याल उठने लगा हो, आंख बंद करके देखने का भाव जगने लगा हो तो हो गई शुरुआत।
हाथ भर-भरके देख लिए, जब पाया तब राख से भरे पाया। कभी हीरों से भरा लेकिन हीरे राख हो गए। सोने से भरा, सोना मिट्टी हो गया। संबंधों से भरा, तथाकथित प्रेम से भरा और सब अंततः मूल्यहीन सिद्ध हुआ। और अब हाथ को और भरने की आकांक्षा न रही।
पात-पात डोलती है प्रार्थना
सांझ गुनगुनाने लगी।
तो जिस दिन बाहर से आंख हटने लगती है, उसी दिनः
पात-पात डोलती है प्रार्थना
सांझ गुनगुनाने लगी
तो अब घर जाने का समय करीब आ गया।
प्रार्थना, जो बाहर से घर की तरफ लौटने लगे और अभी घर नहीं पहुंचे--बीच
का पड़ाव है। जो संसार में हैं उनके हृदय में प्रार्थना नहीं उठती। जो परमात्मा में पहुंच गए, उनको प्रार्थना की जरूरत नहीं रह जाती। प्रार्थना सेतु है बाहर से भीतर आने का; परदेश से स्वदेश आने का; विभाव से स्वभाव में आने का।
पात-पात डोलती है प्रार्थना
सांझ गुनगुनाने लगी।
संसार की सांझ आ गई। और जो संसार की सांझ है वही निर्वाण की सुबह है।
रोक लूं मैं बादलों की घंटियां
बजने से पुरवा के पांव में
झलकने लगी पीली बत्तियां
जले हुए दीपों के गांव में
अंधकार झूलता है पालना
याद घर बुलाने लगी।
आज के सूत्र महावीर की अंतिम निष्पत्तियां हैं। ये सूत्र निर्वाण के हैं। ये सूत्र घर आ गए व्यक्ति का आखिरी वक्तव्य हैं। ये सूत्र ऐसे हैं, जो कहे नहीं जा सकते, जिन्हें कहने की चेष्टा भर की जा सकती है। ये सूत्र ऐसे हैं, जो अभिव्यक्त नहीं होते, भाषा छोटी पड़ती है, शब्द संकीर्ण हैं। और विराट को संकीर्ण शब्दों के सहारे लाना पड़ता है।
इसलिए इन शब्दों को बहुत कसकर मत पकड़ना। इन्हें बहुत सहानुभूति से, बहुत श्रद्धा से भाषा की असमर्थता को याद रखते हुए समझना।
एक तो गणित की भाषा होती है, जहां दो और दो चार होते हैं। बस, दो और दो चार होता और कुछ भी नहीं होता। सब सीधा-साफ होता है।
लेकिन सत्य का अनुभव ऐसा है कि उससे मिलता हुआ कोई भी अनुभव इस संसार में नहीं है। जो बाहर देखा है उससे किसी से भी जो भीतर दर्शन होते हैं, उसका तालमेल नहीं। जो परदेश में जाना है और जो स्वदेश लौटने का अनुभव होता है, उसे परदेश की भाषा में कहने का कोई उपाय नहीं।
तो यह स्वभाव को विभाव में कहने की चेष्टा है।
रहिमन बात अगम्य की कहन-सुनन की नाहीं
जे जानत ते कहत नहीं, कहत ते जानत नाहीं
कुछ बात ऐसी है अगम्य की, कि कहने-सुनने की नहीं है। जो जानते हैं, कहते नहीं। जो कहते हैं, जानते नहीं।
इसका यह अर्थ नहीं कि जाननेवालों ने नहीं कहा है; कहा है और कहकर भी कह नहीं पाया है। कहा है और फिर कहा कि कह नहीं पाए। फिर-फिर कहा है। महावीर जीवनभर निर्वाण के संबंध में अनेक-अनेक ढंगों से, अनेक-अनेक इशारों का उपयोग करके बोलते रहे, लेकिन कैसे कहो उसे? कैसे कहो उसे, जो शब्दों के शून्य हो जाने पर अनुभव होता है? कैसे कहो उसे, जो भाषा के अतिक्रमण पर अनुभव होता है? कैसे कहो उसे, जो घर के भीतर आने का अनुभव होता है?
भाषा तो सब घर के बाहर की है। भाषा तो सब बाजारू है। भाषा तो दूसरे से बोलने के लिए है। जब तुम अकेले हो, बिल्कुल अकेले हो, अपने नितांत स्वरूप

में आ गए, वहां कोई दूसरा नहीं है तो भाषा का कोई प्रयोजन नहीं है। वहां बोलने का कोई उपाय नहीं है। वहां तो परम मौन है।
अपने से बाहर गए, दूसरे से मिले-जुले, संबंध बनाया तो बोलना पड़ता है।
तो ऐसा नहीं है कि जिन्होंने जाना, नहीं बोला, लेकिन बोल-बोलकर भी बोल नहीं पाए। बोल-बोलकर अंततः यही कहा कि क्षमा करना, हम जो कहते थे, वह कह नहीं पाए।
लेकिन फिर भी जिन्होंने कहा है उनमें महावीर का वक्तव्य अत्यधिक वैज्ञानिक है। वैज्ञानिक होना कठिन है, लेकिन अगर सारे वक्तव्यों को तौला जाए तो महावीर का वक्तव्य अतिवैज्ञानिक है। सत्य को देखा जाए, तब तो बहुत दूर है सत्य से। सभी वक्तव्य दूर होते हैं। और वक्तव्यों को देखा जाए तो निकटतम है।
पहला सूत्रः
ण वि दुक्खं ण वि सुक्खं, ण वि पीडा णेव विज्जदे बाहा।
ण वि मरणं ण वि जणणं, तत्थेव य होइ णिव्वाणं।।
"जहां न दुख है न सुख, न पीड़ा है न बाधा, न मरण है न जन्म, वहीं निर्वाण है।"
अब यह भी कुछ कहना हुआ? यह तो "नहीं" से कहना हुआ, नकार से कहना हुआ। क्या नहीं है वहां, यह कहा। क्या है, यह तो कहा नहीं। क्या है उसे कहा भी नहीं जा सकता।
यह तो ऐसे ही हुआ, कि किसी स्वस्थ आदमी को हमने कहा कि, न टी. बी. है, न कैंसर है उसमें, न मलेरिया लगा है, न प्लेग हुई; स्वस्थ है। स्वास्थ्य को बताया, बीमारियां नहीं हैं इससे। यह कोई स्वास्थ्य की परिभाषा हुई? बीमारियों का अभाव स्वास्थ्य है? लेकिन बस यही निकटतम परिभाषा है। स्वास्थ्य तो ज्यादा है बीमारियों के अभाव से। स्वास्थ्य की तो अपनी विधायकता है। स्वास्थ्य की तो अपनी उपस्थिति है।
ख्याल किया? सिरदर्द न हो तो जरूरी नहीं है कि सिर स्वस्थ हो। जैसे सिरदर्द नकार की तरफ ले जाता है, पीड़ा की तरफ ले जाता है, ऐसा सिर का स्वास्थ्य आनंद की तरफ ले जाएगा। दर्द का न होना तो मध्य में हुआ, दोनों के मध्य में हुआ। दर्द का होना एक अति, स्वास्थ्य का होना एक अति, दोनों के मध्य में हुई इतनी-सी बात कि दर्द नहीं है।
अगर कोई तुमसे पूछे, कैसे हो? तुम कहो, दुखी नहीं हैं, तो वह भी थोड़ा चिंतित होगा। तुम यह नहीं कह रहे हो कि सुखी हो, तुम इतना ही कह रहे हो कि दुखी नहीं हूं। जरूरी नहीं कि तुम सुखी हो। दुख का न होना सुख के होने के लिए शर्त तो है लेकिन सुख के होने की परिभाषा नहीं है। पर मजबूरी है।
उस परम सत्य को हम इतना ही कह सकते हैं कि संसार नहीं है। निर्वाण संसार नहीं है। इन सारे सूत्रों में अलग-अलग ढंग से महावीर यही कहते हैं कि संसार नहीं है।
न वहां दुख, न सुख। सुख और दुख संसार है। द्वंद्व संसार है। दो के बीच सतत संघर्ष संसार है। इसलिए संन्यासी का अर्थ होता है, जिसने अकेला होना सीख लिया। इसका यह अर्थ नहीं होता कि जंगल भागकर अकेला हो गया। क्योंकि इस संसार में अकेले होने का तो कोई उपाय नहीं है।

जंगल में रहोगे तो भी अकेले नहीं हो। बैठोगे वृक्ष के नीचे, कौआ बीट
कर जाएगा। संबंध जुड़ गया क्रोध का। बैठोगे वृक्ष के नीचे, वृक्ष छाया देगा। संबंध जुड़ गया राग का। फिर उसी-उसी वृक्ष के नीचे आकर बैठोगे। फिर अगर कोई लकड़हारा किसी दिन उस वृक्ष को काटने आ गया तो तुम ल.ड़ने को तैयार हो जाओगे कि मत काटो। यह मेरा वृक्ष है।
भागोगे कहां? जहां जाओगे... संसार तो संसार है, वहां तो हमेशा दो हैं। इसलिए संन्यास का अर्थ होता है; अकेले होने की क्षमता। अकेला होना नहीं, अकेले होने की क्षमता। जहां भी हो, यह स्मरण बना रहे कि "मैं अकेला हूं।" तब बीच-बाजार में तुम संन्यासी हो। गृहस्थ होकर संन्यासी हो। पत्नी है, बच्चे हैं, दुकान है, बाजार है--तुम संन्यासी हो। इतनी याद बनी रहे कि "मैं अकेला हूं।"

तुम अपने को दो में बांटने की आदत छोड़ दो।
"जहां न दुख न सुख, न पीड़ा न बाधा, न मरण न जन्म, वहीं निर्वाण है।" नदियां दो-दो अपार, बहती हैं विपरीत छोर
कब तक मैं दोनों धाराओं में साथ बहूं
ओ मेरे सूत्रधार!
नौकाएं दो भारी अलग-अलग दिशा में जातीं
कब तक मैं दोनों को साथ-साथ खेता रहूं
एक देह की पतवार!
दो-दो दरवाजे हैं अलग-अलग क्षितिजों में
कब तक मैं दोनों की देहरियां लांघा करूं
एक साथ!
छोटी-सी मेरी कथा, छोटा-सा घटना क्रम
हवा के भंवर-सा पलव्यापी यह इतिहास
टूटे हुए असंबद्ध टुकड़ों में बांट दिया तुमने
ओ अदृश्य विरोधाभास!
जैसे आदमी दो नावों पर साथ-साथ सवार हो और दोनों नावें विपरीत दिशाओं में जाती हों, ऐसा है संसार। जैसे आदमी दो दरवाजों से एक साथ प्रवेश करने की कोशिश कर रहा हो और दोनों दरवाजे इतने दूर हों जैसे जमीन और आकाश, ऐसा है संसार। जैसे कोई एक ही साथ जन्मना भी चाहता हो और मरने से भी बचना चाहता हो, दो विपरीत आकांक्षाएं कर रहा हो और दोनों के बीच उलझ रहा हो, परेशान हो रहा हो, ऐसा है संसार।
हमारी सभी आकांक्षाएं विपरीत हैं। इसे थोड़ा समझना। इसकी समझ तुम्हारे भीतर एक दीये को जन्म दे देगी। एक तरफ तुम चाहते हो, दूसरे लोग मुझे सम्मान दें और दूसरी तरफ तुम चाहते हो, कोई अपमान न करे। साधारणतः दिखाई पड़ता है इन दोनों में विरोध कहां?
इन दोनों में विरोध है। यह तुम दो नौकाओं पर सवार हो गए।
इसका विश्लेषण करोः तुम चाहते हो, दूसरे मुझे सम्मान दें। ऐसा चाहकर तुमने दूसरों को अपने ऊपर बल दे दिया। दूसरे शक्तिशाली हो गए, तुम कमजोर हो गए। अपमान तो शुरू हो गया। अपमान तो तुमने अपना कर ही लिया। दूसरे जब करेंगे तब करेंगे। तुम अपमानित तो होना शुरू ही हो गए। यह कोई सम्मान का ढंग हुआ? जहां दूसरे हमसे बलशाली हो गए।
दूसरों से सम्मान चाहा इसका अर्थ है कि दूसरों के हाथ में तुमने शक्ति दे दी कि वे अपमान भी कर सकते हैं। और निश्चित ही अपमान करने में उन्हें ज्यादा रस आएगा। क्योंकि तुम्हारे अपमान के द्वारा ही वे सम्मानित हो सकते हैं। वे भी तो सम्मान चाहते हैं, जैसा तुम चाहते हो। तुम किसका सम्मान करते हो? तुम सम्मान मांगते हो। वे भी सम्मान मांग रहे हैं। वे तुम्हारा सम्मान करें तो उन्हें कौन सम्मान देगा?
प्रतिस्पर्धा है। एक-दूसरे के प्रतिद्वंद्वी हो तुम। तुम जब दूसरे
से सम्मान मांगते हो तब तुमने उसे क्षमता दे दी, हाथ में कुंजी दे दी कि वह तुम्हारा अपमान कर सकता है। अब सौ में निन्यानबे मौके तो वह ऐसे खोजेगा कि तुम्हारा अपमान कर दे। कभी मजबूरी में न कर पाएगा तो सम्मान करेगा। सम्मान तो लोग मजबूरी में करते हैं। अपमान नैसर्गिक मालूम पड़ता है। सम्मान बड़ी मजबूरी मालूम पड़ती है। झुकता तो आदमी मजबूरी में है। अकड़ना स्वाभाविक मालूम पड़ता है।
तो जैसे ही तुमने सम्मान मांगा, अपमान की क्षमता दे दी। और दूसरा भी सम्मान की चेष्टा में संलग्न है। वह भी चाहता है, अपनी लकीर तुमसे बड़ी खींच दे। जैसा तुम चाहते हो वैसा वह चाहता है।
अब अड़चन शुरू हुई। सम्मान देगा तो भी तुम सम्मानित न हो पाओगे क्योंकि सम्मान देनेवाला तुमसे बलशाली है और अपमान करेगा तो तुम पीड़ित जरूर हो जाओगे।
तुमने धन मांगा, तुमने अपनी निर्धनता की घोषणा कर दी। क्योंकि निर्धन
ही धन मांगता है। जो हमारे पास नहीं है वही हम मांगते हैं।

मैंने सुना है, शेख फरीद से एक धनपति ने कहा, यह बड़ी अजीब बात है। मैं तुम्हारे पास आता हूं तो सदा ज्ञान की, आत्मा की, परमात्मा की बात करता हूं। तुम जब कभी आते हो तो तुम सदा धन मांगते आते हो। तो सांसारिक कौन है? शेख फरीद ने कहा, मैं गरीब हूं इसलिए धन मांगता हूं। तुम अज्ञानी हो इसलिए ज्ञान मांगते हो। जो जिसके पास नहीं है वही मांगता है। मैं तो तुम्हारी याद ही तब करता हूं जब गांव में कोई तकलीफ होती है, मदरसा खोलना होता है, अकाल पड़ जाता है, कोई बीमार मर रहा होता उसको दवा की जरूरत होती है तो मैं आता हूं। मैं दीन हूं, दरिद्र हूं। यह मेरा गांव गरीब और दरिद्र है। स्वभावतः मैं कोई ब्रह्म और परमात्मा की बात करने तुम्हारे पास नहीं आता। वह तो हमारे पास है।
तुम जब मेरे पास आते हो तो तुम धन की बात नहीं करते क्योंकि धन तुम्हारे पास है। तुम ब्रह्म की बात करते आते हो, जो तुम्हारे पास नहीं है।
इसे थोड़ा सोचना। जिससे तुमने धन मांगा, तुमने घोषणा कर दी कि तुम निर्धन हो। धन मांगनेवाला निर्धन है। पद मांगा, घोषणा कर दी कि तुम हीन हो। मनोवैज्ञानिक कहते हैं पद के आकांक्षी हीनगं्रथि से पीड़ित होते हैं-- इनफीरियारिटी काम्पलेक्स। सभी राजनीतिज्ञ हीनग्रंथि से पीड़ित होते हैं। होंगे ही; कोई दूसरा और उपाय नहीं है। जब तुम सिद्ध करना चाहते हो कि मैं शक्तिशाली हूं तो तुमने अपने भीतर मान रखा है कि तुम शक्तिहीन हो। अब किसी तरह सिद्ध करके दिखा देना है कि नहीं, यह बात गलत है।
कमजोर बहादुरी सिद्ध करना चाहता है। कायर अपने को वीर सिद्ध करना चाहता है। अज्ञानी अपने को ज्ञानी सिद्ध करना चाहता है। हम जो नहीं हैं उसकी ही चेष्टा में संलग्न होते हैं। और जो हम नहीं हैं, हमारी चेष्टा से प्रगट होकर दिखाई पड़ने लगता है। पीड़ा और बढ़ती चली जाती है।
जन्म तो हम मांगते हैं, जीवन तो हम मांगते हैं, मौत से हम डरते हैं। हम चिल्लाते हैं, मौत नहीं। और सब हो, मृत्यु नहीं। मृत्यु की हम बात भी नहीं करना चाहते। लेकिन जन्म के साथ हमने मृत्यु मांग ली। क्योंकि जो शुरू होगा वह अंत होगा।
मृत्यु जन्म के विपरीत नहीं है, जन्म की नैसर्गिक परिणति है। जो शुरू होगा वह अंत होगा। जो बनेगा वह मिटेगा। जिसका सृजन किया जाएगा उसका विध्वंस होगा। तुमने एक मकान बनाया, उसी दिन तुमने एक खंडहर बनाने की तैयारी शुरू कर दी। खंडहर बनेगा। तुम जब भवन बना रहे हो तब तुम एक खंडहर बना रहे हो। क्योंकि बनाने में ही गिरने की शुरुआत हो गई। तुमने एक बच्चे को जन्म दिया, तुमने एक मौत को जन्म दिया। तुम जन्म के साथ मौत को दुनिया में ले आए।
नदियां दो-दो अपार, बहती हैं विपरीत छोर
कब तक मैं दोनों धाराओं में साथ बहूं
ओ मेरे सूत्रधार!
नौकाएं दो भारी अलग-अलग दिशा में जातीं
कब तक मैं दोनों को साथ-साथ खेता रहूं
एक देह की पतवार!
--पतवार एक, नौकाएं दो विपरीत दिशाओं में जातीं! दो-दो दरवाजे हैं अलग-अलग क्षितिजों में
कब तक मैं दोनों की देहरियां लांघा करूं
एक साथ!
छोटी-सी मेरी कथा, छोटा-सा घटनाक्रम
हवा के भंवर-सा पलव्यापी यह इतिहास
टूटे हुए असंबद्ध टुकड़ों में बांट दिया तुमने
ओ अदृश्य विरोधाभास!
जिसे हम संसार कहते हैं वह विरोधाभास है, और विरोधाभास से जो पार हो गया वही निर्वाण को उपलब्ध हो जाता है।
तो महावीर का पहला सूत्र हुआः विरोध के पार है निर्वाण।
"जहां न दुख है न सुख, न पीड़ा न बाधा, न मरण न जन्म, वहीं निर्वाण है।"

जहां विरोध नहीं, द्वंद्व नहीं; जहां दो नहीं, दुई नहीं; जहां द्वैत नहीं, जहां अद्वैत है, वहीं है निर्वाण। जहां एक ही बचता है, आत्यांतिक रूप से एक बचता है, वहीं है निर्वाण। जब तक तुम्हारे भीतर विरोध है, जब तक तुम दो की आकांक्षा करते, जब तक तुम्हारी आकांक्षाओं में संघर्ष और द्वंद्व है तब तक तुम कैसे शांत हो सकोगे? तब तक कैसा सुख? कैसी शांति? कैसा चैन? तब तक कभी विराम नहीं हो सकता।
तुम्हारी मांग में ही भूल हुई जा रही है। नहीं, कि तुम जो मांगते हो वह नहीं मिलता है, इसलिए तुम दुखी हो। तुमने मांगा, उसी में तुमने दुख मांग लिया। अक्सर लोग संसार से ऊबते भी हैं तो उनके ऊबने का कारण गलत होता है। एक जैन मुनि मुझे मिलने आए, कोई पांच साल हुए। मैंने उनसे पूछा, आपने संसार क्यों छोड़ दिया, उन्होंने कहा, संसार में कुछ मिलता ही नहीं। कोई सार ही नहीं।
संसार में कुछ मिलता नहीं, कुछ सार नहीं है, इसलिए छोड़ दिया? तो मिलने
की आकांक्षा अब मोक्ष की तरफ लगा दी। अब वहां मिलेगा। परमात्मा की तरफ लगा दी, आत्मा की तरफ लगा दी। लोभ गया नहीं, वासना गई नहीं, सिर्फ दिशा बदली। और जहां वासना है वहां संसार है।
तो यह संन्यास संसार का अतिक्रमण न हुआ, संसार का ही फैलाव हुआ। अब यह आदमी नए लोभ में परेशान है। मैंने पूछा, मेरे पास किसलिए आए हो? वे कहने लगे, शांति नहीं मिलती। मैंने कहा, जिसने संसार छोड़ दिया--छोड़ते ही शांति मिल जानी चाहिए। फिर छोड़ने के बाद अब बचा क्या है, जो अशांत करे? सांसारिक व्यक्ति कहता है मैं अशांत हूं, समझ में आता है। आप कहते हैं, अशांत हैं? तो फिर फर्क क्या हुआ?
फिर इस बात को फिर से सोचें। संसार छूटा नहीं है। द्वंद्व अभी मौजूद है। लाभ-हानि की दृष्टि अभी मौजूद है। मिलना चाहिए और नहीं मिलता है। जहां मिलना चाहिए का भाव आया, वहां नहीं मिलता है, इसकी छाया भी पड़ी। जहां अपेक्षा आयी वहां विफलता हाथ लगी--लग ही गई; थोड़ी देर-अबेर होगी। तुमने बीज तो बो दिए, फसल काटने में कितनी देर लगेगी? अगर संन्यासी भी अशांत है, साधु-मुनि भी अशांत हैं, तो फिर भेद क्या करते हो सांसारिक में और साधु और मुनि में? दोनों अशांत हैं।
संसार में कुछ मिलता नहीं इसलिए संसार मत छोड़ना। संसार के मांगने में भूल हो गई है। पाने में भूल नहीं हो रही है, मांगने में भूल हो गई है। भूल अपनी वासना में हो गई है, अपनी चाहत में हो गई है, अपनी चाह में हो गई है। वहीं हमने द्वंद्व मांग लिया। संसार उसी द्वंद्व का फैलाव है।
इसे ऐसा समझो, संसार के कारण वासना नहीं है। वासना के कारण संसार है। अगर तुमने सोचा संसार के कारण वासना है, तो तुम्हारा पूरा जीवन का गणित गलत हो जाएगा। तब तुम संसार को छोड़ने में लग जाओगे और वासना तो छूटेगी नहीं। ऐसा देखो कि वासना संसार है ताकि वासना छूटे। वासना छूटे तो संसार छूट जाता है।
महावीर कहते हैंः
ण वि इंदिय उवसग्गा, ण वि मोहो विम्हयो ण णिद्दा य।
ण य तिण्हा णेव छुहा, तत्थेव य होइ णिव्वाणं।।
"जहां न इंद्रियां हैं न उपसर्ग, न मोह है न विस्मय, न निद्रा है न तृष्णा, न भूल, वहीं निर्वाण है।"
अब एक बात काफी सूक्ष्म है। याद न रहे तो भूल जा सकती है। महावीर यह नहीं कह रहे हैं कि तुमने अगर भूख मिटा दी, तृष्णा मिटा दी, निद्रा मिटा दी तो निर्वाण हो जाएगा। इसको ऐसा मत पकड़ लेना जैसा कि जैन मुनियों ने पकड़ा है और सदियों से भटकते हैं।
महावीर यह नहीं कह रहे हैं कि निद्रा छोड़ दोगे तो निर्वाण उपलब्ध हो जाएगा। महावीर यह कह रहे हैं, निर्वाण उपलब्ध हो जाए तो वहां निद्रा नहीं है। इन दोनों बातों में बड़ा फर्क है। ये एक-सी लगती हैं बातें, इसलिए भूल होनी बड़ी स्वाभाविक है। जिनसे भूल हो गई वे क्षमायोग्य हैं क्योंकि भूल बड़ी बारीक है। जरा-सा धागे भर का फासला है।

महावीर निर्वाण की परिभाषा कर रहे हैं। वे कह रहे हैं कि निर्वाण ऐसी चित्त की दशा है, ऐसे चैतन्य की दशा है, जहां न दुख है न सुख, न नींद है, न भूख है न प्यास। क्योंकि वहां इंद्रियां नहीं, वहां देह नहीं तो देह से बंधे हुए धर्म नहीं।
लेकिन इसका तुम उल्टा अर्थ ले सकते हो। तुम यह अर्थ ले सकते हो कि महावीर निर्वाण की साधना बता रहे हैं। यह सिर्फ निर्वाण की परिभाषा है। वे यह नहीं कह रहे हैं कि तुम नींद का त्याग कर दो, भोजन का त्याग कर दो तो तुम निर्वाण को उपलब्ध हो जाओगे। अगर भोजन का त्याग किया तो सूखोगे, निर्वाण को उपलब्ध नहीं हो जाओगे। अगर निद्रा का त्याग किया तो दिनभर उनींदे बने रहने लगोगे; निर्वाण को उपलब्ध नहीं हो जाओगे। उदास हो जाओगे, महासुख का अनुभव नहीं होगा।
अगर तुमने सुख और दुख से अपने को सब भांति तटस्थ करने की चेष्टा की तो तुम कठोर हो जाओगे। तुम्हारी संवेदनक्षमता खो जाएगी, लेकिन निर्वाण को उपलब्ध न हो जाओगे।
निर्वाण को उपलब्ध होने से ये सब बातें घटती हैं। इन बातों को घटाने में मत लग जाना। क्योंकि तब तुमने बैल को गाड़ी के पीछे बांध लिया। बैल को गाड़ी के आगे ही रखना तो गाड़ी चलेगी। अगर बैल को गाड़ी के पीछे बांध लिया तो गाड़ी तो चलेगी नहीं, बैल भी न चल पाएंगे। हालांकि कुछ ज्यादा फर्क नहीं कर रहे हो। कुछ लोग बैल को गाड़ी के आगे रखते हैं, तुमने गाड़ी को बैल के आगे रखा। ऐसा कुछ बड़ा फर्क नहीं है, जरा-सा फर्क है।
ये सारी बातें निर्वाण के परिणाम हैं, निर्वाण के साधन नहीं हैं। इन्हें निर्वाण के पीछे आने देना। इन्हें निर्वाण के आगे मत रख लेना, जैसा जैन मुनियों ने किया है। सोचते हैं उपवास करें क्योंकि महावीर कहते हैं, वहां भूख नहीं लगती। अगर वहां भूख नहीं लगती तो वहां उपवास कैसे करोगे, थोड़ा सोचो! उपवास तो वहीं हो सकता है, जहां भूख लगती है। महावीर कहते हैं वहां निद्रा नहीं आती; तो जगे रहो, खड़े रहो।
एक गांव में मैं गया तो एक संन्यासी की बड़ी धूम थी। मैंने पूछा, मामला क्या है? दस साल से खड़े हैं। खड़े श्री बाबा उनका नाम। वे सोते ही नहीं। मैं उनको देखने गया, वह आदमी करीब-करीब मुर्दा हालत में है। अब दस साल से जो न सोया हो और खड़ा रहा हो--क्योंकि डरते हैं कि बैठे, लेटे, कि नींद आयी। खड़े हैं। तो पैर हाथीपांव हो गए। सारा खून शरीर का सिकुड़कर पैरों में समा गया। पैर सूज गए हैं। लकड़ियों का सहारा लिए हुए, रस्सियां बांधे हुए छत से, उनके सहारे खड़े हैं।
अब यह आदमी--फांसी लगाए हुए है।
और यह फांसी और कठिन। दस क्षण में लग जाए, खतम हुआ। यह दस साल से फांसी
पर लटका हुआ है। बैठ नहीं सकता, लेट नहीं सकता। और सम्मान बहुत मिल रहा है इसलिए अहंकार खूब बढ़ रहा है।
और इसकी आंखें देखो, तो पशुओं की आंखों में भी थोड़ी-बहुत बुद्धि दिखाई पड़े, वह भी इसकी आंखों में दिखाई नहीं पड़ेगी। दिखाई पड़ भी कैसे सकती है? क्योंकि बुद्धि के लिए विश्राम चाहिए। यह आदमी विश्राम नहीं ले रहा है। इसके भीतर की तुम अवस्था ऐसे ही समझो कि जैसे शाकभाजी हो गया। अब यह आदमी कोई आदमी नहीं है, गोभी का फूल है! इसके भीतर अब कोई मस्तिष्क नहीं है। मस्तिष्क के सूक्ष्म तंतु विश्राम के न मिलने से टूट जाते हैं।
इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि साधुओं में प्रतिभा नहीं दिखाई पड़ती। तुम उनकी पूजा किसी और कारण से करते हो, प्रतिभा के कारण नहीं करते। उनके जीवन में कोई सृजनात्मक ऊर्जा नहीं दिखाई पड़ती; न कोई आभामंडल है।
तुम्हारी पूजा के कारण और हैं। तुम कहते हो इस आदमी ने सौ दिन का उपवास किया इसलिए पूजा करते हैं। अब सौ दिन का उपवास करने के लिए किसी बुद्धि की तो जरूरत नहीं है। सच तो यह है कि जितना बुद्धू आदमी हो, उतनी आसानी से कर सकता है। जितना जड़बुद्धि हो, जिद्दी हो, दंभी हो, उतनी आसानी से कर सकता है।
बुद्धिमान आदमी तो शरीर की जरूरत को समझेगा, मन की जरूरत को समझेगा, बुद्धिपूर्वक जीयेगा, संयम से... यह तो असंयम हुआ। कुछ जड़ हैं, जो खाए चले

जा रहे हैं; जो खाने के लिए ही जीते हैं। और कुछ जड़बुद्धि हैं, जो अपने को भूखा मार रहे हैं। भूखा मारने के लिए ही जीते हैं।
महावीर की बात समझना। महावीर निर्वाण की परिभाषा कर रहे हैं। ऐसा समझो कि कोई मीरा से पूछे कि प्रभु को पाकर तुझे क्या हुआ? तो वह कहे, उमंग उठी, नाच उठा, गीत उठे--पद घुंघरू बांध मीरा नाची रे। तुम सोचो तो ठीक है, तो नाचना सीख लें तो प्रभु से मिलन हो जाएगा।
तो नर्तकियां तो बहुत हैं। नर्तक तो बहुत हैं। उनको कोई प्रभु तो उपलब्ध नहीं हो रहा। नाचने से अगर प्रभु उपलब्ध होता तो नर्तकियों को उपलब्ध हो गया होता, नर्तकों को उपलब्ध हो गया होता। कितने तो लोग "ता-ता थै-थै" कर रहे हैं, कुछ भी तो नहीं हो रहा।
मीरा जो कह रही है वह परिभाषा है। मीरा कह रही है, प्रभु को पाने से हृदय खिला, नाच जन्मा, रसधार बही, गंगा चली, घूंघर बजे। यह बैलों के पीछे गाड़ी है। तुमने देखा कि अरे! तो फिर नाचना तो हम भी सीख ले सकते हैं। नाचना सीखने से प्रभु नहीं मिलता, प्रभु मिलने से नाच घटता है।
ऐसा ही महावीर की निर्वाण की परिभाषा को समझना। जैन मुनि कितनी तकलीफ झेल रहा है--अकारण। जड़ता की भर सूचना मिलती है। महावीर की प्रतिमा देखी तुमने? और जैन मुनि को साथ खड़ा करके देख लो तो तुमको समझ में आ जाएगा। महावीर की प्रतिमा का रूप ही कुछ और है, रंग ही कुछ और है। कहते हैं, महावीर जैसा सुंदर आदमी पृथ्वी पर बहुत मुश्किल से होता है। और जैन मुनि को देख लो। उसने असुंदर होने को अपनी साधना बना रखी है।
महावीर ने अपने शरीर को सताया हो ऐसा मालूम नहीं होता। शरीर के पार गए होंगे ऐसा तो मालूम होता है, लेकिन शरीर को सताया हो ऐसा नहीं मालूम होता। और जिसको तुम सताते हो उससे पार जा नहीं सकते। जिसको तुम सताते हो उसको सताने के लिए उसी के पास बने रहना पड़ता है। जरा दूर गए कि घबड़ाहट होती है कि कहीं शरीर फिर न लगाम के बाहर निकल जाए, नियंत्रण के बाहर निकल जाए।
जो आदमी कामवासना दबाएगा वह कामवासना पर ही बैठा रहेगा। उसी की छाती
पर चढ़ा रहेगा। जरा उतरा कि चारों खाने चित्त! कामवासना उसकी छाती पर बैठ जाएगी। तो वह उतर ही नहीं सकता। जिसने क्रोध को दबाया वह क्रोध से इंचभर हट नहीं सकता। क्योंकि हटा कि क्रोध प्रगट हुआ। और ज्वालाएं लपट रही हैं भीतर। तो उन ज्वालाओं को किसी तरह दबाए पड़ा रहता है। क्रोध को दबानेवाला क्रोध के साथ ही खड़ा रहता है। काम को दबानेवाला काम के साथ ही खड़ा रहता है। "जहां न इंद्रियां हैं न उपसर्ग, न मोह है न विस्मय, न निद्रा है न तृष्णा, न भूख, वहीं निर्वाण है।"
महावीर यह कह रहे हैं कि जब तुम निर्वाण में पहुंचोगे तो कैसे पहचानोगे कि निर्वाण आ गया? यह उसकी पहचान बता रहे हैं। वे कह रहे हैं, वहां तुम न दुख पाओगे न सुख, वहां तुम न पीड़ा पाओगे न बाधा, वहां तुम न मरण पाओगे न जन्म--समझ लेना आ गया घर। वहां तुम इंद्रियां न पाओगे, न इंद्रियों के कष्ट, न मोह पाओगे न विस्मय, न निद्रा पाओगे न तृष्णा, न भूख--तो समझ लेना कि आ गया घर।
जब कोई व्यक्ति ध्यान की गहराइयों में उतरते-उतरते, उतरते-उतरते आत्मा के भीतर प्रवेश करता है, अचानक पाता है कि यहां न तो शरीर है... इसका यह अर्थ नहीं कि शरीर छूट गया। महावीर निर्वाण को उपलब्ध होने के बाद भी चालीस साल तक शरीर में रहे। चालीस-ब्यालीस साल तक शरीर का उपयोग किया; और ऐसा उपयोग किया, जैसा किया जाना चाहिए। हम तो चालीस जन्मों में ऐसा उपयोग नहीं करते, उन्होंने चालीस वर्ष में कर लिया। उनके कारण कल्याण की धारा बही। श्रेयस पृथ्वी पर उतरा। खूब फूल खिले लोगों की आत्मा के। खूब वर्षा हुई उनके कारण; और जिनके बीज जन्मों से दबे पड़े थे, अंकुरित हुए।
निर्वाण की उपलब्धि के बाद भी चालीस-ब्यालीस साल तक भी शरीर था, इंद्रियां थीं। लेकिन महावीर कहते हैं, निर्वाण की अवस्था, आंतरिक ऐसी अवस्था है कि वहां पहुंचकर तुम्हें पता चलता है, अरे! शरीर बड़े पीछे रह गया। शरीर बड़े दूर छूट गया। शरीर परिधि पर पड़ा रह गया और तुम केंद्र पर आ गए। इंद्रियां भी वहीं पड़ी रह गईं शरीर पर। स्वभावतः जब शरीर पीछे छूट गया तो शरीर की भूख, प्यास, निद्रा, जागृति, सब पीछे छूट गई। अचानक तुम पाते हो

कि तुम्हारे भीतर कोई चौबीस घंटे जागा हुआ चैतन्य है, जिसको निद्रा की कोई जरूरत ही नहीं है, जो कभी पहले भी नहीं सोया था। तुम्हें याद न थी। तुम्हें पहचान न थी। वह कभी भी न सोया था। वह सो ही नहीं सकता। सोना उसका गुणधर्म नहीं है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, "या निशा सर्व भूतानां, तस्यां जागर्ति संयमी।" सब जब सोते हैं तब भी संयमी जागता है। इसका यह मतलब नहीं है कि संयमी पागल की तरह टहलता रहता है कमरे में; कि बैठा रहता है अपनी खाट पर पालथी मारे, कि संयमी सो कैसे सकता है?
हालांकि ऐसे मूढ़ संयमी भी हैं, जो नींद में उतरने से घबड़ाते हैं क्योंकि नींद में उतरे कि जो संयम किसी तरह साधा है वह टूटता है। दिनभर किसी तरह स्त्रियों की तरफ नहीं देखा, सपने में क्या करोगे? सपने में तो तुम्हारा बस नहीं। आंख बंद हुई कि जिन-जिन स्त्रियों से दिनभर आंख चुराते रहे, वे सब आयीं--और सुंदर होकर, और सजकर आ जाती हैं। जैसी सुंदर स्त्री सपने में होती है वैसी कहीं वस्तुतः थोड़े ही होती है! जैसा सुंदर पुरुष सपने में होता है, वस्तुतः थोड़े ही होता है!
तो भागोगे कहां? नींद में तो भाग भी न सकोगे। और नींद में भूल गए सब शास्त्र कि तुम जैन हो कि हिंदू हो कि मुसलमान कि संसारी कि संन्यासी--गया सब!
तो आदमी नींद से डरता है। मगर जो नींद से डर रहा है वह कोई निर्वाण को उपलब्ध नहीं हो जाता।
महावीर कहते हैं, जो निर्वाण को उपलब्ध हो जाता है वह जानता है कि नींद तो है ही नहीं। यहां तो नींद कभी घटी ही नहीं। इस गहराई के तल पर तो नींद का कभी प्रवेश ही नहीं हुआ। यह तल तो नींद से अछूता रहा है। कुंआरा है यह तल। इस पर न नींद कभी आयी, न कभी सपना उतरा। इंद्रियां यहां तक पहुंचीं नहीं। शरीर यहां तक पहुंचा नहीं। यह शरीर और इंद्रियों के पार।
यह अनुभव है और अनुभव की व्याख्या है। और तुम जब इस अनुभव में उतरोगे
तो तुम्हारे लिए मील के पत्थर बना रहे हैं वे। कि तुम यहां से समझ लेना कि निर्वाण शुरू होता है। तुमसे यह नहीं कहा जा रहा है कि तुम ऐसा करना शुरू कर दो। छोड़ दो भोजन, नींद छोड़ दो, बैठ जाओ। यह तो पागलपन होगा।
जहां तुम हो शरीर पर... ऐसा समझो कि कोई आदमी अपने घर की चारदीवारी के पास ही खड़ा रहता है और सोचता है, यही घर है। धूप आती तो उसके सिर पर धूप पड़ती है, सिर फटने लगता है। वर्षा आती तो वर्षा में भीगता, शरीर कंपने लगता। लेकिन वह जानता है यहीं चारदीवारी के बाहर, यहीं मेरा घर है। महावीर कहते हैं, तुम्हारा घर, तुम्हारा अंतर्गृह--वहां न वर्षा होती,
न धूप आती। तुम जरा पीछे सरको। तुम जरा परिधि को छोड़ो और केंद्र की तरफ चलो। जैसे-जैसे तुम केंद्र की छाया में पहुंचोगे, तुम अचानक पाओगे, सुरक्षित। सभी बाधाओं से सुरक्षित। वे सभी घटनाएं परिधि पर घटती हैं। जैसे सागर की सतह पर तूफान आते, आंधियां आतीं, लेकिन सागर की गहराई में न तो कभी कोई तूफान आता, न कोई आंधी आती। जैसे-जैसे गहरे जाने लगो... जो लोग सागर की गहराई में खोज करते हैं वे कहते हैं कि सागर की गहराई में अनूठे अनुभव होते हैं। अनूठा अनुभव होता है। एक अनुभव तो यह होता है कि वहां कोई तूफान नहीं, कोई आंधी नहीं, कोई लहर नहीं। सब परम सन्नाटा है। जैसे-जैसे गहरे जाते हो... जैसे पैसिफिक महासागर पांच मील गहरा है। आधा मील की गहराई के बाद सूरज की किरणें भी नहीं पहुंचतीं। पांच मील की गहराई पर सूरज की किरण कभी पहुंची ही नहीं। अनंत काल से गहन अंधकार वहां सोया है। वहां सतह की कोई खबर ही नहीं पहुंची। हवा है, तूफान है, आंधी है, बादल है, बरसात है, धूप है, ताप है, शीत आयी, गर्मी आयी, कुछ वहां पता नहीं चलता। वहां कोई मौसम बदलता नहीं। वहां सदा एकरस।
पैसिफिक महासागर की जो गहराई है, वह तो कुछ भी नहीं; जब तुम अपनी गहराई में उतरोगे, वहां भूख कभी नहीं पहुंची, कोई नींद कभी नहीं पहुंची, कोई दुख, कोई सुख वहां कभी नहीं पहुंचा। ये मील के पत्थर हैं।
और आज नहीं कल इस परिधि से हटना पड़ता है, क्योंकि शरीर क्षणभंगुर है, मरेगा। तो जो परिधि पर खड़े हैं, कंप रहे हैं। क्योंकि मौत उन्हें कंपा रही

है। यह बड़ा विस्मयकारी मामला है। तुम कभी नहीं मरते और कंप रहे हो, घबड़ा रहे हो। ऐसा ही समझो कि रस्सी देख ली अंधेरे में और भाग खड़े हुए सांप समझकर; पसीना-पसीना हुए जा रहे हैं। छाती धड़क रही है। रुकते ही नहीं रोके-- सांप!
ऐसे ही समझो कि किसी सिनेमाघर में बैठे थे और कोई चिल्ला दिया पागल कि "आग, आग लग गई।" और भागे। शब्द ही था, कहीं कोई आग न थी। लेकिन भीतर एक भाव समा गया कि आग। फिर तो तुम्हें कोई रोके भी तो न रुकोगे।
जिसे अभी हम अपना जीवन समझ रहे हैं वह परिधि का जीवन है--बड़ा अधूरा, बड़ा खंडित। उसी खंड को हम पूरा मान बैठे हैं। यही अड़चन है। इसलिए घबड़ाहट स्वाभाविक है। वहां मौत भी आएगी, दुख भी आएगा, बुढ़ापा आएगा, शरीर जीर्ण-जर्जर होगा, कंपोगे।
महावीर यह नहीं कह रहे हैं कि इस शरीर को काट डालो, मिटा डालो। महावीर
कह रहे हैं, इस शरीर का उपयोग कर लो। जैसा यह शरीर संसार में जाने के लिए वाहन बनता है, ऐसा ही यह शरीर अंतर्यात्रा के लिए भी वाहन बन जाता है। चोरी करने जाओ कि मंदिर में ध्यान करने जाओ, शरीर दोनों जगह ले जाता है। किसी की हत्या करने जाओ या किसी को प्रेम से आलिंगन करो, शरीर दोनों में वाहन बन जाता है। शरीर तो बड़ा अदभुत यंत्र है। तुमने एक ही तरकीब सीखी--इससे बाहर जाना। इसमें शरीर का कोई कसूर नहीं।
शायद तुम्हें पता हो, हेनरी फोर्ड ने जब पहली कार बनाई तो उसमें रिवर्स गेयर नहीं था। ख्याल ही नहीं था कि पीछे भी ले जाना पड़ेगा। जो पहला माडल था, बस वह आगे की तरफ जाता था। मोड़ना हो तो बड़ा चक्कर लगाना पड़े। आधामील का चक्कर लगाकर आओ तब कहीं मोड़कर आ पाओ। तब उसे समझ में आया कि यह बात तो ठीक नहीं। गाड़ी पीछे भी लौटनी चाहिए। तो फिर रिवर्स गेयर आया।
तुम करीब-करीब हेनरी फोर्ड के माडल हो। बस एक ही गेयर पता है--कि चले!
और ऐसा भी नहीं है कि गेयर तुम्हारे भीतर नहीं है। है, लेकिन तुम्हें लगाना नहीं आता। तुम्हें पता नहीं कि पीछे भी लौट सकता है यह यंत्र। यह अपने भीतर भी डुबकी मार सकता है। तुमने दूसरों में ही डुबकी लगाई तो उसी का अभ्यास हो गया है।
ध्यान का इतना ही अर्थ हैः रिवर्स गेयर--पीछे लौटने की प्रक्रिया, अपने में जाने की प्रक्रिया।
यह शरीर तो जाएगा। इसके पहले कि यह चला जाए, इसकी लहर पर सवार होकर जरा भीतर की यात्रा कर लो। यह अश्व तो मरेगा। अश्वारोही बन जाओ। जरा भीतर की यात्रा कर लो।
क्या करोगे शब्दवेदी धुन चुकेगी जब?
तब कहां, किस छोर पर, किसके लिए
कौन से संदर्भ जाएंगे दिए?
बैजयंती आकाश टुकड़ों में बंटेगा जब
क्या करोगे तब?
एक गहरी खनक अविनीता हवाएं
शीर्षकों पर शीर्षकों की आहटें आएं न आएं एक कोई रक्त-निचुड़ा शब्द
जिसका अर्थ हम शायद न समझें
और शायद समझ पाएं
घटाएं घिरकर न बरसें तो न बरसें
कि ऋतुएं उसी कोमल कोण से परसें न परसें
कि हम तरसें, कि हम तरसें, कि हम तरसें
किंतु सारी तरसनें भी चुक जाएंगी जब
क्या करोगे तब?
और केसर झर चुकेगी जब
क्या करोगे तब?
यह होनेवाला है। केसर तो झरेगी। यह वीणा तो रुकेगी। ये तार तो टूटेंगे। ये टूटने को बने हैं। यह वीणा बिखरने को सजी है। परिधि पर तो सब बनेगा और मिटेगा। केंद्र पर शाश्वत है। तुम परिधि में रहते-रहते केंद्र

को बिल्कुल ही भूल मत जाना। परिधि में रहो जरूर, केंद्र की याद करते रहो। परिधि में रहो जरूर, कभी-कभी केंद्र में सरकते रहो। परिधि में रहो जरूर, केंद्र की सुरति न भूले, स्मृति न भूले। केंद्र से संबंध न टूटे।
यह केसर तो झरेगी। क्या करोगे तब? तब बहुत पछताओगे, तब रोओगे। लेकिन रोने से कुछ आता नहीं। रोने से कुछ होता नहीं। जागो! इसके पहले कि केसर झर जाए, इसके पहले कि जीवन का दीया बुझे, तुम जीवन के उस शाश्वत दीये को देख लो जो कभी नहीं बुझता। उससे संबंध जोड़ लो। इस लहर का उपयोग कर लो। यह लहर तुम्हारी शत्रु नहीं है, यह तुम्हारी मित्र है। इसी से संसार, इसी से सत्य, दोनों की यात्राएं पूरी होती हैं।
महावीर केवल मील के पत्थर दे रहे हैं। जब तक तुमने स्वयं के भीतर के अमृत को नहीं जाना तब तक तुम मरघट में हो, कब्रिस्तान में।
इब्राहीम फकीर हुआ। उससे कोई पूछता कि गांव कहां? बस्ती कहां? तो वह कहता, बायें जाना। दायें भूलकर मत जाना बायें जाना, नहीं तो भटक जाओगे। बायें से बस्ती पहुंच जाओगे। बेचारा राहगीर चलता। चार-पांच मील चलने के बाद मरघट पहुंच जाता। वह बड़े क्रोध में आ जाता कि यह आदमी कैसा है! फकीर वहां चौरस्ते पर बैठा है। वह लौटकर आता, भनभनाता कि तुम आदमी कैसे हो जी! मुझे मरघट भेज दिया? मैं बस्ती की पूछता था।
इब्राहिम कहता, बस्ती की पूछा इसीलिए तो वहां भेजा क्योंकि जिसको लोग बस्ती कहते हैं वह तो बस उजड़ रही है, उजड़ रही है। रोज कोई मरता है। इस मरघट में जो बस गया सो बस गया। "बस्ती!" कभी इधर किसी को उजड़ते देखा ही नहीं। इसलिए तुमने बस्ती पूछी तो मैंने कहा, बस्ती भेज दें।
कबीर कहते हैं, "ई मुर्दन के गांव।" हमारे गांव को कहते हैं मुर्दों
के गांव।
हम जब तक परिधि पर हैं, हम मुर्दे ही हैं। हमने अपने मर्त्य रूप से ही संबंध बांध रखा है तो मुर्दे हैं। और हम कंप रहे हैं और घबड़ा रहे हैं। घबड़ाहट स्वाभाविक है, मिटेगी न।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं बड़ा भय लगता है। मैं पूछता हूं, किस बात का भय? वे कहते हैं किसी बात का खास भय नहीं, बस भय लगता है। ठीक कह रहे हैं। लगेगा ही। वे कहते हैं, किसी तरह यह भय मिट जाए। यह भय ऐसे नहीं मिटेगा। यह तो तुम रूपांतरित होओगे तो ही मिटेगा। यह तो अमृत का स्वाद लगेगा तो ही मिटेगा। यह भय मौत का है।
मौत का भय है और मिटना तुम चाहते नहीं। और तुम्हें यह पता नहीं कि मिट तुम सकते नहीं। ऐसी उलझन है। जो आदमी मिटने को राजी है वह उसको पा लेता है जो कभी नहीं मिटता। उसको पाते ही से भय मिट जाता है।
मिटा दे अपनी हस्ती को गर कुछ मर्तबा चाहे
कि दाना खाक में मिलकर गुले-गुलजार होता है
परिधि पर तो मिटना होगा--
कि दाना खाक में मिलकर गुले-गुलजार होता है।
मिटता है बीज। परिधि पर ही मिटता है। खोल टूटती है और तत्क्षण अंकुरण
हो जाता--है नया जीवन। और एक बीज से करोड़ों बीज पैदा होते हैं। और जो बंद बीज था वह हजारों फूलों में खिलता और नाचता और हंसता है।
कि दाना खाक में मिलकर गुले-गुलजार होता है
मिटा दे अपनी हस्ती को गर कुछ मर्तबा चाहे
अगर कुछ होना चाहते हो तो मिटना सीखो। अगर कोई मर्तबा चाहते हो, अगर वस्तुतः चाहते हो हस्ती मिले, होना मिले, अस्तित्व मिले तो--मिटो। परिधि पर मिटो ताकि केंद्र पर हो सको। परिधि से डुबकी लगा लो और केंद्र पर उभरो। परिधि को छोड़ो और केंद्र पर सरको।
"जहां न कर्म हैं न नोकर्म, न चिंता है न आर्तरौद्र ध्यान, न धर्मध्यान
है न शुक्लध्यान, वहीं निर्वाण है।"
ण वि कम्मं णोकम्मं, ण वि चिंता णेव अट्टरुद्दाणि।
ण वि धम्मसुक्कझाणे, तत्थेव य होइ णिव्वाणं।।

जहां न कर्म हैं, न कर्मों की आधारभूत शृंखलाएं--नोकर्म। न जहां कर्म
है न कर्मों को बनानेवाली सूक्ष्म वासनाएं। न चिंता है, न चिंतन, न आर्तरौद्र ध्यान।
ठीक है, आर्तरौद्र ध्यान तो हो ही कैसे सकते हैं? क्रोध और दुख में भरे हुए चित्त की अवस्थाएं हैं। लेकिन महावीर कहते हैं न जहां धर्मध्यान, न शुक्लध्यान। जहां ध्यान की आत्यंतिक अवस्थाएं भी पीछे छूट गईं। सविकल्प समाधि पीछे छूट गई, निर्विकल्प समाधि पीछे छूट गई। समाधि ही पीछे छूट गई। जहां बस तुम हो शुद्ध; और कुछ भी नहीं है। कोई तरंग, कोई विकार, कुछ भी नहीं है। बस तुम हो शुद्ध निर्विकार। जहां तुम्हारा सिर्फ धड़कता हुआ जीवन है, वहीं निर्वाण है।
संसार ही नहीं छोड़ देना है, धर्म भी छोड़ देना है। महावीर कहते हैं धर्मध्यान, शुक्लध्यान। शुक्लध्यान महावीर का आत्यंतिक शब्द है ध्यान के लिए। जहां ध्यान इतना शुद्ध हो जाता है कि कोई विषय नहीं रह जाता-- निर्विकल्प ध्यान। लेकिन महावीर कहते हैं वह भी छूट जाता है। वह भी कुछ है। वह भी उपाधि है। तुम कुछ कर रहे हो। ध्यान कर रहे हो। कुछ अनुभव हो रहा है। अनुभव यानी विजातीय।
इधर मैं तुम्हें देख रहा हूं तो तुम मुझसे अलग। फिर तुम भीतर ध्यान में प्रविष्ट हुए। तो धर्मध्यान में आदमी शुभ भावनाएं करता, शुभ भावनाओं का दर्शन होता है; जिसको बुद्ध ने ब्रह्मविहार कहा है, महावीर ने बारह भावनाएं कहीं, उनका अनुभव करता। लेकिन विषय अभी भी बना है। दो अभी भी हैं। फिर निर्विकल्प ध्यान में ऐसी अवस्था आ जाती है कि कोई विकल्प न रहा, लेकिन सिर्फ एक महासुख का अनुभव है। मगर फिर भी सूक्ष्म रेखा अनुभव की बनी है।
तो महावीर कहते हैं जहां सब अनुभव समाप्त हो जाते हैं, जहां केवल अनुभोक्ता रह जाता है बिना अनुभव के; जहां शुद्ध चैतन्य रह जाता है और कोई विषय नहीं बचता, सच्चिदानंद भी जहां नहीं बचता, वहीं निर्वाण है।
ख्याल रखना; धन, पद, प्रतिष्ठा तो रोकती ही है; दान, दया, धर्म भी रोकता है। पद-प्रतिष्ठा छोड़कर दान-धर्म करो, फिर दान-धर्म छोड़कर भीतर चलो। बाहर तो रोकता ही है, फिर भीतर भी रोकने लगता है। पहले बाहर छोड़कर भीतर चलो, फिर भीतर को भी छोड़ो। सब छोड़ो। ऐसी घड़ी ले आओ, जहां बस तुम ही बचे। एक क्षण को भी यह घड़ी आ जाए, तो तुम्हारा अनंत-अनंत जन्मों से घिरा हुआ अंधकार क्षण में तिरोहित हो जाता है।
पहुंच सका न मैं बरवक्त अपनी मंजिल पर
कि रास्ते में मुझे राहबरों ने घेर लिया
लुटेरे तो रास्ते में लूट ही रहे हैं। रहजन तो लूट ही रहे हैं, फिर राहबर भी लूट लेते हैं।
क्रोध तो लूट ही रहा है, ध्यान भी लूटने लगता है एक दिन। हिंसा तो लूट
ही रही है, एक दिन अहिंसा भी लूटने लगती है। तो ख्याल रखना कि अहिंसा सिर्फ हिंसा को मिटाने का उपाय है। और ध्यान केवल मन की चंचलता को मिटाने का उपाय है। जब चंचलता मिट गई तो इस औषधि को भी लुढ़का देना कचरेघर में। इसको लिए मत चलना। जब ध्यान की भी जरूरत न रह जाए तभी वस्तुतः ध्यान हुआ। तो कांटे को कांटे से निकाल लेना, फिर दोनों कांटों को फेंक देना।
स्वभावतः यह बड़ी लंबी यात्रा है। इससे बड़ी कोई और यात्रा नहीं हो सकती। आदमी चांद पर पहुंच गया, मंगल पर पहुंचेगा, फिर और दूर के तारों पर पहुंचेगा। शायद कभी इस अस्तित्व की परिधि पर पहुंच जाए--अगर कोई परिधि है। लेकिन यह भी यात्रा इतनी बड़ी नहीं है जितनी स्वयं के भीतर जानेवाली यात्रा है। सारे अनुभव के पार, जहां सिर्फ प्रकाश रह जाता है चैतन्य का। जहां रंचमात्र भी छाया नहीं पड़ती अन्य की, अनन्यभाव से तुम्हीं होते हो बस, तुम ही होते हो।
यह धीरे-धीरे होगा। बड़े धैर्य से होगा अधीरज से नहीं होगा। तुम सारे प्रयास करते रहो तो भी सिर्फ तुम्हारे प्रयास तुमने कर लिए इससे नहीं हो जाएगा। सारे प्रयास करते-करते, करते-करते एक घड़ी ऐसी आती है कि तुम्हें

अपने प्रयास भी बाधा मालूम पड़ने लगते हैं। प्रयास करते-करते एक दिन प्रयास भी छूट जाते हैं तब घटता है।
धीरे-धीरे रे मना धीरे सब कुछ होय
माली सींचे सौ घड़ा ऋतु आए फल होय
कबीर का वचन है, धीरे-धीरे रे मना। धीरे-धीरे सब कुछ होता है। और सिर्फ माली सौ घड़े पानी डाल दे इससे कोई फल नहीं आ जाते।
माली सींचे सौ घड़ा ऋतु आए फल होय
ठीक समय पर, अनुकूल समय पर, सम्यक घड़ी में घटना घटती है। इसका यह अर्थ नहीं है कि माली पानी न सींचे। क्योंकि माली पानी न सींचे तो फिर ऋतु आने पर भी फल न लगेंगे। माली पानी तो सींचे, लेकिन जल्दबाजी न करे। प्रतीक्षा करे। श्रम और प्रतीक्षा। श्रम और धैर्य।
धीरे-धीरे रे मना धीरे सब कुछ होय
और यह यात्रा बड़ी धीमी है क्योंकि फासला अनंत है। तुम्हारी परिधि और तुम्हारा केंद्र इस जगत में सबसे बड़ी दूरी है। तुम्हारी परिधि पर संसार है और तुम्हारे केंद्र पर परमात्मा। स्वभावतः दूरी बहुत बड़ी होने ही वाली है। तुम्हारी परिधि पर दृश्य है, तुम्हारे केंद्र पर अदृश्य। तुम्हारी परिधि पर रूप है, तुम्हारे केंद्र पर अरूप। तुम्हारी परिधि पर सगुण है, तुम्हारे केंद्र पर निर्गुण।
यात्रा बड़ी बड़ी है; काफी बड़ी है। अनंत यात्रा है। अनंत धैर्य चाहिए होगा।
"जिस स्थान को महर्षि ही प्राप्त करते हैं, वह स्थान निर्वाण है। अबाध है, सिद्धि है, लोकाग्र है, क्षेम, शिव और अनाबाध है।"
णिव्वाणं ति अवाहंति सिद्धी लोगाग्गमेव य।
खेमं सिवं अणाबाहं, जं चरंति महेसिणो।।
सिर्फ महर्षि ही जिस स्थान को प्राप्त करते हैं। जिन्होंने सब भांति अपने ध्यान को शुद्ध किया ऐसे ऋषि इस स्थान को प्राप्त करते हैं। जिनके ध्यान में जरा-सी भी कलुष न रही--संसार की भी नहीं, परलोक की भी नहीं।
"जिस स्थान को महर्षि ही प्राप्त करते हैं, वह स्थान निर्वाण है। अबाध है... ।"
परिभाषा चल रही है। अंततः इसके पहले कि महावीर विदा हों, अपने सूत्र पूरे करें, वे अंतिम अवस्था के संबंध में दिशा-निर्देश दे रहे।
"अबाध है"--उसकी कोई सीमा नहीं।
"सिद्धि है"--वहां पहुंचकर अनुभव होता है आ गए, पहुंच गए। वहां पहुंचकर पता चलता है, अब जाने को कहीं न रहा। वहां पहुंचकर पता चलता है अरे! यात्रा समाप्त हुई। एक अहोभाव। सब पूरा हो गया, परिपूर्ण हो गया। अब कुछ भी न होने को शेष रहा, न जाने को शेष रहा। घर वापस आ गए।
"सिद्धि, लोकाग्र।" जो व्यक्ति इस अवस्था में पहुंच गया, वह लोक के अग्रभाग में स्थित हो जाता है। वह वहां पहुंच जाता है, जहां पहुंचने के लिए हम सदा से दौड़ते रहे--प्रथम हो जाता है।
"क्षेम"--कल्याण की अनुभूति होती है। परम स्वास्थ्य की अनुभूति होती है।
"शिव"--बड़ी शुद्धता, सुगंध, सुरभि। बड़ी गहन पावनता। जैसे कमल और कमल और हजारों कमल भीतर प्राण पर खिलते चले जाते हैं।
"और अनाबाध है।" इस स्थिति में कोई भी बाधा नहीं पड़ती। कोई बाधा पड़ नहीं सकती। बेशर्त है। इसे कोई डिगा नहीं सकता। इसमें कोई विघ्न नहीं डाल सकता। यह विघ्नों के पार है, अनाबाध है।
"जैसे मिट्टी से लिप्त तुंबी जल में डूब जाती है और मिट्टी का लेप दूर होते ही तैरने लग जाती है।"
कभी करके देखना। तुंबी को अगर मिट्टी में लपेट दो तो जल में डूब जाएगी। मिट्टी के वजन से डूब जाएगी। जो नहीं डूबना थी, वह डूब जाएगी। तुंबी तो लोग तैरने के काम में लाते हैं। बांध लेता है आदमी। नहीं तैरना जानता है तो तुंबी के सहारे तैर जाता है। वह तुंबी जो दूसरों को तैरा देती है, खुद भी डूब जाती है, अगर मिट्टी का आवरण हो जाए।

महावीर कहते हैं शरीर के आवरण से हम डूबे। मिट्टी ने डुबाया। जो डूबने को न बने थे वे डूब गए। उबरे रहना जिनका स्वभाव था, जिनके सहारे और भी तर जाते और तैर जाते, जो तरण-तारण थे, वे डूब गए।
तुंबी डूब जाती है मिट्टी के आवरण से।
"जैसी मिट्टी से लिप्त तुंबी जल में डूब जाती है और मिट्टी का लेप दूर होते ही तैरने लग जाती है... ।"
बस, इतना ही फर्क है तुममें और सिद्धपुरुषों में। तुममें और बुद्धपुरुषों में। तुममें और जिन-पुरुषों में। इतना ही फर्क है। तुम भी वैसी ही तुंबी, जैसी वे। तुम जरा मिट्टी से लिपे-पुते पड़े, तो डूबे जल में। उन्होंने अपनी मिट्टी से अपने को दूर जान लिया, पृथक जान लिया। तादात्म्य तोड़ दिया। मिट्टी खिसक गई, तुंबी उठ गई।
जब तुंबी उठती है जल में तो जाकर अग्रभाग में स्थिर हो जाती है। पानी
की सतह पर स्थिर हो जाती है। ऐसा महावीर कहते हैं, जो डूबे हैं इस संसार में वे तुंबियों की तरह हैं मिट्टी लगी--डूबे हैं। जब मिट्टी छूटती है, तादात्म्य छूटता है, यह मोह भंग होता है, तो उठी आत्मा, चली।
और इसको महावीर कहते हैं लोकाग्र--आत्यंतिक अवस्था। जहां लोक समाप्त होता है, उस जगह जाकर सिद्धपुरुष ठहर जाते हैं। ये तो सिर्फ प्रतीक हैं। इन प्रतीकों का अर्थ ले लेना। इन प्रतीकों को लेकर नक्शे मत खींचने लगना। "जैसे मिट्टी से लिप्त तुंबी जल में डूब जाती है और मिट्टी का लेप दूर होते ही तैरने लगती है, अथवा जैसे एरण्ड का फूल धूप से सूखने पर फटता है तो उसके बीज ऊपर को जाते हैं, अथवा जैसे अग्नि या धूम की गति स्वभावतः ऊपर की ओर होती है, अथवा जैसे धनुष से छूटा हुआ बाण पूर्व-प्रयोग से गतिमान होता है, वैसे ही सिद्ध जीवों की गति भी स्वभावतः ऊपर की ओर होती है।"
तो निर्वाण की सूचना समझना कि घर पास आने लगा, जब तुम्हारी गति ऊपर की
ओर होने लगे। हिंसा से अहिंसा की ओर होने लगे। क्रोध से करुणा की ओर होने लगे, बेचैनी से चैन की ओर होने लगे, पदार्थ से परमात्मा की ओर होने लगे। धन से ध्यान की ओर होने लगे, तो समझना कि गति ऊपर की तरफ शुरू हो गई। तुंबी छूटने लगी मिट्टी से। आज नहीं कल लोकाग्र में ठहर जाएगी। वहां पहुंच जाएगी, जिसके आगे और जाना नहीं है।
लाउअ एरण्डफले अग्गीधूमे उसू धणुविमुक्के।
गइ पुव्वपओगेणं एवं सिद्धाण वि गती तु।।
"परमात्मतत्व अव्याबाध, अतींद्रिय, अनुपम, पुण्य-पापरहित, पुनरागमनरहित, नित्य, अचल और निरालंब होता है।"
यह जो परमात्मतत्व है, यह जो निर्वाण है, यह जो घर लौट आना है, यह कैसा तत्व है? इसके संबंध में क्या कहा जा सकता है?
इतना ही--"परमात्म तत्व अव्याबाध।" इसमें कोई बाधा कभी नहीं पड़ती। इसके विपरीत ही कोई नहीं है, जो बाधा डाल सके। यह सबके पार है। इस तक किसी चीज की पहुंच नहीं है। सब चीजें इससे पीछे छूट जाती हैं। जिनसे बाधा पड़ सकती है वे बहुत पीछे छूट जाती हैं। अतींद्रिय है। इंद्रियों के पार है, क्योंकि देह के पार है।
"अनुपम"--यह शब्द समझना। अनुपम का अर्थ है, जैसा कभी न जाना था; जैसा कभी न देखा था। न कानों सुना, न आंखों देखा। जो कभी अनुभव में आया ही न था। बहुत अनुभव हुए सुख के, दुख के, सफलता के, विफलता के। बहुत अनुभव हुए--रस-विरस, स्वाद-बेस्वाद, सुंदर-असुंदर, लेकिन यह अनुपम है। ऐसा भी नहीं कह सकते यह सुंदर है। क्योंकि तब भ्रांति होगी कि शायद जो हमारे सुंदर के अनुभव हैं, उन जैसा है। नहीं, यह हमारे किसी अनुभव जैसा नहीं है। यह तो बस अपने जैसा है। अनुपम का अर्थ होता है अपने जैसा। इसकी कोई तुलना नहीं हो सकती। यह अतुलनीय है।

"पुण्य-पापरहित, पुनरागमनरहित, नित्य, अचल और निरालंब... ।"
हमें तो वही शब्द समझ में आते हैं, जो हमारे अनुभव के हैं।
मैंने सुना, मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन शराबघर गया। शेखी मारना उसकी आदत है। शेखी मार रहा था शराबघर के मालिक के सामने कि मैं हर तरह की शराब

स्वाद लेकर पहचान सकता हूं। और ऐसा ही नहीं है, अगर तुम दस-पांच शराबें भी इकट्ठी एक प्याली में मिला दो तो भी मैं बता सकता हूं कि कौन-कौन सी शराब मिलाई गई है।
मालिक ने कहा तो रुको। वह भीतर गया, मिला लाया एक ग्लास में मार्टिनी, ब्रांडी, रम, ह्विस्की--जो भी उसके पास था, सब मिला लाया। मुल्ला पी गया और एक-एक शराब का नाम उसने ले लिया कि ये-ये चीजें इसमें मिली हैं। चकित हो गया वह मालिक भी। उसने कहा, एक बार और। वह भीतर गया और एक गिलास में सिर्फ पानी भर लाया। मुल्ला ने पीया, बड़ा बेचैनी में खड़ा रह गया। कुछ सूझे न। शुद्ध पानी है। स्वाद ही उसे इसका याद नहीं रहा है शुद्ध पानी का।
उसने इतना ही कहा, कि यह मैं नहीं जानता यह क्या है! मगर एक बात कह सकता हूं, इसकी बिक्री न होगी।
हमारा जो भी अनुभव है वह कई तरह की शराबों का है। शुद्ध जल का तो हम स्वाद ही भूल गए हैं। बेहोशियों का है; होश का तो हम स्वाद ही भूल गए। विक्षिप्तताओं का है, स्वास्थ्य का तो हम स्वाद ही भूल गए। गर्हित, व्यर्थ, असार का है; सार का तो हम स्वाद ही भूल गए।
इसलिए महावीर कहते हैं अनुपम। हमारे अनुभव से किसी से उसका मेल नहीं है। इसलिए तुम किसी अपने अनुभव के आधार से उसके संबंध में मत सोचना। खतरा यही हो जाता है। जैसे कि कोई कहे, कोई ज्ञानी, सिद्ध--कहे महासुख; तो हमको लगता है हमारा ही सुख होगा; करोड़ गुना, अरब गुना बड़ा, लेकिन है तो सुख ही। बस भूल हो गई।
उसकी मजबूरी है। वह क्या कहे? किन शब्दों में कहे? महासुख कहता है तो
भी अड़चन हो जाती है। क्योंकि तुम अपने सुख को ही सोचते हो। तुम अपने सुख में ही गुणनफल करके सोच सकते हो लेकिन तुम्हारा सुख सुख ही कहां है? उसको तुम करोड़ गुना कर लो तो भी वह सुख नहीं है।
आनंद कहो तो झंझट। क्योंकि तुमने जो आनंद जाना है वे अजीब-अजीब आनंद जाने तुमने। कोई ताश ही खेल रहा है, कहता है बड़ा आनंद आ रहा है। अब क्या करो? कोई शराब पी रहा है, कहता है बड़ा आनंद आ रहा है। कोई वेश्या का नृत्य देख रहा है, और कहता है बड़ा आनंद आ रहा है। अब कहो कि परमात्मा आनंद है तो इस आदमी के मन में कुछ ऐसे ही लगेगा, कि होगा कुछ वेश्या का नाच देखने जैसा, शराब पीने जैसा, ताश खेलने जैसा। जरा बड़ा करके सोच लो।
लेकिन जो भेद होनेवाला है इसके आनंद में और सिद्ध के आनंद में, इसकी कल्पना में, वह परिमाण का होगा, मात्रा का होगा। और सिद्धपुरुष का आनंद गुणात्मक रूप से भिन्न है। मात्रा का भेद नहीं है। यह बात ही अनुपम है। इसलिए महावीर ठीक कहते हैं कि अनुपम है। तुम अपने किसी अनुभव से विचार मत करना। तुम्हारा कोई अनुभव मापदंड नहीं बन सकेगा।
यह निर्वाण तो जब घटता है तभी जाना जाता है। यह तो स्वाद जब मिलता है तभी पहचाना जाता है।
तो सत्पुरुषों के पास तुम सिर्फ प्यास ले लो, बस काफी है। उनकी बातें सुन, उनके जीवन को अनुभव कर, उनकी उपस्थिति से तुम सिर्फ प्यास ले लो, तो बस काफी है। उनके कारण तुम उतावले हो उठो, व्यग्र हो उठो खोजने के लिए; बस काफी है। उनसे सिद्धांत मत लेना; सिद्धांत मिल ही नहीं सकते। उनसे शास्त्र मत लेना। शास्त्र बनाया कि भूल हो गई। उनसे तो प्यास लेना जीवंत और चल पड़ना।
मेघ बजे धिन-धिन धा धमक-धमक
दामिनी गई दमक
मेघ बजे, दादुर का कंठ खुला
धरती का हृदय धुला
मेघ बजे, पंक बना हरिचंदन
फूले कदम्ब
टहनी-टहनी में कंदुक सम फूले कदम्ब, फूले कदम्ब
जाने कबसे वह बरस रहा
ललचायी आंखों से नाहक

जाने कबसे तू तरस रहा
मन कहता है छू ले कदम्ब,
फूले कदम्ब
मेघ बजे, धिन-धिन धा धमक-धमक
दामिनी गई दमक
मेघ बजे
अगर सत्पुरुषों के पास ऐसा कुछ हो जाए--मेघ बजे, दामिनी चमके, कोई अनूठा नाद सुनाई पड़ने लगे, कोई अदृश्य की पुकार खींचने लगे, कोई चुनौती मिले तो फिर ललचायी आंखों से देखते ही मत रहना।
फूले कदम्ब
जाने कबसे वह बरस रहा
ललचायी आंखों से नाहक
जाने कबसे तू तरस रहा
मन कहता है छू ले कदम्ब,
फूले कदम्ब
जब यह चाहत उठे, यह चाहत का ज्वार उठे तो रुकना मत। तोड़-ताड़ सारी जंजीरें चल पड़ना। छोड़-छाड़ सारा मोह-मायापाश चल पड़ना। लौटकर देखना भी मत। यह आह्वान मिल जाए सतपुरुषों से, बस इतना काफी है।
पर लोग अजीब हैं। शास्त्र लेते हैं, प्यास नहीं लेते। सिद्धांत ले लेते हैं, सत्य की चुनौती नहीं लेते।
एक अपूर्व घटना है। इस जगत की सबसे अपूर्व घटना है किसी व्यक्ति का सिद्ध या बुद्ध हो जाना। इस जगत की अनुपम घटना है किसी व्यक्ति का जिनत्व को उपलब्ध हो जाना, जिन हो जाना। उस अपूर्व घटना के पास जला लेना अपने बुझे हुए दीयों को। अवसर देना अपने हृदय को, कि फिर धड़क उठे उस अज्ञात की आकांक्षा से, अभीप्सा से। तो शायद कभी तुम जान पाओ निर्वाण क्या है। बताने का कोई उपाय नहीं।
लिखा-लिखी की है नहीं देखा-देखी बात
तुम देखोगे तो ही जानोगे। लिखा-लिखी में उलझे मत रह जाना। समय मत गंवाना। ऐसे भी बहुत गंवाया है।
महावीर के इन सूत्रों पर बात की है इसी आशा में कि तुम्हारे भीतर कोई स्वर बजेगा, तुम ललचाओगे, चाह उठेगी, चलोगे। पाना तो निश्चित है। पा तो लोगे, चलो भर। न चले तो जो सदा से तुम्हारा है, उससे ही तुम वंचित रहोगे। चले तो जो मिलेगा वह कुछ बाहर से नहीं मिलता, तुम्हारा ही था। सदा से तुम्हारा था। भूले-भटके, भूले-बिसरे बैठे थे। अपने ही खजाने की खबर मिली। मेघ बजे धिन-धिन धा धमक-धमक
दामिनी गई दमक
मेघ बजे, दादुर का कंठ खुला
धरती का हृदय धुला
मेघ बजे, पंक बना हरिचंदन
फूले कदम्ब
टहनी-टहनी में कंदुक सम फूले कदम्ब, फूले कदम्ब
जाने कबसे वह बरस रहा
ललचायी आंखों से नाहक
जाने कबसे तू तरस रहा
मन कहता है छू ले कदम्ब,
फूले कदम्ब।
आज इतना ही।